समर्पण

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय-दसमाधस्तनवर, श्रीस्वरूपरूपानुग आचार्य केसरी

परमाराध्य-परमाभीष्टदेव

परमहंस-परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशतश्री चिद्विलास

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

के श्रीश्रीकरकमलोंमें तत्त्वसिद्धान्त एवं शिक्षा-समन्वित उनका परमपावन जीवनचरित्र भक्त्यर्घ्यके रूपमें समर्पण कर रहा हूँ।

हे मुकुन्दप्रेष्ठ! हे स्वरूप-रूपानुगवर! मैं नितान्त अयोग्य सेवक हूँ। जैसा भी हूँ आपका ही हूँ। सेवकोंकी तुच्छ सेवाको भी बहुमाननकर प्रसन्न होनेवाले हे गुरुवर! इस दीन-हीन अयोग्य सेवकके इस भक्त्यर्घ्यको कृपापूर्वक ग्रहणकर प्रसन्न हों। आप जययुक्त होवें—

—दीनहीन श्रीगुरुकृपालेश प्रार्थी

भक्तिवेदान्त नारायण

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः

आचार्य केसरी

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

(तत्त्वसिद्धान्त और शिक्षा–समन्वित जीवनचरित्र)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय
मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी नित्यालीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

प्रकाशक—
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰ प्र॰)
०५६५–२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
०५६५–२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड
गोवर्धन (उ॰ प्र॰)
०५६५–२८१५६६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
०९३३३२२२७७५

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी–३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११–२५५३३५६८

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५–२४४३१०१

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
०६७५२–२२७३१७

प्रस्तावना

आज मुझे परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोन्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीका तत्त्वसिद्धान्त एवं शिक्षा-समन्वित जीवनचरित्र प्रकाशित करते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है। बहुत दिनोंसे इस महत्वपूर्ण ग्रन्थका अभाव खटक रहा था।

आज श्रीराधाभावद्युतिसुवलित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णस्वरूप महावदान्य श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी अभिलाषा, भक्तिभागीरथीके भगीरथ—सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी भविष्यवाणी अनुरूप समग्र विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित विशुद्ध भक्ति एवं हरिनाम-सङ्कीर्त्तन प्रचार-प्रसारके मूल महापुरुष जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' के शिष्य-प्रशिष्योंकी चेष्टा द्वारा सर्वत्र ही हरिनाम-सङ्कीर्त्तनके प्रचार-प्रसारमें अभिवृद्धि हो रही है। विशेषतः श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत अस्मदीय गुरुपादपद्मने श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करना ही अपने जीवनका एकमात्र कर्त्तव्य बनाया। इसी प्रसङ्गमें उन्होंने अपने अनेक सतीर्थोंकी भी सब प्रकारसे सहायता की, जिसमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजी अग्रगण्य हैं। उन्हीं श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे प्रेरित होकर मैं भी उनके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेकी यत्किञ्चित् चेष्टा कर रहा हूँ और इस चेष्टामें जो कुछ भी सफलता प्राप्त कर रहा हूँ, यह उनकी ही विशेष करुणासे हो रहा है। वे आधुनिक कालमें समग्र विश्वमें नामसङ्कीर्त्तन और शुद्धभक्तिका प्रचार करनेवालोंमें अग्रणी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके भी संन्यास-गुरु हैं तथा उनकी अलौकिक एवं अहैतुकी कृपासे मेरे जैसा सभी विषयोंमें तुच्छ व्यक्ति भी आज विश्वमें सर्वत्र उनके मनोऽभीष्ट गौर-वाणीका बड़ी सफलताके साथ प्रचार-प्रसार कर रहा है, ऐसा लक्ष्यकर देश और विदेशोंमें सर्वत्र ही श्रद्धालु लोगोंको इस अलौकिक महापुरुषके अप्राकृत जीवनचरित्र एवं उनके विचार-वैशिष्ट्यको जाननेकी प्रबल उत्कण्ठा हो रही है।

उन लोगोंने मुझसे पुनः-पुनः उनके जीवनचरित्रको प्रकाशित करनेका अनुरोध किया। हमारे अनेक आदरणीय सतीर्थोंने भी मुझसे इसके लिए पुनः-पुनः आग्रह किया। बीचमें अन्यान्य सेवाओंमें व्यस्त रहने तथा कुछ अस्वथ रहनेके कारण मैं उनके अनुरोधको टालता रहा।

आजसे तेरह वर्ष पूर्व सन् १९८५ ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य, पराविद्यानुरागी मेरे सतीर्थ पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने दैनिक नदिया-प्रकाश, साप्ताहिक एवं मासिक श्रीगौड़ीय तथा श्रीगौड़ीय-पत्रिकामें प्रकाशित परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मके सम्पादकीय लेखों, निबन्धों, प्रबन्धों, कविताओं आदिके आधारपर श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी (तत्त्वसिद्धान्त और शिक्षा-समन्वित चरित्र-ग्रन्थ) का बँगला भाषामें संकलन किया। इस ग्रन्थमें उन्होंने उनके अतिमर्त्य जीवनचरित्र और उनके विचार-वैशिष्ट्यका सूत्र रूपमें वर्णन किया है। यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय होनेपर भी केवल बँगला-भाषी लोगोंके लिए ही उपकारी है। हिन्दी-भाषी बहुसंख्यक श्रद्धालुओंके लिए यह अभाव बहुत दिनोंसे खटक रहा था। मैंने गुरुभ्राताओं एवं विशेषतः करुणा-वरुणालय श्रील गुरुपादपद्मके चरणोंमें हृदयमें शक्ति-सञ्चार करनेकी विशेष प्रार्थना की, जिससे कि मैं इस कार्यको पूर्ण कर सकूँ। व्यक्तिगत रूपसे १९४५ ई॰ से लेकर श्रील गुरुपादपद्मके अप्रकट काल तक उनके साथ रहकर सब प्रकारकी सेवा करनेका मुझे सुयोग मिला है। मैं उनके निकट रहकर उनके विभिन्न स्थानोंमें दिये गये भाषणों, विपक्षके लोगोंसे शास्त्रार्थों, वाद-विवादों तथा प्रश्नोत्तरोंको श्रवणकर अपने नोट बुकमें लिख लेता था। मैं कभी भी उनके निकट चुप-चाप बैठा नहीं रहता था। बड़ी नम्रतासे परिप्रश्न करता, गूढ़ विषयोंको जाननेके लिए उनसे वाद-विवाद भी करता और इन सब विषयोंको नोट बुकमें लिखनेके अतिरिक्त अपने मानस-पटलपर भी अङ्कित कर रखता था। ये बातें मेरे लिए इस विषयमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं। श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें रहते समय हमलोगोंके पुनः-पुनः आग्रहसे श्रील गुरुदेवके कनिष्ठ भ्राता श्रीपुलिन विहारी गुहठाकुरताने श्रीगुरुदेवके बाल्यचरित्रसे लेकर मठ-प्रवेश तकके जीवनचरित्रको एक पुस्तिकामें लिखा था। इसीके आधारपर हम

गुरुभ्राताओंके आग्रहसे जीरट उच्च विद्यालयके सुयोग्य प्रधानाध्यापक श्रीयामिनीकान्त दास, एम॰ए॰बी॰टी॰, ने बँगला पद्योंमें श्रील गुरुदेवका जीवनचरित्र लिखा, जिसमें पुलिन विहारी गुहठाकुरता द्वारा लिखित विषयोंके अतिरिक्त चैतन्य मठ जीवन तथा गौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाके पश्चात् तकके कुछ विषयोंका समावेश किया गया था। पूज्यपाद वामन महाराजजीने अपने संकलित श्रील गुरुदेवके जीवनचरित्रमें इसकी भी सहायता ली है। उपरोक्त ग्रन्थ इत्यादि, मेरे नोट बुक तथा संस्मरण ही वर्त्तमान संस्करणके मूल उपकरण हैं। श्रील प्रभुपाद, श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज, श्रीवंशीदास बाबाजी महाराज तथा उनके अपने जीवनकी अनेक घटनाओंको स्वयं उनके ही मुखसे श्रवण किया था। हमने इस ग्रन्थमें उन संस्मरणोंको भी लिपिबद्ध क्रिया है।

मैंने श्रील गुरुदेवके इस जीवनचरित्रको आठ अध्यायोंमें विभक्त किया है। श्रद्धालु पाठकगण ग्रन्थमें ही इन विषयोंका अवलोकन करेंगे। यह ग्रन्थ कैसा हुआ है, इसका निर्णय स्वयं पाठकगण करेंगे।

इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपि प्रस्तुत करनेमें श्रीमान् हरिप्रिय ब्रह्मचारी और श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी 'विद्यालङ्कार' ने बहुत परिश्रम किया है। ग्रन्थके कम्पोजिंग एवं संशोधनमें बेटी शान्ति दासी एवं श्रीमान् पुरन्दर ब्रह्मचारीकी सेवा-प्रचेष्टा उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थके प्रूफ-संशोधन आदि कार्योंमें श्रीओमप्रकाश व्रजवासी, एम॰ए॰, एल॰एल॰बी॰, 'साहित्यरत्न', श्रीमान् शुभानन्द ब्रह्मचारी 'भागवतभूषण', श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी 'सेवारत्न', श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी, श्रीमान् पुण्डरीक ब्रह्मचारी आदिकी सेवा-प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय रही है। श्रील गुरुपादपद्म इनपर प्रचुर अनुग्रहकर अपनी अभीष्ट सेवामें नियुक्त करें, यही उनके चरणोंमें सकातर प्रार्थना है।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्ति वेदान्त नारायण

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
प्रथम भाग	**१—२४**
भागवत और गुरु-परम्परा	१
आविर्भाव	९
शैशव	११
छात्र-जीवन, जमींदारी-रक्षण एवं पारमार्थिक जीवनका आरम्भ	१४
श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका दर्शन एवं आशीर्वाद ग्रहण	१८
द्वितीय भाग	**२५—७८**
गृहत्याग	२५
दीक्षा एवं गुरु-मन्त्रकी प्राप्ति	३०
आदर्श मठजीवन	३३
श्रीगुरुदेवके आदेशसे पूर्वाश्रमकी जमींदारीकी रक्षा	३४
अतिथि-सेवा	३७
बृहत्-मृदङ्गकी सेवा	३८
श्रीधाम मायापुरकी सेवा	४०
गुरुसेवाका आदर्श	४२
बागबाजार गौड़ीय मठकी स्थापनामें विशेष योगदान	४६
परमानन्द शब्दकी वैदान्तिक व्याख्या	४८
श्रीविनोदबिहारी एवं ठाकुर भक्तिविनोद इंस्टीट्यूट	५१
कृतिरत्नकी उपाधि	५२
मामला-मुकदमाके द्वारा भगवत्सेवा	५३
आदर्श वैष्णव-जीवन	५५
पूज्यपाद श्रीधर महाराजसे प्रथम मिलन	५६

पृष्ठ संख्या

प्रभुपादके विचारसे आदर्श गुरुसेवक ५८

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधिका स्थानान्तरण ५९

शुद्धभक्तिका प्रचार ६२

तत्त्व-दर्शनमें अभिरुचि ६३

श्रीमहामन्त्र एवं कीर्त्तन ६५

'उपदेशक' उपाधिसे विभूषित ६६

श्रीधाम मायापुरमें बङ्गालके महामान्य गवर्नर सर जॉन एण्डरसन ६८

योगपीठमें श्रीमन्दिर एवं विग्रहप्रतिष्ठा ७०

मायावादकी जीवनी ७२

श्रील प्रभुपादका अप्रकटलीलामें प्रवेश ७४

तृतीय भाग **७९—२६८**

गौड़ीय मठ-मिशनके महाधीक्षक (जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट) ७९

श्रील वंशीदास बाबाजी महाराजकी कृपाप्राप्ति ८०

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना ८२

भगवान्के प्रति सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता ८५

श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज ८७

संन्यास ग्रहण ८७

बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार ८९

श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाका पुनः प्रवर्तन ९१

आचार्य-लीलाका प्रकाश ९४

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा एवं रथ-यात्रा ९५

चौरासी कोस क्षेत्रमण्डल परिक्रमा ९८

शिष्य वात्सल्य १०६

कल्याणपुरमें वैष्णवविधिके अनुसार श्राद्ध अनुष्ठान १०८

श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान १११

श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभुका निर्याण ११२

पृष्ठ संख्या

जगन्नाथपुरीमें मठ एवं पारमार्थिक मासिक
पत्रिकाके प्रकाशका सङ्कल्प ११६
मेदिनीपुर एवं सुन्दरवनमें प्रचार ११७
श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवके अवसरपर
श्रीगौड़ीय पत्रिकाका आत्मप्रकाश १२३
श्रीअयोध्याधाम, नैमिषारण्यकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत १२५
श्रीसेतुबन्ध रामेश्वरकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत १२७
आनन्दपाड़ामें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव १२८
वसीरहाटमें सनातनधर्मका प्रचार तथा
श्रीचट्टोपाध्याय महाशयके प्रतिवादका उत्तर १२९
श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव, नवनिर्मित गृहमें
श्रीविग्रहोंका प्रवेश १३०
श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी प्रभुका वेशाश्रय १३३
विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार १३४
श्रीव्यासपूजापद्धति-ग्रन्थ संग्रह तथा उसका प्रकाशन १३५
अष्टोत्तरशतनामी त्रिदण्डसंन्यास प्रदान १३६
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार १३८
श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथकी रथ-यात्रा आदिका दर्शन १४१
चुँचुड़ा मठमें श्रीजन्माष्टमी व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव १४३
श्रीबद्रिकाश्रम और केदारनाथकी परिक्रमा १४४
श्रीपुरुषोत्तम व्रत १४७
श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीकी पुनः प्रतिष्ठा १४८
श्रीअवन्तिका (उज्जयिनी) और नासिककी परिक्रमा १५२
हुगली श्रीरामपुरमें सनातनधर्मका प्रचार १५३
चौबीस परगना एवं मेदिनीपुरके विभिन्न स्थानोंमें
शुद्धभक्तिका प्रचार १५५
चुँचुड़ाके संस्कृत महासम्मेलनमें भाषण १५६
मेदिनीपुरके विष्णुपुर कमारपोतामें श्रीव्यासपूजा महोत्सव १५७
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें सनातनधर्मका प्रचार १५८

पृष्ठ संख्या

मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना एवं श्रीभागवत पत्रिकाका प्रकाशन १६०
श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ मथुरामें विग्रह प्रतिष्ठा एवं अन्नकूट महोत्सव १६४
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें चैतन्यवाणीका प्रचार १६७
बेगुनाबाड़ीमें श्रीव्यासपूजा महामहोत्सव १६७
हिन्दू साधु-संन्यासी नियन्त्रण बिल (कानून) का प्रतिवाद १६९
श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ (आसाम) की स्थापना १७२
श्रीगोलोकगंज मठमें श्रीव्यासपूजा महोत्सव १७४
निखिल बंग-वैष्णव सम्मेलनमें श्रीआचार्यकेसरी १७४
श्रीराधाष्टमी व्रतमें उपवास १७५
श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम, खड़गपुरमें व्यासपूजा १७६
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं अक्षय तृतीया १७९
गोलोकगंज आसाममें मठ-मन्दिर निर्माण एवं प्रचार १८०
पिछलदामें प्राथमिक विद्यालय प्रतिष्ठा एवं शिक्षा प्रणाली १८०
श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव १८३
श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम खड़गपुरमें व्यासपूजा तथा नवनिर्मित मन्दिरमें श्रीविग्रहोंका प्रवेशोत्सव १८४
श्रीराधागोविन्दनाथ महाशय कृत वैष्णव दर्शन ग्रन्थका प्रतिवाद १८८
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रील आचार्यदेव १९०
पिछलदा गौड़ीय मठ एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठा १९२
केशवपुरमें विचारसभा १९५
चुँचुड़ामें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरका विरह-महोत्सव १९८
श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी रथ-यात्रा १९९
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीजन्माष्टमी एवं श्रीनन्दोत्सव २०२
श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कार्त्तिक-व्रत २०३
चुँचुड़ा मठमें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव २०६

पृष्ठ संख्या

श्रीआचार्य केसरीके ६६ दिनमें ६२ भाषण २०७
मुर्शिदाबाद अञ्चलमें श्रील आचार्यदेव २१३
बङ्गालके सुन्दरवन अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार २१५
चुँचुड़ा मठमें श्रीव्यासपूजा-महोत्सव २१७
वलागड़में विराट धर्म-सम्मेलन २२०
आसाम, सुन्दरवन आदि स्थानोंमें प्रचार २२१
श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रथ-यात्रा एवं झूलन-यात्रा महोत्सव आदि २२२
श्रील गुरुदेवकी छत्रछायामें समग्र भारतीय तीर्थोंकी परिक्रमा २२३
जयपुरमें श्रील आचार्यदेव २२६
उड़ीसा प्रदेशमें समितिके प्रचारकेन्द्रकी स्थापना २२७
जयपुर शहरमें शुद्धभक्तिका प्रचार २२८
श्रीसमिति द्वारा परिचालित श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें सभापति महाराजकी शुभेच्छा २३१
श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें टोल परिदर्शकका मन्तव्य २३३
श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी स्थापना २३४
श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवके मध्य नवनिर्मित श्रीमन्दिरमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव २३५
श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ २४२
श्रीनरहरि तोरण २४२
सप्तखण्डमय श्रीमठ २४४
श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें छुआछूत संवादका प्रतिवाद २५६
सिलिगुड़ि तथा बिहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार २५७
कलकत्ता और मेदिनीपुरमें श्रील आचार्यदेव द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार २५९
श्रीमथुरा, वृन्दावन, लखनऊ और काशीमें शुद्धभक्तिका प्रचार २६०
श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, कलकत्तामें श्रील आचार्य केसरी २६१

पृष्ठ संख्या

आसाम प्रदेशके वासुगाँवमें श्रीवासुदेव गौड़ीय मठकी स्थापना २६४
सिऊड़ी बार-लाईब्रेरी एवं डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरीमें वक्तृता २६५
अप्रकटलीलामें प्रवेश २६५

चतुर्थ भाग **२६९—३२२**

(क) सिद्धस्वरूपका इङ्गित २६९
(ख) प्रत्यक्ष दर्शनकी हेयता २७०
(ग) साम्यवादी ज्योति बाबूके साथ वार्त्तालाप २७३
(घ) श्रीगुरुदेव और भिक्षाके द्रव्य २७५
(ङ) श्रीगुरुदेव और जीवका स्वरूप २७७
(च) पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा और भागवत-परम्परा २८५
(i) भाष्यकारकी गुरु-परम्परा २८६
(ii) भाष्यकारकी शिष्य-परम्परा २८७
(iii) पाञ्चरात्रिक-परम्परा एवं भागवत-परम्परा २८९
(छ) रसिक एवं भावुक भागवत २९४
(ज) साम्प्रदायिक सेवा ३००
(झ) स्मार्त और वैष्णव विचारमें भेद ३०१
(ञ) श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर और श्रील सरस्वती ठाकुरके विचारोंका वैशिष्ट्य ३०६
(ट) श्रील गुरुपादपद्म अतिमर्त्त्यत्व एवं सुदृढ़ गुरुनिष्ठा ३११

पञ्चम भाग **३२३—३६८**

श्रीलगुरुपादपद्मके द्वारा प्रचारित सिद्धान्त ३२३
(क) प्रमाण-तत्त्व ३२८
(ख) स्वतःप्रमाण वेद प्रमाणशिरोमणि हैं ३२८
(ग) कृष्ण ही परम तत्त्व हैं ३३०
(घ) श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं ३३३
(ङ) श्रीकृष्ण अखिलरसामृत सिन्धु हैं ३३७
(च) जीव श्रीहरिका विभिन्नांश तत्त्व है ३४१

पृष्ठ संख्या

(छ) तटस्थ धर्मवशतः बद्ध दशामें मायाग्रस्त जीवका विचार ३४७
(ज) जीव मुक्त दशामें मायामुक्त होता है ३४९
(झ) अचिन्त्यभेदाभेद विचार ३५४
(ञ) शुद्धाभक्तिका विचार ३५८
(ट) कृष्ण-प्रीति ही जीवका साध्य है ३६५

षष्ठ भाग ३६९—४३४

श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायका संरक्षण ३६९
(क) केवलाद्वैतवादका खण्डन ३७०
(ख) स्वसम्प्रदायकी रक्षा ३७३
(i) श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका मध्वानुगत्य ३७७
(ग) भक्तिविरोधी स्मार्तोंके विचारोंका खण्डन ३९६
(घ) श्रीशालग्राम-सेवामें अधिकार ४०२
(ङ) श्रीविग्रहतत्त्व एवं श्रील गुरुपादपद्म ४०३
(च) 'जितने मत उतने पथ' का खण्डन ४११
(छ) सहजिय-मतका खण्डन ४१८
(ज) भेक एवं सिद्धप्रणाली ४२२
(i) भेकधारण ४२२
(ii) सिद्धप्रणाली ४२५

सप्तम भाग ४३५—५०२

श्रील गुरुदेव एवं वैष्णव साहित्य ४३५
मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय ४३५
(क) मायावाद किसे कहते हैं? ४३५
(ख) क्या जगत् मिथ्या है? ४३७
(ग) मोक्षका उपाय ४३७
(घ) मायावादका इतिहास ४३९
(ङ) सत्युगमें अद्वैतवाद ४४०
(च) त्रेतायुगमें निर्विशेष अद्वैतवादकी परिणति ४४१
(छ) द्वापरयुगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति ४४२

पृष्ठ संख्या

(ज) कलियुगमें अद्वैतवाद या मायावाद ४४४
(झ) निर्वाणकी अलीकता ४४६
श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम् ४४७
श्रीमङ्गलारति ४७२
श्रील प्रभुपादकी आरति ४७८
श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरति ४८४
श्रीचैतन्य-पञ्जिका (श्रीमायापुर-पञ्जिका) ४९०
श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य ४९२
श्रीभागवत पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य ४९६
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संकलित, प्रकाशित, रचित और संपादित शुद्धभक्ति-ग्रन्थावली ५०१

अष्टम भाग ५०३—५१२

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त त्रिदण्ड-संन्यास और बाबाजी-वेष ५०३
श्रील आचार्य केसरी द्वारा आयोजित परिक्रमाएँ ५०५
श्रील आचार्य केसरी द्वारा प्रतिष्ठापित शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्रसमूह ५०५
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी उपदेशावली ५०८
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका स्वहस्ताक्षर लिपिमें कुछ उपदेश ५११

परिशिष्ट ५१३—५३६
श्लोक-सूची ५३७—५४१
पयार-सूची ५४२—५४४
इस ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ सम्मतियाँ ५४५—५५०

श्रीआचार्य-चरित

प्रथम भाग

भागवत गुरु-परम्परा

परम कारुणिक श्रीभगवान् और उनके प्रिय परिकरजन विश्वका कल्याण करनेके लिए तात्कालिक एवं सर्वकालिक प्रयोजनके अनुरूप विभिन्न प्रकारके अवदानोंकी झोली लेकर भूतलपर अवतीर्ण होते हैं। वे सभी तत्कालीन असुरों और उनकी आसुरिक चिन्तास्रोतरूप धर्मग्लानिको दूरकर जीवोंके नित्य श्रेयः साधन शुद्धभक्तिरूप सनातन-धर्मकी प्रतिष्ठा किया करते हैं। वर्त्तमान युगमें कलिका प्रभाव प्रबल होनेपर जड़रसमत्त अविद्याग्रस्त जीवोंको शुद्धप्रेमधर्ममें अवगाहन करानेके लिए कलियुग पावनावतारी, अनर्पितचर प्रेम-प्रदानकारी श्रीगौरसुन्दरके अनुगामी श्रीस्वरूप-रूपानुग-धारामें जो गौर-शक्तियाँ आचार्यके रूपमें इस भूतलपर आविर्भूत हुई हैं तथा जिन्होंने भगवत्-इच्छासे आचार्य श्रीशङ्करके द्वारा आविष्कृत निर्विशेष, निःशक्तिक, प्रच्छन्न बौद्धवादरूप ब्रह्मवाद, अद्वैतवाद या मायावादरूप अवैदिक मतवादका अमोघ शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्ति-तर्कोंके द्वारा खण्डन और विध्वस्त किया है तथा अप्राकृत सविशेष, सर्वशक्तिमान, रसस्वरूप भगवत्-तत्त्वकी स्थापना की है, उनमें आचार्यकेसरी पाषण्डगजैक-सिंह परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी अन्यतम हैं।

राधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीकृष्णस्वरूप शचीनन्दन गौरहरि अभी ५०० वर्ष पूर्व अपने परिकरोंके साथ पूर्व-पूर्व अवतारोंके अवदानोंके सभी वैशिष्ट्योंको क्रोड़ीभूतकर अवतरित हुए थे। उन्होंने थोड़े ही दिनोंमें विश्वभरमें नामसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे भक्तिरसका प्रचार किया था। उनके प्रिय परिकर श्रीलरूप गोस्वामीने उनके मनोभीष्टको पूर्ण करनेके लिए श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु एवं श्रीउज्ज्वलनीलमणि प्रभृति

ग्रन्थोंके माध्यमसे शुद्धभक्तिरसकी प्रतिष्ठा की है। तत्पश्चात् श्रीरूपानुग आचार्योंकी धारामें जगद्वरेण्य आचार्यकुलचूड़ामणि अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीने वर्त्तमान कालमें विश्वभरमें उस शुद्धभक्तिधाराको प्रबल वेगसे प्रवाहित किया है। उनके इस महान कार्यमें जिन महापुरुषोंने उनके प्रचारमें निष्कपट रूपसे योगदान दिया है, उनमेंसे ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं।

जड़-इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रियातीत वस्तुका यथार्थ परिचय असम्भव है। भगवान्, भक्ति एवं भक्त जड़ीय इन्द्रियोंसे अतीत हैं। इस जगत्‌में जड़-साहित्यिक, ऐतिहासिक, राजनीतिज्ञ, दानवीर या नैतिक व्यक्तियोंके चरित्रकी आलोचना, उनका शौक्र परिचय और जन्म आदि स्थूल या प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा सम्भव हो सकता है। किन्तु भगवद्भक्तोंका चरित्र और उनका परिचय जड़ीय इन्द्रियोंके द्वारा सम्भव नहीं है। वह केवल उनकी कृपाके सापेक्ष है। भगवद्भक्तजन जब कृपाकर किसी सेवोन्मुख निर्मल हृदयमें अपने चरित्रको प्रकाशित करते हैं, तभी हमलोग भक्तोंके अतिमर्त्य चरित्रके विषयमें कुछ समझ सकते हैं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतर ६/२३)

अर्थात्, जिनकी श्रीभगवान्‌में पराभक्ति है और श्रीभगवान्‌के समान ही श्रीगुरुदेवके प्रति भी शुद्धभक्ति है, उसी महात्माके हृदयमें श्रुतियोंके सभी मर्मार्थ प्रकाशित होते हैं।

अधोक्षज वस्तुका जन्म और मरण नहीं है। उनके जनक और जननी भी नहीं हैं। वैष्णव अधोक्षज तत्त्व हैं। इसलिए उनका भी जन्म, मरण, जनक, जननी, प्राकृत जाति, वर्ण और आश्रम आदि कुछ भी नहीं है। उनका इस प्रापञ्चिक जगत्‌में केवल प्रकट और अप्रकट लीलामात्र है। वैष्णव या भक्तगण भगवत्-इच्छासे ही किसी कुल या जातिका आश्रयकर भूतलपर अवतीर्ण होते हैं, यह ठीक है। किन्तु इसीलिए वे उस कुल या जातिके अन्तर्भुक्त हैं, ऐसा मानना शास्त्रोंमें निषिद्ध है। जो लोग श्रीमूर्त्तिमें शिला-बुद्धि, वैष्णव और गुरुदेवमें

मरणशील मनुष्य-बुद्धि, वैष्णवमें जाति-बुद्धि, विष्णु और वैष्णवके चरणामृतमें जल-बुद्धि तथा सर्वपाप-नाशक विष्णुनाम-मन्त्रमें साधारण शब्द-बुद्धि रखते हैं एवं सर्वेश्वरेश्वर विष्णुको अन्य देवताओंके समान समझते हैं, वे पाषण्डी एवं नारकी हैं—

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि-
र्विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।
श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि-
र्विष्णो सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः॥

(पद्मपुराण)

अर्थात्, जो व्यक्ति श्रीमूर्त्तिमें शिला-बुद्धि, वैष्णव और गुरुदेवमें मरणशील मानव-बुद्धि, वैष्णवोंमें जाति-बुद्धि, विष्णु और वैष्णवोंके चरण-धौत जलमें जल-बुद्धि तथा सर्वपापनाशक विष्णुनाम-मन्त्रमें सामान्य शब्द-बुद्धि एवं सर्वेश्वर विष्णुके प्रति अन्य देवताओंके साथ समान बुद्धि रखता है, वह नारकीय है।

अतएव जो लोग वैष्णवोंका प्रपञ्चमें जन्म, कुल, जाति आदि निरूपण करनेकी चेष्टा करते हैं, वे पारमार्थिक शास्त्रोंके अनुसार मूर्ख, पाखण्डी एवं अपराधी जीव हैं। सात्त्वत शास्त्रोंमें वैष्णवोंके प्राकृत जन्म, जाति और वर्णका निषेध किया गया है—

न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानाञ्च विद्यते।

आम्नाय या भागवत गुरुपरम्परा ही वैष्णवोंका यथार्थ परिचय है। श्रुति, स्मृति एवं अमल पुराण श्रीमद्भागवतमें वैष्णवोंके वंश-निरूपणकी यही अभ्रान्त पद्धति है। परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने संगृहीत एवं सम्पादित गौड़ीय-गीतिगुच्छमें श्रीकविकर्णपूर, श्रीबलदेव विद्याभूषण एवं श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके आनुगत्यमें स्वयं अपनी वंश-परम्पराका उल्लेख किया है, उसे नीचे दिया जा रहा है—

श्रीकृष्ण-ब्रह्म-देवर्षि बादरायण-संज्ञकान्।
श्रीमध्व-श्रीपद्मनाभ-श्रीमन्नृहरि-माधवान् ॥

अक्षोभ्य-जयतीर्थ-श्रीज्ञानसिन्धु दयानिधीन्।
श्रीविद्यानिधि-राजेन्द्र-जयधर्मान् क्रमाद्वयम्॥

पुरुषोत्तम-ब्रह्मण्य-व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः।
ततो लक्ष्मीपतिंश्रीमन्माधवेन्द्रञ्च भक्तितः॥

तच्छिष्यान् श्रीश्वराद्वैतनित्यानन्दान् जगद्गुरून्।
देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्च भजामहे।
श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्॥

महाप्रभु-स्वरूप-श्रीदामोदरः प्रियंकरः।
रूपसनातनौ द्वौ च गोस्वामिप्रवरौ प्रभु॥

श्रीजीवो रघुनाथश्च रूपप्रियो महामतिः।
तत्प्रियः कविराज-श्रीकृष्णदास-प्रभुर्मतः॥

तस्य प्रियोत्तमः श्रीलः सेवापरो नरोत्तमः।
तदनुगतभक्तः श्रीविश्वनाथः सदुत्तमः॥

तदासक्तश्च गौड़ीयवेदान्ताचार्यभूषणम्।
विद्याभूषणपादश्रीबलदेवसदाश्रयः ॥

वैष्णवसार्वभौमः श्रीजगन्नाथप्रभुस्तथा।
श्रीमायापुरधाम्नस्तु निर्देष्टा सज्जनप्रियः॥

शुद्धभक्तिप्रचारस्य मूलीभूत इहोत्तमः।
श्रीभक्तिविनोदो देवस्तत् प्रियत्वेन विश्रुतः॥

तदभिन्नसुहृदवर्यो महाभागवतोत्तमः।
श्रीगौरकिशोरः साक्षाद् वैराग्यं विग्रहाश्रितम्॥

मायावादि-कुसिद्धान्त-ध्वान्तराशि-निरासकः ।
विशुद्धभक्तिसिद्धान्तैः स्वान्तः पद्मविकाशकः॥

देवोऽसौ परमो हंसो मत्तः श्रीगौरकीर्त्तने।
प्रचाराचारकार्येषु निरन्तरं महोत्सुकः॥

हरिप्रियजनैर्गम्य ॐ विष्णुपादपूर्वकः।
श्रीपादो भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महोदयः॥

सर्वे ते गौरवंश्याश्च परमहंसविग्रहाः।
वयञ्च प्रणता दासास्तदुच्छिष्ट ग्रहाग्रहाः॥

भागवत परम्परा—

कृष्ण हइते चतुर्मुख, हय कृष्ण सेवोन्मुख,
ब्रह्मा हइते नारदेर मति।
नारद हइते व्यास, मध्व कहे व्यासदास,
पूर्णप्रज्ञ पद्मनाभ गति॥

नृहरि माधव वंशे, अक्षोभ्य–परमहंसे,
शिष्य बलि' अङ्गीकार करे।
अक्षोभ्येर शिष्य जय– तीर्थ नामे परिचय,
ताँर दास्ये ज्ञानसिन्धु तरे॥

ताहा हइते दयानिधि, ताँर दास विद्यानिधि,
राजेन्द्र हइल ताँहा हइते।
ताँहार किंकर जय– धर्म नामे परिचय,
परम्परा जान भाल मते॥

जयधर्म–दास्ये ख्याति, श्रीपुरुषोत्तम यति,
ताहा ह'ते ब्रह्मण्यतीर्थ सूरि।
व्यासतीर्थ ताँर दास, लक्ष्मीपति व्यासदास,
ताहा ह'ते माधवेन्द्र पुरी॥

माधवेन्द्र पुरीवर, शिष्यवर श्रीईश्वर,
नित्यानन्द श्रीअद्वैत विभु।
ईश्वरपुरीके धन्य, करिलेन श्रीचैतन्य,
जगद्‌गुरु गौरमहाप्रभु॥

महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य,
रूपानुग जनेर जीवन।
विश्वम्भर प्रियंकर, श्रीस्वरूप दामोदर,
श्रीगोस्वामी रूपसनातन॥

श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

रूपप्रिय महाजन, जीव रघुनाथ हन,
ताँर प्रिय कवि कृष्णदास।
कृष्णदास प्रियवर, नरोत्तम सेवापर,
जाँर पद विश्वनाथ आश॥

विश्वनाथ भक्तसाथ, बलदेव जगन्नाथ,
ताँर प्रिय श्रीभकति विनोद।
महाभागवतवर, श्रीगौरकिशोरवर,
हरि भजनेते जाँर मोद॥

श्रीवार्षभानवीवरा, सदा सेव्यसेवापरा,
ताँहार दयितदास नाम।
एइ सब हरिजन, गौराङ्गेर निजजन,
ताँदेर उच्छिष्टे मोर काम॥

श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय वैष्णव गुरु-परम्परा—

श्रीकृष्ण मूल जगद्गुरु हैं। उनसे चतुर्मुख ब्रह्माके हृदयमें शुद्ध ज्ञान-विज्ञानरूपी भक्तिकी धारा प्रवाहित हुई। पुनः उनसे श्रीनारद, श्रीवेदव्यासको क्रमशः यह विद्या प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वेदव्यासजीकी परम्परामें क्रमानुसार श्रीमध्वाचार्य, श्रीपद्मनाभ, श्रीनृहरि, श्रीमाधव, श्रीअक्षोभ्य, श्रीजयतीर्थ, श्रीज्ञानसिन्धु, श्रीदयानिधि, श्रीविद्यानिधि, श्रीराजेन्द्र, श्रीजयधर्म, श्रीपुरुषोत्तमतीर्थ, श्रीब्रह्मण्यतीर्थ, श्रीव्यासतीर्थ तथा श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ आचार्य हुए। पुनः लक्ष्मीपतिके शिष्य श्रीमाधवेन्द्रपुरी हुए और उनके शिष्य हुए श्रीईश्वरपुरी, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्य। जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीका चरणाश्रयकर उन्हें धन्य किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय श्रीस्वरूप दामोदर हुए, उनके प्रिय श्रीरूप व सनातन गोस्वामी हुए। श्रीजीव व रघुनाथदास गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। उन दोनोंके प्रिय पात्र श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी हुए। श्रील कविराज गोस्वामीके प्रिय नरोत्तम एवं उनके प्रिय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर हुए। उनके कृपापात्र श्रीबलदेव विद्याभूषण तथा उनके प्रिय सार्वभौम जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज हुए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उनके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण

किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सबसे प्रिय महाभागवत श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी तथा उनके प्रियपात्र श्रीवार्षभानवी-दयितदास जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरजीने सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित व प्रचारित शुद्धाभक्ति (प्रेमाभक्ति) की धारा प्रवाहित की है। इन्हीं सरस्वती ठाकुरके प्रियतम कृपापात्रोंमें जगद्गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं। वे सभी श्रीहरि गौरसुन्दरके प्रिय परिकर हैं। हम उन्हींके उच्छिष्टकी कामना करते हैं।

जगत्पिता श्रीकृष्णसे आरम्भकर श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त 'प्रभुपाद' तक की भागवत गुरु-परम्परा ही उनकी वंश-परम्परा है।

एक समय १९४८ ई॰ में श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके समय मायापुरस्थित जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के समाधि-पीठपर परमाराध्य श्रीलगुरुदेवने महाविरहसे कातर होकर क्रन्दन करते-करते दीनतापूर्वक अपना परिचय प्रदान करते हुए कहा था—"स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण परम दयालु हैं। श्रीकृष्णाभिन्न गौरसुन्दर भी परम दयालु हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु दयाके मूर्त्तिमान विग्रह हैं। श्रीमन्महाप्रभुके परिकर षड्गोस्वामी अहैतुकी दयालु हैं—यह मैंने सुना है। उनके समयमें भी मैं किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही विद्यमान था। अत्यन्त घृणित एवं पापी समझकर किसीने हमारे प्रति करुणा नहीं की। किन्तु जिन्होंने मुझ जैसे विषयी-धुरन्धर, दुर्दान्त स्वभावविशिष्ट पतित अधमका केशाकर्षणकर अपने चरणकमलोंकी धूलिके समान बनाया, जो अपनी अहैतुकी करुणाके कारण ईश्वरसे भी श्रेष्ठ हैं, आज वे मुझे आत्मसात् करें।"

उपरोक्त वक्तव्यके माध्यमसे परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने जगत्पिता श्रीकृष्ण, श्रीशचीनन्दन गौरहरि, अखण्ड गुरुतत्त्व बलदेवाभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु और उन सबके प्रिय परिकर जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के साथ सम्बन्धका उल्लेखकर अपने वंशका परिचय दिया है। उन्होंने कहीं भी अपने लौकिक वंश-परम्पराका कोई उल्लेख नहीं किया है।

आविर्भाव

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज आजसे सौ वर्ष पूर्व बङ्गाल (वर्त्तमान बंगलादेश) में वरिशाल जिलेके प्रसिद्ध वानरीपाड़ा नामक गाँवके एक समृद्धशाली उच्च, सम्भ्रान्त एवं भक्त परिवारमें माघी कृष्ण तृतीया तिथि, २४ जनवरी, १८९८ को दसों दिशाओंको उद्भासित करते हुए अतिमर्त्य दिव्य शिशुके रूपमें आविर्भूत हुए थे। पूर्वी बङ्गालके इस सुप्रसिद्ध गुहठाकुरता वंशमें अनेकानेक उच्च कोटिके वैष्णव सन्त, बड़े-बड़े वैज्ञानिक, राजनेता और विद्वान उत्पन्न हुए हैं। इनके पिताका नाम श्रीयुत् शरतचन्द्र गुहठाकुरता और माताका नाम श्रीयुता भुवनमोहिनी देवी था। श्रीयुत् शरतचन्द्र गुहठाकुरता एक परम धार्मिक, सत्यवादी, सरल, परोपकारी, दानशील, नम्र स्वभावसम्पन्न, सच्चरित्र व्यक्ति एवं सर्वोपरि भगवद्भक्त थे। उन्हें किसीके ऊपर क्रोध करते हुए कभी नहीं देखा गया। वे न्यायाधिकरणमें एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। उन्होंने जीवनभर कभी रिश्वत नहीं ली। इन सब गुणोंके कारण ऊपरसे नीचे तक न्यायालयके सभी लोग मुग्ध थे। वे अद्वैत परिवारके प्रसिद्ध सन्त श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीके मन्त्रशिष्य थे। श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी पहले एक प्रसिद्ध सिद्ध योगी थे, परन्तु बादमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धाभक्तिके विचारोंको श्रवणकर वैष्णवधर्मके प्रति आकृष्ट हुए थे। अतएव श्रीगुहठाकुरता भी वैष्णवधर्मके परमानुरागी थे। वे श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्तिग्रन्थोंका नियमित रूपसे पाठ करते, प्रतिदिन नियमित रूपसे भगवन्नाम कीर्त्तन, जप, पूजा, ध्यान आदि भक्ति-अङ्गोंका पालन करते। उनके घरपर मुन्सिफ मजिस्ट्रेट, न्यायाधीश, बड़े-बड़े वकील एवं शिक्षित सम्भ्रान्त तथा गणमान्य व्यक्ति गीता आदि धार्मिक ग्रन्थोंकी व्याख्या श्रवण करने आते थे।

माता श्रीयुता भुवनमोहिनी देवी एक धनी-मानी, सम्भ्रान्त, शिक्षित, जमींदार परिवारकी अत्यन्त धार्मिक, नीतिपरायणा, गम्भीर-स्वभावशालिनी, सात्त्विक एवं परमविदुषी महिला थीं। ससुरालमें ये ही जमींदारीका सारा कार्य सँभालती थीं तथा घरकी सारी व्यवस्थाएँ देखती-सुनती थीं।

एक ओर वे जहाँ मातृसुलभ वात्सल्य एवं करुणाकी मूर्त्ति थीं, दूसरी ओर उसी प्रकार प्रजा-पुत्रके प्रति कठोर शासक तथा सभी कार्योंमें सुदक्ष थीं। ये जमींदारी सम्बन्धी अतिजटिल समस्याओंका अत्यन्त सरल-सहज रूपमें समाधान करतीं।

इस प्रकार धार्मिक एवं सर्वगुणसम्पन्न दम्पतिके तत्कालीन कर्मक्षेत्र नोआखली नामक नगरमें इस अतिमर्त्य महापुरुषके शिशु रूपमें आविर्भूत होनेपर सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। आस-पास और पड़ोसके वृद्ध पुरुष एवं महिलाएँ नवजात शिशुके तेजोद्दीप्त नेत्रद्वय, सुन्दर, सुगठित, सुलक्षणयुक्त हृष्ट-पुष्ट शरीरको देख मुग्ध होकर शिशु और माता-पिता—दोनोंको धन्य-धन्य कहते हुए प्रशंसा करने लगीं। शिशुकी स्वर्णविनिन्दित अङ्गकान्ति और पूर्णचन्द्र-सी उज्ज्वल गौरवर्णोद्दीप्त मुखश्रीका दर्शनकर लोग उसे 'जोना' के नामसे पुकारने लगे। 'जोना' 'ज्योत्स्ना' शब्दका अपभ्रंश है।

देशके सुविख्यात ज्योतिषशास्त्रविद् ब्राह्मणगण नवजात शिशुके जन्मके समयकी शुभ राशि, नक्षत्र, तिथि, वार एवं अङ्गोंके सुलक्षणोंको देखकर बड़े विस्मित हुए। उन्होंने श्रीशरतबाबूको बड़े यत्नपूर्वक इस बालकका

शैशव अवस्थामें परिवारके सदस्योंके साथ श्रीविनोदविहारी

लालन-पालन करनेका उपदेश देते हुए कहा, "यह बालक एक दिन भविष्यमें अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुषके रूपमें प्रसिद्ध होगा। जन्म-कुण्डलीके अनुसार यह बालक दीर्घकाय, महाज्ञानी (भक्तिप्रज्ञान), शास्त्रवेत्ता, सुन्दर, ब्रह्मचारी-संन्यासी, आचार्य, शूरवीर, धनवान, त्यागी, जितेन्द्रिय, सहिष्णु, स्थिरचित्त, दानशील तथा अखिल गुणविशिष्ट परमधार्मिक महापुरुष होगा।"

मेदिनीपुर जिलान्तर्गत नरमा नामक गाँवके प्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीवैकुण्ठनाथ महोदय इस बालककी जन्मपत्रिका देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और आनन्दसे उत्फुल्ल होकर उन्होंने लिखा—"इस बालकका जन्म सब प्रकारके शुभ योगोंसे युक्त क्षणमें हुआ है। उसपर भी बृहस्पतिकी अन्तर्दशा मध्यभागमें है, जो ४ वर्ष ३ महीनेकी उम्रसे सुफल देने लगेगी। इसके पश्चात् राजयोग लक्ष्य किया जा रहा है। अतएव जीवोंके भाग्यविधाताके भी विधाता भगवान् श्रीकृष्णकी सेवाकी अफुरन्त चमत्कारिता—शुद्ध वैष्णवोंकी अचिन्त्यशक्तिका प्रवाह पुनः मायाबद्ध जीवोंके हृत्-चक्षुकी अनुभूतिका विषय होगा। ऐसा दिन शीघ्र ही आनेवाला है। और कुछ अधिक विचारकी आवश्यकता नहीं है। कुछ ही दिनोंमें असमोर्द्ध्व प्रभावान्वित जगद्गुरु श्रीलसरस्वती प्रभुपादका असीम जयगान मुखरित करनेके लिए असंख्य शुद्ध वैष्णव एकत्रित होंगे।"

पण्डित एवं ज्योतिषियोंने शिशुका नाम शैलेन्द्रनाथ गुहठाकुरता रखा। परन्तु सभी लोग 'जोना' नामसे ही उन्हें पुकारते थे। पिता महाशय प्रिय पुत्रको जनार्दनके नामसे पुकारते थे। बादमें बालकका नाम 'विनोद विहारी' ही प्रसिद्ध हुआ। माता श्रीयुता भुवनमोहिनी बालकके अलौकिक सौन्दर्यराशिको देखकर यह सोचकर सर्वदा आतंकित रहती थीं कि यह बालक अधिक दिनों तक नहीं बचेगा। वे सदैव पुत्रके दीर्घायु होनेके लिए भगवान्के निकट कातर होकर प्रार्थना करती थीं।

शैशव

'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' के अनुसार शैशवावस्थासे ही बालकके जीवनचरित्रमें कुछ विलक्षणताएँ दृष्टिगत होने लगीं। एक

समय स्नेहमयी जननी अपने पुत्रको साथ लेकर अपने पित्रालय 'दूधल' नामक ग्राममें आयी थीं। एक दिन सवेरे शिशुके सर्वांगमें तैलमर्दनकर उसे आँगनकी धूपमें शयन कराकर पास ही वे गृहकार्योंमें व्यस्त हो गयीं। इतनेमें एक बड़ा-सा बाज पक्षी शिशुको अपनी चोंचमें पकड़कर आकाशमें उड़ गया। पास-पड़ोसी ऐसा देखकर जोरसे चिल्लाने लगे। मैया भी जोरसे रोने लगी। सभी लोग बाज पक्षीका पीछा करने लगे। पास ही एक सरोवर था। उस सरोवरमें नौकाकी भाँति सुपारी वृक्षके खोल (छाल) तैर रहे थे। लोगोंको इस प्रकार चिल्लाते हुए देखकर न जाने क्या सोचकर बाजपक्षीने शिशुको धीरेसे उसके ऊपर रख दिया। लोगोंने ऐसा देख दौड़कर उसे गोदमें उठा लिया और माताकी गोदमें रख दिया। माताके निर्जीव शरीरमें पुनः प्राण लौट आये। लोगोंने ऐसा अनुमान किया कि यह शिशु साधारण नहीं है, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान्‌ने किसी विशेष उद्देश्यसे इस शिशुको जन्म दिया है। भविष्यमें यही बालक भगवान् और भक्तोंका मनोऽभीष्ट पूर्ण करनेवाला श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका संस्थापक आचार्य हुआ और विश्वमें सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित विमल वैष्णवधर्म तथा शुद्धाभक्तिके प्रचारक श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

बाल्यकालसे ही बालक विनोदविहारीकी अलौकिक और अतिमर्त्य गुणावली सबको आकृष्ट करने लगी। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभी उसे बड़ा प्यार करते। पिता श्रीशरतचन्द्र महोदय उसे अपने साथ मन्दिर, आश्रम और धर्मसभाओंमें ले जाते। जहाँ कहीं भी श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीमद्भागवत या गीताका पाठ होता, बालकको अपने साथ ले जाते। बानरीपाड़ा ग्राममें भी विजयकृष्ण गोस्वामीका एक आश्रम था। उनके शिष्योंमें श्रीशरतबाबू अतीव साधुचरित्रवाले और सबके प्रिय पात्र थे। माता भुवनमोहिनी देवी भी सत्यनिष्ठा, तेजस्विनी, नीतिपरायणा, परोपकारी एवं सर्वोपरि आदर्श धार्मिक विदुषी महिला थीं। इस प्रकार धार्मिक परिवेशके बीच बालकका लालन-पालन होने लगा।

बालक विनोदविहारीकी आठ वर्षकी आयुमें पिताका परलोक-गमन हो गया। उस समय वे नोयाखली जिलेके लक्ष्मीपुरके न्यायालयमें कार्यरत

थे। किन्तु उन्होंने अपने पुत्रोंके अध्ययनकी समुचित व्यवस्था पहलेसे कर रखी थी। पतिके परलोक गमनके पश्चात् भुवनमोहिनीदेवीके सम्मुख बालकोंके पालन-पोषण और शिक्षाका दायित्व उपस्थित हुआ। बालक विनोदविहारी पिताके जीवित रहते समय नोयाखलीके नेशनल स्कूलमें पढ़ते थे। इस विद्यालयमें कारीगरीकी भी शिक्षा दी जाती थी। वे अपनी पाठ्य-पुस्तकोंके अतिरिक्त इस कारीगरीमें भी बड़ी रुचि लेते थे। उस समयके उनके बनाये हुए बेंच, स्टूल और टेबुल बहुत दिनों तक उनके घरमें व्यवहृत होते रहे। पिताके परलोक गमनके पश्चात् वे अपने पैतृक ग्राम बानरीपाड़ामें लौट आये और स्थानीय उच्च विद्यालयमें भर्ती हुए। उसी छात्र जीवनमें उनकी बहुमुखी कर्मप्रतिभा और ज्ञानविकासकी आधारशिला रखी गयी थी। तत्कालीन छात्रजीवनमें समाजसेवा ही चरित्रगठनकी प्रधान भित्ति मानी जाती थी। उसमें भी धर्मीय चिन्तास्रोतके द्वारा मानवकल्याण ही उसका मूल उद्देश्य था। विनोदविहारी बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धिके असाधारण मेधासम्पन्न छात्र थे। उनमें संगठनकी अतुलनीय शक्ति थी। वे सदैव धर्म, न्याय, नीति आदि उच्च आदर्शोंको नेतृत्व प्रदान करते थे। उस समय ग्राम-समाजमें दरिद्र और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषाके लिए कोई संस्था नहीं होती थी। विनोदविहारी ब्रह्मचारीने बहुत-से उत्साही नवयुवकोंके साथ मिलकर एक ऐसी संस्थाकी स्थापना की जिसके द्वारा दरिद्रों, नाना प्रकारके रोगियों, यहाँ तक कि संक्रामक रोगियोंकी भी निःशुल्क सेवा होती थी। अन्न-वस्त्रसे असहाय लोगोंकी सब प्रकारसे सहायता की जाती। दीन-दुःखियोंकी सेवा, उदारता एवं दया उस संस्थाके युवकोंका अपना प्रधान वैशिष्ट्य था। कुछ ही दिनोंमें उक्त संस्था अत्यन्त प्रसिद्ध हो गयी।

एक दिन कुछ रात बीतनेपर बालक विनोद स्कूलसे घर पहुँचा। मैया बड़ी चिन्तित थीं। वे हाथमें एक बेंत लेकर घरके प्रवेशद्वार पर खड़ी होकर प्रतीक्षा कर रही थीं। मैया जमींदार वंशकी बड़ी तेजस्विनी और शासन करनेवाली महिला थीं। कुछ देर बाद ज्योंही विनोदविहारीने घरमें प्रवेश किया, त्योंही माँने बिगड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोलीं—"तू अभी तक कहाँ था? जल्दी बता। रातमें स्वतन्त्र होकर

इधर-उधर उच्छृंखल बालकोंके साथ घूमते रहो, मैं यह नहीं चाहती। बता, तू कहाँ था?" बालक शान्त-प्रशान्त निरुत्तर खड़ा रहा और पूर्णतः निर्भय था। माताके बार-बार पूछनेपर शान्त स्वरमें बालकने उत्तर दिया—"हम कुछ छात्रोंने एक धर्मरक्षिणी संस्थाकी स्थापना की है, जो असहायों, गरीबों, अनाथों और रोगियोंकी सब प्रकारसे सेवा करती है। तुम मुझे जलपानके लिए जो पैसे देती हो, उन्हें मैं उन लोगोंकी सेवाके लिए रखता हूँ। ऐसे लोगोंकी सेवाके लिए हमलोग घर-घरसे अन्न और वस्त्र माँगकर उनकी सहायता करते हैं। आज ऐसे ही एक असहाय, अनाथ, निःसन्तान बुढ़ियाको हैजा हो गया था। हमने कहींसे पैसे जुटाकर उसकी चिकित्सा और पथ्यकी व्यवस्था की। आज देर रात तक स्नान और खाये-पिये बिना इसी काममें व्यस्त था। अब वह बुढ़िया कुछ स्वस्थ है और उसकी सारी व्यवस्थाकर अभी लौट रहा हूँ।" इतना सुनते ही मैयाके हाथोंसे बेंत गिर गया, आँखोंमें आँसू छलछला आये। उन्होंने पुत्रका दोनों हाथोंसे आलिङ्गन कर लिया। वे कुछ भी बोल न सकीं। उन्होंने भविष्यमें पुनः शासन न करनेकी प्रतिज्ञा की। ऐसे बालकको जन्म देकर कौन-सी माता अपनेको कृतार्थ नहीं समझेगी? भविष्यमें इसी बालकने मायाके कारागारमें बिलखते हुए जीवोंको देखकर संसारसे संन्यास ग्रहणकर उन्हें उस कारागारसे सदाके लिए मुक्त करनेकी प्रतिज्ञा ग्रहण की।

छात्र-जीवन, जमींदारी-रक्षण एवं पारमार्थिक जीवनका आरम्भ

विद्यालयमें पढ़ते समय श्रीविनोदविहारी अङ्कशास्त्रके तथा महाविद्यालय-जीवनमें विज्ञानके छात्र थे। वे समस्त प्रकारकी क्रीड़ाओंमें निपुण थे। विशेषतः फुटबॉल आदि क्रीड़ाओंमें अपनी टीम तथा क्लबके कैप्टन भी थे। वे अपने महाविद्यालयमें प्रतिवर्ष समाजसेवाके उत्कृष्ट कार्योंके लिए पुरस्कृत होते थे। उनकी सांगठनिक शक्ति, उच्च चरित्र तथा समाजसेवाको लक्ष्यकर विद्यालयके प्रधानाध्यापक उन्हें अपने घरमें रखकर प्रीतिपूर्वक स्वयं अध्ययन आदि कराते। केवल आठवीं कक्षामें

पढ़ते समय ही माताने विनोदविहारीको जमींदारीका सारा दायित्व सौंप दिया था। इस अल्प वयसमें आइन-कानून और कर्मकुशलता साधारणतया कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। उनकी तेजस्विता, उदारता, दया और सूक्ष्म न्याय-विचारके कारण प्रजामें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा एवं धाक थी।

छात्रजीवनमें उन्होंने अपने सहपाठियोंके साथ 'प्रसून' नामक एक मासिक पत्रिकाकी स्थापना की थी। उस पत्रिकामें उनकी लिखी हुई कविताओं एवं प्रबन्धोंका छात्र एवं शिक्षक—सभी लोग प्रशंसा करते थे। उन्होंने उसी समय अपने कुछ तीक्ष्ण मेधासम्पन्न प्रभावशाली सहपाठियोंके साथ 'धर्मरक्षिणी सभा' की स्थापना की थी। उसके संस्थापक सदस्य जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहनेकी घोषणा करते थे।

उस समय भारतमें महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें भारतकी स्वाधीनताके लिए सत्याग्रह चल रहा था। सारे भारतके लोग प्राणोंकी परवाह न कर स्वाधीनता संग्राममें कूद रहे थे। छात्रसमाज भी इससे अछूता नहीं था। विनोदविहारी एक क्रान्तिकारी नेताके रूपमें उभरे। वन-जङ्गलोंमें छिपकर अँग्रेजी शासनके विरुद्ध विप्लवकी तैयारीमें जुट गये। पुलिस चेष्टा करनेपर भी उन्हें न पकड़ सकी। इन सब क्रिया-कलापके बीच भी प्रवेशिकाकी परीक्षामें उत्तीर्ण होकर बालक विनोदविहारी कलकत्तेके निकट उत्तरपाड़ा कॉलेजमें भर्त्ती हुए। एक वर्ष वहाँ अध्ययन करनेके पश्चात् दौलतपुर कॉलेजमें स्थानान्तरित हो गये। वहाँ पढ़ते समय कॉलेजके प्रिंसिपल और प्रोफेसर लोग उनके मुखसे श्रीचैतन्यचरितामृतके कठिन एवं गूढ़ दार्शनिक पयारोंकी व्याख्या सुनकर दङ्ग रह जाते। कभी-कभी वहाँके निरीश्वर प्राध्यापकोंके साथ पारमार्थिक विषयमें वाद-विवाद उपस्थित हो जाता। ये अपनी अकाट्य युक्तियों और शास्त्रीय विचारोंके द्वारा उन्हें निरुत्तर कर देते। धीरे-धीरे गीता, भागवत एवं श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्तिशास्त्रमें उनकी ऐसी रुचि उत्पन्न हुई कि अब वे नास्तिक समाजके सेवामूलक कर्मक्षेत्रसे निकलकर भगवान् एवं भक्तोंके सेवामूलक कार्योंमें रुचि लेने लगे। अब विश्वविद्यालयकी निरीश्वर शिक्षा एवं डिग्रीका मोह परित्यागकर परमार्थके यथार्थ स्वरूपको जाननेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये। श्रीचैतन्यचरितामृतके

ब्रह्मचारी वेशमें श्रील प्रभुपाद

'भारतभूमि ते हइल मनुष्य जन्म जार। जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥'—इस पयारने उनके हृदयको झकझोर दिया। आत्मा-परमात्माका स्वरूप क्या है? मनुष्य जन्मकी सार्थकता कैसे सम्भव है? अब इन विषयोंका अनुसन्धान करने लगे।

बानरीपाड़ा रहते समय वे परम धार्मिक और विदुषी दो बुआजीके विशेष सम्पर्कमें आये। एकका नाम श्रीयुता सरोजवासिनी और दूसरीका नाम प्रियतमा देवी था। ये दोनों विश्वप्रसिद्ध जगद्गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' की क्रमशः प्रथम और द्वितीय शिष्या थीं। दोनों ही भक्तिशास्त्रोंमें अत्यन्त निपुण, जन्मजात कवयित्री एवं उच्च कोटिकी लेखिका थीं। इन दोनोंके भक्तिके उपदेशों तथा उनके भक्तिमय जीवनका इस बालकके जीवनपर बहुत ही प्रभाव पड़ा। वे सन् १९१५ ई॰ में श्रीगौरपूर्णिमाके अवसरपर अपनी इन दोनों बुआओंके साथ जगद्गुरु श्रील प्रभुपादका दर्शन करने गये। श्रील प्रभुपादके प्रथम दर्शन और उनके ओजस्वी उपदेशोंको श्रवणकर बड़े आकृष्ट हुए। उन्होंने उसी समय अपना शेष जीवन इन महापुरुषके आनुगत्य एवं सेवामें व्यतीत करनेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। श्रीनवद्वीपधामकी नौ दिन व्यापी परिक्रमा एवं हरिकथा श्रवणके पश्चात् उन्होंने श्रीगौरपूर्णिमाके दिन श्रील प्रभुपादके चरणोंमें अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। प्रभुपादने योग्य पात्र समझकर प्रिय शिष्यके रूपमें इन्हें अङ्गीकार किया एवं हरिनाम प्रदान किया। बालक विनोदका जीवन अब विशुद्ध पारमार्थिक हो गया।

इसी समय श्रीगौरजन्मोत्सवके दो-एक दिन बाद श्रील प्रभुपाद उपस्थित समुदायमें अपनी ओजस्विनी कथाका परिवेशन कर रहे थे। प्रसङ्गवशतः उन्होंने श्रीनवद्वीपधामके नौ द्वीपोंमें एक-एक मठ स्थापन, बङ्गाल एवं भारतके विभिन्न प्रसिद्ध नगरोंमें श्रीगौड़ीय मठ और शुद्धभक्तिके प्रचारकेन्द्र तथा मुद्रणयन्त्रकी स्थापनाकर उसके माध्यमसे भारतकी विभिन्न भाषाओंमें पारमार्थिक संवाद-पत्र द्वारा सर्वत्र शुद्ध भक्तिसिद्धान्तोंके प्रचारका सङ्कल्प प्रकाश किया। श्रीयुता सरोजवासिनी देवी ऐसा सङ्कल्प जानकर बहुत प्रसन्न हुईं और श्रील प्रभुपादसे बोलीं—"अभी इस योगपीठमें ही आरतीके समय काँसर-घण्टा बजानेके लिए आवश्यकतानुसार ब्रह्मचारी नहीं हैं, फिर इतने मठोंकी व्यवस्था कैसे सम्पन्न होगी?" उस

समय बालक विनोदविहारी पास ही बैठे हुए एकाग्रचित्तसे श्रील प्रभुपादकी हरिकथा सुन रहे थे। श्रील प्रभुपादने इस बालककी ओर अँगुली द्वारा निर्देश करते हुए कहा—"विनोदविहारी इन सारे मठ एवं प्रचारकेन्द्रोंकी व्यवस्था करेगा।" यह बात बादमें सत्य हुई। इसी बालकने श्रील प्रभुपादके आशीर्वादसे मूल श्रीगौड़ीय मठके तथा सारे शाखा मठोंका व्यवस्थापक (math superintendent) बनकर बड़े सुचारु रूपसे सबकी व्यवस्था सँभाली। यही नहीं श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर सम्पूर्ण भारत एवं विश्वमें गौड़ीय मठों और भक्ति-प्रचारकेन्द्रोंकी स्थापना कर सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका दर्शन एवं आशीर्वाद ग्रहण

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज उस समय व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलमें सर्वत्र ही सिद्ध बाबाजीके रूपमें प्रसिद्ध थे। इनका आविर्भाव पूर्व बङ्गालके किसी ग्राममें हुआ था। ये बचपनमें ही घर-बार छोड़कर भगवद्भजन करनेके लिए श्रीधाम वृन्दावनमें चले गये। वहाँ सूर्यकुण्डमें कठोर वैराग्य अवलम्बनपूर्वक साधन-भजन करने लगे। वहाँ श्रीमधुसूदन दास बाबाजीके शिष्य वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके सङ्गमें रहकर हरिकथा इत्यादि श्रवण करते थे। इनका वैराग्य इतना कठोर था कि कभी-कभी भूख लगनेपर श्रीराधाकुण्ड अथवा यमुनाका कीचड़ भी खा लेते। फलस्वरूप इनकी आँखोंकी ज्योति चली गयी। फिर भी छह गोस्वामियोंकी भाँति कभी राधाकुण्ड, कभी श्रीधामवृन्दावन, कभी नन्दगाँव-बरसाना तो कभी भाण्डीरवन आदि कृष्णलीला-स्थलियोंमें कुछ-कुछ दिनोंके लिए निवास करते और बड़े विरहमें कातर होकर उच्च स्वरसे गान करते—

कोथाय गो प्रेममयी राधे! राधे!
राधे राधे गो, जय राधे राधे॥

देखा दिये प्राण राख राधे राधे।
तोमार काङ्गाल तोमाय डाके राधे राधे॥

राधे वृन्दावन-विलासिनी राधे राधे।
राधे कानुमनोमोहिनी राधे राधे॥

राधे अष्टसखीर शिरोमणि राधे राधे।
राधे वृषभानुनन्दिनी राधे राधे॥

(गोसाईं) नियम करे सदाइ डाके राधे राधे।
(गोसाईं) एकबार डाके केशीघाटे।
आबार डाके वंशीवटे राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके निधुवने।
आबार डाके कुञ्जवने राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके राधाकुण्डे।
आबार डाके श्यामकुण्डे राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके कुसुमवने।
आबार डाके गोवर्धने राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके तालवने।
आबार डाके तमालवने राधे राधे॥

(गोसाईं) मलिन बसन दिये गाय।
व्रजेर धूलाय गड़ागड़ी जाय राधे राधे॥

(गोसाईं) मुखे राधा राधा बले।
भासे नयनेर जले राधे राधे॥

(गोसाईं) वृन्दावने कुलि कुलि केंदे बेड़ाय।
राधा बलि राधे राधे॥

(गोसाईं) छपान्न दण्ड रात्रि दिने।
जाने ना राधा-गोविन्द बिने राधे राधे॥

तार पर चारि दण्ड सुति थाके।
स्वपने राधा-गोविन्द देखे राधे राधे॥

जब उनसे श्रीधाम वृन्दावनमें आराध्यादेवी श्रीमती राधिकाका विरह सहन नहीं हुआ, तब वे श्रीधाम नवद्वीपमें उपस्थित हुए।

हमारे गौड़ीय वैष्णव आचार्योंकी ऐसी भावना रही है कि श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णनाम और श्रीकृष्णधाम अपराधका विचार करते हैं। निरपराध हुए बिना इन तीनोंकी निष्कपट कृपा नहीं होती, व्रजप्रेमकी प्राप्ति नहीं होती। किन्तु श्रीगौर, श्रीगौरनाम और श्रीगौरधाम अहैतुक कृपामय हैं। ये अपराधका भी विचार नहीं करते। कातर होकर गौरधाममें श्रीगौर-नित्यानन्दका नाम ग्रहण करनेसे वे सहज ही व्रजप्रेमको प्राप्त कर लेते हैं—

कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।
नाम लैले अपराधीर न हय विकार॥

कोटिजन्म करे यदि श्रवणकीर्तन।
तभु त न पाय कृष्ण पदे प्रेम धन॥

गौर-नित्यान्दे नाई एइ सब विचार।
नाम लैले प्रेम देय बहे अश्रुधार॥

इसीलिए श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज जैसे बड़े-बड़े गौड़ीय वैष्णव महाजनोंने वृन्दावनसे आकर श्रीगौड़भूमिमें भजन किया है। श्रील नरोत्तमदास ठाकुरने भी इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है—

गौड़-मण्डल भूमि, येवा जाने चिन्तामणि,
ताँर होय ब्रजभूमे वास।
गौर प्रेम रसार्णवे, से तरङ्गे येवा डूबे,
से जाय व्रजेन्द्रसुत पास॥

अर्थात् जो लोग श्रीगौड़मण्डलको चिन्तामणि भूमिके रूपमें जानकर श्रद्धापूर्वक निवास करते हैं, उनका शीघ्र ही व्रजभूमिमें वास होता है और जो लोग शचीनन्दन गौरहरिके प्रेमरूपी महासमुद्रमें डुब की लगाते हैं, वे श्रीवृन्दावनमें अखिल रसामृतमूर्त्ति श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्रेममयी सेवा प्राप्त करते हैं, यह एक परम रहस्य है।

इसीलिए श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज कुलिया शहरमें निवास करते हुए भजन करने लगे। यह स्मरण रहे कि उस समय तक श्रीगौर-आविर्भावस्थली श्रीधाम मायापुरका पूर्ण रूपसे विकास नहीं हुआ

था। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर भी श्रीधाम मायापुरसे कुछ दूर गङ्गातटपर अवस्थित श्रीगोद्रुमद्वीपमें एक भजनकुटीमें रहकर बड़े विप्रलम्भ भावसे भजन करते थे। बाबाजी महाराज प्रायः कुलिया शहरसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पास आते थे। इन दोनोंमें सर्वदा श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीराधाकृष्णकी औदार्य-माधुर्यपूर्ण लीला-कथाओंकी चर्चाएँ होती थीं। इनका वैराग्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके समान अत्यन्त उच्च कोटिका था। बड़े-बड़े महात्मा एवं भजनानन्दी इनके दर्शनसे अपना जीवन कृतार्थ समझते थे। जगद्गुरु नित्यलीला प्रविष्ट श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' ने इन्हीं महापुरुषको गुरुके रूपमें वरण किया था। बाबाजी महाराज सांसारिक विभिन्न प्रकारके प्रपञ्चों एवं भक्तिहीन विषयी और तथाकथित धर्मध्वजियोंसे दूर रहकर कुलिया नवद्वीपमें किसी प्रकार रहकर श्रील लोकनाथ गोस्वामी आदिकी भाँति भजनान्दमें विभोर रहते थे। मधुकरी भिक्षा द्वारा अनायास ही जीवननिर्वाहकर षड्गोस्वामियोंकी भाँति चौबीस घण्टे भजनमें अतिवाहित करते थे। प्रायः गङ्गा पारकर गोद्रुममें वे सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सत्सङ्ग लाभ करने जाया करते थे।

एक समय विषयी लोगोंसे तङ्ग आकर वे कुलिया नगर (वर्त्तमान नवद्वीप शहर) के एक सार्वजनिक धर्मशालाके शौचालयमें भीतरसे दरवाजा बन्दकर भजन करने लगे। लोगोंको यह पता नहीं चल सका कि बाबाजी कहाँ चले गये। इन्होंने पैखानेके दुर्गंधको विषयी लोगोंके दुःसङ्गसे उत्तम समझा, इसीलिए दुर्गंधमय स्थानमें रहकर भजन करना ही श्रेयस्कर माना। दो-तीन दिनोंके पश्चात् मेहतरानी टट्टी साफ करनेके लिए पैखानेके नीचे आयी, तो उसने "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥" की विरहकातर करुण ध्वनि सुनी। उसने ऊपरकी ओर झाँककर देखा, श्रील बाबाजी महाराज भावविभोर होकर हरिनाम कर रहे थे। उन्हें तन-मन और दुर्गंध आदिकी सुध-बुध नहीं थी। ऐसा देखकर वह चकित रह गयी। उसने तुरन्त नगरपालिकाध्यक्षको इसकी सूचना दी। थोड़ी ही देरमें यह संवाद जिलाधिकारी एवं पुलिस अधीक्षक आदिके कानोंमें पहुँचा। ये सभी लोग श्रील बाबाजी महाराजके निकट आकर उन्हें पैखानेका दरवाजा

खोलकर बाहर आनेके लिए अनुरोध किया। उन्होंने कहा—"बाबाजी महाराज! हमलोगोंने भगवती गङ्गाके किनारे आपके लिए भजनकुटीकी व्यवस्था की है। आप वहाँ रहकर भजन करें।" किन्तु बाबाजी महाराजने उनकी बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अविश्रान्त हरिनाम करते रहे। उन उच्च पदस्थ अधिकारियोंके द्वारा पुनः-पुनः आग्रह करनेपर श्रील बाबाजी महाराजने अत्यन्त क्षीण स्वरसे केवल इतना ही कहा—"मैं अस्वस्थ हूँ। मैं दरवाजा नहीं खोल सकता।" उक्त अधिकारीगण हारकर अन्तमें चले गये।

इसी समय थोड़ी देरके बाद श्रील प्रभुपादके निर्देशसे सरोजिनी देवी, प्रियतमा देवी तथा श्रीगौरगोविन्द विद्याभूषण (संन्यास ग्रहणके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराज) के साथ श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी मायापुरसे श्रील बाबाजी महाराजके दर्शनके लिए उपस्थित हुए। किन्तु बार-बार अनुरोध करनेपर भी श्रील बाबाजी महाराज कपाट खोलनेको तैयार नहीं हुए, बहाना बनाते रहे। ऐसा देखकर श्रीगौरगोविन्द प्रभुने बड़े ही विनीत स्वरसे कहा—"बाबाजी महाराज! हमलोग श्रील सरस्वती ठाकुरके अनुगृहीत शिष्य हैं। उन्हींके निर्देशसे बड़ी आशा लेकर आपके दर्शनके लिए आये हैं। आपका दर्शन नहीं पानेसे हम बड़े मर्माहत होंगे।" इतना सुनते ही बाबाजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा—"आओ, तुमलोग सरस्वती ठाकुरके स्नेहपात्र हो।" और जल्दी-से दरवाजा खोल दिया। उस समय वे कपड़ेकी गाँठ द्वारा बनी हरिनामकी मालिकापर तन्मयतापूर्वक हरिनाम कर रहे थे। तभी श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीका परम सौम्य किशोर रूप, भजन करनेकी निष्कपट लालसा, युक्तवैराग्यका अङ्कुर तथा सर्वोपरि गुरुनिष्ठा लक्ष्यकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"मैंने तुम्हारे जीवनकी सारी विपत्तियों और विघ्न-बाधाओंको ग्रहण किया। तुम निर्भीक होकर भजन करो तथा विश्वमें सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करो।" ऐसा आशीर्वाद सुनकर श्रीविनोदविहारीकी आँखें छलछला आयीं। वे सजल नेत्रोंसे उनके चरणोंमें गिर पड़े और उनकी चरणधूलि अपने मस्तकपर धारण की। कुछ देर तक हरिकथा श्रवण करनेके बाद बाबाजी महाराजकी चरणवन्दना कर श्रीमायापुरके लिए विदा हुए।

श्रील गुरुपादपद्म प्रसङ्गवशतः श्रील बाबाजी महाराजके आशीर्वादकी बातोंको हमें सुनाते-सुनाते बालककी भाँति अधीर होकर क्रन्दन करने लगते थे और कहते—"श्रील बाबाजी महाराजकी अहैतुकी कृपासे ही आज मैं विश्वमें बड़े निर्भीक होकर शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहा हूँ। प्रचारके समय हमारे ऊपर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ एवं विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हुईं, प्राणोंके सङ्कट भी उपस्थित हुए, किन्तु श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी कृपासे हमारा बाल भी बाँका नहीं हुआ। विपत्तियोंके बादल शीघ्र ही छँट गये।"

द्वितीय भाग

गृहत्याग

श्रील प्रभुपादसे हरिनाम ग्रहण करनेके अनन्तर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी घर लौट आये। नियमित रूपसे दौलतपुर कॉलेजमें अध्ययन भी करने लगे। किन्तु बीच-बीचमें श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपादके चरणोंमें उपस्थित होकर श्रद्धा तथा एकाग्रचित्तसे श्रील प्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथाका श्रवण करते। उन दिनों कॉलेजमें पाठ्यक्रमके अन्तर्गत श्रीचैतन्यचरितामृतकी पढ़ाई होती थी। प्राध्यापक जब चैतन्यचरितामृतके पयारों और श्लोकोंकी व्याख्या करते, तो वे कठिन दार्शनिक और भक्तिके उच्च भावोंको समझ नहीं पाते। उस समय श्रीविनोदविहारी छात्र होते हुए भी उन कठिन दार्शनिक विचारों और भक्तिके उच्च भावोंको समझकर बड़े सरल-सहज और बोधगम्य भाषामें उन पयारों एवं श्लोकोंकी व्याख्या कर देते। अध्यापक और अन्यान्य छात्र उसे श्रवणकर मुग्ध और आश्चर्यचकित हो जाते।

एक दिनकी बात है, श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखित श्रीसनातन-शिक्षाका प्रसङ्ग चल रहा था। जब प्रसङ्गवशतः

कृष्णेर स्वरूप-विचार सुन सनातन।
अद्वयज्ञान-तत्त्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥

इसकी व्याख्या आरम्भ हुई, तो प्राध्यापक इस विषयमें केवलाद्वैतवादके विचारोंके अनुरूप यह व्याख्या करने लगे कि ब्रह्म-तत्त्व ही परम तत्त्व है। वह ज्ञानस्वरूप है, साथ ही निर्विशेष, निरञ्जन, निःशक्तिक, निर्गुण और निराकार है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है। अनिर्वचनीय मायाके कारण वही परम तत्त्व ईश्वर या भगवान्‌के रूपमें देखा जाता है। जीव ब्रह्म ही है। किन्तु अज्ञान द्वारा आच्छादित होनेपर अपनेको जीव समझता है। अज्ञान या माया दूर होते ही वह

ब्रह्ममें मिल जाता है या ब्रह्म हो जाता है। योगी लोग उस अद्वयज्ञान निर्विशेष वस्तुको ईश्वर या परमात्माके रूपमें देखते हैं तथा भक्तियोगके द्वारा वही उपाधियुक्त भगवान्‌के रूपमें अनुभूत होता है। ब्रह्म निरुपाधिक तत्त्व है, परन्तु परमात्मा एवं व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् सोपाधिक तत्त्व हैं, किन्तु अद्वयज्ञानके अन्तर्गत ही हैं। प्राध्यापककी यह व्याख्या सुनकर श्रीविनोदविहारीने दृढ़तापूर्वक इसका घोर प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा कि यह व्याख्या श्रीचैतन्यचरितामृत, अमलपुराण श्रीमद्भागवत एवं वेदान्तसूत्रके विपरीत सर्वथा काल्पनिक है। उन्होंने वेद, उपनिषद और श्रीमद्भागवतके प्रमाणोंके साथ बड़े सुन्दर रूपसे इन पयारोंकी इस प्रकार व्याख्या की—

तत्त्वदर्शी श्रीचतुर्मुख ब्रह्मा, नारद, शाण्डिल्य, पराशर, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास आदि महर्षियोंने अद्वयज्ञान परतत्त्वको ही तत्त्व निर्धारित किया है। ब्रह्म प्रथम प्रतीति, परमात्मा द्वितीय प्रतीति एवं भगवान् उसकी तृतीय प्रतीति हैं। निर्विशेष ज्ञानके द्वारा शुष्क ज्ञानीजन इस परतत्त्वको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें अनुभव करते हैं, योगीगण उन्हें परमात्माके रूपमें अनुभव करते हैं तथा शुद्धभक्तगण भक्तियोगके माध्यमसे उसी परतत्त्वको व्रजेन्द्रनन्दन भगवान्‌के रूपमें दर्शन करते हैं। अद्वयज्ञान कहनेका तात्पर्य यह है कि यह परम तत्त्व एक अघटन-घटन-पटीयसी अचिन्त्यशक्तिसे सम्पन्न होता है। उनकी यही पराशक्ति तीन प्रकारकी है—चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। परतत्त्व श्रीकृष्णकी इच्छासे इनकी चित्-शक्ति मायातीत वैकुण्ठ, गोलोक वृन्दावन आदि धामोंको तथा वहाँकी सारी वस्तुओंको प्रकाशित करती है। जीवशक्ति अगणित जीवोंको प्रकाशित करती है तथा मायाशक्ति उन्हींकी इच्छासे करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको प्रकट करती है। जीवशक्तिके द्वारा प्रकटित होनेके कारण जीव अणुचेतन एवं मायाके द्वारा आच्छादित होने योग्य होता है। शक्ति और शक्ति द्वारा प्रकटित जीव एवं जगत्‌का शक्तिमानके साथ नित्य अचिन्त्य-भेदाभेद सम्बन्ध है। शक्तिमान परतत्त्व व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके बिना जीव और जगत्‌का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी दृष्टिकोणसे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको अद्वयज्ञान परतत्त्व वस्तु कहा गया है। ये परतत्त्व निराकार, निःशक्तिक, निर्गुण आदि नहीं है। भक्तजन अपने भक्तिनेत्रोंमें प्रेमका अञ्जन लगाकर

व्रजेन्द्रनन्दनका ही अद्वयज्ञान परतत्त्वके रूपमें दर्शन करते हैं। इस व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिको शुष्क ज्ञानीजन निर्विशेष, निर्गुण, निराकार ब्रह्मके रूपमें दर्शन करते हैं। गीताके अनुसार ब्रह्मतत्त्व स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णका आश्रित तत्त्व है, वह स्वयं परतत्त्व नहीं है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४/२७)

निर्गुण सविशेष तत्त्व मैं ही ज्ञानियोंकी चरमगति ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हूँ। अमृतत्व, अव्ययत्व, नित्यत्व, नित्य धर्मरूप प्रेम और ऐकान्तिक सुखरूप व्रजरस—ये सभी इस निर्गुण-सविशेष-तत्त्वरूप श्रीकृष्णस्वरूपके आश्रित हैं।

तथा,

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-कोटीष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्रह्मसंहिता ५/४०)

जिनकी प्रभासे उत्पन्न होकर उपनिषदोक्त निर्विशेष ब्रह्म करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डगत वसुधा आदि विभूतियोंसे पृथक् होकर निष्कल, अनन्त, अशेष तत्त्वके रूपमें प्रतीत होते हैं, उन्हीं आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

यह विचार करनेकी बात है कि ब्रह्मके पूर्व 'परम' आदि विशेषण जोड़कर जो 'परम ब्रह्म' शब्द शास्त्रोंमें दृष्टिगोचर होता है, वह स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनके लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इसलिए ब्रह्मकी अपेक्षा परम ब्रह्म अर्थात् स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ तत्त्व हैं। इस प्रकार सर्वशक्तिमान अखिलरसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण अपने अखिल परिकर, जीव और जगत् सबको साथ लेकर ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। वेदोंमें भगवान्‌की शक्तिका वर्णन है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।

(श्वे॰ उ॰)

तथा,

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥
(विष्णुपुराण)

वेदान्तसूत्र भी इस तथ्यकी पुष्टि करता है—

शक्तिशक्तिमतोरभेदः ।

अतः ये व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर ही अद्वयज्ञान परतत्त्वकी सीमा और साक्षात् विग्रहस्वरूप हैं।

इसी प्रकार किसी अन्य दिन श्रीचैतन्यचरितामृतके निम्नलिखित पयारकी व्याख्या हो रही थी—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर 'तटस्था शक्ति' भेदाभेद प्रकाश'॥

प्राध्यापक महोदय इस पयारकी भी शास्त्रविरुद्ध व्याख्या कर रहे थे। जीव ही ब्रह्म है। रज्जुमें सर्प अथवा सीपमें रजतकी भाँति ब्रह्ममें ही जीवकी प्रतीति हो रही है। वे ब्रह्मकी शक्ति, शक्तिका परिणाम जीव और जगत्को अस्वीकार कर रहे थे। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने बड़े सरल-सहज बोधगम्य भाषामें इस पयारकी व्याख्या की कि जीव स्वरूपतः भगवान्का नित्य दास है। उपनिषदोंके अनुसार जीव सर्वशक्तिमान परब्रह्मकी तटस्थाशक्तिका परिणाम है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

इसके लिए दो प्रादेशिक उदाहरण दिये गये हैं, क्योंकि इस भौतिक जगत्में चिन्मय वस्तुओंका सम्पूर्ण रूपसे उदाहरणका स्थल नहीं मिलता। ये दो उपमाएँ हैं—सूर्य और उसकी किरणकणों तथा ज्वलन्त अग्नि और उसकी चिनगारियाँ।

यदि श्रीकृष्णको चित्-सूर्य माना जाये, तो सूर्यकी किरणोंमें चमकनेवाले परमाणु जीवकी उपमाके स्थल हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण चित्-तत्त्व हैं। जीव अणु चित् है। भगवान् माया आदि शक्तियोंके प्रभु हैं, जीव

मायाके वशीभूत होने योग्य है। भगवान् कर्त्ता, भोक्ता, अहंता आदि निखिल अप्राकृत गुणोंके आधार हैं। किन्तु जीवोंमें ये भाव अणु रूपमें हैं। ऐसा होनेपर भी यदि जीवका स्वाभाविक सम्बन्ध श्रीकृष्णसे होता है, तो उसका धर्म भी कृष्णसे सम्बन्धित होनेके कारण पूर्ण होता है। इसलिए जीवोंमें भी कर्त्तापन, भोक्तापन आदि भाव नित्य स्वाभाविक हैं। भगवत्-विस्मृतिके कारण उसका यह शुद्ध स्वरूप मायाकृत लिङ्ग और स्थूल शरीरसे आच्छादित हो जाता है। शुद्ध पारमार्थिक गुरु या भगवान्की अहैतुकी कृपासे जीव भक्तियोगका अवलम्बनकर पुनः स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। दूसरा उदाहरण ज्वलन्त अग्नि और उसकी चिनगारियोंसे है। जैसे ज्वलन्त अग्निसे अगणित चिनगारियाँ निकलती हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णकी तटस्थाशक्तिसे अगणित अणु चैतन्य जीव प्रकटित होते हैं। जीवशक्तिको तटस्थाशक्ति कहते हैं। जीवसमूह स्वरूपतः चेतन होनेपर भी अणु या क्षुद्र होनेके कारण मायाशक्तिके द्वारा आच्छादित होने योग्य होते हैं। ये वैकुण्ठजगत् और मायाजगत्के बीच तटके दोनों ओर विचरण करने योग्य होते हैं। चित्-शक्तिका बल पाकर वैकुण्ठमें भगवत्-सेवा करते हैं अथवा भगवत्-विमुख होकर मायिक संसारमें भ्रमण करते हैं। यही इस पयारका निगूढ़ तात्पर्य है। इस प्रकार इनकी भक्तिमयी व्याख्या सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये।

एक दिन श्रीचैतन्यचरितामृतके पयारोंपर विचार करते-करते ये उसमें डूब गये। यह मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। मनुष्य योनिके अतिरिक्त पशु-पक्षी या वृक्ष आदिकी योनियोंमें भगवत्-तत्त्वकी उपलब्धि नहीं हो सकती। सौभाग्यवश भगवत्कृपासे यह मनुष्य शरीर अभी मिला है, किन्तु हठात् कब मृत्यु हो जायेगी, इसकी कोई निश्चयता नहीं है। मृत्युके पहले ही भक्तियोगका अवलम्बनकर जीवनको कृतार्थ कर लेना उचित है। इसलिए अब निरीश्वर शिक्षा ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। परम कृपालु, तत्त्वदर्शी अपने श्रीगुरुदेव प्रभुपादके चरणोंमें ऐकान्तिक रूपसे आश्रय ग्रहणकर हरिभजन करना ही परम कर्त्तव्य है। ऐसा सोचकर कॉलेजके फाइनल परीक्षाका शुल्क देकर

भी परीक्षा नहीं दी। स्नेहमयी जननीका स्नेहपाश दूरकर, जमींदारी एवं गृह आदि समस्त प्रकारकी ममताका सम्पूर्ण त्यागकर १९१९ ई॰ में श्रीगुरुके चरणोंमें उपस्थित हुए।

इनके गृहत्याग करनेपर स्नेहमयी माताने रोते-रोते कहा था—"मैं जानती थी कि जोनाको घरमें नहीं रखा जा सकता। उसके जीवनकी आश्चर्यजनक घटनाओंको देखकर हृदय भयसे काँप उठता था। वह साधारण बालक नहीं था। जोनाका अदम्य साहस, सत्यनिष्ठा एवं परोपकारिता देखकर उसके भविष्य जीवनकी सहज ही कल्पना की जा सकती थी। मैं अपने सभी पुत्रोंमें उसे सर्वाधिक प्यार करती थी। मैं उसे कितना प्यार करती थी, इसे कोई नहीं समझ सकता। उसके अलौकिक आचार-व्यवहार, सङ्गी-साथी आदि देखकर मैं सब समय भयभीत रहती थी कि संसारको त्यागकर यह संन्यासी न बन जाये। उसने जो कुछ किया, ठीक ही किया। किन्तु उसे देखे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती।" ऐसा कहते-कहते वे पछाड़ खाकर गिर जातीं।

दीक्षा एवं गुरु-मन्त्रकी प्राप्ति

माताकी ममता एवं घर-द्वार सबका मोह त्यागकर ये श्रीधाम मायापुरमें श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुए। श्रील प्रभुपाद इनका हरिभजनका दृढ़ सङ्कल्प देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उस समय श्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमाका विराट आयोजन चल रहा था। श्रील प्रभुपादने अपने इस प्रिय सेवकको भी श्रीधाम परिक्रमाकी नाना प्रकारकी सेवाओंमें नियुक्त किया।

नवद्वीपका तात्पर्य नौ द्वीपोंसे है। भगवती भागीरथी श्रीमन्महाप्रभुके इस धाममें टेढ़ी-मेढ़ी होकर इस प्रकार प्रवाहित होती हैं, मानो उसे छोड़कर आगे जाना ही नहीं चाहतीं। उनकी इसी टेढ़ी-मेढ़ी चालके कारण यह धाम नौ भागोंमें विभक्त हो गया है। इनमेंसे अन्तर्द्वीप मायापुर इन नौ द्वीपोंके मध्यमें पतितपावनी गङ्गाके पूर्व तटपर स्थित है। यहींपर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाके अन्तर्निहित भाव एवं अङ्ग-कान्तिको अङ्गीकारकर शचीनन्दन गौरहरिके स्वरूपमें प्रकट हुए थे। २४ वर्षकी अवस्था तक यहींपर शैशव और किशोर अवस्थाकी नाना

प्रकारकी अलौकिक लीलाएँ की थीं। इसी श्रीधाम मायापुरको मध्यमें रखकर गङ्गाके पूर्वमें सीमन्तद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप और पश्चिमकी ओर कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, जह्नुद्वीप, मोदद्रुमद्वीप एवं रुद्रद्वीप ये आठों द्वीप अवस्थित हैं। इस समय गङ्गाके प्रवाहके कारण श्रीरुद्रद्वीपका कुछ अंश पश्चिममें और कुछ अंश पूर्वमें अवस्थित है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीबलदेवाभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रील जीव गोस्वामीको इन नौ द्वीपोंकी परिक्रमा करायी थी। तत्पश्चात् ईशान ठाकुरने श्रीनिवास आचार्यको श्रीधामकी परिक्रमा करायी थी। तभीसे गौरसुन्दरके प्रिय भक्तगण बड़ी श्रद्धाके साथ धाम परिक्रमा करते चले आ रहे हैं। श्रीनरहरि सरकार ठाकुरने भक्तिरत्नाकरमें इसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। कुछ कारणोंसे गौरधामकी परिक्रमा लुप्त हो गयी। श्रीगौरजन्मस्थान मायापुरधाम भी मुसलमानोंके राजत्वमें मायाके प्रभावसे आच्छादित हो गया। मुसलमानोंने इस मायापुरका नाम बदलकर मियांपुर कर दिया तथा धामकी सारी स्मृतियाँ नष्ट कर दीं। सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने पुनः इस धामको प्रकट किया। उन्होंने नवद्वीपधाम परिक्रमा और नवद्वीप-भाव-तरङ्ग नामक पद्यात्मक ग्रन्थोंकी रचना की। यही नहीं, उन्होंने मायापुरकी जमींदारीको खरीदकर मायापुरमें श्रीमन्महाप्रभुके जन्मस्थानपर फूस-निर्मित एक छोटे-से मन्दिरमें गौर-विष्णुप्रिया, शची-जगन्नाथ-निमाई एवं पञ्चतत्त्वकी प्रतिष्ठा की। वहाँका सारा दायित्व जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीको सौंप दिया। तभीसे श्रील ठाकुर भक्तिविनोदके आनुगत्यमें श्रील प्रभुपादने धाम परिक्रमाका पुनः आरम्भ किया और तबसे प्रतिवर्ष क्रमशः बड़े समारोहके साथ श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा होने लगी।

इसी वर्ष परिक्रमा सम्पन्न होनेपर श्रीगौरपूर्णिमाके दिन सन्ध्याके समय योगपीठमें श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने विनोदविहारीको दीक्षा दी। दीक्षाका अनुष्ठान समाप्त होनेपर विनोदविहारीने श्रीगुरुचरणोंमें उपस्थित होकर बड़ी नम्रतासे गुरु-मन्त्र देनेके लिए प्रार्थना की। तब तक श्रील प्रभुपाद किसीको गुरुमन्त्र नहीं प्रदान करते थे। विनोदविहारीकी गुरुमन्त्रके लिए प्रार्थना सुनकर श्रील प्रभुपाद चुप होकर कुछ सोचने

श्रीविनोदविहारीके गुरुदेव श्रील प्रभुपाद

लगे। उन्हें चुप देखकर ब्रह्मचारीजीने प्रबल उत्कण्ठासे पुनः उनके चरणोंमें निवेदन किया—"क्या गुरुमन्त्रकी प्राप्ति और गुरुसेवाकी शिक्षाके लिए किसी दूसरे गुरुको ग्रहण करनेकी आवश्यकता होती है?" यह सुनकर प्रभुपाद मुस्कुराने लगे और बड़े स्नेहसे गुरुमन्त्र प्रदान किया और तभीसे श्रील प्रभुपादने दूसरोंको भी गुरुमन्त्र देना आरम्भ किया।

श्रील प्रभुपादका एक अलौकिक नियम यह था कि जब कोई शिष्य अथवा कोई भी व्यक्ति उन्हें प्रणाम करता, तो वे भी हाथ जोड़कर 'दासोऽस्मि' कहकर प्रतिनमस्कार करते। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी

गुरुदेवका ऐसा व्यवहार देखकर सब समय छिपकर ही उन्हें प्रणाम करते थे। श्रील प्रभुपादका एक और भी अलौकिक व्यवहार यह था कि वे शिष्यों या दूसरोंको सर्वदा आदरसूचक 'आप' द्वारा सम्बोधन करते थे। किन्तु श्रीविनोदविहारीकी अन्तरङ्ग सेवासे सन्तुष्ट होकर इन्हें 'तू', 'तुई' आदि प्रिय शब्दोंसे सम्बोधन करते। प्रभुपादके शिष्योंमें ऐसा सौभाग्य दो-एक को ही प्राप्त था।

आदर्श मठजीवन

अब ये गुरुगृहमें रहकर अपने साधन-भजन, भक्तिग्रन्थोंके पठन-पाठन तथा मठके सेवा-कार्योंमें संलग्न रहने लगे। शिक्षित, सम्भ्रान्त एवं उच्च कुलका होनेपर भी ये सम्पूर्णतः निरभिमान थे। श्रील रघुनाथ दास जैसा कठोर वैराग्य इनके जीवनमें परिलक्षित होता है। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए मठके छोटे-छोटे कार्योंको भी बड़े उत्साहसे करते थे। भक्तिसाधनमें कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टाओंका नियोग करना तथा कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल भोग-चेष्टाओंका परित्याग करना अत्यन्त आवश्यक है। ये दोनों ही विचार इनके जीवनमें पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होता है।

श्रीचैतन्य मठके प्रारम्भिक दिनोंमें अर्थाभावके कारण मठवासियोंको बड़े कष्टसे जीवन-यापनकर साधन-भजन करना पड़ता था। ये उस समय श्रीचैतन्य मठके मैनेजर थे। एक दिन मठमें नैवेद्य प्रस्तुत करनेके लिए केवल २०० ग्राम चावल था। मठमें चार ब्रह्मचारी थे। उतना ही चावल और सहिजनके पत्तेका साग ठाकुरजीको भोग लगाया गया। तत्पश्चात् ये चारों मठवासी प्रसाद-सेवा कर रहे थे। उसी समय श्रील प्रभुपाद वहाँ उपस्थित हुए और देखा कि ये लोग २०० ग्राम चावलका अन्न-प्रसाद अधिक परिमाणमें सागके साथ प्रसाद पा रहे हैं। मठमें बरतनके स्थलपर कोई पत्ता भी नहीं था। ऐसा देखकर प्रभुपादने बड़े दुःखी होकर पूछा—"क्या भण्डारमें चावल नहीं हैं?" श्रीगुरुदेव चिन्तित न हो जायें इसलिए इन्होंने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—"हमलोग वैराग्यकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।" किन्तु प्रभुपाद सब कुछ समझ गये।

श्रीविनोद विहारीजी प्रसाद पाते समय कभी यह नहीं कहते कि साग-सब्जी या दालमें नमक अधिक या कम है या प्रसादका स्वाद अच्छा या बुरा है। बड़ी श्रद्धा और प्रीतिके साथ महाप्रसादको भगवत्स्वरूप जानकर उसकी सेवा करते। प्रसाद पाते समय कभी भी इधर-उधर व्यर्थकी वार्त्तालाप या किसीकी निन्दा आदि किसी प्रकारकी चर्चा नहीं करते। इनका यह वैष्णवोचित आचार और व्यवहार देखकर सभी मठवासी इनके प्रति श्रद्धा करते थे।

श्रीगुरुदेवके आदेशसे पूर्वाश्रमकी जमींदारीकी रक्षा

विनोदविहारीके गृहत्यागके पश्चात् घरकी स्थिति डँवाडोल हो गयी। पुत्रविरहमें स्नेहमयी जननी अत्यन्त अस्वस्थ रहने लगीं। जमींदारीकी स्थिति भी बिगड़ गयी, क्योंकि बालक विनोद ही जमींदारीकी देखभाल

श्रीचैतन्य मठ

करता था। श्रील प्रभुपादने कृपाकर इन्हें कुछ दिनोंके लिए जमींदारीकी व्यवस्था ठीक करनेके लिए पूर्वाश्रम भेजा था। इनके घर आनेकी खबर चारों ओर फैल गयी। इन्होंने कुछ ही दिनोंमें बड़ी कुशलतासे प्रजाका विद्रोह शान्त कर दिया और पूर्वकी भाँति सभी लोग लगान नियमित रूपसे देने लगे। इस प्रकार जमींदारीकी सुव्यवस्थाकर माताका आदेश लेकर गुरुगृहमें पुनः लौट आये।

कुछ ही दिनोंमें इनके घरसे श्रील प्रभुपादके नामसे एक पत्र आया, जिसमें प्रभुपादसे इन्हें शीघ्र ही पूर्वाश्रम भेज देनेकी प्रार्थना की गयी थी। पुत्रविरहसे कातर माँ अन्तिम समयमें इनका दर्शन करना चाहती थीं। श्रील प्रभुपादने इन्हें बुलाकर घर जाकर अपनी माँको देख आनेका

श्रीप्रभुपादकी भजनकुटीके समीप कटहल वृक्ष जहाँ श्रीविनोदविहारी बैठकर प्रजा-पालन और शासन-कार्य करते थे

आदेश दिया। श्रील प्रभुपादका आदेश सुनकर ये अपनी भजनकुटीमें लौट आये और दिनभर बाहर नहीं निकले। दूसरे दिन श्रील प्रभुपादने किसी ब्रह्मचारीको बुलाकर पूछा—"विनोदविहारीको घर जानेके लिए कहा था, वह गया या नहीं? वह दीख नहीं रहा।" ब्रह्मचारीने उत्तर दिया—"विनोदविहारी अपनी भजनकुटीमें बैठा-बैठा हरिनाम कर रहा है। अभी तो वह गया नहीं।" श्रील प्रभुपादने विनोदविहारीको अपने पास बुलाया और पूछा—"मैंने तुम्हें घर जानेको कहा था, तुम घर नहीं गये?" इन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो! मैं घर नहीं गया।" "क्यों नहीं गया?"—प्रभुपादने पूछा। इन्होंने विनीत स्वरसे उत्तर दिया—"मैं इसलिए नहीं गया कि मेरी माताजी मुझे बहुत स्नेह करती थीं। यदि वह मरते समय मुझे यह आदेश दें कि बेटा हमारा यह अन्तिम आदेश है कि तुम घर लौटकर घरकी सारी व्यवस्था सँभालो, तो मैं उसके अन्तिम आदेशका उल्लंघन कैसे कर सकूँगा? ऐसी दशामें मेरा मनुष्य जन्म निष्फल हो जायेगा। मेरी गुरुसेवा, हरिकथा-श्रवण और साधन-भजन सबकुछ चौपट हो जायेगा। आपने कहा है कि मनुष्य जीवन बहुत ही दुर्लभ है। हरिभजन ही जीवनका एकमात्र चरम कर्त्तव्य है। यह कर्त्तव्य केवल मनुष्य जीवनमें ही सम्भव है। किसी मनुष्य जन्ममें आपके जैसा सद्गुरु मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—

सकल जन्मे माता-पिता सबे पाय।
कृष्ण गुरु नाहि मिले, भजह हियाय॥

आपने यह भी कहा है कि गुरु एवं भगवान् मुकुन्दकी सेवामें अपनेको अर्पित करनेवाले व्यक्तिके ऊपर माता-पिता, पितर, देवता आदि किसीका ऋण नहीं होता। वह सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होता है।" इनकी ऐसी बातोंको सुनकर श्रील प्रभुपादकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्होंने इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा। मठवासी ब्रह्मचारीगण श्रीविनोदविहारीकी श्रीगुरुदेव और भजनके प्रति ऐसी निष्ठा देखकर विस्मित हो गये।

अतिथि-सेवा

श्रीचैतन्य मठकी स्थापनासे लेकर अब तक यहाँके मठवासी बड़ी कठिनाईसे जीवनका निर्वाह करते हुए गुरुसेवा, भगवत्सेवा एवं मठकी अन्यान्य सेवाओंको करते थे। केवल साक-सब्जी आदिके द्वारा भी कभी-कभी जीवन धारण करना पड़ता था। भूमिपर शयन, पत्तेमें प्रसादसेवन आदि साधारण बातें थीं। पत्तेके अभावमें कभी-कभी सीमेंटके फर्शपर ही श्रद्धापूर्वक प्रसादसेवन करते थे। किन्तु मठवासी इस जीवनमें भी बड़े प्रसन्न होकर भजन और सेवामें तत्पर रहते थे।

इसी बीच एक दिन दोपहरके समय मायापुर धामका दर्शन करने बाहरसे दो अतिथि आये। ये दोनों ही रेलवेके उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। एकका नाम अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय और दूसरेका नाम अतुलकृष्ण दत्त था। मठवासी प्रसादसेवन कर चुके थे। जेठकी दुपहरी, गर्मी और भूख-प्याससे अतिथियोंका मुख सूखा हुआ था। मठके व्यवस्थापक विनोदविहारी ब्रह्मचारी एक कटहल वृक्षके नीचे बैठकर वहाँकी जमींदारीकी व्यवस्था देख-सुन रहे थे। अतिथियोंके सूखे मुखको देखकर उनकी अवस्था समझ ली। इन्होंने दोनोंको पास ही कुण्डमें स्नान करने भेज दिया। जब तक वे स्नानकर लौटे, तब तक विभिन्न प्रकारके व्यञ्जनोंके साथ गरम-गरम स्वादिष्ट महाप्रसाद प्रस्तुत था। उन दोनोंने श्रद्धा और रुचिपूर्वक महाप्रसादका सेवन किया। मठवासियोंकी ऐसी सेवावृत्ति देखकर वे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने इनलोगोंको जगद्गुरु श्रील प्रभुपादका दर्शन कराया। उनकी वीर्यवती हरिकथा श्रवणकर दोनों बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने प्रति माह मठसेवाके लिए पाँच रुपये मासिक चन्दा देनेकी इच्छा प्रकट की। उस समय ये दोनों लौट गये और प्रतिमाह पाँच रुपये मठसेवाके लिए भेजने लगे। इन लोगोंमें क्रमशः हरिकथा श्रवणकी इतनी लालसा उत्पन्न हुई कि बीच-बीचमें ये मठमें आने लगे। कुछ दिनोंके बाद अतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय सम्पूर्ण रूपसे घर-बार, स्त्री-पुत्र-परिवार सब कुछ त्यागकर प्रभुपादके पास चले आये। मठवासी लोग बड़े चिन्तित हुए, क्योंकि ये प्रतिमाह मठसेवाके लिए ५ रुपये

भेजा करते थे, जिससे मठका अधिकांश खर्च चल जाता था। अब वह खर्च कैसे चलेगा, यह सोचकर मठवासी लोग चिन्तित हो गये। किन्तु इन्होंने (अतुलचन्द्र) ने उन लोगोंको सान्त्वना दी कि आपलोग चिन्ता न करें। हरिनाम दीक्षाके पश्चात् इनका नाम अतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय भक्तिसारङ्ग हुआ। ये कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई आदि प्रधान-प्रधान नगरोंमें श्रद्धालु सेठोंके पास भिक्षाके लिए जाते। वे लोग इनकी हरिकथा सुनकर मठसेवाके लिए अपने ट्रकोंसे चावल, दाल, सब्जी आदि भेज देते। यही नहीं उन-उन नगरोंमें भक्तिप्रचारकेन्द्र मठों और आश्रमोंकी स्थापना हुई। ये साप्ताहिक 'गौड़ीय' पत्रिकाके सम्पादक भी थे। ये अन्त समय तक अस्मदीय गुरुपादपद्मके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते तथा इन्हें अपना अभिन्न बन्धु मानते थे। श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् इन्होंने संन्यास ग्रहण किया और इनके संन्यासका नाम हुआ—श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज। इन्होंने अपने सतीर्थ, श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग परमप्रेष्ठ श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको 'पाषण्डगजैकसिंह' की उपाधिसे विभूषित किया था, क्योंकि अस्मदीय गुरुपादपद्मने भक्तिविरोधी मायावादी, स्मार्त, सहजिया आदि पाषण्डमतरूप हाथीका सिंहकी भाँति दलन किया था। जिन-जिन लोगोंने श्रील प्रभुपादके भक्तिविचारोंके विरुद्ध कुछ कहा, उनके विचारोंको शास्त्रके प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा ध्वस्त कर दिया। दूसरे, अतुलकृष्ण दत्तजी भी सरकारी नौकरी छोड़कर सपरिवार चैतन्य मठमें चले आये और श्रील प्रभुपादसे हरिनाम-दीक्षा लेकर ऐकान्तिक रूपमें भजन करने लगे। इन्होंने भक्तोंके गलेका हार 'श्रीगौड़ीय-कण्ठहार' नाम ग्रन्थ संकलित किया। इस ग्रन्थमें वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदिसे प्रमाण संग्रहकर शुद्धभक्तिके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है।

बृहत्-मृदङ्गकी सेवा

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने अप्रेल १९१३ ई० में कलकत्ताके कालीघाटस्थित सॉ-नगर लेनमें भागवत प्रेसकी स्थापनाकर वहींसे श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचक्रवर्ती ठाकुरकी टीकाके साथ गीता आदि

श्रीमद् अतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय दीक्षाके पश्चात्
श्रीमद् अप्राकृत भक्तिसारङ्ग

ग्रन्थोंका प्रकाशन आरम्भ किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके नित्यलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् उस प्रेसको पहले मायापुरमें और बादमें उसे कृष्णनगरमें लाया गया। वहींसे सज्जन-तोषणी, साप्ताहिक गौड़ीय तथा अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। श्रील प्रभुपादने श्रीविनोदविहारीकी साहित्यिक एवं दार्शनिक अभिरुचि लक्ष्यकर इन्हें १९२२ ई॰ में उक्त प्रेसका व्यवस्थापक और पत्रिकाका मुद्रक एवं प्रकाशक नियुक्त किया। श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय भक्तिसारङ्ग तथा श्रीहरिपद विद्यारत्न, एम॰ए॰, बी॰एल॰ उस पत्रिकाके सम्पादक थे। इस पत्रिकामें सुसिद्धान्तपूर्ण प्रबन्ध आदि प्रकाशित होते थे। १९२२ ई॰ में श्रील प्रभुपादने श्रीचैतन्य मठकी विशेष सेवाके लिए अपने अन्तरङ्ग प्रिय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको श्रीधाम मायापुरमें बुला लिया तथा श्रीचैतन्य मठका मैनेजर नियुक्त कर दिया। तबसे वे चैतन्य मठकी विविध सेवाओं विशेषतः वहाँकी जमींदारीकी देख-भाल भी करने लगे। इनकी कुशल व्यवस्थाके कारण श्रीधाम मायापुर स्थित योगपीठ तथा आकर मठराज श्रीचैतन्य मठकी सब प्रकारसे उन्नति होने लगी। जमींदारीकी सुन्दर रूपसे व्यवस्था आरम्भ हुई।

श्रीधाम मायापुरकी सेवा

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अप्रकटलीलाके पश्चात् मायापुरके बहुत-से स्थान भगवती गङ्गाके प्रवाहमें कटकर गङ्गाके पश्चिमी तटपर चले गये। पूर्वी तटपर बसा हुआ विशाल नदिया नगर (नवद्वीप) गङ्गाके पश्चिमी तटकी उच्च भूमिपर बस गया। पूर्वी तट एक प्रकारसे जनशून्य वीरान प्रदेशमें बदल गया। कालके प्रभावसे यवनोंके शासन कालमें हिन्दुओंके सारे पवित्र स्थान नष्ट कर दिये गये, मन्दिरोंको तोड़ दिया गया तथा तीर्थस्थलोंके नाम बदल दिये गये। श्रीरामजन्मस्थान अयोध्या तथा श्रीकृष्णजन्मस्थान मथुराका मन्दिर तोड़कर वहाँ मस्जिदें बना दी गयीं। उनका नाम क्रमशः फैजाबाद और मोमीनाबाद रख दिया गया। इसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभुके जन्मस्थल मायापुरका नाम मुसलमानोंने मियाँपुर रख दिया तथा पासमें ही अवस्थित चन्द्रशेखरभवनके विशाल प्राङ्गणमें कब्रिस्तान बना लिया था।

श्रीगौड़ीयका एक अंक

श्रीविनोदविहारी जब श्रीचैतन्य मठके व्यवस्थापक हुए, तब उनसे यह अत्याचार सहन नहीं हुआ। वे बड़े निर्भीक और साहसी थे। उन्होंने रात-ही-रात कब्रिस्तानके सारे कब्रोंको निकलवाकर अन्यत्र स्थापित करवा दिया और उस खाली स्थानमें सुन्दर-सुन्दर बड़े-बड़े पेड़-पौधे लगवाकर सुन्दर उद्यान बनवा दिया। चारों तरफसे प्राचीर लगाकर उसकी रक्षाकी व्यवस्था भी कर दी। दूसरे दिन सवेरे सभी इस घटनाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। वहाँके मुसलमानोंने पुलिसमें रिपोर्ट एवं कचहरीमें मुकदमा दायर किया। पुलिसके बड़े-बड़े अफसरोंने तथा शासनके प्रधानोंने उस स्थलका निरीक्षण किया तथा कब्रिस्तानका कोई चिह्न नहीं देखा। वहाँ उन्होंने प्राचीन बगीचेको देखा, अतः वे लोग कुछ भी नहीं कर सके। इस घटनासे पूर्व ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीगौर-जन्मस्थली और जगन्नाथ मिश्र भवनका आविष्कारकर उसका नाम पुनः श्रीधाम मायापुर रख दिया था। इस प्रकार श्रीधाम मायापुरका नाम विश्वविख्यात हो गया। इस पुनीत कार्यके लिए श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीका नाम भारतीय इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा रहेगा।

गुरुसेवाका आदर्श

जगद्‌गुरु श्रीसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' बड़े ही प्रतिभाशाली गौड़ीय वैष्णव आचार्य थे। इन्होंने थोड़े ही समयमें केवल भारत ही नहीं सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित और प्रचारित शुद्धभक्तिकी धारा प्रवाहित की। सारे विश्वमें भगवन्नामका प्रचार किया। उन्होंने निर्भीक शब्दोंमें यह प्रचार किया कि वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, जो पूर्ण ब्रह्म कृष्णकी आराधना नहीं करता। वह जाति गोस्वामी, मन्दिरोंके पुजारी, गोस्वामी या भक्त नहीं जो तन-मन-वचनसे श्रीरूप आदि छह गोस्वामियोंकी भाँति भजन नहीं करते तथा शुद्धभक्तिके सिद्धान्तोंका पालन नहीं करते। वर्णव्यवस्था गुणोंके आधारपर प्रतिष्ठित है। शौक्र जन्म या जातिके आधारपर वर्णका निरूपण नहीं होना चाहिये। वेद, उपनिषद्, गीता आदिमें ऐसा ही कहा गया है।

(क) चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः (गीता)

(ख) यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् (भागवत) आदि इसके अकाट्य प्रमाण हैं। प्रभुपादके इस निर्भीक सत्य प्रचारसे जनता बड़ी आकृष्ट हुई। किन्तु आचार-विचारभ्रष्ट ब्राह्मणब्रुव तथा तथाकथित भ्रष्ट जातिगोस्वामीसमाज क्षुब्ध हो उठा। वे श्रीसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरको जानसे मार डालना चाहते थे, क्योंकि उनके विचारोंके सम्मुख ये लोग टिक नहीं पाते थे। बहुत-सी धर्म सभाओंमें ये लोग शास्त्रार्थमें पराजित होने लगे।

इसी समय १९२५ ई॰ में श्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें पूर्व वर्षोंकी भाँति श्रीनवद्वीपधामकी सोलह क्रोसकी परिक्रमा आरम्भ हुई। बड़े समारोहपूर्वक सङ्कीर्त्तनके साथ हजारों श्रद्धालु यात्री परिक्रमा कर रहे थे। साथमें हाथीकी पीठपर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीके विग्रहके साथ श्रील प्रभुपाद भी उस यात्रामें पैदल चल रहे थे। जब परिक्रमा संघ वर्त्तमान कुलियाद्वीपके अन्तर्गत प्रौढ़ामायाके मन्दिरके सामने श्रील प्रभुपादके मुखसे धाम-माहात्म्य श्रवणकर रहा था, उसी समय कुलिया नवद्वीपके तथाकथित ब्राह्मण और जातिगोस्वामीके लोगोंने ईंट, पत्थर, गरम पानी, सोडावाटरकी बोतलों आदिसे आक्रमण कर दिया। उनके अत्याचारसे चारों ओर हाहाकार मच गया। यात्रीगण प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगे। किसीको भी एक दूसरेकी सुध नहीं थी। इसी समय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने प्रभुपादकी रक्षा करते हुए उन्हें पासके ही एक भक्तके घरमें पहुँचा दिया। उपद्रवी भीड़ श्रील प्रभुपादको मारनेके लिए ढूँढ़ रही थी। श्रीविनोदविहारीने तत्क्षणात् श्रील प्रभुपादके संन्यासी वेष और दण्डको स्वयं ग्रहण कर लिया तथा अपने सफेद वस्त्र श्रील प्रभुपादको पहना दिये और किसी प्रकार श्रील प्रभुपादको इस साधारण वेषमें ही श्रीधाम मायापुर भेज दिया। उपद्रवी भीड़ उन्हें पहचान नहीं सकी। इतनेमें वहाँ पुलिस भी आ गयी और बादमें संन्यासी वेष धारण किये हुए श्रीविनोदविहारी किसी प्रकार सुरक्षित मायापुर चले गये। भ्रष्ट पुलिसने इस घटनाको दबा दिया, किन्तु उस समयके प्रसिद्ध आनन्द बाजार पत्रिकामें इस अत्याचारका संवाद प्रकाशित हुआ था, जिसे पढ़-सुनकर शिक्षित-सम्भ्रान्त लोग दङ्ग रह गये थे।

सभी वैष्णव लोग श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीकी अपूर्व गुरुनिष्ठासे बड़े विस्मित हुए। सब जगह इस विषयकी चर्चा होने लगी। इसी प्रकार जब कभी श्रील प्रभुपादके प्रति कोई अन्याय या अत्याचार हुआ अथवा उनके विचारोंका किसीने विरोध किया, तो श्रीविनोदविहारीने निर्भीक होकर सर्वदा इसका प्रतिकार किया।

इस घटनासे श्रीरामानुजाचार्यके प्रिय शिष्य श्रीकुरेशकी गुरुसेवाका बरबस स्मरण हो आता है। दक्षिण भारतमें शैव सम्प्रदायका बोलबाला था। श्रीरामानुजाचार्यने अपने शास्त्रीय विचारोंके आधारपर उनके कुसिद्धान्तोंका खण्डन करना आरम्भ किया। इससे कुसंस्कारग्रस्त शैव लोग क्षुब्ध हो उठे। वहाँके शैव राजाने श्रीरामानुजाचार्यको शास्त्रार्थके लिए श्रीरङ्गममें निमन्त्रण भेजा। दुष्ट राजाने इसी बहाने श्रीरामानुजाचार्यको बुलाकर जानसे मार डालनेका षडयन्त्र किया था। गुरुनिष्ठ कुरेशको उनलोगोंके षडयन्त्रकी भनक लग गयी। अपने सफेद कपड़े गुरुजीको पहनाकर वे स्वयं श्रीरामानुजाचार्यके कषाय वस्त्र और त्रिदण्डको धारणकर राजाके सैनिकोंके साथ शैव नगरीमें पहुँचे। राजा और लोगोंने कुरेशको रामानुजाचार्य ही समझा। एक ओर सैकड़ों शैव विद्वान और दूसरी ओर अकेले कुरेश। तुमुल शास्त्रार्थ हुआ। शैव लोग हार गये। फिर भी पूर्व परिकल्पनाके अनुसार राजाने कुरेशकी पराजयकी घोषणा की तथा उनकी दोनों आखें निकलवाकर उन्हें छोड़ दिया। कुरेशके मुखसे 'आह' तक नहीं निकली। ये घूमते-घामते उस राज्यसे बाहर बहुत दूर एक गाँवमें पहुँचे। सौभाग्यवश श्रीरामानुजाचार्य भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ उपस्थित थे। गुरु और शिष्यका वहीं अपूर्व मिलन हुआ। गुरुसेवक अथवा शिष्य कुरेश गुरुके चरणोंमें लोट गये। श्रीगुरुकृपासे उनकी दोनों आखें पूर्ववत् हो गयीं। कुरेश गुरुकी गोदमें प्रेमसे रो रहे थे। गुरु अपने उत्तरीयवस्त्रसे उनके आँसुओंको पोंछ रहे थे तथा दूसरे हाथसे उसे अभयका आशीर्वाद दे रहे थे। यही कुरेश बादमें श्रीरामानुजके प्रसिद्ध शिष्य कुरेशाचार्य हुए। ये श्रुतिधर एवं श्रीरामानुजाचार्यके भक्तिसिद्धान्तमें पारङ्गत आचार्य हुए हैं।

इसी प्रकार गुरुसेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भी बादमें श्रील प्रभुपादके शिष्योंमें अन्यतम ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव

गोस्वामी महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुए और सारे विश्वमें उनके मनोऽभीष्ट गौरवाणीका प्रचार किया। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीकी ऐसी गुरुसेवा सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगी। कुछ वैष्णवोंका यह भी कहना है कि इसी बहाने श्रील प्रभुपादने अपने प्रिय शिष्यको त्रिदण्ड संन्यासवेश भी प्रदान किया, जिसका अनुष्ठान परवर्ती कालमें कटवामें हुआ।

श्रीगौर-जन्मोत्सव, मार्च १९२८ में पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाका ३४ वाँ वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशनमें भी प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी सभापति थे। उसमें श्रीमठके विभिन्न कार्योंमें अथवा भक्तिप्रचार आदि कार्योंके लिए विशेष-विशेष व्यक्तियोंको धन्यवाद दिया गया। इसी अधिवेशनमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको श्रीमन्महाप्रभुकी विषय-सम्पत्ति संरक्षणके लिए, श्रीचैतन्य मठकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए, अथक परिश्रम और प्रयत्नके लिए तथा श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्ट अन्तरङ्ग सेवाओंके लिए इन्हें धन्यवाद प्रदान किया गया।

श्रीचैतन्य मठके व्यवस्थापकके रूपमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके पास बड़े अच्छे नस्लके दो घोड़े थे। जमींदारीकी व्यवस्थाके लिए कहीं जानेपर ये उन घोड़ोंका व्यवहार करते थे। उस समय मठकी सेवाके लिए ये बड़े ठाट-बाटसे रहते थे। वे अपने पारमार्थिक जीवनके साथ-साथ बहुत-से जनहितकर सामाजिक संस्थाओंसे भी जुड़े हुए थे। नदिया जिला बोर्डके सदस्य, Education and Finance Committee के सदस्य, कृष्णनगर Local Board, Union Board तथा Bench Court के सदस्य पदपर भी ये अधिष्ठित हुए थे। Thakur Bhaktivinode Institute नामक उच्च विद्यालयके भी सभापति पदपर अलंकृत हुए थे। Divisional Commissioner, जिलाधीश जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति भी इनसे विविध विषयोंपर परामर्श लेते थे। छोटे-बड़े सभी लोग इनका विशेष सम्मान करते थे।

बागबाजार गौड़ीय मठकी स्थापनामें विशेष योगदान

श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुरने २६ सितम्बर, १९२८ को कलकत्ता महानगरीमें बागबाजार गौड़ीय मठ एवं श्रीमन्दिरकी भित्तिकी स्थापना की। कलकत्तेके महादाता श्रीजगद्‌बन्धुने इसके लिए भूमि दान की थी। बादमें सेवकखण्ड एवं श्रीमन्दिर, नाट्य मन्दिर आदिका सारा खर्च इन्होंने ही वहन किया था। श्रीजगद्‌बन्धुजी पूर्वबङ्गालके वरिशाल जिलेके वानरीपाड़ा ग्रामके निवासी थे। बादमें ये कलकत्ता आकर व्यवसाय करने लगे। प्रचुर अर्थ इन्होंने कमाया। ये बागबाजारमें गङ्गाके तटपर अपना राजभवन जैसा सुन्दर घर बनाकर रहते थे। एक समय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीजी मुकुन्दविनोद बाबाजी (प्रभुपादके शिष्य) महाराजके साथ गुरुसेवाके लिए भिक्षा एवं प्रचार करते हुए श्रीजगद्‌बन्धुजीके घर पहुँचे। प्रवेश द्वारपर 'वरिशाल निवासी श्रीजगद्‌बन्धुदासका भवन' लिखा हुआ था। विनोदविहारीजीको हठात् स्मरण हो आया कि ये तो हमारे वंशकी प्रजा थे। तत्क्षणात् दरवानके द्वारा जगद्‌बन्धुजीको संवाद भिजवाया कि वानरीपाड़ाके विनोदविहारी आपसे मिलना चाहते हैं। संवाद पाते ही वे खाली पैर, जिस अवस्थामें थे उसी अवस्थामें दौड़े आये। झुककर ब्रह्मचारीजीको अपना जमींदार समझकर प्रणाम किया। दोनों अतिथियोंको सम्मानके साथ उच्च आसनपर बैठाकर उनसे भगवत्कथा सुनने लगे। भगवत्कथा सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी जब उन्होंने सुना कि अब विनोदविहारी घर-बार छोड़कर जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादकी विभिन्न प्रकारकी सेवाओंमें नियुक्त हैं। उन्होंने मठकी किसी प्रकारसे सेवा करनेकी इच्छा प्रकट की। पहले तो उन्होंने श्रीगौड़ीय मठके लिए भूमिदान करनेका सङ्कल्प लिया। किन्तु श्रीविनोदविहारीकी हरिकथा श्रवणकर उन्होंने कहा था—"थाल एक व्यक्ति देगा और दूसरा कोई व्यक्ति उसमें भोजन परोसेगा। ऐसा नहीं हो सकता। मठ और मन्दिर बनानेका सारा भार मैं ही वहन करूँगा।" और ऐसा ही किया। १९३० ई॰ में नवनिर्मित विशाल श्रीमन्दिरमें श्रीश्रीगौर-विनोदानन्दजीकी बड़े धूम-धाम एवं सङ्कीर्त्तनके मध्य

श्रीगौड़ीय मठ बागबााजार, कलकत्ता

प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार श्रीगौड़ीय मठ बागबाजारकी प्रतिष्ठाकी जड़में भी परम निष्किञ्चन, गुरुके चरणोंमें सम्पूर्ण रूपसे समर्पित श्रीविनोदविहारीकी ही प्रचेष्टा थी।

परमानन्द शब्दकी वैदान्तिक व्याख्या

श्रीमायापुर योगपीठमें प्रतिवर्ष श्रीगौरजन्मोत्सवके अवसरपर श्रीधामप्रचारिणी सभाका अधिवेशन होता था। उस अवसरपर श्रील प्रभुपाद मठवासियोंको एक-दूसरेका गुणगान करनेका निर्देश देते थे। १९२९ ई॰ में श्रील प्रभुपादने श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी 'विद्यारत्न' का गुणगान करनेका निर्देश दिया। श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपादके एकनिष्ठ अन्तरङ्ग सेवक थे। श्रीविनोदविहारीजीसे इनका अन्तरङ्ग सख्य भाव था। दोनों ही साथ-साथ उठते-बैठते, खाते-पीते और सोते तथा प्रभुपादकी सेवा करते थे। विनोदविहारी ब्रह्मचारीने खड़े होकर सर्वप्रथम गुरुवन्दना करते हुए कहा—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द-माधवम्॥

अर्थात् जिनकी कृपा गूँगोंको वाचाल एवं पङ्गुको पर्वत लंघन करा देती है, उन्हीं परमानन्दस्वरूप माधवकी मैं वन्दना करता हूँ।

इस वन्दनाके पश्चात् परमानन्द प्रभुके नाना प्रकारके सद्गुणोंका वर्णन करना आरम्भ किया। 'श्रीपरमानन्द प्रभु' की ऐकान्तिक गुरुसेवा गुरुसेवकोंके लिए आदर्श है। श्रील प्रभुपादके लिए रसोई, उनके वस्त्रोंका संस्कार, कहीं आने-जानेकी व्यवस्था, शयनके समय पादसंवाहन आदि कार्योंको छायाकी भाँति साथ रहकर करते हैं। किसी समय कार्यवश बाहर जानेपर आधी रातके समय भी जब लौटते हैं, उस समय श्रील प्रभुपादके विश्राम करते रहनेपर भी 'प्रभुपाद! प्रभुपाद!' दरवाजा खोलिये कहकर थपथपाते हैं। उस समय प्रभुपाद स्वयं ही इनके लिए अपनी भजनकुटीका द्वार खोल देते हैं। ये मठ-मन्दिरके निर्माण, मुद्रणयन्त्र एवं मठ परिचालनाके सभी कार्योंमें विशेष कुशल हैं। ये प्रभुपादकी सेवाके बिना जीवित नहीं रह सकते। ऐसे एकान्त गुरुनिष्ठ श्रीपरमानन्द प्रभुकी कृपाके बिना श्रीगुरु एवं गौराङ्गकी सेवा सम्भव नहीं है। ऐसे परमानन्द प्रभु जययुक्त हों—

प्रसीद परमानन्द! प्रसीद परमेश्वर!
आधि-व्याधि-भुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो॥

(गोपालतापनी)

वेदान्तशास्त्रमें भी परमानन्दके अनुशीलनकी बात कही गयी है—आनन्दमयोऽभ्यासात् (ब्र॰ सू॰ १/१/१२)।

परमानन्दके अभ्यासका गूढ़ तात्पर्य परमानन्दस्वरूप व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका तन-मन-वचनसे सम्पूर्ण रूपसे अनुशीलन करनेसे है। इस परमानन्दके अनुशीलनके लिए ही श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्ट संस्थापक श्रील रूप गोस्वामीने 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा' कहा है अर्थात् कृष्णकी प्रीतिके लिए तन-मन-वचन एवं भावनाकी अनुकूल एवं नैरन्तर्यमयी चेष्टाओंको उत्तमाभक्ति कहते हैं। परमानन्दके अनुकूल अनुशीलनके बिना—उत्तमाभक्तिके अनुशीलनके बिना परमानन्दकी प्राप्ति नहीं होगी। इसीलिए ब्रह्मसूत्रके उपसंहारमें 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्' कहा गया है। 'अनावृत्ति शब्दात्' में यहाँ 'शब्द' का तात्पर्य शब्दब्रह्मसे है। परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णका नाम ही अप्राकृत शब्दब्रह्म है—

नामश्चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

अर्थात् परमानन्दस्वरूप कृष्णनाम सब प्रकारकी अप्राकृत कामनाओंको पूर्ण करनेवाला चिन्तामणिस्वरूप है। अप्राकृत रसके पूर्ण विग्रह, पूर्ण, मायातीत एवं नित्ययुक्त है, क्योंकि नाम और नामी अभिन्न हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद्में और भी कहा गया है—वे परमानन्द परमतत्त्व रसस्वरूप हैं। उस रसस्वरूपको प्राप्तकर जीव परमानन्दका अनुभव करते हैं। यदि वे परमतत्त्व परमानन्दरसस्वरूप नहीं होते, तो कौन जीवित रहता? प्राणरक्षाकी चेष्टा कौन करता? अतएव परमानन्दस्वरूप रसमय ब्रह्म ही सबको आनन्द प्रदान करते हैं—

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति॥ (तैत्तिरीय २/७)

चतुर्वेद शिखामें भी इसका प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है—भगवान्‌का नाम (शब्दब्रह्म), स्वयं भगवान् एवं उनके सभी अवतार पूर्ण, अजर, अमृत तथा परमानन्दस्वरूप हैं। वे जीवोंकी भाँति बद्ध नहीं होते, न जीवोंकी भाँति वे जन्म ग्रहण करते हैं—

नैवेते जायन्ते नैतेषामज्ञानबन्धो न मुक्तिः सर्व एषह्येते पूर्णा अजरा अमृताः परमाः परमानन्द इति॥

ऐसे परमानन्द, रसस्वरूप शब्दब्रह्मके अनुशीलनसे ही—भगवन्नाम-सङ्कीर्त्तनसे ही सदाके लिए पुनरागमन बन्द हो जाता है। अनावृत्ति शब्दका अर्थ संसारमें पुनरागमनके निषेधसे है।

यहाँ यह पूर्वपक्ष हो सकता है कि परमानन्द तो केवल भाव पदार्थ है, उसका आकार या रूप कैसे सम्भव है? इसीलिए ब्रह्मसूत्रमें 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्' सूत्रकी अवतारणा की गयी है। परमपुरुष, परमतत्त्व या ब्रह्म न-रूपवत् अर्थात् रूपके समान नहीं, बल्कि वे स्वयं श्रीविग्रह ही हैं और उनका दर्शन भी सम्भव है। इसलिए अगले सूत्रमें कहते हैं—'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां' अर्थात् भलीभाँति आराधनाके द्वारा हृदयमें तथा प्रत्यक्ष रूपमें उनका अवश्य दर्शन होता है।

इस परमानन्द पुरुषके लिए ही श्रुतियोंमें तथा वेदान्तसूत्रमें 'आनन्दं ब्रह्म' कहा गया है।

आनन्द प्रीतिका पर्यायवाची शब्द है। जीवमात्र परमानन्दकी प्राप्तिके लिए चेष्टा करता है। मुमुक्षु व्यक्ति मोक्षको परमानन्द मानकर उसका अन्वेषण करते हैं। विषयी लोग विषय भोगोंको आनन्द समझकर उसके पीछे-पीछे ही दौड़ते फिरते हैं। भक्तजन भी कृष्णकी सेवाको परमानन्द समझकर उसके लिए प्रयत्न करते हैं। अतः सभी लोग परमानन्दका ही अन्वेषण कर रहे हैं। भगवद्भक्ति ही परमानन्दस्वरूप है। अतः भक्तिके द्वारा ही परमानन्दस्वरूप व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।"

इनके इस भाषणको सुनकर उपस्थित श्रोतृमण्डली मुग्ध हो गयी। श्रील प्रभुपाद इनके वैदान्तिक विचारोंको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने सारे वेदान्त-सम्बन्धी ग्रन्थ श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको प्रदान करते हुए कहा—"तुम इन ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना। किसी औरमें वेदान्तके प्रति रुचि नहीं देखता। साधारण लोग वेदान्त कहनेसे निर्विशेषज्ञानको ही लक्ष्य करते हैं। किन्तु वेदान्त भक्तिग्रन्थ है, इसका प्रचार करना।" श्रीविनोदविहारीने त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् श्रील प्रभुपादके इस मनोऽभीष्टको भलीभाँति पूर्ण किया।

उन्होंने गौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर समितिके सदस्योंको (योग्य शिष्योंको) त्रिदण्डसंन्यास वेष प्रदानकर उन्हें 'भक्तिवेदान्त' उपाधिसे युक्त वामन, नारायण, त्रिविक्रम आदि नाम प्रदानकर सर्वत्र वेदान्तके प्रतिपाद्य विषय शुद्धभक्तिका प्रचार किया और कराया। यह उनके जीवनका अपूर्व प्रधान वैशिष्ट्य है।

श्रीविनोदबिहारी एवं ठाकुर भक्तिविनोद इंस्टीट्यूट

श्रील प्रभुपादने पराविद्याकी शिक्षाके लिए श्रीधाम मायापुरमें अप्रेल १९३१ ई॰ में Thakur Bhaktivinode Institute की स्थापना की। उक्त विद्यालयके Managing Committee के सभापति श्रील प्रभुपाद, प्रधानाध्यापक श्रीमद्भक्तिप्रदीपतीर्थ महाराज एवं बाकी सदस्योंमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भी व्यवस्थापक सदस्य मनोनीत हुए। इनकी व्यवस्थाके अनुसार उक्त विद्यालयके लिए रविवारके बदले पञ्चमी और एकादशीको अवकाशका दिन और शनिवारके बदले चतुर्थी और दशमीको अर्द्ध अवकाशका दिन घोषित किया गया। एकादशी शुद्धभक्तिकी जननी माधवतिथि कहलाती है। पञ्चमी तिथि शुद्धा सरस्वतीकी आविर्भाव तिथि (श्रील प्रभुपादकी भी) है। रविवारके दिन गिरिजाघरोंमें उपासनाके कारण विशेष छुट्टी दी जाती थी। इन्होंने अँग्रेजोंके द्वारा स्थापित नियमोंको बदलकर पूर्वोक्त नियमोंकी घोषणा की थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने विशेष-विशेष वैष्णव आचार्योंके आविर्भाव और तिरोभावके दिनको भी अवकाशका दिन घोषित किया। इस विद्यालयमें धर्मशिक्षा अनिवार्य

श्रीभक्तिविनोद इंस्टीट्यूट

कर दी गयी। अन्य सभी विषयोंमें उत्तीर्ण होनेपर भी जो छात्र धर्मविषयमें अनुत्तीर्ण होंगे, उन्हें अगली कक्षामें प्रवेश नहीं मिलेगा। धर्मनीतिरहित निरीश्वर शिक्षाके द्वारा समाजका कल्याण कदापि सम्भव नहीं—ऐसी विवेचना कर ही इन्होंने उक्त विद्यालयमें इन विषयोंको लागू किया। इनके इस कार्यके लिए नवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके पक्षसे इन्हें विशेष धन्यवाद ज्ञापन किया गया।

कृतिरत्नकी उपाधि

श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके ३८वें वार्षिक अधिवेशन १९३२ ई॰ में उक्त सभाके सभापति श्रील सरस्वती प्रभुपादने श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके सेवाकार्योंसे इन्हें गौराशीर्वादस्वरूप भक्तिसूचक 'कृतिरत्न' की उपाधि प्रदान की। यह आशीर्वाद पत्र इस प्रकार है—

श्रीश्रीमायापुरचन्द्रो विजयतेतमाम्

श्रीश्रीनवद्वीपधामप्रचारिणीसभायाः

श्रीश्रीगौराशीर्वाद-पत्रम्

श्रीमहाप्रभुसेवार्थं श्रीधाम्निभूमिरक्षकः।
प्रजापालनदक्षो यः श्रीचैतन्य-मठाश्रितः॥

श्रीविनोदविहार्याख्य ब्रह्मचारिवराय च।
प्रभुपादान्तरङ्गाय सर्वसद्गुणशालिने॥

धामप्रचारिणी-संसत्सभ्यैस्तमै प्रदीयते।
'कृतिरत्न' इति ख्यातुमुपाधि-भूषणं मुदा॥

गङ्गापूर्वतटस्थ-श्रीनवद्वीपस्थले परे।
श्रीमायापुरधामस्थ-योगपीठमहत्तमे ॥

गुणेषु व सुशुभ्रांशु-शकाब्देऽस्मिन् शुभाश्रये।
फाल्गुणपूर्णिमायां श्रीगौराविर्भाव-वासरे॥

—(स्वाः) श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

सभापतिः

श्रीचैतन्य मठके आश्रित श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीजी—जिन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी सेवाके लिए श्रीधाम मायापुरकी भूमिका संरक्षण किया, जो प्रजापालनमें सब प्रकारसे निपुण हैं, जो श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग सेवक हैं तथा सब प्रकारके वैष्णवोचित सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं, उन्हें श्रीधामप्रचारिणी सभाके सभ्यवृन्द द्वारा गङ्गाके पूर्वतटपर स्थित श्रीनवद्वीपके श्रीमायापुरधामके सर्वश्रेष्ठ योगपीठमें १८५३ शकाब्दकी श्रीगौराविर्भाव तिथि फाल्गुन पूर्णिमाके दिन शुभ लग्नमें आनन्दपूर्वक 'कृतिरत्न' उपाधिसे विभूषित किया गया।

मामला-मुकदमाके द्वारा भगवत्सेवा

एक समयकी बात है, कृष्णनगरमें एक धर्मसभा हुई। उस सभामें वकील, मुख्तार, वैरिस्टर तथा अवसर प्राप्त न्यायाधीश आदि बड़े-बड़े शिक्षित एवं सम्भ्रान्त लोग उपस्थित थे। उन लोगोंमेंसे बहुतोंने उस

सभामें विचारपूर्ण भाषण दिया। उनमेंसे किसी एकने अपने भाषणके प्रसङ्गमें बड़ी नम्रता एवं खेदके साथ कहा—"मैंने सारा जीवन मामला-मुकदमामें व्यर्थ ही गँवा दिया। हरिभजन नहीं करनेसे मेरा जन्म विफल हुआ। जिस हरिभक्तिके द्वारा मनुष्य जीवन सफल हो सकता है, उससे मैं बहुत दूर रहा। अब बुढ़ापेमें इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, मृत्यु भी कब आ जाय इसकी भी कोई निश्चयता नहीं है। अब कुछ समझमें नहीं आता।" इस प्रकार कहते हुए उन्होंने भगवद्भक्तिके लिए वैष्णव और भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना की।

अन्तमें सभापति महोदयने श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' प्रभुको भी कुछ बोलनेके लिए अनुरोध किया। इन्होंने सरल-सहज, स्वाभाविक भावसे खड़े होकर बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें बोलना आरम्भ किया—"सभी शास्त्रोंका गूढ़ तात्पर्य भगवद्भक्तिसे है। भगवद्भक्तिमें भी व्रजके परिकरों द्वारा व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्रेममयी भक्ति सर्वोत्तम है। इसलिए वैष्णवाचार्य श्रीचक्रवर्त्ती ठाकुरने कहा है—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ आराध्य हैं। श्रीवृन्दावनधाम इनकी एकमात्र लीलाभूमि होनेके कारण श्रीकृष्णकी भाँति ही आराध्य है। सब प्रकारकी आराधनाओंमें—उपासनाओंमें श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंकी आराधना ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ निर्मल प्रमाणस्वरूप है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यही शिक्षा है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

शास्त्रोंमें भी मामला-मुकदमाका प्रसङ्ग दृष्टिगोचर होता है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि मामला-मुकदमा करना ही हरिभक्तिका श्रेष्ठ साधन है। यही नहीं मामला-मुकदमा ही हरिभक्ति है। जो लोग मामला-मुकदमा करना नहीं जानते, उनके लिए भगवद्भक्ति प्राप्त करना सुदूर पराहत है। हमलोग सर्वाराध्या श्रीमती राधिकाके पक्षवाले हैं। उनके साथ कृष्णका मिलन कराना ही हमारी विशेष सेवा है। किसी समय श्रीकृष्ण चन्द्रावलीसे

मिलनेके लिए उनके कुञ्जमें गये हुए थे। राधाकी सखियोंने कोई विशेष बहाना बनाकर श्रीकृष्णको श्रीचन्द्रावलीके कुञ्जसे निकालकर श्रीराधाकुण्डस्थित श्रीराधाजीके कुञ्जमें ले आयीं। वहाँ उन्होंने कुञ्जेश्वरी श्रीमती राधिकाके सामने ही यह लिखवा लिया कि मैं राधाजीका दास हूँ, राधाजीको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा और उसपर उनका हस्ताक्षर करवा लिया। कुछ दिन बीतनेपर अपने स्वभावसे लाचार श्रीकृष्ण उस दलीलकी उपेक्षाकर पुनः चन्द्रावलीके कुञ्जमें चले गये। राधाकी सहेलियोंने श्रीकृष्णके विरुद्ध श्रीवृन्दावनेश्वरी राधिकाके पास इसके लिए मुकदमा किया। इस मुकदमेमें राधाजीकी सखियोंकी जीत हुई। इसके द्वारा कृष्णपर decree हुई और श्रीमती राधिकाकी अदालतमें उपस्थित नहीं होनेपर वारंटके द्वारा उनका श्रीमती राधिकाजीके साथ मधुर मिलन कराया।"

श्रीकृतिरत्न प्रभुके शास्त्रीय तत्त्व-सिद्धान्तपूर्ण भाषणको सुनकर वहाँ उपस्थित वकील, न्यायाधीश आदि सभी लोग बड़े विस्मित हुए। उस विचारपूर्ण भाषणको सुनकर सभीके हृदयमें गहरी छाप पड़ी। उन्होंने यह उपलब्धि की कि श्रीश्रीराधागोविन्दकी सेवा-प्राप्तिमें ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है, अन्यथा नहीं। उन्होंने यह भी समझा कि श्रीकृष्णभजनके लिए ऊँचे कुलमें जन्म, रूप, विद्या, धनकी आवश्यकता नहीं। प्राणिमात्र कृष्णभजनका अधिकारी है। अतएव हमें भी हरिभजन करना आवश्यक है।

आदर्श वैष्णव-जीवन

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके अपने पूर्वाश्रममें शिक्षित सम्भ्रान्त जमींदार होनेपर भी इन्हें अभिमान छू तक नहीं गया था। ये अपने मठ-जीवनमें भी बड़े सहिष्णु, उदार और मृदुभाषी थे। दीन दुःखियोंकी सब प्रकारसे सहायता करते। "भाल न खाइबे आर भाल न परिबे। व्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे॥"—यही इनके जीवनका व्रत और लक्ष्य था।

साथ ही कृष्णप्रीतिके लिए अखिल चेष्टापरायण होना तथा अपने लिए सभी प्रकारके भोगोंका त्याग करना ही इनकी साधना थी। ठाकुरजीका महाप्रसाद, जो कुछ परोस दिया जाता, बड़ी प्रीतिपूर्वक

उसे ग्रहण करते। उसमें नमककी कमी है अथवा यह चीज स्वादिष्ट नहीं हुई—ऐसा उन्होंने जीवनमें कभी नहीं कहा। कभी भी कोई स्वादिष्ट चीज ग्रहण करनेकी इनकी लालसा नहीं हुई। जिन दिनों ये चैतन्य मठके व्यवस्थापक थे, उन दिनों वहाँके ब्रह्मचारी लोग धनाभावके कारण बड़ी कठिनतासे साधन-भजन करते हुए जीवन व्यतीत करते थे। ऐसे जीवनमें वे लोग सब प्रकारसे सन्तुष्ट और परस्पर प्रेमपूर्वक रहते थे।

पूज्यपाद श्रीधर महाराजसे प्रथम मिलन

एक समय नवद्वीप परिक्रमाके पश्चात् मैं (श्रीभक्तिवेदान्त नारायण) कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीचैतन्य-सारस्वत गौड़ीय मठ, कोलेरगंज (नवद्वीप) में परमपूज्यपाद परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजके[१] दर्शनोंके लिए गया हुआ था। उन्होंने प्रसङ्गवश हमारे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके सम्बन्धमें बतलाया, जिसे हम जीवनभर भूल नहीं सकते। उन्होंने कहा—

"मैं जब लॉ के अन्तिम वर्षका छात्र था, उस समय एकबार मायापुरके दर्शनके लिए आया। मैंने सर्वप्रथम योगपीठके श्रीमन्दिरमें श्रीविग्रहोंका दर्शनकर श्रीवास-आँगन, अद्वैतभवन, गदाधरभवन आदिका दर्शन किया। अन्तमें आकर मठराज श्रीचैतन्य मठमें दर्शन करते समय पास ही एक अद्भुत घटना देखी। एक कटहल वृक्षके नीचे एक बहुत ही सुन्दर नवयुवक ब्रह्मचारी कुर्सीपर बैठा हुआ था। सामने टेबुल लगी हुई थी, जिसपर वह अपने बाएँ पैरके ऊपर दाएँ पैरको रखकर धीरे-धीरे हिला रहा था। बहुत ही अच्छी सफेद धोती तथा कुर्त्ता पहना हुआ था। दोनों आँखें बन्द थीं और ऐसा प्रतीत होता था मानो वह गम्भीर चिन्तनमें डूबा हुआ है। जो कोई मठवासी उधरसे निकलता था चाहे सफेद कपड़ेमें हो या गेरुए कपड़ेमें हो, चाहे कम उम्रका हो या अधिक उम्रका हो, वह जमीनपर सिर झुकाकर उस ब्रह्मचारीको बड़ी श्रद्धासे प्रणाम करता था और अपने सेवा-कार्यमें चला जाता था। इतनेमें एक लम्बे-चौड़े डील-डौलवाले तथा गम्भीर व्यक्तित्वसम्पन्न संन्यासीने

??? [१] श्रील श्रीधर महाराजजीके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

आकर उसे प्रणाम किया और उसके सामने खड़े हो गये। कुछ आहट पाकर उस ब्रह्मचारीने आँखें खोलीं और उसी स्थितिमें बैठे हुए उसने उनकी ओर देखा। संन्यासी महोदयने बड़ी नम्रतापूर्वक कुछ पूछा। ब्रह्मचारीजीने भी कुछ उत्तर दिया, तत्पश्चात् संन्यासी महोदयने पुनः प्रणाम किया और वे चले गये।" पूज्यपाद श्रीधर महाराजजी पुनः कहने लगे—

"मैं बड़े ध्यानसे यह सब कुछ देख रहा था। यह कौन नवयुवक है। इसे सभी लोग श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर रहे हैं। बड़े-बड़े संन्यासी तक भी इससे आदेश-निर्देश ग्रहण करते हैं। मैंने पास ही खड़े एक मठवासीसे इस असाधारण व्यक्तित्वसम्पन्न ब्रह्मचारीके सम्बन्धमें पूछा। उन्होंने मुझे बतलाया कि इनका नाम श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' है। ये यहाँके व्यवस्थापक हैं। श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग सेवकोंमें अन्यतम हैं। देखनेमें साधारण लगनेपर भी गम्भीर दार्शनिक, विद्वान तथा भक्तिसिद्धान्तमें बड़े ही निपुण हैं। योगपीठ, श्रीधाम मायापुर तथा श्रीचैतन्य मठके विकासमें इनका बड़ा भारी योगदान है। श्रीभक्तिविनोद इंस्टीट्यूटके मैनेजिंग कमेटीके एक प्रधान सदस्य हैं। मैं यह सुनकर विस्मित हो गया। थोड़ी देरके बाद श्रील प्रभुपादके दर्शनके लिए गया। उनके गम्भीर व्यक्तित्वको देखकर तथा उनकी वीर्यवती वाणीको सुनकर ठगा-सा रह गया। मैंने उसी समय सङ्कल्प कर लिया कि मुझे भी अब नश्वर संसारको छोड़कर हरिभजन ही करना चाहिये। हरिभजनके बिना जीवन व्यर्थ है। विशेषतः श्रील प्रभुपाद द्वारा उच्चरित भागवतीय श्लोककी मेरे अन्तःस्थलपर एक अमिट छाप पड़ गयी—

लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(श्रीमद्भागवत ११/९/२९)

अर्थात् अनेक जन्मोंके बाद यह मानव जन्म प्राप्त हुआ है इसलिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होनेपर भी परमार्थप्रद है।

अतः बुद्धिमान व्यक्ति मृत्युसे पूर्व ही क्षणमात्रका विलम्ब किये बिना चरम कल्याणके लिए चेष्टा करे।

मैं उस समय तो घर लौट आया, किन्तु कुछ ही दिनोंके पश्चात् घर-बार त्यागकर जीवनभरके लिए प्रभुपादके चरणोंमें उपस्थित हो गया। मठवासी होनेपर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके साथ प्रगाढ़ प्रीति और बन्धुत्व रहा। हम दोनों परस्पर वैदान्तिक सिद्धान्तों तथा भक्तिके गूढ़ विचारोंके सम्बन्धमें वाद-विवाद करते थे। दूसरे सभी लोग हमारे विचारोंको बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रवण करते थे।

प्रभुपादके विचारसे आदर्श गुरुसेवक

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी बड़े ठाट-बाटके साथ रहते थे। जमींदारीकी सारी व्यवस्था सँभालते थे। मठ-मन्दिरकी सेवाके लिए आवश्यकता पड़नेपर कोर्ट-कचहरी तथा उच्च पदस्थ प्रशासकोंके साथ भी मिलते थे। उनका इस प्रकारका बाह्य जीवन देखकर कुछ अनभिज्ञ मठवासियोंकी यह धारणा थी कि वे केवल सांसारिक विषयोंमें ही निपुण हैं, भक्तिसे इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ये सदा-सर्वदा प्रजाओंके शासन, मामला-मुकदमा आदि वैषयिक कार्योंमें लिप्त रहकर लोकसमाजमें ही सुपरिचित हैं। भक्तिके अङ्गोंको पालन करनेकी इन्हें फुर्सत नहीं। यह बात यहीं तक नहीं रही। दिल्ली गौड़ीय मठके कुछ ब्रह्मचारियोंने इस विषयमें श्रील प्रभुपादको एक लम्बा-चौड़ा पत्र भी दे दिया। श्रील प्रभुपाद उस पत्रको पाकर बड़े ही असन्तुष्ट हुए। उन्होंने साथ-ही-साथ बड़ी कठोर भाषामें उस पत्रका प्रतिवाद करते हुए लिखा कि विनोदविहारी एक असाधारण गुरुनिष्ठासम्पन्न आदर्श वैष्णव है। वह भक्तिके गूढ़ और उच्च कोटिके सिद्धान्तोंमें पूर्ण पारङ्गत है। विशेषतः वेदान्तके गम्भीर विचारोंमें उसका प्रवेश है। उसमें भजनके प्रति अत्यधिक उत्साह, हरि-गुरु-वैष्णवकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टा-परायणता एवं सर्वस्व त्यागकी भावना है। साथ ही स्नेह, दया, शासन-क्षमता, संगठन-शक्ति तथा दायित्वपूर्ण कार्योंमें सञ्चालन-शक्ति आदि असाधारण गुणोंका समावेश है। जो लोग यह समझते हैं कि विनोदमें वैष्णवता नहीं है,

मैं समझता हूँ कि ऐसा समझनेवालोंमें ही वैष्णवताका सम्पूर्ण अभाव है। जो लोग वैष्णवोंका आन्तरिक मर्म नहीं जानकर इनकी निन्दा करते हैं, उनका ध्वंस अनिवार्य है। इसे कोई भी रोक नहीं सकता।

श्रीपाद नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी उस समय दिल्ली गौड़ीय मठके एक प्रमुख सेवक थे। ये श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध वक्ता थे। श्रील प्रभुपादके प्रति इनकी अत्यन्त गम्भीर निष्ठा थी। सौभाग्यवश इन्होंने भी श्रील प्रभुपादके लिखे हुए पत्रको पढ़ा और तबसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके बाद श्रीगौड़ीय मठको छोड़कर ये भी अपने सतीर्थ श्रीविनोदविहारी 'कृतिरत्न' प्रभु एवं श्रीनरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभु आदिके साथ श्रीधाम नवद्वीपमें चले आये तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें रहकर साधन-भजन एवं भारतके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करते रहे। उसी समय प्रसङ्गवशतः इन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा दिल्ली गौड़ीय मठके ब्रह्मचारियोंके लिए लिखे हुए पत्रके सम्बन्धमें अस्मदीय गुरुपादपद्मके निकट रहस्योदघाटन किया।

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधिका स्थानान्तरण

सन १९३२ ई॰ की घटना है। भगवती भागीरथी आज उफनती हुई प्रवाहित हो रही थीं। चारों तरफ पानी-ही-पानी दीख रहा था। उसके प्रबलतर वेगसे पश्चिमी तट कट-कटकर उसके प्रवाहमें विलीन हो रहा था। श्रील प्रभुपादके परमाराध्य श्रीगुरुदेवकी समाधि नवद्वीपधामके अन्तर्गत गङ्गाके पश्चिमी तटपर अवस्थित थी। श्रील प्रभुपादने १९१५ ई॰ में उत्थान एकादशीके दिन स्वयं अपने हाथोंसे उनकी समाधि प्रदान की थी। जब श्रील प्रभुपादको यह पता चला कि उनके श्रीगुरुदेवकी समाधि गङ्गाके प्रवाहमें बह जानेवाली है, उसी समय उन्होंने अपने अन्तरङ्ग सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको निर्देश दिया कि किसी भी प्रकार उस समाधिको सम्पूर्ण रूपसे श्रीधाम मायापुरमें श्रीराधाकुण्डके तटपर लाया जाये और वहींपर उनकी पुनः प्रतिष्ठा की जाये।

श्रीविनोदविहारी प्रभु अपने प्रिय सतीर्थ बन्धु श्रीपाद नरहरि सेवाविग्रह प्रभु तथा अन्यान्य गुरुसेवकोंकी सहायतासे कई दिनों तक दिन-रात अथक परिश्रमके पश्चात् उस समाधिको सुरक्षित अखण्ड रूपमें सङ्कीर्त्तनके साथ श्रीचैतन्य मठमें ले आये। श्रील प्रभुपाद बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे राधाकुण्डके तटपर समाधि-स्थल खोदनेका कार्य आरम्भ किया। उनके इस कार्यमें श्रीपाद कुञ्जबिहारी विद्याभूषण, श्रीअप्राकृत भक्तिसारङ्ग गोस्वामी, श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभु तथा श्रीविनोदविहारी कृतिरत्न प्रभु प्रमुख सेवकवृन्दने उनकी सहायता की। समाधिका कार्य पूर्ण होनेपर श्रील प्रभुपाद अपने गुरुदेवकी विरहवेदनासे अत्यन्त कातर हो गये। उस समय उनके विप्रलम्भ भावाविष्ट मुखमण्डलका दर्शनकर उनके अन्तरङ्ग सेवकवृन्द भी भावविह्वल हो गये। सभीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित

श्रीचन्द्रशेखर-भवनमें श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजका समाधि-मन्दिर

होने लगी। विनोदविहारी ब्रह्मचारी भावाविष्ट प्रभुपादके चरणोंके समीप बैठकर अपनी अश्रुबिन्दुओंसे उनके चरणसरोजको पखार रहे थे।

श्रील सरस्वती प्रभुपाद जिस समय अपने श्रीगुरुदेव श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेपर उन्हें समाधिस्थ करने जा रहे थे, उस समय कुलियाके उच्छृंखल एवं दुर्नीतिपरायण बाबाजी लोग नाना प्रकारसे विघ्न-बाधा पहुँचाने लगे थे। किन्तु अन्तमें वे कुछ नहीं कर सके। श्रील प्रभुपादने गङ्गा तटपर कुलियामें ही इन्हें समाधि प्रदान की थी। उन बाबाजी लोगोंने इस बार भी समाधिको श्रीधाम मायापुरमें स्थानान्तरण करते समय घोर विरोध किया और बिघ्न-बाधाएँ पहुँचायीं। किन्तु इसे रोक नहीं सकनेपर कृष्णनगर कोर्टमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके नामसे समाधिको हटानेमें प्रधान आसामीके रूपमें मुकदमा दायर कर दिया। यह मुकदमा एक ईसाई धर्मावलम्बी न्यायाधीशकी अदालतमें पेश हुआ। न्यायाधीशने इस केसको बड़ी गम्भीरतासे लिया। ईसाई धर्मके अनुसार किसी समाधिको उसके मूल स्थानसे हटाना एक अक्षम्य अपराध होता है और उसके लिए पाश्चात्य देशोंमें बड़ी कड़ी सजा होती है। न्यायाधीशने दोनों पक्षोंका तर्क-वितर्क सुनकर आसामीको कड़ी सजा देनेका मन बना लिया था। ऐसा देखकर ब्रह्मचारीजीने अन्तमें न्यायाधीशसे बड़ी गम्भीरतासे कहा—"महाशयजी! आपको मालूम होना चाहिये कि हमलोग ईसाई मतावलम्बी नहीं हैं। हमलोग भारतीय वैदिक रीति-नीति अपनानेवाले शुद्ध वैष्णव हैं। वैष्णवधर्मके अनुसार विशेष परिस्थितियोंमें विशेष कारणोंसे समाधिको स्थानान्तरित किया जा सकता है, इसके हजारों प्रमाण हैं।" यह सुनते ही न्यायाधीश महोदयका विचार बदल गया। उन्होंने श्रीविनोदविहारीके पक्षमें निर्णय दिया—"आसामीको बिना किसी आरोपके मुक्त किया जाता है।" उपस्थित आइनज्ञ वकील आदि श्रीविनोदविहारीके तर्कको सुनकर विस्मित हो गये तथा उनकी चौमुखी प्रतिभाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। श्रील प्रभुपाद सारी बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीगौड़ीय मठ-मिशनके सभी मामला-मुकदमोंका भार कृतिरत्न प्रभुके ऊपर सौंप दिया। यह कार्य साधारण लोगोंके लिए दुःसाध्य और असम्भव था।

शुद्धभक्तिका प्रचार

सन् १९३३ ई॰ के प्रारम्भसे ही श्रील प्रभुपादकी इच्छाके अनुसार श्रीधाम पुरी, कटक एवं उड़ीसा प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए विनोदविहारीने कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ यात्रा की। सबसे पहले वे श्रीधाम पुरी पुरुषोत्तम मठमें उपस्थित हुए। वहाँ कुछ दिन रहकर मठस्थित सभागृहमें तथा पुरीके विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न विषयोंपर भाषण दिया। साथ ही पुरुषोत्तम मठमें विद्यमान बहुत-से जटिल सेवाकार्योंका समाधान किया। वहाँसे श्रीसच्चिदानन्द मठ, कटकमें उपस्थित हुए और वहाँके सेवाकार्योंका समाधानकर वहाँके एक महाविद्यालयके प्राङ्गणमें सैकड़ों छात्रों, प्राध्यापकों एवं विशेष शिक्षित सम्भ्रान्त श्रोताओंके मध्य 'वेदान्तमें शब्दवाद' के सम्बन्धमें अतिसारगर्भित वैदान्तिक भाषण दिया। उक्त सभामें उन्होंने यह बतलाया—"किसी भी वस्तुका ज्ञान सबसे पहले कान या श्रुतिके माध्यमसे ही सम्भव है। इसलिए वैष्णव सम्प्रदायमें श्रवणका विशेष महात्म्य है। श्रवणका माध्यम केवल कान या श्रुति है। कानके द्वारा ही हम शब्दको ग्रहण कर सकते हैं। कान जिस शब्दको ग्रहण करता है, उसे अवशेष ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं तथा अन्य इन्द्रियाँ जिसे ग्रहण या अनुभव करती हैं, उसे कान ग्रहण नहीं करते। जैसे एक पके हुए आमको आँखसे देखा जा सकता है, जिह्वासे उसका रसास्वादन किया जा सकता है, नाकसे उसकी सुगन्धका अनुभव किया जा सकता है, त्वचासे उसकी कोमलता या कठोरता अनुभवकी जा सकती है, किन्तु कानसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु कान जिस शब्दको ग्रहण करता है, उसे अन्यान्य इन्द्रियाँ न देख सकती हैं, न सुन सकती हैं, न रसास्वादन कर सकती हैं और न स्पर्श कर सकती हैं। इसलिए सद्‌गुरु सत्-शिष्यके कानमें ही सर्वप्रथम अप्राकृत शब्दब्रह्मको प्रदान करता है। श्रीगुरु-परम्पराकी धारामें अप्राकृत भगवन्नाम एवं मन्त्रको शब्दब्रह्म कहते हैं। जिन्हें शब्दब्रह्मकी अनुभूति न हो, शब्दब्रह्मके अवतार श्रुतियोंके विषयमें जो पारङ्गत न हों तथा सांसारिक विषय-आसक्तिसे जो उपरत नहीं हैं, वे सद्‌गुरु पदवाच्य नहीं हैं। ऐसे साधारण लोगोंके द्वारा दिया हुआ भगवन्नाम शब्द-सामान्य

कहलाता है। उनमें वह पारमार्थिक शक्ति नहीं होती, जो उन महापुरुषोंके द्वारा दिए हुए शब्दब्रह्ममें होती है। इसीलिए सद्‌गुरु सत्‌-शिष्यके कानका संस्कारकर अप्राकृत शक्तिसम्पन्न भगवन्नाम और मन्त्ररूप शब्दब्रह्म प्रदान करता है।

वेद-वेदान्त, गीता एवं श्रीमद्भागवतके मन्त्रों, श्लोकों तथा शब्दोंमें उसके मूल वक्ताके अन्तर्निहित भावोंकी अभिव्यक्ति गूढ़ रूपसे विद्यमान रहती है। गुरु-परम्पराको ग्रहण करनेवाले आचार्यों या वैष्णवोंसे श्रवणके अतिरिक्त उन्हें अनुभव करना या समझना असम्भव है। इसका कारण यह है कि मूल वक्ता श्रीकृष्ण, श्रीनारायण, श्रीनारद, श्रीव्यास आदिके भावोंको शिष्य-परम्पराके माध्यमसे ही समझा जा सकता है। स्वतन्त्र बुद्धिके द्वारा उसे हृदयंगम नहीं किया जा सकता है—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥

अर्थात् सम्प्रदायविहीन मन्त्र निष्फल होते हैं, इसलिए कलियुगमें चार वैष्णव सम्प्रदाय हुए हैं।

एक विशेष बात यह है कि श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें मूल वक्ताने शब्दोंका उच्चारण किस स्वर (टोन) में किया है, उसीपर उन शब्दोंका अर्थ निर्भर करता है। जैसे किसीने कहा—राम तुम कहाँ गये थे? इस वाक्यके विभिन्न प्रकारके स्वरोंके उच्चारणसे इसके विभिन्न अर्थ होते हैं। विभिन्न अर्थ होनेपर भी मूल वक्ताने किस स्वरसे इसका उच्चारण किया था, उनके कहनेका क्या तात्पर्य था, यह गुरु-परम्पराकी धारासे ही समझा जा सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए शब्दब्रह्म और उसका मूल ग्रहण करनेवाले कानका परमार्थ जगत्‌में एक विशेष महत्व है।"

[इसे श्रील गुरुमहाराजके मुखसे श्रवण किया था]

तत्त्व-दर्शनमें अभिरुचि

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी गौड़ीय शाखा-मठोंकी व्यवस्थाके लिए अथवा प्रचारके लिए जब कभी लम्बी यात्रा करते, उस समय उनके साथ जैव-धर्म, श्रीगौड़ीयके विशेष अंक एवं तत्त्व-सन्दर्भ आदि दार्शनिक

ग्रन्थ अवश्य ही रहते। विशेषतः रेलयात्राके समय अध्ययन करते-करते उसमें तन्मय हो जाते। उस समय साधारण मठवासियोंके लिए श्रील जीव गोस्वामीके सन्दर्भ, श्रील बलदेव विद्याभूषणके गोविन्दभाष्य, भाष्यपीठक आदि ग्रन्थोंका पठन-पाठन निषिद्ध था। केवल कुछ तत्त्वज्ञानसम्पन्न अधिकारी व्यक्ति ही किसी योग्य वैष्णवके पास उसका अध्ययन कर सकता था। यहाँ तक कि दशमस्कन्ध श्रीमद्भागवत भी सर्वसाधारणके लिए पढ़ना उचित नहीं समझा जाता था। एक दिन श्रीपाद कृतिरत्न प्रभु अपनी भजनकुटीमें बड़ी तन्मयतासे तत्त्वसन्दर्भ पढ़ रहे थे। उसी समय श्रीअनन्त वासुदेव प्रभु[१] किसी विशेष कार्यसे श्रीकृतिरत्न प्रभुको खोजते हुए वहाँ अकस्मात आ पहुँचे। उस समय प्रभुपादके शिष्योंमें श्रीवासुदेव प्रभु भक्तिसिद्धान्तके विषयोंमें एक प्रमुख प्रामाणिक व्यक्ति माने जाते थे। इनकी बातों और विचारोंको सभी लोग बड़ी श्रद्धापूर्वक मानते थे।

उन्होंने आते ही सबसे पहले श्रीकृतिरत्न प्रभुके हाथोंसे तत्त्वसन्दर्भकी पुस्तक ले ली और पूछा—"विनोद! क्या तुम तत्त्वसन्दर्भ पढ़ रहे हो? कुछ समझ भी रहे हो या यूँ ही इसे लिए डोल रहे हो? क्या तुम नहीं जानते कि इसमें गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्त हैं? इसे समझना बड़े-बड़े विद्वानोंके लिए भी टेढ़ी खीर है।" कृतिरत्न प्रभु शान्त और गम्भीर होकर चुपचाप खड़े थे। इन्हें चुपचाप देखकर उन्होंने फिर पूछा—"बोलते क्यों नहीं? कुछ समझते हो या नहीं?" इन्होंने बड़े गम्भीर होकर उत्तर दिया—"आप इन ग्रन्थोंमेंसे कहींसे भी कुछ पूछ सकते हैं।" श्रीपाद वासुदेव प्रभुने प्रमाणतत्त्व, प्रमेयतत्त्व, सम्बन्ध, अभिधेय एवं प्रयोजन तत्त्वोंके सम्बन्धमें अत्यन्त कठिन प्रश्न पूछे। परन्तु श्रीकृतिरत्न प्रभुने बड़े ही सरल-सहज एवं बोधगम्य भाषामें उन प्रश्नोंका चमत्कारी ढङ्गसे उत्तर दिया।

श्रीवासुदेव प्रभु अब तक कृतिरत्न प्रभुको तत्त्वज्ञानरहित एक साधारण कर्मठ नवयुवक ब्रह्मचारी ही समझ रहे थे। उन्होंने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि विनोद इन गम्भीर दार्शनिक प्रश्नोंका कभी उत्तर

[१] श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलाके पश्चात् कुछ दिनोंके लिए ये गौड़ीय मठके सभापति आचार्य भी हुए थे। किन्तु कुछ कारणोंसे इन्हें उस पदसे हटना पड़ा।

भी दे सकेगा। अपने कठिन प्रश्नोंका उत्तर पाकर वे परम विस्मित हुए। अब उनके प्रति अत्यन्त गौरवका भाव उत्पन्न हुआ। वे इनके द्वारा लिखित प्रबन्ध और निबन्धोंको देखकर और भी आश्चर्यचकित हो गये, क्योंकि इनकी भाषा सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत, सुसंस्कृत थी और उसकी शैली अत्यन्त गम्भीर थी। आचार्यपदपर प्रतिष्ठित होनेपर उन्होंने अपने बड़े-बड़े लेखक एवं साहित्यिक शिष्य-शिष्याओंको साहित्य लेखनकी कला विशेष रूपसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीसे सीखनेके लिए कहा था।

श्रीमहामन्त्र एवं कीर्त्तन

१९३३ ई॰ में श्रीगोद्रुमस्थित स्वानन्दसुखदकुञ्जमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके समाधि-मन्दिरमें उनके विरहोत्सवका अनुष्ठान चल रहा था। श्रील प्रभुपाद अपनी शिष्य-मण्डलीके साथ उस विरहोत्सवमें उपस्थित थे। उनके अन्तरङ्ग प्रिय सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भी उनके साथ थे। उस विरहोत्सवमें सारे बङ्गालके विशिष्ट वैष्णवगण भी सम्मिलित हुए थे। श्रील प्रभुपादने उन विशेष अतिथियोंकी सेवा-शुश्रूषाका भार प्रिय विनोदके ऊपर सौंप रखा था।

उस उत्सवमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके शिष्य माननीय श्रीसीतानाथ भक्तितीर्थ महोदय भी पधारे थे। इन्हें बड़े सम्मान और आदरके साथ एक कमरेमें वासस्थान दिया गया था। विरह सभाके पश्चात् भक्तितीर्थ प्रभु बड़े स्नेहसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको अपने पास बैठाकर कीर्त्तन सुनाने लगे। ये तत्कालीन बङ्गालके तथाकथित कीर्तनियाओंमेंसे एक प्रमुख कीर्तनिया माने जाते थे। विविध प्रकारके राग-रगिनी, ताल, लय, मान आदिके पारङ्गत तथा हारमोनियम, एसराज, वीणा, मृदङ्ग, तबला आदि यन्त्रोंके भी उस्ताद थे। ये हारमोनियमपर श्रीमहामन्त्रका विविध राग-रागनियोंमें आलाप कर रहे थे। प्रथम 'हरे' से लेकर अन्तिम 'हरे' तक केवल सोलह नामयुक्त महामन्त्रके एक आलापको पूर्ण करनेमें ही करीब १०-१५ मिनट समय लग रहा था। उसमें अपने हाव-भावपूर्ण अङ्गों एवं हाथोंसे नाना प्रकारकी अङ्गभङ्गी द्वारा भाव प्रकाश करनेकी चेष्टा कर रहे थे। कुछ देर कीर्त्तन श्रवण करनेके पश्चात् जब

श्रीविनोदविहारीजी श्रील प्रभुपादके निकट आये, तब प्रभुपादजीने कुछ डाँटते हुए कहा—"कीर्त्तन सुनना हो गया? वहाँ एक बार 'हरे कृष्ण' के नामोच्चारणमें जितना समय लग रहा था, उसमें तो पचास बार पूरा महामन्त्रका कीर्त्तन किया जा सकता है।" उन्होंने उपदेश देते हुए और भी कहा—"जिन लोगोंकी श्रीनाम तथा अपने इष्टमें रुचि नहीं है, केवल वे लोग ही अपने इन्द्रियसुखकर सुर, ताल, लयरूप तौर्यात्रिकमें आसक्त रहते हैं। मैं इन लोगोंको ताल-ठोका सम्प्रदाय कहता हूँ। 'हरे कृष्ण' महामन्त्रका उच्चस्वरसे श्रद्धापूर्वक कीर्त्तन करनेसे जाड्य, आलस्य एवं सब प्रकारके अनर्थ दूर हो जाते हैं और उसमें तन्मय होनेसे सर्वार्थकी सिद्धि होती है। इन तालठोका सम्प्रदायके लोगोंमें जड़ीय लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाका जञ्जाल भरपूर रहता है। शुद्ध वैष्णवगण इनसे सर्वथा दूर रहकर श्रद्धापूर्वक तन्मय होकर सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे कृष्णनामका साधन करते हैं। इस प्रकारके नामकीर्त्तन द्वारा उनके हृदयमें नामी प्रभुके अप्राकृत श्रीरूप, गुण, लीला आदिकी स्फूर्ति होती है। ऐसे शुद्ध नामसे ही भगवत्प्रेमका उदय सम्भव है।" जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने अपने सुयोग्य शिष्यको इस प्रकार नामभजनकी शिक्षा प्रदान की।

एक समय श्रीसीतानाथ भक्तितीर्थ महोदय मायापुर योगपीठमें कुछ दिनोंके लिए वास कर रहे थे। एक दिन उषाकालमें हारमोनियमके साथ 'राई जागो राई जागो' पदका बड़े ही मधुर स्वरसे गान कर रहे थे। श्रील प्रभुपादने यह संवाद सुनकर उनके इस गानको बन्द करा दिया। पहले स्वयं जगो अर्थात् अपने नित्य स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर फिर पीछे राई अर्थात् श्रीमती राधिकाजीको जगाना उचित है। ऐसे उच्च कोटिके उन्नत उज्ज्वल रसाश्रित पदोंका कीर्त्तन जहाँ-तहाँ हाट-बाजार-गलीमें अनधिकारी लोगोंके सामने नहीं करना चाहिये—श्रील प्रभुपादने इसकी भी समुचित शिक्षा प्रदान की।

'उपदेशक' उपाधिसे विभूषित

१९३४ ई० में श्रीगौरजन्मोत्सवके पश्चात् श्रीचैतन्य मठके अविद्या-हरण नाट्यमन्दिरमें श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाका ४०वाँ वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने

सभापतिके पदसे श्रीपादविनोदविहारी कृतिरत्न महाशयको 'उपदेशक' उपाधिसे विभूषित किया।

श्रीश्रीमायापुरचन्द्रो विजयतेतमाम्

श्रीश्रीनवद्वीपधाम-प्रचारिण्याः सभायाः
श्रीश्रीगौराशीर्वाद-पत्रम्

सर्वात्मना श्रीगुरु-गौरसेवासम्पादकः शुद्धमतिर्नयज्ञः।
सदाशयः सत्यपथैकरागी गुरुप्रियोऽयं कृतिरत्नवर्यः॥

श्रीविनोदविहार्याख्या ब्रह्मचारिवरो मुदा।
उपदेशक इत्येतदुपनाम्ना विमण्डितः॥

गङ्गापूर्वतटस्थ श्रीनवद्वीपस्थलोत्तमे।
श्रीमायापुरधामस्थे योगपीठाश्रये परे॥

वानेषुवसुशुभ्रांशु-शकाब्दे मङ्गलालये।
फाल्गुण-पूर्णिमायां श्रीगौराविर्भाववासरे॥

—(स्वाः) श्रीसिद्धान्त सरस्वती
सभापतिः

[सर्वांगीण रूपमें श्रीगुरुसेवा सम्पादनकारी, शुद्ध अन्तःकरणविशिष्ट, सुनीतिपरायण, सदाशय, सत्यपथानुरागी श्रीगुरुदेवके अतिशय प्रिय, कृतिरत्न श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी श्रेष्ठको श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके सदस्योंकी ओरसे भगवती भागीरथीके पूर्वतटपर अवस्थित श्रीनवद्वीपके सर्वोत्तम स्थान श्रीमायापुरके श्रेष्ठ, कल्याणप्रद श्रीयोगपीठमें श्रीगौराविर्भाव फाल्गुनी पूर्णिमाके पवित्र दिन १८५३ शकाब्दमें सोल्लासपूर्वक 'उपदेशक'—इस उपाधिसे अलंकृत किया गया।]

इसी अवसरपर दूसरे दिन विश्व वैष्णव राजसभासे भी श्रीगौरसुन्दरकी मनोऽभीष्ट पूर्तिके लिए इन्हें विशेष धन्यवाद प्रदान किया गया—

"उपदेशक श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी कृतिरत्न महाशय श्रीमन्महाप्रभुके विषय-रक्षणके कार्यमें एवं श्रीधाम मायापुर, श्रीचैतन्य मठ और इनके अनुवर्ती समस्त शाखा मठोंके विभिन्न सेवाकार्योंमें आत्मनियोगकर, विशेषतः वर्त्तमान वर्षमें श्रीधाम परिक्रमा परिचालनाके

कार्यमें यथेष्ट कृतिरत्नका प्रदर्शनकर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके प्रीतिभाजन हुए हैं। इनकी दार्शनिक विचारपूर्ण वक्तृता भी अत्यन्त प्रशंसनीय है।"

श्रीधाम मायापुरमें बंगालके महामान्य गवर्नर सर जॉन एण्डरसन

जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद और उनके अनुगत सुयोग्य शिष्योंके प्रचारके कारण भारतके विभिन्न स्थानोंसे श्रद्धालु लोग श्रीधाम मायापुरके दर्शनके लिए आने लगे। यहाँ तक कि भारत सरकारके बड़े-बड़े उच्च पदस्थ राजकर्मचारी भी बड़ी उत्कण्ठा और श्रद्धापूर्वक आने लगे। उस समय बङ्गाल प्रदेशके गवर्नर महामान्य Sir John Anderson महोदय थे। श्रीगौर-जन्मस्थान श्रीधाम मायापुरकी चर्चा इनके कानोंमें भी पड़ी। इनके हृदयमें भी पवित्र स्थानके दर्शनकी अभिलाषा हुई। १३ जनवरी, १९३५ को वे किसी विशेष कार्यवश जिला मुख्यालय कृष्णनगर आये। श्रील प्रभुपादकी इच्छासे श्रीचैतन्य मठ और विश्व वैष्णव राजसभाके पक्षसे उपदेशक पण्डित श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' और पण्डित श्रीअतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय 'भक्तिसारङ्ग गोस्वामी'—इन दोनोंने कृष्णनगरमें गवर्नर महोदयके साथ भेंट की तथा उन्हें श्रीधाम मायापुर आनेका निमन्त्रण दिया। उन्होंने उसे सादर स्वीकार किया। दूसरे दिन Sir John Anderson महोदय दल-बलके साथ श्रीधाम मायापुर पधारे। श्रीधाम मायापुर, योगपीठके प्रवेशद्वारपर धाम प्रचारिणी सभाके पक्षसे श्रीयुत रामगोपाल विद्याभूषण, एम॰ए॰, तथा ठाकुर भक्तिविनोद इंस्टीट्यूटके सेक्रेटरी श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी महोदयने उनका स्वागत किया। तदनन्तर कृतिरत्न प्रभु एवं श्रीपाद भक्तिसारङ्ग गोस्वामी प्रभु इन्हें साथ लेकर सभामण्डपमें पधारे और श्रील प्रभुपादके साथ इनकी भेंट करायी। वहाँ स्वागत समारोहमें गवर्नर महोदयने श्रील प्रभुपादसे मिलकर तथा श्रीधाम मायापुरका दर्शनकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि आज मेरी बहुत दिनोंकी इच्छा पूर्ण हुई है। मुझे इस पवित्र स्थानकी उन्नतिके लिए राजकीय सेवाकी व्यवस्था करनेमें प्रसन्नता होगी। श्रील प्रभुपादने भी गवर्नर महोदयको राजोचित सम्मानके साथ विदा किया।

श्रीयोगपीठ, श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपाद और
सर जॉन एण्डरसनके साथ श्रीविनोदविहारी

गवर्नर महोदयके मायापुर परिदर्शनकी व्यवस्था एवं अतिथियोंके लिए महाप्रसाद आदिकी सारी व्यवस्था श्रील प्रभुपादके आदेशसे श्रीविनोदविहारीजीने ही की।

योगपीठमें श्रीमन्दिर एवं विग्रहप्रतिष्ठा

श्रीधाम मायापुरकी जमींदारी (स्टेट) के व्यवस्थापक पदपर रहते समय श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी कृतिरत्नको श्रीधाम मायापुरसे सम्बन्धित अनेक ऐसे दलील-पत्र हाथ लगे जिससे यह स्पष्ट प्रामाणित होता था कि श्रीधाम मायापुरमें ही श्रीजगन्नाथ मिश्रका वासभवन था। वहीं एक नीम पेड़के नीचे श्रीशचीनन्दन गौरहरिका आविर्भाव हुआ था। उन दलीलोंमें गौरजन्मभूमिका नाम ३९९ तौजीके अन्तर्गत लिपिबद्ध था तथा दूसरे भाग, मकान २६५ तौजीमें उल्लिखित थे। जिस समय विनोदविहारीजी मायापुरमें सर्वप्रथम आये, उस समय वहाँ केवल तुलसीका वन था। मुसलमान लोगों द्वारा कोई भी फसल उगानेकी चेष्टा करनेपर वहाँ केवल तुलसीका ही वन होता, कोई भी दूसरी फसल नहीं हो पाती। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने रात्रिकालमें भजन करते समय वहीं ताल वृक्षके निकट एक दिव्य ज्योतिका दर्शन किया था। तदनन्तर गौड़मण्डल, क्षेत्रमण्डल तथा व्रजमण्डलके अत्यन्त प्रसिद्ध वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजने श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके साथ इस स्थानपर आकर उद्दण्ड भावसे नृत्य करते हुए कहा था—यही भूमि हमारे शचीनन्दन गौरचन्द्रकी आविर्भावस्थली है। श्रीलगौरकिशोरदास बाबाजी भी कभी-कभी अँधेरी रातमें न जाने कैसे इस बीहड़ भूमिमें पहुँच जाते। पूछनेपर बतलाते थे—रास्तेमें कोई छोटा-सा गोपबालक मिला। उसने पकड़कर यहाँ तक पहुँचाया। यहाँ पहुँचनेपर उस गोपबालकका कोई पता नहीं चला।

१९३४ ई॰ के मार्चमें श्रील प्रभुपादने श्रीयोगपीठ मायापुरमें मन्दिर निर्माणके लिए भित्तिकी स्थापना की। निर्माण कार्यका भार विशेष रूपसे श्रीपाद कृतिरत्न प्रभुके ऊपर सौंपा गया। मन्दिरकी भित्ति खोदते समय मजदूरोंको एक बड़ी ही सुन्दर अद्भुत चतुर्भुज मूर्त्ति प्राप्त हुई। यह

श्रीयोगपीठका श्रीमन्दिर

समाचार मिलते ही श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद नरहरि प्रभु आदि प्रधान मठवासियोंको साथ लेकर वहाँ उपस्थित हुए और अपूर्व श्रीमूर्त्तिको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। कुछ समय बाद श्रील प्रभुपाद वहाँ उपस्थित होकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने घोषणा की कि यह विग्रह श्रीजगन्नाथ मिश्र और शचीदेवी द्वारा सेवित अधोक्षज मूर्त्ति है। आज भी वह श्रीमूर्त्ति योगपीठके इस गगनचुम्बी मन्दिरमें पूजित हो रही है।

कलकत्तेके प्रसिद्ध व्यवसायी, श्रील प्रभुपादके शिष्य सखीचरण राय 'भक्तिविजय' ने इस अत्यन्त सुन्दर सुविशाल मन्दिरके लिए सारे व्ययका भार वहन किया। थोड़े ही समयमें श्रीकृतिरत्न प्रभु एवं श्रीरेवतीरमण ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें गगनचुम्बी एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया गया। १९३५ ई॰ में श्रीगौरजन्मोत्सवके दिन स्वाधीन त्रिपुराधिपति श्रीमद्वीरविक्रम किशोरदेव शर्मा माणिक्य बहादुर धर्मधुरंधर महोदयने श्रील प्रभुपादके साथ श्रीमन्दिरका द्वारोद्घाटन किया। इस महान कार्यके लिए श्रील प्रभुपादने सखीचरण रायको 'श्रेष्ठ आर्य' की उपाधिसे अलंकृत किया।

मायावादकी जीवनी

आचार्यकेशरी किसी समय अपने निकट बैठे हुए हम शिष्यवर्गको प्रसङ्गवशतः स्वलिखित 'मायावादकी जीवनी' के सम्बन्धमें बतला रहे थे कि "श्रील प्रभुपादका यह विचार था कि जब तक विश्वमें शङ्कर-दर्शन प्रचलित रहेगा, तब तक शुद्धभक्तिके प्रचारमें बिघ्न-बाधा बनी रहेगी। इसलिए इसका मूलच्छेद करना अत्यन्त आवश्यक है।" श्रीमन् मध्वाचार्य द्वारा रचित अनुभाष्य, अनुव्याख्यान तथा सूत्रभाष्य, श्रीजयतीर्थकी न्यायसुधा, तत्त्वप्रकाशिका तथा श्रीव्यासतीर्थके न्यायामृत आदि ग्रन्थ केवलाद्वैतवादका खण्डन करनेके लिए सुदर्शनचक्रके समान महास्त्रस्वरूप हैं। प्रभुपादके इन विचारोंका मेरे हृदयपर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। मैंने इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त वेदान्तदर्शनके दस-बारह ग्रन्थ संग्रह किये और बड़े मनोनिवेशके साथ आद्योपान्त उनका अनुशीलन किया। इन सब ग्रन्थोंकी आलोचनाके द्वारा यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है कि अर्वाचीन शङ्करका निराकार, निर्विशेष, निर्गुण ब्रह्मवाद या मायावाद

श्रीब्रह्मसूत्र और उसके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतके रचयिता श्रील वेदव्यासके विचारोंसे सर्वथा भिन्न है। ब्रह्मसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान, निराकार, निर्विशेष, निर्गुण शब्दका उल्लेख ही नहीं है। निर्गुण ब्रह्ममें दया न होनेके कारण वह कभी भी उपास्य नहीं हो सकता। मायावादका ब्रह्म कदापि यथार्थ ब्रह्म नहीं हो सकता। वैसा ब्रह्म एक मिथ्या कल्पनामात्र है। इसलिए श्रीवेदव्यास द्वारा प्रकाशित सविशेष ब्रह्मवाद और श्रीशङ्कराचार्य द्वारा कल्पित निर्विशेष ब्रह्मवाद या मायावाद कभी भी एक नहीं हैं। शाण्डिल्य ऋषिने स्वरचित शाण्डिल्यसूत्रमें कहा है—'ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात्' अर्थात् ब्रह्मकाण्ड (ब्रह्मसूत्र) भक्तिका प्रतिपादक ग्रन्थ है, ज्ञानका नहीं। श्रीनारद ऋषिने भी स्वरचित भक्तिसूत्रमें ब्रह्मसूत्रके रचयिता वेदव्यास और श्रीशाण्डिल्य ऋषिको भक्तिशास्त्रके ग्रन्थकर्त्ताके रूपमें उल्लेख किया है। उन्होंने स्पष्ट रूपसे व्याससूत्रको भक्तिग्रन्थ बतलाया है।

एक बार मायापुरमें रहते समय साप्ताहिक गौड़ीयपत्रके सम्पादक श्रीविद्याभूषण एवं श्रीविद्याविनोद मेरे पास आये। उन्होंने साप्ताहिक गौड़ीयके विशेषाङ्कके लिए मायावादके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिखनेका अनुरोध किया। मैंने शीघ्र ही उनकी इच्छानुसार 'मायावादकी जीवनी' नामक प्रबन्ध लिखकर उनके हाथोंमें दिया। किन्तु बादमें पता चला कि प्रबन्ध बहुत बड़ा होनेके कारण उस विशेषाङ्कमें नहीं जा सका, पर प्रभुपाद उस प्रबन्धको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अतः इस प्रबन्धका ग्रन्थके आकारमें शीघ्र ही प्रकाशन किया जायेगा। इसी बीच श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेपर विभिन्न प्रकारकी गड़बड़ियोंके कारण वह प्रबन्ध न जाने कहाँ खो गया। किन्तु सौभाग्यवश १९४२ ई॰ में चाँपाहाटी नामक ग्राममें श्रील प्रभुपादकी अनुगृहीता श्रीयुता उषालता देवीके घरमें वह प्रबन्ध मिला। इसे शीघ्र ही प्रकाशित किया जायेगा।"

परवर्तीकालमें बँगला मासिक श्रीगौड़ीय पत्रिका तथा हिन्दी मासिक श्रीभागवत पत्रिकामें इसे प्रकाशित किया गया एवं ग्रन्थाकारमें भी यह बँगला और हिन्दीमें प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थके शेष भागमें मायावादकी जीवनीके विषयमें विशेष आलोचना की जायेगी।

श्रील प्रभुपादका अप्रकटलीलामें प्रवेश

सन् १९३६ ई० तक श्रील प्रभुपादने कठोर परिश्रमपूर्वक भारतवर्षमें सर्वत्र ही घूम-घूमकर प्रचार किया। सुयोग्य ब्रह्मचारियों एवं मठवासियोंको त्रिदण्डसंन्यास प्रदान किया और उनके माध्यमसे सर्वत्र कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार होने लगा। श्रीचैतन्य मठ, मायापुर एवं तदन्तर्गत नवद्वीपके नौ द्वीपोंमें नौ मठ तथा सम्पूर्ण भारतमें लगभग ६४ प्रचारकेन्द्र स्थापित हुए। बँगला भाषामें दैनिक नदीया प्रकाश, साप्ताहिक गौड़ीय, अँग्रेजीमें The Harmonist, हिन्दीमें 'भागवत' इत्यादि पारमार्थिक पत्रोंका प्रकाशन, श्रीचैतन्यचरितामृत, भागवत आदि भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन होने लग। श्रील प्रभुपादने विदेशोंमें प्रचारके लिए अपने प्रवीण शिष्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिहृदयवन महाराज एवं भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराजको भेजा। उन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि अनेक देशोंमें गौरवाणीका प्रचार किया। तत्पश्चात् अप्राकृत भक्तिसारङ्ग प्रभुको पुनः पाश्चात्य देशोंमें प्रचारके लिए भेजा। इस प्रकार सर्वत्र ही बड़े उत्साहके साथ शुद्धभक्तिका प्रचार होने लग।

इसी बीच १९३६ ई० के प्रारम्भसे ही श्रील प्रभुपाद अस्वस्थ लीलाभिनय करने लगे। फिर भी उन्होंने इसी वर्ष प्रयागमें पारमार्थिक प्रदर्शनीका द्वारोद्घाटन किया। मायापुरमें श्रीवास-अँगनमें श्रीव्यासपूजाके अवसरपर प्रचुर हरिकथाका परिवेशन किया। श्रीसुवर्णविहारमें सुवर्णविहारी मठ और श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा की। आलालनाथमें श्रीब्रह्म गौड़ीय मठमें श्रीनृसिंह चतुर्दशीके अवसरपर हरिकथाकी वर्षा की, पुरुषोत्तम धाममें पुरुषोत्तम व्रतका पालन किया। इसके पश्चात् कलकत्ता गौड़ीय मठमें लौटे। इस समय वे प्रायः सभीको सम्बोधन करते हुए कहते—आपलोग निष्कपट होकर हरिभजन कर लें। अब अधिक दिन नहीं हैं। उन्होंने अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके दिन प्रातःकाल त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजको 'श्रीरूपमञ्जरी पद' कीर्त्तन करनेका निर्देश दिया। श्रीपाद नरहरि ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह' प्रभुकी विशेष प्रशंसाकर सब शिष्योंको उनके समान निरपेक्ष होकर हरिभजन करनेका उपदेश दिया। उन्होंने उपस्थित शिष्य-मण्डलीको अपना अन्तिम उपदेश दिया—

"मैंने सबको निरपेक्ष होकर भजन करनेकी प्रेरणा दी है। इसलिए कुछ लोग मुझसे असन्तुष्ट हैं। किन्तु वे एक-न-एक दिन अवश्य ही यह उपलब्धि करेंगे कि जगत्‌के कल्याणके लिए ही मैंने ऐसा कहा और किया है। आप सभी मिल-जुलकर परम उत्साहके साथ श्रीरूप-रघुनाथकी मनोऽभीष्ट हरिकथाओंका प्रचार करेंगे। श्रीरूपानुग वैष्णवकी चरणधूलि होना ही हमारे लिए चरम आकांक्षाका विषय है। आपलोग अद्वयज्ञान-परतत्त्व श्रीराधाकृष्ण युगलकी अप्राकृत इन्द्रियोंका प्रीतिविधान करनेके लिए आश्रयविग्रहके आनुगत्यमें मिल-जुलकर रहेंगे। आपलोग एकमात्र हरिकथाके उद्देश्यसे दो दिनके इस संसारमें जीवननिर्वाहकर हरिभजनके पथपर दृढ़ताके साथ अग्रसर होते रहेंगे। शत-शत विपदाओं, अपमान और लांछनाकी विषम परिस्थितिमें भी हरिभजन नहीं छोड़ेंगे। जगत्‌के अधिकांश लोग विशुद्ध कृष्णसेवाकी बातें ग्रहण नहीं कर रहे हैं, यह देखकर निरुत्साहित नहीं होंगे। अपना भजन, अपना सर्वस्व—कृष्णकथाका श्रवण-कीर्त्तन कदापि नहीं छोड़ेंगे। तृणादपि सुनीच एवं वृक्षकी भाँति सहिष्णु होकर सदैव हरिकीर्त्तन करते रहेंगे।"

ऐसा उपदेश देकर ३१ दिसम्बर, १९३६ ई० की रात्रिके शेष भागमें स्वरूप-रूपानुगवर, श्रीमती राधिकाके नयनमणि वार्षभानवीदयित दास श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' श्रीराधागोविन्दकी निशान्त लीलामें प्रवेश कर गये।

श्रील प्रभुपादकी अप्रकटलीलामें प्रवेशका संवाद शीघ्र ही बङ्गालमें ही नहीं सारे भारतवर्षमें फैल गया। उनके आश्रित शिष्यवर्ग गम्भीर विरहानलमें हाहाकार कर उठे। विभिन्न स्थानोंसे लोग विरह-सन्तप्त होकर बागबाजार गौड़ीय मठमें एकत्रित होने लगे। श्रील प्रभुपादके परमप्रिय शिष्याभिमानियोंमेंसे कुछ लोग कलकत्ताके नीमतला श्मशान घाटमें उनका दाह-संस्कार करना चाहते थे। किन्तु भक्तिसिद्धान्तविद् श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने इस प्रस्तावका घोर प्रतिवाद किया और कहा—"देखें हमारे प्रभुके अप्राकृत श्रीअङ्गका दाह करनेकी शक्ति किसमें है? श्रील प्रभुपादने अपने प्रिय धाम श्रीमायापुरस्थित अभिन्न गोवर्धन श्रीचैतन्य मठमें ही समाधि देनेका स्पष्ट निर्देश दिया है।" यह सुनकर

उपस्थित सबने एक स्वरसे इनके विचारका अनुमोदन किया। एक special train द्वारा श्रील प्रभुपादका अप्राकृत कलेवर श्रीधाम मायापुरस्थित श्रीचैतन्य मठमें लाया गया। वहीं राधाकुण्डके तटपर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी आदिने समाधि-स्थलका चयन किया और वहीं सात्त्वत वैष्णव स्मृति सत्क्रियासार दीपिकाकी रीतिके अनुसार उन्हें समाधिस्थ किया गया। समाधिका कार्य सम्पन्न होते ही श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपादके विरहमें कातर होकर रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। उनके गुरुभ्राताओंने किसी प्रकार उन्हें कुछ स्वस्थ किया।

समाधिके पश्चात् श्रील प्रभुपादके शिष्योंमेंसे कुछ लोगोंने स्मार्त रीतिके अनुसार श्रील प्रभुपादका श्राद्ध-संस्कार करनेका प्रस्ताव दिया। किन्तु कृतिरत्न प्रभुने इसका भी घोर विरोध किया। उन्होंने कहा कि स्मार्त मतके अनुसार सभी लोग मरनेके पश्चात् प्रेत बन जाते हैं, इसलिए प्रेतयोनिसे उनका उद्धार करनेके लिए उनका प्रेत श्राद्ध आवश्यक है। किन्तु वैष्णव मतानुसार एक नामाभास करनेवाले व्यक्तिके सारे

श्रील प्रभुपादका समाधि-मन्दिर

पाप नष्ट हो जाते हैं, वह जन्म-मृत्युसे अतीत हो जाता है। अजामिल आदि इसके उदाहरण हैं, फिर वैष्णवोंमें भी ऐकान्तिक कृष्णभक्ति परायण, जीवनभर शुद्ध नाम करनेवाले वैष्णवके लिए प्रेत-श्राद्ध करना शास्त्रविरुद्ध है। श्रील प्रभुपाद मुक्तकुलचूड़ामणि, कृष्णके नित्यसिद्ध परिकर हैं। यही नहीं कृष्णप्रिया श्रीवार्षभानवीकी परमप्रेष्ठ सहचरी हैं। इनका प्रेतश्राद्ध करनेका किसे साहस है? वैष्णवोंके सात्वत श्राद्ध और स्मार्तोंके प्रेतश्राद्धमें जमीन आसमानका अन्तर है। हरिभक्तिविलास और सत्क्रियासार दीपिका आदि वैष्णवस्मृतिके अनुसार भगवत्-महाप्रसादका निवेदन ही वैष्णवोंके लिए सात्वत श्राद्ध है। वैष्णवाचार्योंके लिए विरह-महोत्सवकी ही रीति प्राचीन कालसे चली आ रही है। इसी रीतिसे हम श्रील प्रभुपादके चरणोंमें अपनी श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पित करेंगे। इनका सिंहनाद सुनकर सारी शिष्यमण्डली स्तब्ध रह गयी। अन्तमें सभी लोगोंने एक स्वरसे इनके विचारका अनुमोदन किया और इसी रीतिसे विरहमहोत्सव सम्पन्न हुआ।

श्रील प्रभुपादकी विरह सभामें कृतिरत्न प्रभुके भाषणका कुछ अंश इस प्रकार है—"यथार्थतः भगवान्‌की भाँति भगवान्‌के परिकरों अथवा मुक्त महापुरुषोंका भी जन्म और मरण नहीं है। उनमें देह-देहीका भेद नहीं होता। उनका शरीर सच्चिदानन्दमय होता है। अतएव जगत्-कल्याणके लिए ही उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। किन्तु तत्त्व-अनभिज्ञ लोग इसकी उपलब्धि नहीं कर पाते। जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद कृष्णलीलाके नित्य परिकर हैं। अतः ये भी जगत्‌के कल्याणके लिए जगत्‌में आविर्भूत हुए थे। ये थोड़े ही दिनोंमें सारे विश्वमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर जगत्-कल्याणके लिए ही श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्य निशान्त लीलामें प्रविष्ट हुए हैं। वे अभी भी अप्रकटलीलामें विद्यमान रहकर जगत्‌का प्रचुर कल्याण कर रहे हैं। अतः ऐसे महापुरुषोंका लौकिक स्मार्त श्राद्ध करनेकी कल्पना कर्मजड़ स्थूल बुद्धिसम्पन्न व्यक्तियोंके अतिरिक्त कौन कर सकता है? अतएव उनका आविर्भाव और तिरोभाव एक ही तात्पर्यपर है। इसीलिए महापुरुषोंके आविर्भावमें उनकी विरह स्मृति और तिरोभावमें मिलन महोत्सव युगपत् सम्भव है।"

"कुछ लोग इनका श्रीमन्दिर प्रस्तुतकर पाञ्चरात्रिक प्रणालीके अनुसार इनके श्रीविग्रह-स्थापनका प्रस्ताव कर रहे हैं, कुछ लोग और भी तरह-तरहके प्रस्ताव करते हैं, ये सभी बातें अपने-अपने स्थानपर उनके अधिकारके अनुसार ठीक हैं। किन्तु उत्तम श्रेणीके गुरुनिष्ठ सेवकोंके लिए श्रीगुरुपादपद्मके मनोऽभीष्ट प्रचारका कार्य ही सर्वोत्तम है। विश्वमें सर्वत्र वैकुण्ठ-नाम एवं वैकुण्ठ-कथाका प्रचार ही महाप्रभुका मनोऽभीष्ट है और यही श्रील प्रभुपादका मनोऽभीष्ट है।

"श्रील प्रभुपादका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है। अपने नित्य स्वरूपमें अविकृत रहकर ही उन्होंने जागतिक रङ्गमञ्चपर हमलोगोंकी स्थूल दृष्टिमें जन्म-मरण आदिका अभिनयमात्र किया है। मिलन नहीं होनेसे विच्छेदकी तीव्र यातनाका अवसान नहीं होता। इसलिए श्रील प्रभुपादने अपने आश्रितजनोंपर कृपा करनेके लिए—अपने विरहमें कातर भक्तोंको सान्त्वना देनेके लिए ही अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके बाद तत्क्षणात् प्रकटलीलाका प्रदर्शन किया। वह कैसे? वे थोड़ी देर बाद ही श्रीधाम मायापुरमें श्रीराधाकुण्डके तटपर स्थित सेवाकुञ्जमें नाना प्रकारके पुष्प, माल्य, चन्दन आदिसे विभूषित होकर श्रीराधामदनमोहनके परमप्रियके रूपमें समाधिस्थ होकर अपने आनुगत्यमें युगलसेवाकी शिक्षा देनेके लिए नित्यकाल विराजमान हो गये।"

इस विरह सभामें श्रील प्रभुपादका अप्राकृत देह, अप्रकटलीलामें प्रवेशका हेतु, आचार्यका भक्तवात्सल्य, आचार्यका श्रीधाममें आगमन इत्यादि बहुत-से विषयोंपर प्रकाश डाला गया।

तृतीय भाग

गौड़ीय मठ–मिशनके महाधीक्षक (जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट)

श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय मठ–मिशनकी परिचालनाके लिए एक परिचालक समितिका गठन हुआ। महामहोपदेशक श्रीपाद नारायण दास अधिकारी 'भक्तिसुधाकर' 'भक्तिशास्त्री' उसके सेक्रेटरी तथा श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए। कुछ दिनों तक मठ–मिशनके सारे कार्य पूर्वकी भाँति भलीभाँति उत्साहपूर्वक सम्पन्न होते रहे। पूर्ववत् सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार भी होता रहा। किन्तु कुछ दिनोंके बाद ही श्रीगौड़ीय मठके तत्कालीन सभापति आचार्यने श्रीरूपानुग आचार–विचारको परित्याग कर दिया तथा उच्छृंखल होकर वे भक्तिप्रतिकूल आचरणमें संलग्न हो गये। इससे सर्वत्र ही विश्रृंखलता फैल गयी। यह काल सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंके लिए अन्धकार–युगके समान था। कुछ मठवासी इस विश्रृंखलतासे अपने गृहस्थ जीवनमें लौट गये। बहुत–से मठवासीगण श्रीगौड़ीय मठ छोड़कर पृथक्–पृथक् अपना आश्रम–मठ आदि बनाकर साधन–भजन करने लग गये। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक विभिन्न भाषाओंकी पत्रिकाओं एवं भक्ति–ग्रन्थोंका प्रकाशन भी बन्द हो गया। धीरे–धीरे श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा, कार्त्तिक व्रत, श्रीव्यासपूजा आदि अनुष्ठान तथा प्रचार कार्य भी बन्द हो गये।

ऐसी स्थितिमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' प्रभु, पूज्यपाद श्रीभक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीपाद नरहरि ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह', श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन', श्रीवीरचन्द ब्रह्मचारी, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल' प्रभु आदि अपने गुरु भाइयोंके साथ मायापुरसे नवद्वीप शहरमें चले आये और वहाँ तेघरीपाड़ामें किरायेके एक मकानमें

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापनाकर वहींसे शुद्धभक्तिका प्रचार करने लगे।

श्रील वंशीदास बाबाजी महाराजकी कृपाप्राप्ति

उन दिनोंमें भजनानन्दी श्रील वंशीदास बाबाजी महाराज कोलद्वीपके अन्तर्गत शहर नवद्वीपके निकट पुण्य सलिला श्रीगङ्गाके तटपर एक निर्जन स्थानमें भजन करते थे। ये सदैव श्रीश्रीराधागोविन्दकी भावमयी सेवामें निमग्न रहते थे। ये श्रीश्रीगौरनित्यानन्द श्रीविग्रहोंकी भावमयी सेवा-पूजा भी करते थे। कभी-कभी तो इनसे प्रेमकलह भी करते। बड़े-बड़े महात्माओंके लिए भी इनका अटपटा भावमय जीवनचरित्र समझना अत्यन्त दुष्कर होता था। श्रील सरस्वती प्रभुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके माध्यमसे इस महात्मासे परिचित हुए थे।

श्रील वंशीदास बाबाजी महाराज दुःसंगसे दूर रहनेके लिए अपने निकट आनेवाले बहुत-से दर्शनार्थियोंको गाली-गलौज देकर भगा देते। कभी-कभी अपनी भजनकुटीके आस-पास मृत मछलियोंके काँटे इत्यादि रख देते, जिससे साधारण लोग यह समझें कि ये इन सब चीजोंका व्यवहार करते हैं। वैसे लोग इनके दर्शन एवं शुद्ध हरिकथासे वञ्चित रहते। किन्तु विषयोंसे विरक्त, भजनशील श्रद्धालु लोगोंको समीप बैठाकर ये बड़ी प्रीतिसे भजनका उपदेश प्रदान करते थे।

एक दिन श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' प्रभु श्रीबाबाजीकी भजन कुटीमें गये। बाबाजीने बड़े आदरपूर्वक इन्हें अपने समीप बिठाया। श्रीबाबाजी अपने अभिन्न बन्धु सतीर्थप्रवर श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके शिष्योंके प्रति विशेष स्नेह रखते थे। श्रीपाद कृतिरत्न प्रभुने देखा बाबाजी बैंगनको तवेपर तल रहे थे। उसे हाथसे ही पलट रहे थे। उस कार्यके लिए छोलनीका व्यवहार करनेके लिए अनुरोध करनेपर उन्होंने उत्तर दिया—"देखूँ, निताई-गौर क्या करते हैं?" उनके अद्भुत क्रियाकलाप और वैराग्य बड़े ही विस्मयकारी थे।

कभी-कभी बाबाजी लोकवञ्चनाके लिए हुक्केपर तम्बाकू सजाकर कहते—"आज आग नहीं, आज तम्बाकू नहीं।" फिर भी हुक्केकी गड़गड़ी या तल श्रीश्रीगौरनिताई विग्रहके सामने रख देते और प्रसादी करनेके

लिए कहते और फिर तुरन्त उत्तर पाकर कहते—"मेरे गौर-निताई तम्बाकू नहीं पीते।" अतिमर्त्य महाजनके हृदयमें कब क्या भाव उठता है, साधारण लोगोंके लिए समझना अत्यन्त कठिन है।

एक दिन कृतिरत्न प्रभु अपने अभिन्न सुहृद श्रीनरहरि प्रभुको साथ लेकर बाबाजीका दर्शन करने गये थे। इन्होंने देखा प्रसादी चायका वितरण हो रहा है। श्रीकृतिरत्न प्रभुने श्रीनरहरि प्रभुको बतलाया—"यह प्रसाद ग्रहण करनेसे हमें नरकगामी होना पड़ेगा। नीलकण्ठ महादेवके समान बाबाजी महाराज ही इसे हजम कर सकते हैं। हम साधारण लोग इसे ग्रहण करनेसे मर जायेंगे—'तेजीयषां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा।' अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुषोंका अनुकरण करना उचित नहीं। उनके जीव-कल्याणकारी उपदेशोंका ही अनुशीलन करना हम साधारण लोगोंके लिए कर्त्तव्य है।"

एक अन्य दिन श्रीकृतिरत्न प्रभुने देखा बाबाजी महाराज भजनकुटीमें बैठे हुए निविष्ट चित्तसे भजन कर रहे थे। बहुत-से भक्तलोग उनका दर्शनकर कुछ-कुछ प्रणामी भी दे रहे थे। कोई एक भक्त उन पैसोंको बटोरकर रखने लगा। बाबाजीने झट उसे डाँटते हुए कहा—"थो, पैसा थो। जेखानकार पैसा सेखान थो। उत्पातेर कौड़ी चितपाते जाय अर्थात् पैसेको मत छुओ, जो जहाँ है वहीं रहने दो। भ्रष्टाचारका पैसा पतनका कारण होता है।" महापुरुषोंका प्रत्येक आचरण जगत्के कल्याणके लिए होता है। सच्चे भक्तिसाधकोंके लिए इन उपदेशोंका अत्यन्त महत्व है। महापुरुषोंके इन उपदेशोंका पालन करनेपर भजनमें क्रमशः उन्नति होती है। जीवन आनन्दमय हो उठता है तथा भजन-साधनमें सिद्धि होती है।

किसी दिन एक नवीन त्रिदण्डीसंन्यासी इनके दर्शनके लिए पधारे। बाबाजीने उन्हें प्रणाम करते देखकर कहा—"वांसकी कंची (?) कपड़ेमें लपेटनेसे ही दण्ड नहीं होता अथवा उसे धारण करनेसे ही त्रिदण्डी नहीं हुआ जाता। तन-मन-वचनको सब प्रकारसे भगवान्की सेवामें नियुक्त करनेपर ही त्रिदण्ड धारणकी सार्थकता है।" नवीन संन्यासी अत्यन्त सरल और सारग्राही थे। बाबाजीका उपदेश सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"कि काज संन्यासे, मोर प्रेम—प्रयोजन। दास करि' वेतन मोर देह प्रेमधन॥"

एक दिन कुछ भक्तजन श्रील बाबाजी महाराजके दर्शनके लिए उनकी भजनकुटीपर उपस्थित हुए। उन्होंने श्रीबाबाजी महाराजके चरणोंकी वन्दना की और उनके सामने ही श्रद्धापूर्वक श्रील नरोत्तम ठाकुर द्वारा रचित 'जे आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर' पदका कीर्त्तन करने लगे। इस विरह कीर्त्तनके अन्तमें 'पाषाणे कुटीब माथा अनले पशिव। गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेले पाव॥'—इस पदको पुनः-पुनः दुहराने लगे। इस आर्ति भरे विरह पदका तात्पर्य यह है कि इस पृथ्वीपर अहैतुकी कृपासे जिन्होंने ब्रह्मा, शिव आदिके लिए भी दुर्लभ कृष्णप्रेम सर्वसाधारणमें लुटाया, आज वे शचीनन्दन श्रीगौरहरि कहाँ हैं? उनके सङ्गी श्रील अद्वैताचार्य, स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, श्रीरूप, रघुनाथ आदि कहाँ हैं? उनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ जानेसे उनके चरणोंकी धूलि प्राप्त कर सकूँगा? यदि उनका दर्शन नहीं मिला, तो मैं पत्थरपर अपने सिरको दे मारूँगा अथवा जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा।

इस कीर्त्तनको सुनकर बाबाजी महाराज साथ-ही-साथ बोल उठे—"तुमने तो केवल गाना ही गाया। जिसका हृदय फटा, उसका फटा, तुमसे इसका कोई मतलब नहीं। अर्थात् पदकर्त्ताने जिस गम्भीर विरह-वेदनाके साथ इस पदको लिखा, क्या तुमने उसकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा की है। पहले मिलन नहीं होनेसे ऐसे विरह या विप्रलम्भकी सम्भावना कहाँ? क्या तुम्हारे हृदयमें सम्बन्धज्ञानका उदय हुआ है?" कीर्त्तन करनेवाले भक्तोंमेंसे किसीने श्रीबाबाजीका अभिप्राय समझा या नहीं—कहा नहीं जा सकता। किन्तु उनका आशय बहुत ही उच्च कोटिका था।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना

श्रीनवद्वीपधाममें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना करनेके पश्चात् श्रीकृतिरत्न प्रभु सोचने लगे कि परमाराध्यतम श्रील प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवाकी पुनः स्थापना कैसे की जाये? श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित पारमार्थिक पत्रिकाओं एवं भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना जगत्का कल्याण असम्भव है। यही प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट

सेवा है। श्रील प्रभुपादके चरणाश्रित भक्तजन आजकल चैतन्य मठमें स्थान न पानेके कारण कर्त्तव्यविमूढ़ होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। इन लोगोंको संगठितकर पुनः पूर्व उत्साहके साथ श्रील प्रभुपादका आदेश और निर्देश सर्वत्र प्रचार करना हमारा एकान्त कर्त्तव्य है। ऐसा सोचकर उन्होंने ३२/२ बोसपाड़ा लेन, बागबाजार, कलकत्तामें एक किरायेका मकान लिया। एक छोटा-सा प्रेस खरीदा। कुछ ही दिनोंमें श्रीत्रिगुणनाथ मुखर्जी महोदयने अपना गौराङ्ग प्रिन्टिङ्ग वर्क्स इन्हें अर्पण कर दिया। इससे उत्साहित होकर कृतिरत्न प्रभुने कुछ भक्तिग्रन्थोंको छापना आरम्भ किया। किन्तु दुर्भाग्यवशतः 'शिक्षा-दशमूलम्' का कम्पोज किया हुआ ३२ पृष्ठका पूरा मैटर चोरी चला गया। फिर भी ये हतोत्साहित नहीं हुए।

अप्रेल १९४० ई॰, वैशाख महीनेकी अक्षय तृतीयाके शुभ दिन उसी किरायेके मकानमें अपने कुछ गुरु-भ्राताओंके साथ उन्होंने 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' की स्थापना की। इनके गुरु-भ्राताओंमेंसे श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त प्रभु (श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज)[१], श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी, श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी (श्रीलगुरुपादपद्मके शिष्य, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज) आदि उपस्थित थे।

समितिके नामकरणके सम्बन्धमें उनका आन्तरिक भाव, जिसे वे अपने भाषणोंमें प्रायः उल्लेख किया करते थे, यह था कि पारमार्थिक जीवनके निर्माणके लिए महाजनोंकी निर्मल शिक्षाका अवलम्बन करना परम आवश्यक है। श्रीवेदव्यासजीने जीवोंके सर्वोत्तम कल्याणके लिए ब्रह्मसूत्रकी रचना की है। ब्रह्मसूत्रका दूसरा नाम भक्तिसूत्र भी है। वेदोंके सारभागका नाम उपनिषद् या वेदान्त है। इन उपनिषदोंकी संख्या ११०० से भी अधिक है। इन उपनिषदोंका प्रतिपाद्य विषय निखिल अप्राकृत सद्‌गुणोंके आलय सर्वशक्तिमान, आनन्दमय परब्रह्मकी आराधना अर्थात् भक्ति है। जीव इस आराधनाके द्वारा ही जन्म, मृत्यु और त्रितापमय क्लेशसे सदाके लिए निवृत्त होकर परमानन्द पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेममयी

[१] श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

सेवाकी प्राप्ति कर सकता है। इन वेदान्त या उपनिषदोंमें कहीं-कहीं आपात्-विरोधी मन्त्र या वाक्य दृष्टिगोचर होनेपर भी ये सभी एक तात्पर्यपर हैं, उनमें यथार्थतः परस्पर कोई भेद नहीं है। सर्वज्ञ श्रीवेदव्यासने इन उपनिषदोंके अत्यन्त दुर्गम एवं निगूढ़ सिद्धान्तोंको हृदयङ्गम करानेके लिए ५५० वेदान्तसूत्रोंकी रचना की है, जिसे ब्रह्मसूत्र, वेदान्तसूत्र या शारीरकसूत्र भी कहते हैं।

हमारे भारतीय आचार्योंने वेदान्तसूत्रोंका अपने-अपने भावोंके अनुरूप भाष्य लिखकर अपने-अपने मतकी पुष्टिका प्रयास किया है। सर्वज्ञ वेदव्यासने उसी समय जान लिया था कि भविष्यमें विभिन्न आचार्यगण अपने मतानुसार मेरे सूत्रोंकी टीका-व्याख्या आदि करेंगे। इसीलिए उन्होंने स्वयं ही उसका भाष्य लिखा, जो श्रीमद्भागवतके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने स्वरचित पुराणोंमें इसे स्पष्ट रूपसे लिखा है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥

(गरुड़पुराण)

अर्थात् श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका अर्थ, महाभारतका तात्पर्य-निर्णय गायत्रीका भाष्य और समस्त वेदोंके तात्पर्यका संवर्द्धन है।

और भी,

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्॥

(श्रीमद्भा॰ १२/१३/१५)

अर्थात् समस्त वेदोंके सारको ही श्रीमद्भागवत कहा जाता है। जो इस रससुधाका पान करके छक चुका है, वह और किसी पुराण-शास्त्रमें नहीं रम सकता।

श्रीवेदव्यासने वेदान्तसूत्रमें 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां', 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्', इत्यादि सूत्रों द्वारा स्पष्ट रूपसे भगवद्भक्तिका प्रतिपादन किया है। साथ ही वेदान्त-भाष्य श्रीमद्भागवतमें भी 'स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।' 'मयि भक्तिर्हि

भूतानाममृतत्वाय कल्पते', 'यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपुरुषे। भक्तिरुत्पद्यते', 'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः' आदि श्लोकोंके द्वारा उक्त भक्तिका ही प्रतिपादन किया है। वेदान्तविद्चूड़ामणि श्रीजीव गोस्वामी तथा गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने शास्त्रीय प्रमाणों तथा अकाट्य युक्तियोंसे भक्तिको ही वेदान्तसूत्रका प्रतिपाद्य विषय प्रमाणित किया है। अतः भक्ति ही वेदान्तसूत्रका सिद्धान्ततः प्रतिपाद्य विषय है।

कुछ अर्वाचीन तथाकथित विद्वान लोग ज्ञान और मुक्तिको वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय सिद्ध करनेकी कष्ट-कल्पना करते हैं। किन्तु यह विशेष रूपसे लक्ष्य करनेकी बात है कि वेदान्तसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी 'ज्ञान' या 'मुक्ति' शब्दका उल्लेख नहीं है। आचार्य शङ्कर 'वैष्णवाणां यथा शम्भो' के अनुसार परम वैष्णव हैं। उन्होंने किसी विशेष कारणसे कपोल-कल्पित शास्त्रविरुद्ध केवलाद्वैतवाद या मायावादका प्रचार किया। अतः जीवोंके कल्याणके लिए विश्वमें सर्वत्र इस गूढ़ रहस्यका प्रचार करनेके लिए इस समितिका नामकरण श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति किया गया है।

भगवान्के प्रति सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता

श्रीकृतिरत्न प्रभु पूर्णतः अकिञ्चन और निष्किञ्चन वैष्णव थे। उन्होंने अपने जीवनमें कभी भी अपने सुख-स्वार्थके लिए एक पैसा भी संग्रह नहीं किया। कृष्णप्रीतिके लिए ही उनकी समस्त चेष्टाएँ होती थीं। उनका श्रीगुरुदेव एवं अपने आराध्य भगवान्में पूर्ण भरोसा था। इसीलिए वे रिक्तहस्त होकर ही श्रीधाम मायापुरसे निकले थे। वोसपाड़ा लेन स्थित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके इस नये मठमें उनके साथ बहुत-से मठवासी गुरुभ्राता लोग थे। हाथमें एक भी पैसा नहीं था। भगवत्-कृपासे ही किसी प्रकार जीवनका निर्वाह करते हुए साधन-भजनमें तत्पर थे।

एकबार एकादशीका दिन था। श्रीकृतिरत्न प्रभु पूर्वाह्णके समय श्रीहरिनाम कर रहे थे। उस समय उनके गम्भीर मुखमण्डलसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो किसी गम्भीर भावमें निमग्न हैं। इतनेमें किसी ब्रह्मचारीने संवाद दिया कि श्रीपाद नारायण मुखर्जी आपसे मिलना चाहते

हैं। श्रील गुरुदेवने उन्हें आदरपूर्वक बैठकमें बिठानेके लिए आदेश दिया। श्रीपाद नारायण मुखर्जी उनके सतीर्थ गुरुभ्राता थे। कृतिरत्न प्रभु स्वभावतः अतिथियोंका आदर-सत्कार करते थे। परन्तु आज गुरुभ्राताकी सेवा-शुश्रुषाके लिए पासमें एक कौड़ी भी नहीं है, ऐसा सोचकर कुछ चिन्तित थे। इसी समय दैव इच्छासे इन्होंने देखा कि एक चिड़िया (गौरैया) चीं-चीं करती हुई उसी घरमें इधर-उधर उड़ती हुई पुनः-पुनः अपने घोंसलेमें आ-जा रही है। हठात् चिड़ियाने अपनी चोंचसे एक छोटी-सी पोटली उनके समीप गिरा दी। पोटलीके गिरते ही झन की आवाज हुई। उन्होंने कौतूहलवश पोटलीको उठाकर देखा, उसमें साढ़े छः आने पैसे थे। वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हीं पैसोंसे कुछ फल और मिठाई मँगवाकर भगवान्को निवेदितकर अपने गुरुभ्राताका सम्मान किया। गुरुभ्राताके स्नेहपूर्ण व्यवहारसे श्रीपाद नारायण मुखर्जी बड़े सन्तुष्ट हुए। अब परस्पर दोनोंमें प्रेममयी हरिकथाकी चर्चा होने लगी।

इसी समय डाकियेने भी श्रीविनोदविहारी प्रभुको एक सौ रुपयेका मनीआर्डर लाकर दिया। यह मनीआर्डर श्रीकृतिरत्न प्रभुके परम बन्धु गुरुभ्राता त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराजके द्वारा कानपुरसे भेजा गया था। मनीआर्डर पाते ही कृतिरत्न प्रभुकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। उन्होंने इस घटनाको श्रीगुरुदेव एवं भगवान्की अहैतुकी कृपा माना। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें ऐसा कहा है कि जो अनन्य मनसे मेरे दिव्य स्वरूपका चिन्तन करते हुए भक्तिभावके साथ मेरा भजन करते हैं, उन एकनिष्ठ भक्तोंके भरण-पोषण और संरक्षणका भार मैं स्वयं वहन करता हूँ—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९/२२)

अतएव अतिथिवत्सल, आश्रितपालक, श्रीभगवान्के प्रति सम्पूर्ण रूपसे आत्मनिर्भर, आदर्श गुरुनिष्ठासम्पन्न भक्तकी वाञ्छा क्यों नहीं पूर्ण होती? करुणावरुणालय श्रीकृष्ण एक छोटी-सी चिड़ियाके द्वारा अर्थ प्रेरणकर अपना भक्त-वत्सल नाम क्यों नहीं सार्थक करते?

श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज

यहाँ श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजका परिचय देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। ये श्रील प्रभुपादके दीक्षित एवं संन्यासी शिष्योंमें अन्यतम थे। ये आकुमार ब्रह्मचारी, मृदुभाषी, सरल, निष्कपट तथा अन्य वैष्णवोचित गुणोंसे सम्पन्न थे। विशेषतः हिन्दी, बँगला और अँग्रेजी भाषाके अपूर्व प्रभावशाली वक्ता थे। बहुत-से प्रदेशोंके गवर्नर, मुख्यमन्त्रीसे आरम्भकर बहुत उच्च शिक्षित सम्भ्रान्त एवं साधारण व्यक्ति भी इनसे बहुत प्रभावित थे। जन साधारणमें घुल-मिलकर उनमें श्रीहरिनाम एवं भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना इनका एक प्रधान वैशिष्ट्य था। मुम्बई, पूना, कोल्हापुर, कानपुर आदि भारतके बड़े-बड़े नगरों और भारतके बाहर रंगून आदि स्थानोंमें भी उन्होंने भक्तिका प्रचार किया है। इन वैष्णवोचित सद्‌गुणोंके कारण नवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके विशेष अधिवेशनमें श्रील प्रभुपादके इच्छानुसार इन्हें विशेष धन्यवाद प्रदान किया गया था।

संन्यास-ग्रहण

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाके बाद महोपदेशक वैदान्तिक पण्डित श्रीकृतिरत्न प्रभु शुद्धभक्ति एवं नाम-प्रचारके लिए बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें तथा भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरोंमें जाने लगे। १९४० ई॰ में श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन मेदिनीपुर (बङ्गाल) शहरमें श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठकी प्रतिष्ठा हुई। उसमें श्रीपाद भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीपाद भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीपाद भक्तिविचार यायावर महाराज, श्रीपाद अप्राकृत भक्तिसारङ्ग गोस्वामी, श्रीपाद विनोदविहारी कृतिरत्न प्रभु, महोपदेशक श्रीपाद हयग्रीव ब्रह्मचारी, श्रीपाद स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, श्रीपाद भूतभृत ब्रह्मचारी, श्रीपाद राधारमण ब्रह्मचारी (श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराज) प्रमुख संन्यासी-ब्रह्मचारी एवं सैकड़ों मठवासियोंने योगदान किया था। लगभग दस हजार श्रद्धालु इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलनमें श्रील प्रभुपादकी भक्तिधाराकी रक्षा करने तथा भावी भक्तिप्रचारकी रूपरेखा प्रस्तुत की गयी थी। साथ ही आगामी वर्षमें संयुक्त रूपसे कार्तिक व्रत-नियम सेवाके उपलक्ष्यमें

पैदल व्रजमण्डल परिक्रमाकी घोषणा भी की गयी। इसके पश्चात् श्रीकृतिरत्न प्रभुने उत्तरप्रदेश और पूर्वी बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करना आरम्भ किया।

इन्हीं दिनों एक दिन रात्रिके शेष भागमें इन्होंने स्वप्न देखा कि श्रील प्रभुपाद इनके दाहिने कन्धेपर हाथ रखकर बड़े ही गम्भीर स्वरसे कह रहे हैं—"तुमने अभी तक संन्यास नहीं लिया। मैं आज तुम्हें संन्यास दे रहा हूँ।" प्रभुपादके ऐसा कहनेके साथ ही संन्यासका सारा अनुष्ठान पूर्ण हो गया। श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपादके इच्छानुसार संन्यास-ग्रहण पर्व समाप्त होनेपर 'केशव महाराज' की जय ध्वनि दे ही रहे थे कि उनकी निद्रा भङ्ग हो गयी। इन्होंने अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राताओंको इस स्वप्नका वृत्तान्त बतलाया। उन्होंने १०८ संन्यास नामोंमें 'केशव' नाम देखा और बड़े प्रसन्न हुए।

इससे पूर्व श्रील प्रभुपादने साक्षात् रूपसे कई बार अपने अन्तरङ्ग प्रिय सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको संन्यास देनेकी इच्छा की थी। वे कहते थे—विनोद तन-मन-वचनसे संन्यासी ही है। उसका केवल बाह्य वेश परिवर्तन करना बाकी है। एक समय श्रील प्रभुपादकी इच्छासे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको संन्यास देनेका आयोजन पूर्ण हो चुका था। डोर-कौपीन, दण्ड आदि सारी सामग्रियाँ प्रस्तुत हो चुकी थीं। इसी समय गौड़ीय मिशनके सेक्रेटरी श्रीपाद कुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभुने श्रील प्रभुपादके चरणोंमें निवेदन किया कि श्रीविनोदविहारीको अभी संन्यास देनेसे मठ-मिशनकी रक्षा करना असम्भव हो जायेगा। इसलिए इस समय इनका संन्यास स्थगित रखनेकी आज्ञा दी जाये। इस प्रकार संन्यास नहीं हुआ। दूसरी बार भी इसी प्रकार बागबाजार गौड़ीय मठमें संन्यासका सारा आयोजन हो चुका था, किन्तु भागवतरत्न प्रभुकी विशेष प्रार्थनापर श्रील प्रभुपादने संन्यास नहीं दिया। तीसरी बार श्रील प्रभुपादने स्वप्नमें इन्हें संन्यास लेनेका आदेश देते हुए कहा कि विनोद तुमने अभी तक संन्यास नहीं लिया, मेरा सारा प्रचारकार्य चौपट हो रहा है। शेष चौथी बार स्वप्नमें श्रील प्रभुपाद द्वारा संन्यास ग्रहणका वृत्तान्त देखकर इस विषयको कृतिरत्न प्रभुने गम्भीरतासे ग्रहण किया। उन्होंने

श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास क्षेत्र कटवामें भाद्र पूर्णिमाकी पावन तिथिमें संन्यास ग्रहण करनेका सङ्कल्प ग्रहण किया।

पूर्व सङ्कल्पके अनुसार पूर्णिमा तिथिमें उन्होंने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अनुकम्पित प्रियजन अप्राकृत साहित्यिक, कवि और दार्शनिक परम पूजनीय श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामीसे संस्कार-दीपिकाके पाञ्चरात्रिक विधानसे कटवामें त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया। इनका संन्यास-नाम त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज उद्‌घोषित हुआ। पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजने अनुष्ठानका पौरोहित्य किया। उन्होंने ब्रह्मचारीको कौपीन-बहिर्वास परिधानकी रीति सिखायी। श्रील श्रीधर महाराजने संन्यास-मन्त्र पाठ कराया। आज कुछ दिन पूर्व स्वप्नमें श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रदत्त संन्यास-वेश एवं संन्यास-नाम सम्पूर्ण रूपसे सार्थक हुआ। संन्यासके दिन श्रीकटवा धाममें श्रीलगुरुदेवके बहुत-से गुरुभ्राता संन्यासी एवं ब्रह्मचारी उपस्थित थे। श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत श्रीविनयभूषण बनर्जी 'भक्तिकेतन' महोदयने उस दिनके महोत्सवका सारा व्यय-भार वहन किया। सभी लोग शामको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटे।

बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

करुणाके घनविग्रह शचीनन्दन श्रीगौरहरिने श्रीलरूप-सनातन गोस्वामीको श्रीधाम वृन्दावनमें भेजते समय उन्हें अपना मनोऽभीष्ट पूर्ण करनेका निर्देश दिया था। ये निर्देश इस प्रकार हैं—

(१) भक्ति-ग्रन्थका प्रणयन

(२) वैष्णव-स्मृति शास्त्रका प्रचार

(३) लुप्त तीर्थों (व्रजमें कृष्णकी लीलास्थलियों) का उद्धार

(४) श्रीविग्रह-सेवाका प्रकाश

श्रीचैतन्य महाप्रभुके इन मनोऽभीष्ट कार्योंको श्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामियोंने भलीभाँति पूर्ण किया। उन्होंने श्रीबृहद्भागवतामृत, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि, षड्‌सन्दर्भ आदि प्रामाणिक भक्तिग्रन्थोंकी रचना की। श्रीहरिभक्तिविलास, सत्क्रियासार-दीपिका,

संस्कार-दीपिका आदि वैष्णव सात्त्वत सदाचार अर्थात् वैष्णव-स्मृति ग्रन्थोंका प्रणयन किया। श्रीव्रजमण्डलके बारह वनों, उपवनों, शाखा वनों तथा वहाँकी सारी कृष्णलीलास्थलियोंका पुनः प्रकाशन किया और श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीमदनमोहन, श्रीगोविन्दजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीराधारमणजी, श्रीगोपीश्वर महादेव, श्रीराधादामोदर, श्रीराधाविनोद और काम्यवनमें कामेश्वर महादेव आदि श्रीविग्रहोंका प्रकाशकर श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण किया। ठीक इसी प्रकार जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादने मुद्रणयन्त्र (बृहत्-मृदङ्ग) की स्थापना तथा उसके द्वारा श्रीगौरवाणीका प्रचार, श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा, भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन एवं प्रचार, भक्ति-सदाचारका पुनः प्रचलन एवं संरक्षण तथा लुप्ततीर्थोंका उद्धार आदि कार्योंके द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके मनोऽभीष्टको पूर्ण किया। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रिय शिष्य त्रिदण्डी यति श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने भी श्रील प्रभुपादकी उपर्युक्त मनोऽभीष्ट सेवाओंको पूर्ण किया। श्रील प्रभुपादके पश्चात् श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा, भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन, शुद्धभक्तिका प्रचार, त्रिदण्डसंन्यास आदिकी धारा प्रायः लुप्त होने लगी थी। किन्तु इन आचार्यकेसरीकी बहुमुखी प्रतिभा एवं प्रबल प्रचारके कारण ही आज हम विश्वमें सर्वत्र भक्तिका पुनः प्रचार देख रहे हैं।

अब ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अदम्य उत्साहके साथ श्रील प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवा श्रीगौरवाणी—शुद्ध-भक्तिका सर्वत्र प्रचार करनेमें तत्पर हो गये। अब वे भगवती भागीरथीके पावन तटपर बसे हुए आस-पासके चन्दननगर, वैद्यवाटी, सेवड़ाफुली, श्रीरामपुर आदि शहरोंमें बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंका आयोजनकर श्रीमद्भागवत पाठ, प्रवचन, भाषण आदिके माध्यमसे शुद्धभक्तिका प्रचार करने लगे। उन-उन शहरोंके नगरपालिकाके अध्यक्ष, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वकील, न्यायाधीश, शिक्षित सम्भ्रान्त एवं गणमान्य व्यक्तियोंने बड़े आदरसे अपना सहयोग देना आरम्भ किया। ये लोग बड़ी श्रद्धाके साथ मनोयोगपूर्वक इनके भाषण और प्रवचन श्रवण करते थे। ये लोग इतने प्रभावित हुए कि उन-उन स्थानोंमें स्वामीजीसे श्रीगौड़ीय मठकी स्थापनाके

लिए आग्रह भी करने लगे। कलकत्ताके सन्निकट चुँचुड़ा नामक शहरमें स्थानीय श्रद्धालु सज्जनोंने 'श्रीवास-महाप्रभुर वाटी' नामक देवालयको निशर्त दानकर उसमें श्रीगौड़ीय मठ स्थापित करनेके लिए विशेष आग्रह किया। उनके इस आग्रहको ये टाल नहीं सके और अप्रेल १९४३ ई॰ में उक्त देवालयको स्वीकारकर वहाँ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठकी स्थापना की। यह स्मरण रहे कि उक्त देवालयमें बहुत प्राचीन कालसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर श्रीवास पण्डित द्वारा सेवित श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हैं एवं आज भी वैष्णव रीतिके अनुसार उन श्रीविग्रहोंका अर्चन-पूजन हो रहा है। अबसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रधान कार्यालय श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें ही स्थापित हो गया। वोसपाड़ा लेन स्थित 'गौड़ीय प्रिन्टिङ्ग प्रेस' भी इसी जगह स्थानान्तरित हो गया। श्रील गुरुपादपद्म सतीर्थ गुरुभ्राताओं एवं ब्रह्मचारियोंके साथ अधिकांशतः यहीं रहने लगे और यहींसे विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करने लगे।

श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाका पुनः प्रवर्तन

अब धीरे-धीरे विभिन्न स्थानोंमें भक्तिका प्रचार होनेके कारण अधिक संख्यामें श्रद्धालु एवं सज्जन व्यक्ति इनकी ओर आकर्षित होने लगे। श्रील प्रभुपादके बहुत-से गृहस्थ शिष्य, जो लोग तत्कालीन गौड़ीय मठके सञ्चालकोंके दुर्व्यवहार एवं असत् आचरणके कारण क्षुब्ध थे, अब वे सभी धीरे-धीरे आचार्यकेसरी श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके मधुर व्यवहार एवं शुद्धभक्तिके प्रचारके कारण उनके प्रति आकर्षित होकर पुनः उत्साहपूर्वक भजन करने लगे। उनके इस अपूर्व उत्साहको लक्ष्यकर इन्होंने १९४२ ई॰ में श्रीगौराविर्भावके उपलक्ष्यमें सप्ताहव्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा तथा श्रीगौरजन्मोत्सवका पुनः प्रवर्तन किया। इस अनुष्ठानमें बहुत-से श्रद्धालु सज्जन, त्यागी, ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा गृहस्थ वैष्णवोंने योगदानकर समितिके सदस्योंका उत्साह वर्द्धन किया। इन उत्सवोंका प्रधान लक्ष्य विश्ववासियोंको शुद्ध सत्सङ्ग प्राप्त करनेका सुयोग दान करना है। इसके द्वारा सत्सङ्गमें शुद्ध हरिकथा श्रवण, अभक्ष्य मद्य-मांस आदिसे परहेज, श्रीभगवान्‌की अर्चामूर्त्ति और

परिक्रमाके मध्य प्रसाद सेवा करते भक्तगण

परिक्रमाके मध्य नाट्यमन्दिरमें धर्मसभामें उपस्थित भक्तगण

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा

लीलास्थलियोंका दर्शन, उन लीलास्थलियोंका माहात्म्य श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके विविध अङ्गोंका एक साथ पालन करनेका सुवर्ण सुयोग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी सेवाका अपूर्व सुयोग प्राप्त होता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने धाम-माहात्म्य ग्रन्थमें ऐसा लिखा है कि जो लोग वैष्णवोंके आनुगत्यमें श्रीनवद्वीपधामकी सोलह क्रोसकी परिक्रमा सम्पन्नकर श्रीधाम मायापुरका दर्शन करते हैं, श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु उनकी सारी अभीष्ट मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं तथा उन्हें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी प्रेममयी सेवामें सदाके लिए नियुक्त कर देते हैं।

आचार्य-लीलाका प्रकाश

अगले वर्ष मार्च १९४३ ई॰ में श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सप्ताहव्यापी श्रीधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। पूर्व वर्षकी अपेक्षा संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ भक्तोंकी संख्या अत्यधिक थी। श्रीमन्महाप्रभुकी पालकीको लेकर सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ अपूर्व उत्साहके साथ श्रीधाम परिक्रमा सम्पन्न हुई। गुरुभ्राताओंके पुनः-पुनः अनुरोधपर इस बार श्रीगौर-जन्मोत्सवके दिन इन्होंने श्रीराधानाथ कुमार, श्रीमती मानदा सुन्दरी (वरिशाल) तथा श्रीमती हेमाङ्गिनी देवीको हरिनाम प्रदानकर आचार्य-लीलाका प्रकाश किया। ये श्रीराधानाथ कुमार ही बादमें त्रिदण्डसंन्यास ग्रहणकर त्रिण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीधाम परिक्रमाके पश्चात् विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करते हुए श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें कार्तिक नियम सेवा या दामोदर व्रतका अनुष्ठान किया और तत्पश्चात् श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कुछ दिन रहकर डा॰ कृष्णपद व्रजवासी और सज्जनसेवक ब्रह्मचारी आदि मठवासियोंको साथ लेकर पूर्व बङ्गालके बहुत-से स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा एवं रथ-यात्रा

६ जून, १९४४ ई॰ मङ्गलवारको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा सम्पन्न हुई। श्रील गुरुदेव स्वयं उस महोत्सवमें उपस्थित थे। एक सौ आठ घड़ोंके मन्त्रपूत सुवासित जलसे जय, शंखध्वनि तथा सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे श्रीजगन्नाथदेवका अभिषेक सम्पन्न हुआ। स्वामीजीने शामकी धर्मसभामें श्रीचैतन्यचरितामृतके माध्यमसे स्नान-यात्राके गूढ़ रहस्य और महिमाकी व्याख्या की। २० जून, १९४४ ई॰ को दस दिवस व्यापी श्रीजगन्नाथदेवका रथ-यात्रा महोत्सव प्रारम्भ हुआ। इसके उपलक्ष्यमें खुलना, मेदिनीपुर, वैंची, वेलघरिया आदि बहुत स्थानोंसे सैकड़ों गृहस्थ भक्तोंने योगदान किया था। प्रथम दिवस श्रील गुरुदेवने श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें वैष्णव साहित्यमें विरह तत्त्वके सम्बन्धमें एक अत्यन्त गम्भीर तत्त्वमूलक भाषण दिया। उसका सार तात्पर्य इस प्रकार है—

"विरह शब्दका तात्पर्य है—वि-रह अर्थात् विशेष रूपसे मिलन। श्रीजगन्नाथपुरीके गम्भीरामें विप्रलम्भ रसके मूर्त्तिमान विग्रह शचीनन्दन श्रीगौरहरिका जीवनचरित्र विप्रलम्भ या विरहका ज्वलन्त आदर्श है। उस समय वहाँ रात्रिकालके एकान्त निर्जन स्थानमें अपने अन्तरङ्ग परिकर श्रीस्वरूप दामोदर एवं राय रामानन्दजीके साथ कृष्णविरहमें नाना प्रकारके भावोंका आस्वादन करते थे। उस समय वे प्रायः अन्तर्दशामें माथुरविरहकातरा महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिकाके भावमें विभावित होकर शरीरकी सुध-बुध खोकर विलाप करते थे। उनके दोनों अन्तरङ्ग परिकर स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द श्रीमन्महाप्रभुके भावोंके अनुकूल श्रीमद्भागवत, गीतगोविन्द, कृष्णकर्णामृत, विद्यापति-चण्डीदास आदिके पदोंका गायन करते हुए उन्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते थे। राधाभावविभावित श्रीचैतन्य महाप्रभु कृष्णकी व्रजलीलाओंका हृदयमें विशेष रूपसे स्मरणकर कभी-कभी मूर्च्छित भी हो जाते। यह विशेष स्मरण ही विप्रलम्भ या विरह कहलाता है।

"वैष्णवोंके विरहोत्सवमें सत्-शिष्य अपने गुरु अथवा पूर्वाचार्योंकी विरहतिथिके दिन उन-उन महापुरुषोंके अलौकिक, अप्राकृत जीवन-चरित्रका विशेष रूपमें अनुशीलन करता है तथा उक्त दिन उनके उपदेशोंपर यथाशक्ति चलनेका सङ्कल्प ग्रहण करता है। यदि ऐसा अनुशीलन नहीं हुआ एवं केवल नाना प्रकारके सुमधुर महाप्रसादके आयोजनमें ही व्यस्त रहा गया, तो वह शुद्ध विरह-महोत्सव नहीं है।

"श्रीरामचन्द्रजीने लङ्काविजयके पश्चात् बहुत दिनों तक अयोध्यामें राज्य किया। ग्यारह हजार वर्षोंके बाद किसी विशेष कारणसे सीताजीका परित्याग करना पड़ा। वे विलाप करती हुई वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें उपस्थित हुईं। ऋषिने इन्हें आश्रय दिया। लव-कुशका जन्म हुआ। उन दोनों बालकोंने गान-विद्यामें पारङ्गत होकर श्रीरामकी सभामें वाल्मीकि रामायणके पदोंका गायन किया। श्रीरामने वाल्मीकिके माध्यमसे सीताजीको राजसभामें बुलाकर अपने पवित्र होनेका प्रमाण देनेको कहा। उस समय सीताजीने विलाप करते हुए अपनी माँ पृथ्वी देवीको आवाहन किया। सीताजी बोलीं—'पृथ्वीदेवि! यदि मैं पवित्र हूँ, श्रीरामके अतिरिक्त अपने अन्तर्मनसे किसी पर पुरुषका स्पर्श न किया हो, तो तू फट जा और मुझे अपने अङ्कमें समाहित कर ले।' उनका यह कहना था कि पृथ्वी फट गयी और उसमेंसे पृथ्वीदेवी प्रकट होकर सीताजीको अपनी गोदमें बैठाकर पुनः पातालमें प्रवेश कर गयी। स्वयं राम, उनके भाई और माताएँ, सभाके सभी लोग, विलाप करने लगे। किसी रङ्गमञ्चपर 'सीताका पाताल प्रवेश' का अभिनय हो रहा था। दूसरे दिन किसी अन्य मञ्चपर यही अभिनय होने जा रहा था। पहले दिनकी अपेक्षा इस अभिनयको देखनेके लिए अत्यधिक भीड़ थी। यदि विरहमें केवल दुःखकी ही अनुभूति होती, तो दुःख पानेके लिए और अधिक संख्यामें लोग क्यों एकत्रित होते? इससे प्रतीत होता है कि विरहमें भी एक अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होती है। श्रीभगवान् एवं उनके परिकर भक्त सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनका प्राकृत जन्म-मरण अथवा सांसारिक क्लेश सम्भव नहीं है। इसलिए आराध्यदेवके विरहमें अथवा भगवद्भक्तोंके विरहमें बाह्यतः दुःखकी अनुभूति होनेपर भी आन्तरिक रूपमें एक दिव्य एवं अनिर्वचनीय आनन्दकी अनुभूति होती है। यही

विरहोत्सवका गूढ़ रहस्य है और इसीलिए वैष्णव साहित्यमें विरहको उत्सव (आनन्दप्रद) की संज्ञा दी गयी है।"

इनका ऐसा गम्भीर भाषण सुनकर उपस्थित सभी श्रोता मुग्ध एवं स्तब्ध रह गये। सर्वत्र ही इनके भाषणकी प्रशंसा होने लगी। शुद्ध भक्तोंने इस भाषणको अपने गलेका हार बना लिया।

२१ जून, गुरुवारके दिन श्रीजगन्नाथपुरीकी रीतिके अनुसार यहाँ भी गुण्डिचा मन्दिर मार्जन लीलाका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें झाडू एवं मिट्टीका कलश लेकर कुछ दूर स्थित श्रीश्यामसुन्दरके मन्दिरमें उपस्थित हुए। वहाँ श्रीमन्दिरको धो-पोंछकर श्रीजगन्नाथदेवके लिए निर्मल किया गया। श्रीगुरुदेवने श्रीचैतन्यचरितामृतसे गुण्डिचा मार्जनका प्रसङ्ग श्रवण कराया। श्रीगुण्डिचा मार्जनका तात्पर्य यह है कि साधक अपने हृदयसे विविध प्रकारके अनर्थों, अपराधों तथा सांसारिक आसक्तियोंको निकालकर उसमें अपने आराध्यदेव श्रीश्रीराधागोविन्दकी प्रतिष्ठा करें। बहुत दिनों तक श्रवण और कीर्त्तन करनेपर भी यदि भक्तिविरुद्ध इन गन्दगियोंको दूर करनेका प्रयास नहीं किया गया, तो ऐसे अपवित्र हृदयमें शुद्ध प्रेमका आविर्भाव नहीं होता। उनका श्रवण-कीर्त्तन कभी-कभी आभास या सर्वदा अपराधमूलक ही होता है। इसलिए साधकोंको बड़ी सावधानीसे इन अनर्थोंसे बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यही गुण्डिचा मन्दिर मार्जनका तात्पर्य है।

तीसरे दिन रथ-यात्राके दिन इनके आनुगत्यमें नगरसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे चुँचुड़ा शहरके विभिन्न मार्गोंसे होते हुए श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरमें रथारूढ़ श्रीजगन्नाथदेव उपस्थित हुए। आजसे लेकर पूर्णयात्राके दिन तक जगन्नाथजी यहीं श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरमें विराजमान रहे। प्रतिदिन शामको श्रीगुरुदेव श्रीचैतन्यचरितामृतसे रथ-यात्राके प्रसङ्गकी आलोचना और व्याख्या करते थे। हेरा पञ्चमीके दिन श्रील गुरु महाराजने हेरा पञ्चमीके सम्बन्धमें अत्यन्त गूढ़ तत्त्वोंका रहस्योद्‌घाटन किया। १ जुलाई, शनिवारके दिन श्रीजगन्नाथजीने श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर अर्थात् सुन्दराचलसे नीलाचलरूप श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें पूर्ववत् नगर-सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे प्रत्यावर्तन किया। पुनर्यात्राके दिन श्रील गुरुदेवने श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवकी दृष्टिभङ्गीकी व्याख्या की। श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवके अनुसार

'सेई त परानननाथ पाइनूँ। जाहा लागि मदने झुरी गेलूँ' और उसी प्राणनाथको लेकर 'कृष्णे लइया व्रजे जाई' अर्थात् श्रीकृष्णको साथ लेकर हमलोग वृन्दावनमें लौट रही हैं—यही रथ-यात्राका गूढ़ रहस्य है।

उसी दिन रातमें महामहोत्सव हुआ। स्थानीय सभी लोगोंको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

विभिन्न स्थानोंमें प्रचार एवं श्रीनवद्वीपधाम आदिकी परिक्रमाके कारण क्रमशः मठवासियोंकी संख्या बढ़ने लगी। अब परमाराध्य श्रीलगुरुदेवने श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीपाद नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल', श्रीदीनार्तिहर ब्रह्मचारी, श्रीराधानाथ दास तथा श्रीविष्णुपदको पृथक् रूपमें प्रचारके लिए भेजा। वे बिहार प्रदेशके भागलपुर आदि विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करने लगे। इधर ये स्वयं मुकुन्दगोपाल व्रजवासी 'भक्तिमधु', श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी और भक्त अनिलको सङ्ग लेकर पश्चिम बङ्गालके जयनगर, मजिलपुर, विष्णुपुर, कृष्णचन्द्रपुर, अम्बुलिङ्ग, चक्रतीर्थ आदि विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर श्रीधाम नवद्वीपमें लौटे।

१९४४ ई॰ में श्रीनियमसेवा कार्तिकव्रतके उपलक्ष्यमें इन्होंने ८४ क्रोस व्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन किया। इस परिक्रमामें श्रीलगुरु महाराजके साथ त्रिदण्डिस्वामी भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज, श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराज, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल' प्रमुख संन्यासी-ब्रह्मचारीने योगदान किया था। वनभ्रमणके समय यात्रियोंकी सुविधाके लिए बहुत-सी शिविकाओंकी व्यवस्था की गयी थी। प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभुके अर्चाविग्रहका अर्चन-पूजन, भोग-राग, कीर्त्तन तथा कृष्णलीलास्थलियोंका माहात्म्य वर्णन नियमित रूपसे होता था। लगभग ४० दिनोंमें परिक्रमा समाप्त हुई और सारे यात्रीगण प्रसन्नचित्तसे अपने-अपने स्थानको लौट गये।

चौरासी कोस क्षेत्रमण्डल परिक्रमा

१९४५ ई॰ में श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमाके पश्चात् श्रील गुरुदेव, श्रीदीनदयाल ब्रह्मचारी, सज्जनसेवक ब्रह्मचारी तथा अनङ्गमोहन ब्रह्मचारी

आदिको साथ लेकर श्रीक्षेत्रमण्डल परिक्रमाके आयोजनके लिए उड़ीसा प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें परिभ्रमण किया। साथ ही उन स्थानोंमें शुद्धभक्तिका बड़े उत्साहपूर्वक प्रचार किया। इस भावी परिक्रमाके लिए वे बालेश्वर, श्रीजगन्नाथपुरी, कटक, बासुलीशाही, आलालनाथ, चिल्का ह्रदके तटपर बसे हुए वोरकुदी, कालूपाड़ा घाट, रणपुरगढ़ स्टेट, सोनावली (यहाँ श्रीमन्महाप्रभुका पादपीठ है), नयरगढ़, खण्डपाड़ा, कंटीला (श्रीनीलमाधव), नरसिंहपुर, खुर्दारोड आदि स्थानोंमें परिभ्रमण किया। श्रीमन्महाप्रभु दक्षिणकी यात्राके समय इन सब स्थानोंसे होकर गये थे। श्रीमन्महाप्रभुके एकनिष्ठ भक्तोंकी हार्दिक अभिलाषा उन-उन स्थानोंमें परिभ्रमण करनेकी होती है, जहाँ श्रीमन्महाप्रभुजीने अपने परिकरोंके साथ भावमें विभोर होकर परिभ्रमण किया था। श्रील गुरुदेव भी श्रीमन्महाप्रभुकी स्मृति जागृत करनेके लिए शुद्ध भक्तोंके साथ इन स्थानोंकी परिक्रमा करना चाहते थे। इसलिए भावी परिक्रमाकी रूप-रेखा प्रस्तुतकर वे उद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें लौटे।

इस प्रकार क्षेत्रमण्डल परिक्रमाकी सारी व्यवस्था हो जानेपर १६ अक्टूबर, १९४५ ई॰ को भारतके विभिन्न स्थानोंसे आये हुए यात्रियों, संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंके साथ श्रील गुरुदेवने हावड़ा स्टेशनसे रिजर्व रेल डिब्बेके द्वारा श्रीपुरीधामकी यात्रा की। दूसरे दिन पुरी पहुँचकर यात्रा-पार्टीने विश्राम किया। इसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुके विजयविग्रहके आनुगत्यमें श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव स्थली 'भक्तिकुटीर' (श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका भजनस्थल), श्रील हरिदास ठाकुरकी भजनस्थली, सिद्ध बकुल, उनकी समाधि, पुरुषोत्तम मठ, टोटा गोपीनाथ तथा श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें श्रीजगन्नाथ, बलदेव और सुभद्राका दर्शन किया गया। सन्ध्याके समय श्रील गुरु महाराजने धाम-माहात्म्यका वर्णन करते हुए बतलाया कि पुरुषोत्तम क्षेत्रकी चारों ओर दश योजनकी सीमामें अवस्थित है। यह क्षेत्र केवल पुरीमें ही अथवा पाँच क्रोसमें ही सीमित नहीं है। बल्कि इसकी सीमा ८४ क्रोसकी है। इस क्षेत्रका आकार शङ्खके समान है। यदि कोई व्यक्ति इस ८४ क्रोसकी सीमामें जगन्नाथजीका स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, तो उसे वैकुण्ठकी गति होती है, उसे फिर कभी माताके गर्भमें जन्म लेना नहीं होता है। यह पुरीधाम वही

क्षेत्र है, जहाँ किसी सत्युगमें इन्द्रद्युम्न महाराज अपनी पत्नी एवं प्रजाको साथ लेकर यहाँ आये थे। उन्होंने ही यहाँ विशाल श्रीमन्दिरका निर्माण किया तथा अपनी आराधनासे श्रीनीलमाधवको प्रसन्नकर श्रीश्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा एवं सुदर्शन—इन चार विग्रहोंके रूपमें श्रीनीलमाधवको उक्त मन्दिरमें स्थापित किया। उन्हींकी व्यवस्थानुसार आज भी विशेष रीतिके अनुसार श्रीजगन्नाथजीका भोग लगता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने संन्यासके पश्चात् अपनी माताके आदेशसे इसी जगन्नाथपुरीकी गम्भीरामें अपने परिकरोंके साथ वासकर अपनी त्रिविध वांछाओंको पूर्ण किया था। सौभाग्यवान व्यक्ति ही श्रीगौरपदाङ्कित स्थानोंमें भ्रमण एवं दर्शनका सुयोग लाभ करते हैं।

दूसरे दिन चटक पर्वत, टोटा गोपीनाथ, यमेश्वर टोटा, लोकनाथ शिव, पुरी गोस्वामीका कूप, मार्कण्डेय सरोवर, नरेन्द्र सरोवर, इन्द्रद्युम्न सरोवर, गुण्डिचा मन्दिर, चक्रतीर्थ एवं स्वर्गद्वारका दर्शन किया।

तीसरे दिन श्रीशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित गोवर्द्धन मठ, सातलहरिया मठ, श्रीरामानुज द्वारा स्थापित मठ, जगन्नाथ वाटिका आदि अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानोंका दर्शनकर परिक्रमापार्टी अलालनाथमें उपस्थित हुई। अलालनाथ एक प्रसिद्ध स्थान है। श्री सम्प्रदायके अलवारों द्वारा सेवित विग्रह होनेके नाते विग्रहका नाम श्रीअलवरनाथ या अलालनाथ है। श्रीमन्महाप्रभु स्नान-यात्राके पश्चात् अनवसर कालमें श्रीजगन्नाथके दर्शनके अभावमें विरहमें कातर होकर श्रीअलालनाथके श्रीमन्दिरमें पधारते थे। उस समय विरहावस्थामें श्रीमन्दिरके संलग्न जिस पत्थरपर साष्टाङ्ग प्रणाम करते वह पत्थर भी पिघल जाता और उसपर उनके श्रीअङ्गोंकी छाप पड़ जाती। उन पत्थरोंमें आज भी एक पत्थर उनके श्रीअङ्गोंकी छाप लिए हुए विद्यमान है। यात्रियोंने बड़ी श्रद्धासे उस शिलाका भी दर्शन और पूजन किया। पास ही के दूसरे गाँवमें महाप्रभुके परिकर श्रीरायरामानन्द, शिखिमाईति, इनकी बहन माधवीदेवीका गृह और उनकी भजनकुटी आज भी दर्शनीय है।

चिल्का ह्रदके निकट एक ऐसा भी गाँव है, जहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरण पड़े थे। उस गाँवके सम्बन्धमें एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्य है कि महाराज प्रतापरुद्रके पिता पुरुषोत्तम जानाका विवाह विद्यानगरके

महाराजाकी कन्यासे होनेवाला था। किन्तु विद्यानगरके नरेशको जब यह पता चला कि बड़े जाना रथ-यात्राके समय श्रीजगन्नाथजीके रथके सामने झाड़ू देता है, तब उन्होंने उस विवाहको स्थगित कर दिया। इसपर पुरुषोत्तम जानाने अपनी सेनाके साथ विद्यानगरपर आक्रमण किया, किन्तु उस युद्धमें बुरी तरहसे पराजित होकर लौटे। वे श्रीजगन्नाथ एवं श्रीबलदेवजीसे बड़े दुःखी होकर पुनः युद्धमें विजयी होनेकी प्रार्थना की। उन्हें श्रीजगन्नाथजीसे कुछ ऐसे शुभ सङ्केत मिले कि उन्होंने उनकी प्रार्थना ग्रहण कर ली है। इन्होंने बड़े जोशसे अपनी पूरी सेनाके साथ यात्रा की।

इधर श्रीजगन्नाथ एवं श्रीबलदेव भी अपने प्रिय सेवककी सहायताके लिए लाल एवं सफेद दो घोड़ोंपर चढ़कर युवक सैनिकके वेशमें चल पड़े। रास्तेमें सिरपर दहीका कलश ली हुई एक बुढ़िया मिली। इन दोनोंने प्यासके कारण उसका दही पीनेके लिए माँगा। जब बुढ़ियाने पैसा माँगा, तो दोनों घुड़सवारोंमेंसे एकने अपने सोनेकी अँगूठी निकालकर उस बुढ़ियाको दे दी और कहा कि माताजी हम राजाके सैनिक हैं। पीछेसे सेनाके साथ महाराज आ रहे हैं, उन्हें यह अँगूठी दिखाकर पैसे माँग लेना। यह कहकर दोनों आगे निकल गये। थोड़ी देर बाद ही जब राजकुमार सेनाके साथ वहाँ उपस्थित हुए तो बुढ़ियाने उक्त अँगूठीको दिखाकर उनसे अपने दहीका पैसा माँगा। उस अँगूठीपर 'श्रीजगन्नाथ' अंकित था तथा वह स्वयं उन्हींके द्वारा भेंट की हुई थी। राजाकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्हें विश्वास हो गया कि हमारे आराध्यदेव जगन्नाथ एवं बलदेव हमारे लिए युद्ध करनेके लिए आगे-आगे चल रहे हैं। इस युद्धमें उनकी विजय हुई। राजाने बुढ़ियाको उस गाँवकी पूरी जमींदारी ताम्रपत्रपर लिखकर दे दी। आज भी उसके वंशज उस जमींदारीका भोग कर रहे हैं।

वहाँसे परिक्रमा पार्टी चिल्काह्रदकी एक सीमापर वोराकुदी स्थित स्थानमें पहुँची। यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही रमणीय है। यहाँसे बहुत-सी नौकाओंके द्वारा चिल्काह्रदको पारकर यात्री लोग रणपुरगढ़ पहुँचे। इन सब स्थानोंमें परिक्रमा करते समय यात्रियोंको गम्भीर एवं घने जङ्गलसे गुजरना पड़ा। उस वनमें भयङ्कर बाघ आदि हिंसक जन्तु

रहते थे। बड़ी सावधानीसे सुरक्षाके बीच यात्री लोग पैदल चलते थे। इतना होनेपर भी प्रतिदिन अर्चन-पूजन, भोग-राग, पाठ-प्रवचन नियमित रूपसे चलता था।

यहीं चिल्काह्लदके पास ही किसी गाँवमें श्रीबलदेव विद्याभूषणका आविर्भाव हुआ था। श्रील गुरुदेवने शामकी धर्मसभामें श्रीबलदेव विद्याभूषणके अतिमर्त्य चरित्रपर प्रकाश डाला। "बलदेव विद्याभूषण बाल्यकालसे ही अलौकिक मेधासम्पन्न, प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। ये यहींपर संस्कृत भाषामें पारङ्गत होकर विशेष शिक्षाके लिए श्रील मध्वाचार्यके स्थान दक्षिण भारतके उडूपीमें गये। वहाँपर उन्होंने मध्वाचार्य द्वारा रचित वेदान्तसूत्रके अणुभाष्य आदि ग्रन्थोंके सहित मध्व सम्प्रदायके रचित अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थोंका विशेष रूपसे अध्ययन किया। साथ ही उन्होंने श्रीरामानुज द्वारा रचित श्री-भाष्यका भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् पुरीमें श्रीश्यामानन्दकी शिष्य-परम्परामें नयनानन्दके अनुगृहीत श्रीराधादामोदर गोस्वामीसे इनकी भेंट हुई। उनके दार्शनिक विचारोंसे ये इतने प्रभावित हुए कि उनसे दीक्षा लेकर गौड़ीय वैष्णवोंके सिद्धान्तमें प्रवेश करनेके लिए श्रीधाम वृन्दावनमें सिद्धान्तविद परम रसिक श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके निकट पहुँचे। अपना शेष जीवन श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी सेवामें अर्पणकर उनसे षड्गोस्वामी आदिके प्रसिद्ध ग्रन्थोंका अध्ययन किया। श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने इन्हें सब प्रकारसे योग्य देखकर जयपुर स्थित गलतागद्दीमें भेजा जहाँ एक विचारसभामें गौड़ीय वैष्णवोंके विरोधी विचारवाले रामानन्दी आदि विद्वानोंको पराजितकर गौड़ीय सिद्धान्तोंकी स्थापना की। इसी अवसरपर उन्होंने ब्रह्मसूत्रका गोविन्दभाष्य भी प्रस्तुत किया। इस घटनाके द्वारा गौड़ीय सम्प्रदायकी चारों तरफ बड़ी प्रतिष्ठा हुई।"

श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके एक दृढ़ स्तम्भ हैं। रूपानुग वैष्णवाचार्योंमें एक प्रधान आचार्य हैं। आजकल कुछ अर्वाचीन तथाकथित गौड़ीय वैष्णव इन्हें गौड़ीय वैष्णव आचार्यके रूपमें स्वीकार नहीं करते। यह उनका परम दुर्भाग्य है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने ऐसे अनभिज्ञ लोगोंको कलिका गुप्तचर बतलाया है। प्रसङ्गवशतः श्रील गुरुदेवने यह भी बतलाया कि "'एकमेवाद्वितीयम्' का तात्पर्य एक

निराकार निर्विशेष ब्रह्मसे नहीं है। यहाँ अद्वितीय कहनेसे अनेकमेंसे एक असमोर्द्ध्व, अद्वितीय तत्त्वका बोध होता है। एकम् कहनेसे ONE अथवा १ संख्याका बोध नहीं होता। क्योंकि ONE में तीन अक्षर हैं। लाखों बिन्दु मिलकर १ बनता है। वे ब्रह्म वस्तु—He is second to none। उक्त सूत्रमें जिस 'एक' का उल्लेख किया गया है वह All inclusive one है। दूसरे शब्दोंमें उसे Unity in diversity कहा जा सकता है। वे सर्वशक्तिमान भगवान् अपने श्रीनाम-गुण-लीला-परिकर वैशिष्ट्य तथा नित्य चिल्लीला वैशिष्ट्यके साथ ही एक हैं। यहाँ human body and mile post का उदाहरण दिया जा सकता है। जिस प्रकार सारे अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको लेकर ही मनुष्य शरीर है। किसी भी अङ्गको छोड़कर पूर्ण शरीर स्वीकृत नहीं होता। उस शरीरमें भी आँख, नाक, कान, जिह्वा आदि अङ्गोंमें भी नाना प्रकारके वैशिष्ट्य होते हैं। जैसे बाईं और दाईं आखें एक नहीं हैं। दोनों नेत्रोंका कार्य अलग-अलग होता है। आँखोंमें भी उसकी पलकें, पलकोंमें रोएँ, नेत्रके भीतरी भागमें पुतली आदि बहुत-से प्रत्यङ्ग भी होते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य अङ्गोंमें भी नाना प्रकारके वैशिष्ट्य विद्यमान रहते हैं। Mile post में भी आठ फार्लांगका एक उपसम होता है। रास्तेमें एक फार्लांग दो फार्लांगसे लेकर सात फार्लांगके post देखे जाते हैं। तत्पश्चात् एक मीलवाला पत्थर आता है। तत्पश्चात् पुनः एक से लेकर सात फार्लांगके पश्चात् दूसरा mile post दृष्टिगोचर होता है। यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि छः सात फार्लांगके बाद एक मील हो रहा है। अथच आठ फार्लांगका एक मील होता है। इससे क्या सिद्ध होता है कि आठ फार्लांग नामक कोई वस्तु ही नहीं है। एक मीलके अन्तर्गत आठ फार्लांगका हिसाब अन्तर्भुक्त है। इसी प्रकार लीला पुरुषोत्तम श्रीभगवान् अपने सारे चिल्लीला वैचित्र्यको लेकर ही एक हैं। इस चिल्लीला वैचित्र्यपूर्ण जगत्में उनके समान हमारा कोई और हितकारी बन्धु नहीं है। इस सिद्धान्तको समझानेके लिए 'एकमेवाद्वितीयम्' सूत्रकी अवतारणा की गयी है।"

इस प्रकार रणपुरगढ़से परिक्रमापार्टी नयागढ़ स्टेटमें पहुँची। वहाँ यात्रीसंघकी राजकीय सम्मानके साथ अभ्यर्थना की गयी। वहींपर

श्रीगोवर्धनकी पूजा और अन्नकूट महोत्सवका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। वहाँके राजा बहादुरने अपने आत्मीय स्वजनोंके साथ अन्नकूटमें योगदान किया। तत्पश्चात् परिक्रमापार्टी खण्डपारा होकर कंटीला (नीलमाधव) में पहुँची। वहाँ उन्होंने पहाड़ीके ऊपर नीलमाधवका दर्शन किया। नीलमाधवके सम्बन्धमें पुराणोंमें यह कथा वर्णित है कि सत्ययुगमें अवन्ती प्रदेशके राजा इन्द्रद्युम्न महाराज कुछ तीर्थयात्रियोंसे नीलसमुद्रके सन्निकट विराजमान श्रीनीलमाधवका माहात्म्य श्रवणकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अपने विशेष दूतोंको किस स्थानपर वे विराजमान हैं, यह पता लगाने भेजा। उन दूतोंमें उनके पुरोहितके पुत्र विद्यापति अनुसन्धान करते-करते महासागरके किनारे इस स्थानके निकट पहुँचे। शामके समय उस गाँवके प्रधान (शबर जाति) विश्वावसुके घर पहुँचे। उन्हें कुछ ऐसी बातें मालूम हुईं जिनसे उन्हें अनुमान हुआ कि उस नीलमाधवके पुजारी ये विश्वावसु ही हैं। उन्होंने उनकी युवा कन्यासे विवाह कर लिया। कुछ दिनोंके पश्चात् अपनी पत्निसे यह पता लगानेके लिए कहा कि तुम्हारे पिताजी कहाँ और किसकी पूजा करनेके लिए जाते हैं, तथा उसे दर्शन करानेके लिए अनुरोध करवाया। विश्वावसुने उनकी आँखोंपर काली पट्टी बाँधकर उसे पहाड़ियोंके ऊपर स्थित श्रीनीलमाधवके मन्दिरमें ले गया। वहाँ उनकी पट्टी खोल दी। पुरोहित पुत्रकी इच्छा पूर्ण हुई। इसी बीच विश्वावसु पुष्पचयनके लिए मन्दिरके बगीचेमें चले गये। पुरोहित पुत्रने एक आश्चर्यमयी घटना देखी। मन्दिरके सामने एक सरोवर था। एक पेड़की डाल सरोवरके ऊपरसे चली गयी थी। उसपर एक कौआ बैठा हुआ ऊँघ रहा था। वह पानीमें गिरकर मर गया। साथ ही उस कौएकी आत्मा दिव्य चतुर्भुज रूप धारणकर एक दिव्य विमानमें आरूढ़ होकर वैकुण्ठ चली गयी। ये भी उस दृश्यको देखकर उस सरोवरमें कूदना ही चाहते थे कि एक गम्भीर आकाशवाणी सुनायी पड़ी—"तुम्हारे द्वारा बहुत कार्य होना है। अभी प्रतीक्षा करो।" तत्पश्चात् ब्राह्मणपुत्र नीलमाधवका दर्शनकर विश्वावसुके साथ लौटा और वहाँसे अवन्ती नगरीमें अपने राजाके पास पहुँचकर नीलमाधवका संवाद दिया।

महाराज इन्द्रद्युम्नने अपने कुटुम्बियों और सारी सेनाके साथ नीलमाधवके दर्शनके लिए कूच किया। परन्तु जब वे इस स्थानपर

पहुँचे तो उन्हें केवल बालूका ही पर्वत दिखायी पड़ा। नीलमाधवका कहीं पता नहीं था। असहाय होकर महाराज समुद्रके किनारे नीलमाधवके दर्शनोंके लिए आराधनामें तत्पर हो गये। नीलमाधवने उन्हें दर्शन देकर निर्देश दिया कि मैं अब अपने इस नीलमाधव रूपमें नहीं, वरं श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा और सुदर्शनके रूपमें प्रकटित होकर तुम्हारी सेवा ग्रहण करूँगा और जगत्के लोगोंको दर्शन देता रहूँगा।

यात्रियोंने इन नीलमाधवके प्रतिभू विग्रहका वहाँ दर्शन किया। यहाँपर गुरुमहाराजजीने शास्त्रोंमें वर्णित प्रसिद्ध नीलमाधवका उपाख्यान वर्णन किया। वहाँसे कटक, भुवनेश्वर आदि स्थानोंका दर्शनकर पुरीधाममें परिक्रमासंघ लौटा और १९ नवम्बरको परिक्रमाकी समाप्तिकर सभी लोग अपने-अपने स्थानको लौटे। भुवनेश्वर, भारतका प्रधान तीर्थस्थल है। इसका दूसरा नाम एकाम्र कानन भी है। यह स्थान श्रीक्षेत्रके अन्तर्गत पड़ता है। श्रीजगन्नाथ क्षेत्रकी महिमासे अवगत होकर पार्वतीजीने इस एकाम्र काननमें आकर भगवद्दर्शनके लिए बड़ी कठोर तपस्या आरम्भ की। भगवान् श्रीहरि वासुदेवकृष्णके रूपमें इनके सामने प्रकट हो गये। पार्वतीकी कठोर आराधना देखकर उनकी आँखोंसे एक अश्रुबूँद टपक पड़ा, जिससे यह विराट सरोवर बन गया। इसलिए इस सरोवरका नाम बिन्दुसरोवर पड़ा। कहते हैं कि उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें बिन्दुसरोवरके बीच निवास करनेवाले आर्योंको बादमें हिन्दु कहा गया। हिमालयका प्रथम अक्षर 'हि' और बिन्दुका अन्तिम अक्षर 'न्दु' मिलकर हिन्दु शब्द बना है। इस स्थानपर विशालकाय शिवलिङ्ग है, जो भुवनेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। पास ही श्रीअनन्त वासुदेवका श्रीमन्दिर है। इस वासुदेव मन्दिरमें भोग लगनेपर वही महाप्रसाद भुवनेश्वर महादेवको अर्पित होता है। इसलिए वैष्णव लोग अन्यत्र कहीं भी श्रीमहादेवका प्रसाद नहीं ग्रहण करनेपर भी यहाँ श्रीभुवनेश्वरका प्रसाद ग्रहण करते हैं। (किन्तु वहाँ अब यह प्रथा बन्द होनेके कारण वैष्णवगण वहाँ भी महाप्रसाद ग्रहण नहीं करते, केवल अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें ही प्रसाद ग्रहण करते हैं।)

शिष्य वात्सल्य

परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव १९४६ ई॰ में कार्तिक उर्जाव्रत-नियमसेवा पालन करनेके लिए बहुत-से संन्यासी, ब्रह्मचारी और गृहस्थ भक्तोंके साथ काशी धाममें पधारे। वहाँ एक महीने तक काशीकी बृहत् एवं पञ्चकोसी परिक्रमा की गयी तथा नियमित रूपसे पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति श्रीनामसङ्कीर्त्तन, भक्तिग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन आदि सम्पन्न हुए। श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें लौटकर श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी, श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी आदि कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीगुरुदेवने मेदिनीपुरके झिनुकखली, पूर्वचक, बेगुनावाड़ी, कल्याणपुर आदि स्थानोंमें विपुल भावसे शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

कल्याणपुरमें श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी हठात् अस्वस्थ हो गये। वे एकनिष्ठ गुरुसेवक थे। उनका गला अत्यन्त ही मधुर था। वे सुन्दर स्वरसे कीर्त्तन करते थे। मृदङ्ग बजानेमें भी वे बड़े पटु थे। साथ ही वे नैवेद्यरन्धन और गुरुदेवकी व्यक्तिगत सेवामें भी बहुत कुशल थे। उनके वैष्णवोचित सर्वगुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण सभी लोग उनसे बड़ी प्रीति रखते थे। उनके अस्वस्थ होनेपर श्रील गुरुदेव उन्हें साथ लेकर कलकत्ता लौट आये। वहाँके एक प्रसिद्ध चिकित्सक कैप्टेन डी॰ एल॰ सरकार (होमियोपैथिक) की चिकित्सा आरम्भ हुई और उनके परामर्शके अनुसार श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारीको बङ्गाल और बिहारकी सीमापर एक निर्जन, मनोरम और स्वास्थकर स्थान सिधावाड़ीमें लाया गया। श्रील गुरुदेव स्वयं उनके साथ गये। वहाँपर ब्रह्मचारीजीके स्वास्थ्यमें कुछ उन्नति नहीं होनेपर श्रील गुरुमहाराज त्रिगुणातीत दास ब्रह्मचारी, श्रीगौरनारायण दासाधिकारी, श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्धन ब्रह्मचारी आदिको साथमें लेकर उन्हें स्वास्थ्यवर्धक स्थान वैद्यनाथधाम—देवघर ले आये। किन्तु यहाँ भी कोई विशेष लाभ नहीं होनेपर ब्रह्मचारीजीको सिधावाड़ी होते हुए मद्रास टम्बरम टी॰बी॰ सेनेटोरियममें भर्ती करवाया। उनकी चिकित्सा और शुश्रूषाकी सारी व्यवस्था कराकर वे कलकत्ताके मठमें लौटे। उन्होंने रोगीकी सेवा-शुश्रुषाके लिए श्रीत्रिगुणातीत ब्रह्मचारी और गौरनारायण दासाधिकारीको टम्बरम अस्पतालमें ही रख दिया। यहाँ चिकित्साकी

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी एवं श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी

सारी व्यवस्था उपलब्ध होनेपर भी उन्हें बचाया नहीं जा सका। २ मार्च, १९५० ई॰ को उनका परलोक गमन हो गया।

मैं उनके परलोक गमनके समय स्वयं उनके निकट था। मैंने कभी भी उनका मुख मलिन नहीं देखा। वे सब समय भगवन्नाम करते हुए प्रसन्न रहते थे। नियमित रूपमें वे हमलोगोंसे श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृतका प्रीतिपूर्वक श्रवण करते थे। उनके मृदु व्यवहारसे वहाँके छोटे-बड़े सभी डॅक्टर बड़े आकर्षित थे। परलोक गमनके दिन हठात् बोलने लगे—"मुझे श्रीश्रीराधाकृष्ण वृन्दावनमें बुला रहे हैं। जय श्रीराधे, जय श्रीकृष्ण, हा गौरचन्द्र, हा नित्यानन्द प्रभु, हा गुरुदेव।" मैंने उनसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभो! आप मेरे ऊपर भी कृपा करें। वृन्दावनमें मुझे भी बुलाना।" संवाद पाकर डाक्टरोंका पूरा दल पहुँचकर उनकी परीक्षा करने लगा। हम सब लोगोंके सामने ही उन्होंने इशारेसे वहाँ एकत्रित महिलाओंको वहाँसे हटा देनेके लिए इङ्गित किया। हा राधे, हा कृष्ण कहते हुए उन्होंने अन्तिम श्वास ली। सारे चिकित्सक एवं दर्शक आश्चर्यचकित थे।

मैंने बड़ी गम्भीरतासे विचार किया। यदि अजामिल अपने पुत्रके लिए नारायण नाम (नामाभास) उच्चारणकर कष्टमय जन्म-मृत्युसे मुक्त होकर वैकुण्ठधामको प्राप्त कर सकता है, तो परम गुरुनिष्ठ सदा-सर्वदा अपराधोंसे रहित सम्बन्धज्ञानके साथ कृष्णनामका कीर्त्तन करनेवाले तथा अपने अन्त समयमें सज्ञान अवस्थामें "हा राधे, हा कृष्ण" उच्चारण करनेवाले तथा "राधाकृष्ण मुझे वृन्दावनमें बुला रहे हैं"—ऐसा कहनेवाले इस उच्चकोटिके गुरुसेवककी कैसी गति होगी? सचमुचमें उन्हें अवश्य ही व्रजधामकी प्राप्ति हुई होगी। हमलोग पहले इस महान भक्तके सम्बन्धमें ऐसी कभी भी कल्पना नहीं कर सकते थे। इनका जीवन धन्य है। इनकी गुरुसेवा सार्थक है। मैं समझता हूँ कि कोई विशेष साधन-भजनके द्वारा नहीं, बल्कि अहैतुकी श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही ऐसा सम्भव होगा। तबसे परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवके चरणोंमें मेरी श्रद्धा अत्यन्त अधिक बढ़ गयी। मैं टम्बरमसे लौटकर विशेष श्रद्धापूर्वक उनकी विशेष सेवामें तत्पर हुआ।

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने अपने प्रिय सेवक अनङ्गमोहन ब्रह्मचारीकी स्मृतिरक्षाके लिए सिधावाड़ीमें सिद्धावाटी नामक गौड़ीय मठकी स्थापना की। वहाँ अभी तक श्रीविग्रहकी नित्य सेवा-पूजा, पाठ-कीर्त्तन चलता आ रहा है तथा प्रतिवर्ष ब्रह्मचारीजीकी स्मृतिमें विरहोत्सव मनाया जाता है।

कल्याणपुरमें वैष्णवविधिके अनुसार श्राद्ध अनुष्ठान

कल्याणपुर (मेदिनीपुर) निवासी श्रीरासविहारी दासाधिकारी भक्तिशास्त्री 'भिषग्रत्न' महाशयने अपनी माताजीके श्राद्ध अनुष्ठानमें योगदान करनेके लिए श्रील गुरुदेवको बड़े आग्रहसे निमन्त्रित किया। श्रील गुरुदेव अपने बहुत-से परिकरोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। श्रील प्रभुपादके कृपापात्र पूज्यपाद श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराजने इस अनुष्ठानमें पुरोहितका कार्य किया। पूज्यपाद श्रील श्रौती महाराज संस्कृत, बँगला, हिन्दी, अँग्रेजी आदि भाषाओंमें परम पारङ्गत एक विशेष प्रचारक संन्यासी

थे। श्रील गुरुमहाराजसे इनका बड़ा ही बन्धुत्व था। काशी, प्रयाग, पटना, मेदिनीपुर आदि अञ्चलोंमें श्रील प्रभुपादके आनुगत्यमें शुद्ध-भक्तिका प्रचार करते थे। श्रील प्रभुपादके समय मासिक हिन्दी भागवत पत्रिका सञ्चालन भी करते थे।

यहाँ यह विशेष रूपसे लक्ष्य करनेकी बात है कि श्रील गुरुदेव भक्तितत्त्वके सिद्धान्तोंमें बड़े ही दृढ़ थे। वे निरपेक्ष सत्यके निर्भीक वक्ता थे। इस विषयमें किसीको बुरा या भला लगे, भक्तिके सिद्धान्तोंको कहनेमें कभी हिचकते नहीं थे। पूज्यपाद श्रौती महाराज यद्यपि इनके परम मित्र और गुरुभ्राता थे, फिर भी इस वैष्णव श्राद्ध अनुष्ठानमें जो त्रुटियाँ हुईं, उसका उन्होंने कठोर प्रतिवाद किया। उन्होंने अपने नोटबुकमें भी हस्ताक्षरयुक्त इस विषयमें लिखा है। यहाँ उसे उद्धृत किया जा रहा है—

(१) श्रील श्रौती महाराजने इस वैष्णव श्राद्धमें ब्रह्माका वरण किया (उपास्य श्रीश्रीराधाकृष्ण, श्रीमन्महाप्रभु और श्रीगुरुदेवका वरण नहीं किया)। उनके विचारसे वैष्णव श्राद्धमें ब्रह्म वरण करना ही उचित है क्योंकि श्रीवैखानस महाराजने भी अपनी पद्धतिमें ऐसा ही लिखा है। किन्तु सत्क्रियासार-दीपिका एवं श्रीहरिभक्तिविलास आदि स्मृतियोंमें उपास्य वरण करनेका विधान दिया गया है।

(२) इस अनुष्ठानमें घृताक्त अरवा चावलको मन्त्रपूत कर उसे सर्वप्रथम स्मार्त ब्राह्मणको (श्रीरासविहारीके कुलगुरुको) दान किया गया। तत्पश्चात् त्रिदण्डी संन्यासियोंको दान किया गया। यह पद्धति भी वैष्णव स्मृतिके विपरीत है। वैष्णव स्मृतिके अनुसार भगवन्निवेदित द्रव्य श्रीगुरुदेव और वैष्णवोंको ही देना चाहिये।

(३) ब्रह्मस्थापनके विषयमें श्रीपाद श्रौती महाराजकी आपत्ति यह थी कि सत्क्रियासार-दीपिकामें अभाव पक्षमें कुशमय ब्रह्मस्थापनका उल्लेख है। इसलिए ब्रह्मस्थापन कर्त्तव्य नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि सत्क्रियासार-दीपिका श्रीगोपाल भट्टकी रचना नहीं है, बल्कि वैकुण्ठ वाचस्पति द्वारा लिखी गयी है। किन्तु यह सत्य नहीं है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जयपुरके प्रसिद्ध राजपुस्तकालयसे इसकी एक प्राचीन प्रतिलिपि संग्रहकर इसे प्रकाशित किया है। श्रीराधारमणके गोस्वामियोंके पास भी

श्रीगोपाल भट्ट द्वारा हस्तलिखित ग्रन्थकी प्राचीन प्रति आज भी वर्त्तमान है।

(४) अधिवास सत्क्रियासारके मतानुसार नहीं किया गया। बल्कि कुछ स्मार्त मन्त्रोंके द्वारा अधिवास सम्पन्न हुआ।

(५) इस अनुष्ठानमें दानकार्य सबसे पहले किया गया। सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार वैष्णव होमके पश्चात् दानकार्य होना चाहिये।

श्रीपाद श्रौती महाराजने उक्त स्मार्त गुरुब्राह्मणको स्थण्डिलके भीतर बुलाकर उन्हें दानपात्र, भोजनपात्र, पादुका, छत्र तथा शय्याद्रव्य आदि दान दिलवाया। यह पद्धति हरिभक्तिविलासके सर्वथा विरुद्ध है। हरिभक्तिविलासमें यह स्पष्ट रूपसे लिखा गया है—

स्वभावस्थैः कर्मजड़ान् वञ्चयन् द्रविणादिभिः।
हरेर्नैवेद्य-सम्भारान् वैष्णवेभ्यः समर्पयेत्॥

(हरिभक्तिविलास ९/१०३)

अर्थात् स्वाभाविक रूपमें जो वस्तुएँ भगवान्को निवेदित नहीं की गयी हैं, उन अनिवेदित वस्तु, धन आदिके द्वारा कर्मजड़ अर्थात् अवैष्णवोंकी वञ्चनाकर भगवन्निवेदित वस्तुएँ वैष्णवको समर्पण करनी चाहिये।

(६) सत्क्रियासार-दीपिकामें लिखित प्रायश्चित्त होम वैगुण्य, अच्छिद्रवाचन नहीं कराये गये (उद्दिच्य कर्म छोड़ दिया गया)।

(७) वैष्णवहोममें गुरुपरम्पराका होम नहीं किया गया।

(८) वैष्णवहोमका घृत प्रत्येकके नामसे कुछ अंश अग्निमें और कुछ अंश एक पृथक् पात्रमें रखकर पिण्डदानके समय महाप्रसादके साथ वहाँ मिलाकर पिण्ड दिया गया। (किसी भी वैष्णव स्मृतिमें ऐसा नहीं देखा जाता)

(९) पृथक्-पृथक् दो पात्रोंमें अनिवेदित कच्चा चावल, दाल, नमक, आलू, कच्चा केला, घी प्रस्तुतकर इन दोनों पात्रोंको रासविहारीकी परलोकगता माताका नाम लेकर निवेदन किया गया तथा उनमेंसे एक सीधा स्मार्त ब्राह्मण कुलगुरुको ही दिया गया। उक्त स्मार्त ब्राह्मणने स्थण्डिलके भीतर एक पृथक् आसनपर बैठकर उसे ग्रहण किया। यह सर्वथा अनुचित है।

(१०) इस अनुष्ठानमें सत्क्रियासारके अनुसार श्रीवासुदेव–अर्चन तक नहीं कराया गया।

(११) इसमें शान्ति होम, प्रदक्षिणा आदि वैष्णव रीतियोंको छोड़ दिया गया।

(१२) पिण्डदान और भोगनिवेदन भी विधिके अनुसार नहीं हुआ।

(१३) ऐसा लगा कि इसमें प्रयुक्त मन्त्र भी कुछ पृथक् थे।

(१४) आचमन इत्यादि भी नहीं कराये गये।

(१५) दक्षिणकी ओर मुखकर प्रसाद दिया गया। यह उचित नहीं।

(सत्क्रियासार दीपिका १३१ पृष्ठ द्रष्टव्य है)

Sd/-- B.P. Keshab

10.11.47

१९४५ ई० में श्रील गुरुदेवने पूज्यपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीनरोत्तमानन्द भक्तिकमल, श्रीराधानाथ दासाधिकारी, प्रेमप्रयोजन ब्रह्मचारी आदिको बिहार प्रदेशके दुमका, साहिबगंज, राजमहल तथा भागलपुर अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार करने भेजा। साहिबगंजमें प्रचार करते समय श्रीनरोत्तमानन्द 'भक्तिकमल' का परिचय श्रीमन्नारायण तिवारीसे हुआ। उस समय वे वहाँके पुलिस ऑफिसमें कार्यरत थे। ब्रह्मचारीजीसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक हरिकथा श्रवणके पश्चात् इन्हें संसारसे उत्कट वैराग्य हो गया। कुछ दिनों तक किसी प्रकार कार्यरत रहनेपर भी वे सेवाकार्यसे अवसर ग्रहणकर दिसम्बर, १९४६ ई० में घरबार छोड़कर श्रीगौड़ीय मठ, नवद्वीपधाममें चले आये। अगले वर्ष १९४७ की नवद्वीपधाम परिक्रमाके पश्चात् गौरजन्मोत्सवके दिन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने इन्हें श्रीहरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। अब ये श्रीगौरनारायण 'भक्तिबान्धव' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान

२७ फरवरी, १९४८ ई० में श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मकी ५० वर्ष पूर्ति आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें श्रीव्यासपूजाका आयोजन किया गया। इसके उपलक्ष्यमें प्रथम दिवस श्रीव्यासपूजा तथा उसके क्रोड़ीभूत कृष्णपञ्चक, व्यासपञ्चक, श्रीब्रह्मादि

आचार्यपञ्चक, श्रीसनकादि-पञ्चक, श्रीगुरुपञ्चक तथा तत्त्वपञ्चककी पूजा, पुष्पाञ्जलि और होमका विराट रूपसे अनुष्ठान किया गया। सान्ध्यकालीन धर्मसभामें श्रील गुरुदेवने श्रीमद्भागवत ग्रन्थसे कृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी समाधि अवस्थामें प्राप्त तत्त्वदर्शनके प्रसङ्गकी व्याख्या की। तीसरे दिन जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी शुभाविर्भाव तिथिके अवसरपर उनकी सुसज्जित अर्चालेख्यका विधिवत् अर्चन होनेपर स्वरचित श्रील प्रभुपादकी आरतिका कीर्त्तन कराकर आरति करायी तथा उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तभीसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें प्रतिवर्ष इसी रीतिसे श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान विराट रूपसे प्रारम्भ हुआ।

श्रीलनरहरि सेवाविग्रह प्रभुका निर्याण

३० जनवरी, १९४८ ई॰ को नाथूराम गोडसेकी गोलीसे दिल्लीकी प्रार्थना सभामें महात्मा गाँधीजीका निधन हुआ। उसी दिन ब्रह्ममुहूर्त्तमें अजातशत्रु पूज्यपाद श्रीनरहरि ब्रह्मचारी सेवाविग्रह प्रभु भी श्रीनवद्वीपधाममें अप्रकट हुए। उस समय श्रील गुरुदेव मेदिनीपुरके विभिन्न अञ्चलोंमें प्रचार कार्यमें रत थे। जब वे १ फरवरीको चुँचुड़ामें लौटे, तो उन्हें श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी द्वारा प्रेरित टेलीग्रामके माध्यमसे यह हृदयविदारक संवाद मिला। इस मर्मान्तिक विरह संवादको सुनते ही वे पाषाणकी भाँति स्तब्ध रह गये। थोड़ी देर बाद बाह्य ज्ञान होनेपर विरहमें कातर होकर क्रन्दन करने लगे।

श्रीसेवाविग्रह प्रभु जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके आश्रित तथा उनके अन्तरङ्ग सेवकोंमेंसे अन्यतम थे। परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मसे उनका अत्यन्त बन्धुत्व भाव था। इन दोनोंने बहुत दिनों तक एक साथ रहकर विविध प्रकारसे श्रीधाम मायापुरकी सेवा की थी। श्रील प्रभुपाद इस प्रिय सेवकके ऊपर श्रीधाम मायापुरका सारा दायित्व देकर निश्चिन्त चित्तसे सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार करते थे। इन दोनोंने एक ही साथ गौड़ीय मठ छोड़कर श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना की थी। तबसे श्रील गुरुदेव भी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपका सारा दायित्व इनके ऊपर सौंपकर

श्रीनरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभु

निश्चिन्त चित्तसे सर्वत्र प्रचार करते थे। श्रील गुरुदेवने समितिके मुखपत्र श्रीगौड़ीय पत्रिकाके प्रथम वर्ष प्रथम अङ्कमें प्रकाशित विरहमांगल्य प्रबन्धमें इनके सम्बन्धमें लिखा है—

"विरहवेदना कुछ प्रशमित होगी इसलिए श्रीगुरुपादपद्म और उनके एकनिष्ठ सेवक ठाकुर नरहरि सेवाविग्रह प्रभुके अदर्शनजनित क्लेशलांछित लेखिनी आज प्रकम्पित होती हुई मन्थर गतिसे अग्रसर हो रही है।

"श्रील प्रभुपाद अपने अन्तरङ्ग विश्रम्भसेवक परमपूज्यपाद श्रीनरहरि ब्रह्मचारी सेवाविग्रहको पाकर बड़े प्रसन्न थे। वे इनपर अपने प्रियतम आकर मठराज श्रीचैतन्य मठका सारा दायित्व—सेवाभार सौंपकर निश्चिन्त हो जाते तथा आनन्दपूर्वक दूरातिदूर प्रदेशोंमें रहकर शुद्धभक्तिका प्रचार करनेमें बिन्दुमात्र भी दुविधा बोध नहीं करते थे। +++++ हे नरहरिदा! आपका सुमङ्गल श्रीनाम लेते ही आपकी नैरन्तर्यमयी हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा सभीके मानस-पटलपर स्वयं ही उदित हो पड़ती है। आप स्वयं ही श्रील प्रभुपादके प्रियतम श्रीचैतन्य मठस्वरूप हैं। आपके निकट रहनेसे हम सभी ऐसा समझते थे, मानो हम चैतन्य मठमें ही रह रहे हैं। आपने अक्रोध परमानन्दके रूपमें जो सेवाका आदर्श रख छोड़ा है, वही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एकमात्र लक्ष्य है।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी विरहतिथिमें उन्हींके द्वारा लिखित प्रबन्धावलीकी भूमिकामें श्रील गुरुदेवने परमसुहृद श्रील नरहरि ठाकुरको श्रील भक्तिविनोद-धारामें नित्य स्नात, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उज्ज्वल नक्षत्रके रूपमें वर्णन कर गौरवान्वित किया।

श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभु पूर्वी बङ्गालके यशोहर जिलेके अन्तर्गत देयाड़ा ग्रामके प्रसिद्ध वसु वंशमें आविर्भूत हुए थे। प्रारम्भिक जीवनमें अपने परिवारवालोंके साथ शक्तिमन्त्रमें दीक्षित थे। किन्तु बादमें वैष्णवसङ्गके प्रभावसे वे और उनके परिवारके अधिकांश सदस्य कृष्णमन्त्रमें दीक्षित होकर साधन-भजन करने लगे थे। अपने ज्येष्ठ भ्राताके परलोकगमन करनेपर उन्होंने संसार-आश्रमको त्यागकर जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादका चरणाश्रय ग्रहण

किया। श्रील प्रभुपाद इनकी चौमुखी सेवावृत्तिसे सन्तुष्ट होकर इन्हें श्रीचैतन्य मठका मठरक्षक नियुक्त किया। इनके प्रीतियुक्त मधुर व्यवहारके कारण मठवासी इन्हें 'गौड़ीय मठकी मैया' कहते थे। छोटे-बड़े सभी इन्हें 'नरहरिदा' सम्बोधन करते थे। ये कब सोते और कब जागते कोई नहीं देखता था। सदा-सर्वदा श्रीहरिनाम करते हुए मठकी विभिन्न प्रकारकी सेवाओंमें विभोर रहते थे। मठमें रहनेवाले छोटे बालकोंका मैयाकी भाँति पालन-पोषण करते थे। उन्हें समयपर उठाना, खिलाना, पिलाना इनकी नित्य सेवा थी। कभी-कभी गम्भीर रातमें सबके सो जानेपर एकान्त भजन कुटीमें बैठकर विप्रलम्भ भावसे श्रीहरिनाम करते थे। ऐसा सुना जाता है कि कभी-कभी वे अपनी चोटीको किसी ऊँची खूँटीमें बाँधकर हरिनाम करते, जिससे हठात् नींद न आ जाय। किसी भी मठवासीने उन्हें कभी क्रोधित होते हुए नहीं देखा। किसी समय किसीको विशेष कारणसे डाँटना-डपटना भी होता तो मुस्कराते हुए उसे बड़े दुलारसे मीठी-मीठी झिड़क देते।

एक समयकी बात है। श्रीगौरनारायण अभी मठमें नया आया हुआ था। नवयुवक तो था ही, शरीरमें पूरा जोश भी था। सवेरेका समय था। वहाँके ग्वाले सब्जी दूध आदि लेकर अपने मुहल्लेसे मठके मार्गसे सब्जीमण्डीमें जा रहे थे। श्रीसेवाविग्रह प्रभु श्रील नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीके साथ मठकी सेवाके लिए मठसे बाहर आकर सड़कके किनारे सब्जियोंका भाव-मोल कर रहे थे। वहाँके ग्वाले बड़े दुर्दान्त स्वभावके होते हैं। बात-ही-बातमें वे झगड़ने लगे और किसी प्रकार श्रीनरोत्तमानन्द प्रभुके सिरमें कुछ ऐसी लगी जिससे रक्त निकलने लगा। कुछ शोरगुल सुनकर गौरनारयण भी बाहर आया और प्रभुजीके सिरमें रक्त देखकर आपेसे बाहर हो गया। उसने मठ प्रांगणसे एक बाँसका टुकड़ा उठाकर उस उद्दण्ड ग्वालेके पीठपर ऐसा मारा कि वह बाँस टूट गया और ग्वाला गिर पड़ा। क्षणमात्रमें सैंकड़ों ग्वाले एकत्रित होकर मठपर आक्रमण करनेके लिए हो हल्ला मचाने लगे। पूज्यपाद श्रीमान् सेवाविग्रह प्रभुने धीर-शान्त होकर बड़ी कुशलतासे उस गम्भीर स्थितिको सँभाल लिया। गौरनारायणको पकड़कर मठके एक घरमें बन्द कर दिया तथा अकेले उस भीड़में आकर समझा-बुझाकर सबको शान्त किया। सेवाविग्रह प्रभुका

सबसे प्रीतिपूर्ण व्यवहार था। वे छोटे-बड़े सभीके घरोंमें जाकर हरिकथा कहते, उनके सुख-दुःखमें सम्मिलित होते थे। इसलिए इनके मधुर वचनोंसे वह सङ्कट टल गया।

श्रील गुरुदेव अपने अप्रकट काल तक उन्हें भूल नहीं सके। कहीं भी उनका प्रसङ्ग आनेपर वे विरहव्याकुल हो जाते थे। उनकी स्मृतिके लिए उन्होंने श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके विशाल प्रवेश द्वारका नाम 'श्रीनरहरि तोरण' रखा, जो आज भी विद्यमान है।

जगन्नाथपुरीमें मठ एवं पारमार्थिक मासिक पत्रिकाके प्रकाशका सङ्कल्प

श्रीक्षेत्रमण्डलकी परिक्रमाके पश्चात् ही पुरीके माननीय पंडा खुटियाजी तथा अनेक गुरुभाइयोंके पुनः-पुनः आग्रह करनेके कारण गुरुदेवको श्रीजगन्नाथ पुरीमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक शाखा मठकी स्थापनाकी इच्छा हो रही थी। १९४८ ई॰ में सप्ताह व्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और गौरजन्मोत्स्वके पश्चात् कलकत्तेके मठमें समितिके विशिष्ट सदस्योंकी एक सभामें यह निश्चय किया गया कि—

(१) श्रीजगन्नाथपुरीमें गौड़ीय वेदान्त समितिके एक शाखा मठकी स्थापना की जाये।

(२) आगामी कार्तिक महीनेमें श्रीद्वारका धामकी परिक्रमा की जाये।

(३) आगामी गौरपूर्णिमाके दिन गौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे उसके मुखपत्रके रूपमें एक पारमार्थिक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाये। उस पारमार्थिक मासिकका नाम 'श्रीगौड़ीय-पत्रिका' रखा जाये।

उसी दिनसे उपरोक्त सङ्कल्पोंकी पूर्तिके लिए श्रील गुरुदेवने प्रयास आरम्भ कर दिया। पत्रिकाके लिए block, rubber stamp, श्रील प्रभुपादका त्रिरङ्गा चित्र तथा गौड़ीय पत्रिका कार्यालयका sign board आदि प्रस्तुत करनेके निर्देश दिये गये।

कार्तिक माहमें उर्जाव्रत, नियमसेवाके लिए संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भक्तोंके साथ लगभग डेढ़ सौ यात्रियोंने द्वारका यात्रा सम्पन्न की। परिक्रमासंघने सर्वप्रथम मथुरा-वृन्दावनकी लीलास्थलियोंका

दर्शनकर जयपुरमें श्रीगोविन्द, गोपीनाथ, मदनमोहन एवं गलताजीके दर्शन किये। गलतामें वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्री सम्प्रदायके वैष्णवोंको एक महती विचारसभामें पराजितकर गौड़ीय वैष्णवोंकी विजयवैजयन्तीकी ध्वजा फहरायी थी। श्रील गुरुमहाराजने यहाँपर बड़ी ओजस्विनी भाषामें श्रीबलदेव विद्याभूषण एवं ब्रह्मसूत्र भाष्यके विषयपर भाषण दिया था। उन्होंने इस भाषणमें यह भी बतलाया कि श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी प्रेरणासे किन-किन युक्तियोंके बलपर यहाँपर प्रतिपक्षको पराजित किया था।

गलतागद्दी स्थित श्री सम्प्रदायके तत्कालीन महन्तजी आचार्यकेसरीके व्यक्तित्व एवं विचारोंसे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने सम्पूर्ण परिक्रमा संघको श्रीठाकुरजीका महाप्रसाद सेवन कराया। वहाँसे यात्रीगण पुष्कर, अजमेर, मेहसाना, मीरमगाँव, सुरेन्द्रनगर एवं ढोला होकर पोरबन्दर पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीसुदामा विप्रके मन्दिरका दर्शन किया और वहींसे जहाज द्वारा वेंट द्वारका पहुँचकर श्रीद्वारकेशजी, दाऊजी, रुक्मिणीजीके मन्दिरोंमें दर्शन किया। दूसरे दिन Sonavati नामक जलयानके द्वारा गोपी तालाब, नागेश्वर शिवका दर्शनकर गोमती द्वारका पहुँचे। वहाँ यात्रियोंने श्रीद्वारकाधीश, तोताद्री मठ, गोमती गङ्गाका दर्शन किया। तत्पश्चात् यात्रीगण मेहसाना, आगरा होकर अपने स्थानोंको लौट आये।

मेदिनीपुर एवं सुन्दरवनमें प्रचार

जनवरी, १९४९ ई॰ में श्रील गुरुमहाराजने श्रीदीनार्तिहर ब्रह्मचारी, श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी तथा श्रीगौरनारायण दासाधिकारीको साथ लेकर मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत जुखिया निवासी हरिचरण दासाधिकारीके घरमें शुभविजय किया। यहीं रहकर आस-पासके गाँवोंकी धर्मसभाओंमें सनातनधर्मके सम्बन्धमें सिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया।

जुखियामें रहते समय एक दिन प्रातःकाल श्रील गुरुमहाराजजीके साथ मिलनेके लिए मोहाटी ग्रामके क्षीरोदचन्द्र भुईयाँ (अवसरप्राप्त न्यायाधीश) उपस्थित हुए। घरके भीतर श्रील गुरुदेव श्रीनाममालिकापर हरिनाम कर रहे थे। घरके बाहर बरामदेमें सूर्यकी शीतकालीन मधुर-मधुर

किरणोंका सेवन करते हुए श्रीगौरनारायण दासाधिकारी किसी ग्रन्थका अनुशीलन कर रहा था। श्रीक्षीरोद बाबूने पास ही चटाईपर बैठते हुए प्रश्न किया—"क्या पढ़ रहे हो?"

गौरनारायण—"श्रीहरिभक्तिविलास पढ़ रहा हूँ।"

क्षीरोदबाबू—"इसके लेखक कौन हैं?"

गौरनारायण—"जगद्गुरु श्रील सनातन गोस्वामी।"

क्षीरोदबाबू—"तुमलोग जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य द्वारा रचित शाङ्कर भाष्यका अनुशीलन क्यों नहीं करते?"

गौरनारायण—"क्योंकि श्रील सनातन गोस्वामी श्रीशङ्कराचार्यसे अधिक प्रामाणिक व्यक्ति हैं।"

क्षीरोदबाबू—"क्या कहा! अत्यन्त आधुनिक सनातन गोस्वामी शङ्करके साक्षात अवतार, ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिखनेवाले, भारतके तत्कालीन समस्त आचार्योंको पराजित करनेवाले आचार्य शङ्करसे भी अधिक प्रामाणिक व्यक्ति हैं?"

गौरनारायण—"निःसन्देह। आचार्य शङ्कर भगवान्‌के गुणावतार—देवाधिदेव शङ्करके अवतार और भगवान्‌की विभूतियोंमेंसे एक हैं। 'वैष्णवानां यथा शम्भो'—भागवतके इस श्लोकके अनुसार वे भगवान्‌के परम भक्त और वैष्णवश्रेष्ठ हैं। दूसरी ओर श्रीसनातन गोस्वामी स्वयं भगवान् शचीनन्दनके परमप्रेष्ठ परिकर तथा श्रीराधाकृष्णकी परमप्रिया श्रीलवङ्ग मञ्जरी हैं। अतः सनातन गोस्वामीकी श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है।"

श्रीक्षीरोद बाबू इस उत्तरको सुनकर कुछ झेंप-से गये। इतनेमें श्रील आचार्यकेसरी बड़े वेगसे वहाँ उपस्थित हुए। वे घरमें श्रीहरिनाम करते हुए इस वाद-विवादको बड़े ध्यानसे सुन रहे थे। उनके आते ही इन दोनोंमें प्रबल दार्शनिक विचारयुद्ध होने लगा—

क्षीरोद बाबू—"आप इन ब्रह्मचारियोंको ब्रह्मसूत्रके शाङ्कर भाष्यका अनुशीलन क्यों नहीं कराते?"

गुरुदेव—"हम व्यासरचित ब्रह्मसूत्रके श्रीभाष्य, अणुभाष्य, गोविन्दभाष्य आदिका अनुशीलन तो कराते हैं, किन्तु आचार्य शङ्कर द्वारा रचित भाष्यका अनुशीलन नहीं कराते।"

क्षीरोद बाबू—“ऐसा क्यों? आचार्य शङ्कर शङ्करके अवतार हैं, फिर इनके रचित भाष्यका अनुशीलन क्यों नहीं कराते?”

गुरुदेव—“शङ्करके अवतार होनेपर भी उनके द्वारा रचित भाष्यके विचार सर्वथा कपोल-कल्पित हैं। भगवान्‌के आदेशसे तत्कालीन वेदविरोधी एवं ईश्वरविरोधी बौद्धोंका दमन करनेके लिए उन्होंने इस काल्पनिक प्रच्छन्न बौद्धवादका आश्रय लिया था। पुराणोंमें ऐसा स्पष्ट उल्लेख है—मायावादं असच्छास्त्रं।”

क्षीरोद बाबू—“क्या आपलोग शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित वेदके चारों महावाक्यों—अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, एकमेवाद्वितीयम् आदि वाक्योंको स्वीकार नहीं करते?”

गुरुदेव—“वेदों या उपनिषदोंमें ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि ये चार वाक्य ही महावाक्य हैं। यदि ऐसा है, तो आप प्रमाण दीजिये।”

क्षीरोद बाबू निरुत्तर होकर कुछ देर तक चुप बैठे रहे।

गुरुदेव—“ओंकाररूप प्रणव ही वेदका एकमात्र महावाक्य है। अन्य सभी प्रादेशिक वाक्य हैं अथवा वेदके सभी वाक्य ही महावाक्य हैं। क्या आप शङ्करके द्वारा स्थापित निराकार, निर्विशेष, निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्मको तथा श्रील वेदव्यास द्वारा प्रतिष्ठित सविशेष, सर्वशक्तिमान, निखिल अप्राकृत गुणोंके आश्रय, आनन्दमय ब्रह्मको एक समझते हैं?”

क्षीरोद बाबू—“क्यों नहीं, भारतके सभी बड़े-बड़े विद्वान शङ्करके मतका समर्थन करते हैं।”

गुरुदेव—“आचार्य श्रीरामानुज, मध्वाचार्य, निम्बादित्य, विष्णुस्वामी, बल्लभाचार्य, कुमारिल भट्ट आदि विद्वानोंने शङ्कर मतका सब प्रकारसे खण्डन किया है। इन सबने एक स्वरसे शङ्करके इस मतका खण्डन किया है कि निर्विशेष, निःशक्तिक, निराकार ब्रह्म कदापि आनन्दस्वरूप या आनन्दमय नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त प्रकारान्तरसे प्रच्छन्न बौद्धवाद ही है।”

क्षीरोद बाबू—“आपका यह कहना सर्वथा भ्रामक है। आचार्य शङ्करने स्पष्ट शब्दोंमें ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः’—इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। साथ ही उन्होंने ब्रह्मको आनन्दस्वरूप बतलाया

है। जीव मायामुक्त होनेपर ब्रह्ममें मिलकर एक हो जाता है तथा आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी अनुभूति करता है।"

गुरुदेव—"यह सिद्धान्त केवल आचार्य शङ्करकी कपोल कल्पना और शास्त्रविरुद्ध है। मैं उपरोक्त विचारोंमेंसे अभी आचार्य शङ्करके कल्पित 'ब्रह्म आनन्दस्वरूप है' इसका केवल युक्तियोंके आधारपर खण्डन करता हूँ। जीव ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्म हो जाता है तथा जगत् मिथ्या है, इनका पीछे खण्डन करूँगा। क्या बता सकते हैं कि आप निर्विशेष ब्रह्ममें क्यों लीन होना चाहते हैं?"

क्षीरोद बाबू—"क्योंकि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। इस ब्रह्ममें लय प्राप्त जीव आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है।"

गुरुदेव—"मैं कहता हूँ कि आचार्य शङ्करका निर्विशेष ब्रह्म विष्ठास्वरूप है। आपको इसमें आपत्ति क्या है? यदि कोई जीव आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें लयप्राप्त होता है, तब पृथक् रूपसे उसकी कोई अनुभूति नहीं रहती। निर्विशेष ब्रह्ममें यदि इच्छा, अनुभूति आदि कुछ भी नहीं है, तो फिर वह ब्रह्म होकर आनन्दकी अनुभूति कैसे कर सकता है। पृथक् सत्ता होनेपर ही आनन्दकी अनुभूति सम्भव है। उदाहरणस्वरूप चीनी मीठी होती है। कोई भी व्यक्ति चीनीका आस्वादनकर यह कह सकता है कि चीनी मीठी होती है। किन्तु वही व्यक्ति स्वयं चीनी बन जानेपर अपना मिठास कैसे अनुभव कर सकता है? उसी प्रकारसे कोई भी व्यक्ति स्वयं विष्ठा बन जाये, तो वह उसकी दुर्गंध कैसे अनुभव कर सकता है? इसीलिए निर्विशेष ब्रह्मको आनन्दस्वरूप कहो या विष्ठास्वरूप कहो, एक ही बात है। क्योंकि उसका पृथक् रूपसे कोई आस्वादक नहीं है।"

क्षीरोद बाबू सम्पूर्ण रूपसे निरुत्तर हो गये। वे श्रीगुरुदेवको प्रणामकर सिर नीचा किये हुए अपने निवासस्थानको लौट गये।

इस प्रकार हमलोगोंने श्रील गुरुपादपद्मके साथ रहकर बड़े-बड़े अद्वैतवादियोंके साथ उन्हें शास्त्रार्थ करते हुए देखा है। इनके गम्भीर व्यक्तित्व, ओजस्विनी भाषा, शास्त्रीय प्रमाण तथा प्रबल युक्तियोंके सामने सभी नतमस्तक हो जाते थे। प्रसङ्गके अनुसार हमलोग उन शास्त्रार्थोंका उल्लेख करेंगे।

सन्ध्या वेलामें पास ही एक विराट धर्मसभामें सनातनधर्मके सम्बन्धमें उनका बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ। उस सभामें लगभग दस-पन्द्रह हजार श्रोता लगभग ढाई घण्टे तक कठपुतलीकी भाँति चुपचाप बैठकर श्रद्धापूर्वक उनके वक्तव्यका श्रवण कर रहे थे। संक्षेपमें उनके वक्तव्यका सार यह था—वेद, उपनिषद्, वेदान्त सूत्र, श्रीमद्भागवत और गीतादि शास्त्रोंके अनुसार स्वयं-भगवान् ही सृष्टि-स्थिति प्रलयके मूल कारण एवं परतत्त्वकी सीमा हैं। उनका कभी भी जन्म-मरण या विनाश नहीं है। वे भूत, भविष्यत एवं वर्त्तमान तीनों ही कालोंमें विद्यमान रहनेके कारण पूर्ण सनातन तत्त्व हैं। 'सनातन' शब्दका अर्थ है—सदा+तन्=तीनों ही कालोंमें विद्यमान रहनेवाला। अतः सनातनधर्मका अर्थ है—सदाविद्यमान रहनेवाला धर्म। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/३२)

अर्थात् अहो! नन्दबाबा, यशोदा-मैया आदि व्रजवासी गोप-गोपियोंके धन्य भाग्य हैं। वास्तवमें उनका अहोभाग्य है; क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप श्रीकृष्ण उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं।

यहाँ कृष्णको सनातन परिपूर्ण ब्रह्म कहा गया है। दूसरी बात, जीवात्माको भी सनातन तत्त्व माना गया है क्योंकि अगणित आत्माएँ इन सनातन परमब्रह्म श्रीकृष्णके ही सनातन अंश हैं। गीतामें श्रीकृष्णने स्वयं ही उसे अपना सनातन अंश बतलाया है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

(गीता १५/७)

अर्थात् हे अर्जुन! मैं सर्वेश्वर हूँ। सारे जीव मेरे अंश हैं। और वे सभी नित्य सनातन हैं। वे घटाकाशकी तरह कल्पित या मिथ्या नहीं हैं। मुझसे विमुखहोकर मायाबद्ध होनेके कारण इस संसारमें मन एवं पाँच इन्द्रियोंके साथ घोर संघर्ष कर रहे हैं।

और भी देखिये—

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।

(गीता २/२४)

यह जीवात्मा अजर-अमर है। इसे अस्त्र-शस्त्र काट नहीं सकते। इसे आग जला नहीं सकती। जल भिगो नहीं सकता तथा वायु सुखा नहीं सकती। यह नित्य, व्यापक, अविकारी, स्थिर रहनेवाला और सनातन है।

इस प्रकार वैदिक शास्त्रोंके अनुसार दो सनातन तत्त्व हैं—एक अखण्ड पूर्णसनातन तत्त्व स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण एवं दूसरा खण्ड अणुसनातन जीवतत्त्व। बृहत्-चैतन्यस्वरूप श्रीकृष्णका स्वभावतः अवस्थान्तर नहीं है किन्तु जीव अणुसनातन तत्त्व होनेके कारण भगवत्-विमुख होनेपर उसका शुद्ध स्वरूप आवृत हो सकता है। किन्तु स्वरूपतः उसका धर्म शुद्ध और सनातन है। प्रेम ही जीवका नित्य सनातनधर्म है। कृष्णका दास्य ही वह नित्य विमल प्रेम है। इसलिए कृष्णदास्यस्वरूप प्रेम ही जीवका स्वरूपधर्म या सनातनधर्म है।

किन्तु माया द्वारा बद्ध होनेपर जीवका शुद्ध सनातन स्वरूपधर्म विकृत हो जाता है। ऐसी दशामें वह अपने स्थूल और लिङ्ग दोनों शरीरोंमें आत्मबुद्धिके कारण स्थूल एवं लिङ्ग शरीरके धर्मको ही अपना धर्म मानने लगता है। किन्तु इन दोनों शरीरोंका धर्म नश्वर एवं परिवर्तनशील है। ये सनातनधर्म नहीं है। मैं हिन्दू हूँ, मुसलमान हूँ, ईसाई हूँ, सिक्ख हूँ, बौद्ध हूँ और मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ—यह स्थूल शरीरका परिचय है। इसलिए ये सब स्थूल धर्म सनातन नहीं हैं। आजकल संसारमें शुद्ध तत्त्वज्ञानके अभावके कारण शुद्ध सनातनधर्मका अधिक प्रचार नहीं है। यथार्थतः जीव एवं ईश्वरमें सेवक एवं सेव्यका सम्बन्ध ही नित्य और सनातन है और यही सम्बन्ध सनातनधर्म कहलाता है। इसी सनातनधर्मको शास्त्रोंमें कहीं-कहीं भागवतधर्म या वैष्णवधर्म भी कहा गया है।

इसके पश्चात् श्रीलगुरुदेव श्रीनगेन्द्रगोर्वधन ब्रह्मचारी एवं श्रीगणेशदासके साथ, कुलबाड़ी, हांसचौड़ा, पिछलदा, झीनुकखाली,

नरघाट, तेरपेख्या और वहाँसे बोटके द्वारा पूरी पार्टीके साथ गदामथुरा सप्तम खण्ड, पुनः गदामथुरा पञ्चम, षष्ठ और अष्टम खण्ड, आईप्लाट प्रथमखण्ड, केदारपुर, आईप्लाट द्वितीय खण्ड और सूर्यपुर आदि नाना स्थानोंमें शुद्ध सनातनधर्म—शुद्ध भक्तिधर्मका विपुल रूपसे प्रचारकर लगभग डेढ़ माहके बाद चुँचुड़ा मठमें लौटे।

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवके अवसरपर श्रीगौड़ीय पत्रिकाका आत्मप्रकाश

मार्च, १९४९ ई० में श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपमें बड़े समारोहके साथ परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। इसी

श्रीगौड़ीय पत्रिकाका प्रथम अङ्क

श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी
'भक्तिशास्त्री' 'भक्त्यालोक'

अवसरपर गौरपूर्णिमाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुखपत्र पारमार्थिक मासिक 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' ने आत्मप्रकाश किया। इसके प्रथम वर्ष प्रथम अङ्कके प्रच्छदपटके ऊपरी भागमें पद्म, गदा, शङ्ख, चक्रसे परिवेष्टित करताल और मृदङ्गके ऊपर श्रीपत्रिकाका नाम अङ्कित था। उसके नीचे श्रीसरस्वती प्रभुपादकी आलेख्यमूर्त्ति थी। प्रतिष्ठाता एवं नियामक-परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज, सम्पादक—श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी, 'भक्तिशास्त्री' 'भक्त्यालोक'; प्रचार-सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिकुशल नारसिंह महाराज और पण्डित श्रीमद् जगन्नाथबल्लभ बाबाजी महाराज; सहकारी सम्पादक—महोपदेशक पण्डित श्रीपाद् नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल' 'भक्तिशास्त्री', पण्डित श्रीयुत् नामवैकुण्ठ दासाधिकारी, पण्डित श्रीयुत् राधानाथ दासाधिकारी, पण्डित श्रीयुत् गौरनारायण दासाधिकारी; कार्याध्यक्ष पण्डित कृष्णकारुण्य ब्रह्मचारी 'भक्तिमण्डप'; श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी द्वारा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पोस्ट चुँचुड़ा (हुगली) से प्रकाशित तथा शान्ति प्रेससे मुद्रित। श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी वन्दनाके साथ श्रीपत्रिकाका मङ्गलाचरण या शुभारम्भ हुआ है। "विरह-माङ्गल्य" नामक प्रबन्ध विप्रलम्भ-रसमय-विग्रह श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके भावोंमें विभावित महामहावदान्य नित्यमुक्त परमहंसोंके आनुगत्यमें श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीकी स्वारसिकी सेवाकी आकांक्षा करता है। इसके अतिरिक्त इसमें जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके दार्शनिक प्रबन्ध और श्रीलगुरुदेवके द्वारा लिखित "श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव", "श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य" आदि गवेषणामूलक प्रबन्धादि श्रीपत्रिकाकी सौन्दर्यवृद्धि कर रहे हैं।

श्रीपत्रिकाका प्रथम वर्ष, प्रथम अङ्क श्रीधामपरिक्रमाके प्रथमदिवस सर्व विघ्नविनाशक श्रीनृसिंहदेव (देवपल्ली स्थित) के चरणकमलोंमें तथा अन्तिमदिवस श्रीधाममायापुरमें स्थित श्रील प्रभुपादके समाधि मन्दिरमें श्रील प्रभुपादके करकमलों समर्पित हुआ। इसके पश्चात् वैष्णवगण बड़े आग्रहके साथ इसका वार्षिक सदस्य बननेके लिए आग्रहपूर्वक अपना नाम लिखवाने लगे।

श्रीअयोध्याधाम, नैमिषारण्यकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत

सन् १९४९ ई॰ के अप्रैल महीनेमें मेदिनीपुर जिलाके केसियाड़ी श्रीगौराङ्ग मठके प्रतिष्ठाता एवं अध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराजके सादर निमन्त्रणपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और सभापति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अपने बहुत-से परिकरोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज, श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज तथा अन्यान्य संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ वैष्णव उपस्थित थे। वहाँसे लौटकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें समारोहपूर्वक श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव तथा श्रीरथयात्रा महोत्सव सम्पन्न करवाया।

इसी वर्ष कार्तिक महीनेमें श्रीअयोध्या व नैमिषारण्यकी परिक्रमा तथा वहीं ऊर्जाव्रत—नियमसेवा सम्पन्न हुई। श्रीमन्महाप्रभु (विग्रह) एवं यात्रीगण अयोध्याके प्रसिद्ध स्थान लक्ष्मण किलेमें ठहरे। यह स्थान पवित्र सरयुके तटपर अत्यन्त रमणीय स्थल है। यह किला आज भी प्राचीनयुगके ऐतिह्यकी साक्षी दे रहा है। समितिके प्रतिष्ठाता श्रीलगुरुदेव धाममाहात्म्य श्रवण कराते तथा सारी व्यवस्थाओंका सञ्चालन भी करते। महोपदेशक श्रीपाद् नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिशास्त्री भक्तिकमल' प्रभु नियमित रूपसे श्रीमद्भागवत पाठ तथा छायाचित्रके माध्यमसे भाषणकर श्रोतृमण्डलीको विशेष रूपसे आकर्षित करते। यात्रियोंने श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें अयोध्याधाममें श्रीरामचन्द्रजीकी जन्मभूमि, श्रीरामदरबार, कनकभवन, हनुमानगढ़ी, द्वादशमन्दिर, वाल्मीकि भवन, दर्शनेश्वरनाथशिव,

पापमोचनघाट, स्वर्गद्वार, नागेश्वर महादेव, ब्रह्मघाट, श्रीसूर्यकुण्ड, गोप्तारघाट आदि प्रसिद्ध स्थानोंका दर्शन किया।

अयोध्यामें बीस दिन निवास करनेके पश्चात् परिक्रमासंघ बालामउ जंक्शनसे होकर नैमिषारण्य पहुँचा। वहाँ सर्वप्रथम सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद द्वारा स्थापित परमहंस गौड़ीय मठका दर्शनकर स्थानीय बड़ी धर्मशालामें आश्रय ग्रहण किया। वहाँ श्रील सभापति महाराजने श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीसनातन-शिक्षाका पाठ करते हुए बतलाया कि अनधिकारी लोगोंके लिए निर्जन स्थलमें भजन करना हानिकारक होता है। उस निर्जन-भजनमें अपनेसे श्रेष्ठ तत्त्वदर्शी वैष्णवका सङ्ग न होनेके कारण उनका उच्चरित नाम सदा अनर्थमय होता है। सङ्गके अभावमें शुद्धभक्तिका स्वरूप भी वे नहीं समझ पाते। उन्नत वैष्णवोंके सङ्गमें भजन ही निर्जन-भजन कहलाता है। उन्नत सङ्गके बिना शुद्ध कृष्णभक्ति कदापि नहीं प्राप्त की जा सकती है—भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते। गोष्ठानन्दी एवं विविक्तानन्दी—कोई भी निर्जन-भजन नहीं करते। निर्जनमें भजन करनेवाले विविक्तानन्दी भी गोष्ठानन्दीके श्रीनाम-प्रेमप्रचारके सहायक होते हैं तथा उनके अनुकूल भावोंका पोषण करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुका श्रीसनातन गोस्वामीके लिए ही नहीं, अपितु सभी भक्ति साधकोंके लिए यह स्पष्ट आदेश और निर्देश है कि वे लुप्त तीर्थोंका उद्धार, श्रीविग्रहसेवाका प्रकाश, भक्तिशास्त्रका प्रणयन तथा नामप्रेमका प्रचार करें। इसीलिए श्रीरूप-सनातन गोस्वामी आदि जैसे उन्नत वैष्णवगण भी उक्त भक्ति कार्योंका सम्पादन करनेके लिए परस्पर इष्टगोष्ठीमें सम्मिलित होते थे। आजकल बहुत-से कोमल श्रद्धावाले साधक निर्जनमें भजन करनेका स्वाङ्ग करते हैं, किन्तु कुछ ही दिनोंमें पथभ्रष्ट होकर भजनराज्यसे गिर जाते हैं।

सभापति श्रील गुरुमहाराजने नैमिषारण्य स्थित श्रीव्यासगद्दी स्थानपर गम्भीर दार्शनिक तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उन्होंने भागवत-गुरुपरम्पराकी व्याख्या करते हुए अन्वय-व्यतिरेकभावसे भगवत्-तत्त्वकी व्याख्या की। साथ ही श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी महिमाका वर्णन किया। श्रीमद्भागवत श्रील वेदव्यासकी सर्वोत्तम कृति है। यह ब्रह्मसूत्रका यथार्थ अर्थ, महाभारतका तात्पर्य निर्णय, गायत्रीका भाष्य तथा वेदरूपी कल्पवृक्षका

परिपक्व रसमयफल है। जो इस रससुधाका रसास्वादन कर चुका है, वह किसी भी अन्यशास्त्रोंमें रम नहीं सकता। इस ग्रन्थमें सार्वजनिक, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक निखिल समस्याओंका आश्चर्यजनक समाधान प्राप्त किया जा सकता है। श्रील व्यासदेवने इसे भक्ति द्वारा पवित्र हृदयमें समाधिके द्वारा प्राप्त किया था। यह कोई ग्रन्थ नहीं, बल्कि श्रीकृष्णका शाब्दिक अवतार है।

नैमिषारण्यमें यात्रियोंने ब्रह्मकुण्ड, गङ्गोत्री, दशाश्वमेध घाट, गोमतीगङ्गा, यज्ञवराह कूप, श्रीलक्ष्मीनृसिंहदेव, चक्रतीर्थ आदिका दर्शन किया। मिश्रिकतीर्थमें यात्रियोंने सीताकुण्ड, वाल्मीकि आश्रम, सीतादेवीका पाताल प्रवेश स्थान, दधीचिमुनिका आश्रम आदि स्थानोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् नियमसेवा—कार्तिकव्रत पूर्ण होनेपर यात्रीगण अपने-अपने स्थानोंको लौट गये।

श्रीसेतुबन्ध रामेश्वरकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत

अगले वर्ष १९५० ई॰ में कार्तिक नियमसेवाके उपलक्ष्यमें सेतुबन्ध रामेश्वरकी परिक्रमा सम्पन्न हुई। समितिके प्रतिष्ठाता सभापति महाराजके आनुगत्यमें लगभग दो सौ श्रद्धालुभक्तोंने श्रीगौर-पदाङ्कपूत दक्षिणभारतके विभिन्न तीर्थस्थानोंमें परिक्रमा करने तथा वहाँ कार्तिकव्रत पालन करनेका सुयोग प्राप्त किया। हावड़ा स्टेशनसे यात्रा आरम्भकर सर्वप्रथम पुरीधाम तत्पश्चात् सिंहाचलम, मङ्गलगिरि, मद्रास (चेन्नई), चिगंलपुट, कांजीवरम, चिदम्बरम, सीयालि, मायाभरम, तीरुमेडामारुडू, कुम्मकोणम, पापनाशनम, तांजोर, रामेश्वरम, धनुष्कोडी, श्रीवैकुण्ठम, तेरुचण्डूर, कन्याकुमारी, सुचिन्द्रम, तीरुवन्तर, त्रिवेन्द्रम, वरकला, शङ्करनारायणकैल, श्रीमिलीपुत्तर, मदुरा, पालनी, श्रीरङ्गम, वृद्धाचलम, तिरुमिन्नामलई, तिरुपति, तिरुमलई, तिरुचाणुर, कलहसीके दर्शन एवं पक्रिमाके पचशत् गुन्टूर जंक्शन पहुँचे। वहाँसे यात्रीगण हावड़ा स्टेशन लौटे। एक माह तक साधुसङ्गमें सङ्कीर्त्तन और हरिकथाके माध्यमसे कार्तिकव्रत पालनकर तथा विभिन्न रमणीक एवं दुर्लभ तीर्थस्थलोंका दर्शनकर श्रीगुरुमहाराजके प्रति कृतज्ञ होनेके कारण अश्रुपूरितनेत्रोंसे भावविभोर होकर सभी भक्तगण अपने-अपने स्थानोंको लौटे। उन्होंने विदा होते समय श्रीगुरुदेवके चरणोंमें गिरकर

यह आशीर्वाद माँगा कि आप कृपा करें कि बहुत शीघ्र ही हमें ऐसा ही वैष्णवसङ्ग प्राप्त हो जिससे हम शुद्धभक्तिके पथपर क्रमशः अग्रसर हो सकें।

आनन्दपाड़ामें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव

२६ दिसम्बर, १९५० ई० में श्रील गुरुमहाराज लगभग पन्द्रह मठवासियोंके साथ जिला चौबीस परगनाके अन्तर्गत आनन्दपाड़ा नामक शरणार्थीपल्लीमें जगद्गुरु श्रीलसरस्वती प्रभुपादकी तिरोभाव तिथिके उपलक्षमें सात दिनों तक श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया। उनकी ओजस्विनी हरिकथाको सुनकर उस अञ्चलमें रहनेवाले श्रद्धालु लोग बड़े प्रभावित हुए। परमाराध्य श्रील गुरुदेवके इस भाषणका सार संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है—

आपलोगोंमेंसे अधिकांश अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिए पूर्वी बङ्गालको त्यागकर यहाँ भारतमें आये हैं। भगवान्‌का शासन जीवोंके लिए सदा ही कल्याणजनक होता है। केवलमात्र अन्न और वस्त्रकी व्यवस्था करना ही मानव जीवनका उद्देश्य नहीं है। यवनोंका आचार-विचार, वेशभूषा, भावभङ्गी तथा उनकी विचारधाराको ग्रहणकर केवल मुखसे 'मैं हिन्दू हूँ'—यह कहनेसे हिन्दू नहीं हुआ जाता। हिन्दुओंके सनातनधर्मके आचार-विचारोंका यथार्थ रूपमें पालन करनेसे ही हम हिन्दू हो सकेंगे। अपने धर्मके प्रति श्रद्धा और निष्ठाका अभाव ही आज हिन्दू समाजकी दुर्दशाका यथार्थ कारण है। पाश्चात्य शिक्षा एवं पाश्चात्य लोगोंके संस्पर्शसे आज हिन्दू समाज अपने धर्मको भूलकर अपना व्यक्तित्व त्याग रहा है। आज उसकी दुर्दशाका यही मूल कारण है। ऐसी दशामें हिन्दुओंका अधःपतन अनिवार्य है। हम हिन्दू आज धर्मके लिए अपने प्राणोंका उत्सर्ग करना भूल गये हैं। हम श्रीराम एवं श्रीकृष्णके आदर्शों और उनकी शिक्षाओंको भूलकर विपरीत दिशामें जा रहे हैं। धर्म आचरणका विषय है। केवल मुखसे ही धर्म माननेसे नहीं चलेगा। हमारे सामने जो दुर्दिन आ रहे हैं, उसमें यदि हम अपने धर्मके विषयमें इस प्रकार उदासीन रहे, तो उसका दुष्परिणाम हमें ही भोगना पड़ेगा।

प्रत्येक व्यक्तिका घर एक-एक आश्रम है। वहाँ हम भगवद्भक्तिका अनुशीलन करनेके लिए निवास करेंगे। केवलमात्र आहार, निद्रा, भय और मैथुनमें संलग्न रहनेके लिए ही घरमें रहना नरकमें वास करनेके समान है। तामसिक पदार्थोंके सेवनसे जीव अधिकतर भगवत्-विमुख होता जाता है। इसलिए प्याज, लहसन, माँस-मछली, मद्य तथा धूम्रपान आदि तामसिक वस्तुओंका वर्जन करना एकान्त कर्त्तव्य है। धर्मकी भित्तिपर ही नयी-नयी पल्लियों या ग्रामोंका गठन होना उचित है। इन नयी पल्लियोंका मेरुदण्ड धर्म होना चाहिये। धर्मके बिना मनुष्य चतुष्पद पशुके समान है। धर्मके आचरणसे ही मनुष्य लौकिक एवं पारलौकिक रूपसे सुखी रह सकता है।

वसीरहाटमें सनातनधर्मका प्रचार तथा श्रीचट्टोपाध्याय महाशयके प्रतिवादका उत्तर

श्रील गुरुमहाराजने सन् १९५० ई॰ में श्रीमेदिनीपुर, नरघाट, शीतलपुर, हल्दिया, तमलुक, चौबीस परगनाके बाजीपुर, वसीरहाट आदि विभिन्न स्थानोंमें श्रीसनातनधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया। वसीरहाटकी विराट धर्मसभामें आचार्यकेशरीने सिंहगर्जनके साथ सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए प्रच्छन्न बौद्धवादी आचार्य शङ्करके अवैदिक केवलाद्वैतवादके असार एवं वेदविरुद्ध अर्वाचीन विचारोंका खण्डन किया। उन्होंने कहा भगवद्भक्ति ही सनातनधर्म है। जीवमात्र स्वरूपतः भगवान्‌का दास है। इसलिए भगवत्-दास्य ही भूत, भविष्यत एवं वर्त्तमान तीनों कालोंमें वर्त्तमान रहनेवाला सनातनधर्म है। इसीको वैदिकधर्म, भागवत धर्म एवं वैष्णवधर्म भी कहते हैं। जीव एवं जगत् कदापि मिथ्या नहीं है। जीव भगवान्‌का शाश्वत अंश है तथा जगत् भगवान्‌की अपरा प्रकृतिसे प्रकटित परिवर्तनशील एवं नश्वर होते हुए भी सत्य है। स्वप्नकी भाँति अथवा रज्जुमें सर्पकी भाँति मिथ्या या भ्रममात्र नहीं है। शङ्करका विचार अत्यन्त स्थूलबुद्धिवाले लोगोंके लिए ही आदरणीय है। शाङ्कर दर्शन असार एवं युक्तिविरुद्ध है—ऐसी शिक्षा हम वेदान्त समितिके बालकोंको दिया करते हैं।

श्रीगौड़ीय पत्रिका द्वितीय वर्षके चतुर्थ अङ्कमें श्रील गुरुमहाराज द्वारा प्रदत्त भाषणका सारांश प्रकाशित हुआ था। उसे पढ़कर टाटानगरके श्रीसत्यभूषण चट्टोपाध्याय महोदयने उसका प्रतिवाद करते हुए एक पत्र दिया था। श्रील गुरुमहाराजने शास्त्रयुक्ति एवं सिद्धान्तके अनुसार उनके पत्रका जो उत्तर दिया था, उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"विश्ववासी सुशिक्षित सम्प्रदायको तत्त्वदर्शनकी सत्यता उपलब्धि करनेके लिए आह्वान करना किसीको किसी रूपसे चुनौती देना नहीं है, बल्कि इस समय आचार्य श्रीशङ्करके अद्वैतवाद या मायावाद विचारकी अपेक्षा गौड़ीय वैष्णवोंके अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तकी उत्कर्षताके सम्बन्धमें तुलनमूलक समालोचना ही की गयी है। विशुद्ध वैष्णवगण आचार्य श्रीशङ्करके विचारोंके प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं रखते। मिश्रवैष्णव अभिमानी किसी-किसीमें मायावादके प्रति श्रद्धा देखी जाती है। हम वैष्णव संन्यासी हैं। समाज संस्कारको धर्मसंस्कारके अन्तर्गत मानते हैं। शिक्षित समाजको उसके कल्याणके लिए किसी विषयकी सत्यताको समझानेका हमें अधिकार है। सत्यका प्रचार करते समय किसी-किसीको कुछ बुरा लग सकता है, क्योंकि वह असत्यको ही सत्य समझ रहा है। किन्तु यथार्थमें हम किसीको कभी भी उद्वेग देना नहीं चाहते। हम तो यही कहना चाहते हैं कि श्रीचैतन्यमहाप्रभुका आचार और विचार समग्र पृथ्वीमें सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ है। हमलोग आचार्य श्रीशङ्करके निन्दक नहीं हैं। किन्तु उनके द्वारा प्रदर्शित विचारयुक्ति—मतवादकी सर्वतोभावेन प्रशंसा करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं।"

श्रील गुरुदेवके इस पत्रको पाकर श्रीचट्टोपाध्याय महाशयने मायावादके सिद्धान्तोंके विषयमें बहुत-से प्रश्न किये, जिनके उत्तर श्रीगौड़ीय पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित हुए हैं।

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव, नवनिर्मित गृहमें श्रीविग्रहोंका प्रवेश

मार्च, १९५१ ई० में सप्ताहव्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। उस अवसरपर केवल

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें सेवित विग्रहगण

श्रीमन्महाप्रभु, श्रीश्रीराधा-विनोदविहारी

श्रीकोलदेव

श्रील प्रभुपाद

बङ्गालके ही नहीं, अपितु भारतके विभिन्न प्रदेशोंसे श्रद्धालु यात्रियोंने अनुष्ठानमें योगदान किया था। परिक्रमाके नियामक श्रील गुरुमहाराजकी सुन्दर व्यवस्थासे सभी यात्रियोंने हरिनाम-सङ्कीर्त्तन एवं हरिकथाके माध्यमसे श्रीमन्महाप्रभुकी लीलास्थलियोंके दर्शन एवं परिक्रमाका सौभाग्य प्राप्त किया।

अभी तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ एक किरायेके मकानमें स्थापित था। उस छोटे-से मकानमें ही श्रीविग्रहोंका अर्चन-पूजन होता तथा वहींसे श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाकी सारी व्यवस्था होती थी। यात्रियोंको पासके किसी मैदानमें शिविरोंमें ठहाराया जाता था। उस वर्ष समितिने अपने संग्रहीत विशाल प्राचीर द्वारा परिवेष्टित विस्तृत भूखण्डमें परिक्रमाकी सारी व्यवस्था की। उसमें एक ओर एक श्रीमन्दिर, सेवकखण्ड एवं भोगशालाका निर्माण हुआ था। परिक्रमासे पूर्व नगर-सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रीविग्रहोंको इस नये श्रीमन्दिरमें पधराया गया तथा इसी भूखण्डमें एक ओर यात्रियोंके ठहरनेके लिए बहुत-से शिविरोंकी व्यवस्था की गयी थी।

श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा उत्सवमें अन्यान्य संन्यासियोंके साथ
श्रीआचार्यकेसरी

हुगली जिलाके अन्तर्गत श्रीरामपुर निवासी परम भागवत श्रीयुत हरिपद दासाधिकारी एवं उनकी भक्तिमती सहधर्मिणी श्रीमती ज्ञानदासुन्दरीदेवी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके विशाल भूखण्डकी बहुत लम्बी प्राचीर एवं श्रीमन्दिर निर्माणके लिए प्रचुर अर्थकी व्यवस्थाकर श्रील गुरुमहाराजके प्रचुर आशीर्वादके पात्र हुए हैं। भगवत्-सेवाकी उनकी आदर्श सेवा-प्रचेष्टा सुकृतिशाली व्यक्तियोंके लिए प्रेरणादायक है।

श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी प्रभुका वेशाश्रय

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल प्रचारकेन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके रक्षक श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी प्रभु, वर्धमान जिलेके अन्तर्गत सीधाबाड़ी ग्राममें सिद्धवाड़ी गौड़ीय मठमें गृहादि निर्माणके कार्यकी व्यवस्थाके लिए वहाँ आये हुए थे। बादमें १९५१ ई॰ में श्रीगुरुमहाराज भी वहाँ स्वयं उपस्थित हुए। ११ मई, १९५१ ई॰ के शुभदिन नवनिर्मित मठमें गृहप्रवेशके दिन श्रीपाद ब्रह्मचारीजीने श्रील गुरुमहाराजके निकट वेशाश्रय (बाबाजी वेश ग्रहण) किया।

श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी पहले हुगली जिलाके अन्तर्गत जिराट-बालागढ़ ग्रामके विख्यात मुखर्जी परिवार (सर आशुतोषमुखर्जी) के शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। इनका पूर्वाश्रमका नाम श्रीत्रिगुणनाथ मुखोपाध्याय था। वेशग्रहण करनेके पश्चात् वे श्रीमत् त्रिगुणातीतदास बाबाजी महाराजके नामसे परिचित हुए। वे जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीपादके दीक्षित एकनिष्ठ सेवकोंमें अन्यतम थे। उन्होंने आकुमार ब्रह्मचारी रहकर निष्ठापूर्वक श्रील प्रभुपाद व उनके स्थापित श्रीगौड़ीय मठ मिशनकी जिस प्रकारसे सेवा की है, वह सबके लिए आदर्शस्वरूप है। उनका त्याग, वैराग्य एवं सेवा विशेष रूपसे अनुसरणीय है। एकनिष्ठ गुरुसेवक श्रीपाद अनङ्गमोहन ब्रह्मचारीकी अस्वस्थ अवस्थामें उन्होंने जिस प्रकारसे प्रीतिपूर्वक सेवा शुश्रूषा की है, वह भी वैष्णवोंके लिए एक आदर्श है, साथ ही वैष्णवजगत्में अत्यन्त विरल भी है। हम प्रसङ्गवशतः यह पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि उन्होंने समितिको अपना श्रीगौराङ्ग प्रिन्टिङ्ग प्रेस उसके उपकरणों सहित प्रदान कर दिया था।

विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

श्रीसिद्धबाटी गौड़ीय मठमें वास करते समय पांजनीया ग्राम निवासी श्रीयुतभागवत दासाधिकारी महोदयकी विशेष प्रार्थनासे उक्त ग्राममें प्रबल भावसे तीन दिनों तक भक्तिका प्रचार किया गया। तत्पश्चात् चौबीस परगना जिलेके अन्तर्गत काकद्वीप, कलारचक, सरबेड़िया, एकतारा, डाइमंड हारवर, चांदनगर, मथुरापुर, कांशीनगर आदि स्थानोंमें श्रीसनातन वैष्णवधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया गया।

इसी वर्ष कार्तिक माहमें चौरासी-क्रोस व्रजमण्डल परिक्रमा (द्वितीयबार) और ऊर्जाव्रतका अनुष्ठान हुआ। श्रीलगुरुदेव संन्यासी, ब्रह्मचारी और गृहस्थ भक्त—कुल दो सौ यात्रियोंके साथ हावड़ा स्टेशनसे यात्राकर गया, काशी और प्रयाग आदि तीर्थ स्थलियोंका दर्शनकर मथुराधाममें उपस्थित हुए। गयामें यात्रियोंने श्रीगदाधरपादपद्म, फल्गुतीर्थ, बोधगया तथा श्रीगौड़ीय मठ; काशीमें श्रीसनातन शिक्षास्थली, श्रीविश्वनाथ मन्दिर, वेणीमाधव, अन्नपूर्णा, दशाश्वमेध घाट एवं मनिकर्णिका घाट तथा प्रयागमें श्रीरूप गौड़ीय मठ, त्रिवेणीसंगम, श्रीबिन्दुमाधव, श्रीरूप शिक्षास्थली, दशाश्वमेधघाट आदिका दर्शन किया।

मथुरामें परिक्रमा संघने हेलनगंजवाली बड़ी धर्मशालामें दो-चार दिन निवासकर मथुराके प्रसिद्ध विश्रामघाट, द्वारिकाधीश, गतश्रम टीला, ध्रुव टीला, पिप्पलेश्वर महादेव, रङ्गेश्वर महादेव, भूतेश्वर महादेव, गोकर्णेश्वर महादेव, श्वेतवराह, कृष्णवराह, सप्तऋषि, दीर्घविष्णु, श्रीपद्मनाभ, कृष्णजन्मभूमि, कंसकारागार आदिका दर्शन किया। तत्पश्चात् श्रील सरस्वती प्रभुपादके पदाङ्कका अनुसरण करते हुए द्वादशवनात्मक श्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमा आरम्भ की। यमुनाके पश्चिमी तटपर स्थित (१) वृन्दावन, (२) मधुवन, (३) तालवन, (४) कुमुदवन, (५) बहुलावन, (६) काम्यवन, (७) खदीरवन, तथा पूर्वी तटपर स्थित (८) भद्रवन, (९) भाण्डीरवन, (१०) बेलवन, (११) लौहवन, (१२) महावनकी परिक्रमा करते हुए उन स्थानोंमें कृष्ण-लीलास्थलियोंका दर्शन किया। उस परिक्रमामें श्रीगोवर्धनमें विराट रूपसे अन्नकूट महोत्सव सम्पन्न हुआ तथा श्रीगिरिराज, श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड, वृन्दावन,

नन्दगाँव, वरसानाकी पृथक् रूपसे परिक्रमा भी की गयी। यात्रियोंके आहार और वासस्थान आदिकी सारी व्यवस्था समितिकी ओरसे की गयी थी, जिससे यात्री निश्चिन्त होकर एकाग्र चित्तसे धाममाहात्म्य एवं भक्तिग्रन्थोंका श्रवण कर सकें।

परिक्रमा एवं व्रतकी समाप्ति होनेपर यात्रीलोग अश्रुपूरित नेत्रोंसे अपने अपने घरको लौटे।

श्रीव्यासपूजापद्धति-ग्रन्थ संग्रह तथा उसका प्रकाशन

फरवरी सन् १९५२ ई॰ की माघी कृष्णातृतीयासे माघी पञ्चमी तक तीन दिवस-व्यापी श्रीश्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। श्रील गुरुमहाराजजीने अपनी आविर्भाव तिथिके उपलक्षमें प्राप्त अभिनन्दन एवं पुष्पाञ्जलियोंके प्रत्युत्तरमें बहुत ही मूल्यवान उपदेश प्रदान किया। उन्होंने कहा त्रिदण्डिसंन्यासी अपने-अपने जन्मदिवसपर श्रीगुरुपूजा करेंगे। गुरुपूजाके साथ गुरु-परम्परा, श्रीराधाकृष्णयुगल तथा सपरिकर शचीनन्द श्रीगौरहरिकी पूजा भी आवश्यक है। व्यासपूजा, गुरुपूजा, आचार्यपूजा, उपास्यपूजा एक ही तत्त्वकी पूजा है। कृष्णपञ्चक शब्दका अर्थ पाँच प्रकारकी कृष्णपूजासे नहीं है, बल्कि उनके पाँच प्रकारके प्रकाश या विलासको ही लक्ष्य करता है।

आचार्य श्रीशङ्करकी व्यासपूजा यथार्थ व्यासपूजा नहीं है। वह तो पूजाका भानमात्र है। भारतमें वैयासिकी सम्प्रदाय ही सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ है। भारत एवं भारतवासी व्यासदेवके ऋणी हैं। किन्तु वर्त्तमान समयमें व्यासके प्रति भारतके शिक्षित सम्प्रदायका अनादर देखा जा रहा है। यह बड़े परितापका विषय है। इसीलिए गौड़ीय वेदान्त समिति भारतके विभिन्न स्थानोंमें बड़े उत्साहके साथ श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान कर रही है।

श्रील सरस्वती प्रभुपादने श्रीपुरीस्थित गोवधर्नमठसे 'व्यासपूजा पद्धति' नामक ग्रन्थका संग्रह किया। श्रील गुरुमहाराजने भी पुष्करके ब्रह्ममठ तथा गोमतीद्वारकाके शारदामठसे उक्त पद्धति-ग्रन्थका संग्रहकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित श्रीव्यासपूजा पद्धतिको श्रीगौड़ीय पत्रिकाके चतुर्थ वर्षके तृतीय अङ्कमें प्रकाश किया है। अभी

तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठोंमें विशेषतः मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठ, नवद्वीपमें इसी पद्धतिके अनुसार श्रीव्यासपूजा सम्पन्न होती है।

अष्टोत्तरशतनामी त्रिदण्डसंन्यास प्रदान

सन् १९५२ ई० में छः मार्चसे बारह मार्च तक सप्ताहव्यापी श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान महासमारोहके साथ सम्पन्न हुआ। ११ मार्च, मङ्गलवार गौरपूर्णिमाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल प्रचारकेन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें समितिके प्रतिष्ठाता सभापति परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीगौड़ीय पत्रिकाके प्रकाशक श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी, पत्रिकाके कार्याध्यक्ष श्रीराधानाथ दासाधिकारी तथा पत्रिकाके प्रचार-सम्पादक श्रीगौरनारायण दासाधिकारी 'भक्तबान्धव' को वैष्णव सात्त्वत स्मृतिके अनुसार अष्टोत्तरशतनामी वैदिक त्रिदण्डसंन्यास वेष प्रदान किया। इन तीनोंके संन्यासका नाम क्रमशः त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज[१], त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज[२] तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज[३] रखा। इस प्रकार संन्यासका नामकरण अर्थात् संन्यासीके नामका विशेषण 'भक्तिवेदान्त' अब तकके इतिहासमें अभूतपूर्व था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति महाराजने ब्रह्मसूत्रके गोविन्दभाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणके अभिन्नस्वरूपमें गौड़ीय वेदान्त धाराको पृथ्वीमें प्रबल वेगसे प्रवाहित किया है। गौड़ीय वेदान्त ही भक्तिवेदान्त है। ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिमभाष्य पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतमें ही इसका तात्पर्य प्रतिष्ठित है। निर्मत्सर सारग्राही अभिज्ञ वैष्णवगण इसके द्वारा परमगम्भीर रहस्यकी ही उपलब्धि करते हैं।

फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन श्रीगौरजन्म तिथिके उपलक्षमें भक्तलोग प्रातःकालसे ही उपवास किये हुए थे। सङ्कीर्त्तनके साथ-साथ

[१-३] श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज तथा श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

आचार्यकेसरीके प्रथम संन्यासी शिष्य
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम

श्रीचैतन्यभागवतका पारायण चल रहा था। कभी-कभी नवद्वीपवासी साधारणजन होलीके रङ्गमें रङ्गे हुए ढोलक और मजीरेपर होलीका गान गाकर, गुलालकी वर्षा करते हुए मठ-प्राङ्गणमें प्रवेश कर रहे थे तथा सङ्कीर्त्तनके साथ ठाकुरके मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधाविनोदविहारी तथा श्रीकोलदेवका दर्शन करते हुए चले जाते। यात्रीलोग भी गङ्गास्नान आदिसे निवृत्त होकर साफ-सुथरे नये कपड़े पहनकर हाथोंमें गुलाल और अबीर लेकर सर्वप्रथम श्रीमन्दिरमें अर्पण करते तत्पश्चात् गुरु-वैष्णवोंको प्रणामकर बड़े प्रेमसे एक दूसरेसे मिलते।

दोपहरके पश्चात् 'वैष्णवस्मृति—संसारदीपिका' के विधानके अनुसार संन्यासके लिए डोर-कोपीन एवं दण्डका संस्कार, संन्यास-प्रदान तथा उसके उपलक्षमें यज्ञ होम आदिका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। विपुल-सङ्कीर्त्तन और जयध्वनिसे आकाशमण्डल मुखरित हो रहा था। उसमें माताओंकी उलूध्वनि तथा शङ्खध्वनि और भी चारचाँद लगा रही थी। ऐसे सुसमयमें हजारों श्रद्धालु सज्जनोंके समक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रील केशव

गोस्वामी महाराजने अपने आश्रित उक्त तीनों सेवकोंको संन्यास-मन्त्र एवं अष्टोत्तरशत संन्यासी-नामोंके अन्तर्गत भक्तिसूचक नाम प्रदान किया। इसके पश्चात् श्रील गुरुमहाराजके आदेशसे वे तीनों नये त्रिदण्डियति संन्यास आश्रमोचित भिक्षाके लिए निकले। इस प्रकार उनलोगोंने संन्यास आश्रमकी मर्यादाका पालनकर भिक्षालब्ध अन्न, द्रव्य, पुष्प, फल सब कुछ गुरुके चरणोंमें निवेदन कर दिया।

शामको धर्मसभामें तीनों नये संन्यासियोंने असंख्य यात्रियोंसे भरी हुई सभामें पृथक्-पृथक् रूपसे भाषणके माध्यमसे शुद्धभक्तिके गम्भीर तत्त्व-सिद्धान्तोंकी व्याख्याकर श्रोतृमण्डलीको चमत्कृत कर दिया।

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

अप्रैल सन् १९५२ ई॰ में परमाराध्यतम आचार्यकेसरीने त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्दामोदर महाराज, श्रीमत्त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद्वामन महाराज, श्रीमन्नारायण महाराज, श्रीपरमेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीसत्यविग्रह दासाधिकारी, श्रीसुदामसखा दासाधिकारी, श्रीधीरकृष्ण ब्रह्मचारी आदिको साथ लेकर आसाम-प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया। सर्वप्रथम प्रचार पार्टीके साथ गोलोकगंजमें श्रीमती सुचित्राबालादेवीके घरमें तत्पश्चात् धूवड़ी शहरके स्वधामगत पूज्यपाद निमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके वासभवनमें रहकर श्रील गुरुमहाराजने प्रबल भावसे प्रचार किया। उसके पश्चात् उन्होंने प्रचार पार्टीके साथ अभयपुरी राज्यके दीवान माननीय श्री जे॰एन॰ नियोगी महोदयके विशेष आग्रहसे अभयपुरी स्थित बिजनी राज्यभवनमें हिन्दूधर्मके सम्बन्धमें बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया। वहाँसे आसाम वैष्णव सम्मेलनीके सदस्योंके विशेष आग्रहसे वे भाटीपाड़ा ग्राममें उपस्थित हुए। वहाँसे बोंगाई गाँवके गाँधी मैदानमें एक विराट धर्मसभामें सनातनधर्म एवं महाप्रभुके विचारके विषयमें बहुत ही ओजस्वीनी भाषण दिया।

इन स्थानोंमें प्रचार करनेके बाद श्रीयादवेन्द्रदास और प्रेमानन्ददासके विशेष अनुरोधसे श्रीलगुरुदेव श्रीचैतन्यमत विरोधी सम्प्रदायके गढ़

मालीगाँवमें पहुँचे। मालीगाँव आसामका एक बहुत बड़ा एवं विशेष कस्बा है। वहाँके अधिकांश लोग निःशक्तिक कृष्णकी आराधना करते तो हैं, किन्तु उनका श्रीविग्रह स्वीकार नहीं करते। श्रीव्यासदेव रचित श्रीमद्भागवतको नहीं बल्कि हंकरदेव द्वारा असमिया भाषामें लिखित आधुनिक भागवतपोथीको प्रामाणिक मानते हैं। माँस-मछली, प्याज-लहसुन, मदिरा आदिका सेवन भी करते हैं। वे लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुके शुद्धभक्ति-सिद्धान्तोंका एवं शुद्ध वैष्णवोंका विरोध करते हैं।

शामके समय श्रील आचार्यकेसरी विशाल धर्म-सभामें दलबलके साथ उपस्थित हुए। दस-बारह हजार श्रोताओंसे सभा खचाखच भरी हुई थी। सभी लोग श्रील गुरुदेवके भाषणकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रील गुरुदेवने बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें शुद्ध सनातनधर्मके सम्बन्धमें भाषण देना आरम्भ किया। सर्वशक्तिमान, सविशेष, अखिलरसामृत-मूर्त्ति व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही पूर्ण-सनातन ब्रह्म हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्ति ही पूर्णरूपेण सनातनधर्म है। प्याज-लहसुन, मद्य-माँस आदिका पूर्ण रूपसे वर्जनकर सनातनधर्म—शुद्धभक्तिके अङ्गोंका पालन करना ही मनुष्य जीवनका परम कर्त्तव्य है। जो लोग इसके विपरीत मद्य-माँस आदि अमेध्य वस्तुओंका सेवन करते हैं, उनका जीवन पशुके समान है—'धर्मेण हीना पशुभिः समाना'—इतना सुनते ही सभाके मध्यसे एक व्यक्ति उठकर जोर-जोरसे कहने लगा—"हम चैतन्य महाप्रभुके विचारोंको नहीं मानते।"

गुरुदेवने कहा—केवल चैतन्य महाप्रभु ही नहीं, वेद, उपनिषद्, पुराण आदि सारे शास्त्र एक ही बात कहते हैं। किसी भी सत्-शास्त्रमें मद्य-माँस खानेका कोई प्रावधान नहीं है। भगवान् निराकार नहीं हैं। उनका अपूर्व सुन्दर श्रीविग्रह है। श्रीविग्रह होते हुए भी वे सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान हैं।

एक श्रोता सदस्य—हंकरदेव द्वारा लिखित भागवतमें ऐसा नहीं लिखा है। इसलिए हमें यह सिद्धान्त मान्य नहीं है। हम हंकरदेवके भागवतको ही प्रामाणिक मानते हैं।

गुरुदेव—हंकरदेव द्वारा लिखित भागवत दो ढाई सौ वर्ष पूर्वलिखित एक आधुनिक ग्रन्थ है। वेद, उपनिषद्, पुराणादि शास्त्र अपौरुषेय एवं नित्य-सनातन होनेके कारण प्रामाणिक हैं।

श्रोता सदस्य—श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ आधुनिक हैं। क्या वेदोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके नामका उल्लेख है? श्रीमन्महाप्रभु भगवान् हैं—क्या वेदोंमें ऐसा कोई प्रमाण है?

गुरुदेव—हाँ, एक नहीं हजारों प्रमाण हैं। ध्यानसे सुनिये—ऐसा कहकर उन्होंने श्रीवामन महाराजकी तरफ देखकर प्रमाण उपस्थित करनेके लिए कहा। श्रीपाद वामन महाराजजीने अपनी नोटबुक श्रीपाद त्रिविक्रम महाराजजीके हाथोंमें दे दी, जिसमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भगवत्ताके सम्बन्धमें शास्त्रोंके चालीस-पचास प्रमाण लिखे हुए थे। श्रीपाद त्रिविक्रम महाराजजी श्रील गुरुदेवके आदेशसे सभास्थलमें जोर-जोरसे उन प्रमाणोंका पाठ करने लगे। किन्तु विपक्षके लोग प्रमाणोंको सुनना नहीं, बल्कि सभामें गड़बड़ी फैलाना चाहते थे। उन्होंने सभास्थलमें पत्थर फेंकना आरम्भ किया। सभाके दूसरे लोगोंने उनका विरोध किया। गुरुजीने निर्भीक होकर अपना भाषण जारी रखते हुए कहा—हम संन्यासी, ब्रह्मचारी मृत्युसे नहीं डरते। हम तो श्रीप्रह्लाद महाराज एवं श्रीहरिदास ठाकुरके अनुयायी हैं। प्रमाणोंको सुनानेके पश्चात् सभा समाप्त हुई। बहुत दिनों तक चारों तरफ श्रीगुरुदेवकी निर्भीकताकी चर्चा होती रही। निरपेक्ष सत्यके ऐसे निर्भीक वक्ता संसारमें दुर्लभ हैं।

मालीगाँवमें प्रचार करनेके पश्चात् बांसवाड़ी ग्राममें एक धर्मसभामें श्रद्धालु श्रोताओंके विशेष आग्रहसे गौड़ीय वैष्णवधर्म एवं अन्यान्य अपसम्प्रदायोंमें पार्थक्यके विषयमें श्रीगुरुमहाराजने गम्भीर दार्शनिक तत्त्वोंसे पूर्ण भाषण प्रदान किया। तत्पश्चात् प्रचार पार्टीके साथ वे गौहाटी पहुँचे। वहाँ उन्होंने शहरके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका प्रेमधर्म तथा वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय—इन विषयोंपर सिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया। गौहाटी प्रचार-प्रसङ्गमें श्रीगौरीशङ्कर चट्टोपाध्याय (आसाम रेलवे डिवीजनल मेडिकल आफिसर) श्री एम॰ सलई (गौहाटी कॉलेजके प्राध्यापक) आदिकी सेवा-चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय रही।

श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथकी रथ-यात्रा आदिका दर्शन

सन् १९५२ ई॰ आषाढ़ महीनेमें श्रीगुरुमहाराजके आनुगत्यमें लगभग २५० यात्री रिजर्व डिब्बेके द्वारा हावड़ा स्टेशनसे यात्राकर सर्वप्रथम बालेश्वर रेलवे स्टेशन और वहाँसे श्रीरेमुना पहुँचे। वहाँ श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथजीका दर्शन हुआ। श्रील गुरुमहाराजने वहाँ श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णित श्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं क्षीरचोरा गोपीनाथका उपाख्यान वर्णन किया।

"श्रीमाधवेन्द्रपुरी भक्तिरस कल्पतरुके प्रथमाङ्कुर हैं। इनकी प्रेममयी सेवासे सन्तुष्ट होकर श्रीनाथजी आन्योर गाँवके समीप श्रीगोवर्धनके सानुप्रदेशसे प्रकट हुए थे। श्रीनाथजीकी अभिलाषाके अनुसार श्रीमाधवेन्द्रपुरीने एक माह तक श्रीनाथजीका अभिषेक एवं अन्नकूट महोत्सवके माध्यमसे भोगराग सम्पन्न किया। पुनः श्रीगोपालजीकी इच्छानुसार मलयज चन्दन लानेके लिए पैदल ही जगन्नाथपुरीके लिए इन्होंने यात्रा की। रास्तेमें जब यहाँ पहुँचे तब तक कुछ रात हो गयी थी। ठाकुरजीका भोग लग चुका था। पट खुलते ही श्रीगोपीनाथजीके अद्भुत श्रीविग्रहका दर्शन किया। ठाकुरजीको निवेदित क्षीर भोगकी इतनी सुन्दर सुगन्ध आ रही थी कि श्रीमाधवेन्द्रपुरीका मन भी उधर आकृष्ट हो गया। उन्होंने सोचा यदि मुझे इस भोगका प्रसाद थोड़ा-सा भी मिल जाता, तो मैं भी अपने श्रीनाथजीके लिए वैसा ही स्वादिष्ट क्षीरका भोग लगाता। इतनेमें पट बन्द हो गया। श्रीपुरी गोस्वामी पास ही बाजारमें किसी स्थानपर भजन करने लगे। अभी रातके समय उन्हें यह आवाज सुनायी पड़ी—माधवेन्द्रपुरी कौन है? श्रीगोपीनाथजीका पुजारी उच्च स्वरसे यह आवाज लगा रहा था। श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उठकर कहा—मैं ही माधवेन्द्र हूँ, किसलिए मुझे पुकार रहे हो?

पुजारीजीने बड़ी ही नम्रतासे माधवेन्द्रपुरीके हाथोंमें एक क्षीरकी कुण्डी देते हुए कहा—'महात्मन् श्रीगोपीनाथजीको शयन करानेके पश्चात् पट बन्दकर मैं अपनी कोठरीमें सो गया था, अभी मध्यरातमें श्रीठाकुरजीने मुझे स्वप्न दिया कि हमारा एक भक्त बाजारमें किसी जगह भजन कर रहा है, उसे मुझे निवेदित भोग प्रसाद ग्रहण करनेकी अभिलाषा

थी। किन्तु वह कभी किसीसे कुछ भी नहीं माँगता। वह अयाचक वृत्तिका परम निष्किञ्चन वैष्णव है। मैंने उसके लिए बारह क्षीरकी कुण्डियोंमेंसे एकको अपने वस्त्रके नीचे छिपा रखा है। तुम उसे लेकर उन्हें अभी दे आओ।' मैं यह स्वप्न देखकर उठ बैठा तथा पट खोलकर श्रीमन्दिरके भीतर पहुँचा। परम आश्चर्यकी बात थी मैंने अपने हाथोंसे इन प्रसादी कुण्डियोंको हटाकर स्थान परिष्कार किया था। फिर भी एक कुण्डी कैसे बच गयी? वह भी ठाकुरजीके वस्त्रके भीतर। मैंने पुनः ठाकुरजीका दरवाजा बन्दकर क्षीरकी कुण्डी हाथमें लेकर आपको देने आया हूँ। आज तक ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी। श्रीमाधवेन्द्रपुरी भी इस घटनाको श्रवणकर बड़े ही रोमाञ्चित एवं हर्षित हुए। किन्तु सवेरे इस घटनाको जानकर मेरे दर्शनके लिए लोगोंकी भीड़ लग जायेगी—इस प्रशंसाके डरसे उस अन्धकारमें ही वहाँसे जगन्नाथपुरीके लिए चल पड़े। ऐसे भक्त जगत्‌में विरले एवं धन्य हैं। तभीसे श्रीगोपीनाथजीका नाम श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथ पड़ गया।

इधर माधवेन्द्रपुरीजीने श्रीपुरीधाममें पहुँचकर श्रीजगन्नाथका दर्शन किया। तत्पश्चात् अपने गोपालजीके लिए मलयज चन्दनका संग्रह किया। उसे अपने सिरपर रखकर पैदल ही श्रीवृन्दावनधाममें लौटने लगे। जब वे पुनः क्षीरचोरा गोपीनाथमें आये तो उन्हें रात्रिकालमें झपकी-सी आयी। उन्होंने स्वप्नमें देखा गोपालजी कह रहे हैं कि तुम वहींपर मलयज चन्दनको घिसकर कुछ दिनों तक गोपीनाथके सारे अङ्गोंमें लेपन करो, इसीसे मेरे सारे अङ्गोंका ताप दूर हो जायेगा, क्योंकि मैं ही गोपीनाथ हूँ। श्रीपुरी गोस्वामीने ऐसा ही किया। कुछ दिनोंके बाद श्रीगोपालजीका आदेश पाकर पुनः वृन्दावन लौट आये। भगवान् अपने भक्तका कष्ट अनुभव करते हैं। फिर भी जगत्‌में भक्तकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए वैसी अलौकिक लीलाएँ करते हैं।"

ऐसा श्रवणकर यात्रीलोग बड़े मुग्ध हुए, श्रीमन्दिरके पास ही श्रीरसिकानन्दजीकी समाधिका भी यात्रियोंने दर्शन किया। इसके पश्चात् यात्रा पार्टी भुवनेश्वरमें पहुँचकर श्रीलिङ्गराज तथा श्रीअनन्तवासुदेव और बिन्दुसरोवर आदि स्थानोंका दर्शनकर श्रीपुरीधाम पहुँची। पुरीमें पन्द्रह दिन तक रहकर आलालनाथ, साक्षीगोपाल, कोणार्क आदिका दर्शन

किया। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी विरह तिथिके दिन स्थानीय श्रीजगन्नाथ-बल्लभ उद्यानमें निमन्त्रित विशाल सभामें श्रीवेदान्त समितिके सभापति आचार्य महाराजने एक मनोज्ञ दार्शनिक भाषण प्रदान किया। उस भाषणमें उन्होंने श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके अतिमर्त्य चरित्र, पाण्डित्य तथा उनके द्वारा रचित भक्ति-शास्त्रोंके सम्बन्धमें एक गम्भीर तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उस सभामें उपस्थित पुरीकी विद्वत्-मण्डली बड़ी प्रभावित हुई। दूसरे दिन श्रीगुण्डिचा मार्जन, तत्पश्चात् श्रीरथ-यात्रा, श्रीहेरापञ्चमी, पुनः-यात्रा आदिका अनुष्ठान—कीर्त्तन, पाठ और वक्तृताके माध्यमसे सम्पन्न हुआ। यात्रीगण श्रीजगन्नाथ, गम्भीरा, सिद्धबकुल, हरिदास ठाकुरकी समाधि, टोटा गोपीनाथ, चटक पर्वत, यमेश्वर टोटा, लोकनाथ शिव, पुरी गोस्वामीका कूप, नरेन्द्र सरोवर, इन्द्रद्युम्न सरोवर, गुण्डिचा मन्दिर, चक्रतीर्थ, स्वर्गद्वार आदि विभिन्न स्थानोंका अपने सुयोगके अनुसार दर्शन करते थे। वे लोग इन स्थानोंका दर्शनकर एवं हरिकथा श्रवणकर बड़े प्रसन्न चित्तसे यात्राकी समाप्तिपर अपने अपने स्थानोंको लौटे।

चुँचुड़ा मठमें श्रीजन्माष्टमी व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव

इसी वर्ष अगस्त (श्रावण) महीनेमें समितिके प्रचारकेन्द्र श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीजन्माष्टमीका व्रत बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। मठाश्रित त्यागी और गृही भक्त सभीने उस दिन आधी रात तक निर्जला उपवास किया। दिनभर श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धका पारायण हुआ, मध्यरात्रिमें श्रीकृष्णके आविर्भावके समय श्रीविग्रहोंका महाभिषेक सम्पन्न होनेपर भोगराग अर्चन यथारीतिसे सम्पन्न हुआ। श्रीसमितिके सभापति आचार्य महाराजने श्रोतृमण्डलीके सम्मुख श्रीजन्माष्टमीके सम्बन्धमें एक दार्शनिक तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उसका सार नीचे संक्षेपमें दिया जा रहा है—श्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्यमें हम भगवान्‌का 'जन्म' एवं 'आविर्भाव' इन दोनों शब्दोंमें पार्थक्य लक्ष्य करते हैं। आविर्भाव शब्द गौरवमय है, किन्तु जन्म शब्द माधुर्यपूर्ण है। हम लोगोंका श्रीकृष्णके साथ ही सम्बन्ध है, वे व्रजेन्द्रनन्दन, नन्दतनुज, नन्दात्मज, पशुपांगज हैं। श्रीलचक्रवर्ती ठाकुरने आराध्यो भगवान् व्रजेशतनय तथा श्रीचैतन्य

महाप्रभुने भी शिक्षाष्टकमें अयि नन्दतनुजको ही सम्बोधित किया है। श्रीवासुदेव कहनेपर भी हम नन्दतनुज कृष्णको ही समझते हैं। वे वसुदेवतनुज नहीं है। वासुदेव कृष्णका मथुरामें आविर्भाव हुआ था, जन्म नहीं। वे कंस कारागारमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए तथा वस्त्र एवं अलङ्कारोंको धारणकर देवकी वसुदेवके सामने आविर्भूत हुए। मथुरामें नाड़ीच्छेद आदि जातकर्म संस्कार नहीं हुआ। किन्तु गोकुलमें यशोदा मैयाके गर्भसे कृष्णने जन्म ग्रहण किया है। हमलोग श्रीकृष्णकी इस जन्मलीलाके ही उपासक हैं—'कृष्णेर यतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला नरवपु ताहार स्वरूप।'

जन्म और आविर्भावका यह माधुर्यपूर्ण वैशिष्ट्य केवलमात्र श्रीरूपानुग वैष्णवगण ही हृदयङ्गम करनेमें समर्थ हैं। हमलोग नन्दनन्दन श्रीकृष्णके निकट श्रीरूपानुग वैष्णवोंके आनुगत्यकी ही प्रार्थना करते हैं। श्रील गुरुमहाराजके ऐसे गम्भीर भक्तिके सारगर्भित विचारोंको सुनकर श्रोतृ-मण्डली बड़ी ही प्रभावित हुई।

श्रीबद्रिकाश्रम और केदारनाथकी परिक्रमा

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें ४ सितम्बर, १९५२ ई० में एक सौ यात्रियोंके दलने श्रीबद्रिकाश्रमकी परिक्रमाके लिए हावड़ा स्टेशनसे रिजर्व बोगीके द्वारा प्रस्थान किया। उन्होंने सर्वप्रथम हरिद्वारमें दो-तीन दिन निवासकर वहाँसे स्थानीय तीर्थस्थल हरकी पौड़ी, कनखलमें सतीदाह-स्थल आदि स्थानोंका दर्शन किया। वहाँसे यात्रादलने ऋषिकेशमें बाबा काली कमलीवाली धर्मशालामें निवास किया तथा वहींसे केदार-बद्री तककी पैदल यात्राकी सारी व्यवस्था प्रस्तुत की गयी। तत्पश्चात् खाने-पीने तथा बिस्तर आदिका सारा सामान स्थानीय कुलियोंको देकर सभीने पैदल यात्राके लिए प्रस्थान किया। सुसज्जित पालकीमें श्रीगौरसुन्दर आगे-आगे चल रहे थे। उसके पीछे संन्यासी, ब्रह्मचारी सङ्कीर्त्तन करते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। तत्पश्चात् गृहस्थ भक्त—पुरुष एवं महिलायें कीर्त्तन करते हुए क्रमशः अग्रसर हो रही थीं। जो लोग पैदल यात्राके लिए असमर्थ थे, वे किरायेके घोड़ोंके ऊपर बैठकर यात्रा कर रहे थे। इतना बड़ा परिक्रमाका

दल स्थानीय लोगोंने कभी नहीं देखा था। परिक्रमा संघकी सुन्दर एवं सुश्रृंखल व्यवस्था देखकर सभी लोग एक स्वरसे भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। लगभग ४५ दिनोंमें इन लोगोंने ऋषिकेश, लक्ष्मण-झूला, व्यासघाट, देवप्रयाग, कीर्तिनगर, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, अगस्तमुनि, चंद्रपुरी, गुप्तकाशी, उखीमठ, मैखण्डा, रामपुर, त्रियुगीनारायण, सोनप्रयाग, मन्दाकिनी, मुण्डकाटागणेश, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, तुंगनाथ, आकाशगङ्गा, गोपेश्वर, वैतरिणीकुण्ड, पीपलकोठी, गरुड़गङ्गा, पातालगङ्गा, योशीमठ, पंचबद्री, पंचशिला, विष्णुप्रयाग, पाण्डुकेश्वर, हनुमान चट्टी, श्रीबद्रीनारायण, तप्तकुण्ड, वसुधारा, चामोली, नन्दप्रयाग, आदिबद्री, आदि दुर्गम स्थानोंका दर्शन किया।

ऋषिकेशसे उन दिनों उक्त पहाड़ी स्थानोंमें जानेके लिए पैदलके अतिरिक्त बस या कार आदिकी कोई भी व्यवस्था नहीं थी। तब तक कोई भी पक्की सड़क नहीं थी। कभी-कभी इन संकरे एवं ऊँचे-नीचे मार्गोंपर ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थरोंकी चट्टानें गिरनेका भय बना रहता था। हमारी यात्रामें भी एक-दो बार ऐसी ही मर्मान्तिक घटनायें हुईं। अकस्मात् यात्राके बीच ही ऊपरसे चट्टाने गिरने लगीं। भगवत्-कृपासे कोई दुर्घटना नहीं हुई। परन्तु ऐसा होनेपर भी पैदल यात्रामें स्थानीय लोगोंकी जो सहानुभूति एवं सहयोग प्राप्त होता है, प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शनका जो सौभाग्य मिलता है, तीर्थस्थलोंके कुण्डोंमें स्नानकर पवित्र होनेका जो सुअवसर मिलता है, वह आजकलकी भाँति बसों द्वारा यात्रा करनेसे सम्भव नहीं है। देवप्रयागमें भागीरथी एवं अलकानन्दाका संगम-स्थल है। यहाँ दोनों नदियोंकी धारा इतनी तीव्र है कि एक तिनका भी उसमें पड़कर खण्ड-विखण्ड हो जाता है। देवप्रयागसे ही भगवती गङ्गा धीरे-धीरे समतल भूमिपर आने लगती है। हरिद्वार पहुँचनेपर वह पूर्ण रूपसे समतल भूमिपर प्रवाहित होने लगती है। कीर्तिनगर तथा श्रीनगर पहाड़ोंपर भी कुछ समतल भूमिपर बसे हुए रमणीक नगर हैं। वहाँ यात्रियोंके ठहरनेके लिए बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ एवं चट्टियाँ हैं। त्रियुगी-नगर एवं तुंगनाथ बड़े ही दुर्गम स्थान हैं। यहाँ सर्वदा बर्फ जमी रहती है। गौरीकुण्डमें आज भी पार्वती एवं शङ्करके विवाह-कालीन यज्ञाग्नि प्रज्जवलित रहती है। यात्रीलोग उसमें आहुति प्रदान करते

हैं। केदारनाथका पथ भी अत्यन्त दुर्गम था। अब कुछ सुगम बना दिया गया है।

शामके समय जब हमलोग श्रीगुरुजीके साथ श्रीकेदारनाथजीका दर्शन करने पहुँचे, तब रास्तेमें रूईकी भाँति ऊपरसे बर्फकी वर्षा हो रही थी। यात्रियोंके हाथ-पैर ठण्डके मारे ठिठुरने लगे। केदारनाथजीका बड़ा ही भव्य दर्शन था। वहाँसे लौटनेपर आग जलायी गयी। सभी लोग आग तापने लगे। अत्यधिक ठण्डके कारण कुछ यात्रियोंकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गयी थी। किन्तु अलावने यात्रियोंकी रक्षा की। किसी प्रकार यात्रीगण महाप्रसादका सेवनकर तीन-तीन चार-चार रजाइयोंको ओढ़कर सो गये। प्रातःकालमें सब लोगोंने स्नान, सन्ध्या, अह्निक एवं कुछ प्रसाद सेवनकर पुनः बद्रीनारायणकी ओर कूच किया। जोशीमठ एक प्रसिद्ध स्थान है। आदिशङ्कराचार्यने इस मठकी स्थापना की थी। बहुत-सी पहाड़ियोंके बीचमें कुछ समतल भूमिपर बसा हुआ यह एक रमणीक स्थान है। इन स्थानोंमें चमोली एक महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँसे यात्रीलोग सीधे बद्रीनारायण जाते हैं अथवा बद्रीनारायणसे लौटकर चमोलीसे केदारनाथके दर्शनके लिए जाते हैं। कुछ-कुछ यात्री ऋषिकेशसे सीधा केदारनाथजीका दर्शनकर वहाँसे चमोली होकर फिर बद्रीनारायण दर्शनकर पुनः चमोली वापिस आकर वहींसे ऋषिकेश लौट जाते हैं।

केदार-बद्री यात्राका सर्वोत्तम एवं निरापद समय भाद्रमासका है। इस यात्रामें परिक्रमासंघने अधिकांश स्थानोंमें बाबा काली-कमलीवाली धर्मशालामें रात्रिनिवास किया। अधिकांश दर्शनीय स्थान अल्कानन्दाके तटपर अवस्थित हैं। परिक्रमाके समय परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव सारी व्यवस्था देख-सुनकर सबके अन्तमें विश्राम करते तथा सभी यात्रियोंसे पहले प्रस्तुत होकर सबको जगाकर आगे अग्रसर होनेकी व्यवस्था करते। श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज यात्रियोंको तीर्थदर्शन आदि कराते, श्रीपाद स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी (कृष्णदास बाबाजी)[१] मृदङ्गके साथ कीर्त्तन करते एवं कराते हुए ठाकुरजीकी पालकीके पीछे-पीछे चलते। श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज नित्य सेवा-पूजाके द्रव्यादि संग्रह,

---

[१] कृष्णदास बाबाजीके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

यात्रियोंकी सब प्रकारकी सुविधाकी व्यवस्था करते तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानकी यात्राके समय सारे सामानोंको तथा कुलियोंको सम्भालनेकी व्यवस्था करते। श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज प्रकाशकी व्यवस्था करते तथा सुदाम सखा ब्रह्मचारी यात्रियोंके प्रसाद आदिकी व्यवस्थामें नियुक्त थे।

सुदीर्घ पैंतालीस दिनों तक यात्री हिमालयकी गोदमें अवस्थान कर श्रीबद्रीनारायण आदिकी महिमा श्रवण, कीर्त्तन करते हुए हावड़ा लौटकर वहाँसे अपने अपने स्थानोंको लौटे। हिमालयके स्वाभाविक प्राकृतिक मनोरम सौन्दर्यको कोई भी नहीं भूल सकता। फिर श्रद्धालु यात्री कैसे भूल सकते हैं? विदाईके समय सभी लोग समितिके सभापति आचार्यके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना कृतज्ञता भरे हृदय एवं अश्रुपूरित नेत्रोंसे कर रहे थे।

श्रीपुरुषोत्तम व्रत

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सदस्य तथा उनके अनुगत वैष्णवगण कार्तिक व्रतकी भाँति पुरुषोत्तम व्रतका भी पालन करते हैं। श्रीगौड़ीय पत्रिका द्वितीय वर्ष, चतुर्थ एवं पञ्चम अङ्कमें पुरुषोत्तम मास माहात्म्य एवं पुरुषोत्तम मास कृत्य—दो प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं। वैष्णवाचार्य श्रीलठाकुर भक्तिविनोदने गौड़ीय वैष्णवमात्रके लिए पुरुषोत्तम व्रतका पालन कार्तिक व्रतकी भाँति ही करनेका उपदेश दिया है। बड़े परितापका विषय है कि स्मार्त पंचांग इस विषयमें अत्यन्त उदासीन रहते हैं।

उक्त प्रकाशित प्रबन्धोंमें स्मार्त और पारमार्थिक भेदसे दो प्रकारके शास्त्रोंका उल्लेख किया गया है। स्मार्त शास्त्रके विधि-विधान कर्म प्रधान होते हैं। उनके अनुसार यह विशेष महीना अर्थात् अधिक मास सत् कर्महीन माना गया है और इसलिए इसका दूसरा नाम मलमास भी रखा गया है। किन्तु पारमार्थिक शास्त्रोंमें यह अधिकमास सब प्रकारसे श्रेष्ठ एवं हरिभजनके लिए परमोपयोगी बतलाया गया है। उक्त दोनों प्रबन्धोंमें अधिक मासका माहात्म्य, पुरुषोत्तम नामकरणका कारण, माहात्म्य प्रसङ्गमें द्रौपदीका इतिहास, वाल्मीकि कथित दृढ़धन्वा राजाका वृत्तान्त, पुरुषोत्तम मासमें स्नानविधि, श्रीराधाकृष्णकी पूजा ही पुरुषोत्तम

मासका कृत्य है, व्रतकालमें करणीय एवं अकरणीय, स्वनिष्ठ, परनिष्ठ, निरपेक्ष पारमार्थिक कृत्य, एकान्तिक वैष्णवोंकी स्वाभाविक रुचि एवं उनका करणीय, कर्मकाण्डके क्लेशोंसे रहित होनेके कारण अधिकमास भक्तोंका प्रिय है, हविष्यान्न किसे कहते हैं, व्रत कालमें वर्जनीय वस्तुएँ तथा आचरण, आमिष किसे कहते हैं; श्रीमद्भागवत श्रवण एवं व्रत-पालनका फल, दीपदान एवं उसका माहात्म्य, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अष्टमी, नवमी तिथिमें विशेष करणीय, अर्थमन्त्र और नमस्कार-मन्त्र, नीराजन-ध्यान एवं पुष्पाञ्जलि-मन्त्र, व्रतका शेषकृत्य तथा नियम भङ्गकी विधि आदि ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन किया गया है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित श्रीमायापुर पञ्जिका—श्रीचैतन्य पञ्जिकाके अनुसार अधिकांश वैष्णवोंने प्रथम वैशाखसे तीस वैशाख तक इस वर्ष पुरुषोत्तम व्रतका यथारीति पालन किया है। इस वर्ष सिद्धवाटी गौड़ीय मठमें विशेष रूपसे श्रीपुरुषोत्तम व्रतका पालन हुआ, जिसमें बिहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंसे समितिके आश्रित गृहस्थ भक्तोंने सपरिवार योगदान किया।

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीकी पुनः प्रतिष्ठा

श्रील गुरुमहाराज प्रचार पार्टीके साथ जून, १९५३ ई॰ में हुगली जिलाके अन्तर्गत वैंची ग्राम निवासी श्रीमदनमोहन दासाधिकारी महोदयके बार-बार अनुराधसे उनके घर पधारे। श्रीमदनमोहन दासाधिकारी हुगली जिलाके एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न धनी-मानी, प्रतिष्ठित एवं धर्मप्राण व्यक्ति थे। वे उस अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार करवाना चाहते थे। श्रील गुरुदेवके साथ श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्पादक श्रीनारसिंह महाराज, प्रचार सम्पादक श्रीनारायण महाराज, श्रीपरमार्थी महाराज, श्रीत्रिविक्रम महाराज एवं कुछ ब्रह्मचारी भी थे। पाँच दिनों तक बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें श्रीमद्भागवत व्याख्या तथा शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें विभिन्न वक्ताओंके द्वारा भाषण हुए। विश्व भारतीके Vice-Principal Dr. सिद्धेश्वर भट्टाचार्य (M.A., Ex-Lecturer School of Oriental Studies, London) महोदयने उपस्थित होकर श्रीलगुरुदेवके साथ दो घण्टे तक शङ्कर वेदान्त या मायावादके सम्बन्धमें आलोचना की। श्रील गुरुमहाराजने शास्त्रोंके प्रमाण

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी

एवं अकाट्य युक्तिके बलपर आचार्य श्रीशङ्कर द्वारा प्रतिपादित मायावादके शास्त्रविरुद्ध एवं काल्पनिक विचारोंका खण्डन किया। साथ ही आचार्य शङ्कर द्वारा कल्पित मुक्ति मिथ्या है तथा आचार्य शङ्कर भी वैसी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके, इसका भी प्रतिपादन किया। माननीय Vice-Principal महोदय आचार्यकेसरीके गम्भीर एवं शास्त्रसम्मत विचारोंको सुनकर विस्मित एवं निर्वाक (चुप) हो गये।

तत्पश्चात् निकटवर्ती पाण्डुया, मुटुकपुर आदि स्थानोंमें प्रचारकर वे चुँचुड़ा मठमें लौटे। वहाँ २९ सितम्बर, १९५३ में श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीकी पुनः प्रतिष्ठा हुई। पहले यह संस्कृत चतुष्पाठी कलकत्ता महानगरीके ३३/२ वोस पाड़ा लेन, बागबाजारमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके द्वारा परिचालित होती थी। वहाँ हरिनामामृत व्याकरण एवं काव्यका अध्यापन होता था। बहुत-से छात्र कृतित्वके साथ इस चतुष्पाठीसे व्याकरण एवं काव्यकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए थे। श्रील गुरुदेवने एक संक्षिप्ति भाषण दिया—

"वर्त्तमान युगमें संस्कृत शिक्षाका अनादर देखा जा रहा है। किन्तु संस्कृत भाषाके बिना लोगोंका कल्याण असम्भव है। संस्कृत शब्दका अर्थ ही है—परिमार्जित। जिस प्रकार असंस्कृत लोगोंका वैदिक ज्ञानमें अधिकार नहीं है, उसी प्रकार असंस्कृत भाषाके द्वारा मनुष्य उच्चशिक्षामें अधिकार लाभ नहीं कर सकता। भगवत्-उपासना ही वह उच्च शिक्षा है। इस भगवत्-उपासनाकी भाषा, दीक्षा, मन्त्र, महामन्त्र आदिकी भाषाने संस्कृति लाभकर संस्कृत भाषाका सङ्ग प्राप्त किया है। बद्धजीवोंकी नित्यमुक्तिके लिए, अप्राकृत भावोंकी अभिव्यक्तिके वाहनस्वरूप परिभाषाको संस्कृत करनेके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी सभी लोगोंके लिए उन्मुक्त है।"

इस विषयमें प्रसङ्गवशतः श्रीलगुरुमहाराजने कहा—"जगद्गुरु श्रीलजीव गोस्वामीने बालशिक्षाके उन्मेषके लिए एक अप्राकृत व्याकरणकी रचना की है, उसका नाम श्रीहरिनामामृत व्याकरण है। श्रील गोस्वामीपादकी स्मृति समस्त जीवोंके हृदयमें जागृत करनेके लिए श्रीहरिनामामृत व्याकरणके पठन-पाठनकी व्यवस्था की गयी है। उक्त व्याकरणका एक प्रधान सूत्र है—'नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः' अर्थात् नारायणसे ही सारे वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है। शब्दके वर्ण तथा जीवोंके वर्णमें कोई पार्थक्य नहीं है। इसीलिए नामवादी या स्फोटवादी शब्दसे सृष्टि-स्थिति प्रलय आदिका निरूपण किया करते हैं। विशुद्ध सारस्वत धाराने अस्पृश्य निम्न कुलोद्भूत किसी भी व्यक्तिको संस्कृत कर उसे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्राकृत सेवामें अधिकार प्रदान किया है।

"प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय श्रीजीव गोस्वामीके चरणोंमें अपराधी है तथा श्रीमन्महाप्रभुका घोर शत्रु है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके प्रचार-प्रसारके द्वारा प्राकृत सहजिया कुलोद्भूत वर्णबहिर्भूत दानवीय विचारको विदूरित करेगी। प्रतिष्ठाके प्रथम दिन ही चतुष्पाठीके विद्यार्थीके रूपमें नवरत्नोंका समावेश लक्ष्य किया जा रहा है। ये ही भविष्यमें नवधा भक्तिके यथार्थ प्रचारकके रूपमें प्रकाशित होंगे।"

वेदान्त व्याख्यारत श्रील आचार्यकेशरी

वेदान्त व्याख्यारत श्रील आचार्यकेशरी

श्रीअवन्तिका (उज्जयिनी) और नासिककी परिक्रमा

श्रीवेदान्त समितिके सभापति महाराजने कार्तिक व्रत-नियमसेवाके उपलक्षमें २० अक्तूबर, १९५३ ई॰ को हावड़ा स्टेशनसे श्रीअवन्तिका एवं नासिक आदि प्रसिद्ध तीर्थोंकी परिक्रमा एवं दर्शनके उद्देश्यसे संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भक्तोंके साथ यात्रा की। श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, सुदाम सखा ब्रह्मचारी आदि इनके साथ यात्रियोंकी व्यवस्थामें सहयोग करते थे। सर्वप्रथम परिक्रमासंघने कुर्मांचलममें श्रीकूर्मदेवका दर्शन किया। इन सब स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने भी भ्रमण किया था। इसी स्थानपर श्रीजगन्नाथजीने पुजारियोंके मनस्तापको दूर करनेके लिए श्रीरामानुजाचार्यको सोते समय बिस्तरके साथ जगन्नाथपुरीसे यहाँ स्थानान्तरित कर दिया था। प्रातःकाल उठनेपर आचार्य रामानुज अपनेको शिव मन्दिरमें देखकर बड़े दुखी हुए। किन्तु श्रीकूर्मदेवने उन्हें सान्त्वना

दी कि मैं शिवलिङ्ग नहीं कूर्मदेव हूँ। ऐसी आकाशवाणी सुनकर श्रीरामानुजने प्रसन्न होकर उनकी पूजा की। पुरीमें रहते समय श्रीरामानुजाचार्यने पुरीके पुजारियोंको ताम्बूलसेवन एवं धूम्रपान आदिके कारण उन्हें श्रीजगन्नाथजीकी सेवाके लिए निषेध कर रखा था। पुजारियोंने कई दिनों तक निराहार रहकर बड़े कातर होकर श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की कि हे जगन्नाथजी! आप ही हमारे सर्वस्व हैं। हम आपके शरणागत हैं। आपकी सेवाके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। उनकी प्रार्थना सुनकर श्रीजगन्नाथजीने श्रीरामानुजाचार्यको रातों-रात सोते समय उठाकर यहाँ रख दिया था।

वहाँसे यात्रीलोग गोदावरीके तटपर स्थित कबूर (विद्यानगर) पहुँचे। यहींपर श्रीचैतन्यमहाप्रभु एवं राय रामानन्दका परस्पर पारमार्थिक संलाप हुआ था, जिसका वर्णन श्रीचैतन्यचरितामृतमें उपलब्ध है। तत्पश्चात् यात्रा पार्टी पंढ़रपुर, कोल्हापुर, मुंबादेवी (मुम्बई), नासिक रोड होकर नासिकमें पहुँची। नासिकमें गोदावरीमें स्नानकर पंचवटी, सूर्पणखाकी नासिका-छेदन स्थान, मारीचवधका स्थान आदि विभिन्न स्थानोंका दर्शनकर अवन्तिका पहुँची। वहाँ छिप्रा नदीमें स्नानकर सान्दीपनी मुनिका आश्रम एवं अन्यान्य श्रीमन्दिरोंका दर्शन किया। श्रीबलदेव एवं कृष्णने सुदामा विप्रके साथ यहीं सान्दीपनी मुनिके आश्रममें सब प्रकारकी विद्याओंका अध्ययन किया था। वहाँसे डाकोरजी, नाथद्वारा, पुष्कर, जयपुर, करौली, वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग होते हुए कुल अड़तीस दिनोंके पश्चात परिक्रमासंघ हावड़ा होकर अपने-अपने स्थानोंमें लौट गया।

पंढ़रपुरमें पंढ़रनाथका प्रसिद्ध मन्दिर है। श्रीविश्वरूप प्रभु संन्यास लेनेके पश्चात यहाँ पधारे थे। यहींसे निकटवर्ती भीमा नदीके तटपर वे अप्रकट हुए थे। श्रीचैतन्यमहाप्रभु, श्रीविश्वरूप प्रभुकी खोज करते हुए यहाँ आये थे।

हुगली श्रीरामपुरमें सनातनधर्मका प्रचार

१५ दिसम्बर, १९५३ ई० में श्रीआचार्यकेसरी श्रीरामपुर निवासी हरिपद दासाधिकारी महोदयकी विशेष प्रार्थना पर उनके वासभवनमें पधारे। पत्रिकाके सम्पादक श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, प्रचार सम्पादक

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, कार्याध्यक्ष श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज एवं चार-पाँच ब्रह्मचारी इनके साथ थे। श्रील गुरुमहाराजजीने यहाँ रहकर लगभग पन्द्रह दिनों तक श्रीरामपुरके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार किया। कहीं श्रीमद्भागवतका पाठ एवं व्याख्या की, कहीं बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें सनातनधर्मका वैशिष्ट्य और कहीं वैष्णवधर्मकी उत्कृष्टता आदि विभिन्न विषयोंपर भाषण दिया। श्रीआचार्यदेवके तत्त्वपूर्ण दार्शनिक विचारों एवं अकाट्य युक्तियोंको श्रवणकर स्थानीय शिक्षक, अध्यापक, बुद्धिजीवी वकील, न्यायाधीश, व्यवसायी आदि सभी श्रेणियोंके उच्चशिक्षित व्यक्तिगण विशेष रूपसे आकृष्ट हुए। प्रचारकार्यमें श्रीरामपुर धर्मसभाके सुयोग्य सम्पादक कालीपद गङ्गोपाध्यायकी सेवा-चेष्टा एवं सहायता विशेष रूपसे उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय थी।

श्रीरामपुरकी प्रसिद्ध धर्मसभाके उद्योगसे स्थानीय बल्लभपुरके विद्यालयमें गीता जयन्तीका विराट अनुष्ठान हुआ। वहाँकी महती धर्मसभामें श्रीलगुरुदेवने सभापतिके आसनसे गीताके सम्बन्धमें लगभग डेढ़ घण्टे तक ओजस्विनी भाषामें गीताकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें उपदेश दिया। उन्होंने यह बतलाया कि भक्त अर्जुन श्रीकृष्णके सखा थे। वे परम मुक्त एवं श्रीकृष्णके परिकर थे। श्रीकृष्णने उन्हें लक्ष्यकर साधारण जीवोंके लिए गीताका उपदेश दिया था, भक्त अर्जुनके लिए नहीं। गीता धर्मराज्यका प्रारम्भिक ग्रन्थ है तथा श्रीमद्भागवत धर्मराज्यके पोस्ट-ग्रेजुएटका सर्वोत्तम पाठ्य पुस्तक है। धर्मराज्यमें प्रवेशके इच्छुक व्यक्तियोंको सावधानीसे इन विचारोंको ग्रहण करना चाहिये।

स्थानीय रमन हालमें एक विराट धर्मसभाका अधिवेशन हुआ। उस सभामें शहरके उच्चशिक्षित गणमान्य उच्च पदस्थ श्रोतागण सभामें उपस्थित थे। सभाका विषय था 'वर्त्तमान युगकी समस्या एवं समाधान'। श्रील आचार्यदेवने सुदीर्घ डेढ़ घण्टे तक मर्मस्पर्शी विचारमूलक भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—ऋषि-नीतिका अवलम्बन करनेसे ही राजनैतिक, समाजनैतिक, अर्थनैतिक आदि सभी समस्याओंका समाधान हो जायेगा। ५०० वर्ष पूर्व ये सारी समस्याएँ भारतमें वर्त्तमान थीं। श्रीलसनातन गोस्वामी बङ्गालके शासक हुसैन शाह बादशाहके प्रधान

मन्त्री थे। वे बड़े ही तीक्ष्ण मेधासम्पन्न व्यक्ति थे। श्रीचैतन्य महाप्रभुने उनके हृदयमें अपनी शक्तिका सञ्चार किया था, जिससे वे सांसारिक आसक्तिको त्यागकर—घरबार सर्वस्व त्यागकर श्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें उपस्थित हुए थे। उन्होंने मनुष्य जातिकी सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वजनिक समस्याओंके समाधानके लिए श्रीचैतन्य महाप्रभुसे प्रश्न किया था तथा श्रीमन्महाप्रभुने उन प्रश्नोंका उत्तर दिया था। इस सनातन शिक्षाका अवलम्बन करना ही बङ्गालकी बुद्धिमान जातिका समस्त समस्याओंके समाधानका एकमात्र श्रेष्ठ, सहज एवं सरल उपाय है। ऋषिनीतिका तात्पर्य उपनिषद, वेदान्तसूत्र, श्रीमद्भागवत आदि सत्-शास्त्रोंमें वर्णित ऋषियोंकी नीतिसे है। इसलिए इसकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए हमें प्रचीन संस्कृत ग्रन्थोंका अनुशीलन करना होगा। किन्तु इस विषयमें शिक्षाविभागकी भी उदासीनता लक्ष्य की जा रही है। यह बड़े खेदका विषय है।

चौबीस परगना एवं मेदिनीपुरके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

परमाराध्य श्रीलगुरुदेव ४ जनवरी, १९५४ ई॰ को भक्तोंके अनुरोधपर हावड़ा अशोकनगर कालोनीमें पधारे। वहाँ पाँच दिनों तक श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करते हुए अन्यान्य दर्शनोंकी अपेक्षा वैष्णव दर्शनका वैशिष्ट्य, चार्वाक नीति तथा वोलसेविक नीति (रूस) की विशद आलोचना की। उसके पश्चात् उन्होंने मेदिनीपुर जिलेके महिषादलकी विशाल धर्मसभामें (स्थानीय राजकालेजमें) धर्मजीवनकी आवश्यकतापर भाषण दिया। उसके अनन्तर गेहूखलीके निकटवर्ती नाटशाल ग्रामनिवासी श्रीअनन्तकुमार दासके मन्दिरके सामने एक विराट धर्मसभामें सर्वधर्मसमन्वय विषयपर बड़ा ही गम्भीर एवं तत्त्वपूर्ण भाषण दिया।

इसके उपरान्त श्रीलगुरुमहाराजने मङ्गलामाड़ो गाँवके उच्च अँग्रेजी विद्यालयके विशाल प्राङ्गणमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधर्मके विषयमें भाषण प्रदान किया। इस विषयमें उन्होंने कहा—"कलियुगके जीवोंके लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित श्रीहरिनाम-सङ्कीर्त्तन ही

एकमात्र कल्याणका पथ है। मद्य, मत्स्य, मांसभोजी अपसम्प्रदायके द्वारा प्रचारित 'यत मत तत पथ' कभी भी सनातनधर्म नहीं है। चोर एवं साधुके पथ भिन्न होते हैं, दोनोंका गन्तव्य स्थल कदापि एक नहीं हो सकता। गीता इत्यादि शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपमें इन मतोंका खण्डन किया गया है। नाना प्रकारके देवताओंकी पूजासे भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रीनामसङ्कीर्त्तन युक्त भगवद्भक्ति ही भगवत्-प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। उक्त अपसम्प्रदायोंके मत शास्त्रविरुद्ध एवं कुसिद्धान्तपूर्ण हैं। शुद्ध वैष्णव चारों वर्णोंके गुरु हैं। आधुनिक वैष्णव जाति एक कुसंस्कारग्रस्त, भ्रष्ट अपसम्प्रदाय है। इसके आनुगत्यसे कोई भी कल्याण नहीं हो सकता। वैष्णवोंको सब प्रकारसे वैष्णवोचित सदाचारका पालन करते हुए सर्वश्रेष्ठ विष्णुभक्तिका आचरण करना आवश्यक है।"

सरवेड़िया, ढोंड़ा, एकतारा, नाईकुण्डि, मलुवसान, पिछलदा, गोलवाड़ा, मङ्गलामाड़ो आदि विभिन्न स्थानोंमें श्रीलगुरुदेवके भाषणके पश्चात् सर्वत्र ही त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौर-कृष्ण-राम-लीलाके सम्बन्धमें भाषण प्रदान किया। इस प्रकार सर्वत्र ही प्रबल रूपमें प्रचारकर चुँचुड़ा मठमें लौटे।

चुँचुड़ाके संस्कृत महासम्मेलनमें भाषण

६ फरवरी १९५४ ई० को स्थानीय संस्कृत विद्यालयमें विशाल संस्कृत महासम्मेलनका अनुष्ठान हुआ। भारतके शीर्षस्थानीय बड़े-बड़े संस्कृत विद्वान उस विद्वत्-सभामें उपस्थित थे। महामहोपाध्याय श्रीयोगेन्द्रनाथ तर्क-सांख्य, वेदान्त-तीर्थ द्वारा सर्वसम्मतिसे सभापतिका आसन ग्रहण करनेपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ। सम्मेलनके उद्योक्ता सदस्योंके विशेष अनुरोधपर समितिके प्रतिष्ठाता सभापति महाराजने 'हिन्दूधर्म एवं वैष्णव दर्शन' के सम्बन्धमें एक घण्टा तक गम्भीर दार्शनिक तथ्योंसे पूर्ण एक अत्यन्त ओजस्वी भाषण प्रदान किया। भाषणके प्रारम्भमें उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत शिक्षाके पुनः प्रचुर प्रचलनकी आवश्यकतापर विशेष जोर दिया। हमारे देशमें संस्कृत महासम्मेलन जैसी शिक्षा प्रचार प्रतिष्ठानोंके सर्वत्र गठनकी आवश्यकतापर भी जोर

दिया। वेद-वेदान्त, पुराण, इतिहास किसी भी प्राचीन शास्त्रोंमें यद्यपि हिन्दू शब्दका उल्लेख नहीं देखा जाता, फिर भी हिन्दुकुश या हिमालय पर्वतसे लेकर दक्षिणमें बिन्दु सरोवरके मध्य निवास करनेवाले सनातनधर्मावलम्बियोंको हिन्दू कहा गया है। अतएव हिन्दूधर्मसे सनातनधर्मको ही समझना चाहिये। श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें वर्णित वैष्णवधर्म ही सनातनधर्म है। उन्होंने बड़े ही गम्भीर होकर शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके बलपर आचार्य शङ्कर द्वारा प्रचारित केवलाद्वैतवाद या मायावादको शास्त्रविरुद्ध सर्वथा काल्पनिक मत बतलाया। यह सुनते ही सभामें खलबली-सी मच गयी। कुछ लोगोंने खड़े होकर प्रतिवाद करना आरम्भ किया। किन्तु सर्वशास्त्र पारङ्गत आचार्यकेसरीने उनकी युक्तियोंका आश्चर्य रूपसे खण्डन करते हुए वैष्णवधर्मके विचारोंकी स्थापना की। उनका अद्भुत पाण्डित्य देखकर उपस्थित वैष्णवगण बड़े उल्लसित हुए। किन्तु कुछ अद्वैतवादी विद्वान क्षुब्ध भी हुए।

उक्त सभामें महामहोपाध्याय श्रीयोगेन्द्रनाथ तर्क-सांख्य-वेदान्ततीर्थके अतिरिक्त श्रीजीव न्यायतीर्थ एम॰ए॰, डा॰ महामानव्रत ब्रह्मचारी एम॰ए॰, पी॰एच॰डी॰, हुगली कॉलेजके अध्यापक एम॰ए॰ काव्यतीर्थ, कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालयके संस्कृतके अनेक धुरन्धर विद्वान उपस्थित थे। श्रीगुरुदेवके चले आनेके बाद इन लोगोंने भी भाषण प्रदान किया।

मेदिनीपुरके विष्णुपुर कमारपोतामें श्रीव्यासपूजा महोत्सव

२० फरवरी, १९५४ ई॰ के दिन कमारपोता विष्णुपुर निवासी श्रीराधानाथ दासाधिकारी महोदयकी विशेष प्रार्थनासे समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य उनके निवास स्थानपर पधारे। वहाँ अपनी जन्मतिथिके दिन श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके द्वारा संग्रहित और श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा संशोधित श्रीव्यासपूजा पद्धति ग्रन्थके अनुसार महासमारोहपूर्वक पूजा-पञ्चकके साथ श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् उनके अनुगत संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ शिष्योंने उनके श्रीचरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की।

उन्होंने माघी कृष्णपञ्चमी तिथिको अपने परमाराध्यतम गुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिकी पूजाके उपलक्षमें उनका अर्चन-पूजनकर अपने अनुगत सेवकवृन्दोंके साथ उनके पावन चरणोंमें श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पित की। उस दिनकी धर्मसभामें अन्यान्य संन्यासियोंके भाषणके पश्चात् उन्होंने श्रीलसरस्वती ठाकुरके अतिमर्त्य जीवनचरित्र पर, उनकी अप्राकृत शिक्षाके विषयमें एक सारगर्भित भाषण प्रदान किया। इस व्यासपूजा अनुष्ठानका सारा व्ययभार वहनकर श्रीराधानाथ दासाधिकारी समितिके विशेष स्नेहभाजन हुए।

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें सनातनधर्मका प्रचार

श्रील आचार्यदेवने १४ मई, १९५४ ई० में अपने साथ त्रिदण्डिस्वामी श्रीनारसिंह महाराज, श्रीत्रिविक्रम महाराज, श्रीवामन महाराज, श्रीनारायण महाराज, श्रीपरमार्थी महाराज, श्रीपरमधर्मेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीआनन्द ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी आदि कुल दस-बारह मठवासियोंके साथ आसाम प्रदेशमें शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए यात्रा की। १६ मई को पार्टीसहित सभापति महाराजके गोलोकगंज स्टेशन पहुँचनेपर श्रीसनतकुमार 'भक्तिशास्त्री' 'भागवतभूषण' प्रमुख भक्तोंने नगर-सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ उन लोगोंको श्रीदिव्यज्ञान दासाधिकारी महोदयके वासभवनमें लाकर उनका पूजा-अर्चन किया। वहाँ कई दिनों तक श्रीलगुरुदेवने बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें श्रीहरिनामका माहात्म्य तथा शुद्धभक्तिके विषयमें भाषण दिया। तत्पश्चात् वे पार्टीसहित धूवड़ी शहरमें अपने सतीर्थ गोलोकगत श्रीपाद् निमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके प्रपन्नाश्रममें निवासकर सात दिनों तक वहीं धारावाहिक रूपमें श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। उन्होंने षड्दर्शनोंमें वेदान्तदर्शनका श्रेष्ठत्व तथा भक्ति ही वेदान्त-सूत्रका प्रतिपाद्य विषय है, इसकी शास्त्रीय प्रमाण एवं युक्तियोंके बलपर स्थापना की। वहाँसे कचहरीहाट, खाकसियाली आदि स्थानोंमें भक्तिका प्रचार करते हुए गौरीपुर राज्यके राजकुमार श्रीप्रकृतीशचन्द्र बरुआ

बहादुरका आतिथ्य ग्रहण करते हुए वहाँ कुछ दिनों तक रहकर सनातनधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया। स्थानीय राजा द्वारा परिचालित संस्कृत पाठशालामें प्रतिदिन श्रीलगुरुमहाराजने श्रीमद्भागवत एकादश-स्कन्धका पाठ किया। पाठशालाके प्रधानाध्यापक, अन्यान्य अध्यापक, बहुत-से विद्यार्थी, गौरीपुर स्टेटके दीवान बहादुर तथा बहुत-से कर्मचारी भागवत श्रवण करनेके लिए नियमित रूपसे वहाँ आते थे। तत्पश्चात् कुमारी गाँव आदि स्थानोंमें प्रचार करते हुए चापर नामक प्रसिद्ध ग्राममें उपस्थित हुए। यहाँ स्थानीय अँग्रेजी उच्च विद्यालयके प्रशस्त प्राङ्गणमें एक विशाल धर्मसभाका आयोजन हुआ। इस धर्मसभामें लगभग दस-बारह हजार श्रोता उपस्थित हुए थे। श्रीलगुरुमहाराजने सनातनधर्मके सम्बन्धमें गवेषणापूर्ण गम्भीर भाषण प्रदान किया। जिसे सुनकर वहाँके शिक्षित सम्भ्रान्त श्रद्धालु व्यक्ति बड़े ही प्रभावित हुए।

उन दिनों चापरमें क्षेत्रमोहन चक्रवर्ती नामक एक तथाकथित गुरु रहते थे। वे वैष्णवधर्मके नामपर वैष्णवधर्मके विपरीत बहुत-से असदाचार तथा कुसिद्धान्तोंका प्रचार किया करते थे। यहाँ तक कि उनका नैतिक चरित्र भी पवित्र नहीं था। स्थानीय व्यक्तियोंने उन्हें उनके अनुयायियोंके साथ एक विचार सभामें श्रील आचार्यकेसरीके सामने उपस्थित किया। श्रीलगुरुदेवने उनसे शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किये। किन्तु चक्रवर्ती कुछ भी उत्तर न दे सके। उपस्थित लोगोंके सामने उनका मतवाद अशास्त्रीय एवं असम्प्रदायिक प्रमाणित हुआ। वे लज्जित होकर गुरुजीके चरणोंमें क्षमा माँगकर चले गये।

इसके पश्चात् श्रीलगुरुदेव प्रचारपार्टीके साथ अभयापुरी स्टेटके माननीय दीवान बहादुरके आग्रहसे अभयापुरी पहुँचे। वहाँ तीन दिनों तक स्थानीय बालिका विद्यालयके प्राङ्गणमें सनातनधर्मके सम्बन्धमें बहुत ही प्रभावशाली भाषण दिया। अभयापुरीके महाराज बहादुर उनके भाषणसे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रीलआचार्यदेवके चरणोंकी वन्दना की। उनका विनीत नम्र व्यवहार, आडम्बरहीन जीवन, सत्यप्रियता, दानशीलता, सरलधर्मनिष्ठा एवं ईश्वर विश्वास विशेष रूपसे प्रशंसनीय था। तत्पश्चात् चोकापाड़ा और बोंगाई गाँवमें प्रचारकर उद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा पहुँचे।

मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना एवं श्रीभागवत पत्रिकाका प्रकाशन

श्रीलगुरुमहाराजके आनुगत्यमें, १९५४ ई॰ के कार्तिक माहमें बड़े समारोहके साथ चौरासी कोस व्रजमण्डलकी परिक्रमा हुई। यात्रियोंके लौट जानेपर श्रीलगुरुदेव श्रीपाद् सनातन दासाधिकारी[१], श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज आदि अनुगत जनोंके साथ कुछ दिनों तक मथुरामें रहे। वे श्रीमथुराधाममें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एक प्रचारकेन्द्र स्थापित करना चाहते थे और वहींसे सारे उत्तर भारतमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिका प्रचार करना चाहते थे। वे परम निष्किञ्चन वैष्णव थे। उनके पास कोई भी अर्थव्यवस्था नहीं थी। फिर भी अपने अनुगत जनोंके साथ सात दिनोंसे एक उपयुक्त स्थानकी खोज कर रहे थे। सातवें दिन वे सभी लोग मथुरामें बड़े अस्पतालके सामने सुप्रसिद्ध, कंसटीलाके दक्षिणी ओर, एक पुरानी धर्मशालाको देखा। उसकी स्थिति बड़ी जीर्ण-शीर्ण थी। किन्तु वह स्थान बड़े मौकेका था। होलीगेट, इम्पीरियल बैंक, स्टेट बैंक आफ इण्डिया, हैड पोस्ट अफिस, स्टेट बस स्टैण्ड, मुख्य बाजार इन सबके बीचमें वह स्थान था। ईंट और पत्थरोंसे बना हुआ एक बड़े हाल सहित उसमें छत्तीस कमरे थे। लेन-देनके विषयमें धर्मशाला वालोंसे वार्त्तालाप भी हुआ। किन्तु पासमें एक भी पैसा नहीं था, बात बने तो कैसे? गुरुजी सबके साथ अपने वासस्थानमें लौटे।

दूसरे दिन जब श्रीलगुरुदेव और कोई स्थान देखनेके लिए प्रस्तुत हुए तब श्रीसनातन प्रभुने कहा अब मैं बहुत थक गया हूँ। कलवाला स्थान मुझे पसन्द है। अब मैं कहीं दूसरी जगह जाना नहीं चाहता। गुरुजीने कहा—"चालीस-पचास हजार रुपये अभी तुरन्त इकट्ठा करना सम्भव नहीं है। अन्ततः कुछ रुपये अग्रिम राशिके रूपमें देने ही होंगे। मेरे पास अभी कुछ भी नहीं है।" श्रीलसनातन प्रभुने उसी समय अपनी कमरकी पेटीसे सात हजार रुपये निकालकर श्रीगुरुदेवके सामने रख

---

[१] श्रीपाद् सनातन दासाधिकारीके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

दिये। सभी लोग आश्चर्यचकित होकर विस्फारित नेत्रोंसे सनातन प्रभुका मुँह देखने लगे। श्रीसनातन प्रभुने गुरुजीसे कहा मैं आपकी इच्छाको बहुत दिनोंसे जानता था। इसीलिए मैं एक-डेढ़ महीनेसे इन रुपयोंको कमरमें बाँधकर घूम रहा हूँ। अब कहीं दूसरी जगह नहीं देखना चाहता। आप कलवाली धर्मशालाको ही लेनेकी व्यवस्था करें। गुरुजीने कहा— "कम-से-कम बारह हजार रुपये अग्रिमके रूपमें देनेसे इस स्थानका इकरारनामा हो सकता है।" यह सुनते ही श्रीसनातन प्रभुने अपने पुत्र श्रीनारायण दासको टेलीग्राम देकर शेष रुपये भी बहुत शीघ्र मँगवा लिये। मथुरा रजिस्ट्री आफिसमें उसकी रजिस्ट्री करा ली गयी।

वहींपर १३ दिसम्बर, १९५४ ई॰ में जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके विरहतिथिके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति श्रीआचार्यदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना की। श्रीलआचार्यदेवकी अभिलाषानुसार वहींसे सारे उत्तर भारतमें विशुद्ध भक्तिधर्मका प्रचार आरम्भ हुआ। साथ ही यहाँ उन्हींकी इच्छानुसार समितिके पारमार्थिक हिन्दी मासिक मुखपत्र 'श्रीभागवत पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजको इस पत्रिकाका सम्पादक नियुक्त किया। पत्रिका अपनी भाव, भाषा एवं सुसिद्धान्तपूर्ण विचारधाराके कारण शीघ्र ही तत्रस्थ शिक्षित समाजमें बहुत ही लोकप्रिय हुई। उस पत्रिकाके द्वारा गौड़ीय वैष्णव भक्तिधर्मकी दार्शनिक विचारधाराकी सर्वोत्तमतासे अवगत होकर वहाँके बड़े-बड़े विद्वान 'श्रीभागवत पत्रिका' की भूयसी प्रशंसा करने लगे।

सन् १९५५ ई॰ के कार्तिक महीनेमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवके आनुगत्यमें कार्तिक-व्रत नियम-सेवाका आयोजन किया गया। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी परिचालनामें दिनाङ्क २९ अक्टूबर, १९५५ ई॰ के शुभ दिन हावड़ासे यात्रा आरम्भ हुई। परिक्रमा संघ गया, काशी और प्रयागतीर्थका दर्शनकर २ नवम्बरको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ पहुँचा और वहींसे व्रजमण्डलकी परिक्रमा आरम्भ हुई। श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और

प्राचीन श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

वर्त्तमान श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

श्रीभागवत पत्रिकाका प्रथम अङ्क

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजने धाम-माहात्म्य, कीर्त्तन एवं हरिकथाका परिवेशन किया। मठके सेवकगण यात्रियोंके यान-वाहन, वासस्थान व प्रसाद आदिकी समुचित व्यवस्था करते थे। इस विषयमें श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, पत्रिकाके प्रकाशन एवं कार्याध्यक्ष रसराज व्रजवासी, श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी तथा श्रीप्रबुद्धकृष्ण ब्रह्मचारीके नाम उल्लेख योग्य हैं। गोवर्धन पूजा और अन्नकूटका महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। श्रीमठका विराट नाट्यमन्दिर भोग सामग्रियोंसे परिपूर्ण हो गया। इतना बड़ा अन्नकूटका आयोजन मथुरावासियोंने इससे पूर्व कभी भी नहीं देखा था। साधारणतः व्रजमें छप्पन भोग प्रसिद्ध है। किन्तु श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके इस विराट अन्नकूटमें ३६५ प्रकारके नैवेद्योंका भोग प्रस्तुत हुआ था। श्रीगिरिराज महाराजके चारों ओर बड़े-छोटे पात्रोंमें अन्नका कूट, खिचड़ी, खीर विविध प्रकारकी मिठाइयाँ, व्यञ्जन, अचार, चटनी, हलवा, लड्डू-पूरी, फल मूल, साग आदिके स्तूप प्रस्तुत किये गये थे। समस्त प्रकारके नैवेद्योंमें मञ्जरीसहित तुलसी अर्पित की गयी थी। बड़े दूर-दूरसे श्रद्धालु लोग इसका दर्शन करनेके लिए पधारे। लगभग पाँच हजार श्रद्धालुओंने अन्नकूटका महाप्रसाद ग्रहण किया। कार्तिक व्रत पूर्ण होनेपर यात्री अपने-अपने स्थानोंको लौट गये।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें विग्रह प्रतिष्ठा एवं अन्नकूट महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके पश्चिम भारतीय प्रचारकेन्द्र मथुराधाममें स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ३ नवम्बर, १९५६ ई० को श्रीगोवर्धन पूजा एवं अन्नकूट महोत्सवके दिन परमाराध्य श्रीलआचार्यदेवने तदीय आराध्य श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीके अर्चा-विग्रहकी सेवाका प्रकाशकर अपने अनुगत जन और व्रजवासियोंको सेवाका सुयोग प्रदान किया है। श्रीविग्रह-दर्शन इतना मधुर और कमनीय है कि दर्शकोंके हृदयमें स्वयं ही ऐसा प्रतीत होता है कि आश्रय-विग्रहके अनुपम प्रेमसे आकृष्ट होकर ही मानो उन्होंने ऐसा प्रेममय विग्रह-प्रकाश किया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सेवित विग्रहगण
श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु

विग्रह-प्रतिष्ठाका महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। पूज्य श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजने श्रीत्रिविक्रम महाराज और रसराज व्रजवासीकी सहयोगितासे प्रतिष्ठाके आनुष्ठानिक अभिषेक एवं अर्चन आदि कार्योंको सम्पन्न किया। श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्भक्तिदेशिक आचार्य महाराज, श्रीपरमार्थी महाराज, श्रीनारायण महाराज प्रमुख संन्यासियोंने वैष्णव होम आदि आनुष्ठानिक कार्योंको सम्पन्न किया। अभिषेकके पश्चात् श्रीविग्रहगण गर्भ-मन्दिरमें पधराये गये। वहाँ श्रीआचार्यदेवने स्वयं प्राण-प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने स्वरचित एक श्लोकका उच्चारण करते हुए श्रीविनोदविहारीजीकी श्वेत-शैली मूर्त्तिप्रकाशका तत्त्वसिद्धान्त वर्णन किया। वह श्लोक यह है—

राधाचिन्ता निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गितविग्रहम॥

इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि श्रीमती राधिकाके द्वारा सब प्रकारसे आलिङ्गित उन व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी मैं पुनः-पुनः वन्दना करता हूँ, जो श्रीमती राधिकाके विरहमें उनकी चिन्तामें विभोर होनेके कारण अपनी श्यामकान्तिको विलुप्तकर गौरकान्तिसे देदीप्यमान हो रहे हैं।

उस अनुष्ठानमें श्रीमोहिनीमोहन रागभूषण प्रभु तथा श्रीसत्यविग्रह प्रभुने श्रीनामकीर्त्तन करते हुए श्रोताओंका मन मुग्ध कर दिया। श्रीमन्दिरके सामने नाट्यमन्दिरमें श्रीगिरिराजजीको स्तूपीकृत लड्डू, पूरी, कचौड़ी, अन्न, परमान्न, पुष्पान्न, खिचड़ान्न, नानाविध व्यञ्जन, फल, मूल, दधी, दुग्ध, पनीर आदि नैवद्योंको अर्पित किया गया। मथुराधामके विभिन्न कॉलेजोंके प्रोफेसर, स्कूलोंके शिक्षक, वकील, न्यायाधीश एवं उच्चशिक्षित सम्भ्रान्त सज्जनवृन्द इस अनुष्ठानमें योगदानपूर्वक श्रीलआचार्यदेवके निकट गौड़ीय-दर्शनमें भक्तितत्त्वके विषयमें श्रवणकर बड़े प्रभावित हुए। तत्पश्चात् वे लोग श्रीविग्रहका दर्शनकर सुस्वादु महाप्रसादका सेवनकर बड़े आनन्दित हुए। लगभग तीन हजार लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

मेदिनीपुर जिलाके पूर्वचक ग्रामके निवासी गिरीशचन्द्रदासने अन्नकूटका व्ययभार वहन किया, कल्याणपुर निवासी गजेन्द्रमोहन

दासाधिकारी और श्रीयुक्त कमलाबाला देवीने श्रीविग्रह, उनके वस्त्र, अलङ्कार आदिको प्रदान किया। ये लोग अपनी आदर्श सेवाके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें चैतन्यवाणीका प्रचार

दिसम्बर १९५५ ई॰ में परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने अपने आश्रित संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंके साथ आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्यवाणीका विपुल रूपसे प्रचार किया। इस बार वे पूज्यपाद श्रीनिमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके प्रचार-क्षेत्रके अधिकांश स्थानोंमें पधारे। उन्होंने गोलोकगञ्ज, धूबड़ी, बिछांदई, खानुरी, रामपुर, बोंगाई गाँव, छकापाड़ा, खगरपुर, साकोमूड़ा, चलन्तापाड़ा, अभयपुरी आदि स्थानोंकी विभिन्न बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें सनातनधर्म, भागवत धर्म, शुद्धभक्ति आदि विषयोंपर भाषण दिया। इस प्रकार वे लगभग एक महीने तक प्रचारकर चुँचुड़ा मठमें लौटे।

बेगुनाबाड़ीमें श्रीव्यासपूजा महामहोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति पिछले कई वर्षोंसे श्रीलसरस्वती प्रभुपाद द्वारा संग्रहित और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा संशोधित श्रीव्यासपूजा पद्धतिके अनुसार श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान एवं शुद्धभक्तिका प्रचार करती आ रही है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीधाम मायापुरमें भक्त श्रीवास पण्डितके आँगनमें श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ था। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके आनुगत्यमें श्रीनित्यानन्दप्रभुने श्रीव्यासके स्थानपर श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी पूजा की थी। उस अवसरपर श्रीवासपण्डितने श्रीमन्महाप्रभुसे श्रीव्यासपूजा पद्धतिके सम्बन्धमें उल्लेख किया था। इसीलिए श्रीलसरस्वती ठाकुरने बड़े परिश्रमसे पुरीके गोवर्धनमठसे इस प्राचीन पद्धति-ग्रन्थका संग्रह किया था। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने उसे अपने सम्प्रदायके लिए उपयोगी करते हुए उसका संशोधन एवं परिवर्द्धन किया था। परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने उक्त पद्धति-ग्रन्थको प्राप्तकर पूजा-पञ्चक समन्वित श्रीव्यासपूजाका

प्रवर्तन किया है और प्रतिवर्ष विभिन्न स्थानोंमें महासमारोहके साथ इसका अनुष्ठान भी करते आ रहे हैं।

इस वर्ष श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान मेदिनीपुर जिलेके बेगुनाबाड़ी ग्रामकी पाठशालाके विशाल प्राङ्गणमें आयोजित हुआ। माघीकृष्णा तृतीयासे पञ्चमी तीन दिनों तक महासमारोहके साथ व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ। इस महोत्सवमें प्रतिदिन दस-बारह हजार लोग योगदान करते थे। अन्तिम दिन अनगिनत लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। पूर्वचक निवासी गिरीशचन्द्र दासाधिकारी उत्सवका सारा भार वहनकर समितिके विशेष धन्यवादके पात्र हुए।

श्रीगिरीशचन्द्रजीने अनुष्ठानके प्रथम दिवस अपनी पत्नीके साथ श्रीआचार्यदेवसे हरिनाम मन्त्र एवं दीक्षा प्राप्त की। उस समय उनकी उम्र चौरासी वर्ष की थी। धनाढ्य जमींदार होनेके कारण ये बड़े ही रईसी ठाट-बाटसे जीवन यापन करते थे। फ्राँस आदि विदेशोंसे सुगन्धित तम्बाकु उनके लिए मँगायी जाती थी। सोनेके हुक्के और चिलममें लम्बी गुड़गुड़ीके सहारे वे पलङ्ग पर बैठकर धूम्रपान किया करते। किन्तु पिछले चौरासी कोस व्रजमण्डलकी परिक्रमामें एक महीने तक शुद्ध हरिकथाका श्रवणकर उनका हृदय बदल गया। अब उन्होंने सांसारिक आसक्तियोंसे मुक्त होकर भजन करनेका सङ्कल्प ग्रहण कर लिया। दीक्षाके दिन मुण्डनसे पूर्व इन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय सोनेके हुक्केको अन्तिम प्रणामकर उसे उठाकर दूर फेंक दिया। उनकी इस दृढ़ताको देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये।

श्रीव्यासपूजाके प्रथम दिन परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने अपने परमाराध्यतम श्रीश्रीलप्रभुपादका अर्चन-पूजन और उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तत्पश्चात् श्रीलआचार्यदेवके संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ शिष्योंने उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित की। श्रीत्रिविक्रम महाराजजीने श्रीगुरुपूजा एवं परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने श्रीव्यासपूजाके सम्बन्धमें भाषण दिया। शामकी धर्मसभामें श्रीलगुरुमहाराजने श्रीचैतन्यभागवतसे व्यासपूजा प्रसङ्गका पाठ किया। दूसरे दिन विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त अभिनन्दन पत्रोंका पाठ हुआ तथा श्रीआचार्यदेवका भाषण हुआ। तीसरे दिन श्रीलआचार्यदेवके निर्देशानुसार श्रीनारायण

महाराज एवं श्रीरसराज ब्रजवासीने व्यासपूजा पद्धति ग्रन्थके अनुसार षोडशोपचार द्वारा पूजा-पञ्चकके सहित श्रीव्यासपूजा सम्पन्न की।

हिन्दू साधु-संन्यासी नियन्त्रण बिल (कानून) का प्रतिवाद

भारत प्राचीन कालसे ही एक धर्म-प्रधान देश है। वैदिक कालसे ही भारतकी रीति-नीति, समाज, राजनीति, शासन आदि सब कुछ धर्मनीतिके परिप्रेक्ष्यमें निर्धारित एवं सञ्चालित होता था। यवन एवं अँग्रेजी शासन कालमें भी भारतीय समाजमें धर्मका प्राधान्य संरक्षित था। किन्तु देशके स्वाधीन होनेके बादसे धर्मका जितनी तीव्र गतिसे ह्रास हुआ है उतना हजारों वर्षोंमें कभी नहीं हुआ। अभी कुछ दिन पहले २७ जुलाई, १९५६ ई० में भारतीय लोकसभामें हिन्दू साधु-संन्यासियोंको नियन्त्रित करनेके लिए एक प्रस्ताव लाया गया था। इस विधानका यह उद्देश्य था कि साधु-संन्यासियोंमें पापाचारकी प्रवृत्ति तथा समाज विरोधी आचार व्यवहार बढ़ रहा है। भिक्षा करनेकी प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। इनका नियन्त्रण होना भी आवश्यक है। इस बिलके पास हो जानेपर सच्चे साधुओंकी बदनामी दूर होगी एवं समाज भी शुद्ध होगा इत्यादि।

परमाराध्यतम आचार्यकेसरी उन्हीं दिनों श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें विराजमान थे। इस बिलके प्रति जब उनका ध्यान आकर्षित किया गया तो वे सिंहकी भाँति गरज उठे। उन्होंने कहा कि पापाचार तथा समाज विरोधी कार्य-कलापोंको दमन करनेके लिए भारतीय दण्ड संहितामें प्रचुर प्रविधान हैं फिर इसकी अलगसे क्या आवश्यकता है? फिर मुसलमानोंके मुल्लाओंके लिए, ईसाइओंके पोप-पादरियों और बौद्ध-जैनीके भिक्षुओंके लिए बिल क्यों नहीं लाया जा रहा? केवल हिन्दुओंके लिए ही क्यों हाय-तौबा मच रही है? हिन्दू साधुओंके विरुद्ध लोकसभामें कोई भी बिल प्रस्तुत करनेके पूर्व इस विषयमें देशभरमें सूचना देनी होगी। तत्पश्चात् लोकसभामें इस विषयपर बहस होनी चाहिये। ऐसा नहीं कर इनके विरुद्ध गुप-चुप कोई भी विधान या कानून बनाना सर्वतोभावेन असङ्गत है। उन्होंने उक्त बिलका कठोर प्रतिवाद किया।

उन्होंने हिन्दी, बँगला, अँग्रेजी भाषामें अपने प्रतिवाद पत्रको छपवाकर तत्कालीन प्रधान-प्रधान राजनैतिक, समाजनैतिक तथा धर्म-सम्प्रदायके प्रमुखोंको भेजकर एक प्रबल आन्दोलनका सूत्रपात किया। उस प्रतिवादकी प्रतिलिपिका तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीनेहरुजी तथा लोकसभाके सदस्योंमें भी वितरण किया गया। इसके फलस्वरूप ऐसी जनजागृति हुई कि शीघ्र ही लोकसभाने उस बिलको अस्वीकृत कर दिया। हम उनके द्वारा लिखित प्रतिवादकी प्रतिलिपि यथा रूप प्रस्तुत कर रहे हैं—

भारतके कानून एवं विधि-विधान सभी शास्त्रीय विधानोंके अनुसार निर्धारित होते हैं। शास्त्रीय विधियोंके बहिर्भूत कोई भी विधि-विधान भारतमें नहीं चल सकता। साधु-संन्यासियोंको शास्त्र ही नियन्त्रित करते हैं। कोई व्यक्ति या समाज उन्हें नियन्त्रित नहीं कर सकता। सारे पुराणों एवं शास्त्रोंमें इस कथनके पोषक प्रमाण देखे जाते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् अन्यत्र ब्राह्मण-कुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः। (श्रीमद्भा० ४/२१/१२) अर्थात् महाराज पृथु समस्त पृथ्वीके एकछत्र सम्राट थे। उनका दण्ड एवं विधि-व्यवस्था ऋषियों, ब्राह्मणों एवं अच्युत गोत्रीय विष्णु भक्तोंको छोड़कर अन्यान्य सभीके ऊपर बड़ी दृढ़तासे लागू होती थी। साधु-सन्त भारतके गौरव एवं शोभा हैं। सारे विश्वके लोग भारतके इस गौरव एवं शोभासे आकृष्ट होकर अपने पारमार्थिक और सामाजिक जीवनको गठन करनेके लिए प्रस्तुत हैं। भारतीय साधु-संन्यासी बड़े ही शान्तिप्रिय होते हैं। इसीलिए सारा विश्व शान्तिके लिए भारतकी ओर देख रहा है। राजनीतिके द्वारा धर्मनीतिको नियत्रित करना अत्यन्त अनुचित एवं अविधिपूर्ण है।

भारतीय संविधान तन्त्रसे सर्वप्रथम यह घोषणा की गयी थी कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। इसलिए भारतीय लोकसभा किसी धर्मका नियन्त्रण करनेकी चेष्टा करती है तो वह चेष्टा सम्पूर्ण रूपसे संवैधानिक विधिके विरुद्ध (Against the constitutional law) होगी। दण्डसंहिता (Penal Code) और दाण्डिक प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) आदिके भी अनेक क्षेत्रोंमें परिवर्तन और संशोधन करना होगा। दुर्नीति दमनके लिए पृथक् रूपसे कोई भी कानून बनानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि साधुओंकी दुर्नैतिकताके लिए पृथक् कानून

प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है तो काँग्रेस आदि अन्यान्य राजनैतिक दलोंके पापाचार, समाजविरोधी कार्य तथा दुर्नैतिकताके लिए भी पृथक् कानूनकी आवश्यकता है। साधु-संन्यासियोंके प्रधान या आचार्योंको नियन्त्रित करनेसे पहले राजनैतिक पण्डोंका नियन्त्रण होना अत्यन्त आवश्यक है। चोरबाजारी (black marketing) नियन्त्रण आदिके कानून आज तक भी प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

साधु-संन्यासियोंका विचार साधु-संन्यासी ही किया करते हैं। असाधु व्यक्ति साधुओंको कैसे पहचान सकता है? जो लोग कभी भी साधु-संन्यासियोंके पास गये नहीं हैं, उनका सङ्ग नहीं किया है, वे साधुओंका विचार कैसे कर सकते हैं? साधु किसे कहते हैं और असाधु किसे कहते हैं तथा इन दोनोंके बाहर जो हैं, सभीके लिए कानून सङ्गत schedule अर्थात् तफसील प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है। असाधु नियन्त्रणकी कोई भी व्यवस्था नहीं है—साधुओंको नियन्त्रण करनेके लिए असाधुलोग कमर कसकर उठ खड़े हुए हैं। आजकल वोटका युग है, अतः असाधुओंकी संख्या अधिक होनेके कारण साधुओंके ऊपर अत्याचार चलानेके लिए कानून प्रस्तुत किया जा रहा है। गरिष्ठ संख्यावाले लघुसंख्यकोंके प्रति अत्याचार एवं अभिचार चला रहे हैं, हम इसे कभी भी सुशासन नहीं कह सकते।

आजकल साधुओंके प्रति विद्वेष, हिंसा आदि लक्ष्य किया जा रहा है। अपनी-अपनी दुर्नीतियोंके लिए साधुपुरुषोंके द्वारा समाजमें हेय, घृणित, अपमानित और लज्जित होनेके कारण असाधुजन प्रतिहिंसास्वरूप कलिकालोचित साधुनियन्त्रण कानून प्रस्तुत करवा रहे हैं। इसके द्वारा भारतके सभी असाधु व्यक्ति साधुओंके रजिस्टरमें अपना नाम दर्ज कराकर अपनी असत् प्रकृतियोंको चरितार्थ करनेका सुयोग पायेंगे। साधुजन लोकसमाजमें अपनेको साधु कहलानेकी इच्छा नहीं रखते। मैं registered या licensed साधु हूँ—ऐसा परिचय देनेमें वे लज्जाका अनुभव करते हैं। कोई भी साधु सरकारी कार्यालयमें अपना नाम register कराने नहीं जायेंगे, विशेषतः Licensing Officer यदि हिन्दू-विरोधी हुए तो उनके पास हिन्दू शास्त्रानुमोदित साधुताके निरपेक्ष विचारकी आशा भी कैसे की जा सकती है?

साधु कहनेसे गृहस्थ व्यक्तिको साधु समझा जायेगा या नहीं? यदि गृहस्थोंको साधु-श्रेणीसे निकाल दिया जाये तो उन उन्नत स्तरके लोगोंको असाधु कहनेसे भारतीय दण्ड संहिताकी धारा ३५२ का अपराध या उसी कानूनकी धारा ५०० के अनुसार मान हानि होगी या नहीं? दूसरी ओर कोई गृहस्थ व्यक्ति सत्प्रवृत्ति या साधुवृत्ति ग्रहण करना चाहे तो उसे भी license लेना होगा या अपना नाम registered कराना होगा। धार्मिक जीवन यापन करनेवाले बहुत-से उच्चाधिकारी कर्मचारियोंको अदालत या आफिस आदिमें कार्यरत अवस्थामें किसी दुर्नैतिक जिलाधीश आदिके निकट अपने साधुत्वका परिचय देना होगा या उक्त जिलाधीश उनका लाइसेन्स रद्दकर उन्हें दण्ड दे सकेंगे क्या?

माननीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके द्वारा प्रस्तावित विधवा-विवाह कानून तथा शारदा बाल-विवाह कानून संविधानमें पास होनेपर भी भारतीय जनताने उसे ग्रहण नहीं किया। वह कानून संविधानके ग्रन्थागारमें किसी कोनेमें ही पड़ा हुआ है। उसी प्रकार यह वर्त्तमान कानून भी जनसाधारणकी इच्छाके विपरीत उनके ऊपर थोपनेपर इसकी भी वही दुर्दशा होनी निश्चित है। हम लोग किसी भी ऐसे कानून निर्माणके सर्वथा विरोधी हैं। लोकसभाके सदस्योंके प्रति हमारा नम्र निवेदन है कि वे कभी भी इस कानूनको पास न करें। साथ ही हम भारतके समग्र समाचार पत्रों एवं उनके पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे अपनी सारी शक्तिका प्रयोगकर इस अन्धे कानूनका प्रबल प्रतिवाद करें। भारतके समग्र जातीय समाजसे विशेषतः साधु-संन्यासियोंसे हम निवेदन करते हैं कि वे इस कानूनके विरुद्ध खड़े होकर एक स्वरसे प्रतिवाद करें।

श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ (आसाम) की स्थापना

जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने पश्चिम बङ्गाल प्रदेशके बाहर भी आसाम, बिहार, उड़ीसा, मद्रास (चेन्नई), उत्तर प्रदेश आदि विभिन्न प्रदेशोंमें प्रबल रूपसे शुद्धभक्तिका प्रचार किया था। उन-उन प्रदेशोंमें उनके बहुत-से उच्च शिक्षित गृहस्थ भक्त भी ऐसे थे, जो शुद्धभक्तिके सिद्धान्तोंमें अतिशय निपुण थे तथा स्थानीय भाषामें प्रचार भी करते थे। आसाम प्रदेशके धूबड़ी निवासी श्रीपाद

निमानन्द सेवातीर्थ प्रभु भी उनमेंसे एक अन्यतम थे। उन्होंने श्रीलप्रभुपादके आनुगत्यमें असमिया भाषाके माध्यमसे सारे आसाम प्रदेशमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया था। किन्तु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अप्रकटलीला प्रवेशके कुछ ही दिनों बाद ये भी अप्रकट हो गये। इन्होंने परलोकगमनके समय अपने अनुगत शिष्योंको श्रीवेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति परम पूजनीय श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें रहकर पारमार्थिक जीवन यापन करनेका आदेश दिया था। उनके गृहस्थ शिष्योंमें श्रीमती सुचित्राबाला देवी परम बुद्धिमती एवं भक्तिधर्मके सूक्ष्म विचार सम्पन्न महिला हैं।

'गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया' शास्त्रके इस वाणीके अनुसार गुरुकी आज्ञाको बिना विचार किये पालन करना कर्त्तव्य है। अतः सुचित्रा देवीने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको आसाम प्रदेशमें शुद्धभक्तिधर्मका प्रचार करनेके लिए बड़े आग्रहसे आमन्त्रित किया। इनके पुनः-पुनः अनुरोधपर श्रीलगुरुदेव अपने बारह अनुगत भक्तोंके साथ गोलोकगंज पहुँचे। वहाँ विभिन्न स्थानोंमें प्रबल रूपसे भक्तिका प्रचार किया। श्रील गुरुमहाराजके प्रचार वैशिष्ट्यको देखकर तथा भक्तिराज्यके गूढ़ सिद्धान्तोंको श्रवणकर जनता बड़ी प्रभावित हुई और उन्हींकी शिक्षाके आनुगत्यमें रहकर पारमार्थिक जीवन व्यतीत करनेका सङ्कल्प किया।

उक्त भक्तिमती महिलाने श्रीगोलोकगंजमें गौड़ीय मठ स्थापन करनेके लिए अपनी जमीन और अपना नवनिर्मित गृह आदि भी बिना शर्तके दान कर दिया। १६ जनवरी, १९५७ ई० में ग्वालपाड़ा जिलेके सदर धूबड़ी शहरके जिला सब रजिस्ट्री आफिसमें उक्त दानपत्र दलील रजिस्ट्री हुई। श्रीमती सुचित्राबालाके पति श्रीयुत देवेन्द्रचन्द्र दास (दीक्षाका नाम श्रीदिव्यज्ञान दासाधिकारी) महाशयने अपनी सहधर्मिणीके इस पारमार्थिक कार्यमें विशेष सहायता की।

श्रीसुरेन्द्रनाथ दासके अनुरोधपर श्रीलगुरुदेव ११-१२ फरवरी, १९५७ ई० में ग्वालपाड़ाके अन्तर्गत देवान गाँवमें प्रचार पार्टीके साथ पहुँचे। वहाँ श्रीनित्यानन्द प्रभुके आविर्भाव तथा आसाम प्रदेशीय गौड़ीय वैष्णव श्रीनिमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें एक विराट

उत्सव सम्पन्न हुआ। वहाँकी विशाल धर्मसभामें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके श्रील आचार्यदेवने श्रीनित्यानन्द एवं श्रीनिमानन्द प्रभुके जीवनचरित्रके ऊपर ओजस्वी भाषण प्रदान दिया। त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे गौरलीलाकी व्याख्या की। पण्डित श्रीसनत् कुमार दासाधिकारी एवं पण्डित श्रीवृन्दावन दासाधिकारीने भी बड़ी ओजस्विनी भाषामें भाषण दिया। श्रीसुरेन दास महोदयने उत्सवका सारा व्ययभार वहन किया।

श्रीगोलोकगंज मठमें श्रीव्यासपूजा महोत्सव

सत्रह फरवरीसे उन्नीस फरवरी सन् १९५७ ई॰ तीन दिनों तक श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें बड़े समारोहके साथ व्यासपूजा सम्पन्न हुई। समितिके प्रतिष्ठाता आचार्यदेव अपने अनुगत जनोंके साथ यहीं उपस्थित थे। उन्हींके आनुगत्यमें श्रीलसरस्वती प्रभुपादके पद्धति-ग्रन्थके अनुसार पूजापञ्चकके साथ श्रीव्यासपूजा अनुष्ठित हुई। श्रीलगुरुपादपद्मने मठ प्राङ्गणकी विशाल धर्मसभामें श्रीव्यासपूजा एवं व्यास आनुगत्यके सम्बन्धमें एक गवेषणात्मक दार्शनिक भाषण प्रस्तुत किया। निमन्त्रित एवं अनिमन्त्रित लगभग दो-तीन हजार श्रद्धालुओंको महाप्रसाद वितरण किया गया। श्रीमती सुचित्रा बालादेवी एवं उनके परिवारजनोंकी सेवा चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय थी। श्रीसुदामसखा ब्रह्मचारी एवं धन्यातिधन्य ब्रह्मचारीकी अक्लान्त सेवा-चेष्टा भी अत्यन्त सराहनीय रही।

निखिल बंग-वैष्णव सम्मेलनमें श्रीआचार्यकेसरी

बङ्गालके हुगली जिलेमें श्रीरामपुरके समीप श्रीपाट महेश एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ जगन्नाथपुरी जैसा ही रथ-यात्राका अनुष्ठान होता है। यहींपर श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर श्रीकमलाकर पिपल्लाईका श्रीपाट है। यहाँ रहकर वे भजन-साधन करते थे। उनकी तिरोभाव तिथिके उपलक्षमें सिंथि वैष्णव-सम्मेलन और श्रीरामपुर धर्मसभाकी ओरसे सन् १९५७ ई॰ में बारहसे चौदह मार्च तीन दिनों तक निखिल बंग-वैष्णव सम्मेलनका आयोजन हुआ। उक्त सम्मेलनमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्य श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीको सभापतिके रूपमें

वरण किया गया। उस सभामें नवद्वीप निवासी श्रीगोपेन्द्रभूषण सांख्यतीर्थ, पण्डित सुरेन्द्रनाथ पंचतीर्थ, अध्यापक श्रीनगेन्द्रनाथ शास्त्री, प॰ श्रीफणीन्द्रनाथ शास्त्री एम॰ए॰बी॰एल॰ आदि प्रसिद्ध विद्वान उपस्थित थे। श्रीविनोद किशोर गोस्वामी पुराणतीर्थने सभाको उद्‌बोधित किया। प्रधान अतिथि श्रीपतितपावन चट्टोपाध्याय एडवोकेटने श्रीकमलाकर पिपल्लाईके जीवन चरित्रके सम्बन्धमें भाषण दिया। उपरोक्त बड़े-बड़े विद्वानोंने भी अपने-अपने भाषण प्रस्तुत किये।

श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने प्रधान अतिथि श्रीफणीन्द्रनाथ शास्त्री महादयके वक्तव्योंकी कुछ-कुछ समालोचना की। तत्पश्चात् सभापति श्रील केशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीकमलाकर पिपल्लाईके सम्बन्धमें शास्त्रयुक्तिमूलक भाषण दिया। उन्होंने बड़े ही गम्भीर स्वरसे प्राकृत-सहजिया लोगों द्वारा अप्रामाणिक ग्रन्थोंमें लिखित सिद्धान्त विरुद्ध विचारोंका कठोर प्रतिवाद किया। श्रीपिपल्लाईके जीवनचरित्रमें कुछ अशुद्ध वैष्णव विचारोंका समावेश कराया गया है, ये आरोपित तथ्य यर्थाथतः भक्तिविरुद्ध हैं। श्रीपिपल्लाईजीका जीवनचरित्र विशुद्ध भक्तिपूर्ण था। श्रीचैतन्यचरितामृतमें उनके सम्बन्धमें कुछ उपलब्ध होता है। श्रोताओंने इस विषयमें सभाके अन्तमें सभापति महोदयसे बहुत-से प्रश्न किये। सभापति महोदयने उनके प्रश्नोंका समाधान किया।

श्रीराधाष्टमी व्रतमें उपवास

श्रीगौड़ीय वैष्णव समाजमें श्रीराधाष्टमी तिथिका महत्त्व है। गौड़ीय वैष्णव इस तिथिका बड़ा ही आदर करते हैं। श्रीमती राधिका कृष्णकी पूर्णतमा शक्ति एवं स्वयं ईश्वरी हैं। उन्हींसे सभी शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिए कोई-कोई राधाष्टमीको जयन्ती कहना चाहते हैं और उस दिन कृष्ण जन्माष्टमीके समान निर्जल उपवास व्रत पालनकी विधि देते हैं। किन्तु यथार्थमें श्रीराधाष्टमी तिथिका व्रत रूपमें उल्लेख रहनेपर भी 'हरिभक्तिविलास' में उक्त दिवसमें उपवासकी विधि नहीं देखी जाती। सहजिया सम्प्रदायके लोग श्रीराधारानीके प्रति अतिभक्ति प्रदर्शनपूर्वक उक्त दिन उपवास भी रखते हैं। श्रीहरिभक्तिविलास ही गौड़ीय वैष्णवोंके लिए एकमात्र स्मृति ग्रन्थ है। उसमें शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वैष्णवोंके

लिए पालनीय व्रतोपवासकी व्यवस्था सुन्दर रूपसे लिपिबद्ध है। क्रिया-कलापके सम्बन्धमें 'सत्क्रियासार-दीपिका' एक आदर्श ग्रन्थ है। इन ग्रन्थोंमें लिपिबद्ध व्रत आदिके नियमोंका उल्लंघनकर कोई नया व्रत आदिका पालन शुद्ध वैष्णवके लिए अनुचित है। आजकल कॉंग्रेस कम्पनी द्वारा परिचालित रजिस्टर्ड गौड़ीय मिशनने शुद्ध वैष्णवधाराका परिवर्तनकर सहजिया मतके अनुसार श्रीराधाष्टमीके दिन व्रतोपवासकी विधिका सूत्रपात किया है।

शास्त्रोंमें शक्तिमान परतत्त्व अथवा उनके अवतारोंके जन्मदिनमें ही व्रतोपवासकी विधि दी गयी है। यदि शक्तितत्त्वके आविर्भावके दिन भी उपवासका विधान होता तो वर्षके ३६५ दिन ही उपवास रखने होंगे, क्योंकि भगवत्-शक्तियोंके अतिरिक्त गुरु-परम्पराके सभी आचार्य एवं गुरु सभी शक्तितत्त्वके अन्तर्गत हैं। इन सभीके आविर्भाव और तिरोभावके दिन व्रतोपवास करना पड़ेगा, यह सर्वथा असम्भव है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन सभी मठोंमें श्रीसनातन गोस्वामीकी विधिके अनुसार एक सितम्बर १९५७ ई॰ रविवारके दिन श्रीराधाष्टमी व्रतका पालन किया गया। उक्त दिन श्रीश्रीराधाकृष्णका अभिषेक, विशेष रूपसे भोगराग, श्रीराधातत्त्वके विषयमें प्रवचन, पाठ एवं सङ्कीर्त्तन इत्यादिका आयोजन किया गया था।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने राधाष्टमीके दिन नवद्वीपके अन्तर्गत कोलेरगंज स्थित परमपूज्यपाद श्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य सारस्वत मठमें राधातत्त्वके सम्बन्धमें एक दार्शनिक विचारपूर्ण भाषण प्रदान किया। दूसरे वक्ताओंने भी अपने-अपने विचारोंको प्रकटकर श्रीमती राधिकाके चरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम, खड़गपुरमें व्यासपूजा

पिछले वर्ष श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें तथा उससे पूर्व मेदिनीपुरके अन्तर्गत पूर्वचक, वेगुनाबाड़ी ग्राममें श्रीलसरस्वती प्रभुपादके द्वारा प्रवर्तित रीतिके अनुसार विपुल समारोहके साथ व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ था। ८ फरवरी, १९५८ ई॰ में जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके

आविर्भावके दिन त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराजके अदम्य उत्साहसे उनके श्रीगौर-वाणी-विनोद आश्रम खड़गपुरमें विशाल रूपसे व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ था।

इस अनुष्ठानमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने आश्रित जनोंके साथ शुभविजयकर व्यासपूजाका पौरोहित्य किया। व्यासपूजाके दूसरे दिन लगभग पाँच हजार श्रद्धालुओंको महाप्रसाद वितरण किया गया। श्रीव्यासपूजाके उपलक्ष्यमें आयोजित एक बृहत् धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने सभाको सम्बोधित करते हुए कहा—"हम भारतवासी ही नहीं बल्कि विश्ववासी श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके चिरऋणी हैं। उन्होंने वेद अध्ययन करनेवाले जनसाधारणकी सुविधाके लिए वेदके चार विभाग किये। वेदोंके सारभाग वेदान्त या उपनिषदोंके आपात विरोधी वाक्योंका सामञ्जस्य करते हुए वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्रकी रचना की। अन्यान्य पुराणों एवं महाभारतकी रचना की और अन्तमें वेदान्तसूत्रको सरल सहज रूपमें बोधगम्य करानेके लिए स्वयं ही उसके भाष्यस्वरूप अमल महापुराण श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया। भारतके सारे धर्मसम्प्रदाय किसी-न-किसी प्रकारसे अपनेको व्यासानुग सम्प्रदाय मानते हैं। श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे यह स्पष्ट रूपसे झलकता है कि भगवद्भक्ति ही उनके ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय है। उन्होंने अपने सुविख्यात ब्रह्मसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान या मुक्ति शब्दका उल्लेख नहीं किया। अपने ब्रह्मसूत्रके अकृत्रिम भाष्य पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र ही भक्तिका प्रतिपादन किया है। श्रीशाङ्कर सम्प्रदायमें श्रीव्यासपूजाका प्रचलन दृष्टिगोचर होनेपर भी उनकी व्यासपूजा हास्यास्पद है। आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासको भ्रान्त बतलाया है। श्रीशङ्करने लिखा है कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, वह कभी भी आनन्दमय नहीं हो सकता। किन्तु श्रीव्यासजीने वेदान्तसूत्रमें ब्रह्मको 'आनन्दमय' कहा है। इस प्रकार आचार्य शङ्करने श्रील व्यासदेवके विचारोंका खण्डन किया है। अतः उनकी पूजा केवल दिखलानेमात्रके लिए है।

वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीव्यासदेवकी यथार्थ रूपमें पूजा होती है। श्रीपाद जनार्द्दन महाराज द्वारा अनुष्ठित व्यासपूजाका आदर्श प्रत्येक त्रिदण्डि संन्यासीके लिए ग्रहणीय है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद द्वारा संग्रहीत तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित श्रीव्यासपूजा पद्धतिका अवलम्बन न कर केवल अपने चरणोंमें पुष्पाञ्जलि एवं अर्चाञ्जलि ग्रहण करना ही व्यासपूजा नहीं है। आजकल प्रायः सर्वत्र ऐसा ही देखा जा रहा है कि तथाकथित गुरु व्यासपूजाके नामपर अपने चरणोंमें पुष्पाञ्जलि एवं अर्चाञ्जलि ग्रहण करते हैं। अपने शिष्योंके द्वारा अपनी प्रशस्ति और अभिनन्दन श्रवण एवं ग्रहण करते हैं। व्यासपूजाके दिन आचार्य अपने गुरु, गुरुपरम्परा तथा उपास्य इन सबकी पूजा करेंगे। इस पूजा-पद्धतिके अनुसार गुरुपञ्चक, आचार्यपञ्चक, व्यासपञ्चक, सनकादिपञ्चक, कृष्णपञ्चक, उपास्यपञ्चक, और पञ्चतत्त्वकी पूजा करता है।(१) इस प्रकार श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रचलित व्यासपूजा पद्धतिका अवलम्बन करना ही श्रीगौड़ीय सारस्वत वैष्णवोंका परम कर्त्तव्य है।"

इस अवसरपर श्रीपाद जनार्द्दन महाराजके शिष्य जब उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेके लिए उपस्थित हुए, तब उन्होंने अपने सारे शिष्योंको सर्वप्रथम अपने शिक्षागुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देनेके लिए आदेश दिया। उनके आदेशानुसार उनके सारे शिष्य जब श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि देनेके लिए उपस्थित हुए तब उन्होंने समझाया कि शिष्यको सर्वप्रथम अपने गुरुचरणोंकी पूजा कर ही अन्य गुरुजनोंकी पूजा करनी चाहिये। इसके लिए उन्होंने शास्त्रीय उदाहरण एवं प्रमाण

(१)
कृष्णपञ्चक—श्रीकृष्ण, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध।
व्यासपञ्चक—श्रीवेदव्यास, पैल, वैशम्पायन, जैमिनी, सुमन्त।
आचार्यपञ्चक—श्रीशुकदेव, रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी, निम्बादित्य।
सनकादिपञ्चक—श्रीसनक, सनत्कुमार, सनातन, सनन्दन, विष्वकसेन।
गुरुपञ्चक—श्रीगुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु, परात्परगुरु, परमपरात्परगुरु।
उपास्यपञ्चक—श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्रीगौर, श्रीगदाधर, श्रीगुरुदेव।
पञ्चतत्त्व—श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, गदाधर, श्रीवास।

भी दिये। श्रीपाद जनार्द्दन महाराज अपने ज्येष्ठ सतीर्थ एवं शिक्षागुरुके निर्देशको टाल नहीं सके। इस प्रकार अपने गुरुदेवकी पूजाकर उनके सभी शिष्योंने श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको पुष्पाञ्जलि प्रदान की। पूज्यपाद जनार्द्दन महाराज जीवन भर इस घटनाको कभी नहीं भूले। वे कहते थे उन्होंने अपने सभी गुरुभाईयोंको बहुत निकटसे देखा, किन्तु इनके जैसा उदार, सिद्धान्तविद, सत्यका निर्भीक वक्ता किसी औरको नहीं देखा। ऐसा कहते हुए उनकी आँखें छलछला उठती थीं।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं अक्षय तृतीया

२२ अप्रैल, १९५८ ई॰ के दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रतिष्ठा दिवस—अक्षय तृतीयाके दिन एक विशेष उत्सवका अनुष्ठान हुआ। उस दिन श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें पाठ-कीर्त्तनके अतिरिक्त एक विशेष धर्मसभाका आयोजन किया गया। परमाराध्य श्रील गुरुदेवके भाषणका सार इस प्रकार है—अक्षय तृतीया सत्ययुगका प्रारम्भिक दिन है। अक्षय तृतीयासे ही सत्ययुगका प्रारम्भ होता है। श्रीबद्रीनारायणका पट भी प्रतिवर्ष अक्षय तृतीयाके दिन ही खुलता है। अक्षय तृतीयाके दिन ही श्रीजगन्नाथ पुरीमें श्रीचन्दन-यात्रा सम्पन्न होती है। उस दिन श्रीजगन्नाथजीके अङ्गोंमें सर्वत्र मलयचन्दन लेपन किया जाता है तथा श्रीजगन्नाथदेवजीके विजय-विग्रह श्रीमदनमोहनजीको सुसज्जित नौकामें विराजमानकर श्रीनरेन्द्र सरोवरमें उनका नौकाविलास सम्पन्न किया जाता है।

आज ही के दिन १९४० ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना हुई थी। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने 'अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां' श्लोकका अवलम्बनकर श्रीमद्भागवतको ही गौड़ीय-वेदान्तके रूपमें स्थापन किया। गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषणने भी इसी श्लोकका अवलम्बनकर गोविन्द भाष्यकी रचना की। उन्होंने तुलना मूलक विचार करते हुए श्रीगोविन्द भाष्यको सर्वोत्तम भाष्य बतलाया तथा गोविन्द भाष्यके अतिरिक्त सभी वेदान्त भाष्यकारोंमें श्रीमाध्वभाष्यका उत्कर्ष प्रदर्शन करते हुए शाङ्कर वेदान्तकी अनुपादेयता एवं असारताका भी प्रतिपादन किया।

गोलोकगंज आसाममें मठ-मन्दिर निर्माण एवं प्रचार

१ मई, १९५८ ई० को परमाराध्य श्रील गुरुदेव प्रचार पार्टीके साथ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठसे यात्रा कर श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें पहुँचे। वहाँसे वे संन्यासी ब्रह्मचारियोंके साथ धूबड़ी शहरके शान्तिनगर पल्लीमें समितिके विशिष्ट सेवक श्रीअद्वैतचरण दासाधिकारी महोदयके घरपर ठहरे। वहींसे उन्होंने धूबड़ी शहरकी कालीवाड़ी आदि स्थानोंमें श्रीमद्भागवत पाठ एवं प्रवचन किया। उन्होंने वहाँके हरिसभा-मण्डपमें वर्त्तमान समस्याका समाधान, धर्मजीवनकी आवश्यकता और सनातनधर्मके सम्बन्धमें तीन भाषण प्रदान किये। उनके गम्भीर एवं प्रभावशाली भाषणोंको सुनकर श्रोतागण बड़े प्रभावित हुए।

उनके साथ श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने भी स्थान-स्थानपर छायाचित्रके माध्यमसे भाषण दिया। इन लोगोंके प्रचारसे उच्चशिक्षित एवं सम्भ्रान्त सभी लोगोंने इनके प्रचारकार्यमें तन-मन-वचन एवं अर्थ द्वारा सहायता की।

पिछलदामें प्राथमिक विद्यालय प्रतिष्ठा एवं शिक्षा प्रणाली

मेदिनीपुर जनपदके अन्तर्गत पिछलदा एक छोटा-सा ग्राम है। श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीजगन्नाथपुरी जानेके पथमें इस ग्राममें पधारे थे। यहाँके ग्रामवासियोंके बार-बार अनुरोध करनेपर श्रील गुरुदेवने यहाँ श्रीमन्महाप्रभु पादपीठ एवं श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ नामक प्रचारकेन्द्र स्थापित किया था। पिछलदा ग्रामवासी उस गाँवमें एक प्राथमिक विद्यालयकी स्थापना करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने School Board नामसे एक प्रतिष्ठानकी रजिस्ट्री करायी थी। विद्यालय चलानेके लिए उन्हें भवनकी आवश्यकता थी। उन्होंने श्रील गुरुदेवको पिछलदा पादपीठके पुराने गृहको स्कूलके लिए प्रदान करनेके लिए २३/१२/५८

ई॰ को एक प्रार्थना पत्र दिया। श्रील गुरुदेव उस समय श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें थे। उन्होंने उक्त प्रार्थना पत्रको पढ़कर अपना मन्तव्य पत्र द्वारा ग्रामवासियोंको प्रेरित किया था जो नीचे दिया जा रहा है—

(१) वर्त्तमान विश्वविद्यालयकी शिक्षाके प्रति श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी तनिक भी श्रद्धा नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुकी विरोधी शिक्षाको मैं शिक्षा नहीं मानता।

(२) कुछ रुपयोंकी सहायता पानेके लिए मैं धर्मशिक्षाको जलांजलि देनेके लिए प्रस्तुत नहीं हूँ।

(३) पिछलदा श्रीचैतन्य महाप्रभुका पदांकपूत स्थान है, इसलिए पिछलदावासी लोगोंको श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके अनुकूल जीवन व्यतीत करना चाहिये। इसके लिए उन्हें वैसी ही धर्ममूलक शिक्षा लेनी होगी।

(४) पिछलदा पादपीठ निरीश्वर पादपीठ नहीं है। नास्तिकता मूलक शिक्षा देनेके लिए वेदान्त समितिका किसी प्रकार अनुमोदन नहीं है।

(५) यदि स्कूल बोर्ड, वेदान्त समितिकी शिक्षा पद्धतिको सम्पूर्ण रूपमें छात्रोंको देना स्वीकार करे तो मुझे दानपत्र कर देनेमें कोई आपत्ति नहीं।

(६) श्रीगौड़ीय पत्रिकाके दशम वर्ष, दशम अङ्कमें अचिन्त्यभेदाभेद प्रबन्धमें कलकत्ता विश्वविद्यालयके कार्यकलापके प्रति कठोर कटाक्ष किया गया है, इसे ग्रामवासियोंको स्मरण रखना होगा।

(७) श्रीधाम मायापुरमें मैंने हाईस्कूलकी प्रतिष्ठा की थी। वह विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित है। वहाँ विश्वविद्यालयके कानूनको भङ्गकर ही धर्मशिक्षाको प्रधानता दी गयी थी। यहाँ भी वही आदर्श ग्रहण करना होगा।

(८) दुर्नैतिक छात्रोंके द्वारा देशका किसी प्रकारका कल्याण सम्भव नहीं है, धर्मनीति ही प्रधान नीति है।

(९) हमारे देशमें क्रिचियन मिशनरी स्कूल बहुत हैं। यदि वे सरकारी अनुमोदन प्राप्त कर सकते हैं, तो पिछलदाकी यह पाठशाला भी धर्मशिक्षाको प्रधान रखकर अवश्य ही अनुमोदन प्राप्त करेगी।

(१०) श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके धर्मीय उद्देश्यके विरुद्ध किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करना होगा।

(११) श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति शिक्षा विस्तारके लिए विद्यालय या पाठशाला, संस्कृत टोल स्थापन करनेके लिए अनुमोदन करती है। ऐसा विद्यालय वेदान्त समिति द्वारा अनुमोदित कमेटी द्वारा परिचालित होगा। शिक्षाविभागके किसी भी निरीश्वर चिन्तास्रोतको इसमें प्रवेश करने नहीं दिया जायेगा।

(१२) दैत्यराज हिरण्यकशिपुने श्रीप्रह्लाद महाराजको षण्डामर्ककी पाठशालामें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भेजा था। वहाँकी शिक्षा शुक्राचार्यके द्वारा परिचालित होती थी। किन्तु प्रह्लाद महाराजने अपने पिता सम्राटकी आज्ञा तथा शिक्षाविभागके मूल निदेशक शुक्राचार्यके निर्देशका सम्पूर्ण रूपसे उल्लंघन करके ही विष्णुभक्ति शिक्षाकी प्रधानता दी थी। वही हमारी शिक्षा-विस्तारका आदर्श है।

(१३) श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें 'श्रीराय रामानन्द संवाद' प्रसङ्गमें श्रीमन्महाप्रभुने शिक्षाके सम्बन्धमें जगत्‌के जीवोंको जो निर्देश दिया है वही हमारे लिए ग्रहणीय है। इसके अतिरिक्त हम किसी आसुरिक आदर्शको ग्रहण नहीं करेंगे।

(१४) विश्वविद्यालयके आइन-कानूनके अनुसार सभी विद्यालयोंमें शनिवारको अर्द्ध एवं रविवारको पूर्ण अवकाशका नियम है। किन्तु श्रीधाम मायापुरके स्कूलमें इस नियमके विपरीत एकादशी एवं पञ्चमीको अवकाश दिया जाता था। इसके विरुद्ध इसाइयों एवं मुसलमानों द्वारा मेरे विरुद्ध आवेदन देनेपर विश्वविद्यालयके विभागीय परिदर्शकने आकर मेरे ऊपर हुकुम जारी किया था। किन्तु मैंने ऐसा हुकुम पालन करनेसे अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप विश्वविद्यालयकी अर्थ सहायता बन्द कर दी। फिर भी श्रीधाम मायापुरका ठाकुर भक्तिविनोद इन्स्टीट्यूट सरकारी अनुमोदनसे आज भी चल रहा है।

(१५) मेरा यह पत्र (वक्तव्य) ग्रामवासियोंको पढ़ कर सुनाना होगा। मेरे द्वारा और भी स्कूल, टोल, विद्यालय स्थापित एवं परिचालित हो रहे हैं। इसलिए विद्यालय-स्थापनके सम्बन्धमें मेरी श्रेष्ठ अभिज्ञता है। हम सरकारकी कानून आइन माननेके लिए कतई बाध्य नहीं हैं।

स्वाधीन देशके लोग पराधीन नहीं हैं। यहाँपर पाठशालाकी स्थापना अच्छी तरहसे करनी होगी। यह पाठशाला मेदिनीपुर जनपदमें एक आदर्श पाठशाला होनी चाहिये, यह सभीको समझा देना।"

श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव

२९ जनवरी, १९५९ ई. को आसाम प्रदेशके गोलोकगंजमें स्थित श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग राधाविनोद-बिहारीजीकी नित्यसेवा सुप्रकाशित हुई है। समितिके सभापति आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने स्वयं श्रीविग्रहोंकी सुप्रतिष्ठा कर जगत्‌का अशेष कल्याण किया है। भक्तके हृद्‌गत तत्त्व श्रीभगवान् कृपापूर्वक बाह्य जगत्‌में आविर्भूत होते हैं। श्रील आचार्यदेवके हृदयके भावको अभिव्यक्त कर श्रीकृष्ण-विग्रह राधालिङ्गित भङ्गिमामें राधाकान्ति अङ्गीकार कर अपूर्व माधुर्यमण्डित भावसे प्रकाशित हुए हैं—'राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता। श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालङ्गित-विग्रहम्॥' (श्रीराधाविनोदविहारी-तत्त्वाष्टक)

प्रातःकाल ८ बजे तक ऊषाकीर्त्तन, नगर-सङ्कीर्त्तन, तत्पश्चात् प्रातः ८ से लेकर २ बजे तक श्रीविग्रहोंका अभिषेक, शास्त्रपाठ, वैष्णवहोम-यज्ञ, प्रतिष्ठा कार्य, अर्चन-पूजन और भोगरागका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। रात ११ बजे तक निमन्त्रित, अनिमन्त्रित सभी लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको ४ बजेसे ७ बजे तक एक महती धर्मसभाका आयोजन हुआ; जिसमें समितिके त्रिदण्डि-संन्यासियों तथा विद्वानोंके भाषण हुए। सबके अन्तमें श्रील आचार्यदेवने श्रीविग्रह-तत्त्वके सम्बन्धमें गम्भीर एवं भावपूर्ण भाषण प्रदान किया। उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतके 'पद्भ्यां चलन् यः प्रतिमा-स्वरूपो ब्रह्मण्यदेवो हि शताहगम्यम्। देशं ययौ विप्रकृतेऽद्भुतेऽहं तं साक्षिगोपालमहं नतोऽस्मि॥' अर्थात् जो ब्रह्मण्यदेव प्रतिमारूप होकर भी ब्राह्मणके कल्याणके लिए सौ दिनका पथ पैदल चलकर बहुत दूर देशमें पहुँचे थे, उन अलौकिक कार्य करनेवाले साक्षीगोपालको मैं प्रणाम कर रहा हूँ। उन्होंने इस श्लोकको उद्धृत

करते हुए कहा कि—श्रीविग्रह स्वयं भगवान् हैं। 'प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन'—श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी ऐसा कहा है।

श्रीशङ्कराचार्यके मतानुसार साधकोंके कल्याणके लिए निर्विशेष ब्रह्मका काल्पनिक रूप ही प्रतिमा कहलाती है। एक निर्विशेष ब्रह्मकी काल्पनिक मूर्त्ति पाँच प्रकारकी है—विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश। इनके उपासक पंचोपासक कहलाते हैं। शङ्कराचार्यका यह विचार सर्वथा शास्त्रविरोधी कपोल कल्पना है। पत्थर आदिकी काल्पनिक प्रतिमा कदापि चल फिर नहीं सकती अथवा बातचीत नहीं कर सकती। अतः श्रीविग्रह चिन्मय एवं पूर्णब्रह्म-स्वरूप है। भगवान् निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष आदि नहीं हैं। 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्, न प्रतीकेन हि सः, आनन्दमयोऽभ्यासात्' आदि वेदान्तसूत्रोंमें भगवान्के नित्यस्वरूप, उनकी शक्ति एवं अप्राकृत गुणोंका प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने अकाट्य अभिनव युक्तियों तथा शास्त्र-प्रमाणके द्वारा प्रतीकोपासना तथा निराकारवाद आदिका खण्डनकर श्रीविग्रह-तत्त्वके सम्बन्धमें ऐसा तत्त्वसिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया जिससे उपस्थित श्रोतृमण्डलीके हृदयपटलपर एक गम्भीर छाप पड़ी। उन्होंने प्रतिमा और विग्रहमें क्या पार्थक्य है तथा नित्य विग्रह विरोधी निराकार निर्विशेषवादी श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके अधिकारी नहीं हैं, इसकी भी गम्भीर रूपसे घोषणा की।

श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम खड़गपुरमें व्यासपूजा तथा नवनिर्मित मन्दिरमें श्रीविग्रहोंका प्रवेशोत्सव

२७ फरवरी, १९५९ से १ मार्च, १९५९ तक श्रीगौरवाणी-विनोद आश्रम खड़गपुरमें श्रीव्यासपूजा एवं श्रीविग्रहोंका नवनिर्मित मन्दिरमें प्रवेश उत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। इस आश्रमके अध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराजके विशेष आग्रहसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं सभापति परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज उक्त उत्सवके उपलक्षमें खड़गपुर पधारे थे। चार दिनों तक वहाँ उपस्थित रहकर उस महदनुष्ठानका पौरोहित्य भी किया। उनके साथ उनके आश्रित बहुत-से संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंने भी इस महोत्सवमें योगदान किया।

२७ फरवरी, १९५९ माघी तृतीया तिथि उक्त समितिके सभापति आचार्यदेवकी आविर्भाव तिथि थी। उक्त दिवसपर उन्होंने स्वयं अपने गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी आलेख्य-मूर्त्तिकी पूजा की। तथा उनके आदेशसे गंजाम (उड़ीसा) से पधारे हुए श्रीनित्यानन्द ब्रह्मचारीजीने अर्चालेख्य मूर्त्तिकी आरति की। आरतिके समय श्रील आचार्यदेवके द्वारा रचित श्रील प्रभुपादकी आरति गीतिका कीर्त्तन हुआ—

जय जय प्रभुपादेर आरति नेहारी।
योग मायापुर-नित्य सेवा-दानकारी॥

सर्वत्र प्रचार-धूप सौरभ मनोहर।
बद्ध मुक्त अलिकुल मुग्ध चराचर॥

भकति-सिद्धान्त-दीप जालिया जगते।
पञ्चरस-सेवा-शिखा प्रदीप्त ताहाते॥

पञ्च महाद्वीप यथा पञ्च महाज्योतिः।
त्रिलोक-तिमिर-नाशे अविद्या दुर्मति॥

भकति-विनोद-धारा जल शङ्ख-धार।
निरवधि बहे ताहा रोध नाहि आर॥

सर्ववाद्यमयी घन्टा बाजे सर्वकाल।
बृहत्मृदङ्ग वाद्य परम रसाल॥

विशाल ललाटे शोभे तिलक उज्ज्वल।
गल देशे तुलसी माला करे झलमल॥

अजानुलम्बित बाहू दीर्घ कलेवर।
तप्त काञ्चन-बरण परम सुन्दर॥

ललित-लावण्य मुखे स्नेहभरा हासी।
अङ्ग कान्ति शोभे जैछे नित्य पूर्ण शशी॥

यति धर्म परिधाने अरुण वसन।
मुक्त कैल मेधावृत गौड़ीय गगन॥

भकति-कुसुमे कत कुञ्ज विरचित।
सौन्दर्ये-सौरभे तार विश्व आमोदित॥

सेवादर्शे नरहरि चामर ढूलाय।
केशव अति आनन्दे निराजन गाय॥

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने चैतन्यभागवतसे दो दिनों तक श्रीवासके घर व्यासपूजा प्रसङ्गका पाठ किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने दो दिन शहरके गणमान्य व्यक्तियोंके घरपर पाठ-कीर्त्तन किया।

दूसरे दिनकी सायंकालीन धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने श्रीकृष्ण-लीलाके सम्बन्धमें प्रवचन करते समय धर्म जीवनकी आवश्यकताके सम्बन्धमें एक सारगर्भित भाषण दिया। उन्होंने कहा कि—"धर्मरहित मनुष्य-जीवन पशु-जीवनके समान है—धर्मेण हीना पशुभिः समाना। आहार, निद्रा, भय, सन्तान उत्पत्ति पशु-जीवनमें भी सर्वत्र देखी जाती है। फिर यदि हम भी उक्त चार विषयोंमें फँसे रहे तो मनुष्य जीवनकी सार्थकता कहाँ रही? फिर पशु जीवनसे मनुष्य जीवनकी श्रेष्ठता कहाँ रही? इसीलिए श्रीमद्भागवतमें—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(श्रीमद्भा० ११/९/२९)

अर्थात् अनेक जन्मोंके बाद यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। इसलिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होनेपर भी परमार्थको देनेवाला है। मनुष्य योनिके अतिरिक्त किसी भी अन्य योनिमें साधुसङ्ग दुष्प्राप्य है। बिना साधुसङ्गके परमार्थकी प्राप्ति असम्भव है। अतः बुद्धिमान व्यक्तिको मृत्युसे पूर्व ही क्षणमात्र काल विलम्ब किये बिना चरम कल्याणके लिए चेष्टा करनी चाहिये। वह चरम कल्याण क्या है? वह चरम कल्याण श्रीकृष्णकी भक्तिका अनुशीलन करना ही है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसमें श्रीकृष्णकी भक्ति—भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना

न हो, जो नित्य निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥
(श्रीमद्भा॰ १/२/७)

भगवद्भक्तिके भी बहुत-से अङ्ग है। जिनमेंसे कलियुगी मनुष्योंके लिए हरिनाम-सङ्कीर्त्तन ही सर्वश्रेष्ठ है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

श्रीहरिनाम-सङ्कीर्त्तनमें केवल श्रद्धाका विचार है। श्रद्धालु व्यक्ति ही नाम सङ्कीर्त्तनका अधिकारी है। श्रद्धा होनेपर कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थितिमें हरिनाम-सङ्कीर्त्तन कर सकता है। यहाँ तक कि श्रद्धा नहीं रहनेपर भी भगवन्नाम करनेपर मुक्ति तक भी अनायास ही प्राप्त हो सकती है। हरिनामका जप या सङ्कीर्त्तन इतना सरल होनेपर भी लोग इससे क्यों विरत रहते हैं? क्योंकि—'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।' तथा 'भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्।' इन शास्त्रीय प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि सबसे बड़े साहसी वीर पुरुष ही धर्मजीवन ग्रहण कर सकते हैं—हरिनाम ग्रहण कर सकते हैं। कायर व्यक्ति ही आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि मायिक कार्योंमें संलग्न रहते हैं। इन प्रमाणोंके द्वारा यह अच्छी तरहसे समझा जा सकता है कि जो लोग राजनीति, अर्थनीति एवं समाजनीति आदिमें आसक्त रहते हैं, वे सभी डरपोक कापुरुष हैं। वे माया एवं अविद्याके डरसे जर्जरित होकर मायाकी चापलूसीमें ही जीवनको वृथा नष्ट करते हैं। मायाके कारागारसे मुक्त होनेका साहस उनमें नहीं है।"

श्रील प्रभुपादके आविर्भाव तिथिके दिन उनके अर्चन-पूजन तथा उनके श्रीचरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पणके पश्चात् श्रीपाद जनार्द्दन महाराजकी प्रचेष्टासे निर्मित नौ शिखरविशिष्ट विशाल मन्दिरमें श्रीनाम-सङ्कीर्त्तन एवं पाञ्चरात्रिक विधियोंके अनुसार तदीय प्रतिष्ठित एवं

सम्पूजित श्रीविग्रहोंने शुभ प्रवेश किया। उसी दिन व्यासपूजा पद्धतिके अनुसार गुरुपूजा पंचक, आचार्यपंचक, कृष्णपंचक, उपास्यपंचक आदिकी पूजा एवं वैष्णव होम विशेष रूपसे अनुष्ठित हुआ। सारे खड़गपुरमें ही नहीं मेदिनीपुर जनपदमें भी इस व्यासपूजाकी चर्चा होने लगी।

श्रीराधागोविन्दनाथ महाशय कृत वैष्णव दर्शन ग्रन्थका प्रतिवाद

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं सभापति आचार्यकेसरी ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने बागबाजार कलकत्ताके रजिस्टर्ड गौड़ीय मिशनसे प्रकाशित 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ग्रन्थका कठोर प्रतिवाद किया है। इससे सुधी सज्जन मण्डली विशेष रूपसे अवगत हैं। श्रीयुत राधागोविन्दनाथने भी अचिन्त्य-भेदाभेद ग्रन्थका जूठन ग्रहणकर 'वैष्णव दर्शन' नामका एक विशाल ग्रन्थ लिखा है। दोनोंके विचार एक समान हैं। श्रील आचार्यकेसरीने राधा गोविन्दनाथ द्वारा लिखित वैष्णव दर्शनका प्रतिवाद श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष १९ चतुर्थ संख्या १५९ से १६० पृष्ठमें किया है—"श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत है। मैंने इसे श्रीविद्याविनोद द्वारा रचित 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ग्रन्थका प्रतिवाद करते हुए अपने 'अचिन्त्य-भेदाभेद' प्रबन्धमें विस्तृत रूपसे प्रमाणपुरःसर स्थापित किया है। उस प्रबन्धमें नाथ महाशयके 'वैष्णव दर्शन' ग्रन्थका भी प्रतिवाद किया गया है। पाठकगण नवम एवं दशम वर्षके गौड़ीय पत्रिकासे इस प्रबन्धका पाठ करनेसे विशेष रूपसे उपकृत हो सकते हैं। उक्त प्रबन्धके प्रचारके फलस्वरूप आजकल विभिन्न सभाओंमें श्रीराधागोविन्द नाथ महाशयके प्रति प्रतिवाद हो रहा है। मैं आशा करता हूँ भारतमें सर्वत्र धर्मीय अनुष्ठानोंके द्वारा उक्त ग्रन्थका प्रतिवाद होगा।"

उन्होंने इस विषयमें और भी लिखा है—"हम लोग यह जानकर विशेष आनन्दित हुए हैं कि राधाकुण्ड, वृन्दावन, गोवर्धन, मथुरा आदि अञ्चलके साधारण वैष्णव समाजके प्रसिद्ध गोस्वामियों एवं बाबाजी महाराजों आदि सभीने एक स्वरसे श्रीराधागोविन्द नाथ महाशय द्वारा

लिखित वैष्णव दर्शन नामक विराट ग्रन्थका तीव्र प्रतिवाद किया है। २२ अप्रैल १९५९ ई. के दिन वृन्दावनस्थित श्रीअमिय निमाई-गौराङ्ग मन्दिरमें एक महती सभाका आयोजन किया गया। उस सभामें उक्त ग्रन्थकी कठोर रूपमें समालोचना की गयी। हम पाठकवर्गके निकट उक्त समालोचनाओंमेंसे दो एक विषयोंमें निवेदन कर रहे हैं—

"सबसे पहले उस सभामें गौड़ीय वैष्णवोंने यह विचार किया कि श्रीनाथ महाशय किसी भी वैष्णव सम्प्रदायके अन्तर्गत दीक्षित वैष्णव नहीं हैं। विशेषतः श्रीमन्महाप्रभुके समयसे ही गौड़ीय वैष्णवगण अपनेको माध्व गौड़ीय अथवा श्रीब्रह्ममाध्व गौड़ीय सम्प्रदाय मानते चले आ रहे हैं—इसे वे अस्वीकार कर रहे हैं। यह उनके दार्शनिक ऐतिह्य ज्ञानहीनताका परिचायक है। उक्त सभाके सभापति महोदयने सभामें उपस्थित सभी सदस्योंको सर्वसम्मतिके द्वारा यह बतलाया कि गौड़ीय वैष्णवगण श्रीमध्वाचार्य सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। इस तथ्यके विरुद्ध जो कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित होगा, वह वैष्णवोंके पठन-पाठनके योग्य नहीं है।

दूसरी बात यह है कि उन्होंने यह भी कहा कि गौड़ीय वैष्णवके परमपूज्य तथा गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायैक रक्षक श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु श्रीमाध्व गौड़ीय सम्प्रदायके प्रतिष्ठासम्पन्न दार्शनिक पण्डिताग्रगण्य, श्रीमन्महाप्रभुके विशुद्ध सेवकाचार्य हैं। इस विषयमें किसीको लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। नाथ महाशयने श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुको गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका साम्प्रदायिक आचार्य नहीं माननेके कारण उक्त आचार्यके चरणकमलोंमें महापराधी हैं।

तीसरी बात यह है कि नाथ महाशयने अचिन्त्य-भेदाभेदवादके सम्बन्धमें जिन विचारोंका प्रदर्शन किया है, वह किसी भी प्रकारसे सुसङ्गत नहीं है। इसलिए उनके द्वारा रचित एवं संग्रहीत गौड़ीय दर्शन नामक विराट ग्रन्थका पाठ या श्रवण करनेसे शुद्ध वैष्णवोंका सर्वनाश होगा। अथवा वे गौड़ीय वैष्णव साम्राज्यसे सदाके लिए पतित होंगे।

उस सभामें पूर्व-पूर्व महाजनोंका अनुसरणकर गौड़ीय वैष्णव समाजको ब्रह्ममाध्व गौड़ीय सम्प्रदायके रूपमें स्वीकार किया गया तथा नाथ महाशय द्वारा लिखित वैष्णव दर्शनको श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके लिए अपाठ्य निर्धारित किया गया, इत्यादि।"

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रील आचार्यदेव

धूबड़ी निवासी श्रीपरमानन्द दासाधिकारी (श्रीपलाश चन्द्रगूह) महोदयके अत्यन्त आवश्यक पत्रको पाकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके परमाराध्य श्रील आचार्यदेवने २१ मई, १९५९ ई० को श्रीधाम नवद्वीपसे आसाम प्रदेशके अन्तर्गत श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठके लिए यात्रा की। रास्तेमें कटिहार जंक्शनमें रेल दुर्घटना होनेके कारण गोलोकगंज पहुँचनेमें प्रायः १२ घन्टा विलम्ब हुआ। मठके सेवकगण श्रीआचार्यदेवके वहाँ पहुँचनेका टेलीग्रामके माध्यमसे संवाद पाकर गोलोकगंज रेलवे स्टेशनपर सम्वर्धना करनेके लिए उपस्थित थे। वे मृदङ्ग-करतालके साथ सङ्कीर्त्तन करते हुए आचार्यदेवको आदरपूर्वक मठमें ले गये। वहाँ उपस्थित त्यागी एवं गृही भक्तोंने उनकी पूजा एवं आरती की। उपस्थित लोगोंने श्रीमठके श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग राधाविनोद-बिहारी विग्रहोंकी अपूर्व शोभाका दर्शनकर विग्रहदाताकी प्रचुर प्रशंसा की। उन्होंने यह भी बतलाया कि सारे आसाम प्रदेशमें ऐसा अप्राकृत अपूर्व सौन्दर्ययुक्त श्रीविग्रह कहीं भी नहीं है।

श्रीआचार्यदेवने उपस्थित सभीको सम्बोधित करते हुए कहा कि आँखके द्वारा श्रीविग्रहोंका दर्शन नहीं करना चाहिये, कानके द्वारा विग्रहोंका दर्शन ही यथार्थ दर्शन है। आँखसे दर्शन करनेमें भ्रान्ति होनेकी सम्भावना है। उसके द्वारा स्थूल एवं दोषपूर्ण दर्शन होता है। किन्तु कानके द्वारा श्रवण करनेमें भूल-भ्रान्तिकी सम्भावना बहुत कम रहती है। इसीलिए दीक्षा ग्रहणके समय कानोंके माध्यमसे ही मन्त्र ग्रहणकी विधि है। श्रीगुरुदेव कानोंके माध्यमसे ही दिव्यज्ञान प्रदान किया करते हैं। सभी इन्द्रियाँ हमारे भोगमें सहायता करती है। आँखोंके द्वारा सौन्दर्यका भोग करते हैं। नेत्र इन्द्रियकी तृप्तिके लिए विग्रह दर्शन नहीं है बल्कि चक्षु-इन्द्रियकी भोग पिपासाको दूर करनेके लिए ही श्रीविग्रहोंका दर्शन है। विग्रहोंका दर्शनकर मैं बहुत आनन्दित हुआ—इसके बदले श्रीविग्रहकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर पड़े, इस विचारके द्वारा हमारा परम कल्याण साधित होगा। भगवान् या श्रीभगवत्-विग्रह इन्द्रियग्राह्य वस्तु नहीं हैं अर्थात् किसी भी इन्द्रियके द्वारा ग्रहणीय नहीं हैं। इन्द्रियोंके द्वारा हम जो कुछ ग्रहण करते हैं वे सभी जड़ एवं भोग्य पदार्थ हैं। श्रीभगवान् ही एकमात्र

भोक्ता हैं एवं हम सभी उनके भोग्य हैं। इसलिए हम द्रष्टा नहीं, दृश्य हैं।

इस विषयको और भी सहज सरल रूपमें समझाते हुए उन्होंने कहा कि एक पका हुआ आम सामने है। उसे आँखें देख सकती हैं, त्वचा द्वारा उसे स्पर्श कर सकते हैं नाकसे सूँघ सकते हैं, जिह्वा द्वारा रसास्वादन कर सकते हैं, किन्तु इन चारों इन्द्रियोंसे कानका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु कान जिस चीजको ग्रहण करता है, शेष चारों ज्ञानेन्द्रियाँ उस विषयमें बिल्कुल चुप बैठी रहती हैं। अर्थात् उस विषयसे चारों इन्द्रियोंका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। कान शब्दोंको ग्रहण करता है, और इन्द्रियोंका शब्दसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए सद्‌गुरु सत्‌शिष्यके कानमें अप्राकृत शब्दब्रह्मको प्रदान करते हैं। शब्दब्रह्म देनेके पूर्व गुरुदेव हरिकथाके माध्यमसे शिष्यके कर्णेन्द्रियका संशोधन करते हैं। उसके पश्चात् शब्दब्रह्मरूप श्रीहरिनाम एवं दीक्षामन्त्र प्रदान करते हैं। आपलोग इस यथार्थ सत्यको उपलब्धि करनेकी चेष्टा करें। अतएव इन्द्रियोंके मध्य कान ही हमारे सबसे उपकारी हैं। सभी श्रोतालोग श्रील गुरुदेवके इन अभिनव अश्रुतपूर्व विचारोंको सुनकर बड़े मुग्ध हुए। उन सभी लोगोंने एक स्वरसे स्वीकार किया कि हमने आज तक ऐसा सुन्दर सिद्धान्त कभी नहीं सुना।

गोलोकगंज मठमें तीन दिन निवास करनेके उपरान्त धूबड़ी निवासी श्रीपरमानन्द दासाधिकारीकी प्रार्थनानुसार आचार्यदेव अपने परिकारोंके साथ धूबड़ी शहरमें पधारे। कुछ दिन पूर्व श्रीपरमानन्द प्रभुकी सहधर्मिणी तारिणीदेवीका परलोकगमन हुआ था। श्रील आचार्यदेवके आनुगत्यमें सात्वत वैष्णव स्मृति सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार उनका पारलौकिक श्राद्ध संस्कार सम्पन्न हुआ। श्रील गुरुदेवके निर्देशानुसार श्रीसनत्कुमार भक्तिशास्त्री, भागवतभूषण महाशयने इस श्राद्ध संस्कारका पौरोहित्य किया। तत्पश्चात् उपस्थित सभी लोगोंको महाप्रसादका सेवन कराया गया।

माननीय परमानन्द प्रभु (पलाश बाबू) श्रीलगुरुदेवके भक्ति प्रचारसे बड़े प्रभावित थे। उन्होंने श्रील गुरुदेवसे धूबड़ी शहरमें एक भक्ति प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेके लिए बार-बार प्रार्थना की। इसके लिए उन्होंने धूबड़ी

शहरके अन्तर्गत विद्यापाड़ा मुहल्लेमें स्थित अपना वासगृह तथा कुछ अर्थ भी देनेका प्रस्ताव किया। इसीके अनुसार उन्होंने २९ मई, १९५९ ई॰ को श्रीसभापति महाराजके नामसे एक दलील पत्रकी रजिस्ट्री भी कर दी।

इसके पश्चात् श्रील आचार्यदेव अपने परिकरोंके साथ रंगिया होते हुए बसके द्वारा अमायापुर पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्णगोविन्द दासाधिकारी, श्रीयुत प्राणेश्वर दासाधिकारी (सौदागर प्रभु) तथा वाणेश्वर दासाधिकारीके घर पहुँचे। वहाँपर शुद्धभक्तिका प्रचारकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ा पहुँचे।

पिछलदा गौड़ीय मठ एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठा

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव कुछ वर्षोंसे मेदिनीपुर जनपदके श्रीचैतन्य महाप्रभुके पदांकपूत पिछलदा एवं आसाम-प्रदेशमें शुद्धभक्तिका विपुल रूपसे प्रचार करनेके कारण वहाँके श्रद्धालुलोग कुछ दिनोंसे श्रीवेदान्त समितिका एक प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेके लिए बार-बार प्रार्थना कर रहे थे। वहाँके श्रद्धालु लोगोंके प्रबल आग्रहको देखकर श्रील गुरुदेवने पिछलदा पादपीठके समीप एक प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेकी स्वीकृति दी। इस कार्यके लिए उन्होंने स्नान-यात्राके कुछ दिन पूर्व त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराजको कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीविग्रह प्रतिष्ठाकी व्यवस्था करनेके लिए भेजा एवं स्वयं अपने साथ अपने आश्रित बहुत-से संन्यासी ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर पिछलदा ग्राममें उपस्थित हुए। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज भी स्नान पूर्णिमासे एक दिन पहले पिछलदा पहुँचे। २० जून, १९५९ ई॰ को श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान पूर्णिमाके दिन श्रीपिछलदा गौड़ीय मठकी स्थापना हुई। उसी दिन मठमें श्रीश्रीगुरु-नित्यानन्द-गौराङ्ग राधाविनोद-बिहारीजीके श्रीविग्रहगण प्रतिष्ठित हुए। विग्रह प्रतिष्ठाके दिन ऊषाकीर्त्तन एवं अधिवास कीर्त्तनके पश्चात् श्रीमन्दिर तथा मठप्रांगण आम्रपल्लव, पुष्पमाला और पताका आदिके द्वारा सुसज्जित किया गया। हरिभक्तिविलासके विधानके अनुसार मन्दिरके चारों ओर द्वादश केलेके वृक्ष, द्वादश पीपलके वृक्ष और द्वादश गूलरके वृक्ष रोपण किये गये। केलेके वृक्षोंके सामने द्वादश

कलश स्थापित किये गये। कलशोंके मध्यभागमें स्वस्तिक चिह्न अङ्कित किये गये। कलशके ऊपर आम्रपल्लव एवं वृन्तयुक्त डाव (नारियल) स्थापित किये गये। कुछ दूरवर्ती पवित्र नदीसे नगर–सङ्कीर्त्तन शोभायात्रा एवं बैण्डपार्टीके माध्यमसे पवित्र जल भरकर श्रीराधाविनोदविहारीजीके स्नानमण्डपमें पाँच कलश स्थापित किये गये। श्रीविग्रहोंके स्नानमण्डपकी वेदीपर पधारनेपर श्रीगौरनित्यानन्द प्रभुके प्रतिनिधि स्वरूप श्रीशालग्रामशिलाका दूध, दधि, घृत, मधु, शर्करा तथा १०८ घड़ोंके सुवासित एवं मन्त्रपूत जलसे यथारीति महाभिषेक सम्पन्न हुआ। अभिषेकके समय मृदङ्ग करताल मिश्रित सङ्कीर्त्तनकी ध्वनि, शङ्ख एवं जयध्वनि तथा महिलाओंकी हुलुध्वनि एकसाथ मिलकर गगन मण्डलमें चतुर्दिक गूँज रही थी। उस समय श्रीमन्दिरके चारों ओर प्रस्थानत्रय अर्थात् वेद, उपनिषद्, विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भागवत, गोपाल सहस्रनाम, श्रीमद्भगवद्गीताका उच्चस्वरसे पाठ चल रहा था। अभिषेकके पश्चात् सङ्कीर्त्तन यज्ञ और वेदादिशास्त्रपाठकी अप्राकृत ध्वनिसे मुखरित वातावरणके बीच श्रीविग्रहोंको श्रीमन्दिरमें पधराया गया। श्रील आचार्यदेवने स्वयं वैदिक मन्त्रोंके द्वारा श्रीविग्रहोंकी प्राण प्रतिष्ठा की। तत्पश्चात् मन्दिरका द्वार खोल दिये जानेपर उपस्थित हजारों श्रद्धालुओंने विपुल जयध्वनिके बीच उत्कण्ठित होकर श्रीविग्रहोंका दर्शन किया। पूजा–अर्चन, भोग आरतिके उपरान्त लगभग ५,००० श्रद्धालुओंको परम सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया। सन्ध्या आरति एवं तुलसी परिक्रमाके पश्चात् एक महती धर्मसभाका आयोजन किया गया।

उस सभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज आदि वक्ताओंके पश्चात् श्रीआचार्यदेवने दो घण्टे तक श्रीविग्रह एवं मठमन्दिरके सम्बन्धमें बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण प्रदान किया। उन्होंने अपने भाषणमें आधुनिक भारतकी अवस्था, पिछलदा ग्राम एवं ग्रामवासी, श्रीविग्रहतत्त्व, मठ किसे कहते हैं, मठ मन्दिरका निर्गुणत्व, साकार एवं निराकारवाद, ईसाइयोंका साकारवाद, निराकारवाद एवं कर्मवाद, इस्लामका साकार एवं निराकारवाद, बौद्ध एवं जैनियोंका साकारवाद, आचार्य शङ्करका साकार–निराकारवाद, अन्यान्य भारतीय मतोंकी समालोचना, आसामदेशीय

हंकरदेवका साकार-निराकारवाद, कबीर, नानक आदिका निराकारवाद, भारतमें नास्तिक सम्प्रदायकी परिणति, मठ-मन्दिरकी आवश्यकता आदि विषयोंपर सारगर्भित भाषण प्रदान किया। प्रसङ्गवश उन्होंने यह भी कहा कि वर्त्तमान स्वाधीन भारतमें धर्मका सर्वोच्च स्थान नहीं है। यहाँ तक कि धर्म निरपेक्षताकी आड़में अधर्मसापेक्षता ही परिस्फुट है। फलस्वरूप हमारे देशमें सर्वत्र ही दुर्नैतिकता, उच्छृंखलता, असच्चिन्ताका जो ताण्डव नृत्य चल रहा है, उसे भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता।

आजकल साम्यवादकी आड़में उन्नत व्यक्तियोंको बलपूर्वक नीचे घसीट कर निकृष्ट व्यक्तियोंके साथ समान करनेकी अत्यन्त प्रबल चेष्टा चल रही है। किन्तु निकृष्ट व्यक्तिको उन्नत बनाकर उत्कृष्ट व्यक्तिके समान करनेके लिए, उन्हें ऊपर उठानेके लिए चेष्टाका सर्वथा अभाव दीखता है। आजकल राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक सभी क्षेत्रोंमें हम इसे स्पष्ट ही लक्ष्य कर रहे हैं। भारतवर्ष पुण्यभूमि एवं धर्मभूमि है, इसीलिए हम गीतामें देखते हैं कि विराट युद्धक्षेत्रको भी धर्मक्षेत्र कहा गया है।

हमारे देशमें बहुत-से निराकारवादी धर्मसम्प्रदाय दृष्टिगोचर होते हैं। यथार्थमें निराकारवादी भी किसी प्रकार साकार विचारधाराको परित्याग करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। वे साकारको ही केन्द्रकर निराकारके काल्पनिक ध्यानमें मग्न रहना चाहते हैं। निराकारके काल्पनिक ध्यानसे ही हमारे देशमें नास्तिकताकी उत्पत्ति या सृष्टि हुई है। ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं है, कोई गुण नहीं है, शक्ति नहीं है, केवल मिथ्या कल्पना है—इस मिथ्या कल्पनाकी जड़में बौद्धोंका शून्यवाद या वेदविरुद्ध नास्तिक्यवाद है। इसके विपरीत वेदादि सभी शास्त्रोंमें ईश्वरका नित्य आकार या स्वरूप स्वीकार किया गया है। इसे स्वीकार करना ही आस्तिक्यवाद है। जो लोग भगवान्‌के नित्य रूपको अस्वीकार करते हैं, वे नास्तिक हैं।" इस प्रकार उनके युक्तिसङ्गत एवं शास्त्र प्रमाणपुरःसर गम्भीर भाषणको सुनकर श्रोतागण बड़े प्रभावित हुए।

इस अनुष्ठानमें श्रीसुदामसखा ब्रह्मचारी श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके द्रव्य, अलङ्कार, वस्त्र, पात्र नवद्वीपधाम एवं कलकत्तासे संग्रहकर लाने तथा अन्यान्य सेवा प्रचेष्टाके लिए विशेष धन्यवादके पात्र हुए। डी॰ काशिमपुर

निवासी धर्मप्राण श्रीप्रबोधचन्द्र पंड्या महाशयकी अर्थसेवा भी प्रशंसनीय रही। श्रीविग्रहके लिए सिंहासन, श्रीराधाविनोदविहारीका विग्रह दान तथा उत्सवका अधिकांश व्ययभार वहन करनेके कारण वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके विशेष धन्यवादके पात्र हैं। कल्याणपुर निवासी माननीय श्रीगजेन्द्रमोक्षण दासाधिकारी श्रीमन्महाप्रभुका विग्रह एवं उत्सवके लिए चावल आदि दानकर समितिके धन्यवादके पात्र हैं। ये श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके लिए प्रति वर्ष लगभग ४० मन चावलकी व्यवस्था करते हैं। इनका सेवा-आदर्श सर्वतोभावसे प्रशंसनीय है। सर्वोपरि पिछलदा ग्रामनिवासी श्रीगोविन्द दासाधिकारी मठस्थापनके विषयमें प्राण, अर्थ, बुद्धि द्वारा प्रचेष्टाके लिए धन्यवादके पात्र हैं। इनके अतिरिक्त श्रीकोकिल रक्षित, श्रीगोविन्द दास, निरापद माइति एवं श्रीमुरारी मोहनकी सेवा प्रचेष्टा भी विशेष उल्लेखनीय है।

केशवपुरमें विचारसभा

मेदिनीपुर जनपदके केशवपुर गाँवमें श्रीअयोध्यानाथ दासाधिकारी, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्यके दीक्षित ऐकान्तिक वैष्णव हैं। छोटे-से गरीब परिवारके व्यक्ति होनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिधर्ममें इनकी दृढ़ निष्ठा है। गृहस्थ वैष्णव होनेपर भी नियमित रूपसे अर्चन-पूजन, साधन-भजन करते हैं। माँस, मछली, धूम्रपान, अवैध स्त्रीसङ्ग आदिसे सर्वथा दूर रहते हैं।

एक वर्ष पूर्व १९५८ ई॰ में उस गाँवमें शीतला माताकी सार्वजनिक पूजा होने जा रही थी। गाँवके कुछ विशेष लोग पूजाके लिए चँदा संग्रह कर रहे थे। श्रीअयोध्यानाथ दासाधिकारीसे दो रुपये चन्दा देनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु श्रीअयोध्यानाथने बड़े ही नम्रतासे हाथ जोड़कर उत्तर दिया कि हमलोग श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित गौड़ीय वैष्णवधर्ममें दीक्षित तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आश्रित हैं। शुद्ध वैष्णवोंके लिए देव-देवियोंकी पूजा निषिद्ध है। गीता आदि शास्त्रोंमें भी देव-देवियोंकी पूजाका निषेध किया गया है। अतः मैं इस पूजाके लिए चन्दा देनेमें असमर्थ हूँ। इसे सुनकर ग्रामवासी बड़े क्षुब्ध हुए।

उन्होंने कहा कि—देव-देवियोंकी पूजा प्राचीन कालसे ही चली आ रही है। शास्त्रोंमें भी इसके प्रमाण हैं। अतः एक सभाका आयोजन किया जाये। उस सभामें पक्ष एवं विपक्षके विचारोंको सुनकर इस विषयका निर्णय होना चाहिये कि देव-देवीकी पूजा करना कर्त्तव्य है या नहीं? अगले श्रावण महीनामें सभा बुलानेका निश्चय किया गया। किन्तु उस समय भीषण बाढ़ आनेके कारण सभाका आयोजन नहीं हो सका।

इस वर्ष १९५९ ई॰ के श्रावण महीनेमें विचार सभाका आयोजन केशवपुर गाँवमें किया गया। ग्रामवालोंके पक्षसे जनपदके बड़े-बड़े स्मार्त पण्डितोंको बुलाया गया। श्रीअयोध्यानाथ चुँचुड़ा मठमें श्रील आचार्य केसरीके चरणमें पहुँचकर बड़े करुण स्वरसे उनसे उक्त सभामें पधारनेके लिए बार-बार प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि यदि आप वहाँ पहुँचकर विपक्षियोंका मत खण्डन नहीं करेंगे तो हमारा उस गाँवमें रहना असम्भव हो जायेगा। मुझे गाँवसे निकाल दिया जायेगा। श्रील गुरुदेवने उनके काकुतिपूर्ण निवेदनको सुनकर उसी समय श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज तथा प्रमुख संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर केशवपुरके लिए यात्रा की।

इससे पूर्व पिछलदामें श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें श्रील आचार्यदेवका जाना निश्चित था। संयोगवश उसी समय केशवपुर ग्राममें यह विचारसभा भी बुलायी गयी थी। उक्त सभामें सबसे पहले गाँववालोंकी ओरसे स्मार्त पण्डितोंने यह प्रश्न किया—हमारे भारतीय शास्त्रोंमें प्राचीन कालसे ही देव-देवियोंकी पूजा होती आ रही है। स्कन्द एवं पद्मपुराणमें इसके बहुत-से प्रमाण हैं। श्रीमद्भागवतमें भी कात्यायनी, योगमाया, दुर्गा, काली, शिव आदिकी पूजाका विधान देखा जाता है। अतएव वैष्णवलोग देवी-देवताओंकी पूजा क्यों नहीं करते?

परमाराध्य श्रील गुरुदेवके आदेशसे सबसे पहले श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने श्रीमद्भागवत, गीता एवं अन्यान्य शास्त्रोंके प्रमाणोंको उद्धृतकर देव-देवियोंकी पूजाके फलको नश्वर बतलाया। विविध प्रकारकी सांसारिक कामनाओंकी प्राप्तिके लिए संसारीलोग देवताओंकी पूजा करते हैं। किन्तु वे सभी फल नश्वर होते हैं। यहाँ तक कि वे फलकामी स्वर्ग प्राप्त करके भी फलभोगके पश्चात् पुनः मर्त्यलोकमें

पतित होते हैं। वैष्णवलोगोंके हृदयमें किसी भी प्रकारकी लौकिक कामनाएँ नहीं होतीं। वे ऐकान्तिक रूपसे श्रीकृष्णभजनमें ही तत्पर रहते हैं।

तत्पश्चात् श्रील आचार्यदेवने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि श्रीअयोध्यानाथने किसी प्रकारका अन्यायपूर्ण कार्य नहीं किया है। समस्त शास्त्र उनके इस कार्यका अनुमोदन करते हैं। यदि गोपियोंने कात्यायनीकी पूजा की, तब श्रीकृष्णने स्वयं प्रकट होकर उन्हें क्यों वरदान दिया? यहाँ कृष्ण और स्वरूपशक्ति योगमाया अभिन्न हैं—*शक्तिशक्तिमतोरभेदः*। इसलिए वहाँ कात्यायनीकी पूजा भी श्रीकृष्णकी पूजा है। श्रीकृष्णने स्वयं इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओंकी पूजा बन्द करवा दी थी। श्रीकृष्णने गीतामें भी—*यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रता* (गी॰ ९/२५) *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्य देवताः* (गी॰ ७/२०) *यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः, समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्* आदि प्रमाणोंको उद्धृतकर यह बतलाया कि देवी-देवियोंका पूजन नश्वर फलोंको प्रदान करता है। वे देवी-देवतागण जन्म-मृत्युके प्रवाहको दूरकर कृष्णभक्ति नहीं दे सकते। दूसरी बात, पद्मपुराणमें ऐकान्तिक वैष्णवोंके लिए देव-देवीकी पूजा निषिद्ध की गयी है। ऐसा करनेसे नामापराध होता है। सत्क्रियासार-दीपिकामें भी विविध शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृत कर ऐकान्तिक वैष्णवोंके लिए देव-देवियोंकी पूजाका निषेध किया गया है।"

श्रील गुरुदेवके ओजस्वी भाषणको सुनकर प्रतिपक्ष शान्त हो गया। दूसरे दिन उक्त ग्रामके विद्यालयके प्रांगणमें सायंकाल एक धर्मसभाका आयोजन हुआ। उसमें श्रील आचार्यदेवने धर्मजीवनकी आवश्यकताके विषयपर भाषण देते हुए कहा कि धार्मिक जीवन व्यतीत करना मनुष्य जीवनका एकमात्र कर्त्तव्य है। धर्महीन जीवन पशुजीवनके तुल्य है। भगवन्नामका कीर्त्तन कलियुगका विशेष धर्म है। वैष्णव सदाचारका पालन करते हुए भगवन्नाम-कीर्त्तन एवं हरिकथा श्रवणके द्वारा मनुष्य जीवन सार्थक हो सकता है। इस प्रकार विभिन्न विषयोंके तारतम्यमूलक विचारके द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार कर पार्टी सहित श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें लौटे।

६ जुलाई, १९५९ ई० को श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीस्वरूप रूपानुगवर श्रीगदाधराभिन्न तनु श्रीगौरशक्ति श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी तिरोभाव तिथि, श्रवण-कीर्त्तनके माध्यमसे अनुष्ठित हुई। उस दिन ऊषाकालसे ही श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना, वैष्णव महिमा, विरहसूचक महाजन पदावलीका कीर्त्तन एवं तत्पश्चात् श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका अतिमर्त्य चरित्र, वर्त्तमान युगमें उनके आविर्भावका तात्पर्य आदि विषयोंकी आलोचना की गयी। दोपहरमें श्रीविग्रहोंके अर्चन-पूजनके उपरान्त राजभोग निवेदित होनेपर आरति सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् समागत भक्तवृन्दको विचित्र एवं सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया।

श्रील गुरुमहाराजने सायंकालकी धर्मसभामें प्रवचन करते हुए बतलाया कि आज गौरशक्ति सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर एवं गौरशक्ति गदाधर पण्डित गोस्वामीकी तिरोभाव तिथि है। ये दोनों महापुरुष श्रीमन्महाप्रभुकी मनोऽभीष्ट सेवा करनेके लिए भूतलमें अवतीर्ण हुए थे। वे इस सेवाको पूर्णकर आज ही के दिन नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए थे। यह पावन तिथि प्रतिवर्ष हम लोगोंके प्रति करुणाकी वर्षा एवं विप्रलम्भरसका उत्कर्ष प्रदर्शन करनेके लिए आविर्भूत होती है। श्रीवृषभानुनन्दिनी शत-शत प्रकारसे लाञ्छित होनेपर भी श्रीकृष्णकी विप्रलम्भ सेवाका परित्याग नहीं करतीं। श्रीराधागोविन्दके मिलनसुखके प्रतिकूल लोगोंका सङ्ग वर्जनकर श्रीराधागोविन्दकी सेवानिष्ठाकी शिक्षा देनेके लिए ही यह पावन तिथि प्रतिवर्ष शुभागमन करती है, अतः यह श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णसे अभिन्न श्रीनीलाचलनाथकी रथ-यात्रा उत्सवकी अधिवास तिथि कहलाती है।

श्रीजगन्नाथदेवके धाम नीलाचलको मथुरा या द्वारका कहा जाता है तथा सुन्दराचल (गुण्डिचा) को वृन्दावन माना जाता है। नीलाचल ऐश्वर्यपूर्ण एवं सुन्दराचल माधुर्यपूर्ण क्षेत्र है। श्रीकृष्ण नीलाचलको छोड़कर गोपियोंसे मिलनेके लिए सुन्दराचल अर्थात् वृन्दावन जाना चाहते हैं। जब वे वृन्दावनकी यात्रा करते हैं, तब रुक्मिणी आदि लक्ष्मियाँ उन्हें वृन्दावन जानेके लिए नाना प्रकारसे निषेध करती हैं। यह देखकर

शुद्ध औदार्य–माधुर्यरसाश्रित श्रीमती राधिकाके पक्षका अवलम्बन करनेवाली कमल मञ्जरी अधीर होकर प्रपञ्च लीला परित्यागकर अपने नित्यसिद्ध देहमें अवस्थित होकर श्रीराधागोविन्दकी मध्याह्निक लीलामें प्रवेश कर जाती हैं तथा सच्चिदानन्द विनोद–वाणी–वैभव श्रीराधा–नयनमणि शुद्धा–सरस्वतीको औदार्य–माधुर्य–रसकी श्रेष्ठता स्थापन करनेके लिए आचारवान प्रचारकके रूपमें अपने स्थलपर वरण करती हैं। इस तिथिका यह एक विशेष रहस्य है।

शामको ५ बजे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके विरहोत्सवके उपलक्ष्यमें एक महती सभाका आयोजन किया गया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके अर्चालेख्यको सुन्दर सिंहासनके ऊपर पधराया गया। तदुपरान्त श्रीगुरु वन्दना, श्रीगोद्रुमचन्द्र भजनोपदेश तथा विरहसूचक वैष्णव पदावलीका कीर्त्तन हुआ। परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवके कृपापूर्वक सभास्थलमें विराजमान होनेपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ। उनके निर्देशसे कतिपय ब्रह्मचारियोंने तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज और अन्तमें श्रील आचार्यदेवने गम्भीर दार्शनिक तत्त्व एवं सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण प्रदान किया।

श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी रथ–यात्रा

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें ६ जुलाई, १९५९ से १७ जुलाई १९५९ ई॰ तक बारह दिन तक श्रीरथ–यात्रा महोत्सव बड़े समारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ। श्रीजगन्नाथजीको एक सुसज्जित रथपर आरोहण करके नगर–सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ गुण्डिचा मन्दिर (श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर) में लाया गया। रास्तेमें भक्तोंकी श्रीजगन्नाथदेवके प्रति प्रबल आर्तिपूर्ण कीर्त्तन एवं नृत्यको देखकर पाषाण हृदयवाले पाषण्डियोंका चित्त भी द्रवीभूत हो गया। रथ–यात्राके समय श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करनेके लिए तथा उनकी रथकी डोरी (रस्सा) खींचनेके लिए लोगोंकी अपार भीड़ उमड़ पड़ी। श्रद्धालु लोग रास्तेमें श्रीजगन्नाथजीको भोग अर्पण करते थे तथा पुजारी श्रीजगन्नाथजीको भोग अर्पितकर श्रद्धालुओंमें वितरण करते थे। उस समय श्रीजगन्नाथ दर्शन एवं प्रसाद ग्रहण करनेकी लोगोंकी उत्कण्ठा देखने योग्य थी। सारा वातावरण श्रीजगन्नाथकी जयध्वनिसे

गूँज रहा था। रथ धीरे-धीरे अग्रसर होता हुआ कभी स्थिर होता हुआ श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ श्रीजगन्नाथदेवने ९ दिनों तक वृन्दावनमें विहार करते हुए अवस्थान किया।

श्रीगुण्डिचा-मार्जन एवं हेरा-पञ्चमीके दिन गुण्डिचावाड़ीमें (श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर) श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने किया। श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने श्रीमठमें श्रीचैतन्यचरितामृतसे रथयात्राका प्रसङ्ग पाठ किया। बीच-बीचमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौरलीला एवं श्रीकृष्णलीलाके सम्बन्धमें भाषण दिया। रथ-यात्राके दिनसे आरम्भकर लगातार चार दिन तक आचार्यदेवने श्रीचैतन्यचरितामृत एवं चार दिन श्रीमद्भागवत व्याख्याके माध्यमसे अनेकानेक सिद्धान्तपूर्ण उपदेश-निर्देश प्रदान किये। उसका सार संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है—

स्नान-यात्राके दिन विधि विधानोंसे श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रादेवीका महाभिषेक बड़े समारोहके साथ सम्पन्न होता है, जिसमें ब्रह्मादि समस्त देवतागण अलक्षित रूपसे योगदान करते हैं। तत्पश्चात् श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें १५ दिनोंके लिए पट बन्द हो जाता है तथा दर्शन भी बन्द हो जाता है। इस समयको अनवसरकाल कहते हैं। दर्शन नहीं होनेका कारण है—अतिरिक्त स्नानके कारण श्रीजगन्नाथजीका अस्वस्थ्य हो जाना। लक्ष्मीजी एकान्तमें उनकी सेवा करती हैं। इसी समय विप्रलम्भरसके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीचैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजीके विरहमें अधीर होकर आलालनाथ चले जाते थे। अनवसरकालके पश्चात् शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्राजी अलग-अलग रथमें विराजमान होकर सुन्दराचल (गुण्डिचावाड़ी) के लिए यात्रा करते हैं। किन्तु अपनी पत्नी लक्ष्मीजीको यह नहीं बतलाते कि मैं वृन्दावन जा रहा हूँ। वे सुन्दराचल अर्थात् वृन्दावनमें ९ दिन विहार कर पुनः नीलाचलके श्रीमन्दिरमें प्रत्यावर्तन करते हैं। यात्रा दिवसको रथ-यात्रा, लौटनेके दिनको पुनर्यात्रा तथा यात्रासे पञ्चम दिवसको हेरा-पञ्चमी कहते हैं। हेरा-पञ्चमीका तात्पर्य यह है कि यात्रा दिनके पश्चात् ही श्रीलक्ष्मीजी श्रीजगन्नाथके लौटनेकी बड़ी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा करती हैं। चार दिनों

तक उनके नहीं लौटनेपर अत्यन्त उत्कण्ठाके कारण क्रोधित होकर मानपूर्वक वे अपनी दासियोंको साथ लेकर सुसज्जित रथपर विराजमान होकर पतिदेव श्रीजगन्नाथजीको ढूँढ़नेके लिए रातके समय निकलती हैं। किसी प्रकार ढूँढ़ते हुए वृन्दावनमें पहुँचकर श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रियतमा गोपियोंसे वाद-विवादकर शीघ्र लौट आनेकी प्रतिज्ञा कराकर नीलाचलके मन्दिरमें लौटती हैं। हेराका तात्पर्य है—खोजना, ढूँढ़ना। पाँचवें दिन यह लीला सम्पन्न होनेके कारण इसे हेरा-पञ्चमी कहते हैं।

रथ-यात्राके एक दिन पहले गुण्डिचा मन्दिरको धोया पोंछा-पोंछा जाता है, जिससे श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा वहाँ सुखसे विराजमान होवें। उस मन्दिरमें भलीभाँति झाड़ू देकर धूल-कङ्कड़ आदिको साफ करते हैं फिर पानीसे मल-मल कर धोते हैं। पुनः कपड़ेसे भी पोंछते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने भी अपने परिकरोंके साथ हरिसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे श्रीगुण्डिचा मन्दिरका संस्कार किया था। इस लीलाका तात्पर्य यह है कि अपने हृदयमें भगवान्‌को बैठानेके लिए अपने हृदय-मन्दिरको भलीभाँति धो, पोंछकर निर्मल बनाना होगा। जब तक हृदय मन्दिरमें सांसारिक कामना-वासनाएँ, स्वर्गसुखभोग एवं मुक्तिकी कामनाएँ रहेंगी, तब तक भगवान् उनके हृदयमें कदापि विराजमान नहीं होंगे। श्रीरथ-यात्रामें ये वैशिष्ट्यसमूह इस महोत्सवके प्रधान अङ्ग होते हैं।

श्रीरथ-यात्रा अनुष्ठानका तात्पर्य क्या है, यह समझना साधारण लोगोंके लिए बड़ा ही दुष्कर है। राधाभावद्युतिसुवलित श्रीशचीनन्दन गौरहरिके परमप्रिय श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णव जनोंका इस विषयमें एक सुसिद्धान्तपूर्ण विचार है। माथुर-विरह कातरा व्रजरमणियाँ सूर्यग्रहणके उपलक्ष्यमें कुरुक्षेत्र (द्वारका) से प्रियतम कृष्णको श्रीधाम वृन्दवन लाते समय ऐसा सोच रही हैं कि हम जिनके विरहमें बहुत दिनोंसे तड़प रहीं थीं आज बहुत दिनोंके बाद उन प्रियतम प्राणनाथसे मिल रही हैं—*सेई तो पराणनाथ पाइनु। जाँहा लागि मदन दहने झुरि गेनु॥* ये व्रजरमणियाँ केवलमात्र कृष्णकी सेवा एवं प्रसन्नताके लिए ऐसा करती हैं, अपने सुखके लिए नहीं। श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवोंका यह गूढ़ तात्पर्य जो लोग उपलब्धि नहीं कर पाते, वे इस महदनुष्ठानमें किसी

भी प्रकारका योगदान करनेमें विमुख होते हैं। जड़ीय भोग पदार्थोंमें आसक्त रहनेके कारण वे श्रीजगन्नाथकी सेवा नहीं कर पाते। जगत् दर्शनको प्राकृत दर्शन कहते हैं। जब तक यह प्राकृत दर्शन हृदयमें प्रबल रहता है, तब तक अप्राकृत जगन्नाथके दर्शनमें रुचि नहीं होती। सम्पूर्ण विश्वको श्रीजगन्नाथकी सेवामें नियुक्त करना ही रथ-यात्राका मूल तात्पर्य है।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दनसे अभिन्न श्रीगौरहरिने श्रीक्षेत्रमें तदनुष्ठित श्रीगुण्डिचा मार्जनलीलाके माध्यमसे अपने पार्षद भक्तगणोंके द्वारा जगद्वासियोंको शिक्षा दी है। उन्हें सुयोग दान करनेके लिए ही श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति प्रतिवर्ष श्रीश्रीरथ-यात्रा अनुष्ठानका आयोजन करती है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीजन्माष्टमी एवं श्रीनन्दोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखा मठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें यह वर्ष (१९५९ ई०) विशेष उल्लेखयोग्य है। जन्माष्टमीसे एक सप्ताह पूर्व श्रीसमितिके प्रतिष्ठाता आचार्य परमाराध्य श्रीलगुरुदेव कुछ आश्रितजनोंके साथ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। इस वर्ष मठके सेवकोंने बड़े उत्साहके साथ श्रीजन्माष्टमीके दिन सङ्कीर्त्तन, श्रीमद्भागवत पाठ, भोगराग निवेदन आदिके माध्यमसे दिनभर उपवास रखकर व्रत किया। आधीरातके समय हजारों श्रद्धालुओं द्वारा सङ्कीर्त्तन, शङ्खध्वनि एवं जयध्वनिके बीच श्रीविग्रहोंका अभिषेक सम्पन्न हुआ। उस दिन सायंकालीन धर्मसभामें श्रीलआचार्यदेवने शास्त्रसिद्धान्तपूर्ण एक गम्भीर दार्शनिक भाषण प्रदान किया। उस भाषणमें उन्होंने *'एते चांश कला पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयं', 'अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्', 'ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारणकारणम्', 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय'* इन श्लोकोंकी अवतारणा करते हुए कृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं, इसका प्रतिपादन किया। साथ ही उन्होंने श्रीदेवकीनन्दनकी अपेक्षा श्रीयशोदानन्दनके वैशिष्ट्यका भी स्थापन किया।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कार्त्तिक–व्रत

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन सभी मठोंमें १६ अक्तूबरसे १५ नवम्बर १९५९ ई॰ तक कार्त्तिक–व्रत, दामोदर–व्रत, नियम–सेवाका पालन किया गया। इस वर्ष परमाराध्य श्रीलगुरुदेवके स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ विशेष समारोह एवं उत्साहके साथ कार्त्तिक–व्रतका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। कार्त्तिक–व्रतके दिनोंमें प्रतिदिन नियमित रूपमें श्रीमङ्गल–आरति, ऊषाकीर्त्तन, श्रीचैतन्यचरितामृत पाठ, ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र पाठ, तुलसी परिक्रमा, स्नान, आह्निक आदि कृत्य, भक्ति–ग्रन्थकी आलोचना, भोग–आरति, इष्ट–गोष्ठी, महाप्रसाद सेवा, सन्ध्या–आरति आदि इस महद् व्रतके विशेष अङ्ग थे। इस व्रतमें सभी परिमित आहार, भूमिपर शयन, धातु निर्मित थालेके बदले पत्तोंमें प्रसाद सेवन आदि आदर्श भी स्थापित हुए।

श्रीदामोदर–व्रतके समय प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ प्रवचन करते, रात्रिकालमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज भागवतसे नेमि–नवयोगन्द्र संवादकी व्याख्या करते तथा अपराह्न ३ बजेसे ५ बजे तक परमाराध्य ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज स्वयं वेदान्त–दर्शन, गोविन्द–भाष्यका पाठ एवं विशद् रूपमें व्याख्या करते थे। उन्होंने दामोदर मासमें गोविन्द–भाष्यके प्रथम अध्यायके प्रथम एवं द्वितीय पादके ग्यारवें सूत्र तक की व्याख्या समाप्त की थी।

गोविन्द–भाष्यकी व्याख्या करते समय उन्होंने अन्यान्य आठ प्रामाणिक भाष्योंकी व्याख्या करते हुए उनमें गोविन्द–भाष्यकी प्रधानता स्थापित की। श्रीशङ्कर–भाष्य, भास्कर–भाष्य, रामानुज–भाष्य, मध्व–भाष्य, विज्ञान भिक्षु भाष्य, वल्लभ–भाष्य, निम्भार्क–भाष्य तथा गौड़ीय वेदान्त आचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण द्वारा प्रकाशित श्रीगोविन्द–भाष्यका नियमित रूपसे पाठ हुआ। इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय श्रीयुत हरिदास 'सिद्धान्त–वागीश' महाशय द्वारा सङ्कलित भागवत–भाष्य भी विशेष क्षेत्रोंमें आलोचनाका विषय रहा। गोविन्द–भाष्य पाठके समय समितिके संन्यासी, ब्रह्मचारियोंके अतिरिक्त श्रीनवद्वीप धामके

शिक्षित सम्भ्रान्त बड़े-बड़े विद्वान भी श्रोताके रूपमें उपस्थित होते थे। इन श्रोताओंमें श्रीकुमुद कमल नाग (बी॰ए॰बी॰एल॰) श्रीमाखन लाल साहा (बी॰ए॰ सहकारी हैडमास्टर, नवद्वीप शिक्षामन्दिर) प॰ श्रीयुत नवीनचन्द्र चक्रवर्ती (स्मृति-व्याकरणतीर्थ) श्रीवरदाकान्त दत्त आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीशङ्कराचार्यके केवलाद्वैतवादके प्रसिद्ध विद्वान माननीय वरदा बाबूके प्रतिपक्षके रूपमें उपस्थित रहनेके कारण श्रील आचार्यदेव द्वारा तुलनामूलक गोविन्द-भाष्यकी आलोचनाको श्रवण करनेका अपूर्व सुयोग श्रोतृमण्डलीको प्राप्त हुआ। वयोवृद्ध वरदाबाबू एवं श्रीकुमुद कमल नाग (बी॰ए॰बी॰एल॰) महोदयके विशेष आग्रहसे व्रत-समाप्तिके पश्चात् और भी पाँच दिनों तक गोविन्द-भाष्यका अनुशीलन हुआ। इन दिनोंमें 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा', 'जन्माद्यस्य यतः', 'शास्त्रयोनित्वात्' आदि सूत्रोंकी विशेष रूपमें व्याख्या हुई। इन सूत्रोंकी व्याख्याके समय श्रील आचार्यदेवने भगवान्‌के नाम, रूप, गुण और लीलाका विशेष रूपसे प्रतिपादन किया। साथ ही शङ्कराचार्यके निर्विशेष, निःशक्तिक, अरूप, निर्गुण ब्रह्मके विचारका शास्त्रयुक्ति एवं प्रमाणोंके बलपर विशेष रूपसे खण्डन किया। उन्होंने यह भी बतलाया कि भक्ति ही वेदान्तसूत्रका प्रतिपाद्य विषय है; ज्ञान या मुक्ति नहीं। वेदान्तसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान या मुक्ति शब्दका उल्लेख नहीं है। बल्कि वेदान्तसूत्रके 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' आदिके द्वारा श्रीव्रजेन्द्रनन्दन गोविन्द एवं उनकी प्रेममयी भक्तिका ही प्रतिपादन किया गया है। अन्तमें 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्' सूत्रके द्वारा हरिनाम-सङ्कीर्त्तनका विशेष रूपमें उल्लेख किया गया— 'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्' तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा कथित 'परम विजयते श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तनम्' की पुष्टि परिलक्षित होती है। वेदान्तसूत्रके द्वारा प्रतिपादित अद्वयज्ञान परतत्त्व श्रीकृष्ण एवं उनकी शक्ति श्रीमती राधिकाको अभिन्न मानकर श्रीयुगल उपासनाको ही स्पष्ट रूपमें इङ्गित किया गया है। उपनिषदोंके विचारसे परतत्त्व कदापि निर्विशेष, निःशक्तिक, अरूप, अप्राकृत-गुणरहित निर्गुण नहीं हो सकते। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति,

तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म'—इस उपनिषद मन्त्रमें अपादान, करण, अधिकरण इन तीन कारकोंका प्रयोग हुआ है। अतः वह ब्रह्म निःशक्तिक, निराकार कैसे हो सकता है? इन सब विषयोंकी व्याख्या अद्भुत, अभिनव तथा रोचकपूर्ण थी। वरदाबाबूने कहा कि यदि कुछ दिनों तक और भी गोविन्द-भाष्यका पाठ चलता रहता तो लोगोंका बहुत ही कल्याण होता। मैंने अपने नवद्वीप शहरमें वेदान्तकी ऐसी सुन्दर आलोचना कभी भी नहीं सुनी। श्रील आचार्यदेवने अन्तिम दिन वरदाबाबूको हँसते हुए कहा कि यदि आप श्रद्धापूर्वक कुछ दिन और गोविन्द-भाष्य श्रवण करते तो आचार्य शङ्करके अद्वैत चिन्तास्रोतसे मुक्ति प्राप्त कर सकते थे। वरदाबाबूने भी इसे सुनकर मुस्कुराते हुए इसका समर्थन किया।

ऊर्जाव्रतके पूर्वदिवस श्रील आचार्यदेवने श्रोतृमण्डलीको उपदेश देते हुए कहा—"कार्त्तिक-व्रत नियम-सेवा चातुर्मास्य-व्रतके अन्तर्गत है। जो लोग सम्पूर्ण चातुर्मास्य-व्रतका पालन नहीं करते, केवल ऊर्जा व्रतका ही आदर करते हैं, वे चातुर्मास्य-व्रतके भक्ति फलको सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं कर सकते। इसके द्वारा चातुर्मास्यके प्रति उनका अनादर ही परिलक्षित होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके पार्षद भक्तोंने बड़ी दृढ़ता एवं लगनके साथ चातुर्मास्य-व्रतका पालनकर समग्र वैष्णव सम्प्रदायके भक्ति साधकोंको भक्तिलाभके उपाय रूपमें शिक्षा दी है। साधारणतः हरिसेवामें क्लेश स्वीकार करने अथवा वैराग्य अवलम्बनमें पराङ्मुख व्यक्ति ही चातुर्मास्य-व्रतको परित्यागकर केवल कार्त्तिक-व्रतके प्रति श्रद्धा विशिष्ट होते देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त आजकल आधुनिक अपसम्प्रदायके लोग भी कार्त्तिक-व्रतका पालन नहीं करते। इन लोगोंके सम्बन्धमें यही समझना होगा कि धर्मकी आड़में आहार-विहार एवं विषय भोग ही उनके जीवनका उद्देश्य है। शास्त्रमें इन लोगोंको लक्ष्य करके ही 'तपो वेशोपजीविनः' वाक्य लिखा गया है। वे लोग 'भाल ना खाइबे भाल ना परिबे' श्रीमन्महाप्रभुकी इस शिक्षाका आदर नहीं करते। यहाँ तक कि 'महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान' इस गौरवमय वाक्यसे भी विच्युत होकर हीन एवं उच्छृंखल सम्प्रदायके बीच परिगणित होते हैं।

चातुर्मास्य-व्रत केवल वैष्णवोंका ही कृत्य है, ऐसा नहीं है। कर्मी, ज्ञानी, तपस्वी आदि सभी धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंके लिए यह पालनीय है। शाङ्कर सम्प्रदाय, स्मार्त सम्प्रदाय तथा अन्य सम्प्रदायोंमें भी इस व्रतका प्रचलन देखा जाता है। कार्त्तिक-व्रत इस चातुर्मास्य-व्रतका एक प्रधान अङ्ग होनेके कारण प्राचीन कालसे इस व्रतका पालन सभी प्रकारके साधक करते चले आ रहे हैं। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति अपने अनुगत सभी लोगोंको इस व्रतका सर्वतोभावेन पालन करनेके लिए आदेश, निर्देश एवं प्रेरणा प्रदान करती है। जो गौड़ीय वेदान्त समितिके अनुगत हैं, वे इस विषयमें पूर्ण रूपसे अभिज्ञ हैं एवं भविष्यमें भी इसे स्मरण रखेंगे।

चुँचुड़ा मठमें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत सभी मठोंमें दिसम्बर, १९५९ ई॰ में जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी विरह तिथिका अनुष्ठान विशेष रूपसे सम्पन्न हुआ। श्रीधाम नवद्वीप, मथुरा, गोलोकगंज आदि मठोंमें उक्त विरह महोत्सव बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें परमाराध्य श्रील आचार्यदेव स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ उक्त तिथि विशेष रूपमें श्रद्धाके साथ अनुष्ठित हुई। मठरक्षक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त वामन महाराजके विशेष आग्रहसे उस दिन मठसेवकों एवं श्रीसमितिके आश्रित भक्तोंने पाठ कीर्त्तनके पश्चात् सर्वप्रथम परमाराध्य श्रील गुरुदेवके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदानकर श्रील प्रभुपादके चरणोंमें भी पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तदनन्तर श्रील प्रभुपादके पटविग्रहकी आरति श्रील गुरुपादपद्मके द्वारा रचित आरति कीर्त्तनके द्वारा सम्पन्न हुई। शामकी धर्मसभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने श्रील प्रभुपादकी पत्रावली, प्रबन्धावली तथा गौड़ीय पत्रिकासे श्रील प्रभुपादके उपदेशोंका पाठ किया।

श्रील आचार्यदेवने भाषणके माध्यमसे बड़ा ही उपयोगी उपदेश दिया—"हम प्रति वर्ष इस विशेष तिथिमें विशेष रूपसे हरिकथाका कीर्त्तन किया करते हैं। श्रील प्रभुपाद सिद्धान्त सरस्वती हरिकीर्त्तनके मूर्त्तिमान विग्रह स्वरूप थे। जिन लोगोंने उनका सङ्ग लाभ किया है, उन्होंने

निश्चित रूपमें इस विषयकी उपलब्धि की है। हरिकथा-कीर्त्तन करते समय वे एक मुखमें सहस्रवदन वन जाते थे। हमलोग २४ घण्टेमें एक दिनकी गणना किया करते हैं। श्रील प्रभुपादके हरिकथा कीर्त्तनमें एक दिन हजारों दिनोंमें बदल जाता था। भगवत्-कीर्त्तन करते समय वे कितना आनन्द अनुभव करते, उसकी सीमा भाषामें व्यक्त नहीं की जा सकती। साधारण मनुष्य आहार, निद्रा आदिमें ही केवल आनन्दका अनुभव करते हैं। इसीलिए वे अपने समस्त कर्त्तव्य कर्मोंको छोड़कर आहार, निद्रामें ही प्रमत्त रहते हैं। आहार, निद्राकी अपेक्षा और कोई भी आनन्दमय वस्तु है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं। श्रील प्रभुपाद आहार, निद्राकी अपेक्षा हरिकथाके कीर्त्तनमें ही अधिक आनन्द पाते थे। और इसीलिए वे आहार, निद्राको परित्यागकर भी हरिकथाका कीर्त्तन करते थे।

श्रील आचार्यदेवने अपने प्रवचनमें अविद्या और माया, प्राचीन एवं आधुनिक निर्विशेष विचार, इतिहास और तत्त्ववस्तु एक नहीं, जीवोंका कल्याण करनेमें श्रील सरस्वती ठाकुरका अवदान, विभिन्न दार्शनिक विचारोंका तारतम्य तथा परतत्त्वका एकत्व आदिके सम्बन्धमें प्रभुपादकी शिक्षाके सम्बन्धमें विशेष रूपसे विवेचन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने परतत्त्वकी त्रिविध प्रतीतियाँ ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्, मायावश्य ईश्वरवाद, अचिन्त्य शक्तिमान श्रीकृष्ण, स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी अचिन्त्यलीला, श्रीकृष्णलीलाका नित्यत्व, जीवोंका नित्यत्व आदि विषयोंपर भी गम्भीर तत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया।

श्रीआचार्य केसरीके ६६ दिनमें ६२ भाषण

श्रील आचार्य केसरी १९ अप्रैल, १९६० ई० में प्रचार पार्टीके साथ यात्रा कर मेदिनीपुर एवं चौबीस परगनाके लगभग ३० गाँवमें प्रबल रूपसे सनातन धर्मका प्रचार किया। इस प्रचार कालके ६६ दिनोंमें ६२ धर्मसभाओंमें इन्होंने सिंहविक्रमकी भाँति ओजस्विनी भाषण दिये। जिन-जिन अञ्चलोंमें धर्मसभाएँ हुईं, वहाँ सनातन धर्मकी एक प्रबल आन्धी बहने लगी। हजारों हजारों लोग उनका भाषण सुननेके लिए धर्मसभामें एकत्रित होते थे। कहीं-कहीं १५-२० हजार तक श्रोता

उपस्थित होते और दो-दो घण्टे तक टससे मस नहीं होते थे, चुपचाप उनकी वाणीका श्रवण करते थे। बीच-बीचमें श्रोताओंकी ओरसे प्रश्न किये जाते थे, जिसका समाधान शास्त्रीय प्रमाण एवं अकाट्य युक्तिके बलपर आचार्य केसरीके द्वारा होता था। यह प्रश्नोत्तर श्रोताओंके कौतूहल एवं उत्कण्ठाकी वृद्धि करता था। प्रश्नोंका समाधान पाकर प्रश्नकर्त्ताके साथ श्रोता भी गद्‌गद हो जाते थे। सभाके अन्तमें सभी श्रोता श्रील आचार्यदेवकी चरणधूलि स्पर्श करनेके लिए अधीर हो उठते थे। यहाँ तक कि श्रील आचार्यदेवके सभास्थलसे अपने निवासस्थलपर लौट आनेपर भी हरिकथा-श्रोताओंकी भीड़ एकत्रित हो जाती थी। आसपासके गाँवोंमें भी धर्मसभा करनेकी स्वीकृति पानेके लिए कितने ही अनुरोध एवं प्रार्थनाएँ आती थीं, किन्तु सभी स्थानोंमें जाना सम्भव नहीं था।

इधर २४ जून, १९६० ई॰ को श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी तिरोभाव तिथि थी एवं दूसरे दिनसे ही श्रीजगन्नाथदेवकी रथ-यात्राका शुभारम्भ होनेवाला था। इसलिए बाध्य होकर श्रील आचार्य केसरीको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें प्रचार पार्टीके साथ लौट आना पड़ा। यहाँ आचार्य केसरीके दैनन्दिन प्रचारकी तालिका नीचे दी जा रही है—

(१) १९/४/१९६० मङ्गलवार केशवपुर जलपाई (मेदिनीपुर) ग्रामके श्रीयोगेन्द्र नाथ सामन्त दासके गृहप्रांगणमें "मनुष्य किसे कहते हैं" के सम्बन्धमें भाषण।

(२) २०/४/१९६० उसी ग्राममें श्रीअयोध्यानाथ दासके गृहप्रांगणमें "वैष्णव सदाचार एवं भक्तिका लक्षण" के सम्बन्धमें भाषण।

(३) २१/४/१९६० आकतला ग्राममें श्रीभुवनमोहन जानाके गृहप्रांगणमें "सनातन धर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४) २२/४/१९६० उसी ग्रामके उसी स्थानमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(५) २३/४/१९६० उसी ग्राममें श्रीअरुण चन्द्र दासके गृहप्रांगणमें "विभन्न समास्याओंका समाधान" के सम्बन्धमें भाषण।

(६) २४/४/१९६० नन्दीग्राममें श्रीजानकीनाथ मन्दिरके समीप दुर्गामण्डपमें "विभन्न समस्याओंका समाधान" के सम्बन्धमें भाषण।

(७) २५/४/१९६० उसी ग्राममें श्रीव्रजमोहन तिवारी शिक्षा निकेतनके मैदानमें "धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(८) २६/४/१९६० भेटुरिया ग्राममें श्रीसीताप्रकाश दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "जीवसेवा और ईश्वरसेवामें भेद" के सम्बन्धमें भाषण।

(९) २७/४/१९६० खोदामवाडी हाईस्कूलके विशाल प्रांगणमें सवेरे ९ बजेसे ११ बजे तक "धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(१०) २७/४/१९६० भेटुरिया ग्राममें श्रीननीगोपाल दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें रात्रि ८–३० बजेसे १०–३० तक "मनुष्यका मनुष्यत्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(११) २४/४/१९६० उसी ग्राममें उसी स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(१२) २९/४/१९६० साइवाड़ी गाँवमें श्रीगगनचन्द्र हाजरा उच्च माध्यमिक विद्यालयके विशाल मैदानमें "श्रीचैतन्यदेव एवं गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय" के सम्बन्धमें भाषण।

(१३) ३०/४/१९६० उसी गाँवके उसी स्थानमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१४) २/५/१९६० पूर्वचक गाँवके वेगुनावाड़ी जूनियर हाई स्कूलके मैदानमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१५) ३/५/१९६० पूर्वचक गाँवमें श्रीगिरिधारी दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "वैष्णव–दर्शन और शङ्कर–दर्शनमें पार्थक्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१६) ४/५/१९६० मोहाटी गाँवमें भक्त शशीभूषण भुञाके अनुरोधसे स्थानीय शिवमन्दिरके विशाल प्रांगणमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१७) ५/५/१९६० सिमुलिया ग्रामके हाईस्कूलके मैदानमें "सनातन–धर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(१८) ६/५/१९६० उसी स्थानपर सवेरे ९ बजे "छात्र जीवनमें धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(१९) ६/५/१९६० उसी स्थानपर रात्री ८ बजे "वैष्णवधर्मका श्रेष्ठत्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(२०) ७/५/१९६० एड़ाशाल ग्राममें श्रीहरेकृष्ण दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "श्रीएकादशी-तत्त्व—शुद्धा एवं विद्धा" के सम्बन्धमें भाषण।

(२१) ८/५/१९६० उसी स्थानपर "वैष्णव क्या जाति है या धर्म है" के सम्बन्धमें भाषण।

(२२) ९/५/१९६० उसी ग्राममें श्रीजितज्ञान दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "जीवका धर्म क्या है?" के सम्बन्धमें भाषण।

(२३) १०/५/१९६० कुलवाड़ी ग्राममें श्रीठाकुर मन्दिरके प्रांगणमें "मनुष्यत्व क्या है?" के सम्बन्धमें भाषण।

(२४) १२/५/१९६० पिछलदा ग्राममें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके श्रीपिछलदा पादपीठ प्रांगणमें "मानव जीवनका उद्देश्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(२५) १३/५/१९६० पिछलदा गौड़ीय मठमें "साम्प्रदायिकता एवं समन्वय" के सम्बन्धमें भाषण।

(२६) १४/५/१९६० नर-चाकनान ग्राममें भक्त हाराधनके अनुरोधसे स्थानीय प्राथमिक विद्यालयके प्रांगणमें "श्रीचैतन्यदेवके अवदानका वैशिष्ट्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(२७) १५/५/१९६० तेरपेख्या बाजारमें "वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय" के सम्बन्धमें भाषण।

(२८) १६/५/१९६० उसी स्थालपर "वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय" के सम्बन्धमें भाषण।

(२९) १७/५/१९६० उसी स्थानपर "श्रीमद्भागवत प्रवचन" के सम्बन्धमें भाषण।

(३०) १९/५/१९६० कल्याणपुर गाँवके श्रीमन्दिरके प्रांगणमें "धर्म जीवनकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(३१) २०/५/१९६० उसी स्थानपर "वर्त्तमान समस्याका समाधान" के सम्बन्धमें भाषण।

(३२) २१/५/१९६० कल्याणपुर गाँवके श्रीमदनमहोन गौड़ीय मठमें "वैष्णवधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(३३) २२/५/१९६० मलुवासान गाँवमें श्रीरेवतीभूषण पालके गृहप्रांगणमें "नामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(३४) २३/५/१९६० तमलुक शहरमें श्रीहरिनाम प्रचारिणी सभाके प्रांगणमें "श्रीनामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(३५) २४/५/१९६० उसी स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(३६) २५/५/१९६० उसी स्थानपर "वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय" के सम्बन्धमें भाषण।

(३७) २६/५/१९६० उसी स्थानपर श्रीमद्भागवत पाठ एवं व्याख्या।

(३८) २८/५/१९६० चकगाडुपोता गाँवके स्कूल प्रांगणमें "सनातन-धर्म एवं देव-देवियोंकी पूजा" के सम्बन्धमें भाषण।

(३९) २९/५/१९६० पूर्वोक्त स्थानपर "पञ्चरस-तत्त्व एवं भागवत" के सम्बन्धमें भाषण। यहाँपर श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें आर्य समाजियोंके साथ तर्क-वितर्क हुआ, जिसमें आचार्य केसरीकी अकाट्य युक्तियों एवं शास्त्रीय प्रमाणोंको सुनकर आर्यसमाजियोंकी बोलती बन्द हो गयी।

(४०) ३०/५/१९६० उसी स्थानपर श्रीनरेन्द्र पडुआके गृहप्रांगणमें "वैष्णव सदाचार" के सम्बन्धमें भाषण।

(४१) ३१/५/१९६० वहींपर "वर्त्तमान युगकी समस्या" के सम्बन्धमें भाषण। यहाँ श्रोताओंकी ओरसे प्रश्न हुआ कि वैष्णवगण कृषि कर्म कर सकते हैं या नहीं? श्रील आचार्य केसरीने शास्त्रोंके विचार प्रमाण एवं उदाहरण सहित प्रमाण कर यह बतलाया कि वैष्णवलोग कृषि कर्म कर सकते हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णाश्रमधर्मके प्रसङ्गमें इसका उल्लेख है। श्रीकृष्णके समयमें गोप जातिकी दो श्रेणियोंका उल्लेख है। गोचारण करनेवाले एवं कृषि करनेवाले दोनों ही वैष्णव थे। श्रीमन्महाप्रभुके समयमें भी बहुत-से गृहस्थ वैष्णव कृषि कर्म करनेवाले भी थे। इनका सदुत्तर पाकर प्रश्नकर्त्ता बड़े सन्तुष्ट हुए।

(४२) २/६/१९६० डायमण्ड हारवर (२४ परगना) के शैलेन्द्रनाथ घोषके गृहप्रांगणमें श्रीमद्भागवत पाठ।

(४३) ३/६/१९६० काकद्वीपमें श्रीविशालाक्षी मन्दिरके प्रांगणमें "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४४) ४/६/१९६० उसी स्थानपर "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य एवं धर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४५) ६/६/१९६० स्थानीय हरिसभामें "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४६) ७/६/१९६० काशीनगरके बाजारमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(४७) ८/६/१९६० उपरोक्त स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४८) ९/६/१९६० गिलारछट गाँवमें "वैष्णवधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४९) १०/६/१९६० पूर्वोक्त स्थानपर "नामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(५०) ११/६/१९६० काशीनगर बाजारमें "वैष्णव सदाचार एवं नित्यधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(५१) १२/६/१९६० कृष्णचन्द्रपुर गाँवके विद्यालय प्रांगणमें "जीवतत्त्व तथा भगवत्-सेवामें उसका अधिकार" के सम्बन्धमें भाषण।

(५२) १३/६/१९६० सरवेड़िया गाँवके श्रीद्विजोत्तम दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "अधोक्षजतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(५३) १५/६/१९६० एकतारा ग्रामके प्राथमिक विद्यालय प्रांगणमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(५४) १६/६/१९६० पूर्वोक्त स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(५५) १७/६/१९६० हदुगंज ग्रामके हरिसभा भवनमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य एवं वैष्णवधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(५६) १८/६/१९६० चांदनगर ग्रामके श्रीवसन्तकुमार घोषके गृहप्रांगणमें "नामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(५७) १९/६/१९६० उक्त गाँव श्रीनीलमणि घोषके गृहप्रांगणमें श्रीमद्भागवतसे "निमि नवयोगेन्द्र संवाद" पाठ।

(५८) २०/६/१९६० पूर्वोक्त गाँवके श्रीकृष्णपद घोषके गृहप्रांगणमें श्रीमद्भागवतसे "निमि नवयोगेन्द्र संवाद" पाठ।

(५९) २०/६/१९६० उक्त गाँवके श्रीरजनीकान्त घोष महोदयके गृह प्रांगणमें रात्री ८ बजे श्रीमद्भागवतके पूर्वोक्त प्रसङ्गका पाठ।

(६०) २१/६/१९६० डायमण्ड हारबरके न्यायालय प्रांगणमें "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(६१) २२/६/१९६० उसी स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(६२) २३/६/१९६० उसी स्थानपर श्रीमद्भागवत एकादश-स्कन्धसे पाठ।

मुर्शिदाबाद अञ्चलमें श्रील आचार्यदेव

मुर्शिदाबाद जनपदके अन्तर्गत हावड़ा बहरमपुर शहरके विशिष्ट नागरिकोंके विशेष निमन्त्रणपर परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव अपने परिकरोंके साथ २३ दिसम्बर, १९६० ई० को वहाँ पधारे। बहरमपुर कोर्ट-स्टेशनमें श्रील गुरुदेवके बाल्यबन्धु श्रीकृष्णदेव मुखोपाध्याय एवं बहुत-से नागरिकवृन्द पुष्पमाला आदिके साथ स्वागत करनेके लिए उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। स्टेशनपर उतरते ही उन लोगोंने बड़े उत्साहसे पुष्पमाल्य, चन्दन आदि द्वारा उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् प्रचार पार्टीके साथ उन्हें मोटर वाहनके द्वारा हावड़ा शहरमें श्रीहरिपद साहा महोदयके ठाकुरबाड़ीमें ठहराया गया। दूसरे दिन सायंकाल पूर्वोक्त ठाकुरबाड़ीके विशाल प्रांगणमें आयोजित एक विशाल धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने "मनुष्य जीवनके कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें एक ओजस्वी भाषण प्रदान किया। तीसरे दिन २५ दिसम्बर, १९६० को भी उसी स्थानमें श्रील सभापति महाराजने "वैष्णव धर्मकी मौलिकता" के सम्बन्धमें एक गम्भीर वैदान्तिक तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उनके भाषणको सुनकर शहरके वकील, अध्यापक एवं अन्यान्य शिक्षित व्यक्ति मुग्ध हो गये। उन लोगोंके विशेष आग्रहपर श्रील आचार्यदेवने और भी तीन दिनों तक वहाँ ठहरकर मुक्तितत्त्व तथा अचिन्त्य-भेदाभेदके सम्बन्धमें अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक तत्त्वोंका विश्लेषण करते हुए भाषण दिया। उनका ओजस्वी भाषण सुनकर जन साधारण विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। सभाके अन्तमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौर-कृष्ण-लीलाके सम्बन्धमें भाषण दिया।

लगातार ५ दिनों तक हावड़ा बहरमपुर शहरमें शुद्धभक्तिका प्रचार होनेपर जियागंज निवासी माननीय राय बहादुर सुरेन्द्र नारायण सिंहके विशेष निमन्त्रणपर श्रील सभापति महाराज प्रचार पार्टीके साथ जियागंजमें पधारे। प्रथम दिन स्थानीय चण्डीमण्डपके विशाल प्रांगणमें एक महती धर्मसभाका आयोजन किया गया। सभाका आयोजन करनेवाले राय बहादुर महोदय परम धर्मानुरागी एवं विद्वान व्यक्ति थे। उनके विशेष अनुरोध करनेपर श्रील आचार्यदेवने अचिन्त्य-भेदाभेदके सम्बन्धमें अत्यन्त गम्भीर तत्त्वोंसे पूर्ण दार्शनिक भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—"अखिल विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेवाले ईश्वरोंके भी ईश्वर परब्रह्म श्रीकृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। वे असमोर्द्ध्व तत्त्व हैं। वे निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष तत्त्व नहीं, बल्कि अचिन्त्य सर्वशक्तिमान हैं। यथार्थतः परम तत्त्वरूप भगवान्‌की एक ही शक्ति है, जिसे पराशक्ति या अन्तरङ्गाशक्ति कहते हैं। किन्तु वही पराशक्ति विभिन्न रूपसे कार्य सम्पादन करनेके कारण विभिन्न नामोंसे परिचित होती है। जिनमें तीन प्रधान हैं—चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। चित्-शक्तिसे चित्-जगत्, जीवशक्ति या तटस्थाशक्तिसे असंख्य जीव तथा बहिरङ्गा या मायाशक्तिसे असंख्य जड़-जगत् प्रादुर्भूत हुए हैं। यहाँ प्रादुर्भूतका तात्पर्य शक्तिओंके परिणामसे समझना चाहिये।

"परतत्त्वकी शक्तियों एवं शक्तिपरिणत वस्तुओंसे परतत्त्वका भेद और अभेद युगपत् सिद्ध है। किन्तु यह भेद और अभेद जीवोंकी क्षुद्र चिन्ताशक्ति या युक्ति-तर्कके अगम्य है। अगम्य होनेपर भी अपौरुषेय शब्दगम्य है। इसलिए इस भेदाभेदको अचिन्त्य-भेदाभेद कहा गया है। अपौरुषेय शब्दगम्यका तात्पर्य क्या है? इसे बड़ी सावधानीसे समझना चाहिये। शुद्ध गुरु-परम्परामें स्वीकृत वेद, उपनिषद्, वेदान्त-सूत्र, पुराण, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि शास्त्र वचनोंको यहाँ अपौरुषेय शब्द कहा गया है। इसी शब्द-प्रमाणके माध्यमसे उक्त भेदाभेद सम्बन्धको समझा जा सकता है अन्यथा यह अचिन्त्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको इसकी शिक्षा दी थी। षट्-सन्दर्भमें श्रील जीव गोस्वामीने तथा श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषणने

गोविन्द–भाष्यमें अचिन्त्य–भेदाभेद तत्त्वका बड़े ही मार्मिक रूपमें विवेचन किया है।”

इनका यह भाषण अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक विचारोंसे परिपूर्ण होनेके कारण साधारण श्रोताओंकी तो बात ही क्या, शिक्षित श्रोता भी आसानीसे नहीं समझ सके। उन सबने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य श्रील आचार्य केसरीसे निवेदन किया कि आजका भाषण अत्यन्त कठिन हुआ है। हमलोग कुछ सहज–सरल रूपमें “मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य” के विषयमें श्रवण करना चाहते हैं। उनकी प्रार्थनाके अनुसार श्रील गुरुदेवने दूसरे दिनकी धर्मसभामें “मानव जीवनका धर्म एवं कर्त्तव्य” के सम्बन्धमें भाषण दिया। उस भाषणमें प्रसङ्गके अनुसार वर्त्तमान कालके अपसम्प्रदाय एवं उपसम्प्रदायके विचारोंका खण्डनकर शुद्ध सनातन धर्म—भगवद्भक्तिकी विशद् रूपमें आलोचना की। सभापति महाराजके भाषणके पश्चात् प्रतिदिन त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके सम्बन्धमें भाषण दिया। प्रतिदिन भाषणके प्रारम्भ एवं अन्तमें श्रीहरि–गुरु–वैष्णव वन्दना, महाजन पदावली एवं हरिनाम महामन्त्रका कीर्त्तन किया जाता था।

बङ्गालके सुन्दरवन अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार

२४ जनवरी, १९६१ ई॰ को श्रीआचार्यदेव अपने परिकरोंके साथ काकद्वीपके समीप राजनगर धर्मसम्मेलन कमेटीके विशेष आह्वानपर वहाँ पधारे। श्रीधाम मथुरासे प्रकाशित श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी) के सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराज भी आचार्यदेवके साथ थे।

सन्ध्याके समय राजनगर हाईस्कूलके विशाल प्रांगणमें विराट धर्मसभाका आयोजन किया गया था। सर्वसम्मतिसे श्रील आचार्यदेवने सभापतिका आसन अलंकृत किया। अन्यान्य सम्प्रदायोंके वक्ताओंके पश्चात् श्रील सभापति महाराजके निर्देशसे वैष्णवधर्मके पक्षमें सभाके प्रधान अतिथि त्रिदण्डिपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज और श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने भाषण दिये। उपसंहारमें श्रील आचार्यदेवने

भगवत् कपिल एवं आधुनिक सांख्यकार कपिलमें पार्थक्य तथा हिन्दूमात्र ही साकारवादी हैं, अहिन्दू सभी निराकारवादी—इन विषयोंका विवेचन करते हुए एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया। उन्होंने बतलाया कि सांख्य-दर्शनके आदि प्रवर्तक कपिलदेव ऋषि हैं। कपिल दो हैं। इनमेंसे एक सत्ययुगमें और दूसरे त्रेतायुगमें आविर्भूत हुए थे। सत्ययुगके कपिल महर्षि कर्दम ऋषिके पुत्रके रूपमें मनुकी कन्या देवहूतिके गर्भसे पैदा हुए थे। ये भगवत्-अवतार हैं तथा सांख्य-दर्शनके आदि कर्त्ताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन्होंने सांख्य-दर्शनके नामसे किसी विशेष ग्रन्थका प्रणयन नहीं किया है, फिर भी इनके द्वारा प्रवर्तित सांख्य मतका सुस्पष्ट वर्णन श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है। त्रेतायुगमें आविर्भूत कपिल मुनि (जिन्होंने सगर वंशका ध्वंस किया था) ने सांख्य-दर्शनकी रचना की। इनके सांख्य-दर्शनमें पूर्वोक्त सांख्य मतका सार-संकलन होनेपर भी इसमें कुछ-कुछ विशेष विचार परिलक्षित होते हैं। ये विशेष अंश पूर्ण रूपसे श्रुतिविरुद्ध है। श्रुतिविरुद्ध अंश संयोजित होनेके कारण ही प्रचलित आधुनिक सांख्य-दर्शनका अनादर दृष्टिगोचर होता है। आत्मतत्त्वका विवेचन वेदान्तशास्त्रके अनुरूप होनेके कारण इस सांख्य-दर्शनकी उत्कर्षता रहनेपर भी श्रुतिविरुद्ध विचारों (ईश्वर असिद्ध है, अचेतन प्रकृति ही विश्वकी आदि कर्त्री है) के उल्लेखके कारण साधुसमाजमें इसका आदर नहीं है।

प्राचीन शास्त्रोंमें हिन्दू शब्दका उल्लेख न रहनेपर भी सनातन धर्मावलम्बी लोगोंको ही हिन्दू समझना चाहिये। हिन्दूमात्र ही साकारवादी होते हैं। वे भगवान्‌के अप्राकृत श्रीविग्रहकी पूजा करते हैं। हिन्दुओंको छोड़कर ईसाई, बौद्ध, मुसलमान, जैन आदि सभी धर्मावलम्बी निराकारवादी हैं। सनातन धर्मावलम्बी सदा विद्यमान रहनेवाले नित्यधर्मका पालन करते हैं। इसके अतिरिक्त सभी धर्मोंका आदि और अन्त है। वे निराकारवादी होनेपर भी किसी-न-किसी रूपमें आकार को माननेके लिए बाध्य हैं। उनके धर्मग्रन्थोंमें भी God, खुदाके आकारका वर्णन है। बौद्ध और जैनियोंके मन्दिरोंमें विशाल-विशाल मूर्त्तियोंकी पूजा होती है। यदि ईश्वरका कोई रूप ही नहीं है तो मन्दिर, मस्जिद,

चर्च और स्तूपोंकी आवश्यकता ही क्या है? किसके लिए उनकी आवश्यकता? यदि कोई है ही नहीं, तो मन्दिर, मस्जिद किसलिए?"

धर्मसम्मेलनके दूसरे दिन भी आचार्यदेवने सभापतिका आसन अलंकृत किया। तत्पश्चात् अन्यान्य सम्प्रदायोंके वक्ताओंके भाषणके पश्चात् श्रील आचार्यदेवने श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजको परतत्त्व, उपास्यवस्तु कौन है तथा उनकी उपासनाके सम्बन्धमें भाषण देनेका निर्देश दिया। उन्होंने *'एते चांश कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'* (श्रीमद्भा॰ १/३/२८), *'ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदान्दविग्रहः। अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्'* (ब्र॰ स॰ ५/१) तथा *'आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धामवृन्दावन.....न परः।'*—इन शास्त्रीय प्रमणोंको उपस्थित करते हुए श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको ही अद्वयज्ञान परतत्त्व निरूपित किया। साथ ही व्रजरमणियोंकी श्रीकृष्णके प्रति उपासना ही सर्वोत्तम है, श्रीकृष्ण प्रेम ही जीवोंके लिए सर्वोत्तम प्रयोजन है और श्रीचैतन्य महाप्रभुका यही मत है—उन्होंने यह बात अत्यन्त दृढ़तापूर्वक कही। तदनन्तर श्रीविश्वनाथ राय, श्रीसुदर्शन ब्रह्मचारी, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने वैष्णवधर्मके सम्बन्धमें भाषण दिया। अन्तमें उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा अनुमोदित वैष्णवधर्म ही सनातन धर्म है, इसे सभी श्रोताओंको अच्छी तरहसे समझाया गया।

धर्मसम्मेलनके व्यवस्थापकोंने विशेषतः अध्यापक श्रीसुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य (एम॰ए॰ ट्रिपल) एवं श्रीद्विजेन्द्रनाथ पात्र महोदय आदिने श्रीआचार्यदेवकी भाषणकी शैली, भावधारा एवं विचारधाराकी भूयसी प्रशंसा की। सभाके अन्तमें उन लोगोंने श्रील गुरुमहाराजके साथ धर्मके विषयमें आलोचना की।

चुँचुड़ा मठमें श्रीव्यासपूजा-महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें ३ फरवरीसे ६ फरवरी, १९६१ ई॰ चार दिनों तक श्रीव्यासपूजा-महोत्सवका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। विशेषतः श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीआचार्यदेवके स्वयं उपस्थित रहनेसे यहाँपर यह अनुष्ठान सर्वतोभावेन साफल्य मण्डित हुआ है।

माघी कृष्णा तृतीया तिथि (३ फरवरी) में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति श्रील आचार्यदेवके आविर्भावके दिन ब्राह्ममुहूर्त्तसे ही श्रीश्रीहरि-गुरु-वैष्णव-वन्दना एवं उनके महिमासूचक कीर्त्तन हुए। तत्पश्चात् श्रीव्यासपूजा पद्धतिके अनुसार गुरुपंचक, आचार्यपंचक, व्यासपंचक, कृष्णपंचक, उपास्यपंचक, तत्त्वपंचक आदिकी पूजा एवं वैष्णव होम सम्पन्न हुआ। श्रील आचार्यदेवके अनुग्रहपूर्वक पूजामण्डपमें पधारते ही उनके अनुगत संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ सभीने उनके श्रीचरणकमलोंमें श्रद्धापुष्पाञ्जलि अर्पित की। दोपहरमें भोगराग एवं आरतिके पश्चात् निमन्त्रित एवं अनिमन्त्रित सभी लोगोंको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया। सायंकालीन धर्मसभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज आदि वक्ताओंने श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिया।

४ फरवरीको सायंकालीन धर्मसभामें नाना स्थानोंसे प्राप्त भक्तोंकी पुष्पाञ्जलिका पाठ किया गया। अन्तमें श्रील आचार्यदेवने सद्गुरु पदाश्रयकी आवश्यकता तथा सत्शिष्यके कर्त्तव्यके सम्बन्धमें विशेष रूपसे उपदेश एवं निर्देश प्रदान किया।

६ फरवरी, सोमवारको गोविन्द पञ्चमी (माघी कृष्णा पञ्चमी) तिथिमें जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें अरुणोदय कालसे ही वन्दना, कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् प्रभुपादकी वक्तृतावलीसे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजीने श्रीव्यासपूजासे सम्बन्धित श्रील प्रभुपादके विचारोंका पाठ किया। तदनन्तर दोपहरमें श्रीविग्रहोंका अर्चन-पूजन एवं पुष्पाञ्जलि दानके पश्चात् भोगराग एवं आरति सम्पन्न हुई। तदनन्तर समागत श्रद्धालुओंको महाप्रसाद सेवन कराया गया।

सायंकाल ५ बजे एक महती सभाका आयोजन हुआ। इस सभामें भी सर्वप्रथम श्रील आचार्यदेव एवं श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके उद्देश्यसे भक्तों द्वारा प्रेषित भक्तिपुष्पाञ्जलिका पाठ किया गया। श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी द्वारा प्रदत्त श्रील प्रभुपादके चरित्र एवं शिक्षावलीके सम्बन्धमें भाषणके उपरान्त परमाराध्य श्रील गुरुदेवने श्रील प्रभुपादकी शिक्षाके वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें उपदेशपूर्ण एवं सारगर्भित भाषण

प्रदान किया। उन्होंने बतलाया कि श्रीगुरुपूजाका नामान्तर ही व्यासपूजा है। श्रीव्यासदेव शिक्षा देनेके कारण शिक्षागुरु हैं। गुरु दो प्रकारके होते हैं—शिक्षागुरु और दीक्षागुरु। अर्चन मार्गमें सर्वप्रथम दीक्षागुरुके अर्चन एवं पूजाका विधान है। शिक्षागुरु एवं दीक्षागुरु तत्त्वतः अभिन्न हैं तथा सभी शास्त्रोंमें शिक्षा और दीक्षा गुरु दोनोंको अभिन्न बतलाते हुए सेवा करनेकी विधि है तथा दोनोंको ही कृष्णका स्वरूप या प्रकाश बतलाया गया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है कि—

गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु-रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥

शिक्षाागुरुके त' जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ,—एइ दुइ रूप॥

(चै॰ च॰ आ॰ १/४५, ४७)

और भी शास्त्रोंमें कहीं कहीं शिखिपिच्छमौलि कृष्णको, कहीं राधाभावद्युतिसुवलित गौरहरि और षड् गोस्वामियोंको भी शिक्षागुरु माना गया है। तथापि दीक्षागुरुकी पूजा ही सबसे पहले करना कर्त्तव्य है। मन्त्रदाता गुरुका एक प्रधान वैशिष्ट्य है, जो मनोधर्मसे त्राण कराते हैं वे मन्त्रदाता गुरु हैं। जिस वस्तुके द्वारा वे मनोधर्मसे शिष्योंका त्राण करते हैं उसे मन्त्र कहते हैं। शब्दब्रह्म हमें मनोधर्मसे रक्षा करते हैं। इसलिए मन्त्रदाता गुरु सर्वश्रेष्ठ हैं। इसीलिए मन्त्रदाता गुरुकी पूजा ही सर्वप्रथम होनी चाहिये। शिक्षागुरु होनेके कारण श्रीवेदव्यास सारी शिक्षाओंको प्रदान करते हैं, इसलिए इनका महत्व या वैशिष्ट्य अपरिहार्य है।

वर्त्तमान समयमें सद्गुरु दुर्लभ हैं। कहीं-कहीं अयोग्य दीक्षा एवं शिक्षा गुरुओंके कारण परस्पर विवाद भी देखा जाता है। अतः जो दीक्षागुरुकी सेवा—शिक्षा प्रदान करते हैं, जो निर्मत्सर होकर भक्तिसाधनकी शिक्षा देते हैं वे शिक्षागुरु हैं। शास्त्रोंमें उन्हें यथोचित सम्मान करनेके लिए बतलाया गया है। जो दीक्षागुरुकी सेवाकी शिक्षा नहीं देता वह शिक्षागुरु पदवाच्य नहीं है। शिक्षागुरुकी तो बात ही क्या, ऐसा व्यक्ति शुद्ध वैष्णव ही नहीं है। क्योंकि वह दीक्षागुरुको मर्यादा भी नहीं दे सकता। ऐसा

उपदेष्टा अपने दीक्षागुरुके प्रति कैसा आचरण करता है? जो लोग अद्वैत चिन्तामें मग्न रहते हैं, वे गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें (श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा लिखित) 'अनवगतस्यात' के अनुसार गुरुकी अवज्ञा करते हैं या गुरुकी अवज्ञा करनेकी शिक्षा देते हैं। वे गुरुको अगुरु या लघु भी समझते हैं। यदि गुरु ही अज्ञानी या अतत्त्वदर्शी हैं, फिर शिष्य गुरु पदवाच्य किस प्रकार हो सकता है? गुरुसेवा करनेसे मुझे सब प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त होंगी, भजनानन्दीके नामसे आलस्यपूर्ण सुखमय जीवन-यापन कर सकूँगा तथा अन्य सेवकोंके ऊपर कर्तृत्व कर सकूँगा, सत्-शिष्यका ऐसा विचार नहीं होता। 'गुरूर सेवक हय मान्य आपनार।' सद्गुरु पदाश्रित सेवक या शिष्य अन्यान्य सभी सेवकोंको अवश्य ही सम्मान प्रदान करेंगे। गुरुसेवाकी शिक्षा देनेवाले ही शिक्षागुरु हैं।

वलागड़में विराट धर्म-सम्मेलन

हुगली जनपदके अन्तर्गत वलागड़ शहरमें स्थानीय सच्चिदानन्द सेवाश्रमके उद्योगसे २३ फरवरीसे २५ फरवरी, १९६१ ई॰ तीन दिनों तक विराट धर्मसभाका आयोजन किया गया था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको इस सभामें योगदान करनेके लिए विशेष रूपसे निमन्त्रित किया गया था। श्रील आचार्यदेवने अपने अनुगत संन्यासी और २० ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर उस महद् अनुष्ठानमें योगदान किया। उक्त सेवाश्रमकी ओरसे लोगोंके ठहरने एवं प्रसाद आदिकी व्यवस्था अत्यन्त सुन्दर रूपमें की गयी थी। अपराह्न ४ बजे विशाल सभा हुई। विभिन्न वक्ताओं तथा प्रधान अतिथिके सभास्थलमें उपस्थित होनेपर सङ्कीर्त्तन एवं शङ्खध्वनि द्वारा गूँजते हुए वातावरणमें श्रील आचार्य केसरीको सभामञ्चपर लाया गया। सर आशुतोष मुखोपाध्याय (बङ्गालके प्रथम भारतीय गवर्नर) के पुत्र तथा श्यामापद मुखर्जीके भाई—कलकत्ता हाइकोर्टके अवकाशप्राप्त प्रधान न्यायाधिपति—श्रीवामाप्रसाद मुखर्जीने आदरपूर्वक श्रील आचार्य केसरीको सभापतिके आसनपर विराजमान कराया। स्वामी समाधिप्रकाश अरण्य एवं श्रीजीव न्यायतीर्थ—इन दोनोंको प्रधान अतिथिके रूपमें वरण किया गया। तदनन्तर वक्ता—महास्थवीर

धर्मकीर्ति, अवकाशप्राप्त जिला जज श्रीमतीलाल दास, श्रीसुधीन्द्र नाथ मुखोपाध्याय, समितिके संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गणमान्य व्यक्तियोंके सभामण्डपमें आसन ग्रहण करनेपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ।

श्रीजितेन्द्रनाथ चौधरीके उद्बोधन सङ्गीतके उपरान्त सच्चिदानन्द सेवाश्रमके अध्यक्ष स्वामी भूपानन्द पुरी महाराजकी ओरसे श्रीतारकगति मुस्तफी महोदयने सम्मेलनके उद्देश्य पर प्रकाश डाला। तदनन्तर सभापति श्रील आचार्य केसरीके निर्देशानुसार सबसे पहले डा॰ मोतीलाल दासने वेद-उपनिषदोंके प्रमाणोंका उल्लेख करते हुए धर्मके सम्बन्धमें भाषण दिया। तत्पश्चात् महाबोधि सोसाइटीके महास्थवीरने धर्मनीति तथा बुद्धदेवके धर्मप्रचारके विषयमें भाषण दिया। अतःपर श्रीजीव न्यायतीर्थ महोदय द्वारा "धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण देनेके पश्चात् स्वामी समाधिप्रकाश अरण्य महाराजने "वर्त्तमान धर्मजगत्की परिस्थिति" के सम्बन्धमें बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया।

अन्तमें परमाराध्य श्रील आचार्यदेवने सभापतिके पदसे बहुत ही ओजस्वी भाषण प्रदान किया। श्रोताओंने उनके भाषणको ही सर्वाधिक पसन्द किया। सभापति महोदयने राष्ट्रके कर्णधारों द्वारा धर्मके प्रति उदासीनता, समाजकी धर्मके प्रति विरोधिता तथा वर्त्तमान शिक्षाके प्रभावसे भारतीय संस्कृतिकी ध्वंसोन्मुख अवस्थाके सम्बन्धमें भावपूर्ण भाषण दिया। रात ८ बजेसे अधिक समय होनेपर सम्मेलनके सम्पादक महोदयने सभापति श्रील आचार्यदेवको प्रदर्शनी उन्मोचन करनेके लिए तथा सभामें प्रदर्शनीके बारेमें घोषणा करनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु श्रोतृमण्डलीने बड़े उत्कण्ठित होकर स्वामीजीका भाषण जारी रखनेका पुनः-पुनः अनुरोध किया। श्रील आचार्यदेवने पुनः अपना भाषण जारी रखते हुए "धर्म पालन ही मानव जीवनका प्रधान कर्त्तव्य है" के सम्बन्धमें बहुत ही प्रभावशाली उपदेश दिया। सभा समाप्त होनेपर धर्म सम्मेलनके आयोजक एवं श्रोतृमण्डलीने सभापति महाराजके विचारोंकी भूयसी प्रशंसा की।

आसाम, सुन्दरवन आदि स्थानोंमें प्रचार

आसाम प्रदेशके भक्तोंके पुनः-पुनः आग्रह एवं प्रार्थनासे १ अप्रैल १९६१ ई॰ से लेकर एक महीना तक आसाम प्रदेशके गोलोकगंज गौड़ीय

मठ, चड़ाईखोला, टोकरे छड़ा, डिडिंगा, धूबड़ी, शान्तिनगर आदि विभिन्न स्थानोंमें प्रबल रूपसे सनातन धर्म—शुद्ध वैष्णवधर्मका प्रचार किया। डिडिंगा गाँवके जूनियर हाईस्कूल प्रांगणमें एक विशाल धर्मसभा हुई थी। इस सभामें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्मके लोग बड़ी संख्यामें उपस्थित थे। सबने उनके मर्मस्पर्शी विचारोंकी सराहना की।

आसाम प्रदेशसे लौटकर १६ जून, १९६१ ई॰ के दिन कतिपय संन्यासी ब्रह्मचारियोंके साथ परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने सुन्दरवन अञ्चलमें प्रचार करनेके लिए यात्रा की। प्रचार पार्टी क्रमशः कृष्णचन्द्रपुर, काशीमगढ, लक्ष्मी जनार्द्दनपुर, आईप्लट आदि स्थानोंमें विपुल रूपसे शुद्धभक्तिका प्रचार कर २४ जूनको चुँचुड़ा मठमें लौटी।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रथ-यात्रा एवं झूलन-यात्रा महोत्सव आदि

१२ जुलाई, १९६१ ई॰ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका विरहोत्सव विशेष रूपसे मानाया गया। श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद् विष्णुदैवत महाराज प्रमुख संन्यासीगण तथा श्रीहरि ब्रह्मचारी, श्रीभगवान दास ब्रह्मचारी, श्रीभागवत दास ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोक्षण ब्रह्मचारी, श्रीवंशीवदनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीयदुवर दासाधिकारी (एम॰ए॰वी॰टी॰), श्रीजितकृष्ण दासाधिकारी आदि वैष्णवोंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके अप्राकृत जीवनचरित्र तथा उनके द्वारा आचरित एवं प्रचारित वैष्णवधर्मके सम्बन्धमें भाषण प्रदान किया। उपसंहारमें श्रील आचार्यदेवने उक्त विषयमें अत्यन्त शिक्षाप्रद उपदेश प्रदान किया।

दूसरे दिन बड़े समारोहके साथ रथ-यात्रा महामहोत्सव सम्पन्न हुआ। जो १० दिनों तक चला। इस महोत्सवमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी सेवाप्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय रही।

तत्पश्चात् श्रावण महीनेमें श्रीराधागोविन्दकी झूलन-यात्रा तथा श्रीबलदेव आविर्भाव (पूर्णिमा) उत्सव भी महासमारोहके साथ सम्पन्न

हुआ। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने इन अवसरोंपर अत्यन्त गम्भीर तत्त्व एवं रहस्योंका उद्‌घाटन किया।

श्रील गुरुदेवकी छत्रछायामें समग्र भारतीय तीर्थोंकी परिक्रमा

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं नियामक परिव्राजकाचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आनुगत्य एवं उनकी साक्षात् उपस्थितिमें इस वर्ष कार्त्तिक नियम-सेवाके समय तीन धाम, सप्तपुरीके सहित समग्र भारतके तीर्थोंकी परिक्रमा अत्यन्त सुचारु रूपसे सुसम्पन्न हुई। इस तीर्थयात्रामें संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं गृहस्थ कुल मिलाकर ११८ यात्री थे। ३ अक्टूबर, १९६१ ई॰ के दिन हावड़ा स्टेशनसे एक रिजर्व टूरिस्ट बोगीके द्वारा यह यात्रा आरम्भ हुई। इस यात्रामें कुल दो महीनेका समय लगा।

सर्वप्रथम यात्रासंघने विष्णुपुरमें श्रीमदनमोहनजीका दर्शन किया। इन मदनमोहनजीने स्वयं कमान दागकर शत्रुओंको खदेड़ा था। उस कमानका भी यात्रियोंने दर्शन किया। तत्पश्चात् परिक्रमा संघने श्रीलगुरुदेवके आनुगत्यमें श्रीजगन्नाथ पुरीमें उपस्थित होकर श्रीजगन्नाथदेव, टोटा गोपीनाथ, श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव एवं भजन स्थली, गम्भीरा, श्रील हरिदास ठाकुरकी भजन एवं समाधि स्थली तथा गुण्डिचा मन्दिर आदिका दर्शन किया। ८ अक्टूबर, १९६१ को सिंहाचलममें ९८७ सीढ़ियोंके ऊपर चढ़कर पर्वतके ऊपर जियड़ नृसिंहदेवका दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त किया। १० अक्टूबर, १९६१ को पाना नृसिंह, ११ अक्टूबर, १९६१ को मद्रास गौड़ीय मठ, पार्थसारथि मन्दिर तथा अन्यान्य दर्शनीय स्थलोंका दर्शन किया। मद्रासमें ही ईस्टर्न रेलवेकी ट्रेन बदलकर दक्षिण रेलवेके द्वारा यात्रा आरम्भ हुई।

मद्रासके वेद गिरीश्वर महादेव एवं हर पार्वती रूपी पक्षियोंका दर्शन करनेके लिए १३ अक्टुबरको पक्षीतीर्थमें उपस्थित हुए। १४ अक्टूबरको यात्रापार्टी चिदम्बरममें श्रीवासुदेव एवं श्रीनटराज, मायाभरममें मयूरी रूपमें पार्वतीदेवीका दर्शनकर उसी दिन रातके समय कुम्भकोणम पहुँचे। दूसरे

दिन कुम्भकोणममें मोक्षकुण्ड, कुम्भेश्वरम्, श्रीराजगोपाल चक्रपाणि आदि तीर्थस्थलोंका दर्शन कराया गया। मोक्षकुण्ड एक बहुत बड़ा सरोवर है। उस सरोवरकी गहराई भी अत्यधिक है। परमाराध्य गुरुदेवने इस स्थलसे सम्बन्धित एक उपाख्यानका वर्णन किया।

पाण्डवलोग वनवासके समय यहाँ पधारे थे। भीमसेनको अपने बलका बड़ा अभिमान था। जिस समय पाण्डवलोग उस पवित्र तीर्थमें स्नान कर रहे थे उसी समय देवर्षि नारद वहींपर उपस्थित हुए। उन्होंने भीमसेनकी ओर मुड़कर कहा—"जानते हो यह कौन-सा तीर्थ है और इसकी क्या महिमा है?" महाबलवान भीमसेनने देवर्षिको प्रणाम करते हुए कहा—"देवर्षे! हमलोग इस विषयमें अधिक नहीं जानते, आप ही कृपा कर बतलावें।" नारदजीने कहा—"पहले तुमलोग स्नानकर यहाँ आओ तब मैं बतलाऊँगा।" स्नान करनेके पश्चात् नारदजीने बतलाया कि जिस सरोवरमें तुमलोगोंने स्नान किया है यह पूर्ण सरोवर कुम्भकर्णकी खोपड़ीके अन्दर है। श्रीरामचन्द्रजीने उस महायोद्धाका वधकर उसकी खोपड़ीको अपने वाणोंसे इस स्थानपर फेंक दिया, जिसके आघातसे यह सरोवर बना है। श्रीरामचन्द्रजीके वाणोंसे स्पर्श होनेके कारण कुम्भकर्णकी खोपड़ी भी अत्यन्त पवित्र हो गयी। इस सरोवरमें स्नान करनेपर श्रीरामचन्द्रजीके धामकी प्राप्ति होती है। कुम्भकर्णके नामके ऊपर ही इस विराट शहरका नाम कुम्भकर्णम् या कुम्भकोणम् पड़ा है।

देवर्षि नारदकी बात सुनकर भीमसेनका अपने बलका अहङ्कार दूर हो गया। वे देवर्षिके चरणोंमें गिर पड़े। १६ अक्टूबरको यात्रियोंने तांजोरमें श्रीवृहदेश्वर महादेवका दर्शन किया। यह मन्दिर भारतके बड़े मन्दिरोंमेंसे एक है। इस विशाल मन्दिरके शिखरपर ८० टन वजनका कारुकार्योंसे चित्रित एक गोल प्रस्तर रखा है। आजके वैज्ञानिक एवं पुरातत्त्व लोग भी यह आश्चर्य करते हैं कि उस समय आधुनिक क्रेन यन्त्रका भी आविष्कार नहीं हुआ था फिर भी इतनी ऊँचाईपर इतने बड़े एक सम्पूर्ण पत्थरको कैसे पहुँचाया गया होगा।

यहाँ एक और आश्चर्यकी बात है। मूल मन्दिरके दरवाजेके सामने एक पत्थरमें प्रस्तुत किए हुए २५ टन वजनके शिव वाहन श्रीनन्दीजी

शिवकी ओर मुख उठाए हुए बैठे हुए हैं। यात्रीगण श्रीमन्दिर एवं श्रीनन्दीका दर्शनकर बड़े प्रसन्न हुए। १८ अक्टूबर, १९६१ को भारतकी अन्तिम दक्षिणी सीमामें अवस्थित धनुष्कोटी तीर्थमें स्नानकर श्रीरामेश्वरमें उपस्थित होकर श्रीरामचन्द्र द्वारा स्थापित विशाल शिव मन्दिरका दर्शन किया। पास ही हनुमान द्वारा लायी गयी श्रीमूर्त्तिका भी दर्शन किया।

२० अक्टूबरको मदुरामें मीनाक्षीदेवीका मन्दिर एवं तत्पश्चात् दूसरे दिन कन्याकुमारीमें कन्याकुमारीका दर्शन किया गया। २३ अक्टूबरको श्रीमन्महाप्रभुके चातुर्मास्य-व्रत पालनके क्षेत्र श्रीरङ्गममें श्रीरङ्गनाथजीका दर्शन किया गया। यह भारतका सबसे बड़ा मन्दिर माना जाता है। इसके एक-एक प्राचीरोंमें एक-एक नगर बसा हुआ है। श्रीयमुनाचार्य एवं श्रीरामानुजाचार्य इसी प्रसिद्ध रङ्गनाथजीके मन्दिरमें रहते थे और यहींसे सर्वत्र प्रचार करते थे। यहाँ रङ्गनाथजी शेषशायी स्वरूपमें लक्ष्मीजीके साथ विराजमान हैं। २५ अक्टूबरको विष्णुकांची एवं शिवकांचीका दर्शनकर अरकोणम् जंक्शन पहुँचे। वहाँ दक्षिण रेलवेकी टूरिस्ट बोगीको बदलकर ईस्टर्न रेलवेकी टूरिस्ट बोगीको ग्रहण किया गया। वहाँसे यात्रा कर यात्रीसमूहने तिरुपति बालाजीका दर्शन किया। तिरुपति बालाजी दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें सर्वाधिक समृद्ध मन्दिर है। तिरुमलई पहाड़ीके ऊपर यह मन्दिर स्थित है।

२९ अक्टूबरको यात्रीसंघ द्वारा नासिक पञ्चवटीमें सूर्पनखाके नाक-कान छेदनका स्थान, श्रीराम, लक्ष्मण, सीताके स्थान गोदावरी तट तथा अन्यान्य स्थानोंका दर्शनकर ३१ अक्टूबरको मुम्बईमें मुम्बादेवीका दर्शन किया गया। १ नवम्बरको ब्रोचमें बली महाराजजीका स्थान, जहाँ वामनदेवने बली महाराजजीसे भिक्षा माँगी थी, वहाँका दर्शन कराया गया। तत्पश्चात् परिक्रमासंघ प्रभास, सुदामापुरी, वेंट द्वारका, गोमती द्वारका, डाकोरजी (रणछोड़जी), उज्जयिनी, श्रीनाथद्वारा, पुष्कर, सावित्री, जयपुरमें श्रीराधागोविन्द, श्रीराधागोपीनाथ, श्रीराधादामोदर, श्रीराधामाधव, श्रीचैतन्य महाप्रभु, गलतागद्दी आदिका दर्शनकर मथुरा धाममें पहुँचा। वहींसे १७ नवम्बरसे आरम्भकर मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन, राधाकुण्ड, बरसाना, नन्दग्राम आदिका दर्शनकर दिल्लीमें इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्रमें भद्रकाली, हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला तत्पश्चात्

नैमिषारण्य, अयोध्या, वाराणसीमें काशी विश्वनाथ तथा गयामें गदाधर पादपद्मका दर्शनकर परिक्रमासंघने दो माहके बाद कलकत्तामें प्रत्यावर्तन किया।

जयपुरमें श्रील आचार्यदेव

परमाराध्य श्रील गुरुदेव अपने परिकरोंके साथ ४ जनवरी, १९६२ को समितिके शाखामठ मथुरामें उपस्थित हुए। वहाँ एक सप्ताह तक श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका विपुल रूपसे प्रचारकर राजस्थान प्रदेशकी राजधानी जयपुरमें पधारे।

वहाँके विशेष व्यक्तियोंने उन्हें जयपुरमें आनेके लिए बार-बार अनुरोध किया था। वहाँ एक सप्ताह तक विभिन्न सभा-समितियों तथा मन्दिरोंमें हिन्दी एवं अँग्रेजी भाषामें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित विमल वैष्णवधर्म और सनातन धर्मके सम्बन्धमें प्रवचन किया। विशेषतः कलियुगमें श्रीहरिनाम-सङ्कीर्त्तन ही भगवत्-प्राप्तिका सहज सरल एवं एकमात्र साधन है, इसे जनसाधारणको प्राञ्जल रूपमें बतलाया। स्थानीय श्रीराधाकृष्णजीके मन्दिरमें एक बड़ी सभाका आयोजन हुआ जिसमें शहरके विशिष्ट साहित्यिक एवं शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे। उस सभामें श्रील गुरुदेवने श्रीनामतत्त्वके सम्बन्धमें एक ओजस्वी भाषण प्रदान किया। हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वान श्रीकमलाकर 'कमल' एवं पं॰ श्रीकृष्णचन्द्रजी (काव्यव्याकरणतीर्थ, साहित्याचार्य) श्रील आचार्यदेवके विचारोंसे बड़े प्रभावित हुए। ये दोनों श्रीवल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गके दीक्षित आचार्य होनेपर भी परमाराध्य श्रील आचार्यदेव जब तक जयपुरमें अवस्थान किये, इन लोगोंने उनके समीप वैष्णवतत्त्वका श्रवण किया। श्रील गुरुदेवने उन्हें यह बतलाया कि श्रीवल्लभाचार्यजी श्रीचैतन्य महाप्रभुसे दो बार मिले थे। प्रथम बार प्रयागके निकट अपने अड़ैल ग्राममें तथा द्वितीय बार श्रीपुरीधाममें। श्रीवल्लभाचार्यके पुत्र श्रीविट्ठलदेवका श्रीरूप-रघुनाथ आदि गोस्वामियोंके साथ अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण सख्यभाव था। ये दोनों जीवन भर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे सम्बन्धित रहे। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीसे इनका अत्यन्त

स्नेहपूर्ण सम्पर्क रहा। श्रीभागवत-पत्रिकामें उनकी कविताएँ एवं प्रबन्ध प्रकाशित होते थे।

इस प्रकार एक माह तक मथुरा एवं जयपुरमें विपुल रूपसे वैष्णवधर्मका प्रचार कर ९ फरवरीको वे श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें लौटे।

उड़ीसा प्रदेशमें समितिके प्रचारकेन्द्रकी स्थापना

उड़ीसा प्रदेशमें बालेश्वर जनपदके अन्तर्गत भद्रक एक प्रसिद्ध स्थान है। इसीके समीप सालिन्दी नदीके तटपर स्थित कोरन्ट नामक एक पवित्र गाँव है। इस गाँवमें करण गोत्रके ब्राह्मणोंका निवास है। यहाँके अधिकांश अधिवासीवृन्द सुशिक्षित एवं उच्चश्रेणीके सरकारी कर्मचारी हैं। इस गाँवमें श्रीगोपालजीका एक मन्दिर है। इसके सेवायत श्रीलाल मोहन महापात्र थे। इस मन्दिरकी सेवा भलीभाँति न चला सकनेके कारण उन्होंने श्रीमन्दिर एवं उससे सम्बन्धित कृषिभूमि समितिके सभापति आचार्यदेवको अर्पित कर दी। कोर्टमें रजिस्ट्री आफिसमें इसकी विधिवत् रजिस्ट्री हुई। श्रील आचार्यदेवने इस शाखाका नया नामकरण श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र किया।

कुछ दिनोंके बाद श्रीगोपालजीको गाँवके भीतरसे स्थानान्तरित कर बड़े राजमार्गपर लाया गया। वहाँ एक विशाल भूखण्डपर एक विराट् श्रीमन्दिर, नाट्‌य मन्दिर एवं सेवक खण्डका निर्माण कराया गया। अब इस विशाल मन्दिरमें श्रीगोपालजीकी सेवा-पूजा होती है।

कोरन्ट गाँव भद्रक शहरसे ढाई मील पूर्व उत्तरमें स्थित है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जिस समय भद्रकमें सब-डीविजनल अधिकारी (एस॰डी॰ओ॰) के पदपर नियुक्त उसी समय उन्होंने अपने प्रसिद्ध श्रीकृष्णसंहिता ग्रन्थकी रचना की थी। उन्होंने अपने 'विजन ग्राम' नामक काव्यग्रन्थमें भी इसका उल्लेख किया है—"किंवा ना रहिलि केन सालिन्दीर कूले, यथाय पथिकगण अश्वत्थेर मूले, काटाय आतप-ताप निश्चिन्त अन्तरे।" श्रील आचार्यदेवने इस ग्राममें प्रचारकेन्द्रका स्थापन करते हुए कहा था कि हम लोग श्रीगोपालजी

गौड़ीय प्रचारकेन्द्रमें रहकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पवित्र चरित्र तथा उनके भक्तिके उपदेशोंका स्मरण करनेका सुयोग प्राप्त करेंगे।

यह मठ भद्रक रेलवे स्टेशनके बाद वाउदपुर स्टेशनसे केवल दो फर्लाङ्ग दूर अवस्थित है। यान-वाहनका मार्ग भी अत्यन्त उत्तम है। यहाँका वातावरण भी अतीव मनोरम है। शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्रकी स्थापनाके लिए समिति पूर्वोक्त श्रीमहापात्र महाशय तथा आत्मीय स्वजनवर्गको अन्तः करणसे धन्यवाद प्रदान करती है।

जयपुर शहरमें शुद्धभक्तिका प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ २९ अगस्त, १९६२ ई॰ को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें पधारे। उन्होंने १५ दिनों तक यहाँ अवस्थान किया। उस समय स्थानीय शिक्षित तथा अलीगढ़ एवं आगरा विश्वद्यिालयके बहुत-से रिसर्च-स्कालर श्रील आचार्यदेवके निकट दार्शनिक विचारोंको श्रवण करनेके लिए उपस्थित होते थे। वे लोग श्रील गुरुदेवके दार्शनिक विचारोंको सुनकर बड़े ही प्रसन्न होते थे। वे रिसर्च-स्कालर श्रील आचार्यदेवके द्वारा स्थापित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके विशाल ग्रन्थागारसे अपने-अपने रिसर्चके अनुकूल ग्रन्थोंको पढ़ते थे तथा कभी-कभी घर भी ले जाते थे। परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके नाट्य मन्दिरमें भी प्रवचन किया। मथुरावासी उनके मर्मस्पर्शी शुद्धभक्तिके विचारोंको सुनकर क्रमशः उनके अनुगत होने लगे। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज उस समय मठके प्रबन्धक थे। उन्होंने परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मकी तथा उनके साथ आनेवाले ब्रह्मचारियोंकी सेवा शुश्रूषा की।

४ सितम्बर, १९६२ ई॰ को श्रील गुरुदेव दल-बलके साथ जयपुरमें पधारे। जयपुर हलवाई-समितिके सभापति सेठ सोमीलालजीके विशेष अनुरोधपर उक्त समितिके प्रधान कार्यालयमें ठहरे। जयपुरमें प॰ श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री (काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न) महोदयने अपने श्रीराधाकृष्णजीके मन्दिर प्रांगणमें श्रीराधाष्टमीके दिन सन्ध्याके समय एक महती सभाका आयोजन किया। उक्त सभामें परमाराध्यतम श्रील

गुरुदेवने हिन्दी भाषामें शब्दब्रह्मकी उपादेयता एवं शब्द-सामान्यकी हेयताका प्रतिपादन करते हुए एक सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया। वेदोंके प्रतिपाद्य श्रीहरिनाम ही शब्दब्रह्म हैं। निखिल वेदादि शास्त्रोंमें पारङ्गत भगवत्-अनुभूतिसम्पन्न सद्गुरु सत्शिष्यके शुद्ध कानके माध्यमसे अप्राकृत शब्दब्रह्मको प्रदान करते हैं। यह शब्दब्रह्म कण्ठ, तालु आदिके माध्यमसे वायु विलोड़नके द्वारा उत्पन्न नहीं होता, बल्कि—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

शब्दब्रह्मरूप श्रीहरिनाम मनुष्यके जड़-इन्द्रियके ग्राह्य नहीं है। सेवोन्मुख साधकोंके शुद्ध इन्द्रियोंपर वे स्वयं आविर्भूत होते हैं। भक्तिरसामृत-सिन्धुमें भी ऐसा ही कहा गया है। श्रीनामका स्वरूप ऐसा बतलाया गया है—

नामश्चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥
(भ॰र॰सि॰ पू॰ वि॰ २ लहरी १०८)

श्रीकृष्णनाम चिन्तामणि-स्वरूप तथा स्वयं कृष्णचैतन्य-रसविग्रह, पूर्ण, मायातीत एवं नित्यमुक्त हैं। क्योंकि नाम एवं नामीमें भेद नहीं है। सच्चिदानन्द रसमय तत्त्व एक अद्वयवस्तु हैं। वे अद्वयतत्त्व ही विग्रह और नाम दो रूपोंमें आविर्भूत होते हैं। शब्दब्रह्मकी सेवाके द्वारा ही—शुद्ध नामसङ्कीर्त्तनके द्वारा ही जीव अपने शुद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर नित्यकालके लिए युगल सेवामें तत्पर हो सकता है।

ग्रन्थोंमें देखकर अथवा सद्गुरुके आश्रयके बिना कण्ठ, तालु, दन्त आदिके योगसे वायु बिलोड़नके द्वारा जो शब्द निकलते हैं उसे शब्द-सामान्य कहते हैं। इस शब्द-सामान्यके द्वारा बद्धजीवोंका विशेष कल्याण नहीं होता। सत्-शास्त्रोंमें शब्दब्रह्मके सम्बन्धमें ही प्रचुर महिमा कही गयी है। प्रसङ्गवशतः उन्होंने वेदान्त-दर्शन एवं अन्यान्य प्रमाणोंके द्वारा शब्दप्रमाणके वैशिष्ट्य तथा श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया। तदनन्तर जयपुरके प्रसिद्ध श्रीगोविन्ददेव मन्दिरके महन्तजीके अत्यन्त आग्रहपर वहाँके श्रीमन्दिरमें आयोजित विद्वत् सभामें श्रीराधातत्त्व, श्रीकृष्णतत्त्व

तथा श्रीराधाकृष्ण युगललीलाकी चमत्कारिताके सम्बन्धमें एक ओजस्वी भाषण दिया। श्रील आचार्यदेवके शास्त्रीय सिद्धान्तपूर्ण अभिनव विचारोंको सुनकर श्रोतृमण्डली अत्यन्त आकृष्ट हुई। श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं उनके अनुगत वैष्णव आचार्योंके विचार गम्भीर एवं सुसिद्धान्त पूर्ण हैं, आज इस तत्त्वको उन लोगोंने कुछ-कुछ समझा।

धीरे-धीरे सारे जयपुरमें यह बात फैल गयी कि श्रीनवद्वीपधामसे एक बड़े दार्शनिक विद्वान एवं सिद्धान्तविद् गौड़ीय वैष्णव आचार्य आये हुए हैं। उस समय जयपुर महाराजा संस्कृत कालेजके अध्यक्ष महामहोपाध्याय श्रीचन्द्रशेखर द्विवेदी व्याकरणाचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ततीर्थ थे। बादमें ये शङ्कर सम्प्रदायमें संन्यास ग्रहणकर श्रीगोवर्धन मठ, पुरीके शङ्कराचार्यके पदपर आसीन हुए थे। उन्होंने उक्त कॉलेजमें एक बृहत् विद्वत् धर्मसभाका आयोजन किया तथा उसमें गौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्यदेवको बड़े ही सम्मानसे आमन्त्रित किया। उस महती सभामें विभिन्न कॉलेजोंके प्रोफेसर, विद्यार्थीमण्डली तथा शहरके गणमान्य श्रद्धालु नागरिक भी उपस्थित थे। आचार्यदेवने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषणमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही अक्षरब्रह्म हैं, वेदादि शास्त्रोंके प्रमाणोंसे इसका प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् "मानव जीवनका कर्त्तव्य" तथा वर्त्तमान गणतन्त्रकी गणेशसे तुलना करके वेदान्तसूत्रके 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्' आदि सूत्रोंके द्वारा निराकारवादका खण्डनकर ईश्वरके साकारत्वका प्रतिपादन किया। भक्त और भगवान् काल और स्थानकी सीमाके अतीत हैं और ऐसा होनेपर भी नित्य वर्त्तमान हैं, इस सम्बन्धमें भी मर्मस्पर्शी विचार प्रकट किया।

सभाके अन्तमें कॉलेजके प्रिंसीपल महोदयने श्रील आचार्यदेवकी वैदान्तिक विचारधाराकी भूयसी प्रशंसा करते हुए उन्हें विशेष धन्यवाद दिया। उन्होंने छात्रों एवं मनुष्य समाजको श्रील आचार्यदेवके द्वारा दिये गये उपदेशोंको ग्रहण करनेका निर्देश भी दिया। उन्होंने सभी सम्प्रदायोंकी एक मिलित सभाका आयोजन करनेकी अभिलाषा व्यक्त की, जिसमें अन्यान्य वेदान्त भाष्योंके सहित गौड़ीय वेदान्त भाष्यका तुलनामूलक विचार श्रवण किया जा सके।

जयपुरमें शुद्धभक्तिके प्रचारकार्यमें सब प्रकारसे सेवाका भार ग्रहण कर सेठ सोमीलालजी, श्रीओमप्रकाश व्रजवासी साहित्यरत्न, लक्ष्मी मोटर कम्पनीके सत्त्वाधिकारी श्रीजगदीश प्रसादजी गुप्ता विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

श्रीसमिति द्वारा परिचालित श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें सभापति महाराजकी शुभेच्छा

"श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने १९५७ ई॰ में बोसपाड़ा लेन, बागबाजार, कलकत्तामें श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके नामसे एक संस्कृत शिक्षाकेन्द्रकी स्थापना की है। वर्त्तमान विश्वविद्यालयोंमें छात्रोंको आवश्यक रूपसे संस्कृत भाषाकी शिक्षा नहीं दी जाती। विश्वविद्यालयोंमें इस विषयमें कोई उपयुक्त ध्यान नहीं दिया जाता। यदि देवभाषाके प्रति ऐसी ही अवज्ञा चलती रही तो भारतीय संस्कृतिके प्राणस्वरूप भगवत्-चिन्ताधारा कुछ ही दिनोंमें लुप्त हो जायेगी, इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं।"

बँगला-साहित्य संस्कृत-साहित्यकी एकान्त अनुगामिनी होनेके कारण समग्र भारतमें सर्वोत्तम भाषाके रूपमें आदृत होती चली आ रही है। किन्तु दुःखका विषय है आज बँगला भाषाको संस्कृत भाषाके आनुगत्यसे विच्छिन्न कर दिया गया है। वर्त्तमान नास्तिक समाज बङ्गालमें हिन्दूधर्मको उखाड़ फेंकना चाहता है। क्योंकि वे इस बातको अच्छी तरहसे जानते हैं कि जब तक बँगला भाषा संस्कृत दैव भाषाका आनुगत्य करती रहेगी तब तक हिन्दूधर्मका विनाश सम्भव नहीं है। इसीलिए आजकल विश्वविद्यालयके कर्त्तागण बँगला भाषाको संस्कृत साहित्य और व्याकरणसे पृथक् कर बँगला भाषाका राविन्द्रीयकरण करना चाहते हैं। राविन्द्रीयकरण भाषामें अनावश्यक रूपसे संयुक्त अक्षरोंको हटाकर इसे रसोईघरमें स्त्रियोचित भाषा बनायी गयी है। इस चिन्तास्रोतके मूलमें संस्कृत भाषाके प्रति अनादर तथा भारतीय वेद उपनिषद् और पुराण आदि चिन्ताधाराके प्रति अवज्ञा समझनी चाहिये।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने बहुत दिनोंसे बङ्गाल ही नहीं, पूरे भारतकी ऐसी दुरवस्थाकी चिन्ताकर संस्कृत शिक्षाके प्रसारके लिए उक्त श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीको पहले चुँचुड़ामें स्थापित किया और अब इसे श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें स्थानान्तरित किया गया है। इसकी सुचारु रूपसे परिचालनाके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे निम्नलिखित व्यक्तियोंकी एक समितिका गठन किया गया है—

(१) ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी—सभापति

(२) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज—सम्पादक

(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज—सदस्य

(४) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज—सदस्य

(५) श्रीयुत शचीन्द्र मोहननन्दी (चेयरमेन नवद्वीप नगरपालिका)—सदस्य

(६) श्रीयुत जितेन्द्रनाथ पंचतीर्थ—सदस्य

(७) प॰ श्रीनिमाइचरण व्याकरणतीर्थ—सदस्य

(८) प॰ श्रीयुत सुरेशचन्द्र राय, व्याकरणतीर्थ—सदस्य

(९) प॰ श्रीब्रजानन्द ब्रजवासी—सदस्य

पिछले वर्षोंसे उक्त चतुष्पाठीसे बहुत-से विद्यार्थी बंगीय संस्कृत साहित्य परिषदमें परीक्षा देकर बड़े कृतित्वके साथ उत्तीर्ण हुए हैं। इस वर्ष माननीय श्रीजितेन्द्र नाथ पंचतीर्थ (काव्य-व्याकरण-पुराण-वेदान्त-वैष्णव-दर्शन-तीर्थ) महोदयकी अध्यापकतामें उक्त चतुष्पाठी पूर्ण उद्यम और उत्साहके साथ परिचालित हो रही है। कुछ ही दिनोंमें श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी सारे नवद्वीपमें बड़ी प्रशंसित हुई है।

इस वर्ष छात्रोंकी संख्यामें वृद्धि होनेसे प॰ निमाई चरण व्याकरणतार्थ महाशयको भी अध्यापकके रूपमें नियुक्त किया गया है। इस वर्ष इस चतुष्पाठीसे सात विद्यार्थियोंने आद्य, मध्य और उपाधिकी परीक्षा दी है। यहाँ काव्य, व्याकरण और वेदान्तका पठन-पाठन चल रहा है। हम संस्कृत विद्यार्थियोंका सादर आह्वान कर रहे हैं कि वे इस आदर्श चतुष्पाठीके सुयोग्य अध्यापकोंकी सहायतासे संस्कृत भाषाकी शिक्षा ग्रहण करें। मैं यह भी निवेदन कर रहा हूँ कि इस टोलमें श्रीहरिनामामृत

व्याकरणकी विशेष रूपसे शिक्षा दी जाती है। श्रीहरिनामामृत व्याकरणके विद्यार्थियोंको यहाँपर वासस्थान और भोजनकी सुविधा भी उपलब्ध है। ऐसे विद्यार्थी चतुष्पाठीके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त वामन महाराजके समीप अपनी योग्यताके प्रमाणपत्रके साथ आवेदन पत्र भेज सकते हैं।

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें टोल परिदर्शकका मन्तव्य

"आज श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीका परिदर्शन किया। परिदर्शनके समय दो अध्यापक, सम्पादक और दस छात्र उपस्थित थे। चतुष्पाठीमें वर्त्तमान छात्र संख्या बारह है। साधारणतः इस चतुष्पाठीमें काव्य, हरिनामामृत व्याकरण, वेदान्त और वैष्णव-दर्शन आदि शास्त्रोंका अध्ययन एवं अध्यापन होता है। प्रधानाध्यापक महाशय पञ्चतीर्थ हैं। वे निष्ठाके साथ टोलमें अध्यापन करते हैं। छात्र संख्यामें वृद्धि होनेके कारण इस टोलमें एक और सहकारी अध्यापककी नियुक्ति की गयी है।

"इस चतुष्पाठीमें बारह-तेरह आवासी छात्र हैं। रजिस्टरमें ऐसा देखा। यह आनन्द और गौरवका विषय है। परिचालक समितिके द्वारा सरकारी अनुमोदनके लिए बहुत दिन पहले आवेदन पत्र दिये जानेपर भी आज तक अनुमोदन नहीं मिला।

"विगत वर्षमें चतुष्पाठीका परीक्षाफल मन्द नहीं रहा है। चतुष्पाठीका खातापत्र आदि यथावत् रूपमें ठीक रखा गया है। मैं इस चतुष्पाठीकी उन्नतिकी कामना करता हूँ।"

स्वा॰ श्रीनलिनीकान्त तर्कस्मृतितीर्थ

पश्चिम बंग टोल परिदर्शक (अतिरिक्त)

१९/१२/१९६३

श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय

श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी स्थापना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपमें १५ दिसम्बर, १९६२ ई॰ को श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी स्थापना हुई है। इस चिकित्सालयमें होमियोपैथिक, बायोकैमिक एवं एलोपैथिक चिकित्सा होती है। इस चिकित्सालयकी परिचालनके लिए निम्नलिखित सदस्योंको लेकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन एक उपसमितिका गठन किया गया है—

(१) ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी—सभापति

(२) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

(४) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

(५) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज

(६) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज

(७) श्रीयुत व्रजानन्द दास व्रजवासी L.M.F.—सम्पादक (Regd. No. 8134 Cal.)

(८) श्रीयुत अद्वैत दास व्रजवासी

(९) श्रीकृष्णबन्धु भौमिक H.M.B.H.T.C. श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयके चिकित्सक

उक्त दातव्य चिकित्सालयके उन्मोचनके समय परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने सभापतिका आसन ग्रहण किया। उनके आदेशसे सब-कमेटीके सम्पादक डा॰ श्रीयुत व्रजानन्द व्रजवासी L.M.F. महोदयने 'गौड़ीय चिकित्सालय' नामक प्रबन्धका पाठ किया। तदनन्तर उक्त समितिके सभापति महोदयने इस चिकित्सालयके सम्बन्धमें एक विचारपूर्ण मनोज्ञ भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—"रामकृष्ण-मिशन, भारत-सेवाश्रम संघके चिकित्सालय एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय एक नहीं हैं। बाह्यतः रोगियोंको औषध वितरणकी दृष्टिसे एक ही जैसा प्रतीत होनेपर भी इन दोनोंके उद्देश्यमें आकाश-पातालका पार्थक्य है। मनुष्यको प्राकृत जड़ीय कर्मोंमें प्ररोचित करनेके लिए चेष्टा, सहायता एवं सहानुभूति लोगोंके बन्धनका कारण होती है। इसके विपरीत जीवमात्रको भगवत्-भजनमें अग्रसर करानेके लिए जो सहायता एवं सहानुभूति होती है वह संसार बन्धनको दूरकर भगवत्-राज्यमें प्रवेश करानेके लिए होती है। हम विशेष आनन्दके साथ सूचित कर रहे हैं कि थोड़े समयमें ही सारे नवद्वीप शहरमें इस दातव्य चिकित्सालयकी विशेष ख्याति हुई है। सुयोग्य एवं अभिज्ञ चिकित्सकोंके द्वारा चिकित्सा होनेके कारण प्रतिदिन दूर-दूरसे अधिक संख्यामें रोगियोंका समागम हो रहा है।"

श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवके मध्य नवनिर्मित श्रीमन्दिरमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव

इस वर्ष १९६३ ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके द्वारा परिचालित श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव विपुल समारोहके साथ सम्पन्न

हुए हैं। परिक्रमाके तृतीय दिवस ७ मार्चको श्रीमन्दिर-प्रतिष्ठा एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठित होनेके कारण सारे मठका वातावरण अपूर्व उल्लाससे भरा हुआ था। श्रीमन्दिर नाट्यमन्दिर, विशेषतः श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाकी वेदी, कदली स्तम्भ, पुष्पमाल्य, आम्रपल्लव आदिके तोरणों एवं वन्दनवारोंसे सुसज्जित हो रहे थे। श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके समय वेदीके चारों ओर संन्यासीवृन्द वेदचतुष्ट्य, उपनिषद्, वेदान्त-दर्शन (गोविन्द-भाष्य), श्रीमद्भागवत, श्रीगीता, विष्णुसहस्रनाम, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि धर्म-शास्त्रोंका सुमधुरकण्ठसे पाठ कर रहे थे। बीच-बीचमें महासङ्कीर्त्तनध्वनि, शङ्खध्वनि एवं महिलाओंकी हुलुध्वनिसे दिग्मण्डल मुखरित हो रहा था। वैष्णवहोमकी परमपवित्र सुगन्धित धूमराशि एवं उच्च सङ्कीर्त्तनकी महाप्रभावशाली ध्वनि दिग्‌दिगन्तको पवित्र कर रही थी। विभिन्न मठाचार्यों, त्रिदण्डिसंन्यासियों तथा सिद्धान्तविद् विद्वानोंके संस्कृत, हिन्दी, बंगला, आसमिया, उड़िया प्रभृति भाषायोंके ओजस्वी भाषण, पाठ और कीर्त्तन महोत्सवको प्राणवन्त बना रहे थे।

श्रीमन्दिर एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठा महोत्सवके लिए आज तृतीय दिवसकी परिक्रमा स्थगित रखी गयी थी। ब्राह्ममुहूर्त्तमें मङ्गलारति, सङ्कीर्त्तन तथा बैण्ड पार्टीके विविध वाद्ययन्त्रों एवं शहनाईकी मधुर ध्वनि एक साथ मिलकर आजके माङ्गलिक अनुष्ठानकी घोषणा कर रही थी। प्रतिष्ठा एवं अभिषेकके लिए भगवती भागीरथीसे जल लानेके लिए श्रील आचार्यदेवके स्वयं अपने हाथोंमें कलश लेकर प्रस्तुत होनेपर मठवासी संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा हजारों श्रद्धालु यात्री भी अपने हाथोंमें कलश लेकर प्रस्तुत हुए। सबके आगे बैण्डपार्टी तत्पश्चात् मठवासियोंका सङ्कीर्त्तन दल, तदनन्तर शिरपर कलश लिए परमाराध्य श्रील गुरुदेव एवं हजारों श्रद्धालु लोग महोल्लासपूर्वक सङ्कीर्त्तन करते हुए भगवती भागीरथीके पावन तटपर उपस्थित हुए। पुनः श्रीजाह्नवीदेवीका षोडशोपचारसे पूजनकर अपने-अपने कलशोंमें पवित्र गङ्गाजल भरकर पूर्वोक्त विधिके अनुसार बड़े उल्लाससे मठ प्रांगणमें यज्ञवेदीके निकट उपस्थित हुए।

श्रील आचार्यदेवके इच्छानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजजीने इस अनुष्ठानका पौरोहित्य किया। त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त

नारायण महाराजजीने श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा कार्यमें उनकी सब प्रकारकी सहायता की, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजी प्रतिष्ठाकार्यकी व्यवस्था कर रहे थे तथा श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजी मुख्य-मुख्य अतिथियोंकी देखभाल कर रहे थे। श्रीविग्रहोंको स्नान-मण्डपमें पधराया गया। सर्वप्रथम मन्त्रपूत दूध, दधि, घृत, मधु, चीनीके द्वारा स्नान करानेके पश्चात् सर्वौषधि, तीर्थोंके जल, विविध रत्नोंके जल आदिसे सुवासित १०८ कलशोंसे उनका अभिषेक किया गया। उस समय वेदज्ञ पण्डितगण पुरुषसूक्तका पाठ कर रहे थे। श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराज प्रमुख संन्यासीगण वेदादि प्रस्थान चतुष्ट्यका मधुरस्वरसे पारायण कर रहे थे। पास ही यज्ञवेदीमें त्रिदण्डिस्वामी भक्तिप्रमोद पुरी महाराज[(१)] आदि वैदिक मन्त्र उच्चारण पूर्वक यज्ञाग्निमें आहुति प्रदान कर रहे थे। नाट्यमन्दिर एवं मन्दिरके चारों ओर अगणित व्यक्ति अपलक नेत्रोंसे महाभिषेकका दर्शन कर रहे थे। अभिषेकके पश्चात् श्रीविग्रहोंको श्रीमन्दिरके प्रकोष्ठमें पधराया गया। श्रील आचार्यदेवने स्वयं श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठाका अवशेष कार्य सम्पन्न किया।

इसी समय यतिराज श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज आदि संन्यासियोंके शुभागमन करनेपर उन लोगोंकी माल्यचन्दन आदिसे अभ्यर्थनाकर उन्हें नाट्यमन्दिरके सुसज्जित मञ्चपर बैठाया गया। पूज्यपाद श्रील श्रीधर महाराजने श्रीगौड़ीय मठका अवदान तथा उसके दार्शनिक विचारोंके श्रेष्ठत्वके सम्बन्धमें एक सारगर्भित भाषण प्रदान किया। तत्पश्चात् श्रील आचार्यदेवने उन्हें आदरपूर्वक श्रीमन्दिरके द्वारदेशमें ले जाकर उनसे द्वारका उद्घाटन करवाया। द्वारका उद्घाटन करते ही हजारों लोगोंकी जयध्वनि, हरिध्वनि, महिलाओंकी हुलुध्वनि, मृदङ्ग, करताल सहित सङ्कीर्त्तन ध्वनि, शङ्खध्वनिकी सम्मिलित ध्वनिसे दिग्-दिग् प्रकम्पित हो उठा। श्रीमन्दिरके द्वारोद्घाटनके समय श्रीमद्भक्तिसौध आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज तथा सायंकालमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी

[(१)] श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराजके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज अपनी पूरी परिक्रमा पार्टीके साथ उपस्थित हुए।

इस प्रकार श्रीमन्दिरके मध्य प्रकोष्ठमें श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी, दक्षिण प्रकोष्ठमें धामेश्वर श्रीकोलदेव (वराहदेव) एवं लक्ष्मीदेवी तथा बाएँ प्रकोष्ठमें जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अर्चाविग्रहकी प्रतिष्ठा हुई। श्रील आचार्यदेवके माध्यमसे उन्होंने विश्ववासियोंको दर्शन दिया। तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी भक्तिदेशिक आचार्य महाराजने श्रीविग्रहोंका अर्चन, भोगराग तथा आरती सम्पन्न की। भोग-आरतीके पश्चात् सहस्र-सहस्र व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। श्रीविग्रहोंकी अपूर्व रूपमाधुरीसे मुग्ध सभी दर्शकवृन्दको एक स्वरसे यह कहते हुए सुना गया कि हमने आज तक ऐसा सुन्दर श्रीविग्रह कहीं नहीं देखा।

परमाराध्य श्रील आचार्यदेवने प्रसङ्गके अनुसार यह घोषणा की—"श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने श्रीनवद्वीपधाममें गगनचुम्बी सर्वोत्तम श्रीमन्दिर स्थापनकर उसमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदबिहारीजीके साथ नवद्वीपधामके अन्तर्गत कोलद्वीप धामेश्वर श्रीकोलदेव (वराहदेव) विग्रहकी प्रतिष्ठाकर अधर्म, कुधर्म, विधर्म, अपधर्म तथा छलधर्म आदिका विनाश करनेके लिए व्रत ग्रहण किया है। बड़े-बड़े मन्दिरोंका निर्माण ही वाणी प्रचार नहीं है, वह अर्चनाङ्ग है। श्रीरूपानुगत्यमें कीर्त्तन-सेवाकी ही प्रधानता है। तथापि श्रीधाम नवद्वीपका यह सर्वोच्चतम श्रीमन्दिर और विराट् नाट्यमन्दिर केवल अर्चासेवाके प्रतिष्ठान नहीं हैं। यह भक्तिसिद्धान्त वाणी—वेदान्तकी उच्चतम कीर्त्तनाख्या भक्तिप्रचारका प्रतीक है। सिद्धान्त-वाणीका प्रचार करनेके लिए महाजनोंका अनुगत्य हृदयमें धारणकर मैंने श्रीगुरु मुखामृतद्रवसंयुक्त अप्राकृत शब्दब्रह्म श्रीनाम-सङ्कीर्त्तनके द्वारा ही इस मठ-मन्दिरकी भित्तिकी स्थापना की है। श्रीनामकीर्त्तनके माध्यमसे ही उक्त श्रीमन्दिर आदि निर्माणका कार्य परिचालित हुआ है तथा प्रतिष्ठा आदिके सभी शुभकर्म सुसम्पन्न हुए हैं।

परमाराध्य श्रील आचार्यदेवके गुणोंसे मुग्ध उनके एक सतीर्थने श्रीगौड़ीय पत्रिका प्रशस्ति शीर्षक प्रबन्धमें लिखा है—"श्रील प्रभुपादने

'यार मन्त्रे सकल मूर्तिते वैसे प्राण।' (चै॰भा॰आ॰ २/३०५) पयारकी विवृत्तिमें लिखा है कि श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीगौर-विहित महामन्त्रके उच्चारणके द्वारा ही श्रीविग्रहकी प्राणप्रतिष्ठा प्रचलित है। श्रीनामभजनके बिना अर्चा-विग्रहोंके दर्शनसे शिलाबुद्धि दूर नहीं होती। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने 'कृष्ण वर्णं त्विषाकृष्णं' श्लोकके अवलम्बनसे जिस पूजा-विधानकी व्यवस्था दी है उसमें महामन्त्रके उच्चारण द्वारा ही सुष्ठु रूपसे श्रीविग्रहकी सजीव-पूजा विहित होती है। जहाँ पूजकोंकी अपनी आन्तरिक प्रीतिसे भगवत्-सेवा नहीं होती, अर्थादि अथवा कर्मानुष्ठानके बोधसे पूजा विहित होती है, वहाँ प्राणहीनकी पूजा होती है तथा वहाँ श्रीमूर्त्तिका प्राणहीन दर्शनमात्र होता है। याजक सूत्रसे या पूजक सूत्रसे श्रीगौरसुन्दर द्वारा कीर्त्तित 'हरे कृष्ण' महामन्त्र ही सप्राण पूजा है।"

श्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत कोलद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, आज गगनचुम्बी नौ शिखरविशिष्ट नव मन्दिर, सुविशाल नव नाट्यमन्दिर, नव सेवकखण्डसमूह, नव मुद्रणागार, नव विद्यामन्दिर (पराविद्यापीठ), नव दातव्य चिकित्सालयसे सुशोभित तथा सुदीर्घ प्रकारसे वेष्टित होकर नव शोभा धारण कर रहा है। वहाँके सेवक-मण्डलीने श्रीगौर-भक्तिविनोद-वाणीकी सेवामें आत्मोत्सर्ग किया है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत मूल-प्रचारकेन्द्र और उसके अन्तर्गत सभी मठोंके संस्थापक परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजके भजनविज्ञ भक्तोंने सम्मिलित होकर श्रीश्रीरूपानुग-गुरु-परम्पराका अनुसरणकर नव-मन्दिरमें श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-विनोदबिहारीजी एवं श्रीवराहदेव श्रीविग्रहोंका प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न किया है, उससे श्रीनवद्वीपधाममें एक अभिनव परिवेशकी सृष्टि हुई है।"

श्रीधाम परिक्रमाके तृतीय दिवस सन्ध्याके समय श्रीहरिकीर्त्तन नाट्यमन्दिरमें एक विशाल धर्मसभाका आयोजन किया गया। श्रील आचार्यदेवकी इच्छासे यति प्रवर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजने सभापतिका आसन अलंकृत किया। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज और त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराजने भाषण दिया। तदनन्तर श्रील आचार्यदेवने श्रीविग्रह-तत्त्वके विषयमें वैष्णव एवं मायावादी सम्प्रदायमें दार्शनिक

मतभेद तथा तत् प्रकाशित श्रीविनोदबिहारी मूर्त्ति कृष्णवर्णकी क्यों नहीं है? इसके लिए—"श्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम्" की व्याख्या द्वारा अपने विचारोंको व्यक्त किया। वक्तृताके उपसंहारमें उन्होंने श्रीमन्दिर निर्माणके सेवाग्रणी परलोकगत श्रीगिरिधारी दासाधिकारी तथा नाट्य-मन्दिर निर्माणके सम्पूर्ण व्ययभारको वहन करनेवाले श्रीहरिपद दासाधिकारीके सेवा-सौन्दर्यका कीर्त्तन किया। सबके अन्तमें सभापति श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजजीने एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया।

श्रीधाम परिक्रमाके प्रथम दिवस गोद्रुमद्वीपमें स्थित श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी भजनस्थली, सुवर्णविहार, नृसिंहपल्ली, हरिहरक्षेत्र और हंसवाहन आदिका दर्शन किया गया। द्वितीय दिवस यात्रीगण समुद्रगढ़ चम्पकहट्ट, विद्यानगर, मोदद्रुमद्वीपकी परिक्रमाकर मठमें लौट आये। चतुर्थ दिवस प्रौढ़ामाया, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी समाधि एवं रुद्रद्वीपकी परिक्रमा सम्पन्न हुई। इसी दिन सन्ध्याके समय एक विशेष सभाका अधिवेशन हुआ। श्रील आचार्यदेवको सभापति वरण किये जानेके पश्चात् पण्डित-प्रवर श्रीयुत गोपेन्द्र भूषण सांख्यतीर्थ महोदय प्रधान अतिथिके रूपमें वरण किये गये। श्रील गुरुदेवकी इच्छानुसार त्रिदण्डिस्वामी भक्तिदेशिक आचार्य महाराजजीने सर्वप्रथम संस्कृत भाषामें श्रीमन्महाप्रभुकी स्वयं भगवत्ताके सम्बन्धमें शास्त्र प्रमाण पुरःसर मनोज्ञ भाषण दिया। तदनन्तर पण्डित प्रवर श्रीयुत नित्यानन्द पञ्चतीर्थ महोदयने भी संस्कृत भाषामें साधुसङ्गकी महिमाका कीर्त्तन किया। तदुपरान्त प्रधान अतिथि सांख्यतीर्थ महोदयने श्रीकोलदेव विग्रहकी प्रतिष्ठाका उल्लेखकर कहा कि आज श्रील केशव महाराजजीने यहाँपर श्रीकोलदेवकी श्रीमूर्त्तिकी प्रतिष्ठाकर वास्तवमें इसे कोलद्वीपकी पूर्ण प्रतिष्ठा कर दी। आज मेरे हृदयमें प्राचीन कोलदेवकी स्मृति जागृत हो रही है। उन्होंने प्रसङ्गवशतः श्रील सरस्वती प्रभुपादकी भूयसी प्रशंसा की।

परिक्रमके पञ्चम दिवस अन्तर्द्वीपमें श्रीईशोद्यान, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भावस्थली श्रीयोगपीठ, श्रीचैतन्यमठ, श्रील प्रभुपाद एवं श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधि, चाँदकाजीकी समाधि, सीमन्तद्वीप (सिमुलिया ग्राम) आदिका दर्शनकर श्रीजयदेव पाटमें मध्याह्नके

समय महाप्रसाद सेवन कराया गया। वहाँसे परिक्रमा पार्टी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ लौट आयी। रात्रिकालीन धर्मसभामें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवारिधि पुरी महाराज तथा अन्तमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने हिन्दी भाषामें एक सुन्दर भाषण दिया।

परिक्रमाके षष्ठ दिवस श्रीगौराविर्भावके उपलक्ष्यमें उपवास किया गया तथा दिनरात श्रीचैतन्यभागवत पारायण एवं श्रवण-कीर्त्तन उल्लासपूर्वक व्यतीत हुआ। सन्ध्याके समय श्रीगौराविर्भावके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराजके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज आदि संन्यासियोंने श्रीमन्महाप्रभुके अवदान-वैशिष्ट्यके विषयमें भाषण दिया।

सप्तम दिवस दोपहरमें दीक्षाप्राप्त भक्त तथा संन्यास एवं बाबाजीवेश ग्रहण करनेवालोंके उद्देश्यसे यज्ञ-होम आदिकी क्रिया सम्पन्न हुई। निमन्त्रित एवं अनिमन्त्रित २०-२५ हजार श्रद्धालुओंको विचित्र महाप्रसादका सेवन कराया गया।

सन्ध्याकालीन धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें पिछले दिन संन्यास एवं बाबाजी वेश प्राप्त त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त ऊद्र्ध्वमन्थी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ति महाराज तथा श्रीमद् रघुनाथ दास बाबाजी महाराजके भाषणके पश्चात् श्रीरसिकमोहन ब्रजवासी, पण्डित निमाई चरण व्याकरणतीर्थ तथा हिन्दी भाषामें श्रीहरिदास ब्रजवासीने भाषण दिया। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपादके प्रवीण संन्यासी त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराजने प्रधान अतिथिके पदसे एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया। इस प्रकार सप्तदिवस व्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान निर्विघ्न एवं परम उल्लासके साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

परमाराध्यतम श्रीआचार्यकेसरीने अपने गुरुपादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवा-समृद्धिके लिए कुलिया नगर (वर्त्तमान नवद्वीप शहर) में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की। आज इस मठकी भूमिमें विशाल प्राचीनके भीतर गगनचुम्बी नौ शिखरविशिष्ट दिव्य मन्दिर विराजमान है। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने एक योजनाबद्ध परिकल्पनाके अनुसार सुदार्शनिक सिद्धान्तकी भित्तिपर इस मठ और मन्दिरका नवनिर्माण कराया है। हम संक्षेपमें इस मठका विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्रीनरहरि तोरण

सर्वप्रथम हम श्रीमठके प्रधान प्रवेश-द्वार 'श्रीनरहरि तोरण' से मठ प्रांगणमें प्रवेश करते हैं। इस प्रवेश-द्वारके बाहर ऊपरमें 'परम विजयते

श्रीनरहरि तोरण
(श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका मुख्य प्रवेश द्वार)

श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्' तथा 'कीर्तनीय सदा हरिः' उत्कीर्ण है। इसके द्वारा श्रील गुरुदेवने श्रीमन्महाप्रभुके उपदिष्ट शिक्षाष्टकके चरम उपदेश श्रीनामसङ्कीर्त्तनकी विजय वैजयन्ती फहरायी है। श्रीहरिनामका कीर्त्तन ही साधन-भजनका प्राण घोषित हुआ है। श्रीभक्तिमन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए सर्वप्रथम तद्रूप वैभव एवं उपास्यदेवका मङ्गलाचरण तथा जयगानकी रीतिकी घोषणा श्रीचैतन्यलीलाके व्यासदेवकी उक्ति भी वहाँ लिपिबद्ध है—

'जय नवद्वीप-नवप्रदीप-प्रभावः पाषण्ड-गजैसिंहः।' यहाँ प्रसङ्गवशतः यह उल्लेख करना उचित है कि श्रील आचार्यदेवके अन्तरङ्ग सतीर्थ श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजजीने अस्मदीय परमाराध्य श्रील गुरुदेवको पाषण्डगजैकसिंहकी उपाधि दी थी। श्रील गुरुदेवने श्रीनरहरि तोरण नामकरणके द्वारा आश्रय वा सेवाविग्रह (श्रीनरहरि ब्रह्मचारी) और विषय या सेव्यविग्रह (श्रीनृसिंहदेव) इन दोनों ही तत्त्वका युगपत् निर्देश दिया

श्रीमदनमोहन तोरण
(श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका पृष्ठ द्वार)

है। तोरणद्वारके ऊपर दोनों ओर वैष्णवअपराधरूप मत्त गजराजके मस्तकपर महाविक्रमशाली सिंहकी मूर्त्ति अङ्कित है। नीचेकी ओर सम्मुखभागमें द्वारपालके रूपमें एक ओर श्रीजगाई, दूसरी ओर श्रीमधाई तथा भीतरकी ओर श्रीदेवानन्द पण्डित एवं श्रीवासुदेव विप्रकी श्रीमूर्त्ति स्थापित है, जो कुलिया अपराधभंजन पाटकी कीर्त्तिकी घोषणा कर रहा है। श्रीदेवानन्द पण्डितने श्रीवास पण्डितके चरणोंमें अपराध किया था। किन्तु बादमें पुण्डरीक विद्यानिधिकी कृपासे अपने द्वारा कृत अपराधको हृदयङ्गम कर श्रीवास पण्डितके चरणोंमें क्षमा माँगनेपर श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी उन्हें क्षमा कर दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे जगाई और मधाई जैसे महापाखण्डी व्यक्ति भी परम भक्त हो गये। धामेश्वर श्रीकोलदेवकी कृपासे वासुदेव विप्रने वहींपर श्रीगौरसुन्दरका दर्शन प्राप्त किया था।

सप्तखण्डमय श्रीमठ

श्रीनवद्वीपधामके नौ द्वीपोंमें श्रीकोलद्वीप एक अन्यतम द्वीप है। यह गङ्गानदीके पश्चिम तटपर विराजमान है। श्रीभक्तिरत्नाकर एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और नवद्वीप-भाव-तरङ्गके अनुसार वृन्दावनके बारह वन कुछ परिवर्तित क्रमसे श्रीनवद्वीपके नौ द्वीपोंमें विराजमान हैं। इस कोलद्वीपको साक्षात गिरिराज गोवर्धन कहा गया है। पास ही भागीरथी-पुलिनको यमुना-पुलिनकी रासस्थलीके रूपमें वर्णन किया गया है। रसिक भक्तलोग रासस्थलीके रूपमें ही इस स्थानका दर्शन करते हैं। इस रासस्थलीसे लगे हुए दक्षिण दिशामें ऋतुद्वीप अभिन्न राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड हैं तथा उत्तरमें बहुलावन स्थित है। परमाराध्यतम आचार्यकुल चूड़ामणि श्रील गुरुदेवने शास्त्रोल्लिखित इन सबका विचारकर ही इस स्थानपर इस मठकी स्थापना की है। श्रीनरहरि तोरणसे श्रीमठ प्रांगणमें प्रवेश करनेपर हम इस विशाल प्राचीन वेष्टित श्रीमठका दर्शन करते हैं। श्रीगुरुदेवने इस मठको सात खण्डोंमें विभक्तकर उनका दार्शनिक सिद्धान्तगत नामकरण किया है—

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

(१) परमार्थखण्ड—मुद्रणयन्त्र या छापाखाना आदि। इस खण्डमें वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत आदि भगवान्‌के शाब्दिक अवतार—भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन होता है। इन ग्रन्थोंके माध्यमसे सारे विश्वमें भगवद्-भक्तिका प्रचार होता है। इसलिए इसे बृहत्-मृदङ्ग भी कहते हैं। श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीने मुद्रणयन्त्रको बृहत्-मृदङ्ग तथा शुद्धभक्तिके प्रचारक त्रिदण्डि संन्यासियोंको जीवन्त-मृदङ्गकी संज्ञा दी थी। जीवन्त-मृदङ्गगण अपनी सामर्थ्यके अनुसार देश-विदेशमें श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्ध प्रेमधर्मकी वाणीका प्रचार करते हैं। इसीलिए हमारे आराध्यदेव ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने बृहत्-मृदङ्ग एवं

श्रीगौड़ीय पत्रिका प्रेस

श्रीमन्दिरमें सेवित श्रीराधाविनोदविहारी एवं श्रीमन्महाप्रभु

श्रीमन्दिरमें सेवित श्रीप्रभुपाद

श्रीमन्दिरमें सेवित श्रीकोलदेव

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीकी भजनकुटी

जीवन्त-मृदङ्गकी सहायतासे "वैकुण्ठ वार्त्तावह", "श्रीगौड़ीय पत्रिका", "श्रीभागवत पत्रिका" तथा श्रीभक्तिसिद्धान्त वाणीके मूल ग्रन्थ वेदान्त, भागवत, गोस्वामी-ग्रन्थ आदिके प्रकाशन एवं प्रचारमें विशेष आग्रह प्रकाश किया है। इसी उद्देश्यसे उन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी एवं श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी भी स्थापना की है।

(२) कीर्त्तनखण्ड—श्रीनाट्य-मन्दिर अथवा सभागृह जहाँ सदा-सर्वदा हरिसङ्कीर्त्तन, श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थोंका कीर्त्तन होता है। बड़ी-बड़ी धर्मसभाएँ होती है जिसमें महापुरुषोंके प्रवचन एवं भाषण होते हैं।

(३) उपास्यखण्ड—श्रील आचार्य चरणने नौ शिखरविशिष्ट श्रीमन्दिरका नामकरण नवधा-भक्ति मन्दिर किया है। इसके नौ शिखरोंके नाम क्रमशः श्रवणम्, कीर्त्तनम्, स्मरणम्, पादसेवनम्, अर्चनम्, वन्दनम्, दास्यम्, सख्यम्, आत्मनिवेदनम् हैं। श्रीमन्दिरका सर्वोच्च शिखर

आत्मनिदेवन है। इस शिखरके ऊपरमें सुदर्शनचक्रके मध्यमें स्थित वेणु समग्र विश्ववासियोंको 'कीर्तनीयः सदा हरिः' की घोषणा कर रहा है। इसका यह गम्भीर तात्पर्य है कि जगद्वासी इस सप्तजिह्व श्रीनामसङ्कीर्त्तन यज्ञमें—श्रीहरिकीर्त्तन मन्दिरमें एकत्रित हों—'आगच्छन्तु महाभागा नित्य कीर्त्तनमन्दिरे।' प्रत्येक शिखरोंके ऊपर श्रीब्रह्ममाध्व गौड़ीय वैष्णव तिलक दूरसे ही पथिकोंको विशुद्ध गौड़ीयके प्रति श्रद्धा आकर्षण करते हैं। श्रीमन्दिरके द्वितल प्रदेशके चार शिखरोंके भीतर चारों सत्-सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक श्रीलक्ष्मी, श्रीब्रह्म, श्रीरुद्र, श्रीचतुःसन तथा उनके पास ही उन-उन सम्प्रदायोंके चारों आचार्य श्रीरामानुज, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी तथा श्रीनिम्बादित्य आचार्य प्रतिष्ठित एवं सम्पूजित होकर साधन-भजन पिपासुओंको सात्त्वत सम्प्रदाय स्वीकार करनेकी अवश्य प्रयोजनीयताकी शिक्षा दे रहे हैं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका एक दृश्य

द्वितल प्रदेशके चारों ओरके मन्दिरकी दीवारोंपर दशावतारोंकी श्रीमूर्त्ति प्रकाशित हुई हैं। ये दशावतार चेतनताके क्रमविकासके अनुसार भगवत्-अवतारोंके माध्यमसे आस्तिक्य दर्शनोंके क्रमोन्नतिका दिग्-दर्शन कराते हैं। श्रीमन्दिरके द्वितलके पश्चिम भागमें गुरु-गौड़ीयके निर्देशानुसार विधिमार्ग और रागमार्ग अर्थात् पाञ्चरात्रिकी एवं भागवतीय साधन-मार्गका प्रदर्शन हुआ है। श्रीमन्दिरके तृतीय मालाके पूर्वकी ओर सुरभी गाभीको आगेकर इन्द्रदेव श्रीगोविन्दके चरणोंमें क्षमा प्रार्थना कर रहे हैं। साथ ही सर्वविघ्न विनाशक श्रीनृसिंहदेवकी हिरण्यकशिपु-संहारलीला आसुरिक विचारवाले व्यक्तियोंके विरुद्ध विजयकी घोषणा एवं अपराधभञ्जन पाटकी महिमाको सूचित कर रही है।

श्रीमन्दिरके तृतीय प्रकोष्ठमें जगद्गुरु श्रील सरस्वती प्रभुपादकी श्रीमूर्त्ति-प्रतिष्ठा एवं पूजा-अर्चनकी नित्य व्यवस्थाके द्वारा श्रील गुरुदेवने अपनी गुरुसेवाके प्रति ऐकान्तिकी निष्ठा और आदर्शका प्रदर्शन किया है। उन्होंने लिखा है—"इस मठके श्रीमन्दिरमें मदीय गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद प्रतिष्ठित हैं। जगत्में आजकल बहुत-से परमहंस देखे जाते हैं, परन्तु विचार करनेपर देखा जाता है कि वे लोग इस महापुरुषके एक सामान्यतम अंशके भी योग्य नहीं हैं। तथापि वे जगत्के तत्त्वज्ञानहीन लोगोंके द्वारा आदृत हो रहे हैं। जिन्होंने इन महापुरुषकी चरणरेणुकी एक कणको भी प्राप्त किया है, उनकी जैसी योग्यता भी तथाकथित परमहंसोंमें नहीं है। इसीलिए बहुत-से लोग इन्हें परमहंसकुलचूड़ामणि भी कहते हैं। इसमें मुझे कोई विशेष आपत्ति नहीं है, किन्तु मेरा कथन है वे परमहंस कुलके स्वामी या पति हैं। परमहंसोंको भी शिक्षा देनेकी उनमें सामर्थ्य है। इसलिए उन्हें जगद्गुरु कहा गया है।

श्रील प्रभुपाद राधापक्षीय लोग हैं। इंलैण्ड, जर्मनी आदि सभी देशोंमें इस महापुरुषकी श्रील प्रभुपादके रूपमें प्रसिद्धि है। यहाँ सबसे पहले उनकी आरति होती है। समस्त विश्वमें इन महापुरुषकी आरति—सेवापूजा होनेकी एकान्त आवश्यकता है। इनकी आरति बन्द होनेपर समग्र विश्वका ध्वंस हो जायेगा, पृथ्वी रसातलमें चली जायेगी। पृथ्वीसे भक्तिधर्मका

लोप हो जायेगा। इसलिए विश्वके लोग उन्हें 'प्रभुपाद' सम्बोधन करते हैं।"

प्रथम प्रकोष्ठमें कोलदेव विराजमान हैं। वे सत्ययुगसे अपने एकान्त भक्त श्रीवासुदेव विप्र जैसे भक्तोंपर कृपा करते आ रहे हैं। श्रीमन्दिरमें उनकी नित्य सेवा-पूजा कोलद्वीपकी महिमाकी घोषणा कर रही है। 'कोल' शब्दसे ही कुलिया नामकी उत्पत्ति हुई है। आज भी कुलियादह, कोलेरगंज, कोलेर आमाद्, गद खालिर कोल, तेघरिर कोल, कुलिया नगर (वर्त्तमान नवद्वीप शहर) प्रभृति स्थलसमूह प्राचीन कुलियाके अंशके रूपमें विद्यमान हैं। इस स्थानको कुलिया पहाड़पुर भी कहा जाता है, क्योंकि यह भूमि पर्वतके समान ऊँची है। श्रील वराहदेवने सत्ययुगमें अपने परमभक्त श्रीवासुदेव विप्रको दर्शन देकर कहा था कि वे आगामी कलियुगमें श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्ति एवं हृदगत भाव अङ्गीकार कर इसी जगह श्रीगौराङ्गके रूपमें महौदार्यमय लीलाका प्रकाश करेंगे। गिरिराज गोवर्धनसे अभिन्न पादसेवनाख्य इस कोलद्वीपकी कृपा लाभ करनेके लिए सर्वप्रथम धामेश्वरकी कृपा प्रार्थना परम आवश्यक है। इनकी कृपासे ही श्रीमन्महाप्रभुकी औदार्यमयी लीलामें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीमन्दिरके द्वितीय प्रकोष्ठमें श्रीगौर-राधाविनोदबिहारी प्रतिष्ठित हैं। यहाँ श्रीराधाचिन्ता निविष्ट श्रीविनोदबिहारीजीकी परम अद्भुत् श्वेत कान्ति निगूढ़ भजनानन्दियोंके भजनरहस्यको भी पराजित कर रही है (भजनानन्दी भी इस परम रहस्यको समझ नहीं पाते)। श्रील आचार्यदेवने स्वयं इसकी व्याख्या की है—श्रीमन्महाप्रभु स्वयं राधाकृष्ण-युगल हैं। श्रीगौरमन्त्रसे श्रीराधाकृष्णकी पूजा होती है। कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि इस मन्दिरमें श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी एवं श्रीगौरसुन्दर तीनोंका वर्ण श्वेत क्यों है? उत्तर यह है कि यह श्वेत नहीं बल्कि श्रीमती राधाजीकी स्वर्णकान्ति है। श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्तिको श्रीकृष्णने अङ्गीकार कर गौर या स्वर्णकान्ति धारण किया है। श्रीगौरसुन्दरकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्वर्णके समान गौर वर्णकी है इसलिए इन तीनोंका वर्ण एक ही जैसा है। यहाँ श्वेतकान्तिसे गौरकान्ति समझना चाहिये। श्रीकृष्णने गौर या राधाकान्ति क्यों धारण की? इसका उत्तर

यह है कि हम राधापक्षीय लोग हैं। श्रीमती राधिकाका श्रीकृष्णके साथ एक साहजिक वाम्यभाव है। वह वाम्यभाव कृष्णसेवाके नवनवायमान विचित्र वृद्धिके लिए ही है। श्रीमतीजीने एक समय विशेष रूपसे मान किया। इस समय श्रीकृष्ण श्रीमतीजीकी चिन्तामें इतने आविष्ट हो गये कि उनकी श्याम अङ्गकान्ति श्रीराधाकान्तिमें बदल गयी—

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम्॥

श्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकके प्रथम श्लोकमें ही हम इस गूढ़ रहस्यको लक्ष्य करते हैं। राधालिङ्गित शब्दके दो अर्थ हैं—(१) राधया लिङ्गित एवं (२) राधया आलिङ्गित। लिङ्गित शब्दसे चिह्नित समझना चाहिये। श्रीकृष्ण विप्रलम्भभावसे श्रीमती राधिकाकी चिन्तामें अत्यन्त निविष्ट होनेके कारण अपनी निजस्व अङ्गकान्तिको गँवाकर श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्तिको धारण कर लिये हैं। यही राधालिङ्गित विग्रहका गूढ़ तात्पर्य है। यही श्रीविग्रह यहाँ प्रकाशित हुए हैं। रसिक-चूड़ामणि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीस्वप्नविलासामृतमें इस गूढ़ तत्त्वका तात्पर्य प्रकाशित हुआ है। मदीय श्रील गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपादने अपने हृदयके निगूढ़ स्थानसे इस तत्त्वको विश्वमें प्रकाशित किया है।

दूसरा 'राधया आलिङ्गित'—राधाके द्वारा आलिङ्गित, इसका गूढ़ रहस्य श्रीरायरामानन्दजीने गोदावरीके तटपर श्रीमन्महाप्रभुके सामने व्यक्त किया है—

पहिले देखिलुँ तोमार सन्यासी-स्वरूप।
एवे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप॥

तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अंग ढाका॥

तबे हासि' ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप।
'रसराज', 'महाभाव'—दुइ एक रूप॥

(चै॰ च॰ म॰ ८/२६७, २६८, २८१)

अर्थात् राय रामानन्दजीने श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूछा कि मैंने पहले आपके संन्यासी रूपको देखा, अब आपको श्याम गोपके रूपमें देख रहा हूँ। साथ ही आपके सामने एक स्वर्णकान्ति विशिष्ट देवीको देख रहा हूँ, जिसकी स्वर्णमयी कान्तिसे आपकी कृष्ण-अङ्गकान्ति पूर्ण रूपसे आच्छादित है। इतना सुनते ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने हँसकर 'रसराज महाभाव' मिलित इस गौरकान्तिविशिष्ट कृष्णरूपमें दर्शन दिया। श्रीराय रामानन्द उस अपूर्व रूपमाधुरीको देखकर आनन्दसे मूर्छित हो गये। इसलिए श्रीकृष्णकी गौरकान्तिका गूढ़ रहस्य यह भी है कि श्रीमती राधिकाके आलिङ्गनसे कृष्णकी श्यामकान्ति पूर्ण रूपसे आच्छादित हो गयी है तथा राधाजीकी अङ्गकान्ति प्रकाशित हो रही है।

जो लोग उन्नतम भजनमार्गमें विप्रलम्भभावसे सेवा करते हैं उनमें प्रायः सभी श्रीकृष्णके प्रति श्रीमती राधिकाके विप्रलम्भ भावका स्मरण करते हैं। किन्तु हमारे श्रीगुरुदेव श्रील प्रभुपाद श्रीमती राधिका पक्षीय सखी होनेके कारण श्रीमती राधिकाके प्रति श्रीकृष्णके विप्रलम्भभावका स्मरण करते थे। मेरे गुरुदेव राधाविरहकी अपेक्षा श्रीकृष्ण विरहके अधिक पक्षपाती थे। श्रीमती राधिकाजी कृष्ण-विरहमें मर्माहत हैं, दुःखी हैं—ऐसे विप्रलम्भभावकी सिद्धिके लिए ही साधारण साधक प्रार्थना करते हैं। किन्तु श्रील प्रभुपादकी विचारधारा ठीक इसके विपरीत थी। श्रीकृष्णके ही श्रीमती राधिकाकी भावनामें गम्भीर रूपसे आविष्ट होनेके कारण उनकी श्याम अङ्गकान्ति विलुप्त होकर वे राधालिङ्गित विग्रहके रूपमें प्रकाशित हैं अर्थात् श्रीमती राधिकाके वर्णको प्राप्त हुए हैं। श्रीमन्महाप्रभुने इसी विप्रलम्भरसका प्रचार किया है तथा इसीकी शिक्षा दी है। श्रीकृष्ण ही श्रीराधारानीकी चिन्ता करें—यही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका आदर्श है।

(४) सेवकखण्ड—श्रीश्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीके सेवकगण जहाँ निवास करते हैं, सेवा करते हैं तथा विश्राम करते हैं उसे सेवकखण्ड कहा गया है। सेवकखण्ड भी दो भागोंमें विभक्त है—(अ) श्रील गुरुपादपद्मकी भजनकुटी, (आ) श्रील गुरुदेवके सेवकवृन्दका वासस्थान अर्थात् भजनकुटियाँ। इन कुटियोंमें श्रील गुरुदेवके आश्रित संन्यासिओं एवं ब्रह्मचारियोंकी कुटियाँ हैं।

(५) भोगखण्ड—भण्डार और पाकशालाको भोगखण्ड कहते हैं। श्रील गुरुदेवकी भजनकुटीसे संलग्न भण्डार एवं पाकशाला स्थित है। यह भी दो भागोंमें विभक्त है—(क) दैनन्दिन पाकशाला, (ख) श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा आदि विशेष उत्सवोंकी पाकशाला। इस पाकशालामें स्थायी रूपसे बने हुए सुगभीर बड़े-बड़े चूल्हे हैं। जिनपर रखी हुई बड़ी-बड़ी कढ़ाइयोंमें एकबारमें ही १६-२० मन चावल अथवा ४० मन सब्जीका पाक होता है। लगभग बड़े-बड़े बलिष्ठ २० पाचक ठाकुरजीका भोग रन्धन करते हैं। लगभग १५-२० हजार यात्री मठके विशाल प्रांगणमें एक साथ बैठकर प्रसाद सेवन करते हैं। उस समय महाप्रसाद परिवेशनकी प्रणाली अद्भुत दर्शनीय होती है। ऐसा विश्वमें कहीं नहीं देखा जाता।

(६) गोवर्धनखण्ड—गायोंके रहनेके स्थानको गोशाला या गोवर्धनखण्ड कहते हैं। इसमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर गाएँ रहती हैं। जिनके दूधसे दही, घृत, खीर परमान्न आदि प्रस्तुत होकर श्रीठाकुरजीके भोगमें अर्पित होता है।

(७) ज्ञानखण्ड—मठवासियों एवं यात्रियोंके शौचालयको ज्ञानखण्ड कहा गया है। भक्तिके प्रतिकूल वस्तुओं एवं भावोंका वर्जन करना शरणागतिका मुख्य अङ्ग है। निर्विशेष ज्ञान और भगवत् भावरहित कर्म भक्तिके विरोधी होनेसे ऐसे ज्ञानका और कर्मका मलवत् त्याग करनेका उपदेश श्रीमद्भागवतमें देखा जाता है—

> या दुस्तज्यान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।
> जहो युवैव मलवदुत्तमःश्लोकलालसः॥

अर्थात् महाराज भरतने स्त्री, पुत्र, स्वजन, बन्धु-बान्धव और राज्यको मलवत् त्यागकर भजन करनेके लिए वनमें प्रवेश किया। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

> कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड केवल विषेर भाण्ड।

अर्थात् कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड दोनों ही विषके पात्र हैं। भगवत् भक्तलोग इन दोनोंको भक्तिविरोधी जानकर इनका मलवत् परित्याग करते हैं। और भी—

असत् सङ्ग त्याग एइ वैष्णव आचार।
स्त्रीसङ्गी एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥

अर्थात् असत्-सङ्गका त्याग करना एक मुख्य वैष्णव-सदाचार है। अर्थात् असत्-सङ्ग दो प्रकारका है—अवैध स्त्रीसङ्गी या स्त्री-सङ्गियोंके सङ्गी तथा इनकी सांसारिक विषयोंमें आसक्ति अथवा निर्विशेष ज्ञानमें तत्पर अभक्तोंका सङ्ग। भक्ति लाभेच्छु साधकोंको इन दोनों प्रकारके असत्-सङ्गोंका सावधानीसे वर्जन करना चाहिये। उपर्युक्त सात खण्डोंमेंसे प्रथमोक्त ६ खण्ड भक्तिके अनुकूल और भक्तिके साक्षाद् स्वरूप होनेसे आदरणीय हैं। सप्तम खण्डका तात्पर्य निर्विशेष-ज्ञान भक्ति-विरोधी होनेसे वर्जनीय है। श्रील गुरुपादपद्मने इसी भक्तिसिद्धान्तकी दृष्टिसे श्रीमठको सात खण्डोंमें विभक्तकर उनका नामकरण किया है।

श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें छुआछूत संवादका प्रतिवाद

बंगला दैनिक, युगान्तरमें ३ नवम्बर, १९६३ ई० को एक संवाद प्रकाशित हुआ था—पुरीमें हजारों रुपयेके मूल्यका भोग मिट्टीमें गाड़ दिया गया; असेवायत किसी व्यक्तिके दृष्टि-स्पर्शसे अपवित्र होनेके कारण सूपकारोंका (रसोइया) उपद्रव; पुलिसका हस्तक्षेप—पुरी, १ नवम्बर, आज सायंकालमें श्रीजगन्नाथजीके भोगसे पूर्व ही किसी व्यक्तिके (जो सेवायत नहीं था) स्पर्शके कारण मन्दिरकी प्रथाके अनुसार हजारों रुपये मूल्यका भोग मिट्टीमें गाड़ दिया गया। (V.N.I—१/११/१९६३)

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने उस घटनाका प्रतिवाद करते हुए कहा कि हम श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें उक्त घटनाके सम्बन्धमें जनताकी दृष्टि आकर्षित कर रहे हैं। जो धर्मध्वजी, धर्मविरोधी लोग भगवत्-सेवामें स्पर्शदोषको उखाड़ फेंकनेकी चेष्टा करते हैं तथा उसे छुआछूत मानकर हँसी उड़ाते हैं, उन्हें शिक्षा देनेके लिए श्रीजगन्नाथदेवने स्वयं ऐसी व्यवस्था की है। श्रीजगन्नाथदेवकी इस शिक्षाको ग्रहणकर हम सदा-सर्वदा शास्त्रीय विधानके अनुसार छुआछूत मार्गमें ही रहेंगे तथा दूसरेको भी छुआछूत मार्गमें रहनेका उपदेश देंगे। चाहे पाश्चात्य निरीश्वर शिक्षा हो या वर्त्तमान देशीय निरीश्वर शिक्षा हो, इन कुशिक्षाओंकी भण्डामीको हम भगवत्-उपासनामें प्रवेश नहीं करने देंगे। आज भी श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें

खाद्य–अखाद्यके विचारको लेकर समग्र भारतमें उनका अपना निजस्व तन्त्र (विचार–पद्धति) विद्यमान है। जो लोग शास्त्रीय स्पर्शदोष नहीं मानते, हम उन्हीं लोगोंको अछूत मानते हैं।

श्रीजगन्नाथदेवके भोग होनेके पश्चात् जब सूपकारोंका पाचित अन्न 'महाप्रसाद' हो जाता है, तब उस महाप्रसादमें स्पर्शका कोई भी दोष नहीं होता। किन्तु भोग लगनेसे पूर्व श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंके अतिरिक्त अर्थात् भोग देनेका जिन्हें अधिकार है, उन्हें छोड़कर किसी भी व्यक्तिको उसे स्पर्श करनेका अधिकार नहीं है। ऐसे अनधिकारी व्यक्तिके स्पर्श करनेपर वह नैवेद्य भगवान् जगन्नाथजीको कदापि निवेदन नहीं किया जा सकता है। यही शुद्ध विचार है।

जिस द्रव्यको श्रीजगन्नाथजी ग्रहण नहीं करते उसे किसी दूसरेको देना अनुचित है। भगवान् जिसे ग्रहण करते हैं, उनका वह उच्छिष्ट ही मनुष्यमात्रके लिए ग्रहणीय है। इसके द्वारा श्रीजगन्नाथजी हमें यह शिक्षा दे रहे हैं कि भगवान्‌को अनिवेदित कोई भी द्रव्य ग्रहण नहीं करना चाहिये। इससे एक और शिक्षा यह भी मिलती है कि माँस, मछली, अण्डा, तम्बाकू, चाय, बीड़ी, सिगरेट, खैनी, मद्य, काफी, प्याज, लहसुन आदि भगवान्‌के भोगमें नहीं लगते। अतः ये सभी द्रव्य सब प्रकारसे वर्जनीय हैं। जो लोग इन अखाद्य, कुखाद्य द्रव्योंको ठाकुर–सेवामें व्यवहार करते हैं, वे सनातन हिन्दूधर्मसे बहिर्भूत असत् सम्प्रदायके व्यक्ति हैं। शास्त्रमें उन्हीं लोगोंको अन्त्यज या म्लेच्छ कहा गया है।

इनके इस प्रतिवादसे श्रीजगन्नाथदेवके सेवायत तथा हिन्दूधर्मके सभी सज्जन बड़े प्रसन्न हुए।

सिलिगुड़ि तथा बिहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

१९६३ ई॰ में श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा तथा श्रीगौरजन्मोत्सव सम्पन्नकर परमाराध्य श्रील गुरुदेव अपने परिकरोंके साथ सुन्दरवन अञ्चलके मईपीठ–विनोदपुर, दमकल, काशीनगर आदि स्थानोंमें सप्ताहव्यापी प्रचारकर सिलिगुड़िके विभिन्न स्थानोंमें २१ अप्रैलसे १८ मई लगभग एक माह तक विपुल रूपसे सनातनधर्म—शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

दूसरे वर्ष १९६४ ई॰ में श्रीधाम-परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवके उपरान्त संन्यासी एवं सोलह मठवासियोंके साथ बिहार प्रदेशके दुमका नामक जनपदमें सारसाजोल, आसनवनी, राजवन्ध, पलाशी, बारमासिया, धादिका, कुमड़ावाद, दुमका शहर आदि स्थानोंमें विपुल रूपसे वैष्णवधर्मका प्रचार किया। उनके साथमें श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद नारायण महाराज, श्रीपाद कृष्णकृपा ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्र मोक्षण ब्रह्मचारी, श्रीरोहिणीनन्दन व्रजवासी, श्रीभगवानदास ब्रह्मचारी, श्रीवृन्दावनविहारी ब्रह्मचारी, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीवृषभानु ब्रह्मचारी आदि प्रमुख संन्यासी और ब्रह्मचारी थे।

सारसाजोल दुमका जनपदका एक प्रसिद्ध एवं समृद्ध गाँव है। इस गाँवमें श्रीमधुसूदन विद्यानिधिके घरमें रहकर उस गाँवमें सात दिनों तक शुद्धभक्तिका प्रचार हुआ। इस गाँवके प्रधान-प्रधान सभी ग्रामवासियोंने परिवारके साथ वैष्णवधर्म ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभुके समयमें कुलीन ग्राम नामका सम्पूर्ण ग्राम वैष्णव ग्राम था। यहाँके सारे निवासी श्रीमन्महाप्रभुके परम भक्त वैष्णव थे। यहाँ तक कि उस गाँवके कुत्ते भी भक्त थे जो एकादशी आदि व्रतका पालन करते थे। सारसाजोल ग्रामको भी देखकर कुलीन ग्रामकी स्मृति हृदयपटलपर उदित होती है। श्रील गुरुपादपद्मके शुभागमनसे सारसाजोल भी धन्य हो गया। श्रील आचार्यदेवने यहाँपर ६ दिनोंमें ६ विषयोंके सम्बन्धमें भाषण दिये—

(१) शास्त्र किसे कहते हैं?

(२) सुर और असुरमें पार्थक्य।

(३) कीर्त्तन ही कल्याणकारी साधन है।

(४) ब्रह्ममें लीन होना या ब्रह्म होना जीवके लिए अभिशाप है।

(५) ईश्वर सविशेष और साकार वस्तु है, निराकार नहीं।

(६) निराकारवाद ही नास्तिक्य पाखण्डवाद है।

उनके अतिरिक्त श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद नारायण महाराज, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीरोहिणीनन्दन वृजवासी आदि वक्ताओंने भी भाषण दिये।

दुमका शहरमें तीन दिनों तक पॉपुलर क्लब, श्रीराधामाधव मन्दिर, जिला परिषद भवनमें षड्दर्शन एवं वेदान्त-विज्ञान, निराकारवादका हेयत्व

तथा धर्म-सेवा ही समाजका संस्कार है—आदि विषयोंपर श्रील आचार्यदेवके बड़े ही ओजस्वी भाषण हुए। सभापति महोदयके आदेशसे श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज एवं श्रीपाद नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौरलीला एवं श्रीरामलीलाके सम्बन्धमें भक्तिसिद्धान्तपूर्ण भाषण दिये। शुद्धभक्तिके प्रचारसे दुमका जनपदके इन अञ्चलोंमें वैष्णवधर्मके प्रति लोगोंकी अपार श्रद्धा हुई। दल-के-दल लोग मद्य, माँस, मछली, धूम्रपान आदिका वर्जनकर शुद्धभक्तिमें दीक्षित होने लगे। इस प्रकार लगभग एक माह प्रचारकर श्रील आचार्यदेव सपरिकर श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटे।

अगस्त, १९६४ ई० में श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रील गुरुदेवकी उपस्थितिमें श्रीश्रीजन्माष्टमी एवं श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए। इस वर्ष श्रीसमितिके प्रांगणमें श्रीजन्माष्टमीके उपलक्ष्यमें बहुत-सी शिक्षाप्रद प्रदर्शनियोंका आयोजन हुआ था। श्रील गुरुपादपद्मने भक्तोंके आग्रहसे प्रदर्शनीका उन्मोचन किया तथा नाट्य-मन्दिरकी धर्मसभामें श्रीजन्माष्टमीके सम्बन्धमें गम्भीर सुसिद्धान्तपूर्ण एक भाषण प्रदान किया। उस भाषणमें यह बतलाया कि श्रीजन्माष्टमी आदिके व्रतोपवास पालनके विषयमें स्मार्त रघुनन्दनके विचारोंमें मूल भ्रान्ति है। वैष्णवलोग श्रीहरिभक्तिविलासके मतानुसार इन व्रतोंके पालनमें बिद्धा तिथिका परित्यागकर शुद्ध-व्रतका पालन करते हैं। श्रीकृष्णने सप्तमीबिद्धा अष्टमीमें जन्मग्रहण नहीं किया, बल्कि नवमी-बिद्धा अष्टमी (जिसे उमा-माहेश्वरी तिथि भी कहते हैं) में जन्मग्रहण किया था। इसलिए नवमीयुक्त अष्टमी तिथि ही व्रतोपवासके लिए पालनीय तिथि है। इस व्रतोपवासके लिए अभिजित मुहूर्त, रोहिणी नक्षत्र आदिका विचार भी विशेष महत्त्वका है।

कलकत्ता और मेदिनीपुरमें श्रील आचार्यदेव द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार

१९६४ ई० में कलकत्ताके प्रसिद्ध भवानी-पेपर-कनसर्नके मालिक श्रीसुधीर कुमार साहाके विशेष अनुरोधसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्य बहुत-से संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंको अपने साथ लेकर

उनके कैनिंग स्ट्रीट वासभवनमें एक माह तक ऊर्जाव्रत नियमसेवाका पालन किया। उस समय उनका गृह एक माह तक श्रीवैकुण्ठधाम बना हुआ था। प्रतिदिन मङ्गल-आरति, सङ्कीर्त्तन, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीमद्भागवत आदि भक्ति ग्रन्थोंका पाठ, सन्ध्या आरति आदि नियमित रूपसे सम्पन्न होते थे। कलकत्ता नगरके बहुत-से शिक्षित सम्भ्रान्त एवं समृद्ध व्यक्ति भी उसमें योगदान करते थे। श्रील गुरुदेवने श्रीमद्भागवत एकादश-स्कन्धसे वसुदेव-नारद संवादकी नियमित रूपसे व्याख्या की। उनकी सुसिद्धान्त पूर्ण भागवत व्याख्या सुनकर अध्यापक, वकील, शिक्षक, उच्च पदस्थ कर्मचारी सभी लोग बड़े आकर्षित हुए। समय-समयपर श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद वामन महाराज, श्रीपाद नारायण महाराजने भी श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की।

वहाँसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटकर मेदिनीपुरके विभिन्न अञ्चलोंमें प्रचार किया। कल्याणपुरमें श्रीमन्दिरका द्वारोद्घाटन किया। साबड़ावेड़े जलपाई तथा विभिन्न स्थानोंमें सनातन धर्मका प्रचार किया। खामटी नामक ग्राममें श्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिमें बड़े समारोहके साथ श्रीव्यासपूजा सम्पन्न हुई।

दूसरे वर्ष १९६५ ई॰ में श्रीधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव सम्पन्न करनेके पश्चात् कतिपय संन्यासी और ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीसिद्धवाड़ी गौड़ीय मठमें उपस्थित होकर वहाँ श्रीमन्दिर निर्माणके लिए भित्तिकी स्थापना की। तदनन्तर वहाँसे लौटकर आसाम प्रदेशके गोलोकगंज, बंगोइगाँव, माथाभांगा, शीतल कुचि एवं सिलिगुड़ि आदि स्थानोंमें एक माह तक प्रचारकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें लौटे।

श्रीमथुरा, वृन्दावन, लखनऊ और काशीमें शुद्धभक्तिका प्रचार

१९६६ ई॰ सितम्बर-अक्टूबर माहमें कार्त्तिकव्रत नियमसेवाके उपलक्ष्यमें बहुत-से यात्रियोंको साथ लेकर श्रीव्रजमण्डल ८४ क्रोसकी परिक्रमा की गयी। वे यात्रियोंके साथ सबसे पहले श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज एवं श्रीमुनि महाराजने माल्य-चन्दन अर्पणकर श्रील आचार्यदेवकी विपुल सम्वर्धना

की। श्रील गुरुपादपद्म परिक्रमाका दायित्व श्रीपाद हरिजन महाराजके ऊपर न्यस्त कर एक माह तक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विश्राम किया। तत्पश्चात् श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज तथा कतिपय ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर लखनऊ, प्रयाग, वाराणसी एवं गयामें भक्तिका प्रचारकर चुँचुड़ा लौटे।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें रहते समय मथुरा नगरके बहुत-से उच्च शिक्षित व्यक्ति श्रीलगुरुपादपद्मके निकट हरिकथा सुननेके लिए उपस्थित होते थे। जिनमें श्रीमाथुर चतुर्वेद महाविद्यालयके प्रिन्सिपल, श्रीगया प्रसाद सक्सेना एम्प्लॉयमेन्ट-एक्सचेंज आफिसर, श्रीपीताम्बर पन्थ एस॰डी॰ओ॰एम॰ई॰एस॰, आदिके नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। श्रीपीताम्बर पन्थके विशेष अनुरोधसे ही श्रील आचार्यदेवने संन्यासी-ब्रह्मचारियोंके साथ लखनऊ स्थित उनके वासभवनमें शुभविजय किया। वहाँ तीन दिन रहकर काशीमें उपस्थित हुए। वहाँ पुनः तीन दिन रहकर अप्राकृत शब्द विज्ञानके मूल-ग्रन्थ वेद एवं कुछ दुष्प्राप्य ग्रन्थों तथा श्रीनवद्वीप मठके लिए दो मन वजनका एक बृहत् पीतलका घण्टा संग्रहकर श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटे।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, कलकत्तामें श्रील आचार्य केसरी

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ कलकत्तामें सप्ताह व्यापी २६ जनवरीसे १ फरवरी, १९६७ ई॰ में वार्षिक महोत्सव, नव मन्दिर एवं श्रीनाट्यमन्दिरकी प्रतिष्ठा महासमारोहके साथ सुसम्पन्न हुई। नित्यलीला प्रविष्ट श्रीश्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ एवं उसके अन्तर्गत भारतके शाखामठसमूहके संस्थापक सभापति आचार्य थे। वे स्वयं इस महोत्सवमें योगदानके लिए निमन्त्रण देने हेतु अस्मदीय श्रील गुरुदेवके पास तथा अन्यान्य गौड़ीय आचार्योंके पास उपस्थित हुए थे। इसलिए जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अनुगत बहुत-से संन्यासियोंने इस महोत्सवमें योगदान किया था। उनमेंसे कुछेक प्रमुख संन्यासियोंके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज

(२) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज

(३) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

(४) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज

(५) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज

(६) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज

(७) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिआलोक परमहंस महाराज

(८) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज

(९) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रापन दामोदर महाराज

(१०) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराज

इस महोत्सवमें परमपूज्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजने नवनिर्मित मन्दिर एवं नाट्य-मन्दिरका द्वारोद्घाटन किया। पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज और पूज्यपाद भक्तिप्रमोद पुरी महाराजजीने श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा तथा वैष्णव होम-यज्ञ आदि कार्योंको सम्पन्न किया।

इस अवसरपर तीन दिन सायंकालमें विद्वद् धर्मसभा सम्पन्न हुई। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने तीनों दिन क्रमानुसार (१) "मठ मन्दिरकी आवश्यकता", (२) "गीताकी शिक्षा", (३) "युगधर्म" के सम्बन्धमें तत्त्वसिद्धान्त पूर्ण तीन भाषण प्रदान किये। इन तीन दिनोंमें क्रमशः कलकत्ता हाईकोर्टके प्रधान न्यायाधिपति माननीय श्रीयुत दीपनारायण सिंह, श्रीशम्भुनाथ बनर्जी (कलकत्ता विश्वविद्यालयके भूतपूर्व उपाचार्य) तथा न्यायाधिपति श्रीयुत परेशनाथ मुखर्जीने सभापतिका आसन अलंकृत किया। श्रील आचार्यदेवने भाषण देते हुए कहा—"यहाँ इस धर्मसभामें बंगालके सर्वोच्च अदालतके प्रधान न्यायाधिपति उपस्थित हैं। उनकी मठ-मन्दिरमें उपस्थिति ही मठ-मन्दिरकी आवश्यकताका प्रमाण है। हमारे स्मृतिशास्त्रके लेखकोंने कहा है कि जहाँ मठ-मन्दिर नहीं हैं, वहाँ निवास करना उचित नहीं है। आजकल बहुत-से लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं कि क्या कृष्णको पुकारनेसे ही भोजन मिलेगा? ऐसी प्राकृत

दृष्टिभङ्गी बन्द नहीं होनेसे इस देशका कदापि कल्याण नहीं हो सकता। आजकल सिद्धान्तहीन, विचारहीन, अधार्मिक राजनीति चल रही है। प्राचीन ऋषियोंने कुछ Codified Rule प्रस्तुत किया था। उसीके अनुसार देशकी शासन व्यवस्था चलती थी। आज उनकी अवज्ञाकर पाश्चात्य देशकी शिक्षा दी जा रही है। बड़े दुःखकी बात है, आज गाय एवं पशुओंकी हत्याके लिए, मद्यपान करने करानेके लिए लाईसेन्स दिये जा रहे हैं। किन्तु राष्ट्रके Constitution में धर्मका कोई भी स्थान नहीं है। दुर्भाग्यकी बात है धार्मिक व्यक्तियोंके लिए इस Constitution में कोई भी Provision या व्यवस्था नहीं है। अधिकन्तु बिना किसी कारणके ही धार्मिक लोगोंकी अशान्ति एवं असुविधाकी सृष्टि की जा रही है। सरकार आज तक भी बेकारीकी समस्याका समाधान नहीं कर सकी है। आजकल मठोंमें बहुत-से उच्चशिक्षित व्यक्ति वास करते हैं। यदि वे सभी लोग नौकरी, व्यवसाय अथवा खेती करते तो न जाने और कितने लाख व्यक्ति बेकार हो जाते। तथा उनके खेती-बाड़ी करनेके लिए कृषिभूमिका भी अभाव हो जाता। यह सब कहना कठिन है। इस प्रकार साधुओंका महान त्याग देशके लिए कितना बड़ा उपकार है, यह सभी लोग समझ सकते हैं। आजकल अनेक मठ-मन्दिरों, मिशन, सेवाश्रमोंमें 'अहं ब्रह्मास्मि'—आत्महत्याकी शिक्षा दी जा रही है।" इसके द्वारा जनताको धर्मविरोधी नास्तिक प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकार निरपेक्ष सत्यके निर्भीक वक्ता इन विप्लवी विचारोंको सभामें प्रकाश कर रहे थे एवं श्रोतागण बड़ी उत्कण्ठापूर्वक श्रवण कर रहे थे।

करीब एक घण्टा तक इन्होंने ओजस्वी भाषण दिया। इनके भाषणके पश्चात् दूसरे वक्ताओंने भी अपने-अपने विचार प्रकट किये। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी सभा समाप्त होनेके पश्चात् अस्मदीय आचार्यदेवके चरणकमलोंमें उपस्थित होकर इनके विचारोंकी भूयसी प्रशंसा करने लगे। साथ ही भक्तिके सिद्धान्तोंके विषयमें परिप्रश्न भी करते रहे।

आसाम-प्रदेशके वासुगाँवमें श्रीवासुदेव गौड़ीय मठकी स्थापना

आसाम-प्रदेशके ग्वालपाड़ा जनपदके अन्तर्गत वासुगाँवके विशिष्ट सज्जन श्रीपार्वतीचरण रायने वासुगाँवमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एक प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेके लिए श्रील गुरुपादपद्मसे बार-बार अनुरोध किया। इस कार्यके लिए उन्होंने अपने वासभवनके पास ही बाजारके मध्यभागमें कुछ भूमि भी दान कर दी थी। उनके अनुरोधसे श्रील आचार्यदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी आदि ६ सेवकोंके साथ २१ मई, १९६७ ई॰ को वहाँ उपस्थित हुए। वहीं दूसरे दिन श्रीनिमानन्द सेवातीर्थ प्रभुकी आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें आयोजित एक महती सभा हुई। उस धर्मसभामें श्रील आचार्यदेव द्वारा सभापतिका आसन अलंकृत करनेपर श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीगजेन्द्र मोक्षण ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रीगौर-विनोद-सारस्वत-वाणी प्रचारमें इस महापुरुषका अवदान विषयपर बहुत ही आवेगपूर्ण भाषण दिये। तत्पश्चात् श्रील गुरु महाराजने सेवातीर्थ प्रभुके सम्बन्धमें सुसिद्धान्तपूर्ण मनोज्ञ भाषण प्रदान किया।

दो तीन दिन गोलोकगंजमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर श्रील आचार्यदेव सपरिकर वासुगाँवमें उपस्थित हुए। वहाँके स्थानीय हाईस्कूलके हेडमास्टर श्रीविश्वरूप ब्रह्मचारी बी॰ए॰ की विशेष प्रचेष्टासे श्रीपार्वती बाबूके द्वारा प्रदत्त भूमिमें श्रीवासुदेव गौड़ीय मठकी स्थापना हुई। मठ-प्रतिष्ठा कार्यमें श्रीविश्वरूप प्रभुकी अक्लान्त सेवा प्रचेष्टा एवं उत्साह देखकर श्रील आचार्यदेवने उन्हें मठका अध्यक्ष नियुक्त किया। श्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीसारथीकृष्ण ब्रह्मचारी इस नए मठमें रहकर प्रचारकार्यमें नियुक्त हुए। इसी स्थानपर तीन दिन तक तीन धर्मसभाओंका आयोजन किया गया। श्रील आचार्यदेवके अतिरिक्त श्रीमद्वामन महाराज, श्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज आदिने भी भाषण दिये। कुछ ही दिनोंके पश्चात् परम पूज्यपाद श्रील श्रौती महाराजके पौरोहत्यमें यहाँ श्रीश्रीगौर-राधाविनोदबिहारीजी प्रतिष्ठित हुए।

सिऊड़ी बार-लाईब्रेरी एवं डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरीमें वक्तृता

२१ जून, १९६७ ई॰ को सपार्षद श्रील गुरुदेवने सिऊड़ी शहरमें शुभागमन किया। श्रीयुत उमापद साधु (श्रीउरुक्रम दासाधिकारी) महोदयके विशेष अनुरोधसे कुछ दिनों तक उनके वासभवनमें रहकर शुद्धभक्तिका प्रचार किया। एक दिन उन्होंने बार-लाईब्रेरीमें तथा दूसरे दिन स्थानीय डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरीमें "वर्त्तमान परिस्थिति एवं सनातनधर्म" के विषयपर भाषण दिया। अन्यान्य दिनोंमें श्रीउरुक्रम दासाधिकारीके श्रीमन्दिरमें ही "वैष्णव-साहित्य एवं संस्कृति" आदिके सम्बन्धमें ओजस्वी भाषण दिये।

१७ फरवरी, १९६८ ई॰ को रामनगर आबादग्राममें विराट व्यासपूजाका महोत्सव सम्पन्न हुआ। श्रीमती नारायणीदेवीकी विशेष प्रार्थनापर त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज कतिपय संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंके साथ वहाँ उपस्थित होकर विशेष समारोहके साथ व्यासपूजाका अनुष्ठान किया। तीन दिनों तक बृहत्-बृहत् धर्मसभाओंमें व्यासपूजा एवं सनातनधर्मके सम्बन्धमें पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने सभापतिके आसनसे विद्वतापूर्ण भाषण दिया।

श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ भी विशेष समारोहके साथ तीन दिनों तक व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ।

अप्रकटलीलामें प्रवेश

तत्पश्चात् श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुई। इसी समय परमाराध्यतम गुरुदेव कुछ-कुछ अस्वस्थ-लीलाका अभिनय करने लगे। चिकित्साके लिए वे कुछ दिनों तक कलकत्ता निवासी श्रीयुत राधेश्याम साहा और कुछ दिनों तक श्रीकृष्णगोपाल वसु महोदयके घर रहे। उस समय इन दोनों महाशयोंकी सेवा-प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय रही। कलकत्तासे पुनः ३ अक्टूबर, १९६८ ई॰ को उन्हें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उनकी भजनकुटीमें लाया गया। अन्तमें १९ आश्विन १३७५ बंगाब्द, ६ अक्टूबर, १९६८ ई॰ रविवार, शारदीय रासपूर्णिमाके

दिन सन्ध्या आरतिके समय ६०१५ पर परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज हम सभीको विरहसागरमें निमज्जितकर श्रीयुगलकिशोरके सायंकालीन नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गये। इस विषयमें श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष २०, अङ्क ५ में प्रकाशित किसी विरही द्वारा लिखित विवरण उद्धृत किया जा रहा है—

"विगत ६ अक्टूबर, १९६८ ई०, रविवार, शारदीय पूर्णिमाकी पुण्यतिथिमें श्रीदामोदर-व्रत आरम्भदिवसके सन्ध्याकालमें चन्द्रग्रहणके समय श्रीधाम नवद्वीपस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता, श्रीब्रह्ममाध्व गौड़ीय सम्प्रदायसंरक्षक आचार्यभास्कर परमहंस मुकुटमणि नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रियपार्षद आचार्यकेसरी ॐ विष्णुपाद परमहंस अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अपने चरणाश्रित सेवकवृन्द, तदीय सतीर्थ संन्यासी आचार्यवृन्द, त्यागी एवं गृही भक्तवृन्द तथा गुणमुग्ध सज्जनवृन्दको

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीका समाधि-मन्दिर

विरहसागरमें निमज्जितकर स्वेच्छापूर्वक नित्यधाम श्रीगोलोक वृन्दावनमें निज अभीष्टदेव श्रीराधाविनोदबिहारीकी सायंकालीन लीलामें प्रविष्ट हुए हैं।”

उक्त दिवस श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें भारतके विभिन्न स्थानोंसे त्यागी एवं गृही भक्तगण एकत्रित हुए थे। विशेष-विशेष संन्यासीगण एवं सेवकवृन्द प्रातःकालसे ही श्रीनरोत्तम ठाकुर, भक्तिविनोद ठाकुर आदि महाजनोंके ‘जय राधे जय कृष्ण’, ‘जे आनिल प्रेमधन’, ‘श्रीरूप मञ्जरीपद’, ‘राधे जय जय माधव दयिते’ आदि पदोंका करुण स्वरसे कीर्त्तन कर रहे थे। उधर सन्ध्या आरति हो रही थी और इधर भक्तोंके साथ गुरुदेव भी आविष्ट होकर अस्फुट स्वरसे कीर्त्तन कर रहे थे। इस प्रकार ‘हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे’ का उच्चारण करते हुए अपने परमाराध्यतम गुरुदेवके पटविग्रहको अपने वक्षःस्थलपर धारण किये हुए नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गये।

इसी बीच एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हुई। श्रीमन्दिरके बड़े पुजारी अपने हाथोंमें श्रीमती राधिकाजीकी माला लेकर वहीं उपस्थित हुए और रोते हुए बोले कि ठीक सन्ध्या आरतिके पश्चात् ही श्रीमती राधिकाके गलेका पुष्पहार अपने-आप टूटकर गिर पड़ा, मैंने आज तक ऐसा कभी नहीं देखा। उपस्थित सब लोगोंने इस श्रीमती राधिकाजीका यह कृपादेश समझा कि श्रीमतीजी अपनी प्रेष्ठ सहचरीको सायंकालीन लीलाविलासमें बुला रही हैं। क्षणभरमें ही श्रील गुरुदेवकी अप्रकटलीलाका विरह संवाद भगवती भागीरथी-गङ्गाके दोनों तटोंपर स्थित सारे गौड़ीय मठोंमें फैल गया। हजारों श्रद्धालु लोग परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देनेके लिए एकत्रित हो गये। प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजके आनुगत्यमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदबिहारीजीकी गगनचुम्बी श्रीमन्दिरके सम्मुख उन्हें संस्कारदीपिकाकी रीतिके अनुसार हरिकीर्त्तनके बीच समाधिस्थ किया गया।

समाधि-मन्दिरमें श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका श्रीविग्रह

चतुर्थ भाग

(क) सिद्धस्वरूपका इङ्गित

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ श्रीधाम नवद्वीपमें नौ शिखर विशिष्ट विशाल श्रीमन्दिरका नवनिर्माण कार्य चल रहा था। श्रीगर्भमन्दिरमें श्रीविग्रहोंके लिए वेदिका प्रस्तुत की जा रही थी। वेदिकाका स्वरूप, उसके सोपानोंकी संख्या तथा सोपानोंका रङ्ग निर्णय करनेके लिए परमाराध्य श्रीलगुरुदेव श्रीगर्भमन्दिरमें पधारे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त मुनि महाराज और मैं उनके साथ था। श्रील गुरुदेवने स्थानको नपवाकर वेदीकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाईका निर्णय किया। फिर किसी चिन्तामें डूब गये। क्षणभर पश्चात् हम लोगोंकी ओर मुड़कर बोले—वेदीके नीचे तीन सोपान रहेंगे। सर्वोच्च सोपान नीले वर्णका होगा, द्वितीय सोपान पीतवर्णका तथा सर्वनिम्न सोपान अरुणवर्णका होगा। श्रीपाद् मुनि महाराजने पूछा—ऐसा क्यों? श्रील गुरुदेवने कहा—सर्वोच्च सोपान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके इन्द्रनीलमणि-द्युतिका प्रतीक होगा, द्वितीय सोपान कृष्णकान्ता-शिरोमणि श्रीमती राधिकाकी स्वर्णकान्ति या पीतवर्णका प्रतीक होगा। फिर कुछ क्षण चुप रहनेके पश्चात् अत्यन्त गम्भीर मुद्रामें बोले—तीसरा सोपान युगलकिशोरका विनोदन करनेवाली सखी (मञ्जरी) के वर्णका प्रतीक होगा। वह प्रतीक अरुणवर्णका होगा। इतना कहते-कहते उनकी वाणी गदगद हो गयी, कण्ठस्वर रुद्ध हो गया। वे सम्पूर्ण रूपसे स्तब्ध हो गये। हम दोनों उनके इस विलक्षण भावको देखकर विस्मित हो गये।

उस समय हम लोग कुछ समझ नहीं सके, उनसे कुछ पूछनेका भी साहस नहीं कर सके। परन्तु उनकी अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् हम लोगोंने उस इङ्गितका तात्पर्य अनुभव किया कि सर्वनिम्नस्थित सोपान श्रीयुगलकिशोरका नित्य विनोदन करनेवाली श्रीविनोदमञ्जरीका ही प्रतीक है। श्रीलगुरुदेवने बड़े गूढ़ रूपमें अपने सिद्धदेहका इङ्गित दिया था।

इन्हीं दिनों श्रील गुरुदेवके एक प्रियसेवक श्रीपाद नारायण दासाधिकारीने एकान्तमें परमाराध्य श्रीगुरुदेवसे पूछा—श्रीलगुरुदेवने अपने किसी भी शिष्यको उसे सिद्धदेहका परिचय प्रदान किया है या नहीं? उन्होंने गम्भीरतासे उत्तर दिया—अवश्य दिया है। श्रीलप्रभुपादने अपने कुछ अधिकारी शिष्योंको सिद्धदेह परिचय और भजन-प्रणालीकी शिक्षा प्रदान की है; अन्यथा श्रीरूपानुग धारा रुद्ध हो जाती। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे भी वह प्रणाली प्रदान की है। श्रीनारायण प्रभुने पुनः पूछा—क्या कृपाकर अपने सिद्धदेहका नाम बतलावेंगे। श्रीलगुरुदेवने कहा—अभी नहीं, उपयुक्त समयपर इसका प्रकाश होगा।

(ख) प्रत्यक्ष दर्शनकी हेयता

किसी समय परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरासे श्रीधाम नवद्वीप रेलगाड़ी द्वारा लौट रहे थे। उनके साथ हमलोग चार-पाँच ब्रह्मचारी भी थे। हम सभी रिजर्व डिब्बेमें बैठे हुए थे। जब गाड़ी मथुरा जंक्शन छोड़कर आगे बढ़ी, तभी एक रेलवे मजिस्ट्रेट दो-चार सिपाहियोंके साथ हमलोगोंके डिब्बेमें चैकिंगके लिए उपस्थित हुए। वे चैकिंगके पश्चात् श्रीलगुरुदेवके पास ही रिक्त स्थानपर बैठ गये। बैठते ही उन्होंने श्रील गुरुदेवसे पूछा—"महात्माजी! आप कहाँसे आ रहे हैं?"

गुरुजी—"हमलोग मथुरासे आ रहे हैं। मथुरामें जिला अस्पतालके सामने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ नामक हमलोगोंका एक आश्रम है। हम वहींसे आ रहे हैं।"

मजिस्ट्रेट—"आपलोग जायेंगे कहाँ?"

गुरुजी—"हमलोग श्रीधाम नवद्वीप जा रहे हैं, वहीं हमारा प्रधान-कार्यालय है।"

मजिस्ट्रेट—"आपकी संस्थाका उद्देश्य क्या है?"

गुरुजी—"हमलोग विश्वभरमें शुद्ध सनातन धर्मका प्रचार करते हैं। विशेषतः श्रीचैतन्य महाप्रभुके आनुगत्यमें श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें वर्णित शुद्धभक्ति और हरिनाम-सङ्कीर्त्तनका आचार तथा प्रचार करते

हैं। जीवमात्रको इस कल्याण-पथपर आकर्षण करना ही हमारी संस्थाका उद्देश्य है।”

मजिस्ट्रेट—“भक्तिसे आपका तात्पर्य क्या है?”

गुरुजी—“इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, इसका सञ्चालन करनेवाला एक परम दयालु, सर्वशक्तिमान तत्त्व है। उसी परम तत्त्वको ईश्वर, परमात्मा या भगवान् भी कहते हैं। हम सारे जीव उनके अंश और सेवक होनेपर भी उन्हें भूलकर इस संसारमें अनादि कालसे विभिन्न योनियोंमें त्रिताप द्वारा ग्रस्त हो रहे हैं। बिना भगवत्कृपाके हम इस भवबन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते। अतः भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए शास्त्रोंमें वर्णित विधियोंका पालन करना ही भक्ति है।”

मजिस्ट्रेट—“आपलोग ईश्वरको मानते हैं, किन्तु मैं ईश्वर नामकी कोई सत्ता नहीं मानता। जो चीज इन आँखोंसे दीखती नहीं, मैं उसपर विश्वास नहीं करता। क्या भगवान् आँखोंसे दिखायी देता है?”

गुरुजी—“यद्यपि आप मौखिक रूपसे ऐसा कह रहे हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, जिन्हें आप न देखनेपर भी उसकी सत्ता माननेके लिए बाध्य हैं।”

मजिस्ट्रेट—“किन्तु मैं आँखोंसे प्रत्यक्ष देखी हुई चीजोंके अतिरिक्त किसी भी अन्य वस्तुपर विश्वास नहीं करता।”

गुरुजी—“आप अवश्य ही विश्वास करते हैं। क्या आपके माता-पिता जीवित हैं?”

मजिस्ट्रेट—“हाँ! जीवित हैं।”

गुरुजी—“क्या आप बता सकते हैं कि वे ही आपके यथार्थ पिता हैं? यदि हाँ, तो इसका प्रमाण क्या है? क्या इसे आपने अपनी आँखोंसे देखा है कि आपके पिताने आपकी माताका गर्भाधान किया, जिससे आपने जन्म-ग्रहण किया?”

इस प्रश्नको सुनकर मजिस्ट्रेट महोदय लज्जित हो गये और कुछ भी उत्तर न दे सके।

गुरुजी—“नहीं! जन्मसे पूर्वकी इस घटनाको आपने देखा नहीं अतः अदृश्य घटना या चीजपर आप विश्वास करते हैं। आप अवश्य ही अपनी माँ एवं कुटुम्बियोंके कथनपर विश्वासकर उन्हें पिता मानते हैं।”

मजिस्ट्रेट—"आपकी बात तो बिल्कुल ठीक है। मैंने माता एवं कुटुम्बियोंके कथनपर विश्वासकर ही पिताका परिचय पाया है।"

गुरुजी—"इसी प्रकार अपौरुषेय वेद और उनके अनुगत गीता, भागवत, रामायण आदि सभी शास्त्र प्रामाणिक माताके समान हैं। वे पुनः-पुनः ऐसा कहते हैं कि इस विश्वके स्रष्टा एवं सञ्चालक ईश्वर ही हैं। उन्हें ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् आदि कहा गया है। यदि आप नाना प्रकारके दोषोंसे युक्त पाठ्य-पुस्तकोंपर तथा त्रुटिपूर्ण, ससीम इन्द्रियोंपर विश्वास करते हैं, तो फिर सब प्रकारके दोषोंसे रहित अपौरुषेय भ्रम-प्रमाद आदि दोषोंसे रहित वेद आदि प्रामाणिक शास्त्रोंपर विश्वास क्यों नहीं करते हैं। वेद आदि शास्त्र मातासे भी अधिक विश्वासयोग्य हैं। वेदमें ऐसा कहा गया है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म॥
(तै॰ भृगु, १ अनु)

अर्थात् जिससे समस्त प्राणियोंका जन्म होता है, जिससे वे जीवित रहते हैं और अन्तमें जिसमें वे सभी प्रवेश कर जाते हैं, उन्हीं की जिज्ञासा करनी चाहिये, वही ब्रह्म है।

और भी, ब्रह्मसूत्रमें कहा गया है—जन्माद्यस्य यतः अर्थात् जिससे जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है, उसे ब्रह्म कहते हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विताः॥

अर्थात् मैं सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ, मुझसे ही सभी कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार समझकर पण्डितगण भावयुक्त होकर मुझे भजते हैं।

वेदशास्त्र अभ्रान्त और परम सत्यके प्रकाशक हैं। ये किसी ससीम बुद्धिवाले मनुष्यके द्वारा रचित नहीं हैं। अनादि कालसे मनु, नारद, व्यास, वाल्मीकि आदि बड़े-बड़े महर्षियोंने इसकी सत्यताकी परीक्षा और उपलब्धि की है। इनके अतिरिक्त श्रीशङ्कराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य आदि मनीषियों एवं आचार्योंने वेदादि शास्त्रोंको प्रमाण

मानकर ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की है। अतः अपने कल्याणके लिए आपको भी ऐसा मानना सर्वथा उचित है।"

मजिस्ट्रेट—"आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं समझ रहा हूँ कि अब तक मैं भ्रममें था।"

इतनेमें गाड़ी आगरा केण्ट स्टेशनपर आ खड़ी हुई। वे बड़ी श्रद्धासे गुरुजीका चरण स्पर्श करते हुए बोले—"मुझे यहाँ उतरना है, भविष्यमें मैं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका दर्शन करूँगा।"

गुरुजीके साथ मजिस्ट्रेटकी वार्त्तालापको सुननेके लिए उत्सुकतावश और भी यात्रीगण वहाँ बैठ गये थे। उनकी वार्त्तालाप सुनकर अन्य यात्रीगण भी प्रभावित हुए और रास्तेभर गुरुजीसे धर्मविषयपर चर्चा करते रहे।

(ग) साम्यवादी ज्योति बाबूके साथ वार्त्तालाप

बात सन् १९५१-५२ ई॰ सुन्दरवन पश्चिम बंगालकी है। परमाराध्य गुरुदेव श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके पूर्व सुन्दरवनमें शुद्धभक्तिका प्रचार करने, श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके लिए श्रद्धालुओंको निमन्त्रण देने तथा परिक्रमाके लिए आनुकूल्य संग्रह करने सुन्दरवन अञ्चलमें गये हुए थे। एक दिन श्रीगुरुदेव हमलोगोंको साथ लेकर किसी श्रद्धालु भक्तके घर जा रहे थे। उसी समय बंगालके साम्यवादी पार्टीके प्रधान सभापति ज्योति बाबू (बंगालके वर्त्तमान मुख्यमन्त्री) भी अपने कुछ अनुयायियोंके साथ आ रहे थे। वे उस अञ्चलमें बाढ़ग्रस्त क्षेत्रकी स्थितिका निरीक्षण करनेके लिए विपक्षी पार्टीके नेताके रूपमें आ रहे थे। श्रीगुरुदेवको त्रिदण्डसहित भगुवे वस्त्रमें देखते ही वे ठहर गये और उन्होंने उद्दण्डतापूर्वक पूछा—"आपलोग कहाँसे आ रहे हैं?" श्रीलगुरुदेवने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"हमलोग श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति, श्रीनवद्वीपधामसे आ रहे हैं।"

ज्योति बाबू—"क्या आपलोग बाढ़ग्रस्त क्षेत्रकी स्थितिका निरीक्षण करने एवं लोगोंसे सहानुभूति प्रदर्शन करने आये हैं?"

गुरुदेव—"हमलोग जीवोंके नित्य कल्याणके लिए शुद्ध वैष्णवधर्मका प्रचार करने तथा श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमाके लिए यत्किञ्चित् आनुकूल्य संग्रह करने आये हैं।"

ज्योति बाबू—"क्या आपलोग यह नहीं देख रहे हैं कि भीषण बाढ़से जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है, इनकी फसल मारी गयी है, गाँवके गाँव डूब गये हैं। लोग अन्न और वस्त्रके लिए, दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा कर रहे हैं, फिर भी आप इन्हीं लोगोंसे भीख माँगने आये हैं?"

गुरुदेव—"बाढ़ आयी है! कहाँ बाढ़ आयी है? अभी तक आपके होठोंमें लगे सिगरेटकी आग तक नहीं बुझी है, फिर बाढ़ कहाँ! महाशयजी यह बाढ़ यथार्थतः बाढ़ नहीं है। हम तो जीवोंके जन्म-जन्मान्तरोंकी लगी हुई प्रलयाग्निको बुझानेके लिए तथा जल-प्लावनसे प्राणियोंकी रक्षा करने, उन कृष्णविमुख जीवोंको उनका स्वरूपगत नित्य-आनन्द प्राप्त करानेके लिए यहाँ आये हैं। जीव जब तक धार्मिक जीवन ग्रहण नहीं करता, जब तक भगवत्-आराधना नहीं करता, तब तक वह कदापि सुखी नहीं हो सकता। नास्तिक जीवन पशुजीवन है। आप पाश्चात्य सभ्यता ग्रहणकर बंगाल और भारतका सर्वनाश करने जा रहे हैं।"

ज्योति बाबू—"हम वेदशास्त्र नहीं मानते। हम पुरुषार्थपर विश्वास करते हैं। कर्म ही जीवन है, कर्म ही ईश्वर है। आपलोगोंके कारण ही यह देश रसातलमें चला गया। आपलोग स्वयं कर्म करें और कर्मकी शिक्षा दें। भीख माँगना कापुरुषोंका कार्य है।"

गुरुदेव—"भारतका सर्वनाश आप जैसे नास्तिकोंके कारण हुआ है। जब तक भारतीय राजनीति धर्मसे शासित होती थी, लोग ईश्वर-विश्वासी और धार्मिक थे, तब तक देश विश्वके अन्यान्य देशोंसे सभ्य और सुखी था। प्राचीन कालमें आपसे बड़े-बड़े कर्मियोंकी दुर्गतिका उल्लेख शास्त्रोंमें है; यथा—महाकर्मवीर हिरण्यकशिपु, रावण, दुर्योधन, कंस। मध्यकालीन—सिकन्दर, नेपोलियन और आधुनिक युगके हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन आदि बड़े-बड़े कर्मवीरोंकी दुर्गति आपने लक्ष्य नहीं की है? चार्वाक आदि नास्तिकोंके लिए भारतमें स्थान नहीं है। भारत एक सनातन धर्मीय देश है। कोई भी व्यक्ति कितना भी प्रभावशाली क्यों न हो, वह इस सनातन धर्मको नष्ट नहीं कर सकता। एक दिन ऐसा आयेगा, जिस दिन आपको पश्चाताप करनेका भी सुयोग नहीं मिलेगा।"

ज्योति बाबू गुरुदेवका यह उत्तर सुनकर निरुत्तर हो गये और झुँझलाते हुए अपने अनुयायियोंके साथ चले गये।

श्रीगुरुदेव निरपेक्ष सत्यके निर्भीक वक्ता थे। बड़े-बड़े तार्किक भी उनकी प्रबल युक्तियोंके सामने नतमस्तक हो जाते।

(घ) श्रीगुरुदेव और भिक्षाके द्रव्य

एक समय (सन् १९५१ के लगभग) श्रील गुरुदेव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रधान कार्यालय श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रहते थे और वहींसे सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार करते थे। मठकी सेवा-पूजा तथा श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा आदिका सञ्चालन मधुकरी भिक्षाके द्वारा ही चलता था। श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके पूर्व परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराजजीके साथ मैं भी कलकत्ताके समीप श्रीरामपुर एवं आसपासके शहरोंमें प्रचार एवं भिक्षाके लिए गया था। पन्द्रह दिनोंके बाद हमलोग प्रचार और भिक्षाकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें लौटे। कुल ढाई सौ रुपये भिक्षामें मिले थे, जो उस समय एक बड़ी राशि थी। मैंने आते ही परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देनेके बाद पूछा—"कैसा प्रचार रहा?" मैंने उत्तर दिया—"प्रचार बहुत ही अच्छा रहा। लगभग ढाई सौ रुपये भिक्षामें प्राप्त हुए।" गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए।

कुछ ही देरमें पूज्यपाद नारसिंह महाराजजीने गुरुजीके सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम किया और भिक्षामें प्राप्त रुपयोंको गुरुजीके हाथोंमें दिया। श्रीगुरुदेवने पूछा—"कितने रुपये हैं?" पूज्यपाद नारसिंह महाराजने उत्तर दिया—"दो सौ पच्चीस रुपये।" श्रीगुरुदेवने कहा—"बाकी पच्चीस रुपये कहाँ हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"कुछ रुपये मैंने हाथ-खर्चके लिए रख लिये हैं।" श्रीगुरुदेवने कहा—"अभी भिक्षाके इन रुपयोंको लाकर मुझे दें।" श्रीपाद् नारसिंह महाराजने कुछ क्रोधित होकर कहा—"क्या हमलोग हाथ-खर्चके लिए दो-चार रुपये भी नहीं रख सकते?" श्रीगुरुदेवने उत्तर दिया—"पहले मुझे दे तो दीजिये।" पूज्यपाद महाराज कुछ झुँझलाते हुए अपनी भजनकुटीमें गये और बाकीके पच्चीस रुपये लाकर उनके सामने पटक दिये। गुरुजीने उन रुपयोंको अपने हाथोंमें लेकर गिने

और फिर ज्यों-के-त्यों उन्हें लौटाने लगे। पूज्यपाद नारसिंह महाराजने कहा—"यदि देना ही था, तो लेनेकी क्या आवश्यकता थी।" श्रीगुरुदेव कुछ गम्भीर होकर बोले—"विषयी लोगोंके अन्न, अर्थ इत्यादिमें विष होता है। उस विषको हजम करना साधारण लोगोंके लिए सम्भव नहीं है। शास्त्रोंमें भी ऐसा लिखा गया है कि विषयीका अन्न खानेसे साधकका चित्त मलिन हो जाता है और मलिन चित्तसे भगवान्‌का स्मरण नहीं हो सकता। इसलिए साधकोंको सर्वदा सावधान रहना चाहिये। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी इसके साक्षात् प्रमाण हैं। उन्होंने वैष्णवप्राय अपने पिताजी द्वारा भेजे गये अर्थको इसीलिए ग्रहण नहीं किया। अच्छे-अच्छे साधक भी विषयीका अन्न खानेके कारण भजनराज्यसे च्युत हो चुके हैं। इसीलिए मैं विषयी लोगोंसे प्राप्त इस विषमिश्रित अर्थको आपसे लेकर उसे शुद्धकर अब आपको लौटा रहा हूँ। अब इसमें कोई दोष नहीं है। श्रीहरि, गुरु और वैष्णवोंकी सेवाके नामपर माँगी गयी भिक्षाका एक पैसा भी यदि अपनी सेवामें लगाया जाय तो उससे अमङ्गल अवश्यम्भावी है। मैं भिक्षाका एक पैसा भी अपने उपयोगमें नहीं लाता। जिनका तन-मन-वचन सबकुछ श्रीलगुरुदेव एवं भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित हो चुका है, जो पूर्ण रूपसे भगवच्चरणोंमें आत्मनिवेदन कर चुके हैं, जिनमें भजनका बल है—ऐसे अधिकारी वैष्णव ही इसका हरि-गुरु-वैष्णवकी सेवामें उपयोग कर सकते हैं। साधारण मठवासी ऐसा नहीं कर सकते।"

इतना सुनते ही पूज्यपाद नारसिंह महाराजजी अत्यन्त लज्जित हुए। उनके हृदयकी सारी ग्लानि दूर हो गयी। वे नतमस्तक होकर नम्रतापूर्वक बोले—"क्षमा करें! मैंने इस विषयको कभी इतनी गम्भीरतासे नहीं लिया। आप जो कुछ कह रहे हैं, वह पूर्णतः ठीक है। मैंने सारे जीवनके लिए यह शिक्षा ग्रहण की।"

इसके द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि विषयी लोगों द्वारा भिक्षाके रूपमें प्रदत्त अर्थ या वस्तुओंको कभी भी स्वयंके उपभोगमें नहीं लगाना चाहिये। उन्हें गुरुदेव या वैसे उन्नत वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें समर्पित कर देना चाहिये, क्योंकि वे उन वस्तुओंको भगवत्सेवामें युक्त कर सकते

हैं। अन्यथा उनका विष साधकजीवनके लिए प्राणघातक स्वरूप है। श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन।
मलिन मन हइले, नहे कृष्णेर स्मरण॥
(चै॰ च॰ अ॰ ६/२७८)

प्रतिग्रह कभु ना करिबे राजधन।
विषयीर अन्न खाइले दुष्ट हय मन॥

मन दुष्ट हइले नहे कृष्णेर स्मरण।
कृष्णस्मृति बिना हय निष्फल जीवन॥
(चै॰ च॰ आ॰ १२/५०-५१)

(ङ) श्रीगुरुदेव और जीवका स्वरूप

सन् १९५५, कार्त्तिक-व्रत नियमसेवाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आनुगत्यमें चौरासी कोस व्रजमण्डल-परिक्रमा सम्पन्न हुई। परिक्रमाके समाप्त होनेपर एक दिन अन्यान्य गौड़ीय मठोंसे श्रीलप्रभुपादके चरणाश्रित कुछ प्रवीण संन्यासीगण श्रीगुरुदेवसे मिलने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा आये। श्रीगुरुदेवके साथ भी श्रीलप्रभुपादके कुछ वरिष्ठ संन्यासी-ब्रह्मचारीगण परिक्रमामें सम्मिलित हुए थे। अतः उस दिन सतीर्थोंके एकत्र उपस्थित रहनेके कारण एक विशेष इष्टगोष्ठी सम्पन्न हुई। उस इष्टगोष्ठीमें श्रीगुरुदेवके अतिरिक्त प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी (श्रीश्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज), श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी (श्रीश्रीमद्भक्तिआलोक परमहंस महाराज), श्रीश्रीमद्भक्तिविवेक हृषीकेश महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रापण दामोदर महाराज, श्रीश्रीभक्तिजीवन जनार्द्दन महाराज प्रमुख संन्यासी-ब्रह्मचारीगण उपस्थित थे। इनमें श्रीपाद भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज कम उम्रके थे, किन्तु थे बहुत ही तत्त्व-जिज्ञासु। उन्होंने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर

कहा—"जीव-स्वरूपके सम्बन्धमें मुझे बहुत दिनोंसे एक शङ्का है। मैंने बहुत-से गोस्वामी-ग्रन्थोंका अवलोकन किया, अपने अग्रज गुरुभ्राताओंसे भी पूछा, किन्तु वह शङ्का अभी तक दूर नहीं हुई। श्रीचैतन्यचरितामृतमें सनातन-शिक्षाके प्रसङ्गमें जीवको कृष्णका नित्य दास और तटस्था-शक्तिसे प्रकाशित बताया गया है—

जीवेर स्वरूप हय नित्य-कृष्णदास।
कृष्णेर तटस्थाशक्ति भेदाभेद-प्रकाश॥

"इस पयारके द्वारा यह प्रतीत होता है कि जीवके नित्य स्वरूपमें ही कृष्णदासत्व निहित है। तब उसके स्वरूपमें उसकी सेवा, नाम, रूप आदि भी किसी-न-किसी रूपमें अवश्य रहती है, जो अभी मायाके द्वारा ढकी हुई है। दूसरी ओर वह तटस्थाशक्तिका परिणाम है, अतः उसका स्वरूप भी तटस्थ होना चाहिये। 'गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता बीज' (चै॰ च॰ म॰ १९/१५१) इसके द्वारा प्रतीत होता है कि जीवका स्वरूप अणुचित् है, गुरु और कृष्णके प्रसादसे उसे भक्तिलताका बीज प्राप्त होता है एवं उसीके अनुरूप उसकी सिद्धि होती है।

"श्रीलनरोत्तम ठाकुरने भी कुछ ऐसा ही कहा है—'साधने भाविबे जाहा सिद्धदेहे पाइबे ताहा रागपथेर एइ से उपाय।'

"इसके द्वारा भी यह सूचित होता है कि साधुसङ्गके आनुगत्यमें जैसी साधना होगी, उसीके अनुरूप उसकी सिद्धि होगी।

"साधारण दृष्टिसे इनमें विरोधाभास दीखता है। अतएव जीवके नित्य स्वरूपमें किसी विशेष सेवाकी वृत्ति आदि नित्य है और उसीके अनुरूप सिद्धि होती है अथवा साधनके अनुरूप सिद्धि होती है? मेरी इस शङ्काको दूर कीजिये।"

प्रपूज्यचरण यायावर महाराजजी इस प्रश्नको सुनकर बड़े आनन्दित हुए और पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजसे इसका उत्तर देनेके लिए निवेदन किया। प्रपूज्यचरण श्रीधरमहाराजजी वैष्णवशास्त्रोंके पारङ्गत विद्वान एवं दार्शनिक पण्डित थे। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक प्रश्नका उत्तर देना आरम्भ किया—

"जीव स्वरूपतः चित्सूर्यरूपी श्रीकृष्णके अणुचित् कणके समान है। इसे गोस्वामी ग्रन्थोंमें ब्रह्मका विभिन्नांश तत्त्व बतलाया गया है। विभिन्नांश

तत्त्वका तात्पर्य यह है कि अघटन-घटन-पटीयसी शक्तियुक्त भगवान् जब केवल अपनी अणुचित् जीवशक्तिके साथ युक्त रहते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है उसे विभिन्नांश जीव कहते हैं, किन्तु वे ही भगवान् जब अपनी समस्त शक्तियोंके साथ होते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है, वह स्वांश कहलाता है। अतः विभिन्नांश जीव नित्य हैं। उनमें भगवत्सेवाकी परिपाटी, नाम, रूप आदि अवश्य ही हैं। मायाके द्वारा आच्छादित रहनेके कारण जीवका चिन्मयस्वरूप माया द्वारा आच्छादित रहता है। भगवत्कृपासे साधुसङ्गमें भजन करते-करते मायाकी निवृत्ति होनेपर जिसका जैसा स्वरूप है, वैसा ही प्रकटित होता है। परन्तु यह भी निश्चित है कि साधुसङ्गके बिना उसकी मायाकी निवृत्ति नहीं हो सकती तथा जीवके स्वरूपका उन्मेष भी नहीं हो सकता है। अतएव साधुसङ्ग भी अपरिहार्य है। साधुसङ्गके अनुरूप ही यदि जीवके स्वरूपका उन्मेष होना मान लिया जाय, तो इसमें बहुत-सी विसङ्गतियाँ दीख पड़ती हैं। जैसे—श्रीमन्महाप्रभु या उनके परिकरोंके सङ्गसे भी अनुपम गोस्वामी और मुरारि गुप्तका हृदय नहीं बदल सका। मुरारि गुप्तजीको श्रीरामचन्द्रजीका परिकर हनुमान माना गया है। श्रीमन्महाप्रभुने हरिकथाके माध्यमसे इनके निकट श्रीरामचन्द्रकी अपेक्षा श्रीकृष्णको अधिक माधुर्यमण्डित एवं समस्त अवतारोंका अवतारी बतलाया। महाप्रभुकी बात सुनकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर श्रीकृष्णका भजन करनेका सङ्कल्प किया, किन्तु दूसरे दिन श्रीमहाप्रभुके सामने रोने लगे और बोले—'मैंने आपके सामने श्रीकृष्णका भजन करनेका सङ्कल्प लिया था, किन्तु रातभर मैं सो नहीं सका। मैंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मस्तक अर्पित कर रखा है। मैं उन्हें त्याग नहीं सकता। दूसरी ओर आपके वचनोंका उल्लंघन नहीं कर सकता। दोनों ही स्थितियोंमें मेरे प्राण निकल जायेंगे।' ऐसा कहते-कहते वे श्रीमहाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े।

"श्रीमन्महाप्रभुने उन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया और कहा—'तुम्हारा जीवन धन्य है। तुम श्रीरामचन्द्रके नित्य परिकर हो। तुम जैसे उनकी सेवा कर रहे हो, तुम्हारे लिए वही श्रेयस्कर है। तुम्हारे भावोंको जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।'

"दूसरी ओर श्रीचैतन्यमहाप्रभु दक्षिण भ्रमणके समय श्रीरङ्गममें श्रीव्येङ्कट भट्ट, श्रीत्रिमल्ल भट्ट, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती और व्येङ्कट भट्टके पुत्र गोपाल भट्टसे मिले। कथा प्रसङ्गमें श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंसे श्रीकृष्णस्वरूपके माधुर्य आदिकी उत्कर्षताका श्रवण कराते हुए व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी चारु-उत्कर्षता प्रमाणित की, जिससे इन सबका हृदय बदल गया और सभी कृष्णमन्त्रमें दीक्षित होकर व्रजभावके अनुसार कृष्णसेवामें नियुक्त हुए।

"इसमें लक्ष्य करनेका एक विषय यह है कि हमारे गोस्वामियोंके विचारसे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती व्रजलीलामें तुङ्गविद्या सखी हैं तथा गोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीगुणमञ्जरी हैं। ये दोनों किसी लीलाके उद्देश्यसे दक्षिण भारतमें आविर्भूत होकर श्री सम्प्रदायमें दीक्षित होकर साधन-भजन कर रहे थे। ये स्वरूपतः व्रजकी गोपी थे। अपने पूर्व जीवनमें श्री सम्प्रदायमें दीक्षित होनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुके सङ्गप्रभावसे पुनः श्रीकृष्णसेवामें आकर्षित हुए।

"इसी प्रकार श्रीरूप-सनातनने अपने अनुज श्रीबल्लभ या अनुपमको श्रीकृष्णस्वरूपका सौन्दर्य, माधुर्य एवं प्रेमविलासका चरमोत्कर्ष बताकर उन्हें कृष्णभजन करनेका परामर्श दिया। अनुपम दोनोंकी बातें सुनकर बड़े ही प्रभावित हुए और उन्होंने कृष्णमन्त्रकी दीक्षा लेकर कृष्णभजन करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु दूसरे दिन प्रातः रोते-रोते अपने अग्रजोंके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मैंने अपना मस्तक बेच दिया है। आपलोग कृपा करें कि मैं जन्म-जन्मान्तरोंमें उनके श्रीचरणोंकी सेवा करूँ। उनके श्रीचरणोंको त्यागनेकी चिन्ता करते ही मेरा हृदय फट जाता है—

रघुनाथेर पादपद्म छाड़ान न जाय।
छाड़िवार मन हैले प्राण फाटि जाय॥

(चै॰ च॰ अ॰ ४/४२)

"छोटे भाईकी बात सुनकर श्रीरूप-सनातन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें साधुवाद देते हुए अपने आलिङ्गनपाशमें बाँध लिया।

"इससे यह प्रतीत होता है कि साधुसङ्गसे जीवके स्वरूपोन्मेषमें सहायता तो मिलती है, किन्तु साधुसङ्ग उसके स्वरूपको बदल नहीं सकता।"

ऐसा कहते हुए प्रपूज्यचरण श्रीधरमहाराजजीने अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे इस विषयमें कुछ कहनेका अनुरोध किया। श्रीलगुरुदेवने कहा—"हमने जहाँ तक गौड़ीय वैष्णव साहित्यको देखा है और विचार किया है, उससे आपके ही सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। जीवका अपना एक सिद्ध-स्वरूप है। उसके स्वरूपगत नाम, रूप आदि सभी नित्य हैं। अलग-अलग जीवोंका अपना-अपना भिन्न स्वरूप है। मायाके द्वारा आच्छादित होनेपर जीव अपना स्वरूप भूल जाता है। सौभाग्यवश शुद्ध साधुसङ्ग और गुरुकृपा प्राप्त होनेपर क्रमशः माया दूर होने लगती है और उसके स्वरूपका उन्मेष होने लगता है। इस प्रक्रियाके लिए एक प्राकृत उदाहरण दिया जा सकता है। जैसे एक नदीके किनारे आम, कटहल आदि विभिन्न प्रकारके बीज एक ही भूखण्डमें बोकर उन्हें एक ही नदीके पानीसे सींचा जाय, उनपर एक ही सूर्यका प्रकाश लगे, एक ही हवा प्राप्त हो, तो भी उन पृथक्-पृथक् बीजोंसे पृथक्-पृथक् पौधे या वृक्ष होंगे। उनमें फल भी पृथक्-पृथक् ही लगेंगे। एक ही मिट्टी, जल, वायु, प्रकाशमें पालित-पोषित होनेपर भी उन बीजोंसे एक ही तरहके पौधे या फल नहीं हो सकते। यह भी सत्य है कि जल, हवा, सूर्यताप आदिके बिना वे अङ्कुरित होकर पूर्ण स्वरूपको प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि एक प्रकारका सङ्ग पानेपर भी उन अलग-अलग बीजोंका स्वरूपगत वृक्ष, फल और स्वाद आदि ही प्रकाशित होते हैं। यद्यपि बीजमें इनकी अभिव्यक्ति नहीं है, फिर भी अव्यक्त रूपमें अङ्कुर, वृक्ष, पत्ते, डालियाँ, फूल, फल, आयु, स्वाद आदि सभी चीजें विद्यमान हैं। इनका कभी भी व्यभिचार नहीं देखा जाता।

"इसी प्रकार जीवस्वरूपमें अव्यक्त रूपसे स्वरूपगत नाम, रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, स्वभाव सब कुछ अनुस्यूत रहता है। सद्गुरु एवं वैष्णवोंके सङ्गसे जिस समय ह्लादिनी एवं सम्वितका सार जीवस्वरूपपर उदित

होता है, उस समय जीवका जैसा स्वरूप है, क्रमशः वैसा ही प्रकाशित होने लगता है।

"एक दूसरा प्रादेशिक उदाहरण दिया जा सकता है कि एक ही स्वाति नक्षत्रका जलविन्दु सीप, केला, सर्प, हाथी, गोखुर आदिपर पड़नेसे सीपमें मोती, केलेमें कर्पूर, सर्पमें मणि, हाथीमें गजमुक्ता तथा गो-खुरमें गोरोचना उत्पन्न होता है। यहाँ जैसे एक ही जल आधारकी विभिन्नताके कारण विभिन्न वस्तुओंको प्रकट करता है, उसी प्रकार एक ही गुरु या एक ही वैष्णवके सङ्ग-प्रभावसे विभिन्न शिष्योंमें भिन्न-भिन्न रसोपासना एवं सिद्धि दृष्टिगोचर होती है। जैसे जैवधर्ममें श्रीव्रजनाथ एवं विजयकुमारने एक ही गुरु रघुनाथदास बाबाजीसे सब कुछ श्रवण किया। फिर भी उनकी भिन्न-भिन्न रुचियाँ प्रकट हुईं। सिद्धि होनेपर भी व्रजनाथकी सिद्धि सख्यरसमें और विजय कुमारकी सिद्धि मधुररसमें हुई।

"श्रीबृहद्भागवतामृतके अनुसार श्रीनारद गोस्वामी और श्रीउद्धवने गोपकुमारको देखकर गोपकुमारके स्वरूपका निर्णय पहले ही कर लिया कि ये सख्यरसके परिकर हैं। श्रीनारद गोस्वामी, उद्धवजी, हनुमानजी आदि किसीके सङ्गके प्रभावसे इनके स्वरूपगत सख्य भावका परिवर्तन नहीं हुआ। यदि सङ्गसे स्वरूपगत सेवाका परिवर्तन होता तो गोपियोंके सङ्गसे उद्धवका स्वरूप क्यों नहीं परिवर्तित हुआ। श्रीमती यशोदाका भी स्वरूप गोपियोंके सङ्गसे परिवर्तित नहीं हुआ। इसका गूढ़ तात्पर्य यह है कि साधक-अवस्थामें जब तक स्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती, तब तक अपने सङ्गके अनुसार साधक साधन-भजन करता है। किन्तु अनर्थोंके दूर होनेपर उसका स्वरूपगत भाव कुछ-कुछ रुचि आदिके रूपमें—आभासके रूपमें अपना परिचय देने लगता है। श्रीगुरुदेव उसके स्वरूपगत रुचि आदिको लक्ष्यकर वैसे ही सम्बन्ध और एकादश प्रकारके भावोंको इङ्गितकर उन्हें भजनमें अग्रसर कराते हैं।

"कभी-कभी स्वरूपगत उच्च रसका साधक दास्य, सख्य आदि रसके भक्तके सङ्गसे निम्न रसोंकी उपासना कर सकता है। किन्तु बादमें उसकी सन्तुष्टि नहीं होनेपर उच्च सङ्गको पाकर पूर्वगत भावोंका परित्यागकर अपने स्वरूपगत भावोंको प्राप्त करता है।

"इस विषयमें सप्तम गोस्वामी श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके विचार सुस्पष्ट हैं। उन्होंने 'चेतोदर्पणमार्जनं' की व्याख्यामें लिखा है—'चेतोदर्पणमार्जनं इत्यादिना जीवस्य स्वरूपतत्वं विवृतम्। तथा श्रीमज्जीववचरणाः—जीवाख्य-समष्टशक्ति विशिष्टस्य परमतत्त्वस्य खल्वंश एकोजीवः। तथा श्रीमद्वेदान्तभाष्यकारोऽपि—विभुचैतन्यमीश्वरोऽणुचैतन्यं जीवः, नित्यं ज्ञानादि-गुणकत्वं अस्मदर्थत्वं चोभयत्र ज्ञानस्यापि ज्ञातृत्वं प्रकाशस्य रवेः प्रकाश-कत्ववदविरुद्धम्। एतेन जीवस्याणुत्वं चित्स्वरूपत्वं शुद्धाहङ्कार-शुद्धचित्त-शुद्धदेहविशिष्टत्वञ्च ज्ञापितम्। परेशवैमुख्यात् बहिरङ्गभावाविष्टत्वाच्च शुद्धाहङ्कारगत शुद्धचित्तस्याविद्यामलदूषणमपि सूचितम्।

"अर्थात् 'चेतोदर्पणमार्जनम्' इत्यादिके द्वारा जीवके स्वरूपतत्त्वका बोध कराया गया है। इस् विषयमें जीव गोस्वामीका सिद्धान्त यह है कि जीव नामक समष्टिशक्तिसे युक्त परमतत्त्वका एक क्षुद्र अंश जीव कहलाता है। वेदान्तसूत्रके श्रीगोविन्द-भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी ऐसा ही विचार प्रकट किया है—ईश्वर विभु-चैतन्य हैं और जीव अणु-चैतन्य है। ईश्वरमें अखिल कल्याणकारी अनन्त सद्‌गुण नित्य विराजमान रहते हैं। उनमें मैं-पनरूप निर्मल अहङ्कार रहता है। वे ज्ञानस्वरूप और ज्ञाता स्वरूप दोनों हैं। उसी प्रकार जीवका भी अपना एक शुद्ध स्वरूप है। इनमें भी आंशिक गुणसमूह और शुद्ध अहङ्कार होता है। ऐसा होना युक्तिविरुद्ध नहीं है, क्योंकि सूर्यके गुण उसके रश्मि परमाणुओंमें भी देखे जाते हैं। इसी प्रकार परतत्त्वके गुण आंशिक रूपमें जीवोंमें लक्षित होते हैं। परमेश्वरसे विमुख होनेपर मायाके द्वारा जीवका यह शुद्धस्वरूप आच्छादित हो जाता है। पुनः परमेश्वरके प्रति उन्मुख होनेपर जीवोंके शुद्ध स्वरूप और गुणोंको आवृत करनेवाली मायाका आवरण हट जाता है। तदनन्तर उन्हें स्व-स्वरूपका साक्षात्कार होता है। इस सिद्धान्तसे यह स्पष्ट है कि जीव अणुचित् हैं। उनका एक चिन्मय स्वरूप है। उस स्वरूपमें उनका शुद्ध अहङ्कार, शुद्ध चित्त, शुद्ध रूप और सेवा आदिकी परिपाटी भी निश्चित है। श्रवण-कीर्त्तन करते-करते जिस समय साधक-जीवके हृदयमें शुद्धभक्तिका उदय होता है, उस समय भगवत्सेवाके अतिरिक्त अन्यान्य कामना-वासनाओंको दूर करनेवाली ह्लादिनी एवं सम्वित्‌की सारवृत्ति भक्तिदेवी उक्त अविद्याको

दूरकर विद्यावृत्तिके द्वारा जीवके स्थूल और लिङ्गमय दोनों आवरणोंको विनष्ट कर देती है। साथ-ही-साथ जीवके स्वरूपगत शुद्ध चिन्मय शरीरको, यहाँ तक कि अधिकार भेदसे मधुररस आस्वादन योग्य शुद्ध चिन्मय गोपीदेहको भी प्रकट करा देती है—श्रवण-कीर्त्तनादिसाधनसमये यदा शुद्धाभक्तिरुदेति तदा स्वस्याऽविद्यत्वं परिहृत्य विद्यया चिदेतर वितृष्णाजननी सापि जीवस्य स्थूललिङ्गमयसौपाधिकदेहद्वयं विनाश्य तस्य स्वरूपगत शुद्धचिद्देहं अधिकारभेदेन मधुररसास्वादनायतनं गोपिकादेहमपि प्रकटयति।

"प्रेमभक्तिचन्द्रिकामें—'साधने भाविबे जाहा सिद्धदेहे पाइबे ताहा' तथा हरिभक्तिसुधोदयमें—'यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत् स्यात् स तद्गुणः' के विचारोंका सामञ्जस्य करना उचित है। इनका यह तात्पर्य नहीं है कि जीवका स्वरूप स्वच्छ निर्मल काँचके समान है और सङ्गके अनुरूप उसका सिद्धस्वरूप उदित होता है, बल्कि जब बद्धजीव शुद्ध सद्गुरु एवं वैष्णवोंके सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन आदि शुद्धभक्तिका अनुष्ठान करता है, उस समय उस स्वरूप सिद्धा भक्तिके प्रभावसे अविद्याका मल, अनर्थ आदि विदूरित होने लगते हैं तथा जीवके स्वरूपगत लक्षण आभासके रूपमें उदित होने लगते हैं। ऐसे साधकोंके लिए ही श्रील रूपगोस्वामीने स्वजातीय आशय स्निग्ध वैष्णवोंके सङ्गका उपदेश दिया है। दीक्षागुरु, श्रवणगुरु अथवा शिक्षागुरु उस समय साधकके हृदगत लक्षणोंको देखकर उसे भजनमार्गमें उन्नतिके लिए श्रीरागानुगा-मार्गमें वर्णित एकादशभावोंको प्रदान करते हैं। इस प्रकार साधक इस अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहसे भाव भजन करता है, अपने सिद्धस्वरूपको प्रकट करनेके लिए। इसीके उदाहरणस्वरूप श्रीमद्भागवतमें निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्स्वरूपताम्॥

(श्रीमद्भा॰ ७/१/२७)

"अर्थात् एक भृङ्गीकीट अपनेसे दुर्बल तेलचट्टा कीड़ेको जबरदस्ती दीवारपर अपने छिद्रमें बन्द कर देता है और वह भय एवं उद्वेगसे

उस भृङ्गीका चिन्तन करते-करते उसके ही जैसा हो जाता है। यही बात रागानुगीय साधक भक्तोंके सम्बन्धमें भी है। वे भी साधनके समय अन्तश्चिन्तित देहसे श्रीकृष्ण एवं कृष्णके लीला-परिकरोंकी सेवाका चिन्तन करते-करते आविष्ट हो जाते हैं और अन्तमें स्थूल-लिङ्ग शरीरको छोड़कर अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहके अनुरूप व्रजमें जन्म-ग्रहण करते हैं और वैसी सेवाको प्राप्त करते हैं।

"अतः जीवका स्वरूपगत रूप, नाम, भाव बद्ध अवस्थामें भी अव्यक्त रूपसे निहित रहता है। स्वरूपशक्तिकी ह्लादिनी एवं सम्वित्‌की सार वृत्तिकी कृपासे उसका प्रकाशमात्र होता है—'नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता।' साधनके द्वारा सर्वथा नवीन चीजकी प्राप्ति नहीं होती। बल्कि जीवके स्वरूपमें जो नित्य सिद्ध भाव हैं, उन्हें प्रकट कराना ही साधन है।"

इतना सुनकर वैष्णवगण बड़े आह्लादित हुए। विशेषकर श्रीपाद भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज कृतज्ञता व्यक्त करते हुए बोले—"आज हमारा बहुत दिनोंका संशय दूर हो गया। इसके लिए मैं आपलोगोंका चिरऋणी हूँ।"

(च) पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा और भागवत-परम्परा

आजकल कुछ दिनोंसे श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीगुरु-परम्पराके सम्बन्धमें नए-नए प्रश्नोंके आविष्कार हो रहे हैं। कुछ लोगोंका विचार यह है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण मध्व सम्प्रदायमें दीक्षित वैष्णव हैं। वे गौड़ीय वैष्णव नहीं थे। गौड़ीय वैष्णवोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर भी मध्व सम्प्रदायका प्रभाव इनके ऊपर इतना अधिक था कि इन्होंने स्वरचित ग्रन्थोंमें हठपूर्वक श्रीचैतन्यमहाप्रभु एवं उनके अनुगत श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायको मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त किया है। अतः इन्हें श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका आचार्य नहीं माना जा सकता। कुछ अनभिज्ञ लोग कहते हैं—जगद्‌गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादजीने एक नवीन भागवत-परम्पराकी सृष्टि की है। इस भागवत-परम्परामें इन्होंने श्रील

भक्तिविनोद ठाकुरको वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजका शिष्य तथा श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजको श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरका शिष्य बतलाया है। कुछ सहजिया वैष्णव लोग यह भी शङ्का उपस्थित कर रहे हैं कि श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीने स्वयं ही संन्यास ग्रहण किया है, अतः इनकी भी गुरु-परम्परा ठीक नहीं है। इन समस्त आक्षेपोंका परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने सबल युक्तियों एवं शास्त्रोंके सुदृढ़ प्रमाणोंके द्वारा खण्डन किया है। उसका विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

आजकल श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके शिष्य एवं प्रशिष्य सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्ध कृष्णभक्ति और श्रीहरिनामका व्यापक रूपसे प्रचार कर रहे हैं। इनके व्यापक प्रचारसे विश्वके अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेलजियम, कनेडा, आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर आदि प्रधान-प्रधान समस्त राष्ट्रोंमें, नगरों एवं ग्रामों यहाँ तक कि गली-गलीमें हरिनामकी ध्वनि गुञ्जित हो रही है और विदेशी युवक एवं युवतियाँ भी शुद्धभक्तिके अनुशीलनमें बड़े उत्साहके साथ लग रहे हैं। भारतीय वैष्णवोंके साथ मिलकर सर्वत्र हरिनाम-सङ्कीर्त्तन एवं शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं। इससे क्षुब्ध होकर कतिपय अनभिज्ञ नामधारी सहजिया वैष्णवलोग सारस्वत गौड़ीय वैष्णव धाराके प्रति झूठमूठका आक्षेप उपस्थित कर साधारण जनताको दिग्भ्रान्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। श्रील गुरुदेवने गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव नामक स्वरचित प्रबन्धमें इस विषयके एक युक्तिपूर्ण सुसिद्धान्तकी स्थापना की है। हम उस प्रबन्धसे कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं—

(i) भाष्यकारकी गुरु-परम्परा

'भाष्यकारकी गुरु-परम्पराका विचार करनेपर हम जिस ऐतिहासिक सत्यकी उपलब्धि करते हैं' उसे आपलोगोंके निकट वर्णन किया जा रहा है। उन्होंने सर्वप्रथम विरक्त शिरोमणि पीताम्बरदासके निकट भक्तिशास्त्रमें विशेष निपुणता लाभ की। पश्चात् कान्यकुब्जवासी शौक्र ब्राह्मण कुलोद्भूत श्रीराधादामोदरदास नामक एक वैष्णवके निकट

पाञ्चरात्रिकी दीक्षामें दीक्षित हुए। श्रीराधादामोदरदास रसिकानन्द मुरारिके पौत्र थे। उन्होंने एक दूसरे कान्यकुब्जीय ब्राह्मण श्रीनयनानन्ददेव गोस्वामीके निकट दीक्षा ग्रहण की। रसिकानन्द प्रभु भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणके पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परामें चतुर्थ पुरुष हैं। श्रीरसिकानन्द प्रभु श्रीश्यामानन्द प्रभुके शिष्य थे। पहले जिन नयनानन्ददेव गोस्वामीका उल्लेख किया गया है वे श्रीरसिकानन्दके पुत्र थे। श्रीश्यामानन्दके गुरु श्रीहृदय-चैतन्य और हृदय-चैतन्यके गुरु गौरीदास पण्डित थे, श्रीमन्‌नित्यानन्द प्रभुने गौरीदास पण्डितके ऊपर कृपा की थी। श्रीश्यामानन्द प्रभु आचार्य हृदय-चैतन्यके शिष्य होनेपर भी परवर्तीकालमें उन्होंने श्रीजीवगोस्वामीका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीजीवगोस्वामी रूप गोस्वामीके शिष्य और श्रीरूपगोस्वामी श्रीसनातन गोस्वामीके शिष्य थे। श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत परिकर थे।

(ii) भाष्यकारकी शिष्य-परम्परा

श्रीमन्महाप्रभुसे प्रारम्भकर भाष्यकार श्रीबलदेव विद्यभूषण तक की पाञ्चरात्रिक परम्पराका उल्लेख किया गया है। नीचे शिष्य-परम्पराका उल्लेख किया जा रहा है—श्रीउद्धरदास, कहीं-कहीं उद्धवदासका भाष्यकारके शिष्यरूपमें उल्लेख देखा जाने है। किसी-किसी मतसे ये दोनों पृथक् व्यक्ति हैं। जैसा भी हो उद्धवदासके श्रीमधुसूदनदास नामक शिष्य थे। जगन्नाथदास बाबाजी महाराज इन्हीं मधुसूदनदासके शिष्य थे। ये सिद्ध जगन्नाथदासके नामसे कुछ दिन पूर्व माथुरमण्डल, क्षेत्र-मण्डल और गौड़मण्डलमें सार्वभौम वैष्णवके रूपमें प्रसिद्ध हुए। इन सिद्ध जगन्नाथ दास बाबाजी महाराजको ही श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने भागवत-परम्परा क्रमसे भजन शिक्षागुरु रूपमें ग्रहण किया। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने वैष्णव सार्वभौम जगन्नाथदास बाबाजी महाराजके निर्देशानुसार श्रीमन्महाप्रभुके जन्मस्थल श्रीधाम मायापुरका प्रकाश किया था। श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी महाराजके शिक्षागुरु या भजनगुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर थे। श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीने मेरे गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' को दीक्षामन्त्र आदि प्रदानकर अपने शिष्यके रूपमें वरण किया

पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा तथा भागवत-परम्परा

श्रीमाधवेन्द्रपुरी
(शिक्षागुरु) (दीक्षागुरु)
श्रीईश्वरपुरी
श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीचैतन्य महाप्रभु
श्रीसनातन गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभु
श्रीगौरीदास पण्डित श्रीरूप गोस्वामी
श्रीहृदयचैतन्य श्रीजीव गोस्वामी श्रीलोकनाथ गोस्वामी
(दीक्षागुरु) (शिक्षागुरु) (दीक्षागुरु)

श्रीश्यामानन्द प्रभु
श्रीरसिकानन्द श्रीनरोत्तम ठाकुर
श्रीनयनानन्द श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्ती
श्रीराधादामोदर श्रीकृष्णचरण चक्रवर्ती
(दीक्षागुरु)
श्रीराधारमण चक्रवर्ती
श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती (शिक्षागुरु)

श्रीबलदेव विद्याभूषण
श्रीउद्धर या उद्धवदास श्रीजाह्नवा ठाकुरानी
(की परम्परामें)
श्रीमधुसूदन दास
श्रीजगन्नाथ दास श्रीविपिनबिहारी गोस्वामी (दीक्षागुरु)

श्रीभागवतदास
श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी श्रीभक्तिविनोद ठाकुर
(दीक्षागुरु) (शिक्षागुरु)
श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी
श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

श्रीमाधवेन्द्रपुरी
श्रीईश्वरपुरी
श्रीअद्वैताचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभु
यदुनन्दनाचार्य श्रीस्वरूपदामोदर, श्रीरूप गोस्वामी
(दीक्षागुरु) (शिक्षागुरु)
श्रीरघुनाथदास गोस्वामी

था, जो लोग इस परम्पराको स्वीकार करनेमें अक्षम हैं वे श्रीतोतराम बाबाजी महाराज द्वारा उल्लिखित तेरह प्रकारके अपसम्प्रदायोंमें परिगणित हैं अथवा चौदहवें अपसम्प्रदायके सृष्टिकर्त्ता हैं।

(iii) पाञ्चरात्रिक-परम्परा एवं भागवत-परम्परा

उल्लिखित गुरु-परम्परासे हम जान पाते हैं कि श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत श्रीश्यामानन्द परिवारके अन्तर्गत हैं। आचार्य श्रीश्यामानन्दके श्रीजीवगोस्वामीका आनुगत्य स्वीकार करनेके कारण तथा श्रीजीवगोस्वामीके एकान्त रूपानुग होनेके कारण श्रीबलदेव विद्याभूषण भी रूपानुग वैष्णव हैं। जो लोग बलदेव विद्याभूषणको रूपानुग नहीं मानकर श्यामानन्द परिवार भुक्त कहकर यह मानते हैं कि वे उन्नत उज्ज्वलरसके परमोच्चतम सेवाभावके अधिकारी नहीं हैं; वे निश्चय ही भ्रान्त एवं अपराधी हैं। श्रीबलदेव विद्याभूषणके श्रीदामोदरदासके निकट पाञ्चरात्रिक दीक्षामें दीक्षित होनेपर भी उन्होंने श्रीमद्भागवत एवं गोस्वामियोंके भक्तिशास्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण की थी। पाञ्चरात्रिक-परम्परासे भागवत-परम्पराका श्रेष्ठत्व है। भागवत-परम्परा भजन-निष्ठाके तारतम्यके ऊपर प्रतिष्ठित है। भागवत-परम्परामें पाञ्चरात्रिक-परम्परा अनुस्यूत रहनेके कारण भागवत-परम्पराका माधुर्य एवं श्रेष्ठत्व है। इसमें कालगत व्यवधान नहीं होता। शुद्धभक्तिके विचारसे पाञ्चरात्रिक और भागवत दोनों ही मत एकार्थ प्रतिपादक हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत (म॰ १९/११९) में कहा गया है—पाञ्चरात्रे भागवते एइ लक्षण कय। प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय जिस प्रकार श्रीरूपगोस्वामीके अनुगतजनके रूपमें अपना परिचय देकर आचार्य श्रीजीवगोस्वामीके चरणोंमें अपराध सञ्चय करते हैं, उसी प्रकार आजकल जाति गोस्वामी, उनका उच्छिष्ट ग्रहण करनेवाले कतिपय सहजिया कर्ताभजा किशोरीभजा, भजनखाजा, सम्प्रदायके लोग चक्रवर्ती ठाकुरके अनुगत होनेका अभिमान करते हुए भी भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणके प्रति नाना प्रकारके अवज्ञासूचक वाक्योंका प्रयोगकर अत्यन्त घृणित एवं नरकगामी हो रहे हैं।

हम यहाँपर पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा एवं भागवत-परम्पराकी तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसके द्वारा पाठकवर्ग श्रीभागवत-परम्पराका

वैशिष्ट्य अच्छी तरह समझ सकेंगे तथा इसके द्वारा पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा भागवत-परम्पराके अन्तर्भुक्त है—यह भी समझ सकेंगे।

इस तालिकाके द्वारा हम श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर तथा श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर आदिकी पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा तथा भागवत-परम्पराका उल्लेख करेंगे।

श्रीश्यामानन्द प्रभु—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परामें श्रीनित्यानन्द प्रभुके शिष्य गौरीदास पण्डित हैं और उनके शिष्य हृदयचैतन्य श्यामानन्द प्रभुके दीक्षागुरु हैं। भागवत-परम्परामें श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिष्य श्रीसनातन गोस्वामी, उनके शिष्य रूप गोस्वामी, उनके शिष्य श्रीजीव गोस्वामी हैं। इन्हीं श्रीजीव गोस्वामीके शिक्षा-शिष्य हैं—श्रीश्यामानन्द प्रभु। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि श्रीजीवगोस्वामी तत्त्व, रस, भजन आदि सभी विषयोंमें श्रीहृदयचैतन्यसे श्रेष्ठ थे। इसीलिए श्रीहृदयचैतन्यने स्वयं ही उन्नत भजनशिक्षाके लिए श्रीश्यामानन्द प्रभुको श्रीजीव गोस्वामीके पास भेजा और श्रीश्यामानन्द प्रभुने श्रीजीव गोस्वामीका आनुगत्य स्वीकार किया। अतः यहाँ यह विचारणीय है कि श्रेष्ठत्व कि सका है—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराका अथवा भागवत-परम्परा का?

श्रीनरोत्तम ठाकुर—इसी प्रकार पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परामें श्रीनरोत्तम ठाकुरके गुरु हैं—श्रीलोकनाथ गोस्वामी। किन्तु श्रीलोकनाथ गोस्वामीके पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरुका उल्लेख नहीं मिलता। श्रीगौड़ीय-वैष्णव-अभिधान आदिमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको इनका गुरु बतलाया गया है, किन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि श्रीमन्महाप्रभुने किसीको पाञ्चरात्रिक प्रणालीके अनुसार शिष्य नहीं बनाया। अतः यदि श्रीमन्महाप्रभु श्रीलोकनाथ गोस्वामीके गुरु हैं, तो वह भागवत-परम्पराके आधारपर ही हैं। दूसरी ओर श्रीनरोत्तम ठाकुर श्रीलोकनाथ गोस्वामीके पाञ्चरात्रिक शिष्य होनेपर भी भागवत-परम्परामें वे भी श्रीजीव गोस्वामीके ही शिष्य हैं और उन्हींका आनुगत्य करते हुए भजनशिक्षामें निष्णात हुए।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी—श्रीरघुनाथ दास गेस्वामी पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीयदुनन्दनाचार्यके शिष्य हैं, जो कि श्रीअद्वैताचार्यकी पाञ्चरात्रिक शाखामें अवस्थित हैं। दूसरी ओर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके

जीवनचरित्रपर यदि हम गम्भीरतासे विचार करें, तो पाते हैं कि श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरूप गोस्वामीकी भजन-शिक्षाका अमिट प्रभाव सुस्पष्ट है। श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरूप गोस्वामी भागवत-परम्परामें इनके गुरु हैं। यहाँ भी यदि हम पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा और भागवत-परम्पराकी तुलना करें, तो भागवत-परम्पराका श्रेष्ठत्व सूर्यकी भाँति प्रकाशमान पाते हैं।

श्रीबलदेव विद्याभूषण—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराके विचारसे श्रीश्यामानन्द प्रभुकी परम्परामें श्रीराधादामोदरके ये पाञ्चरात्रिक शिष्य हैं। दूसरी ओर भागवत-परम्पराकी दृष्टिसे ये श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके शिष्य हैं। श्रीराधादामोदरने स्वयं ही श्रीबलदेव विद्याभूषणको श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके निकट श्रीमद्भागवत एवं अन्यान्य गोस्वामी-ग्रन्थोंके अनुशीलन तथा उच्च भजनशिक्षाके लिए भेजा था। श्रीलबलदेव विद्याभूषणके जीवनमें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका आनुगत्य सर्वविदित है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके आनुगत्यमें ही इन्होंने गलतागद्दीमें श्रीवैष्णवोंको परास्तकर श्रीश्रीराधागोविन्दजीकी सेवा-पूजाको अक्षुण्ण रखा तथा उन श्रीगोविन्ददेवका प्रसाद प्राप्तकर श्रीगोविन्दभाष्यकी रचना की, जो श्रीरूप गोस्वामीके आराध्य देव थे। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके रूपानुगत्वके विषयमें संशयका कोई स्थल ही नहीं है। अतः श्रीचक्रवर्ती ठाकुरके अनुगत होनेके कारण इनके भी रूपानुगत्वमें कोई संशय नहीं है। दूसरी ओर यह सर्वविदित तथ्य है कि इन्होंने श्रीगोविन्ददेवकी कृपा प्राप्तकर उन्हींकी सेवाको अक्षुण्ण रखा, जो कि श्रीरूपगोस्वामीके प्राणधनस्वरूप थे। अतः इस दृष्टिकोणसे भी श्रीरूपगोस्वामी और उनके आराध्यदेव श्रीगोविन्ददेवकी कृपा प्राप्त करनेके कारण क्या इनके रूपानुगत्वमें कोई संशय रह जाता है?

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराके विचारसे श्रीविपिन बिहारी गोस्वामी इनके दीक्षागुरु हैं, जो श्रीश्रीजाह्नवा ठाकुरानीकी पाञ्चरात्रिक-परम्परामें अवस्थित हैं। दूसरी ओर वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज भागवत-परम्परामें इनके भजनशिक्षा गुरु हैं। जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज श्रीबलदेव विद्याभूषणकी परम्परामें प्रसिद्ध मधुसूदन दास बाबाजी महाराजके शिष्य हैं। श्रीविपिनबिहारी

गोस्वामीसे वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजका तत्त्वज्ञान-भजनशिक्षा आदि विषयोंमें श्रेष्ठत्व बतानेकी आवश्यकता ही नहीं है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके जीवनमें भी श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके आनुगत्यकी छाप है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराके विचारसे इनके दीक्षागुरु श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज हैं। श्रील बाबाजी महाराज पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीजाह्नवा ठाकुरानीकी शाखामें अवस्थित हैं। श्रील बाबाजी महाराजने वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके शिष्य श्रीभागवत दास बाबाजी महाराजसे वेष ग्रहण किया। अतः भागवत-परम्परामें श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजकी शाखामें हुए। इस प्रकार श्रील सरस्वती ठाकुर पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीजाह्नवा ठाकुरानीकी परम्परामें तथा भागवत-परम्परामें श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजसे जुड़े हुए हैं।

दूसरी ओर इनके जीवनचरित्रपर प्रकाश डालनेसे यह सिद्ध होता है कि इन्होंने श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके आचार, विचार, भजनप्रणाली एवं उनकी आकांक्षापूर्तिको ही अपने जीवनका उद्देश्य बनाया। अतः भागवत-परम्परामें श्रीभक्तिविनोद ठाकुर इनके गुरु हुए, जिनके गुरु (भागवत-परम्परामें) श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज थे। अतः श्रीगौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य श्रील सरस्वती ठाकुरकी गुरु-परम्परापर अँगुली उठानेका तनिक भी अवकाश नहीं मिलता है।

पाञ्चरात्रिक-परम्परा एवं भागवत-परम्पराके विषयमें और भी कतिपय विचारणीय तथ्य हैं—

(१) यदि पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरु स्वरूपतः (अपने सिद्ध स्वरूपमें) शिष्यसे अपेक्षाकृत निम्न रसमें अवस्थित हो, तो वे गुरु अपने उस शिष्यको किस प्रकार उन्नत रसकी भजनशिक्षा देंगे? अतः इस स्थितिमें उन्नत भजनशिक्षाके लिए शिष्यको अन्यत्र वैसे भजनशील वैष्णवकी शरणमें जाना पड़ेगा, जो उसे वैसी उच्च भजनशिक्षा दे सकते हैं। उदाहरणस्वरूप श्रीहृदयचैतन्य स्वरूपतः कृष्णलीलामें सख्यरसके परिकर थे, किन्तु उनके शिष्य श्रीश्यामानन्द प्रभु (दुःखी कृष्णदास) मधुररसके

परिकर थे। अतएव श्रीहृदयचैतन्यने स्वयं ही उन्हें श्रीजीव गोस्वामीके समीप मधुर-रसोचित-भजनशिक्षाके लिए भेजा था।

(२) यदि पाञ्चरात्रिक-परम्परामें गुरु और शिष्य एक ही रसमें हों, किन्तु गुरु उतने उन्नत अधिकारमें न हों, तो शिष्यको उच्चतर भजनशिक्षाके लिए अन्य उत्तम भागवतकी शरणमें जाना पड़ेगा, जो कि भागवत-परम्परामें उनके गुरु कहे जायेंगे।

अतः इन दो विचारोंसे हम देखते हैं कि पाञ्चरात्रिक प्रणालीकी अपनी कुछ त्रुटियाँ हैं, किन्तु भागवत-परम्परा इन सबसे मुक्त सर्वथा निर्दोष है।

(३) समस्त गौड़ीय सम्प्रदाय अपनेको श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत मानता है और श्रीमन्महाप्रभुको जगद्गुरुके रूपमें मान है। किन्तु उनके इस आनुगत्यका तथा महाप्रभुको गुरु माननेका आधार क्या है? श्रीमन्महाप्रभु पाञ्चरात्रिक-परम्परामें किसीके भी गुरु नहीं हैं, यद्यपि वे स्वयं पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीईश्वरपुरीके शिष्य हैं। श्रीमन्महाप्रभुने किसीको दीक्षामन्त्र दिया हो, ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। तथापि यदि गौड़ीय वैष्णव समाज श्रीचैतन्य महाप्रभुके आनुगत्य और शिष्यत्वको स्वीकार करता है, तो उसका एक ही आधार है और वह है—भागवत-परम्परा।

(४) प्रत्येक गौड़ीय वैष्णव अपनेको रूपानुग कहने गर्वका बोध करता है। परन्तु विचारणीय तथ्य यह है कि श्रीरूप गोस्वामीने कितने लोगोंको पाञ्चरात्रिक विधिसे अपना शिष्य बनाया? एकमात्र जीव गोस्वामी ही उनके दीक्षा शिष्य हैं। तथापि गौड़ीय वैष्णव समाज किस आधारपर श्रीरूप गोस्वामीको अपना गुरु स्वीकार करता है। स्वयं श्रीरूप गोस्वामी भी श्रीचैतन्य महाप्रभुके दीक्षित शिष्य नहीं हैं। अतः रूपानुगत्व और रूपानुगत्व द्वारा चैतन्यानुगत्व एक साथ कैसे सम्भव है? स्वयं श्रीसनातन गोस्वामी, जो श्रीरूप गोस्वामीके भी शिक्षागुरु हैं अपनेको रूपानुग कहनेमें कोई दुविधा बोध नहीं करते। इन सबका एक ही आधार है—भागवत-परम्परा। भागवत-परम्पराके आधारपर ही श्रीरूप गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिष्य हैं, और गौड़ीय वैष्णव समाज श्रीरूप गोस्वामीको अपना गुरु मानता है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीके पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरु कौन हैं? उन्होंने अपने किसी ग्रन्थमें अपने पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरुका नामोल्लेख नहीं किया है। उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतमें अपने शिक्षागुरुओंके नामोंका उल्लेख किया है—

एई छय गुरु शिक्षागुरु जे आमार।
ताँ सबार पादपद्मे कोटि नमस्कार॥

और श्रीचैतन्यचरितामृतके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें लिखा है—

श्रीरूप-रघुनाथपदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥

इसके द्वारा इन्होंने श्रीरूप और रघुनाथदास गोस्वामियोंको ही विशेष रूपमें अपना शिक्षागुरु माना है। अतएव इनके गुरु माननेका आधार भी भागवत-गुरु-परम्परा ही है।

इन तथ्योंसे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भागवत-परम्परा पाञ्चरात्रिक-परम्पराको क्रोड़ीभूतकर सर्वदा देदीप्यमान है। जो इन तथ्योंकी अनदेखीकर श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर, श्रीसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके रूपानुगत्व और गुरुप्रणालीपर कटाक्ष करते हैं, वे निश्चय ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके घोर विरोधी और कलिके गुप्तचर हैं।

अतएव परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने बलदेव विद्याभूषणकी गुरुप्रणाली तथा भागवत एवं पाञ्चरात्रिक परम्पराके विषयमें जो विचार लिखे हैं, वे युक्तिसङ्गत और शास्त्रसिद्धान्त सम्मत हैं।

(छ) रसिक एवं भावुक भागवत

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव एक ओर परम गम्भीर एवं वज्रसे भी कठोर थे। दूसरी ओर परम रसिक, महाभावुक एवं पुष्पसे भी अधिक मृदुस्वभावके थे। भक्तिविरोधी केवलाद्वैतवादियों, स्मार्तों, जाति-गोस्वामियों, जाति-वैष्णवों एवं प्राकृत सहजिया अपसम्प्रदायके लोगोंके लिए वज्रकी अपेक्षा भी अधिक कठोर थे। दूसरी ओर गुरुसेवानिष्ठ सतीर्थों, निष्कपट शिष्योंके प्रति पुष्पसे भी अधिक मृदुस्वभावसम्पन्न थे।

श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलाके पश्चात् दुःसङ्गके कारण विद्याभूषण एवं विद्याविनोद श्रील प्रभुपादके घोर विरोधी हो गये। श्रील प्रभुपादके सहोदर भ्राता श्रीमद्भक्तिकेवल औडुलोमि महाराजने भी इन दोनोंका आनुगत्य किया। श्रील गुरुदेवने इनके विचारोंका घोर प्रतिवाद किया। सहोदर भ्राता एवं सतीर्थ होनेपर भी श्रील गुरुदेवने श्रीमद् औडुलोमि महाराजके विचारोंका कठोर प्रतिवाद करते हुए कहा था कि श्रील गुरुपादपद्मके विरोधियोंका मैं मुख-दर्शन नहीं करना चाहता। औडुलोमि महाराज मेरे पूर्वाश्रमके सहोदर भ्राता हैं तथा पारमार्थिक जीवनमें मेरे सतीर्थ-गुरुभ्राता हैं। फिर भी अब उनसे मेरा कोई भी सम्पर्क नहीं है। जहाँ कहीं भी किसीने जगद्गुरु श्रील सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके विचारोंका प्रतिवाद किया, इन्होंने अकाट्य युक्तियों एवं सुदृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके बलपर उनका खण्डन किया। हम यहाँ उनके भावुकता एवं रसिकताका भी दो-एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

(अ) श्रील गुरुमहाराज अपने प्रकट समयमें प्रतिवर्ष श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके समय श्रीधाम मायापुर जाते थे। अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपादके समाधि-पीठके सामने हजारों-हजारों श्रद्धालु यात्रियोंके सामने जब अपने परमाराध्यतम गुरुदेवकी महिमाका वर्णन करना आरम्भ करते, तब उनकी गुणावलीका स्मरणकर इतने भावुक हो जाते कि उनका गला भर जाता, वे फूट-फूटकर रोने लगते। उनके शरीरपर अष्टसात्त्विक भावसमूह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगते। बोलनेमें असमर्थ होनेके कारण वे हमलोगोंको कुछ बोलनेके लिए इङ्गित करते।

(आ) श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ाकी बात है, श्रील गुरुदेव अपनी भजनकुटीके बरामदेमें बैठे हुए हरिनाम कर रहे थे। हमलोग दो-चार मठवासी उनके समीप बैठे थे। प्रसङ्गवशतः वे व्रजकी मधुर-भक्तिके विषयमें समझा रहे थे। यथार्थतः व्रजरमणियाँ ही मधुररसकी परिकर हैं। ये सभी परकीया भाववाली हैं। यद्यपि इनमें भी बहुत-से विभाग हैं, फिर भी ये सभी मधुररसकी परकीया नायिकाएँ हैं। द्वारका पुरीकी महिषियाँ, श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजी तथा वैकुण्ठकी महालक्ष्मी मधुररसकी नायिकाएँ नहीं हैं। ये सभी दास्यरसकी सेविकाएँ हैं। बीचमें मैंने प्रश्न किया—"रसाचार्य श्रील रूप गोस्वामीने श्रीउज्ज्वलनीलमणिमें

तीन प्रकारकी नायिकाओंका वर्णन किया है—साधारणी, समञ्जसा और समर्था। मथुराकी कुब्जा साधारणी, द्वारकाकी रुक्मिणी एवं सत्यभामा आदि समञ्जसाके अन्तर्गत हैं एवं व्रजगोपियोंको समर्थाके अन्तर्गत दिखलाया गया है। इनमेंसे द्वारकाकी महीषियोंको स्वकीया एवं व्रजरमणियोंको परकीया मधुररसका परिकर बताया गया है, अतः द्वारकाकी महिषियों एवं श्रीमती सीताजीको स्वकीया मधुररसका परिकर माननेमें हानि क्या है?"

उन्होंने उत्तर दिया—"इन गम्भीर विचारोंको तुमलोग अभी हृदय००म नहीं कर सकते। अभी मेरे द्वारा बतलाये जानेपर भी यह तुमलोगोंके लिए बोधगम्य नहीं होगा। जहाँ इष्टके प्रति ऐश्वर्य-भावयुक्त प्रीति होती है, वहाँ दास्यप्रेम ही प्रधान होता है। लक्ष्मी, सीताजी एवं द्वारकाकी महिषियोंमें अपने-अपने इष्टदेवके प्रति परमैश्वर्ययुक्त प्रीति होती है। वहाँ लौकिक सद्बन्धुवत् ऐश्वर्यविहीन शुद्ध माधुर्यप्रेम नहीं होता। वहाँ सदैव सम्भ्रम भाव बना रहता है। अतः हनुमान, अर्जुन, उद्धव आदि दास्य भक्तोंकी अपेक्षा इनकी प्रीति कुछ उन्नत होनेपर भी महिषियोंके भावको शुद्ध माधुर्य नहीं कहा जा सकता है। श्रील जीव गोस्वामीने तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने उज्ज्वलनीलमणिकी अपनी-अपनी टीकाओंमें इस विषयका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। इसीलिए श्रीचैतन्यचरितामृतमें 'गोपीप्रेम' की विशेष महत्ता दिखलायी गयी है। शुद्ध वैष्णवोंके आनुगत्यमें कुछ दिन भजन करनेपर उनकी कृपासे इन गम्भीर विषयोंकी उपलब्धि सम्भव है।

(इ) एक समय श्रील गुरुपादपद्म कार्त्तिकके महीनेमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पधारे थे। एक दिन अपनी भजनकुटीमें बैठे हुए भावपूर्वक हरिनाम कर रहे थे। मैं वहीं बैठकर श्रीगोपालचम्पूमें श्रीदामोदर-बन्धनका प्रसङ्ग पढ़ रहा था। मैं उसे पढ़कर जीव गोस्वामीके विचारोंके प्रति इतना आकर्षित हुआ कि अपनेको रोक न सका। ग्रन्थको हाथोंमें लेकर श्रील गुरुदेवके सम्मुख खड़ा होकर कहने लगा—"श्रीजीव गोस्वामी अपने समयके एक महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता महापुरुष थे। साथ ही वे एक अप्राकृत रसिक कवि भी थे। साधारण जगत्में पाण्डित्य और कवित्वका सम्मिलन नितान्त दुर्लभ होता है। परन्तु श्रीजीव गोस्वामीके

आलोक-सामान्य जीवनमें इन दोनोंका आश्चर्यजनक सम्मिलन देखा जाता है। श्रील जीव गोस्वामीमें, गोपालचम्पूके दामोदर-बन्धन-लीलाके प्रसङ्गमें इन दोनों गुणोंका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।" यह कहकर मैं गोपालचम्पूसे वह प्रसङ्ग पढ़कर उन्हें सुनाने लगा—

यशोदा मैयाने बड़ी तेजीसे दौड़कर राजमार्गपर भागते हुए बालकृष्णको एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथमें एक छोटी-सी लठिया लेकर कृष्णकी भर्त्सना करने लगी—"मैं तुम्हें पीटूँगी; तू घर-घरमें चोरी करता है, तू चोर है।"

कृष्ण—"मैया री! मुझे मत मार! चोर तो तुम्हारे पिताके गोत्रमें उत्पन्न होते हैं, मेरे पिताके गोत्रमें नहीं। मैं चोर नहीं हूँ।"

मैयाने मुस्कुरा दिया और बोलीं—"कैसे खण्डित हुआ यह दधिभाण्ड?"

कृष्ण—"यह तो है परमेश्वरका दिया हुआ दण्ड।"

मैया—"माखन किसने खिलाया बन्दरोंको?"

कृष्ण—"जिसने बनाया इन बन्दरोंको"

मैया (क्रोधपूर्वक हँसती हुई)—"ठीक ठीक बता! मटकी टूटी कैसे?"

कृष्ण (रोते हुए)—"जब तू उफनते हुए दूधको शान्त करनेके लिए हड़बड़ीमें वेगसे दौड़ी, तब तुम्हारे पैरोंके कल्लुओंके ठोकरसे ही तो मटकी टूटी। बता, भला इसमें मेरा क्या दोष है?"

मैया—"ठीक है! ये तो बता कि तेरे मुखमें मक्खन कैसे लगा?"

कृष्ण—"मैया री! प्रतिदिनकी भाँति उस बन्दरने मक्खन खानेके लिए मटकीमें हाथ दिया। मैंने उसे पकड़ लिया। जब वह हाथ धुड़ाकर भागने लगा तो उसके ही हाथका मक्खन मेरे मुखमें लग गया। अच्छा बता, इसमें मेरा कोई दोष है? फिर भी तू मुझे चोर कहती है और पीटना चाहती है।"

मैया—"अरे बड़बोला! बन्दर-बन्धो! अब तुझे तुम्हारे साथी ऊखलके साथ बाँधकर दण्ड दूँगी।"

तत्पश्चात् बहुत चेष्टा करेनपर भगवत्कृपासे कृष्णको ऊखलमें बाँधकर घरके कार्योंको सँभालने अन्दर चली गयी। बाल-कृष्ण नन्हें-मुन्ने सखाओंके साथ ऊखलको खींचते हुए घरकी पौढ़ीके सामने खड़े

यमलार्जुन वृक्षके मध्यसे निकलने लगे। ऊखलके स्पर्शसे ही दोनों वृक्ष अतिभयङ्कर गर्जनके साथ गिर पड़े। सभी व्रजवासी, जो जहाँ थे वहींसे ध्वनिको लक्ष्यकर ऊधरकी ओर दौड़े। नन्दबाबा और यशोदा मैया भी वहाँ उपस्थित हुए। यशोदा मैया दोनों गिरे हुए पेड़ोंके बीच पुत्रको देखकर सन्न रह गयीं। नन्दबाबा आश्चर्यचकित होकर पुत्रके समीप पहुँचे और उसे अपनी गोदीमें बैठा लिया। पिताको देखकर कृष्ण बड़े जोरसे रोने लगे। नन्दबाबा कृष्णके सिर और अङ्गोंको अपने हाथोंसे सहलाकर मुख चूमते हुए पुचकारने लगे बोले—"लाला! तुम्हें किसने बाँधा?" पुनः-पुनः पूछनेपर रोते हुए कृष्णने बाबाके कानमें फुसफुसाकर कहा—"मैयाने।" नन्द बाबा गम्भीर होकर बोले—"मैयाने! तेरी मैया बड़ी निष्ठुर है!" और चुप हो गये।

अपनी गोदमें कृष्ण और बलदाऊ दोनोंको लेकर यमुनामें स्नान किया। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर और गोदान इत्यादिकर घर लौटे। रोहिणी मैयाने किसी प्रकार गोपियोंके द्वारा रसोई बनवायी और उन्हींके द्वारा राम और कृष्णके साथ नन्दबाबाको भोजन परोसवाया। नन्दबाबा दोनों पुत्रोंके साथ चुपचाप प्रसाद सेवनकर बैठकमें आ गये। सायंकालमें गोशालामें आकर कृष्ण और बलदेवको श्वेत मिश्रीके साथ पेटभर धारोष्ण दूध पिलाया। फिर बैठकमें पुत्रोंके साथ आये। दोनों बेटोंके साथ व्रजराज जब सायंकालीन भोजन समाप्त कर चुके, तब कुलकी वृद्ध गोपियाँ रोहिणीजीको साथ लेकर नन्दबाबाके समीप आयीं। दोनों बच्चे बाबाकी गोदमें बैठे थे। रोहिणीजीने कहा—"राजन्! कृष्णकी मैयाने भोजन नहीं किया है। कोनेमें चुपचाप पत्थरकी भाँति बैठी हैं। घरमें सभी गाोपियाँ भी बिना खाये-पीये उदास होकर चुपचाप बैठी हैं। व्रजराज दुःखमिश्रित हास्यपूर्वक बोले—"मैं क्या करूँ? क्रोधका यही फल है, वह इसे अनुभव करे!" आँसू बहाती हुई वृद्ध गोपियोंने कहा—"हाय! हाय! यशोदा तो भीतर-बाहरसे अत्यन्त कोमल है। उसके लिए ऐसे निष्ठुर शब्दोंका प्रयोग अनुचित है।" यह सुनकर व्रजराज और भी अधीर हो उठे और मुस्कुराते हुए पूछा—"लाला! क्या मैयाके पास जायेगा?" कृष्ण बोले—"नहीं! नहीं! आप ही के साथ रहूँगा।" उपानन्दकी घरवालीने हँसकर कहा—"बाबाके पास तो रहेगा, पर स्तन किसका पान करेगा?"

कृष्ण—"बाबा मिश्रीके साथ धारोष्ण दूध पिलायेंगे।"

"खेलेगा किसके साथ?"

"पिताजीके साथ और दाऊ भैयाको भी साथ ले लूँगा।"

व्रजराज—"रोहिणी मैयाके पास क्यों नहीं जाता?"

कृष्णने रोषपूर्वक सिसकते हुए कहा—"मैं तो मुझे बचानेके लिए बड़ी मैयाको पुकार रहा था, किन्तु उस समय तो ये भी नहीं आयीं।"

यह सुनकर आँसू बहाती हुई रोहिणी मैयाने धीरेसे कहा—"लाला! इतना निष्ठुर मत बन। तेरी मैया तेरे लिए रो रही है।"

इसे सुनकर कृष्णकी आँखोंमें आँसू छलक आये और मुड़कर पिताका मुख देखने लगे। इसी बीच रोहिणी मैयाने कृष्णको पकड़कर लानेके लिए बलदेवको सङ्केत किया। बलदेव दोनों हाथोंसे कृष्णको पकड़कर रोहिणी मैयाकी ओर खींचने लगे, पर कृष्ण बलदेवको झटककर बाबाके गलेसे लिपट गये। बाबाके आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी लग गयी। उन्होंने अपने हाथको कुछ ऊँचा उठाकर कहा—"लाला! तेरी मैयाको पीट दूँ? बाल-कृष्ण इसे सह न सके और पिताके दोनों हाथ जोरसे पकड़ लिये। तदनन्तर स्वतःसिद्ध वात्सल्यके कारण यशोदाके अन्तर्हृदयकी वेदनाको स्मरण करते हुए हाथसे सङ्केत द्वारा बाबा बोले—"लाला! यदि तुम्हारी मैया ऐसी हो जाय अर्थात् मर जाय, तो तू क्या करेगा?" ऐसा सुनते ही कृष्ण बड़े जोरसे रोते हुए बोले—"मैया! मैया!" और अपने दोनों हाथोंको बड़ी मैयाकी तरफ पसारकर उनकी गोदीमें स्वतः ही चले गये। रोती हुई रोहिणी मैया रोते हुए कृष्णको लेकर अन्तःपुरमें आयीं और कृष्णको यशोदा मैयाकी गोदमें डाल दिया। यशोद मैया कृष्णको अपने अञ्चलोंसे ढककर कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करने लगीं। कृष्ण भी फूट-फूटकर रोने लगे। अन्तःपुरमें एकत्रित सारी गोपियाँ भी रोने लगीं। उधर बैठकमें नन्द बाबा भी रो रहे थे। सारा वातावरण वात्सल्यरसमें डूब गया।

यह प्रसङ्ग सुनते ही श्रीगुरुदेव भी फूट-फूटकर रोने लगे। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। कुछ-कुछ अष्टसात्त्विक विकार भी दृष्टिगोचर होने लगे। ऐसा अभूतपूर्व भाव अपने जीवनमें दो-एक बार ही मैंने देखा है।

(ज) साम्प्रदायिक सेवा

किसी समय १९५६ में श्रील गुरुदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पधारे थे। उस समय वृन्दावनके निम्बार्क सम्प्रदायसे 'श्रीसुदर्शन' नामक एक पारमार्थिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। उसके किसी एक अङ्कमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रति कुछ कटाक्ष करते हुए उन्हें केशव काश्मीरीका शिष्य बतलाया गया था। दूसरे अङ्कोंमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर आदि गौड़ीय वैष्णवाचार्योंको धृष्टतापूर्वक निम्बार्क सम्प्रदायके अन्तर्गत दिखलाया गया था। जब मैंने सुदर्शनके उन अङ्कोंको उन्हें दिखाया तो वे बहुत क्रोधित हो गये। उसी समय उन्होंने श्रीभागवत पत्रिकाके लिए एक छोटा-सा प्रबन्ध लिखवाया, जिसका शीर्षक था—"श्रीनिम्बादित्य एवं निम्बार्क एक व्यक्ति नहीं हैं।" जिसका तात्पर्य यह था—

"शास्त्रोंमें निम्बार्क सम्प्रदायका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। पुराणोंमें वैष्णवाचार्य श्रीनिम्बादित्यका नाम दृष्टिगोचर होता है। चतुःसनने इन्हीं निम्बादित्याचार्यको कलिकालमें अपने सम्प्रदायका आचार्य स्वीकार किया है। निम्बार्क स्वामी अलग व्यक्ति हैं। निम्बादित्य नारदजीके शिष्य हैं। इनका समय द्वापर युगके अन्त तथा कलियुगके प्रारम्भमें है। किन्तु निम्बार्काचार्य अत्यन्त आधुनिक व्यक्ति हैं। क्योंकि श्रील जीव गोस्वामी आदि बड़े-बड़े ग्रन्थ लेखकोंने अन्यान्य सभी वैष्णवसम्प्रदायोंके प्रधान-प्रधान आचार्योंके नामोंका उल्लेख करनेपर भी निम्बार्काचार्यके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

"निम्बार्क सम्प्रदायमें प्रचलित पारिजात भाष्यके रचयिता निम्बादित्याचार्य नहीं, बल्कि श्रीनिवास आचार्य एवं केशव काश्मीरी हैं। इन दोनोंने इस ग्रन्थकी रचनाकर अपने गुरु निम्बार्काचार्य द्वारा रचित बतलाकर प्रचार किया। यदि षड्गोस्वामियोंके स्थितिकाल तक निम्बार्क सम्प्रदायका तनिक भी अस्तित्व रहता तो उनके ग्रन्थोंमें श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बादित्य, श्रीबल्लभाचार्य आदि आचार्योंके नामोंके उल्लेखके साथ श्रीनिम्बार्काचार्यके नामका भी अवश्य ही उल्लेख करते। यहाँ तक कि श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी आदि सम्प्रदायके आचार्यों द्वारा लिखित किसी भी ग्रन्थमें निम्बार्काचार्यके नामका उल्लेख नहीं है इत्यादि।"

श्रीभागवत पत्रिकामें इस प्रबन्धका प्रकाशन होनेपर सुदर्शन कार्यालयके पदाधिकारियों द्वारा मानहानिका मुकदमा दायर करनेका नोटिस दिये जानेपर श्रील गुरुदेवने बड़ी दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि जो कुछ लिखा है, हम शास्त्रीय पुष्ट प्रमाणोंके आधारपर उसके एक एक शब्दको प्रमाणित करेंगे। श्रील गुरुदेवका शास्त्रज्ञान तथा गम्भीर व्यक्तित्वकी बात सुनकर प्रतिपक्ष बिल्कुल शान्त हो गया। फिर उन्होंने भविष्यमें अनाप-सनाप लिखनेका कभी साहस नहीं किया।

इसी प्रकार श्रील गुरुदेवने बंगालके सहजिया सम्प्रदायके लेखकों द्वारा जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके विरुद्ध अपसिद्धान्तमूलक प्रबन्धोंका कठोर भाषामें प्रतिवाद किया। प्रतिपक्षने कोर्टमें श्रील गुरुदेव एवं श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्पादक आदिके विरुद्ध मुकदमा प्रस्तुत किया। किन्तु वे भी श्रील गुरुदेवके विचारोंके सामने नतमस्तक हुए। उन्होंने न्यायालयमें किसी प्रकार उनसे क्षमा माँगकर अपना पिण्ड छुड़ाया। इन्हीं कारणोंसे उनके प्रिय सतीर्थ गौड़ीय संघपति ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजने उन्हें "पाषण्ड-गजैकसिंह" की उपाधिसे विभूषित किया था।

(झ) स्मार्त और वैष्णव विचारमें भेद

(श्रीगुरुदेव द्वारा नित्यगौर प्रभुको लिखित पत्रका सार)

पश्चिम बङ्गालके कूचबिहार जिलेमें माथाभाङ्गा नामक महकमामें श्रीनित्यगौर दासाधिकारी नामक एक गृहस्थ वैष्णव निवास करते थे। वे जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके द्वारा कृष्ण-मन्त्रमें दीक्षित शिष्य थे। किसी समय उनके पारिवारिक जनोंमेंसे एक व्यक्तिकी मृत्यु हो गयी। वैष्णव सदाचारके अनुसार उन्होंने अवैष्णव स्मार्त-विचारोंके अशौचके नियमोंका पालन नहीं किया। वे हरिनाम करते, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्ति-ग्रन्थोंका पठन-पाठन करते। बारह दिनोंके पश्चात् उन्होंने मठवासी वैष्णवोंको बुलाकर वैष्णव स्मृति-शास्त्र श्रीहरिभक्तिविलास एवं सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार विष्णुको निवेदित प्रसादान्न परलोकगत आत्माको अर्पण किया तथा उनके पारमार्थिक

मङ्गलके लिए वैष्णव-होमका भी अनुष्ठान करवाया। उपस्थित वैष्णवोंको महाप्रसाद सेवन कराया गया।

किन्तु उनके समाजके लोग उनके इस वैष्णव-श्राद्धसे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने श्राद्धका सम्पूर्णतः बहिष्कार किया। वे लोग बंगालके स्मार्त समाजमें प्रचलित रघुनन्दनके स्मार्त विचारोंके अनुसार श्राद्ध करवानेके लिए उनपर विशेष जोर दे रहे थे। किन्तु वे वैष्णव सदाचारमें इतने दृढ़ थे कि उन्होंने ग्राम्य समाजके आदेश-निर्देश माननेसे अस्वीकार कर दिया। इससे ग्राम्य समाज उनके प्रति अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। इनके घरपर नाई, धोबी आदिका जाना बन्द करवा दिया। इनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना आदि सारे सामाजिक सम्बन्ध तोड़ लिये। यहाँ तक कि एक ही कुँएसे पानी भरना भी मना कर दिया। इस प्रकार सामाजिक उत्पीड़नसे वे बड़े डर गये। उन्होंने गुरुदेवको पत्रके माध्यमसे समाजके इस अत्याचारकी सूचना दी। श्रील गुरुदेव उस समय श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें थे। पत्र पाते ही उन्होंने साथ-ही-साथ पत्रका उत्तर दिया। पत्रका संक्षिप्त सार नीचे दिया जा रहा है—

"स्नेहास्पद नित्यगौर!

"तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे प्रति स्मार्त समाजके अत्याचारसे अवगत हुआ। डरनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा ग्राम्य समाज अत्यन्त पतित है। अशौच किसे कहते हैं, उन्हें यह ज्ञान नहीं है। साधुसङ्गके अभावमें उन्हें शास्त्रोंके सदाचारका तनिक भी ज्ञान नहीं है। वे लोग केवल मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन—इन पञ्च मकारोंमें सदा व्यस्त रहते हैं, प्याज, लहसुन, अण्डे आदि कुखाद्योंका भोजन करते हैं। चाय, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, धूम्रपानका सर्वदा सेवन करते हैं। अतः ये सभी रजः तमोगुणी श्रेणीके निम्न लोग हैं। आजकल ऐसे लोगोंकी संख्या अधिक है। सदाचार-सम्पन्न, तत्त्वज्ञान-सम्पन्न साधु पुरुषोंकी संख्या अत्यल्प है। अतः ये संख्यालघु हैं। अतः संख्यागरिष्ठ ये असदाचारी निम्न श्रेणीके व्यक्ति संख्यालघु सत्पुरुषोंके प्रति अत्याचार करते हैं। मैं इस विषयमें एक दृष्टान्त देकर तुम्हें सहज रूपमें समझा रहा हूँ।

"एक गाँवमें आबाल-वृद्ध-वनिता सभी गाँजाखोर थे। ऐसा कोई भी नहीं था, जो गाँजाका सेवन नहीं करता था। केवल एक परिवारमें एक छोटा-सा शिशु बचपनसे ही इसका सेवन नहीं करता था। गाँजेकी दुर्गन्ध आते ही वहाँसे दूर हट जाता था। कुछ बड़े होनेपर उसके माता-पिता, परिवार तथा समाजके लोगोंने उसे गाँजा-सेवन करानेकी नाना प्रकारसे चेष्टा की। किन्तु उसने किसी भी प्रकारसे गाँजेका सेवन नहीं किया। माता-पिता एवं ग्राम्य समाज बालकके इस स्वभावको देखकर आश्चर्यचकित था। उनलोगोंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह बालक भयानक व्याधिसे ग्रस्त है। लोगोंने ग्रामके चिकित्सकको बुलाया और जबरदस्ती चिकित्साकी व्यवस्था करने लगे।

"आजके हमारे ग्राम्य समाजकी यही दुर्दशा है। कोई सदाचारसम्पन्न होकर भगवद्भजन करे—यह वह सह नहीं सकता है। उसपर अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं। यहाँ तक कि गाँवसे निष्कासित कर दिये जाते हैं। संख्यागरिष्ठ होनेके कारण ये सदाचारसम्पन्न संख्यालघुके प्रति तरह-तरहके अत्याचार करते हैं।"

उन्होंने और भी लिखा—

"नित्यगौर! क्या तुम्हारे गाँवमें लिखे-पढ़े सदाचारसम्पन्न सात्त्विक व्यक्ति नहीं हैं? यदि हों, तो उन्हें मेरा यह पत्र दिखाना। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि रजः और तमोगुणकी पराजय होती है। विलम्ब भले ही हो, किन्तु सत्त्वगुणकी विजय होती है। यद्यपि प्रारम्भमें आसुरिक लोग बलवान प्रतीत होते हैं, परन्तु अन्तमें वे पराजित होते हैं। प्राचीन कालके देवासुर-संग्राममें, राम-रावण युद्धमें, पाण्डव-कौरवके युद्धमें सदा आसुरिक चिन्ता-स्रोतवालोंकी ही पराजय हुई है। महाबलवान हिरण्यकशिपु अपने पञ्च वर्षीय भक्त बालक प्रह्लादके सामने टिक नहीं सका। भगवान् नृसिंहदेवने क्षणभरमें उसका संहार कर दिया। तुम सदा हरिनाम करना। तुम सदा पवित्र हो। भगवान् नृसिंहदेव तुम्हारी रक्षा करेंगे।

"तुम सदा यह स्मरण रखना कि भगवद्भक्तगण—वैष्णवगण सदा-सर्वदा पवित्र होते हैं। जन्म-मृत्यु आदिमें भी उन्हें अशौच स्पर्श

नहीं करता। यह बात तो दूर रहे, मातृ-पितृघाती, व्यभिचारी या महापापाचारी व्यक्ति भी यदि हरिनामका आश्रय करता है, तो उसके भूत, भविष्य और वर्त्तमानके सारे पाप दूर हो जाते हैं। श्रीमद्भागवतके अजामिल आदि प्रसङ्गसे यह सुस्पष्ट है कि महापापी अजामिलने मरते समय अपने पुत्रके उद्देश्यसे 'नारायण' नामका उच्चारण किया था। यह उसका शुद्ध नाम नहीं, बल्कि नामाभास था। इस नामाभासके प्रभावसे ही अजामिलके सारे पाप दूर हो गये। उसकी मृत्यु टल गयी और फिर साधुसङ्गमें शुद्ध हरिनामकर उसने वैकुण्ठकी गति प्राप्त की। तुमने नामाश्रय किया है, सदैव भक्तिके अङ्गोंका पालन कर रहे हो, अतएव नित्य पवित्र हो। तुम्हें किसी प्रकारके अशौच पालनकी आवश्यकता नहीं है। जो लोग विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित नहीं हैं, जो भगवन्नाम नहीं करते, वे जीवनभर अपवित्र रहते हैं और जीवनभर अशौचका पालन करते हैं। उन्हें हरिमन्दिरोंमें प्रवेशका अधिकार नहीं है।

"स्मार्त रघुनन्दनकी स्मृति (अष्टाविंशति-तत्त्व) का प्रचार केवल बंगालमें ही सीमित है। बङ्गालके बाहर सारे भारतमें श्रीहरिभक्तिविलास और सत्क्रियासार-दीपिका नामक स्मृतिका प्रचलन ही दृष्टिगोचर होता है। बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश आदिमें लगभग पाँचसौ वर्ष पूर्वसे आज तक इन वैष्णव स्मृतियोंका प्रचलन है। अष्टाविंशति-तत्त्वका प्रचलन अभी ढाई सौ वर्षसे ही देखा जाता है।

"रघुनन्दनकी स्मृतिमें बहुत-से दोष हैं। उसके अनुसार जीवनभरमें कोई व्यक्ति पवित्र ही नहीं हो सकता। यहाँ तक कि ब्राह्मणकुलमें जन्म लेनेवाला व्यक्ति भी कभी पवित्र नहीं हो सकता। किसी भी ब्राह्मणके घरमें सन्तान उत्पन्न होनेपर उसके पितृकुल और मातृकुलके सात पुरुषोंको दस दिनों तक अशौच स्पर्श करता है। यदि किसीकी मृत्यु हो जाती है, तो उसमें भी मातृकुल तथा पितृकुलके सात पीढ़ियोंके पुरुष या नारीको दस दिनों तक अशौच स्पर्श करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सात पीढ़ीके पूर्वजके जो वर्त्तमान वंशज हैं, उनकी संख्या बहुत ही विशाल होगी। यदि इस विशाल जनसंख्यामें कहीं भी जन्म-मृत्यु हो जाये तो पूरे वंशको ही अशौच स्पर्श करेगा। एक वर्षमें इतनी विशाल संख्यामेंसे यदि छत्तीस जन्म-मृत्यु भी हो तो उसका पूरा वर्ष

ही अशौचकी अवस्थामें बीत जायेगा। इस प्रकार सारा जीवन वे कभी भी शुद्ध नहीं हो सकते। फिर उनकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं है। यदि कहा जाय कि श्राद्धके समय मन्त्रोंके पाठसे शुद्धि होती है, तो शुद्धि होनेके बाद उन्हें फिर अशौच क्यों स्पर्श करता है? अतः उन्हें मन्त्र-शक्तिमें भी विश्वास नहीं है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन तीन सन्ध्याओंमें गायत्री-मन्त्रका जाप करता है, क्या गायत्रीमन्त्र उन्हें पवित्र करनेमें समर्थ नहीं? अतः इनके सारे विचार शास्त्र-विरुद्ध एवं भ्रान्त हैं।

"स्मार्त ब्राह्मणोंके विषयमें भी कुछ बतलाना आवश्यक है। स्मृति-शास्त्रोंके ज्ञाता और उनके अनुयायियोंको स्मार्त कहलाते हैं। स्मृति-शास्त्र भी दो प्रकारके हैं—लौकिक एवं पारमार्थिक। जिन स्मृति-शास्त्रोंमें वेद, उपनिषद्, पुराण आदि शास्त्रोंके मूल प्रतिपादित विषय भगवद्भक्तिकी विधियोंका उल्लेख है, वे पारमार्थिक स्मृतियाँ हैं। जिन स्मृतियोंमें शास्त्रोंके इस निगूढ़ तात्पर्यकी उपेक्षाकर स्थूल सामाजिक शृंखलाकी रक्षाके लिए ही विधियोंकी प्रमुखता है, उन्हें लौकिक स्मृति-शास्त्र कहते हैं। स्मृति मूलतः एक ही है। फिर भी भगवत्-उन्मुख एवं भगवत्-विमुख ऋषि-मुनियोंके भेदसे स्मृतिका विभाजन देखा जाता है। केवल इन लौकिक स्मृतियोंका अनुगमन करनेवाले लौकिक ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणता सिद्ध नहीं है। केवल ब्राह्मण वंशमें ही जन्म लेना यथेष्ट नहीं है। यदि ब्राह्मण वंशमें जन्म लेनेपर भी ब्राह्मणके कर्म और गुण उनमें नहीं हैं, तो वे ब्राह्मण नहीं हैं। अपने गुण या कर्मके अनुसार वे ब्राह्मणेतर वर्णोंमें हैं या वर्णबहिर्भूत अन्त्यज हैं। गीता एवं श्रीमद्भागवत आदिमें यह विषय सुस्पष्ट है—

(१) 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।'

(२) 'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।'

"अतः ऐसे भगवद्विमुख, असुर-स्वभावविशिष्ट पुरोहित द्वारा कराया जानेवाला श्राद्ध भी आसुरिक श्राद्ध होगा—इसमें क्या सन्देह है? ऐसे श्राद्ध द्वारा परलोकगत आत्माका कोई भी कल्याण नहीं हो सकता। इसी प्रकार हरिविमुख ग्राम्य समाज एवं हरिविमुख लौकिक स्मार्त ब्राह्मणोंके द्वारा आरोपित अशौच-पालन वैष्णव-सदाचारसम्पन्न विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित व्यक्तियोंके लिए कभी भी पालनीय नहीं हो सकता।

तुम, तुम्हारी पत्नी और बच्चे वैष्णव-सदाचारसम्पन्न विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित गृहस्थ हो। इसलिए तुम सदैव पवित्र हो। तुम पतित व्यक्तियोंका सङ्ग कदापि न करना, अन्यथा तुम भी पतित हो जाओगे। मैं पाखण्ड मतका अनुमोदन नहीं करता। शुद्ध सदाचारवर्जित ग्राम्य समाज भगवान् नहीं है। तुम दृढ़तासे भक्ति-पथपर अग्रसर होते रहो, तनिक भी भयभीत न होना।

"एक और बात अच्छी तरह समझना कि शुद्ध वैष्णवोंके लिए कुश-धारण और नान्दीमुख श्राद्ध करना सर्वथा निषिद्ध है। श्राद्ध शब्दका तात्पर्य 'श्रद्धा' से है—श्रद्धा हेतुत्वेनास्त्यस्य अण्। हरि-गुरु-वैष्णवके प्रति श्रद्धा-सम्बन्धीय क्रियाओंको ही श्राद्ध कहते हैं। स्मार्तोंके अनुसार कोई परम धर्मात्मा हरिनामाश्रित व्यक्ति भी परलोक गमन करनेपर प्रेतात्मा बन जाता है। अतः उनके पुरोहित यही अनुमानकर सभीको यह मन्त्र उच्चारण कराते हैं—

"एते प्रेततर्पणकाले भवन्ति इह अर्थात् प्रेतात्मा यहाँ उपस्थित होकर यह पिण्ड ग्रहण करे। यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि जो माता-पिता या व्यक्ति जीवनभर शुद्ध सदाचारसम्पन्न रहकर भगवद्भजन करता रहा, मरते ही वह भूत-प्रेत बन गया और श्राद्धके समय माँस-मछली, जले हुए केले और चावलसे निर्मित पिण्डदानके द्वारा उन्हें सम्बोधित किया जा रहा है—हे पितृदेव! तुम भूत-प्रेत बने हो, तुम इस प्रेतखाद्यको ग्रहणकर तृप्त होओ। क्या यही योग्य पुत्रका योग्य पिताके प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन है। इसलिए वैष्णवजन ऐसे प्रेतश्राद्धका बहिष्कार करते हैं। तुम भी ऐसे प्रेतश्राद्ध करने-करानेवाले समाजका बहिष्कार करना। तुम समाजवालोंको मेरा यह पत्र दिखाकर कहना कि हमलोग किसी भी जगह किसी भी धर्मसभामें इस विषयमें शास्त्रार्थके लिए प्रस्तुत हैं। यदि वे शास्त्रार्थ करना चाहें, तो हमलोग तुम्हारे गाँव आकर शास्त्रार्थके लिए सदैव प्रस्तुत हैं।"

(ञ) श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रील सरस्वती ठाकुरके विचारोंका वैशिष्ट्य

परमाराध्य श्रील गुरुदेव संन्यास-ग्रहणके पश्चात् प्रतिवर्ष गौर-पूर्णिमाके पश्चात् अपने संन्यास-वेश प्रदाता पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिरक्षक

श्रीधर महाराजजीके पास उनके मठमें मिलने अवश्य ही जाते थे। सन् १९५२ की गौरपूर्णिमाके पश्चात् हम कुछ मठवासियोंको साथ लेकर वे चैतन्य-सारस्वत गौड़ीय मठमें उनसे मिलने गये। वहाँ परस्पर दण्डवत् प्रणतिके पश्चात् सभी वैष्णवजन इष्टगोष्ठी करने लगे। उस इष्टगोष्ठीमें अस्मदीय गुरुपादपद्मके अतिरिक्त पूज्य श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, श्रीमद्भक्तिआलोक परमहंस महाराज, श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज, श्रीमद्भक्तिविवेक हृषीकेश महाराज आदि बहुत-से संन्यासी एवं प्रवीण ब्रह्मचारीगण उपस्थित थे। इस इष्टगोष्ठीमें किसीने बड़ी नम्रतापूर्वक यह प्रश्न किया कि श्रीलरूप गोस्वामीकृत उपदेशामृतके—

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।

इस पञ्चम श्लोकमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील सरस्वती ठाकुरकी व्याख्याओंमें कुछ-कुछ अन्तर दीखता है। उसकी सङ्गति किस प्रकारसे की जाय?

पूज्य श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराजने पूछा—"आपको दोनोंकी व्याख्याओंमें क्या अन्तर प्रतीत होता है?"

प्रश्नकर्त्ता—"श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इसकी व्याख्यामें लिखा है कि स्त्रीसङ्ग और भक्ति-विरोधी मायावादियोंके सङ्ग-दोषसे रहित, सम्बन्ध-ज्ञानहीन स्वल्पबुद्धिविशिष्ट कनिष्ठ अधिकारियोंके मुखसे कृष्णनाम श्रवणकर मध्यम अधिकारी स्वसम्पर्कबोधसे उनका मन-ही-मन आदर करेंगे। यदि वैसे कनिष्ठ अधिकारी सद्गुरुसे दीक्षामन्त्र ग्रहणकर हरिभजनमें प्रवृत्त हों, तो उनके मुखसे हरिनाम सुनकर दण्डवत्-प्रणामके द्वारा उनका आदर करेंगे। परन्तु श्रीलसरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' ने 'दीक्षास्ति चेत' इस पदको सबसे पहले ग्रहणकर यह व्याख्या की है कि सद्गुरुके द्वारा कृष्णमन्त्रमें दीक्षित होकर कृष्ण और कृष्णनामको अभेद जानकर और अप्राकृत कृष्णनामको एकमात्र साधन मानकर जो कृष्णनाम ग्रहण करता है, उसे श्रवणकर मध्यम अधिकारी वैष्णव स्वसम्पर्कबोधसे उस व्यक्तिको मन-ही-मन आदर करेंगे। जो दीक्षित वैष्णव परम प्रीतिके साथ निरन्तर कृष्णनाम करते हैं तथा नामभजनके द्वारा अपने स्वरूपकी

उपलब्धिकर मध्यम अधिकारमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं, ऐसे मध्यम अधिकारी वैष्णवोंको काय द्वारा दण्डवत्-प्रणाम करेंगे तथा मनसे भी आदर प्रदान करेंगे।

अतः दोनोंकी व्याख्याओंमें कुछ अन्तर प्रतीत होता है। अतः इन दोनों व्याख्याओंमेंसे किसे ग्रहण किया जाय अथवा इनका क्या सामञ्जस्य है?

यह सुनकर सभी वैष्णवोंने प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीसे इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए अनुरोध किया। पूज्यपाद श्रीधर महाराज बड़े गम्भीर होकर उत्तर देने लगे—"साधारणतः दोनों गुरुवर्गकी व्याख्याओंका एक ही तात्पर्य है। फिर भी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी व्याख्याकी पुष्टि शास्त्रोंसे होती है। श्रीलरूप गोस्वामी द्वारा संकलित पद्यावलीके श्लोक 'नो दीक्षां न च सत्क्रियां' के द्वारा स्पष्ट होता है कि कृष्णनाम ऐसा प्रभावशाली है कि चाण्डाल आदि अस्पृश्य लोगोंकी जिह्वापर स्पर्श होते ही मुक्ति पर्यन्त फल प्रदान करता है। यह दीक्षा आदि सत्कार्य, पुरश्चरण आदिकी भी अपेक्षा नहीं रखता। नामके इस अपूर्व फलका अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें हैं—

(क) यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् ... श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते।

(ख) अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यद् वर्तते जिह्वाग्रे नाम तुभ्यं।

(ग) यन्नाम सकृच्छ्रवणात् पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात।

(घ) सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत कृष्णनाम।

(ङ) साङ्केत्यं पारिहास्यं ... हरं विदुः।

(च) यदाभासोऽप्युधन् ... महिमानं प्रभवति (रूपगोस्वामीकृत कृष्णनामस्तोत्रम्)

(छ) म्रियमाणो हरेर्नाम ... किं पुनः श्रद्धया गृणन्।

(ज) पतितः स्खलितो भजनः ... पुमान्नार्हति यातनाम्।

"इन शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है कि अदीक्षित चाण्डाल व्यक्ति भी हरिनाम ग्रहण करनेमात्रसे परम पवित्र हो जाता है। चाहे उसमें श्रद्धा हो या न हो, एक बार भी कृष्णनाम करनेपर वह नरमात्रका संसारसे उद्धार कर देता है। कीर्त्तनकी तो

बात ही क्या, कृष्णनामका श्रवण करनेपर भी श्रवणकर्त्ता तत्क्षणात् संसारसे मुक्त हो जाता है। कोई भी मनुष्य चलते-फिरते, फिसलते, गिरते, छींकते किसी भी प्रकार भगवन्नाम ग्रहण करे, तो उसे संसारकी यातना नहीं भोगनी पड़ती।

"इसलिए भक्तिविरोधी असत् लक्षणोंसे रहित कोई भी व्यक्ति चाहे वह दीक्षित हो या अदीक्षित हो कृष्णनाम ग्रहण करनेपर उसे मन-ही-मन आदर करना ही वैष्णव सदाचार है।"

पूज्यपाद श्रीधर महाराजजीके विचारोंको सुनकर परमाराध्य श्रील गुरुदेवने बड़ी नम्रतासे कहा—"श्रीपाद श्रीधर महाराजजीने उक्त श्लोककी व्याख्यामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी व्याख्याके सम्बन्धमें जो कुछ कहा वह शास्त्रके सर्वथा अनुकूल तथा सुसिद्धान्तपूर्ण है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु इस विषयमें मेरा कुछ और वक्तव्य है, पहली बात यह है कि जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने जन्मसे ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सङ्ग किया है। बचपनसे ही उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरसे भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, चैतन्यचरितामृत आदि वैष्णव ग्रन्थोंका अनुशीलन किया है, वेदान्तसूत्र एवं श्रीमद्भागवतकी व्याख्याका श्रवण किया है तथा ऐकान्तिक रूपमें भक्तिविनोद धारामें निष्णात हैं। साथ ही वेद-वेदान्त आदि सर्वशास्त्रोंमें पारङ्गत अद्वितीय विद्वान हैं। उन्होंने ही हमें अनुग्रहपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु, उनके परिकरों विशेषतः श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके साथ हमारा परिचय कराया है। वे निस्सन्देह रूपसे भक्तिविनोद ठाकुरके हृद्गत भावोंको जाननेवाले हैं। उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा कृत इस श्लोककी भाषा और पीयूषवर्षिणी-वृत्तिको अवश्य ही देखा होगा। फिर भी अपनी भाषा और अनुवृत्तिमें कुछ विशेष रूपसे व्याख्या की है। वह उन्होंने अवश्य ही समझ-बूझकर की होगी। इसलिए हमें श्रील प्रभुपादके माध्यमसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी व्याख्याको समझना होगा तथा श्रील प्रभुपादकी व्याख्याको ही प्रधानता देनी चाहिये।

दूसरी बात यह कि श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपनी व्याख्यामें कृष्णनामके साधारण माहात्म्यको दृष्टिमें रखते हुए वैष्णव सदाचारका निर्णय किया है। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुके आचरित और प्रचारित

श्रीकृष्णनामका फल है चरम प्रयोजन—कृष्णप्रेमकी प्राप्ति। किन्तु जब तक कोई व्यक्ति सम्बन्धज्ञानसहित और अपराध आदिसे रहित होकर ऐसे कृष्णनामको ग्रहण नहीं करेगा, वह चरम प्रयोजन—कृष्णप्रेम-प्राप्तिकी दिशामें एक पग भी अग्रसर नहीं हो सकता है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।
कृष्ण बलिते अपराधीर न हय विकार॥
(चै॰ च॰ आ॰ ८/२४)

एक कृष्णनाम करे सर्वपापनाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥
(चै॰ च॰ आ॰ ८/२६)

हेन कृष्णनाम यदि लय बहु बार।
तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार॥
तबे जानि ताहाते अपराध प्रचुर।
कृष्णनाम-बीज ताहे न करे अङ्कुर॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२९-३०)

इस उपरोक्त विशेष विचारको ध्यानमें रखते हुए ही श्रील प्रभुपादने सम्बन्धज्ञानयुक्त होकर अर्थात् दीक्षासम्पन्न होकर, अपराधरहित होकर कृष्ण और कृष्णनामको अभिन्न समझकर, अप्राकृत नामको एकमात्र साधन समझकर निरन्तर उसका सेवन करते हुए कृष्णप्रेमप्राप्तिरूप प्रयोजनके प्रति चेष्टाशील व्यक्तिको ही मनसे आदर करनेकी बात की है।

श्रीमन्महाप्रभुने स्वप्रकाशित शिक्षाष्टकमें 'आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं' तथा 'परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्' द्वारा ऐसे ही नामको लक्ष्य किया है।

श्रील प्रभुपादने श्रीचैतन्यचरितामृत (म॰ १५/११०) में पूज्य श्रीधर महाराज द्वारा उच्चरित श्लोक 'नो दीक्षां न च सत्क्रियां' श्लोकके अनुभाष्यमें स्वयं कहा है कि मन्त्रकी सिद्धिके लिए पुरश्चर्या आदिकी व्यवस्था दी गयी है, किन्तु श्रीनाम-महामन्त्रके लिए पुरश्चरण विधिकी अपेक्षा नहीं होती। एक बार कृष्णनाम उच्चारणके फलसे ही पुरश्चर्याका

सारा फल स्वतः मिल जाता है। अतः श्रीमहामन्त्रकी सिद्धिके लिए पुरश्चर्या आदि सत्क्रियायोंकी अपेक्षा नहीं होती।

किन्तु यहाँ 'कृष्णनामात्मकं मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति' का एक गूढ़ तात्पर्य है, वह यह कि कृष्णनामात्मक यह मन्त्र जिह्वाके स्पर्शमात्रसे फल प्रदान करता है। विशेषतः 'रसनास्पृग्' का अर्थ सेवोन्मुख जिह्वाका स्पर्श। बिना सेवोन्मुख हुए कृष्णनामकी स्फूर्ति कदापि सम्भव नहीं है। अन्यथा जड़-भोगोन्मुख जिह्वामें तरह-तरहके अनर्थ और अपराध विद्यमान रहनेके कारण उस जिह्वापर शुद्ध कृष्णनाम कभी उदित नहीं हो सकता। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुकी साधन लहरीमें ऐसा ही कहा गया है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

अर्थात् श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण, लीला—ये सभी अप्राकृत तत्त्व हैं। प्राकृत चक्षु, कर्ण, रसना आदि इन्द्रियोंके द्वारा यह ग्रहणीय नहीं है। जब जीवोंके हृदयमें सेवा करनेकी वासना उदित होती है, उस समय श्रीनामादि स्वयं उसकी जिह्वापर स्फुरित होते हैं।

इस प्रकार नाम ग्रहण करते-करते जब साधक थोड़ा उन्नत होता है, तब नामभजनके द्वारा कृष्णसेवाकी योग्यता अर्जित करता है, नाम, धाम आदिके अप्राकृतत्वकी उपलब्धि करता है और मध्यम अधिकारमें प्रतिष्ठित हो जाता है। ऐसे मध्यम अधिकारी वैष्णवको ही मनसे आदरके साथ-साथ कायसे भी दण्डवत् करनेका विधान श्रीरूप गोस्वामीने उपदेशामृतके श्लोकमें दिया है।

इनके सारगर्भित सुसिद्धान्तपूर्ण विचारोंको सुनकर उपस्थित वैष्णव समाज धन्य-धन्य कर उठा तथा सभीने इनके विचारोंका समर्थन किया।

(ट) श्रील गुरुपादपद्मका अतिमर्त्त्यत्व एवं सुदृढ़ गुरुनिष्ठा

[श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य एवं सभापति श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज द्वारा लिखित]

'वैराग्ययुक्त भक्तिरस' की व्याख्यामें परमाराध्यतम श्रील केशव गोस्वामीपादने यह बताया है—वैराग्यका अन्य नाम है—कृष्णेन्द्रिय

प्रीतिवाञ्छामय विप्रलम्भ। जो वैराग्य ब्रह्मज्ञानके प्रति तुच्छ ज्ञान और सायुज्य आदि मुक्तिके प्रति घृणा, भय और अनादरका प्रदर्शन करता है, वही कृष्णसुखवाञ्छामयी वैराग्य-विद्या है। साधक जीवके पक्षमें 'कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल भोगोंका त्याग' ही 'वैराग्य' के नामसे विवेचित होता है, किन्तु कृष्णसेवा-परायणता ही मुक्त पुरुषके लिए वैराग्यके रूपमें निर्दिष्ट होती है। श्रील दास गोस्वामीने ज्ञान, विराग और भक्तिसहित नैष्कर्म्यको ही 'वैराग्ययुग् भक्तिरस' के रूपमें बताया है। मायावादियोंकी चिद्विलासशून्यताको कभी भी वैराग्य नहीं कहा जा सकता। षडैश्वर्यशाली भगवान्के लिए विशेष गुणके रूपमें जो 'वैराग्य' शब्दका प्रयोग होता है, वह मायाधीश भगवान्की स्वरूप-सम्प्राप्त अवस्था है। निर्जन भजनके समय वैराग्यका अभ्यास करनेमें जो कृत्रिम प्रचेष्टा परिलक्षित होती है, उसके द्वारा कभी भी भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतात्त्विक व्यक्तिगण स्थूल-त्यागको वैराग्य समझते हैं, किन्तु कृष्णविलासकी लालसाकी चरम अवस्था ही शास्त्रोंमें वैराग्यके नामसे विवेचित हुई है। प्राकृत सहजियागण या जड़भोग-त्यागियोंका वैराग्य अपनी कामनाकी पूर्तिके लिए कैतवपूर्ण अनित्य साधनमात्र है। नित्यसिद्ध महात्माओंका कृष्णसुख-तात्पर्यपर नित्यसिद्ध वैराग्य भक्तिनेत्रोंसे ही देखा या अनुभव किया जा सकता है।

महापुरुषोंके जीवनमें निरपेक्षता और सर्वज्ञता स्वतःस्फूर्त रूपमें प्रकाशित रहती है। कौन व्यक्ति हरिसेवाके नामपर अपनी इन्द्रियतृप्तिमें रत है—वे अन्तर्यामीके रूपमें यह बतलाकर साधकको कपटताके हाथोंसे परित्राण पानेका सुयोग प्रदान करते हैं। पुनः किसीकी सेवाप्रवृत्ति देखकर उसे उत्साह-प्रदान करना भी उनके सेवकवात्सल्यका परिचय प्रदान करता है। 'केशरीर स्वपोतानाम् अन्येषाम् उग्रविक्रमः' अर्थात् सिंह शत्रुके प्रति पराक्रमका प्रकाश करता है, किन्तु अपनी सन्तानके प्रति विशेष स्नेहयुक्त होता है; इसी प्रकार श्रील गुरुपादपद्म भी नास्तिक पाषण्डियोंके प्रति साक्षात् दण्डधर काल-स्वरूप, किन्तु शिष्यों या आश्रितजनोंके प्रति सन्तान-वात्सल्ययुक्त थे। उनके सैकड़ों दोष एवं त्रुटियोंका मार्जनकर उन्हें सेवाका सुयोग देकर हरिभजनमें नियुक्त रखते थे। चाहे कोई वृद्ध हो, रोगग्रस्त हो, जागतिक योग्यतासे रहित क्यों न हो, यदि ऐसे लोग

भी उनके मठ और मिशनमें हरिभजन करने आते, तो वे उन्हें आश्रय देकर हरिभजनका सुयोग देते थे। निःसन्देह यह उनकी कृपालुता, वदान्यता, सर्वोपकारीत्व, कारुण्य, परदुःखदुःखिता और कृष्णैकशरणताका ज्वलन्त आदर्श और दृष्टान्त है।

'सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् मा ब्रुयात् सत्यमप्रियम्'—नीतिवादियोंके इस नीतिवाक्यके अनुसार सत्य और प्रिय वाक्य कहना चाहिये, किन्तु सत्य वाक्य यदि अप्रिय हो, तो उसे नहीं कहना चाहिये। किन्तु गुरुपादपद्म उच्च स्वरसे यह सर्वत्र घोषणा करते कि सत्य यदि अप्रिय भी हो, तथापि उसे कहना ही उचित है। ऐसा नहीं करनेसे शास्त्रके अनेक रहस्य इस जगत्में अप्रचारित और अप्रकाशित रह जायेंगे। जगत्के लोगोंका वास्तविक कल्याण चाहनेवाले साधु–गुरु–वैष्णवोंके मर्मभेदी वाक्य आपात् सुखकर न होनेपर भी वे ही आत्यन्तिक मङ्गलके हेतु हैं। इस सम्बन्धमें परमाराध्य श्रील गुरुदेवने लिखा है—"आजकल हमलोग बहुत–सी धार्मिक पत्रिकाओंको देखते हैं। वे पत्रिकाएँ आचार्यकेसरी जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के द्वारा आचरित–प्रचारित विधि–विधानसे क्रमशः भिन्न पथकी ओर अग्रसर हो रही हैं। लाभ, पूजा, प्रतिष्ठाशा ही इसका मूल कारण है। 'निरपेक्ष हुए बिना धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती'—श्रीचैतन्यचरितामृतकी इस सत्य बातको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये। निरपेक्षताको अक्षुण्ण रखनेमें यदि कठोर–से–कठोर विपत्तिका भी सामना करना पड़े, तो उसे भी आलिङ्गनकर समग्र विश्वको आदर्श शिक्षा देनी चाहिये।" साधु–गुरु–वैष्णवोंके आत्मकल्याणजनक कटु वाक्य और समालोचनाके द्वारा भजनसे सम्बन्धित विघ्न–बाधाएँ दूर होती हैं और उनकी निरपेक्ष नीति, शासनवाक्य और अप्रिय सत्यकथा द्वारा मन्त्रौषधिकी भाँति श्रीनाम–ग्रहणमें रुचि प्राप्त होती है।

सतीर्थ गुरुभ्राताओंके प्रति श्रील गुरुमहाराजका जो स्नेह एवं सहानुभूति थी, वह अतुलनीय है। जैसे ही कोई गुरुभ्राता उनके निकट आकर स्नेहपूर्वक 'विनोद दा' अथवा 'केशव महाराज' सम्बोधित करते, वे उन लोगोंकी अवस्था समझकर यथासाध्य आर्थिक सहायता आदि करते। किन्तु कभी भी प्रत्याशा कर आर्थिक सहायता नहीं करते। इस प्रकार

उन्होंने हजारों रुपये अकातर और निःस्वार्थ रूपसे सहायताके लिए प्रदान किये। निःसन्देह इसे गुरुभ्राताओंके प्रति उनका वात्सल्य कहना होगा।

श्रील गुरुपादपद्मके निकट अनेक पण्डित, भक्ताभिमानी, अनभिज्ञ, चतुर, बालक, युवक और वृद्ध उनके दर्शनके लिए आते थे। सभी लोग उनकी सौम्य और शान्त मूर्त्ति, गुरु-गम्भीर वाणी और मन्द-मुस्कानयुक्त श्रीमुखमण्डलको देखकर अपनी इच्छा या प्रश्नका विषय भूल जाते थे। मायावादी तार्किकोंको परास्त करनेपर भी वे उनकी मर्यादाकी रक्षा करते थे। बहुत-से अन्याभिलाषी व्यक्ति भी उनसे विविध प्रकारका परामर्श लेते, किन्तु ऐसे लोग ऐकान्तिक कृष्णभक्त साधु-महापुरुषकी ऐसी शक्तिको हृदयंगम करनेमें असमर्थ थे। नित्यसिद्ध महात्माओंके लोकातीत व्यवहारको साधारण मनुष्य भला कैसे समझ सकते हैं? कौन-सी उनकी कृपा है और कौन-सी वञ्चना—यह समझनेकी सामर्थ्य साधारण लोगोंमें नहीं है और हो भी नहीं सकती। उनकी (श्रीगुरुदेवकी) धारणा थी—"जगत्में कोई भी मेरे अनुराग या विरागका पात्र नहीं है, सभी गुरुसेवा, कृष्णसेवाके उपकरण हैं।" यही महाभागवतोंकी अप्राकृत दृष्टिभङ्गी है।

प्रत्येक अनुष्ठान और क्रियाकलापोंमें श्रील गुरु महाराजकी नवीनता और वैशिष्ट्य परिलक्षित होता था, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल प्रचारकेन्द्र श्रीधाम नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके मुख्य प्रवेशद्वार 'नरहरि-तोरण' के प्राचीरमें 'पाषण्ड-गजैकसिंह' लिखवा उन्होंने श्रील वृन्दावनदास ठाकुरके आनुगत्यमें मुरारि भगवान् श्रीचैतन्यचन्द्रकी स्तुति की है। उनके अन्तरङ्ग सतीर्थ श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजने भी उन्हें 'पाषण्ड-गजैकसिंह' की उपाधिसे विभूषित किया था तथा वे इसी नामसे उन्हें सम्बोधित किया करते थे। मायावादी आदि शुद्धभक्तिके विरोधी लोगोंके लिए मानो वे चिरदिन ही हाथमें खड़ग धारण करनेवाले थे। ऐसे लोगोंको चिरशत्रु जानकर उन्होंने श्रीशङ्करके अद्वैतवाद या मायावादको इस जगत्से समूल उखाड़ फेंकनेकी भीष्मप्रतिज्ञा की थी। ये सब विषय उनके पत्र, प्रबन्ध, निबन्ध, व्याख्या, भाष्य, विवृति, भाषण आदिमें स्पष्टतः

व्यक्त हुए हैं। परम पूज्यपाद श्रील गोस्वामी महाराज श्रील गुरुपादपद्मको कहते—"आपको देखनेसे श्रील सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का स्मरण हो आता है। जिनका दर्शन करनेसे श्रील गुरुदेव स्मृतिपटलपर उदित होते हों, वे गुरु-स्वरूप, महाभागवतश्रेष्ठ हैं।"

'कृष्णभक्तमें कृष्णके सभी गुण सञ्चरित होते हैं'—इस वाक्यके अनुसार श्रील आचार्यदेव इंजीनियरिंग उत्तीर्ण नहीं करनेपर भी इंजीनियरोंका तथा वकालत पास नहीं करनेपर भी वकील और बेरिस्टर आदिको कानूनी परामर्श देते थे। अनेक अभिज्ञ इंजीनियर भी केन्द्रीय मठके तिलकचिह्नित गगनचुम्बी श्रीमन्दिरका दर्शनकर आश्चर्यान्वित हुए, जब उन्होंने यह जाना कि यह मन्दिर श्रील गुरु महाराजके अपने उपदेश, निर्देश और 'प्लान' के अनुसार निर्मित हुआ है। जगद्‌गुरु श्रील सरस्वती ठाकुरने कहा है—"सम्प्रदाय-रक्षाके लिए श्रीराधारानीकी सेवाकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।" 'श्रीराधारानीकी सेवा'—इसका अभिप्राय उन्होंने मठ-मन्दिरोंको विषयी और दुर्जन लोगोंके हाथोंसे बचानेके लिए मामला-मुकदमा आदि द्वारा धर्माधिकरणकी सहायता लेकर इनके संरक्षणको ही लक्ष्य किया है। अपने आराध्यदेव श्रील प्रभुपादके आदेश-निर्देशके अनुसार ही श्रील गुरुपादपद्मने कानूनी मार्ग द्वारा मिशनकी रक्षाका दायित्व ग्रहण किया था। उनकी अद्भुत स्मरणशक्ति और प्रतिभासे प्रभुपाद भी विस्मित हो जाते। एक बार वकीलोंके साथ तर्क-वितर्कमें श्रील गुरु महाराजके सतीर्थ श्रील माधव महाराजने कहा—"आपने वकालत कब पढ़ी, जिससे इन आइनज्ञोंके साथ आपने तर्क-वितर्क किया तथा उन लोगोंने आपकी बात मान ली?"

वैष्णव-साहित्य सृजन तथा सम्पूर्ण अभिनव गूढ़ार्थोंके साथ भक्तिके सिद्धान्तोंकी व्याख्याके प्रसङ्गमें भी उनका अवदान अतुलनीय है। अन्धानुयायीके अनुसार न चलकर मूल तत्त्व-सिद्धान्तोंके अन्तर्निहित भाव-धाराको अक्षुण्ण रखना, यह उनकी लेखनीका वैशिष्ट्य है। 'सम्प्रदाय-रक्षा ही श्रीमन्महाप्रभुकी श्रेष्ठ सेवा है'—इसे विशेष रूपमें अनुभवकर ही उन्होंने अपनी बलिष्ठ लेखनीको धारण किया था। अन्वय या व्यतिरेक रूपमें वाद-प्रतिवादके माध्यमसे तत्त्व-सिद्धान्तका स्थापन ही उनका मुख्य लक्ष्य था तथा इसमें अद्भुत अलौकिक नवीनता

थी। उनके द्वारा रचित 'श्रील प्रभुपादकी आरति', 'श्रीतुलसी-आरती', 'मङ्गल-आरति' आदि गीतोंमें भी उनकी अभिनव अलौकिक प्रतिभा प्रकाशित हुई है। 'मङ्गल-आरति' में उन्होंने अप्राकृत कवि श्रीजयदेवके गीत-गोविन्दका अनुसरण करते हुए चिल्लीलामिथुन श्रीव्रजनवयुवद्वन्द्वकी असमोर्द्ध्व माधुर्य-लीलाकथाका दिग्दर्शन कराया है। श्रीपत्रिकाके प्रकाशके लिए किसी प्रबन्धका dictation (श्रुतिलेख) देनेके समय अकस्मात् अतिथिअभ्यागतके साथ कथोपकथनके समय भी वे मूल प्रबन्धके विषयवस्तुसे अलग न होते अथवा किसी प्रकारकी विरक्तिका अनुभव नहीं करते। यह भी उनका अतिमर्त्य चारित्रिक वैशिष्ट्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सर्वोपरि श्रीगुरुपादपद्मके प्रति अनन्य निष्ठाने ही उन्हें सतीर्थ और अनुकम्पित लोगोंमें श्रेष्ठत्वके आसनपर प्रतिष्ठित किया है। अपने सतीर्थ—गुरुभ्राताओंको कानून आदि समस्त विषयोंमें सत्परामर्श प्रदानके द्वारा श्रील गुरुपादपद्मने उदारनैतिक मनोभावका परिचय दिया है। परमार्थ-सम्बन्धी जटिल प्रश्न और कूट-तर्क आदिका शास्त्रसिद्धान्तके अनुसार सदुत्तर देनेके कारण सारस्वत गौड़ीय समाजमें वे एक ही साथ कोविद (नीतिज्ञ) और न्यायकोविदके रूपमें प्रसिद्ध थे। श्रीजन्माष्टमी, श्रीएकादशी आदि हरिवासर, श्रीगौरजयन्ती, श्रीरामनवमी, श्रीनृसिंह चतुर्दशी, श्रीअद्वैत सप्तमी, श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी आदि व्रत-उपवास पूर्वविद्धा त्यागकर विशेष निष्ठाके साथ पालन करनेका उन्होंने आदर्श प्रदर्शन किया है। उन्होंने श्रीवेदान्त समितिमें चातुर्मास्य और ऊर्जा व्रतके कठोर नियम आदि (विधि-निषेधात्मक) का पूर्णतः संरक्षणकर श्रील सरस्वती प्रभुपाद, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित-प्रचारित रीति और आदर्शका सम्पूर्ण रूपसे अनुवर्तन किया है। चातुर्मास्यव्रतपालनमें उदासीनता या ऊर्जाव्रतके आदरमें शिथिलताका उन्होंने कभी अनुमोदन नहीं किया और न कभी प्रश्रय दिया। तत्त्व-सिद्धान्त-विचारको लेकर उन्होंने एक बार परम पूजनीय यतिराज श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराजको विशेष गुरुनिष्ठाका प्रदर्शन करते हुए कहा—"मैं पूर्व गोस्वामिवर्गको जानता-पहचानता नहीं। मैं जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी विचारधाराको ही अभ्रान्त सत्य मानता हूँ। श्रील प्रभुपादके

आलोकमें ही मैं पूर्व गोस्वामियोंको जानने-समझनेकी चेष्टा करूँगा। उनकी व्याख्या-विवृतिका ही श्रेष्ठत्व सबसे पहले मानूँगा। 'आचार्येर जेई मत सेई मत सार। अन्य आर जत मत जाउक छारखार॥'—यही मेरा विचार है।" श्रील गुरुपादपद्मके प्रति उनकी ऐसी ऐकान्तिकी निष्ठा अवश्य ही अतुलनीय है।

श्रीगौरसुन्दरके प्रेष्ठ परिकर श्रील गुरुपादपद्मने बद्धजीवके नित्य-कल्याणके लिए ही "मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय" ग्रन्थकी रचना की है। अन्याभिलाषी, कुज्ञानी, कुयोगियोंके मतवादोंका खण्डनकर उन्होंने उन्हें वास्तविक परमार्थका पथ दिखाया। आदर्श त्रिदण्डि-गोस्वामीके रूपमें वे विरोधी पाखण्डियोंके भी यथार्थ मङ्गलकी कामना करते थे। हमने अनेकों बार सत्यकी रक्षाके लिए उनकी निर्भीकता तथा दृढ़ताका परिचय पाया है। वे चित्-जड़-समन्वयवादीको कभी प्रश्रय नहीं देते थे। प्राकृत-सहजियागणके भोगमय विचारको गर्हित करनेके उद्देश्यसे उन्होंने इस विषयमें श्रील प्रभुपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित प्रबन्ध आदिका संकलनकर 'सहजिया-दलन' ग्रन्थका प्रकाश और प्रचार एवं शुद्धाचारपरायण निर्दोष जीवन-यापनका आदर्श प्रदर्शन किया। केन्द्रीय सरकार और अनेक मिशन-संघके अनित्य देह-मनोधर्मकी क्लेश-निवारण-प्रचेष्टा अथवा समाज-सेवामूलक अनुष्ठानकी अकिञ्चित्करताका प्रदर्शनकर उन्होंने पारमार्थिक चिकित्सालय और वेदान्त-विद्यापीठ आदिकी स्थापना की। दुःसङ्गके वर्जनमें वे 'वज्रादपि कठोर' और भक्तिके अनुकूल कर्ममें 'कुसुमकी भाँति कोमल' थे। कर्मजड़-स्मार्त समाजकी कर्मकाण्डीय व्यवस्थाके अनुसार प्रसव तथा मृत्युके उपरान्त अशुचि और मलमास आदि विचारोंको प्रश्रय नहीं देकर उन्होंने 'श्रीपुरुषोत्तम-व्रतपालन' आदिके द्वारा श्रीनामभजनमें ही शुद्धताकी शिक्षा दी है। निष्किञ्चन और समर्पित-आत्मा होकर श्रीकृष्णकी इच्छाके ऊपर पूर्ण रूपसे निर्भर होकर अर्थात् 'भगवान्‌की इच्छा पूर्ण हो' अथवा 'भगवान्‌की इच्छासे सब कुछ सम्भव है', इस प्रकारकी भावनासे वे जीवन-यापन करते थे, सेवकगण यह देखकर विस्मित हो जाते। उनकी कबूतर एवं गौरैया पक्षीके प्रति स्नेह, ममता, अहिंसाकी नीति, बालक, वृद्ध सबके प्रति सरल सदय व्यवहार सभी लोगोंकी दृष्टिको आकर्षित

कर लेता था। जीवको ब्रह्म माननेवाले, पाँचमिशाली, पञ्चोपासक, बहुईश्वरवादी, शून्यवादी, निर्विशेष ब्रह्मवादी आदि अपधर्म, उपधर्म, छलधर्म आदि विचारका शास्त्रीय-सिद्धान्तके आधारपर तीव्र रूपमें खण्डन करनेपर भी उनके चित्तका सहज, सरल, प्रशान्त भाव नष्ट नहीं होता था। निर्जन भजनके नामपर उन्होंने कभी आलस्यको प्रश्रय नहीं दिया, बल्कि काय, मन और वाक्यके द्वारा साधुसङ्गमें कृष्णानुशीलनका उपदेश दिया है। श्रीहरिनामके द्वारा ही सर्वार्थ सिद्धि और कृष्णप्रेममें समाधि प्राप्त होती है, यह उन्होंने स्वयं आचरणकर शिक्षा दी है। सोलह नामका संख्यापूर्वक या संख्यारहित अहर्निश उच्च स्वरसे कीर्त्तन करनेसे क्षुधा-तृष्णाको जीतना सम्भव है तथा रिपुपञ्चकके व्यवहारके विषयमें उन्होंने सेवकोंके समीप आदर्श स्थापन किया है। श्रील कविराज गोस्वामीकी उक्ति—'मैं मलमें पड़े हुए कीड़े-से भी तुच्छ हूँ' तथा श्रील वृन्दावन दास ठाकुरकी उक्ति 'ऐसे लोगोंके सिरपर लाठीसे प्रहार करूँ'—इन दोनों वाक्योंका तात्पर्य एक ही है और इनमें आत्मकल्याणजनक वास्तविक दैन्य जानकर अमानी-मानद धर्ममें दीक्षित होकर श्रीकृष्णनाम ग्रहण करनेका उपदेश दिया गया है। उपास्य-तत्त्वके सम्बन्धमें उनकी अपनी भजनप्रणालीके उन्नततम गम्भीर भावसमूहने उन्हें एक साथ ही भजनानन्दी और गोष्ठानन्दीके आसनपर प्रतिष्ठित किया था। अनर्थयुक्त जीवोंके उद्धारके लिए उनकी करुणा अहैतुकी थी। हरिभजनकी चेष्टा करनेवालोंके कल्याणके लिए उनके मठ-मन्दिरका द्वार सर्वदा ही खुला हुआ था। अपने सतीर्थ वैष्णवोंकी सेवाके लिए उनके यत्नाग्रहकी सीमा नहीं थी। उत्तम रूपसे उनकी सेवा करानेके बाद ही वे परितृप्त होते। उनके द्वारा रचित मायावादको ध्वस्त करनेवाले ग्रन्थ और गीतिकाव्य, दार्शनिक प्रबन्ध आदि, विभिन्न सभाओंमें प्रदत्त गम्भीर तत्त्वसिद्धान्तमूलक भाषण आदि उनके अतिमर्त्यत्व (अलौकिकता) का प्रकृष्ट परिचय प्रदान करते हैं। वे सारस्वत वाणीके आश्रयमें श्रीभक्तिविनोदधारामें नित्य निष्णात होकर श्रीरूप-रघुनाथके प्रचारके विषयका आस्वादन करते हुए श्रीगौर-राधाविनोदबिहारीजीके सेवानन्दमें विभोर रहते। अपने अनुगत सेवकोंको वे सर्वदा हरिकथा और हरिकीर्त्तनमें नियुक्त रखनेकी चेष्टा करते और

कृष्णके अतिरिक्त जड़-विषयक कथाको ही उपदेशामृतमें कथित वाक्-वेग कहकर उसे दूर करनेका उपदेश देते।

बहुत चेष्टा करनेपर भी कोई श्रील गुरुपादपद्मको आहार और वस्त्र आदि नहीं दे पाते। इतना ही नहीं वे अपनी अनुगृहीता विधवाओंके दानपत्र और दलील इत्यादि भी ग्रहण नहीं करते और अपने अनुकम्पित सेवकोंको भी ऐसा दान ग्रहण करनेको निषेध करते। पुनः कदाचित् किसीको भी अयाचित भावसे कृपा करनेमें कुण्ठित नहीं होते। उनके द्वारा प्रदत्त सामान्य वस्तुको ग्रहणकर उनलोगोंको गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए उत्साह प्रदान करते। गृहमें आसक्त लोगोंकी दुर्दशाकी चिन्ताकर वे प्राकृत सहजिया 'घरपागला और गृही बाउला' लोगोंके नामोंका उल्लेखकर अपने त्यागी शिष्योंको सदैव सावधान करते। 'विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन। मलिन मन हैले नय कृष्णेर स्मरण॥'—इसकी व्याख्याके माध्यमसे उन्होंने गुरुभोगी और गुरुत्यागी सम्प्रदायके साथ किसी भी प्रकारका आदान-प्रदान और संश्रय रखनेकी कठोर निषेधाज्ञा जारी की थी। 'कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल भोग त्याग'—वे स्वयं इसका आचरणकर सेवकोंको शिक्षा देते तथा श्रीऊर्जा-व्रत, पुरुषोत्तम-व्रत आदिमें अपने शिष्योंको भोजनकी लालसाका परित्यागकर भूमिपर शयन और गौ-ग्रासपूर्वक प्रसाद ग्रहण करनेके वैराग्याभ्यासका उपदेश देते। सेवानुकूल्य-संग्रहके विषयमें भिक्षुकगणको 'तोमार सेवाय दुःख हय जत सेओ त परम सुख'—इस पदका भलीभाँति विचार करते हुए सुविधापूर्ण जीवन-यापन न कर कष्ट सहते हुए श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त रहनेका निर्देश देते थे। अपने लिए बैंक बैलेंस द्वारा अन्तिम कालका बन्दोबस्त करनेवाले मठवासी सेवकाभिमानियोंको उन्होंने कपट-वैष्णववेषी, भगवत्-विश्वासहीन सुविधावादी और नास्तिक बताया है।

कृष्ण-तत्त्ववेत्ता आदर्श गुरुके रूपमें उन्होंने अपने अनुगताभिमानी लोगोंको अनर्थ युक्त अवस्थामें "अष्टकालीय लीलास्मरण और सिद्धदेहकी भावना" का निषेध किया है और जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके उपदिष्ट वाक्य—"कीर्त्तनके प्रभावसे स्मरण होगा और तब उस अवस्थामें निर्जन भजन सम्भव है"—इसके प्रति सबकी दृष्टिको विशेष रूपसे

आकर्षित किया है। श्रीगुरु-वैष्णवोंका अवैध अनुकरण सेवा या भजन नहीं है, बल्कि वे इसे पाषण्डता कहते थे। अपने द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके मुख्य दरवाजेपर सेवकों द्वारा उन्होंने निम्नलिखित पद्य लिखवाया था—

जड़विद्या जत मायार वैभव तोमार भजने बाधा।
मोह जनमिया अनित्य संसारे जीवके करये गाधा॥

अर्थात् कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा संग्रहके लिए व्याकरण आदि शास्त्राध्ययनका प्रयोजन नहीं है। परन्तु "जिस विद्याकी आलोचनासे मनमें कृष्णरति स्फुरित हो, उसीके प्रति सबका आदर होना चाहिये।" "जिस विद्या द्वारा भक्तिमें बाधा पहुँचे, उस विद्याके मस्तकपर पदाघात करो, सरस्वती, जो कृष्णप्रिया है और कृष्णभक्ति जिसका हृदय है, वही भक्तिविनोदका वैभव है।"—इन सब वचनोंका तात्पर्य बताना चाहते थे। श्रील गुरुपादपद्म सेवाके नामपर कपटता और भक्तिके नामपर ढोंग कभी नहीं सहते थे। एक बार उनके किसी गृहस्थ शिष्य द्वारा प्रचारकेन्द्र मठकी स्थापनाके लिए दानपत्र दलीलकर प्रकारान्तरसे गुरु-वैष्णवोंको सेवक बनानेकी चेष्टा करनेपर उन्होंने वहाँके मठसेवकोंको वापस बुलाकर उक्त शिष्यनामधारीके प्रति निरपेक्षताका प्रदर्शन किया था। वे अपने व्यक्तिगत सेवक या शिष्याभिमानीको भी कपटताका परित्यागकर अन्यान्य ज्येष्ठ गुरुसेवकोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए मिल-जुलकर रहनेके लिए कठोर शासन करते। व्रजमण्डल आदि क्षेत्रमें मधुकरी भिक्षा द्वारा जीवन-निर्वाहका अभिनय करनेवालोंकी अपचेष्टाकी निन्दा करते। वे यह भी स्मरण कराते कि जिह्वा-लाम्पट्य आदिमें आसक्त वृत्तिवालोंको व्रजमें बन्दर, कछुए आदिका जन्म-ग्रहण करना पड़ता है। वे कहते थे कि जब तक चित्त निर्गुणावस्थाको प्राप्त नहीं होता, तब तक निर्गुण मधुकरी भिक्षामें किसीका अधिकार नहीं होता।

श्रील गुरु महाराजके सतीर्थ गुरुभ्राताने किसी समय अपनी पत्रिकामें लिखा—"जो मायापुरसे बाहर अथवा दूर हैं, वे श्रील प्रभुपादकी सेवासे वञ्चित हैं।" श्रील आचार्यदेवने वज्रगम्भीर स्वरसे इसका प्रतिवाद करते हुए घोषणा की—"जो गुरुभोगी या गुरुत्यागी हैं, वे प्रभुपादसे लाखों-करोड़ों योजन दूर अवस्थित हैं। जिस समय ऐसे लोगोंने मायापुरका परित्यागकर

१०-१२ वर्ष तक कलिके राजत्वमें वास किया है, उस समय निश्चय ही उनलोगोंके द्वारा श्रील प्रभुपाद और मायापुरकी सेवा नहीं हुई। ऐसे लोगोंने बाह्यतः श्रील प्रभुपाद और श्रीधामसेवाकी छलना की है। नित्यानन्दाभिन्न श्रीगुरुपादपद्म चिरदिन ही धन इत्यादि द्वारा कपटी लोगोंकी वञ्चना करते हैं। पक्षान्तरमें श्रीगुरुसेवामें जिनकी निष्ठा है और जिनके प्राण गुरुके लिए समर्पित हैं, ऐसे सेवक किसी भी स्थानमें रहते हुए श्रीगुरुदेवकी मनोभीष्ट सेवामें नित्य संलग्न रहते हैं।" श्रील प्रभुपादसे सम्बन्धयुक्त मठवासी त्यागी, गृहस्थ, साधारण जो कोई व्यक्ति उनके निकट उपस्थित होते, श्रील गुरुपादपद्म आन्तरिक भावसे उनकी सेवाका यत्न करते। यह 'श्रीगुरुदेवात्म' शिष्यका विशेष सद्‌गुण है।

अनेक समय यह देखा जाता कि श्रीगुरुपादपद्म अतियत्नपूर्वक पाँच, दस रुपयेके नोटोंको बटुएमें सजाकर रखते थे। इसके द्वारा यह संशय होनेका यथेष्ट कारण होता कि रुपयेमें उनकी अत्यधिक आसक्ति है। इस विषयमें प्रश्न करनेपर श्रील प्रभुपादकी भाषामें वे उत्तर देते—"आसक्तिरहित सम्बन्धसहित विषयसमूह सकलि माधव। अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके सम्बन्धमें अप्राकृत अनुराग ही कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छाकर भगवत्-प्रेमसुख-तात्पर्य है।" श्रीगुरुपादपद्मके अतिमर्त्य चरित्रका अनुसरण करनेके बदले अनुकरण करनेसे भजनसे पतित होना पड़ता है। उनके स्नेहशासन और आत्मकल्याणजनक उपदेशोंको ग्रहण करनेसे मङ्गल होता है। परदुःखदुःखी श्रीगुरुका हृदय जीवोंके दुःखसे कातर होनेपर भी उन्होंने बताया है कि कपट व्यक्तिका मङ्गल असम्भव है।

किसी भक्त द्वारा एक दिन रासलीला और भ्रमरगीत आदिकी व्याख्याका अनुरोध किये जानेपर उन्होंने कहा—"शुद्धसत्त्व हृदयमें अनर्थसे निर्मुक्त अवस्थामें श्रीनामकीर्त्तनके माध्यमसे रास आदि लीलाकथा श्रवण करनेका अधिकार आता है। अन्यथा श्रीराधागोविन्दकी अप्राकृतलीलाको प्राकृत नायक-नायिकाका व्यापार समझकर केवल भ्रान्त धारणाकी सृष्टि होती है। सिद्धदेहमें ही रसोद्भावना सम्भव है। जड़बद्ध देहमें शृङ्गाररसकी भावना असम्भव है। इतर विषयोंसे वैराग्यप्राप्त जातरति व्यक्ति ही सम्भोगरसकी आलोचनाके अधिकारी हैं।"

श्रीगुरु-वैष्णवोंको तत्त्वतः जानने या समझनेके लिए भगवत्-कृपा और प्रेरणा अत्यावश्यक है। वैष्णवगण कभी बहिर्मुख व्यक्तिको प्रतिष्ठा देकर दुःसङ्गसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं, पुनः कभी जनसङ्गके भयसे अपने स्वरूपका गोपन करते हैं, कभी शिष्य करनेका अभिनय करते हैं, शिष्यों द्वारा परिवेष्टित रहते हैं, उनसे परामर्श और सेवा ग्रहण करनेका अभिनय करते हैं, तथापि अपनी परतन्त्र-स्वतन्त्रताकी रक्षा करते हैं। यही उनके अतिमर्त्य अचिन्त्य चरित्रका वैशिष्ट्य है। श्रील आचार्यदेव अपने जीवनकालमें श्रील प्रभुपादके मनोभीष्टकी सर्वदा रक्षा करते हुए चलते थे। वे दैव-वर्णाश्रमधर्मका संस्थापन, आचरणशील होकर भक्तिसिद्धान्तोंका प्रचार, श्रीधाम परिक्रमा, मुद्रणयन्त्रका स्थापन, भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन, श्रीनामहट्टका प्रचार इत्यादिमें सम्पूर्णतः नियुक्त रहते थे।

श्रील परमाराध्यदेव अपने अप्रकटलीला-आविष्कारके कुछ मास पूर्व कलिकी राजधानी कलकत्ता महानगरीमें चिकित्सा ग्रहण करनेका अभिनय करते हुए ट्यांरा स्थित किसी विशेष श्रद्धालु भक्तके घरमें अवस्थान कर रहे थे। इससे अनेक लोगोंको सन्देह हो सकता है कि श्रीधामको छोड़कर वे कलिकी राजधानीमें क्यों रहे? 'यथाय वैष्णवगण सेई स्थान वृन्दावन सेई स्थाने आनन्द अशेष'—इस विचारके अनुसार महाभागवत श्रीगुरुवर्ग किसी भी स्थानमें अप्राकृत गोलोक वृन्दावनका आविर्भाव कराकर व्रजनवयुवद्वन्द्वकी अभीष्ट अष्टकालीय सेवामें मग्न रह सकते हैं। प्रयोजनावतारी श्रीगौरसुन्दरकी महावदान्यता और श्रीराधा-गोविन्दकी अप्राकृत लीलामाधुरीका आस्वादन करनेवाले नित्यसिद्ध महाभागवतोत्तम महापुरुषके श्रीपादपद्मका आश्रय प्राप्तकर हरि-भजन-पिपासु जनसाधारण, विशेषतः श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सेवकगण विशेष सौभाग्यवान और धन्यातिधन्य हैं। श्रीरूपानुग सारस्वत गौड़ीय वैष्णवजगत् इन लोकोत्तर महापुरुषके निकट सभी विषयोंमें चिर-ऋणी है और रहेगा, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है।

पञ्चम भाग

श्रीलगुरुपादपद्मके द्वारा प्रचारित सिद्धान्त

युग-युगमें भगवान् और उनके प्रिय परिकरजन भुवनमङ्गलके लिए जो उपहार अपने साथ लेकर पृथ्वीमें अवतीर्ण होते हैं, उसका अपना-अपना एक मौलिकत्व और वैशिष्ट्य होता है। करुणावरुणालय भगवान् और उनके प्रियजन कोई नश्वर सम्पत्ति अथवा वस्तु दानकर विश्ववासियोंकी वञ्चना नहीं करने आते। वे आत्माके नित्य कल्याणजनक वस्तुका दान करनेके लिए अवतीर्ण होते हैं। उनका वह उपहार या दान सांसारिक भोग्य वस्तुओंकी भाँति स्थूल आकारमें नहीं देखा जा सकता। यदि कोई उनके द्वारा प्रदत्त अतिमर्त्य दानको स्थूल भोगके रूपमें दर्शन करनेकी चेष्टा करता है, तो उसे उस दानकी महती कृपासे वञ्चित होना पड़ेगा।

परम कारुणिक भगवान् और उनके परिकरोंमेंसे प्रत्येकके दानके स्वरूपका पृथक्-पृथक् मौलिकत्व और वैशिष्ट्य रहनेपर भी समस्त पूर्वावतारों एवं पूर्वाचार्योंके अतिमर्त्य दानके विभिन्न मौलिकत्व और वैशिष्ट्यको क्रोड़ीभूतकर जो व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर, श्रीराधाभाव एवं राधाकी कान्तिको अङ्गीकारकर श्रीगौरसुन्दरके रूपमें अवतीर्ण हुए थे, उन्होंने परमकरुण और रसिकशेखर होनेके कारण जगत्को श्रीहरिनामके माध्यमसे जिस प्रेमाभक्तिका वितरण किया था, उसकी कहीं भी कोई तुलना नहीं है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी प्रेरणा और कृपासे श्रील रूपगोस्वामीने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंमें जो भक्तिरसकी सरिता प्रवाहित की है, वही गौड़ीय वैष्णवोंकी मूल सम्पत्ति है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीलकविराज गोस्वामी, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीभक्तिविनोद

ठाकुर एवं जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद आदि रूपानुग वैष्णवोंने उसी शुद्धा या प्रेमा भक्तिका प्रचार एवं प्रसार किया है।

जिस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने उच्च कोटिके परिकरोंके सहित इस धराधाममें प्रकटित होकर थोड़े ही दिनोंमें सारे भारतवर्षमें हरिनाम-सङ्कीर्त्तन एवं शुद्धाभक्तिका प्रचार किया था, उसी प्रकार ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने भी अपने उच्च कोटिके परिकरोंके साथ लगभग सवा सौ वर्ष पहले पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर अल्प कालमें ही सारे विश्वमें श्रीनामसङ्कीर्त्तन एवं शुद्धाभक्तिका प्रचार किया था। अस्मदीय गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज श्रीलप्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकरोंमेंसे अन्यतम थे।

जगद्गुरु श्रीलप्रभुपादके अप्रकट होनेपर सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें एक अन्धकारका युग उपस्थित हुआ। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रवाहित शुद्धाभक्तिकी धारा रुद्ध होने लगी। उनके द्वारा प्रकाशित विभिन्न भाषाओंकी दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाएँ बन्द हो गयीं। श्रील प्रभुपाद द्वारा स्थापित प्रचार-केन्द्रोंके संन्यासी-ब्रह्मचारी निरुत्साहित होकर मूल मठ छोड़कर पृथक्-पृथक् मठकी स्थापना करने लगे। बहुत-से आश्रमवासी गृहस्थ आश्रमकी ओर लौटने लगे और इस प्रकार प्रचार-धारा बन्द होने लगी। श्रीश्रील गुरुपादपद्मने अपने संक्षिप्त आत्मचरितमें लिखा है कि १ जनवरी, १९३७ ई॰ में हमारे श्रीश्रीगुरुदेवके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् गौड़ीय मिशनमें नाना प्रकारकी गड़बड़ियाँ आरम्भ हुईं। मैंने इस विषम परिस्थितिमें जून, १९३९ ई॰ में श्रीचैतन्य मठ छोड़ दिया तथा १९४० ई॰ वैशाख महीनेकी अक्षय तृतीयाके दिन बागबाजार कलकत्ता ३३/१ बोसपाड़ा लेनमें एक किरायेके भवनमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की। तत्पश्चात् सितम्बर, १९४१ ई॰ में भाद्रपदकी पूर्णिमा तिथिके दिन श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास क्षेत्र कटवामें श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत त्रिदण्डि यति पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजसे त्रिदण्ड संन्यास ग्रहणकर श्रीधाम नवद्वीपके अपने मठमें लौट आया और वहींसे विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करना आरम्भ किया।

आचार्य केसरी ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके प्रचारका मुख्य विषय था मायावाद, स्मार्त, सहजिया आदि भक्तिविरुद्ध अर्वाचीन कुमतोंका खण्डनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत गौड़ीय वैष्णव आचार्योंके द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्धाभक्तिकी स्थापना। हमलोग यहाँ उनके द्वारा प्रचारित शुद्धाभक्तिके स्वरूपका उल्लेख कर रहे हैं। वे अपने प्रचारमें सर्वत्र ही भक्तिकी प्रतिष्ठाके लिए निम्नलिखित दो श्लोकोंका प्रमाण देते थे। उनमेंसे प्रथम श्रीलचक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्लोक—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

अर्थात्, भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं वैसे ही वैभवयुक्त श्रीधाम वृन्दावन ही आराध्य वस्तु हैं। व्रजवधुओंने जिस भावसे कृष्णकी उपासना की थी, वह उपासना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द-प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। यह सिद्धान्त ही हम लोगोंके लिए परम आदरणीय है, अन्य मत आदर योग्य नहीं हैं।

और दूसरा श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर रचित दशमूलका प्रथम श्लोक—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृति-कवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावाद्।
भेदाभेद—प्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं तत्-प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा प्राप्त वेद-वाणियोंको आम्नाय कहते हैं। वेद और वेदानुगत श्रीमद्भागवत आदि स्मृतिशास्त्र तथा वेदानुगत प्रत्यक्षादि प्रमाण-ही-प्रमाणके रूपमें स्वीकार किये गये हैं। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि—(१) हरि ही परमतत्त्व हैं, (२) वे सर्व-शक्तिमान हैं, (३) वे अखिल रसामृत-सिन्धु हैं, (४) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (५) बद्धजीव मायाके अधीन होते

हैं, (६) मुक्त जीव मायासे मुक्त होते हैं, (७) चित् अचित् अखिल जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (८) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (९) कृष्ण-प्रीति ही एकमात्र साध्य वस्तु है।

इनमेंसे पहले श्लोकमें श्रीलचक्रवर्ती ठाकुरने अत्यन्त संक्षेपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके मतका उल्लेख किया है। इस श्लोकमें श्रीगौड़ीय गोस्वामियों द्वारा गृहीत सिद्धान्तके अनुसार सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वका अत्यन्त सुन्दर रूपमें वर्णन किया है। श्रीमद्भागवतमें 'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'—इस श्लोकके द्वारा अद्वयज्ञान परतत्त्वकी त्रिविध प्रतीतियोंका उल्लेख किया गया है—ब्रह्म-प्रतीति, परमात्म-प्रतीति एवं भगवत्-प्रतीति। इनमेंसे सर्वकारणकारण, षडैश्वर्य-पूर्ण, सर्वेश्वरेश्वर, जगत्के आदि स्वयं अनादि भगवत्-तत्त्व ही मुख्य प्रतीति है। इस भगवत्-प्रतीतिके केवल चिदंशके विकृत प्रतिफलन निर्विशेष ब्रह्मको ब्रह्म-प्रतीति कहा गया है। उपनिषदोंमें इसे निर्विशेष ब्रह्म कहा गया है। यह निर्विशेष ब्रह्म भगवान्की अङ्गकान्ति है। योगशास्त्रमें सर्वशक्तिमान भगवत्-तत्त्वके सत्+चित् स्वरूपकी आंशिक प्रतीतिको परमात्म प्रतीति कहा गया है। व्यष्टिगत जीवोंके हृदयमें कर्मफलके नियन्ता या साक्षीके रूपमें अङ्गुष्ठ परिमाणमें विराजमान विष्णुको परमात्म-प्रतीति कहते हैं।

भगवत्-तत्त्व भी ऐश्वर्यप्रधान एवं माधुर्यप्रधानके भेदसे दो प्रकारका होता है। षडैश्वर्यपूर्ण भगवत्-तत्त्व परव्योम वैकुण्ठमें श्रीनारायणके रूपमें नित्यकाल लक्ष्मी आदि परिकारों द्वारा परिसेवित होकर विराजमान रहते हैं। अपनी वेणुमाधुरी, रूपमाधुरी, गुणमाधुरी और लीलामाधुरी—इन चार प्रकारकी माधुरियोंसे विशेष रूपसे युक्त, व्रजमें गोप-गोपियोंसे परिसेवित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं। इसीलिए उक्त श्लोकमें व्रजमें अवस्थित व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरको ही सर्वाराध्य बताया गया है। यद्यपि ब्रह्म, परमात्मा एवं सारे अवतारसमूह तत्त्वतः एक ही हैं, किन्तु शक्ति एवं रसप्रकाशके वैशिष्ट्यके कारण व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। 'तद्धाम वृन्दावनं' कहनेका विशेष तात्पर्य यह है कि अखिल रसामृतसिन्धु व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी मधुर लीलाएँ वृन्दावनके अतिरिक्त वैकुण्ठ, साकेत, द्वारका या मथुरामें अन्यत्र कहीं

भी सम्भव नहीं हैं। इसीलिए व्रजधामको भी कृष्णसे अभिन्न आराध्य तत्त्व बतलाया गया है। यद्यपि ये व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर व्रजमें दास्य, सख्य एवं वात्सल्य रसके परिकरों द्वारा भी परिसेवित होते हैं, फिर भी व्रजरमणियोंकी परम रसमयी पारकीय माधुर्यमयी उपासना ही सर्वोपरि है। इन पारकीय भावापन्न गोपियोंमें भी महाभावस्वरूपा कृष्णकान्ता–शिरोमणि श्रीमती राधिकाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण उन्हींके भाव और अङ्गकान्तिको ग्रहणकर अपनी माधुरियोंका आस्वादन करनेके लिए तथा विश्वमें नामप्रेम वितरण करनेके लिए जगतमें श्रीगौरसुन्दरके रूपमें आविर्भूत हुए थे। इन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके मतका उक्त श्लोकमें संक्षेपमें वर्णन किया गया है।

गौरपार्षद श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीगौड़ीय गोस्वामियों एवं आचार्योंके विचारोंका सार संकलनकर दशमूल–तत्त्वकी शिक्षा दी है। इस दशमूल–तत्त्वमें वेद, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र, गीता, श्रीमद्भागवत एवं गोस्वामी–ग्रन्थोंका सार–निर्यास गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है। हमारे परमाराध्य श्रीलगुरुपादपद्म, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा शिक्षित इस दशमूल–तत्त्वका सर्वत्र ही प्रचार करते थे। इसलिए हम संक्षेपमें यहाँ दशमूल–तत्त्वका वर्णन कर रहे हैं—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृति–कवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावाद्।
भेदाभेद—प्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं तत्–प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

अर्थात् गुरु–परम्परा द्वारा प्राप्त वेद–वाणियोंको आम्नाय कहते हैं। वेद और वेदानुगत श्रीमद्भागवत आदि स्मृतिशास्त्र तथा वेदानुगत प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही प्रमाण स्वीकार किये गये हैं। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि—(१) हरि ही परमतत्त्व हैं, (२) वे सर्व–शक्तिमान हैं, (३) वे अखिल रसामृत–सिन्धु हैं, (४) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (५) बद्धजीव मायाके अधीन होते हैं, (६) मुक्त जीव मायासे मुक्त होते हैं, (७) चित् अचित् अखिल जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (८) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (९) कृष्ण–प्रीति ही एकमात्र साध्य वस्तु है।

स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रद्धालु जीवोंको दश प्रकारके तत्त्वोंका उपदेश दिया है। उनमें पहला है—प्रमाण-तत्त्व और शेष नौ प्रमेय-तत्त्व हैं। जिस विषयको प्रमाणके द्वारा सिद्ध किया जाता है, उसे प्रमेय कहते हैं। जिसके द्वारा वस्तुको निर्धारित या प्रमाणित किया जाता है, उसे प्रमाण कहते हैं। उपरोक्त श्लोकमें इन मूलदश-तत्त्वोंका विवेचन किया गया है।

(क) प्रमाण-तत्त्व

(१) विश्वकर्त्ता श्रीभगवान्‌के प्रिय ब्रह्मासे गुरु-परम्पराके माध्यमसे प्राप्त ब्रह्मविद्या नामक श्रुतियोंको आम्नाय कहते हैं। चारों वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और अनुव्याख्या—ये सभी आम्नायके अन्तर्गत आते हैं। यहाँ इतिहाससे रामायण और महाभारत, पुराण शब्दसे श्रीमद्भागवत आदि अष्टादश महापुराण, उपनिषद् शब्दसे ईश, केन, कठ आदि मुख्य उपनिषद्‌समूह, श्लोकसे ऋषियों द्वारा रचित अनुष्टुप आदि छन्दोग्रन्थ तथा सूत्रसे प्रधान-प्रधान तत्त्वाचार्योंके द्वारा रचित वेदार्थ सूत्रोंको समझना चाहिये। सूत्र-ग्रन्थोंके ऊपर उन आचार्यों द्वारा रचित भाष्य आदिको व्याख्या कहते हैं। ये सभी आम्नाय शब्दसे परिचित होते हैं। आम्नाय शब्दका मुख्य अर्थ है—वेद। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी ऐसा कहा गया है—

स्वतःप्रमाण वेद प्रमाण-शिरोमणि।
लक्षणा करिले स्वतःप्रमाणता हानि॥

(ख) स्वतःप्रमाण वेद प्रमाणशिरोमणि हैं

वेद प्रमाणको श्रुति प्रमाण या शब्द प्रमाण भी कहते हैं। अतएव वेद, पुराण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र और वैष्णवाचार्यों द्वारा रचित भाष्य आदि ग्रन्थ आप्त वाक्य या आम्नाय वाक्य कहलाते हैं। श्रीलजीव गोस्वामीने आप्तवाक्य या शब्द प्रमाणकी प्रामाणिकता निश्चितकर पुराणोंकी भी प्रामाणिकता निर्धारित की है। अन्तमें उन्होंने श्रीमद्भागवतको सर्वप्रमाणशिरोमणिके रूपमें प्रमाणित किया है। उन्होंने जिस लक्षणके द्वारा श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है, उसी लक्षणके द्वारा उन्होंने ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव तदन्तर

क्रमानुसार विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदिके तत्त्वगुरु श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा प्रमाणित शास्त्रोंको भी प्रामाणिक ग्रन्थोंकी कोटिमें उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्म-सम्प्रदाय ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके आश्रित गौड़ीय वैष्णवोंकी गुरुप्रणाली है। कविकर्णपूर गोस्वामीने इसी मतको दृढ़ करते हुए स्वरचित गौरगणोद्देश-दीपिका नामक ग्रन्थमें तथा श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीने स्वरचित संस्कार-दीपिका नामक ग्रन्थमें गुरु-परम्पराका वर्णन किया है। वेदान्तसूत्रके भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी इसी प्रणालीको स्वीकार किया है। अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीआचार्यकेसरीने अपने रचित सभी ग्रन्थों, प्रबन्धों, विशेषतः अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्व नामक प्रबन्धमें विभिन्न युक्तियों और प्रमाणोंके द्वारा उपरोक्त मतकी पुष्टि की है। श्रीलगुरुपादपद्मका यह कार्य वर्त्तमान कालमें स्वसम्प्रदाय-रक्षाके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

साधारणतः मानवके विचारोंमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव[१] बद्धजीवमें ये चार दोष अवश्य ही पाये जाते हैं। महाधुरन्धर पण्डितजन भी अप्राकृत या अतीन्द्रिय तत्त्वका विचार करते समय उक्त चारों दोषोंको त्याग नहीं पाते। इसलिए उनका विचार निर्दोष और प्रमाणयोग्य नहीं होता। इसीलिए इन्द्रियातीत विषयमें अपौरुषेय वेदवाक्य ही एकमात्र शुद्ध प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, ऐतिह्य आदि अन्यान्य प्रमाणसमूह जब शब्द प्रमाण (वेदवाक्य) के अधीन होकर कार्य करते हैं, तभी वे कुछ सीमा तक सहायता कर सकते हैं और तभी वे प्रमाणके रूपमें गृहीत हो सकते हैं अन्यथा प्रमाणके रूपमें गृहीत नहीं हो सकते।

---

[१] **भ्रम**—बद्धजीव अपनी असम्पूर्ण (ससीम) इन्द्रियोंके द्वारा किसी असत्-वस्तुमें जो सत्-वस्तुका ज्ञान संग्रह करता है, उसे भ्रम कहते हैं, जैसे—मृगमरीचिकाका भ्रम।

प्रमाद—अमनोयोगता या अन्यमनस्कताको प्रमाद कहते हैं। जैसे—निकटमें गान होनेपर भी उसे नहीं सुनना।

विप्रलिप्सा—स्वार्थवश दूसरेकी वञ्चना करनेकी इच्छाको विप्रलिप्सा कहते हैं। जैसे—ज्ञात रहनेपर भी किसीको उस विषयका ज्ञान न देनेकी इच्छा।

करणापाटव—इन्द्रियोंकी अपटुता या मन्दताको करणापाटव कहते हैं। जैसे—मनोयोग देनेपर भी किसी वस्तुका परिश्चय या ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाना।

किन्तु पूर्ण समाधिकी अवस्थामें स्थित सिद्ध महर्षियों और वैष्णवाचार्योंके निर्मल हृदयमें सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान भगवान् स्वयं उदित होकर वेदके रूपमें सिद्ध ज्ञान प्रकट करते हैं। अतः स्वतःसिद्ध ज्ञानस्वरूप वेदकी प्रामाणिकता सर्वथा निर्मल और निर्भरयोग्य है।

(ग) कृष्ण ही परमतत्त्व हैं

कृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं। वे सबके आश्रय हैं। वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत आदि पुराण तथा आगमोंमें कृष्णको ही पूर्णतत्त्व या परमतत्त्व कहा गया है। वे सर्व ईश्वरोंके भी ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वरेश्वर हैं। श्रीमद्भागवतमें उन्हींको *'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'* एवं *'वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'* के द्वारा स्वयं-भगवान् एवं अद्वयज्ञान-परतत्त्व कहा गया है। अद्वयज्ञान तत्त्ववस्तु श्रीकृष्णके तीन स्वरूप हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं। उन्हींकी अङ्गकान्ति या अङ्गज्योतिको निर्विशेष ब्रह्म कहते हैं। जीवोंके अन्तर्यामी, साक्षी रूपमें स्थित भगवान्के अंश ही परमात्मा हैं। भगवद्भक्तजन विशुद्ध भक्तियोगका अवलम्बनकर भगवान्के सच्चिदानन्द श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

ज्ञानियोंकी आँखें भगवान्की अङ्गज्योतिसे चकाचौंध हो जानेके कारण भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन करनेमें असमर्थ होती हैं। किन्तु भगवद्भक्तगण भक्तिके प्रभावसे भगवान्के सच्चिदानन्द श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं। ज्ञानीलोग ज्ञानमार्गका अवलम्बनकर परतत्त्वको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें दर्शन करते हैं। जो लोग योगमार्गका अवलम्बनकर उनकी उपासना करते हैं, वे उन्हें परमात्माके रूपमें अनुभव करते हैं। भगवत्-दर्शन पूर्ण दर्शन है। ब्रह्मदर्शन और परमात्मदर्शन खण्ड दर्शन है।

श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् श्रीहरि हैं, वेद, उपनिषद् और पुराण इसके प्रमाण हैं—

(क) अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चन्तम्।
स सध्रीचीः। स विषुचीर्वसान आवरीवर्त्ति-भुवनेष्वन्तः॥

(ऋग्वेद १/१२/१६४/३१)

अर्थात् गोपवंशमें उत्पन्न एक बालकको देखा, जिसका कभी भी पतन (विनाश) नहीं है। वह कभी अत्यन्त निकट और कभी दूर नाना पथोंमें विचरण करता है। कभी-कभी वह भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्रोंसे सुसज्जित रहता है, तो कभी पृथक्-पृथक् (एक रङ्गके) वस्त्रोंसे आवृत रहता है। इस प्रकार वह बार-बार अपनी प्रकट और अप्रकट लीलाओंको प्रकाश करता है।

(ख) श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये।

(छांदोग्य उपनिषद ८/१३/१)

अर्थात् कृष्ण-सेवा द्वारा विचित्र विलासोंसे पूर्ण अप्राकृत चिदानन्दमय धामकी प्राप्ति होती है तथा विविध विचित्रताओंसे पूर्ण उस चित्-जगत्से कृष्णकी प्राप्ति होती है। 'श्याम' शब्दका अर्थ कृष्णसे है। तात्पर्य यह है कि 'कृष्ण' अर्थात् 'काला' कहनेसे रङ्गहीन—निर्गुण परतत्त्वका बोध होता है एवं 'शबल' शब्दका अर्थ 'गौर' है अर्थात् नाना प्रकारके रङ्गोंसे युक्त अथवा समस्त रङ्गोंके मिश्रणका नाम 'गौर' है। इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि समस्त अप्राकृत गुणोंसे युक्त परतत्त्वका नाम 'गौर' है। अतएव उपरोक्त मन्त्रका गूढ़ आशय यह है कि कृष्ण-भजनसे गौरकी और गौर-भजनसे कृष्णकी प्राप्ति होती है।

(ग) एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा॰ १/३/२८)

अर्थात् राम, नृसिंह आदि अवतारसमूह परमपुरुष भगवान्के अंश या कला हैं, किन्तु कृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं।

(घ) मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।

(गीता ७/७)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है।

(ङ) 'एकोवशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् बहुधा योऽवभाति।'

(गोपालतापनी पूर्व)

अर्थात् एकमात्र सबको वशमें करनेवाले सर्वव्यापी अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्ण देव, मनुष्य आदि प्राणिमात्रके पूजनीय हैं। वे एक होते हुए

भी अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे अनेक रूपोंमें प्रकाशित होते हैं तथा नाना प्रकारसे विलास करते हैं।

(च) वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो।

(गीता १५/१५)

अर्थात् सभी वेदोंका मैं ही ज्ञातव्य विषय हूँ।

कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि वेदोंमें कृष्णका नाम नहीं पाया जाता। परन्तु यह बात ठीक नहीं। वेदोंमें कहीं मुख्य या अभिधावृत्तिके योगसे, कहीं गौण या लक्षणावृत्तिके योगसे, कहीं अन्वय या साक्षात् व्याख्या द्वारा और कहीं व्यतिरेक वाक्योंके द्वारा एकमात्र श्रीकृष्णका ही प्रतिपादन किया गया है। हमने यह 'अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा', 'श्यामाच्छबलं' इत्यादि श्रुतिमन्त्रोंके द्वारा पहले ही दिखाया है। ऋक्-मन्त्रमें भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥

अर्थात् तुम्हारे (राधा और कृष्णके) उन गृहोंको प्राप्त होनेकी अभिलाषा करता हूँ, जहाँ कामधेनुएँ प्रशस्त शृङ्गविशिष्ट हैं और मनोवाञ्छित अर्थको प्रदान करनेमें समर्थ हैं—भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णका वह परमपद प्रचुर रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

इस वेदमन्त्रमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनकी प्यारी गौओंका बड़ा ही सरस एवं सुन्दर वर्णन किया गया है। ऐसे-ऐसे मुख्य वर्णनोंके स्थल वेदोंमें अनेक हैं।

गौण या लक्षणा वृत्ति द्वारा वर्णन—

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा इत्यादि॥ (बृहदारण्यक २/५/१४-१५)

श्रीकृष्णको लक्ष्य करके गुण-परिचय द्वारा गौण रूपसे कहते हैं कि आत्मारूप कृष्ण ही सम्पूर्ण भूतोंके मधु हैं, अधिपति हैं और राजा हैं। 'आत्मा' शब्दसे कृष्णका बोध होता है—ऐसा श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।

(श्रीमद्भा० १०/१४/५५)

अर्थात् हे राजन्! आप कृष्णको समस्त आत्माओंकी आत्मा जानो।

श्रीकृष्ण परब्रह्म, परमानन्द, पूर्णब्रह्म, स्वयं-भगवान् हैं। श्रीमद्भागवतमें तो स्पष्ट रूपसे इसकी घोषणा 'गूढं परमब्रह्म मनुष्यलिंगम', 'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्', 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' आदि श्लोकोंमें की गयी है। विष्णुपुराणमें भी 'यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परब्रह्म नराकृतिं' तथा गीतामें 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' आदि सिद्धान्त-वाणियोंमें श्रीकृष्णको परब्रह्म निर्धारित किया गया है।

हमारे गोस्वामियोंने शास्त्रोंका प्रमाण देकर इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। वे राम, नृसिंह इत्यादि समस्त अवतारोंके मूल अवतारी या अंशी हैं। वे परमात्मा और ब्रह्मके भी प्रतिष्ठास्वरूप हैं।

(घ) श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं

वेदादि अपौरुषेय शास्त्रोंमें परतत्त्वकी शक्तियोंका वर्णन पाया जाता है। सारग्राही महापुरुषोंने इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है कि शक्ति एक तत्त्व है तथा शक्तिमान दूसरा तत्त्व है। ये दोनों तत्त्व पृथक् होकर भी नित्य, सदा-सर्वदा अपृथक् हैं। मानव चिन्ता सर्वदा सीमित होती है, अतएव शक्ति और शक्तिमानके परस्पर गूढ़ सम्बन्धोंकी उपलब्धि नहीं कर पाती। वस्तुतः पृथक् होनेपर भी वस्तु और वस्तु-शक्ति अपृथक् हैं। इन दोनोंमें भेद और अभेद युगपत् सिद्ध हैं। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत गौड़ीय वैष्णवोंने वस्तु और वस्तु-शक्तिका परस्पर अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध स्वीकार किया है। श्रीलजीव गोस्वामीने अपने सन्दर्भ ग्रन्थमें शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंसे वस्तु और वस्तु-शक्तिमें अचिन्त्य-भेदाभेद सम्बन्ध प्रमाणित किया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें ऐसा कहा गया है कि श्रीमती राधिकाजी पूर्ण शक्ति हैं, श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। जैसे कस्तूरीसे उसकी सुगन्ध अविच्छेद्य है, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न हैं, वैसे ही

राधा-कृष्ण अभिन्नस्वरूप हैं। लीलारसका आस्वादन करनेके लिए ही वे दो रूपोंमें प्रकाशित हैं।

राधा—पूर्णशक्ति, कृष्ण—पूर्णशक्तिमान्।
दुई वस्तु भेद नाहि, शास्त्रपरमाण॥
मृगमद, ता'र गन्ध-जैछे अविच्छेद।
अग्नि, ज्वालाते, जैछे कभु नाहि भेद॥
राधाकृष्ण ऐछे सदा एक-इ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइरूप॥
(चै॰ च॰ आ॰ ४/९६-९८)

वेदान्तसूत्रमें भी इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है—शक्ति-शक्तिमतोरभेदः। वस्तु-तत्त्वके विचारसे श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है, इसलिए शास्त्रमें उन्हें अद्वय-तत्त्व कहा जाता है। भिन्न-भिन्न अधिकारियों द्वारा उपासनाके तारतम्यसे एक ही अद्वय-तत्त्व त्रिविध रूपोंमें देखा जाता है। जो लोग केवल ज्ञानका अनुशीलन करते हैं, वे जड़ीय सत्ताके विपरीत भावको ही एक निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक और निष्क्रिय ब्रह्म मान लेते हैं। परन्तु इससे वस्तुका स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। जो लोग बुद्धियोग द्वारा उस अद्वय-तत्त्वका अन्वेषण करते हैं, वे अपनी आत्माके अविरोधी स्वरूपविशेष, आत्माके साक्षी परमात्माका दर्शन करते हैं तथा जो लोग उपाधिरहित निर्मल भक्तियोगसे ही तत्त्व वस्तुका दर्शन करते हैं, वे उस अद्वय-तत्त्वका साक्षात्कार लाभकर सर्व-ऐश्वर्यपूर्ण, सर्व-माधुर्यपूर्ण, सर्वशक्तिमान परमतत्त्वरूप स्वयं-भगवान्‌का दर्शन करते हैं।

ब्रह्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन सोपाधिक हैं अर्थात् मायिक उपाधिके विपरीत भावसे ब्रह्म-दर्शन होता है और मायिक उपाधिके अन्वय भावसे परमात्म-दर्शन होता है। किन्तु निरुपाधिक चिन्मय नेत्रोंसे ही चिन्मय भगवत्-स्वरूपका दर्शन होता है। भगवत्-स्वरूप ही वस्तु है और भक्तिशक्ति ही शक्तितत्त्व है। शक्तिरहित भगवत्-दर्शन ही निर्विशेष ब्रह्म-दर्शन है। यद्यपि अपनी प्रवृत्तिके अनुसार कोई-कोई ब्रह्म-दर्शनको ही चरम-दर्शन मानते हैं। किन्तु निःशक्तिक निर्विशेष ब्रह्म-दर्शन आंशिक

दर्शन या प्रतीति है। क्योंकि भागवत आदि शास्त्रोंमें परमब्रह्म आदि शब्दोंका उल्लेख देखा जाता है। इसलिए ब्रह्म और परमब्रह्म एकार्थ बोधक नहीं है। इसीलिए गीतादि शास्त्रोंमें भगवान् श्रीकृष्णको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है। अतएव स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ही स्वरूपतत्त्व हैं और ब्रह्म केवल उनके स्वरूपका निर्विशेष आविर्भाव—ज्योतिमात्र है। परमात्मा भी भगवान्के अंशमात्र हैं। इसे दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहा जा सकता है कि अद्वयज्ञान तत्त्ववस्तुकी शुष्क और निःशक्तिक प्रतीति ही ब्रह्म है। जड़के भीतर सूक्ष्म रूपमें प्रविष्ट आत्ममय प्रतीति परमात्मा हैं तथा अद्वयज्ञानकी पूर्ण सविशेष प्रतीति ही भगवान् हैं। भगवत्-प्रतीति भी दो प्रकारकी है—ऐश्वर्य-प्रधान प्रतीति और माधुर्य-प्रधान प्रतीति। ऐश्वर्य-प्रधान प्रतीतिका नाम श्रीपति नारायण है तथा माधुर्य-प्रधान भगवत्-प्रतीतिका नाम राधानाथ श्रीकृष्ण है।

ब्रह्म और परमात्माको क्रोड़ीभूतकर, श्रीनारायणके भी सम्पूर्ण ऐश्वर्यको अपने माधुर्य द्वारा आच्छादित किये हुए चित्-शक्तिसम्पन्न श्रीकृष्ण ही एकमात्र अद्वय-तत्त्व-वस्तु हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद्में ऐसा ही वर्णन किया गया है—

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥
(श्वे॰ उ॰ ६/८)

उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्तपादादि इन्द्रिय प्राकृत नहीं होता। प्राकृत करणके बिना ही उनकी अप्राकृत लीलाका कार्य होता है। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिए उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वरकी अलौकिकी शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिसमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति या सम्वित्-शक्ति, सत्-शक्ति या सन्धिनीशक्ति और आनन्दशक्ति या ह्लादिनीशक्ति भी कहते हैं।

भगवान्‌की यह पराशक्ति और भी तीन प्रकारसे प्रकाशित होती है—चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। चित्-शक्तिको स्वरूपशक्ति या अन्तरङ्गाशक्ति कहते हैं। वैकुण्ठ, गोलोक, व्रज आदि धाम उस चित्-शक्तिके द्वारा प्रकाशित होते हैं। मायाशक्तिको बहिरङ्गाशक्ति कहते हैं। इससे अखिल प्राकृत विश्व या जड़जगत् प्रकटित हुआ है। इसके वैभव अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। जीवशक्तिको तटस्थाशक्ति भी कहा जाता है। इससे अनन्त जीवसमूह प्रकटित हुए हैं। इन तीनों शक्तियोंके आश्रय श्रीकृष्ण हैं।

कृष्णकी एक पराशक्ति नामक स्वाभाविकी शक्ति है। वह विचित्र विलासमयी एवं विचित्र आनन्दसम्वर्द्धिनी है। उस शक्तिके अनन्त प्रभाव होनेपर भी जीवोंके निकट उनमेंसे केवल चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति—इन तीन शक्तियोंका ही परिचय अनुभूत होता है। वेदके अनेक स्थलोंमें इस पराशक्तिके तीनों प्रभावोंका वर्णन मिलता है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।

विष्णुपुराणमें भी पाया जाता है—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा।
अविद्या कर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

विष्णुशक्ति तीन प्रकारकी है—परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या संज्ञावाली। विष्णुकी पराशक्तिका नाम चित्-शक्ति, क्षेत्रज्ञाशक्तिका नाम जीवशक्ति और अविद्याशक्तिका नाम माया है।

गीतामें भी—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥
(गीता ७/५)

किन्तु, आठ भेदोंवाली यह जड़ा प्रकृति निकृष्टा है। इससे उत्कृष्ट जीवस्वरूपा मेरी एक और प्रकृति जानो, जिसके द्वारा यह जगत् अपने कर्म द्वारा भोगनेके लिए गृहीत होता है।

कृष्णका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है। अतएव उनकी स्वरूपशक्ति तीन रूपोंमें प्रकाशित होती है। आनन्द अंशसे ह्लादिनीशक्ति, सत् अंशसे

सन्धिनीशक्ति और चित् अंशसे सम्वितशक्ति। सम्वितशक्तिको ज्ञानशक्ति भी कहते हैं। ह्लादिनीशक्ति कृष्णको आह्लादित करती है, इसलिए इसका नाम ह्लादिनी है। इस ह्लादिनीशक्तिके द्वारा आनन्दस्वरूप कृष्ण आनन्दका आस्वादन करते हैं तथा भक्तोंको भी आनन्दका आस्वादन कराते हैं। इस ह्लादिनीका सार-भाग प्रेम है। प्रेम सम्पूर्ण चिन्मय रस एवं पूर्ण आनन्दस्वरूप है। प्रेमका परम सार ही महाभाव कहलाता है। इस महाभावकी मूर्तस्वरूपा ही श्रीमती राधिका हैं। संक्षेपमें यही शक्तिका परिचय है।

(ङ) श्रीकृष्ण अखिलरसामृत सिन्धु हैं

अद्वयज्ञानस्वरूप परमतत्त्व ही रस हैं। जो रसतत्त्वका अनुभव नहीं कर पाये हैं, उन्हें अद्वयज्ञानस्वरूप परमतत्त्वका तनिक भी अनुभव नहीं हो सकता। तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा गया है—

रसौ वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एषह्येवानन्दयति॥ (२/७ अनुवाक्)

परमतत्त्व ही रस हैं। उस रसको प्राप्तकर जीव आनन्द प्राप्त करता है। यदि वह अखण्ड तत्त्व रसरूप—आनन्दस्वरूप नहीं होता, तो कौन जीवित रहता और कौन प्राणोंकी चेष्टा करता? वे ही सबको आनन्द प्रदान करते हैं।

स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूर्व विभिन्न वैष्णव आचार्योंने भक्तितत्त्वकी प्रतिष्ठा की है तथा उसका प्रचार-प्रसार भी किया है। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा शक्तिसञ्चरित श्रीलरूप गोस्वामीने ही भक्तितत्त्वको भक्तिरसमें परिणत किया है। उन्होंने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणिमें इस विषयका विशद् रूपसे वर्णन किया है। उन्होंने कहा है कि जब कृष्णसेवाकी वासनारूप भक्तिलताका बीज श्रद्धा, निष्ठा, रुचि, आसक्तिके क्रमानुसार रतिके रूपमें परिणत होता है, तब उसे स्थायीभाव कहते हैं। इस स्थायीभावमें जिस समय विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये चार सामग्रीरूप भाव मिलित होकर स्थायीभावरूप रतिको आस्वादनयोग्य एक परम चमत्कारमयी

अवस्थामें उपस्थित करते हैं, उस समय वह भक्तिरस होता है। जड़ीय रस और शुद्ध चित्-रस—इन दोनोंकी प्रक्रिया एक ही प्रकारकी होती है। जहाँपर भगवत्-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वहाँ विशुद्ध चिन्मय भक्तिरस है। परन्तु जहाँ प्राकृत भोगसम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वहाँ जड़ीय तुच्छ रस होता है। जहाँ अभेद ज्ञान-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वहाँ निर्विशेष ब्रह्मरस होता है तथा योग-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होनेपर परमात्मरस होता है। जिस समय श्रद्धा रति अवस्था प्राप्त होनेके पहले ही विभाव आदि सामग्रियोंके योगसे रस होनेकी चेष्टा होती है, वहाँ असम्पूर्ण खण्डरस उदित होता है। जड़रस अत्यन्त हेय और तुच्छ है। यहाँ पारमार्थिक रसका ही विवेचन किया जा रहा है।

स्थायीभावरूप रति ही रसका आधार है। वही सामग्रियोंके योगसे रस होती है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये चार प्रकारकी सामग्रियाँ हैं। विभाव दो प्रकारका होता है—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन भी आश्रय और विषयके भेदसे दो प्रकारका है। जिनमें स्थायीभाव होता है, वे रसके आश्रय कहलाते हैं। जिनके प्रति स्थायीभाव प्रवृत्त होता है, वे रसके विषय हैं। पारमार्थिक रसमें श्रीकृष्ण ही रसके विषय और उपासक आश्रय होते हैं। उपास्य वस्तुके गुण और उपास्य सम्बन्धीय वस्तुएँ उद्दीपन कहलाती हैं। नृत्य, गान, जम्भाई, हिचकी आदि चित्तस्थ भावके अवद्योतक होनेके कारण अनुभाव कहलाते हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च आदि विकारोंको सात्त्विकभाव कहते हैं, क्योंकि ये सत्त्वसे प्रकाशित होते हैं। निर्वेद, विषाद, दैन्य आदि तैंतीस प्रकारके व्यभिचारीभाव होते हैं। ये भावसमूह स्थायीभावरूप समुद्रकी तरफ सञ्चरित होकर उसे वर्द्धित करते हैं, इसलिए व्यभिचारीभाव कहलाते हैं।

रस दो प्रकारका होता है—मुख्य और गौण। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य रस हैं। हास्य, अद्भुत, रौद्र, वीर, करुण, भयानक और वीभत्स—ये सात गौण रस हैं।

श्रीलरूप गोस्वामीने भक्तिकी सर्वांगपूर्ण एक अभिनव परिभाषा दी है—

अन्याभिलाषिताशून्यं　ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन　कृष्णानुशीलनं　भक्तिरुत्तमा॥
(भ॰ र॰ सि॰ पूर्वविभाग १/९)

श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत्त, एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए ही कायिक, वाचिक और मानसिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमाभक्ति कहते हैं।

इस उपरोक्त भक्तिका साधन करनेसे रतिका उदय होता है। रति गाढ़ी होनेपर प्रेम कहलाती है। वही प्रेम परिपक्व एवं गाढ़ होनेपर क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव कहलाता है। भक्त-भेदसे कृष्णरति भी पाँच प्रकारकी होती है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रति। इनमें मधुररति ही सर्वश्रेष्ठ है।

कृष्णप्रेम भी दो प्रकारका होता है—ऐश्वर्यमिश्रित और केवल या शुद्ध प्रेम। श्रीकृष्णको षडैश्वर्ययुक्त भगवान् और अपनेको दीन-हीन-क्षुद्र मानकर जो प्रेम होता है, वह ऐश्वर्यमिश्रित प्रेम है। जगत्में मिश्रप्रेम ही अधिकतर देखा जाता है। इस ऐश्वर्यप्रेमसे भगवान् वशीभूत नहीं होते। लौकिक सद्बन्धुकी भाँति कृष्णको पुत्र, सखा और प्रियतम मानकर जो विशुद्ध प्रीति होती है, उसे केवल या शुद्ध प्रेम कहते हैं। इस केवलप्रेमसे ही कृष्ण वशीभूत होते हैं। यशोदा मैया इस शुद्ध वात्सल्यसे कृष्णको बाँध लेती हैं, उन्हें डाँट-फटकार लगाती हैं। सखा लोग शुद्ध सख्यभावसे उनके कन्धेपर चढ़ जाते हैं तथा व्रजरमणियाँ प्रियतम मानकर कृष्णकी भर्त्सना करती हैं। उनकी यह भर्त्सना श्रीकृष्णको ब्रह्माकी वेदस्तुतिसे भी अधिक प्रिय लगती है। यदि व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर इस जगत्में अवतरित नहीं होते, तो जगत्में सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन उच्च कोटिके त्रिविध रसोंका विषय ही नहीं पाया जाता तथा जगत् इन भावोंसे वञ्चित रहता। विशेषतः यदि श्रीकृष्ण कृपापूर्वक गोपभावसे वैसी जगत्-उन्मादिनी लीलाका प्रकाश नहीं करते, तो परमेश्वर मधुररसके विषय भी हैं—ऐसा कोई भी अनुभव नहीं कर पाता।

कृष्णलीलामें व्रजलीला ही सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि इसीमें रसके विषयमें जीवोंका सर्वोत्तम लाभ होते देखा जाता है। तार्किक और नैतिक बुद्धिवाले व्यक्ति कृष्णलीलाकी महिमाको स्पर्श नहीं कर सकते। रसमयी व्रजलीलाको हृदयंगम करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जिन सौभाग्यवान भक्तोंने व्रजलीलाकी माधुरीका आस्वादन किया है, केवल वे ही उसकी माधुरीको जान सकते हैं। तर्क, नीति, ज्ञान, योग, धर्म-अधर्मके विचारोंके द्वारा इस विषयमें प्रवेश असम्भव है।

रसस्वरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। साथ ही वे परम रसिक हैं। इसलिए रसास्वादनके लिए एक होकर भी वे अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सदा-सर्वदा चार स्वरूपोंमें अवस्थित हैं। श्रील जीव गोस्वामीने इन चार स्वरूपोंका वर्णन स्वरचित भगवत्सन्दर्भमें किया है—

एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्य-शक्त्या
सर्वदैव स्वरूप-तद्रूप-वैभव-जीव-प्रधानरूपेण
चतुर्द्धावतिष्ठते, सूर्यान्तर-मण्डलस्थित तेज इव
मण्डल तद्बहिर्गत तद्रश्मि-तत्प्रतिच्छवि-रूपेण।

अर्थात् परमतत्त्व एक हैं। वे स्वाभाविक अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न हैं, उसी शक्तिके सहारे वे सर्वदा स्वरूप, तद्रुप-वैभव, जीव और प्रधान—इन चार रूपोंमें प्रकाशित हैं। इस विषयमें सूर्यमण्डलस्थ तेज, मण्डल, उस मण्डलसे बाहरकी सूर्यरश्मियाँ और उनकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—ये किञ्चित् उदाहरणके स्थल हैं।

श्रीमद्भागवत आदि वेदोंके सारार्थ वर्णन करनेवाले शास्त्रोंमें महाजनोंने कृष्णाश्रित शुद्ध रसका अन्वेषण किया है। सनकादि, शिव, व्यास और नारद आदि महर्षियोंने अपने समाधिलब्ध अप्राकृत कृष्णलीलात्मक रसका अपने-अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया है। ऐसे अमृतमय श्रीकृष्णरसको श्रीचैतन्य महाप्रभुने ही इस जगतीतलपर प्रकटित किया है। उनसे पहले आज तक कोई भी ऐसा नहीं कर सका। इसलिए श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीने ऐसा ठीक ही कहा है।

प्रेमनामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः।

को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्यसीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परम करुणया सर्वमाविश्चकार॥
(चैतन्यचन्द्रामृत १३०)

हे भ्रातः प्रेम नामक परम पुरुषार्थका नाम किसने श्रवण किया था? श्रीहरिनामकी महिमा कौन जानता था? श्रीवृन्दावनकी परम चमत्कारमयी माधुरीमें किसका प्रवेश था? परम आश्चर्यमय माधुर्यरसकी पराकाष्ठा श्रीमती राधिकारूपी पराशक्तिको ही भला कौन जानता था? एकमात्र परम करुणामय श्रीचैतन्यचन्द्रने ही जीवोंके प्रति कृपापूर्वक इन सब तत्त्वोंका आविष्कार किया है।

(च) जीव श्रीहरिका विभिन्नांश तत्त्व है

वेदादि शास्त्रोंमें जीवात्माको भगवान्‌का विभिन्नांश कहा गया है। इसलिए जीव स्वरूपतः कृष्णका दास है। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि भगवान्‌की एक ही परा या स्वरूपशक्ति त्रिविध रूपोंमें प्रकाशित होती है—चित्-शक्ति, जीवशक्ति एवं मायाशक्ति। इनमेंसे जब षडैश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्द परतत्त्व श्रीकृष्ण केवलमात्र अपनी जीवशक्तिके साथ होते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है, उसे विभिन्नांश जीव कहते हैं। दूसरी ओर षडैश्वर्यशाली सच्चिदानन्द भगवान् जब अपनी स्वरूपशक्ति आदि सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त होते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है, उसे स्वांश कहते हैं। स्वांशगत श्रीबलदेव, परव्योमपति नारायण, श्रीराम, श्रीनृसिंहदेव आदि अवतारोंके साथ श्रीकृष्णका तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। केवल शक्ति एवं रसके प्रकाशके तारतम्यके विचारसे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण परतत्त्वकी सीमा, ऐश्वर्य-माधुर्यकी पराकाष्ठा, अवतारी या अंशी हैं तथा श्रीराम, नृसिंह आदि इनके अवतार, श्रीबलदेव, परव्योमपति नारायण इनके वैभव प्रकाश कहलाते हैं। ये सभी मायाके पति भगवत्-तत्त्व हैं। किन्तु जीवात्माके सम्बन्धमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। जीव भगवान्‌की जीवशक्ति या तटस्थाशक्तिका परिणाम है। शास्त्रोंमें भगवान्‌को अखण्ड, अविकारी परिणामरहित बताया गया है। यदि जीवको भगवान्‌का साक्षात् अंश कहा जाय तो भगवान्‌को

परिणामी अथवा विकारी कहना होता है। परन्तु परब्रह्मको विकारी अथवा खण्ड कहना शास्त्रसङ्गत नहीं है। शास्त्रोंमें जीवको परब्रह्मकी शक्तिका परिणाम स्वीकार किया गया है। ब्रह्म और उसकी शक्तिके अभिन्न होनेके कारण जीवको ब्रह्मका अंश कहा गया है। जैसे गीतामें—ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत वैष्णवाचार्योंने शास्त्रोंके विविध प्रमाणोंका विवेचनकर जीवको शक्तिका परिणाम घोषित किया है। जिस प्रकार किसी विशेष मणि या विशेष मन्त्रविद् व्यक्ति द्वारा अन्य बहुत-सी वस्तुएँ प्रकाशित होनेपर भी वह मणि या मन्त्रविद् अविकृत रहता है, उसकी शक्तिसे ही बहुत-सी वस्तुएँ प्रकटित होती हैं, उसी प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्णकी चित्-शक्तिसे अनन्त वैकुण्ठ, गोलोक वृन्दावन आदि धाम, वहाँकी सारी चिन्मय वस्तुएँ; जीव या तटस्थाशक्ति द्वारा अनन्त जीव तथा मायाशक्ति द्वारा अनन्त प्राकृत ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते हैं, फिर भी ब्रह्म अविकृत, अखण्ड एवं विशुद्ध रहता है। जीव ब्रह्मका साक्षात् अंश न होकर ब्रह्मकी शक्तिका अंश है, इसीलिए वह विभिन्नांश कहलाता है। श्रीनारदपञ्चरात्रमें कहा गया है—

यत्तटस्थं तु चिद्रूपं स्वसंवेद्याद्विनिर्गतम्।

अर्थात् चित्-शक्तिसे निकला हुआ चित्-कण जीव तटस्थ है।

श्रीलजीव गोस्वामी तटस्थाशक्तिको और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

तटस्थत्वञ्च मायाशक्त्यतीतत्वात् अस्याविद्या पराभवादिरूपेण दोषेण परमात्मनो लेपाभावाच्च उभयकोटावप्रविष्टेस्तस्य तच्छक्तित्वे सत्यपि परमात्मनस्तल्लेपाभावश्च यथा क्वचिदेकदेशस्थे रश्मौ छायया तिरस्कृतेऽपि सूर्यस्यातिरस्कारस्तद्वत्। (परमात्मसन्दर्भ—३७ संख्या)

तात्पर्य यह है कि तटस्था कही जानेवाली जीवशक्ति मायाशक्तिसे पृथक् है; अतएव वह माया-कोटिमें नहीं आती। दूसरी ओर अविद्याके वशीभूत होनेके कारण जीव अविद्यासे सदा निर्लेप रहनेवाले परमात्माकी कोटिमें भी परिगणित नहीं होता। परमात्माकी शक्ति होनेपर भी अविद्याका लेप परमात्माको उसी प्रकार स्पर्श नहीं करता, जिस प्रकार एकदेशीय सूर्यरश्मि छाया द्वारा आच्छादित होनेपर भी सूर्य आच्छादित नहीं होती।

बृहदारण्यक उपनिषद्में भी ऐसा ही कहा गया है—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानञ्च सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानम्। तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदञ्च परलोकस्थानञ्च। (४/३/९)

उस जीव-पुरुषके दो स्थान हैं अर्थात् यह जड़-जगत् और अनुसन्धेय चित्-जगत्; जीव उन दोनोंके बीच अपने सन्ध्य तृतीय स्वप्नस्थानपर स्थित है। वह दोनों जगत्‌ोंके मिलन स्थानपर (तटपर) स्थित होकर जड़-विश्व और चित्-विश्व दोनोंको ही देखता है।

तटस्थाशक्तिसे प्रकटित जीवसमूह परमेश्वरसे उत्पन्न होनेपर भी परमेश्वरसे पृथक् सत्तावाले होते हैं। सूर्यके किरणगत परमाणु अथवा अग्निकी चिंगारी ही जीवका उपमास्थल है। बृहदारण्यक उपनिषद्में इसे स्पष्ट रूपसे कहा गया है—

यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्ति
एवमेवास्मादात्मनः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति।
(बृ॰ २/१/२०)

जिस प्रकार अग्निसे चिंगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार सर्वात्मा श्रीकृष्णसे जीवसमूह प्रकटित होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि तटस्थ धर्मवशतः माया और चित्-जगत् दोनोंके लिए उपयोगी जो विभिन्नांश अणुचेतनसमूह प्रकटित हुए हैं, वे मूल आत्मस्वरूप कृष्णके अनुगत सत्ताविशेष हैं। ये चित् और जड़ दोनों जगत्‌ोंके बीच तट रेखापर स्थित होते हैं। यदि वे चित्-जगत्‌की तरफ देखते हैं, योगमायाकी शक्ति उनमें सञ्चरित होती है और वे चित्-जगत्‌में भगवान्‌की सेवामें नियुक्त हो जाते हैं। किन्तु मायिक जगत्‌की ओर देखनेसे मायिक जगत्‌के भोगकी कामना इनमें उत्पन्न हो जाती है और वे चित्-सूर्य कृष्णसे विमुख होकर माया द्वारा आकर्षित हो जाते हैं। साथ ही निकटस्थ माया भोगायतनरूप स्थूलशरीर उसे प्रदानकर संसारके जीवन-मरणके प्रवाहमें डाल देती है। उनकी वह कृष्ण-बहिर्मुखता अनादि है। जीवोंकी इस दुर्दशाके लिए परम कारुणिक श्रीकृष्णपर कोई भी दोषारोपण नहीं किया जा सकता है, क्योंकि परम कौतुकी कृष्णने जीवोंको स्वतन्त्रता

नामक एक दिव्य रत्न दिया है और वे स्वयं उनकी स्वतन्त्रतामें कभी भी हस्तक्षेप नहीं करते। जीवकी दुर्दशाका कारण भगवत्-प्रदत्त अपनी स्वतन्त्रताका असत्-व्यवहार या दुरुपयोग ही है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है—

जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर 'नित्यदास'।
कृष्णेर 'तटस्थाशक्ति' 'भेदाभेद प्रकाश'॥

सूर्यांशु-किरण, जैछे अग्निज्वालाचय।
स्वाभाविक कृष्णेर तिन प्रकार 'शक्ति' हय॥

(चै॰ च॰ म॰ २०/१०८-१०९)

कृष्णकी स्वाभाविक शक्ति तीन प्रकारकी है। जीव कृष्णकी तटस्था-शक्ति है। कृष्णके साथ जीवका भेदाभेद प्रकाशरूपी सम्बन्ध है। जीव सूर्यरूप कृष्णका अंश अर्थात् किरणगत परमाणु है अथवा अग्निसे निकली हुई चिंगारीके समान है।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥

(श्रीमद्भा॰ ११/२/३७)

भगवत्-विमुख जीवको मायाके वशीभूत होनेके कारण अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृतिसे ही देहाभिमान हो जाता है अर्थात् मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, इस प्रकारका भ्रम-विपर्यय हो जाता है। इस देह आदि अन्य वस्तुओंमें अभिनिवेश (तन्मयता) होनेके कारण ही बुढ़ापा, मृत्यु, रोग आदि अनेक भय होते हैं। इसलिए तत्त्वज्ञ व्यक्ति अपने गुरुको ही ईश्वर अर्थात् भगवान्‌से अभिन्न प्रभु एवं परम-प्रेष्ठ मानकर अनन्यभक्तिके द्वारा उस ईश्वरका (गुरुका) ऐकान्तिक भजन करें।

केवलाद्वैतवादियोंका कथन यह है कि जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं है। बद्धावस्थामें अविद्या द्वारा आच्छादित ब्रह्म ही जीव कहलाता है। वस्तुतः जीव और जगत् हैं ही नहीं—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। परन्तु अद्वैतवादियोंका यह सिद्धान्त

सम्पूर्णतः कपोल-कल्पित, शास्त्रविरुद्ध एवं सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि श्रुतियोंमें परब्रह्मको पूर्ण, निर्दोष, अखण्ड एवं सच्चिदानन्दमय बतलाया गया है तथा जीवको परब्रह्म या सर्वशक्तिमान भगवान्का अंश अणुचैतन्य बताया गया है। परब्रह्म एक हैं, किन्तु जीव असंख्य हैं—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

(श्वेताश्वतर ५/९)

जीव जड़-शरीरमें अवस्थित होनेपर भी सूक्ष्म और अप्राकृत तत्त्व है। जड़ीय बालकी नोकके सौ टुकड़ेकर पुनः उनमेंसे एक टुकड़ेके सौ टुकड़े करनेपर उनमें एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है, उससे भी जीव अधिक सूक्ष्म होता है। इतना सूक्ष्म होनेपर भी जीव अप्राकृत वस्तु है तथा आनन्त्य धर्मके योग्य होता है, अन्त अर्थात् मृत्युसे रहित होना ही 'आनन्त्य' अर्थात् मोक्ष है।

अणुर्ह्येष आत्मायं वा एते सिनीतः पुण्यं चापुण्यञ्च।

(२/३/१८ सूत्रमें मध्व भाष्योद्धृत गौपवन श्रुतिवाक्य)

अर्थात् यह आत्मा अणु है, पाप-पुण्यादि इसका आश्रय ले सकते हैं। मुण्डकोपनिषद्में भी कहा गया है—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो।

अर्थात् यह आत्मा अणु है।

भगवद्गीतामें कहा गया है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७/५)

हे महाबाहो! पूर्वश्लोकमें जिस मायाशक्तिका मैंने वर्णन किया है। वह मेरी अपरा अर्थात् निकृष्टशक्ति है, उससे पृथक् जीवभूता अर्थात् जीवशक्तिरूपा मेरी एक परा या उत्कृष्ट शक्ति है—ऐसा तुम जानो, जिसके द्वारा यह सारा जगत् धारण किया जा रहा है।

जीवका स्वरूप शुद्ध चिन्मय है तथा वह स्वरूपतः 'अहं' पदवाच्य है। परमात्माकी अविचिन्त्यशक्तिसे निःसृत, तटस्थाशक्तिसे प्रकटित जीवका धर्म भी सर्वदा तटस्थ होता है। साथ ही अणु होनेके कारण वह स्वरूपतः मायाके अधीन होनेवाले धर्मवाला होता है। अतएव परमात्मासे उसका नितान्त भेद अथवा नितान्त अभेद नहीं है। जीव मायावश है तथा ईश्वर मायाधीश हैं। यह आम्नाय वाक्योंसे स्पष्ट है कि जीव ईश्वरसे भिन्न नित्य-तत्त्व है। अतएव जीवका ईश्वरसे युगपत् भेद और अभेद—दोनों श्रुतिसिद्ध हैं। केवलाद्वैतवाद अवैदिक है।

जीव अणुचैतन्य, ज्ञानगुणसे युक्त, अहं शब्दवाच्य, भोक्ता, मन्ता और बौद्धा है। जीवका एक नित्य स्वरूप है। वह नित्य स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होता है। जिस प्रकार स्थूलशरीरमें हाथ, पैर, नाक, आँख आदि अङ्ग अपने-अपने स्थानपर न्यस्त होकर एक सुन्दर रूपको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकारसे चित्कणमय शरीरमें भी चित्कणमय अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे गठित सर्वांगसुन्दर एक चित्कणस्वरूप होता है। वही स्वरूप जीवका नित्य स्वरूप है। मायाबद्ध होनेपर उसका वह नित्य शरीर स्थूल और लिङ्ग शरीरोंसे आच्छादित हो जाता है।

मायावश कहनेसे मायावाद नहीं होता। मायावाद मतके अनुसार माया द्वारा परिच्छिन्न या प्रतिबिम्बित जीव एक अनित्य तत्त्व है। किन्तु मायावश कहनेसे यह स्थिर होता है कि चित्कण जीव अपने अणुत्वके कारण माया द्वारा पराभूत होने योग्य है। माया अपरा शक्ति है; किन्तु जीव पराशक्ति है। जड़ीय अहङ्कार मायाकी वृत्ति है। जीव उससे परे चिन्मय पदार्थ है। मायासे मुक्त होनेपर भी जीवका जीवत्व नष्ट नहीं होता। मायावाद एक भ्रम है। इनके मतानुसार ब्रह्म अद्वैत, निष्कल, अखण्ड और निर्लेप है। यदि युक्तिके लिए इस सिद्धान्तको मान भी लिया जाय तो फिर प्रतिबिम्ब या परिच्छेद किसका? या उसका प्रतिबिम्ब या परिच्छेद कैसे सम्भव है? उसका द्रष्टा कौन है? प्रतिबिम्बका स्थल क्या है? जब ब्रह्मके अतिरिक्त कोई पृथक् वस्तु ही नहीं है? इस प्रकार यह मत सर्वतोभावेन हास्यास्पद है।

अतएव वेदका यह सर्वांगीण मत है कि युगपत् अचिन्त्यभेदाभेद-स्वरूप-तत्त्व ही सत्य है, नित्य है तथा सार्थक है। एकदेशीय अपने मतकी पुष्टि करनेके लिए श्रुति-मन्त्रोंका खींच-तानकर अपने मतके अनुकूल अर्थ करना श्रुति-मन्त्रोंका कदर्थ करना है। अतएव वैदिक सिद्धान्त यह है कि जीव ईश्वर-कोटिसे पृथक् विभिन्नांश तत्त्व है तथा कृष्णकी तटस्थाशक्तिसे प्रकाशित है। जीव शुद्ध पदार्थ है तथा स्वभावतः कृष्णके प्रति आनुगत्य धर्मयुक्त होता है। यही जीवका स्वरूप-तत्त्वज्ञान है।

(छ) तटस्थ धर्मवशतः बद्ध दशामें मायाग्रस्त जीवका विचार

जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्य दास होनेपर भी अपने तटस्थ धर्मके कारण अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करनेपर कृष्णविमुख हो जाता है। उस समय उसका शुद्ध-स्वरूप माया द्वारा प्रदत्त स्थूल और लिङ्ग शरीरोंसे आच्छादित हो जाता है तथा उसे इस स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंमें ही आत्मबुद्धि हो जाती है। तब वह संसारमें स्वर्ग, नरक आदिमें विभिन्न योनियोंमें सुख-दुःख भोग करता है तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रितापोंसे दग्ध होता रहता है। इस प्रकार संसारमें भ्रमण करते-करते जब सौभाग्यवश तत्त्वज्ञान-सम्पन्न शुद्ध वैष्णवोंका सङ्ग पा लेता है, तो उनके उपदेशोंसे जीवका अज्ञान दूर हो जाता है और कृष्णभक्ति प्राप्तकर कृष्णसेवा करनेका अधिकारी बन जाता है—

नित्यबद्ध-कृष्ण हैते नित्य बहिर्मुख।
नित्य संसार भुञ्जे नरकादि दुःख॥

सेइ दोषे माया पिशाची दण्ड करे तारे।
आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे जारि मारे॥

काम क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु-वैद्य पाय॥

तार उपदेश-मन्त्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय, कृष्ण-निकटे जाय॥
(चै॰ च॰ म॰ २२/१२-१५)

अर्थात् जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्यदास होनेपर भी अपने तटस्थधर्मवशतः अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करके जब कृष्णसे विमुख हो पड़ता है, तब वह संसारमें स्वर्ग-नरक आदि सुख-दुःखोंका भोग करता है। कृष्ण-विमुखताके दोषके लिए ही माया-पिशाची जीवको स्थूल और लिङ्ग शरीरके आवरणमें बाँधकर दण्ड प्रदान करती है अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रितापोंसे दग्ध करती है। वैसा जीव काम-क्रोध आदि षड्रिपुओंके वशीभूत होकर माया पिशाचीकी लातें खाता रहता है—यही जीवका रोग है। इस प्रकार वह संसारमें ऊपर नीचे भ्रमण करते-करते यदि सौभाग्यवश साधु-वैद्यको पा लेता है, तब उनके उपदेशोंसे मायादेवी उस जीवको छोड़कर उसी प्रकार भाग जाती है, जिस प्रकार किसी ओझा या वैद्यके मन्त्रोंसे कोई पिशाची किसी मनुष्यको छोड़कर भाग जाती है। मायासे रहित ऐसा जीव ही कृष्णभक्ति प्राप्तकर कृष्णके निकट जानेका अधिकारी होता है।

मायाबद्ध जीव अपने किये हुए कर्मोंके संस्कारसे, गुणोंसे तथा 'मैं और मेरा' आदि देहात्म बुद्धिके वशीभूत होकर भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म-ग्रहण करता है। इस प्रकार भ्रमण करते-करते सत्सङ्गके प्रभावसे श्रद्धा युक्त होकर जब भक्तिवृत्ति द्वारा श्रीकृष्णको जान लेता है, तब वह मायाके समस्त बन्धनोंसे सदाके लिए छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

गोलोक वृन्दावनमें वृन्दावनबिहारी श्रीकृष्णकी सेवाके लिए श्रीबलदेव प्रभु द्वारा और परव्योम वैकुण्ठमें वैकुण्ठाधिपति नारायणकी सेवाके लिए महासङ्कर्षण द्वारा प्रकटित नित्य-पार्षद जीव अनन्त हैं। वे नित्य काल अपने स्वरूपमें स्थित रहकर उपास्यकी सेवामें सदा तत्पर रहते हैं। उपास्यके प्रति सर्वदा उन्मुख रहते हैं तथा चित्-शक्तिका बल प्राप्तकर सदा बलवान रहते हैं। उनका जड़-मायासे कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे यह भी नहीं जानते कि माया नामकी कोई शक्ति भी है। प्रेम

ही उनका जीवन होता है। जन्म, मरण, भय, शोक—ये सब क्या चीज हैं, उन्हें तनिक भी इसका आभास नहीं होता।

चित्-जगत् और मायिक जगत्के बीच विरजामें अवस्थित कारणाब्धिशायी महाविष्णुके मायाके प्रति ईक्षण करनेसे ईक्षणरूप किरणगत अनगिणत अणुचैतन्य जीव प्रकटित हुए हैं। मायाके पासमें स्थित होनेके कारण ये जीव मायाकी विचित्रताको लक्ष्य करते हैं। साधारण जीवोंके समस्त लक्षण जो पहले बताये गये हैं, उनमें पाये तो जाते हैं, तथापि उनका स्वभाव अत्यन्त अणु या क्षुद्र होनेके कारण वे तटस्थ भावसे कभी चित्-जगत्की ओर तो कभी मायिक जगत्की ओर दृष्टिपात करते हैं। तटस्थावस्थामें जीव बहुत ही दुर्बल होता है, क्योंकि उस समय तक उसे सेव्य वस्तुकी कृपासे चित्-बल प्राप्त नहीं हुआ होता। इन अनन्त जीवोंमेंसे जो मायाका भोग करना चाहते हैं, वे विषयोंमें आसक्त होकर माया द्वारा बद्ध हो जाते हैं और जो जीव सेव्य वस्तुका चिदनुशीलन करते हैं, वे सेव्य वस्तुकी कृपासे चित्-शक्तिका बल प्राप्त होकर चित्-धाममें गमन करते हैं।

माया कृष्णकी शक्ति है। श्रीकृष्ण मायाशक्तिके द्वारा जड़-ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं तथा बहिर्मुख जीवोंको शुद्ध करनेके लिए मायाशक्तिको प्रेरित करते हैं। मायाकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ हैं—अविद्या और प्रधान। अविद्या वृत्ति जीवनिष्ठ है तथा प्रधान जड़निष्ठ है। प्रधानसे समस्त जड़-जगत् उत्पन्न हुए हैं तथा अविद्यासे जीवकी कर्मवासना पैदा होती है। मायाके और भी दो प्रकारके विभाग हैं—विद्या और अविद्या। इन दोनोंका सम्बन्ध जीवसे है। अविद्या-वृत्तिसे जीवका बन्धन होता है और विद्या वृत्ति द्वारा उनकी मुक्ति होती है। अपराधी जीव कृष्णोन्मुख होनेपर उनके हृदयमें विद्या-वृत्तिकी क्रिया आरम्भ होती है। परन्तु विमुख होनेपर अविद्या-वृत्तिकी क्रिया होने लगती है।

(ज) जीव मुक्त दशामें मायामुक्त होता है

अनादि कर्मवासनाकी जंजीरमें बँधा रहनेपर भी जीवका स्वरूपधर्म—कृष्ण-दासत्व नष्ट नहीं होता। वह किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही विद्यमान रहता है। थोड़ा-सा सुयोग पानेपर वह पुनः प्रकट हो जाता

है तथा अपना परिचय देने लगता है। वह सुयोग है केवल साधुसङ्ग—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतर ६/२३)

श्रीकृष्णके प्रति जिनकी पराभक्ति अर्थात् शुद्धाभक्तिके अधिकार-स्वरूपा श्रद्धा उदित हुई है तथा साधु-गुरुके प्रति भी ठीक वैसी ही श्रद्धा है, उन्हीं महात्माओंके हृदयमें वेदोंका यथार्थ तात्पर्य प्रकाशित होता है।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये केह तरे।
नदीर प्रवाहे येन काष्ठ लागे तीरे॥

कोन भाग्ये कारो संसार क्षयोन्मुख हय।
साधुसङ्ग करे, कृष्णे रति उपजय॥

साधुसङ्ग, साधुसङ्ग—सर्वशास्त्रे कय।
लव मात्र साधुसङ्गे सर्वसिद्धि हय॥

'कृष्ण तोमार हङ' यदि बले एकबार।
मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार॥

(चै॰ च॰ म॰ २२/४३, ४५, ५४, ३३)

तात्पर्य यह है कि कृष्णसे विमुख होनेपर जीव संसारमें त्रिविध तापोंसे दग्ध होता हुआ चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें भटकता हुआ जन्म-मरणके प्रवाहमें बहने लगता है। इस प्रवाहसे उद्धार पाना बड़ा ही कठिन है। बड़े सौभाग्यसे ही जीव साधुसङ्गका आश्रय प्राप्तकर इस प्रवाहसे छुटकारा पाकर पुनः कृष्णदास्यरूप स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नदीके तीव्र प्रवाहमें बहती लकड़ी सौभाग्यवश तीरपर जा लगती है। जब सौभाग्यसे किसीका संसार-प्रवाह क्षयोन्मुख होता है, तभी वह साधुसङ्ग करता है और उसके फलस्वरूप उसकी श्रीकृष्णके चरणोंमें रति उदित होती है। इसीलिए सभी शास्त्रोंमें साधुसङ्गकी महिमाका वर्णन प्रचुर रूपसे पाया जाता है।

शास्त्रोंका कथन है कि क्षणभरका साधुसङ्ग सहज ही प्राप्त नहीं होता। यदि कोई जीव अत्यन्त कातर होकर हृदयसे एक बार भी कृष्णसे ऐसी प्रार्थना करता है कि 'हे कृष्ण! मैं तुम्हारा हूँ', तो कृष्ण साधुसङ्ग प्रदानकर उसे मायाके बन्धनसे पार कर देते हैं।

बड़े सौभाग्यसे किसीका संसार जब क्षयोन्मुख होता है, तभी वह साधुसङ्ग करता है। यह सौभाग्य क्या है, इसे अच्छी तरह समझना चाहिये। जीवका भाग्य पूर्व कर्मोंका ही फल है। कर्म दो प्रकारके होते हैं—आर्थिक और परमार्थिक। आर्थिक कर्मसे आर्थिक भाग्योदय होता है तथा पारमार्थिक कर्मसे पारमार्थिक भाग्योदय होता है। परमार्थको लक्ष्यकर जो कर्म होते हैं, वे कर्मसमूह पारमार्थिक हैं। जैसे—साधुसेवा, भगवन्नाम और भगवत्सेवा। जीव किसी भी प्रवृत्तिका क्यों न हो, यदि इन पारमार्थिक कर्मोंको करता है, तो ये कर्मसमूह उसके हृदयमें भक्तिवासनारूप एक प्रकारके संस्कारको उत्पन्न करते हैं। वही संस्कार पुष्ट होनेपर जीवका सौभाग्य कहलाता है। उसी सौभाग्यके प्रभावसे जीवकी संसारवासना क्रमशः दुर्बल होने लगती है। जब संसारवासना अत्यन्त क्षीण हो जाती है, तब वही सौभाग्य-संस्कार अधिकतर पुष्ट होकर साधुसङ्गके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है। वही श्रद्धा पुनः साधुसङ्ग सुलभ कराकर उसके द्वारा सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती है।

अतः सिद्धान्त यह है कि जन्म-जन्मान्तरकी सुकृतिके फलस्वरूप भाग्यके उदय होनेपर साधुसङ्गके प्रति प्रीति होती है। पुनः श्रद्धाके फलस्वरूप क्रमशः भजन, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा, रुचि और आसक्तिके पश्चात् कृष्णरतिका प्रादुर्भाव होता है। जिसके जीवनमें भाग्यका उदय होता है, उसीके जीवनमें श्रद्धा लक्षित होती है। इसीलिए श्रद्धा और साधुसङ्गको निखिल कल्याणकी जड़ कहा जाता है। बृहन्नारदीयपुराणमें ऐसा ही कहा गया है—

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्ग प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्व संचितैः॥

(बृहन्नारदीय ४/३३)

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥
(श्रीमद्भा० १०/५१/५३)

हे अच्युत! जीव अनादिकालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब सत्सङ्ग प्राप्त होता है; और जिस क्षण सत्सङ्ग प्राप्त होता है, उसी क्षण परम आश्रय और निखिल कार्य-कारणके नियन्ता आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्विदो भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥
(श्रीमद्भा० ३/२५/२५)

सत्पुरुषोंके समागममें मेरे पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके फलस्वरूप मुझमें सबसे पहले श्रद्धा, पीछे रति और अन्तमें प्रेमाभक्तिका उदय होता है।

संसारसे मुक्त होकर भगवत्प्राप्तिके लिए भक्तिका अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि केवल भगवद्भक्ति ही जीवोंको भगवान्के निकट ले जाती है, भगवान्का दर्शन कराती है और भगवान्की सेवामें सदाके लिए नियुक्त करती है। भगवान् भक्तिके ही वशीभूत होते हैं—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।
(३/३/५३ सूत्रका माध्वभाष्यधृत माठर-श्रुति-वचन)

'भक्त्याहं एकया ग्राह्यं' इत्यादि इसके प्रमाण हैं। किन्तु यह भक्ति भी बिना सत्सङ्गके प्राप्त नहीं होती। भक्तोंके सङ्गमें भक्तिका अनुशीलन होनेपर पहले साधनभक्ति, बादमें भावभक्ति और अन्तमें प्रेमाभक्तिका उदय होता है। प्रेमाभक्ति प्राप्त होनेपर जीव कृतार्थ हो जाता है। वह मायासे सम्पूर्णतः मुक्त होकर पञ्चम पुरुषार्थरूप कृष्णप्रेम प्राप्त कर लेता है।

मायामुक्त जीव दो प्रकारके होते हैं—नित्यमुक्त और बद्धमुक्त। जो

जीव पहले मायामें अबद्ध थे तथा साधन-भजनके द्वारा मायासे मुक्त हो गये हैं, उन्हें बद्धमुक्तजीव कहते हैं। जो जीव कभी भी माया द्वारा बद्ध नहीं हुए हैं, वे नित्यमुक्त जीव हैं। नित्यमुक्त जीव भी दो प्रकारके होते हैं—ऐश्वर्यगत-नित्यमुक्त जीव और माधुर्यगत नित्यमुक्त जीव। ऐश्वर्यगत नित्यमुक्त जीव वैकुण्ठपति श्रीनारायणके पार्षद हैं तथा परव्योमस्थ मूलसङ्कर्षणके किरणकण हैं, जैसे गरुड़ आदि। माधुर्यगत नित्यमुक्त जीव गोलोक वृन्दावननाथ श्रीकृष्णके पार्षद हैं। वे गोलोक वृन्दावनस्थ बलदेवके द्वारा प्रकटित हैं।

बद्धमुक्त जीव तीन प्रकारके होते हैं—ऐश्वर्यगत, माधुर्यगत और ब्रह्मज्योतिर्गत। जो साधनकालमें ऐश्वर्यप्रिय होते हैं, वे वैकुण्ठके परिकरोंके साथ सालोक्य प्राप्त करते हैं। जो साधनकालमें माधुर्यप्रिय होते हैं, वे मायामुक्त होकर नित्य वृन्दावन आदि धामोंमें प्रेमसेवासुखका रसास्वादन करते हैं। और जो जीव साधनकालमें जीव और ब्रह्म ऐक्यके अनुसन्धानमें तत्पर रहते हैं, वे मोक्ष प्राप्तकर ब्रह्मसायुज्यरूप सर्वनाशको प्राप्त होते हैं।

एक विशेष सिद्धान्त जाननेकी आवश्यकता यह है कि माधुर्यरसके दो प्रकोष्ठ होते हैं—माधुर्य और औदार्य। इनमें जहाँ माधुर्य प्रबल होता है, वहाँ श्रीकृष्णस्वरूप विराजमान रहते हैं। जहाँ औदार्य प्रबल होता है वहाँ राधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीगौराङ्गस्वरूप विराजमान रहते हैं। मूल वृन्दावनमें भी दो प्रकोष्ठ हैं—कृष्णपीठ और गौरपीठ। कृष्णपीठमें जो नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त पार्षद माधुर्यप्रधान औदार्य भाव प्राप्त किये हैं, वे कृष्णके गण हैं। गौरपीठमें नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त परिकर औदार्यप्रधान माधुर्य भोग करते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें कोई-कोई पार्षद स्वरूपव्यूहके द्वारा एक ही साथ दोनों ही पीठोंमें वर्त्तमान रहते हैं। कोई-कोई एक ही स्वरूपमें एक ही पीठमें वर्त्तमान रहते हैं, दूसरे पीठमें नहीं। जो साधनकालमें केवल गौर-उपासक होते हैं, वे सिद्धकालमें केवल गौरपीठमें सेवा करते हैं। जो साधनकालमें केवल कृष्णकी उपासना करते हैं, वे सिद्धकालमें कृष्णपीठमें सेवा करते हैं। जो साधनकालमें श्रीकृष्ण और गौर—दोनों स्वरूपोंके उपासक होते हैं, वे सिद्धावस्थामें दो शरीर धारणकर दोनों ही पीठोंमें एक ही समय वर्त्तमान

रहते हैं। यही गौर-कृष्णके अचिन्त्यभेदाभेदका परम रहस्य है।

(झ) अचिन्त्यभेदाभेद विचार

अचिन्त्य और अनन्त शक्तिशाली परतत्त्वकी शक्ति और शक्तिपरिणत वस्तुसमूहसे उस परतत्त्वका जो अचिन्त्य युगपत् भेद और अभेद सम्बन्ध है, उसीको अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्व कहते हैं। अपौरुषेय शब्दगम्य अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा स्वीकृत शास्त्रवचनोंके द्वारा जानने योग्य, किन्तु जीवोंकी क्षुद्र चिन्ताशक्ति या युक्ति-तर्कसे अगम्य होनेके कारण इसे अचिन्त्य कहा गया है। भेद और अभेदकी एक साथ स्थिति और दोनों समान रूपसे सत्य और नित्य हैं—यह मानव मेधा और धारणाके लिए अबोध्य और अचिन्त्य होनेपर भी शास्त्रमें इसका उल्लेख होनेके कारण अवश्य ही स्वीकार्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीपुरी धाममें सार्वभौम भट्टाचार्यके निकट, काशीमें केवलाद्वैतवादी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके निकट तथा काशीमें ही श्रीसनातन गोस्वामीको लक्ष्यकर इस अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वकी शिक्षा दी है।

श्रील सनातन गोस्वामीने बृहद्भागवतामृत (२/२/१८६) और वैष्णवतोषणीमें, श्रीलरूप गोस्वामीने लघुभागवतामृतमें, श्रीलजीव गोस्वामीने षट्सन्दर्भ और सर्वसंवादिनीमें तथा श्रीबलदेवविद्याभूषणने गोविन्दभाष्य और भाष्यपीठकमें इस तत्त्वका प्रतिपादन किया है। श्रीलजीव गोस्वामीने अपने सर्वसंवादिनी ग्रन्थमें वेदान्तसूत्र, उपनिषद् और श्रीमद्भागवतके प्रमाणोंकी भित्तिपर अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने श्रीमद्भागवत (१/२/११) के 'वदन्ति तत्तत्त्वविदः' के आधारपर स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदरहित अद्वयज्ञान-परतत्त्वकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने इस विषयमें लिखा है—

'एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वदैवस्वरूप-तद्रूप-वैभव-जीव-प्रधान-रूपेण चतुर्द्धावतिष्ठते, सूर्यान्तर मण्डलस्थित तेज इव, मण्डल, तद्बहिर्गत तद्रस्मि, तत्प्रतिच्छविरूपेण।'

परमतत्त्व एक हैं। वे स्वाभाविक अचिन्त्यशक्तिसे सम्पन्न हैं। उसी शक्तिसे वे सदैव चार रूपोंमें विराजमान हैं—(१) स्वरूप, (२) तद्रूपवैभव, (३) जीव और (४) प्रधान। सूर्यमण्डलस्थ तेज, सूर्यमण्डल, उनकी

बहिर्गत रश्मि और उनकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—ये चारों कुछ अंशोंमें उदाहरणके स्थल हैं। सच्चिदानन्द-मात्र-विग्रह ही उनका स्वरूप है। चिन्मय धाम, नाम, परिकर तथा उनके व्यवहारमें आनेवाले उपकरणसमूह ही तद्रूपवैभव हैं। नित्यमुक्त और नित्यबद्ध असंख्य जीव हैं। माया प्रधान और उससे उत्पन्न समस्त जड़ीय स्थूल और सूक्ष्म जगत् ही 'प्रधान' शब्द वाच्य हैं। अब चारों प्रकाश नित्य परमतत्त्वके एकत्वके ही प्रतिपादक हैं। अब प्रश्न हो सकता है कि परमतत्त्वमें नित्यविरुद्ध व्यापार एक ही साथ कैसे विद्यमान रह सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि जीवकी बुद्धि सीमाविशिष्ट है; अतः उसके द्वारा भगवत्-तत्त्वको जानना असम्भव है, उसे तो परमेश्वरकी अचिन्त्य-शक्तिकी कृपा द्वारा ही जानना सम्भव है।

श्रीलजीव गोस्वामीने जीव और प्रकृतिको तत्त्व नहीं बताया है, बल्कि उन्हें शक्तिके रूपमें स्थापितकर परतत्त्वका अद्वयत्व स्थापन किया है। उन्होंने शक्तियुक्त परतत्त्वको ही परब्रह्म स्वीकार किया है। परतत्त्वको निःशक्तिक या निर्विशेष माननेसे षडैश्वर्यपूर्ण, सर्वशक्तिमान परतत्त्वकी पूर्णताकी हानि होती है। जिस परतत्त्वमें स्वयं बृहत् होने एवं दूसरोंको भी बृहत् बनानेवाली स्वरूपानुबन्धिनी शक्ति है, वही ब्रह्म है। सच्चिदानन्द परतत्त्व अद्वितीय होनेके कारण उनकी शक्ति भी अघटन-घटन-पटीयसी, सच्चिदानन्दात्मिका और अद्वितीय होती है। वही पराशक्ति तीन रूपोंमें प्रकाशित होती है— सम्वित, सन्धिनी और ह्लादिनी। शक्तिकी क्रियाके कारण ही ब्रह्मका सविशेषत्व नित्यसिद्ध है। ब्रह्मकी शक्ति दो प्रकारसे अवस्थित होती है—(१) केवलमात्र शक्तिके रूपमें अमूर्त और (२) शक्तिकी अधिष्ठात्रीके रूपमें मूर्त। जब भगवत्-शक्तियाँ श्रीभगवत्-विग्रहमें एकात्म होकर अवस्थित होती हैं, तो वे अमूर्त होती हैं तथा जब वे भगवत्परिकरके रूपमें प्रकट होकर सब प्रकारसे उनकी सेवा करती हैं, तो उन्हें मूर्तरूप कहते हैं।

गौड़ीय-दर्शनमें शक्ति और शक्तिमान मिलकर ही एक अखण्ड, अद्वय परतत्त्व स्वीकृत हैं। इन्द्रियातीत तत्त्व अथवा उनकी शक्तिका अलौकिकत्व निरूपण करनेके लिए केवल गौड़ीय-दर्शनमें ही अचिन्त्य शब्दका प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। अन्यत्र कहीं भी इसका उल्लेख

नहीं देखा जाता। आचार्य शङ्करने भी 'विष्णुसहस्रनाम' की व्याख्यामें परब्रह्मको अचिन्त्य बतलाया है। श्रीधर स्वामीने भी श्रीविष्णुपुराणकी टीकामें अचिन्त्य शब्दका प्रयोग किया है। किन्तु श्रीजीव गोस्वामीके 'अचिन्त्य' शब्दके विचारका कुछ वैशिष्ट्य है अर्थात् श्रीजीव गोस्वामीने अचिन्त्य शब्दका अर्थ शब्दमूलक श्रुतार्थापत्ति ज्ञानगोचर अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा स्वीकृत शास्त्र वचनों द्वारा जाननेयोग्य बताया है। हमने पहले ही इसका उल्लेख किया है।

शक्ति और शक्तिमानका केवल भेद या केवल अभेद असम्भव है। वेदोंमें भेद और अभेद सूचक दोनों ही प्रकारके श्रुतिमन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं। इन दोनोंका युगपत् भेद और अभेद साधनकी सङ्गति भी एकमात्र परतत्त्वकी अचिन्त्यशक्ति द्वारा ही संघटित होती है तथा श्रुतार्थापत्ति प्रमाणके व्यतीत मानव मेधाके द्वारा इसे समझना भी असम्भव है। इसीलिए श्रीजीव गोस्वामीने अचिन्त्य-शब्दगम्य भेदाभेद स्वीकार किया है।

पौराणिकों, शैवों तथा भास्कराचार्य आदिके मतोंमें 'भेदाभेद' स्वीकार किया गया है, किन्तु वह भेदाभेद तर्कमूलक, खण्डनयोग्य और परस्पर सङ्गतिहीन है। मायावादियोंके केवलाद्वैतवादमें भी भेदांश व्यवहारिक या प्रतीकमात्र है। वहाँ सत्-असत्-अनिर्वचनीयकी आड़में मायाका अस्तित्व स्वीकृत होनेसे अद्वैतवाद युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणोंकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। अतएव केवलाद्वैतवाद स्वकपोल-कल्पित तथा अशास्त्रीय है। दूसरी ओर गौतम, कनाद, जैमिनी, कपिल और पातञ्जलिके मतसे भेदवाद स्वीकृत होनेपर भी वह वेदान्त-सम्मत नहीं है।

निम्बार्क मतमें भी स्वाभाविक भेदाभेद या द्वैताद्वैत मत स्वीकृत है। किन्तु वह भी अपूर्ण है। श्रीरामानुजके विशिष्टाद्वैतवादमें शक्ति और शक्तिमानका भेद स्वीकृत होनेके कारण श्रीरामानुजको भी प्रकारान्तर रूपमें द्वैतवादी कहा जा सकता है। मध्वाचार्यके द्वैतवादमें अत्यन्त भेद स्वीकृत होनेके कारण स्वतन्त्र तत्त्व ईश्वरसे परतन्त्र तत्त्वोंका नित्य भेद है—जीव और ईश्वरमें भेद, जीव और जीवमें भेद, ईश्वर और जड़में भेद, जीव और जड़में भेद, जड़ और जड़में भेद—ये पाँच प्रकारके भेद नित्य सत्य और अनादि हैं। ऐसा होनेपर भी मध्वाचार्यके मतमें

सच्चिदानन्द नित्यविग्रह (नर्तक गोपाल) स्वीकृत है। यह सच्चिदानन्द विग्रह ही इस अचिन्त्यभेदाभेदकी मूल आधारशिला होनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभुने मध्व सम्प्रदायको ही अङ्गीकार किया है। पूर्व वैष्णवाचार्योंके प्रचारित दार्शनिक मतोंमें कुछ-कुछ वैज्ञानिक अपूर्णता रहनेके कारण उनमें परस्पर वैज्ञानिक भेद हैं। इसी वैज्ञानिक भेदसे ही सम्प्रदाय भेद है। साक्षात् परतत्त्व श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने अपनी सर्वज्ञताके बलसे उन सभी मतोंकी असम्पूर्णताको पूर्णकर श्रीमध्वके सच्चिदानन्द विग्रहको, श्रीरामानुजाचार्यके शक्तिसिद्धान्तको, श्रीविष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा तदीय सर्वस्वत्वको और निम्बार्कके द्वैताद्वैत सिद्धान्तको निर्दोष और पूर्णकर अचिन्त्यभेदाभेदात्मक अत्यन्त विशुद्ध वैज्ञानिक मत जगत्को कृपाकर प्रदान किया है।

वेदवाक्योंकी सर्वांगीण आलोचना करनेपर एक सनातन-तत्त्वको जाना जाता है। वह सनातन-तत्त्व यह है कि विश्व सत्य है, अविद्या द्वारा कल्पित मिथ्या-वस्तु नहीं है। यह परमेश्वरकी निरंकुश इच्छासे उत्पन्न हुआ है—जीव द्वारा निर्मित नहीं है। किसी मिथ्या पदार्थमें सत्यका भास होना ही 'विवर्त' है। जगत् नश्वर होनेपर भी सत्य है, अचिन्त्यशक्तिमान ईश्वरके ईक्षण अर्थात् इच्छा करते ही उत्पन्न हुआ है। इसमें विवर्तका स्थल नहीं है। परमेश्वरकी माया नामक अपरा शक्तिने परमेश्वरके इच्छानुसार इस स्थावर-जङ्गममय सम्पूर्ण जड़-जगत्को उत्पन्न किया है। सारा विश्व ही अचिन्त्यभेदाभेदात्मक है। विश्व सत्य होनेपर भी नित्य सत्य नहीं है। 'नित्यो नित्यानां' (क॰ २/२३, श्वे॰ ६/१०) इस श्रुति-मन्त्र द्वारा यही प्रमाणित होता है। केवल भेद अथवा केवल अभेदवाद एवं शुद्धाद्वैत या विशिष्टाद्वैतवाद—ये सभी श्रुतिशास्त्रोंके एकदेशीय विचार हैं, साथ ही अन्यदेश-विरुद्ध हैं। परन्तु अचिन्त्यभेदाभेदमत वेदका सर्वांगीण पूर्णतम सिद्धान्त है। यही मत जीवकी स्वतःसिद्ध श्रद्धाका आस्पद और शास्त्रयुक्तिसङ्गत है। इस जड़-जगत्से जीवका नित्य सम्बन्ध नहीं है। जगत् परब्रह्मकी शक्तिका परिणाम है, वस्तुका परिणाम नहीं है। यह स्थूल-लिङ्गात्मक विश्व जीवका भोगायतन मात्र है।

(ञ) शुद्धाभक्तिका विचार

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि शास्त्रोंके अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्तिका एकमात्र साधन है। भक्ति ही जीवको भगवान्‌के निकट ले जाती है। भक्ति ही जीवको भगवद्दर्शन कराती है। परमपुरुष भगवान् एकमात्र भक्तिके ही वशीभूत रहते हैं। यहाँ इस भक्तिके स्वरूपका विवेचन किया जा रहा है। महर्षि शाण्डिल्यने भक्तिकी परिभाषाका निरूपण करते हुए कहा है—

सा परानुरक्तिरीश्वरे।

(शाण्डिल्यसूत्र १/२)

अर्थात् ईश्वरमें परानुरक्ति ही भक्ति है।

नारदपञ्चरात्रमें—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषिकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते।

(भ॰ र॰ सि॰ पूर्वविभाग १/१० नारदपञ्चरात्र)

(अप्राकृत) इन्द्रियों द्वारा (अप्राकृत) इन्द्रियाधिपति श्रीकृष्णकी सेवा ही भक्ति है। ऐसी भक्ति औपाधिक अर्थात् देह और मनोधर्मके व्यवधानसे रहित कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टायुक्त एवं निर्मल अर्थात् ज्ञान-कर्मरूप लताओंसे आच्छादित नहीं होती है।

श्रीमद्भागवतमें भक्तिकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्ड रूपसे समुद्रकी ओर होता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्न रूपसे मुझ सर्वान्तर्यामीके प्रति तथा मुझ पुरुषोत्तममें अहैतुकी और व्यवधानरहित जो स्वाभाविक प्रीति होती है, उसे निर्गुण भक्तियोग कहा जाता है।

इस प्रकार शास्त्रोंमें भक्तिकी परिभाषाओंका उल्लेख रहनेपर भी स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय परिकर श्रीलरूप गोस्वामीने पूर्वलिखित भक्तिकी सारी परिभाषाओंको क्रोड़ीभूत करते हुए स्वलिखित भक्तिरसामृतसिन्धुमें जो सर्वांगसुन्दर अभिनव परिभाषा दी है, वही गौड़ीय वैष्णवोंके लिए उपजीव्य एवं अभीष्ट है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

(भ॰ र॰ सि॰ पूर्वविभाग १/९)

श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत्त, एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमाभक्ति कहते हैं।

इस सूत्रमें भक्तिके स्वरूप और तटस्थ—दोनों लक्षणोंका विशद् रूपसे विवेचन हुआ है। 'उत्तमाभक्ति' शब्दसे शुद्धाभक्तिका तात्पर्य है। कर्ममिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति शुद्ध नहीं है। कर्ममिश्राभक्तिका उद्देश्य सांसारिक भोग है तथा ज्ञानमिश्राभक्तिका उद्देश्य मुक्ति है। भोग और मोक्षकी कामनाओंसे रहित भक्ति ही उत्तमाभक्ति कहलाती है। भक्तिके उपयुक्त साधनसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है। वह भक्ति क्या है? तन, मन और वचन द्वारा कृष्णके प्रीतिविधानकी सर्वांगीण चेष्टा एवं प्रीतिमय भाव—भक्तिके स्वरूपलक्षण हैं। चेष्टा और भाव—ये दोनों कृष्णकी प्रीतिके लिए सर्वदा क्रियाशील रहते हैं। जीवस्वरूपके ऊपर श्रीकृष्णकी कृपा या भक्तकी कृपासे भगवान्‌की स्वरूपशक्तिकी विशेष वृत्ति (ह्लादिनी और सम्वितकी सारवृत्ति) के उदय होनेपर भक्तिका स्वरूप उदित होता है।

श्रीलरूप गोस्वामीने भक्तिके दो तटस्थलक्षण बताये हैं—प्रथम अन्याभिलाषिता शून्यता और दूसरा ज्ञान-कर्म आदिसे अनावृतता। भक्तिकी उन्नतिकी अभिलाषाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाएँ भक्तिविरोधी हैं और वे अन्याभिलाषिताके अन्तर्गत हैं। जीव और ब्रह्मका

ऐक्य ज्ञान, स्मार्तोंके नित्य-नैमित्तिक काम्यकर्म, प्रायश्चित्त आदि भगवत्-बहिर्मुख कर्म, सांख्य-ज्ञान, शुष्क वैराग्य आदि भक्तिविरोधी हैं। अतएव इन दोनों प्रकारके विरोधी लक्षणोंसे रहित होनेपर ही कृष्णप्रीतिके लिए जो कृष्णानुशीलन होता है, उसे शुद्धाभक्ति कहा जाता है।

सद्गुरुसे दीक्षा, शिक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् शुद्ध-भक्तोंके आनुगत्यमें जो शुद्धाभक्तिका साधन किया जाता है, उसे साधनभक्ति कहते हैं। साधनभक्तिके अनुष्ठानके प्रारम्भमें ही उसके दो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं—क्लेशघ्नी तथा शुभदा; भावावस्थामें इन दोनोंके अतिरिक्त मोक्षलघुताकृता एवं सुदुर्लभा—ये कुल चार लक्षण होते हैं तथा साध्यावसामें पूर्वोक्त चारों लक्षणोंके अतिरिक्त सान्द्रानन्द-विशेषात्मा एवं श्रीकृष्णकर्षिणी—कुल छः लक्षण लक्षित होते हैं। श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धुमें भक्तिकी इन छः विशेषताओंका वर्णन किया है—

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्ष-लघुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्द-विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षणी च सा॥

(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ १ ल १२)

अर्थात्—

(१) क्लेशघ्नी—सब प्रकारके दुःखोंका नाश करती है।

(२) शुभदा—सम्पूर्ण कल्याणको देनेवाली है।

(३) मोक्ष-लघुताकृता—मोक्षको भी तुच्छ उपलब्धि करा देती है।

(४) सुदुर्लभा—अत्यन्त ही दुर्लभ है।

(५) सान्द्रानन्द-विशेषात्मा—घनीभूत आनन्द-स्वरूपा है।

(६) श्रीकृष्णाकर्षणी—श्रीकृष्णको आकर्षित करती है।

पाप, पापवासना और पापबीज तथा पुण्य, पुण्यवासना और पुण्यबीज—इन सभी प्रकारके क्लेशोंको नष्ट करना भक्तिका पहला लक्षण है। सबके प्रति प्रीति, प्राणिमात्रके प्रति अनुराग, समस्त सद्गुण और शुद्ध सुख प्रदान करना—यह दूसरा लक्षण है, इसीको शुभदा भी कहते हैं। ये दोनों लक्षण साधनभक्तिके समय लक्षित होते हैं। मोक्षको भी तुच्छ उपलब्ध कराना तीसरा लक्षण है। विषयभोगके प्रति अनासक्त होकर भक्तिके अङ्गोंका बहुत दिनों तक अनुष्ठान करनेपर

भी भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। यह सुदुर्लभता ही साधनभक्तिका चौथा लक्षण है। ये दोनों भावभक्तिके लक्षण हैं। घनीभूत आनन्दस्वरूप होना पाँचवा लक्षण है तथा श्रीकृष्णको आकर्षित करना भक्तिका छठा लक्षण है। अन्तिम दो लक्षण साध्यभक्ति अर्थात् प्रेमाभक्तिके लक्षण हैं। साध्यभक्तिमें भी पूर्व प्रदर्शित चारों लक्षण लक्षित होते हैं। साध्यभक्तिकी प्रथम अवस्थाको भावभक्ति कहते हैं तथा उसकी सर्वोच्च अवस्थाको प्रेम कहते हैं।

श्रीलरूप गोस्वामीने साधनभक्तिकी परिभाषा इस प्रकार बतायी है—

कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥
(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ २/२)

साध्यभावरूपा शुद्धाभक्ति जब इन्द्रियोंके द्वारा साधित होती है, तब उसे साधनभक्ति कहते हैं। साध्यभाव नित्यसिद्ध है, परन्तु जिस उपायके द्वारा उसे हृदयमें प्रकट किया जाता है, उसका नाम साधन है। यह साधनभक्ति भी दो प्रकारकी होती है—वैधी और रागानुगा।

श्रवण, कीर्त्तन और भक्तिके अङ्गोंका अनुष्ठान यदि स्वाभाविक अनुराग और रुचिके द्वारा न होकर केवल शास्त्र-शासन (शास्त्रकी विधियोंके भय) से किया जाता है, तो उसे वैधीभक्ति कहते हैं। शास्त्रोंमें जीवोंके लिए जो कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं, उसे विधि कहते हैं एवं जिसे करनेके लिए मना किया गया है, उसे निषेध कहते हैं। इन विधि-निषेधोंका पालन करना ही शास्त्रोंका शासन मानना है। शास्त्रोंके इस शासन भयसे भक्तिमें जीवोंकी प्रवृत्ति होनेपर उसे वैधीभक्ति कहते हैं।

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरूपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधीभक्तिरुच्यते॥
(भ॰ र॰ सि॰ १/२/६)

अर्थात् जिस साधनभक्तिमें प्रवृत्तिका कारण लोभ नहीं, बल्कि शास्त्रशासन है उसे वैधीभक्ति कहते हैं।

साधनभक्तिके बहुत-से अङ्ग होनेपर भी भक्तिरसामृतसिन्धुमें गुरुपदाश्रय, कृष्णदीक्षा-शिक्षा, गुरुसेवा आदि ६४ अङ्गोंका वर्णन किया गया है। ये चौंसठ अङ्ग स्वरूपतः श्रीमद्भागवतमें कहे गये प्रधान नौ अङ्गोंके अन्तर्भुक्त हैं। ये नौ अङ्ग या नवधाभक्ति इस प्रकार है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा॰ ७/५/२३)

कोई-कोई इन साधनोंमेंसे किसी एक अङ्गका साधनकर भी सिद्ध होते हैं। कोई-कोई अनेक अङ्गोंका भी एक साथ साधन करते हैं। वास्तवमें साधनभक्तिके सभी अङ्गोंका मुख्य फल एक ही है—चित्-विषयणी रति।

साधक भक्त जब अपने अभिलषित व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णकी सेवाप्राप्तिके लोभसे श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका अनुष्ठान करते हैं, तब उनके द्वारा अनुष्ठित उस भक्ति-परिपाटीको रागानुगा-भक्ति कहते हैं। इष्टके विषयमें जो स्वाभाविक अत्यन्त आवेश या अनुरक्ति होती है, उसे राग कहते हैं। ऐसे रागसे युक्त जो कृष्णकी भक्ति होती है, उसे रागात्मिकाभक्ति कहते हैं। उस रागात्मिकाभक्तिकी अनुगामिनी भक्तिको रागानुगाभक्ति कहते हैं। जिस प्रकार शास्त्रोंके अनुशासनमें विधिके अधीन रहकर जो भक्ति होती है, उसे वैधीभक्ति कहते हैं, उसी प्रकार रागात्मिकाभक्तिकी अनुगामिनी भक्तिको रागानुगाभक्ति कहा जाता है। इन दोनोंमेंसे कोई भी साध्यभक्ति नहीं है। ये दोनों ही साधनभक्ति हैं। रागात्मिकाभक्ति ही साध्यभक्ति है। व्रजवासी और पुरवासी (मथुरा और द्वारकावासी) लोगोंकी भक्ति रागात्मिका है। उनकी वैसी भक्तिको पढ़कर या सुनकर जिनके हृदयमें वैसी ही भक्तिको प्राप्त करनेके लिए लोभ होता है, वे रागानुगा साधनभक्तिके अधिकारी हैं। जिस प्रकार शास्त्रीय श्रद्धासे वैधीभक्तिका अधिकार प्राप्त होता है, उसी प्रकार रागात्मिक भक्तोंके भावके प्रति लोभसे रागानुगाभक्तिमें अधिकार मिलता है।

तत्तदभावादि-माधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शात्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणम्॥
कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निज समीहितम्।
तत्तत्कथा-रतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥
(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ साधनभक्ति लहरी २९२, २९४, २९५)

रागानुगाभक्तिका कारण रागात्मिक जनोंके भावोंके प्रति लोभका होना है, यह लोभ शास्त्रीय युक्तिसे उत्पन्न नहीं होता बल्कि उन-उन भाव माधुर्योंका श्रवण करके उनमें निमग्न होनेके लिए बुद्धि जिस चीजकी अपेक्षा करती है, वह चीज विशुद्ध लोभके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपने अभीष्ट कृष्णके प्रियजनोंके भावोंके प्राप्तिके लिए जिनको लोभ है, वे साधक रूपसे यथावस्थित देह द्वारा और सिद्ध रूपसे अर्थात् अन्तश्चिन्तित अभीष्ट कृष्णसेवोपयोगी देहके द्वारा व्रजमें सर्वदा वास करते हुए श्रीकृष्णके व्रजस्थ प्रियतमजनोंके तथा उनके अनुगत जनोंका अनुसरण करते हुए सेवा करेंगे, कृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरण करेंगे। यही व्रज सम्बन्धी रागानुगाभक्तिकी साधन-प्रणाली है।

रागानुगाभक्ति दो प्रकारकी होती है—कामानुगा एवं सम्बन्धानुगा। कामानुगा भी दो प्रकारकी होती है—सम्भोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी। सम्भोगेच्छामयी भक्ति केलि तात्पर्यवती होती है। यहाँ केलिका तात्पर्य श्रीकृष्णके साथ उनकी प्रेयसियोंके मिलनसे है। तत्तद्भावेच्छामयी भक्ति केवलमात्र व्रजदेवियोंकी भावमाधुरीकी कामनावाली होती है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुने जगत्के जीवोंके लिए जिस भक्तिकी शिक्षा दी है, उसके द्वारा साधकके हृदयमें रागानुगा होनेकी वासना उदित होती है। रागमार्ग द्वारा भजन ही उनके

द्वारा अनुमोदित है। जीवोंके सौभाग्यसे यदि उन्हें श्रीगौरसुन्दरके प्रियजनोंका सङ्ग मिल जाय तो व्रजजनोंके भावके प्रति अवश्य ही लोभ उत्पन्न होगा। किन्तु जब तक ऐसा सङ्ग नहीं मिलता, तब तक साधकको वैधीभक्तिका ही अवलम्बन करना चाहिये। श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंका आश्रय करनेसे रागमार्गमें अवश्य ही प्रवेश होगा। जिन सौभाग्यवान साधुओंके हृदयमें व्रजवासियोंके भावोंको पानेके लिए लोभ उत्पन्न हो चुका है, उनके लिए रागानुगाभक्तिका साधन करना कर्त्तव्य है। वैसा लोभ उत्पन्न होनेपर भगवत्-इतर विषयोंमें रुचि नहीं रहती। पाप, पुण्य, कर्म, अकर्म, विकर्म, शुष्क ज्ञान और वैराग्यसे छुटकारा मिल जाता है। भक्तिके साधनमें उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है। श्रीलरूप गोस्वामीने भक्तिके क्रमविकासके सम्बन्धमें लिखा है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः॥

(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ ४/१५, १६)

वैधमार्गमें सबसे पहले श्रद्धा होती है। उसके बाद साधुसङ्ग, तत्पश्चात् भजन द्वारा अनर्थोंकी निवृत्ति होती है। तदनन्तर निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भाव होता है। इसमें भाव अधिक काल तक साध्य बना रहता है। परन्तु लोभ उत्पन्न होनेपर इतर विषयोंमें लोभका अभाव होनेके कारण अति सहज ही अनर्थ नष्ट हो जाते हैं। भाव भी इसी लोभके साथ-ही-साथ उदित होता है। रागमार्गमें केवल आभास और कपटताको दूर करना आवश्यक है। यदि ये दूर न हों, तो उनसे विषम-विकार और अनर्थोंकी ही वृद्धि होती है। ऐसी अवस्थामें भ्रष्ट राग ही विशुद्ध राग है—ऐसी प्रतीति होती है। और अन्तमें विषय-सङ्ग ही प्रबल होकर जीवकी अधोगतिका कारण बन जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित साधक पुरुष शुद्ध लोभके माध्यमसे रागानुगाभक्तिका ही अवलम्बन करते हैं। वैधीभक्तिमें वे सद्गुरुका पदाश्रय करके श्रीविग्रह-सेवा, वैष्णव-सङ्ग, भक्ति-शास्त्रोंका आदर, भगवान्‌की

लीलास्थलियोंमें वास और श्रीभगवन्नामका अनुशीलन करते हुए अपने सिद्धदेहमें व्रजवासियोंके भावका अनुसरणपूर्वक मन-ही-मन भावमार्ग द्वारा कृष्णकी सेवा करते हैं। उनमेंसे अत्यन्त सौभाग्यवान साधक ही साधुसङ्गमें रहकर भक्तिके अङ्गोंमें श्रेष्ठ हरिनामका आश्रय ग्रहण करके भगवत्-सेवामें नियुक्त होते हैं। नामाश्रय ग्रहण करनेमें दीक्षा और पुरश्चर्या आदि विधियोंकी अपेक्षा नहीं रहती। नामाभास और नामापराधसे दूर रहकर क्रमशः निरन्तर कृष्णनाम करते हैं। निरन्तर हरिनाम करते हुए श्रीविग्रहकी कृपादृष्टिकी भावनाके साथ श्रीनाम और रूपकी निरन्तर आलोचना करते हैं। क्रमशः श्रीविग्रहके गुणसमूह, रूप और नाम—ये सभी एक ही साथ आलोचित होने लगते हैं। तदनन्तर स्वरूपगत लीला-भावनाके साथ गुण, रूप और नामका अनुशीलन होने लगता है। धीरे-धीरे रसोदय भी हो जाता है। रसका उदय होना ही चरम प्राप्ति है। विशेष बात यह है कि नाम-अनुशीलनके समयसे ही यदि रसोन्मुखी व्याकुलता रहे, तो थोड़े दिनोंमें रसोदय हो पड़ता है।

(ट) कृष्ण-प्रीति ही जीवका साध्य है

जिस तत्त्वको लोकपितामह ब्रह्मा, देवाधिदेव महादेव सर्वदा खोज करते हैं, मुक्त जीवोंके लिए भी जो परम अन्वेषणीय है, उस अखिल साधनतत्त्वकी एकमात्र साध्य वस्तु एवं सभी शास्त्रोंका चरम प्रयोजन है—परम पुरुषार्थ—प्रेम। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीरूप-शिक्षाके प्रसङ्गमें जगद्गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कौन भाग्यवान जीव।
गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

माली हइया करे सेई बीज आरोपन।
श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन॥

x x x x

प्रेमफल पाकि पड़े माली आस्वादय।
लता अवलम्बि माली कल्पवृक्ष पाय॥

ताहाँ सेइ कल्पवृक्षेर करये सेचन।
सुखे प्रेमफल-रस करे आस्वादन॥
एइ त' परम फल—परम पुरुषार्थ।
जाँर आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ॥

अर्थात् संसारमें भ्रमण करते-करते कोई सौभाग्यवान जीव गुरु और कृष्णके प्रसादसे भक्तिलता-बीज-कृष्ण-सेवाकी वासना प्राप्त करता है। श्रवण और कीर्त्तन रूपी जलसे उसका सिञ्चन करता है, जिससे वह बीज पहले अङ्कुरित होता है। तत्पश्चात् लताका रूप धारणकर क्रमशः ब्रह्माण्ड, विरजा, ब्रह्मलोक एवं परव्योमको भेदकर गोलोक वृन्दावनमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी कल्पवृक्षके ऊपर आरोहण करता है। उसमें प्रेमफल लगते हैं। पकनेपर फल जब गिरता है, तो माली यहाँ उसका आस्वादन करता है और उस भक्तिलताका अवलम्बनकर कल्पवृक्षरूप श्रीकृष्णके चरणकमलोंका आश्रयकर सर्वदा प्रेमफल—रसका आस्वादन करता है। यही 'प्रेम' जीवोंके लिए सर्वसाध्य शिरोमणि है।

भाव उस प्रेमरूपी सूर्यका किरण स्वरूप है। श्रीरूप गोस्वामी भावकी परिभाषा बताते हुए कह रहे हैं—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥
(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ ३/१)

अर्थात् जो भक्ति शुद्धसत्त्वस्वरूपा है, वह प्रेमरूप (उदय होने जा रहे) सूर्यके किरणस्थानीय है तथा रुचि द्वारा चित्तको आर्द्र करनेवाली है, उसे भाव कहते हैं।

यही शुद्धसत्त्वरूप भाव परिपक्व होनेपर आराध्यके प्रति प्रगाढ़ ममता उत्पन्न करता है तथा चित्तको अत्यन्त स्निग्ध कर देता है। उस समय ऐसे प्रगाढ़ ममता युक्त भावको प्रेम कहते हैं—

सम्यक् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥
(भ॰ र॰ सि॰ प्रे॰ ल॰ १ श्लोक)

इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है—स्वप्रकाशिका स्वरूपशक्तिकी सम्वित् नामक वृत्तिको शुद्धसत्त्व कहते हैं। कृष्णके प्रति प्रगाढ़ ममतासम्पन्न आर्द्र-भाव चित्-शक्तिगत ह्लादिनी-वृत्तिविशेष है। इन दोनोंके एकत्र मिलित होनेपर शुद्ध जीवके हृदयमें जो परम वृत्तिरूप चमत्कार भाव उदित होता है, उसे ही विशुद्ध प्रेम कहते हैं।

साधकके चित्तमें प्रेमका अङ्कुर—भाव या रति—उदय होनेपर उसके स्वभावमें क्षान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामकीर्त्तनमें रुचि, कृष्णकी लीलाकथाओंमें आसक्ति तथा उनकी लीलास्थलियोंमें प्रीति आदि अनुभावसमूह परिलक्षित होते हैं। यह रति ही प्रेमकी पहली अवस्था है। रतिकी गाढ़ावस्थाको ही प्रेम कहते हैं। यह रति दो प्रकारसे उदित होती है—(१) श्रीकृष्ण या कृष्णभक्तोंकी कृपासे, (२) साधन अभिनिवेशसे। इस जगत्‌में साधनाभिनिवेशज रति ही सर्वत्र देखी जाती है। प्रसादज रतिका उदय विरलोंमें ही देखा जाता है। साधनाभिनिवेशज रति भी दो प्रकारकी होती है—(१) वैधीभक्तिसाधनसे उत्पन्न रति और (२) रागानुगासाधनसे उत्पन्न रति। वैधीभक्तिसाधनसे उत्पन्न रति ऐश्वर्यमयी और वैकुण्ठगामिनी होती है और रागानुगा-साधनभक्तिसे उत्पन्न रति व्रजकी प्रेममयी कृष्णसेवाप्रदायिनी होती है।

श्रीकृष्ण-परिकर व्रजवासियोंमें सदैव रागात्मिकाभक्ति विराजमान रहती है। उसीकी अनुगामिनी भक्तिका नाम रागानुगा है। इसके दो प्रकारके साधन हैं—बाह्य और आभ्यन्तरिक। साधक अपने यथावस्थित शरीरसे जो श्रवण-कीर्त्तन आदि करता है, उसे बाह्य साधन कहते हैं। मन-ही-मन अपनी सिद्धदेहकी भावना कर व्रजमें राधाकृष्ण-युगलकी अष्टकालीय सेवा आभ्यन्तरिक मानसी-सेवा कहलाती है।

अस्फुट प्रीति प्रथमावस्थामें केवल उल्लासमयी होती है, तब उसका नाम रति होता है। वैसी रति शान्तरसमें पायी जाती है। रतिके उदय होनेपर कृष्णसेवाके अतिरिक्त सब कुछ तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसी उल्लासमयी रतिमें जब अतिशय ममताका आविर्भाव होता है, तब उसे प्रेम कहते हैं। यह प्रेम दास्यरसमें अनुभूत होता है। प्रीतिभङ्गका

कारण उपस्थित होनेपर भी जो प्रीति और भी प्रगाढ़ हो जाती है, उस विश्वासमय प्रेमकी उच्च अवस्थाको प्रणय कहते हैं। यह प्रणय सख्यरसमें परिलक्षित होता है। यह प्रेमवैचित्र्यरूप प्रणय ही मान कहलाता है। चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करनेवाला प्रगाढ़ प्रेम ही स्नेह कहलाता है। यही स्नेह प्रगाढ़ अभिलाषात्मक होनेपर राग कहलाता है। राग उत्पन्न होनेपर क्षणभरका वियोग भी सह्य नहीं होता। उस समय दुःख भी सुख प्रतीत होता है। वही राग जब अपने विषय (प्रियतम कृष्ण) को नित्य-नवीन रूपमें सर्वदा अनुभव करता है, तब उसे अनुराग कहते हैं। विप्रलम्भमें विस्फूर्ति (बाह्य ज्ञानरहित अवस्था) होती है। जब वही अनुराग अत्यन्त प्रगाढ़ होनेपर असमोर्द्ध्व चमत्कारिताके सहित उन्माद जैसी अवस्थाको प्राप्त होता है, तो उसे महाभाव कहते हैं। महाभावके उदय होनेपर मिलनके समय पलकोंका गिरना भी सह्य नहीं होता तथा एक कल्पका समय भी क्षणभरकी भाँति बीत जाता है। अनुराग एवं महाभावमें समस्त सात्त्विक, व्यभिचारी आदि विकारसमूह महादीप्त अवस्थामें लक्षित होते हैं।

यही महाभाव श्रीमती राधिकाका स्वरूप है। श्रीमती राधिकाके अङ्ग-प्रत्यङ्ग महाभाव द्वारा गठित हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यही शिक्षा है। श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने सूत्र रूपमें उल्लेख किया है—

> आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावन-
> रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
> श्रीमद्भागवत प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
> श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः॥

षष्ठ भाग

श्रीब्रह्म–माध्व–गौड़ीय सम्प्रदायका संरक्षण

जगद्‌गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने अत्यन्त अल्प समयमें विश्वभरमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धाभक्ति—प्रेमाभक्तिका विपुल रूपमें प्रचार एवं प्रसार किया। उन्हींके प्रयाससे आज पृथ्वीके कोने–कोनेमें "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥" महामन्त्रकी ध्वनि गूँज रही है। उनकी अप्रकटलीला–आविष्कारके पश्चात् शुद्धाभक्तिकी प्रचार धारा अत्यन्त क्षीण हो गयी। उस समय श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत, विशेषतः सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंके ऊपर चारों तरफसे आक्रमण हो रहे थे। कुछ तथाकथित सारस्वत गौड़ीय वैष्णव भी अपनी–अपनी डफली बजा रहे थे और अपना–अपना राग आलाप रहे थे। ऐसे विषम वातावरणमें जगद्‌गुरु श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' के अन्तरङ्ग परिकर अस्मदीय श्रीलगुरुदेव अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपादकी प्रेरणासे संन्यास ग्रहणकर अपने गुरुदेवका मनोऽभीष्ट प्रचार एवं प्रसार करनेके लिए अपने अन्तिम जीवन तक अथक प्रयास किया। उन्होंने किस प्रकारसे सारे विश्वमें पुनः भक्तिधाराको पूर्ण रूपसे प्रवाहित किया और किस प्रकारसे स्वसम्प्रदायका संरक्षण किया है, हम उसका दिग्दर्शन करा रहे हैं।

श्रील गुरुपादपद्म बहुत ही प्रतिभासम्पन्न, गम्भीर, दार्शनिक एवं तत्त्ववेत्ता आचार्य थे। उन्होंने शुद्धाभक्तिका प्रचार दो प्रकारसे किया—(१) प्रबल शास्त्रीय प्रमाणोंके बलपर श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित मतकी स्थापना की और (२) प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके बलसे भक्तिविरोधी प्रच्छन्न बौद्धवाद (केवलाद्वैतवाद या

मायावाद), सहजिया, स्मार्त, जाति-वैष्णव आदिके अपसिद्धान्तमूलक शुद्धाभक्तिविरोधी मतोंका खण्डन किया। भक्तिके पुनः प्रवर्तक तथा वैष्णव-दर्शन, भगवत्तत्त्व, शक्तितत्त्व, भक्तितत्त्व, मायातत्त्व तथा अचिन्त्य-भेदाभेदतत्त्व आदिका वर्त्तमान जगत्में पुनः प्रचार करनेवाले सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रकाशित 'दशमूलतत्त्व' को ही उन्होंने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके षड्गोस्वामियोंके सभी ग्रन्थोंका एकमात्र सार कहा। उन्होंने श्रीमद्भागवतको ही अमल शब्द-प्रमाण तथा ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य स्वीकार किया। उन्होंने और भी कहा कि श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित-प्रचारित नाम-प्रेमधर्म ही वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय है। इन तीनों विषयोंका प्रतिपादन करनेके लिए उन्होंने वेदान्तसूत्रके शब्दवाद-तत्त्वमूलक श्रीहरिनाम-माहात्म्यसूचक एक भाष्य तथा श्रीमद्भागवतकी भक्तिवेदान्तमूलक एक टीका प्रकाशित करनेकी इच्छा व्यक्त की थी। इसके लिए कुछ-कुछ लेखन-सामग्री एकत्रकर उक्त दोनों ग्रन्थोंकी रूपरेखा भी तैयार करना आरम्भ कर दी थी। किन्तु अकस्मात् नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेके कारण उसे पूर्ण नहीं कर सके। समय-समयपर प्रधान-प्रधान उपनिषदोंकी स्वसम्प्रदायके विचारोंके अनुसार भाष्य प्रकाश करनेकी भी उनकी प्रबल इच्छा देखी गयी।

(क) केवलाद्वैतवादका खण्डन

उनका यह स्पष्ट विचार था कि जब तक जगत्में प्रच्छन्न बौद्धवादरूप मायावादका प्रचार है, तब तक शुद्धाभक्तिका प्रचार सम्भव नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके द्वारा इसका खण्डन किया है। मायावाद-खण्डनकी उनकी कतिपय युक्तियोंका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

(क) शङ्कराचार्य द्वारा प्रचारित केवलाद्वैतवाद अवैदिक है। केवलाद्वैतवसदके मतानुसार निर्विशेष, निर्गुण, निःशक्तिक ब्रह्म ही परतत्त्व है। अविद्याके कारण ही ऐसे ब्रह्ममें जीव और जगत्की भ्रान्ति होती है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह भ्रान्ति किसे होती है? कुछ मायावादियोंका कथन है कि यह भ्रान्ति अविद्याग्रस्त जीवको होती है

और कुछका कहना यह है कि अविद्याग्रस्त होनेपर ब्रह्मको ही जीव और जगत्‌की भ्रान्ति होती है।

इस विषयमें इनका कहना यह है कि उक्त दोनों ही विचार अवैदिक और भ्रान्त हैं। यदि वे ब्रह्मको अविद्याग्रस्त मानते हैं, तो यह सर्वथा अशास्त्रीय एवं अयौक्तिक है। क्योंकि उपनिषदोंके अनुसार 'ब्रह्म सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है तथा 'एकमेवाद्वितीयम्' अर्थात् ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यदि ब्रह्म सर्वदा ज्ञानस्वरूप, त्रैकालिक सत्यस्वरूप, अनन्त, अद्वितीय और आनन्दस्वरूप है, तो वह अविद्याग्रस्त कैसे हो सकता है एवं अविद्या नामक यह द्वितीय वस्तु कहाँसे आयी? जो अविद्या स्वयं सत् और असत् कुछ भी नहीं है, मिथ्या है, वह ब्रह्मको कैसे स्पर्श कर सकती है? यह असम्भव है।

दूसरी बात यदि यह भ्रान्ति जीवको होती है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि ब्रह्मसे पृथक् यह स्वतन्त्र जीवतत्त्व कहाँसे आया? इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि ब्रह्म ही अविद्याग्रस्त होकर जीव हुआ है, तब तो अविद्याका मूल आश्रय ब्रह्म हुआ, जीव नहीं।

(ख) कुछ मायावादियोंके विचारसे ब्रह्म माया द्वारा आच्छादित नहीं होता, किन्तु अविद्यामें ब्रह्मका प्रतिबिम्ब ही ईश्वर एवं अविद्यामें ब्रह्मका आभास ही जीव है। प्रतिबिम्बस्वरूप ईश्वर और आभासस्वरूप जीव दोनों ही मिथ्या हैं। इनकी पारमार्थिक सत्यता नहीं है। इसके लिए रज्जुमें सर्पका भ्रम अथवा सूक्तिमें रजतका भ्रम उदाहरणके स्थल हैं अर्थात् ब्रह्ममें ही जीव और जगत्‌की भ्रान्ति होती है। रज्जु ही सर्प है—इस भ्रममें सर्पत्व मिथ्या है। फिर भी व्यवहारिक रूपमें रज्जु और सर्पका कुछ अंशोंमें सादृश्य हेतु ही ऐसा भ्रम होता है।

परन्तु मायावादियोंका उपरोक्त विचार भी अशास्त्रीय और अयौक्तिक है। जो अविद्या स्वयं सत् भी नहीं, असत् भी नहीं और सत्-असत् उभय भी नहीं, अनिर्वचनीय है अर्थात् मिथ्या है (पारमार्थिक और लौकिक सत्यता जिसकी नहीं है) उसमें अखण्ड, निराकार, निर्विशेष, अनन्त ब्रह्म कैसे प्रतिबिम्बत हो सकता है? ऐसी दशामें ब्रह्म खण्ड,

परिच्छिन्न, सविशेष, ससीम हो पड़ता है। अविद्या एक पृथक् सत् वस्तु हो पड़ती है और यह अविद्या ब्रह्मको भी आच्छादित कर सकती है, जो सर्वथा असम्भव है। रज्जुमें सर्पभ्रम—इस उदाहरणमें सर्प, रज्जु, द्रष्टा—तीनों ही वस्तुएँ हैं, तो क्या ब्रह्म, जीव और अविद्या (माया)—ये तीनों ही सत्य हैं? ऐसा स्वीकार करनेसे मायावादरूप-काँचका महल स्वतः ध्वस्त हो जाता है। दूसरी बात वेद, उपनिषद् और वेदान्तसूत्रमें सर्वत्र ही ब्रह्मको जगत्-सृष्टिकर्त्ता, सर्वज्ञ, शक्तिमान एवं असमोर्द्ध्व परतत्त्व बताया गया है। जैसे—

(१) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।
यत्-प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।
(तै॰ भृगु, १ अनु)

(२) जन्माद्यस्य यतः

(३) ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।

(४) स ऐक्षत इत्यादि। यदि मायावादिययोंके विचारको ग्रहण किया जाय तो ये श्रुतिवचन मिथ्या प्रलाप हो जायेंगे।

(ग) कुछ मायावादियोंके अनुसार अविद्या—सत्त्व-रज-तम-स्वरूपा त्रिगुणात्मिका है तथा ब्रह्माश्रया है अर्थात् ब्रह्मका आश्रय ग्रहण करनेवाली है। यही अविद्या आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति द्वारा उपलक्षित होकर माया नाम धारण करती है। अविद्याकी आवरणशक्तिमें चैतन्यस्वरूप ब्रह्मका प्रतिबिम्ब—जीव तथा विक्षेपशक्तिमें चैतन्य स्वरूप ब्रह्मका प्रतिबिम्ब—ईश्वर कहलाता है। उपाधिगत रूपसे तथा बिम्बसे अभिन्न रूपमें प्रतीत होनेवाला प्रतिबिम्ब (ईश्वर) ही—बिम्ब है। यही ईश्वर—"मैं जगत्-सृष्टिकर्त्ता हूँ" और जीव—"मैं यह नहीं जानता"—इस प्रकार निश्चित किया करते हैं।

किन्तु मायावादियोंका उपरोक्त मत शास्त्रीय-विचार एवं युक्तिकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। शुद्ध स्वप्रकाश ब्रह्म-वस्तुमें अविद्याका सम्बन्ध सम्पूर्ण रूपसे एक विरुद्ध व्यापार है। यदि कहो कि इसमें कोई विरोधकी बात नहीं है, तब तो यह स्वीकार करना हो जाता है कि अविद्या निजाश्रित रहकर चिरकाल तक अवस्थित रहेगी तथा

ब्रह्मको उपाधिग्रस्त करती रहेगी। क्योंकि उसका विनाश करनेवाला कोई नहीं है। किन्तु यह कहना सर्वथा असङ्गत है। क्योंकि उपनिषदोंमें 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥'[१] (श्वे॰ ४/६, मुण्डक ३/१/१, ऋग्वेद १/१६४/२१), 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'[२] (गीता ९/१०), 'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥'[३] (श्वे॰ उ॰ ६/८) मन्त्रोंके द्वारा ब्रह्मको स्पष्ट रूपमें असमोर्द्ध्व-परतत्त्व, जीवोंका साक्षी, कर्मफल नियन्ता, अचिन्त्य सर्वशक्तिमान स्वीकार किया गया है तथा इनकी कृपासे सहज ही मायासे निष्कृति हो सकती है। 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्' (कठ॰ १/२/२३), 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्' (कठ॰ ५/१३ और श्वे॰ ६/१३)।

मायावादियोंके मतानुसार ब्रह्म ज्ञानमात्र है। वह ज्ञानी अथवा ज्ञानवान नहीं है। ऐसा होनेपर उक्त ब्रह्ममें अविद्याके सम्बन्धकी कल्पना नितान्त असम्भव है। क्योंकि ज्ञानवान या ज्ञानीमें ही कुछ समयके लिए अज्ञान दृष्टिगोचर होता है। किन्तु केवल ज्ञानमात्र वस्तुमें अज्ञान दृष्टिगोचर नहीं होता। यह कदापि सम्भव नहीं है। क्योंकि ज्ञान और अज्ञान परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं।

---

[१] परमात्मा और जीवात्मा स्थूल-सूक्ष्म शरीररूप पीपलके पेड़पर सखाकी भाँति निवास करते हैं; उनमेंसे जीव अपने कर्मोंके अनुसार पीपलके फलोंका आस्वादन कर रहा है और दूसरा परमात्मा फलका भोग न कर साक्षीके रूपमें अवस्थित है। अतः जीवात्मा और परमात्मा एक नहीं है।

[२] श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी अध्यक्षतामें मेरी प्रकृति (मायाशक्ति) इस चराचर जगत्की सृष्टि करती है। अतः जगत् भी सत्य है, किन्तु परिर्वतन शील या ध्वंशशील है। इसके द्वारा श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं, यह सिद्ध होता है।

[३] परब्रह्म श्रीकृष्ण असमोर्द्ध्व तत्त्व हैं। उनका कोई भी करण—हस्तपादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होतीं। वे प्राकृत इन्द्रियोंके बिना अप्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा सभी कुछ करते हैं। उन परमेश्वरकी अलौकिक शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति, सन्धिनीशक्ति और ह्लादिनीशक्ति भी कहते हैं।

(घ) कुछ मायावादियोंके मतानुसार अनादि कालसे ही अनन्याश्रया (दूसरे किसी आश्रयकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली) अविद्या और अविद्याके द्वारा ही ब्रह्ममें जीव आदि द्वैतभाव कल्पित होते हैं। अथच (अविद्याके द्वारा कौन कल्पना करता है) कल्पनाकारी कोई भी द्वितीय नहीं है—ऐसा स्वीकृत होनेसे जीव आदि द्वैतभाव कल्पना अविद्याका स्वाभाविक धर्म हो पड़ता है। ऐसा होनेपर अग्निकी दाहिका शक्तिकी भाँति स्वाभाविक धर्म कभी भी परित्यक्त नहीं हो सकता। अतः यह विचार केवलाद्वैतवाद मतके विरुद्ध हो जाता है अर्थात् इससे केवलाद्वैतवादका खण्डन होता है।

(ङ) मायावादियोंका प्रतिबिम्बवाद भी शास्त्र एवं युक्तिविरुद्ध है। सविशेष सूर्यका जलमें प्रतिबिम्ब होता है। इस दृष्टान्तसे रूपहीन, अवयव रहित निर्विशेष अदृश्य ब्रह्मका रूपहीन अविद्यामें प्रतिबिम्ब असम्भव है जो सत् भी नहीं, असत् भी नहीं और सत्-असत् उभय भी नहीं।

(च) दर्पण आदिमें मुखका प्रतिबिम्ब द्रष्टासे भिन्न होता है। परन्तु मायावादियोंके कल्पित प्रतिबिम्बवादमें प्रतिबिम्बरूप जीव और ईश्वर तथा प्रतिबिम्ब-भावप्राप्त ब्रह्मका द्रष्टा दूसरा कौन होगा? और यदि वे वैसे दृश्य हैं, तब तो जगत्के दृश्य पदार्थोंकी भाँति ब्रह्म और जीव जड़ हो पड़ेंगे (साधारणतः दार्शनिकोंके विचारसे जगत्के सारे दृश्य पदार्थ जड़ हैं)। इसलिए यह मत भी सर्वथा युक्तिविरुद्ध है।

(छ) प्रतिबिम्बित वस्तु जड़ होती है। उसमें अपनी उपाधिकी कल्पना करने या अपनी उपाधिका विनाश करनेका सामर्थ्य नहीं होता। तब प्रतिबिम्बरूप जीवमें 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह उपलब्धि तथा अपने यथार्थ ज्ञानके द्वारा अपनी उपाधिरूप अविद्याको नष्ट करना भी असम्भव है। जब जीवके लिए अपनी उपाधिरूप अविद्याका भी विनाश करना सम्भव नहीं है, तब जीवोंके द्वारा ब्रह्मकी उपाधि (अविद्या) का नाश करना कैसे सम्भवपर हो सकता है? मायावादियोंके मतानुसार शुद्ध ब्रह्म-आश्रित अज्ञानके नाशका नाम ही मोक्ष है—यह असम्भव हो पड़ता है।

(ज) बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनोंका अधिष्ठान (बिम्बका अधिष्ठान आकाश और प्रतिबिम्बका अधिष्ठान जल) पृथक्-पृथक् होनेके कारण भेद प्रत्यक्ष ही उपलब्ध होता है। किसी भी अवस्थामें बिम्ब और

प्रतिबिम्ब एक नहीं हो सकते। प्रतिबिम्ब बिम्बकी विपरीत दिशामें होता है तथा बिम्बके अङ्ग विपरीत ओर दीखते हैं। यदि बिम्ब चेतन भी हो, तो प्रतिबिम्ब अवश्य ही अचेतन होता है। इसलिए जीव और ब्रह्म कभी भी एक नहीं हैं।

(झ) उक्त मतसे अविद्याकी आवरणशक्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव और विक्षेपशक्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य ही ईश्वर है अर्थात् जीव और ईश्वर पृथक्-पृथक् अपनी उपाधिमें स्थित हैं। यदि इसे स्वीकार करते हैं, तो ईश्वर सभीके हृदयमें अवस्थित हैं—(बृ॰ उ॰ ३/७) के साथ इसका विरोध होता है।

(ञ) ईश्वरको मायामें प्रतिबिम्बित चैतन्य स्वीकार करनेसे तथा मायाको ब्रह्मकी शक्ति नहीं माननेसे, निःशक्तिक ईश्वर स्वीकार करनेसे उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें ईश्वरके सारे ऐश्वर्य ही असिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि उपनिषद् और वेदान्त आदि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही ईश्वरको षडैश्वर्योंका आधार बताया गया है—'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥' (वि॰ पु॰ ६/५/७४) फिर ये मन्त्र असिद्ध हो पड़ेंगे।

(ट) मायावादियोंका कहना है—"ज्ञानमात्र ब्रह्ममें अविद्याका सम्बन्ध मिथ्या कल्पनामात्र है।" यदि ऐसा है, तो उपर्युक्त मत कदापि सङ्गत नहीं हो सकता। क्योंकि मृगमरीचिकाके कल्पित जलसे कोई भी कार्य प्रयोजित नहीं होता। इसी प्रकार काल्पनिक उपाधिके सम्बन्धसे भी किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब सिद्ध होते नहीं देखा जाता है। इसलिए ब्रह्ममें काल्पनिक अविद्या-सम्बन्धके द्वारा जीव और ईश्वररूप प्रतिबिम्ब कदापि प्रतिपादित नहीं हो सकता।

(ठ) श्रीशङ्कराचार्यजीके मतानुसार ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म ही है—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। इस सिद्धान्तको स्वीकार करनेपर मायावाद स्वतः चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। क्योंकि शङ्कराचार्यने अपने मतकी पुष्टिके लिए वेदोंसे चार प्रादेशिक वाक्योंको ग्रहण किया है और बड़ी चातुरीसे उन्हें वेदोंका महावाक्य बतानेकी चेष्टा की है। वेदोंमें कहीं भी इन चारों वाक्योंको महावाक्य नहीं कहा गया है। बल्कि 'ॐ-कार' को ही वेदोंमें सर्वत्र महावाक्य

कहा गया है। वे चार प्रादेशिक वाक्य ये हैं—अहं ब्रह्माऽस्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तत्त्वमसि श्वेतकेतो। यथार्थतः इन चारों वाक्योंका तात्पर्य ब्रह्म और जीवके परस्पर सेव्य और सेवकका सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध प्रेम है—इस तथ्यको प्रकाश करना है। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' में यह स्पष्टतः बताया गया है कि 'श्वेतकेतो! त्वं तस्य असि' अर्थात् तुम उनके हो। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' में 'इदं' शब्दसे इस जगत्को भी ब्रह्मकी सत्यसङ्कल्प शक्तिसे प्रकाशित ब्रह्म ही माना गया है। क्योंकि ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थोंमें शक्ति और शक्तिमानको अभिन्न माना गया है। यदि इस जगत्का सब कुछ ब्रह्म ही है, फिर यह सारा जगत् स्वप्नकी भाँति मिथ्या कैसे हुआ? इस जगत्में प्रकट होनेवाले वेद, उपनिषद् आदि शास्त्र, शङ्कराचार्य एवं उनकी गुरुपरम्परा—ये सभी मिथ्या हो पड़ते हैं। मिथ्या जगत्के मिथ्या लोगोंके लिए शङ्कराचार्यको उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता थी। इसलिए मायावादियोंके सारे सिद्धान्त अशास्त्रीय और स्वकपोल-कल्पित हैं।

(ङ) शङ्कर मतावलम्बियोंने जगत्को मिथ्या बताया है। किन्तु यदि उनसे यह प्रश्न किया जाय कि तुम्हारा 'जगत्-मिथ्यात्व' मिथ्या है अथवा सत्य? तुमलोग 'मिथ्यात्व' को सत्य भी नहीं कह सकते और मिथ्या भी नहीं कह सकते। यदि कहो कि 'मिथ्यात्व' सत्य है, तो तुम्हारा अद्वैतवाद टिक नहीं सकता। क्योंकि अद्वितीय सत्यस्वरूप ब्रह्मके निकट ही 'जगत्का मिथ्यात्व' नामक एक दूसरा सत्य उपस्थित हो जाता है और ऐसा होनेसे 'एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म'—इस वेदमन्त्रकी हानि होती है। और यदि तुम जगत्के 'मिथ्यात्व' को मिथ्या स्वीकार करते हो, तो जगत्की सत्यता अपने-आप प्रमाणित हो जाती है। अतएव मायावादियोंका यह सिद्धान्त कि जगत् मिथ्या है—अवैदिक और अयौक्तिक है।

(ख) स्वसम्प्रदायकी रक्षा

श्रीलगोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रीकविकर्णपूर एवं गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रमुख गौड़ीय वैष्णव आचार्यों द्वारा उल्लिखित गुरु-परम्पराके द्वारा श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगतजन श्रीगौड़ीय वैष्णव

सम्प्रदायको ब्रह्म-मध्व-गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके रूपमें स्वीकार करते हैं। इसके द्वारा गौड़ीयजन अपनेको श्रीमध्व सम्प्रदायकी शाखाका मानते हैं। श्रील जीव गोस्वामी, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर, जगद्‌गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती आदि वैष्णव आचार्योंने भी इसी मतको ग्रहण किया है। किन्तु आजकल कुछ लोग, श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्तक हैं—इस स्वकपोल कल्पित मतको स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

गुरु-विरोधी श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद एवं श्रीअनन्त वासुदेव तथा कुछ और व्यक्तियोंने विशेष रूपसे श्रीमन्महाप्रभुका सम्प्रदाय श्रीब्रह्म-मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं है, बल्कि अद्वैतवादी सम्प्रदायके अन्तर्गत है, इसे प्रमाणित करनेके लिए जी-जानसे चेष्टा की है। विशेषतः श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद महोदयने स्वलिखित 'आचार्य श्रीमध्व' ग्रन्थमें महाप्रभुके सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत स्वीकार कर भी बादमें अपने पूर्व प्रमाणोंको अप्रामाणिक मानकर अपने 'अचिन्त्यभेदाभेद' नामक ग्रन्थमें श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय प्रमाणित करनेकी असफल चेष्टा की है। विपक्षकी सारी युक्तियाँ उनके ग्रन्थमें दृष्टिगोचर होती हैं।

परमाराध्य पाषण्डगजैकसिंह आचार्य केसरी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने उक्त ग्रन्थमें उल्लिखित सारी युक्तियोंका स्वरचित अचिन्त्यभेदाभेद नामक प्रबन्धमें शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा खण्डन किया है। इनका यह प्रबन्ध श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला) एवं श्रीभागवत पत्रिकाके कई अङ्कोंमें प्रकाशित हुआ है। हम संक्षेपमें कुछ प्रमाणों और युक्तियोंका उल्लेख कर रहे हैं।

(i) श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका मध्वानुगत्य

पहले हम श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद द्वारा उठायी गयी आपत्तियों तथा विपक्षमें दी जानेवाली प्रधान-प्रधान युक्तियोंका उल्लेख कर रहे हैं। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' और 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय' नाटकके अनुसार श्रीचैतन्यदेवने केवलाद्वैतवादी संन्यासी श्रीकेशवभारतीके निकट संन्यास

वेश ग्रहण किया था। उन्होंने स्वयं ही अपनेको मायावादी संन्यासी तो कहा ही है, इसके अतिरिक्त काशीके मायावादी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीने भी उन्हें मायावादी सम्प्रदायका संन्यासी बताया है—

'केशव भारतीर शिष्य ताहे तुमि धन्य॥'
'साम्प्रदायी संन्यासी तुमि रह एई ग्रामे॥'

सार्वभौम भट्टाचार्यने भी ऐसा ही माना है—

'भारती सम्प्रदाय एइ हयेन मध्यम।'
(चै॰ च॰ म॰ ६/७२)

उत्तर—विपक्षकी यह युक्ति सर्वथा निराधार है। संसारको असार एवं दुःखदायी उपलब्धिकर भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवा-प्राप्ति ही जीवोंके लिए सर्वोत्तम श्रेय है। इसलिए कोई सौभाग्यवान व्यक्ति शब्द-ब्रह्ममें पारङ्गत, भगवत्-अनुभूतिसम्पन्न और विषयासक्तिरहित व्यक्तिके निकट दीक्षा एवं शिक्षा ग्रहणकर परमार्थमें प्रवेश करता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु अपनी नर-लीलामें पितृश्राद्धके बहाने गयाधाममें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने प्रेमकल्पतरुके मूल श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य परम रसिक एवं भावुक तथा प्रेमकल्पतरुके अङ्कुरस्वरूप श्रीईश्वरपुरीपादके चरणोंमें अपनेको सर्वथा अर्पित कर दिया—

प्रभु बले गया यात्रा सफल आमार।
यत क्षणे देखिलाङ् चरण तोमार॥
(चै॰ भा॰ आ॰ १५)

संसार-समुद्र हैते उद्धारह मोरे।
एई आमि देह समर्पिलाङ् तोमारे॥

कृष्णपादपद्मेर अमृतरस पान।
आमारे कराओ तुमि एइ चाहि दान॥

आर दिने निभृते ईश्वर पुरी स्थाने।
मन्त्र दीक्षा चाहिलेन मधुर-वचने॥
(चै॰ भा॰ आ॰ १५)

तबे तान स्थाने शिक्षा-गुरु नारायण।
करिलेन दशाक्षर मन्त्रेर ग्रहण॥
(चै॰ भा॰ आ॰ १५)

श्रीचैतन्यभागवतके इस प्रसङ्गके अनुसार श्रीनिमाई पण्डितने श्रीईश्वर पुरीके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेकी लीला की तथा उनसे संसारसे उद्धारकर श्रीकृष्णप्रेम प्राप्तिके लिए दीक्षामन्त्रके लिए प्रार्थना की। श्रीपुरीपादने भी बड़ी प्रीतिपूर्वक उन्हें दशाक्षर मन्त्रके द्वारा दीक्षा दी।

इसके कुछ समय उपरान्त श्रीनिमाई पण्डितने कटवामें अद्वैतवादी संन्यासी श्रीकेशव भारतीसे संन्यासवेश ग्रहण किया। संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् प्रेमोन्मादमें भरकर वृन्दावनके लिए चल पड़े। राढ़ देशमें पहुँचकर प्रेमावेशमें श्रीमद्भागवत (११/२३/५८) के श्लोकका उच्चारण करते हुए कहने लगे—

एतां समस्थाय परात्मनिष्ठा-मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव॥

अर्थात् मैं प्राचीन महर्षियों द्वारा उपासित इस परात्मनिष्ठारूप भिक्षाश्रमका आश्रयकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाके द्वारा इस दुरन्त अज्ञान-सागरको अनायास ही पार कर लूँगा।

प्रभु कहे—साधु एइ भिक्षुक-वचन।
मुकुन्द सेवनव्रत कैल निर्धारण॥

परात्मनिष्ठामात्र वेश-धारण।
मुकुन्दसेवाय हय संसार-तारण॥

सेई वेश कैल एबे वृन्दावन गिया।
कृष्णनिषेवन करि' निभृते वसिया॥
(चै॰ च॰ म॰ ३/७-९)

अर्थात् संन्यासवेश ग्रहणकर महाप्रभु कह रहे हैं कि त्रिदण्डि भिक्षुका यह वचन परम सत्य है, क्योंकि इस वेश ग्रहणके द्वारा श्रीकृष्णके चरणकमलोंका सेवाव्रत निर्धारित होता है। इसके द्वारा भौतिक विषयोंके प्रति निष्ठा परित्यागकर परात्मनिष्ठा (श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें ऐकान्तिक

निष्ठा) ही इस वेश ग्रहणका तात्पर्य है। मैंने इस वेशको ग्रहण तो किया, अब मैं वृन्दावनमें जाकर कृष्णके चरणकमलोंकी सेवा करूँगा।

अतः उक्त पद्यमें 'परात्म-निष्ठामात्र वेशधारण' यह विशेष विचारणीय है। इसके द्वारा भगवद्भक्ति-अनुशीलनके अनुकूल श्रीकेशव भारतीसे केवल वेश ग्रहण किया। उनके अद्वैतवादके किसी विचार अथवा मन्त्रको ग्रहण नहीं किया। बल्कि आजीवन केवलाद्वैतवाद या मायावादके सिद्धान्तोंका खण्डन किया। अतः श्रीईश्वरपुरीपादको ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने यथार्थ गुरुके रूपमें ग्रहण किया है; क्योंकि इनकी शुद्धाभक्तिको आजीवन ग्रहण और उसका प्रचार-प्रसार किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद और श्रीईश्वरपुरीपाद मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत गौड़ीयवैष्णव भी मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। केवल यही नहीं श्रीचैतन्य महाप्रभुके समकालीन उनके लीला परिकर श्रीनित्यान्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, ब्रह्मानन्दपुरी आदि सभी श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी धारामें होनेके कारण श्रीमध्व सम्प्रदायके ही अनुगत हैं।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्योंके प्रति श्रीमन्महाप्रभु सर्वदा गुरुवत् सम्मान करते थे और श्रीईश्वरपुरीके शिष्योंके प्रति सतीर्थ बुद्धि रखते थे। 'गुरु आज्ञा हय अविचारणीया'—इस सिद्धान्तके अनुसार ही उन्होंने गोविन्दको अपने सेवकके रूपमें ग्रहण किया था, जिससे प्रमाणित होता है कि ईश्वर पुरी ही उनके यथार्थ गुरु थे।

(२) विपक्षियोंका यह कथन है कि अद्वैतवादी केशव भारतके निकट संन्यास लेनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभु केवलाद्वैतवादी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं।

युक्तिके लिए उनके इस विचारको स्वीकार करनेपर यह भी कहा जा सकता है कि श्रीमध्वाचार्यने भी केवलाद्वैतवादी अच्युतप्रेक्षसे संन्यास ग्रहण किया था, इसलिए वे भी केवलाद्वैतवादी संन्यासी हैं। अतएव श्रीमन्महाप्रभुजीके मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत होनेमें बाधा ही कहाँ रही, क्योंकि दोनों ही अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके ही स्वीकृत होते हैं। दूसरी बात यह कहना भी युक्तिसङ्गत होगा कि श्रीमध्वाचार्यने शङ्कर सम्प्रदायकी रीति-नीतिके अनुसार एकदण्ड ग्रहण किया था, इसलिए

उनके आदर्शका अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी शङ्कर सम्प्रदायके संन्यासी श्रीकेशव भारतीके निकट एकदण्ड संन्यास ग्रहण किया था। इस प्रकार यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है कि गौड़ीय वैष्णव श्रीमध्वाचार्यके अनुगत हैं।

(३) गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामीने तत्त्वसन्दर्भ और सर्वसंवादिनी आदि ग्रन्थोंमें कहीं भी मध्व सम्प्रदायके साथ गौड़ीय सम्प्रदायके किसी प्रकारके सम्बन्धका उल्लेख नहीं किया है। श्रीबलदेव विद्याभूषणके अपने प्रारम्भिक जीवनमें मध्व सम्प्रदायमें दीक्षित होने तथा बादमें श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें प्रवेश करनेके कारण उनका रुझान स्वाभाविक रूपसे मध्व सम्प्रदायके प्रति था। इसीलिए बलदेव विद्याभूषणने पूर्वाग्रहवशतः खींचातानीकर तत्त्वसन्दर्भकी टीकामें श्रीमध्व सम्प्रदायके नामका उल्लेख किया है तथा स्वरचित प्रमेयरत्नावली ग्रन्थमें लिखित गुरुपरम्परामें श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त बताया है।

उपरोक्त आरोप सर्वथा निराधार एवं स्वकपोल कल्पित हैं। वस्तुतः जीव गोस्वामीने तत्त्ववादके गुरु श्रीमध्वाचार्यके तत्त्ववादको लक्ष्यकर तथा उसे ही अवलम्बनकर तत्त्वसन्दर्भ, भगवत्सन्दर्भ आदिकी रचना की है। इतना ही नहीं, उन्होंने 'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं' (श्रीमद्भा॰ १/२/२१) आदि तत्त्ववादके मूल प्रमाण श्लोकोंकी भी अपने उक्त ग्रन्थमें अवतारणा की है। वैष्णव सम्प्रदायके चारों आचार्योंमें केवल मध्वाचार्य ही तत्त्ववादीके नामसे प्रख्यात हैं। इसीलिए माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके वैष्णवगण तत्त्ववादी हैं, क्योंकि श्रीजीव गोस्वामीने स्वयं तत्त्ववादकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने तत्त्वसन्दर्भके मङ्गलाचरणके तृतीय श्लोकमें अपने गुरु और परमगुरु श्रीरूप एवं श्रीसनातन गोस्वामीको 'तत्त्वज्ञापकौ' अर्थात् तत्त्वज्ञापक आचार्य लिखा है। वैष्णवाचार्यकुलमुकुट श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने भी इस श्लोककी टीकामें उन्हीं की भाँति श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामीको 'तत्त्वविदुत्तमौ' अर्थात् सर्वोत्तम तत्त्वविद् निर्देश किया है। इसके द्वारा यह भी सूचित होता है कि जिस प्रकार श्रीजीव गोस्वामीने श्रीमध्वाचार्यको सम्मान दिया है, उसी प्रकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने जीव गोस्वामीका अनुसरण कर ही मध्वाचार्यको सम्मानित किया है, तथा बलदेव

विद्याभूषणने जीव गोस्वामीकी अपेक्षा श्रीलरूप-सनातन गोस्वामीद्वयको अधिकतर गौरवान्वित किया है।

वस्तुतः श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीगौर-नित्यानन्द प्रभुकी एवं तदनन्तर श्रील जीवगोस्वामीपादकी आम्नाय-धारामें अवस्थित हैं। भागवत-परम्पराके अनुसार वे श्रीनित्यानन्द प्रभुसे नवीं पीढ़ीमें और पाञ्चरात्रिक-परम्पराके अनुसार आठवीं पीढ़ीमें स्वीकृत हैं। ऐतिहासकोंने उनकी पाञ्चरात्रिक-परम्पराको निम्नलिखित रूपसे स्वीकार किया है—श्रीनित्यानन्द, श्रीगौरीदास पण्डित, हृदयचैतन्य, श्यामानन्द प्रभु, रसिकानन्द प्रभु, नयनानन्द प्रभु और श्रीराधादामोदर। श्रीबलदेव प्रभु इन श्रीराधादामोदरके ही दीक्षित शिष्य हैं तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीके सर्वप्रधान शिक्षा-शिष्य हैं। माध्व गुरुपरम्पराकी किसी शाखामें श्रीबलदेव जैसा दिग्विजयी एवं प्रतिभाशाली विद्वान नहीं हुए—ऐसा इतिहासकारोंने उल्लेख किया है। उस समय श्रीबलदेव जैसा नैयायिक, वैदान्तिक, पुराण, इतिहास आदि शास्त्रोंका ज्ञाता भारतके किसी सम्प्रदायमें कहीं भी नहीं था। कुछ दिन उडूपी-स्थित श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सर्वप्रधान मठमें रहकर वेदान्तके श्रीमध्वभाष्यका अध्ययन करनेपर भी श्रीमाध्व सम्प्रदायकी अपेक्षा श्रीमाध्व-गौड़ीय सम्प्रदायका ही उनपर अधिक प्रभाव था। उनके जैसे महामहोपाध्याय जगद्वरेण्य विद्वान व्यक्तिके लिए महाप्रभावशाली माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके वैष्णवाचार्यके श्रीचरणोंका अनुसरण करना युक्तिसङ्गत और स्वाभाविक है। श्रीबलदेवने जिस तरह माध्वभाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया था, उसी प्रकार उन्होंने शङ्कर, रामानुज, भास्कराचार्य, निम्बार्क, बल्लभ आदिके भाष्योंका भी पुंखानुपुंख रूपसे अध्ययन किया था। उन्होंने उक्त दर्शनसमूहका अध्ययन किया था, इसलिए वे उन-उन सम्प्रदायोंके अन्तर्भुक्त हैं, ऐसा कहना अयौक्तिक है। श्रीबलदेव प्रभुने तत्त्वसन्दर्भकी टीका, गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्नम्, प्रमेयरत्नावली आदि अनेक ग्रन्थोंमें गौड़ीय वैष्णवोंके पूर्व-पूर्व आचार्योंकी ऐतिहासिक घटनाओं एवं सिद्धान्तोंको उद्धृतकर विश्वके समस्त दार्शनिकोंको यह समझा दिया है कि श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत है और इस सम्बन्धमें पृथ्वीके प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन एवं आधुनिक समस्त विद्वानोंने एक वाक्यसे श्रीबलदेव

विद्याभूषण प्रभुके सिद्धान्तों और विचारोंको नतमस्तक होकर स्वीकार किया है।

जयपुरकी गलतागद्दीमें श्रीबलदेव विद्याभूषणने ही गौड़ीय वैष्णवोंके साम्प्रदायिक सम्मानकी रक्षा की थी। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने ही उन्हें जयपुर भेजा था, इसमें दो मत नहीं है। उन्होंने वहाँ प्रतिवादी श्री सम्प्रदायके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित किया था। क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने ही स्वयं अपने शिक्षा-शिष्य बलदेव विद्याभूषणको गौड़ीय वैष्णवोंका मध्वानुगत्य प्रमाणित करनेकी प्रेरणा दी थी। श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने अपने दीक्षित-शिष्य श्रीकृष्णदेव सार्वभौमको श्रीबलदेवके साथ उनकी सहायताके लिए भेजा था। यदि श्रीचक्रवर्ती ठाकुर उस समय अतिशय वृद्ध और दुर्बल न हुए होते, तो वे स्वयं इस साम्प्रदायिक विवादकी मीमांसाके लिए अवश्य ही जयपुर पधारते तथा उनका भी वही सिद्धान्त होता जो श्रीबलदेव विद्याभूषणने प्रतिष्ठित किया। श्रीबलदेव विद्याभूषण पहले माध्व सम्प्रदायके आचार्य या शिष्य थे, इसका कोई ठोस प्रामाणिक आधार नहीं है। केवल जनश्रुति अथवा काल्पनिक संवादोंके अतिरिक्त किसीने कोई ठोस प्रमाण नहीं दिया है।

विपक्षका यह आक्षेप कि श्रील जीवगोस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें कहीं भी गौड़ीय वैष्णवोंके माध्व सम्प्रदायके अनुगत होनेका कोई भी उल्लेख नहीं किया है, अत्यन्त हास्यास्पद एवं अज्ञानतामूलक है। श्रील जीव गोस्वामीने तत्त्वसन्दर्भमें स्थान-स्थानपर अपने मध्वानुगत्यका उल्लेख किया है। यहाँ तक कि उन्होंने श्रीमाध्व सम्प्रदायके विजयध्वज, श्रीब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदि आचार्योंका आनुगत्य स्वीकारकर उनके रचित ग्रन्थोंसे अनेक प्रमाण संग्रहकर षट्सन्दर्भकी रचना की है। यद्यपि उन्होंने श्रीरामानुजाचार्य और श्रीधरस्वामीपादके वचनोंको भी अनेक स्थलोंमें उद्धृत किया है, तथापि इन आचार्योंको श्रीगौड़ीय सम्प्रदायका पूर्वाचार्य नहीं माना है। श्रीजीव गोस्वामीने कपिल, पातञ्जल आदि दार्शनिक ऋषियोंके वचनोंको भी भक्तिके अनुकूल होनेपर ग्रहण किया है। परन्तु इसीलिए वे उन सम्प्रदायोंके अन्तर्गत नहीं माने जा सकते। जहाँ शिष्य-प्रशिष्य—सबका मत लेकर सिद्धान्त स्थापित किया जाता

है, केवल उसी स्थलपर सिद्धान्तस्थापकको उस सम्प्रदायके अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है, अन्यत्र नहीं। प्रसङ्गवश श्रील जीव गोस्वामी द्वारा रचित कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

"अत्र च स्व-दर्शितार्थविशेष-प्रामाण्यायैव। न तु श्रीमद्भागवत-वाक्यप्रामाण्याय प्रमाणानि श्रुति-पुराणादि वचनानि यथादृष्टमेवोदाहरणीयानि। क्वचित् स्वयमदृष्टाकराणि च 'तत्त्ववादगुरुणामाधुनिकानां श्रीमच्छङ्कराचार्य-शिष्यतां लब्ध्वाऽपि श्रीभगवत्पक्षपातेन, ततो विच्छिद्य, प्रचुर-प्रचारित वैष्णवमत-विशेषाणां दक्षिणादि-देशविख्यात-'शिष्योपशिष्यभूत'—'विजयध्वज'-'जयतीर्थ'-'ब्रह्मण्यतीर्थ'-व्यासतीर्थादि-वेद-वेदार्थ विद्वद्वराणां 'श्रीमध्वाचार्यचरणानां' भागवत तात्पर्य,-भारततात्पर्य,-ब्रह्मसूत्र-भाष्यादिभ्यः संगृहीतानि। तैश्चैवमुक्तं भारत-तात्पर्ये —(२/१/८)

शास्त्रान्तराणि संजानन् वेदान्तस्य प्रसादतः।
देशे देशे तथा ग्रन्थान् दृष्ट्वा चैव पृथग् विधान्॥

यथा स भगवान् व्यासः साक्षान्नारायणः प्रभुः।
जगाद भारताद्येषु तथा वक्ष्ये तदीक्षया॥ इति।

(तत्त्वसन्दर्भ ९७-९८)

तत्र तदुद्धता श्रुतिश्चतुर्वेदशिखाद्या, पुराणञ्च गारुड़ादीनां सम्प्रति सर्वत्रा-प्रचरद्रूपमंशादिकं; संहिता च महासंहितादिका; तन्त्रञ्च तन्त्रभागवतं ब्रह्मतर्कादिकमिति ज्ञेयम्॥

अर्थात्, मैंने (जीवगोस्वामी) षट्सन्दर्भ ग्रन्थमें अनेक प्रमाण-वचनोंको उद्धृत किया है। इसका कारण अपने प्रदर्शित अर्थ या मतकी प्रामाणिकताका स्थापन करना है—श्रीमद्भागवतके वचनोंकी या सिद्धान्तोंकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके लिए नहीं। क्योंकि श्रीमद्भागवत वेदकी तरह स्वतः-प्रमाण हैं। वे किसी दूसरे प्रमाणोंकी अपेक्षा नहीं रखते। श्रुति-स्मृति और पुराणदि मूल ग्रन्थोंमें मैंने स्वयं जिन-जिन प्रमाण-वचनोंको जिस रूपमें देखा है, ठीक उसी रूपमें उन्हें इस ग्रन्थमें उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त मैं तत्त्वसन्दर्भका लेखक (तत्त्ववादी) कतिपय मूल ग्रन्थोंको स्वयं न देख करके भी (अपने पूर्व-आचार्य) तत्त्ववादके गुरुवर्गमेंसे (श्रीमाधवेन्द्रपुरी जैसे) उन आचार्योंके वाक्योंसे जो आधुनिक

श्रीशङ्कराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण करके (शङ्कर सम्प्रदायके आचार्योंके निकट संन्यास ग्रहण करके) भी अपने भगवत्-पक्षपातित्वके कारण शङ्कर मतवादसे सम्पूर्ण पृथक् रहे हैं, और बहुल प्रचारित विविध वैशिष्ट्यपूर्ण वैष्णव मतोंके आचार्य अर्थात् दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध आनन्दतीर्थके शिष्य-प्रशिष्य रूप विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदि आचार्योंके सिद्धान्तोंसे एवं वेद और वेदार्थके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा रचित 'भागवत-तात्पर्य', 'भारत-तात्पर्य' और 'ब्रह्मसूत्र-भाष्य' आदि ग्रन्थोंसे प्रमाण संग्रह किये हैं।

श्रीमन्मध्वाचार्यने स्वरचित 'भारत-तात्पर्य' में और भी लिखा है—

'उपनिषद् आदि वेदान्तकी कृपासे दूसरे-दूसरे शास्त्रोंका गूढ़ रहस्य ज्ञात होकर देश-देशमें विविध ग्रन्थोंका विवेचनकर तथा साक्षात् नारायण-स्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित महाभारतादिमें वर्णित सिद्धान्तोंके प्रति आदर रखकर ही मैं सिद्धान्त स्थापन करूँगा।'

मैं उक्त श्रीमन्मध्वाचार्य आदिके वचनोंका अनुसरण कर चतुर्वेद-शिखादि श्रुति, पुराण एवं गरुड़ आदिके वचनोंको, आजकल जिनके अंशसमूह सर्वत्र प्रचारित नहीं हैं, संहिता और महासंहिता आदि तन्त्र, तन्त्रभागवत, ब्रह्मतर्कादि अनेक ग्रन्थोंका मूल स्वयं न देख करके उनके द्वारा उद्धृत वचनोंसे ग्रहण करके ही 'तत्त्वसन्दर्भ' की रचना कर रहा हूँ।

श्रीजीव गोस्वामीके उक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उन्होंने श्रीमन्मध्वाचार्यको ही श्रीगौड़ीय सम्प्रदायका एकमात्र पूर्वाचार्य स्वीकार किया है। श्रीरामानुजाचार्य अथवा श्रीधरस्वामीपादके सम्बन्धमें उनका कहीं भी ऐसा स्पष्ट कथन नहीं है। विशेषतः उन्होंने किसी भी दूसरे सम्प्रदायके शिष्य-प्रशिष्य सबका सिद्धान्त ग्रहण नहीं किया है। श्रीरामानुजाचार्यके अनेक शिष्य-प्रशिष्य थे, परन्तु जीव गोस्वामीने उनका कहीं भी नामोल्लेख नहीं किया है। श्रीधरस्वामीके भी अनेक शिष्य थे, परन्तु जीव गोस्वामीने उनका भी कहीं पर नामोल्लेख नहीं किया है। निम्बार्काचार्यके नामोल्लेखकी तो बात ही अलग रहे, उनके अस्तित्वकी गन्ध भी इनके ग्रन्थोंमें नहीं पायी जाती।

(४) श्रील जीवगोस्वामीचरणने स्वरचित सर्वसंवादिनी ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें श्रीमन्महाप्रभुकी वन्दनाके श्लोकमें उनकी महिमाका वर्णन करते हुए उन्हें स्वसम्प्रदाय—सहस्राधिदैव अर्थात् अपने द्वारा प्रवर्तित सहस्र-सहस्र सम्प्रदायोंका नित्य अधिदेवता बताया है। अतः वे किसी अन्य सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त कैसे हो सकते हैं? वे स्वतन्त्र गौड़ीय सम्प्रदायके स्वयं प्रवर्तक हैं।

उक्त आपत्ति अत्यन्त हास्यास्पद है। श्रील जीवगोस्वामी द्वारा सर्वसंवादिनीके मङ्गलाचरणका पूर्ण श्लोक निम्नलिखित है—

दुर्लभ-प्रेम-पीयूषगङ्गा-प्रवाह-सहस्रं
स्वसम्प्रदाय-सहस्राधिदैवम् श्रीकृष्णचैतन्यदेव नामानं श्रीभगवन्तं।

उक्त श्लोकमें श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोदने अथवा विपक्षियोंने 'स्वसम्प्रदाय-सहस्राधिदैवम्' का अर्थ श्रीमन्महाप्रभु द्वारा चलाये गये 'सहस्रों सम्प्रदायोंका अधिदेवता' किया है। यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि श्रीमन्महाप्रभुने हजारों सम्प्रदायोंका प्रवर्तन नहीं किया है। उन्होंने केवल एक ही सम्प्रदाय चलाया है, जिसे श्रीमाध्व-गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय कहते हैं। इसलिए उनका अर्थ सम्पूर्णतः भ्रामक है। श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण महोदयने स्वसम्प्रदाय-सहस्राधिदैवका अर्थ 'स्वकीय सम्प्रदायके परम अधिदेवता' से किया है। यह अर्थ सुसङ्गत है। इसे सभी गौड़ीय वैष्णवोंने स्वीकार किया है। यदि कहो कि श्रीमन्महाप्रभु स्वयं-भगवान् हैं—साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र हैं; उन स्वयं-भगवान् गौरचन्द्र द्वारा किसी दूसरे व्यक्तिको अपना गुरु मानकर उनसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता क्या है? इसका उत्तर है—हाँ। आवश्यकता है, भगवान्‌की नरलीलामें इसकी आवश्यकता है। श्रीरामचन्द्रने वशिष्ठ मुनिसे, श्रीकृष्णने सान्दीपनि मुनिसे, श्रीमन्महाप्रभुने ईश्वरपुरीसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करनेकी लीला दिखलायी है। इन कार्योंसे भगवत्ताको तनिक भी आँच नहीं लगती। स्वयं-भगवान् जगत्‌को शिक्षा देनेके लिए ही ऐसी-ऐसी लीलाएँ करते हैं। अतः श्रीमन्महाप्रभुके किसी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त होनेसे उनकी भगवत्ता या उनके तत्त्वकी कुछ भी हानि होनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

सम्प्रदायका प्रवर्तन भगवान्‌का निजस्व कार्य नहीं है। भगवान्‌के भक्तगण ही सम्प्रदायका प्रवर्तन करते हैं। साम्प्रदायिक ऐतिह्यको देखनेसे

सर्वत्र ही ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि विष्णुशक्ति या विष्णुदासोंके द्वारा ही सम्प्रदाय प्रवर्तनका कार्य साधित हुआ है। यद्यपि सनातनधर्मके मूल सनातन पुरुष श्रीभगवान् हैं—धर्मं तु साक्षात् भगवत्प्रणीतम् (श्रीमद्भा॰ ६/३/१९) 'धर्मो जगन्नाथः साक्षात् नारायणाः' आदि शास्त्र-वचनों द्वारा सनातन धर्म भगवान् द्वारा प्रणीत बताया गया है, तथापि 'अकर्ता चैव कर्ता च कार्यं कारणमेव च' (महाभारत शान्ति पर्व ३४८/७) के द्वारा भगवान्‌का सम्प्रदाय-प्रवर्तन आदि व्यापारमें कोई साक्षात् कर्त्तृत्व नहीं है। अपने शक्त्याविष्ट पुरुषोंके द्वारा ही वे इस कार्यका सम्पादन किया करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो ब्रह्म, रुद्र, सनक और श्री सम्प्रदाय नहीं होकर वसुदेव, सङ्कर्षण एवं नारायण सम्प्रदाय ही होते।

(५) श्रीमन्महाप्रभु दक्षिण भारत भ्रमणके समय उडूपी गये थे। वहाँ तत्त्ववादी किसी आचार्यसे उनका वार्त्तालाप हुआ था। उस समय उन्होंने तत्त्ववादियोंके विचारोंका खण्डन किया था; अतः वे कभी भी उस सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं हो सकते।

श्रीमन्महाप्रभुजीने कालक्रमसे मध्व सम्प्रदायमें प्रविष्ट विकृत तत्त्ववादियोंके विचारोंका ही खण्डन किया था। उन्होंने साक्षात् रूपमें मध्वाचार्यके शुद्धभक्तिके विचारोंका खण्डन नहीं किया था। श्रीचैतन्यचरितामृत (म॰ ९/२७६-२७७) के प्रसङ्गमें देखनेसे ही पाठकवर्ग यह समझ सकते हैं।

प्रभु कहे—कर्मी, ज्ञानी, दुइ भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुइ चिह्न॥

सबे एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये।
सत्यविग्रह ईश्वरे करह निश्चये॥

अर्थात् कर्मी और ज्ञानी भक्तिहीन होते हैं और इन दोनोंका आदर तुम्हारे सम्प्रदायमें देखा जा रहा है। हाँ, तुम्हारे सम्प्रदायमें एक बहुत बड़ा गुण है, वह यह कि भगवान्‌का रूप अथवा श्रीविग्रह स्वीकृत हुआ है। यही नहीं; बल्कि वे श्रीविग्रह स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं। वे तुम्हारे सम्प्रदायमें नृत्य-गोपालके रूपमें आराधित होते हैं।

इससे यह प्रमाणित होता है कि मध्व सम्प्रदायमें कालक्रमसे बादमें जो विकृतियाँ आ गयी थीं, उनका ही श्रीमन्महाप्रभुने खण्डन किया

था। मध्वाचार्यके शुद्धभक्तिके विचारोंको अथवा श्रीमध्वाचार्यके भाष्योंमें प्रदर्शित मूल सिद्धान्तोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि श्रीमध्व और उनके शिष्य-प्रशिष्योंके सिद्धान्तोंको लेकर ही तत्त्वसन्दर्भ, सर्वसंवादिनी आदि ग्रन्थोंका प्रणयन किया गया है। हम प्रसङ्गके अनुसार आगे इसका वर्णन करेंगे कि साधारण कुछ मतभेद ही सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं होता। बल्कि मूल उपास्य-तत्त्वके भेदसे ही सम्प्रदायका भेद होता है।

(६) कुछ लोगोंका यह भी आक्षेप है कि मध्वमतानुसार ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए ब्राह्मणोंको ही केवल मोक्षकी प्राप्ति होती है। भक्तोंमें देवगण ही प्रधान हैं। केवल ब्रह्माका ही विष्णुके साथ सायुज्य होता है। लक्ष्मीजी जीवकोटिमें हैं। गोपियाँ स्वर्गकी अप्सराओंकी कोटिमें हैं। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत वैष्णव आचार्योंके विचारसे मध्वमतके ये विचार शुद्धभक्तिसिद्धान्तोंके विपरीत हैं। ऐसी दशामें श्रीचैतन्यदेव मध्व सम्प्रदायको क्यों ग्रहण करेंगे अथवा उनके अनुगत गौड़ीय सम्प्रदायके आचार्यगण मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त कैसे हो सकते हैं?

श्रीबलदेव विद्याभूषणने अकाट्य युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर विपक्षकी इन सारी युक्तियोंको जयपुरकी गलतागद्दीमें खण्ड-विखण्ड कर दिया था। उन्होंने तत्त्वसन्दर्भकी टीका, गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्नम्, प्रमेयरत्नावली आदि ग्रन्थोंमें आचार्य मध्व और उनके शिष्य-प्रशिष्य विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदि आचार्योंके सुसिद्धान्तोंको उद्धृतकर इन सारे आक्षेपोंका खण्डन किया है और श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त प्रमाणित किया है। उन्होंने उक्त सभामें यह प्रमाणित किया कि मध्वमतके अनुसार लक्ष्मीजी विष्णुकी प्रिय महीषि हैं, वे ज्ञानानन्दात्मक नित्य चिन्मय देहविशिष्ट हैं। विष्णुकी भाँति ये भी गर्भवासके दुःख आदि दोषोंसे सर्वथा रहित हैं, सर्वत्र व्याप्ता हैं, श्रीविष्णुके अनन्त रूपोंके साथ श्रीलक्ष्मीजी भी अनन्त रूपोंमें विहार करती हैं। विष्णुके अवतारके समय लक्ष्मीजी भी अवतीर्ण होकर उस अवतारकी प्रियसङ्गिनीके रूपमें विराजमान रहती हैं तथा विष्णुकी तरह लक्ष्मीजीके भी विभिन्न नाम और रूप हैं।

(श्रीमध्वकृत बृहदारण्यकभाष्य ३/५) पुनः लक्ष्मीदेवी विष्णुकी अधीना सर्वविद्याभिमानिनी और चतुर्मुख ब्रह्मासे भी अनेक गुणा श्रेष्ठ हैं। वे विविध प्रकारके अलङ्कारोंके रूपमें भगवान्‌के अङ्गोंमें विराजमान रहती हैं। विष्णुकी शय्या, आसन, सिंहासन, आभूषण आदि समस्त भोग्य वस्तुएँ लक्ष्म्यात्मक ही हैं। (ब्रह्मसूत्र ४/२/१ सूत्रके अणुव्याख्यानमें धृत श्रीमद्भागवत २/९/१३ श्लोक)

श्रीमध्वने कहीं भी श्रीलक्ष्मीजीको जीवकोटिमें नहीं बताया है। इसी प्रकार केवल ब्राह्मणोंको ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, भक्तोंमें देवगण ही प्रधान हैं, केवल ब्रह्माका ही विष्णुके साथ सायुज्य होता है—ये भी मध्व सम्प्रदायके विचार नहीं हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने मध्व सम्प्रदायको क्यों ग्रहण किया, इस विषयमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने 'श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा' नामक ग्रन्थमें उल्लेख किया है—"श्रीजीवगोस्वामीने आप्त वाक्यकी प्रामाणिकता निश्चितकर पुराणोंकी भी प्रामाणिकता निश्चित की है। अन्तमें श्रीमद्भागवतको सर्वप्रमाण शिरोमणिके रूपमें प्रमाणित किया है। उन्होंने जिस लक्षणके द्वारा श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है, उसी लक्षणके द्वारा उन्होंने ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव तदनन्तर क्रमानुसार विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ, तथा आदिके तत्त्वगुरु श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा प्रमाणित शास्त्रोंका भी प्रामाणिक ग्रन्थोंकी कोटिमें उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्म-माध्व सम्प्रदाय ही श्रीमन्महाप्रभुके आश्रित गौड़ीय वैष्णवोंकी गुरुप्रणाली है। कविकर्णपूरने इसी मतको दृढ़ करते हुए स्वरचित गौरगणोद्देशदीपिका ग्रन्थमें गुरुपरम्पराका वर्णन किया है। वेदान्तसूत्रके भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी इसी प्रणालीको स्वीकार किया है। जो लोग इस प्रणालीको अस्वीकार करते हैं, वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु और उनके चरणानुगत गौड़ीय वैष्णवोंके प्रधान शत्रु हैं, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है।

"निम्बार्क मतमें जो भेदाभेद अर्थात् द्वैताद्वैत मत है, वह अपूर्ण है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके विचारोंको ग्रहणकर वैष्णव-जगत्‌ने भेदाभेद मतकी पूर्णताकी प्राप्ति की है। श्रीमध्वाचार्यके मतमें सच्चिदानन्द विग्रह

स्वीकृत है, वही सच्चिदानन्द विग्रह अचिन्त्यभेदाभेदकी मूल आधारशिला होनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीमध्व सम्प्रदायको ही अङ्गीकार किया है। पूर्व वैष्णवाचार्योंके द्वारा प्रचारित दार्शनिक मतोंमें कुछ-कुछ वैज्ञानिक अपूर्णता रहनेके कारण उनमें परस्पर वैज्ञानिक भेद है। इसी वैज्ञानिक भेदसे सम्प्रदाय-भेद है। साक्षात् परतत्त्व श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने अपनी सर्वज्ञताके बलसे उन सभी मतोंकी असम्पूर्णताको पूर्णकर मध्वके सच्चिदानन्द नित्य विग्रहको, रामानुजाचार्यके शक्ति-सिद्धान्तको, विष्णु स्वामीके शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा तदीय सर्वस्वत्वको और निम्बार्कके नित्य द्वैताद्वैत सिद्धान्तको निर्दोष और पूर्णकर अपना अचिन्त्यभेदाभेदात्मक अत्यन्त विशुद्ध वैज्ञानिक मत जगत्को कृपाकर प्रदान किया है।" (चै॰ म॰ की शिक्षा पृ॰ ११०)

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीमध्वमत स्वीकार करनेका दूसरा कारण भी है। श्रीमध्वमतमें मायावाद या केवलाद्वैतवाद (जो भक्तितत्त्वका सर्वथा विरोधी है) का स्पष्ट रूपसे खण्डन किया गया है। तीसरी बात जिस समय श्रीचैतन्य महाप्रभुने उडूपीमें श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रकाशित एवं पूजित नन्दनन्दन नर्तक-गोपालका दर्शन किया, तो उसे देखकर भावविह्वल हो उठे। उन्होंने दक्षिण भारतमें अपने भ्रमणके समय ऐसा कहीं भी नहीं देखा। इसीलिए वे भावविह्वल होकर नृत्य करने लगे। यह भी उनके मध्वानुगत होनेका प्रबल प्रमाण है। जब श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीगुणराज खाँ द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णविजय' ग्रन्थकी एक पंक्ति— 'नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ'—इस उक्तिपर उनके वंशपरम्पराके हाथों अपनेको सदाके लिए बेच दिया, फिर नन्दनन्दन नर्तक-गोपाल ही जिनके सर्वाराध्य हों, उनके शिष्य-प्रशिष्यकी परम्परामें क्यों नहीं अपनेको बेच देंगे। गौड़ीय सम्प्रदायके मध्वानुगत्यका यह भी विशेष प्रमाण है।

ब्रह्म, जीव और जगत्के सम्बन्धमें श्रीमध्वके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका कुछ-कुछ मतभेद होनेपर भी वह साधारण मतभेद सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं है। उपास्य-तत्त्वके भेद अथवा परतत्त्वकी उत्कर्षताके तारतम्यके आधारपर ही वैष्णवोंमें सम्प्रदाय-भेदकी सृष्टि हुई है। साध्य, साधन और साधक तत्त्वोंके विषयमें भी कुछ-कुछ तारतम्य विद्यमान रहनेपर उसे कहीं-कहीं सम्प्रदाय-तारतम्यका कारण माना जाता है।

वस्तुतः परतत्त्व या उपास्य-तत्त्वकी अनुभूतिका तारतम्य ही सम्प्रदाय-तारतम्यका मूल कारण है। यही कारण था कि तत्त्ववादियोंके साथ विचारमें कुछ मतभेद रहनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुने उसे भूलकर परतत्त्व नर्तक-गोपालकी उपासनाको लक्ष्यकर ही श्रीमध्वाचार्यको सम्प्रदायका मूल आचार्य स्वीकार किया।

(७) सम्प्रदाय-तत्त्वसे अनभिज्ञ कोई-कोई कहते हैं कि मध्व सम्प्रदायके संन्यासी तीर्थ कहलाते हैं, इसलिए पुरी उपाधिधारी श्रीमाधवेन्द्रपुरी या ईश्वरपुरी मध्व सम्प्रदायके संन्यासी नहीं हो सकते। श्रीमाधवेन्द्रपुरी मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं होनेपर श्रीमन्महाप्रभुने मध्व सम्प्रदाय स्वीकार किया है, यह कहना भी आधारहीन है।

वस्तुतः श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी 'पुरी' उपाधि उनके संन्यास ग्रहणका नाम है। श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद श्रीमध्व सम्प्रदायके लक्ष्मीपतितीर्थके दीक्षित शिष्य थे। बादमें 'पुरी' नामधारी किसी संन्यासीसे उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था, जैसे श्रीमन्महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीके निकट दीक्षा ग्रहणकर बादमें श्रीकेशवभारतीके निकट संन्यास ग्रहणकी लीला प्रकाशित की थी। दीक्षा गुरु और संन्यास गुरु एक ही व्यक्ति होंगे ऐसा कोई नियम नहीं है। कहीं-कहीं हो भी सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं। श्रीमध्वाचार्यके जीवनमें भी ऐसा ही देखा जाता है कि पहले वे वैष्णव सम्प्रदायमें विष्णुमन्त्रसे दीक्षित थे। तदनन्तर अद्वैतवादी अच्युतप्रेक्षके निकट संन्यासवेश ग्रहण किया। कुछ दिनोंके पश्चात् अपने संन्यासगुरु अच्युतप्रेक्षको भी अपने प्रभावसे वैष्णवमतमें प्रवेश कराया। उन्होंने संन्यासके पश्चात् भी अद्वैतवादियोंके किसी भी विचारको ग्रहण नहीं किया, बल्कि अद्वैतवादके सभी विचारोंका प्रबल रूपसे खण्डन किया तथा तत्त्ववादकी प्रतिष्ठाकर सर्वत्र ही उसका प्रचार-प्रसार किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनमें भी ऐसा ही देखा जाता है। इसलिए मध्व सम्प्रदायके संन्यासियोंका नाम 'तीर्थ' होनेपर भी उनके सम्प्रदायके गृहस्थ या ब्रह्मचारीकी उपाधि तीर्थ नहीं होती। इसलिए अद्वैत सम्प्रदायके किसी संन्यासीसे वेश ग्रहण करनेके कारण उनकी 'पुरी' उपाधि होगी, यह अयुक्तिसङ्गत नहीं है।

(८) किसी-किसीका कहना है कि श्रीमध्व सम्प्रदाय एवं श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके साध्य और साधन—दोनोंमें भेद है। इसलिए श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं माना जा सकता है।

यह कहना सर्वथा अज्ञानमूलक एवं असत्य है। मध्वमतमें सर्वत्र ही भगवत्-भक्तिको साधन माना गया है। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी भाँति कनिष्ठाधिकारी साधकोंके लिए सर्वप्रथम कृष्णकर्मार्पणकी बात स्वीकृत रहनेपर भी 'भगवत्-परमप्रसाद साधना' अर्थात् शुद्धाभक्तिको ही प्रधान साधनके रूपमें स्थापित किया गया है। श्रीमध्वाचार्यने अपने सूत्र-भाष्य (३/३/५३) में 'भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसि इति माठरश्रुतः' को ग्रहणकर भक्तिकी प्रतिष्ठा की है। सूत्र (३/३/४५) में भी 'वराहे च—गुरुप्रसादो बलवान्न तस्माद्बलवत्तरम्। तथापि श्रवणादिश्च कर्त्तव्यो मोक्षसिद्धये॥' श्रीविष्णुके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्ति रूप मोक्षकी सिद्धिके लिए श्रीगुरुदेवकी कृपा बलवानसे भी बलवत्तर है, तथापि श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका साधन करना भी अत्यन्त आवश्यक है। महाभारत-तात्पर्य-निर्णय ग्रन्थमें सर्वत्र ही भक्तिकी प्रतिष्ठा देखी जाती है—'स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा' (१/१०५) और 'भक्त्यैव तुष्यति हरिः प्रवणत्वमेव' (२/५९) स्थानाभावके कारण अधिक प्रमाण नहीं दिये गये।

इसी प्रकारसे मध्व सम्प्रदायमें भगवत्प्रीति ही साध्य है। यद्यपि श्रीमन्मध्वाचार्यने कहीं-कहीं मोक्षको ही साध्य-स्वीकार किया है, किन्तु उनका वह मोक्ष 'विष्ण्वाङ्घ्रि लाभः मुक्ति' अर्थात् विष्णुके चरणकमलोंकी सेवाकी प्राप्ति ही मोक्ष है। श्रीमध्व सम्प्रदायमें श्रीमद्भागवतोक्त मुक्तिकी परिभाषाको ग्रहण किया गया है—'मुक्तिः हि तु अन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिं' अर्थात् मायाकृत जीवकी स्थूल और लिङ्ग उपाधियोंमें अहं और ममकी बुद्धिसे मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूपसे भगवान्की प्रेममयी सेवामें प्रतिष्ठित होनेका नाम मुक्ति है। अतः इनका मोक्ष भी शङ्कराचार्य द्वारा कथित ब्रह्मसायुज्य न होकर भगवत्-प्रीतिमूलक सेवा है। उन्होंने कहीं भी ब्रह्म और जीवकी एकात्मतारूप सायुज्यको ग्रहण नहीं किया है। उन्होंने केवलाद्वैतवाद-सम्मत सायुज्यमुक्तिका सब प्रकारसे खण्डन

किया है। मध्वमतमें बद्ध और मुक्त दोनों ही अवस्थाओंमें ब्रह्म और जीवमें भेद स्वीकृत होनेके कारण इन्हें भेदवादी कहा गया है—यह सर्वविदित तथ्य है—

अभेदः सर्वरूपेषु जीवभेदः सदैवहि

श्रीमन्मध्वमतमें भेदका प्राधान्य परिलक्षित होनेपर भी अभेदसूचक श्रुतियोंकी कहीं भी अवज्ञा परिलक्षित नहीं होती, क्योंकि अभेदसूचक श्रुतिमन्त्रोंकी वहाँ सङ्गति दिखलायी गयी है अर्थात् प्रकारान्तर रूपसे अचिन्त्यभेदाभेद स्वीकृतिका इङ्गित पाया जाता है। श्रील जीवगोस्वामीने अपने सन्दर्भ-ग्रन्थमें इसे इङ्गित किया है।

वेदान्तसूत्रके अनुसार शक्ति और शक्तिमान—दोनोंको अभिन्न बताया गया है—'शक्ति शक्तिमतोरभेदः।' श्रीमध्वधृत ब्रह्मतर्क वाक्यमें अचिन्त्यभेदाभेदका सङ्केत पाया जाता है—

विशेषस्य विशिष्टस्याप्यभेदस्तद्वदेव तु।
सर्वं चाचिन्त्यशक्तित्वाद् युज्यते परमेश्वरे॥

तच्छक्त्यैव तु जीवेषु चिद्रूपप्रकृतावपि।
भेदाभेदौ तदन्यत्र ह्युभयोरपि दर्शनात्॥

(ब्रह्मतर्क)

अतः साध्य और साधनके विषयमें भी दोनोंमें विशेष भेद नहीं है। जो कुछ भेद-सा प्रतीत होता है, वह परस्परका वैशिष्ट्य है।

तत्त्ववादियोंके उडूपी-स्थित आठों मठोंके अधिपति संन्यासीगण श्रीकृष्णकी व्रजस्थित अष्टनायिकाओंके आनुगत्यमें गोपीभावसे भजन करते हैं। श्रीमध्वाचार्यके चरित्र लेखक श्रीपद्मनाभाचारीने इस प्रसङ्गमें लिखा है—

The monks who take charge of Sri Krishna by rotation, are so many gopees of Brindavan, who moved with and loved Sri Krishna with an indiscrible intensity of feeling, and are taking rebirths now for the privilege of worshiping Him.

(Life and Teachings of Sri Madhvacharya by C.M. Padmanavachari, chapter XII, page 145)

श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें भी श्रीलरूप, सनातन, रघुनाथ, कृष्णदास कविराज गोस्वामी आदिने अपने ग्रन्थोंमें गोपियोंके आनुगत्यमें श्रीकृष्णकी सेवाको ही साध्यके रूपमें निर्णीत किया है।

उडूपीके प्रधान मठमें यशोदानन्दन नृत्य-गोपालकी सेवा आज भी देखी जाती है। श्रीलमध्वाचार्यने अपने द्वादशस्तोत्रम्‌के षष्ठ अध्यायके पञ्चम श्लोकमें अपने इष्टदेव नर्तक-गोपाल श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की है—

देवकिनन्दन नन्दकुमार वृन्दावनाञ्जन गोकुलचन्द्र।
कन्दफलाशन सुन्दररूप नन्दितगोकुल वन्दितपाद॥

इस प्रकार गौड़ीय वैष्णवोंके आदिसे अन्त तकके आचार्योंके विचारोंका विवेचन करनेसे सहज ही इस निष्कर्षपर पहुँचा जा सकता है कि श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त है और यह सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

(९) मध्व सम्प्रदाय भेदवादी है, किन्तु गौड़ीय सम्प्रदाय अचिन्त्यभेदाभेदवादी है। इस प्रकार दोनोंमें विराट् मतभेद है।

हमने पहले ही कहा है कि यद्यपि मध्व सम्प्रदायमें ब्रह्म, जीव और जगत्‌में पाँच प्रकारके भेद स्वीकृत हैं, फिर भी इनमें अचिन्त्यभेदाभेदवादका सङ्केत पाया जाता है। ब्रह्म, जीव और जगत्‌के सम्बन्धमें वेदशास्त्रोंमें भेद और अभेद—दोनों प्रकारके प्रमाण पाये जाते हैं। किन्तु भेद और अभेद होनेपर भी केवल भेदकी ही प्रतीति होती है, अभेदकी नहीं। भक्तिके क्षेत्रमें साधन या सिद्ध—दोनों ही दशाओंमें उपास्य और उपासकका भेद सिद्ध है और यह भेद ही उपासनाका मेरुदण्ड है। अन्यथा उपास्य और उपासकका भेद नहीं रहनेपर उपासना सिद्ध नहीं होगी। अतः श्रीगौड़ीय और मध्व सम्प्रदायमें कुछ साधारण भेद दृष्टिगोचर होनेपर भी वह सम्प्रदाय भेदका कारण नहीं हो सकता। उपास्य—भगवान्, उपासना—भक्ति और प्रयोजन—मोक्ष या भगवत्-सेवा—इन तत्त्वोंके सम्बन्धमें चारों वैष्णव सम्प्रदायके वैष्णवोंमें छोटे-मोटे मतभेद रहनेपर भी मूलतः उन्हें पार्थक्य नहीं कहा जा सकता। वे सभी एक ही सादृश्य धर्मयुक्त हैं। **उपास्य तत्त्वके भेद अथवा परतत्त्वकी उत्कर्षताके**

तारतम्यके आधारपर ही वैष्णवोंमें सम्प्रदाय-भेदकी सृष्टि हुई है। साध्य, साधन और साधक तत्त्वोंके विषयमें भी तारतम्य विद्यमान रहनेपर उसे कहीं-कहीं सम्प्रदाय तारतम्यका कारण माना जाता है। **वस्तुतः परतत्त्व या उपास्य तत्त्वकी अनुभूतिका तारतम्य ही सम्प्रदाय-तारतम्यका मूल कारण है।** जिन्होंने उपास्य तत्त्वकी जितनी ही उत्कर्षता दिखलायी है, वे उतने ही श्रेष्ठ माने गये हैं।

श्रीमुरारि गुप्त महाप्रभुके अन्तरङ्ग परिकरोंमेंसे एक हैं। मुरारिगुप्तको गौड़ीय सम्प्रदायमें हनुमानका अवतार बताया जाता है। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अपेक्षा व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका माधुर्य अधिक बतलाये जानेपर भी मुरारि गुप्त कृष्णके भजनमें आकृष्ट नहीं हुए। उनके उपास्य राम थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु उनकी उपास्य निष्ठाको देखकर बड़े प्रसन्न हुए थे। वे अन्त तक श्रीरामका भजन करते रहे।

श्रीवास पण्डित भी महाप्रभुके मुख्य परिकरोंमेंसे एक हैं। श्रीकविकर्णपूरने इन्हें श्रीनारदका अवतार माना है। इनके उपास्य श्रीलक्ष्मी-नारायण हैं। इन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके उन्नतउज्ज्वलरसके विपरीत लक्ष्मी-नारायणकी उपासनाको श्रेष्ठ माना है, यह सर्वविदित तथ्य है।

कुछ अनभिज्ञ और भ्रान्त व्यक्तियोंका कहना है—श्रीजीव गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके मतानुसार व्रजगोपियोंके पारकीयरसको स्वीकार नहीं किया है, बल्कि उन्होंने स्वकीयरसका अनुमोदन किया है। इसलिए श्रीरूप गोस्वामी और जीव गोस्वामीके विचारोंमें मतभेद है।

वस्तुतः उपर्युक्त अभियोग सम्पूर्णतः निराधार और मिथ्या है। यथार्थता तो यह है कि श्रीजीव गोस्वामीने अपने अनुगत जनोंमेंसे कुछ साधकोंकी रुचि स्वकीयरसकी ओर लक्ष्यकर उनका कल्याण करनेके लिए स्वकीयवादका उल्लेख किया है। उनका आन्तरिक विचार यह था कि अनधिकारी लोग अप्राकृत चमत्कारपूर्ण पारकीय व्रजरसमें प्रवेशकर कहीं व्यभिचार न कर बैठें। अतः उन्हें अप्राकृत व्रजरसका विरोधी मानना अपराधमय विचार है। अतः साधारण मतभेद होनेके कारण उन्हें गौड़ीय सम्प्रदायसे बहिर्भूत नहीं माना गया है।

मायावादी या केवलाद्वैतवादी सम्प्रदायके आचार्योंमें भी परस्पर मतभेद देखा जाता है। इस बातको स्वयं मायावादी लोग भी स्वीकार करते

हैं। परन्तु वैसा होनेपर भी वे सभी अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। किसीने विवर्त्तवाद माना है। किसीने बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद माना है, किसीने अविच्छिन्नवाद माना है, किसीने आभासवाद माना है और एक दूसरेके मतका खण्डन किया है। फिर भी वे एक ही सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं।

इसी प्रकार श्रीमध्व एवं श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें कुछ-कुछ साधारण मतभेद होनेपर भी गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका मध्वानुगत्व मानना सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

(ग) भक्तिविरोधी स्मार्तोंके विचारोंका खण्डन

आचार्यकेसरी श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीने पश्चिम बंगके मेदिनीपुर, चौबीस परगना, वर्द्धमान, कूचबिहार, माथाभांगा तथा आसाममें शुद्धाभक्तिका प्रचार करते हुए बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें अपने प्रवचनोंमें जो भक्तिविहीन स्मार्तोंके विचारोंका खण्डन किया, उसे मैंने अपने नोटबुकमें संग्रह कर रखा था। उसीके आधारपर उनके विचारोंको मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

चतुर्मुख ब्रह्मा, नारद, व्यास, मनु, याज्ञवल्क्य आदि द्वारा प्रकाशित धर्मशास्त्रोंकी जिन विधियोंका अवलम्बनकर जीवित दशामें व्यवहारिक कार्योंका निर्वाह किया जाता है, उन विधि-विधानवाले शास्त्रोंको स्मृति-शास्त्र कहते हैं। इन स्मृति-शास्त्रोंके ज्ञाता एवं अनुयायियोंको स्मार्त कहते हैं। स्मृति-शास्त्र भी दो प्रकारका है—लौकिक एवं पारमार्थिक। जिन स्मृति-शास्त्रोंमें वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत, रामायण आदि शास्त्रोंके मूल प्रतिपाद्य विषय भगवद्भक्तिकी विधियोंका उल्लेख है, वे पारमार्थिक स्मृतियाँ हैं। जिन स्मृतियोंमें शास्त्रोंके निगूढ़ तात्पर्यकी अवहेलनाकर स्थूल सामाजिक श्रृंखलाकी रक्षाके लिए विधियोंका विधान दिया गया है, उन्हें लौकिक स्मृति-शास्त्र कहते हैं। मूलतः स्मृति एक ही है, फिर भी भगवत्-उन्मुख और भगवत्-विमुख ऋषि-मुनियोंके भेदसे स्मृतिका यह विभाजन बादमें हुआ। इस जगत्में स्थूलशरीरमें आत्मबुद्धि रखनेवाले हरिविमुख व्यक्ति ही अधिक हैं। इसलिए ये लोग अपने मनके अनुकूल लौकिक स्मृतियोंके वचनोंका

आदर करनेके कारण स्मार्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। पारमार्थिक स्मृतियोंके वचनोंको माननेवाले लोग अत्यन्त अल्प संख्यामें हैं। ये लोग शुद्ध-स्मार्त या वैष्णव कहलाते हैं।

जीव भगवान्‌को भूलकर जब अपने स्थूल-सूक्ष्म शरीरमें आत्मबुद्धि कर अर्थात् 'मैं' समझकर अपने सुख-भोगके लिए ही नाना प्रकारके कर्मोंका आचरण करता है, तब उसे स्मार्त कहा जाता है। जो जीव भगवान्‌के शरणागत नहीं हैं अथवा भगवद्भक्तोंके अनुगत नहीं हैं, केवलमात्र अपने-अपने दैहिक चेष्टामें ही व्यस्त रहते हैं, उन्हें शासन करनेके लिए स्मृतियोंमें कहे गये नाना प्रकारके विधान दिये गये हैं। जो लोग सदा-सर्वदा अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिए झूठ बोलते हैं, दूसरोंको ठगते हैं, असदाचार परायण होते हैं, चोरी, हिंसा आदि असत्कार्योंमें नियुक्त होते हैं, उनकी इन कुप्रवृत्तियोंको संकुचित करनेके लिए स्मृति-शास्त्रमें बहुत ही कठोर आदेश दिये गये हैं। इसलिए इन स्मृतियोंमें बतलाये गये विधान, आदेश नित्य नहीं हैं, केवल नैमित्तिक हैं अर्थात् किसी विशेष निमित्तका अवलम्बनकर ऐसी विधियाँ प्रस्तुत हुई हैं। किन्तु भगवत्-कार्यसमूह नित्य हैं, क्योंकि समस्त कार्योंके फलभोक्ता भगवान् हैं। समस्त कार्य भगवत्-प्रीतिके उद्देश्यसे ही किये जाते हैं; तथा भविष्यमें भी नित्य काल तक होते रहेंगे। लौकिक स्मृति-शास्त्रोंमें उल्लिखित दायभाग, संस्कार, शुद्धिनिर्णय, प्रायश्चित्त और श्राद्ध आदि कार्य मनुष्योंकी परमायु काल तकके लिए ही होते हैं। साथ ही उनका फलभोक्ता मनुष्य है, भगवान् नहीं। उनमें जीवोंके पारमार्थिक कल्याणके लिए किसी भी विधानका उल्लेख नहीं है। उनके दुर्गोत्सव, एकादशी आदि व्रतनिर्णय, श्राद्ध, संस्कार आदि भी भुक्ति और मुक्तिके लिए होते हैं, इसलिए वे नैमित्तिक हैं।

स्मार्तोंके विपरीत वैष्णवजन भगवान्‌के शरणागत होते हैं, इसलिए उनके सारे कार्य भगवत्सेवाके उद्देश्यसे होते हैं। वे निर्मत्सर, निश्छल होते हैं। क्योंकि वे इस विषयको समझते हैं कि जीवमात्र भगवान्‌का दास है, इसी दृष्टिसे वे सभी जीवोंको सम्मान देते हैं। जगत्‌में मैं बड़ा आदमी बनूँगा और दूसरोंको तुच्छ बनाऊँग। अथवा अनेक याग-यज्ञ, ध्यान, जप, तपस्या, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थोंमें भ्रमण, देव-देवीकी

पूजामें बलि प्रदानकर जगत्में प्रतिष्ठा, परलोकमें स्वर्ग आदि प्राप्त करनेकी उनके हृदयमें तनिक भी इच्छा नहीं होती। अथवा जन्म-मृत्युके चक्रसे उद्धार लाभकर मुक्त हो जाऊँगा—ऐसी आकांक्षा भी उनमें नहीं होती। करोड़ों-करोड़ों जन्मोंमें, यहाँ तक कि नरकमें निवास करनेपर भी आराध्यदेवकी सेवा प्राप्त हो, यही उनके लिए प्रार्थनीय विषय होता है। भगवत्प्रीतिमें ही उनकी प्रीति होती है।

शुद्धभक्तों तथा भक्तिकी महिमा बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके भी अगोचर होती है। श्रीमद्भागवतके छठे-स्कन्धमें ऐसा देखा जाता है कि प्राचीन कालमें अजामिलके विषयमें वैष्णवों (विष्णुपार्षदों) और स्मार्तों (यमदूतों) के मध्य विचार-विमर्श हुआ था। इस प्रसङ्गमें यमराजने स्मार्तों (यमदूतों) को कहा था—और लोगोंकी तो बात ही क्या जैमिनी और मनु आदि बड़े-बड़े कर्मकाण्डी ऋषि-मुनि भी भगवद्भक्तोंकी महिमाको हृदयङ्गम नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि वेदत्रयके मधुपुष्पित (लुभावने) वचनोंके द्वारा मुग्ध रहती है। उनकी विवेक-शक्ति दैवी मायाके द्वारा विमोहित होती है। इसलिए वे आडम्बरपूर्ण, बहुत खर्चीले, स्मृतिमें कहे गये कर्मोंकी ही प्रशंसा करते हैं। वे देहमें 'मैं' और 'मेरा' की आत्मबुद्धिके कारण—'कामुकाः पश्यन्ति कामिनीमयं जगत्' अर्थात् कामुक व्यक्ति जगत्को कामिनीमय दर्शन करता है—इस न्यायके अनुसार शुद्धभक्तोंकी भक्ति-चेष्टामें भी नाना प्रकारका दोषारोपण करते हैं। वे विष्णु और वैष्णवोंके पादोदकमें जलबुद्धि करते हैं। शूद्रोंके स्पर्शसे अपवित्र होनेपर श्रीनारायण (श्रीशालग्राम) को पञ्चगव्य आदिके द्वारा शोधन और संस्कारयोग्य समझते हैं अर्थात् साक्षात् भगवान्में भी स्पर्शदोष सम्भव है तथा गोबर आदिके द्वारा भगवान्को भी पवित्र किया जा सकता है—ऐसी दुर्बुद्धि रखते हैं। यही नहीं वे वैष्णवोंमें जातिबुद्धि रखते हैं, भगवत्प्रसादको दाल-भात समझते हैं, उसमें स्पर्शदोष मानते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि अब्राह्मण-शिष्यके द्वारा पकाये हुए अन्नको ग्रहण करनेसे या भगवान्को निवेदन करनेसे गुरु और भगवान्की भी जाति नष्ट हो जाती है। वे कच्चे चावलका अन्न, त्रिसन्ध्या स्नान, रेशमी धोती धारण आदि कार्योंको ही भगवद्भक्ति मानते हैं। इसके अतिरिक्त वे वैष्णवोंको कर्मफलाबद्ध जीव समझते हैं, नाना देवी-देवताओंकी

पूजा करते हैं, धर्मको समाजके अधीन समझते हैं तथा भगवद्विरोधी समाजको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। यही उनका दुर्दैव है।

गरुड़पुराणमें विष्णुभक्तोंकी महिमाका इस प्रकार वर्णन किया गया है—

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते।
सत्रयाजिसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्त पारगः॥

सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते।
वैष्णवानां सहस्रेभ्यः एकान्त्येको विशिष्यते॥

सहस्र ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक याज्ञिक श्रेष्ठ है, सहस्र याज्ञिकोंकी अपेक्षा एक सर्ववेदान्त शास्त्रज्ञ श्रेष्ठ है, कोटि-कोटि सर्व वेदान्त शास्त्रज्ञोंकी अपेक्षा एक विष्णुभक्त श्रेष्ठ है एवं सहस्र वैष्णवोंकी अपेक्षा एक ऐकान्तिक भक्त श्रेष्ठ है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(श्रीमद्भा० ३/३३/७)

अहो! नाम ग्रहण करनेवाले पुरुषोंकी श्रेष्ठताकी बात और अधिक क्या कहूँ? जिनकी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम उच्चारित होता है, वे चाण्डाल कुलमें उत्पन्न होनेपर भी सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी ब्राह्मणता तो पूर्व-पूर्व जन्मोंमें ही सिद्ध हो चुकी है, क्योंकि जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं उन्होंने ब्राह्मणोंके तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन सब कुछ पहले ही कर लिया है।

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

(ह० भ० वि० १०/९१)

भक्तिहीन चतुर्वेदी ब्राह्मण मुझे प्रिय नहीं है, परन्तु मेरा भक्त—चाण्डाल कुलमें जन्म ग्रहण करनेपर भी मुझे बड़ा प्रिय है। वही दानका

सत्पात्र है तथा उसीकी कृपा ग्रहण करनेके योग्य है। वह निश्चय ही मेरे समान पूज्य है।

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥
शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः।
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥
(श्रीहरिभक्तिसुधोदय ३/११-१२)

सच्चरित्र, सद्भक्तिरूपी दीप्ताग्नि द्वारा जिनके दुर्जातिके पाप क्षय हो चुके हैं, इस प्रकारका चाण्डाल भी पण्डितोंके द्वारा सम्मानित है, किन्तु नास्तिक व्यक्ति वेदज्ञ होनेपर भी सम्मानके योग्य नहीं है। भगवद्भक्तिहीन व्यक्तिकी सद्जाति, शास्त्रज्ञान, जप और तप मृतदेहके अलङ्कारके जैसे किसी कामके नहीं होते, वह तो केवल लोकरञ्जनमात्र है।

विष्णुभक्ति विहीना ये चाण्डालाः परिकीर्त्तिताः।
चाण्डाला अपि ते श्रेष्ठा हरिभक्ति परायणाः॥
(भक्तिसन्दर्भ अ० १०० बृहन्नारदीयपुराण)

विष्णुभक्तिविहीन व्यक्ति चाण्डाल हैं। दूसरी ओर भगवद्भक्तिपरायण चाण्डाल कुलोत्पन्न व्यक्ति भी उत्तम हैं।

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।
विष्णुभक्ति विहीनो यो यतिश्च श्वपचाधिकः॥
(भक्तिसन्दर्भ अ० १०० नारदपुराण)

हे राजन्! चाण्डाल भी विष्णुभक्त होनेपर भक्तिविहीन ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है। यहाँ तक कि जो संन्यासी विष्णुभक्तिविहीन है, वह चाण्डालसे भी निकृष्ट है।

सत्-शास्त्रोंमें दैव-वर्णाश्रमकी ही प्रतिष्ठा देखी जाती है, अदैव वर्णाश्रमकी नहीं। अर्वाचीन अदैव वर्णाश्रममें ब्राह्मणका पुत्र ही ब्राह्मण होता है। चाहे उसमें ब्राह्मणोचित गुण हो या न हो। किन्तु दैव-वर्णाश्रममें ब्राह्मणत्व गुण और कर्मके द्वारा निर्धारित होता है। वैदिक ज्ञान-स्रोतके

प्रथम प्रवक्ता ब्रह्माजीके मुखसे ब्राह्मणकी उत्पत्ति मानी गयी है। ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेपर भी वेदोंका अध्ययन नहीं करनेवाला व्यक्ति कदापि ब्राह्मण नहीं है। ब्रह्माजीके सदाचरणोंको अनुसरण करनेवाला व्यक्ति ही यथार्थ ब्राह्मण है अथवा ब्रह्ममें विचरण करनेवाला, ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाला अथवा ब्रह्मतत्त्वका अनुसन्धान करनेवाला व्यक्ति ही ब्राह्मण है। श्रीगीतामें गुण और कर्मके अनुसार ही वर्णविभाग स्वीकृत हुआ है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम्॥

(गीता ४/१३)

श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा ही कहा गया है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

(श्रीमद्भा॰ ७/११/३५)

अर्थात् मनुष्योंमें वर्णाभिव्यञ्जक जो समस्त लक्षण बताये गये हैं, वे यदि दूसरे वर्णवालोंमें भी मिलें तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये। (केवल जन्मके द्वारा वर्ण निरूपित नहीं होगा।)

स्थितो ब्राह्मण—धर्मेण ब्राह्मणामुपजीवति।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयः स गच्छति।

(महाभारत अनुः शल्यपर्व १४३/८)

नीलकण्ठ ऐसा कहते हैं—यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणाचारमें अवस्थित होकर ब्रह्मवृत्तिके द्वारा दिन व्यतीत करते हैं, तो ऐसे आचरणकारी व्यक्ति ब्राह्मणता प्राप्त कर सकते हैं।

इस विषयमें श्रुतिमें वर्णित सत्यकामजावाल और गौतमके उपाख्यानसे ऐसा ही सिद्ध होता है।

तां होवाच किं गोत्रो नु सौम्यसीति। स होवाच। नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहं अस्मि। अपृच्छं मातरम्। सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे। साहं एतत् न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जवाला तु नामा

अहमस्मि। सत्यकामो नाम त्वमसीति। सोऽहं सत्यकामो जावालोऽस्मि भो इति। तं होवाच—एतद्ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सौम्य आहर। उप त्वा नेष्ये सत्याद्गा इति॥ (छान्दोग्य ४/४/४)

गौतमने उससे कहा—"हे सौम्य (ब्राह्मण)! तुम किस गोत्रके हो?" उन्होंने कहा—"मैं नहीं जानता कि मेरा गोत्र क्या है? मातासे पूछनेपर उन्होंने मुझसे कहा—'मैंने अपने यौवनकालमें सेविकाके रूपमें बहुत-से लोगोंकी सेवा करते-करते तुम्हें पुत्र रूपमें प्राप्त किया है। तुम किस गोत्रके हो, यह मैं नहीं जानती। मेरा नाम जावाल है तथा तुम्हारा नाम सत्यकाम है।' अतः मैं सत्यकाम जावाल हूँ।" गौतम उससे कहने लगे—"वत्स! तुमने जो सत्य कहा है ऐसा अब्राह्मण नहीं बोल सकता। अतः तुम ब्राह्मण हो। हे सौम्य (द्विज)! यज्ञके लिए लकड़ी ले आओ, मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करूँगा, तुम सत्यसे कभी भी मत डिगना।"

भगवदावतार श्रीऋषभदेवके एक सौ पुत्रोंमें इक्यासी वेदज्ञ ब्राह्मण, नौ नवयोगेन्द्र महाभागवत तथा शेष क्षत्रिय हुए जिनमें भरतजी समस्त गुणोंसे अलंकृत सम्राट हुए, जिनके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष हुआ। यहाँ भी एक पिताके अनेक पुत्रोंमें गुण और कर्मके अनुसार वर्णके विभागका उल्लेख है।

(घ) श्रीशालग्राम-सेवामें अधिकार

वैष्णवस्मृतिविद् श्रीलसनातन गोस्वामीने श्रीहरिभक्तिविलासमें किसी-किसी द्वेषपूर्ण, मात्सर्यपूर्ण स्मार्तके कल्पित मन्तव्योंका खण्डन करते हुए लिखा है कि किसी-किसी देहात्मबुद्धिसम्पन्न स्मार्तके विचारसे केवलमात्र ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए पुरुष ही शालग्राम-अर्चनके अधिकारी हैं। स्त्रियोंको भी शूद्र होनेके कारण, चाहे वह ब्राह्मण पत्नी ही क्यों न हो, शालग्राम-अर्चनमें उसका अधिकार नहीं है। किन्तु यह बात सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है। सद्गुरुके द्वारा विष्णुमन्त्रमें दीक्षित किसी भी कुलमें उत्पन्न स्त्री और पुरुष अर्चनके अधिकारी हैं। इस प्रसङ्गमें श्रील सनातन गोस्वामीने अपनी दिग्दर्शिनी टीकामें अनेक शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृतकर अपने विचारकी पुष्टि की है। उन्होंने भागवतीय कपिल-देवहूति संवादसे भगवान् कपिलदेवके वचन (३/३३/६) को उद्धृतकर कहा है—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥

हे भगवन्! कुक्कुरभोजी अन्त्यज कुलमें उत्पन्न व्यक्ति भी यदि आपके नामका श्रवण करे और तत्पश्चात् कीर्त्तन करे, आपको नमस्कार करे एवं आपका स्मरण करे, तो वह भी तत्क्षणात् सोमयागका अधिकारी हो जाता है। जिसने आपका दर्शन प्राप्त किया, उसके विषयमें और अधिक क्या कहूँ?

पुनः पृथु महाराजजीके चरित्रके द्वारा श्रील सनातन गोस्वामीने स्पष्ट किया है कि श्रीपृथु महाराज सप्तद्वीपवती पृथ्वीके एकमात्र शासक होनेपर भी ऋषिकुलोत्पन्न ब्राह्मण और अच्युत गोत्रीय वैष्णवोंके ऊपर उन्होंने अपना शासन-दण्ड कदापि नहीं चलाया। (श्रीमद्भा॰ ४/२१/१२)

उन्होंने पुरञ्जन उपाख्यानके (श्रीमद्भा॰ ४/२६/२४) श्लोकको उद्धृतकर यह दिखलाया है—राजा पुरञ्जनने भी ब्राह्मण और वैष्णवोंके ऊपर कभी भी दण्डका विधान नहीं किया। इसलिए स्त्रियाँ और शूद्र भी सद्गुरुसे विष्णुमन्त्रमें दीक्षित होनेपर श्रीशालग्रामके अर्चनके अधिकारी हैं; क्योंकि ये भी ब्राह्मण और वैष्णवके समान हो जाते हैं। उनके द्वारा पकाया नैवेद्य श्रीभगवान् एवं सद्गुरुको अवश्य ही अर्पण किया जा सकता है। ऐसा नहीं होनेसे प्रत्यवाय होगा।

(ङ) श्रीविग्रहतत्त्व एवं श्रील गुरुपादपद्म

(सन् १९५९ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत श्रीपिछलदा गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह प्रतिष्ठा तथा १९६१ में श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके अवसरपर श्रील आचार्य केसरी द्वारा श्रीविग्रहतत्त्वके सम्बन्धमें प्रदत्त भाषणसे संकलित)

वेद, उपनिषद, पुराण आदि सत्-शास्त्रोंमें सर्वत्र भगवान्के सच्चिदानन्द विग्रहका उल्लेख है तथा साथ ही उन सच्चिदानन्द विग्रहकी पूजाका विधान भी है। कुछ लोग परतत्त्व वस्तुको निराकार, निर्गुण, निःशक्तिक और अव्यय मानते हैं। उनके विचारसे परतत्त्वका कोई विग्रह या रूप नहीं है। उनके अनुसार रूप होनेसे उनका जन्म और मरण स्वीकार करना पड़ेगा और वह सर्वव्यापी नहीं हो सकेगा।

वास्तवमें निराकारवादी साकार चिन्तासे मुक्त नहीं होते। वे साकारको ही केन्द्रकर निराकारकी कल्पना करते हैं। ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं है, उनमें कोई गुण नहीं है, उनमें शक्ति नहीं है—ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं। इस अलीक कल्पनाकी जड़ है—बौद्धोंका शून्यवाद अथवा वेदविरुद्ध नास्तिक्यवाद। फिर भी यह कहना बिल्कुल असङ्गत नहीं होगा कि आधुनिक निराकारवाद बहुत कुछ अंशोंमें ईसाई मतकी ही देन है। आजकल हमारे देशमें जो निराकार ज्ञानवाद प्रचलित है, वह ईसाई धर्मका प्रतीक है—यह कहना गलत नहीं होगा। भारत-सेवाश्रम-संघ, रामकृष्ण-मिशन, अर्वाचीन आर्यसमाज आदिका कर्मवाद सम्पूर्ण रूपसे ईसाई धर्मका ही जूठन है, क्योंकि हमारे देशका प्राचीन कर्मवाद सर्वतोभावेन वेदविधिमूलक है। अतएव गीता या अन्य स्मृति, संहिता आदि ग्रन्थोंमें वैदिक कर्मोंके अतिरिक्त अन्यान्य दूसरे कर्मोंका उल्लेख नहीं है। इन लोगोंने अवैदिक विचारोंके प्रचार द्वारा विश्वका बहुत ही अहित किया है।

यदि ईसाइयोंका निराकारवाद ही सत्य है, तो बड़े-बड़े गिरजाघरोंमें तथा उनके शिखरोंपर तथा उनके भीतर क्रास (cross) चिह्नकी स्थापनाकर वहाँ उपासना क्षेत्रके निर्माणका तात्पर्य क्या है? वे खुले मैदानमें आकाशकी ओर आँखेंकर उपासना क्यों नहीं करते? उनके सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ बाइबिलमें मानव सृष्टिके सम्बन्धमें लिखा है—God created man out of His own image अर्थात् ईश्वरने अपने रूपके समान मनुष्यको बनाया है। इस वाक्यको बाइबिलसे निकाल क्यों नहीं देते, क्योंकि इस वाक्यसे भगवान्‌का मनुष्यके समान रूप माना गया है? इसी प्रकार निराकारवादी मुसलमानोंके कुरानशरीफमें भी बाइबिलसे मिलती जुलती हदीसका एक आयत्त (प्रामाणिक वचन) पाया जाता है, जिसका मुझे जितना स्मरण है, उसे उद्धृत कर रहा हूँ—इन्नालाहा खालाका मेन् सूरातहि। 'सूरत' का अर्थ है—आकार, अर्थात् खुदाने अपने रूपके अनुरूप मनुष्यको बनाया है। अतएव कुरान और बाइबिल दोनों ही ग्रन्थोंके द्वारा परमेश्वरका नराकार होना अनुमोदित है। इस दशामें मुसलमान धर्मावलम्बी निराकारका पक्षपाती होकर भी मस्जिदका

निर्माण क्यों करते हैं। वे भी खुले आकाशमें अथवा समुद्रके भीतर निराकारका ध्यान क्यों नहीं करते?

बौद्ध और जैन धर्मावलम्बी भी निराकारवादी हैं। उनके मन्दिरोंमें बुद्ध और जैनकी बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ रहती हैं। बुद्धगया, काशी, सारनाथ, अजन्ता, एलोरा आदि स्थान इसके साक्षी हैं। माउण्ट आबू, पण्ढरपुर, कलकत्ताका परेशनाथ मन्दिर जैनमूर्त्तिपूजाके निदर्शनस्वरूप हैं। पुरीके प्राचीन इतिहासके अनुसार बौद्धोंने पुरीके श्रीमन्दिरपर आक्रमणकर उसे अपने अधीन कर लिया था। उस समय वे जगन्नाथ देवको 'बुद्धदेव', सुभद्राको 'कीर्ति', बलरामको 'धर्म', और सुदर्शनको 'संघ' मानकर सम्मान प्रदान करते थे। आचार्य शङ्करने बौद्धोंको वहाँसे खदेड़कर जगन्नाथ, बलदेव और सुभद्राकी पुनः प्रतिष्ठा की।

भारतीय वाङ्मयके अनुसार यह निर्विवाद सत्य है कि दृश्यमान जगत्रूप कार्यके कारण परमेश्वर हैं। कार्य और कारण विचार (cause and effect theory) के अनुसार कारण और कार्यमें अविच्छेद्य सम्बन्ध है। कार्यमें जो कुछ दिखायी पड़ता है, कारणमें वह सूक्ष्म रूपमें अवस्थित रहता है। जो कारणमें नहीं है, वह कार्यमें कदापि सम्भव नहीं है। कुछ दार्शनिकोंका यह मत है कि कारणमें किसी वस्तुकी सत्ता नहीं रहनेपर भी कार्यमें उसकी स्थिति सम्भव है। परन्तु इसका एक भी दृष्टान्त सम्भव नहीं है। उपरोक्त दार्शनिक पण्डितोंके विचारमें यह दोष है—बिना कारण ही कार्य स्वीकार करनेसे प्रत्येक वस्तुसे सब कुछ उत्पन्न हो सकता है, जैसे धूलसे तेल, पानीसे घी, बबूलके पेड़से आम फल पाया जा सकता है। परन्तु ऐसा नहीं होता। वास्तविकता यह है कि जिस बीज (कारण) में जिस वस्तुकी सत्ता (potency) होती है, वही वस्तु उससे निकलती है, जैसे सरसों और तिलके बीजोंसे तेल निकलता है, दूधसे घी तथा आमके पेड़से आम प्राप्त होता है।

अतः जगत्रूप कार्यमें जितने भी आकार दीखते हैं, वे सभी कारणरूप ब्रह्ममें अवश्य ही विद्यमान हैं। यदि यह बात नहीं होती, ब्रह्म निराकार होता, तो उससे असंख्य आकारोंसे भरा यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न नहीं होता। अतः कार्य-कारणके विचारसे भगवान्के श्रीविग्रह और उनमें

जगत्‌के असंख्य आकारोंकी सत्ताकी विद्यमानता अवश्य ही प्रमाणित होती है।

यदि निराकार निर्विशेष ब्रह्मसे जगत्‌की उत्पत्ति मानी जाती है, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि nothing से something या everything पैदा होता है, परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि वैदिक शास्त्रोंमें परमेश्वरको पूर्णतत्त्व माना गया है—पूर्णमदः पूर्णमिदं। गीता भी ऐसी ही घोषणा करती है—नासतो विद्यते भावः नाभावो विद्यते सतः अर्थात् असत् वस्तुकी सत्ता नहीं है। अतः पूर्णसत्तावाले भगवान्‌का श्रीविग्रह अवश्य ही सिद्ध है। कहीं-कहीं श्रुतियोंमें ब्रह्मको निराकार निर्गुण, अरूप और निर्विशेष कहा गया है। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ब्रह्म निर्विशेष, निराकार और शून्य है। निर्गुण, निराकार, अरूप और निर्विशेष—ये शब्द मौलिक नहीं हैं, बल्कि आकार, रूप, गुण और विशेष ही मौलिक शब्द हैं। आकारसे निराकार, रूपसे अरूप, गुणसे निर्गुण और विशेषसे निर्विशेष आदि निषेधवाचक शब्द बने हैं। इसलिए परतत्त्व विग्रह रूप, गुणवाले सविशेष तत्त्व हैं। फिर उन्हें श्रुतियोंमें अरूप आदि क्यों कहा गया है? इसका उत्तर शास्त्रोंने ही दिया है—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥

(महाभारत भी॰ प॰ ५/१२)

जो भाव अचिन्त्य है, उसमें तर्क करना उचित नहीं होता। अचिन्त्यका लक्षण यही है कि वह प्रकृतिसे अतीत है।

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां प्रायो वलीयः सविशेषमेव॥

(हयशीर्ष पञ्चरात्र)

अर्थात्, जिन जिन श्रुतियोंने तत्त्व-वस्तुको पहले निर्विशेष बताया है, उन्हीं श्रुतियोंने सविशेष तत्त्वका भी प्रतिपादन किया है, निर्विशेषका नहीं। निर्विशेष और सविशेष—ये दोनों ही भागवान्‌के नित्य गुण हैं, तथापि गम्भीर रूपसे विचार करनेपर सविशेष तत्त्व ही प्रबल हो उठता

है। क्योंकि, जगत्‌में सविशेष तत्त्वका ही अनुभव होता है, निर्विशेष तत्त्वकी अनुभूति नहीं होती।

तात्पर्य यह कि मायासे अतीत होनेके कारण परतत्त्वको अचिन्त्य, अरूप, निराकार आदि कहा गया है। वस्तुतः भगवान् अप्राकृत साकार, अप्राकृत सर्वगुणाधार, अप्राकृत रूपवान और अप्राकृत सविशेष आदि हैं। उनके सच्चिदानन्द रूपमें प्रकृति या मायाकी लेशमात्र भी गन्ध नहीं है। इस तथ्यको समझानेके लिए ही शास्त्रोंमें विशेष स्थानोंमें निराकार आदि कहा गया है।

कुछ लोग जगत् और उसमें स्थित सारे आकारोंको मिथ्या मानते हैं। यदि यह जगत् मिथ्या है, तो ऐसा कहनेवाला व्यक्ति भी मिथ्या और झूठा हुआ। फिर झूठा व्यक्तिका कथन भी झूठा है। इसलिए जगत् सत्य ही सिद्ध होता है। कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि सर्वव्यापीका रूप नहीं हो सकता है। किन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। परमेश्वर सर्वव्यापी होनेके साथ-साथ सर्वशक्तिमान भी हैं। तब अपनी अघटन-घटन-पटीयसी शक्तिके द्वारा क्या वे साकार नहीं हो सकते तथा साकार होकर भी उसी शक्तिके प्रभावसे क्या वे सर्वव्यापी नहीं रह सकते। यदि वे साकार और सर्वव्यापी नहीं हो सकते, तो वे सर्वशक्तिमान रहे कहाँ? अतएव तत्त्वज्ञानके अभाके कारण पूर्वोक्त प्रकारका भ्रम होता है। वे परमेश्वर अज, अनादि होते हुए भी अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे श्रीयशोदाके नित्य पुत्र भी हैं।

निराकार वस्तुकी उपासना कदापि सम्भव नहीं है। कुछ दार्शनिकोंने निराकार ब्रह्मकी उपासनाकी व्यवस्था दी है। उनके विचारसे आकार होनेसे ही वह वस्तु मायिक या हेय हो गयी। अतएव निराकारकी उपासना ही श्रेष्ठ साधन है। किन्तु यह विचार ठीक नहीं। पञ्चभौतिक द्रव्योंमें वायु और आकाश निराकार हैं। फिर भी इन्हें कोई भी अप्राकृत या सच्चिदानन्द स्वीकार नहीं करता। इसलिए निराकारवादियोंका ब्रह्म आकाशकी भाँति निराकार या शून्य होनेसे कदापि पूज्य नहीं हो सकता। श्रुतियोंमें निर्गुण भक्तिके द्वारा मुक्त पुरुष परतत्त्वका सदा दर्शन करते हैं और उनकी उपासना करते हैं, ऐसा कहा गया है—ॐ तद्विष्णोः

परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्। (ऋग्वेद) अर्थात् दिव्य सूरि वैष्णवगण अप्राकृत नेत्रोंसे विष्णुके परमपदका सर्वदा दर्शन करते हैं। इस श्रुतिमन्त्रसे स्पष्ट रूपसे परतत्त्वका रूप सिद्ध होता है।

कुछ लोग यह कहते हैं कि वेदोंमें श्रीविग्रह या श्रीमूर्त्तिका कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः मूर्त्तिपूजा अवैदिक है। किन्तु यह बात भी सर्वथा निराधार और भ्रामक है। वेदोंमें सर्वत्र ही श्रीमूर्त्तिका उल्लेख पाया जाता है। उदाहरणके लिए दो-एक मन्त्र देखिये—

(१) सहस्रस्य प्रतिमा असि (यजुः १५/६५)

अर्थात् हे परमेश्वर आप सहस्रोंकी मूर्त्ति हैं।

(२) अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत (ऋग॰ ६/५/५८/८)

अर्थात् हे बुद्धिमान मनुष्यो! परमेश्वरके श्रीविग्रहका भलीभाँति पूजन करो।

(३) गीतामें भी भगवान्‌की श्रीमूर्त्तिकी अवज्ञा करनेवालोंको मूढ़ और नराधम कहा गया है—

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥
(गीता ९/११)

(४) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म। (तै॰ उ॰ भृ॰ व॰ १)

अर्थात् जिस ब्रह्मसे जगत्‌की सृष्टि होती है (अपादान कारक), जिस ब्रह्म द्वारा जगत् पालित-पोषित होता है (करण कारक) और जिस ब्रह्ममें जगत् प्रलयकालमें प्रविष्ट हो जाता है (अधिकरण कारक)—ये तीन कारक जिस ब्रह्ममें हैं, वह कदापि निराकार नहीं हो सकता। जिस प्रकार पेड़से फल गिरते हैं—इसमें यदि पेड़की सत्ता न मानी जाय तो उससे फल कैसे गिर सकते हैं। अतएव पेड़की सत्ता स्वीकारकर ही उससे फलोंका गिरना सम्भव है।

(५) मायावादियोंका यह कथन है कि वेदान्तसूत्रमें भगवान्‌के रूपका निषेध किया गया है 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्' (३/२/१४) तथा 'न प्रतीकेन हि सः' (४/१/४)। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुने इन्हीं सूत्रोंके

द्वारा ब्रह्मकी श्रीमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की है। 'अरूपवदेव' का अर्थ यह नहीं है कि ब्रह्मका श्रीविग्रह ही नहीं है, बल्कि उससे यह स्पष्ट झलकता है कि ब्रह्मका रूप है। परन्तु अनधिकारियोंके निकट वह अरूपकी भाँति प्रतीत होता है। 'अरूपवत्' में 'वतुप' प्रत्ययका प्रयोग हुआ है। व्याकरणमें 'वतुप' प्रत्ययका प्रयोग तुल्यके अर्थमें किया गया है अर्थात् अरूपवत्=न-रूपवत् अर्थात् रूपकी भाँति नहीं बल्कि स्वयं रूप ही प्रधान है अर्थात् विग्रह है। स्वयं रूप ब्रह्म एवं उनके विग्रहमें कोई अन्तर नहीं है। उसी प्रकार 'न-प्रतीके' अर्थात् श्रीविग्रह ब्रह्मका प्रतीक नहीं है, 'सः'—वह विग्रह स्वयं ब्रह्म है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीजगन्नाथ-दर्शनके समय कहा था—

प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।

श्वेताश्वतर उपनिषद्के निम्नलिखित मन्त्रमें ब्रह्मके प्राकृत रूपका निषेधकर उनके अप्राकृत सच्चिदानन्द रूपकी स्थापना की गयी है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥
(श्वे॰ उ॰ ३/१९)

अर्थात् परब्रह्म प्राकृत हाथसे रहित होनेपर भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करते हैं। प्राकृत पैरोंसे रहित होनेपर भी बड़े वेगसे सर्वत्र गमनागमन करते हैं। प्राकृत नेत्रोंसे रहित होनेपर भी सब कुछ देखते हैं इत्यादि। तात्पर्य यह है कि उनका रूप प्राकृत नहीं बल्कि अप्राकृत सच्चिदानन्द है—ईश्वरः परमः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रहः।

सर्वप्रमाणशिरोमणि श्रीमद्भागवत भी श्रीनन्दनन्दनको परमानन्दपूर्ण सनातन ब्रह्म घोषित करते हैं—'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्' (श्रीमद्भा॰ १०/१४/३२)।

जो वस्तु ही नहीं है उसमें अस्ति (सत्ता) अर्थमें 'वतुप्' प्रत्ययका प्रयोग कभी नहीं किया जाता। आत्यन्तिक अभाव-जातीय वस्तुओंका अस्तित्व स्वीकृत नहीं होता। जो वस्तु है ही नहीं, वह है—ऐसा नहीं

कहा जा सकता। हम इसे पहले ही 'नासतो विद्यते भावो'—गीताके इस प्रमाणके अनुसार सिद्ध कर चुके हैं। श्रीमद्भागवतके रचयिता वेदव्यास ही वेदान्तसूत्रके रचयिता हैं, अतएव इनके विचारोंमें कभी भी विरोध नहीं हो सकता। अतः 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं', 'नन्दगोप व्रजौकसाम् यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्', 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' आदि श्लोकोंके प्रकाशक सूत्रोंका निराकार सूचक अर्थ करना सर्वथा अनुचित है। इसके अतिरिक्त (क) अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां (३/२/२४), (ख) प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् (३/२/२५), (ग) प्रकाशवच्चावैशेष्यात् (३/२/२५) आदि ब्रह्मसूत्रोंके द्वारा भी ब्रह्मका श्रीविग्रह सिद्ध होता है। 'अरूपवदेव प्रधानत्वात्' का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मरूप या विग्रहविशिष्ट नहीं होते, वे स्वयं ही विग्रह हैं अतएव अरूपवत्—न रूपवत् कहा गया है। 'एव'—कार विरुद्ध युक्तियोंके निराशके लिए है। ब्रह्मरूप ही प्रधान है। उनके स्वयंरूप या श्रीविग्रहमें कोई भेद नहीं है। यदि कहो सर्वव्यापकका मध्यमाकार रूप कैसे स्वीकृत हो सकता है, तो उत्तर है—हाँ, हो सकता है—अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाम्यां—अर्थात् सर्वव्यापक, अव्यक्त होनेपर भी आराधनाके द्वारा उनका दर्शन होता है। श्रीमद्भागवत भी ऐसा कहते हैं—भक्त्याहमेकया ग्राह्यः अर्थात् एकमात्र भक्तिके द्वारा ही मैं ग्राह्य हूँ। अगले सूत्रमें और भी स्पष्ट किया गया है—'न प्रतीकेन हि सः' अर्थात् प्रतीक अथवा प्रतिमा पूजनसे सिद्धि नहीं होती अथवा भगवत्-प्राप्ति नहीं होती। प्रतिमाके अन्दर भगवान्‌की स्थिति आरोपितकर जो पूजन होता है, वह पूजन ठीक नहीं है। आचार्य शङ्करका इस विषयमें यह कथन है कि "साधकोंके कल्याणके लिए अरूप ब्रह्मके रूपोंकी कल्पना की गयी है। उन कल्पित रूपोंका पूजन करनेसे चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धि होनेपर निराकार ब्रह्मका साधन सहज होता है।" परन्तु काल्पनिक रूपोंमें—प्रतिमामें भगवान्‌का पूजन ठीक नहीं है। सच्चिदानन्दमूर्त्ति स्वयंरूप हैं। उन्हींका पूजन होना चाहिये। उपर्युक्त वेदान्तसूत्रमें यही बात कही गयी है। यहाँ विचार यह है कि क्या काल्पनिक रूपमें भगवान्‌का पूजन सिद्ध होगा? उत्तर है—'न हि' अर्थात् जोर देकर कहते हैं नहीं, तब किससे होगा—'सः' अर्थात् स्वयंरूप

भगवान्के आत्मरूप (श्रीविग्रह) का पूजन करनेसे भगवान्का साक्षात्कार होगा। इसीलिए श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

(क) ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार।
(चै० च० म० ६/१६६)

(ख) चिदानन्द कृष्ण विग्रह मायिक करि माने।
एई बड़ पाप सत्य चैतन्यवाणी॥
(चै० च० म० २५/३५)

(ग) प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।
(चै० च० म० ५/९६)

अतएव भगवान्का श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार होता है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रह ही सच्चिदानन्दाकार है। बद्ध जीवों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्ति प्रतिमा कहलाती है। वैसी प्रतिमा-पूजनका शास्त्रोंमें निषेध है। जिस प्रकार—Certified copy of a certified copy is no evidence—उसी प्रकार महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रहकी नकल प्रतिमा भी सच्चिदानन्द श्रीविग्रह नहीं है। श्रीविग्रहका सेवन करनेसे जीवोंका अशेष कल्याण होता है, शास्त्रोंमें सर्वत्र ऐसा उल्लेख है।

(च) 'जितने मत उतने पथ' का खण्डन

परमाराध्यतम आचार्यकेसरी श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने सन् १९५० ई० में पश्चिमी बङ्गालके मेदिनीपुर जिलेके बहुत-से गाँवोंमें एक तूफानी प्रचारयात्रा की थी। उस समय उन्होंने तीस दिनोंके भीतर लगभग चालीस विभिन्न धर्मसभाओंमें श्रीसनातनधर्म—श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध भक्तिधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया था। मेदिनीपुरके गेहूँखली नामक कस्बेमें एक विराट धर्मसभा हुई थी। अपने सतीर्थ परम पूज्यपाद नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके आह्वानपर श्रीश्रीलगुरुपादपद्म वहाँ पधारे थे। रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित उच्च विद्यालयके प्रांगणमें विराट सभाका आयोजन किया

गया था। उस सभामें विद्यालयके प्रधानाध्यापक, अन्यान्य अध्यापक तथा आसपासके शिक्षित, गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। लगभग १५,००० श्रोताओंकी उपस्थितिमें श्रीलगुरुपादपद्मने बड़ी ओजस्वी भाषामें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धाभक्तिके सिद्धान्तको स्थापित किया। श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। वे समस्त जीवोंके चरम उपास्य तत्त्व हैं। जीव उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं। स्वरूपतः जीवमात्र ही भगवान्‌के सेवक हैं। भगवान्‌के प्रति अपने इस सेवकभावको भूलनेके कारण जीवकी अधोगति हुई है। इन सिद्धान्तोंका शास्त्रीय प्रमाण एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा प्रतिपादन कर रहे थे। भाषणके बीचमें ही कुछ व्यक्तियोंने प्रश्न किया, "हमने पढ़ा और सुना है कि जीवमात्र ही शिव है। शिव, दुर्गा, काली, गणेश—ये सभी एक ही भगवान्‌के अलग-अलग नाम और स्वरूप हैं। जो किसी भी मतको लेकर चले, वह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है (यत मत तत पथ)। जिस किसी देवताकी उपासना की जाय, उससे भगवत्प्राप्ति ही होती है। जैसे आकाशमें ऊपर जानेपर सभी चीजें बराबर दिखायी देती हैं, विभिन्न डाकघरमें पत्र डालनेपर भी वे एक ही स्थानपर पहुँच जाते हैं। पैदल, कार, रेल या किसी भी वाहन द्वारा दिल्ली पहुँचा जा सकता है, वैसे ही परमार्थकी उच्च भूमिकामें उपस्थित होनेपर साधक सबको एक समान देखता है, किसी भी उपासनासे एक ही भगवान्‌को पाया जाता है। किन्तु आप केवल कृष्णको ही एकमात्र उपास्य और उनके प्रति भक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार करते हैं।"

इस प्रश्नको सुनकर उस धर्मसभामें जो उनका ओजस्वी भाषण हुआ उसे सुनकर सारे श्रोता मुग्ध हो गये। प्रश्न करनेवाले सम्पूर्ण रूपसे निरुत्तर हो गये। उक्त धर्मसभामें उनके प्रदत्त भाषणके कुछ अंशोंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीलआचार्यकेसरीने बड़ी गम्भीरताके साथ अपने भाषणमें कहा कि प्रतिपक्ष द्वारा उत्थापित विचार ईसाई मतकी जूठन, अवैदिक एवं अशास्त्रीय हैं। सबसे पहले 'यत मत तत पथ' अर्थात् सभी मतवाद एक ही भगवान्‌के पानेके विभिन्न पथ हैं—इसपर विचार करें। यह विचार सर्वथा भ्रामक और अशास्त्रीय है। यदि हम इस विचारको ग्रहण करते

हैं, तो चोर, डकैत, व्यभिचारी, साधु, असाधु—सबकी विचारधाराको समान मानना पड़ेगा। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—इन त्रिविधसाधनोंका अवलम्बन करनेवाले सभी एक ही फलको ही प्राप्त करेंगे—इसे कोई भी विचारक स्वीकार नहीं कर सकता। माँस, मछली, अण्डे आदि खानेवाले हिंसापरायण व्यक्ति तथा सात्त्विक और निर्गुण पदार्थोंका सेवन करनेवाले शुद्ध सात्त्विक विचारधाराके धर्मात्मा व्यक्तियोंकी गति एक ही प्रकारकी होती है, इसे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता। श्रीमद्भागवत, गीता आदि शास्त्रोंमें सभी धर्मों या पथोंको एक समान नहीं बताया गया है। श्रीमद्भागवतमें अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णकी अहैतुकी और तैलधारावत् अविच्छिन्न भक्तिको ही जीवमात्रका परम धर्म बताया गया है।

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति॥

(श्रीमद्भा॰ १/२/६)

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमोनिर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवापरैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(श्रीमद्भा॰ १/१/२)

अर्थात् भगवद्भक्तिके अतिरिक्त धर्मके नामपर चलनेवाले सभी मतवाद असार एवं पाखण्ड हैं। वे कृष्णका साक्षात्कार नहीं करा सकते, केवल श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति द्वारा ही भगवान्‌को प्रसन्न किया जा सकता है। गीतामें भी कहा गया है कि देवताओंका भजन करनेवाले देवलोकको, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितृलोकको और भूतोंका पूजन करनेवाले भूतलोकको प्राप्त करते हैं। इन लौकिक उपासनाओंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होती। केवल शुद्धभक्तिके द्वारा ही कृष्णलोकमें कृष्णकी सेवा पायी जा सकती है। यदि ये सभी उपासनाएँ एक समान होतीं, तो गीतामें इस प्रकारसे नहीं कहा जाता—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
(गीता ९/२५)

अर्थात्, देवपूजकगण देवलोकको, पितृपूजकगण पितृलोकको, भूतपूजकगण भूतलोकको प्राप्त होते हैं, किन्तु मेरी पूजा करनेवाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥
(गीता ७/२०)

अर्थात् आर्त्ति आदि दूर करनेकी कामनाओं द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है, वे उन-उन देवताओंकी आराधनाके उपयुक्त नियमोंका अवलम्बनकर अपने स्वभावके वशीभूत होकर देवताओंको भजते हैं।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
(गीता ७/२३)

किन्तु, उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नश्वर है। देवपूजकगण देवताओंको प्राप्त होते हैं तथा मेरे भक्तगण मुझे ही प्राप्त होते हैं।

कृष्णको छोड़कर अन्यान्य देवताओंकी उपासनाको अविधिपूर्वक कहा गया है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(गीता ९/२३)

कुछ लोगोंका यह कथन कि विष्णु, गणेश, दुर्गा, काली, शिव—ये सभी एक ही हैं, स्वरूपगत कोई भेद नहीं, नाममात्रका भेद है। इन सबकी उपासनाका एक ही फल है। किन्तु यह कथन शास्त्र-सम्मत नहीं है। क्योंकि (ऋग्वेद १/२२/२०)—

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विप्रन्यवो जागृवांसः समिंधते विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

अर्थात्, जिस प्रकार आँखें आकाशमें अबाध रूपसे सूर्यको देखनेमें समर्थ हैं, मुक्त महापुरुष उसी प्रकार परमेश्वर विष्णुके परमपदको सर्वदा देखा करते हैं। भ्रम, प्रमादादि दोषवर्जित भगवन्निष्ठ साधुजन विष्णुका जो परमपद है, उसे सर्वत्र प्रकाशित (प्रचारित) करते हैं।

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥
(श्वे॰ उ॰ ६/८)

अर्थात्, उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्त पादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होतीं। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिए उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वरकी अलौकिकी शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति या सम्वित्-शक्ति, सत्-शक्ति या सन्धिनीशक्ति और आनन्दशक्ति या ह्लादिनीशक्ति कहते हैं।

गीता (७/७) में भी कहा गया है—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

तथा गीता (१५/१५) में

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

इन सब प्रमाणोंके द्वारा यह सिद्ध होता है कि विष्णुतत्त्व ही परतत्त्व है। शास्त्रोंमें कहीं भी गणेश, काली, दुर्गा, सूर्य आदि देवताओंको विष्णुतत्त्वके बराबर नहीं बताया गया। बल्कि इसके विपरीत इन देवताओंको नारायणके समान माननेवालोंको पाखण्डी बताया गया है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥

गीतामें तो यहाँ तक कहा गया है कि सकाम कर्मी, तपस्वी और ज्ञानियोंसे योगी सब प्रकारसे श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तुम योगी बनो। किन्तु इन योगियोंमें भी जो योगी श्रद्धापूर्वक मेरे परायण होकर

मुझ वासुदेवका भजन करते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ योगी हैं, यही मेरा मत है। इसलिए तुम ऐसे ही योगी बनो—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६/४६-४७)

भक्तिके बिना अन्य उपायोंसे भगवान् सुलभ नहीं होते। श्रीकृष्णने स्वयं कहा है योगसाधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अनुष्ठान, जप, तप, पाठ और त्याग मुझे प्राप्त करानेमें समर्थ नहीं हैं। अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति ही मुझे प्राप्त करानेमें एकमात्र समर्थ है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

(श्रीमद्भा॰ ११/१४/२०)

श्रुतियोंमें भी ऐसा ही कहा गया है—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।

इसलिए श्रीमद्भगवद्गीतामें शारीरिक और मानसिक सारे अनित्य धर्मोंको त्यागकर भगवान्‌के शरणागत होनेका उपदेश दिया गया है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इस प्रकार प्रामाणिक शास्त्रोंमें कहीं भी समस्त मत, पथ या लौकिक धर्म एक ही हैं—ऐसा नहीं बताया गया है। तत्त्वानभिज्ञ लोग 'यत मत तत पथ' इस भ्रान्त मतका प्रचार करते हैं।

विमानके द्वारा अत्यन्त ऊँचाईपर जानेपर नीचेके पेड़-पौधे ऊँचे-नीचे स्थल—सभी समतल दीखते हैं। यह देखनेवालेकी समुचित दृष्टिशक्तिके अभावका परिचय है, क्योंकि उनकी आँखें दूरगत वस्तुको समुचित प्रकारसे देख नहीं पातीं। इसी प्रकार तत्त्वज्ञानके अभावके कारण केवल अज्ञानी पुरुष ही अपनी ससीम भौतिक दृष्टिसे भले-बुरे सभी मतोंको एक समान देखते हैं, यह उनकी अज्ञानताका ही परिचय है। उनकी

अज्ञानमयी दृष्टिके देखनेमात्रसे ही कुकर्मी, सुकर्मी, निष्कामकर्मी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी—ये सभी एक नहीं हो जायेंगे। यदि ऐसा ही होता तो गीता आदि शास्त्रोंमें इस मतका खण्डन नहीं किया गया होता। बैलगाड़ी, ताँगा, रेल और कारके द्वारा एक ही गन्तव्य स्थलपर पहुँचा जा सकता है, सभी मार्गोंसे एक स्थानपर पहुँचा जा सकता है—ऐसा अज्ञानी या मूर्ख व्यक्ति ही कह सकता है। एक बैलगाड़ी, ताँगा या कारके द्वारा समुद्रके बीचमें स्थित इंग्लेंड, आस्ट्रेलिया, हवाई आदि देशोंमें या टापुओंपर नहीं पहुँचा जा सकता, यह सर्वविदित तथ्य है। एक ही रेलगाड़ीमें बैठनेवाले व्यक्ति भी अलग-अलग स्थानोंका टिकट लेकर एक ही गन्तव्य स्थलपर नहीं पहुँच सकते। उसी प्रकार सांसारिक भोग, मोक्ष और भगवत्प्रेम आदि विविध उद्देश्योंवाले साधक भी एक ही भगवान्‌की प्रेममयी सेवाको नहीं प्राप्त कर सकते। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' श्लोकमें कृष्णने यह अच्छी प्रकारसे बताया है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि विभिन्न डाकघरोंमें पत्र देनेसे सारे पत्र एक ही गन्तव्य स्थलपर पहुँचते हैं, इसी प्रकार सारी उपासनाएँ एक ही परमेश्वरको प्राप्त होती हैं। किन्तु यह तर्क भी अज्ञानप्रसूत और नितान्त कपोल-कल्पित है। यदि समस्त पत्रोंका पता एक हो, तो विभिन्न डाकघरोंमें डालनेसे भी वे एक जगह पहुँचेंगे, यह बात तो ठीक है। किन्तु यदि पता अलग-अलग हो, तो वे अलग-अलग स्थानोंमें पहुँचेंगे। इसी प्रकार यदि सारी उपासनाएँ अनन्य रूपसे एक ही स्वयंभगवान् श्रीकृष्णके लिए हों, ये सारी उपासनाएँ शुद्ध होकर भक्तिमें पर्यवसित होकर भगवत्प्राप्ति करा सकती हैं। गीतामें यह क्रम सुन्दर रूपमें दिखाया गया है।

आजकल दरिद्रनारायणकी सेवा, जनता-जनार्दन, जीव ही शिव है—ऐसी बहुत-सी सिद्धान्त-विरुद्ध बातें सुनी जाती हैं। सत्-शास्त्रोंमें इसका कहीं भी अनुमोदन नहीं देखा जाता है। यदि दरिद्र ही नारायण है, तो पूर्व जन्ममें सुकर्मोंको करनेवाले धनी-मानी, सज्जन, शिक्षित एवं सम्भ्रान्त व्यक्ति क्यों नहीं नारायण हो सकते? किन्तु ऐसा माननेवाले सभी कुसंस्कारग्रस्त, नास्तिक व्यक्ति हैं। इनका शुद्ध आत्मधर्मसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आज तक कोई भी जीव कभी भी भगवान्

नहीं हो सका। आत्मा और परमात्मामें स्वरूपगत पार्थक्य है। जीवात्मा अणु, मायावश और अपने कर्मोंका फल भोग करनेके लिए विवश है। परमात्मा सारे विश्वके स्रष्टा, नियन्ता और पालक हैं। वे मायापति हैं। इन दोनोंको कैसे एक कहा जा सकता है? अतः ऐसे विचारोंवाले सर्वथा भ्रान्त और कुमतवादी हैं। जीव ही ज्ञानप्राप्तिके बाद मुक्त होकर शिव बन जाता है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे लोग नास्तिक हैं। जो अब तक महादेव शङ्करको पिता और भवानीको माता कह रहे थे, वे मुक्त होकर शिव होनेपर भवानीको पत्नी रूपमें देखेंगे। इसीलिए भवानी दुर्गाके रूपमें ऐसे दुष्टोंका गला काटकर उनके मुण्डमालाको धारण करती हैं। शास्त्रोंमें इसके अनेकों प्रमाण हैं।

श्रील आचार्यकेसरीके इस ओजस्वी भाषणको सुनकर कुछ उपस्थित अध्यापकोंने श्रीगुरुदेवके सामने एक प्रस्ताव किया कि हमलोग वेलूर मठस्थित रामकृष्णमिशनके प्रधान स्वामीजीको यहाँ बुलाकर लायेंगे और विशेष सभामें शास्त्रार्थके द्वारा इस विषयकी मीमांसाकी जायेगी। हमलोग कल ही उन्हें बुला रहे हैं। आचार्यकेसरीने उनलोगोंसे कहा कि मेरा नाम सुनकर वे कदापि नहीं आएँगे। श्रीगुरुदेवने प्रचार पार्टीके साथ तीन-चार दिनों तक रामकृष्ण मिशनके संन्यासियोंके लिए प्रतीक्षा की। किन्तु अन्तमें यह पता चला कि वे लोग किसी भी मूल्यपर शास्त्रार्थके लिए तैयार नहीं हैं।

(छ) सहजिया-मतका खण्डन

जो अप्राकृत भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंको प्राकृत (स्त्री-पुरुषके व्यवहार) जैसा देखते और समझते हैं, प्राकृत साधनके द्वारा अप्राकृत तत्त्वकी प्राप्ति होती है—ऐसी जिनकी धारणा होती है, उन्हें प्राकृत सहजिया कहते हैं। दूसरे सरल-सहज शब्दोंमें इसे इस प्रकारसे कहा जा सकता है कि जो अप्राकृत रसाचार्य श्रीरूप गोस्वामीकी शिक्षाओंके विपरीत जड़-स्थूल पुरुष-शरीरको ही स्त्रीवेशमें सजाकर अपनेको गोपी कल्पनाकर इस काल्पनिक गोपीभावसे भजन करनेका स्वाङ्ग करते हैं, उन्हें प्राकृत सहजिया कहा जाता है। ये लोग हृदयमें पुरुषभावका पोषणकर बाहरसे पुरुष-शरीरको छिपाकर सिरपर स्त्रियों जैसी लम्बी चोटी, लम्बा

घूँघट, नाकमें नथ, साड़ी या लँहगा, चोली, हाथोंमें चूड़ियाँ, कमरमें करधनी, पैरोंमें पाजेब आदि स्वर्णालङ्कार धारण करते हैं। ललिता, विशाखा आदिके रूपमें अपना परिचय देते हैं, अपने आश्रमोंमें युवती स्त्रियोंको सेवादासीके रूपमें रखते हैं, उनसे अनुचित-सम्बन्ध रखकर परकीया भजनकी आड़में स्त्रीसङ्ग करते हैं—ऐसे उनके शास्त्र-विरुद्ध आचरण होते हैं।

जो लोग पुरुष-शरीरको स्त्रीवेशमें तो नहीं सजाते, परन्तु उनके मतका समर्थन करते हैं, अधिकार-अनधिकारका विचार किये बिना हाट-बाजारमें सर्वत्र ही सर्वसाधारणके निकट अङ्ग-भङ्गीके साथ राई-कानू (राधा-कृष्ण) के क्रीड़ा-रहस्यका गान करते हैं, नखड़ोंके साथ रासलीलाका पाठ-प्रवचन एवं अनुकरण करते हैं, जिसे सुनकर लम्पट, दुराचारी लोग अप्राकृत रसको घृणित जड़-रस समझते हैं, जो लोग यह समझते हैं कि आकुमार ब्रह्मचारी श्रीजीव गोस्वामी, श्रील नरोत्तम ठाकुर घर-गृहस्थीमें प्रवेश न करनेके कारण कभी रसिक नहीं हो सके, अतः इस अप्राकृत रसकी उपलब्धिके लिए अवैध परकीय स्त्री (उपपत्नी) का सङ्ग नितान्त आवश्यक है, ऐसे लोग भी प्राकृत सहजियाकी कोटिमें ही आते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु बाहरसे पुरुष थे। अन्तरमें कृष्ण-सेविका गोपीभावका पोषण करते थे। परन्तु ये लोग इसके ठीक विपरीत हृदयमें पुरुषभावका पोषण करते हैं तथा बाह्य अङ्गोंमें पुरुषभावको छिपाकर गोपीवेश बनानेकी चेष्टा करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुका यह कथन है कि गोपीभाव आत्माका धर्म है। किन्तु प्राकृत सहजिया लोग गोपीभावको देहका धर्म समझते हैं—

अन्तरे निष्ठा कर बाह्ये लोक-व्यवहार।
अचिरात् कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥
(चै॰ च॰ म॰ १६/२३९)

मने निज-सिद्धदेह करिया भावन।
रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥
(चै॰ च॰ म॰ २२/१५२)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कह रहे हैं कि प्रारम्भमें अन्तर-हृदयमें निष्ठा रखते हुए जीवन-निर्वाहके लिए लोकव्यवहार करना आवश्यक है। धीरे-धीरे निष्ठाके परिपक्व होनेपर अपने-आप लोक व्यवहार भी भजनके अनुरूप हो जायेगा अर्थात् अनुकूल हो जायेगा। इसलिए ऐसी अवस्थामें मन-ही-मन अन्तश्चिन्तित युगल सेवनोपयोगी सिद्धदेहकी भावना करते हुए श्रीकृष्णकी अप्राकृत मानसी सेवा होनी चाहिये। इसके द्वारा पहले स्वरूपसिद्धि (सिद्धदेहकी अनुभूति) होती है एवं अन्तमें वस्तुसिद्धिके समय प्राकृत शरीर छूटनेके पश्चात् अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहके अनुरूप प्रकट व्रजमें गोपीदेहकी प्राप्ति होती है।

श्रील रूप गोस्वामीने रागनुगा भक्तिसाधनके प्रकरणमें ऐसा कहा है—

(१) कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥

(२) सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

(३) श्रवणोत्कीर्तनादीनि वैधीभक्त्युदितानि तु।
यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और अपने अभिलषित उनके प्रियजनोंका सदा स्मरण करते हुए उनकी लीलाकथाओंमें निरत रहकर सदा व्रजमें वास करना चाहिये। साक्षात् रूपसे व्रजमें वास करनेमें असमर्थ रहनेपर मन द्वारा व्रजमें वास करना चाहिये। इस रागानुगमार्गमें साधक रूपसे अर्थात् यथावस्थित बाह्य देहके द्वारा और सिद्धरूपमें अर्थात् अन्तश्चिन्तित अपने मनोऽभिलषित श्रीकृष्णसेवाके उपयोगी देहके द्वारा व्रजस्थित अपने अभीष्ट कृष्णके प्रियजनोंके भाव अर्थात् रतिविशेषके प्रति लुब्ध होकर कृष्णके प्रियजनों एवं उनके अनुगत जनोंका अनुसरण करते हुए उनकी सेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये। वैधीभक्तिमें श्रवण-कीर्त्तन आदि जिन भक्ति-अङ्गोंके पालन करनेकी बात अधिकारके अनुसार कही गयी है, भक्तितत्त्वविद् पण्डितजन रागानुगाभक्तिमें भी योग्यताके अनुसार इन्हीं अङ्गोंके पालनकी उपयोगिता निर्देश करते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेवाले श्रील रूप गोस्वामीने कहीं भी पुरुष साधकोंको अपने पुरुष रूपको छिपाकर वेणी, घूँघट, लहँगा, चोली और स्त्रियोचित अलङ्कार आदि धारणकर पराई स्त्रियोंके साथ रागानुगाभजन करनेका उपदेश नहीं दिया है। इन्होंने सर्वत्र ही इसे शास्त्रविरुद्ध दुराचारकी संज्ञा दी है। श्रीमन्महाप्रभुने छोटे हरिदासका वर्जनकर भक्तिसाधकोंके लिए एक उच्च आदर्श स्थापित किया है। षड्गोस्वामियोंका भी ऐसा ही निर्मल आदर्श रहा है। श्रील रूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंमें श्रुतियों एवं दण्डकारण्यवासी ऋषियोंके सुशीतल पदचिह्नोंपर चलकर साधन-भजनके लिए उपदेश दिया है। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरायरामानन्द, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर आदि ऐसे भजनके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इनका जीवन कितना पवित्र है। शुद्ध भक्तोंके लिए ऐसे-ऐसे महापुरुषोंका अनुसरण करना ही उचित है।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने 'सहजिया-मतका हेयत्व' नामक प्रबन्धमें लिखा है—"बंगदेशके अनेक स्थानोंमें सहजिया नामक एक घृणित मतवाद छिप-छिपकर चल रहा है। इस मतके सभी कार्य एवं आचरण अत्यन्त दूषित एवं घृणित हैं। चिन्मय जीवोंके लिए चिन्मय कृष्णसेवा ही सहज धर्म है। 'सहज' शब्दका तात्पर्य है—सह-ज अर्थात् आत्माके साथ उदित होनेवाला। यद्यपि शुद्ध आत्माके लिए चिन्मय कृष्णसेवा सहज है अर्थात् वह जीवात्माके साथ ही उत्पन्न हुई है, अतः स्वाभाविक है, तथापि जड़बद्ध अवस्थामें वह सहज नहीं है। उस विशुद्ध कृष्णरतिको वञ्चित और वञ्चक लोगोंने स्त्री-पुरुषके संयोगरूप जड़ीय सहज धर्मके रूपमें परिणत कर दिया है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। आत्माके सहज धर्ममें जड़ीय स्त्री-पुरुषके शरीरका संयोग अत्यन्त घृणित, दुराचार एवं अनुपयुक्त है। आजकल जिसे सहजिया धर्म कहा जाता है, वह सर्वथा शास्त्रविरुद्ध, दुर्नैतिक, असदाचार है। शुद्ध वैष्णवोंको सर्वथा इससे सावधान रहना चाहिये। जिस धर्ममें प्रवेश करनेपर बाएँ कानमें मन्त्र लेनेकी प्रथा है, वह सर्वथा व्यभिचार है।

"व्रजेन्द्रनन्दनकी प्राप्तिके लिए किसी स्त्रीका सङ्ग करना चाहिये—शास्त्रोंमें ऐसा कहीं भी उपदेश नहीं है। मधुररसमें प्रवेश करनेपर अणुचैतन्य जीव स्वयं प्रकृतत्व लाभ करता है। उनके लिए जड़ीय प्रकृति-सङ्गकी कोई आवश्यकता नहीं होती। छोटे हरिदास स्वयं प्रकृति (स्त्री) होकर पुरुषभावसे दूसरी प्रकृतिसे बातचीत करनेके अपराध करनेके कारण महाप्रभुके द्वारा त्याग दिये गये थे। धूर्त्त लोग 'प्रकृति हइया करे प्रकृति सम्भाषण'—इस पयारका दोषपूर्ण गलत अर्थकर अपने इन्द्रियभोगका पथ सृजन करते हैं। शुद्ध वैष्णवगण इनकी उपेक्षा करते हैं। गृहस्थोंके लिए विवाहित स्त्रीसङ्ग भी किसी भजनका अंश नहीं है, इसलिए संसारयात्रा निर्वाहके लिए उसे वैधरूपमें स्त्रीसङ्ग (निष्पाप) माना गया है।

"शुद्ध वैष्णवोंके विचारसे पुरुष-साधक स्त्री-साधकसे अलग रहकर भजन करेंगे। स्त्री-साधक किसी भी पुरुषको अपनी भजनमण्डलीमें न बुलायें। भजन सम्पूर्ण चिन्मय कार्य है। तनिक भी जड़ीय भाव उसमें प्रवेश करानेपर वह नष्ट हो जाता है।"

(ज) भेक एवं सिद्धप्रणाली

कुछ दिनोंसे बंगाल एवं व्रजके राधाकुण्ड, वृन्दावन आदि स्थानोंमें भेकधारण एवं सिद्धप्रणाली नामक प्रथाने श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं षड्गोस्वामियोंके द्वारा प्रतिष्ठित शुद्धभक्तिका स्वरूप ही विकृत कर दिया है। अधिकार-अनधिकारका विचार किये बिना ही अपना दल भारी करनेके लिए ये लोग जैसे-तैसे, व्यभिचारी, लम्पट, शास्त्रसिद्धान्तरहित लोगोंको भी सिद्धप्रणाली (?) एवं बाबाजी वेश प्रदान करते हैं। ये लोग इसका दुरुपयोगकर और भी भ्रष्ट और लम्पट हो पड़ते हैं।

(i) भेकधारण

भेकधारणकी प्रथा कब-से प्रचलित हुई है, इसका अनुसन्धान करनेपर हम देखते हैं कि षड्गोस्वामीगण, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीनरोत्तम दास ठाकुर, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आदिके समय तक यह प्रथा प्रचलित नहीं थी, क्योंकि ये लोग सहज-परमहंस थे। श्रीसनातन

गोस्वामीने स्वाभाविक रूपसे काशीमें तपन मिश्रसे एक पुरानी धोती लेकर उसे चीरकर बहिर्वास और डोर-कौपीनके रूपमें धारण किया था। वहाँ सिद्ध प्रणाली देने आदिका कोई उल्लेख नहीं है। वह केवल भजननिष्ठाके लिए त्याग-वेशका सूचक था। इसी प्रकार अन्य गोस्वामियोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। यह एक प्रकारसे भिक्षुक आश्रम या संन्यासके ही अन्तर्गत है, क्योंकि परमहंस महात्माओंका कोई भी निश्चित वेश नहीं होता। वे संन्यास आदि आश्रमोंके लिंगों एवं विधि-निषेधोंसे अतीत होते हैं तथा भगवत्-प्रेममें सर्वदा विभोर रहते हैं। ऐसे परमहंसोंके ऊपर वेद आदि शास्त्रोंके विधि-निषेधोंका कोई अङ्कुश नहीं होता। किन्तु जो लोग परमहंस-अवस्थामें नहीं हैं, वे साधन-भजनकी निष्ठाके लिए या तो वैष्णव-संन्यास (सत्क्रियासार-दीपिका आदि सात्त्वत वैष्णव स्मृतियोंके अनुसार) ग्रहण करते हैं अथवा उसी विधिके अनुसार श्वेत वहिर्वास और डोर-कौपीन धारण करते हैं, इसे ही भेकधारण कहते हैं। 'भेक' शब्द संस्कृत भेष शब्दका अपभ्रंश है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने 'भेकधारण' नामक प्रबन्ध (गौड़ीय पत्रिका वर्ष ६, संख्या २ में पुनर्मुद्रित) में लिखा है—

"भेक शब्दसे भिक्षुकके आश्रमका बोध होता है। संन्यास-आश्रमका ही नाम भिक्षु-आश्रम है। संन्यासी व्यक्ति इस जीवनमें कभी भी स्त्रियोंका सङ्ग नहीं कर सकते। वे भिक्षावृत्ति द्वारा जीवननिर्वाह करेंगे।

"यहाँ प्रश्न होता है कि भेकधारी वैष्णवगण कौन-से आश्रममें अवस्थित हैं? हमने जहाँ तक शास्त्र और महाप्रभुके उपदेशोंका अनुशीलन किया है, उसके द्वारा स्थिर किया है कि निःसङ्ग वैष्णवगण भिक्षु-आश्रममें अवस्थित हैं। जब उनके लिए स्त्रीसङ्ग सम्पूर्णतः निषिद्ध है, तब वे संन्यास-आश्रममें ही अवस्थित हैं। संन्यासका चिह्न ही कौपीन है। जब उन्होंने डोर-कौपीन या बहिर्वासको धारण कर लिया है, तब वे निश्चय ही संन्यास-आश्रमके अन्तर्गत हैं।

"संन्यास दो प्रकारका होता है—साधारण संन्यास और वैष्णव संन्यास। इन दोनोंमें बहुत ही पार्थक्य है। साधारण संन्यासमें शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य, सत्-असत् ज्ञान तथा ब्रह्म प्राप्तिकी आकांक्षा—इन धर्मोंका उदय होनेपर संन्यास ग्रहण किया जाता है। परन्तु वैष्णव संन्यासियोंके

लिए इन गुणोंका होना ही अधिकार प्रदान नहीं करता। सर्वप्रथम भगवत्-विषयणी श्रद्धा, तदनन्तर साधुसङ्ग, भजन-क्रिया, अनर्थ-निवृत्ति आदि प्रक्रियाके द्वारा जब भगवत्-रति हृदयमें उदित होती है, उस अवस्थामें विरक्ति नामका एक धर्म वैष्णवका आश्रय करता है। उस दशामें वैष्णव-साधकका गृहस्थ-आश्रमसे पूर्णतः वैराग्य हो जाता है तथा वह अपने अभाव (आवश्यकता) को सीमित करनेके लिए कौपीन आदि धारणकर भिक्षा द्वारा जीवननिर्वाह करते हैं। इसीका नाम वैष्णवभेक है। जो सरलताके सहित निष्कपट होकर भगवत्-भजनके लिए भेकधारण करते हैं, वे जगत्के वन्दनीय हैं। इस प्रकारका भेक-ग्रहण दो प्रकारसे होता है। कोई-कोई साधक भावजनित विरक्ति लाभकर किसी उपयुक्त गुरुके निकट भेक ग्रहण करते हैं और कोई-कोई स्वयं ही डोर-कौपीन-बहिर्वास धारणकर विचरण करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुके सम्प्रदायमें यह भेक-पद्धति अत्यन्त पवित्र है। मैं ऐसी पद्धतिको बारम्बार श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

"किन्तु दुर्भाग्यका विषय यह है कि आजकल भेकाश्रम अत्यन्त दूषित हो रहा है। अधिकारका विचार सम्पूर्णतः उठ गया है। अनधिकारी होनेपर भी भेकधारणकी इच्छा हुई और मस्तक मुण्डन कराकर डोर-कौपीन धारणकर भेक ले बैठा।

"वर्त्तमान कालमें संन्यास प्रणालीमें कुछ विकृतियाँ आ गयी हैं। वे ये हैं—(१) कुछ गृहस्थ वैष्णव मस्तक मुण्डनकर एवं कौपीन धारणकर बाबाजी बन जाते हैं। इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है? उनका यह कार्य लोक एवं शास्त्रविरुद्ध है। यदि संसारसे यथार्थतः विरक्ति हो, तो यथार्थ रूपमें निःसङ्ग भेक ग्रहण करें। अन्यथा वैष्णवधर्मको ये कलङ्कित ही करेंगे और परलोकमें भी इसका फल भोग करेंगे।

(२) बाबाजी लोगोंका अपने आश्रमोंमें सेविकाओंको रखना भी एक भयङ्कर अमङ्गलजनक प्रथा है। किसी-किसी आश्रममें बाबाजी लोग अपने पूर्वाश्रमकी पत्नीको भी सेविकाके रूपमें रखते हैं। ये लोग देवसेवा और साधुसेवाके छलसे स्त्रीसङ्ग करते हैं।

(३) विरक्त बाबाजी लोगोंके लिए स्त्री-लोभ, अर्थ-लोभ, खाद्य-लोभ आदि एकान्त वर्जनीय हैं। आजकल विरक्त लोगोंमें इन

दोषोंको देखकर वैष्णवजगत्के प्रति जनसाधारणमें अविश्वास फैल रहा है। सार बात यह है कि भागवती रतिसे उत्पन्न यथार्थ विरक्तिके बिना जो लोग वैराग्य-लिंग धारण करते हैं, वे जगत्के लिए उत्पात स्वरूप एवं वैष्णवधर्मके लिए कलङ्कस्वरूप हैं। अनधिकार भेकग्रहण करनेसे स्वयंका अधःपतन और वैष्णवधर्मकी अवमानना भी निश्चित है।"

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीव्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलके प्रधान-प्रधान स्थानोंमें आजकल ये कुरीतियाँ प्रत्यक्ष रूपसे दृष्टिगोचर होने लगीं। श्रील प्रभुपाद एवं उनके आश्रित शुद्ध वैष्णवोंके प्रति इन अखाड़ाधारी बाबाजी लोगोंने आक्षेप करना आरम्भ कर दिया कि गौड़ीय मठके वैष्णव लोग गेरुआ वस्त्र एवं संन्यास धारण करते हैं, इनमें कोई सिद्धप्रणाली नहीं है तथा ये लोग रसतत्त्वसे अनभिज्ञ ज्ञानी हैं। परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने इन आक्षेपोंका शास्त्रीय प्रमाणों एवं प्रबल युक्तियोंसे खण्डन किया तथा सर्वत्र ही शुद्धभक्तिका प्रचार किया है। इसके लिए उन्होंने श्रीगौड़ीय पत्रिका एवं भागवत पत्रिकामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके पूर्वलिखित प्रबन्धोंको पुनः प्रकाशित करवाया, सहजिया-दलन नामक एक ग्रन्थका प्रकाशन कराया, व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलके बहुत-से स्थानोंकी बृहत्-बृहत् सभाओंमें इसका प्रतिवाद भी किया। इसके लिए विरोधी पक्षसे इनके ऊपर अदालतमें मान-हानिका मुकदमा भी हुआ। किन्तु अन्तमें अदालत कक्षमें ही विरोधी पक्षको इनसे क्षमा-भिक्षा करनी पड़ी।

(ii) सिद्धप्रणाली

आजकल व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलके विशेष-विशेष स्थानोंमें सिद्धप्रणालीका अत्यन्त दुरुपयोग हो रहा है। तत्त्वज्ञानहीन, वैधी-साधनभक्तिसे अनभिज्ञ, स्त्रीके मर जानेपर घरसे प्रताड़ित व्यक्ति भी रातों-रात सिर मुण्डन कराकर एवं कौपीन धारणकर झट सिद्धप्रणाली प्राप्त कर लेते हैं। आजकल आठ आना पैसा देकर सिद्धप्रणाली सहज ही पायी जा सकती है। मन्त्र देनेके पहले ही दाम-दस्तूर हो जाता है। इन लोगोंका यह विचार है कि सिद्धप्रणाली नहीं मिलनेसे साधकोंका

कल्याण नहीं होता। वैधीभक्तिके साधनकी कोई आवश्यकता नहीं। तत्त्वज्ञान एवं अनर्थनिवृत्तिकी भी कोई आवश्यकता नहीं। रागानुगाभक्तके लिए वैधीभक्तिके चक्करमें न फँसकर अनर्थनिवृत्तिसे पूर्व ही सिद्धप्रणाली प्राप्त होना आवश्यक है। इन लोगोंकी धारणा ऐसी है—जैसे फूल होनेके पहले ही पत्तेमें फल लगेंगे।

आजसे लगभग ५५ वर्ष पूर्व हमलोग परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके साथ व्रजमण्डल परिक्रमामें आये थे। लगभग ४०० यात्रियोंके साथ परिक्रमासंघ मथुराकी बड़ी धर्मशालामें ठहरा था। उसमें गुरुदेवने एक बड़ा भण्डारा किया था, जिसमें स्थानीय सभी साधु-सन्त एवं वैष्णवोंको आमन्त्रित किया गया था। बहुत अधिक संख्यामें भेक ग्रहण करनेवाले बाबाजी भी उसमें सम्मिलित हुए थे। जब बाबाजी लोग श्रील गुरुदेवसे मिलने आये तो कुतूहलवश गुरुदेवने उनसे पूछा कि आपलोगोंके कृष्णभजनका उद्देश्य क्या है? प्रश्न सुनते ही पहले तो वे सकपका-से गये, फिर सोचकर बोले कि कृष्णभजन करनेसे हमें मुक्ति मिल जायेगी और हम कृष्णमें मिल जायेंगे। उनका उत्तर सुनकर गुरुजी बड़े दुःखी हुए। उन्होंने उनसे और भी कुछ पूछताछ की जिससे उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनके आश्रमोंमें महिलाएँ भी सेवादासीके रूपमें रहती हैं। तब-से उन्होंने गौड़ीय वैष्णव समाजमें फैले इन कुरीतियोंका संस्कार करनेका सङ्कल्प किया। मैंने पहले ही इसे इङ्गित किया है। ये जीवनभर शुद्धभक्तिके प्रचारमें व्यस्त रहनेपर भी इस विषयको भूले नहीं। इस सुधारका बहुत कुछ श्रेय इन महापुरुषको है। इस विषयमें उनके जिन विचारोंको मैंने श्रवण किया है, उसे यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

शुद्ध भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेके लिए श्रील रूपगोस्वामीने 'आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया, ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः। अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति, साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥' का एक क्रम निर्धारित किया है। इस क्रमका उल्लंघन करनेपर भक्ति सुदूर पराहत है। इसीलिए प्रेमराज्यमें प्रवेश करनेके लिए साधनभक्तिके प्रथमाङ्ग वैधीभक्तिका अनुष्ठान नितान्त आवश्यक है। वैधीभक्ति कृष्णप्रेम प्राप्त करानेका साक्षात् अङ्ग नहीं होनेपर भी रागमार्गमें प्रवेश करनेके लिए वैधीभक्तिके अङ्गोंका यथायोग्य

पालन करनेकी आवश्यकता है। वैधीभक्ति शास्त्रीय प्रमाणोंकी सुदृढ़ भित्तिपर प्रतिष्ठित एवं प्रबल मर्यादायुक्त है। यहाँ तक कि रागानुगीय साधनभक्ति एवं वैधीभक्तिके अङ्गोंके पालनमें कोई विशेष पार्थक्य नहीं है। अन्तर है केवल पालनकी निष्ठामें। अतः वैधीभक्तिके साधनके अङ्गोंकी पूर्णरूपेण उपेक्षा नहीं की जा सकती है। श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रयोजनतत्त्व—कृष्णप्रेमके प्रसङ्गमें श्रीसनातन गोस्वामीको उपदेश देते हुए कह रहे हैं—

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेई जीव 'साधुसङ्ग' करय॥
साधुसङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन'।
साधनभक्त्ये हय सर्वानर्थनिवर्तन॥
अनर्थनिवृत्ति हइले भक्त्ये 'निष्ठा' हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय॥
रुचि हैते भक्त्ये हय 'आसक्ति' प्रचुर।
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यङ्कुर॥
सेई 'रति' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम।
सेई प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द धाम॥
(चै॰ च॰ म॰ २३/९-१३)

अतएव इस क्रमका उल्लंघन करनेपर भक्तिराज्यमें प्रवेश कदापि सम्भव नहीं है। अतः जो लोग वैधी-साधनभक्तिके अङ्गोंकी उपेक्षाकर इसमें प्रवेश करना चाहते हैं, वे सर्वथा शास्त्रबहिर्भूत और उच्छृंखल हैं। शुद्धभक्तिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने भी ऐसा ही कहा है—

विधिमार्गरत जने स्वाधीनता रत्नदाने रागमार्गे करान प्रवेश।

साध्य वस्तुके क्रमविचारसे श्रीमतीराधाजीका कृष्णके प्रति प्रेम ही साध्यशिरोमणि है। फिर भी श्रीचैतन्य महाप्रभुने पारकीयभावयुक्त 'राधादास्य' को ही जीवोंके लिए साध्य बताया है। साध्य वस्तु प्राप्त करनेके लिए साधनकी आवश्यकता है—

साध्यवस्तु साधन विना केह नाहि पाय।
कृपा करि कह राय पावार उपाय॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/१९६)

श्रीराय रामानन्द इसका उत्तर देते हुए कह रहे हैं—

राधाकृष्णेर लीला एइ गूढ़तर।
दास्य-वात्सल्यादि-भावे न हय गोचर॥
सबे एक सखीगणेर इहाँ अधिकार।
सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार॥
सखी बिना एइ लीला पुष्टि नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे ये ताँरे करे अनुगति॥
राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२००-२०४)

अतएव गोपीभाव करि अङ्गीकार।
रात्रि-दिन चिन्ते राधाकृष्णेर विहार॥
सिद्धदेह चिन्ति' करे ताहाँर सेवन।
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२२७-२२८)

सारांश यह है कि राधाकृष्णकी प्रेममयी लीला अत्यन्त रहस्यपूर्ण है, जो कि दास्य, वात्सल्य आदि भाववालोंके लिए भी अगोचर है। केवल सखियोंका ही इसमें अधिकार है। इसलिए सखियोंके आनुगत्यके बिना अन्य किसी भी साधनसे श्रीमती राधिकाका दास्य अथवा श्रीराधाकृष्णयुगलकी कुञ्जसेवा प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहके द्वारा गोपीभावसे दिवा-रात्र राधाकृष्णकी लीलाओंका चिन्तन ही उक्त सर्वश्रेष्ठ साध्यको पानेका एकमात्र उपाय

है। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें श्रीरागानुगा-भक्तिके साधन-प्रकरणमें निर्देश दिया है—

(१) कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥

(२) सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

(३) श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि वैधीभक्त्युदितानि तु।
यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः॥

श्रीलरूप गोस्वामीने रागनुगाभक्तिके दो प्रकारके साधनोंका उल्लेख किया है—

सेवा साधकरूपेण सिद्धारूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

रागात्मिकाभक्तिमें लोभ होनेपर रागानुगाभक्तिका अनुष्ठान दो प्रकारसे किया जाता है—साधक रूपसे अर्थात् यथावस्थित बाह्य देहके द्वारा और सिद्ध रूपसे अर्थात् अपने अभिलषित कृष्णपरिकरोंके भाव या कृष्णविषयक रति प्राप्त करनेके लिए लुब्ध होकर व्रजलोकके परिकरों—ललिता, विशाखा, श्रीरूपमञ्जरी आदि एवं उनके अनुगत श्रीरूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी आदिके अनुसार करना होता है। साधक रूपसे कायिकी सेवा श्रीरूप, सनातन आदि व्रजवासी महानुभावोंके अनुसार एवं सिद्ध रूपसे मानसी सेवा श्रीरूप मञ्जरी आदि व्रजवासियोंके अनुसार करनी होगी। श्रीचैतन्यचरितामृतमें उपर्युक्त श्लोकका तात्पर्य इस प्रकार दिया गया है—

बाह्य, अभ्यन्तर—इहार दुइ त' साधन।
'बाह्य' साधक-देहे करे श्रवण-कीर्तन॥

'मने' निज-सिद्धदेह करिया भावन।
रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥

(चै॰ च॰ म॰ २२/१५१-१५२)

अतः रागानुगाभक्ति-साधकोंके लिए श्रवण-कीर्त्तन, तुलसी-सेवन, तिलकादि धारण, श्रीएकादशी-जन्माष्टमी आदि व्रतपालन आदि भावसम्बन्धी साधन सर्वथा अनुष्ठेय हैं। इसके द्वारा स्वाभीष्ट भावकी परिपुष्टि होती है, साथ ही अपने हृदयमें सिद्धदेहकी भावना कर व्रजमें राधाकृष्णकी सेवा भी करनी होगी। राधागोविन्दकी सेवोपयोगी गोपीदेहका नाम ही सिद्धदेह है। भजन पूर्ण होनेपर जड़देहके त्यागके पश्चात् जीवोंके नित्य-स्वरूपमें उसीके अनुरूप गोपीदेहकी प्राप्ति होती है। श्रील नरोत्तम ठाकुरने कहा है—

साधने भाविबे याहा   सिद्धदेहे पाइबे ताहा
रागपथे एइ से उपाय।

साधनके समय जिस विषयकी निरन्तर भावना होती है, मृत्युके समय वही भावना प्रबल होकर चित्तको तन्मय करती है। मृत्युकालमें जिस विषयकी जैसी स्मृति होती है, उसीके अनुरूप उसकी गति भी होती है। जिस प्रकार राजर्षि भरत मृत्युकालमें हिरण (शिशुकी) चिन्तामें निमग्न होनेके कारण हिरणदेहको प्राप्त हुए थे, उसी प्रकार अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहमें निरन्तर भावित युगलसेवोपयोगी देह प्राप्तिमें सन्देह ही क्या है?

सनत्कुमार संहितामें सिद्धदेहके सम्बन्धमें कहा गया है—

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमोदाकृतिम्॥

X X X X X

राधिकानुचरी नित्यं तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्॥

अर्थात् सदाशिव नारदजीको युगलसेवोपयोगी सिद्धदेहके विषयमें उपदेश दे रहे हैं—नारद! अप्राकृत वृन्दावनधाममें परकीयाभिमानिनी श्रीकृष्णकी प्रियाओंके बीच तुम अपने स्वरूपकी इस प्रकार भावना करो—मैं अतिशय सुन्दर, रूपयौवनसम्पन्ना, परमानन्दमयी किशोरी हूँ। श्रीमती राधिकाकी नित्य अनुचरी हूँ। श्रीकृष्णकी परमप्रिय वल्लभा श्रीमती राधिकाको कृष्णके साथ मिलाकर उन दोनोंको सदा सुखी कराऊँगी।

अतएव कृष्णप्रियतमा राधिकाकी अनुचरी हूँ और सदा–सर्वदा युगलसेवापरायण रहकर भी मैं कृष्णकी अपेक्षा श्रीमतीके प्रति अधिक प्रेम रखनेवाली होऊँ इत्यादि।

अब यह विचारणीय है कि शास्त्रों एवं महाजनोंके उपदेशोंमें जिस सिद्धदेहका वर्णन है, वह किस अवस्थाके साधकोंके लिए कहा गया है। जहाँ कहीं भी 'सिद्धदेह' का उल्लेख हुआ है, वह रागानुगाभक्तिके प्रसङ्गमें दिखाया गया है। विशेषतः जिस सौभाग्यवान् साधकके हृदयमें पूर्वसंस्कार एवं आधुनिक संस्कारके द्वारा रागात्मिकाभक्ति पानेका लोभ यथार्थ रूपमें उदित हो चुका है, ऐसे लोभयुक्त साधकोंके लिए ही ऐसे उपदेश दृष्टिगोचर होते हैं।

यहाँ एक और विचारणीय बात यह है कि शास्त्रप्रदत्त विवेक द्वारा किसी रसविशेषका उत्कर्ष जान लेना एक बात है और उस रसके प्रति लोभ होना अलग बात है। उस रसविशेषमें किसीका लोभ होनेपर उस साधकमें लोभके लक्षण भी दृष्टिगोचर होंगे। यह लोभ उदित होनेपर रुचिकी अवस्थासे यह रागानुगा–साधनभक्ति आरम्भ होती है। इसके द्वारा यह समझना होगा कि ऐसे साधकोंके नामापराध, सेवापराध एवं अन्यान्य अनर्थ अधिकांशतः दूर हो चुके हैं तथा वह श्रील रूपगोस्वामी द्वारा उपदेशामृतमें कहे गये छह वेगोंका दमन कर चुका है, छह दोषोंसे मुक्तप्राय है, 'उत्साहात् निश्चयात्' आदि छह गुणोंसे युक्त है, तीन प्रकारके वैष्णवोंको पहचानकर उनके साथ यथोचित व्यवहारमें निपुण है, 'तन्नामरूपचरितसादि ... उपदेशसारम्'—इस श्लोकके तात्पर्यमें भी प्रतिष्ठित हो गया है अर्थात् इसका यथायथ आचरण कर रहा है। इस अवस्थामें भजन करते–करते जब साधक रुचिकी अवस्थाको पारकर आसक्तिकी अवस्थामें प्रवेश करता है, तब श्रीरूप गोस्वामी द्वारा कथित 'क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं'—इस उपदेशका आभास साधकमें परिलिक्षत होगा। दूसरी ओर आसक्तिकी अवस्थामें भावावस्थामें उदित होनेवाली रतिका आभास उदित होगा तथा उस रतिको पूर्ण रूपसे उदित करानेके लिए सिद्धदेहकी भावना करते हुए भजन करेगा। भजनके द्वारा यह रत्याभास जब रतिमें परिणत होता है, तब वस्तुतः साधकको अपने स्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। इसीको सिद्धदेहकी भावना अथवा वैष्णवोंका

भेकग्रहण कहते हैं। जो इसे सरलताके साथ लाभ करते हैं, वे जगत्-पूज्य हैं। इस प्रकार भेक ग्रहण दो प्रकारसे होता है—किसी उपयुक्त गुरुके निकटसे साधक इसे प्राप्त करता है या इस अवस्थामें वैराग्य उदित होनेपर स्वयं ग्रहण करता है। हरिदास ठाकुर, षड्गोस्वामीगण, लोकनाथ गोस्वामी आदि स्वयं भेक ग्रहण करनेके प्रमाण हैं। इसी प्रकार श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने श्रील गौरकिशोर दास बाबाजीसे दीक्षामन्त्र ग्रहण करनेके पश्चात् उनके अप्रकट होनेपर जो संन्यासवेश ग्रहण किया, वह शास्त्रसम्मत है। श्रीरामानुजाचार्यने भी अपने गुरु श्रील यमुनाचार्यके अप्रकट होनेके बाद स्वयं ही त्रिदण्डियतिका वेश ग्रहण किया था।

किन्तु सिद्धदेहकी भावना गुरुकृपाके सापेक्ष है। इस अवस्थामें रसविचारमें प्रतिष्ठित स्वरूपसिद्ध गुरु या शिक्षागुरु ही साधकके सिद्धदेहका निर्देश करेंगे। अन्यथा इस क्रमका विपर्यय होनेपर साधककी सिद्धि नहीं होती, बल्कि उसकी भक्ति भी नष्ट हो जाती है और साम्प्रदायिक विचारधारा भी दूषित हो जाती है, जो आजकल सर्वत्र परिलक्षित हो रही है।

कुछ अनभिज्ञ लोगोंका यह कहना है कि गौड़ीय मठमें सिद्धप्रणाली नहीं है—यह सर्वथा दुष्प्रचार एवं भ्रमपूर्ण है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं बलदेव विद्याभूषणके पश्चात् श्रीमहाप्रभुके अनुगत गौड़ीय सम्प्रदायमें एक अन्धकार युगका आरम्भ हुआ, जिसमें श्रीरूपानुग भक्तिधारा कुछ विकृत हुई। इसमें तरह-तरहकी काल्पनिक कुरीतियों एवं शुद्धभक्तिविरुद्ध विचारोंका सम्मिश्रण हो गया। उस समय ऐसी विषम परिस्थिति हुई कि उनके असदाचारोंको देखकर सभ्य समाज गौड़ीय वैष्णवमात्रके नामसे ही घृणा करने लगा। इस प्रकार गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय शिक्षित, सम्भ्रान्त समाजसे एक प्रकारसे अलग-थलग हो गयी। उसी समय सप्तम गोस्वामी सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीका आविर्भाव हुआ।

इन दोनोंने गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर सम्प्रदायको खोया हुआ गौरव प्रदान किया। आज केवल भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्वमें शिक्षित-सम्भ्रान्त समाजमें श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा

आचरित एवं प्रचारित नामसङ्कीर्त्तन एवं शुद्धभक्तिका जो प्रचार एवं प्रसार हुआ है, उसका सारा श्रेय इन दोनों महापुरुषों एवं इनके अनुगत जनोंको ही है। इन्होंने विश्वमें सर्वत्र शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्र—गौड़ीय मठकी स्थापनाकर, विश्वकी सभी श्रेष्ठ भाषाओंमें पत्र-पत्रिकाएँ एवं शुद्धभक्ति ग्रन्थोंका प्रकाशनकर अल्प समयमें ही गौड़ीय वैष्णव समाजमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया है।

हमने पहले ही यह बताया है कि कुछ लोगोंका यह विचार कि गौड़ीय मठमें सिद्धप्रणाली नहीं है, यह भ्रम है। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी कृत श्रीहरिभक्तिविलासके परिशिष्ट ग्रन्थ सत्क्रियासारदीपिका एवं संस्कारदीपिका नामक प्रामाणिक ग्रन्थमें त्रिदण्डसंन्यास-संस्कारका उल्लेख है। जयपुरके राजकीय ग्रन्थागारमें श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा लिखित हस्तलिपि आज भी संरक्षित है। इसीकी एक प्राचीन प्रतिलिपि श्रीराधारमणके गोस्वामियोंके पास अभी भी संरक्षित है। इसलिए यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसी संस्कार-दीपिकाके अनुसार गौड़ीय वैष्णवोंमें त्रिदण्डियतिवेश दिया जाता है। इस संन्यास-संस्कारमें डोर-कौपीन, बहिर्वास एवं गोपीभावाश्रित संन्यासमन्त्र भी प्रदान किया जाता है। यह इस गोपीभावके अन्तर्गत सम्बन्ध, वयः, नाम, रूप, यूथ, वेश, आज्ञा, वास, सेवा, पराकाष्ठाश्वास एवं पाल्यदासी भाव—ये एकादश पर्व अन्तर्निहित हैं। श्रीगुरुके उपदेशके द्वारा साधकोंकी रुचिके अनुसार ही सिद्धदेहका परिचय निर्णीत होता है। गुरु-प्रदत्त अपना नाम, रूप, वयस, वेश, सम्बन्ध, यूथ, आज्ञा, पराकाष्ठाश्वास, पाल्यदासीका भाव ही सिद्धप्रणाली है। इस प्रकार साधन करते-करते साधकके हृदयमें शुद्धरतिके साथ-साथ स्वरूपकी भी सिद्धि होती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपने सिद्धस्वरूपका वर्णन इस प्रकार किया है—

वरणे तड़ित् वास तारावली कमल मञ्जरी नाम।
साढ़े वार वर्ष वयस सतत स्वानन्द सुखद धाम॥ १॥

कर्पूर सेवा ललितार गण राधा यूथेश्वरी हन।
ममेश्वरी-नाथ श्रीनन्दनन्दन आमार पराण धन॥ २॥

श्रीरूप मञ्जरी प्रभृतिर सम युगल सेवाय आश।
अवश्य सेरूप सेवा पाव आमि पराकाष्ठा सुविश्वास॥ ३॥

कबे वा ए दासी संसिद्धि लभिवे राधाकुण्डे वास करि'।
राधाकृष्ण-सेवा सतत करिवे पूर्व स्मृति परिहरि॥ ४॥

बाबाजी लोगोंमें भी जो भेक ग्रहणकी प्रथा देखी जाती है, वह कोई पञ्चम आश्रम नहीं, बल्कि चतुर्थाश्रम—संन्यास आश्रमका ही अपर स्वरूप है।

सप्तम भाग

श्रील गुरुदेव एवं वैष्णव साहित्य

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव विविध प्रकारकी चौमुखी अलौकिक प्रतिभाके विराट धनी व्यक्ति थे। जिस प्रकार वे अद्वितीय शुद्ध-समाज-संगठक थे, उसी प्रकार वे अद्वितीय पराविद्यानुरागी भी थे। जहाँ वे प्रौढ़ एवं गम्भीर दार्शनिक पण्डित थे, वहीं वे रसिक एवं कवि भी थे। उनके जैसा एक ही साथ गम्भीर दार्शनिक एवं रसिक कवि होना जगत्‌में अत्यन्त दुर्लभ है। उनमें नई-नई भावनाओंकी अत्यन्त अद्भुत सृजनात्मक कला थी। नित्य-नवीन वैष्णव-साहित्यका सृजन उनके जीवनका एक स्वाभाविक अङ्ग था। उन्होंने पूर्वाचार्यों द्वारा रचित प्रामाणिक ग्रन्थोंका प्रकाशन तो कराया ही, साथ ही उन्होंने सुसिद्धान्तपूर्ण नवीन ग्रन्थों, निबन्धों, प्रबन्धों, स्तव-स्तुति, पदोंकी रचना कर गौड़ीय वैष्णव साहित्यके भण्डारको और भी समृद्ध किया है। हम नीचे उनके द्वारा रचित कतिपय स्तव, निबन्ध एवं मधुर पदोंका कुछ विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय

परमाराध्य श्रील आचार्य केसरीका यह विचार था कि जब तक जगत्‌में मायावादका विचार रहेगा, तब तक शुद्धाभक्तिका पूर्णरूपेण प्रचार नहीं हो सकता। इसलिए इसे समूल उखाड़ फेंकना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए उन्होंने 'मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय' नामक ग्रन्थकी रचना की है। नीचे उस ग्रन्थका संक्षिप्त सार दिया जा रहा है—

(क) मायावाद किसे कहते हैं?

माया शब्द साधारणतः जड़ाशक्ति या अविद्याशक्तिको लक्ष्य करता है। परतत्त्वकी स्वरूपशक्तिकी छायाशक्तिका नाम अविद्याशक्ति है।

जड़जगत्‌की यह अधिकर्त्री है। इसी शक्तिके द्वारा आक्रान्त होकर जीव स्थूलशरीरमें 'मैं' एवं स्थूलशरीर-सम्बन्धी वस्तुओंमें आत्मबुद्धि रखनेके कारण जड़जगत्‌में बद्ध होकर मायावादका आश्रय ग्रहण करता है। मायावादकी मान्यता है कि ब्रह्म निर्विशेष, निःशक्तिक, निर्गुण है, अतः माया नामकी कोई भी शक्ति नहीं है। यह अविद्या या माया सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीय है। मायिक युक्तियोंका आश्रय लेकर मायावादी यह भी कहते हैं कि जीव ही ब्रह्म है। माया या अविद्याकी विक्रियासे ब्रह्म ही जीवरूपमें दृष्टिगोचर होता है। जब तक माया है, जीव रहेगा। ऐसे मायिक विचार रखनेवाले व्यक्ति ही मायावादी हैं। इनके विचारसे ईश्वर भी मायाग्रस्त तत्त्व हैं। ऐसी दशामें ईश्वर और जीवमें वस्तुतः पार्थक्य ही क्या रहा? उनके विचारके अनुसार मायाच्छादित ईश्वर कर्मफलसे अतीत होते हैं और जीव कर्मफल भोग करनेके लिए बाध्य होता है। किन्तु ऐसा मानना शास्त्र-विरुद्ध एवं अयौक्तिक है।

वेदोंका विभाग करनेवाले वेदान्तसूत्रके रचयिता त्रिकालज्ञ श्रीकृष्ण द्वैपायन श्रीवेदव्यासने स्वरचित पद्मपुराणमें मायावादके असत् और अवैदिक होनेकी घोषणा की है—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।

और

वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव विहितं देवि! जगतां नाशकारणात्॥
स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा॥

(पद्मपुराण)

शङ्कर सम्प्रदायके कुछ विद्वानोंका यह अभिमत है कि वैष्णव आचार्योंने ईर्ष्यावश शङ्कराचार्यको प्रच्छन्न-बौद्ध और शाङ्करमतको प्रच्छन्न-बौद्धमत कहा है। परन्तु उनका यह अभिमत भ्रान्त है, क्योंकि विज्ञान-भिक्षु प्रमुख सांख्यके दार्शनिक पण्डित, पातञ्जलमतके दार्शनिक

योगीगण, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीकृष्णदास कविराज, श्रीबलदेव विद्याभूषण आदि प्रमुख आचार्योंने, यहाँ तक कि बौद्ध पण्डितोंने भी शङ्करको बौद्ध विचारधाराके परिपोषकके रूपमें ग्रहण किया है। यहाँ आचार्य शङ्करके मत और बौद्धमतका ऐक्य प्रदर्शन किया जा रहा है—

(ख) क्या जगत् मिथ्या है?

बौद्धमतसे जगत् शून्य तत्त्व है। जगत्का आदि, मध्य और अन्त—सभी शून्य है। इसके द्वारा जगत्की त्रैकालिक मिथ्यता ही प्रतिपन्न होती है।

आचार्य शङ्करने भी जगत्का कारण त्रिकालशून्य एक तत्त्वको स्वीकार किया है। उस तत्त्वका नाम अविद्या है। यह अविद्या सत्-असत्-विलक्षण एक अनिर्वचनीय तत्त्व है अर्थात् अविद्या न तो सत् है और न असत्—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

निद्रामोहात् स्वप्नवत् तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम्।

(आत्मपञ्चक—३य श्लोक)

अतः बौद्धोंका शून्य और आचार्य शङ्करका स्वप्नवत् मिथ्या—दोनों एक ही हैं। केवल शब्दमात्र पृथक्-पृथक् हैं। बुद्धके त्रिकालशून्यत्वके साथ आचार्य शङ्करके सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीयत्वका कुछ भी भेद नहीं है।

(ग) मोक्षका उपाय

बौद्ध महायान शाखाके अनेक ग्रन्थोंमें 'प्रज्ञा पारमिता' को मोक्षका एकमात्र उपाय बताया गया है। सारे विश्वको दुःखमय, दुःखदायक समझकर उसकी आत्यन्तिक निवृत्तिके लिए तत्त्वज्ञानको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये—इस तत्त्वज्ञानका नाम ही 'प्रज्ञा-पारमिता' है।

आचार्य शङ्करके मतसे भी जगत् मिथ्या होनेपर भी अत्यन्त क्लेशपूर्ण और दुःखदायी है। इस दुःखपूर्ण जगत्से दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। ब्रह्म और जीव अथवा ब्रह्म और प्रपञ्चका अभिन्नत्व

ज्ञान ही भवमोक्षका कारण है। बिना तत्त्वज्ञानके यह अभिन्नत्व सिद्ध नहीं होगा। यह तत्त्वज्ञान या ब्रह्मज्ञान ही अविद्याके आत्यन्तिक विनाशका कारण है। इन दोनोंके विचारोंका विवेचन करनेसे प्रमाणित होता है कि बुद्धकी प्रज्ञा और आचार्यका ब्रह्मज्ञान एक ही चीज है। प्रज्ञा और ब्रह्मज्ञानमें कोई भी पार्थक्य नहीं है—ऐसा दिखलानेके लिए ही आचार्य शङ्करने तैत्तिरीय उपनिषदके 'प्रज्ञानं ब्रह्म' मन्त्रको उद्धृतकर सर्वत्र ही उक्त मतका अनुमोदन किया है। इस तरह आचार्य शङ्करने बौद्धमतकी प्रज्ञा या 'प्रज्ञा-पारमिता' का अनुसरणकर तत्त्वज्ञान (ब्रह्म-जीव ऐक्यवाद) का प्रचार किया है।

बौद्धोंके शून्य और शङ्करके ब्रह्ममें कोई अन्तर नहीं है। बौद्धोंके प्रज्ञापारमिता सूत्रके १९ वें श्लोकमें शून्यतत्त्वरूप परम निर्वाणके सम्बन्धमें लिखा गया है—

शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुं निर्णिमित्तां निरञ्जनाम्।
सर्ववाग् विषयातीतां या त्वं क्वचिदनिश्रिता॥

उक्त श्लोकसे जाना जाता है कि शून्यतत्त्व निर्निमित्त, निरञ्जन, अनिश्रित और वाणीसे अगोचर है। शून्य ही अक्षर है, वही अप्रमेय है। इन वचनोंसे यह विदित होता है कि अप्रमेय, अक्षय, अनिमित्त, अज, अभाव, अनिश्रित, अनिरोध, निर्निमित्त, निरञ्जन, निर्वाण, निरवद्य—ये सब शून्यतत्त्वके लक्षण हैं। इन लक्षणोंकी भलीभाँति विवेचना करनेपर शङ्करके निर्विशेष, निःशक्तिक, निरञ्जन, निराकार, निर्गुण ब्रह्म-तत्त्वका बौद्धोंके शून्यतत्त्वसे कुछ भी भेद प्रतीत नहीं होता। यहाँ तक कि आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मको शून्य बताया है—

द्रष्ट्दर्शनदृश्यादिभाव<u>शून्यैक</u> वस्तुनि।
निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमक्षरः।
परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥

अमरकोषमें बुद्धको अद्वयवादी कहा गया है और शङ्कराचार्यके अनुगामी स्वयंको केवलाद्वैतवादी कहते हैं, अतः इस विषयमें भी दोनोंमें

एकता है। अतः पाठकगण स्वयं ही विचार कर सकते हैं कि शङ्कर और बुद्धके विचारमें कोई भेद नहीं है।

अद्वयवाद और अद्वैतवादमें कोई विशेषभेद नहीं रहनेपर भी आचार्य शङ्करने अपने मतवादका नाम अद्वयवाद (बौद्धवाद) न रखकर अद्वैतवाद रखा। यद्यपि वे भीतर-ही-भीतर इस बातको पूर्णतया जानते थे कि वे बौद्ध हैं, फिर भी उन्होंने इस बातको क्यों छिपाया? इसका कारण उनके दार्शनिक विचारोंका भेद होना नहीं, बल्कि उनके आराध्य देव श्रीभगवान्‌का आदेश ही इसका मूल कारण है। 'शङ्करः शङ्करः साक्षात्' अर्थात् आचार्य शङ्कर परम वैष्णव और भगवान्‌के प्रिय साक्षात् शङ्करके अवतार हैं। वे वैष्णवोंके गुरु हैं। जिस समय वे भारतमें प्रकट हुए उस समय साधारण जनता बौद्धोंके शून्यवादके चक्करमें पड़कर वर्णाश्रमधर्मसे विचलित हो रही थी। ब्राह्मण लोग भी बौद्धधर्म ग्रहणकर वैदिक धर्मका परित्याग करते जा रहे थे। उस समय असाधारण शक्तिसम्पन्न शङ्करके अवतार शङ्कराचार्यने उदित होकर वेदोंके सम्मानकी स्थापना की और शून्यवादको ब्रह्मवादमें परिणत कर दिया। उनका यह कार्य असाधारण था। इस महान कार्यके लिए भारतवर्ष श्रीशङ्कराचार्यका सदा ऋणी रहेगा। यद्यपि उनका यह कार्य तात्कालिक था, फिर भी उन्होंने ब्रह्मवादकी जो भित्ति स्थापित की, उसी भित्तिके ऊपर श्रीरामानुज, श्रीमध्व आदि आचार्योंने वैष्णवधर्मका विराट महल खड़ा किया। हमने पहले ही श्रीशङ्करके प्रति भगवान्‌के आदेशका उल्लेख किया है। भगवान् विष्णु श्रीरुद्रसे कह रहे हैं—

माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।

(पद्मपुराण)

(घ) मायावादका इतिहास

आचार्यकेसरीने सत्ययुगसे लेकर कलिकालके वर्त्तमान युग तक मायावादके इतिहासका अनुसन्धानकर उसपर एक विहंगम दृष्टि डाली है। दार्शनिक विद्वानोंका यह विचार है कि आचार्य शङ्करसे पूर्वका अद्वैतवाद एवं आचार्य शङ्कर द्वारा प्रवर्तित निर्विशेष केवलाद्वैतवाद एक

नहीं है। शङ्करसे पूर्वका अद्वैतवाद वैदिक है। वेदों एवं उपनिषदोंमें इसका कुछ परिचय मिलता है। उनका ब्रह्म औपनिषदिक ब्रह्म कहलाता है। वह निःशक्तिक और निर्विशेष नहीं है। उसमें जगत्को भी झूठा नहीं, नश्वर बताया गया है। सनक, सनातन आदि चारों कुमार एवं शुकदेव गोस्वामी ऐसे ही निर्गुण ब्रह्ममें प्रतिष्ठित थे। इनका ब्रह्म सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीय नहीं था। बादमें शुद्ध वैष्णवोंकी कृपासे ये शुद्धभक्तिमें प्रतिष्ठित हुए।

चारों कुमारोंका ज्ञानयोग कुछ-कुछ शुद्धाभक्तिके प्रतिकूल पड़ता था। उनके पिता ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भगवान्ने हंसरूपमें अवतीर्ण होकर इन्हें भक्तियोगकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवत सप्तम-स्कन्धमें यह प्रसङ्ग वर्णित है।

भगवान्के शक्त्यावेशावतार श्रीवेदव्यासकी कृपासे निर्गुणवादी श्रीशुकदेव गोस्वामीने शुद्धाभक्तिमें प्रवेश किया—इसे स्वयं श्रीशुकदेव गोस्वामीने प्रथम-स्कन्धमें स्वीकार किया है।

(ङ) सत्ययुगमें अद्वैतवाद

सत्ययुगमें वास्कलि नामक एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी थे। इनके गुरुका नाम बाध्व था। श्रीशङ्कराचार्यजीने ब्रह्मसूत्र (३/२/१७) के भाष्यमें बाध्व और वास्कलिके संवादको प्रमाणके रूपमें स्वीकार किया है। वास्कलि कौन थे? ये हिरण्यकशिपुके पुत्र अनुह्लादके पुत्र थे। स्वभावतः ये हिरण्यकशिपुकी भाँति एक भयङ्कर असुर थे। मायावादके इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण युग-युगमें पाये जाते हैं। बड़े-बड़े असुर—सभी अद्वैतवादी या मायावादी थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि मायावाद-चिन्तास्रोतका आदर असुर और राक्षसकुलमें विशेष रूपसे होता आया है। निरपेक्ष और सरल हृदयवाले ऋषि-मुनि, जिन्होंने अद्वैतवाद स्वीकार किया था, भगवत्-अवतारोंने कृपाकर उनके हृदयको शोधितकर मायावादके कराल कवलसे उनकी रक्षा की थी। किन्तु कठिन हृदयवाले असुरलोग अत्यन्त कट्टर अन्ध-विश्वासी होनेके कारण भक्तितत्त्वके अधिकारी नहीं हो सके। इसलिए भगवत्-अवतारोंने उक्त असुरोंका पूर्ण रूपसे विनाशकर भक्तितत्त्वकी रक्षा की है। भगवान्

वामनदेवने वास्कलि या वास्कलके आसुर यज्ञमें आविर्भूत होकर उसका उद्धार किया था।

(च) त्रेतायुगमें निर्विशेष अद्वैतवादकी परिणति

वशिष्ठ

त्रेतायुगमें श्रीवशिष्ठ मुनि अद्वैतवादके प्रधान आचार्य थे। ये सूर्यवंशी राजाओंके कुलगुरु थे। वशिष्ठजी ब्रह्मज्ञानी मुनि थे, इस विषयमें कहीं भी कोई मतभेद नहीं है। योगवाशिष्ठ रामायण इसका अकाट्य प्रमाण है। ब्रह्मवादी वशिष्ठ मुनि अपने शिष्योंको निर्भेद ब्रह्मकी शिक्षा दिया करते थे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने कुलगुरुको ब्रह्मवादके भीषण अरण्यमें भटकते हुए देखकर बड़े दुःखी हुए और कृपाकर उस अरण्यसे उनका उद्धार किया। उन्होंने श्रीरामचन्द्रकी सेवामें आत्मनियोग किया।

रावण

शङ्कर सम्प्रदायके विशेष दार्शनिकगण दशानन रावणको अद्वैत सिद्धान्तका आदि भाष्यकार मानते हैं। अतएव राक्षस कुलपति रावणको अद्वैतवादी कहा जा सकता है।

पुलस्त्य ऋषिके पुत्र विश्रवा ऋषि ब्रह्मावर्तका त्यागकर कुछ दिन लङ्कामें रहे। उन्होंने वहाँ एक राक्षसकन्यासे विवाह किया। उसी कन्यासे रावणकी उत्पत्ति हुई। इसलिए रावणको अर्द्ध–ऋषि और अर्द्ध–राक्षस कहा जा सकता है। बौद्ध सम्प्रदायके लङ्कावतारसूत्रसे यह पता चलता है कि रावण एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी एवं शून्यवादी ऋषि थे। ब्रह्मकी शक्तिका अपहरणकर उसे निःशक्तिक ब्रह्मके रूपमें स्थापनकी चेष्टा ही मायावादियोंको अभीष्ट है। रावणके अन्तःकरणमें परब्रह्म श्रीरामकी शक्ति सीतादेवीके अपहरण करनेकी चेष्टा देखी जाती है। उसके इस अपराधके लिए परम भक्त हनुमानने रावणके अन्तःकरणमें भक्ति–सिद्धान्तरूप एक जोरका घूँसा मारा, जिससे उसका अद्वैतज्ञान लुप्त हो गया। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। फिर श्रीरामचन्द्रजीने वेदध्वनिरूप अमोघ वाणसे उसका निर्वाणदशक सिर काट डाला। इस प्रकार रावणका उद्धार हुआ।

(छ) द्वापरयुगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति

श्रीशुकदेव गोस्वामी

श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके पुत्र थे। उनकी माता बीटिकादेवी जवालि ऋषिकी कन्या थी। बारह वर्ष तक ये माताके गर्भमें रहे। पिताकी प्रार्थनासे माताका क्लेश दूर करते हुए मायामुक्त अवस्थामें ये भूमिष्ठ हुए। श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराणमें शुकदेवकी जन्मकथाका विस्तारसे वर्णन है। ये जन्मसे ही निर्गुण ब्रह्ममें परिनिष्ठित थे। किन्तु शक्त्यावेश अवतार श्रीलवेदव्यासकी कृपासे ये परम रसिक एवं भावुक भक्त हुए। इन्होंने अभिशप्त परीक्षित् महाराजजीको श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी थी। इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी निर्गुण ब्रह्मज्ञानी होनेपर भी श्रीव्यासदेवकी कृपासे निर्गुण ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा उत्तमश्लोक भगवान्की मधुर लीलाओंकी श्रेष्ठताकी उपलब्धिकर शुद्धभक्तिकी ओर आकर्षित हुए थे। एकमात्र स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी मधुररसपूर्ण कथाओंसे परिपूर्ण श्रीमद्भागवतके श्रवण और कीर्त्तन आदिके द्वारा ही जीवोंका परम कल्याण हो सकता है, ऐसा समझकर इन्होंने श्रद्धालु परीक्षित् महाराजको श्रीमद्भागवतका ही उपदेश प्रदान किया था। इन्होंने परीक्षित्को ब्रह्मज्ञानका उपदेश नहीं किया, क्योंकि ब्रह्मज्ञानसे जीवोंका आत्यन्तिक कल्याण असम्भव है। श्रीशुकदेव गोस्वामीने स्वयं ही श्रीमद्भागवतमें स्वीकार किया है—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःऽश्लोकऽलीलया।
गृहीत चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥

(श्रीमद्भा॰ २/१/९)

कंस

महाराज उग्रसेनकी पत्नी पद्माके गर्भसे तथा द्रुमिल दैत्यके वीर्यसे कंसका जन्म हुआ था। इसलिए उसका स्वभाव दैवीगुणसम्पन्न महाराज उग्रसेनकी भाँति न होकर राक्षसराज द्रुमिलके आसुरिक स्वभाव जैसा था। कंस पिताको कैदकर स्वयं राजा बन बैठा। इसकी चचेरी बहन देवकीका विवाह वसुदेवजीके साथ हुआ था। विवाहके समय अचानक

एक दैववाणी हुई कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न आठवीं सन्तान कंसको मारेगी। नास्तिक कंसने दैववाणीको मिथ्या करनेके लिए देवकीको मारना चाहा। अन्तमें फिर कुछ सोच-समझकर देवकी और वसुदेवको कारागृहमें बन्द कर दिया। उसने सोचा भगवान् रूप धारणकर ज्योंही आठवें गर्भसे पैदा होंगे, मैं उनका विनाश कर दूँगा। मायावादी भगवत्-विग्रहके विरोधी होते हैं। वे भगवान्‌का रूप स्वीकार नहीं करते। शरीर धारण करना मायाका कार्य है, अविद्याके धर्मका नाश करना ही मोक्ष है, यही मायावादियोंका सिद्धान्त है। कंसका भी विचार यही था। भगवान् श्रीविष्णु (कृष्णचन्द्र) भी मायिक शरीर धारणकर पैदा होने जा रहे हैं, अतः उनका विनाश करना बहुत ही आसान हो जायेगा। उसे यह मालूम नहीं था कि अप्राकृत वस्तु इन्द्रिय आदि प्राकृत वस्तुसे अगोचर है। भगवान् श्रीकृष्णने उसे और उसके अनुचर पूतना, अघ, वक, तृणावर्त, प्रलम्ब आदिका बधकर अपने विग्रहका वैशिष्ट्य स्थापित किया।

श्रीकृष्णसंहिताके चतुर्थ अध्यायमें कंस और प्रलम्बासुरको प्रच्छन्न बौद्ध और मायावादी कहा गया है। कृष्ण और बलदेवने उनका विनाशकर नास्तिक मायावादके कराल कवलसे जीवोंकी रक्षा की थी।

देवकीमगृहीत् कंस नास्तिक्य-भगिनीं सतीं।
प्रलम्बो जीवचौरस्तु शुद्धेन शौरिणा हतः।
कंसेन प्रेरितो दुष्टः प्रच्छन्न बौद्धरूपधृक्॥

(कृष्णसंहिता)

अर्थात् वसुदेवने नास्तिक्यकी प्रतिमूर्त्ति कंसकी बहन देवकीसे विवाह किया था एवं उस कंसके द्वारा भेजे गये प्रच्छन्न बौद्धमत मायावादस्वरूप जीवचौर दुष्ट प्रलम्बासुरका श्रीबलदेवजीने वध किया था।

उपरोक्त श्लोकमें 'जीवचौर' शब्दकी सार्थकता यह है कि बौद्ध भी मायावादियोंकी भाँति यह मानते हैं कि ब्रह्म ही अविद्या ग्रस्त होनेपर जीव होता है अर्थात् अविद्याग्रस्त ब्रह्म ही जीवस्वरूपमें दृष्टिगोचर होता है। इस स्वरूप अर्थात् विग्रहका अपहरण करना ही चोरी है। विग्रहका विनाश तथा जीवत्वका हरण करना ही असुरोंका स्वभाव

है। इसलिए ये लोग मायावादी नास्तिक और जीवचौर हैं। कृष्ण-बलरामने द्वापरयुगमें भी इस प्रकार अद्वैतवादका विनाशकर वैष्णवधर्मकी पुनः स्थापना की।

(ज) कलियुगमें अद्वैतवाद या मायावाद

ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व शाक्यसिंह गौतम बुद्धका जन्म हुआ था। ईश्वर और वेद दोनोंको अस्वीकारकर शून्यवादका प्रचार करनेके कारण भारतीय दार्शनिकोंने इन्हें नास्तिक कहा है। इस बुद्धदेवका मतवाद ही बौद्धवाद है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि कीकट प्रदेश अर्थात् गयामें अञ्जन या अजिनके पुत्रके रूपमें विष्णु बुद्ध एवं कपिलवस्तुमें शुद्धोधन और मायादेवीके पुत्रके रूपमें गौतम बुद्ध दो व्यक्ति हैं। विष्णु बुद्धके जन्मस्थल बोधिसत्व (गया) में गौतम बुद्धको तत्त्वज्ञान (?) प्राप्त हुआ था। बौद्धोंके प्रसिद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ अमरकोष, प्रज्ञापारमितासूत्र, ललितविस्तार आदि ग्रन्थोंमें दो बुद्धोंका उल्लेख देखा जाता है। विस्तृत जानकारीके लिए 'मायावादकी जीवनी' द्रष्टव्य है।

अतः यह निश्चित है कि श्रीमद्भागवत, लिंगपुराण, भविष्यपुराण तथा वराहपुराणमें उल्लिखित दशावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें नवम अवतारस्वरूप जिस बुद्धका उल्लेख पाया जाता है, वे शुद्धोधनके पुत्र गौतम बुद्ध नहीं हैं। श्रीमद्भागवत (१०/४०/२२) में 'नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्य-दानव-मोहिने।' इस मन्त्रके द्वारा विष्णु बुद्धको प्रणाम किया गया है। इनका जन्म कलिके प्रारम्भमें 'कलौ प्राप्ते यथा बुद्धौ भगवन्नारायणः प्रभु' आजसे लगभग ३५०० वर्ष पूर्व गयामें हुआ था। किन्तु नास्तिक गौतम बुद्धका जन्म ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व हुआ था। अतः दोनों एक व्यक्ति नहीं हो सकते। विष्णु बुद्ध नास्तिक नहीं थे। उन्होंने वेदोंमें लिखित जीवहिंसाका प्रतिवाद किया था। किन्तु गौतम बुद्ध सम्पूर्ण रूपसे वेद और ईश्वर दोनोंको अस्वीकार करनेवाले पूर्ण नास्तिक व्यक्ति थे। बौद्धमतसे यह जगत् मिथ्या है, हमने पहले ही यह सिद्ध किया है। शङ्कराचार्यने शब्दोंका हेर-फेरकर बड़ी चतुराईसे इन्हींके विचारोंको ग्रहणकर जगत्में मायावादके नामसे प्रचार किया है।

आचार्य शङ्कर

आचार्य शङ्करके गुरु गोविन्दपाद हैं और गोविन्दपादके गुरु गौड़पाद हैं। गोविन्दपाद द्वारा रचित कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। असलमें गौड़पाद ही शङ्कराचार्यके गुरु हैं। गौड़पाद एक प्रसिद्ध शून्यवादी थे। गौड़पादका नाम मायावादके इतिहासमें अत्यन्त उल्लेखयोग्य है। सांख्य-कारिका और माण्डुक्य कारिका मायावादके प्राण हैं। आचार्य शङ्करने माण्डुक्य कारिकापर भाष्य लिखा है। अतः शङ्कराचार्य वास्तवमें गौड़पादके अनुयायी एवं उन्हींके शून्य-मतवादके प्रचारक हैं। यद्यपि शङ्कराचार्यने बहुत-से स्मार्त, शैव, शाक्त, कापालिक विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर उन्हें अपना शिष्य बनाया था, किन्तु उन्होंने किसी वैष्णव आचार्य या विद्वानको कभी पराजित नहीं किया। किसी भी वैष्णवने उनसे पराजित होकर वैष्णवमतको छोड़कर अद्वैतवाद ग्रहण किया हो, ऐसा इतिहासमें कहीं भी उल्लेख नहीं है।

'शब्दार्थ-मञ्जरी' नामक ग्रन्थके लेखक श्रीशिवनाथशिरोमणिने अपने इस ग्रन्थमें शङ्कराचार्यके जीवनपर प्रकाश डाला है। उन्होंने उल्लेख किया है कि शङ्कर अपने जीवनके अन्तिम समयमें तिब्बतके बौद्ध लामाके साथ शास्त्रार्थमें पराजित हुए। लामा तत्कालीन बौद्धोंमें जगद्गुरुके नामसे विख्यात थे। शास्त्रार्थके प्रारम्भमें दोनोंने प्रतिज्ञा की थी कि जो हार जायेगा वह खौलते हुए तेलके कड़ाहमें गिरकर प्राण परित्याग करेगा। आचार्य शङ्करने शास्त्रार्थमें पराजित होकर पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार खौलते हुए तेलके कड़ाहमें आत्मविसर्जन किया। इस प्रकार ८१२ ई० (?) में जगत्की एक उज्ज्वल ज्योति श्रीशङ्कराचार्यका अवसान हुआ।

शङ्कराचार्यके पश्चात् यादवप्रकाश, श्रीधरस्वामी, श्रीबिल्वमङ्गल, त्रिविक्रमाचार्य, प्रकाशानन्द सरस्वती, वासुदेव सार्वभौम, श्रीमधुसूदन सरस्वती आदि केवलाद्वैतवाद या मायावादके बड़े-बड़े आचार्य शुद्ध वैष्णव आचार्योंसे शास्त्रार्थमें पराजित या प्रभावित होकर केवल विष्णुको परतमत्व ही स्वीकार नहीं किया है, अपितु ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकी उत्कर्षता अङ्गीकारकर तथा केवलाद्वैतवादका परित्यागकर भक्तिधर्ममें दीक्षित भी हुए हैं।

(झ) निर्वाणकी अलीकता

हमने पहले ही यह दर्शाया है कि मायावादके आद्योपान्त इतिहास और तत्त्वसमूहकी समालोचना सर्वथा ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधार पर ही की गयी है। मायावादकी भित्ति अत्यन्त दुर्बल युक्तियोंके आधार पर टिकी है और यही कारण है कि सत्ययुगसे लेकर आज तक वह अपने प्रतिपक्षियोंके समक्ष वाग्युद्धमें अपनी पराजय स्वीकार करता आया है। फिर भी प्राचीनकालमें भी इस मतवादका अस्तित्व लक्ष्यकर कोई इसका पदाङ्क-अनुसरण कर निर्वाण प्राप्त करना चाहे तो हमारा वक्तव्य है कि मायावादकी निर्वाण मुक्ति सम्पूर्ण मिथ्या और कल्पनामूलक शब्दमात्र है—इसे केवल ऐतिह्य प्रमाणोंके आधार पर ही निःसन्देह रूपमें प्रमाणित किया जा सकता है। वास्तवमें निर्वाण नामक ऐसी कोई अवस्था ही नहीं है, जिसे जीव कभी भी प्राप्त कर सके। अद्वैतवादियोंमेंसे आज तक कोई भी उस अवस्थाको प्राप्त हुआ हो—इसका एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है। गौड़पाद, गोविन्दपाद, आचार्य शङ्कर और माधव जैसे प्रकाण्ड मायावादियोंकी जीवनीकी आलोचना करनेसे हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि इनमेंसे कोई भी उनके द्वारा समर्थित निर्वाण मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सका था। आचार्य शङ्करके जीवनचरित्रके अनुसार एक दिन आचार्य शङ्कर ध्यानमें मग्न थे। उसी समय उनके दादागुरु श्रीगौड़पाद उनके निकट आकर बोले—"शङ्कर! मैंने तुम्हारे गुरुदेव आचार्य गोविन्दपादके निकट तुम्हारी खूब प्रशंसा सुनी है। मैंने यह भी सुना है कि तुमने मेरी माण्डुक्य कारिकाके ऊपर एक सुन्दर भाष्यकी रचना की है। मैं उसे देखना चाहता हूँ।" आचार्य शङ्करने तत्क्षण उक्त कारिकापर अपना लिखा हुआ भाष्य उन्हें दिखलाया। गौड़पाद उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसका अनुमोदनकर चले गये।

उपर्युक्त घटनासे यह पता चलता है कि गौड़पाद और गोविन्दपादकी विदेहमुक्तिके बाद निर्वाण मुक्ति नहीं हुई थी। यदि उनकी निर्वाण मुक्ति हुई होती तो गौड़पाद निर्वाण मुक्ति प्राप्त होनेपर भी निर्वाण प्राप्त गोविन्दपादके मुखसे शङ्कर-सम्बन्धी बातोंको कैसे सुन सकते थे? दूसरी बात, आचार्य शङ्कर भी माण्डुक्य कारिकापर अपना लिखा हुआ भाष्य

निर्वाण प्राप्त हुए गौड़पादको कैसे दिखला सके थे? ये दोनों बातें सर्वतोभावेन असम्भव हैं। यदि हम उक्त घटनाको सत्य मानते हैं, तो मायावादियोंकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्ति मिथ्या जान पड़ती है, दूसरी तरफ यदि हम उनकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्तिको सत्य मानते हैं, तब उक्त घटना मिथ्या या काल्पनिक प्रतीत होती है। मायावादियोंने निर्वाण मुक्तिका जो लक्षण बतलाया है, उसपर विचार करनेसे उक्त घटनाका कुछ अंश सत्य मान लेनेपर भी उक्त दोनों मायावादी आचार्योंकी निर्वाण मुक्ति अलीक ही प्रतीत होती है। उनलोगोंकी बातें छोड़िये, श्रीशङ्करकी जीवनीके अनुसार स्वयं शङ्कर भी पुनः माधवाचार्य अर्थात् विद्यारण्यके रूपमें आविर्भूत हुए थे। क्या निर्वाण मुक्तिकी यही परिणति है? मायावादियोंका कथन है कि निर्वाण मुक्तिके अनन्तर ब्रह्मके अतिरिक्त जीवकी कोई पृथक् सत्ता नहीं रहती और वह ब्रह्म भी निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय व निर्विशेष आदि होता है। ऐसी अवस्थामें जब गौड़पाद, गोविन्दपाद और शङ्कराचार्यकी पृथक्-पृथक् रूपमें सत्ता देखी जाती है, तो किस युक्तिके आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि इनलोगोंकी निर्वाण मुक्ति हुई थी? मायावादी आचार्योंके निर्वाण मुक्तिके सम्बन्धमें आज तक कोई भी ऐसा सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होता, जिससे निर्वाणके पश्चात् भी परस्पर वार्त्तालाप और पुनराविर्भाव सम्भव माना जा सके। इससे स्पष्ट है कि निर्वाण मुक्ति एक मिथ्या और छलनामूलक शब्दमात्र है अथवा लोक-संग्रह करनेका फंदामात्र है, क्योंकि निर्वाण मुक्तिके प्रधान-प्रधान प्रचारक—यहाँ तक कि जिन्हें इस मतका प्रवर्त्तक कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी, इस प्रकारकी कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके हैं। फिर दूसरोंकी बातका क्या कहना?

श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम्

जिस समय श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीकी प्रतिष्ठा हुई, उस समय श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण इन दोनों श्रीविग्रहोंको एक ही जैसे वर्णमें प्रकाशित होते हुए देखकर कुछ वैष्णवोंने इसका

कारण उनसे पूछा। उन्होंने उनसे यह पूछा कि हमारे गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें या अन्यत्र सभी स्थलोंमें श्रीराधिका-विग्रह श्वेतप्रस्तरमय एवं श्रीकृष्णविग्रह कृष्णप्रस्तरमय देखा जाता है। किन्तु आपके द्वारा प्रकाशित ये दोनों श्रीविग्रह श्वेतप्रस्तरमय क्यों हैं? उत्तरमें उन्होंने साथ-ही-साथ श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम्‌की रचनाकर उनके प्रश्नोंका अपूर्व सुन्दर रूपसे समाधान किया था। इस तत्त्वाष्टकमें परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने गागरमें सागरकी भाँति बहुत ही गम्भीर श्रीराधातत्त्व, श्रीकृष्णतत्त्व, प्रेमतत्त्व, रसतत्त्व तथा सर्वोपरि रूपानुग विचार-धाराको अनूठे ढङ्गसे पिरो रखा है। नीचे हम व्याख्याके द्वारा उनके भावोंको शाखाचन्द्र-न्यायसे कुछ प्रकाश करनेकी चेष्टा कर रहे हैं—

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम॥ १॥

अनुवाद—किसी समय महाभावके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीमती राधिकाके हृदयमें मान उदित होनेपर उनके विरहमें अतिशय चिन्तामें विभोर होनेके कारण जिनकी श्यामकान्ति विलुप्त होकर श्रीमती राधिका जैसी गौर-कान्ति हो गयी थी, उन राधालिङ्गित—राधाचिह्नित विग्रह श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी हम वन्दना करते हैं। अथवा मान भङ्ग होनेपर श्रीमती राधिकाके द्वारा आलिङ्गित गौरकान्तिसे सुशोभित श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी हम वन्दना करते हैं॥ १॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

इस श्लोकमें 'राधालिङ्गित' पदके दो तात्पर्य हैं—पहला 'राधया लिङ्गित' अर्थात् श्रीराधाके द्वारा लिङ्गित या चिह्नित। दूसरा 'राधया आलिङ्गित' अर्थात् श्रीराधाके द्वारा आलिङ्गित। श्रीमती राधिकाके मान करनेपर विरहकी अवस्थामें धीरललित नायक श्रीकृष्ण उनकी चिन्तामें जब सम्पूर्ण रूपसे तन्मय हो जाते हैं, उस समय उनकी अपनी स्वाभाविक उज्ज्वल नीलकान्ति तिरोहित हो जाती है तथा जिनकी चिन्तामें वे विभोर रहते हैं, उन श्रीमती राधिकाकी गौरकान्तिको वरवश धारण कर लेते हैं अर्थात् उनकी गौरकान्ति हो जाती है। इसके लिए उन्हें

तनिक भी चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। अपने आप ही ऐसा हो जाता है। जैसे कोई 'भृङ्गी' नामक बलवान कीट, किसी तेलचट्टा नामक दुर्बल कीटको बलपूर्वक पकड़कर अपने माँदमें बन्द कर देता है तथा एक प्रकारका ऐसा अनोखा शब्द करता है, जिसे सुनकर वह दुर्बल कीट भयभीत होकर भृङ्गीकीटके स्वरूपकी चिन्ता करते-करते ठीक भृङ्गी कीट जैसा ही शरीर धारण कर लेता है। दूसरा उदाहरण भरत महाराजजीका भी दिया जा सकता है। महाराज भरत मृत्युके समय एक हिरण शिशुकी चिन्ता करनेके कारण दूसरे जन्ममें हिरण शरीरको प्राप्त हुए। ठीक इसी भाँति श्रीमती राधिकाकी चिन्ता करते-करते श्रीकृष्णने भी श्रीमती राधिकाकी स्वर्णकान्तिको धारण कर लिया है, इसमें तनिक भी शङ्काकी बात नहीं है।

वाराहसंहितामें ऐसे ही एक प्रसङ्गका वर्णन मिलता है, जो वराहदेव एवं धरणीके संवादके रूपमें हैं। श्रीवराहदेव कह रहे हैं कि वृन्दावनमें यमुनाके तटपर एक बहुत ही विशाल वटका वृक्ष है। उसकी शाखा-प्रशाखाएँ चारों ओर बहुत दूर तक फैली हुई हैं। जिसमें तरह-तरहके पक्षी सदैव कलरव करते रहते हैं। उस वृक्षकी जड़के चारों तरफ एक अत्यन्त सुन्दर वेदी बनी हुई है, जिसके ऊपर श्रीश्रीराधाकृष्ण विहार करते हैं। किसी समय यमुना पुलिनमें श्रीकृष्ण सखियोंके साथ रासलीलाका आस्वादन कर रहे थे। करोड़ों गोपियाँ उनके सङ्ग नृत्य कर रही थीं। उस समय वे कभी एक गोपीके साथ तो कभी दूसरी गोपीके साथ भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगे। कभी एकका आलिङ्गन करते, तो कभी दूसरीका। कभी श्रीमती राधिकाके साथ तो कभी औरके साथ नाना प्रकारसे विलास कर रहे थे। श्रीमती राधिका अपने जैसा ही अन्यान्य गोपियोंके साथ नृत्य और आलिङ्गन करते हुए देखकर तथा अन्यान्य गोपियोंसे अपनी कुछ उत्कर्षता न देखकर श्रीकृष्णके प्रति रुष्ट हो गयीं एवं साथ-ही-साथ रासस्थलीको छोड़कर समीपके किसी कुञ्जमें छिप गयीं। इधर कृष्ण कुछ क्षणके पश्चात् ही श्रीमती राधिकाको रासमण्डलीमें न देखकर व्याकुल हो उठे। वे सोचने लगे, जिसके लिए यह रासविलास है, वे मेरी प्राणप्रिया

मुझे छोड़कर कहाँ चली गयीं? कोटि-कोटि गोपियोंके सङ्ग नृत्य एवं विलास उनके चित्तको एक क्षणके लिए भी हरण नहीं कर सके। वे तत्क्षण रासमण्डलीको छोड़कर विरह व्याकुल होकर "हे राधे तुम कहाँ हो" कहते हुए कुञ्ज-कुञ्जमें अन्वेषण करने लगे। इस प्रकार वे सर्वकान्ताशिरोमणि श्रीमती राधिकाका अन्वेषण करते-करते कालिन्दीके तटपर उपस्थित हुए। अब तक वे उन्हें खोजते-खोजते क्लान्त और निराश हो चुके थे। वहीं इमली वृक्षकी छायामें अतिशय रमणीय कुञ्जके भीतर बड़े विह्वल होकर राधानामका मन्त्र जपने लगे। कभी-कभी बड़े विशाद ग्रस्त होकर "हा, हा प्राणेश्वरि! मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी?" इस प्रकार पुकारने लगे—

राधा विश्लेषतः कृष्णः ह्येकदा प्रेमविह्वलः।
राधामन्त्रं जपन् ध्यायन् राधा सर्वत्र पश्यति॥

(वाराहसंहिता)

इस प्रकार श्रीमती राधिकाजीके विरहमें व्याकुल होकर राधामन्त्र जप करते-करते तथा उनका सर्वतोभावेन चिन्तन (ध्यान) करते-करते अन्तर और बाहर राधामय हो गये। सर्वत्र राधाकी ही स्फूर्ति होने लगी। उनकी अङ्गकान्ति भी ठीक राधाजी जैसी हो गयी। यहाँ राधालिङ्गित पदका यह पहला तात्पर्य है। श्रीगौरसुन्दर इसीलिए इस विशेष इमलीतला स्थानपर ही वेदीपर बैठकर भावपूर्वक क्रन्दन करते हुए, नामसङ्कीर्त्तन करते थे और दोपहरके समय अक्रूरघाटके निकट गाँवमें मधुकरी करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि राधाभावकी प्राप्ति एवं उसकी दृढ़ताके लिए ही श्रीगौरसुन्दर नीलाचलसे व्रजधाममें पधारे थे। क्योंकि राधाभावके बिना इनकी तीन वाञ्छाएँ कदापि पूर्ण नहीं हो सकती थीं।

रसिककुलचूड़ामणि श्रील रूप गोस्वामीने 'हरिः पुरटसुन्दर-द्युति कदम्बसन्दीपितः' इस पदके द्वारा सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान हरि अर्थात् राधाचिन्तामें निमग्न राधाके सुवर्ण कान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान श्रीकृष्णको ही इङ्गित किया है। श्रीगौरसुन्दरके अन्तरङ्ग, रसशास्त्रके गुरु श्रीस्वरूप दामोदरने भी अपने कड़चामें इसी भावके प्रति इङ्गित

किया है—'राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्' अर्थात् राधाभाव एवं कान्ति द्वारा सुदीप्त कृष्णको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ।

अब यहाँ राधालिङ्गित पदके दूसरे अर्थपर विचार करते हैं। राधा द्वारा आलिङ्गित पदका यह तात्पर्य है कि मानभङ्ग होनेपर स्वाधीनभर्तृका नायिकाके रूपमें प्रियतमा श्रीराधिकाके द्वारा आलिङ्गित श्रीकृष्णकी यहाँ वन्दना की गयी है। कृष्णको राधाविरहमें अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीमती राधिकाका हृदय व्याकुल हो गया। उनका धैर्य एवं मान तत्क्षणात् दूर हो गया। उन्होंने श्रीकृष्णको अपने आलिङ्गन पाशमें बद्ध कर लिया। कृष्ण कृतकृत्य हो गये। उनका सारा खेद दूर हो गया। श्रीचैतन्य-चरितामृतके राय रामानन्द संवादमें इसका इङ्गित पाया जाता है।

(क) ना सो रमण ना हम रमणी।
दुँहू मनो मन भव पेषल जानि॥
ए सखि ए सब प्रेम काहिनी।
कानु ठामे कहवि विछुरल जानि॥

अर्थात् विरहिणी श्रीमती राधिका प्रलाप कर रही है कि देखते-ही-देखते पलक भरमें हमारा प्रेम अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। हम दोनों इस प्रकारसे घुलमिल कर एक हो गये कि मैं यह भी भूल गयी कि मैं रमणी हूँ और तुम रमण हो। तुम्हारे विरहमें अब वह प्रेमविलास एक कहानीमात्र ही रह गयी है। क्या सत्-पुरुषोंकी प्रेमकी रीति ऐसी ही होती है? इस गीतिमें मिलनकी स्थितिमें अर्थात् सम्भोग कालकी एक चरम स्थितिका दिग्दर्शन कराया गया है; जिसमें श्रीकृष्ण सर्वतोभावेन राधिकाके द्वारा आलिङ्गित हैं। इसके पश्चात् ही राय रामानन्दजी श्रीगौरसुन्दरसे कह रहे हैं—

पहिले देखिलुँ तोमार संन्यासी-स्वरूप।
एवे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप॥
तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढ़ाका॥
ताहाते प्रकट देखि सवंशी वदन।
नाना-भावे चंचल ताहे कमल नयन॥

एइ मत तोमा देखि' हय चमत्कार।
अकपटे कह, प्रभु, कारण इहार॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२६७-२७०)

रायरामानन्दने महाप्रभुजीसे पूछा मेरे मनमें एक संशय उठ रहा है कि मैंने आपको सबसे पहले संन्यासी-वेशमें देखा था। किन्तु अब आपको एक साँवले गोपके रूपमें देख रहा हूँ। साथ ही एक और विचित्र बात देख रहा हूँ। आपके सामने अद्भुत सुन्दर सुवर्ण कान्तिको बिखेरती हुई एक पुतली (गोपीमूर्त्ति) खड़ी हुई है, जिसकी सुवर्ण कान्तिसे आपका सारा अङ्ग ढका हुआ है। उस स्वरूपमें मैं प्रत्यक्ष रूपमें यह भी देख रहा हूँ कि आपके अधरोंपर मुरली विराजित है तथा आपके कमलनयन बड़े सतृष्ण होकर इधर-उधर नृत्य कर रहे हैं। कृपा कर ऐसे स्वरूप धारण करनेका कारण निष्कपट रूपसे मुझे बतलाइए।

उपरोक्त चार पयारोंका निगूढ़ तात्पर्य यह है कि श्रीमती राधिकाके प्रत्येक अङ्गोंके द्वारा श्रीकृष्णके प्रत्येक अङ्गोंके आलिङ्गन किये जानेके कारण कृष्णकी उज्ज्वल नीलकान्ति आच्छादित होकर गौरवर्णकी हो जाती है। मुरलीधारी श्रीकृष्णका अङ्ग तो पहला ही जैसा रहता है, केवल अङ्गोंकी कान्ति गौरवर्ण जैसी दीखती है। यही श्रीमूर्त्ति राधालिङ्गित श्रीकृष्ण हमारे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठ-मन्दिरोंमें परिसेवित हो रहे हैं।

इस गम्भीर दार्शनिक एवं उच्चतम भावसे युक्त स्तवके द्वारा इसके रचयिताके ऐकान्तिक रूपानुगत्यका सुस्पष्ट परिचय मिलता है। व्रजरमणियोंके ऐसे दुर्गम भावको हृदयङ्गम करनेके लिए भक्तितत्त्वके सिद्धान्तोंको समझना आवश्यक है। साधारणतः भक्तिके साधन एवं सिद्धिकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति। साधनभक्ति परिपक्व होनेपर भावभक्ति एवं भावभक्ति परिपक्व होनेपर प्रेमभक्ति कहलाती है।

साधकोंके साधनके समयसे ही साधनभक्ति भी दो प्रकारकी होती है—वैधी साधनभक्ति एवं रागानुगा साधनभक्ति। सिद्धिके समय भी वैधी साधनभक्तिसे उदित प्रेम एवं रागानुगा साधनभक्तिसे उदित प्रेममें एक सूक्ष्म भेद होता है। वैधीभक्तिसे उदित प्रेम ऐश्वर्ययुक्त वैकुण्ठीय प्रेम

होता है तथा रागानुगाभक्तिसे उदित प्रेम ऐश्वर्य गन्धरहित शुद्ध मधुर व्रजप्रेम कहलाता है। गोपीभाव व्रजप्रेममें सर्वोच्च अवस्था है।

रागानुगाभक्तिको अच्छी तरहसे समझनेके लिए सर्वप्रथम रागात्मिक भावको समझना आवश्यक है। इष्टवस्तु (श्रीकृष्ण) के प्रति परम आवेशमूलक प्रेममयी तृष्णाको राग कहते हैं। ऐसी प्रगाढ़ रागमयी रतिको रागात्मिक प्रेम कहते हैं। व्रजवासियोंमें (वहाँके गो, मृग, शुक, पशु, पक्षियोंमें भी) सुस्पष्ट रूपमें विराजमान प्रीतिको रागात्मिक प्रीति कहते हैं। यह रागात्मिक प्रीति भी दो प्रकारकी होती है—सम्बन्धरूपा और कामरूपा। इनमेंसे केवल कृष्णप्रेयसियोंकी प्रीति ही कामरूपा होती है। इसी कामरूपा रतिकी अनुगामिनी तृष्णाका नाम कामानुगा भक्ति है। कामरूपा रागात्मिक प्रेम भी सम्भोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी दो प्रकारकी होती है। कृष्णप्रीतिके लिए सम्भोगकी इच्छा रखनेवाली श्रीमती राधिका, चन्द्रावली, श्यामला आदि नायिकाओंकी रति सम्भोगेच्छामयी कहलाती है। तथा 'तासाम् भावमाधुर्यकामिता' अर्थात् श्रीराधाकृष्ण-युगलके मिलनमें श्रीमती राधिका आदिके भाव माधुर्य आस्वादनकी कामना रखनेवाली (स्वयं कृष्ण मिलन कामनासे रहित) सखियोंकी रतिको तत्तद्भावेच्छात्मिका कहते हैं।

तत्तद्भावेच्छात्मिका रति भी पाँच प्रकारकी होती है। इस प्रकार रतिवाली सखियाँ भी पाँच प्रकारकी होती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी तथा प्रियनर्मसखी। इन सखियोंमें कोई समस्नेहा और कोई विषमस्नेहा होती हैं। श्रीराधाकृष्णमें बराबर स्नेह रखनेवालीको समस्नेहा एवं दोनोंमेंसे किसी एकके प्रति अधिक स्नेह रखनेवालीको विषमस्नेहा कहा जाता है। श्रीकृष्णके प्रति अधिक स्नेह रखनेवालीको सखी कहते हैं। वृन्दा, धनिष्ठा आदि सखियाँ हैं। श्रीमती राधिकाके प्रति अधिक स्नेह रखनेवालीको नित्यसखी कहते हैं। कस्तूरी, मणि मञ्जरी आदि नित्यसखी हैं। नित्यसखियोंमें मुख्य सखियोंको प्राणसखी कहते हैं। इन दो प्रकारके सखियोंमें रूपमञ्जरी प्रधान है। मालती आदि प्रिय सखियाँ हैं। इनमेंसे परमप्रिय प्रधान सखियाँ प्रियनर्म सखियाँ कहलाती हैं। ललिता, विशाखा आदि सखियोंको प्रियनर्मसखी या परमप्रेष्ठसखी कहा जाता है। ये राधाकृष्णके प्रति समस्नेहा होनेपर

भी श्रीमती राधिकाके प्रति कुछ अधिक पक्षपात करती हैं। ये सर्वगुणसम्पन्न नायिकाएँ हैं। परन्तु राधाकृष्णके मिलन करानेमें ही अपनेको कृतार्थ समझती हैं। किन्तु इनमेंसे नित्यसखी एवं प्राणसखियोंमें प्रमुख रूप, रति, लवङ्ग आदि सखियाँ नित्य-निरन्तर श्रीमती राधिकाकी निभृत निकुञ्ज सेवामें भी निःसंकोच रूपसे सेवामें तत्पर रहती हैं। इनमें पृथक् रूपसे कृष्णसम्भोगकी इच्छा नहीं रहनेपर भी श्रीमती राधिकाके भावोंका आस्वादनकर उसीमें सन्तुष्ट रहती हैं।

साधारण रूपमें गोलोक व्रजके गोप, गोपी, गो, गोवत्स, पशु, पक्षी ये सभी रागात्मिक हैं। इनके भावोंका अनुगमन करनेवाले (इनके भावोंकी प्राप्तिके लिए) साधकोंको रागानुगा कहते हैं। किन्तु श्रीरूप मञ्जरीके निजस्व भावोंका अनुगमन करनेवाले साधकको रूपानुग कहा जाता है। प्रत्येक रूपानुग साधक रागानुग साधक है। परन्तु प्रत्येक रागानुग साधक रूपानुग नहीं हो सकता है। श्रील रूप गोस्वामीने यथावस्थित देहसे व्रजमें रहकर जिस प्रकारसे साधन-भजन किया है तथा अपने सिद्ध शरीरसे व्रजमें जैसे राधाकृष्णकी नित्यसेवा करते हैं, ऐसे ही जो रागानुग साधक बाह्य शरीरसे श्रीरूप गोस्वामीके भजन-रीतिका तथा अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहसे मञ्जरीके भावोंका अनुगमन करता है, केवल उसी रागानुग साधकको रूपानुग वैष्णव कहा जाता है। श्रीरूपानुगवर श्रील रघुनाथदास गोस्वामी स्वरचित विलाप-कुसुमाञ्जलिमें प्रार्थना कर रहे हैं—(१) तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना। इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिके॥—"हे देवि श्रीराधिके! मैं तुम्हारी ही हूँ, मैं तुम्हारी ही हूँ। तुम्हें छोड़कर मैं जीवित नहीं रह सकती—ऐसा जानकर तुम मुझे अपने श्रीचरणोंमें स्थान दो।" (२) पादाब्जयोस्तव विना वरदास्यमेव नान्यत कदापि समये किल देवि याचे। साख्याय ते मम नमोऽस्तु नमोऽस्तु नित्यं दास्याय ते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम्॥—"हे देवि राधिके! तुम्हारे श्रीचरणकमलोंकी प्रेममयी श्रेष्ठ सेवाके अतिरिक्त किसी भी समय और कुछ भी याचना नहीं करता हूँ। यदि तुम मुझे सखीपद देना चाहती हो, तो मैं उसे दूरसे बारम्बार प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे दासत्वमें ही मेरा दृढ़ अनुराग रहे—मैं शपथ ग्रहणकर ऐसा माँग रहा हूँ।"

श्रीनरोत्तम ठाकुरका रूपानुगत्य द्रष्टव्य है—

श्रीरूप मञ्जरीपद सेई मोर सम्पद
सेई मोर भजन पूजन।
सेई मोर प्राणधन सेई मोर आभरण
सेई मोर जीवनेर जीवन॥

सेई मोर रसनिधि सेई मोर वांछासिद्धि
सेई मोर वेदेर धरम।

श्रीरूपानुगाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपनी लालसामयी प्रार्थनामें आवेदन कर रहे हैं—

श्रीरूप मञ्जरी, सङ्गे याब कबे,
रस-सेवा-शिक्षा-तरे।
तदनुगा ह'ये, राधाकुण्ड-तटे,
रहिब हर्षितान्तरे॥

श्रीराधार सुखे, कृष्णेर ये सुख,
जानिब मनेते आमि।
राधापद छाड़ि, श्रीकृष्णसङ्गमे,
कभु ना हइब कामी॥

राधापक्ष छाड़ि, जे जन से जन,
जे भावे से भावे थाके।
आमि त राधिका, पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताके॥

उपर्युक्त भाव ही रूपानुग वैष्णवोंके प्राणस्वरूप हैं। परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म एक श्रेष्ठ रूपानुग आचार्य हैं। उनका हृद्‌गत भाव इस श्लोकमें सुस्पष्ट है कि श्रीकृष्ण ही राधाजीकी चिन्तामें निमग्न हों, वे ही श्रीमतीजीका अन्वेषण करें, वे ही श्रीमतीजीके विरहमें कातर हों। इसी श्लोकमें विरह एवं संयोग दोनों ही अवस्थाओंमें श्रीमती राधिकाजीके प्रति स्पष्ट पक्षपात एवं रूपानुगत्व परिलक्षित है।

सेव्य-सेवक-सम्भोगे द्वयोर्भेदः कुतो भवेत्।
विप्रलम्भे तु सर्वस्य भेदः सदा विवर्द्धते॥ २॥

अनुवाद—सेव्य अर्थात् भोक्ता भगवान् (श्रीकृष्ण) जब भोग्य सेवक (श्रीमती राधिका) के साथ मिलित होकर सम्पूर्ण रूपसे भोग करते हैं, तब भेद कहाँ रहता है? (अर्थात् भेद नहीं रहता अभेदकी प्रतीति होती है।) दूसरी ओर विप्रलम्भ अर्थात् विरह उपस्थित होनेपर उनमें सदा सर्वदा भेद विशेष रूपसे वर्द्धित होता है॥ २॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

सेव्य और सेवकके सम्भोगकालमें उनमें कोई भेद नहीं होता। श्रीनन्दनन्दन ही मूर्त्तिमान शृङ्गाररसके रूपमें सेव्य या भोक्तातत्त्वकी चरम सीमा हैं तथा श्रीमती राधिका सेवकतत्त्व अर्थात् आश्रयतत्त्वकी चरम सीमा हैं। इनका अनुराग ही स्थायीभाव है। यही अनुराग अपनी चरम सीमाको प्राप्त होनेपर यावदाश्रयवृत्ति कहलाता है। उसी अवस्थामें उनका यह अपूर्व अनुराग स्वसम्वेद्य दशा अर्थात् उनकी प्रेयसी विशेषके द्वारा ही सम्वेद्यदशाको प्राप्त होकर सुदीप्त अष्ट सात्त्विकभावोंके द्वारा प्रकाशित होता है। वैसी विशेष स्थितिमें सेव्य एवं सेवक दोनों ही अपने-अपने अपनत्वको सम्पूर्ण रूपमें विस्मृत हो जाते हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि वे रमण हैं और मैं रमणी हूँ। दोनोंका मन घुलमिल कर एक हो जाता है। उनमें भेदकी कल्पना नहीं की जा सकती। किन्तु विप्रलम्भ या विरहकी स्थितिमें वे दोनों एक दूसरेका अन्वेषण करते हुए विरहमें तड़पते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इस अपूर्व रसराज महाभावका दिग्दर्शन गोदावरीके पुनीत तटपर राय रामानन्द एवं श्रीचैतन्य महाप्रभुके संवादमें दृष्टिगोचर होता है—

ना सो रमण, ना हम रमणी।
दुँहू मनो मन भव पेषल जानि॥
ए सखि, ए सब प्रेम काहिनी।
कानु ठामे कहिव विछुरल जानि॥

(चै॰ च॰ म॰ ८/१९३)

इसी परम गम्भीर एवं निगूढ़ भावका चित्र श्रीस्वरूप दामोदरके कड़चेमें पाया जाता है—

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥
(चै॰ च॰ आ॰ १/५)

अर्थात् श्रीमती राधिका, कृष्णकी प्रणयविकाररूप ह्लादिनीशक्ति हैं। वे स्वरूपतः कृष्णसे अभिन्न एकात्मस्वरूप हैं। फिर भी विलास सिद्धिके लिए वे दोनों राधा एवं कृष्ण इन दो रूपोंमें नित्य विराजमान हैं। वे सेव्य एवं सेवक विषय एवं आश्रय तत्त्व इस समय एक ही स्वरूपमें श्रीचैतन्यतत्त्वके रूपमें प्रकटित हैं। मैं राधाभावद्युति द्वारा सुवलित उन कृष्णस्वरूप शचीनन्दनको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ।

यहाँ इस श्लोकमें श्रीस्वरूप दामोदरजीने एकात्म शब्दके द्वारा श्रीराधा एवं कृष्णमें—सेवक एवं सेव्य तत्त्वमें अभिन्नत्वका प्रतिपादन किया है तथा 'देह भेदं गतौ तौ' के द्वारा दोनों तत्त्वोंमें भेदको इङ्गित किया है। परम रसिक एवं तत्त्वाचार्य श्रील गुरुपादपद्मने स्वरचित द्वितीय श्लोकमें इन्हीं परम गम्भीर एवं निगूढ़ भावोंको इङ्गित किया है।

चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वं भेदाभेदमचिन्त्यकम्।
शक्ति-शक्तिमतोरैक्यं युगपद्वर्त्तते सदा॥ ३॥

अनुवाद—शक्ति और शक्तिमान दोनोंका मिलितस्वरूप चिल्लीला मिथुनतत्त्व चिन्मय-विलास सिद्धि हेतु सम्भोगकी अवस्थामें एकाकार सदैव अचिन्त्यभेदाभेदके रूपमें युगपत् अवस्थित हैं। अर्थात् परतत्त्व वस्तु कदापि निःशक्तिक नहीं हैं। उस तत्त्वमें शक्ति और शक्तिमान एक साथ मिले हुए नित्य वर्त्तमान हैं। वे पूर्ण चिन्मय लीलाविशिष्ट पुरुषोत्तम हैं, स्वयं मिथुन विग्रह हैं अर्थात् शक्ति और शक्तिमानके सम्मिलित विग्रह हैं। वे मिथुन विग्रह ही श्रीराधाकृष्ण या गौरतत्त्व हैं। उनमें भेद और अभेद परस्पर दोनों ही विरुद्ध धर्म अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सदैव एक ही साथ नित्य वर्त्तमान रहते हैं॥ ३॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। वे अखिल रसामृत मूर्त्ति एवं सर्वशक्तिमान हैं। उनकी स्वाभाविक अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति भी एक ही है। किन्तु शक्तिमान श्रीकृष्णकी इच्छासे एक ही स्वरूपशक्ति विभिन्न रूपोंमें प्रकटित होकर विभिन्न प्रकारके कार्योंको सम्पन्न करती हैं। वे ही चित्-शक्तिके रूपमें चित्-जगत्को, जीवशक्तिके रूपमें निखिल जीवोंको तथा मायाशक्तिके रूपमें सम्पूर्ण जड़जगत्को प्रकटित करती हैं। वे ही सम्वित्, सन्धिनी, ह्लादिनीके रूपमें श्रीकृष्णकी विभिन्न वांछाओंको पूर्ण करती हैं। वे पराशक्ति ही ह्लादिनीके साररूप प्रेम, प्रेमके सार महाभावकी मूर्त्तिमान-विग्रह श्रीमती राधिकाके रूपमें सदैव शृङ्गाररसके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीकृष्णकी अखिल वांछाओंको पूर्ण करती हैं। ये राधाकृष्ण ही सम्भोग कालमें—मिलनके समय मिथुन (युगल) तत्त्व हैं। अथवा किसी विशेष प्रकारके रसास्वादनकी इच्छासे श्रीकृष्ण ही श्रीमती राधिकाकी बाह्य अङ्गकान्ति एवं आन्तरिक महाभावको अङ्गीकार कर श्रीराधाकृष्ण मिलित श्रीगौरसुन्दरके रूपमें नित्य विराजमान हैं। अतएव श्रीगौरसुन्दर भी मिथुन तत्त्व हैं। स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुगत गौड़ीय वैष्णव आचार्योंने श्रीराधा एवं श्रीकृष्णमें एक ही साथ अचिन्त्य भेद और अभेद दोनों ही स्वीकार किया है। हमने पहले श्लोकमें इस तत्त्वका निरूपण किया है।

श्रीशङ्कराचार्यने स्वगत-सजातीय-विजातीय भेदसे रहित निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक ब्रह्मको परतत्त्व माना है। उनके इस मतवादको केवलाद्वैतवाद कहा जाता है। किन्तु वेदान्तसूत्रके रचयिता श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास, पराशर, औडुलौमि आदि प्राचीन तत्त्ववेत्ता आचार्योंने तथा श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बादित्य आदि वैष्णवाचार्यों तथा नीलकण्ठ आदि शैवाचार्य, श्रीभास्कराचार्य आदि अन्यान्य परवर्ती आचार्योंने भी आचार्य शङ्करके निर्विशेष केवलाद्वैत मतवादका प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा खण्डन किया है।

वैष्णव आचार्योंने परब्रह्म एवं उनकी शक्तिको स्वीकार किया है। उन सभीने सविशेष परब्रह्मका परमसुन्दर सच्चिदानन्द श्रीविग्रह भी

स्वीकार किया है। श्रीरामानुजका विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवाद, श्रीविष्णुस्वामीका शुद्धाद्वैतवाद एवं श्रीनिम्बादित्यका स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद) वाद प्रसिद्ध है। इन वैष्णवाचार्योंने जगत्‌में शुद्धभक्तिका प्रचार किया है। श्रीरामानुजके विचारसे चिद्, अचिद् दोनों शक्तियोंसे विशिष्ट सविशेष ब्रह्म ही परतत्त्व है। श्रीमध्वाचार्यके विचारसे ब्रह्म एवं जीवमें, जीव एवं जीवमें, जीव एवं जड़में, जड़ एवं जड़में, जड़ एवं ब्रह्ममें—ये पाँच भेद नित्य हैं। श्रीविष्णुस्वामीने मायातीत शुद्धावस्थामें ही परब्रह्मका चिन्मय विग्रह, उनके लीला, परिकर, धाम आदिको स्वीकार किया है। इसी प्रकार श्रीनिम्बादित्यने सविशेष ब्रह्मके साथ जीव और जगत्‌का स्वाभाविक भेद एवं अभेद दोनोंको ही स्वीकार किया है। किन्तु स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीवैष्णवाचार्योंके मतोंमें विद्यमान कुछ अभावोंको पूर्ण करते हुए वेद, उपनिषदोंके सार्वदेशिक विचारोंको अङ्गीकार करते हुए शक्ति एवं शक्ति परिणत जीव-जगत्‌के साथ परब्रह्मके नित्य भेद एवं अभेदको स्वीकार किया है। यह भेद एवं अभेद मानव बुद्धिसे अतीत शास्त्रबुद्धिके द्वारा बोधगम्य होनेके कारण अचिन्त्य कहा गया है। श्रीमन् महाप्रभुके अनुगत वैष्णव आचार्योंने इसी अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वको स्वीकार किया है।

शास्त्रोंमें परतत्त्वको कहीं भी निर्विशेष, निःशक्तिक, निराकार तथा अप्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण नहीं कहा है। श्रील वेदव्यासने ब्रह्मसूत्रमें 'जन्माद्यस्य यतः', 'अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात्', 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्', 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'शक्तिशक्तिमतोरभेदः' आदि सूत्रोंके द्वारा परब्रह्मका सच्चिदानन्द विग्रह, उनकी शक्ति, नाम, रूप, गुण, लीला, धाम आदिको स्पष्ट रूपसे अङ्गीकार किया है। उपनिषदोंमें 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म॥', 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्', 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते।' इन मन्त्रोंके द्वारा परब्रह्मकी शक्ति, उनका सच्चिदानन्दमय विग्रह, परब्रह्मके साथ भेद और अभेद आदि सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। सर्वप्रमाणशिरोमणि श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र ही परब्रह्मके अप्राकृत स्वरूप, नाम, रूप, गुण, लीला, परिकर

तथा अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वका उल्लेख है—'अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनम्॥', 'गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्', 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' आदि श्लोकोंके द्वारा इन सब सिद्धान्तोंकी विशेष रूपसे पुष्टि की गयी है। श्रीमद्भागवतके चतुःश्लोकीमें इन सब तत्त्वोंका विशेष रूपसे वर्णन उपलब्ध होता है। स्थानाभावके कारण इसका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा रहा है।

तत्त्वमेकं परं विद्याल्लीलया तदिद्वधा-स्थितम्।
गौरः कृष्णः स्वयं ह्येतदुभावुभयमाप्लुतः॥ ४॥

अनुवाद—अद्वयज्ञान परतत्त्व वस्तु एक हैं। किन्तु वे ही परतत्त्व लीलासिद्धि हेतु दो रूपोंमें नित्य अवस्थित हैं। एक श्रीगौरसुन्दरके रूपमें तथा दूसरे श्रीकृष्णसुन्दरके रूपमें। ये दोनों ही अभिन्न एवं परतत्त्व हैं। तत्त्वतः श्रीगौरसुन्दर ही स्वयं-कृष्ण हैं अथवा श्रीकृष्णसुन्दर ही गौरसुन्दर हैं। ये दोनों ही दोनों रूपोंको धारण करते हैं अर्थात् श्रीकृष्णसुन्दर ही गौरसुन्दर हुए हैं तथा गौरसुन्दर ही श्रीकृष्णसुन्दर हुए हैं॥ ४॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

श्रीगौरसुन्दरके प्रधान अन्तरङ्ग परिकर श्रीस्वरूप दामोदरने स्वरचित कड़चेमें श्रीगौर-कृष्ण-तत्त्वका निगूढ़ रूपमें विवेचन किया है—

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देह भेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥

तात्पर्य यह है कि राधाकृष्ण दोनों ही एकात्मा हैं। श्रीमती राधिका महाभावकी मूर्त्तिमान विग्रह हैं तथा श्रीकृष्ण अखिल रसोंके मूर्त्तिमान विग्रह हैं। लीला-विलासका आस्वादन करनेके लिए सम्भोगावस्थामें एकाकार हो जाते हैं। उस समय उनमें रमण एवं रमणीका भाव भी विस्मृत होनेके कारण भेदकी कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भी

विरहमें श्रीराधा एवं कृष्ण इन दो पृथक्-पृथक् रूपोंमें विराजमान होकर विविध प्रकारके लीला-विलासके द्वारा विप्रलम्भ आदि भावोंका आस्वादन करते हैं। पुनः ये दोनों तत्त्व कुछ विशेष भावोंका आस्वादन करनेके लिए एकत्रीभूत होकर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें प्रकटित हैं। वस्तुतः श्रीमती राधिका श्रीकृष्णके प्रणयविकार हैं, वे पुनः कृष्णकी स्वरूपशक्ति भी हैं। वे श्रीकृष्णको सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्णकर उन्हें सब प्रकारसे आह्लादित करती हैं। इसलिए उन्हें ह्लादिनीशक्ति भी कहते हैं।

श्रील जीव गोस्वामीने तत्त्वसन्दर्भमें संहिताओंसे निम्नलिखित श्लोकोंको उद्धृतकर श्रीगौरसुन्दरको श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्णचैतन्यका मिलित रूप बतलाया है—

अन्तः कृष्णं बहिर्गौर-दर्शिताङ्गादि वैभवम्।
कलौ सङ्कीर्तानाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिताः॥
(तत्त्वसन्दर्भ २ श्लोक)

अर्थात् अङ्ग, उपाङ्ग आदि वैभवोंके साथ (श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर एवं श्रीवास आदि भक्तोंके साथ) प्रकटित अन्तरमें साक्षात् श्रीकृष्ण एवं बाहरमें गौर स्वरूप—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका कलियुगमें सङ्कीर्त्तनयज्ञके द्वारा आश्रय ग्रहण करता हूँ।

श्रील रूप गोस्वामीने भी श्रीकृष्णसे अभिन्न, कृष्णप्रेमका वितरण करनेवाले महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको प्रणाम किया है—

नमो महावदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

मार्कण्डेयपुराणमें भी इस सिद्धान्तकी पुष्टिकी जाती है—

गोलोकं च परित्यज्य लोकानां त्राणकारणात्।
कलौ गौराङ्गरूपेण लीलालावण्यविग्रहः॥

इसके अतिरिक्त विभिन्न शास्त्रोंमें तथा गोस्वामी ग्रन्थोंमें श्रीकृष्ण ही गौरसुन्दर हैं तथा गौरसुन्दर ही कृष्ण हैं, इसके भूरि-भूरि प्रमाण हैं—

सेइ कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आपने चैतन्य रूपे कैल अवतार॥
(चै॰ च॰ आ॰ २/१०९)

श्रीनरोत्तम ठाकुरजीने भी लिखा—

व्रजेन्द्रनन्दन जेइ शचीसूत हइल सेइ
बलराम हइल निताइ।

सर्वे वर्णाः यत्राविष्टाः गौर-कान्तिर्विकाशते।
सर्वे वर्णेन हीनस्तु कृष्ण-वर्णः प्रकाशते॥५॥

अनुवाद—समस्त प्रकारके रङ्गोंका जहाँ एकत्र सम्मिश्रण होता है वहाँ गौरकान्ति (स्वर्णकान्ति) का प्रकाश होता है। जैसे सूर्यमें सभी रङ्गोंका सम्मिश्रण रहनेका कारण उनकी प्रभा (रङ्ग) गौर है। दूसरी ओर समस्त वर्णोंका जहाँ अभाव होता है, वहाँ प्राकृत वर्णों या रङ्गोंसे अतीत कृष्णकान्ति (काला रङ्ग) प्रकाशित होती है॥५॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

श्रीकृष्ण एवं श्रीगौर दोनों ही परतत्त्वकी चरम सीमा एवं अभिन्न तत्त्व हैं। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी अङ्गकान्ति नव-जलधर-श्याम अथवा इन्द्रनीलमणिकी उज्ज्वल प्रभा विशिष्ट है तथा श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी अङ्गकान्ति तपे हुए स्वर्ण एवं विद्युतकी कान्तिको भी पराभूत करनेवाली गौरकान्ति है। इस श्लोकमें जड़-वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तोंके द्वारा भी उक्त सिद्धान्तकी पुष्टि की गयी है। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण एवं स्वयं-भगवान् श्रीगौरचन्द्र दोनों ही अप्राकृत परतत्त्व हैं। वे प्राकृत गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं। इस जड़-जगत्में उनकी उपमाका कोई भी स्थल नहीं है। फिर भी बद्धजीवोंको बोधगम्य करानेके लिए शाखाचन्द्र न्यायसे कुछ उपमाएँ दी जाती हैं। किन्तु ये उपमाएँ अप्राकृत भगवत्-स्वरूप उपमेयके एकदेशीय स्वरूपको प्रकाश करनेके लिए ही प्रस्तुत की जाती हैं। उनके सर्वाङ्ग स्वरूपको प्रकाश करनेके लिए नहीं। जैसे एक अबोध बालकको रात्रिकालमें चन्द्रको दिखलानेके लिए निकटस्थ किसी वृक्षकी एक शाखाका अवलम्बनकर उस शाखाके ऊपर चन्द्रको दिखलाया जाता

है। किन्तु चन्द्र उस शाखाके ऊपर दीखनेपर भी वस्तुतः वह वहाँसे लाखों मील दूर अवस्थित है। उसी प्रकार भगवत्-तत्त्वसे सर्वथा अनभिज्ञ लोगोंको प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत भगवत्-तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ बोध करानेके लिए प्राकृत या जड़-वस्तुओंकी उपमा प्रस्तुत करना प्रथमावस्थामें नितान्त आवश्यक होता है। यहाँ काला और गोरा दोनों रङ्ग प्राकृत होनेपर भी कुछ अंशोंमें इन रङ्गोंके साथ श्रीकृष्णसुन्दर एवं श्रीगौरसुन्दर दोनोंकी अङ्गकान्तिकी उपमा दी गयी है। वैज्ञानिकोंकी दृष्टिसे काला कोई रङ्ग नहीं है, black is no colour. इस उपमाके द्वारा यह बतलाया गया है कि चरम उपास्य तत्त्ववस्तु श्रीकृष्ण एवं उनकी अङ्गकान्ति (कृष्णवर्ण) प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत अर्थात् निगुण है। प्राकृत जगत्में प्रकटित होनेपर भी श्रीकृष्ण एवं उनकी अङ्गकान्ति सर्वथा निर्गुण ही है। यहाँ तक कि श्रीकृष्णके निखिल अप्राकृत गुण—गम्भीर, विनयी, अमानी-मानद, विदग्ध, नित्यकिशोर, अनुपम सौन्दर्य, रसिक, धार्मिक, जितेन्द्रिय, परम कारुणिक सभी गुण भी निर्गुण हैं।

दूसरी ओर, श्रीगौरसुन्दर, उनकी गौरकान्ति तथा उनके सभी गुण अप्राकृत हैं। इसलिए वे सगुण तत्त्व हैं। उनका यह सगुणत्व भी प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत अर्थात् निर्गुण ही है। यहाँ ऊपरकी भाँति शाखाचन्द्र न्यायसे इस सगुण तत्त्वकी भी उपमा दी गयी है। जैसे सूर्यमें सभी गुणोंका समावेश या सम्मिश्रण है, वैसे ही गौरकान्ति विशिष्ट श्रीगौरसुन्दरमें भी सभी अप्राकृत गुणोंका समावेश है। अतः वे उपास्य हैं। जैसे सभी रङ्गोंके सम्मिश्रणसे गौर या स्वर्ण कान्ति प्रकाशित होती है। उसमें सभी रङ्ग अलग-अलग नहीं दीख पड़ते हैं। इसीलिए सूर्यमें ऊपरसे केवल गौरकान्ति ही प्रकाशित होती है। किन्तु वर्षाकालमें सूर्यकी विपरीत दिशामें कभी-कभी सतरङ्गी इन्द्रधनुष दृष्टिगोचर होता है; जिसमें अलग-अलग सातों रङ्गोंको देखा जा सकता है। वैसे ही श्रीगौरसुन्दरमें सभी अप्राकृत गुणोंके सम्मिश्रण होनेके कारण ऊपरसे गौरकान्ति ही दीखता है। अँग्रेजी (English) भाषामें गौररङ्गको VIBGYOR कहते हैं। इसमें ये सात रङ्ग मिले हुए होते हैं—

V–Violet (बैगनी) I–Indigo (गहरानीला)
B–Blue (नीला) G–Green (हरा)
Y–Yellow (पीला) O–Orange (नारङ्गी)
R–Red (लाल)

एक समय परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव हमलोगोंको कुछ हरिकथा सुना रहे थे। प्रसङ्गवशतः उन्होंने बतलाया कि श्रील प्रभुपादकी अप्रकटलीलाके पश्चात् वे कुछ दिनोंके लिए प्रयाग (इलाहाबाद) गये हुए थे। वहाँ वे अपने प्रियबन्धु एवं गुरुभ्राता श्रीपाद अभयचरणारविन्द प्रभुके घर कुछ दिन ठहरे थे। यहीं पर श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुने इनका परिचय High Court के प्रसिद्ध अधिवक्तासे कराया। ये अधिवक्ता महोदय कुशाग्र बुद्धिसम्पन्न एवं बड़े ही तार्किक थे। वे दार्शनिक पण्डित महामहोपदेशक कृतिरत्न प्रभुके विचारोंको श्रवणकर बड़े ही प्रभावित हुए। एक दिन वे अपने साथ इलाहाबादके एक सुविख्यात दार्शनिक वक्ता एवं ईसाई धर्मके प्रचारक Church Bishop को अपने साथ ले आये। उन्होंने इनका परिचय श्रीकृतिरत्न प्रभुके साथ कराया। उन्होंने मनोरञ्जनके लिए ऐसी बातें छेड़ दीं कि दोनोंमें परस्पर कुछ दिलचस्प युक्ति एवं तर्क-वितर्ककी बातें हों। बातों ही बातोंमें Bishop महोदयने श्रीकृतिरत्न प्रभुकी ओर मुड़कर कहा आपलोग काले रङ्गके कृष्णकी उपासना क्यों करते हैं?

प्रत्युत्पन्न मतिका परिचय देते हुए साथ-ही-साथ श्रील गुरुदेवने उत्तर दिया—Black is no colour. काला कोई भी रङ्ग नहीं है। वह सब रङ्गोंसे अतीत अर्थात् प्राकृत सभी गुणोंसे परे है। हम किसी प्राकृत वस्तु या रङ्गकी उपासना नहीं करते। जिस वस्तु या रङ्गकी उत्पत्ति, विनाश, क्षय, वृद्धि आदि दशाएँ नहीं हैं, जो सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक गुणोंसे अतीत है, सदैव नित्य विराजमान रहता है, उसे निर्गुण तत्त्व कहते हैं। इसीलिए हम निर्गुण परतत्त्वकी चरम सीमा श्रीकृष्णकी आराधना करते हैं।

बिशप भी मजा हुआ कुशल खिलाड़ी था। उसने तुरन्त प्रश्न किया—फिर आपलोग गोरे रङ्गवाले गौराङ्ग महाप्रभुकी उपासना क्यों करते हैं?

श्रील गुरुदेव मानो प्रश्नका उत्तर देनेके लिए पहलेसे ही प्रस्तुत थे। उन्होंने तपाकसे उत्तर दिया—प्रकृतिके सभी गुण अत्यन्त हेय एवं दुःखपूर्ण हैं। इससे अतीत अप्राकृत जगत्में अप्राकृत सद्‌गुणोंका भण्डार है। श्रीचैतन्य महाप्रभु उन्हीं अप्राकृत निखिल सद्‌गुणोंके अफुरन्त भण्डार हैं। इन सद्‌गुणोंका सम्मिश्रण ही उनकी गौरकान्ति है। जिस प्रकार सूर्यमें सभी रङ्गोंका समावेश होनेके कारण वह गौरकान्ति विशिष्ट—VIBGYOR दिखायी पड़ता है। किन्तु उसमें violet, indigo, blue, green, yellow, orange, red ये सातों रङ्ग मिश्रित हैं। वर्षाकालमें कभी-कभी सूर्यके प्रतिबिम्बस्वरूप इन्द्रधनुषमें सातों रङ्ग सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं। उसी प्रकार निखिल अप्राकृत गुणोंसे समाविष्ट श्रीगौरसुन्दर हमलोगोंके उपास्य हैं। इस अकाट्य वैज्ञानिक युक्तिको सुनकर बिशप महोदय कुछ झेंप गये, उनकी बोलती बन्द हो गयी। फिर भी कुछ मुस्कुरानेकी चेष्टा करते हुए बोले—

आपलोग एक गायोंके चरबाहेकी उपासना करते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती।

श्रील गुरुदेवने उत्तर दिया—शायद इसलिए समझमें नहीं आती क्योंकि आपलोग भेड़ोंके चरवाहेकी उपासना करते हैं। यदि भेड़ोंके चरवाहेकी उपासना की जा सकती है, तो जगत्का पालन-पोषण करनेवाली गोमाताके सेवकको उपासना उपहासपूर्ण कैसे हो सकती है? यह सुनकर बिशप महोदय एवं अधिवक्ता महोदय दोनों ही श्रीकृतिरत्न महोदयकी वाक्पटुताकी प्रशंसा करते हुए विदा हुए।

इस प्रकार अप्राकृत सगुण एवं निर्गुण दोनों ही अभिन्न तत्त्व हैं। दोनोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। श्रीकृष्ण एवं श्रीगौरसुन्दर एक ही साथ सगुण एवं निर्गुण दोनों ही तत्त्व हैं, इसमें तनिक भी संशयकी गुञ्जाइश नहीं है।

सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकमेवाद्वितीयकम्।
सर्व-नित्य-गुणैर्गौरः कृष्णो रसस्तु निर्गुणैः॥ ६॥

अनुवाद—स्वरूपतः सगुण और निर्गुण ये दोनों ही तत्त्व अभिन्न या अद्वितीय हैं। निखिल नित्य-अप्राकृत सद्‌गुणोंकी समष्टि श्रीगौरसुन्दर

सगुण तत्त्व हैं तथा सब प्रकारके प्राकृत गुणोंसे रहित (अतीत) सर्वशक्तिमान तथा अखिलरसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण निर्गुण तत्त्व हैं। शास्त्रमें सर्वत्र ही कृष्णको रसस्वरूप एवं रसिकशेखर कहा गया है। रस निर्गुण या अप्राकृत तत्त्व है। यह कभी भी प्राकृत गुणोंके अन्तर्भुक्त नहीं है॥ ६॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

उपरोक्त श्लोकके 'वर्ण' शब्दको इस वर्त्तमान श्लोकमें गुण शब्दके सहित उपमा देकर श्रीगौर और श्रीकृष्ण दोनोंको ही एक समान उपास्य तत्त्व बतलाया जा रहा है। स्वरूपतः निर्गुण श्रीकृष्ण एवं सगुण श्रीगौरसुन्दर समतुल्य उपास्य एवं परस्पर अभिन्न परतत्त्व हैं। ये दोनों एक ही साथ सगुण और निर्गुण उभय तत्त्व हैं। कुछ तत्त्वानभिज्ञ व्यक्ति सगुण और निर्गुण तत्त्वोंको दो तत्त्व मानते हैं तथा दोनोंको एक दूसरेसे सर्वथा विपरीत मानते हुए निर्गुण तत्त्वको श्रेष्ठ एवं सगुण तत्त्वको प्राकृत गुणोंके अन्दर हेय मानते हैं। इनलोगोंकी धारणाके अनुसार प्रकृतिसे अतीत निर्विशेष, निरञ्जन, निःशक्तिक और निराकार ब्रह्म ही निर्गुण तत्त्व है, जगत् मिथ्या है। जीव ही ब्रह्म है। जब वही निर्गुण तत्त्व प्राकृत जगत्में प्राकृत नाम, प्राकृत रूप एवं प्राकृत गुणोंको अङ्गीकार कर प्रकट होता है तब वह सगुण तत्त्व कहलाता है। वे लोग स्वयं-भगवान् कृष्ण एवं श्रीरामचन्द्र आदिको भी इसी प्रकारका सगुण अवतार मानते हैं। इनका जन्म-मृत्यु तथा उनके शरीरको भी प्राकृत या मायिक मानते हैं। किन्तु उनकी ऐसी मान्यताको गीता आदि सत्-शास्त्रमें जघन्य अपराध बतलाया गया है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(गीता ९/११)

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीञ्चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९/१२)

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति मेरे कृष्णरूपके परम भावको न जानकर मायिक मानुषी बुद्धिसे भूत समुदायके महान् ईश्वर मेरी अवज्ञा करते हैं। ऐसे मूढ़ व्यक्तियोंकी सारी आशाएँ, सारे कर्म, सारे ज्ञान निष्फल हैं। यहाँ तक कि वे विक्षिप्तचित्त होकर विवेकको नष्ट करनेवाली राक्षसी और आसुरिक प्रकृतिका आश्रयकर परमार्थसे च्युत होकर नरकके भागी होते हैं। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण समस्त अवतारोंके मूल एवं परात्पर तत्त्ववस्तु हैं। वे कृष्णरूपमें ही समस्त प्राणिओंके, ईश्वरोंके भी ईश्वर, निखिल जगत्के स्वामी, सत्सङ्कल्प, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और महाकारुणिक हैं। दुष्ट राजा वेण आदि मूढ़ लोग कृष्णका दर्शनकर नाना प्रकारसे उनकी अवज्ञा करते थे। वे मूढ़ लोग श्रीवसुदेवनन्दन या श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्राकृत एवं मरणशील मानकर गाली गलौज भी करते थे। ऐसे मूढ़ लोग कृष्णके देहमें एक पृथक् आत्माकी कल्पना कर उसे ही परमात्मा मानते हैं। किन्तु शास्त्रमें इसका सर्वत्र निषेधकर श्रीकृष्णरूपको सच्चिदानन्द बतलाया गया है। उनमें देह और देहीका भी निषेध किया गया है।

(क) ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाय (गो॰ ता॰ १/१)

(ख) तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्द-विग्रहं

(ग) द्विभुजं मौन-मुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्

(घ) ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः (ब्र॰ स॰ ५/१)

(ङ) अपश्यं गोपमनिपद्यमानमा (ऋग्वेद १/२२/१६६/३१)

(च) गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् (श्रीमद्भा॰ ७/१०/४८)

(छ) यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः (श्रीमद्भा॰ ९/२३/२०)

(ज) देहदेहिभिदा नास्ति ईश्वरे विद्यते क्वचिद्।

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अचिन्त्यशक्तिके कारण अजन्मा होनेपर भी श्रीनन्द-यशोदाके नित्य पुत्र हैं। निर्गुण होनेपर भी नवकिशोर नटवर, गोपवेश वेणुकर, सर्वत्र समदर्शी होनेपर भी शरणागत भक्तके पक्षपाती हैं। 'विरुद्ध धर्मं तस्मिन् न चित्रम्' के अनुसार भगवान्में एक ही साथ सारे विरुद्ध गुण समाविष्ट रहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवोंने एक ही साथ उन्हें सगुण एवं निर्गुण बतलाया है।

रावणने भगवान् श्रीरामचन्द्रको साधारण मनुष्य समझकर उनकी स्वरूपशक्ति सीताका अपहरण कर लिया। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने रावण एवं उनके अनुगत सारे राक्षसोंका विनाशकर सीतादेवीको अपने पास लौटा लिया। कंस, जरासन्ध और शिशुपाल आदि मूढ़ राजाओंने भगवान् श्रीकृष्णको साधारण मनुष्य समझा। किन्तु श्रीकृष्णने अहैतुकी कृपाके द्वारा चक्र सुदर्शनके माध्यमसे स्वयं मारकर अथवा भक्तोंके द्वारा उनका वध कराकर अपने गुणातीत अर्थात् निर्गुण होनेका प्रमाण दिया। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें ऐसा कहा है—'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' मैं उन्हें बुद्धि देता हूँ, दिव्य चक्षु देता हूँ जिससे वह मुझे जान सकता है। भगवान् एवं भगवान्‌के भक्तोंकी कृपाके बिना भगवत्-तत्त्वकी उपलब्धि नहीं होती। अतः श्रीकृष्णसुन्दर एवं श्रीगौरसुन्दर दोनों ही समतुल्य उपास्य, अद्वितीय एवं अभिन्न परतत्त्व हैं।

श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म त्यक्त्वा तु निर्गुणं हि तत्।
उपासते मृषा विज्ञाः यथा तुषावघातिनः॥७॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण या श्रीगौर मिथुन ब्रह्म हैं। उन्हें (उनका भजन) परित्यागकर ज्ञानी होनेका मात्र अभिमान करनेवाले अज्ञानी लोग केवल भूसेको कूटनेवालोंकी भाँति व्यर्थ ही निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं। अर्थात् अन्न प्राप्तिकी आशासे केवल भूसा कूटनेवाले वृथा परिश्रम ही करते हैं। उसी प्रकार निर्विशेष ज्ञानीको कृष्णसेवाका परित्यागकर निर्गुण निर्विशेष ब्रह्मकी उपासना द्वारा वृथा परिश्रम ही सार होता है अर्थात् उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है॥७॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

वेद, उपनिषद् विशेषतः वेदान्तसूत्र भक्तिग्रन्थ है। इन सारे ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय भगवान् एवं इनकी भक्ति है। वेदान्तसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान शब्दका उल्लेख नहीं है। 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्रके द्वारा भगवान्‌को स्पष्ट रूपसे विश्वका स्रष्टा, पालयिता और विनाशकर्त्ता बतलाया गया है। इसके द्वारा उनके रूप, शक्ति और अप्राकृत गुणोंका प्रतिपादन किया गया है। 'अरूपवदेव तत् प्राधानत्वात्' सूत्रके द्वारा परब्रह्मका अप्राकृत रूप, श्रीविग्रह, 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' के द्वारा उनका

लीला-विलास तथा 'अनावृत्ति शब्दादनावृत्ति शब्दात्' सूत्रके द्वारा नामसङ्कीर्त्तनके द्वारा भगवत्-प्राप्तिका सुस्पष्ट उल्लेख है। श्रीमद्भागवतके ब्रह्मस्तवमें निर्विशेष ज्ञानका निषेध किया गया है—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/४)

अर्थात् हे प्रभो! परम कल्याणस्वरूप आपको पानेके लिए भक्ति ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। जिस प्रकार जलाशयसे निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार भक्तिसे ही मोक्ष आदि चारों फल प्राप्त होते हैं। भक्ति होनेपर ज्ञान अपने आप आ जाता है, उसके लिए अलगसे प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जो लोग भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं—उन्हें बस, क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है, और कुछ नहीं, जैसे थोथे भूसे कूटनेवालेका केवल श्रम ही हाथ लगता है, उसे चावल नहीं मिलता। और भी—

येऽन्येऽरविन्दाक्षविमुक्तमानिन-
स्तय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२/३२)

अर्थात् हे कमलनयन! आपके भक्तोंके अतिरिक्त अन्य जो अपनेको विमुक्त अभिमान करते हैं तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे शम, दम आदि कठिन साधनके फलसे स्वयंको जीवन्मुक्त बोध करते हैं, परन्तु आश्रयस्वरूप आपके पादपद्मोंका अनादर करनेके कारण अधःपतित हो पड़ते हैं अर्थात् पुनः हीन अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

निर्गुण, निराकार ब्रह्मकी उपासना करनेवाले चतुःसन एवं श्रीशुकदेव भी लोकपितामह ब्रह्मा एवं कृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी कृपासे निर्गुण-उपासना छोड़कर श्रीराधाकृष्ण मिथुन ब्रह्मकी उपासनामें तत्पर हो गये। इन मिथुन ब्रह्मका गुण एवं माधुर्य ऐसा ही आकर्षक है कि ब्रह्मज्ञानी भी अपनी पूर्व आत्मारामता आदिको बरबस त्यागकर श्रीराधाकृष्ण मिथुनतत्त्वकी उपासनामें विभोर हो जाता है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा॰ १/७/१०)

श्रीशुकदेव गोस्वामीने स्वयं ही श्रीमद्भागवतमें कहा है कि मैं निर्गुण ब्रह्मकी उपासनामें परिनिष्ठित था, किन्तु श्रील वेदव्यासकी कृपासे श्रीराधाकृष्ण-युगलकी रसमयी उपासनामें प्रवृत्त हुआ—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥

(श्रीमद्भा॰ २/१/९)

निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका फल मुक्ति है। ऐसी मुक्ति भगवान्के द्वारा दिये जानेपर भी ऐकान्तिक भक्त उसे कदापि ग्रहण नहीं करता। वह भगवान्की प्रेममयी सेवामें सदा सर्वदा नियुक्त रहना चाहता है। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कठोर साधनाओंके द्वारा बड़ी कठिनतासे जिस मुक्तिको यदा कदा ही प्राप्त होते हैं, वही दुर्लभ मुक्ति बड़े-बड़े असुरोंको भगवान्के द्वारा मारे जानेपर अनायास ही प्राप्त हो जाती है। भला ऐसी निम्नकोटिकी हेय मुक्तिको पानेके लिए मूर्खके अतिरिक्त कौन वृथा प्रयास करेगा। इसलिए कोई भी विज्ञभक्त भगवान्के द्वारा लुभाये जानेपर भी ऐसी हेय मुक्तिको ग्रहण नहीं करता।

श्रीविनोदविहारी यो राधयाः मिलितो यदा।
तदाहं वन्दनं कुर्य्यां सरस्वती-प्रसादतः॥ ८॥

अनुवाद—श्रीविनोदबिहारी श्रीकृष्ण जब श्रीमती राधिकाके सहित मिलकर एकीभूत होते हैं या हुए हैं, श्रील सरस्वतीकी कृपासे अर्थात् श्रीगुरुदेव 'प्रभुपाद' की कृपासे मैं उस समय उनकी वन्दना करता हूँ॥ ८॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

इस श्लोकमें रचयिताके एक दूसरे निगूढ़ भावका सङ्केत मिलता है। 'श्रीमती राधिकाके सहित जब विनोदबिहारी मिले हुए होते हैं' का तात्पर्य प्रथम श्लोकमें व्यक्त किया गया है। अर्थात् श्रीमती राधिकाकी चिन्तामें कृष्ण अत्यन्त विभोर हो जाते हैं, उस समय श्रीमती राधिकाके चिह्नोंसे अर्थात् गौरकान्तिसे देदीप्यमान होते हैं अथवा विरहके पश्चात् संयोग अवस्थामें श्रीमती राधिकाके आलिङ्गनके द्वारा जिन श्रीकृष्णकी उज्ज्वल नीलकान्ति श्रीमती राधिकाकी गौरकान्तिसे आच्छादित हो जाती है, उन राधालिङ्गित श्रीविनोदबिहारीको पदकर्त्ता पुनः-पुनः प्रणाम कर रहे हैं। श्रीराधाविनोदबिहारी मिथुन-ब्रह्मको ही अर्थात् रसराज महाभाव श्रीविग्रहको ही विशेष रूपसे वन्दना करनेका अभिप्राय है। 'सरस्वती प्रसादतः' का तात्पर्य अपने गुरुदेवकी अहैतुकी कृपासे है। इनके गुरुका नाम 'श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती' है। सरस्वतीके भी दो तात्पर्य है। (१) अपरा विद्याकी अधिष्ठात्रीदेवी, दूसरा पराविद्याकी अधिष्ठात्रीदेवी। श्रीसरस्वती ठाकुर पराविद्याकी अधिष्ठातृदेवीसे अभिन्न हैं। अतः इनकी कृपाके बिना श्रीराधालिङ्गित विग्रहकी वन्दना करना भी सम्भव नहीं है।

एक और भी गूढ़ तात्पर्य यह है कि 'तदा अहं श्रीविनोदबिहारी वन्दनं कुर्यात्', अर्थात् मैं विनोदविहारी राधालिङ्गित श्रीविग्रहकी वन्दना कर रहा हूँ। श्रीविनोदबिहारी पदकर्त्ताका गुरुप्रदत्त नाम है। इसके अतिरिक्त श्रीपदकर्त्ताके सिद्ध स्वरूपका नाम भी श्रीविनोदमञ्जरी है, इनके प्रणाम मन्त्रसे भी ऐसा स्पष्ट है—

गौराश्रय-विग्रहाय कृष्णकामैक-चारिणे।
रूपानुगप्रवराय विनोदेति स्वरूपिणे॥

अतः इस स्तवके द्वारा पदकर्त्ता अपने सिद्ध स्वरूपके द्वारा राधालिङ्गित श्रीकृष्णकी प्रेममयी सेवामें सदैव नियुक्त रहनेकी अभिलाषा रखते हैं।

करुणाके घनमूर्त्ति श्रीगुरुदेवकी कृपाके बिना ऐसी दुर्लभ लालसाका पूर्ण होना सम्भव नहीं है।

श्रीगुरुचरणे रति, एई से उत्तमा गति,
जे प्रसादे पूरे सर्व आशा।

इति तत्त्वाष्टकं नित्यं यः पठेत् श्रद्धयान्वितः।
कृष्ण-तत्त्वमभिज्ञाय गौरपदे भवेन्मतिः॥ ९॥

अनुवाद—जो लोग इस तत्त्वाष्टकका श्रद्धापूर्वक नियमित रूपसे दैनन्दिन पाठ करेंगे, वे श्रीकृष्णतत्त्वसे भलीभाँति अवगत होंगे तथा श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणकमलोंमें इनकी प्रीति होगी॥ ९॥

श्रीमङ्गलारती

हम पहले ही कह चुके हैं कि परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्म एक ही साथ दार्शनिक तत्त्ववेत्ता एवं रसिक कवि दोनों ही थे। हम उनके द्वारा रचित मङ्गलारतीके कुछ पदोंको प्रस्तुत कर रहे हैं। हम इसके द्वारा सहज ही समझ सकते हैं कि वे कैसे रसिक कवि थे। इस मङ्गलारतीमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी निशान्तलीलाका बड़े ही निगूढ़ रूपमें वर्णन किया गया है। साधारण साधक उनके इस गम्भीर भावको हृदयङ्गम नहीं कर सकते। कुछ उन्नत रागानुगीय वैष्णव ही उसकी उपलब्धि कर सकते हैं।

रागानुग साधक-भक्तोंको श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्यलीलाओंका दैनन्दिन स्मरण और चिन्तन करनेके लिए नित्यलीलाको आठ भागोंमें विभक्त किया गया है—(१) निशान्त, (२) प्रातः, (३) पूर्वाह्न, (४) मध्याह्न, (५) अपराह्न, (६) सायं, (७) प्रदोष एवं (८) मध्यरात्रिलीला। मङ्गलारतीका सम्बन्ध निशान्तलीलासे है। निशाके अन्तिम भागमें प्रातःकालसे पूर्व श्रीराधाकृष्ण-युगलकी जो लीला होती है, उसे निशान्तलीला कहते हैं। श्रीसनत्कुमारसंहिता, पद्मपुराण (पाताल खण्ड) तथा गोस्वामी ग्रन्थोंमें इसका वर्णन है। श्रील रूप गोस्वामीने सूत्र रूपमें इन अष्टकालीय लीलाओंका वर्णन किया है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने गोविन्दलीलामृतमें तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने श्रीकृष्णभावनामृत ग्रन्थमें अष्टकालीय लीलाओंका विस्तारसे वर्णन किया है। हम सूत्र रूपमें निशान्तलीलाका दिग्दर्शन करा रहे हैं—

श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल रात्रिविलाससे क्लान्त होकर अत्यन्त रमणीय किसी कुञ्जमें सो रहे हैं। कुछ विशेष सखियाँ सेवाके समयोचित उपकरणोंको हाथोंमें लेकर श्रीयुगलकिशोरके जागरणकी प्रतीक्षा कर रही हैं। प्रातःकालीन सुशीतल मन्द समीर प्रत्येक पुष्पोंका चुम्बन करते हुए उनके सौरभके भारसे पीड़ित होकर लड़खड़ाता हुआ प्रवाहित हो रहा है। भौंरे भी तुरन्त जगकर गुञ्जार करते हुए एक पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्पको चुम्बन कर रहे हैं। वृन्दावनका सारा वातावरण इन विकसित पुष्पोंके सौरभसे आमोदित हो रहा है। श्रीवृन्दादेवी अभी तक युगलकिशोर-किशोरीको शयन करते देखकर चिन्तित हो जाती हैं। अहो! अब तो अरुणोदय होने जा रहा है; किन्तु ये युगल अभी भी सुखपूर्वक परस्पर आलिङ्गनबद्ध होकर शयन कर रहे हैं। ऐसा देखकर भयभीत होकर उन्होंने शुक-सारी, कोयल, मयूर और पपीहे आदि वृन्दावनके पक्षियोंको आदेश दिया कि वे अपने मधुर कलरवसे युगलकिशोरको जगायें। अन्यथा चारों ओर जागरण होनेके पश्चात् बड़ी लज्जाकी बात होगी। श्रीवृन्दादेवीका आदेश सुनते ही वे सारे पक्षी मधुर स्वरसे श्रीराधाकृष्णकी लीलाका गान करते हुए युगलको जगाने लगे।

इधर कुछ प्राणप्रेष्ठ सखियाँ कुञ्जके गवाक्षके माध्यमसे श्रीश्रीराधाकृष्णकी अनुपम रूपराशिका दर्शनकर आनन्दमें विभोर होकर अपने नेत्रोंसे ही उनकी आरती उतारने लगीं। पक्षियोंके मधुर कलरवसे जग जानेपर भी ये दोनों गाढ़ालिङ्गनसे प्राप्त सुख कहीं खो न जाय, इस डरसे शय्यासे उठना नहीं चाहते। फिर भी शुक-सारिकाओंके वचनोंके द्वारा बारम्बार जगाये जानेपर वे शय्यापर ही उठ बैठते हैं। उस समय स्वाधीनभर्तृका श्रीमती राधिका प्रियतम श्रीकृष्णसे उनके बिखरे हुए शृङ्गारको सँवारनेका अनुरोध करती हैं। धीरललित कृष्ण प्रियतमाके अस्त-व्यस्त शृङ्गारको सँवारने लगते हैं। तब तक सखियोंका कुञ्जमें आगमन होता है। वे उनके समीप जाकर रसालाप करती हुई उन दोनोंकी कालोचित सेवा करने लगती है। तत्क्षणात् कक्खटी नामक बन्दरियाके जोरसे 'जटिला' नामका उच्चारण करते ही अप्राकृत भय

और उत्कण्ठा रससे व्याकुल होकर श्रीश्रीराधाकृष्ण अपने-अपने भवनमें जाकर शयन करते हैं। श्रीरूपगोस्वामीका सूत्रश्लोक इस प्रकार है—

राञ्यन्ते त्रस्तवृन्देरितबहुभिरवैर्बोधितौ कीरशारी-
पद्यैर्हृद्यैरहृद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदितरतिललितौ कक्खटीगीःसशंकौ
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निजनिजधान्याप्ततल्पौ स्मरामि॥

श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें विभिन्न वैष्णव आचार्योंके द्वारा रचित श्रीराधाकृष्ण-युगलकी बहुत-सी मङ्गलारतियाँ हैं। परन्तु अस्मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव द्वारा रचित इस मङ्गलारतीका अपना एक अभूतपूर्व वैशिष्ट्य है। इसका गायन करनेसे श्रीराधाकृष्णकी निशान्तलीलाओंका सर्वाधिक रूपमें उद्दीपन होता है, जो अन्यत्र कहीं भी नहीं है। सम्पूर्ण मङ्गलारती इस प्रकार है—

मङ्गल श्रीगुरु-गौर मङ्गल मूरति।
मङ्गल श्रीराधाकृष्ण युगल पीरिति॥

मङ्गल निशान्तलीला मङ्गल उदये।
मङ्गल आरति जागे भकत हृदये॥

तोमार निद्राय जीव निद्रित धराय।
तव जागरणे विश्व जागरित हय॥

शुभदृष्टि कर प्रभु जगतेर प्रति।
जागुक हृदये मोर सुमङ्गला रति॥

मयूर शुकादि सारि कत पिकराज।
मङ्गल जागर हेतु करिछे विराज॥

सुमधुर ध्वनि करे जत शाखीगण।
मङ्गल श्रवणे बाजे मधुर कूजन॥

कुसुमित सरोवरे कमल-हिल्लोल।
मङ्गल सौरभ बहे पवन कल्लोल॥

झाँझर काँसर घण्टा शङ्ख करताल।
मङ्गल मृदङ्ग बाजे परम रसाल॥

मङ्गल आरति करे भकतेर गण।
अभागा केशव करे नाम-सङ्कीर्त्तन॥

जीव स्वरूपतः भगवान्‌का दास है। वह दुर्भाग्यवश भगवत्-विमुख होनेके कारण अनादि कालसे इस मायिक संसारमें पतित होकर जन्म-मरणके चक्करमें पड़कर त्रितापोंसे दग्ध हो रहा है। जीव किसी विशेष सौभाग्यसे सद्‌गुरुका पदाश्रयकर शुद्धभक्तिका अवलम्बन करता है। उस समय वह जान पाता है कि श्रीगुरुदेव, श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल सारे विश्वके लिए मङ्गलस्वरूप हैं। श्रीराधाकृष्णके श्रीचरणकमलोंमें प्रेम ही जीवोके लिए चरम प्रयोजन है। जिस सौभाग्यवान व्यक्तिके हृदयमें श्रीराधाकृष्ण-युगलके प्रति प्रेम उदित होता है, उसका जीवन सार्थक हो जाता है। यह अवस्था जीवोंके लिए परम कल्याणजनक है।

भक्तिसाधक मङ्गलमय भगवान् या भक्तकी कृपासे उत्तमाभक्तिका साधन करते-करते जब श्रद्धा, निष्ठा, रुचि और आसक्ति आदिकी अवस्थाको क्रमशः पार कर लेता है, उस समय स्वरूपशक्तिकी ह्लादिनी एवं सम्विद्‌की सारवृत्ति, जिसे शुद्धसत्त्व कहते हैं, उस साधकके हृदयमें स्वयं उदित होती है। उस समय सुसौभाग्यवान साधकके हृदयमें शुद्ध स्वरूपगत सिद्धदेह, नाम, रूप और भाव आदि भी उदित हो जाते हैं। तब तत्त्वज्ञ एवं रसिक भक्तोंके सङ्गसे उस साधकको भावपूर्वक नामकीर्त्तन एवं अष्टकालीय लीलाओंके स्मरणमें स्वाभाविक रति उत्पन्न होती है। जिस जीवका ऐसा मङ्गल उदित होता है, उसीके हृदयमें मङ्गल निशान्तलीलाका उदय होता है। विशेषतः अप्राकृत वृन्दावनधाममें निशान्तलीलाके अन्तर्गत प्रियनर्मसखियाँ श्रीराधाकृष्ण-युगलकी जो प्रेमभरी आरती उतारती हैं, वही मङ्गलमय आरती उपरोक्त प्रकारके भक्ति साधकके हृदयमें उदित होती है।

परम मङ्गलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण या उनके परिकरोंकी कृपाके बिना ऐसी मङ्गलमयी रति उदित नहीं होती। ऐसी मङ्गलमय रतिके उदित हुए बिना पूर्वोक्त अप्राकृत मङ्गलारती भी उदित नहीं होती। इसलिए भक्तिसाधक बड़े ही आर्त्तिपूर्वक व्याकुल होकर प्रार्थना करते हैं।

ऐसी प्रार्थनासे रागानुगीय भक्तोंके हृदयमें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी मङ्गलमयी आरती प्रकट होती है। उस सयम वह बाह्य संसार एवं बाह्य देहकी सुध-बुध खोकर अपने सिद्धशरीरसे इस प्रकार देखता है—मयूर शुकादि सारि जत पिकराज। मङ्गल जागर हेतु करिछे विराज॥ अरुणोदयका समय शीघ्र ही आ रहा है। श्रीराधाकृष्ण-युगल अभी तक सङ्केत आदि विलास कुञ्जोंमें आलिङ्गनबद्ध होकर शयन कर रहे हैं। जागरण होनेके भयसे त्रस्त होकर वृन्दादेवी मयूर, शुक, सारि, कोयल, पपीहा आदि पक्षियोंको श्रीयुगलको जगाने हेतु प्रेरणा देती है। उस समय स्थलचर, जलचर सभी पक्षी बड़े मधुर स्वरसे कलरव करने लगते हैं। श्रीगोविन्दलीलामृतमें इसका मर्मस्पर्शी विवरण इस प्रकार है—

द्राक्षासु सार्य्यः करकेषु कीराः जगुः पिकीभिश्च पिका रसाले।
पिलौ कपोताः प्रियके मयूराः लतासु भृङ्गाः भुवि ताम्रचूड़ा।

अर्थात् अंगूरकी लतापर सारिकाएँ, अनारके वृक्षपर शुक, आम्रशाखाओंपर कोकिल, पीलूपर कपोत-कपोती, कदम्बपर मयूर-मयूरी, लताओंपर भ्रमर-भ्रमरी, पृथ्वीतलपर कुक्कुट कलरव कर रहे हैं। मयूर एवं मयूरी 'के-का' की मधुर ध्वनि करने लगते हैं। महाभावकी मूर्त्तिमान विग्रहस्वरूपा श्रीमतीराधिकाके धैर्य, लज्जा एवं पातिव्रत्य धर्मके उच्च पर्वतको कौन चूर्ण-विचूर्ण कर सकता है? मानो इस उक्तिके उत्तर स्वरूप ही मयूर 'के' शब्दका उच्चारण करता है। तथा प्रेयसी-प्रेमतरङ्गिणीके मत्त-मातङ्ग श्रीकृष्णको अपने प्रेम-अंकुशसे कौन वशीभूत कर सकता है? मानो मयूरी 'का' शब्दके द्वारा उत्तर देती है—केवलमात्र श्रीमती राधिका। भ्रमरवृन्द एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर गुञ्जार करते हुए कामदेवका शङ्ख बजा रहे हैं। दक्ष, विचक्षण आदि शुक एवं शुभा, मञ्जुभाषिणी आदि सारियाँ मङ्गलमय प्रभातकी सूचना देकर श्रीयुगलको जगा रही हैं। इन पक्षियोंके मधुर कूजनसे राधाकृष्ण जग जानेपर भी आलिङ्गन सुख कहीं खो न जाय, इस भयसे नेत्रोंको बन्द किये हुए परस्पर आलिङ्गनमें बद्ध रहते हैं। यहाँ—'मङ्गल श्रवणे बाजे मधुर कूजन' के बहुत-से गभीर तात्पर्य हो सकते हैं। पहला—श्रीराधाकृष्णके मङ्गलमय कर्णोंमें विभिन्न वृक्ष शाखाओंको आश्रय करनेवाले मधुर पक्षियोंका कूजन

अर्थात् अस्फुट अव्यक्त मधुर शब्द। दूसरा तात्पर्य यह है कि श्रीराधाकृष्णके जागरणकी प्रतीक्षा करती हुई प्रियनर्म सखियोंके कर्णोंमें प्रवेश करनेवाले पक्षियोंका मधुर कूजन या कलरव। कूजन शब्दका और भी एक निगूढ़ तात्पर्य है, श्रीराधाकृष्ण परस्पर रतिविलासके समय जो परस्पर मधुर ठिठोली या वार्त्तालाप करते हैं, प्रियनर्मसखियोंके कानोंमें प्रवेशकर उन्हें प्रेममें विभोर कर देता है, वह कूजन।

बेली, चमेली, जूही, यूथिका, मल्लिका, मालती, कुन्द, जाति आदि विविध प्रकारके पुष्पोंसे भरे हुए वृन्दावनमें मतवाले भँवरे सर्वत्र गुञ्जार करते हैं। स्वच्छ, निर्मल मीठे जलोंके भरे हुए सरोवरोंमें सर्वत्र कमलके पुष्प शीतल मन्द समीरके स्पर्शसे लहलहाते रहते हैं, जिनपर भँवरोंके समूह गुञ्जार कर रहे हैं। उस समय सरोवरमें तरङ्गें उठती हैं जिससे कमल और भी आनन्दसे नृत्य करने लगते हैं। इतनेमें ही 'जटिला' शब्द श्रवणमात्रसे राधाकृष्ण-युगल एवं सखियाँ सशङ्कित एवं उत्कण्ठित होकर निकुञ्ज गृहसे निकलकर अपने-अपने भवनकी तरफ चलनेके लिए प्रस्तुत हो जाती हैं।

इसी समय साधक भक्तका अन्तर आवेश टूट जाता है तथा बाह्य दशा उपस्थित हो जाती है। वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। किन्तु श्रीमन्दिरमें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी मङ्गलारतीका घण्टा बजने लगता है, श्रीमन्दिरका पट खुल जाता है। भक्तलोग बड़े भावसे युगलकिशोरकी आरती करने लगते हैं। झाँझर, काँसर, घण्टा, शङ्ख, करताल एवं मृदङ्गकी मधुर ध्वनिके स्वरमें स्वर मिलाकर भक्तवृन्द नृत्य करते हुए मङ्गल आरतीका गान करने लगते हैं। पदकर्त्ता भी पूर्वोक्त निशान्तलीलाके भावमें विभोर होकर भक्तोंके साथ नामसङ्कीर्त्तन करने लगते हैं। कीर्त्तन पदोंके गानके साथ-साथ मङ्गल निशान्तलीलाकी स्फूर्ति होने लगती है, जिससे उनकी सारी व्याकुलता अन्तर्हित हो जाती है। शाखाचन्द्र न्यायसे हमने परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके हृद्गत भावोंको प्रकाश करनेकी चेष्टा की है। किन्तु मैं जानता हूँ कि उनके अनन्त अथाह रस समुद्रसे एक बिन्दु भी रस लेनेमें असमर्थ हूँ। श्रील गुरुपादपद्म सर्वथा अयोग्य दास पर अनुग्रह करें कि मैं इसके लिए योग्य बन सकूँ।

श्रील प्रभुपादकी आरती

जय जय प्रभुपादेर आरति नेहारी।
योग मायापुर-नित्य सेवा-दानकारी॥

सर्वत्र प्रचार-धूप सौरभ मनोहर।
बद्ध मुक्त अलिकूल मुग्ध चराचर॥

भकति-सिद्धान्त-दीप जालिया जगते।
पञ्चरस-सेवा-शिखा प्रदीप्त ताहाते॥

पञ्च महाद्वीप यथा पञ्च महाज्योतिः।
त्रिलोक-तिमिर-नाशे अविद्या दुर्मति॥

भकति विनोद-धारा जल शङ्ख-धार।
निरवधि बहे ताहा रोध नाहि आर॥

सर्ववाद्यमयी घन्टा बाजे सर्वकाल।
वृहत्मृदङ्ग वाद्य परम रसाल॥

विशाल ललाटे शोभे तिलक उज्ज्वल।
गल देशे तुलसी माला करे झलमल॥

आजानुलम्बित बाहू दीर्घ कलेवर।
तप्त काञ्चन-बरण परम सुन्दर॥

ललित-लावण्य मुखे स्नेहभरा हासी।
अङ्ग कान्ति शोभे जैछे नित्य पूर्ण शशी॥

यति धर्मे परिधाने अरुण वसन।
मुक्त कैल मेधावृत गौड़ीय गगन॥

भकति-कुसुमे कत कुञ्ज विरचित।
सौन्दर्ये-सौरभे तार विश्व आमोदित॥

सेवादर्शे नरहरि चामर ढूलाय।
केशव अति आनन्दे निराजन गाय॥

परमाराध्य श्रील गुरुदेवने अपने आराध्य गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी एक सर्वाङ्ग सुन्दर आरतिके पदकी रचना की है।

जब इसका श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशन हुआ, तब उसे पढ़कर श्रील प्रभुपादके सारे शिष्य, प्रशिष्य आनन्दसे झूम उठे। सभी लोग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपमें धन्यवाद देने लगे। यहाँ तक कि श्रीगौड़ीय मठोंके आचार्यगण अपनी-अपनी पत्रिकाओंमें श्रील गुरुदेवके नामको हटाकर प्रकाशन करनेका लोभ संवरण नहीं कर सके और तबसे श्रील प्रभुपादकी आरतिके समय श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित इस आरति-कीर्त्तनका प्रचलन सर्वत्र हो गया।

जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादके आश्रित प्रमुख त्रिदण्डि संन्यासियोंमेंसे प्रपूज्यचरण त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज अन्यतम थे। वे वेद, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत एवं गीता आदि शास्त्रोंमें पारङ्गत थे। सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें इनका बड़ा ही आदर था। उन्होंने प्रभुपादकी आरतिको पढ़ते ही अपने झाड़ग्राम मेदिनीपुर स्थित मठसे तत्क्षणात् श्रीधाम नवद्वीपमें श्रील गुरुदेवके पास उपस्थित होकर उन्हें इसके लिए बधायी दी—

"महाराज! बड़े आश्चर्यकी बात है, हमलोग बहुत दिनोंसे गुरुगृहमें एक साथ रहते आये हैं, किन्तु निकट रहकर भी आज तक हमलोग आपको पहचान नहीं पाये। आपके हृदयमें इतनी गम्भीर गुरुनिष्ठा—विशुद्ध भक्ति है, अब तक हम इसकी गन्ध भी नहीं पा सके। अब तक हमने आपको प्रजाओंके शासन एवं सांसारिक कार्योंमें ही सुदक्ष समझा था, किन्तु हमारी सारी धारणाएँ भूल सिद्ध हो रही हैं। आज सौभाग्यवश आपकी इस अनुपम गुरुनिष्ठा एवं अतुलनीय भक्ति-प्रतिभा हृदयङ्गम कर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके हृदयमें श्रील प्रभुपाद स्वयं बैठकर आपके द्वारा शुद्धभक्तिके ऐसे सुन्दर, सुसिद्धान्तपूर्ण भावोंको प्रकाशित कर रहे हैं। आप धन्य हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्यमें भी आप ऐसे-ऐसे अपूर्व कीर्त्तन पदों, स्तव-स्तुतियों, प्रबन्ध-निबन्धोंके द्वारा जगत्‌का अशेष कल्याण करेंगे।"

यहाँ इस आरतिके कतिपय पदोंके गम्भीर भावोंकी व्याख्या की जा रही है। 'योगमायापुर नित्य सेवादानकारी'—गोलोकके सर्वोच्च प्रकोष्ठका नाम व्रज, वृन्दावन अथवा गोकुल है। उसीके सन्निकट एक और प्रकोष्ठ है, जिसे श्वेतद्वीप या नवद्वीप कहते हैं। इस नवद्वीपधामका

हृदयस्थल श्रीधाम मायापुर है, जहाँ श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्ति और अन्तरङ्ग भावोंको अङ्गीकार कर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें अपने नित्य परिकरोंके साथ नाना प्रकारके भावोंका आस्वादन करते हैं। किसी-किसी विरले सौभाग्यवान जीवोंको ही महावदान्य श्रीगौरलीलामें प्रवेश करनेका सौभाग्य होता है। श्रीकृष्ण-लीलाकी नयनमञ्जरी ही श्रीगौरलीलाके श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर हैं। इनके प्रणाममन्त्रमें इनका सिद्धस्वरूप अन्तर्निहित है—

श्रीवार्षभानवि-देवि-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञान-दायिने प्रभवे नमः॥

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कृष्णप्रिया वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाकी परम प्रियसखी, उन्नत उज्ज्वल मधुररसके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीनयनमञ्जरी हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेपर ये करुणावरुणालय श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी दुर्लभ नित्यसेवाको प्रदान करते हैं। इसी प्रकार जो लोग श्रद्धापूर्वक श्रीरूपानुग प्रवर श्रील प्रभुपादकी आरति करते हैं या आरति दर्शन करते हैं, ये उन सबको ऐसी दुर्लभ गौरसेवा प्रदान करते हैं।

श्रील प्रभुपादकी यह आरति अनुपम, अलौकिक तथा असाधारण है। तथा अन्य आरतियोंसे सर्वथा विलक्षण है। उन्होंने नवद्वीपके नौ द्वीपोंमें तथा भारत एवं विश्वके कोने-कोनेमें, प्रधान-प्रधान नगरोंमें, पहाड़ों एवं जङ्गलोंके बीचमें सर्वत्र ही अपने शिष्य-प्रशिष्यको, ब्रह्मचारी एवं संन्यासियोंको भेजकर उन स्थानोंमें प्रचारकेन्द्र स्थापनकर शुद्धभक्तिका प्रचार किया है, जिसके आकर्षक सौरभसे बद्ध और मुक्त सभी प्रकारके जीव आकृष्ट होकर शुद्धभक्तिमें तत्पर हुए हैं और हो रहे हैं। साधारण अर्चनमें प्रथम श्रीविग्रहोंकी धूपसे आरति की जाती है, जिसकी सुगन्ध श्रीमन्दिर तक ही सीमित रहती है, किन्तु शुद्धभक्ति प्रचाररूप धूपकी सुगन्ध सारे विश्वको आमोदित एवं आकृष्ट करती है। इस प्रकार शुद्धभक्ति प्रचाररूप धूपका एक अलौकिक वैशिष्ट्य है। यदि सरस्वती प्रभुपादने विश्वमें शुद्धभक्तिका प्रचार नहीं किया होता, तो सारा विश्व

शुद्धभक्ति-लाभसे सर्वथा वञ्चित रहता और इनका कल्याण नहीं होता। पश्चिम बङ्गाल तथा भारतके अन्य प्रान्तोंके लोग भी शुद्धभक्ति अर्थात् रागानुग और विशेषतः रूपानुगभक्तिसे सर्वथा वञ्चित रह जाते। भक्ति प्रचारके लिए इन्होंने भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन एवं विश्व भरमें वितरणकी जो व्यवस्था की है, वह अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व है। इसीके द्वारा इन्होंने जगत्में भक्तिक्रान्तिकी नयी लहर पैदा कर दी। भारतसे सुदूर प्राच्य एवं पाश्चात्य छोटे-बड़े सभी देशोमें, छोटे-छोटे बालकों, नवयुवकों, नवयुवतियों तथा वृद्धों—सभीको वैदिक संस्कृतिमें रङ्गे हुए, हाथोंमें जापमालिका, अङ्गोंमें तिलक, सिरपर शिखा धारण किये हुए, गलियों-गलियोंमें मृदङ्ग, करतालकी तालपर नृत्य करते हुए, सङ्कीर्त्तन करते हुए देखा जा सकता है। उन स्थानोंमें श्रीराधाकृष्ण, श्रीगौर-नित्यानन्द, श्रीजगन्नाथ-बलदेव-सुभद्रा आदिके विशाल-विशाल श्रीमन्दिर देखे जा सकते हैं। यह सब कुछ इन्हीं महापुरुषका अवदान है।

श्रीविग्रहके अर्चनमें धूपके पश्चात् प्रज्ज्वलित दीपसे आरति उतारी जाती है। इस विशेष अर्चनमें भक्तिसिद्धान्त ही दीप हैं। भक्तिसिद्धान्त दस प्रकारके हैं—(१) आम्नाय वाक्य—गुरु-परम्परागत मान्य वेद आदि शास्त्र ही (श्रीमद्भागवत) सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं, (२) व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं, (३) वे सर्वशक्तिमान हैं, (४) वे अखिल रसामृतसिन्धु हैं, (५) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (६) बद्धजीव मायाके अधीन होते हैं, (७) मुक्तजीव मायासे मुक्त होते हैं, (८) चित्-अचित् जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (९) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (१०) कृष्णप्रीति ही एकमात्र साध्यवस्तु है। इन दस प्रकारके भक्तिसिद्धान्तरूप जड़ी-बूटियोंका रसनिर्यास ही घृत है, जिससे दीप प्रज्ज्वलित होता है। पाँच प्रकारके स्थायीभाव ही पञ्च महाप्रदीप हैं। इन प्रदीपोंमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर—ये पाँच प्रकारके रस ही पाँच प्रकारकी शिखाएँ हैं।

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी ये उन प्रज्ज्वलित शिखाओंकी किरणें हैं। इस अलौकिक पञ्चशिखा विशिष्ट प्रदीपकी महाज्योतिसे तीनों लोकोंका अज्ञान अथवा अविद्यारूप अन्धकार सदाके

लिए दूर हो जाता है। इसके दर्शनसे कृष्ण विमुख जीवोंकी विमुखता दूर हो जाती है। विमुखता ही दुर्मति है और यही अन्धकार है। इस विलक्षण दीपके प्रभावसे यह अविद्या सदाके लिए दूर हो जाती है। वर्त्तमान युगमें इस दीपको जलाया किसने? इस भक्तिसिद्धान्त दीपको प्रज्ज्वलित किया है—श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने।

(३) धूप और दीपके अनन्तर जलशङ्ख द्वारा आरति होती है। भक्तिका विनोदन ही (श्रील भक्ति विनोद ठाकुर) शङ्ख है। वह शङ्खजल भक्तिभगीरथ भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रवाहित रूपानुगभक्तिप्रवाहका निर्मल एवं सुगन्धित जल है। इस शङ्खकी धारा (प्रवाह) तैलधारावत् अविच्छिन्न गतिसे नित्य-निरन्तर प्रवाहित हो रही है एवं भविष्यमें भी प्रवाहित होती रहेगी अर्थात् कभी भी यह भक्तिधारा रुद्ध नहीं होगी। इस जलशङ्खकी धाराके छीटोंसे अखिल विश्वके सौभाग्यवान जीव अभिषिक्त होकर भगवत्-रससे अनुप्लावित होते रहेंगे।

(४) श्रीविग्रह-अर्चनमें घण्टाका बहुत महत्व है। धूप, दीप आदिके द्वारा आरति करते समय घण्टाका बजाना अत्यन्त आवश्यक है। इस विलक्षण आरतिमें सर्ववाद्यमयी घण्टा भी सर्वथा विलक्षण है, जो सदैव नित्यकाल बजता रहता है। वीर्यवती हरिकथा ही यह अलौकिक घण्टा है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका सम्पूर्ण जीवन हरिकथामय रहा है। दूसरे शब्दोंमें श्रील सरस्वती ठाकुर हरिकथाके मूर्त्तिमान विग्रह थे। पल भरके लिए भी उनकी हरिकथा नहीं रुकती थी। अबोध बालकों, पेड़-पौधों तकको भी देखकर इनकी हरिकथा अपने आप प्रवाहित होने लगती थी। उनकी हरिकथा इतनी ओजस्विनी एवं प्रभावशालिनी होती थी कि कोई भी श्रोता साथ-ही-साथ भक्तिसे अनुप्राणित हो जाता था।

अर्चनके साथ कीर्त्तन होना अत्यन्त आवश्यक है। श्रील जीव गोस्वामीने भक्तिसन्दर्भमें कहा है—'यद्यप्यन्या भक्ति कलौ कर्त्तव्या तदा कीर्तनाख्या भक्ति संयोगेनैव।' अर्थात् यदि कोई भक्तिके अन्य अङ्गोंका अनुशीलन करता है, तो उसे हरिसङ्कीर्त्तनके सहयोगके साथ ही करना चाहिये अन्यथा कलियुगमें सङ्कीर्त्तनके अतिरिक्त अकेले साधन किये जानेपर भी फलप्राप्ति नहीं होती। अतः अर्चनके साथ कीर्त्तन होना

अत्यावश्यक है। सङ्कीर्त्तन भी नाम, रूप, गुण, लीला, कीर्त्तन आदिके भेदसे विभिन्न प्रकारका होता है। इनमेंसे नामकीर्त्तन सर्वश्रेष्ठ है—तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नामसङ्कीर्त्तन। सङ्कीर्त्तनमें मृदङ्ग वाद्यका होना भी आवश्यक है। श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रवर्तित आरतिमें बृहद्-मृदङ्गका योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मुद्रण-यन्त्र ही यह बृहद्-मृदङ्ग है। साधारण मृदङ्गकी ध्वनि बहुत सीमित होती है। किन्तु बृहद्-मृदङ्ग—मुद्रण-यन्त्रसे प्रकाशित भक्तिग्रन्थ विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचकर साधकभक्तोंके हृदयमें प्रवेशकर उन्हें उन्मत्तकर हरिनाम-सङ्कीर्त्तनमें नृत्य कराने लगता है। इस बृहद्-मृदङ्गकी ध्वनि कभी भी बन्द नहीं होती, सदैव भक्तोंके हृदयमें उदित होकर उन्हें अनुप्राणित करती रहती है। इस बृहद्-मृदङ्गकी स्थापना करनेवाले प्रभुपादकी आरति जययुक्त हो।

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव इस आरति-कीर्त्तनमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अप्राकृत श्रीअङ्गोंके अलौकिक सौन्दर्यका वर्णन कर रहे हैं—यद्यपि मदीय परमाराध्यतम श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद श्रीमती राधिकाकी परमप्रिय श्रीनयनमञ्जरी हैं, किन्तु इस भौम जगत्में दीनतावश अपना नाम श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रकाशकर अपने पूर्व नाम आदि स्वरूपको आच्छादितकर तृणादपि सुनीचका आदर्श दिखलाया है। इनके विशाल ललाटपर उद्धर्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित हो रहा है। इनके सुन्दर गलेमें त्रिकण्ठी तुलसीमाला सदैव झलमल-झलमल करती रहती है। आजानुलम्बित भुजाएँ, सुगठित सुन्दर अङ्ग प्रत्यङ्गयुक्त दीर्घ कलेवर, स्वर्णकान्तिको भी पराभूत करनेवाली श्रीअङ्गकान्ति इनके महापुरुष होनेकी घोषणा कर रही हैं। क्योंकि ये सब महापुरुषोंके विशेष लक्षण हैं। इनके ललित लावण्य अधरोंमें स्नेहकी मुस्कान सदा खेलती रहती है। उनके यतिधर्मके अनुसार अङ्गीकार किये हुए डोर-कौपीन, बहिर्वास एवं उत्तरीय आदि गैरिक वस्त्रोंकी उज्ज्वल ज्योतिने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं बलदेव विद्याभूषणके पश्चात् गौड़ीयगगनमें छाये हुए मेघोंके द्वारा उत्पन्न घने अन्धकारको समाप्त कर दिया है। इन्होंने देश-विदेशमें सर्वत्र ही शुद्धभक्तिकेन्द्रोंका स्थापन किया है। ये केन्द्र मानो भक्तिलताके पुष्पोंसे निर्मित श्रीराधाकृष्णके विलासकुञ्ज हैं, जिसके

सौन्दर्य एवं सुगन्धसे सारा विश्व अमोदित हो रहा है। श्रीमायापुरधाममें श्रील प्रभुपादकी यह आरति नित्यकाल विराजमान है। उनके परमप्रिय नरहरि सेवाविग्रह प्रभु श्रील प्रभुपादको चामर वीजन कर रहे हैं। यह श्रीकेशव आनन्दमें विभोर आरति-कीर्त्तन कर रहा है।

श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित इस सुललित आरति-कीर्त्तनका पद आज सर्वत्र गौड़ीय वैष्णवजन प्रीतिपूर्वक गान करते हैं।

श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरती

श्रीगौड़ीय सारस्वत वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरतीके लिए कोई कीर्त्तन नहीं था। कोई-कोई 'तुलसी कृष्ण प्रेयसी नमो नमः, विलासकुञ्ज दियो वास' श्रीकृष्णदास द्वारा रचित पद या कोई-कोई चन्द्रशेखर द्वारा रचित 'नमो रे नमो रे मैया नमो नारायणि' पदका तुलसी परिक्रमा या आरतिके समय कीर्त्तन करते थे। श्रीकृष्णदासकृत तुलसी परिक्रमाका पद अति उच्चकोटिके रागानुगीय साधकोंके लिए ही उपयुक्त है। साधारण वैधीभक्ति साधकोंके लिए विलासकुञ्जमें वासकी लालसाके अभावके कारण उनके लिए यह अनुपयुक्त है।

श्रीचन्द्रशेखर द्वारा रचित पद श्रीरामानुजीय वैष्णवोंके लिए उपयुक्त है। क्योंकि इसमें तुलसीदेवीको वैकुण्ठगत श्रीनारायण या श्रीशालग्रामकी पटरानी कहा गया है। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी उपास्या श्रीवृन्दादेवी श्रीवृन्दावनधामके श्रीराधाकृष्ण-युगलके लीलाविलासको सम्पन्न करानेवाली एक परमप्रिय सखी हैं। ये गोलोकके सर्वोच्च प्रकोष्ठगत वृन्दावनधामकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं। इन्होंने अपने प्रिय सुरम्य वृन्दावनको अपनी प्रियसखी वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीको समर्पित कर रखा है। इन्हींके सहयोगसे श्रीराधाकृष्णका परस्पर मिलन एवं अन्यान्य कुञ्जलीलाएँ सम्पन्न होती हैं। वैकुण्ठगत श्रीनारायणप्रिया तुलसी इन्हीं श्रीवृन्दादेवीका वैभव-प्रकाश हैं। मूल श्रीवृन्दादेवी श्रीनारायण या श्रीशालग्रामकी पटरानी नहीं हो सकती हैं। अतः श्रीगौड़ीय वैष्णव इन्हें वृन्दावनस्थित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्रियाके रूपमें ही ग्रहण करते हैं।

इन्हीं सब कारणोंसे परमाराध्य श्रील गुरुदेवने श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके साधारण साधकोंके लिए कोई उपयोगी तुलसी परिक्रमा एवं

आरतिके लिए एक कीर्त्तन-पदकी आवश्यकता अनुभव की। श्रीगौड़ीय वैष्णवगण श्रीराधाकृष्ण-युगल एवं श्रीगौरहरिको एक अभिन्न परतत्त्व स्वीकार करते हैं। अतः श्रीलगुरुदेवने श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरतिके लिए अभिन्न एवं सुसिद्धान्तपूर्ण सुललित पदकी रचना की। सारे सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायने इस सुसिद्धान्तपूर्ण एवं सर्वाङ्गपूर्ण इस पदको ग्रहण किया। श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरतिके समय आज इस पदका कीर्त्तन होता है। यह पद निम्नोक्त प्रकारका है—

'नमो नमः तुलसी कृष्ण-प्रेयसी' (नमो नमः)।
राधाकृष्ण नित्यसेवा— 'एइ अभिलाषी'॥ १॥

जे तोमार शरण लय, सेइ कृष्ण सेवा पाय,
कृपा करि कर तारे 'वृन्दावनवासी'।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ २॥

तोमार चरणे धरि मोरे अनुगत करि,
गौरहरि-सेवा-मग्न राख दिवा निशि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ३॥

दीनेर एइ अभिलाष, मायापुरे/नवद्वीपे दिओ वास,
अंगेते माखिब सदा धाम धूलि राशि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ४॥

तोमार आरति लागि, धूप, दीप, पुष्प माँगी,
महिमा बाखानि एबे हउ मोरे खुशी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ५॥

जगतेर जत फूल, कभु नहे समतुल,
सर्वत्यजि कृष्ण तव पत्र मञ्जरी विलासी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ६॥

ओगो वृन्दे महारानी!
तोमार पादप तले, देव ऋषि कुतूहले,
सर्वतीर्थ लये ताँरा हन अधिवासी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ७॥

श्रीकेशव अति दीन, साधन-भजन-हीन,
तोमार आश्रये सदा नामानन्दे भासि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ८॥

सर्वप्रथम श्रीतुलसी या वृन्दादेवीको कृष्ण-प्रेयसी सम्बोधनकर उन्हें प्रणाम किया गया है। उन्हें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी नित्यसेवा प्रदान करनेवाली एक परम करुणामयी सखी बतलाया गया है। जो आपकी शरण ग्रहण करता है, उसे आप कृपाकर कृष्णसेवा प्रदान करती हैं तथा उसे वृन्दावनमें सदैव निवास करनेका सौभाग्य प्रदान करती हैं। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीने स्वरचित श्रीश्रीवृन्दादेव्याष्टकम्में श्रीवृन्दादेवीकी इसी रूपमें स्तुति की है—

समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ श्रीकृष्णस्य वृन्दावन-धन्य-धाम्नि।
दत्ताधिकारे वृषभानु-पुत्र्या वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ३॥

त्वदाज्ञया पल्लव-पुष्प-भृङ्ग-मृगादिभिर्माधव-केलिकुञ्जाः।
मध्वादिभिर्भान्ति विभूष्यमाणा वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ४॥

त्वदीय-दूत्येन निकुञ्ज-यूनो-रत्युत्कयोः केलि-विलास-सिद्धिः।
त्वत्-सौभगं केन निरुच्यतां तद् वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ५॥

रासाभिलाषो वसतिश्च वृन्दावने त्वदीशाङ्घ्रि-सरोज-सेवा।
लभ्या च पुंसां कृपया तवैव वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ६॥

त्वं कीर्त्त्यसे सात्वत-तंत्रविद्भिर्लीलाभिधाना किल कृष्ण-शक्तिः।
तवैव मूर्त्तिस्तुलसी नृलोके वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ७॥

भक्तया विहीना अपराध-लक्षैः क्षिप्ताश्च कामादि-तरङ्ग मध्ये।
कृपामयि! त्वां शरणं प्रपन्ना वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ८॥

अर्थात् वृषभानु राजनन्दिनी श्रीराधिकाने आपको निखिल वैकुण्ठसमूहके शिरोमणि, अशेष गुण समन्वित परम पवित्र श्रीकृष्णधाम वृन्दावनका अधिकार प्रदान किया है। आपके ही आदेशसे विविध प्रकारके पत्र एवं सुगन्धित पुष्पोंसे लदे हुए वृन्दावनमें भ्रमर, मृग, मयूर, शुक-सारि पशु-पक्षियोंसे परिव्याप्त तथा सदैव वसन्त ऋतु जैसी शोभा धारण किये हुए श्रीकृष्णके केलिकुञ्जसमूह परम सुशोभित हो रहे हैं। आपके

अत्यन्त कुशल दूती कार्यके प्रभावसे ही विलास वासनामयी श्रीश्रीराधाकृष्णके केलिविलास सम्पन्न हुआ करते हैं। अर्थात् आप ही दूती बनकर श्रीराधागोविन्दके सुदुर्घट मिलनको सम्पन्न कराती हैं। उनके लीलाविलास सम्पादन कार्यमें विविध प्रकारसे सहायता करती हैं। अतएव इस संसारमें आपके सौभाग्यकी सीमाका वर्णन कौन कर सकता है? मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। हे वृन्दे! आपकी कृपासे कृष्णभक्तोंके हृदयमें श्रीरासलीला दर्शनकी लालसा उत्पन्न होती है। आपकी कृपासे वे श्रीवृन्दावनधाम वास प्राप्त करते हैं तथा अपने प्राणवल्लभ श्रीराधामाधवकी चरणसेवा प्राप्त करते हैं। मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। हे वृन्दे! श्रीनारदादि भक्तोंके द्वारा रचित तन्त्र-ग्रन्थोंमें सुनिपुण विद्वद्जनोंने आपका कृष्णकी लीलाशक्तिके रूपमें वर्णन किया है। इस नरलोककी सुप्रसिद्ध वृक्षरूपिणी श्रीतुलसीदेवी आपकी ही मूर्त्ति हैं अर्थात् आप ही इस नरलोकमें वृक्षरूपिणी श्रीतुलसीदेवी हैं। मैं आपके चरणकमलोंमें पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ। हे कृपामयि देवि! हम भक्तिहीन होनेके कारण शत-शत अपराधोंसे भरपूर हैं और इसीलिए भवसमुद्रके काम-क्रोधादि रूप भीषण तरङ्गोंमें निक्षिप्त हो रहे हैं। कोई दूसरा उपाय न देखकर आपके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत हो रहे हैं। आप कृपा करके हमारा इस सुदुस्तर भवसमुद्रसे उद्धार करें। हम पुनः-पुनः आपके श्रीचरणकमलोंमें नमस्कार करते हैं। अतएव हे कृष्णप्रेयसी वृन्दे! आप अपने शरणागत जनोंको वृन्दावनवास दान करनेकी कृपा करें।

हे वृन्दे! हम आपके चरणकमलोंकी पुनः-पुनः वन्दना करते हैं। आप हमें अपना आनुगत्य प्रदानकर श्रीमतीराधिकाके अन्तर्निहित भाव एवं उनकी अङ्गकान्तिसे देदीप्यमान श्रीकृष्णरूपी श्रीगौरहरिकी सेवा प्रदान करें। जिससे मैं दिवा-रात्रि श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिकी सेवामें निमग्न रह सकूँ। यदि कहो श्रीमती तुलसी तो कृष्णकी प्रेयसी हैं। वे कृष्णकी ही सेवा दे सकती हैं। वे शचीनन्दन श्रीगौरहरिकी सेवा कैसे दे सकती हैं? हाँ दे सकती हैं। क्योंकि श्रीशचीनन्दन गौरहरि एवं श्रीकृष्ण दोनों अभिन्न परतत्त्व हैं। क्योंकि लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रसिकशेखर एवं परमकरुणाघन विग्रह हैं। वे ही कृपाकर अपनी रागमार्ग भक्तिका वितरण

करनेके लिए एवं अपनी आन्तरिक तीन वाञ्छाओं—(१) श्रीमती राधिकाकी प्रणय महिमा कैसी है, (२) हमारे रूप, गुण, वेणु और लीलाकी माधुरी जिसे श्रीमतीराधिका आस्वादन करती हैं, वह कैसी है, तथा (३) श्रीमती हमारी इन माधुरियोंका आस्वादनकर किस प्रकारका आनन्द अनुभव करती हैं, को पूर्ण करनेके लिए श्रीमती राधिकाका भाव एवं अङ्गकान्ति अङ्गीकारकर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें प्रकट हुए हैं। अतएव श्रीतुलसीदेवी गौरहरिकी भी प्रिया हैं। वे अवश्य ही गौरकी सेवा या प्रेम दे सकती हैं। कृष्णके सारे परिकर प्रायः पुरुषरूपमें श्रीगौरहरिके साथ आविर्भूत हुए हैं। कोई-कोई स्त्रीरूपमें भी आविर्भूत हुई हैं। श्रीवृन्दादेवी भी कलियुगमें कृष्णभक्तिको सुलभ करानेके लिए तुलसीवृक्षके रूपमें प्रकटित हैं। श्रील अद्वैताचार्यने, जो महाविष्णुके अवतार हैं, श्रीकृष्णको इस भूतलमें आविर्भूत करानेके लिए सबसे सरल एवं सबसे प्रभावशाली उपायका अवलम्बन किया। वह आराधना थी, कुछ तुलसीपत्रोंको गङ्गाजलके साथ स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको अर्पणकर उच्चस्वरसे कातर होकर कृष्णनामका कीर्त्तन। श्रीअद्वैताचार्यकी प्रभावशाली अचूक आराधनासे स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण श्रीगौरहरिके रूपमें इस भूतलमें आविर्भूत हुए हैं। अतः श्रीतुलसी महारानी श्रीगौरहरिकी सेवा दे सकती हैं। हे वृन्दे! हे कृष्णप्रिये! मैं आपके चरणकमलोंमें पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ। मुझ दीनहीन शरणागत जनको श्रीवृन्दावन, श्रीमायापुर या श्रीनवद्वीपधाममें कहीं भी वासस्थान देनेकी कृपा करें, जिससे मैं अपने अङ्गोंमें इस अप्राकृत धामकी धूलिराशिको धारणकर प्रेममें उन्मत्त होकर श्रीगौरहरिके नामोंका कीर्त्तन कर सकूँ अथवा हरे कृष्ण नामका कीर्त्तन कर सकूँ।

हे कृष्णप्रेयसी तुलसीदेवी! आपकी आरति करनेके लिए मैंने धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य आदि षोडश उपकरणोंका संग्रह किया है। मैं प्रीतिपूर्वक उन उपकरणोंसे आपकी आरती कर रहा हूँ। साथ ही सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे आपकी महिमाका बखान करता हूँ। आप कृष्णकी लीलाशक्ति हैं। श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी हैं। आप राधाकृष्ण-युगल तथा श्रीगौरहरिकी प्रेमाभक्ति देनेमें समर्थ हैं। आप मेरे प्रति प्रसन्न हों। आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरी पुनः-पुनः यही प्रार्थना है।

हे कृष्णप्रेयसी तुलसीदेवि! संसारमें बेली, चमेली, जूही, केवड़ा, कमल आदि नाना प्रकारके सुन्दर-से-सुन्दर पुष्प हैं, किन्तु आपके सामने वे नगण्य हैं। श्रीकृष्ण उन सब प्रकारके पुष्पोंको त्याग कर आपके पत्र और मञ्जरीको ही स्वीकार करते हैं। आपके वृन्दाकुञ्जमें ही अपनी प्रियतमके साथ विलास करते हैं। श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीभगवान्‌के चरणोंमें अर्पित श्रीतुलसीपत्रके मकरन्दके आघ्राणसे चारों कुमार उन्मत्त होकर भगवत्-दर्शनके लिए वैकुण्ठमें पधारे थे। अन्यान्य पुष्पोंमें इस अद्भुत महाशक्तिका अभाव है। श्रीतुलसीका मकरन्द एवं सौरभ स्वयं कृष्णको भी आकर्षित कर लेता है।

कुरुक्षेत्रकी बात है। पूर्णग्रास सूर्यग्रहणके समय श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार एकसौ आठ महिषियों तथा पूरे द्वारकावासी परिवारके सहित वहाँ उपस्थित हुए। सूर्यग्रहणका अन्तिम स्नानकर श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा श्रीकृष्णको सुवर्णराशिसे तौलकर नारदको वह सुवर्णराशि दान करना चाहती थी। तराजूके एक पल्लेपर कृष्ण एवं दूसरे पल्लेपर सत्यभामाके सारे स्वर्ण आभूषणोंको रखा गया। पुनः सोलह हजार एक सौ महिषियोंके सारे आभूषण भी रखे गये। तत्पश्चात् और भी स्वर्णखण्ड क्रमशः रखे गये। किन्तु सुवर्णराशिसे भरा पल्ला ऊपर ही रहा। वे उपायरहित होकर देवर्षि नारदकी प्रेरणासे वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाके शरणागत हुईं। श्रीमती राधिकाने सारे स्वर्णराशिको पल्लेसे हटाकर अपने अश्रुओंसे अभिषिक्त एक तुलसीपत्र वहाँ रख दिया। कृष्णवाला पल्ला ऊपर उठ गया और तुलसीपत्रवाला पल्ला जमीनपर लग गया। सभी लोग तुलसीपत्रकी महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार तुलसीपत्र एवं तुलसीमञ्जरी सब प्रकारके पुष्पों एवं पत्रोंसे श्रेष्ठ है, इसमें किसी भी प्रकारकी शङ्काकी गुंजाइश नहीं।

हे कृष्णप्रेयसी तुलसी! आपकी पावन छायामें सब तीर्थोंको साथ लेकर सारे देवता एवं ऋषि उत्कण्ठाके साथ आपकी कृपा पानेके लिए निवास करते हैं। आप उनकी लालसाको पूर्ण करनेवाली हैं। मैं दीनहीन आपके चरणोंमें शरणागत होकर पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। शास्त्रोंमें इसके भूरि-भूरि प्रमाण हैं कि सारे देवता एवं ऋषिलोग भगवद्भक्तिके लिए तुलसीकी आराधना करते हैं। श्रीतुलसीवृक्षकी छायामें

सब तीर्थोंका निवास रहता है। श्रीतुलसीदेवीकी विविध प्रकारसे सेवा होती है।

दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता।
रोपिता सेविता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा॥

नवधा तुलसीं देवीं ये भजन्ति दिने दिने।
युगकोटि-सहस्रानि ते वसन्ति हरेर्गृहे॥

श्रीकृष्णप्रिया तुलसीदेवीका दर्शन करनेसे स्पर्श करनेसे, ध्यान करनेसे, उनकी महिमाका कीर्त्तन करनेसे, प्रणाम करनेसे, महिमाका श्रवण करनेसे, रोपन करनेसे, श्रीहरिके चरणोंमें अर्पित करनेसे, सेवित होनेसे तथा पूजित होनेसे वे साधकोंके लिए परम शुभदायिनी होती हैं। जो लोग उपरोक्त नौ प्रकारोंसे तुलसीकी सेवा करते हैं, वे सहस्र युगों तक अर्थात् नित्यकाल श्रीहरिके धाममें वास करते हैं।

अतएव परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव द्वारा रचित तुलसीकी परिक्रमा एवं आरतीका यह पद सब प्रकारके भक्तिसाधकोंके लिए परम कल्याणप्रद है।

श्रीचैतन्य-पञ्जिका (श्रीमायापुर-पञ्जिका)

[परमाराध्य श्रीलगुरुदेवका श्रीचैतन्य-पञ्जिकाके सम्बन्धमें विचार]

जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' श्रीचैतन्य-पञ्जिकाके आदि प्रवर्तक हैं। इसमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी धारा संरक्षित एवं पूर्ण रूपसे प्रवाहित है। यह पञ्जिका श्रीचैतन्य महाप्रभुके एकान्त अनुगत रूपानुग विशुद्ध सिद्धान्तके आचार और विचारका प्रचार करती है। इसलिए संक्षेपमें हमने इस पञ्जिकाका नामकरण 'श्रीचैतन्य-पञ्जिका' किया है। इसीका नामान्तर 'श्रीमायापुर-पञ्जिका' है, क्योंकि श्रीमायापुर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भाव स्थली है। जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने लिखा है कि श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर ही 'श्रीचैतन्याब्द' प्रवर्तन-कार्यके मूल महापुरुष हैं।

यद्यपि आज बहुत वर्षोंसे बहुत-सी पञ्जिकाएँ प्रचलित हैं, तथापि उन पञ्जिकाओंको पूर्णाङ्ग पञ्चाङ्ग नहीं कहा जा सकता। उनमें बहुत-से

अभाव हैं। यहाँ तक कि उनमें वैष्णवोचित संज्ञाका कोई उल्लेख नहीं होता। इस प्रकार वैष्णव पञ्जिकाका सम्पूर्ण रूपसे अभाव परिलक्षित होता है। यही नहीं व्रतादिके सम्बन्धमें काल-निर्णय, शुद्धा-विद्धा विचार-निर्णय, यात्रा-काल आदिके विषयमें भी उनकी व्यवस्थाएँ बाधाजनक हैं। हम इन पञ्जिकाओंमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर एवं प्रभुपादके शुद्ध आनुगत्यका अभाव देख रहे हैं। इसलिए इन लोगोंकी शुद्ध धारामें एक विशुद्ध पञ्जिकाकी आवश्यकता है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए श्रीचैतन्य-पञ्जिकाका आविर्भाव हुआ है। जनसाधारणकी जानकारीके लिए हम कालके विभिन्न भागोंके लिए संज्ञा प्रस्तुत कर रहे हैं। विष्णुधर्मोत्तर और हयशीर्ष पञ्चरात्रमें कालकी निम्नलिखित संज्ञा पायी जाती है। हम विष्णुभक्तोंके लिए इन संज्ञाओंकी एक तालिका दे रहे हैं।

(क) सूर्यकी दो गतियाँ—

(१) उत्तरायण—बलभद्र (२) दक्षिणायन—कृष्ण

(ख) छः ऋतुएँ—

(१) ग्रीष्म—पुण्डरीकाक्ष (२) वर्षा—भोगशायी (३) शरत्—पद्मनाभ
(४) हेमन्त—हृषीकेश (५) शीत—देवत्रिविक्रम (६) वसन्त—माधव

(ग) पक्षद्वय और मलमास—

(१) क्षय या मलमास—पुरुषोत्तम (२) कृष्णपक्ष—प्रद्युम्न, कृष्ण
(३) शुक्लपक्ष—अनिरुद्ध, गौर

(घ) द्वादश मास—

(१) वैशाख—मधुसूदन (२) ज्येष्ठ—त्रिविक्रम (३) आषाढ़—वामन
(४) श्रावन—श्रीधर (५) भाद्र—हृषीकेश (६) आश्विन—पद्मनाभ
(७) कार्तिक—दामोदर (८) अग्रहायण—केशव (९) पौष—नारायण
(१०) माघ—माधव (११) फाल्गुन—गोविन्द (१२) चैत्र—विष्णु

(ङ) सप्ताहके दिन—

(१) रवि—सर्व-वासुदेव (२) सोम—सर्वशिव-सङ्कर्षण
(३) मङ्गल—स्थानु-प्रद्युम्न (४) बुध—भूत-अनिरुद्ध
(५) बृहस्पति—आदिकारणोदशायी (६) शुक्र—निधि-गर्भोदशायी
(७) शनि—अव्यय-क्षीरोदशायी

(च) सोलह तिथियाँ—

(१) प्रतिपदा—ब्रह्मा (२) द्वितीया—श्रीपति (३) तृतीया—विष्णु
(४) चतुर्थी—कपिल (५) पञ्चमी—श्रीधर (६) षष्ठी—प्रभु
(७) सप्तमी—दामोदर (८) अष्टमी—हृषीकेश (९) नवमी—गोविन्द
(१०) दशमी—मधुसूदन (११) एकादशी—भूधर (१२) द्वादशी—गदी
(१३) त्रयोदशी—शंखी (१४) चतुर्दशी—पद्मी
(१५) पूर्णिमा और अमावस्या—चक्री

(छ) सत्ताइस नक्षत्र—

(१) अश्विनी—धाता (२) भरणी—कृष्ण
(३) कृत्तिका—विश्व (४) रोहिणी—विष्णु
(५) मृगशिरा—वषट्कार (६) आर्द्रा—भूतभव्यभवत् प्रभु
(७) पुनर्वसु—भूतभृत् (८) पुष्या—भूतकृत्
(९) अश्लेषा—भाव (१०) मघा—भूतात्मा
(११) पूर्वफाल्गुनी—भूतभावन (१२) उत्तर फाल्गुनी—अव्यक्त
(१३) हस्ता—पुण्डरीकाक्ष (१४) चित्रा—विश्वकर्मा
(१५) स्वाती—शुचिश्रवा (१६) विशाखा—सद्भाव
(१७) अनुराधा—भावन (१८) ज्येष्ठा—भर्त्ता
(१९) मूला—प्रभव (२०) पूर्वाषाढ़ा—प्रभु
(२१) उत्तराषाढ़ा—ईश्वर (२२) श्रवणा—अप्रमेय
(२३) धनिष्ठा—हृषीकेश (२४) शतभिषा—पद्मनाभ
(२५) पूर्वभाद्रपद—अमरप्रभु (२६) उत्तरभाद्रपद—अग्राह्य
(२७) रेवती—शाश्वत

श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य

श्रीपत्रिकाका स्वरूप

श्रीगौड़ीय पत्रिका श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुखपत्र है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित नवद्वीपधाम-प्रचारिणी-सभा और श्रील जीव गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविश्व-वैष्णव-राजसभाकी एकनिष्ठा, ऐकान्तिकी, प्रेष्ठा सेविका है। सर्वप्रधाना और प्रियतमा सेविका होनेके कारण उक्त समिति दोनों ही सभाओंकी अभिन्ना प्रतिमूर्त्ति है।

अतएव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुखपत्र कहनेपर इसे उक्त दोनों सभाओंका भी मुखपत्र समझना चाहिये। यह श्रीगौड़ीय पत्रिका नवद्वीपधाम-प्रचारिणी-सभाका मुखपत्र श्रीसज्जनतोषणी और विश्व-वैष्णव-राजसभाका मुखपत्र साप्ताहिक गौड़ीयका अभिन्न कलेवर है। अतएव श्रील प्रभुपाद और श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके भाव, भाषा और धाराके साथ श्रीगौड़ीय पत्रिकाके भाव, भाषा और धारा अभिन्न हैं। संक्षेपतः श्रीगौड़ीय पत्रिका श्रील रूप और रघुनाथकी कथाकी एकमात्र प्रचारिका है।

सज्जनतोषणी और गौड़ीय अवस्थिति-काल

श्रीसज्जनतोषणी पत्रिका वर्त्तमान समयसे अनुमानतः ६७ वर्ष पूर्व श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके सम्पादनमें प्रथम बार प्रकाशित हुई थी एवं क्रमशः सतरह वर्षों तक उनके द्वारा परिचालित हुई। उसके बाद सात वर्षों तक श्रील प्रभुपादने इस पत्रिकाका सम्पादन किया। करीब चौबीस वर्षों तक सज्जनतोषणी पत्रिकाका प्रकाशन हुआ। इन चौबीस वर्षोंके चौबीस खण्डोंके प्रकाशनमें अनुमानतः ४५ वर्ष अतिवाहित हुए। उसके बाद १९२२ ई॰ में 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' के नियामक महाराजकी सहायतासे मासिक सज्जनतोषणी पत्रिकाके अभिन्न कलेवरके रूपमें 'गौड़ीय' नामक एक साप्ताहिक पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ हुआ। ये पत्रिका भी चौबीस वर्षोंकी अवधि तक अवस्थित रहकर अनुमानतः १९४६ ई॰ में अन्तर्हित हो गयीं।

श्रीगौड़ीय पत्रिकाके आविर्भावका कारण

श्रील प्रभुपादके अन्तर्धानके बाद उनके मनोभावके अनुरूप शुद्ध हरिकथाका प्रचार करनेके लिए उनके एकनिष्ठ, अन्तरङ्ग सेवकोंने विशेष रूपसे प्रचार किया। किन्तु नाना प्रकारकी दैवी और आसुरी घटनाओंके कारण उक्त साप्ताहिक गौड़ीयकी प्रकृत सेवा करनेमें अससमर्थ होकर वे लोग गुरुपरतन्त्र-स्वतन्त्र हो गये। तबसे 'गौड़ीय' में बाधारहित आमूल परिवर्तन होकर पत्रिका 'ऊँची दूकान फीकी पकवान' नीतिका परिपोषक होकर रह गयी। कितने ही अन्तःसारशून्य लोगोंने विषाक्त, दुर्गन्धयुक्त

तेलके द्वारा गौड़ीय कंकालकी रक्षा करनेकी चेष्टा की, किन्तु वह क्रमशः क्षयित होने लगा। श्रीहरिगुरुवैष्णव सेवापर श्रीरूपानुग भक्तिसिद्धान्तसमूह ही गौड़ीयका प्रकृत आहार है। इसका अभाव होनेपर गौड़ीयका प्राणधारण करना एकान्त असम्भव है। कितने ही गुरुद्रोहितामूलक अपसिद्धान्तपर अपादर्थ अखाद्य-कुखाद्य गौड़ीयको सञ्जीवित नहीं रख सके। इस प्रकार चौबीस वर्ष होते-न-होते ही तथाकथित परिचालकवर्गके अपराधके कारण 'गौड़ीय' अन्तर्हित हो गया। अतएव गौड़ीय वैष्णव जगत्‌के श्रील प्रभुपादके आचरित-प्रचारित शुद्ध रूपानुग-भक्तिविनोद-धारामें अवगाहन करनेके सौभाग्यसे वञ्चित होनेके कारण 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' का आविर्भाव हुआ है।

श्रीपत्रिकाका उद्देश्य

वर्त्तमान समयमें धर्मजगत्‌में विभिन्न-विभिन्न संवादपत्रोंका प्रकाश रहनेपर भी श्रीगौड़ीय पत्रिका उनसे सम्पूर्ण पृथक् है। यह पत्रिका निर्भीकतापूर्वक निरपेक्ष भावसे सत्य कथाका प्रचार करनेमें कभी पीछे नहीं हटेगी। शुद्ध भक्तिधर्मके अनुकरणमें अनेक अपसिद्धान्तपर संवादपत्र और ग्रन्थोंका सन्धान हमने पाया है। इनका विचार श्रीरूपानुग शुद्ध वैष्णवकी अप्राकृत धारणाके प्रतिकूल है—इसे हम क्रमशः दिखायेंगे। कोई-कोई अप्राकृत स्मृतिशास्त्रसे प्राकृत स्मृतिशास्त्रका मेल रखकर पर्व आदि पालन करनेका सिद्धान्त करते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि अप्राकृत वस्तु कभी प्राकृत इन्द्रियों द्वारा गोचर नहीं होता। और भी अनेक संवादपत्र देखे जाते हैं पर उनसे गौरजनगणके चित्तोल्लासकी सम्भावना नहीं है। ये सामयिक पत्रसमूह केवल विषयकी बात लेकर, हरिकथाके छलसे केवल मायाकी बात लेकर, भक्तिविरुद्ध कथा लेकर परस्पर कलह और प्रणय उपस्थितकर अथवा कहीं आत्मप्रशंसासे भरपूर होकर हरिकथासे दूर चले जाते हैं। इससे भक्तोंको हृदयमें सुखका सञ्चार नहीं होता है। कोई विषयी लोगोंके मतका अनुगमनकर शुद्धभक्तिको लुप्त करनेकी चेष्टा कर यह समझते हैं कि भक्तिमार्गकी उन्नति हुई। और कोई प्राकृत सम्प्रदाय विशेषके लिए सुविधा करते हुए शुद्धभक्तिका सौन्दर्य नष्ट कर देते हैं। श्रीगौड़ीय पत्रिका ऐसे

संवादपत्रोंके संसर्गसे दूर रहेगी। शुद्धभक्तिके विरुद्ध भावसमूह अज्ञात रूपमें भक्तिकथाके साथ स्थान पानेपर भागवतगणके हृदयमें सेवाविरोध घटित हो सकता है—इस आशङ्कासे मायिक-प्रसङ्गसे सर्वदा सावधान करनेके लिए पत्रिका सर्वदा ही सचेष्ट रहेगी। भक्तिके प्रतिकूल मतवादसमूहमें जिनका चित्त दृढ़भावापन्न है, वे निसर्गवश भक्तिसुखके सन्दर्शनमें असमर्थ हैं। श्रीपत्रिका ऐसी श्रेणीके पाठकोंका चित्तविनोदन नहीं कर पायेगी।

श्रीगौड़ीयके साथ विभिन्न नीतियोंका सम्बन्ध

वर्त्तमान समयमें भारतीय चिन्तास्रोत जिस प्रकारसे प्रवाहित हो रहा है, वह धर्मजगत्‌के साथ कितना सम्बन्धयुक्त है—श्रीगौड़ीय पत्रिका सर्वदा ही समालोचनाके माध्यमसे इनका विश्लेषण करेगी। राजनैतिक, समाजनैतिक, अर्थनैतिक और शिक्षानैतिक आचार-व्यवहार तथा क्रियाकलापके साथ इस पत्रिकाका कोई सम्बन्ध न रहनेपर भी जहाँ उक्त नीतियाँ नित्य सनातन धर्मनैतिक चिन्तास्रोत और आचार-व्यवहारमें व्याघात उत्पन्न करेंगी वहाँ निर्वाक रहकर यह पत्रिका जगत्‌के लिए अमङ्गलकी सृष्टि नहीं होने देगी। स्वाधीन भारतके पूर्व ऐतिह्यकी आलोचना करनेपर हमलोग जान पाते हैं कि धर्मनीति ही समस्त नीतियोंका मूल और भित्तिस्वरूप है। अतएव जिसके ऊपर दण्डायमान रहकर विश्वकी समस्त **सत्ता** की उपलब्धि होती है, उस वस्तुके प्रति उदासीनता ही हमारे अधःपतनका प्रधान कारण है। श्रीपत्रिका पद-पदपर इसका प्रदर्शनकर समग्र भारतवासीको सचेतन रखेगी। धर्म ही भारतकी विशेषता है, धर्म ही भारतका जीवन है। धर्मके कारण ही भारत पृथ्वीके शीर्ष-स्थानपर अधिकार किया है। स्वाधीन भारतकी विजयपताका समग्र विश्वके शीर्षोपरि स्थानपर स्थापित करनेका मूलमन्त्र है महाप्रभुके शिक्षाष्टकका अन्यतम श्लोक—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

इस श्लोकके तात्पर्यकी शिक्षा जगत्-वासियोंको देनेके लिए श्रीपत्रिका सर्वदा ही मुक्तकण्ठसे कीर्त्तन करेगी।

धर्म ही भारतका गौरव और शान्तिदाता है

धर्माधीन राष्ट्र ही भारतका गौरव है एवं धर्मने ही भारतकी चिरदिन परिचालना की है। 'धर्म' शब्द किसी सङ्कीर्णता, हीनता या किसी प्रकारकी अनुपादेयताको लक्ष्य नहीं करता है। धर्म और धर्मका भान एक नहीं है। धर्मध्वजी लोगोंकी सङ्कीर्ण असत् क्रियाओंको लक्ष्यकर धर्मके प्रति श्रद्धारहित होना कर्त्तव्य नहीं है। पार्थिव चिन्तास्रोत मनुष्यको अधःपतितकर दुःखसागरमें निमज्जित करता है। खाद्य, वस्त्र, वासगृह आदिकी सुव्यवस्था करना ही पराशान्ति प्राप्त करनेका उपाय नहीं है। जो लोग पूर्णमात्रामें भोगकर इन्द्रियतर्पणकी चरम सीमापर पहुँच गये हैं वे भी अशान्तिके गम्भीरतम जलधिगर्भमें निमज्जित हैं, यह किसीको समझानेकी आवश्यकता नहीं है। शान्ति एक पृथक् तत्त्व है। पार्थिव वस्तु कभी भी शान्तिका सम्पादन नहीं कर सकती।

श्रीपत्रिकाकी भाषा

यह पत्रिका समग्र भारतमें समादृत हो सके, इसके लिए प्रत्येक प्रादेशिक भाषामें प्रबन्धादि इसमें प्रकाशित होंगे। प्रधानतः बँगला, संस्कृत, हिन्दी, आसामी, उड़िया, अँग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओंके प्रबन्धोंको इसमें स्थान मिलेगा।

गम्भीर गुरुदायित्व लेकर यह पत्रिका विश्ववासीके समक्ष उपस्थित हो रही है। भारतवासीकी आन्तरिक सहानुभूति और शुभेच्छाके ऊपर इसकी सफलता निर्भर करती है।

श्रीभागवत पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य

इतिहास

परमहंसकुल मुकुटमणि जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी यतिराजने हिन्दी-भाषामें धर्मजगत्के सर्वोच्च विचार-धाराको प्रवाहित करनेके लिए 'भागवत' नामक एक पाक्षिक-पत्रिकाका प्रकाशन नैमिषारण्य, श्रीपरमहंस मठसे कार्त्तिक-कृष्णा-अमावस्या, गौराब्द ४४५, विक्रम संवत् १९८८, ९ नवम्बर सन् १९३१ ई० में आरम्भ किया था। यह पाक्षिक-पत्रिकाके रूपमें

प्रति अमावस्या और पूर्णिमाको प्रकाशित होती थी। कुछ वर्षों तक सुष्ठुभावसे प्रचारित होनेके बाद इसने आत्मगोपन कर लिया। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति उक्त जगद्गुरु श्रील प्रभुपादका पादाङ्कानुसरणकर मथुरा, केशवजी गौड़ीय मठसे पुनः उक्त पत्रिकाके सेवा-सङ्कल्पसे 'श्रीभागवत पत्रिका' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन गौराब्द ४६९, विक्रम संवत् २०१२, सन् १९५५ ई० जून माससे आरम्भ किया, जो गौराब्द ४८८, विक्रम संवत् २०३१, सन् १९७४ ई० मई मास तक होता रहा। भगवत्-इच्छासे पुनः इसने आत्मगोपन कर लिया। किन्तु, कलियुग-पावनावतारी महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित धर्मकी धाराको पुनः प्रवाहित करनेके लिए इसने आत्मप्रकाश किया है। सुधी पाठकजनसे यह अनुरोध और विनती है कि इस प्रेमगङ्गामें अवगाहनकर अपने जीवनको कृतार्थ करें।

इस पत्रिकाके उद्देश्यके विषयमें श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने जो विचार प्रस्तुत किए थे, वे निम्नलिखित हैं—

नित्यता

'भागवत' नित्य वस्तु हैं। इन्हें पाक्षिक, मासिक अथवा वार्षिक जो कुछ भी क्यों न कहा जाय, यहाँ तक कि दैनिक, दाण्डिक वा अनुपलिक कहे जानेपर भी इनकी नित्यताका व्याघात नहीं होता। इसमें एकमात्र अनन्तके आंशिक कालका ही लक्ष्य किया गया है। जिन्हें अनन्त अथवा पूर्णताकी धारणा नहीं, उनके लिए अंश ही उन्हें पूर्णताकी ओर अग्रसर करा देता है। फिर भी अंश चिरकाल ही अंश है और पूर्ण नित्यकाल पूर्ण होता है। अंश कभी पूर्ण नहीं होता अथवा पूर्णताकी समता प्राप्त भी नहीं कर सकता। जो नित्य वस्तुकी धारणा करनेमें असमर्थ हैं, उनके निकट इसका आविर्भाव-तिरोभाव अथवा जन्म-मृत्यु एक मिथ्या कल्पनामात्र है। यथा—वृन्दावन, मथुराधाम नित्य होनेपर भी इनका आविर्भाव और तिरोभाव है। श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गौड़ीयजन ही नित्यधामके आविर्भाव और तिरोभावके विचारको समझनेमें सक्षम हैं। दूसरे साम्प्रदायिक या असाम्प्रदायिक वैष्णवगण इसका मर्म उपलब्ध नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत ही इसके एकमात्र प्रमाण हैं। नित्य भागवतका पाक्षिक या मासिक आविर्भाव अशेष नित्य सौन्दर्यका

विकाशक है। इसीलिए जगद्गुरु गौड़ीय-कुल-शिरोमणि उक्त यतिराज-सम्राटने 'भागवत' पत्रिका गौर-पक्ष और कृष्ण-पक्षमें प्रकाशित की थी। पूर्णिमा-पक्ष ही गौर-पक्ष तथा अमावस्या-पक्ष ही कृष्ण-पक्ष है। इसलिए श्रीमद्भागवत शास्त्र गौर तथा कृष्ण उभय पक्षोंमें ही व्याख्यात, विचोरित, आचरित, आदृत और अनुमोदित होते हैं। सर्वोत्तम विष्णुतत्त्व अर्थात् गौरहरिरूप भगवत्-तत्त्वमें श्रद्धा या विश्वासहीन सम्प्रदायोंको श्रीमद्भागवतका तात्पर्य अवगत कराना विशेष आवश्यक है।

श्री और पत्रिका

'भागवत' शब्दके पूर्व 'श्री' शब्द सन्निवेशित होनेसे भागवतके नित्यत्वका बोध होता है। अतः नित्यता ही भागवतकी 'श्री' है। इसके बाद 'पत्रिका' शब्द सन्निवेशित होनेसे ऐसा समझना चाहिये कि यह पत्रिका भागवतके आचार-विचार तथा सिद्धान्तमूलक वार्त्ताको वहन करनेवाली है। 'पत्रिका' शब्दसे संवादवाही या वार्त्तावाहीका बोध होता है। नित्य भागवतके नित्य वार्त्तावहनकारी स्वरूपसे 'श्रीभागवत पत्रिका' पाठकोंके समक्ष उपस्थित हो रही है। अनित्य, असनातन, परिवर्त्तनशील और मिथ्या विचार अथवा लेख-माला प्रभृति इनमें प्रकाशित न होंगे। ग्राम्यवार्त्ता, आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि अनर्थ पैदा करनेवाले कोई विषय 'श्रीपत्रिका' में स्थान न पायेंगे। जो काव्य, दर्शन, कविता, लेख आदि भोगमय इन्द्रिय सुखकी सहायता या वृद्धि करते है, उन्हें 'श्रीपत्रिका' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अतः विश्री (श्रीहीन) विचार आदरणीय नहीं है। 'श्री' ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य है। हम वर्त्तमान जगत्के श्रीहीन विचारधाराका प्रतिरोधकर अप्राकृत वैकुण्ठ-जगत्की श्रीसम्पन्नवाणीका परिवेषण करेंगे। अतः इस पत्रिकाने उक्त वाणीका परिवेषण करनेके लिए यान-वाहनके रूपमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका अवलम्बन किया है।

राष्ट्रभाषा

भाषा भावोंकी अभिव्यक्ति भाव कहते है। भाव हृद्गत वृत्ति-विशेष है। यह वृत्ति अथवा भाव जिस श्रेणीके यान-वाहनका अवलम्बनकर आत्मप्रकाश करता है, उसकी भाषा भी तदनुरूप होती है। यान-वाहनकी

दुर्बलताके कारण भावोंकी अभिव्यक्ति भी पूर्णता लाभ नहीं करती। भाषा जितनी ही शुद्ध, उन्नत और अग्रसर रहेगी, हृद्‌गत विचारधारा भी तदनुरूप परिमाणमें जनसमाजको प्रभावित करेगी, प्रत्यक्षीभूत होगी। वर्त्तमान राष्ट्रभाषा समृद्ध होकर समग्र जीवोंके भावोंकी पूर्ण अभिव्यक्ति करे—इसी आकांक्षाको लेकर हम राष्ट्रभाषामें वैकुण्ठभावोंको व्यक्त करनेके लिए प्रस्तुत हुए हैं।

हिन्दी भाषा

अधिकांश प्राचीन भारतीय भाषाएँ ही संस्कृत भाषासे उत्पन्न हुई है। वैदिक संस्कृत भाषा ही हमारी आदि भाषा है। इसी भाषाके अपभ्रंशसे देश, काल और पात्रकें अनुसार आज भिन्न-भिन्न भाषाएँ परिलक्षित होरही हैं। उनमें हिन्दुस्तानके अधिवासी जिस भाषामें अपने हृदयके भावोंका आदान-प्रदान करते हैं, उसी भाषाका नाम 'हिन्दी' है। 'हिन्दू' या 'हिन्दी'—ये दोनों शब्द हमारे वैदिक या मौलिक शब्द नहीं हैं। संस्कृत भाषामें इनका व्युत्पत्तिगत अर्थ नहीं पाया जाता। फारस देशवासी लोग, सिन्धु नदीके तटवर्त्ती अधिवासियोंको सिन्धु न कहकर हिन्दु कहा करते थे। "वैदिक अथवा शास्त्रीय प्राचीनतम 'संस्कृत' हमारी मूल भाषा है"—यह सर्ववादी सम्मत होनेपर भी हमने वर्त्तमान कालोपयोगी हिन्दी भाषाको ही राष्ट्रभाषाके रूपमें अङ्गीकार किया है।

भाषाका शासन

भावोंकी अभिव्यक्तिको ही भाषा मान लेनेपर भी जिस देशके जो भाव हैं, उस देशकी भाषा भी तद्रूप होती है। एक दिन जिस देशमें वैदिक भाषाके अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषाका प्रचलन नहीं था, जिस देशमें जीवमात्रके उपास्य एकमात्र विष्णुतत्त्वसमूहका आविर्भाव हुआ था एवं जिस देशके मध्ययुगमें संस्कृत भाषाके माध्यमसे परस्पर भावोंका आदान-प्रदान होता था, आज उसी देशमें हिन्दी भाषाके माध्यमसें प्रशासन चलानेकी व्यवस्था हुई है। कालकी प्रगतिमें अथवा परिवर्त्तनशीलताके बीचमें जब जिस तरहकी अवस्थाका उद्भव होता है या होगा, हम उसे ही भगवत्-सेवाके अनुकूलरूपमें स्वीकृत करेंगे। 'लौकिकी वैदिकी

वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥' के अनुसार वैदिक क्रिया हो अथवा कोई लौकिक क्रिया ही क्यों न हो, उसे भक्तिके अनुकूल बनाकर करना आवश्यक है। इस प्रकार कालके लौकिक परिवर्त्तनका परिचय वैदिक विचारमें ही विशुद्ध रूपमें पाया जाता है। अतः वेदातीत या शास्त्रातीत कोई भी अवस्था वर्त्तमान जगत्के भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कालमें असम्भव है। अतः हम समस्त अवस्थाओंको वैदिक अवस्थाकी परिणति मानकर तदनुकूल भावसे हिन्दी भाषामें ही पारमार्थिक नित्य, सत्य, वैकुण्ठतत्त्वकी आलोचना करनेके लिए प्रस्तुत हुए हैं।

राष्ट्रभाषाका शासन

हिन्दी भाषा-भासी राष्ट्र विश्वके जिस विभागपर शासन करेगा, श्रीभागवत पत्रिका उस विभागको माया मुक्त करानेवाली वाणी प्रकाश करेगी। राष्ट्र विश्वके किस अंशपर शासन करता है? देह और मनके कियदंश पर। किन्तु, श्रीभागवत पत्रिका देह और मनके शासन-संरक्षण और परिचालन आदि विषयोंमें दृष्टिनिक्षेप भी न करेगी। राष्ट्र अपने जगत्को लेकर ही कालातिपात करेगा। श्रीभागवत पत्रिका ध्वंसशील अथवा परिवर्त्तनशील देह और मनकी क्रियाओंको अतिक्रमणकर वैकुण्ठ-जगत्के शासन अथवा नियम-तन्त्रको वर्त्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित करेगी। इसलिए श्रीभागवत पत्रिका एकमात्र पारमार्थिक वैकुण्ठ वार्त्तावहके नामसे घोषित है।

प्रार्थना

अतएव हम अपने समग्र पाठकवर्गके श्रीचरणोंमें निवेदन करते हैं कि विशेष आग्रहपूर्वक इस पत्रिकाके विषयोंका भलीभाँति अनुशीलन करनेपर वे विशेष लाभान्वित होंगे। यद्यपि जागतिक विचारधारा प्रसूत साधारण भाषासे वैकुण्ठ-जगत्की भाषा अथवा विचारका प्रचुर पार्थक्य और गुरुत्व है और इसलिए प्रथमतः यह पत्रिका कुछ अंशोंमें बोधगम्य नहीं होगी, तथापि पुनः-पुनः पाठ करनेपर पीलिया रोगसे सन्तप्त रसनाके लिए मिश्रीकी भाँति मधुरातिमधुर प्रतीत होगी। हमारी सच्चेष्टा एवं

सदनुष्ठानके प्रति आप लोगोंकी सहानुभूति और सहायता होनेसे हम अपनेको कृत-कृतार्थ समझेंगे। हम इसी महदुद्देश्यके साधनके लिए पूर्व-पूर्व महाजनों तथा वर्त्तमान मुक्त महापुरुषोंकी लेख-माला इस पत्रिकामें प्रकाशित करेंगे। आधुनिक बद्धजीवोंके लेखोंमें तरह-तरहके भ्रम-प्रमादादि दोष-परिलक्षित होते हैं। हम इस श्रेणीके लेखोंसे सदा सावधान रहेंगे। यही श्रीभागवत पत्रिकाका वैशिष्ट्य और गौरव होगा। अलम् अति विस्तरेण।

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संकलित, प्रकाशित, रचित और संपादित शुद्धभक्ति-ग्रन्थावली

(१) श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी प्रबन्धावली, (२) शरणागति (यामुनभावावलीसह), (३) Shri Chaitanya Mahaprabhu His Life & Precepts, (४) प्रेम-प्रदीप (पारमार्थिक उपन्यास), (५) श्रीनवद्वीप-भावतरङ्ग, (६) जैवधर्म, (७) सहजियादलन, (८) सहजियादलन (हिन्दी), (९) श्रीचैतन्य-पञ्जिका, (१०) श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला मासिक), (११) श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी मासिक), (१२) श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ, (१३) श्रीदामोदराष्टकम्, (१४) श्रीरूपानुग-भजन-सम्पत्, (१५) श्रीमहाप्रभुजीकी शिक्षा, (१६) सांख्य-वाणी, (१७) श्रीनवद्वीपशतकम्, (१८) श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा, (१९) मायावादकी जीवनी या वैष्णव विजय, (२०) जैवधर्म (हिन्दी), (२१) श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्यम् (प्रमाण खण्ड), (२२) विजनग्राम और संन्यासी (प्राचीन काव्य)।

अष्टम भाग

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त त्रिदण्ड-संन्यास और बाबाजी-वेष

त्रिदण्ड-संन्यास—

(१) श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज (श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, ११-३-१९५२

(२) श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज (श्रीराधानाथ दासाधिकारी) मङ्गलवार, ११-३-१९५२

(३) श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज (श्रीगौरनारायण भक्तबान्धव) मङ्गलवार, ११-३-१९५२

(४) श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज (श्रीआनन्दगोपाल दासाधिकारी) शनिवार, २८-२-५३

(५) श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज (श्रीपूर्णानन्द दासाधिकारी) शनिवार, २८-२-५३

(६) श्रीमद्भक्तिवेदान्त शान्त महाराज (श्रीकृष्णसुन्दर ब्रह्मचारी) शनिवार, २८-२-५३

(७) श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराज (श्रीपरमधर्मेश्वर ब्रह्मचारी) शुक्रवार, १९-३-५४

(८) श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज (श्रीजयाद्वैत ब्रह्मचारी) शुक्रवार, १९-३-५४

(९) श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त) बृहस्पतिवार, १९-९-५९

(१०) श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज (श्रीसनातन दासाधिकारी) बृहस्पतिवार, १९-९-५९

(११) श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ति महाराज (श्रीभागवतप्रसाद व्रजवासी) सोमवार, ११-३-६३

(१२) श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज (श्रीप्रबुद्धकृष्ण ब्रह्मचारी)

(१३) श्रीमद्भक्तिवेदान्त ऊर्द्ध्वमन्थि महाराज (डा॰ व्रजानन्द व्रजवासी) सोमवार, ११-३-६३

(१४) श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज (श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१५) श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज (श्रीरसिकमोहन व्रजवासी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१६) श्रीमद्भक्तिवेदान्त दण्डी महाराज (श्रीगुरुशरण दास) शुक्रवार, १९-३-६५

(१७) श्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज (श्रीहरिदास व्रजवासी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१८) श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज (श्रीरोहिणीनन्दन व्रजवासी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१९) श्रीमद्भक्तिवेदान्त न्यासी महाराज (श्रीहरि ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(२०) श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज (श्रीवास दासाधिकारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(२१) श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज (श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

बाबाजी-वेष—

(१) श्रीमत् त्रिगुणातीतदास बाबाजी महाराज (श्रीत्रिगुणातीत ब्रह्मचारी) शुक्रवार, ११-५-१९५१

(२) श्रीमत् पुरुषोत्तमदास बाबाजी महाराज (श्रीपूर्णप्रज्ञ व्रजवासी) बृहस्पतिवार, ८-९-६६

(३) श्रीमन् नवीनकृष्णदास बाबाजी महाराज (श्रीनिताईदास ब्रह्मचारी) बृहस्पतिवार, ८-९-६६

(४) श्रीमद् वंशीवदनानन्ददास बाबाजी महाराज (श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी) बृहस्पतिवार, ८-९-६६

(५) श्रीमद् गोविन्ददास बाबाजी महाराज (श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(६) श्रीमद् अद्वैतदास बाबाजी महाराज (डा॰ अद्वैतदास ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(७) श्रीमद् गोराचाँददास बाबाजी महाराज (श्रीगोराचाँददास ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(८) श्रीमन् मृत्युञ्जयदास बाबाजी महाराज (श्रीमदनमोहन दासाधिकारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(९) श्रीमद् रघुनाथदास बाबाजी महाराज (श्रीरघुनाथदास व्रजवासी) मङ्गलवार, २८-३-६७

श्रील आचार्यकेसरी द्वारा आयोजित परिक्रमाएँ

परिक्रमा		**ई॰**
नवद्वीपधाम	—	प्रतिवर्ष
व्रजमण्डल	—	१९४४
क्षेत्रमण्डल	—	१९४५
द्वारका	—	१९४८
रामेश्वरम् (दक्षिण भारत)	—	१९५०
व्रजमण्डल	—	१९५१
केदारनाथ, बद्रीनाथ	—	१९५२
अवन्तिका और नासिक	—	१९५३
समग्र भारत	—	१९६१

श्रील आचार्यकेसरी द्वारा प्रतिष्ठापित शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्रसमूह

(१) श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ (मूल मठ व प्रधान प्रचारकेन्द्र), तेघरिपाड़ा, पो॰ नवद्वीप (नदिया)

(२) श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पो॰ चुँचुड़ा (हुगली)

(३) श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति, ३३/२ बोसपाड़ा लेन, कलकत्ता-३

(४) श्रीसिद्धवाड़ी गौड़ीय मठ, सिधावाड़ी, पो॰ रूपनारायणपुर (वर्द्धमान)

(५) श्रीपिछलदा पादपीठ, पिछलदा, पो॰ ईश्वरपुर (मेदिनीपुर)

(६) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला, मथुरा (उ॰ प्र॰)

(७) श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, पो॰ गोलोकगंज (गोयालपाड़ा), आसाम

(८) श्रीकृष्णचैतन्य गौड़ीय आश्रम, हरिखालि बाजार, पो॰ इटानगरा (मेदिनीपुर)

(९) श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, पिछलदा, पो॰ आशुतियावाड़, जिला—मेदिनीपुर (पं॰ ब॰)

(१०) श्रीनरोत्तम गौड़ीय आश्रम, चड़ाइखोला, पो॰ विचनदै, जिला—गोयालपाड़ा, आसाम

(११) श्रीयावट गौड़ीय आश्रम, जावट, पो॰ कालना, जिला—वर्द्धमान (पं॰ ब॰)

(१२) श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचारकेन्द्र, कोरन्ट, पो॰ रान्दियाहाट, जिला—बालेश्वर (उड़ीसा)

(१३) श्रीगौड़ीय सेवाश्रम, पुराना काछारी रोड, पो॰ माथाभांगा, जि॰ कुचबिहार (पं॰ ब॰)

(१४) श्रीजगन्नाथ गौड़ीय आश्रम, गुड़दह, पो॰ श्यामनगर, जिला—२४ परगना (पं॰ ब॰)

(१५) श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी, तेघरिपाड़ा, पो॰ नवद्वीप, जिला—नदिया (पं॰ ब॰)

(१६) श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय, तेघरिपाड़ा, पो॰ नवद्वीप, जिला—नदिया (पं॰ ब॰)

(१७) श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो॰ वासुगाँव, जिला—गोयालपाड़ा (आसाम)

(१८) श्रीराजराजेश्वपुर गौड़ीय मठ, पो॰ विश्वनाथपुर, जिला—२४ परगना (पं॰ ब॰)

(१९) श्रीत्रिगुणातीत समाधि आश्रम, गदखालि, पो॰ नवद्वीप, जिला—नदिया (पं॰ ब॰)

उनके पश्चात् परिचालक समिति द्वारा प्रतिष्ठित मठसमूह—

(२०) श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, पो॰ शिलीगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)

(२१) श्रीनीलचल गौड़ीय मठ, गौरवाटशाही, स्वर्गद्वार (पुरी) उड़ीसा

(२२) श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, पो॰ तुरा (गारोहिल्स) मेघालय

(२३) श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हलदर वागान लेन (कलकत्ता-४)

(२४) श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, अरविन्द लेन, कुचविहार (प॰ ब॰)

(२५) श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)

(२६) श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, रानापति घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)

(२७) श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ॰ प्र॰)

(२८) श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, श्रीचैतन्य एवेन्यु, दूर्गापुर, वर्द्धवान (प॰ ब॰)

(२९) श्रीगौर-नित्यानन्द गौड़ीय मठ, रंगपुर, शिलचर-२ (काछाड़)

(३०) श्रीनिमानन्द गौड़ीय मठ, गाडीखाना रोड, विधापाड़ा, धुवडी (आसाम)

(३१) श्रीमाधवजी गौड़ीय मठ, १ कालीतला लेन, वैद्यवाटी (हुगली)

(३२) श्रीमदन मोहन गौड़ीय मठ, माथाभांगा, कोचविहार

(३३) श्रीक्षीरचोरा गौड़ीय मठ, वालेश्वर, उड़ीसा

(३४) श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, ईशापुर, मथुरा (उ॰ प्र॰)

(३५) Shri Gour Govinda Goudiya Math, Birmingham

(३६) Shri Vinod Bihari Goudiya Math, Houston

(३७) Badger

(३८) Perth

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी उपदेशावली

(१) ज्ञान-कर्म आदि अन्याभिलाषितारहित केवलाभक्ति ही हमलोगोंका प्राण है।

(२) श्रीगुरुपादपद्मकी विश्रम्भ-सेवा द्वारा ही भक्ति प्राप्त होती है।

(३) श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा ही गुरु-सेवा है।

(४) कीर्त्तनाख्या भक्ति ही भक्तिके सभी अङ्गोंमें श्रेष्ठ है।

(५) कीर्त्तनके द्वारा ही भक्तिके अन्यान्य अङ्ग साधित होते हैं।

(६) दुर्जनसङ्गका त्याग ही निर्जन भजन है अर्थात् साधुसङ्ग ही निर्जनता है।

(७) सर्वदा हरिकथाका प्रचार ही हरिकीर्त्तन है।

(८) सर्वदा हरिकथा कहना या श्रीहरिकी सेवामय कथामें निमग्न रहना ही मौनावस्था है।

(९) निरपराधपूर्वक नामभजन ही अथवा संख्यात-असंख्यात शुद्ध श्रीनामका उच्चस्वरसे कीर्त्तन ही लीला-स्मरण है।

(१०) श्रीरूपानुगत्यमें गौर-भजन—श्रीश्रीराधाकृष्णका विप्रलम्भ भजन ही श्रेष्ठ है।

(११) 'वासुदेव' कहनेसे हमलोग नन्दतनुज श्रीकृष्णको समझते हैं, वासुदेवका आविर्भाव है, जन्म नहीं। वासुदेवके नाड़ीछेदन आदि जातकर्म नहीं हुए। किन्तु कृष्णने यशोदा मैयाके गर्भमें जन्म-ग्रहण किया। जन्म और आविर्भावमें जो सूक्ष्म पार्थक्य है, इसे समझनेमें एकमात्र रूपानुग वैष्णव ही समर्थ हैं। कार्ष्ण लोगोंके निकट हमलोगोंका रूपानुगत्व ही प्रार्थनीय है।

(१२) आँखोंकी तृप्तिके लिए श्रीविग्रहका दर्शन नहीं है। मैं श्रीविग्रहका दर्शनकर सुखी हुआ, होऊँगा—इसकी अपेक्षा इस भावनाका होना परम मङ्गलजनक है कि श्रीविग्रह मुझे देखकर खुश हुए होंगे। भगवान् प्राकृत इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं।

(१३) ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं है, कोई गुण नहीं है, कोई शक्ति नहीं है—ये सब अलीक कल्पनाएँ हैं। बौद्धोंका शून्यवाद

या वेदविरुद्ध नास्तिक्यवाद इन कल्पनाओंके मध्य (अन्तर्गत) है। परन्तु ईश्वरका नित्य आकार या स्वरूप स्वीकार करना ही आस्तिक्यवाद है। जो लोग इस 'नित्य-रूप' को अस्वीकार करते हैं, वे ही नास्तिक हैं।

(१४) जड़ा (माया) शक्तिकी प्रबलता ही हमें श्रीजगन्नाथकी सेवामें बाधा प्रदान करती है। जब तक हम प्राकृत दर्शन करते हैं, तब तक अप्राकृत जगन्नाथ-दर्शनके प्रति हमारी रुचि उत्पन्न नहीं होती। समस्त जगत्‌को जगन्नाथकी सेवामें नियुक्त करना ही रथयात्रा उत्सवका तात्पर्य है।

(१५) जो लोग सर्वतोभावेन गुरुकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे ही शिष्य हैं। जो उसे अस्वीकार करते हैं, वे गुरुपरम्पराके विरोधी, पथभ्रष्ट एवं गुरुब्रुव हैं।

(१६) श्रीगुरुपादपद्म मृत नहीं हैं, प्रकट-अप्रकटमें समान रूपसे उनका अस्तित्व प्रमाणित है। उनका आविर्भाव और तिरोभाव एकतात्पर्यपर है। अतः आविर्भावमें विरहस्मृति और तिरोभावमें मिलनमहोत्सव युगपत् सम्भव है।

(१७) दीक्षागुरुकी पूजा सर्वप्रथम करना कर्त्तव्य है। सूक्ष्म रूपसे विचार करनेपर देखा जाता है कि मन्त्रदाता गुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जो दीक्षागुरुकी सेवा-शिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही शिक्षागुरु हैं। जो दीक्षागुरुकी सेवा-शिक्षाके विमुख हैं, वे शिक्षागुरु पदवाच्य नहीं हैं। वे वैष्णव ही नहीं हो सकते, क्योंकि वे दीक्षागुरुको मर्यादा देनेकी शिक्षा नहीं देते हैं।

(१८) बँगला साहित्य, संस्कृत साहित्यका एकान्त आनुगत्यकर समग्र भारतमें सर्वोत्तम भाषाके रूपमें आदृत है। दुःखका विषय है कि बँगला भाषाको भी संस्कृत भाषाके आनुगत्यसे विच्छिन्न किया जा रहा है। इसकी जड़में संस्कृत भाषाके प्रति अश्रद्धा और भारतीय वेद-उपनिषद्, पुराणादिकी चिन्ताधाराके प्रति अवहेलना ही समझनी चाहिये।

(१९) राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति आदि सभी विषयोंमें ऋषिनीतिका अवलम्बन करनेसे समस्याओंका समाधान होगा। ऋषिनीतिका अवलम्बन करनेके लिए प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंकी आलोचना

और अध्ययन करना पड़ेगा। इस विषयमें शिक्षा विभागकी उदासीनता दूर करनेकी आवश्यकता है।

(२०) किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें ज्ञान अर्जन करनेके लिए प्रथमतः श्रुति या श्रवणकी सहायता आवश्यक है। अतएव वैष्णव सम्प्रदायमें श्रवणके ग्राह्य वस्तु शब्दको ही मूल और श्रेष्ठ प्रमाणके रूपमें स्वीकार किया गया है।

(२१) जो चातुर्मास्यव्रतका पालन नहीं कर केवल ऊर्ज्जाव्रतका ही पालन करते हैं, वे चातुर्मास्यके भक्तिफलको सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं कर सकते। इसके द्वारा चातुर्मास्यके प्रति अनादर ही प्रकाशित होता है।

(२२) किसी शुद्ध वैष्णवसंघके आनुगत्यमें रहकर ही भजन करना बद्धजीवोंके लिए प्रयोजनीय है। गोष्ठानन्दी और भजनानन्दी कोई भी निर्जन भजन नहीं करते हैं। विविक्तानन्दी गोष्ठानन्दीके श्रीनाम-प्रेम-प्रचारके सहायक रूपमें अनुकूल भाव पोषण करते हैं और उनकी सहायता करते हैं।

(२३) प्रत्येक व्यक्तिका गृह एक आश्रम है। भगवदनुशीलनके लिए ही हम वहाँ अवस्थान करेंगे। केवल आहार-निद्रा आदिके लिए जिस घरमें वास किया जाता है, वह नरकका द्वारस्वरूप है। तामसिक द्रव्यादिके आहार द्वारा जीवका चित्त अधिकतर भगवद्विमुखता लाभ करता है। अतएव वे सर्वदा वर्जनीय हैं।

(२४) हमलोग संन्यासी हैं और हमने समाज संस्कारको धर्मसंस्कारका आनुषंगिक माना है। शिक्षित समाजको उसके अनधिगत कार्योंके विषयमें कहनेका अधिकार हमें है। वास्तव-सत्यका प्रचार करनेमें किसी-किसीके हृदयमें आघात लग सकता है।

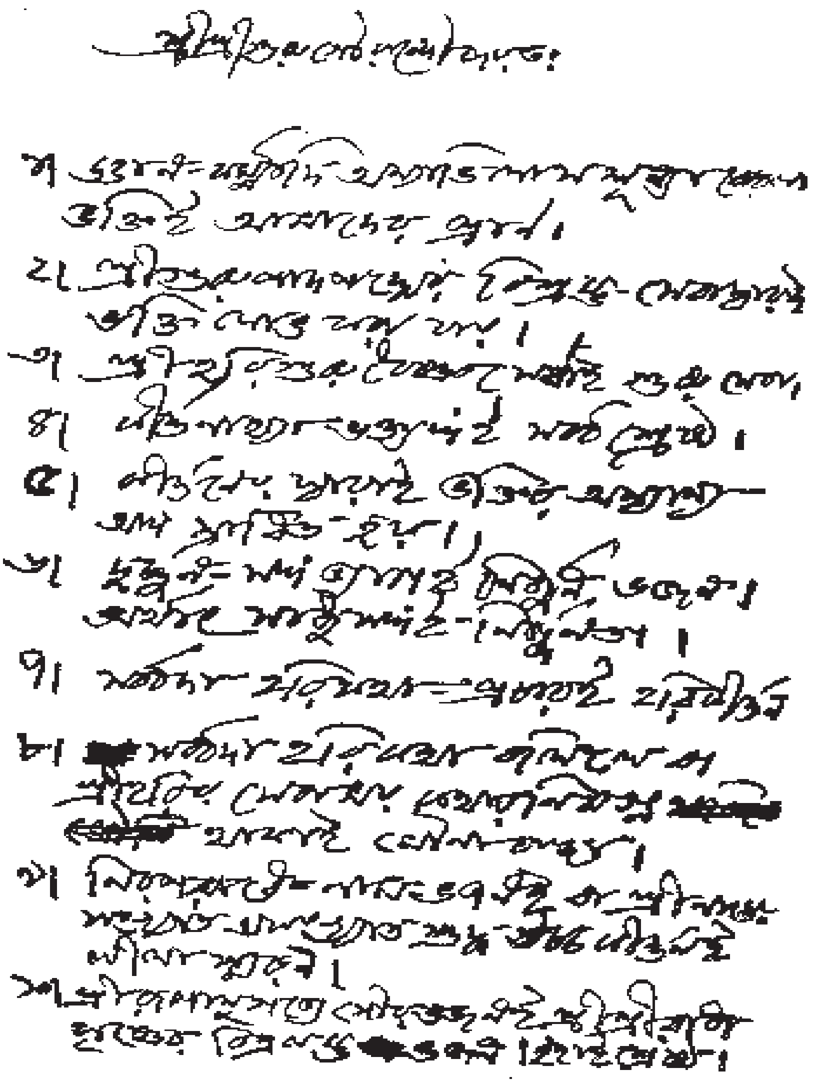

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका स्वहस्ताक्षर
लिपिमें कुछ उपदेश

परिशिष्ट

श्रीश्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजका संक्षेप जीवनचरित्र

परम पूज्यपाद श्रीश्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज सारे विश्वमें शुद्धभक्ति एवं नामसङ्कीर्त्तनका प्रचार करनेवाले, सर्वत्र गौड़ीय मठोंके मूल संस्थापक श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अन्तरङ्ग सेवकोंमें अन्यतम थे। ये पश्चिम बङ्गालके वर्द्धमान जिलेके हापानियाँ नामक ग्राममें एक शिक्षित सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुलमें १० अक्तूबर, १८९५ ई॰ को पैदा हुए थे। इनके पिताका नाम श्रीउपेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य और माताका नाम श्रीयुता गौरीबालादेवी था। बचपनमें इनका नाम रमेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य था। ये बचपनसे ही बड़े गम्भीर, सरल, शान्त एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। इनकी बुद्धि कुशाग्र थी। स्नातककी डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् ये Law College में भर्ती हुए, किन्तु law की पढ़ाई समाप्त करनेके पहले ही ये अँग्रेजोंके विरुद्ध गाँधीजीके असहयोग आन्दोलनमें कूद पड़े। इसी समय इनका सम्पर्क जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादसे हुआ। ये श्रीलप्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथा तथा सुयुक्तिपूर्ण दार्शनिक उपदेशोंको श्रवणकर बड़े मुग्ध हुए। १९२६ ई॰ में घर-बार सम्पूर्णतः त्यागकर इन्होंने श्रील प्रभुपादके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। हरिनाम-दीक्षाके पश्चात् इनका नाम श्रीरामानन्द दासाधिकारी हुआ। ये बँगला, हिन्दी और अँग्रेजीमें पारङ्गत विद्वान थे। श्रील प्रभुपादके निर्देशसे मद्रास, बम्बई, दिल्ली आदि उत्तर भारतके बड़े-बड़े नगरोंमें इन्होंने गौरवाणीका प्रचार किया।

१९३० ई॰ में श्रीलप्रभुपादने इन्हें त्रिदण्डसंन्यास प्रदान किया। तबसे ये श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रीप्रभुपादने अप्रकट होते समय इन्हें 'श्रीरूपमञ्जरी पद' कीर्त्तन करनेका निर्देश दिया

था, जिसे देखकर सभी गुरुभ्राताओंने इनकी महत्ताको पहचाना। इनके द्वारा रचित संस्कृत भाषाके स्तोत्र आज भी विभिन्न गौड़ीय मठोंमें कीर्त्तन किये जाते हैं।

श्रीलप्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् ये भी परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव, श्रीनरहरि प्रभु आदि सतीर्थोंके साथ श्रीनवद्वीपधाममें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापनाकर वहींसे श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित शुद्धभक्तिधर्मका प्रचार करना आरम्भ किया।

कुछ दिनोंके बाद इन्होंने स्वयं सारस्वत गौड़ीय मठकी स्थापना की। हमारे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने भी इन्हींसे त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया था। ये बड़े ही उच्च कोटिके सिद्धान्तविद् महापुरुष थे। श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् इनके बहुत-से गुरुभ्राताओंने इनसे संन्यास ग्रहण किया जिनमें परमाराध्यतम श्रीगुरुदेव, श्रीमद्भक्ति आलोक परमहंस महाराज, श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज, श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज आदि प्रमुख हैं।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजका जन्म १८९६ ई०, नन्दोत्सवके दिन कलकत्ता नगरके एक धार्मिक परिवारमें हुआ था। वैष्णव धर्माश्रित माता-पिताके संसारमें रहनेके कारण सरल-सहज रूपमें बचपनसे ही ये वैष्णव सदाचारका पालन करते थे। अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ जन्माष्टमी, झूलनयात्रा, रथयात्राके दिनोंमें बड़े उत्साहसे उत्सव आदि करते थे। इनके बचपनका नाम अभयचरण दे था। इनके माता-पिता घरपर साधु-संन्यासियोंके आनेपर उनके चरणोंमें यही आशीर्वाद प्रार्थना करते थे कि यह बालक श्रीमती राधारानीकी कृपा प्राप्त करे।

बालक अभय आठ वर्षकी आयु तक किसी स्कूल या पाठशालामें प्रविष्ट नहीं हुए। घरपर ही इनकी शिक्षा हुई। तत्पश्चात् स्कूल-कॉलेजमें शिक्षा लाभकर १९२० ई० में कलकत्ता Scottish Church College से B.A. की परीक्षा देकर महात्मा गाँधीके आन्दोलनमें कूद पड़े। १९१८ ई० में जब ये B.A. में पढ़ रहे थे, उसी समय इनका विवाह भी हो गया। १९२१ ई० में अपने पिताके अन्तरङ्ग मित्र स्वर्गीय कार्तिकचन्द्र वसु (Bengal Chemical के Managing Director और डा० वसुकी laboratory के मालिक) ने योग्य अभयचरणको अपना सहकारी मैनेजर नियुक्त किया।

१९२२ ई० में ये अपने किसी अन्तरङ्ग मित्रके साथ कलकत्ताके उल्टा डाँगामें सर्वप्रथम ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादसे मिले। श्रील प्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथा एवं प्रभावशाली उपदेशोंको सुनकर ये बड़े प्रभावित हुए। श्रील प्रभुपादने अँग्रेजी भाषामें विशिष्ट योग्यता देखकर इन्हें अँग्रेजी भाषामें प्रबन्ध लिखने तथा विदेशोंमें प्रचार करनेके लिए उत्साहित किया। अब युवक अभयचरण प्रायः श्रील प्रभुपादके चरणोंमें हरिकथा सुननेके लिए आने लगे। सन् १९३२ ई० में प्रयागमें जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने कृपापूर्वक अभयचरणको दीक्षामन्त्र एवं गोपाल भट्ट गोस्वामीकी पद्धतिके अनुसार

उपनयन आदि भी प्रदान किया। दीक्षाके पश्चात् इनका नाम श्रीअभयचरणारविन्द दासाधिकारी हुआ। तबसे इन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित The Harmonist नामक अँग्रेजी पत्रिकाके लिए नियमित रूपसे प्रबन्ध लिखना आरम्भ किया। श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेपर अस्मदीय

गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीसे इनका सम्पर्क बहुत अधिक हुआ। इसी समय श्रील गुरुदेवने इन्हें अपने द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला मासिक) एवं श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी मासिक) दोनोंका संघपति नियुक्त किया। इन दोनों पत्रिकाओंके लिए नियमित रूपसे ये प्रबन्ध देते थे। श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुने स्वयं ही Back to Godhead नामक अँग्रेजी पत्रिकाकी स्थापना की। १९४१ ई॰ में जब कलकत्तामें अस्मदीय गुरुपादपद्मने 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' की स्थापना की, तो उस समारोहमें ये भी सम्मिलित थे।

१९५८ ई॰ में घर-बार, स्त्री-पुत्र, व्यवसाय-वाणिज्य सब कुछ त्यागकर ये श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उपस्थित हुए। उस समय श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके मठरक्षक थे। यहींपर रहकर श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुने श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवतका अँग्रेजी अनुवाद करना आरम्भ किया। श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज एवं ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुरोध करनेपर १९५९ ई॰ में श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ही इन्होंने संन्यास ग्रहण किया। श्रीलगुरुपादपद्मने सात्त्वत वैष्णवस्मृतिके अनुसार इन्हें विधिवत् संन्यास प्रदान किया। तत्पश्चात् ये श्रीराधादामोदर मन्दिर, श्रीधाम वृन्दावन तथा दिल्लीमें रहकर श्रीमद्भागवत प्रथम-स्कन्धका तीन खण्डोंमें अँग्रेजी टीकाके साथ प्रकाशन किया। १९६५ ई॰ में ये श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करनेके लिए संयुक्तराज्य अमेरिका गये तथा जुलाई १९६६ ई॰ में इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृतसंघ (Iskcon) की स्थापना की। कुछ ही दिनोंमें विश्वके बहुत-से देशोंमें इसकी शाखाएँ प्रतिष्ठित हुईं। इन्होंने पचाससे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका विश्वकी अनेक भाषाओंमें अनुवाद हुआ है। इस तरहसे सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिधर्म तथा नामसङ्कीर्त्तनका प्रचार करनेका अधिकांश श्रेय इस महापुरुषको है।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजका जन्म पूर्वी बङ्गालके खुलना जिलेके पिलजङ्ग गाँवमें एक सम्भ्रान्त एवं धार्मिक परिवारमें २३ दिसम्बर, १९२१ ई॰ में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीसतीशचन्द्र घोष तथा माताका नाम श्रीमती भगवतीदेवी था। श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज पूर्वाश्रमके सम्बन्धसे इनके पितृव्य थे। माता भगवतीदेवी विश्वभरमें गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता-आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी शिष्या थीं। पिता श्रीसतीश घोष भी अस्मदीय गुरुपादपद्मसे हरिनाम-दीक्षा प्राप्त आदर्श गृहस्थ भक्त थे। दीक्षाके बाद इनका नाम श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारी हुआ था।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीका बचपनका नाम सन्तोष था। ये चार भाइयोंमेंसे द्वितीय थे। बचपनमें इनकी शिक्षा गाँवकी पाठशालामें ही हुई। बाल्यकालसे ही ये बड़े धीर, शान्त, मेधावी एवं धार्मिक बालक थे। ये सर्वदा अपनी कक्षामें प्रथम स्थान ही पाते थे। कोई भी विषय या श्लोक एक बार श्रवण करनेपर उसे कभी नहीं भूलते।

२ मार्च, १९३१ ई॰ को श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके अवसरपर बालक सन्तोषको साथ लेकर इनकी माँ श्रीमती भगवतीदेवी परिक्रमाके लिए आयी। धाम-परिक्रमाके पश्चात् अपने प्यारे पुत्र सन्तोषको मठ-व्यवस्थापक श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीके हाथों सौंप दिया। तभीसे श्रीविनोदबिहारी प्रभुके संरक्षणमें मठमें रहने लगे। कुछ ही दिनोंमें श्रील प्रभुपादने मायापुरमें श्रीभक्तिविनोद इन्स्टीट्यूटकी स्थापना की। श्रीश्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज उसके प्रधानाध्यापक तथा श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी इसके व्यवस्थापक थे। श्रील गुरुदेवने इन्हें इसी स्कूलमें भर्ती कराया। श्रीलगुरुदेव प्रतिदिन श्रीगौड़ीय कण्ठहार, गीता एवं भागवतसे कुछ श्लोक इन्हें कण्ठस्थ करनेके लिए देते थे। एक श्लोकको कण्ठस्थकर सुनानेपर एक चॉकलेट मिलती थी। ये प्रतिदिन चार-पाँच श्लोक कण्ठस्थ कर सुना दिया करते थे। कुछ ही दिनोंमें श्रीगौड़ीय

कण्ठहारके सारे श्लोक एवं गीता-भागवतके बहुत-से श्लोक इन्हें कण्ठस्थ हो गये। गौड़ीय वैष्णव समाजमें ये श्लोकोंके अभिधान माने जाते हैं।

१९३६ ई॰ में जगद्गुरु श्रीलप्रभुपादने इन्हें हरिनाम प्रदान किया और अब इनका नाम सज्जनसेवक ब्रह्मचारी हो गया। ये स्कूलमें अध्ययन करते हुए भी श्रीमन्दिर एवं वैष्णवोंकी भजन-कुटियोंमें प्रतिदिन झाड़ू देते, उनके लिए जल भरते। प्रसादके पहले प्रसादसेवनके लिए आसन, पत्ता आदि प्रस्तुत करते। प्रसादके पश्चात् उस स्थानको साफ करते। मठके बगीचेसे फल-फूल, पत्ता, सब्जी आदि लाते, इत्यादि सेवाके कार्योंमें व्यस्त रहते। श्रीलप्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय मठमें एक अन्धकारका युग आया। उस समय श्रीलगुरुदेवने इन्हें दीक्षामन्त्र प्रदान किया। इसके पहले श्रीलगुरुदेवने किसीको दीक्षामन्त्र नहीं दिया था। वे स्वयं नैष्ठिक ब्रह्मचारी वेशमें थे, इसलिए उन्होंने श्रीलप्रभुपादके अन्तिम संन्यासी श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराजके हाथों उपनयन संस्कार करवाया। तत्पश्चात् ये पूज्यपाद भक्तिदयित माधव महाराज तथा पूज्यपाद भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके साथ बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचारपार्टीके साथ रहे।

१९४० ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं देवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना होनेपर श्रील गुरुदेवने पुनः इन्हें अपने पास रख लिया। तबसे ये गुरुजीके साथ रहकर बङ्गाल और बङ्गालके बाहर सर्वत्र ही उनकी सेवा करते, उनका पत्र लिखते। इन्होंने गुरुजीके साथ भारतके सभी प्रधान-प्रधान तीर्थोंमें भ्रमण किया। १९४८ ई॰ में श्रीगौड़ीय पत्रिकाके आरम्भ होनेपर प्रकाशनका सारा दायित्व इनके ऊपर दे दिया गया। सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम दूसरोंका होनेपर भी ये ही सारे कार्योंको सम्पन्न करते थे।

सन् १९५२ ई॰ में श्रीगौरपूर्णिमाके दिन श्रीधाम नवद्वीपमें श्रील गुरुदेवने कृपाकर इन्हें संन्यास वेश प्रदान किया। तबसे इनका नाम श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज प्रसिद्ध हुआ। श्रील गुरुमहाराजने बीच-बीचमें इन्हें बङ्गालके बहुत-से स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए भी भेजा। इन्होंने बड़े परिश्रमके साथ गुरुजीके निर्देशसे उन्हींके आनुगत्यमें श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीबलदेवविद्याभूषण-कृत टीका सहित),

जैवधर्म, प्रेम-प्रदीप, प्रबन्धावली, शरणागति, नवद्वीपभाव-तरङ्ग, Sri Chaitanya Mahaprabhu--His life and precepts, श्रीचैतन्यशिक्षामृत, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा, श्रीदामोदराष्टकम् आदि ग्रन्थोंका श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे पुनः प्रकाशन किया।

सन् १९६८ ई॰ में श्रीलगुरुमहाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् ये श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं आचार्य पदपर अधिष्ठित हुए हैं। ये पराविद्यानुरागी, भक्तिसिद्धान्तमें निपुण, अद्भुत सहिष्णु, भजनपरायण आदि वैष्णवोचित गुणोंसे सम्पन्न हैं। श्रीलगुरुदेवके अप्रकटलीलाके पश्चात् इन्होंने बहुत-से भक्तिग्रन्थोंका सम्पादन किया है। श्रीधाम पुरी, तुरा (मेघालय), धूबड़ी (आसाम), गौहाटी (आसाम) और सिल्चर (आसाम) आदि स्थानोंमें समितिके नये प्रचारकेन्द्रोंकी स्थापना की है।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजका जन्म ३१ जनवरी, १९१६ (१७ माघ १३२२ बंगाब्द) में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीयुत आशुतोष कुमार घोष एवं माताका नाम श्रीयुता कात्यायनीदेवी था। वे दोनों ही सदाचारसम्पन्न सत्यानुरागी एवं परम धार्मिक थे। गृहदेवता श्रीनारायणकी सेवा किये बिना जल भी ग्रहण नहीं करते थे। लोकसमाजमें उनका बड़ा सम्मान था।

बचपनमें श्रीपाद भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजका नाम श्रीराधानाथ कुमार था। धार्मिक माता-पिताका इनके जीवनपर बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा। बचपनसे ही विशेष कुशाग्रबुद्धिके छात्र थे। पढ़ने-लिखनेके साथ-ही-साथ सङ्गीत, चित्रकारी, चिकित्साशास्त्र (होम्योपेथिक) आदि विषयोंमें विशेष अभिरुचि रखते थे। छह भाइयों एवं तीन बहनोंमें ये द्वितीय सन्तान थे। ये सभी विषयोंमें इतने दक्ष थे कि इनके बड़े भाई, पिता तथा परिवारके सभी लोग इनके परामर्शके बिना कोई कार्य नहीं करते थे।

दसवीं श्रेणीकी परीक्षा उत्तीर्ण होनेपर प्राइमरी स्कूलमें शिक्षकके रूपमें नियुक्त हुए। उसी समय वे अपने बहनोईके घरपर गये हुए थे। वहाँ उस समय श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके महोपदेशक पूज्यपाद श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी प्रचारपार्टीके साथ श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित विशुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे थे। उनके भागवत-प्रवचनको सुनकर इनके हृदयमें संसारके प्रति वैराग्य तथा भगवद्भजन करनेकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो गयी। सौभाग्यवश इन्हीं दिनों वे अपनी बहनसे मिलनेके लिए गङ्गाके पूर्वी तटपर स्थित श्रीधाम मायापुरके समीपवर्त्ती किसी ग्राममें जा रहे थे। रास्तेमें श्रीयोगपीठका नौ शिखर विशिष्ट विशाल मन्दिर देखा। श्रीमन्दिरको भलीभाँति देखनेके लिए उसके चारों ओर घूमकर देखा। बहनकी ससुरालके वृद्धलोगोंसे उस मन्दिरके सम्बन्धमें पूछा। उन लोगोंने बताया कि श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी यह आविर्भावस्थली

है। यहींसे गौड़ीय मठका विश्वभरमें प्रचार हुआ। श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीजीने इस स्थानका वैभव प्रकाशित किया है।

उस समय युवक श्रीराधानाथ कुमार यह भी नहीं जानते थे कि श्रीमन्दिर या तुलसीपरिक्रमा क्या होती है तथा उसका फल क्या होता है? उनके अनुसार साधुसङ्गमें हरिकथा तथा श्रीहरिमन्दिर एवं श्रीतुलसी परिक्रमाका यह अद्भुत फल हुआ कि वे शीघ्र ही माता, पिता, पत्नी, बन्धु-बान्धव एवं गृह सम्पत्ति सबकुछ त्यागकर भगवद्भक्तिमें तत्पर हो गये।

सन् १९४२ में इन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रधान कार्यालय चुँचुड़ा (हुगली) में उपस्थित होकर समितिके संस्थापक आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीसे हरिनाम ग्रहण किया तथा १९४४ में सम्पूर्ण रूपसे गृह परित्यागकर गुरुसेवा एवं भगवत्-सेवामें नियुक्त हो गये। श्रील गुरुदेवने इन्हें परमपूज्य महामहोपदेशक श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीके हाथोंमें सौंप दिया। ये उन्हींके साथ बहुत दिनों तक बङ्गाल व भारतके विभिन्न स्थानोंमें भगवद्भक्तिका प्रचार करनेके लिए जाते रहे। कुछ दिनोंके बाद श्रील गुरुदेव इन्हें स्वतन्त्र रूपमें भी विभिन्न स्थानोंमें भक्तिप्रचारके लिए भेजा करते थे। सन् १९५२ में श्रीगौरपूर्णिमाके दिन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने अनुग्रहपूर्वक श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी तथा श्रीगौरनारायण दासाधिकारीके साथ इन्हें भी श्रीधाम नवद्वीपमें त्रिदण्डसंन्यास प्रदान किया। बँगला भाषामें प्रवीण होनेके कारण इन्हें श्रील गुरुदेवने श्रीगौड़ीय पत्रिकाका सहकारी संपादक नियुक्त किया। कभी-कभी श्रीपाद वामन महाराजजीकी अनुपस्थितिमें गौड़ीय पत्रिका कार्यालयका सारा दायित्व ग्रहण करते थे। इनके प्रामाणिक लेख एवं गूढ़ रहस्यात्मक पद्य श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशित होते थे। संन्यासके पश्चात् इन्होंने शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें भारतके विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण किया। श्रील गुरुदेवके अप्रकटके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके जनरल-सेक्रेटरीका दायित्वपूर्ण पद भी सँभाला। भजनमें अत्यधिक आवेश होनेके कारण इन्होंने समितिके सदस्योंके पुनः-पुनः अनुरोध करनेपर भी इस पदसे अवसर ग्रहण कर लिया। परन्तु अवसर ग्रहण करनेपर भी आज तक समितिके सब प्रकारके दायित्वपूर्ण सेवा-कार्योंमें तत्पर रहते हैं।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके पूर्वाश्रमका नाम श्रीमन् नारायण तिवारी था। ये बिहार प्रदेशके बक्सर जिलेके सुप्रसिद्ध तिवारीपुर नामक ग्राममें एक उच्चशिक्षित सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए थे। तिवारीपुर ग्राम पतितपावनी भगवती गङ्गाके तटपर अवस्थित था, परन्तु आजकल गङ्गाके पथपरिवर्तनसे थोड़ी दूरपर स्थित है। सम्पूर्ण गाँवमें केवल ब्राह्मणोंका ही वास है। सभी लोग पढ़े-लिखे एवं सम्पन्न हैं। इनके पिताका नाम पण्डित बालेश्वरनाथ तिवारी तथा माताका नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था। माता-पिता दोनों ही सच्चरित्र, परोपकारी, सत्यनिष्ठ तथा सर्वोपरि श्री सम्प्रदायके आश्रित वैष्णव थे। आसपासके गाँवमें इन लोगोंकी बड़ी मान-प्रतिष्ठा थी।

बचपनमें अत्यन्त शान्त रहनेके कारण सब लोग इन्हें भोलानाथ भी कहते थे। किन्तु माता-पिता तथा कुटुम्बियोंने इनका नाम श्रीमन्नारायण रखा। यही नाम आगे प्रसिद्ध हुआ। बचपनसे ही बालकमें धर्मके प्रति विशेष रुचि देखी जाती थी। बिना किसीके निर्देश या उपदेशके ही वे स्वाभाविक रूपसे सदा-सर्वदा भगवन्नामका जप किया करते थे। श्रीमद्भागवत, गीता, रामायण और महाभारत आदिकी कथायें घरपर होती थीं। बालक बड़ी श्रद्धासे रुचिपूर्वक इन कथाओंका श्रवण करता। अतः बचपनमें ही रामायण, महाभारत आदिकी कथाएँ इन्हें सम्पूर्ण रूपसे कण्ठस्थ हो गयी थी। गाँवकी पाठशालामें प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करनेके बाद गाँवसे पाँच मील दूर बक्सर हाईस्कूलमें इनका प्रवेश कराया गया। प्रतिदिन पैदल विद्यालयमें आना-जाना पड़ता था। फिर भी कुशाग्र बुद्धि होनेके कारण कक्षामें प्रथम, द्वितीय स्थान प्राप्त करते थे। खेलकूदमें भी इनकी विशेष रुचि थी। हाईस्कूलमें अध्ययन करते समय ही प्रदेशभरमें खेलकूदमें अग्रणी (चैम्पियन) रहे एवं बहुत-से पुरस्कार आदि प्राप्त किये।

उच्च विद्यालयकी शिक्षा समाप्त करते ही खेलकूदमें प्रवीणताके कारण अनायास ही पुलिस विभागमें अच्छी नौकरी मिल जानेके कारण इच्छा रहनेपर भी महाविद्यालयकी शिक्षा बीच ही में छोड़ देनी पड़ी। तीन–चार वर्ष सरकारी नौकरीमें रहते समय ही बिहार प्रदेशके साहिबगंज नामक शहरमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारक महामहोपदेशक श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिशास्त्री' 'भक्तिकमल' जीसे इनकी भेंट हुई। वे उस समय पूज्यपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज, श्रीराधानाथ दासाधिकारी और श्रीप्रेमप्रयोजन ब्रह्मचारीके साथ शहरके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्ति एवं हरिनामका प्रचार कर रहे थे। इनकी सभाओंमें तिवारीजी भी प्रतिदिन नियमित रूपसे योगदानकर श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथाओंका श्रवण करते थे। कभी–कभी तो ब्रह्मचारीजीके साथ सारी रात बैठकर हरिकथाका श्रवण करते। शुद्ध वैष्णवोंके सङ्गमें इस प्रकार वीर्यवती हरिकथाका श्रवण करनेसे तिवारीजीके जीवनपर बहुत प्रभाव पड़ा। पहलेसे ही धार्मिक स्वभाव होनेके कारण अब इनका जीवन सम्पूर्ण रूपसे बदल गया। प्रचार पार्टीके वहाँसे चले जानेके बाद उन्होंने प्रतिदिन हरिनाम महामन्त्रका एक लाख जप आरम्भ कर दिया। धीरे–धीरे इनके हृदयमें संसारके प्रति स्वाभाविक रूपसे वैराग्यका उदय होने लगा। जिस समय वे गङ्गाके तटपर बसे हुए श्रीचैतन्यमहाप्रभु तथा श्रीरूप–सनातन गोस्वामीके पदाङ्कपूत स्थान रामकेलिके पास ही राजमहलमें सरकारी सेवामें नियुक्त थे, उस समय उन्हें संसारसे पूर्ण वैराग्य हो गया था। नौकरीसे अवकाश ग्रहण करनेकी चेष्टा करनेपर भी उच्चपदस्थ अधिकारी इनके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट रहनेके कारण इनके सेवात्यागपत्र ग्रहण नहीं करते थे। इसी समय इनका परमाराध्यतम श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे कई बार पत्रालाप भी हुआ। अन्तमें किसी प्रकार बड़ी कठिनाईसे पदत्यागकर सन् १९४६ ई॰ के अन्तमें माता–पिता, भाई–बन्धु–पत्नी, परिवारजन एवं धन–सम्पत्ति सबकुछ छोड़कर पूर्णरूपेण निष्किञ्चिन होकर श्रीनवद्वीपधाममें श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुए।

सन् १९४७ ई० में श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके अवसरपर फाल्गुनी गौरपूर्णिमाके दिन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने इन्हें हरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। तत्पश्चात् हरिकथा श्रवण करनेमें इनकी अभिरुचि देखकर अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया। जहाँ कहीं भी प्रचार अथवा किसी विशेष कार्यके लिए जाते, सब समय अपने साथ रखते। कुछ समयके लिए श्रील गुरुपादपद्मने अपने प्रियसेवक श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारीके अस्वस्थ हो जानेपर उनकी सेवा शुश्रूषाके लिए इन्हें रखा था। किन्तु उनके परलोकगमनके बाद पुनः अपने साथ ही रख लिया। सारे भारतमें भक्तिप्रचारमें उनके साथ रहनेके कारण हरिकथा श्रवणका विशेष सुयोग प्राप्त हुआ। श्रीगुरुदेव भी बड़े प्रसन्न होकर इन्हें हरिकथा श्रवण कराते।

श्रील गुरुदेवके साथ इन्हें सम्पूर्ण भारतके मुख्य-मुख्य सभी तीर्थस्थलियों विशेषतः श्रीव्रजमण्डल, श्रीगौरमण्डल और श्रीक्षेत्रमण्डलकी श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीगौरसुन्दरकी लीलास्थलियोंके दर्शन एवं परिक्रमा करनेका सुयोग मिला। इस प्रकार श्रील गुरुदेवके साथ इन्हें उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिमके सारे तीर्थोंके धाम-माहात्म्य श्रवणके साथ उन स्थलोंकी परिक्रमा करनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ।

एक समय श्रीलगुरुदेव अपने सतीर्थ गुरुभ्राताके साथ बैठे हुए थे। श्रीगौरनारायण भी पास ही बैठे थे। परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने श्रीगौरनारायणकी तरफ देखते हुए कहा मैं तुम्हें गैरिक वस्त्र तथा संन्यास देना चाहता हूँ। मैंने बहुत-से अबङ्गाली भारतीयोंको देखा है। वे लोग श्रीमन्महाप्रभुके अत्यन्त गम्भीरतम एवं उच्च भक्तिसिद्धान्तोंको विशेषतः प्रेमतत्त्वको समझ नहीं पाते। किन्तु तुम इन भावोंको बड़े सरल-सहज रूपमें हृदयङ्गम कर लेते हो। श्रीरूप-सनातन तथा हमारे बहुत-से गौड़ीय वैष्णवाचार्य बहुत दिनों तक व्रजमें रहे। किन्तु उन्हें एक भी ऐसा कोई उत्तर-भारतीय भक्त नहीं मिल सका, जो श्रीमन्महाप्रभुके हृदयस्थित भावोंको हृदयङ्गम कर सका हो। तुम बड़े सौभाग्यवान हो। श्रीगौरनारायणजीने बड़ी ही नम्रतासे उनके श्रीचरणोंमें गिरकर अश्रुपूरित नेत्रोंसे कहा—मैंने अपने आपको आपके चरणोंमें सर्वतोभावेन उत्सर्ग कर दिया है। मैं अपनी माताकी ममता, पिताका स्नेह, पत्नीका प्रेम एवं बन्धु-बान्धवोंका बन्धुत्व सबकुछ उन-उन स्थानोंसे उठाकर आपके श्रीचरणोंमें अर्पित कर रहा हूँ। आप मुझे नङ्गा रखें, लँगोटी पहनावें, सफेद कपड़ेमें रखें, गेरुए कपड़े पहनावें अथवा संन्यास प्रदान करें। आप जिस रूपमें मेरा कल्याण समझें वही करें। अब मैं अपना नहीं केवल आपका हो गया। इनकी बातोंको सुनकर श्रीगुरुदेवकी आँखें भी छलछला आयीं। वे श्रीपाद सनातन प्रभुकी ओर देखने लगे। श्रीसनातन प्रभु भी श्रीगौरनारायणकी बातोंको सुनकर स्तब्ध थे। इसके पश्चात् श्रीलगुरुदेवने क्या स्थिर किया वे ही जानें। वे कुछ देर मौन रहनेके पश्चात् पुनः हरिकथामें लग गये। इस घटनाके कुछ दिन बाद ही सन् १९५२ में गौरपूर्णिमाके दिन श्रीपाद सज्जनसेवक ब्रह्मचारी,

श्रीपाद राधानाथ दासाधिकारी एवं श्रीपाद गौरनारायण दासाधिकारीने त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया।

श्रीलगुरुदेवने इन्हें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें मठरक्षक नियुक्त किया। वहींसे इन्होंने श्रील गुरुदेवके आदर्श-निर्देश और आनुगत्यमें 'श्रीभागवत पत्रिका' (मासिक पत्र), जैवधर्म, श्रीचैतन्यशिक्षामृत, श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, भक्तितत्त्वविवेक, उपदेशामृत, श्रीशिक्षाष्टक, श्रीमनःशिक्षा, सिन्धु-बिन्दु-कणा, श्रीगौड़ीयकण्ठहार, श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत टीका सहित, हिन्दी संस्करण) आदिका प्रकाशन कराया है। अभी सारे भारत एवं भारतसे बाहर अमेरिका, इंगलेण्ड, फ्रांस, बेलजीयम, हालेण्ड, कैनाडा, मैक्सिको, कोस्टारिका, अस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिजी, न्यूजीलेण्ड, जापान तथा हवायी (होनुलूलू) आदि विश्वके छोटे-बड़े देशोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं। अँग्रेजी, फ्रेंच, स्पैनिश आदि भाषाओंमें इनके ग्रन्थोंका विशेष रूपमें प्रचार हो रहा है। इस प्रकार ये वृद्धावस्थामें भी श्रीहरि-गुरु-वैष्णव मनोऽभीष्ट सेवामें उत्साहपूर्वक तत्पर हैं।

कृष्णदास बाबाजी महाराज

कृष्णदास बाबाजी महाराजका जन्म पूर्वी बङ्गालके एक शिक्षित, सम्भ्रान्त परिवारमें हुआ था। ढाकाके किसी कॉलेजसे B.A. की परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद ये जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें उपस्थित हुए तथा उनकी वीर्यवती हरिकथासे अनुप्राणित होकर अपना शेष जीवन उन्हींके चरणाश्रयमें बिताकर भगवद्भजन करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। श्रील प्रभुपादने इनके सङ्कल्पसे अवगत होकर इन्हें कृपापूर्वक श्रीहरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। दीक्षाके बाद इनका नाम स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी प्रसिद्ध हुआ।

ये आकुमार ब्रह्मचारी थे तथा वैष्णवोचित सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। इनमें कोई भी जागतिक अहङ्कार या क्रोधका लेशमात्र भी न था। छोटे-छोटे कनिष्ठ वैष्णवोंसे लेकर गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके बड़े-बड़े आचार्योंके साथ इनका बड़ा मधुर सम्बन्ध था। कभी-कभी क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी 'हरे कृष्ण' उच्चारणपूर्वक मुस्कुरा देते। कभी भी इनके मुखके ऊपर क्रोधकी छाया तक नहीं देखी गयी।

श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेशके पश्चात् ये अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ श्रीधाम मायापुरसे श्रीधाम नवद्वीप (आधुनिक नवद्वीप शहर) में देवानन्द गौड़ीय मठमें चले आये। अस्मदीय गुरुपादपद्मके साथ कार्तिक मास—नियमसेवाके correct? उपलक्षमें दक्षिण, उत्तर और पश्चिम भारतके सारे तीर्थोंमें इन्होंने भ्रमण किया था। ये स्वयं मृदङ्ग बजाते हुए सङ्कीर्त्तन करनेमें सिद्धहस्त थे। एकादशी, जन्माष्टमी आदि हरिवासरोंमें निर्जला उपवासपूर्वक रातभर जागरण करते हुए सङ्कीर्त्तन करते थे। रात्रिकालमें नामजपके समय श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत, कृष्णकर्णामृत, राधारससुधनिधि और गीतगोविन्द आदिके पदोंका मधुर स्वरसे विरहपूर्वक गायन करते थे। ये इतने निष्किञ्चन एवं निरपेक्ष वैष्णव थे कि इन्होंने न तो कोई अर्थसंग्रह किया और न ही कोई शिष्य किया। यदि कोई शिष्य होनेकी

इच्छासे इनके समीप आता, तो बड़ी नम्रतासे 'हरे कृष्ण' कहते हुए उसे टाल देते। ये सचमुच ही अजातशत्रु थे। इनका कोई अपना आश्रय या भजनकुटी नहीं थी। ये अपने सतीर्थोंके आश्रमों, मठोंमें दो-दो, चार-चार दिन रहते और निर्जन स्थानमें भजन करते। श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपादकी भजनकुटीके पास ही एकान्त रूपमें रहकर भजन करते। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे इनका मधुर सम्पर्क था। ये श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ आदिमें इधर-उधरसे घूमकर कुछ दिनों तक रहकर भजन करते थे। श्रीनवद्वीपधामके चैतन्य सारस्वत गौड़ीय मठके संस्थापक आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीसे भी इनका अत्यन्त मधुर सम्पर्क था। व्रजमें ये नन्दगाँव स्थित श्रीसनातन गोस्वामीकी भजनकुटी (पावनसरोवर) में निवास करते थे। ये जीवन निर्वाहके लिए माधुकरी भी करने नहीं जाते थे। अपने आप माधुकरी इनके पास उपस्थित हो जाती। इसी स्थानपर ये नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए।

श्रीसनातन दासाधिकारी

श्रीसनातन दासाधिकारी, जगद्‌गुरु श्रीलसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके शिष्य थे। इनका जन्म कलकत्तेसे कुछ दूर हावड़ा जिलेके बेगमपुर नामक ग्राममें हुआ था। श्रीलप्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथा श्रवणकर, उन्होंने उनसे हरिनाम एवं दीक्षा ग्रहण की। दीक्षाके उपरान्त सत्क्रियासारदीपिकाकी विधियोंके अनुसार उनका उपनयन संस्कार तथा वैष्णव होम सम्पन्न हुआ। परन्तु घर लौटनेपर पूरे समाजने उनका सपरिवार बहिष्कार कर दिया। नाई, धोबी आदिको उनके यहाँ काम करनेसे रोक दिया गया। उनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना सब कुछ बन्द कर दिया गया। उनकी छोटी कन्याका दो-एक दिनमें ही विवाह होनेवाला था। बारात आनेवाले दिन श्रीसनातन प्रभुने विवाहकी पूरी तैयारी कर ली थी। किन्तु समाजवालोंने वह विवाह भी रुकवा दिया। वर व उसके पिताको उल्टा-सीधा समझाकर बारात सहित उन्हें वापिस लौटा दिया गया। सनातन प्रभुका पूरा परिवार बड़ा दुखी हो गया। खाने-पीनेकी मिठाई, फल इत्यादि सबकुछ धरा रह गया। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात थी कि श्रीसनातन प्रभुके मुखपर चिन्ताका लेशमात्र भी कोई चिह्न नहीं देखा गया। उन्होंने सबेरे उन सारी वस्तुओंको साथ लेकर श्रीगौड़ीय मठ बागबाजार कलकत्तामें जगद्‌गुरु श्रीलप्रभुपादके श्रीचरणोंमें उपस्थित कर दी। मठवासी सुन्दर पके हुए आम एवं विभिन्न प्रकारकी मिठाईयाँ देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वे इस विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे। श्रीलसनातन प्रभुने बड़े प्रेमसे अपने साथ लायी हुई वस्तुओंको मठवासियोंमें वितरण कर दिया गया। श्रीलप्रभुपादने बादमें जब पूरी घटनाका संवाद श्रवण किया तो वे क्रोधसे लाल होकर बोले—ऐसा समाज ध्वंस हो, ध्वंस हो। श्रीश्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराजने भी क्रोधके आवेगमें कहा—यदि कल परसों तक सनातन प्रभुकी कन्याका विवाह न हुआ तो मैं पुनर्जन्म लेकर उस कन्यासे शादी करूँगा। सनातन

प्रभु जैसे उच्च कोटिके गुरुनिष्ठासम्पन्न गृहस्थभक्त जगत्‌में विरले ही होते हैं।

श्रीसनातन प्रभु घर लौटे। बड़े आश्चर्यकी बात हुई। दूसरे ही दिन उसी समाजका शिक्षित सम्भ्रान्त घरका एक बड़ा ही सुन्दर, हृष्ट–पुष्ट नवयुवक उनके घर आकर उनकी लड़कीसे विवाह करनेके लिए अनुरोध करने लगा। उसी रातको बड़े धूमधामसे श्रीसनातन प्रभुकी कन्याका विवाह सम्पन्न हुआ। श्रीसनातन प्रभु स्वयं मठमें इस संवादको देनेके लिए पहुँचे। सुखद् संवाद सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए।

श्रीलप्रभुपादके अप्रकटलीलाके पश्चात् गौड़ीय मठमें बड़ी विशृंखलता उपस्थित हो गयी। परमपूज्यपाद श्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराज भी श्रीगौड़ीय मठ छोड़कर अन्यत्र कहीं भजनाश्रमकी प्रतिष्ठाकर भजन-साधन करने लगे। सनातन प्रभु इन्हींके पास आते-जाते थे और इनके साथ ही प्रचारमें रहते थे। इन्हें घर-बारकी कोई चिन्ता नहीं रहती थी। कुछ दिनोंके बाद पूज्यपाद नेमि महाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् परमाराध्यतम श्रीलआचार्यकेसरीके भक्तिसिद्धान्तोंको श्रवणकर अब इन्हींके पास आने-जाने लगे। ये ताँतके कपड़ोंके बड़े व्यवसायी थे। ये गुरुजीके प्रचारकार्यमें सब प्रकारसे सहायता करने लगे। श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाकी सुविधाके लिए उन्होंने अपनी सारी कमाईके धनसे सोलह-सत्रह शिविर खरीदकर अपने सतीर्थ एवं शिक्षागुरु श्रील आचार्यदेवको अर्पण कर दी थीं। इनकी हरि-गुरु-वैष्णवोंके प्रति सेवा-चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय है। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीनारायण दासाधिकारी भी इन्हीं जैसे गुरुनिष्ठासम्पन्न परम उदार वैष्णव हैं। परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव परम निष्किञ्चन वैष्णव थे। श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमासे पूर्व श्रीसनातन प्रभु ही परिक्रमाके आयोजनके लिए अपने व्यवसायसे आवश्यक रुपये निकालकर उन्हें देते, जिसे गुरुदेव धाम-परिक्रमाके पश्चात् लौटा देते। कुछ कम रहनेपर भी जो कुछ मिलता उसे लेकर वे प्रसन्नचित्तसे लौट जाते। समितिके पृष्ठपोषकोंमें उनका एवं उनके परिवारका नाम सदा स्मरण किया जायेगा।

श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराज

श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराज भी श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके प्रतिभाशाली शिष्योंमें अन्यतम हैं। इनका जन्म पूर्वी बङ्गालके यशोहर जिलेके गङ्गाननपुर ग्राममें एक शिक्षित संभ्रान्त परिवारमें १८९८ ई॰ में हुआ। इनके पिताका नाम तारिणीचरण चक्रवर्ती एवं माताका नाम श्रीमती रामरङ्गिणीदेवी था। इनके बचपनका नाम प्रमोदभूषण चक्रवर्ती था।

श्रीप्रमोदभूषण यशोहरमें स्कूलकी शिक्षा समाप्त करनेपर कलकत्ताके बंगवासी कॉलेजमें भर्ती हुए और वहींसे रसायन शास्त्रमें Honours की डिग्री प्राप्त की। १९१७ ई॰ में ये श्रील प्रभुपादसे मिले। उनकी हरिकथासे ये इतने प्रभावित हुए कि मन-ही-मन उन्हें गुरुके रूपमें वरण किया। किन्तु ये श्रील प्रभुपादकी हरिकथा सुनने आते-जाते रहे। १९२३ ई॰ में जन्माष्टमीके दिन श्रील प्रभुपादने इन्हें हरिनाम एवं दीक्षा दोनों ही प्रदान किया और तबसे ये प्रणवानन्द ब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध हुए।

ये मठके प्रारम्भिक जीवनमें दैनिक 'नदिया प्रकाश' के सम्पादक रहे। साप्ताहिक श्रीगौड़ीयके लिए भी ये प्रबन्ध लिखते थे। श्रील प्रभुपादने कृपाकर इन्हें 'महोपदेशक प्रत्नविद्यालङ्कर' की उपाधि प्रदान की थी। इनके भावपूर्ण कीर्त्तन और हरिकथाको सुनकर सभी लोग मुग्ध हो जाते।

श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेपर १९४२ ई॰ में इन्होंने अपने सतीर्थ श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराजसे संन्यास वेश ग्रहण किया। तबसे इनका नाम श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज प्रसिद्ध हुआ। संन्यास लेनेके पश्चात् ये मायापुर-योगपीठके श्रीमन्दिरमें पाँच वर्षो तक प्रधान पुजारी और मठरक्षक रहे। तत्पश्चात् ये श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके चुँचुड़ा आदि मठोंमें अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता अस्मदीय गुरुपादपद्मके साथ बहुत दिनों तक रहे। तत्पश्चात् श्रीनवद्वीपधामके निकट अम्बिकाकालनामें अपनी भजनकुटीका निर्माणकर वहीं श्रीश्रीराधागोपीनाथजीकी सेवा करने लगे।

वहाँ रहते समय श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके साथ इनका मधुर सम्बन्ध रहा तथा ये उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्यवाणीके प्रधान सम्पादक नियुक्त हुए।

इस समय वे इशोद्यान (मायापुर) में श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठकी स्थापनाकर अधिकतर यहीं रहते हैं। इस समय उनकी आयु एक सौ वर्षकी हो चुकी है।

श्लोक-सूची

पृष्ठ संख्या

अ

अकर्ता चैव कर्ता च ३८७
अचिन्त्याः खलु ये ४०६
अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु ३
अणुर्ह्येष आत्मायं वा ३४५
अतः श्रीकृष्णनामादि २२९, ३११
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा २०४
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः ३६९
अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम् ८४, १७९
अत्र च स्व-दर्शितार्थविशेष ३८४
अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ८६
अनावृत्ति शब्दात् ४९, ८४, २०४, ४६४
अन्तः कृष्णं बहिर्गौर ४६१
अन्तवत्तु फलं तेषाम् ४१४
अन्याभिलाषिताशून्यम् ३३९, ३५९
अपरेयमितस्त्वन्याम् ३३६, ३४५
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा ३३०, ३३२, ४६७
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता ४०९
अपि संराधने ५०, ८४, २०४, ४१०, ४५९
अभेदः सर्वरूपेषु जीवभेदः ३९३
अयमात्मा सर्वेषां भूतानाम् ३३२
अरूपवदेव हि ५०, १८४, २३०, ४०८, ४१०, ४५९, ४६८

पृष्ठ संख्या

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो ४०८
अवजानन्ति मां मूढा ४०८, ४६६
अहं ब्रह्मास्मि ११९, २६३, ३७६
अहं सर्वस्य प्रभवो २७२
अहो बत श्वपचोऽतो ३०८, ३९९
अहो भाग्यमहो १२१, २०२, ४६०

आ

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासाम् ४३०
आत्मारामाश्च मुनयो ४७०
आदौ श्रद्धा ततः ३६४, ४२६
आनन्दमयोऽभ्यासात् ४९, ८४, १८४, २०४, ४५९, ४६८
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदम् ३१०
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम् ४९
आम्नायः प्राह तत्त्वम् ३२५, ३२९
आराध्यो भगवान् ५४, २१७, ३२५, ३६८

इ

इति तत्त्वाष्टकं नित्यं यः ४७२

ई

ईश्वरः परमः कृष्णः २०२, २१७, ४०९, ४६७

उ

उत्साहात् निश्चयात् ४३१

पृष्ठ संख्या

ए
एकमेव परमं तत्त्वम् ३४०, ३५४
एकमेवाद्वितीयम् १०२, १०३, ११९, ३७६
एकोवशी सर्वगः कृष्ण ३३१
एतां समस्थाय परात्मनिष्ठा ३७९
एते चांशकला २०२, २१७, ३३१
एषोऽणुरात्मा चेतसा ३४५
ऐ
ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य ३७५
ओ
ॐ तद्विष्णोः ३७२, ४०७, ४१४
ॐ सच्चिदानन्दरूपाय ४६७
क
कलौ प्राप्ते यथा ४४४
कामुकाः पश्यन्ति ३९८
कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः १९७, ४१४
कीटः पेशस्कृता रुद्धः २८४
कीर्तनीय सदा हरिः २५०
कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा ३६१
कृष्णं स्मरन् ३६३, ४२०, ४२९
कृष्णमेनमवेहि ३३३
कृष्णनामात्मकं मन्त्रोऽयम् ३११
कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ३३०, ३३३, ४१०, ४६०
कृष्णेति यस्य गिरि ३०७
केशरीर स्वपोतानाम् ३१२
क्लेशघ्नी शुभदा मोक्ष ३६०
क्षान्तिरव्यर्थकालत्वम् ४३१

पृष्ठ संख्या

ग
गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया १७३
गूढं परं ब्रह्म ३३३, ४६०, ४६७
गोलोकं च परित्यज्य ४६१
गौराश्रय-विग्रहाय ४७१
च
चातुवर्ण्यं मया ४३, ३०५, ४०१
चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वम् ४५७
ज
जन्माद्यस्य यतः २०४, २७२, ३७२, ४५९, ४६५
त
तच्छक्त्यैव तु जीवेषु ३९३
तटस्थत्वञ्च मायाशक्त्य ३४२
तत्तदभावादि-माधुर्ये श्रुते ३६३
तत्त्वमसि श्वेतकेतो ११९, ३७६
तमेकं गोविन्दम् ४६७
तत्त्वमेकं परं विद्याल्लीलया ४६०
तन्नामरूपचरितसदि ४३१
तपस्विभ्योऽधिको योगी ४१६
तपो वेशोपजीविनः २०५
तवैवास्मि तवैवास्मि ४५४
तस्य वा एतस्य ३४३
तां होवाच किं गोत्रो ४०१
ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यै ३३२
तुलसी कृष्ण प्रेयसी ४८४
तृणादपि सुनीचेन तरोरपि ४९५
तेजीयषां न दोषाय वह्नेः ८१

पृष्ठ संख्या

द

ददामि बुद्धियोगम् ४६८
दुर्लभ-प्रेम-पीयूषगङ्गा ३८६
दृष्टा स्पृष्टा तथा ४९०
देवकिनन्दन नन्दकुमार ३९४
देवकीमगृहीत् कंस ४४३
देह देहि भिदा नास्ति ४६७
द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैक ४३८
द्राक्षासु सार्य्यः करकेषु ४७६
द्वा सुपर्णा सयुजा ३७३
द्विभुजं मौन-मुद्राढ्यम् ४६७

ध

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र ४१३
धर्मं तु साक्षात् भगवत् ३८७
धर्मेण हीना पशुभिः १८६
धर्मो जगन्नाथः साक्षात् ३८७

न

न कर्मबन्धनं जन्म ३
न तस्य ३३५, ३७३, ४१५
नन्दगोप व्रजौकसाम् ४१०
न प्रतीकेन हि१८४, ४०८, ४१०
न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः ३९९
नमो बुद्धाय शुद्धाय ४४४
नमो महावदान्याय ४६१
नमो रे नमो रे मैया ४८४
नवधा तुलसीं देवीं ४९०
न साधयति मां योगो ४१६
नामश्चिन्तामणिः ४९, २२९
नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः १५०

पृष्ठ संख्या

नायमात्मा बलहीनेन १८७
नासतो विद्यते भावो ४०६, ४१०
नित्यः सर्वगतः १२२
नित्य सिद्धस्य भावस्य २८५
नित्यो नित्यानाम् ३५७, ३७३, ४५९
नित्योऽहं निरवद्योऽहम् ४३८
निद्रामोहात् स्वप्नवत् तन्न ४३७
नैवेते जायन्ते नैतेषामज्ञानबन्धो ५०
नो दीक्षां न च सत्क्रियाम् ३०८

प

पतितः स्खलितो भजनः ३०८
पद्भयां चलन् यः १८३
परम विजयते २०४, २४२, ३१०
परास्य शक्तिर्विविधैव २७, ३३६, ४५९
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये ४४२, ४७०
पादाब्जयोस्तव विना ४५४
प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ४१०
प्रकाशवच्चावैशेष्यात् ४१०
प्रज्ञानं ब्रह्म ११७, ४३८
प्रेमनामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः ३४०
प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन ३३०
प्रसीद परमानन्द! ४९

ब

बालाग्रशतभागस्य शतधा ३४५
ब्रह्म सत्यं जगन् ११९, ३७५
ब्रह्म सत्यं ज्ञानम् ३७१

पृष्ठ संख्या

ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ ७३
ब्रह्मणो हि २७, ३३३, ४१०
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी ३९९

भ

भक्तिरेवैनं नयति ३५२, ३९२, ४१६
भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन ३५१
भक्त्याहमेकया ८५, ३५२, ४१०
भक्त्यैव तुष्यति हरिः ३९२
भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः ४००
भयं द्वितीयाभिनिवेशतः १८७, ३४४
भवापवर्गो भ्रमतो यदा ३५२

म

मत्तः परतरं नान्यत् २०२, ३३१, ४१५
मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि ३५८
ममैवांशो जीवलोके २८, १२१, ३४२
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते ३७३
माञ्च गोपय येन ४३९
मायावादमसच्छास्त्रम् ११९, ४३६
मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्त्वाय ८४
मुक्तिः हि तु अन्यथारूपम् ३९२
मूकं करोति वाचालम् ४८
मोघाशा मोघकर्माणो ४६६
म्रियमाणो हरेर्नाम ३०८

य

यतो वा इमानि २०४, २७२, ३७२, ४०८, ४५९

पृष्ठ संख्या

यत्तटस्थं तु चिद्रूपम् ३४२
यत्र रागानवाप्तत्वात् ३६१
यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यम् ३३३
यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा ४६७
यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा ३४३
यथा स भगवान् व्यासः ३८४
यदाभासोऽप्युधन् ३०८
यद्यप्यन्या भक्ति कलौ ४८२
यन्नामधेयश्रवण ३०८, ४०३
यन्नाम सकृच्छ्रवणात् ३०८
यन्मित्रं परमानन्दम् ३३३, ४०९
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य ३७३
यस्य देवे परा २, ३५०
यस्य प्रभा प्रभवतो २७
यस्य यत्संगतिः पुंसो २८४
यस्य यल्लक्षणम् ४३, ३०५, ४०१
यस्यां वै श्रूयमाणायाम् ८५
यस्तु नारायणं देवम् १९७, ४१५
या दुस्तज्य दारसुतान् २५५
यान्ति देवव्रता देवान् १९७, ४१४
या या श्रुतिर्जल्पति ४०६
येऽन्येऽरविन्दाक्षविमुक्तमानिनः ४६९
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते ४१४
ये यथा मां प्रपद्यन्ते ४१७
योगिनामपि सर्वेषाम् ४१६

र

रसो वै सः ५०, ३३७
रात्र्यन्ते त्रस्तवृन्दे ४७४
राधा कृष्णप्रणय ४५७, ४६०

पृष्ठ संख्या

राधा-चिन्ता-निवेशेन १६६, १८३, २५३, ४४८
राधाभावद्युतिसुवलितम् ४५१
राधा विश्लेषतः कृष्ण ४५०
राधिकानुचरी नित्यम् ४३०

ल

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ३५८
लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदम् ५७, १८६
लौकिकी वैदिकी वापि ४९९

व

वदन्ति तत् तत्त्वविद ३२६, ३३०, ३५४, ३८१
वराहे च—गुरुप्रसादो ३९२
विरुद्ध धर्मं तस्मिन् न ४६७
विशेषस्य विशिष्टस्य ३९३
विष्णुभक्ति विहीना ये ४००
विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता २८, ३३६
विष्ण्वाङिघ्र लाभः मुक्ति ३९२
वेदार्थवन्महाशास्त्रम् ४३६
वेदैश्च सर्वैरहमेव ३३२, ४१५
वैष्णवानां यथा शम्भो ११८

श

शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुम् ४३८
शक्तिशक्तिमतोरभेदः २८, १९७, ३९३, ४५९
शास्त्रयोनित्वात् २०४
शास्त्रान्तराणि संजानन् ३८४
शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्नि ४००
शुद्धसत्त्वविशेषात्मा ३६६

पृष्ठ संख्या

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये ३३१, ३३२
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः ३६२
श्रवणोत्कीर्तनादीनि ४२०, ४२९
श्रीकृष्ण-ब्रह्म-देवर्षि ३
श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म ४६३
श्रीवार्षभानवि-देवि-दयिताय ४८०
श्रीविनोदविहारी यो राधयाः ४७०
श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ४६९
श्वपचोऽपि महीपाल ४००

स

स ऐक्षत ३७२
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया ३०८
सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकम ४६५
सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्विदो ३५२
सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् ३१३
समत्वेनैव वीक्षेत स १९७
समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ ४८६
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते ६३
सम्यक् मसृणितस्वान्तो ३६६
सर्वं खल्विदं ब्रह्म ३७६
सर्वत्रास्खलितादेशः १७०
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकम् ४१६
सर्ववेदान्तवित्कोट्या ३९९
सर्ववेदान्तसारं हि ८४
सर्वे वर्णाः यत्राविष्टाः ४६२
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन ३५८
स वै पुंसां परो ८४, १८७, ४१३
सहस्रस्य प्रतिमा असि ४०८
साङ्केत्यं पारिहास्यम् ३०८

	पृष्ठ संख्या
सा परानुरक्तिरीश्वरे	३५८
सेवा साधकरूपेण	३६३, ४२०, ४२९
सेव्य-सेवक-सम्भोगे	४५६
स्थितो ब्राह्मण	४०१
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया	३९२
स्वभावस्थैः कर्मजड़ान्	११०
स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च	४३६
ह	
हरिः पुरटसुन्दर-द्युति	४५०
हरेर्नाम हरेर्नाम	१८७, २०४

पयार-सूची

पृष्ठ संख्या

अ

अतएव गोपीभाव करि ४२८

अनर्थनिवृत्ति हइले भक्त्ये ४२७

अन्तरे निष्ठा कर बाह्ये ४१९

असत् सङ्ग त्याग २५६

आ

आचार्येर जेई मत सेई मत ३१७

आर दिने निभृते ईश्वर पुरी ३७८

ई

ईश्वरेर श्रीविग्रह ४११

ए

एइ त' परम फल ३६६

एइ मत तोमा देखि' हय ४५२

एई छय गुरु शिक्षागुरु २९४

एक कृष्णनाम करे ३१०

ए सखि ए सब प्रेम ४५१, ४५६

क

कबे वा ए दासी संसिद्धि ४३४

कर्पूर सेवा ललितार गण ४३३

कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड २५५

काम क्रोधेर दास हञा ३४७

कृष्ण तोमार हङ ३५०

कृष्णनाम करे अपराधेर १०, ३१०

कृष्णपादपद्मेर अमृतरस पान ३७८

कृष्ण हइते चतुर्मुख ५

कृष्णेर यतेक खेला १४४

कृष्णेर स्वरूप-विचार २५

कृष्णे लइया व्रजे जाई ९८

केशव भारतीर शिष्य ३७८

कोथाय गो प्रेममयी राधे! १८

कोन भाग्ये कारो संसार ३५०

कोन भाग्ये कोन जीवेर ४२७

ग

गुरु आज्ञा हय अविचारणीया ३८०

गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय २७८

गुरु कृष्णरूप हन २१९

गुरूर सेवक हय २२०

गौड़-मण्डल भूमि, येवा जाने २०

च

चिदानन्द कृष्ण विग्रह ४११

ज

जड़विद्या जत मायार ३२०

जय जय प्रभुपादेर १८५, ४७८

जीवेर स्वरूप हय २८, २७८, ३४४

त

तबे जानि ताहाते अपराध ३१०

तबे तान स्थाने शिक्षा-गुरु ३७९

तबे हासि' ताँरे २५३

पृष्ठ संख्या

तार उपदेश-मन्त्रे पिशाची ३४८
ताहाँ सेइ कल्पवृक्षेर करये ३६६
ताहाते प्रकट देखि सवंशी ४५१
तोमार सम्मुखे देखि २५३, ४५१

न

नमो नमः तुलसी ४८५
ना सो रमण ना ४५१, ४५६
नित्यबद्ध-कृष्ण हैते ३४७

प

परात्मनिष्ठामात्र वेश-धारण ३७९
पहिले देखिलुँ तोमार २५३, ४५१
पाञ्चरात्रे भागवते एइ २८९
पाषाणे कुटीब माथा ८२
प्रतिग्रह कभु ना करिबे २७७
प्रतिमा नहे तुमि १८४, ४०९, ४११
प्रभु कहे—कर्मी, ज्ञानी ३८७
प्रभु कहे—साधु एइ ३७९
प्रभु बले गया यात्रा ३७८
प्रकृति हइया करे ४२२
प्रेमफल पाकि पड़े माली ३६५

ब

बाह्य, अभ्यन्तर—इहार दुइ ४२९
ब्रह्माण्ड भ्रमिते कौन ३६५

भ

भारतीभूमि ते हइल १७
भारती सम्प्रदाय एइ हयेन ३७८
भाल न खाइबे ५५, २०५

म

मङ्गल श्रीगुरु-गौर ४७४

पृष्ठ संख्या

मन दुष्ट हइले नहे २७७
मने निज-सिद्धदेह ४१९, ४२९
महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य २०५
माली हइया करे सेई ३६५
मृगमद, ता'र गन्ध-जैछे ३३४

य

यथाय वैष्णवगण सेई ३२२
यार मन्त्रे सकल २३९

र

रघुनाथेर पादपद्म छाड़ान २८०
राधाकृष्ण ऐछे सदा ३३४
राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य ४२८
राधाकृष्णेर लीला एइ ४२८
राधा—पूर्णशक्ति ३३४
रुचि हैते भक्त्ये हय ४२७

व

वरणे तड़ित् वास तारावली ४३३
विषयीर अन्न खाइले २७७, ३१९
विधिमार्गरत जने स्वाधीनता ४२७
व्रजेन्द्रनन्दन जेइ शचीसूत ४६२

श

शिक्षाागुरुके त' जानि २१९
श्रीगुरुचरणे रति ४७२
श्रीरूप मञ्जरीपद ४५५
श्रीरूप मञ्जरी प्रभृतिर ४३४
श्रीरूप मञ्जरी, सङ्गे याब ४५५
श्रीरूप-रघुनाथपदे यार २९४

स

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये ३५०
संसार-समुद्र हैते उद्धारह ३७८

	पृष्ठ संख्या
सकल जन्मे माता-पिता	३६
सखी बिना एइ लीला पुष्टि	४२८
सखी बिना एइ लीलाय	४२८
सबे एक गुण देखि तोमार	३८७
सबे एक सखीगणेर इहाँ	४२८
साधने भाविबे जाहा	२७८, २८४, ४३०
साधुसङ्ग, साधुसङ्ग—सर्वशास्त्रे	३५०
साधुसङ्ग हैते हय	४२७
साध्यवस्तु साधन विना केह	४२८
साम्प्रदायी संन्यासी तुमि	३७८
सिद्धदेह चिन्ति' करे ताहाँर	४२८
सूर्यांशु-किरण, जैछे	३४४
सेइ कृष्ण अवतारी	४६२
सेइ दोषे माया पिशाची	३४७
सेई त पराण-नाथ	९८, २०१
सेई 'रति' गाढ़ हैले धरे	४२७
सेई वेश कैल एबे वृन्दावन	३७९
स्वतःप्रमाण वेद	३२८
ह	
हेन कृष्णनाम यदि लय	३१०

इस ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ सम्मतियाँ

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी परमगुरुदेवके सम्बन्धमें लेखनी उठानेके लिए मुझे अपने शब्दकोषमें वे शब्द नहीं मिलते हैं, जिनके माध्यमसे मैं अपने हृदगत भावोंको अभिव्यक्त कर सकूँ। क्योंकि जिन नेत्रोंने उन्हें देखा है, वे वर्णन नहीं कर सकती हैं तथा वर्णन करनेवाली वाणी है, जो कि देख नहीं सकती है—

गिरा अनयन नयन बिनु वाणी, कहत शारदा हूँ सकुचानी॥

वस्तुतः उनका जीवन वैष्णव दर्शन, साहित्य, संस्कृति और संस्कृतिकी ऐसी त्रिवेणी था, जिसमें निमज्जनसे 'लोक लोहू परलोक निवाहू' का फल सहज ही सुलभ हो जाता है। वे अपनी धुनके धनी एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न युगपुरुष थे। उन्होंने सामाजिक विभीषिकाओंसे त्रस्त, जर्जरित, कुण्ठित, पलायनवादी मानवको उसके कोढ़को धोकर जीनेकी कला प्रदान की। एक ओर उनकी निर्भीक एवं दवङ्ग वाणी घोर मायावादी जैसे विरोधियोंको नतमस्तक करनेमें सक्षम थी, तो दूसरी ओर उनकी पीयूषवर्षिणी वाणी अक्षयवट तुल्य आकर्षक व्यक्तित्व एवं वैष्णवधर्मका संरक्षण करती थी। निसन्देह 'मधुस्फीता वाचः परमामृतं निर्मितवत' सुमधुर वाणी और सम्भाषण कला प्रत्येकको नहीं मिलती है—

परमगुरुदेव एक साथ ही—

कलिकलुष निवारक, गौड़धर्म धुरी धारक।
पातक पुञ्जशालक, सुकर्म सुधर्म प्रचारक॥

थे। वे महाभागवत एवं दृढ़सङ्कल्पवाले अविरल व्यक्ति थे। घोर मतमतान्तरों, विरोधों, प्रतिद्वन्दियों और सङ्कटोंके बवण्डर भी उन्हें प्रशस्तमार्गसे विचलित नहीं कर सके। वे युगद्रष्टा एवं स्रष्टा दोनों थे। वैष्णव आचार-विचार, सत्यवादिता, उदारता, संयम, व्यस्तता, कर्त्तव्यपरायणता, निष्कपटता, संमोहकता, शिष्यवात्सल्यता, गुणग्राह्यता,

विद्याप्रेम, दलित एवं नारी उत्थानके प्रति जागरूकता, मितव्ययता, न्यायप्रियता, देश एवं राष्ट्रप्रेम और सर्वोपरि कृष्णप्रेमादि गुणोंसे सम्पन्न थे। बाह्याडम्बर, पाखण्ड, शोषण, उत्कोच, भूत-प्रेत-उपासना, रूढ़िवादिता और अधुना उथल-पुथल हथकण्डोंवाली अधकचरी राजनीतिसे उन्हें घृणा थी। उन्हें एक साथ ही कुशल प्रशासकका स्वतन्त्र चिन्तनशील मस्तिष्क तथा ममतामयी माँका कोमल हृदय मिला था।

उनका मस्तिष्क सोचता जाता है तथा हृदय उसे ग्रहण करता चलता है। इसलिए उनकी रचनाओंमें भाषा एवं भावोंका मणिकाञ्चन योग है। नवरस मन्दाकिनीकी अजस्र धाराका प्रवाह उनकी कृतियोंमें है। बङ्गलाके प्रसिद्ध पयार एवं छन्द उन्हें अतिप्रिय थे। उनके माध्यमसे युगमानवका साध्य सत्यकलाके साधनमें मूर्त हुआ है तथा हृदयकी विस्मयकारिणी अविच्छिन्न स्थितिको संस्पर्शसे प्राप्त आनन्दकी तीव्र अनुभूति हुई है। ऐसे ज्वाजल्यमान नक्षत्र एवं पुराणपुरुषको उनके पारदर्शीय हृदयके अंश अभिन्न प्रिय शिष्यकृत यह ग्रन्थ 'श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी' के रूपमें उन्हींका वाङ्मय मधुपर्क उन्हें सादर समर्पित है। इस ग्रन्थमें यदि कुछ अच्छा है तो वह उनका ही है। उन्हें शत्-शत् नमन। ऐसे अविस्मरणीय महापुरुष सर्वत्र वन्दनीय हैं—

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुची वाचः।
करणं परोपकरणं येषां न ते वन्द्याः॥

प्रस्तुत ग्रन्थके लेखक श्रीत्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज परमगुरुदेवके प्रियतम शिष्य होनेके कारण उनके सर्वांगीण जीवनके प्रत्यक्षदर्शी हैं। उन्होंने परमगुरुदेवके शैशव, ब्रह्मचर्य और संन्यास तीनों जीवनोंके ज्ञात, अल्पज्ञात एवं अज्ञात दुष्प्राप्य तथ्योंको एकत्रकर सर्वप्रथम प्रकाशित किया है, जिससे वैष्णवधर्मकी एक महान आवश्यकताकी पूर्ति हुई है। कहना न होगा कि पूज्य श्रीनारायण महाराज स्वयं एक स्वतन्त्रचिन्तक, प्रखर तपस्वी, मनन मनस्वी साधक तथा श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके एक देदीप्यमान नक्षत्र हैं। वे प्रातःस्मरणीय श्रीगुरुदेवके पूरक, नवचेतनाके कीर्त्तिस्तम्भ, एक प्रबुद्ध एवं कुशल लेखक हैं। वे अध्ययनशील, पुनीत सङ्कल्पी, निर्वैर, गुरुनिष्ठासम्पन्न, जीवन्त, एक आदर्श

एवं ऋषिकल्प व्यक्तित्वको वहन करनेवाले महापुरुष हैं। उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना द्वारा समस्त गौड़ीय सम्प्रदायके अमरत्वका संवहन किया है। इसीलिए उनका यह प्रयास स्तुत्य है।

वस्तुतः ग्रन्थकारने परम्पराको आधुनिक चेतनासे अनुप्राणित करनेकी सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टिको अपनी गतिशील लेखनीसे एक समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनका उद्देश्य 'अहर्निश सेवामहे' है। वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध एवं क्रियावृद्ध मनीषियोंसे राष्ट्रको सदैव शक्ति मिलती है। अतः अथर्ववेदमें ऐसे साधकोंको वन्दनीय कहा गया है—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं वलमीजश्च जातं तदस्मै देवा उपसनमन्तु॥

मथुरा

३ अक्टूबर १९९८

डा॰ केदारदत्त तत्राड़ी
एम॰ए॰एम॰फिल, पी॰एच॰डी॰
पूर्वरीडर हिन्दी विभाग
उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
पीलीभीत

शुभ सम्मति

परमाराध्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके तत्व-सिद्धान्त और शिक्षा समन्वित चरित्र ग्रन्थका मनोयोगपूर्वक आद्योपान्त पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यपाद त्रिडण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके अथक प्रयास और उद्योगसे उक्त ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। उनका यह कार्य स्तुत्य है। आपने इस ग्रन्थके प्रकाशनसे वैष्णव-जगत्का बहुत उपकार किया है। यह अपने आपमें दार्शनिक विचारोंका अनूठा ग्रन्थ है जो प्रत्येक वैष्णवके लिए पठनीय, संग्रहणीय और प्रेरणाका स्रोत है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें चित्-जगत्के महापुरुषका जीवनचरित्र-चित्रण बड़ी ही मार्मिक भावपूर्ण शैलीसे किया गया है। यह ग्रन्थ वेदान्त-दर्शन आदिके अनेक प्रौढ़ एवं दुरूह दार्शनिक विचारोंसे परिपूर्ण है।

हिन्दी भाषाभासी सनातनधर्मी साधारण लोग अभी तक इस आचार्य चरितामृतके पानसे वञ्चित ही थे। इस ग्रन्थ प्रकाशनसे एक बड़े अभावकी वांछनीय पूर्ति हुई है। मायावादी और शुद्धभक्ति-विरोधियोंके प्रति आचार्यदेव खड्गहस्त थे। श्रील आचार्यदेव श्रीशङ्करके अद्वैतवाद अथवा मायावाद, सहजियावाद, स्मार्तवाद आदि भक्तिविरोधी कुमतोंको जगत्से समूल रूपसे उखाड़ फेंकनेके लिए सदा प्रयासरत थे। क्योंकि ये कुमत जब तक रहेंगे तब तक शुद्धभक्ति प्रचारित और प्रसारित नहीं हो सकती। युगान्तर प्रवर्त्तक इन महापुरुषके जीवनचरित्रका पठन एवं मनन करना परमावश्यक तथा आत्मोन्नति कारक है। ऐसे महान ग्रन्थको लिखनेमें लेखक सिद्धहस्त हैं।

पूज्यपाद भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने आजसे लगभग अड़तीस वर्ष पूर्व पाश्चात्य देशोंमें विपुल रूपसे शुद्धभक्तिका प्रचारकर अगणित विदेशी लोगोंका जीवन कृतार्थ किया। आज उन सबका जीवन भौतिक जगत्से दूर हटकर भजनोन्मुख हो गया है और उनके पश्चात् सारे विश्वमें पुनः श्रीगौरवाणी—शुद्धभक्तिका प्रचार करनेवाले श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके दीक्षा एवं संन्यास गुरु और पूर्वोक्त श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजको संन्यास-मन्त्र प्रदान करनेवाले महापुरुषका व्यक्तित्व और उनका चरित्र कितना गम्भीर और महान है, आज विश्वमें श्रद्धालु लोग जानना चाहते हैं। यदि यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होता तो इन अलौकिक अतिमर्त्य महापुरुषका दिव्य चरित्र प्रस्फुटित नहीं होता। इसलिए इस ग्रन्थके लेखक इस महान कार्यके लिए सदैव अभिवन्दनीय हैं।

हरिभजन पिपासु एवं श्रीरूपानुग सारस्वत गौड़ीय वैष्णव जगत् इन लोकोत्तर महापुरुषके निकट समस्त विषयोंमें चिरऋणी है और रहेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

ओम प्रकाश ब्रजवासी
एम॰ए॰, एल-एल॰बी॰, साहित्यरत्न
सह-सम्पादक श्रीभागवत पत्रिका

परम आदरणीय अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज द्वारा प्रणीत 'श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी' ग्रन्थका मैंने अवलोकन किया। गोलोक निवासी अनन्त विभूषित श्रीकेशवजी महाराजके सम्पूर्ण जीवन (व्यक्तित्व एवं कर्त्तव्य) से सम्बन्धित यह अनुपम ग्रन्थ है। इस पुनीत एवं परमोत्कृष्ट ग्रन्थमें आठ भाग एवं लगभग ५०० पृष्ठ हैं।

इस ग्रन्थके प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय—तीन भागोंमें महाराजश्री द्वारा सम्पूर्ण एवं प्रेरणात्मक जीवनचरित्र प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ भागमें उनके अप्राकृत व्यक्तित्वकी ओर सङ्केत किया गया है। पाँचवे एवं छठे भागमें महाराजश्रीके द्वारा विभिन्न सम्प्रदायोन्नयनशील श्रेष्ठ सिद्धान्तोंको शास्त्रीय भित्तिपर एवं अकाट्य युक्तियों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। 'वेदः श्रीकृष्ण-वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि तथैव च' इन प्रस्थानत्रयीका समादर करते हुए गौड़ीय सम्प्रदायके मूलभूत सिद्धान्तोंपर परिमार्जित विचार अभिव्यक्त किये गये हैं। गन्थके सातवें भागमें वैष्णव-साहित्यकी समृद्धता और सौष्ठवताको वर्द्धित करनेमें श्रील केशव महाराजकी लेखिनीके योगदानकी झाँकी प्राप्त होती है। स्वरचित प्रबन्ध, पद्यादि रूपी पुष्पोंके गुम्फन द्वारा जो स्रज सृजितकर सुग्रीव साहित्यको उन्होंने पहनाया है, उनमें मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजयकी सुरभिसे अनन्त काल तक यह वैष्णव-जगत् सुरभित होता रहेगा। इसमें उपसंहारस्वरूप श्रील केशवजी महाराजके आध्यात्मिक क्रियाकलापोंका उल्लेख है।

सार रूपमें कहा जाय तो यह भाषा, भाव, अभिव्यक्ति एवं रचना शैलीकी दृष्टिसे गोड़ीय सम्प्रदायके अभूतपूर्व सिद्धान्तोंवाला अनुपम एवं अद्वितीय ग्रन्थ है। विश्वास है कि इससे श्रील केशवजी महाराजके वैचारिक सिद्धान्तोंका लाभ पाठकगण सुगमतासे लेनेमें सक्षम होंगे।

यह श्रील नारायण महाराजकी अनूठी एवं यशस्विनी कृति सिद्ध होगी।

विनीत

डा॰ शङ्कर लाल चतुर्वेदी 'सुधाकर'

समर्पण

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय-दसमाधस्तनवर, श्रीस्वरूपरूपानुग आचार्य केसरी

परमाराध्य–परमाभीष्टदेव

परमहंस–परिव्राजकाचार्यवर्य अष्टोत्तरशतश्री चिद्विलास

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज

के श्रीश्रीकरकमलोंमें तत्त्वसिद्धान्त एवं शिक्षा–समन्वित उनका परमपावन जीवनचरित्र भक्त्यर्घ्यके रूपमें समर्पण कर रहा हूँ।

हे मुकुन्दप्रेष्ठ! हे स्वरूप–रूपानुगवर! मैं नितान्त अयोग्य सेवक हूँ। जैसा भी हूँ आपका ही हूँ। सेवकोंकी तुच्छ सेवाको भी बहुमाननकर प्रसन्न होनेवाले

हे गुरुवर!

इस दीन–हीन अयोग्य सेवकके इस भक्त्यर्घ्यको कृपापूर्वक ग्रहणकर प्रसन्न हों। आप जययुक्त होवें—

—दीनहीन श्रीगुरुकृपालेश प्रार्थी

भक्तिवेदान्त नारायण

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

आचार्य केसरी

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

(तत्त्वसिद्धान्त और शिक्षा-समन्वित जीवनचरित्र)

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय
मठोंके प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी नित्यालीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके
अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी
श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज
द्वारा सम्पादित

प्रकाशक—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा

द्वितीय संस्करण—

प्राप्तिस्थान

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
मथुरा (उ॰ प्र॰)
०५६५-२५०२३३४

श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ
दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)
०५६५-२४४३२७०

श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ
दसविसा, राधाकुण्ड रोड
गोवर्धन (उ॰ प्र॰)
०५६५-२८१५६६८

श्रीश्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कोलेरडाङ्गा लेन
नवद्वीप, नदीया (प॰ बं॰)
०९३३३२२२७७५

श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ
बी-३, जनकपुरी, नई दिल्ली
०११-२५५३३५६८

खण्डेलवाल एण्ड संस
अठखम्बा बाजार, वृन्दावन
०५६५-२४४३१०१

जयश्री दामोदर गौड़ीय मठ
चक्रतीर्थ रोड, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा
०६७५२-२२७३१७

प्रस्तावना

आज मुझे परमाराध्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोन्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीका तत्त्वसिद्धान्त एवं शिक्षा-समन्वित जीवनचरित्र प्रकाशित करते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है। बहुत दिनोंसे इस महत्वपूर्ण ग्रन्थका अभाव खटक रहा था।

आज श्रीराधाभावद्युतिसुवलित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णस्वरूप महावदान्य श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी अभिलाषा, भक्तिभागीरथीके भगीरथ—सप्तम गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी भविष्यवाणी अनुरूप समग्र विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित विशुद्ध भक्ति एवं हरिनाम-सङ्कीर्त्तन प्रचार-प्रसारके मूल महापुरुष जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' के शिष्य-प्रशिष्योंकी चेष्टा द्वारा सर्वत्र ही हरिनाम-सङ्कीर्त्तनके प्रचार-प्रसारमें अभिवृद्धि हो रही है। विशेषतः श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत अस्मदीय गुरुपादपद्मने श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्टको पूर्ण करना ही अपने जीवनका एकमात्र कर्त्तव्य बनाया। इसी प्रसङ्गमें उन्होंने अपने अनेक सतीर्थोंकी भी सब प्रकारसे सहायता की, जिसमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजी अग्रगण्य हैं। उन्हीं श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीकी अहैतुकी अनुकम्पा और प्रेरणासे प्रेरित होकर मैं भी उनके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेकी यत्किञ्चित् चेष्टा कर रहा हूँ और इस चेष्टामें जो कुछ भी सफलता प्राप्त कर रहा हूँ, यह उनकी ही विशेष करुणासे हो रहा है। वे आधुनिक कालमें समग्र विश्वमें नामसङ्कीर्त्तन और शुद्धभक्तिका प्रचार करनेवालोंमें अग्रणी श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके भी संन्यास-गुरु हैं तथा उनकी अलौकिक एवं अहैतुकी कृपासे मेरे जैसा सभी विषयोंमें तुच्छ व्यक्ति भी आज विश्वमें सर्वत्र उनके मनोऽभीष्ट गौर-वाणीका बड़ी सफलताके साथ प्रचार-प्रसार कर रहा है, ऐसा लक्ष्यकर देश और विदेशोंमें सर्वत्र ही श्रद्धालु लोगोंको इस अलौकिक महापुरुषके अप्राकृत जीवनचरित्र एवं उनके विचार-वैशिष्ट्यको जाननेकी प्रबल उत्कण्ठा हो रही है।

उन लोगोंने मुझसे पुनः-पुनः उनके जीवनचरित्रको प्रकाशित करनेका अनुरोध किया। हमारे अनेक आदरणीय सतीर्थोंने भी मुझसे इसके लिए पुनः-पुनः आग्रह किया। बीचमें अन्यान्य सेवाओंमें व्यस्त रहने तथा कुछ अस्वथ रहनेके कारण मैं उनके अनुरोधको टालता रहा।

आजसे तेरह वर्ष पूर्व सन् १९८५ ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य, पराविद्यानुरागी मेरे सतीर्थ पूज्यपाद परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने दैनिक नदिया-प्रकाश, साप्ताहिक एवं मासिक श्रीगौड़ीय तथा श्रीगौड़ीय-पत्रिकामें प्रकाशित परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मके सम्पादकीय लेखों, निबन्धों, प्रबन्धों, कविताओं आदिके आधारपर श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी (तत्त्वसिद्धान्त और शिक्षा-समन्वित चरित्र-ग्रन्थ) का बँगला भाषामें संकलन किया। इस ग्रन्थमें उन्होंने उनके अतिमर्त्य जीवनचरित्र और उनके विचार-वैशिष्ट्यका सूत्र रूपमें वर्णन किया है। यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय होनेपर भी केवल बँगला-भाषी लोगोंके लिए ही उपकारी है। हिन्दी-भाषी बहुसंख्यक श्रद्धालुओंके लिए यह अभाव बहुत दिनोंसे खटक रहा था। मैंने गुरुभ्राताओं एवं विशेषतः करुणा-वरुणालय श्रील गुरुपादपद्मके चरणोंमें हृदयमें शक्ति-सञ्चार करनेकी विशेष प्रार्थना की, जिससे कि मैं इस कार्यको पूर्ण कर सकूँ। व्यक्तिगत रूपसे १९४५ ई॰ से लेकर श्रील गुरुपादपद्मके अप्रकट काल तक उनके साथ रहकर सब प्रकारकी सेवा करनेका मुझे सुयोग मिला है। मैं उनके निकट रहकर उनके विभिन्न स्थानोंमें दिये गये भाषणों, विपक्षके लोगोंसे शास्त्रार्थों, वाद-विवादों तथा प्रश्नोत्तरोंको श्रवणकर अपने नोट बुकमें लिख लेता था। मैं कभी भी उनके निकट चुप-चाप बैठा नहीं रहता था। बड़ी नम्रतासे परिप्रश्न करता, गूढ़ विषयोंको जाननेके लिए उनसे वाद-विवाद भी करता और इन सब विषयोंको नोट बुकमें लिखनेके अतिरिक्त अपने मानस-पटलपर भी अङ्कित कर रखता था। ये बातें मेरे लिए इस विषयमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुईं। श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें रहते समय हमलोगोंके पुनः-पुनः आग्रहसे श्रील गुरुदेवके कनिष्ठ भ्राता श्रीपुलिन विहारी गुहठाकुरताने श्रीगुरुदेवके बाल्यचरित्रसे लेकर मठ-प्रवेश तकके जीवनचरित्रको एक पुस्तिकामें लिखा था। इसीके आधारपर हम

someone
Srila Gur
joined math 1

गुरुभ्राताओंके आग्रहसे जीरट उच्च विद्यालयके सुयोग्य प्रधानाध्यापक श्रीयामिनीकान्त दास, एम॰ए॰बी॰टी॰, ने बँगला पद्योंमें श्रील गुरुदेवका जीवनचरित्र लिखा, जिसमें पुलिन विहारी गुहठाकुरता द्वारा लिखित विषयोंके अतिरिक्त चैतन्य मठ जीवन तथा गौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाके पश्चात् तकके कुछ विषयोंका समावेश किया गया था। पूज्यपाद वामन महाराजजीने अपने संकलित श्रील गुरुदेवके जीवनचरित्रमें इसकी भी सहायता ली है। उपरोक्त ग्रन्थ इत्यादि, मेरे नोट बुक तथा संस्मरण ही वर्त्तमान संस्करणके मूल उपकरण हैं। श्रील प्रभुपाद, श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज, श्रीवंशीदास बाबाजी महाराज तथा उनके अपने जीवनकी अनेक घटनाओंको स्वयं उनके ही मुखसे श्रवण किया था। हमने इस ग्रन्थमें उन संस्मरणोंको भी लिपिबद्ध क्रिया है।

मैंने श्रील गुरुदेवके इस जीवनचरित्रको आठ अध्यायोंमें विभक्त किया है। श्रद्धालु पाठकगण ग्रन्थमें ही इन विषयोंका अवलोकन करेंगे। यह ग्रन्थ कैसा हुआ है, इसका निर्णय स्वयं पाठकगण करेंगे।

इस ग्रन्थकी पाण्डुलिपि प्रस्तुत करनेमें श्रीमान् हरिप्रिय ब्रह्मचारी और श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी 'विद्यालङ्कार' ने बहुत परिश्रम किया है। ग्रन्थके कम्पोजिंग एवं संशोधनमें बेटी शान्ति दासी एवं श्रीमान् पुरन्दर ब्रह्मचारीकी सेवा-प्रचेष्टा उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थके प्रूफ-संशोधन आदि कार्योंमें श्रीओमप्रकाश व्रजवासी, एम॰ए॰, एल॰एल॰बी॰, 'साहित्यरत्न', श्रीमान् शुभानन्द ब्रह्मचारी 'भागवतभूषण', श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी 'सेवारत्न', श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी, श्रीमान् पुण्डरीक ब्रह्मचारी आदिकी सेवा-प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय रही है। श्रील गुरुपादपद्म इनपर प्रचुर अनुग्रहकर अपनी अभीष्ट सेवामें नियुक्त करें, यही उनके चरणोंमें सकातर प्रार्थना है।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-कृपालेश प्रार्थी
त्रिदण्डिभिक्षु
श्रीभक्ति वेदान्त नारायण

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
प्रथम भाग	**१—२४**
भागवत और गुरु-परम्परा	१
आविर्भाव	९
शैशव	११
छात्र-जीवन, जमींदारी-रक्षण एवं पारमार्थिक जीवनका आरम्भ	१४
श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका दर्शन एवं आशीर्वाद ग्रहण	१८
द्वितीय भाग	**२५—७८**
गृहत्याग	२५
दीक्षा एवं गुरु-मन्त्रकी प्राप्ति	३०
आदर्श मठजीवन	३३
श्रीगुरुदेवके आदेशसे पूर्वाश्रमकी जमींदारीकी रक्षा	३४
अतिथि-सेवा	३७
बृहत्-मृदङ्गकी सेवा	३८
श्रीधाम मायापुरकी सेवा	४०
गुरुसेवाका आदर्श	४२
बागबाजार गौड़ीय मठकी स्थापनामें विशेष योगदान	४६
परमानन्द शब्दकी वैदान्तिक व्याख्या	४८
श्रीविनोदबिहारी एवं ठाकुर भक्तिविनोद इंस्टीट्यूट	५१
कृतिरत्नकी उपाधि	५२
मामला-मुकदमाके द्वारा भगवत्सेवा	५३
आदर्श वैष्णव-जीवन	५५
पूज्यपाद श्रीधर महाराजसे प्रथम मिलन	५६

पृष्ठ संख्या

प्रभुपादके विचारसे आदर्श गुरुसेवक ५८
श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी
समाधिका स्थानान्तरण ५९
शुद्धभक्तिका प्रचार ६२
तत्त्व-दर्शनमें अभिरुचि ६३
श्रीमहामन्त्र एवं कीर्त्तन ६५
'उपदेशक' उपाधिसे विभूषित ६६
श्रीधाम मायापुरमें बङ्गालके महामान्य गवर्नर
सर जॉन एण्डरसन ६८
योगपीठमें श्रीमन्दिर एवं विग्रहप्रतिष्ठा ७०
मायावादकी जीवनी ७२
श्रील प्रभुपादका अप्रकटलीलामें प्रवेश ७४

तृतीय भाग ७९—२६८

गौड़ीय मठ-मिशनके महाधीक्षक (जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट) ७९
श्रील वंशीदास बाबाजी महाराजकी कृपाप्राप्ति ८०
श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना ८२
भगवान्के प्रति सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता ८५
श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज ८७
संन्यास ग्रहण ८७
बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार ८९
श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाका पुनः प्रवर्तन ९१
आचार्य-लीलाका प्रकाश ९४
श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी
स्नान-यात्रा एवं रथ-यात्रा ९५
चौरासी कोस क्षेत्रमण्डल परिक्रमा ९८
शिष्य वात्सल्य १०६
कल्याणपुरमें वैष्णवविधिके अनुसार श्राद्ध अनुष्ठान १०८
श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान १११
श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभुका निर्याण ११२

पृष्ठ संख्या

जगन्नाथपुरीमें मठ एवं पारमार्थिक मासिक
पत्रिकाके प्रकाशका सङ्कल्प ११६
मेदिनीपुर एवं सुन्दरवनमें प्रचार ११७
श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवके अवसरपर
श्रीगौड़ीय पत्रिकाका आत्मप्रकाश १२३
श्रीअयोध्याधाम, नैमिषारण्यकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत १२५
श्रीसेतुबन्ध रामेश्वरकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत १२७
आनन्दपाड़ामें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव १२८
वसीरहाटमें सनातनधर्मका प्रचार तथा
श्रीचट्टोपाध्याय महाशयके प्रतिवादका उत्तर १२९
श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव, नवनिर्मित गृहमें
श्रीविग्रहोंका प्रवेश १३०
श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी प्रभुका वेशाश्रय १३३
विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार १३४
श्रीव्यासपूजापद्धति-ग्रन्थ संग्रह तथा उसका प्रकाशन १३५
अष्टोत्तरशतनामी त्रिदण्डसंन्यास प्रदान १३६
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार १३८
श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथकी रथ-यात्रा आदिका दर्शन १४१
चुँचुड़ा मठमें श्रीजन्माष्टमी व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव १४३
श्रीबद्रिकाश्रम और केदारनाथकी परिक्रमा १४४
श्रीपुरुषोत्तम व्रत १४७
श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीकी पुनः प्रतिष्ठा १४८
श्रीअवन्तिका (उज्जयिनी) और नासिककी परिक्रमा १५२
हुगली श्रीरामपुरमें सनातनधर्मका प्रचार १५३
चौबीस परगना एवं मेदिनीपुरके विभिन्न स्थानोंमें
शुद्धभक्तिका प्रचार १५५
चुँचुड़ाके संस्कृत महासम्मेलनमें भाषण १५६
मेदिनीपुरके विष्णुपुर कमारपोतामें श्रीव्यासपूजा महोत्सव १५७
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें सनातनधर्मका प्रचार १५८

पृष्ठ संख्या

मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना एवं
श्रीभागवत पत्रिकाका प्रकाशन १६०
श्रीकेशवजी गौड़ीयमठ मथुरामें विग्रह प्रतिष्ठा एवं
अन्नकूट महोत्सव १६४
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें चैतन्यवाणीका प्रचार १६७
बेगुनाबाड़ीमें श्रीव्यासपूजा महामहोत्सव १६७
हिन्दू साधु-संन्यासी नियन्त्रण बिल (कानून) का प्रतिवाद १६९
श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ (आसाम) की स्थापना १७२
श्रीगोलोकगंज मठमें श्रीव्यासपूजा महोत्सव १७४
निखिल बंग-वैष्णव सम्मेलनमें श्रीआचार्यकेसरी १७४
श्रीराधाष्टमी व्रतमें उपवास १७५
श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम, खड़गपुरमें व्यासपूजा १७६
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं अक्षय तृतीया १७९
गोलोकगंज आसाममें मठ-मन्दिर निर्माण एवं प्रचार १८०
पिछलदामें प्राथमिक विद्यालय प्रतिष्ठा एवं शिक्षा प्रणाली १८०
श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव १८३
श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम खड़गपुरमें व्यासपूजा तथा
नवनिर्मित मन्दिरमें श्रीविग्रहोंका प्रवेशोत्सव १८४
श्रीराधागोविन्दनाथ महाशय कृत वैष्णव दर्शन ग्रन्थका
प्रतिवाद १८८
आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रील आचार्यदेव १९०
पिछलदा गौड़ीय मठ एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठा १९२
केशवपुरमें विचारसभा १९५
चुँचुड़ामें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरका विरह-महोत्सव १९८
श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी रथ-यात्रा १९९
श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीजन्माष्टमी एवं
श्रीनन्दोत्सव २०२
श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कार्त्तिक-व्रत २०३
चुँचुड़ा मठमें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव २०६

पृष्ठ संख्या

श्रीआचार्य केसरीके ६६ दिनमें ६२ भाषण २०७
मुर्शिदाबाद अञ्चलमें श्रील आचार्यदेव २१३
बङ्गालके सुन्दरवन अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार २१५
चुँचुड़ा मठमें श्रीव्यासपूजा-महोत्सव २१७
वलागड़में विराट धर्म-सम्मेलन २२०
आसाम, सुन्दरवन आदि स्थानोंमें प्रचार २२१
श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रथ-यात्रा एवं झूलन-यात्रा
महोत्सव आदि २२२
श्रील गुरुदेवकी छत्रछायामें समग्र भारतीय तीर्थोंकी परिक्रमा २२३
जयपुरमें श्रील आचार्यदेव २२६
उड़ीसा प्रदेशमें समितिके प्रचारकेन्द्रकी स्थापना २२७
जयपुर शहरमें शुद्धभक्तिका प्रचार २२८
श्रीसमिति द्वारा परिचालित श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके
सम्बन्धमें सभापति महाराजकी शुभेच्छा २३१
श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें टोल
परिदर्शकका मन्तव्य २३३
श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी स्थापना २३४
श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवके मध्य
नवनिर्मित श्रीमन्दिरमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव २३५
श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ २४२
श्रीनरहरि तोरण २४२
सप्तखण्डमय श्रीमठ २४४
श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें छुआछूत संवादका प्रतिवाद २५६
सिलिगुड़ि तथा बिहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार २५७
कलकत्ता और मेदिनीपुरमें श्रील आचार्यदेव द्वारा
शुद्धभक्तिका प्रचार २५९
श्रीमथुरा, वृन्दावन, लखनऊ और काशीमें
शुद्धभक्तिका प्रचार २६०
श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, कलकत्तामें श्रील आचार्य केसरी २६१

पृष्ठ संख्या

आसाम प्रदेशके वासुगाँवमें श्रीवासुदेव गौड़ीय मठकी स्थापना २६४
सिऊड़ी बार-लाईब्रेरी एवं डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरीमें वक्तृता २६५
अप्रकटलीलामें प्रवेश २६५

चतुर्थ भाग २६९—३२२

(क) सिद्धस्वरूपका इङ्गित २६९
(ख) प्रत्यक्ष दर्शनकी हेयता २७०
(ग) साम्यवादी ज्योति बाबूके साथ वार्त्तालाप २७३
(घ) श्रीगुरुदेव और भिक्षाके द्रव्य २७५
(ङ) श्रीगुरुदेव और जीवका स्वरूप २७७
(च) पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा और भागवत-परम्परा २८५
(i) भाष्यकारकी गुरु-परम्परा २८६
(ii) भाष्यकारकी शिष्य-परम्परा २८७
(iii) पाञ्चरात्रिक-परम्परा एवं भागवत-परम्परा २८९
(छ) रसिक एवं भावुक भागवत २९४
(ज) साम्प्रदायिक सेवा ३००
(झ) स्मार्त और वैष्णव विचारमें भेद ३०१
(ञ) श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर और श्रील सरस्वती ठाकुरके विचारोंका वैशिष्ट्य ३०६
(ट) श्रील गुरुपादपद्म अतिमर्त्त्यत्व एवं सुदृढ़ गुरुनिष्ठा ३११

पञ्चम भाग ३२३—३६८

श्रीलगुरुपादपद्मके द्वारा प्रचारित सिद्धान्त ३२३
(क) प्रमाण-तत्त्व ३२८
(ख) स्वतःप्रमाण वेद प्रमाणशिरोमणि हैं ३२८
(ग) कृष्ण ही परम तत्त्व हैं ३३०
(घ) श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं ३३३
(ङ) श्रीकृष्ण अखिलरसामृत सिन्धु हैं ३३७
(च) जीव श्रीहरिका विभिन्नांश तत्त्व है ३४१

पृष्ठ संख्या

(छ) तटस्थ धर्मवशतः बद्ध दशामें मायाग्रस्त जीवका विचार ३४७
(ज) जीव मुक्त दशामें मायामुक्त होता है ३४९
(झ) अचिन्त्यभेदाभेद विचार ३५४
(ञ) शुद्धाभक्तिका विचार ३५८
(ट) कृष्ण-प्रीति ही जीवका साध्य है ३६५

षष्ठ भाग ३६९—४३४

श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायका संरक्षण ३६९
(क) केवलाद्वैतवादका खण्डन ३७०
(ख) स्वसम्प्रदायकी रक्षा ३७३
(i) श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका मध्वानुगत्य ३७७
(ग) भक्तिविरोधी स्मार्तोंके विचारोंका खण्डन ३९६
(घ) श्रीशालग्राम-सेवामें अधिकार ४०२
(ङ) श्रीविग्रहतत्त्व एवं श्रील गुरुपादपद्म ४०३
(च) 'जितने मत उतने पथ' का खण्डन ४११
(छ) सहजिय-मतका खण्डन ४१८
(ज) भेक एवं सिद्धप्रणाली ४२२
(i) भेकधारण ४२२
(ii) सिद्धप्रणाली ४२५

सप्तम भाग ४३५—५०२

श्रील गुरुदेव एवं वैष्णव साहित्य ४३५
मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय ४३५
(क) मायावाद किसे कहते हैं? ४३५
(ख) क्या जगत् मिथ्या है? ४३७
(ग) मोक्षका उपाय ४३७
(घ) मायावादका इतिहास ४३९
(ङ) सत्युगमें अद्वैतवाद ४४०
(च) त्रेतायुगमें निर्विशेष अद्वैतवादकी परिणति ४४१
(छ) द्वापरयुगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति ४४२

पृष्ठ संख्या

(ज) कलियुगमें अद्वैतवाद या मायावाद ४४४
(झ) निर्वाणकी अलीकता ४४६
श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम् ४४७
श्रीमङ्गलारति ४७२
श्रील प्रभुपादकी आरति ४७८
श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरति ४८४
श्रीचैतन्य-पञ्जिका (श्रीमायापुर-पञ्जिका) ४९०
श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य ४९२
श्रीभागवत पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य ४९६
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संकलित, प्रकाशित, रचित और संपादित शुद्धभक्ति-ग्रन्थावली ५०१

अष्टम भाग ५०३—५१२

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त त्रिदण्ड-संन्यास और बाबाजी-वेष ५०३
श्रील आचार्य केसरी द्वारा आयोजित परिक्रमाएँ ५०५
श्रील आचार्य केसरी द्वारा प्रतिष्ठापित शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्रसमूह ५०५
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी उपदेशावली ५०८
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका स्वहस्ताक्षर लिपिमें कुछ उपदेश ५११

परिशिष्ट ५१३—५३६
श्लोक-सूची ५३७—५४१
पयार-सूची ५४२—५४४
इस ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ सम्मतियाँ ५४५—५५०

श्रीआचार्य-चरित

प्रथम भाग

भागवत गुरु-परम्परा

परम कारुणिक श्रीभगवान् और उनके प्रिय परिकरजन विश्वका कल्याण करनेके लिए तात्कालिक एवं सर्वकालिक प्रयोजनके अनुरूप विभिन्न प्रकारके अवदानोंकी झोली लेकर भूतलपर अवतीर्ण होते हैं। वे सभी तत्कालीन असुरों और उनकी आसुरिक चिन्तास्रोतरूप धर्मग्लानिको दूरकर जीवोंके नित्य श्रेयः साधन शुद्धभक्तिरूप सनातन-धर्मकी प्रतिष्ठा किया करते हैं। वर्त्तमान युगमें कलिका प्रभाव प्रबल होनेपर जड़रसमत्त अविद्याग्रस्त जीवोंको शुद्धप्रेमधर्ममें अवगाहन करानेके लिए कलियुग पावनावतारी, अनर्पितचर प्रेम-प्रदानकारी श्रीगौरसुन्दरके अनुगामी श्रीस्वरूप-रूपानुग-धारामें जो गौर-शक्तियाँ आचार्यके रूपमें इस भूतलपर आविर्भूत हुई हैं तथा जिन्होंने भगवत्-इच्छासे आचार्य श्रीशङ्करके द्वारा आविष्कृत निर्विशेष, निःशक्तिक, प्रच्छन्न बौद्धवादरूप ब्रह्मवाद, अद्वैतवाद या मायावादरूप अवैदिक मतवादका अमोघ शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्ति-तर्कोंके द्वारा खण्डन और विध्वस्त किया है तथा अप्राकृत सविशेष, सर्वशक्तिमान, रसस्वरूप भगवत्-तत्त्वकी स्थापना की है, उनमें आचार्यकेसरी पाषण्डगजैक-सिंह परमाराध्यतम ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी अन्यतम हैं।

राधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीकृष्णस्वरूप शचीनन्दन गौरहरि अभी ५०० वर्ष पूर्व अपने परिकरोंके साथ पूर्व-पूर्व अवतारोंके अवदानोंके सभी वैशिष्ट्योंको क्रोड़ीभूतकर अवतरित हुए थे। उन्होंने थोड़े ही दिनोंमें विश्वभरमें नामसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे भक्तिरसका प्रचार किया था। उनके प्रिय परिकर श्रीलरूप गोस्वामीने उनके मनोभीष्टको पूर्ण करनेके लिए श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु एवं श्रीउज्ज्वलनीलमणि प्रभृति

ग्रन्थोंके माध्यमसे शुद्धभक्तिरसकी प्रतिष्ठा की है। तत्पश्चात् श्रीरूपानुग आचार्योंकी धारामें जगद्वरेण्य आचार्यकुलचूड़ामणि अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीने वर्त्तमान कालमें विश्वभरमें उस शुद्धभक्तिधाराको प्रबल वेगसे प्रवाहित किया है। उनके इस महान कार्यमें जिन महापुरुषोंने उनके प्रचारमें निष्कपट रूपसे योगदान दिया है, उनमेंसे ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं।

जड़-इन्द्रियोंके द्वारा इन्द्रियातीत वस्तुका यथार्थ परिचय असम्भव है। भगवान्, भक्ति एवं भक्त जड़ीय इन्द्रियोंसे अतीत हैं। इस जगत्में जड़-साहित्यिक, ऐतिहासिक, राजनीतिज्ञ, दानवीर या नैतिक व्यक्तियोंके चरित्रकी आलोचना, उनका शौक्र परिचय और जन्म आदि स्थूल या प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा सम्भव हो सकता है। किन्तु भगवद्भक्तोंका चरित्र और उनका परिचय जड़ीय इन्द्रियोंके द्वारा सम्भव नहीं है। वह केवल उनकी कृपाके सापेक्ष है। भगवद्भक्तजन जब कृपाकर किसी सेवोन्मुख निर्मल हृदयमें अपने चरित्रको प्रकाशित करते हैं, तभी हमलोग भक्तोंके अतिमर्त्य चरित्रके विषयमें कुछ समझ सकते हैं—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतर ६/२३)

अर्थात्, जिनकी श्रीभगवान्में पराभक्ति है और श्रीभगवान्के समान ही श्रीगुरुदेवके प्रति भी शुद्धभक्ति है, उसी महात्माके हृदयमें श्रुतियोंके सभी मर्मार्थ प्रकाशित होते हैं।

अधोक्षज वस्तुका जन्म और मरण नहीं है। उनके जनक और जननी भी नहीं हैं। वैष्णव अधोक्षज तत्त्व हैं। इसलिए उनका भी जन्म, मरण, जनक, जननी, प्राकृत जाति, वर्ण और आश्रम आदि कुछ भी नहीं है। उनका इस प्रापञ्चिक जगत्में केवल प्रकट और अप्रकट लीलामात्र है। वैष्णव या भक्तगण भगवत्-इच्छासे ही किसी कुल या जातिका आश्रयकर भूतलपर अवतीर्ण होते हैं, यह ठीक है। किन्तु इसीलिए वे उस कुल या जातिके अन्तर्भुक्त हैं, ऐसा मानना शास्त्रोंमें निषिद्ध है। जो लोग श्रीमूर्त्तिमें शिला-बुद्धि, वैष्णव और गुरुदेवमें

मरणशील मनुष्य-बुद्धि, वैष्णवमें जाति-बुद्धि, विष्णु और वैष्णवके चरणामृतमें जल-बुद्धि तथा सर्वपाप-नाशक विष्णुनाम-मन्त्रमें साधारण शब्द-बुद्धि रखते हैं एवं सर्वेश्वरेश्वर विष्णुको अन्य देवताओंके समान समझते हैं, वे पाषण्डी एवं नारकी हैं—

अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धि-
र्विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः।
श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धि-
र्विष्णो सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः॥

(पद्मपुराण)

अर्थात्, जो व्यक्ति श्रीमूर्त्तिमें शिला-बुद्धि, वैष्णव और गुरुदेवमें मरणशील मानव-बुद्धि, वैष्णवोंमें जाति-बुद्धि, विष्णु और वैष्णवोंके चरण-धौत जलमें जल-बुद्धि तथा सर्वपापनाशक विष्णुनाम-मन्त्रमें सामान्य शब्द-बुद्धि एवं सर्वेश्वर विष्णुके प्रति अन्य देवताओंके साथ समान बुद्धि रखता है, वह नारकीय है।

अतएव जो लोग वैष्णवोंका प्रपञ्चमें जन्म, कुल, जाति आदि निरूपण करनेकी चेष्टा करते हैं, वे पारमार्थिक शास्त्रोंके अनुसार मूर्ख, पाखण्डी एवं अपराधी जीव हैं। सात्त्वत शास्त्रोंमें वैष्णवोंके प्राकृत जन्म, जाति और वर्णका निषेध किया गया है—

न कर्मबन्धनं जन्म वैष्णवानाञ्च विद्यते।

आम्नाय या भागवत गुरुपरम्परा ही वैष्णवोंका यथार्थ परिचय है। श्रुति, स्मृति एवं अमल पुराण श्रीमद्भागवतमें वैष्णवोंके वंश-निरूपणकी यही अभ्रान्त पद्धति है। परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने संगृहीत एवं सम्पादित गौड़ीय-गीतिगुच्छमें श्रीकविकर्णपूर, श्रीबलदेव विद्याभूषण एवं श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके आनुगत्यमें स्वयं अपनी वंश-परम्पराका उल्लेख किया है, उसे नीचे दिया जा रहा है—

श्रीकृष्ण-ब्रह्म-देवर्षि बादरायण-संज्ञकान्।
श्रीमध्व-श्रीपद्मनाभ-श्रीमन्नृहरि-माधवान् ॥

अक्षोभ्य-जयतीर्थ-श्रीज्ञानसिन्धु दयानिधीन्।
श्रीविद्यानिधि-राजेन्द्र-जयधर्मान् क्रमाद्वयम्॥

पुरुषोत्तम-ब्रह्मण्य-व्यासतीर्थांश्च संस्तुमः।
ततो लक्ष्मीपतिंश्रीमन्माधवेन्द्रञ्च भक्तितः॥

तच्छिष्यान् श्रीश्वराद्वैतनित्यानन्दान् जगद्गुरून्।
देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्च भजामहे।
श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्॥

महाप्रभु-स्वरूप-श्रीदामोदरः प्रियंकरः।
रूपसनातनौ द्वौ च गोस्वामिप्रवरौ प्रभु॥

श्रीजीवो रघुनाथश्च रूपप्रियो महामतिः।
तत्प्रियः कविराज-श्रीकृष्णदास-प्रभुर्मतः॥

तस्य प्रियोत्तमः श्रीलः सेवापरो नरोत्तमः।
तदनुगतभक्तः श्रीविश्वनाथः सदुत्तमः॥

तदासक्तश्च गौड़ीयवेदान्ताचार्यभूषणम्।
विद्याभूषणपादश्रीबलदेवसदाश्रयः ॥

वैष्णवसार्वभौमः श्रीजगन्नाथप्रभुस्तथा।
श्रीमायापुरधाम्नस्तु निर्देष्टा सज्जनप्रियः॥

शुद्धभक्तिप्रचारस्य मूलीभूत इहोत्तमः।
श्रीभक्तिविनोदो देवस्तत् प्रियत्वेन विश्रुतः॥

तदभिन्नसुहृदवर्यो महाभागवतोत्तमः।
श्रीगौरकिशोरः साक्षाद् वैराग्यं विग्रहाश्रितम्॥

मायावादि-कुसिद्धान्त-ध्वान्तराशि-निरासकः ।
विशुद्धभक्तिसिद्धान्तैः स्वान्तः पद्मविकाशकः॥

देवोऽसौ परमो हंसो मत्तः श्रीगौरकीर्त्तने।
प्रचाराचारकार्येषु निरन्तरं महोत्सुकः॥

हरिप्रियजनैर्गम्य ॐ विष्णुपादपूर्वकः।
श्रीपादो भक्तिसिद्धान्त सरस्वती महोदयः॥

सर्वे ते गौरवंश्याश्च परमहंसविग्रहाः।
वयञ्च प्रणता दासास्तदुच्छिष्ट ग्रहाग्रहाः॥

भागवत परम्परा—

कृष्ण हइते चतुर्मुख, हय कृष्ण सेवोन्मुख,
ब्रह्मा हइते नारदेर मति।
नारद हइते व्यास, मध्व कहे व्यासदास,
पूर्णप्रज्ञ पद्मनाभ गति॥

नृहरि माधव वंशे, अक्षोभ्य-परमहंसे,
शिष्य बलि' अङ्गीकार करे।
अक्षोभ्येर शिष्य जय- तीर्थ नामे परिचय,
ताँर दास्ये ज्ञानसिन्धु तरे॥

ताहा हइते दयानिधि, ताँर दास विद्यानिधि,
राजेन्द्र हइल ताँहा हइते।
ताँहार किंकर जय- धर्म नामे परिचय,
परम्परा जान भाल मते॥

जयधर्म-दास्ये ख्याति, श्रीपुरुषोत्तम यति,
ताहा ह'ते ब्रह्मण्यतीर्थ सूरि।
व्यासतीर्थ ताँर दास, लक्ष्मीपति व्यासदास,
ताहा ह'ते माधवेन्द्र पुरी॥

माधवेन्द्र पुरीवर, शिष्यवर श्रीईश्वर,
नित्यानन्द श्रीअद्वैत विभु।
ईश्वरपुरीके धन्य, करिलेन श्रीचैतन्य,
जगद्गुरु गौरमहाप्रभु॥

महाप्रभु श्रीचैतन्य, राधाकृष्ण नहे अन्य,
रूपानुग जनेर जीवन।
विश्वम्भर प्रियंकर, श्रीस्वरूप दामोदर,
श्रीगोस्वामी रूपसनातन॥

श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

रूपप्रिय महाजन, जीव रघुनाथ हन,
ताँर प्रिय कवि कृष्णदास।
कृष्णदास प्रियवर, नरोत्तम सेवापर,
जाँर पद विश्वनाथ आश॥

विश्वनाथ भक्तसाथ, बलदेव जगन्नाथ,
ताँर प्रिय श्रीभकति विनोद।
महाभागवतवर, श्रीगौरकिशोरवर,
हरि भजनेते जाँर मोद॥

श्रीवार्षभानवीवरा, सदा सेव्यसेवापरा,
ताँहार दयितदास नाम।
एइ सब हरिजन, गौराङ्गेर निजजन,
ताँदेर उच्छिष्टे मोर काम॥

श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय वैष्णव गुरु-परम्परा—

श्रीकृष्ण मूल जगद्गुरु हैं। उनसे चतुर्मुख ब्रह्माके हृदयमें शुद्ध ज्ञान-विज्ञानरूपी भक्तिकी धारा प्रवाहित हुई। पुनः उनसे श्रीनारद, श्रीवेदव्यासको क्रमशः यह विद्या प्राप्त हुई। तत्पश्चात् वेदव्यासजीकी परम्परामें क्रमानुसार श्रीमध्वाचार्य, श्रीपद्मनाभ, श्रीनृहरि, श्रीमाधव, श्रीअक्षोभ्य, श्रीजयतीर्थ, श्रीज्ञानसिन्धु, श्रीदयानिधि, श्रीविद्यानिधि, श्रीराजेन्द्र, श्रीजयधर्म, श्रीपुरुषोत्तमतीर्थ, श्रीब्रह्मण्यतीर्थ, श्रीव्यासतीर्थ तथा श्रीलक्ष्मीपतितीर्थ आचार्य हुए। पुनः लक्ष्मीपतिके शिष्य श्रीमाधवेन्द्रपुरी हुए और उनके शिष्य हुए श्रीईश्वरपुरी, श्रीनित्यानन्द प्रभु एवं श्रीअद्वैताचार्य। जगद्गुरु श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीका चरणाश्रयकर उन्हें धन्य किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय श्रीस्वरूप दामोदर हुए, उनके प्रिय श्रीरूप व सनातन गोस्वामी हुए। श्रीजीव व रघुनाथदास गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। उन दोनोंके प्रिय पात्र श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी हुए। श्रील कविराज गोस्वामीके प्रिय नरोत्तम एवं उनके प्रिय श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर हुए। उनके कृपापात्र श्रीबलदेव विद्याभूषण तथा उनके प्रिय सार्वभौम जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज हुए। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उनके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण

किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके सबसे प्रिय महाभागवत श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी तथा उनके प्रियपात्र श्रीवार्षभानवी-दयितदास जगद्‌गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरजीने सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित व प्रचारित शुद्धाभक्ति (प्रेमाभक्ति) की धारा प्रवाहित की है। इन्हीं सरस्वती ठाकुरके प्रियतम कृपापात्रोंमें जगद्‌गुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अन्यतम हैं। वे सभी श्रीहरि गौरसुन्दरके प्रिय परिकर हैं। हम उन्हींके उच्छिष्टकी कामना करते हैं।

जगत्पिता श्रीकृष्णसे आरम्भकर श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त 'प्रभुपाद' तक की भागवत गुरु-परम्परा ही उनकी वंश-परम्परा है।

एक समय १९४८ ई॰ में श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके समय मायापुरस्थित जगद्‌गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के समाधि-पीठपर परमाराध्य श्रीलगुरुदेवने महाविरहसे कातर होकर क्रन्दन करते-करते दीनतापूर्वक अपना परिचय प्रदान करते हुए कहा था—"स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण परम दयालु हैं। श्रीकृष्णाभिन्न गौरसुन्दर भी परम दयालु हैं। श्रीनित्यानन्द प्रभु दयाके मूर्त्तिमान विग्रह हैं। श्रीमन्महाप्रभुके परिकर षड्‌गोस्वामी अहैतुकी दयालु हैं—यह मैंने सुना है। उनके समयमें भी मैं किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही विद्यमान था। अत्यन्त घृणित एवं पापी समझकर किसीने हमारे प्रति करुणा नहीं की। किन्तु जिन्होंने मुझ जैसे विषयी-धुरन्धर, दुर्दान्त स्वभावविशिष्ट पतित अधमका केशाकर्षणकर अपने चरणकमलोंकी धूलिके समान बनाया, जो अपनी अहैतुकी करुणाके कारण ईश्वरसे भी श्रेष्ठ हैं, आज वे मुझे आत्मसात् करें।"

उपरोक्त वक्तव्यके माध्यमसे परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने जगत्पिता श्रीकृष्ण, श्रीशचीनन्दन गौरहरि, अखण्ड गुरुतत्त्व बलदेवाभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभु और उन सबके प्रिय परिकर जगद्‌गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के साथ सम्बन्धका उल्लेखकर अपने वंशका परिचय दिया है। उन्होंने कहीं भी अपने लौकिक वंश-परम्पराका कोई उल्लेख नहीं किया है।

आविर्भाव

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज आजसे सौ वर्ष पूर्व बङ्गाल (वर्त्तमान बंगलादेश) में वरिशाल जिलेके प्रसिद्ध वानरीपाड़ा नामक गाँवके एक समृद्धशाली उच्च, सम्भ्रान्त एवं भक्त परिवारमें माघी कृष्ण तृतीया तिथि, २४ जनवरी, १८९८ को दसों दिशाओंको उद्भासित करते हुए अतिमर्त्य दिव्य शिशुके रूपमें आविर्भूत हुए थे। पूर्वी बङ्गालके इस सुप्रसिद्ध गुहठाकुरता वंशमें अनेकानेक उच्च कोटिके वैष्णव सन्त, बड़े-बड़े वैज्ञानिक, राजनेता और विद्वान उत्पन्न हुए हैं। इनके पिताका नाम श्रीयुत् शरतचन्द्र गुहठाकुरता और माताका नाम श्रीयुता भुवनमोहिनी देवी था। श्रीयुत् शरतचन्द्र गुहठाकुरता एक परम धार्मिक, सत्यवादी, सरल, परोपकारी, दानशील, नम्र स्वभावसम्पन्न, सच्चरित्र व्यक्ति एवं सर्वोपरि भगवद्भक्त थे। उन्हें किसीके ऊपर क्रोध करते हुए कभी नहीं देखा गया। वे न्यायाधिकरणमें एक उच्चपदस्थ राजकर्मचारी थे। उन्होंने जीवनभर कभी रिश्वत नहीं ली। इन सब गुणोंके कारण ऊपरसे नीचे तक न्यायालयके सभी लोग मुग्ध थे। वे अद्वैत परिवारके प्रसिद्ध सन्त श्रीविजयकृष्ण गोस्वामीके मन्त्रशिष्य थे। श्रीविजयकृष्ण गोस्वामी पहले एक प्रसिद्ध सिद्ध योगी थे, परन्तु बादमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धाभक्तिके विचारोंको श्रवणकर वैष्णवधर्मके प्रति आकृष्ट हुए थे। अतएव श्रीगुहठाकुरता भी वैष्णवधर्मके परमानुरागी थे। वे श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत और श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्तिग्रन्थोंका नियमित रूपसे पाठ करते, प्रतिदिन नियमित रूपसे भगवन्नाम कीर्त्तन, जप, पूजा, ध्यान आदि भक्ति-अङ्गोंका पालन करते। उनके घरपर मुन्सिफ मजिस्ट्रेट, न्यायाधीश, बड़े-बड़े वकील एवं शिक्षित सम्भ्रान्त तथा गणमान्य व्यक्ति गीता आदि धार्मिक ग्रन्थोंकी व्याख्या श्रवण करने आते थे।

माता श्रीयुता भुवनमोहिनी देवी एक धनी-मानी, सम्भ्रान्त, शिक्षित, जमींदार परिवारकी अत्यन्त धार्मिक, नीतिपरायणा, गम्भीर-स्वभावशालिनी, सात्त्विक एवं परमविदुषी महिला थीं। ससुरालमें ये ही जमींदारीका सारा कार्य सँभालती थीं तथा घरकी सारी व्यवस्थाएँ देखती-सुनती थीं।

एक ओर वे जहाँ मातृसुलभ वात्सल्य एवं करुणाकी मूर्त्ति थीं, दूसरी ओर उसी प्रकार प्रजा-पुत्रके प्रति कठोर शासक तथा सभी कार्योंमें सुदक्ष थीं। ये जमींदारी सम्बन्धी अतिजटिल समस्याओंका अत्यन्त सरल-सहज रूपमें समाधान करतीं।

इस प्रकार धार्मिक एवं सर्वगुणसम्पन्न दम्पतिके तत्कालीन कर्मक्षेत्र नोआखली नामक नगरमें इस अतिमर्त्य महापुरुषके शिशु रूपमें आविर्भूत होनेपर सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। आस-पास और पड़ोसके वृद्ध पुरुष एवं महिलाएँ नवजात शिशुके तेजोद्दीप्त नेत्रद्वय, सुन्दर, सुगठित, सुलक्षणयुक्त हृष्ट-पुष्ट शरीरको देख मुग्ध होकर शिशु और माता-पिता—दोनोंको धन्य-धन्य कहते हुए प्रशंसा करने लगीं। शिशुकी स्वर्णविनिन्दित अङ्गकान्ति और पूर्णचन्द्र-सी उज्ज्वल गौरवर्णोद्दीप्त मुखश्रीका दर्शनकर लोग उसे 'जोना' के नामसे पुकारने लगे। 'जोना' 'ज्योत्स्ना' शब्दका अपभ्रंश है।

देशके सुविख्यात ज्योतिषशास्त्रविद् ब्राह्मणगण नवजात शिशुके जन्मके समयकी शुभ राशि, नक्षत्र, तिथि, वार एवं अङ्गोंके सुलक्षणोंको देखकर बड़े विस्मित हुए। उन्होंने श्रीशरतबाबूको बड़े यत्नपूर्वक इस बालकका

शैशव अवस्थामें परिवारके सदस्योंके साथ श्रीविनोदविहारी

लालन-पालन करनेका उपदेश देते हुए कहा, "यह बालक एक दिन भविष्यमें अलौकिक प्रतिभासम्पन्न महापुरुषके रूपमें प्रसिद्ध होगा। जन्म-कुण्डलीके अनुसार यह बालक दीर्घकाय, महाज्ञानी (भक्तिप्रज्ञान), शास्त्रवेत्ता, सुन्दर, ब्रह्मचारी-संन्यासी, आचार्य, शूरवीर, धनवान, त्यागी, जितेन्द्रिय, सहिष्णु, स्थिरचित्त, दानशील तथा अखिल गुणविशिष्ट परमधार्मिक महापुरुष होगा।"

मेदिनीपुर जिलान्तर्गत नरमा नामक गाँवके प्रसिद्ध ज्योतिषी श्रीवैकुण्ठनाथ महोदय इस बालककी जन्मपत्रिका देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और आनन्दसे उत्फुल्ल होकर उन्होंने लिखा—"इस बालकका जन्म सब प्रकारके शुभ योगोंसे युक्त क्षणमें हुआ है। उसपर भी बृहस्पतिकी अन्तर्दशा मध्यभागमें है, जो ४ वर्ष ३ महीनेकी उम्रसे सुफल देने लगेगी। इसके पश्चात् राजयोग लक्ष्य किया जा रहा है। अतएव जीवोंके भाग्यविधाताके भी विधाता भगवान् श्रीकृष्णकी सेवाकी अफुरन्त चमत्कारिता—शुद्ध वैष्णवोंकी अचिन्त्यशक्तिका प्रवाह पुनः मायाबद्ध जीवोंके हृत्-चक्षुकी अनुभूतिका विषय होगा। ऐसा दिन शीघ्र ही आनेवाला है। और कुछ अधिक विचारकी आवश्यकता नहीं है। कुछ ही दिनोंमें असमोर्द्ध्व प्रभावान्वित जगद्गुरु श्रीलसरस्वती प्रभुपादका असीम जयगान मुखरित करनेके लिए असंख्य शुद्ध वैष्णव एकत्रित होंगे।"

पण्डित एवं ज्योतिषियोंने शिशुका नाम शैलेन्द्रनाथ गुहठाकुरता रखा। परन्तु सभी लोग 'जोना' नामसे ही उन्हें पुकारते थे। पिता महाशय प्रिय पुत्रको जनार्दनके नामसे पुकारते थे। बादमें बालकका नाम 'विनोद विहारी' ही प्रसिद्ध हुआ। माता श्रीयुता भुवनमोहिनी बालकके अलौकिक सौन्दर्यराशिको देखकर यह सोचकर सर्वदा आतंकित रहती थीं कि यह बालक अधिक दिनों तक नहीं बचेगा। वे सदैव पुत्रके दीर्घायु होनेके लिए भगवान्‌के निकट कातर होकर प्रार्थना करती थीं।

शैशव

'होनहार बिरवानके होत चीकने पात' के अनुसार शैशवावस्थासे ही बालकके जीवनचरित्रमें कुछ विलक्षणताएँ दृष्टिगत होने लगीं। एक

समय स्नेहमयी जननी अपने पुत्रको साथ लेकर अपने पित्रालय 'दूधल' नामक ग्राममें आयी थीं। एक दिन सवेरे शिशुके सर्वांगमें तैलमर्दनकर उसे आँगनकी धूपमें शयन कराकर पास ही वे गृहकार्योंमें व्यस्त हो गयीं। इतनेमें एक बड़ा-सा बाज पक्षी शिशुको अपनी चोंचमें पकड़कर आकाशमें उड़ गया। पास-पड़ोसी ऐसा देखकर जोरसे चिल्लाने लगे। मैया भी जोरसे रोने लगी। सभी लोग बाज पक्षीका पीछा करने लगे। पास ही एक सरोवर था। उस सरोवरमें नौकाकी भाँति सुपारी वृक्षके खोल (छाल) तैर रहे थे। लोगोंको इस प्रकार चिल्लाते हुए देखकर न जाने क्या सोचकर बाजपक्षीने शिशुको धीरेसे उसके ऊपर रख दिया। लोगोंने ऐसा देख दौड़कर उसे गोदमें उठा लिया और माताकी गोदमें रख दिया। माताके निर्जीव शरीरमें पुनः प्राण लौट आये। लोगोंने ऐसा अनुमान किया कि यह शिशु साधारण नहीं है, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान्‌ने किसी विशेष उद्देश्यसे इस शिशुको जन्म दिया है। भविष्यमें यही बालक भगवान् और भक्तोंका मनोऽभीष्ट पूर्ण करनेवाला श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका संस्थापक आचार्य हुआ और विश्वमें सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित विमल वैष्णवधर्म तथा शुद्धाभक्तिके प्रचारक श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

बाल्यकालसे ही बालक विनोदविहारीकी अलौकिक और अतिमर्त्य गुणावली सबको आकृष्ट करने लगी। स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध सभी उसे बड़ा प्यार करते। पिता श्रीशरतचन्द्र महोदय उसे अपने साथ मन्दिर, आश्रम और धर्मसभाओंमें ले जाते। जहाँ कहीं भी श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीमद्भागवत या गीताका पाठ होता, बालकको अपने साथ ले जाते। बानरीपाड़ा ग्राममें भी विजयकृष्ण गोस्वामीका एक आश्रम था। उनके शिष्योंमें श्रीशरतबाबू अतीव साधुचरित्रवाले और सबके प्रिय पात्र थे। माता भुवनमोहिनी देवी भी सत्यनिष्ठा, तेजस्विनी, नीतिपरायणा, परोपकारी एवं सर्वोपरि आदर्श धार्मिक विदुषी महिला थीं। इस प्रकार धार्मिक परिवेशके बीच बालकका लालन-पालन होने लगा।

बालक विनोदविहारीकी आठ वर्षकी आयुमें पिताका परलोक-गमन हो गया। उस समय वे नोयाखली जिलेके लक्ष्मीपुरके न्यायालयमें कार्यरत

थे। किन्तु उन्होंने अपने पुत्रोंके अध्ययनकी समुचित व्यवस्था पहलेसे कर रखी थी। पतिके परलोक गमनके पश्चात् भुवनमोहिनीदेवीके सम्मुख बालकोंके पालन-पोषण और शिक्षाका दायित्व उपस्थित हुआ। बालक विनोदविहारी पिताके जीवित रहते समय नोयाखलीके नेशनल स्कूलमें पढ़ते थे। इस विद्यालयमें कारीगरीकी भी शिक्षा दी जाती थी। वे अपनी पाठ्य-पुस्तकोंके अतिरिक्त इस कारीगरीमें भी बड़ी रुचि लेते थे। उस समयके उनके बनाये हुए बेंच, स्टूल और टेबुल बहुत दिनों तक उनके घरमें व्यवहृत होते रहे। पिताके परलोक गमनके पश्चात् वे अपने पैतृक ग्राम बानरीपाड़ामें लौट आये और स्थानीय उच्च विद्यालयमें भर्ती हुए। उसी छात्र जीवनमें उनकी बहुमुखी कर्मप्रतिभा और ज्ञानविकासकी आधारशिला रखी गयी थी। तत्कालीन छात्रजीवनमें समाजसेवा ही चरित्रगठनकी प्रधान भित्ति मानी जाती थी। उसमें भी धर्मीय चिन्तास्रोतके द्वारा मानवकल्याण ही उसका मूल उद्देश्य था। विनोदविहारी बहुत ही तीक्ष्ण बुद्धिके असाधारण मेधासम्पन्न छात्र थे। उनमें संगठनकी अतुलनीय शक्ति थी। वे सदैव धर्म, न्याय, नीति आदि उच्च आदर्शोंको नेतृत्व प्रदान करते थे। उस समय ग्राम-समाजमें दरिद्र और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषाके लिए कोई संस्था नहीं होती थी। विनोदविहारी ब्रह्मचारीने बहुत-से उत्साही नवयुवकोंके साथ मिलकर एक ऐसी संस्थाकी स्थापना की जिसके द्वारा दरिद्रों, नाना प्रकारके रोगियों, यहाँ तक कि संक्रामक रोगियोंकी भी निःशुल्क सेवा होती थी। अन्न-वस्त्रसे असहाय लोगोंकी सब प्रकारसे सहायता की जाती। दीन-दुःखियोंकी सेवा, उदारता एवं दया उस संस्थाके युवकोंका अपना प्रधान वैशिष्ट्य था। कुछ ही दिनोंमें उक्त संस्था अत्यन्त प्रसिद्ध हो गयी।

एक दिन कुछ रात बीतनेपर बालक विनोद स्कूलसे घर पहुँचा। मैया बड़ी चिन्तित थीं। वे हाथमें एक बेंत लेकर घरके प्रवेशद्वार पर खड़ी होकर प्रतीक्षा कर रही थीं। मैया जमींदार वंशकी बड़ी तेजस्विनी और शासन करनेवाली महिला थीं। कुछ देर बाद ज्योंही विनोदविहारीने घरमें प्रवेश किया, त्योंही माँने बिगड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और बोलीं—"तू अभी तक कहाँ था? जल्दी बता। रातमें स्वतन्त्र होकर

इधर-उधर उच्छृंखल बालकोंके साथ घूमते रहो, मैं यह नहीं चाहती। बता, तू कहाँ था?" बालक शान्त-प्रशान्त निरुत्तर खड़ा रहा और पूर्णतः निर्भय था। माताके बार-बार पूछनेपर शान्त स्वरमें बालकने उत्तर दिया—"हम कुछ छात्रोंने एक धर्मरक्षिणी संस्थाकी स्थापना की है, जो असहायों, गरीबों, अनाथों और रोगियोंकी सब प्रकारसे सेवा करती है। तुम मुझे जलपानके लिए जो पैसे देती हो, उन्हें मैं उन लोगोंकी सेवाके लिए रखता हूँ। ऐसे लोगोंकी सेवाके लिए हमलोग घर-घरसे अन्न और वस्त्र माँगकर उनकी सहायता करते हैं। आज ऐसे ही एक असहाय, अनाथ, निःसन्तान बुढ़ियाको हैजा हो गया था। हमने कहींसे पैसे जुटाकर उसकी चिकित्सा और पथ्यकी व्यवस्था की। आज देर रात तक स्नान और खाये-पिये बिना इसी काममें व्यस्त था। अब वह बुढ़िया कुछ स्वस्थ है और उसकी सारी व्यवस्थाकर अभी लौट रहा हूँ।" इतना सुनते ही मैयाके हाथोंसे बेंत गिर गया, आँखोंमें आँसू छलछला आये। उन्होंने पुत्रका दोनों हाथोंसे आलिङ्गन कर लिया। वे कुछ भी बोल न सकीं। उन्होंने भविष्यमें पुनः शासन न करनेकी प्रतिज्ञा की। ऐसे बालकको जन्म देकर कौन-सी माता अपनेको कृतार्थ नहीं समझेगी? भविष्यमें इसी बालकने मायाके कारागारमें बिलखते हुए जीवोंको देखकर संसारसे संन्यास ग्रहणकर उन्हें उस कारागारसे सदाके लिए मुक्त करनेकी प्रतिज्ञा ग्रहण की।

छात्र-जीवन, जमींदारी-रक्षण एवं पारमार्थिक जीवनका आरम्भ

विद्यालयमें पढ़ते समय श्रीविनोदविहारी अङ्कशास्त्रके तथा महाविद्यालय-जीवनमें विज्ञानके छात्र थे। वे समस्त प्रकारकी क्रीड़ाओंमें निपुण थे। विशेषतः फुटबॉल आदि क्रीड़ाओंमें अपनी टीम तथा क्लबके कैप्टन भी थे। वे अपने महाविद्यालयमें प्रतिवर्ष समाजसेवाके उत्कृष्ट कार्योंके लिए पुरस्कृत होते थे। उनकी सांगठनिक शक्ति, उच्च चरित्र तथा समाजसेवाको लक्ष्यकर विद्यालयके प्रधानाध्यापक उन्हें अपने घरमें रखकर प्रीतिपूर्वक स्वयं अध्ययन आदि कराते। केवल आठवीं कक्षामें

पढ़ते समय ही माताने विनोदविहारीको जमींदारीका सारा दायित्व सौंप दिया था। इस अल्प वयसमें आइन-कानून और कर्मकुशलता साधारणतया कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती। उनकी तेजस्विता, उदारता, दया और सूक्ष्म न्याय-विचारके कारण प्रजामें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा एवं धाक थी।

छात्रजीवनमें उन्होंने अपने सहपाठियोंके साथ 'प्रसून' नामक एक मासिक पत्रिकाकी स्थापना की थी। उस पत्रिकामें उनकी लिखी हुई कविताओं एवं प्रबन्धोंका छात्र एवं शिक्षक—सभी लोग प्रशंसा करते थे। उन्होंने उसी समय अपने कुछ तीक्ष्ण मेधासम्पन्न प्रभावशाली सहपाठियोंके साथ 'धर्मरक्षिणी सभा' की स्थापना की थी। उसके संस्थापक सदस्य जीवनपर्यन्त ब्रह्मचारी रहनेकी घोषणा करते थे।

उस समय भारतमें महात्मा गाँधीके नेतृत्वमें भारतकी स्वाधीनताके लिए सत्याग्रह चल रहा था। सारे भारतके लोग प्राणोंकी परवाह न कर स्वाधीनता संग्राममें कूद रहे थे। छात्रसमाज भी इससे अछूता नहीं था। विनोदविहारी एक क्रान्तिकारी नेताके रूपमें उभरे। वन-जङ्गलोंमें छिपकर अँग्रेजी शासनके विरुद्ध विप्लवकी तैयारीमें जुट गये। पुलिस चेष्टा करनेपर भी उन्हें न पकड़ सकी। इन सब क्रिया-कलापके बीच भी प्रवेशिकाकी परीक्षामें उत्तीर्ण होकर बालक विनोदविहारी कलकत्तेके निकट उत्तरपाड़ा कॉलेजमें भर्त्ती हुए। एक वर्ष वहाँ अध्ययन करनेके पश्चात् दौलतपुर कॉलेजमें स्थानान्तरित हो गये। वहाँ पढ़ते समय कॉलेजके प्रिंसिपल और प्रोफेसर लोग उनके मुखसे श्रीचैतन्यचरितामृतके कठिन एवं गूढ़ दार्शनिक पयारोंकी व्याख्या सुनकर दङ्ग रह जाते। कभी-कभी वहाँके निरीश्वर प्राध्यापकोंके साथ पारमार्थिक विषयमें वाद-विवाद उपस्थित हो जाता। ये अपनी अकाट्य युक्तियों और शास्त्रीय विचारोंके द्वारा उन्हें निरुत्तर कर देते। धीरे-धीरे गीता, भागवत एवं श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्तिशास्त्रमें उनकी ऐसी रुचि उत्पन्न हुई कि अब वे नास्तिक समाजके सेवामूलक कर्मक्षेत्रसे निकलकर भगवान् एवं भक्तोंके सेवामूलक कार्योंमें रुचि लेने लगे। अब विश्वविद्यालयकी निरीश्वर शिक्षा एवं डिग्रीका मोह परित्यागकर परमार्थके यथार्थ स्वरूपको जाननेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो गये। श्रीचैतन्यचरितामृतके

ब्रह्मचारी वेशमें श्रील प्रभुपाद

'भारतभूमि ते हइल मनुष्य जन्म जार। जन्म सार्थक करि कर पर-उपकार॥'—इस पयारने उनके हृदयको झकझोर दिया। आत्मा-परमात्माका स्वरूप क्या है? मनुष्य जन्मकी सार्थकता कैसे सम्भव है? अब इन विषयोंका अनुसन्धान करने लगे।

बानरीपाड़ा रहते समय वे परम धार्मिक और विदुषी दो बुआजीके विशेष सम्पर्कमें आये। एकका नाम श्रीयुता सरोजवासिनी और दूसरीका नाम प्रियतमा देवी था। ये दोनों विश्वप्रसिद्ध जगद्गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' की क्रमशः प्रथम और द्वितीय शिष्या थीं। दोनों ही भक्तिशास्त्रोंमें अत्यन्त निपुण, जन्मजात कवयित्री एवं उच्च कोटिकी लेखिका थीं। इन दोनोंके भक्तिके उपदेशों तथा उनके भक्तिमय जीवनका इस बालकके जीवनपर बहुत ही प्रभाव पड़ा। वे सन् १९१५ ई॰ में श्रीगौरपूर्णिमाके अवसरपर अपनी इन दोनों बुआओंके साथ जगद्गुरु श्रील प्रभुपादका दर्शन करने गये। श्रील प्रभुपादके प्रथम दर्शन और उनके ओजस्वी उपदेशोंको श्रवणकर बड़े आकृष्ट हुए। उन्होंने उसी समय अपना शेष जीवन इन महापुरुषके आनुगत्य एवं सेवामें व्यतीत करनेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। श्रीनवद्वीपधामकी नौ दिन व्यापी परिक्रमा एवं हरिकथा श्रवणके पश्चात् उन्होंने श्रीगौरपूर्णिमाके दिन श्रील प्रभुपादके चरणोंमें अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। प्रभुपादने योग्य पात्र समझकर प्रिय शिष्यके रूपमें इन्हें अङ्गीकार किया एवं हरिनाम प्रदान किया। बालक विनोदका जीवन अब विशुद्ध पारमार्थिक हो गया।

इसी समय श्रीगौरजन्मोत्सवके दो-एक दिन बाद श्रील प्रभुपाद उपस्थित समुदायमें अपनी ओजस्विनी कथाका परिवेशन कर रहे थे। प्रसङ्गवशतः उन्होंने श्रीनवद्वीपधामके नौ द्वीपोंमें एक-एक मठ स्थापन, बङ्गाल एवं भारतके विभिन्न प्रसिद्ध नगरोंमें श्रीगौड़ीय मठ और शुद्धभक्तिके प्रचारकेन्द्र तथा मुद्रणयन्त्रकी स्थापनाकर उसके माध्यमसे भारतकी विभिन्न भाषाओंमें पारमार्थिक संवाद-पत्र द्वारा सर्वत्र शुद्ध भक्तिसिद्धान्तोंके प्रचारका सङ्कल्प प्रकाश किया। श्रीयुता सरोजवासिनी देवी ऐसा सङ्कल्प जानकर बहुत प्रसन्न हुईं और श्रील प्रभुपादसे बोलीं—"अभी इस योगपीठमें ही आरतीके समय काँसर-घण्टा बजानेके लिए आवश्यकतानुसार ब्रह्मचारी नहीं हैं, फिर इतने मठोंकी व्यवस्था कैसे सम्पन्न होगी?" उस

समय बालक विनोदविहारी पास ही बैठे हुए एकाग्रचित्तसे श्रील प्रभुपादकी हरिकथा सुन रहे थे। श्रील प्रभुपादने इस बालककी ओर अँगुली द्वारा निर्देश करते हुए कहा—"विनोदविहारी इन सारे मठ एवं प्रचारकेन्द्रोंकी व्यवस्था करेगा।" यह बात बादमें सत्य हुई। इसी बालकने श्रील प्रभुपादके आशीर्वादसे मूल श्रीगौड़ीय मठके तथा सारे शाखा मठोंका व्यवस्थापक (math superintendent) बनकर बड़े सुचारु रूपसे सबकी व्यवस्था सँभाली। यही नहीं श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर सम्पूर्ण भारत एवं विश्वमें गौड़ीय मठों और भक्ति-प्रचारकेन्द्रोंकी स्थापना कर सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजका दर्शन एवं आशीर्वाद ग्रहण

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज उस समय व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलमें सर्वत्र ही सिद्ध बाबाजीके रूपमें प्रसिद्ध थे। इनका आविर्भाव पूर्व बङ्गालके किसी ग्राममें हुआ था। ये बचपनमें ही घर-बार छोड़कर भगवद्भजन करनेके लिए श्रीधाम वृन्दावनमें चले गये। वहाँ सूर्यकुण्डमें कठोर वैराग्य अवलम्बनपूर्वक साधन-भजन करने लगे। वहाँ श्रीमधुसूदन दास बाबाजीके शिष्य वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके सङ्गमें रहकर हरिकथा इत्यादि श्रवण करते थे। इनका वैराग्य इतना कठोर था कि कभी-कभी भूख लगनेपर श्रीराधाकुण्ड अथवा यमुनाका कीचड़ भी खा लेते। फलस्वरूप इनकी आँखोंकी ज्योति चली गयी। फिर भी छह गोस्वामियोंकी भाँति कभी राधाकुण्ड, कभी श्रीधामवृन्दावन, कभी नन्दगाँव-बरसाना तो कभी भाण्डीरवन आदि कृष्णलीला-स्थलियोंमें कुछ-कुछ दिनोंके लिए निवास करते और बड़े विरहमें कातर होकर उच्च स्वरसे गान करते—

कोथाय गो प्रेममयी राधे! राधे!
राधे राधे गो, जय राधे राधे॥

देखा दिये प्राण राख राधे राधे।
तोमार काङ्गाल तोमाय डाके राधे राधे॥

राधे वृन्दावन-विलासिनी राधे राधे।
राधे कानुमनोमोहिनी राधे राधे॥

राधे अष्टसखीर शिरोमणि राधे राधे।
राधे वृषभानुनन्दिनी राधे राधे॥

(गोसाईं) नियम करे सदाइ डाके राधे राधे।
(गोसाईं) एकबार डाके केशीघाटे।
आबार डाके वंशीवटे राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके निधुवने।
आबार डाके कुञ्जवने राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके राधाकुण्डे।
आबार डाके श्यामकुण्डे राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके कुसुमवने।
आबार डाके गोवर्धने राधे राधे॥

(गोसाईं) एकबार डाके तालवने।
आबार डाके तमालवने राधे राधे॥

(गोसाईं) मलिन बसन दिये गाय।
व्रजेर धूलाय गड़ागड़ी जाय राधे राधे॥

(गोसाईं) मुखे राधा राधा बले।
भासे नयनेर जले राधे राधे॥

(गोसाईं) वृन्दावने कुलि कुलि केंदे बेड़ाय।
राधा बलि राधे राधे॥

(गोसाईं) छपान्न दण्ड रात्रि दिने।
जाने ना राधा-गोविन्द बिने राधे राधे॥

तार पर चारि दण्ड सुति थाके।
स्वपने राधा-गोविन्द देखे राधे राधे॥

जब उनसे श्रीधाम वृन्दावनमें आराध्यादेवी श्रीमती राधिकाका विरह सहन नहीं हुआ, तब वे श्रीधाम नवद्वीपमें उपस्थित हुए।

हमारे गौड़ीय वैष्णव आचार्योंकी ऐसी भावना रही है कि श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णनाम और श्रीकृष्णधाम अपराधका विचार करते हैं। निरपराध हुए बिना इन तीनोंकी निष्कपट कृपा नहीं होती, व्रजप्रेमकी प्राप्ति नहीं होती। किन्तु श्रीगौर, श्रीगौरनाम और श्रीगौरधाम अहैतुक कृपामय हैं। ये अपराधका भी विचार नहीं करते। कातर होकर गौरधाममें श्रीगौर-नित्यानन्दका नाम ग्रहण करनेसे वे सहज ही व्रजप्रेमको प्राप्त कर लेते हैं—

कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।
नाम लैले अपराधीर न हय विकार॥

कोटिजन्म करे यदि श्रवणकीर्तन।
तभु त न पाय कृष्ण पदे प्रेम धन॥

गौर-नित्यान्दे नाई एइ सब विचार।
नाम लैले प्रेम देय बहे अश्रुधार॥

इसीलिए श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज जैसे बड़े-बड़े गौड़ीय वैष्णव महाजनोंने वृन्दावनसे आकर श्रीगौड़भूमिमें भजन किया है। श्रील नरोत्तमदास ठाकुरने भी इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है—

गौड़-मण्डल भूमि, येवा जाने चिन्तामणि,
ताँर होय ब्रजभूमे वास।
गौर प्रेम रसार्णवे, से तरङ्गे येवा डूबे,
से जाय व्रजेन्द्रसुत पास॥

is this correct?
is it from gauranga duti p
in that case it is wrong acc
gaudiya giti gucca

अर्थात् जो लोग श्रीगौड़मण्डलको चिन्तामणि भूमिके रूपमें जानकर श्रद्धापूर्वक निवास करते हैं, उनका शीघ्र ही व्रजभूमिमें वास होता है और जो लोग शचीनन्दन गौरहरिके प्रेमरूपी महासमुद्रमें डुब की लगाते हैं, वे श्रीवृन्दावनमें अखिल रसामृतमूर्त्ति श्रीराधा एवं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्रेममयी सेवा प्राप्त करते हैं, यह एक परम रहस्य है।

इसीलिए श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज कुलिया शहरमें निवास करते हुए भजन करने लगे। यह स्मरण रहे कि उस समय तक श्रीगौर-आविर्भावस्थली श्रीधाम मायापुरका पूर्ण रूपसे विकास नहीं हुआ

था। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर भी श्रीधाम मायापुरसे कुछ दूर गङ्गातटपर अवस्थित श्रीगोद्रुमद्वीपमें एक भजनकुटीमें रहकर बड़े विप्रलम्भ भावसे भजन करते थे। बाबाजी महाराज प्रायः कुलिया शहरसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पास आते थे। इन दोनोंमें सर्वदा श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीराधाकृष्णकी औदार्य-माधुर्यपूर्ण लीला-कथाओंकी चर्चाएँ होती थीं। इनका वैराग्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीके समान अत्यन्त उच्च कोटिका था। बड़े-बड़े महात्मा एवं भजनानन्दी इनके दर्शनसे अपना जीवन कृतार्थ समझते थे। जगद्‌गुरु नित्यलीला प्रविष्ट श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' ने इन्हीं महापुरुषको गुरुके रूपमें वरण किया था। बाबाजी महाराज सांसारिक विभिन्न प्रकारके प्रपञ्चों एवं भक्तिहीन विषयी और तथाकथित धर्मध्वजियोंसे दूर रहकर कुलिया नवद्वीपमें किसी प्रकार रहकर श्रील लोकनाथ गोस्वामी आदिकी भाँति भजनान्दमें विभोर रहते थे। मधुकरी भिक्षा द्वारा अनायास ही जीवननिर्वाहकर षड्‌गोस्वामियोंकी भाँति चौबीस घण्टे भजनमें अतिवाहित करते थे। प्रायः गङ्गा पारकर गोद्रुममें वे सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सत्सङ्ग लाभ करने जाया करते थे।

एक समय विषयी लोगोंसे तङ्ग आकर वे कुलिया नगर (वर्त्तमान नवद्वीप शहर) के एक सार्वजनिक धर्मशालाके शौचालयमें भीतरसे दरवाजा बन्दकर भजन करने लगे। लोगोंको यह पता नहीं चल सका कि बाबाजी कहाँ चले गये। इन्होंने पैखानेके दुर्गंधको विषयी लोगोंके दुःसङ्गसे उत्तम समझा, इसीलिए दुर्गंधमय स्थानमें रहकर भजन करना ही श्रेयस्कर माना। दो-तीन दिनोंके पश्चात् मेहतरानी टट्टी साफ करनेके लिए पैखानेके नीचे आयी, तो उसने "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥" की विरहकातर करुण ध्वनि सुनी। उसने ऊपरकी ओर झाँककर देखा, श्रील बाबाजी महाराज भावविभोर होकर हरिनाम कर रहे थे। उन्हें तन-मन और दुर्गंध आदिकी सुध-बुध नहीं थी। ऐसा देखकर वह चकित रह गयी। उसने तुरन्त नगरपालिकाध्यक्षको इसकी सूचना दी। थोड़ी ही देरमें यह संवाद जिलाधिकारी एवं पुलिस अधीक्षक आदिके कानोंमें पहुँचा। ये सभी लोग श्रील बाबाजी महाराजके निकट आकर उन्हें पैखानेका दरवाजा

खोलकर बाहर आनेके लिए अनुरोध किया। उन्होंने कहा—"बाबाजी महाराज! हमलोगोंने भगवती गङ्गाके किनारे आपके लिए भजनकुटीकी व्यवस्था की है। आप वहाँ रहकर भजन करें।" किन्तु बाबाजी महाराजने उनकी बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और अविश्रान्त हरिनाम करते रहे। उन उच्च पदस्थ अधिकारियोंके द्वारा पुनः-पुनः आग्रह करनेपर श्रील बाबाजी महाराजने अत्यन्त क्षीण स्वरसे केवल इतना ही कहा—"मैं अस्वस्थ हूँ। मैं दरवाजा नहीं खोल सकता।" उक्त अधिकारीगण हारकर अन्तमें चले गये।

इसी समय थोड़ी देरके बाद श्रील प्रभुपादके निर्देशसे सरोजिनी देवी, प्रियतमा देवी तथा श्रीगौरगोविन्द विद्याभूषण (संन्यास ग्रहणके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराज) के साथ श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी मायापुरसे श्रील बाबाजी महाराजके दर्शनके लिए उपस्थित हुए। किन्तु बार-बार अनुरोध करनेपर भी श्रील बाबाजी महाराज कपाट खोलनेको तैयार नहीं हुए, बहाना बनाते रहे। ऐसा देखकर श्रीगौरगोविन्द प्रभुने बड़े ही विनीत स्वरसे कहा—"बाबाजी महाराज! हमलोग श्रील सरस्वती ठाकुरके अनुगृहीत शिष्य हैं। उन्हींके निर्देशसे बड़ी आशा लेकर आपके दर्शनके लिए आये हैं। आपका दर्शन नहीं पानेसे हम बड़े मर्माहत होंगे।" इतना सुनते ही बाबाजी महाराज बड़े प्रसन्न हुए और अत्यन्त स्नेहपूर्वक कहा—"आओ, तुमलोग सरस्वती ठाकुरके स्नेहपात्र हो।" और जल्दी-से दरवाजा खोल दिया। उस समय वे कपड़ेकी गाँठ द्वारा बनी हरिनामकी मालिकापर तन्मयतापूर्वक हरिनाम कर रहे थे। तभी श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीका परम सौम्य किशोर रूप, भजन करनेकी निष्कपट लालसा, युक्तवैराग्यका अङ्कुर तथा सर्वोपरि गुरुनिष्ठा लक्ष्यकर आशीर्वाद देते हुए कहा—"मैंने तुम्हारे जीवनकी सारी विपत्तियों और विघ्न-बाधाओंको ग्रहण किया। तुम निर्भीक होकर भजन करो तथा विश्वमें सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करो।" ऐसा आशीर्वाद सुनकर श्रीविनोदविहारीकी आँखें छलछला आयीं। वे सजल नेत्रोंसे उनके चरणोंमें गिर पड़े और उनकी चरणधूलि अपने मस्तकपर धारण की। कुछ देर तक हरिकथा श्रवण करनेके बाद बाबाजी महाराजकी चरणवन्दना कर श्रीमायापुरके लिए विदा हुए।

श्रील गुरुपादपद्म प्रसङ्गवशतः श्रील बाबाजी महाराजके आशीर्वादकी बातोंको हमें सुनाते-सुनाते बालककी भाँति अधीर होकर क्रन्दन करने लगते थे और कहते—"श्रील बाबाजी महाराजकी अहैतुकी कृपासे ही आज मैं विश्वमें बड़े निर्भीक होकर शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहा हूँ। प्रचारके समय हमारे ऊपर बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ एवं विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हुईं, प्राणोंके सङ्कट भी उपस्थित हुए, किन्तु श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजकी कृपासे हमारा बाल भी बाँका नहीं हुआ। विपत्तियोंके बादल शीघ्र ही छँट गये।"

द्वितीय भाग

गृहत्याग

श्रील प्रभुपादसे हरिनाम ग्रहण करनेके अनन्तर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी घर लौट आये। नियमित रूपसे दौलतपुर कॉलेजमें अध्ययन भी करने लगे। किन्तु बीच-बीचमें श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपादके चरणोंमें उपस्थित होकर श्रद्धा तथा एकाग्रचित्तसे श्रील प्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथाका श्रवण करते। उन दिनों कॉलेजमें पाठ्यक्रमके अन्तर्गत श्रीचैतन्यचरितामृतकी पढ़ाई होती थी। प्राध्यापक जब चैतन्यचरितामृतके पयारों और श्लोकोंकी व्याख्या करते, तो वे कठिन दार्शनिक और भक्तिके उच्च भावोंको समझ नहीं पाते। उस समय श्रीविनोदविहारी छात्र होते हुए भी उन कठिन दार्शनिक विचारों और भक्तिके उच्च भावोंको समझकर बड़े सरल-सहज और बोधगम्य भाषामें उन पयारों एवं श्लोकोंकी व्याख्या कर देते। अध्यापक और अन्यान्य छात्र उसे श्रवणकर मुग्ध और आश्चर्यचकित हो जाते।

एक दिनकी बात है, श्रीचैतन्यचरितामृतमें लिखित श्रीसनातन-शिक्षाका प्रसङ्ग चल रहा था। जब प्रसङ्गवशतः

कृष्णेर स्वरूप-विचार सुन सनातन।
अद्वयज्ञान-तत्त्व व्रजे व्रजेन्द्रनन्दन॥

इसकी व्याख्या आरम्भ हुई, तो प्राध्यापक इस विषयमें केवलाद्वैतवादके विचारोंके अनुरूप यह व्याख्या करने लगे कि ब्रह्म-तत्त्व ही परम तत्त्व है। वह ज्ञानस्वरूप है, साथ ही निर्विशेष, निरञ्जन, निःशक्तिक, निर्गुण और निराकार है। उसके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है। अनिर्वचनीय मायाके कारण वही परम तत्त्व ईश्वर या भगवान्के रूपमें देखा जाता है। जीव ब्रह्म ही है। किन्तु अज्ञान द्वारा आच्छादित होनेपर अपनेको जीव समझता है। अज्ञान या माया दूर होते ही वह

ब्रह्ममें मिल जाता है या ब्रह्म हो जाता है। योगी लोग उस अद्वयज्ञान निर्विशेष वस्तुको ईश्वर या परमात्माके रूपमें देखते हैं तथा भक्तियोगके द्वारा वही उपाधियुक्त भगवान्‌के रूपमें अनुभूत होता है। ब्रह्म निरुपाधिक तत्त्व है, परन्तु परमात्मा एवं व्रजेन्द्रनन्दन भगवान् सोपाधिक तत्त्व हैं, किन्तु अद्वयज्ञानके अन्तर्गत ही हैं। प्राध्यापककी यह व्याख्या सुनकर श्रीविनोदविहारीने दृढ़तापूर्वक इसका घोर प्रतिवाद किया। उन्होंने कहा कि यह व्याख्या श्रीचैतन्यचरितामृत, अमलपुराण श्रीमद्भागवत एवं वेदान्तसूत्रके विपरीत सर्वथा काल्पनिक है। उन्होंने वेद, उपनिषद और श्रीमद्भागवतके प्रमाणोंके साथ बड़े सुन्दर रूपसे इन पयारोंकी इस प्रकार व्याख्या की—

तत्त्वदर्शी श्रीचतुर्मुख ब्रह्मा, नारद, शाण्डिल्य, पराशर, कृष्णद्वैपायन वेदव्यास आदि महर्षियोंने अद्वयज्ञान परतत्त्वको ही तत्त्व निर्धारित किया है। ब्रह्म प्रथम प्रतीति, परमात्मा द्वितीय प्रतीति एवं भगवान् उसकी तृतीय प्रतीति हैं। निर्विशेष ज्ञानके द्वारा शुष्क ज्ञानीजन इस परतत्त्वको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें अनुभव करते हैं, योगीगण उन्हें परमात्माके रूपमें अनुभव करते हैं तथा शुद्धभक्तगण भक्तियोगके माध्यमसे उसी परतत्त्वको व्रजेन्द्रनन्दन भगवान्‌के रूपमें दर्शन करते हैं। अद्वयज्ञान कहनेका तात्पर्य यह है कि यह परम तत्त्व एक अघटन-घटन-पटीयसी अचिन्त्यशक्तिसे सम्पन्न होता है। उनकी यही पराशक्ति तीन प्रकारकी है—चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। परतत्त्व श्रीकृष्णकी इच्छासे इनकी चित्-शक्ति मायातीत वैकुण्ठ, गोलोक वृन्दावन आदि धामोंको तथा वहाँकी सारी वस्तुओंको प्रकाशित करती है। जीवशक्ति अगणित जीवोंको प्रकाशित करती है तथा मायाशक्ति उन्हींकी इच्छासे करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डोंको प्रकट करती है। जीवशक्तिके द्वारा प्रकटित होनेके कारण जीव अणुचेतन एवं मायाके द्वारा आच्छादित होने योग्य होता है। शक्ति और शक्ति द्वारा प्रकटित जीव एवं जगत्‌का शक्तिमानके साथ नित्य अचिन्त्य-भेदाभेद सम्बन्ध है। शक्तिमान परतत्त्व व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके बिना जीव और जगत्‌का कोई अस्तित्व नहीं है। इसी दृष्टिकोणसे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको अद्वयज्ञान परतत्त्व वस्तु कहा गया है। ये परतत्त्व निराकार, निःशक्तिक, निर्गुण आदि नहीं है। भक्तजन अपने भक्तिनेत्रोंमें प्रेमका अञ्जन लगाकर

व्रजेन्द्रनन्दनका ही अद्वयज्ञान परतत्त्वके रूपमें दर्शन करते हैं। इस व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिको शुष्क ज्ञानीजन निर्विशेष, निर्गुण, निराकार ब्रह्मके रूपमें दर्शन करते हैं। गीताके अनुसार ब्रह्मतत्त्व स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णका आश्रित तत्त्व है, वह स्वयं परतत्त्व नहीं है—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४/२७)

निर्गुण सविशेष तत्त्व मैं ही ज्ञानियोंकी चरमगति ब्रह्मकी प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय हूँ। अमृतत्व, अव्ययत्व, नित्यत्व, नित्य धर्मरूप प्रेम और ऐकान्तिक सुखरूप व्रजरस—ये सभी इस निर्गुण-सविशेष-तत्त्वरूप श्रीकृष्णस्वरूपके आश्रित हैं।

तथा,

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-कोटीष्वशेषवसुधादिविभूतिभिन्नम्।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

(ब्रह्मसंहिता ५/४०)

जिनकी प्रभासे उत्पन्न होकर उपनिषदोक्त निर्विशेष ब्रह्म करोड़ों-करोड़ों ब्रह्माण्डगत वसुधा आदि विभूतियोंसे पृथक् होकर निष्कल, अनन्त, अशेष तत्त्वके रूपमें प्रतीत होते हैं, उन्हीं आदि पुरुष गोविन्दका मैं भजन करता हूँ।

यह विचार करनेकी बात है कि ब्रह्मके पूर्व 'परम' आदि विशेषण जोड़कर जो 'परम ब्रह्म' शब्द शास्त्रोंमें दृष्टिगोचर होता है, वह स्वयं भगवान् व्रजेन्द्रनन्दनके लिए ही प्रयुक्त हुआ है। इसलिए ब्रह्मकी अपेक्षा परम ब्रह्म अर्थात् स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ तत्त्व हैं। इस प्रकार सर्वशक्तिमान अखिलरसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण अपने अखिल परिकर, जीव और जगत् सबको साथ लेकर ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। वेदोंमें भगवान्‌की शक्तिका वर्णन है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।

(श्वे॰ उ॰)

तथा,

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा।
अविद्या कर्मसंज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

(विष्णुपुराण)

वेदान्तसूत्र भी इस तथ्यकी पुष्टि करता है—

शक्तिशक्तिमतोरभेदः ।

अतः ये व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर ही अद्वयज्ञान परतत्त्वकी सीमा और साक्षात् विग्रहस्वरूप हैं।

इसी प्रकार किसी अन्य दिन श्रीचैतन्यचरितामृतके निम्नलिखित पयारकी व्याख्या हो रही थी—

जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर 'तटस्था शक्ति' भेदाभेद प्रकाश'॥

प्राध्यापक महोदय इस पयारकी भी शास्त्रविरुद्ध व्याख्या कर रहे थे। जीव ही ब्रह्म है। रज्जुमें सर्प अथवा सीपमें रजतकी भाँति ब्रह्ममें ही जीवकी प्रतीति हो रही है। वे ब्रह्मकी शक्ति, शक्तिका परिणाम जीव और जगत्को अस्वीकार कर रहे थे। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने बड़े सरल-सहज बोधगम्य भाषामें इस पयारकी व्याख्या की कि जीव स्वरूपतः भगवान्का नित्य दास है। उपनिषदोंके अनुसार जीव सर्वशक्तिमान परब्रह्मकी तटस्थाशक्तिका परिणाम है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

इसके लिए दो प्रादेशिक उदाहरण दिये गये हैं, क्योंकि इस भौतिक जगत्में चिन्मय वस्तुओंका सम्पूर्ण रूपसे उदाहरणका स्थल नहीं मिलता। ये दो उपमाएँ हैं—सूर्य और उसकी किरणकणों तथा ज्वलन्त अग्नि और उसकी चिनगारियाँ।

यदि श्रीकृष्णको चित्-सूर्य माना जाये, तो सूर्यकी किरणोंमें चमकनेवाले परमाणु जीवकी उपमाके स्थल हैं। श्रीकृष्ण पूर्ण चित्-तत्त्व हैं। जीव अणु चित् है। भगवान् माया आदि शक्तियोंके प्रभु हैं, जीव

मायाके वशीभूत होने योग्य है। भगवान् कर्त्ता, भोक्ता, अहंता आदि निखिल अप्राकृत गुणोंके आधार हैं। किन्तु जीवोंमें ये भाव अणु रूपमें हैं। ऐसा होनेपर भी यदि जीवका स्वाभाविक सम्बन्ध श्रीकृष्णसे होता है, तो उसका धर्म भी कृष्णसे सम्बन्धित होनेके कारण पूर्ण होता है। इसलिए जीवोंमें भी कर्त्तापन, भोक्तापन आदि भाव नित्य स्वाभाविक हैं। भगवत्-विस्मृतिके कारण उसका यह शुद्ध स्वरूप मायाकृत लिङ्ग और स्थूल शरीरसे आच्छादित हो जाता है। शुद्ध पारमार्थिक गुरु या भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे जीव भक्तियोगका अवलम्बनकर पुनः स्व-स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो जाता है। दूसरा उदाहरण ज्वलन्त अग्नि और उसकी चिनगारियोंसे है। जैसे ज्वलन्त अग्निसे अगणित चिनगारियाँ निकलती हैं, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्णकी तटस्थाशक्तिसे अगणित अणु चैतन्य जीव प्रकटित होते हैं। जीवशक्तिको तटस्थाशक्ति कहते हैं। जीवसमूह स्वरूपतः चेतन होनेपर भी अणु या क्षुद्र होनेके कारण मायाशक्तिके द्वारा आच्छादित होने योग्य होते हैं। ये वैकुण्ठजगत् और मायाजगत्‌के बीच तटके दोनों ओर विचरण करने योग्य होते हैं। चित्-शक्तिका बल पाकर वैकुण्ठमें भगवत्-सेवा करते हैं अथवा भगवत्-विमुख होकर मायिक संसारमें भ्रमण करते हैं। यही इस पयारका निगूढ़ तात्पर्य है। इस प्रकार इनकी भक्तिमयी व्याख्या सुनकर सभी आश्चर्यचकित हो गये।

एक दिन श्रीचैतन्यचरितामृतके पयारोंपर विचार करते-करते ये उसमें डूब गये। यह मनुष्य जन्म परम दुर्लभ है। मनुष्य योनिके अतिरिक्त पशु-पक्षी या वृक्ष आदिकी योनियोंमें भगवत्-तत्त्वकी उपलब्धि नहीं हो सकती। सौभाग्यवश भगवत्कृपासे यह मनुष्य शरीर अभी मिला है, किन्तु हठात् कब मृत्यु हो जायेगी, इसकी कोई निश्चयता नहीं है। मृत्युके पहले ही भक्तियोगका अवलम्बनकर जीवनको कृतार्थ कर लेना उचित है। इसलिए अब निरीश्वर शिक्षा ग्रहण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। परम कृपालु, तत्त्वदर्शी अपने श्रीगुरुदेव प्रभुपादके चरणोंमें ऐकान्तिक रूपसे आश्रय ग्रहणकर हरिभजन करना ही परम कर्त्तव्य है। ऐसा सोचकर कॉलेजके फाइनल परीक्षाका शुल्क देकर

भी परीक्षा नहीं दी। स्नेहमयी जननीका स्नेहपाश दूरकर, जमींदारी एवं गृह आदि समस्त प्रकारकी ममताका सम्पूर्ण त्यागकर १९१९ ई० में श्रीगुरुके चरणोंमें उपस्थित हुए।

इनके गृहत्याग करनेपर स्नेहमयी माताने रोते-रोते कहा था—"मैं जानती थी कि जोनाको घरमें नहीं रखा जा सकता। उसके जीवनकी आश्चर्यजनक घटनाओंको देखकर हृदय भयसे काँप उठता था। वह साधारण बालक नहीं था। जोनाका अदम्य साहस, सत्यनिष्ठा एवं परोपकारिता देखकर उसके भविष्य जीवनकी सहज ही कल्पना की जा सकती थी। मैं अपने सभी पुत्रोंमें उसे सर्वाधिक प्यार करती थी। मैं उसे कितना प्यार करती थी, इसे कोई नहीं समझ सकता। उसके अलौकिक आचार-व्यवहार, सङ्गी-साथी आदि देखकर मैं सब समय भयभीत रहती थी कि संसारको त्यागकर यह संन्यासी न बन जाये। उसने जो कुछ किया, ठीक ही किया। किन्तु उसे देखे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती।" ऐसा कहते-कहते वे पछाड़ खाकर गिर जातीं।

दीक्षा एवं गुरु-मन्त्रकी प्राप्ति

माताकी ममता एवं घर-द्वार सबका मोह त्यागकर ये श्रीधाम मायापुरमें श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुए। श्रील प्रभुपाद इनका हरिभजनका दृढ़ सङ्कल्प देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उस समय श्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमाका विराट आयोजन चल रहा था। श्रील प्रभुपादने अपने इस प्रिय सेवकको भी श्रीधाम परिक्रमाकी नाना प्रकारकी सेवाओंमें नियुक्त किया।

नवद्वीपका तात्पर्य नौ द्वीपोंसे है। भगवती भागीरथी श्रीमन्महाप्रभुके इस धाममें टेढ़ी-मेढ़ी होकर इस प्रकार प्रवाहित होती हैं, मानो उसे छोड़कर आगे जाना ही नहीं चाहतीं। उनकी इसी टेढ़ी-मेढ़ी चालके कारण यह धाम नौ भागोंमें विभक्त हो गया है। इनमेंसे अन्तर्द्वीप मायापुर इन नौ द्वीपोंके मध्यमें पतितपावनी गङ्गाके पूर्व तटपर स्थित है। यहींपर व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण श्रीमती राधिकाके अन्तर्निहित भाव एवं अङ्ग-कान्तिको अङ्गीकारकर शचीनन्दन गौरहरिके स्वरूपमें प्रकट हुए थे। २४ वर्षकी अवस्था तक यहींपर शैशव और किशोर अवस्थाकी नाना

प्रकारकी अलौकिक लीलाएँ की थीं। इसी श्रीधाम मायापुरको मध्यमें रखकर गङ्गाके पूर्वमें सीमन्तद्वीप, गोद्रुमद्वीप, मध्यद्वीप और पश्चिमकी ओर कोलद्वीप, ऋतुद्वीप, जह्नुद्वीप, मोदद्रुमद्वीप एवं रुद्रद्वीप ये आठों द्वीप अवस्थित हैं। इस समय गङ्गाके प्रवाहके कारण श्रीरुद्रद्वीपका कुछ अंश पश्चिममें और कुछ अंश पूर्वमें अवस्थित है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीबलदेवाभिन्न श्रीनित्यानन्द प्रभुने श्रील जीव गोस्वामीको इन नौ द्वीपोंकी परिक्रमा करायी थी। तत्पश्चात् ईशान ठाकुरने श्रीनिवास आचार्यको श्रीधामकी परिक्रमा करायी थी। तभीसे गौरसुन्दरके प्रिय भक्तगण बड़ी श्रद्धाके साथ धाम परिक्रमा करते चले आ रहे हैं। श्रीनरहरि सरकार ठाकुरने भक्तिरत्नाकरमें इसका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। कुछ कारणोंसे गौरधामकी परिक्रमा लुप्त हो गयी। श्रीगौरजन्मस्थान मायापुरधाम भी मुसलमानोंके राजत्वमें मायाके प्रभावसे आच्छादित हो गया। मुसलमानोंने इस मायापुरका नाम बदलकर मियांपुर कर दिया तथा धामकी सारी स्मृतियाँ नष्ट कर दीं। सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने पुनः इस धामको प्रकट किया। उन्होंने नवद्वीपधाम परिक्रमा और नवद्वीप-भाव-तरङ्ग नामक पद्यात्मक ग्रन्थोंकी रचना की। यही नहीं, उन्होंने मायापुरकी जमींदारीको खरीदकर मायापुरमें श्रीमन्महाप्रभुके जन्मस्थानपर फूस-निर्मित एक छोटे-से मन्दिरमें गौर-विष्णुप्रिया, शची-जगन्नाथ-निमाई एवं पञ्चतत्त्वकी प्रतिष्ठा की। वहाँका सारा दायित्व जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीको सौंप दिया। तभीसे श्रील ठाकुर भक्तिविनोदके आनुगत्यमें श्रील प्रभुपादने धाम परिक्रमाका पुनः आरम्भ किया और तबसे प्रतिवर्ष क्रमशः बड़े समारोहके साथ श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा होने लगी।

इसी वर्ष परिक्रमा सम्पन्न होनेपर श्रीगौरपूर्णिमाके दिन सन्ध्याके समय योगपीठमें श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने विनोदविहारीको दीक्षा दी। दीक्षाका अनुष्ठान समाप्त होनेपर विनोदविहारीने श्रीगुरुचरणोंमें उपस्थित होकर बड़ी नम्रतासे गुरु-मन्त्र देनेके लिए प्रार्थना की। तब तक श्रील प्रभुपाद किसीको गुरुमन्त्र नहीं प्रदान करते थे। विनोदविहारीकी गुरुमन्त्रके लिए प्रार्थना सुनकर श्रील प्रभुपाद चुप होकर कुछ सोचने

श्रीविनोदविहारीके गुरुदेव श्रील प्रभुपाद

लगे। उन्हें चुप देखकर ब्रह्मचारीजीने प्रबल उत्कण्ठासे पुनः उनके चरणोंमें निवेदन किया—"क्या गुरुमन्त्रकी प्राप्ति और गुरुसेवाकी शिक्षाके लिए किसी दूसरे गुरुको ग्रहण करनेकी आवश्यकता होती है?" यह सुनकर प्रभुपाद मुस्कुराने लगे और बड़े स्नेहसे गुरुमन्त्र प्रदान किया और तभीसे श्रील प्रभुपादने दूसरोंको भी गुरुमन्त्र देना आरम्भ किया।

श्रील प्रभुपादका एक अलौकिक नियम यह था कि जब कोई शिष्य अथवा कोई भी व्यक्ति उन्हें प्रणाम करता, तो वे भी हाथ जोड़कर 'दासोऽस्मि' कहकर प्रतिनमस्कार करते। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी

गुरुदेवका ऐसा व्यवहार देखकर सब समय छिपकर ही उन्हें प्रणाम करते थे। श्रील प्रभुपादका एक और भी अलौकिक व्यवहार यह था कि वे शिष्यों या दूसरोंको सर्वदा आदरसूचक 'आप' द्वारा सम्बोधन करते थे। किन्तु श्रीविनोदविहारीकी अन्तरङ्ग सेवासे सन्तुष्ट होकर इन्हें 'तू', 'तुई' आदि प्रिय शब्दोंसे सम्बोधन करते। प्रभुपादके शिष्योंमें ऐसा सौभाग्य दो-एक को ही प्राप्त था।

आदर्श मठजीवन

अब ये गुरुगृहमें रहकर अपने साधन-भजन, भक्तिग्रन्थोंके पठन-पाठन तथा मठके सेवा-कार्योंमें संलग्न रहने लगे। शिक्षित, सम्भ्रान्त एवं उच्च कुलका होनेपर भी ये सम्पूर्णतः निरभिमान थे। श्रील रघुनाथ दास जैसा कठोर वैराग्य इनके जीवनमें परिलक्षित होता है। हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए मठके छोटे-छोटे कार्योंको भी बड़े उत्साहसे करते थे। भक्तिसाधनमें कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टाओंका नियोग करना तथा कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल भोग-चेष्टाओंका परित्याग करना अत्यन्त आवश्यक है। ये दोनों ही विचार इनके जीवनमें पूर्णरूपेण दृष्टिगोचर होता है।

श्रीचैतन्य मठके प्रारम्भिक दिनोंमें अर्थाभावके कारण मठवासियोंको बड़े कष्टसे जीवन-यापनकर साधन-भजन करना पड़ता था। ये उस समय श्रीचैतन्य मठके मैनेजर थे। एक दिन मठमें नैवेद्य प्रस्तुत करनेके लिए केवल २०० ग्राम चावल था। मठमें चार ब्रह्मचारी थे। उतना ही चावल और सहिजनके पत्तेका साग ठाकुरजीको भोग लगाया गया। तत्पश्चात् ये चारों मठवासी प्रसाद-सेवा कर रहे थे। उसी समय श्रील प्रभुपाद वहाँ उपस्थित हुए और देखा कि ये लोग २०० ग्राम चावलका अन्न-प्रसाद अधिक परिमाणमें सागके साथ प्रसाद पा रहे हैं। मठमें बरतनके स्थलपर कोई पत्ता भी नहीं था। ऐसा देखकर प्रभुपादने बड़े दुःखी होकर पूछा—"क्या भण्डारमें चावल नहीं हैं?" श्रीगुरुदेव चिन्तित न हो जायें इसलिए इन्होंने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—"हमलोग वैराग्यकी शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।" किन्तु प्रभुपाद सब कुछ समझ गये।

श्रीविनोद विहारीजी प्रसाद पाते समय कभी यह नहीं कहते कि साग-सब्जी या दालमें नमक अधिक या कम है या प्रसादका स्वाद अच्छा या बुरा है। बड़ी श्रद्धा और प्रीतिके साथ महाप्रसादको भगवत्स्वरूप जानकर उसकी सेवा करते। प्रसाद पाते समय कभी भी इधर-उधर व्यर्थकी वार्त्तालाप या किसीकी निन्दा आदि किसी प्रकारकी चर्चा नहीं करते। इनका यह वैष्णवोचित आचार और व्यवहार देखकर सभी मठवासी इनके प्रति श्रद्धा करते थे।

श्रीगुरुदेवके आदेशसे पूर्वाश्रमकी जमींदारीकी रक्षा

विनोदविहारीके गृहत्यागके पश्चात् घरकी स्थिति डँवाडोल हो गयी। पुत्रविरहमें स्नेहमयी जननी अत्यन्त अस्वस्थ रहने लगीं। जमींदारीकी स्थिति भी बिगड़ गयी, क्योंकि बालक विनोद ही जमींदारीकी देखभाल

श्रीचैतन्य मठ

करता था। श्रील प्रभुपादने कृपाकर इन्हें कुछ दिनोंके लिए जमींदारीकी व्यवस्था ठीक करनेके लिए पूर्वाश्रम भेजा था। इनके घर आनेकी खबर चारों ओर फैल गयी। इन्होंने कुछ ही दिनोंमें बड़ी कुशलतासे प्रजाका विद्रोह शान्त कर दिया और पूर्वकी भाँति सभी लोग लगान नियमित रूपसे देने लगे। इस प्रकार जमींदारीकी सुव्यवस्थाकर माताका आदेश लेकर गुरुगृहमें पुनः लौट आये।

कुछ ही दिनोंमें इनके घरसे श्रील प्रभुपादके नामसे एक पत्र आया, जिसमें प्रभुपादसे इन्हें शीघ्र ही पूर्वाश्रम भेज देनेकी प्रार्थना की गयी थी। पुत्रविरहसे कातर माँ अन्तिम समयमें इनका दर्शन करना चाहती थीं। श्रील प्रभुपादने इन्हें बुलाकर घर जाकर अपनी माँको देख आनेका

श्रीप्रभुपादकी भजनकुटीके समीप कटहल वृक्ष जहाँ श्रीविनोदविहारी बैठकर प्रजा-पालन और शासन-कार्य करते थे

आदेश दिया। श्रील प्रभुपादका आदेश सुनकर ये अपनी भजनकुटीमें लौट आये और दिनभर बाहर नहीं निकले। दूसरे दिन श्रील प्रभुपादने किसी ब्रह्मचारीको बुलाकर पूछा—"विनोदविहारीको घर जानेके लिए कहा था, वह गया या नहीं? वह दीख नहीं रहा।" ब्रह्मचारीने उत्तर दिया—"विनोदविहारी अपनी भजनकुटीमें बैठा-बैठा हरिनाम कर रहा है। अभी तो वह गया नहीं।" श्रील प्रभुपादने विनोदविहारीको अपने पास बुलाया और पूछा—"मैंने तुम्हें घर जानेको कहा था, तुम घर नहीं गये?" इन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो! मैं घर नहीं गया।" "क्यों नहीं गया?"—प्रभुपादने पूछा। इन्होंने विनीत स्वरसे उत्तर दिया—"मैं इसलिए नहीं गया कि मेरी माताजी मुझे बहुत स्नेह करती थीं। यदि वह मरते समय मुझे यह आदेश दें कि बेटा हमारा यह अन्तिम आदेश है कि तुम घर लौटकर घरकी सारी व्यवस्था सँभालो, तो मैं उसके अन्तिम आदेशका उल्लंघन कैसे कर सकूँगा? ऐसी दशामें मेरा मनुष्य जन्म निष्फल हो जायेगा। मेरी गुरुसेवा, हरिकथा-श्रवण और साधन-भजन सबकुछ चौपट हो जायेगा। आपने कहा है कि मनुष्य जीवन बहुत ही दुर्लभ है। हरिभजन ही जीवनका एकमात्र चरम कर्त्तव्य है। यह कर्त्तव्य केवल मनुष्य जीवनमें ही सम्भव है। किसी मनुष्य जन्ममें आपके जैसा सद्गुरु मिलना अत्यन्त दुर्लभ है—

सकल जन्मे माता-पिता सबे पाय।
कृष्ण गुरु नाहि मिले, भजह हियाय॥

आपने यह भी कहा है कि गुरु एवं भगवान् मुकुन्दकी सेवामें अपनेको अर्पित करनेवाले व्यक्तिके ऊपर माता-पिता, पितर, देवता आदि किसीका ऋण नहीं होता। वह सब प्रकारके ऋणोंसे मुक्त होता है।" इनकी ऐसी बातोंको सुनकर श्रील प्रभुपादकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्होंने इस विषयमें कुछ भी नहीं कहा। मठवासी ब्रह्मचारीगण श्रीविनोदविहारीकी श्रीगुरुदेव और भजनके प्रति ऐसी निष्ठा देखकर विस्मित हो गये।

अतिथि-सेवा

श्रीचैतन्य मठकी स्थापनासे लेकर अब तक यहाँके मठवासी बड़ी कठिनाईसे जीवनका निर्वाह करते हुए गुरुसेवा, भगवत्सेवा एवं मठकी अन्यान्य सेवाओंको करते थे। केवल साक-सब्जी आदिके द्वारा भी कभी-कभी जीवन धारण करना पड़ता था। भूमिपर शयन, पत्तेमें प्रसादसेवन आदि साधारण बातें थीं। पत्तेके अभावमें कभी-कभी सीमेंटके फर्शपर ही श्रद्धापूर्वक प्रसादसेवन करते थे। किन्तु मठवासी इस जीवनमें भी बड़े प्रसन्न होकर भजन और सेवामें तत्पर रहते थे।

इसी बीच एक दिन दोपहरके समय मायापुर धामका दर्शन करने बाहरसे दो अतिथि आये। ये दोनों ही रेलवेके उच्चपदस्थ कर्मचारी थे। एकका नाम अतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय और दूसरेका नाम अतुलकृष्ण दत्त था। मठवासी प्रसादसेवन कर चुके थे। जेठकी दुपहरी, गर्मी और भूख-प्याससे अतिथियोंका मुख सूखा हुआ था। मठके व्यवस्थापक विनोदविहारी ब्रह्मचारी एक कटहल वृक्षके नीचे बैठकर वहाँकी जमींदारीकी व्यवस्था देख-सुन रहे थे। अतिथियोंके सूखे मुखको देखकर उनकी अवस्था समझ ली। इन्होंने दोनोंको पास ही कुण्डमें स्नान करने भेज दिया। जब तक वे स्नानकर लौटे, तब तक विभिन्न प्रकारके व्यञ्जनोंके साथ गरम-गरम स्वादिष्ट महाप्रसाद प्रस्तुत था। उन दोनोंने श्रद्धा और रुचिपूर्वक महाप्रसादका सेवन किया। मठवासियोंकी ऐसी सेवावृत्ति देखकर वे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने इनलोगोंको जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादका दर्शन कराया। उनकी वीर्यवती हरिकथा श्रवणकर दोनों बड़े ही प्रभावित हुए। उन्होंने प्रति माह मठसेवाके लिए पाँच रुपये मासिक चन्दा देनेकी इच्छा प्रकट की। उस समय ये दोनों लौट गये और प्रतिमाह पाँच रुपये मठसेवाके लिए भेजने लगे। इन लोगोंमें क्रमशः हरिकथा श्रवणकी इतनी लालसा उत्पन्न हुई कि बीच-बीचमें ये मठमें आने लगे। कुछ दिनोंके बाद अतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय सम्पूर्ण रूपसे घर-बार, स्त्री-पुत्र-परिवार सब कुछ त्यागकर प्रभुपादके पास चले आये। मठवासी लोग बड़े चिन्तित हुए, क्योंकि ये प्रतिमाह मठसेवाके लिए ५ रुपये

भेजा करते थे, जिससे मठका अधिकांश खर्च चल जाता था। अब वह खर्च कैसे चलेगा, यह सोचकर मठवासी लोग चिन्तित हो गये। किन्तु इन्होंने (अतुलचन्द्र) ने उन लोगोंको सान्त्वना दी कि आपलोग चिन्ता न करें। हरिनाम दीक्षाके पश्चात् इनका नाम अतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय भक्तिसारङ्ग हुआ। ये कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई आदि प्रधान-प्रधान नगरोंमें श्रद्धालु सेठोंके पास भिक्षाके लिए जाते। वे लोग इनकी हरिकथा सुनकर मठसेवाके लिए अपने ट्रकोंसे चावल, दाल, सब्जी आदि भेज देते। यही नहीं उन-उन नगरोंमें भक्तिप्रचारकेन्द्र मठों और आश्रमोंकी स्थापना हुई। ये साप्ताहिक 'गौड़ीय' पत्रिकाके सम्पादक भी थे। ये अन्त समय तक अस्मदीय गुरुपादपद्मके प्रति बड़ी श्रद्धा रखते तथा इन्हें अपना अभिन्न बन्धु मानते थे। श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् इन्होंने संन्यास ग्रहण किया और इनके संन्यासका नाम हुआ—श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज। इन्होंने अपने सतीर्थ, श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग परमप्रेष्ठ श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको 'पाषण्डगजैकसिंह' की उपाधिसे विभूषित किया था, क्योंकि अस्मदीय गुरुपादपद्मने भक्तिविरोधी मायावादी, स्मार्त, सहजिया आदि पाषण्डमतरूप हाथीका सिंहकी भाँति दलन किया था। जिन-जिन लोगोंने श्रील प्रभुपादके भक्तिविचारोंके विरुद्ध कुछ कहा, उनके विचारोंको शास्त्रके प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा ध्वस्त कर दिया। दूसरे, अतुलकृष्ण दत्तजी भी सरकारी नौकरी छोड़कर सपरिवार चैतन्य मठमें चले आये और श्रील प्रभुपादसे हरिनाम-दीक्षा लेकर ऐकान्तिक रूपमें भजन करने लगे। इन्होंने भक्तोंके गलेका हार 'श्रीगौड़ीय-कण्ठहार' नाम ग्रन्थ संकलित किया। इस ग्रन्थमें वेद, उपनिषद्, शास्त्र आदिसे प्रमाण संग्रहकर शुद्धभक्तिके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया गया है।

बृहत्-मृदङ्गकी सेवा

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने अप्रेल १९१३ ई० में कलकत्ताके कालीघाटस्थित सॉ-नगर लेनमें भागवत प्रेसकी स्थापनाकर वहींसे श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचक्रवर्ती ठाकुरकी टीकाके साथ गीता आदि

श्रीमद् अतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय दीक्षाके पश्चात्
श्रीमद् अप्राकृत भक्तिसारङ्ग

ग्रन्थोंका प्रकाशन आरम्भ किया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके नित्यलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् उस प्रेसको पहले मायापुरमें और बादमें उसे कृष्णनगरमें लाया गया। वहींसे सज्जन-तोषणी, साप्ताहिक गौड़ीय तथा अनेक भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। श्रील प्रभुपादने श्रीविनोदविहारीकी साहित्यिक एवं दार्शनिक अभिरुचि लक्ष्यकर इन्हें १९२२ ई॰ में उक्त प्रेसका व्यवस्थापक और पत्रिकाका मुद्रक एवं प्रकाशक नियुक्त किया। श्रीअतुलचन्द्र बन्दोपाध्याय भक्तिसारङ्ग तथा श्रीहरिपद विद्यारत्न, एम॰ए॰, बी॰एल॰ उस पत्रिकाके सम्पादक थे। इस पत्रिकामें सुसिद्धान्तपूर्ण प्रबन्ध आदि प्रकाशित होते थे। १९२२ ई॰ में श्रील प्रभुपादने श्रीचैतन्य मठकी विशेष सेवाके लिए अपने अन्तरङ्ग प्रिय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको श्रीधाम मायापुरमें बुला लिया तथा श्रीचैतन्य मठका मैनेजर नियुक्त कर दिया। तबसे वे चैतन्य मठकी विविध सेवाओं विशेषतः वहाँकी जमींदारीकी देख-भाल भी करने लगे। इनकी कुशल व्यवस्थाके कारण श्रीधाम मायापुर स्थित योगपीठ तथा आकर मठराज श्रीचैतन्य मठकी सब प्रकारसे उन्नति होने लगी। जमींदारीकी सुन्दर रूपसे व्यवस्था आरम्भ हुई।

श्रीधाम मायापुरकी सेवा

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी अप्रकटलीलाके पश्चात् मायापुरके बहुत-से स्थान भगवती गङ्गाके प्रवाहमें कटकर गङ्गाके पश्चिमी तटपर चले गये। पूर्वी तटपर बसा हुआ विशाल नदिया नगर (नवद्वीप) गङ्गाके पश्चिमी तटकी उच्च भूमिपर बस गया। पूर्वी तट एक प्रकारसे जनशून्य वीरान प्रदेशमें बदल गया। कालके प्रभावसे यवनोंके शासन कालमें हिन्दुओंके सारे पवित्र स्थान नष्ट कर दिये गये, मन्दिरोंको तोड़ दिया गया तथा तीर्थस्थलोंके नाम बदल दिये गये। श्रीरामजन्मस्थान अयोध्या तथा श्रीकृष्णजन्मस्थान मथुराका मन्दिर तोड़कर वहाँ मस्जिदें बना दी गयीं। उनका नाम क्रमशः फैजाबाद और मोमीनाबाद रख दिया गया। इसी प्रकार श्रीमन्महाप्रभुके जन्मस्थल मायापुरका नाम मुसलमानोंने मियाँपुर रख दिया तथा पासमें ही अवस्थित चन्द्रशेखरभवनके विशाल प्राङ्गणमें कब्रिस्तान बना लिया था।

श्रीगौड़ीयका एक अंक

श्रीविनोदविहारी जब श्रीचैतन्य मठके व्यवस्थापक हुए, तब उनसे यह अत्याचार सहन नहीं हुआ। वे बड़े निर्भीक और साहसी थे। उन्होंने रात-ही-रात कब्रिस्तानके सारे कब्रोंको निकलवाकर अन्यत्र स्थापित करवा दिया और उस खाली स्थानमें सुन्दर-सुन्दर बड़े-बड़े पेड़-पौधे लगवाकर सुन्दर उद्यान बनवा दिया। चारों तरफसे प्राचीर लगाकर उसकी रक्षाकी व्यवस्था भी कर दी। दूसरे दिन सवेरे सभी इस घटनाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। वहाँके मुसलमानोंने पुलिसमें रिपोर्ट एवं कचहरीमें मुकदमा दायर किया। पुलिसके बड़े-बड़े अफसरोंने तथा शासनके प्रधानोंने उस स्थलका निरीक्षण किया तथा कब्रिस्तानका कोई चिह्न नहीं देखा। वहाँ उन्होंने प्राचीन बगीचेको देखा, अतः वे लोग कुछ भी नहीं कर सके। इस घटनासे पूर्व ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीगौर-जन्मस्थली और जगन्नाथ मिश्र भवनका आविष्कारकर उसका नाम पुनः श्रीधाम मायापुर रख दिया था। इस प्रकार श्रीधाम मायापुरका नाम विश्वविख्यात हो गया। इस पुनीत कार्यके लिए श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीका नाम भारतीय इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखा रहेगा।

गुरुसेवाका आदर्श

जगद्‌गुरु श्रीसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' बड़े ही प्रतिभाशाली गौड़ीय वैष्णव आचार्य थे। इन्होंने थोड़े ही समयमें केवल भारत ही नहीं सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित और प्रचारित शुद्धभक्तिकी धारा प्रवाहित की। सारे विश्वमें भगवन्नामका प्रचार किया। उन्होंने निर्भीक शब्दोंमें यह प्रचार किया कि वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं, जो पूर्ण ब्रह्म कृष्णकी आराधना नहीं करता। वह जाति गोस्वामी, मन्दिरोंके पुजारी, गोस्वामी या भक्त नहीं जो तन-मन-वचनसे श्रीरूप आदि छह गोस्वामियोंकी भाँति भजन नहीं करते तथा शुद्धभक्तिके सिद्धान्तोंका पालन नहीं करते। वर्णव्यवस्था गुणोंके आधारपर प्रतिष्ठित है। शौक्र जन्म या जातिके आधारपर वर्णका निरूपण नहीं होना चाहिये। वेद, उपनिषद्, गीता आदिमें ऐसा ही कहा गया है।

(क) चातुवर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः (गीता)

(ख) यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् (भागवत) आदि इसके अकाट्य प्रमाण हैं। प्रभुपादके इस निर्भीक सत्य प्रचारसे जनता बड़ी आकृष्ट हुई। किन्तु आचार-विचारभ्रष्ट ब्राह्मणब्रुव तथा तथाकथित भ्रष्ट जातिगोस्वामीसमाज क्षुब्ध हो उठा। वे श्रीसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरको जानसे मार डालना चाहते थे, क्योंकि उनके विचारोंके सम्मुख ये लोग टिक नहीं पाते थे। बहुत-सी धर्म सभाओंमें ये लोग शास्त्रार्थमें पराजित होने लगे।

इसी समय १९२५ ई॰ में श्रीगौरजन्मोत्सवके उपलक्ष्यमें पूर्व वर्षोंकी भाँति श्रीनवद्वीपधामकी सोलह क्रोसकी परिक्रमा आरम्भ हुई। बड़े समारोहपूर्वक सङ्कीर्त्तनके साथ हजारों श्रद्धालु यात्री परिक्रमा कर रहे थे। साथमें हाथीकी पीठपर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारीके विग्रहके साथ श्रील प्रभुपाद भी उस यात्रामें पैदल चल रहे थे। जब परिक्रमा संघ वर्त्तमान कुलियाद्वीपके अन्तर्गत प्रौढ़ामायाके मन्दिरके सामने श्रील प्रभुपादके मुखसे धाम-माहात्म्य श्रवणकर रहा था, उसी समय कुलिया नवद्वीपके तथाकथित ब्राह्मण और जातिगोस्वामीके लोगोंने ईंट, पत्थर, गरम पानी, सोडावाटरकी बोतलों आदिसे आक्रमण कर दिया। उनके अत्याचारसे चारों ओर हाहाकार मच गया। यात्रीगण प्राण बचानेके लिए इधर-उधर भागने लगे। किसीको भी एक दूसरेकी सुध नहीं थी। इसी समय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने प्रभुपादकी रक्षा करते हुए उन्हें पासके ही एक भक्तके घरमें पहुँचा दिया। उपद्रवी भीड़ श्रील प्रभुपादको मारनेके लिए ढूँढ़ रही थी। श्रीविनोदविहारीने तत्क्षणात् श्रील प्रभुपादके संन्यासी वेष और दण्डको स्वयं ग्रहण कर लिया तथा अपने सफेद वस्त्र श्रील प्रभुपादको पहना दिये और किसी प्रकार श्रील प्रभुपादको इस साधारण वेषमें ही श्रीधाम मायापुर भेज दिया। उपद्रवी भीड़ उन्हें पहचान नहीं सकी। इतनेमें वहाँ पुलिस भी आ गयी और बादमें संन्यासी वेष धारण किये हुए श्रीविनोदविहारी किसी प्रकार सुरक्षित मायापुर चले गये। भ्रष्ट पुलिसने इस घटनाको दबा दिया, किन्तु उस समयके प्रसिद्ध आनन्द बाजार पत्रिकामें इस अत्याचारका संवाद प्रकाशित हुआ था, जिसे पढ़-सुनकर शिक्षित-सम्भ्रान्त लोग दङ्ग रह गये थे।

सभी वैष्णव लोग श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीकी अपूर्व गुरुनिष्ठासे बड़े विस्मित हुए। सब जगह इस विषयकी चर्चा होने लगी। इसी प्रकार जब कभी श्रील प्रभुपादके प्रति कोई अन्याय या अत्याचार हुआ अथवा उनके विचारोंका किसीने विरोध किया, तो श्रीविनोदविहारीने निर्भीक होकर सर्वदा इसका प्रतिकार किया।

इस घटनासे श्रीरामानुजाचार्यके प्रिय शिष्य श्रीकुरेशकी गुरुसेवाका बरबस स्मरण हो आता है। दक्षिण भारतमें शैव सम्प्रदायका बोलबाला था। श्रीरामानुजाचार्यने अपने शास्त्रीय विचारोंके आधारपर उनके कुसिद्धान्तोंका खण्डन करना आरम्भ किया। इससे कुसंस्कारग्रस्त शैव लोग क्षुब्ध हो उठे। वहाँके शैव राजाने श्रीरामानुजाचार्यको शास्त्रार्थके लिए श्रीरङ्गममें निमन्त्रण भेजा। दुष्ट राजाने इसी बहाने श्रीरामानुजाचार्यको बुलाकर जानसे मार डालनेका षडयन्त्र किया था। गुरुनिष्ठ कुरेशको उनलोगोंके षडयन्त्रकी भनक लग गयी। अपने सफेद कपड़े गुरुजीको पहनाकर वे स्वयं श्रीरामानुजाचार्यके कषाय वस्त्र और त्रिदण्डको धारणकर राजाके सैनिकोंके साथ शैव नगरीमें पहुँचे। राजा और लोगोंने कुरेशको रामानुजाचार्य ही समझा। एक ओर सैकड़ों शैव विद्वान और दूसरी ओर अकेले कुरेश। तुमुल शास्त्रार्थ हुआ। शैव लोग हार गये। फिर भी पूर्व परिकल्पनाके अनुसार राजाने कुरेशकी पराजयकी घोषणा की तथा उनकी दोनों आखें निकलवाकर उन्हें छोड़ दिया। कुरेशके मुखसे 'आह' तक नहीं निकली। ये घूमते-घामते उस राज्यसे बाहर बहुत दूर एक गाँवमें पहुँचे। सौभाग्यवश श्रीरामानुजाचार्य भी अपने शिष्योंके साथ वहाँ उपस्थित थे। गुरु और शिष्यका वहीं अपूर्व मिलन हुआ। गुरुसेवक अथवा शिष्य कुरेश गुरुके चरणोंमें लोट गये। श्रीगुरुकृपासे उनकी दोनों आखें पूर्ववत् हो गयीं। कुरेश गुरुकी गोदमें प्रेमसे रो रहे थे। गुरु अपने उत्तरीयवस्त्रसे उनके आँसुओंको पोंछ रहे थे तथा दूसरे हाथसे उसे अभयका आशीर्वाद दे रहे थे। यही कुरेश बादमें श्रीरामानुजके प्रसिद्ध शिष्य कुरेशाचार्य हुए। ये श्रुतिधर एवं श्रीरामानुजाचार्यके भक्तिसिद्धान्तमें पारङ्गत आचार्य हुए हैं।

इसी प्रकार गुरुसेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भी बादमें श्रील प्रभुपादके शिष्योंमें अन्यतम ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव

गोस्वामी महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुए और सारे विश्वमें उनके मनोऽभीष्ट गौरवाणीका प्रचार किया। श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीकी ऐसी गुरुसेवा सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अंकित रहेगी। कुछ वैष्णवोंका यह भी कहना है कि इसी बहाने श्रील प्रभुपादने अपने प्रिय शिष्यको त्रिदण्ड संन्यासवेश भी प्रदान किया, जिसका अनुष्ठान परवर्ती कालमें कटवामें हुआ।

श्रीगौर-जन्मोत्सव, मार्च १९२८ में पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाका ३४ वाँ वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशनमें भी प्रभुपाद श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी सभापति थे। उसमें श्रीमठके विभिन्न कार्योंमें अथवा भक्तिप्रचार आदि कार्योंके लिए विशेष-विशेष व्यक्तियोंको धन्यवाद दिया गया। इसी अधिवेशनमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको श्रीमन्महाप्रभुकी विषय-सम्पत्ति संरक्षणके लिए, श्रीचैतन्य मठकी सर्वांगीण उन्नतिके लिए, अथक परिश्रम और प्रयत्नके लिए तथा श्रील प्रभुपादके मनोऽभीष्ट अन्तरङ्ग सेवाओंके लिए इन्हें धन्यवाद प्रदान किया गया।

श्रीचैतन्य मठके व्यवस्थापकके रूपमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके पास बड़े अच्छे नस्लके दो घोड़े थे। जमींदारीकी व्यवस्थाके लिए कहीं जानेपर ये उन घोड़ोंका व्यवहार करते थे। उस समय मठकी सेवाके लिए ये बड़े ठाट-बाटसे रहते थे। वे अपने पारमार्थिक जीवनके साथ-साथ बहुत-से जनहितकर सामाजिक संस्थाओंसे भी जुड़े हुए थे। नदिया जिला बोर्डके सदस्य, Education and Finance Committee के सदस्य, कृष्णनगर Local Board, Union Board तथा Bench Court के सदस्य पदपर भी ये अधिष्ठित हुए थे। Thakur Bhaktivinode Institute नामक उच्च विद्यालयके भी सभापति पदपर अलंकृत हुए थे। Divisional Commissioner, जिलाधीश जैसे उच्च पदस्थ व्यक्ति भी इनसे विविध विषयोंपर परामर्श लेते थे। छोटे-बड़े सभी लोग इनका विशेष सम्मान करते थे।

बागबाजार गौड़ीय मठकी स्थापनामें विशेष योगदान

श्रील प्रभुपाद सरस्वती ठाकुरने २६ सितम्बर, १९२८ को कलकत्ता महानगरीमें बागबाजार गौड़ीय मठ एवं श्रीमन्दिरकी भित्तिकी स्थापना की। कलकत्तेके महादाता श्रीजगद्बन्धुने इसके लिए भूमि दान की थी। बादमें सेवकखण्ड एवं श्रीमन्दिर, नाट्य मन्दिर आदिका सारा खर्च इन्होंने ही वहन किया था। श्रीजगद्बन्धुजी पूर्वबङ्गालके वरिशाल जिलेके वानरीपाड़ा ग्रामके निवासी थे। बादमें ये कलकत्ता आकर व्यवसाय करने लगे। प्रचुर अर्थ इन्होंने कमाया। ये बागबाजारमें गङ्गाके तटपर अपना राजभवन जैसा सुन्दर घर बनाकर रहते थे। एक समय श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीजी मुकुन्दविनोद बाबाजी (प्रभुपादके शिष्य) महाराजके साथ गुरुसेवाके लिए भिक्षा एवं प्रचार करते हुए श्रीजगद्बन्धुजीके घर पहुँचे। प्रवेश द्वारपर 'वरिशाल निवासी श्रीजगद्बन्धुदासका भवन' लिखा हुआ था। विनोदविहारीजीको हठात् स्मरण हो आया कि ये तो हमारे वंशकी प्रजा थे। तत्क्षणात् दरवानके द्वारा जगद्बन्धुजीको संवाद भिजवाया कि वानरीपाड़ाके विनोदविहारी आपसे मिलना चाहते हैं। संवाद पाते ही वे खाली पैर, जिस अवस्थामें थे उसी अवस्थामें दौड़े आये। झुककर ब्रह्मचारीजीको अपना जमींदार समझकर प्रणाम किया। दोनों अतिथियोंको सम्मानके साथ उच्च आसनपर बैठाकर उनसे भगवत्कथा सुनने लगे। भगवत्कथा सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गयी जब उन्होंने सुना कि अब विनोदविहारी घर-बार छोड़कर जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी विभिन्न प्रकारकी सेवाओंमें नियुक्त हैं। उन्होंने मठकी किसी प्रकारसे सेवा करनेकी इच्छा प्रकट की। पहले तो उन्होंने श्रीगौड़ीय मठके लिए भूमिदान करनेका सङ्कल्प लिया। किन्तु श्रीविनोदविहारीकी हरिकथा श्रवणकर उन्होंने कहा था—"थाल एक व्यक्ति देगा और दूसरा कोई व्यक्ति उसमें भोजन परोसेगा। ऐसा नहीं हो सकता। मठ और मन्दिर बनानेका सारा भार मैं ही वहन करूँगा।" और ऐसा ही किया। १९३० ई० में नवनिर्मित विशाल श्रीमन्दिरमें श्रीश्रीगौर-विनोदानन्दजीकी बड़े धूम-धाम एवं सङ्कीर्त्तनके मध्य

श्रीगौड़ीय मठ बागबााजार, कलकत्ता

प्रतिष्ठा हुई। इस प्रकार श्रीगौड़ीय मठ बागबाजारकी प्रतिष्ठाकी जड़में भी परम निष्किञ्चन, गुरुके चरणोंमें सम्पूर्ण रूपसे समर्पित श्रीविनोदविहारीकी ही प्रचेष्टा थी।

परमानन्द शब्दकी वैदान्तिक व्याख्या

श्रीमायापुर योगपीठमें प्रतिवर्ष श्रीगौरजन्मोत्सवके अवसरपर श्रीधामप्रचारिणी सभाका अधिवेशन होता था। उस अवसरपर श्रील प्रभुपाद मठवासियोंको एक-दूसरेका गुणगान करनेका निर्देश देते थे। १९२९ ई॰ में श्रील प्रभुपादने श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी 'विद्यारत्न' का गुणगान करनेका निर्देश दिया। श्रीपरमानन्द ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपादके एकनिष्ठ अन्तरङ्ग सेवक थे। श्रीविनोदविहारीजीसे इनका अन्तरङ्ग सख्य भाव था। दोनों ही साथ-साथ उठते-बैठते, खाते-पीते और सोते तथा प्रभुपादकी सेवा करते थे। विनोदविहारी ब्रह्मचारीने खड़े होकर सर्वप्रथम गुरुवन्दना करते हुए कहा—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द-माधवम्॥

अर्थात् जिनकी कृपा गूँगोंको वाचाल एवं पङ्गुको पर्वत लंघन करा देती है, उन्हीं परमानन्दस्वरूप माधवकी मैं वन्दना करता हूँ।

इस वन्दनाके पश्चात् परमानन्द प्रभुके नाना प्रकारके सद्गुणोंका वर्णन करना आरम्भ किया। 'श्रीपरमानन्द प्रभु' की ऐकान्तिक गुरुसेवा गुरुसेवकोंके लिए आदर्श है। श्रील प्रभुपादके लिए रसोई, उनके वस्त्रोंका संस्कार, कहीं आने-जानेकी व्यवस्था, शयनके समय पादसंवाहन आदि कार्योंको छायाकी भाँति साथ रहकर करते हैं। किसी समय कार्यवश बाहर जानेपर आधी रातके समय भी जब लौटते हैं, उस समय श्रील प्रभुपादके विश्राम करते रहनेपर भी 'प्रभुपाद! प्रभुपाद!' दरवाजा खोलिये कहकर थपथपाते हैं। उस समय प्रभुपाद स्वयं ही इनके लिए अपनी भजनकुटीका द्वार खोल देते हैं। ये मठ-मन्दिरके निर्माण, मुद्रणयन्त्र एवं मठ परिचालनाके सभी कार्योंमें विशेष कुशल हैं। ये प्रभुपादकी सेवाके बिना जीवित नहीं रह सकते। ऐसे एकान्त गुरुनिष्ठ श्रीपरमानन्द प्रभुकी कृपाके बिना श्रीगुरु एवं गौराङ्गकी सेवा सम्भव नहीं है। ऐसे परमानन्द प्रभु जययुक्त हों—

प्रसीद परमानन्द! प्रसीद परमेश्वर!
आधि-व्याधि-भुजङ्गेन दष्टं मामुद्धर प्रभो॥
(गोपालतापनी)

वेदान्तशास्त्रमें भी परमानन्दके अनुशीलनकी बात कही गयी है—आनन्दमयोऽभ्यासात् (ब्र॰ सू॰ १/१/१२)।

परमानन्दके अभ्यासका गूढ़ तात्पर्य परमानन्दस्वरूप व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका तन-मन-वचनसे सम्पूर्ण रूपसे अनुशीलन करनेसे है। इस परमानन्दके अनुशीलनके लिए ही श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्ट संस्थापक श्रील रूप गोस्वामीने 'आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा' कहा है अर्थात् कृष्णकी प्रीतिके लिए तन-मन-वचन एवं भावनाकी अनुकूल एवं नैरन्तर्यमयी चेष्टाओंको उत्तमाभक्ति कहते हैं। परमानन्दके अनुकूल अनुशीलनके बिना—उत्तमाभक्तिके अनुशीलनके बिना परमानन्दकी प्राप्ति नहीं होगी। इसीलिए ब्रह्मसूत्रके उपसंहारमें 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्' कहा गया है। 'अनावृत्ति शब्दात्' में यहाँ 'शब्द' का तात्पर्य शब्दब्रह्मसे है। परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णका नाम ही अप्राकृत शब्दब्रह्म है—

नामश्चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥

अर्थात् परमानन्दस्वरूप कृष्णनाम सब प्रकारकी अप्राकृत कामनाओंको पूर्ण करनेवाला चिन्तामणिस्वरूप है। अप्राकृत रसके पूर्ण विग्रह, पूर्ण, मायातीत एवं नित्ययुक्त है, क्योंकि नाम और नामी अभिन्न हैं।

तैत्तिरीय उपनिषद्में और भी कहा गया है—वे परमानन्द परमतत्त्व रसस्वरूप हैं। उस रसस्वरूपको प्राप्तकर जीव परमानन्दका अनुभव करते हैं। यदि वे परमतत्त्व परमानन्दरसस्वरूप नहीं होते, तो कौन जीवित रहता? प्राणरक्षाकी चेष्टा कौन करता? अतएव परमानन्दस्वरूप रसमय ब्रह्म ही सबको आनन्द प्रदान करते हैं—

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति॥ (तैत्तिरीय २/७)

चतुर्वेद शिखामें भी इसका प्रतिपादन दृष्टिगोचर होता है—भगवान्‌का नाम (शब्दब्रह्म), स्वयं भगवान् एवं उनके सभी अवतार पूर्ण, अजर, अमृत तथा परमानन्दस्वरूप हैं। वे जीवोंकी भाँति बद्ध नहीं होते, न जीवोंकी भाँति वे जन्म ग्रहण करते हैं—

नैवेते जायन्ते नैतेषामज्ञानबन्धो न मुक्तिः सर्व एषह्येते पूर्णा अजरा अमृताः परमाः परमानन्द इति॥

ऐसे परमानन्द, रसस्वरूप शब्दब्रह्मके अनुशीलनसे ही—भगवन्नाम-सङ्कीर्त्तनसे ही सदाके लिए पुनरागमन बन्द हो जाता है। अनावृत्ति शब्दका अर्थ संसारमें पुनरागमनके निषेधसे है।

यहाँ यह पूर्वपक्ष हो सकता है कि परमानन्द तो केवल भाव पदार्थ है, उसका आकार या रूप कैसे सम्भव है? इसीलिए ब्रह्मसूत्रमें 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्' सूत्रकी अवतारणा की गयी है। परमपुरुष, परमतत्त्व या ब्रह्म न-रूपवत् अर्थात् रूपके समान नहीं, बल्कि वे स्वयं श्रीविग्रह ही हैं और उनका दर्शन भी सम्भव है। इसलिए अगले सूत्रमें कहते हैं—'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां' अर्थात् भलीभाँति आराधनाके द्वारा हृदयमें तथा प्रत्यक्ष रूपमें उनका अवश्य दर्शन होता है।

इस परमानन्द पुरुषके लिए ही श्रुतियोंमें तथा वेदान्तसूत्रमें 'आनन्दं ब्रह्म' कहा गया है।

आनन्द प्रीतिका पर्यायवाची शब्द है। जीवमात्र परमानन्दकी प्राप्तिके लिए चेष्टा करता है। मुमुक्षु व्यक्ति मोक्षको परमानन्द मानकर उसका अन्वेषण करते हैं। विषयी लोग विषय भोगोंको आनन्द समझकर उसके पीछे-पीछे ही दौड़ते फिरते हैं। भक्तजन भी कृष्णकी सेवाको परमानन्द समझकर उसके लिए प्रयत्न करते हैं। अतः सभी लोग परमानन्दका ही अन्वेषण कर रहे हैं। भगवद्भक्ति ही परमानन्दस्वरूप है। अतः भक्तिके द्वारा ही परमानन्दस्वरूप व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्राप्ति होती है।"

where is the opening quotationmark?

इनके इस भाषणको सुनकर उपस्थित श्रोतृमण्डली मुग्ध हो गयी। श्रील प्रभुपाद इनके वैदान्तिक विचारोंको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने सारे वेदान्त-सम्बन्धी ग्रन्थ श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको प्रदान करते हुए कहा—"तुम इन ग्रन्थोंका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करना। किसी औरमें वेदान्तके प्रति रुचि नहीं देखता। साधारण लोग वेदान्त कहनेसे निर्विशेषज्ञानको ही लक्ष्य करते हैं। किन्तु वेदान्त भक्तिग्रन्थ है, इसका प्रचार करना।" श्रीविनोदविहारीने त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् श्रील प्रभुपादके इस मनोऽभीष्टको भलीभाँति पूर्ण किया।

उन्होंने गौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाकर समितिके सदस्योंको (योग्य शिष्योंको) त्रिदण्डसंन्यास वेष प्रदानकर उन्हें 'भक्तिवेदान्त' उपाधिसे युक्त वामन, नारायण, त्रिविक्रम आदि नाम प्रदानकर सर्वत्र वेदान्तके प्रतिपाद्य विषय शुद्धभक्तिका प्रचार किया और कराया। यह उनके जीवनका अपूर्व प्रधान वैशिष्ट्य है।

श्रीविनोदबिहारी एवं ठाकुर भक्तिविनोद इंस्टीट्यूट

श्रील प्रभुपादने पराविद्याकी शिक्षाके लिए श्रीधाम मायापुरमें अप्रेल १९३१ ई॰ में Thakur Bhaktivinode Institute की स्थापना की। उक्त विद्यालयके Managing Committee के सभापति श्रील प्रभुपाद, प्रधानाध्यापक श्रीमद्भक्तिप्रदीपतीर्थ महाराज एवं बाकी सदस्योंमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भी व्यवस्थापक सदस्य मनोनीत हुए। इनकी व्यवस्थाके अनुसार उक्त विद्यालयके लिए रविवारके बदले पञ्चमी और एकादशीको अवकाशका दिन और शनिवारके बदले चतुर्थी और दशमीको अर्द्ध अवकाशका दिन घोषित किया गया। एकादशी शुद्धभक्तिकी जननी माधवतिथि कहलाती है। पञ्चमी तिथि शुद्धा सरस्वतीकी आविर्भाव तिथि (श्रील प्रभुपादकी भी) है। रविवारके दिन गिरिजाघरोंमें उपासनाके कारण विशेष छुट्टी दी जाती थी। इन्होंने अँग्रेजोंके द्वारा स्थापित नियमोंको बदलकर पूर्वोक्त नियमोंकी घोषणा की थी। इसके अतिरिक्त इन्होंने विशेष-विशेष वैष्णव आचार्योंके आविर्भाव और तिरोभावके दिनको भी अवकाशका दिन घोषित किया। इस विद्यालयमें धर्मशिक्षा अनिवार्य

श्रीभक्तिविनोद इंस्टीट्यूट

कर दी गयी। अन्य सभी विषयोंमें उत्तीर्ण होनेपर भी जो छात्र धर्मविषयमें अनुत्तीर्ण होंगे, उन्हें अगली कक्षामें प्रवेश नहीं मिलेगा। धर्मनीतिरहित निरीश्वर शिक्षाके द्वारा समाजका कल्याण कदापि सम्भव नहीं—ऐसी विवेचना कर ही इन्होंने उक्त विद्यालयमें इन विषयोंको लागू किया। इनके इस कार्यके लिए नवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके पक्षसे इन्हें विशेष धन्यवाद ज्ञापन किया गया।

कृतिरत्नकी उपाधि

श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके ३८वें वार्षिक अधिवेशन १९३२ ई॰ में उक्त सभाके सभापति श्रील सरस्वती प्रभुपादने श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके सेवाकार्योंसे इन्हें गौराशीर्वादस्वरूप भक्तिसूचक 'कृतिरत्न' की उपाधि प्रदान की। यह आशीर्वाद पत्र इस प्रकार है—

श्रीश्रीमायापुरचन्द्रो विजयतेतमाम्

श्रीश्रीनवद्वीपधामप्रचारिणीसभायाः

श्रीश्रीगौराशीर्वाद-पत्रम्

श्रीमहाप्रभुसेवार्थं श्रीधाम्निभूमिरक्षकः।
प्रजापालनदक्षो यः श्रीचैतन्य-मठाश्रितः॥

श्रीविनोदविहार्याख्य ब्रह्मचारिवराय च।
प्रभुपादान्तरङ्गाय सर्वसद्गुणशालिने॥

धामप्रचारिणी-संसत्सभ्यैस्तमै प्रदीयते।
'कृतिरत्न' इति ख्यातुमुपाधि-भूषणं मुदा॥

गङ्गापूर्वतटस्थ-श्रीनवद्वीपस्थले परे।
श्रीमायापुरधामस्थ-योगपीठमहत्तमे ॥

गुणेषु व सुशुभ्रांशु-शकाब्देऽस्मिन् शुभाश्रये।
फाल्गुणपूर्णिमायां श्रीगौराविर्भाव-वासरे॥

—(स्वाः) श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

सभापतिः

श्रीचैतन्य मठके आश्रित श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीजी—जिन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी सेवाके लिए श्रीधाम मायापुरकी भूमिका संरक्षण किया, जो प्रजापालनमें सब प्रकारसे निपुण हैं, जो श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग सेवक हैं तथा सब प्रकारके वैष्णवोचित सद्गुणोंसे सम्पन्न हैं, उन्हें श्रीधामप्रचारिणी सभाके सभ्यवृन्द द्वारा गङ्गाके पूर्वतटपर स्थित श्रीनवद्वीपके श्रीमायापुरधामके सर्वश्रेष्ठ योगपीठमें १८५३ शकाब्दकी श्रीगौराविर्भाव तिथि फाल्गुन पूर्णिमाके दिन शुभ लग्नमें आनन्दपूर्वक 'कृतिरत्न' उपाधिसे विभूषित किया गया।

मामला-मुकदमाके द्वारा भगवत्सेवा

एक समयकी बात है, कृष्णनगरमें एक धर्मसभा हुई। उस सभामें वकील, मुख्तार, वैरिस्टर तथा अवसर प्राप्त न्यायाधीश आदि बड़े-बड़े शिक्षित एवं सम्भ्रान्त लोग उपस्थित थे। उन लोगोंमेंसे बहुतोंने उस

सभामें विचारपूर्ण भाषण दिया। उनमेंसे किसी एकने अपने भाषणके प्रसङ्गमें बड़ी नम्रता एवं खेदके साथ कहा—"मैंने सारा जीवन मामला-मुकदमामें व्यर्थ ही गँवा दिया। हरिभजन नहीं करनेसे मेरा जन्म विफल हुआ। जिस हरिभक्तिके द्वारा मनुष्य जीवन सफल हो सकता है, उससे मैं बहुत दूर रहा। अब बुढ़ापेमें इन्द्रियाँ शिथिल हो रही हैं, मृत्यु भी कब आ जाय इसकी भी कोई निश्चयता नहीं है। अब कुछ समझमें नहीं आता।" इस प्रकार कहते हुए उन्होंने भगवद्भक्तिके लिए वैष्णव और भगवान्‌के चरणोंमें प्रार्थना की।

अन्तमें सभापति महोदयने श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' प्रभुको भी कुछ बोलनेके लिए अनुरोध किया। इन्होंने सरल-सहज, स्वाभाविक भावसे खड़े होकर बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें बोलना आरम्भ किया—"सभी शास्त्रोंका गूढ़ तात्पर्य भगवद्भक्तिसे है। भगवद्भक्तिमें भी व्रजके परिकरों द्वारा व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्रेममयी भक्ति सर्वोत्तम है। इसलिए वैष्णवाचार्य श्रीचक्रवर्त्ती ठाकुरने कहा है—व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ आराध्य हैं। श्रीवृन्दावनधाम इनकी एकमात्र लीलाभूमि होनेके कारण श्रीकृष्णकी भाँति ही आराध्य है। सब प्रकारकी आराधनाओंमें—उपासनाओंमें श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंकी आराधना ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीमद्भागवत सर्वश्रेष्ठ निर्मल प्रमाणस्वरूप है। श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यही शिक्षा है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

शास्त्रोंमें भी मामला-मुकदमाका प्रसङ्ग दृष्टिगोचर होता है। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि मामला-मुकदमा करना ही हरिभक्तिका श्रेष्ठ साधन है। यही नहीं मामला-मुकदमा ही हरिभक्ति है। जो लोग मामला-मुकदमा करना नहीं जानते, उनके लिए भगवद्भक्ति प्राप्त करना सुदूर पराहत है। हमलोग सर्वाराध्या श्रीमती राधिकाके पक्षवाले हैं। उनके साथ कृष्णका मिलन कराना ही हमारी विशेष सेवा है। किसी समय श्रीकृष्ण चन्द्रावलीसे

मिलनेके लिए उनके कुञ्जमें गये हुए थे। राधाकी सखियोंने कोई विशेष बहाना बनाकर श्रीकृष्णको श्रीचन्द्रावलीके कुञ्जसे निकालकर श्रीराधाकुण्डस्थित श्रीराधाजीके कुञ्जमें ले आयीं। वहाँ उन्होंने कुञ्जेश्वरी श्रीमती राधिकाके सामने ही यह लिखवा लिया कि मैं राधाजीका दास हूँ, राधाजीको छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा और उसपर उनका हस्ताक्षर करवा लिया। कुछ दिन बीतनेपर अपने स्वभावसे लाचार श्रीकृष्ण उस दलीलकी उपेक्षाकर पुनः चन्द्रावलीके कुञ्जमें चले गये। राधाकी सहेलियोंने श्रीकृष्णके विरुद्ध श्रीवृन्दावनेश्वरी राधिकाके पास इसके लिए मुकदमा किया। इस मुकदमेमें राधाजीकी सखियोंकी जीत हुई। इसके द्वारा कृष्णपर decree हुई और श्रीमती राधिकाकी अदालतमें उपस्थित नहीं होनेपर वारंटके द्वारा उनका श्रीमती राधिकाजीके साथ मधुर मिलन कराया।”

श्रीकृतिरत्न प्रभुके शास्त्रीय तत्त्व-सिद्धान्तपूर्ण भाषणको सुनकर वहाँ उपस्थित वकील, न्यायाधीश आदि सभी लोग बड़े विस्मित हुए। उस विचारपूर्ण भाषणको सुनकर सभीके हृदयमें गहरी छाप पड़ी। उन्होंने यह उपलब्धि की कि श्रीश्रीराधागोविन्दकी सेवा-प्राप्तिमें ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है, अन्यथा नहीं। उन्होंने यह भी समझा कि श्रीकृष्णभजनके लिए ऊँचे कुलमें जन्म, रूप, विद्या, धनकी आवश्यकता नहीं। प्राणिमात्र कृष्णभजनका अधिकारी है। अतएव हमें भी हरिभजन करना आवश्यक है।

आदर्श वैष्णव-जीवन

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके अपने पूर्वाश्रममें शिक्षित सम्भ्रान्त जमींदार होनेपर भी इन्हें अभिमान छू तक नहीं गया था। ये अपने मठ-जीवनमें भी बड़े सहिष्णु, उदार और मृदुभाषी थे। दीन दुःखियोंकी सब प्रकारसे सहायता करते। “भाल न खाइबे आर भाल न परिबे। व्रजे राधाकृष्ण सेवा मानसे करिबे॥”—यही इनके जीवनका व्रत और लक्ष्य था।

साथ ही कृष्णप्रीतिके लिए अखिल चेष्टापरायण होना तथा अपने लिए सभी प्रकारके भोगोंका त्याग करना ही इनकी साधना थी। ठाकुरजीका महाप्रसाद, जो कुछ परोस दिया जाता, बड़ी प्रीतिपूर्वक

उसे ग्रहण करते। उसमें नमकी कमी है अथवा यह चीज स्वादिष्ट नहीं हुई—ऐसा उन्होंने जीवनमें कभी नहीं कहा। कभी भी कोई स्वादिष्ट चीज ग्रहण करनेकी इनकी लालसा नहीं हुई। जिन दिनों ये चैतन्य मठके व्यवस्थापक थे, उन दिनों वहाँके ब्रह्मचारी लोग धनाभावके कारण बड़ी कठिनतासे साधन-भजन करते हुए जीवन व्यतीत करते थे। ऐसे जीवनमें वे लोग सब प्रकारसे सन्तुष्ट और परस्पर प्रेमपूर्वक रहते थे।

पूज्यपाद श्रीधर महाराजसे प्रथम मिलन

एक समय नवद्वीप परिक्रमाके पश्चात् मैं (श्रीभक्तिवेदान्त नारायण) कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीचैतन्य-सारस्वत गौड़ीय मठ, कोलेरगंज (नवद्वीप) में परमपूज्यपाद परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजके[१] दर्शनोंके लिए गया हुआ था। उन्होंने प्रसङ्गवश हमारे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके सम्बन्धमें बतलाया, जिसे हम जीवनभर भूल नहीं सकते। उन्होंने कहा—

"मैं जब लॉ के अन्तिम वर्षका छात्र था, उस समय एकबार मायापुरके दर्शनके लिए आया। मैंने सर्वप्रथम योगपीठके श्रीमन्दिरमें श्रीविग्रहोंका दर्शनकर श्रीवास-आँगन, अद्वैतभवन, गदाधरभवन आदिका दर्शन किया। अन्तमें आकर मठराज श्रीचैतन्य मठमें दर्शन करते समय पास ही एक अद्भुत घटना देखी। एक कटहल वृक्षके नीचे एक बहुत ही सुन्दर नवयुवक ब्रह्मचारी कुर्सीपर बैठा हुआ था। सामने टेबुल लगी हुई थी, जिसपर वह अपने बाएँ पैरके ऊपर दाएँ पैरको रखकर धीरे-धीरे हिला रहा था। बहुत ही अच्छी सफेद धोती तथा कुर्त्ता पहना हुआ था। दोनों आँखें बन्द थीं और ऐसा प्रतीत होता था मानो वह गम्भीर चिन्तनमें डूबा हुआ है। जो कोई मठवासी उधरसे निकलता था चाहे सफेद कपड़ेमें हो या गेरुए कपड़ेमें हो, चाहे कम उम्रका हो या अधिक उम्रका हो, वह जमीनपर सिर झुकाकर उस ब्रह्मचारीको बड़ी श्रद्धासे प्रणाम करता था और अपने सेवा-कार्यमें चला जाता था। इतनेमें एक लम्बे-चौड़े डील-डौलवाले तथा गम्भीर व्यक्तित्वसम्पन्न संन्यासीने

???

[१] श्रील श्रीधर महाराजजीके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

आकर उसे प्रणाम किया और उसके सामने खड़े हो गये। कुछ आहट पाकर उस ब्रह्मचारीने आँखें खोलीं और उसी स्थितिमें बैठे हुए उसने उनकी ओर देखा। संन्यासी महोदयने बड़ी नम्रतापूर्वक कुछ पूछा। ब्रह्मचारीजीने भी कुछ उत्तर दिया, तत्पश्चात् संन्यासी महोदयने पुनः प्रणाम किया और वे चले गये।" पूज्यपाद श्रीधर महाराजजी पुनः कहने लगे—

"मैं बड़े ध्यानसे यह सब कुछ देख रहा था। यह कौन नवयुवक है। इसे सभी लोग श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर रहे हैं। बड़े-बड़े संन्यासी तक भी इससे आदेश-निर्देश ग्रहण करते हैं। मैंने पास ही खड़े एक मठवासीसे इस असाधारण व्यक्तित्वसम्पन्न ब्रह्मचारीके सम्बन्धमें पूछा। उन्होंने मुझे बतलाया कि इनका नाम श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' है। ये यहाँके व्यवस्थापक हैं। श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग सेवकोंमें अन्यतम हैं। देखनेमें साधारण लगनेपर भी गम्भीर दार्शनिक, विद्वान तथा भक्तिसिद्धान्तमें बड़े ही निपुण हैं। योगपीठ, श्रीधाम मायापुर तथा श्रीचैतन्य मठके विकासमें इनका बड़ा भारी योगदान है। श्रीभक्तिविनोद इंस्टीट्यूटके मैनेजिंग कमेटीके एक प्रधान सदस्य हैं। मैं यह सुनकर विस्मित हो गया। थोड़ी देरके बाद श्रील प्रभुपादके दर्शनके लिए गया। उनके गम्भीर व्यक्तित्वको देखकर तथा उनकी वीर्यवती वाणीको सुनकर ठगा-सा रह गया। मैंने उसी समय सङ्कल्प कर लिया कि मुझे भी अब नश्वर संसारको छोड़कर हरिभजन ही करना चाहिये। हरिभजनके बिना जीवन व्यर्थ है। विशेषतः श्रील प्रभुपाद द्वारा उच्चरित भागवतीय श्लोककी मेरे अन्तःस्थलपर एक अमिट छाप पड़ गयी—

लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(श्रीमद्भागवत ११/९/२९)

अर्थात् अनेक जन्मोंके बाद यह मानव जन्म प्राप्त हुआ है इसलिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होनेपर भी परमार्थप्रद है।

अतः बुद्धिमान व्यक्ति मृत्युसे पूर्व ही क्षणमात्रका विलम्ब किये बिना चरम कल्याणके लिए चेष्टा करे।

मैं उस समय तो घर लौट आया, किन्तु कुछ ही दिनोंके पश्चात् घर-बार त्यागकर जीवनभरके लिए प्रभुपादके चरणोंमें उपस्थित हो गया। मठवासी होनेपर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके साथ प्रगाढ़ प्रीति और बन्धुत्व रहा। हम दोनों परस्पर वैदान्तिक सिद्धान्तों तथा भक्तिके गूढ़ विचारोंके सम्बन्धमें वाद-विवाद करते थे। दूसरे सभी लोग हमारे विचारोंको बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रवण करते थे।

प्रभुपादके विचारसे आदर्श गुरुसेवक

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी बड़े ठाट-बाटके साथ रहते थे। जमींदारीकी सारी व्यवस्था सँभालते थे। मठ-मन्दिरकी सेवाके लिए आवश्यकता पड़नेपर कोर्ट-कचहरी तथा उच्च पदस्थ प्रशासकोंके साथ भी मिलते थे। उनका इस प्रकारका बाह्य जीवन देखकर कुछ अनभिज्ञ मठवासियोंकी यह धारणा थी कि वे केवल सांसारिक विषयोंमें ही निपुण हैं, भक्तिसे इनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। ये सदा-सर्वदा प्रजाओंके शासन, मामला-मुकदमा आदि वैषयिक कार्योंमें लिप्त रहकर लोकसमाजमें ही सुपरिचित हैं। भक्तिके अङ्गोंको पालन करनेकी इन्हें फुर्सत नहीं। यह बात यहीं तक नहीं रही। दिल्ली गौड़ीय मठके कुछ ब्रह्मचारियोंने इस विषयमें श्रील प्रभुपादको एक लम्बा-चौड़ा पत्र भी दे दिया। श्रील प्रभुपाद उस पत्रको पाकर बड़े ही असन्तुष्ट हुए। उन्होंने साथ-ही-साथ बड़ी कठोर भाषामें उस पत्रका प्रतिवाद करते हुए लिखा कि विनोदविहारी एक असाधारण गुरुनिष्ठासम्पन्न आदर्श वैष्णव है। वह भक्तिके गूढ़ और उच्च कोटिके सिद्धान्तोंमें पूर्ण पारङ्गत है। विशेषतः वेदान्तके गम्भीर विचारोंमें उसका प्रवेश है। उसमें भजनके प्रति अत्यधिक उत्साह, हरि-गुरु-वैष्णवकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टा-परायणता एवं सर्वस्व त्यागकी भावना है। साथ ही स्नेह, दया, शासन-क्षमता, संगठन-शक्ति तथा दायित्वपूर्ण कार्योंमें सञ्चालन-शक्ति आदि असाधारण गुणोंका समावेश है। जो लोग यह समझते हैं कि विनोदमें वैष्णवता नहीं है,

मैं समझता हूँ कि ऐसा समझनेवालोंमें ही वैष्णवताका सम्पूर्ण अभाव है। जो लोग वैष्णवोंका आन्तरिक मर्म नहीं जानकर इनकी निन्दा करते हैं, उनका ध्वंस अनिवार्य है। इसे कोई भी रोक नहीं सकता।

श्रीपाद नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी उस समय दिल्ली गौड़ीय मठके एक प्रमुख सेवक थे। ये श्रीमद्भागवतके प्रसिद्ध वक्ता थे। श्रील प्रभुपादके प्रति इनकी अत्यन्त गम्भीर निष्ठा थी। सौभाग्यवश इन्होंने भी श्रील प्रभुपादके लिखे हुए पत्रको पढ़ा और तबसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके बाद श्रीगौड़ीय मठको छोड़कर ये भी अपने सतीर्थ श्रीविनोदविहारी 'कृतिरत्न' प्रभु एवं श्रीनरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभु आदिके साथ श्रीधाम नवद्वीपमें चले आये तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें रहकर साधन-भजन एवं भारतके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करते रहे। उसी समय प्रसङ्गवशतः इन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा दिल्ली गौड़ीय मठके ब्रह्मचारियोंके लिए लिखे हुए पत्रके सम्बन्धमें अस्मदीय गुरुपादपद्मके निकट रहस्योदघाटन किया।

श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधिका स्थानान्तरण

सन १९३२ ई॰ की घटना है। भगवती भागीरथी आज उफनती हुई प्रवाहित हो रही थीं। चारों तरफ पानी-ही-पानी दीख रहा था। उसके प्रबलतर वेगसे पश्चिमी तट कट-कटकर उसके प्रवाहमें विलीन हो रहा था। श्रील प्रभुपादके परमाराध्य श्रीगुरुदेवकी समाधि नवद्वीपधामके अन्तर्गत गङ्गाके पश्चिमी तटपर अवस्थित थी। श्रील प्रभुपादने १९१५ ई॰ में उत्थान एकादशीके दिन स्वयं अपने हाथोंसे उनकी समाधि प्रदान की थी। जब श्रील प्रभुपादको यह पता चला कि उनके श्रीगुरुदेवकी समाधि गङ्गाके प्रवाहमें बह जानेवाली है, उसी समय उन्होंने अपने अन्तरङ्ग सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको निर्देश दिया कि किसी भी प्रकार उस समाधिको सम्पूर्ण रूपसे श्रीधाम मायापुरमें श्रीराधाकुण्डके तटपर लाया जाये और वहींपर उनकी पुनः प्रतिष्ठा की जाये।

श्रीविनोदविहारी प्रभु अपने प्रिय सतीर्थ बन्धु श्रीपाद नरहरि सेवाविग्रह प्रभु तथा अन्यान्य गुरुसेवकोंकी सहायतासे कई दिनों तक दिन-रात अथक परिश्रमके पश्चात् उस समाधिको सुरक्षित अखण्ड रूपमें सङ्कीर्त्तनके साथ श्रीचैतन्य मठमें ले आये। श्रील प्रभुपाद बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वयं अपने हाथोंसे राधाकुण्डके तटपर समाधि-स्थल खोदनेका कार्य आरम्भ किया। उनके इस कार्यमें श्रीपाद कुञ्जबिहारी विद्याभूषण, श्रीअप्राकृत भक्तिसारङ्ग गोस्वामी, श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीनरहरि सेवाविग्रह प्रभु तथा श्रीविनोदविहारी कृतिरत्न प्रभु प्रमुख सेवकवृन्दने उनकी सहायता की। समाधिका कार्य पूर्ण होनेपर श्रील प्रभुपाद अपने गुरुदेवकी विरहवेदनासे अत्यन्त कातर हो गये। उस समय उनके विप्रलम्भ भावाविष्ट मुखमण्डलका दर्शनकर उनके अन्तरङ्ग सेवकवृन्द भी भावविह्वल हो गये। सभीके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा प्रवाहित

श्रीचन्द्रशेखर-भवनमें श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजका समाधि-मन्दिर

होने लगी। विनोदविहारी ब्रह्मचारी भावाविष्ट प्रभुपादके चरणोंके समीप बैठकर अपनी अश्रुबिन्दुओंसे उनके चरणसरोजको पखार रहे थे।

श्रील सरस्वती प्रभुपाद जिस समय अपने श्रीगुरुदेव श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेपर उन्हें समाधिस्थ करने जा रहे थे, उस समय कुलियाके उच्छृंखल एवं दुर्नीतिपरायण बाबाजी लोग नाना प्रकारसे विघ्न-बाधा पहुँचाने लगे थे। किन्तु अन्तमें वे कुछ नहीं कर सके। श्रील प्रभुपादने गङ्गा तटपर कुलियामें ही इन्हें समाधि प्रदान की थी। उन बाबाजी लोगोंने इस बार भी समाधिको श्रीधाम मायापुरमें स्थानान्तरण करते समय घोर विरोध किया और बिघ्न-बाधाएँ पहुँचायीं। किन्तु इसे रोक नहीं सकनेपर कृष्णनगर कोर्टमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीके नामसे समाधिको हटानेमें प्रधान आसामीके रूपमें मुकदमा दायर कर दिया। यह मुकदमा एक ईसाई धर्मावलम्बी न्यायाधीशकी अदालतमें पेश हुआ। न्यायाधीशने इस केसको बड़ी गम्भीरतासे लिया। ईसाई धर्मके अनुसार किसी समाधिको उसके मूल स्थानसे हटाना एक अक्षम्य अपराध होता है और उसके लिए पाश्चात्य देशोंमें बड़ी कड़ी सजा होती है। न्यायाधीशने दोनों पक्षोंका तर्क-वितर्क सुनकर आसामीको कड़ी सजा देनेका मन बना लिया था। ऐसा देखकर ब्रह्मचारीजीने अन्तमें न्यायाधीशसे बड़ी गम्भीरतासे कहा—“महाशयजी! आपको मालूम होना चाहिये कि हमलोग ईसाई मतावलम्बी नहीं हैं। हमलोग भारतीय वैदिक रीति-नीति अपनानेवाले शुद्ध वैष्णव हैं। वैष्णवधर्मके अनुसार विशेष परिस्थितियोंमें विशेष कारणोंसे समाधिको स्थानान्तरित किया जा सकता है, इसके हजारों प्रमाण हैं।” यह सुनते ही न्यायाधीश महोदयका विचार बदल गया। उन्होंने श्रीविनोदविहारीके पक्षमें निर्णय दिया—“आसामीको बिना किसी आरोपके मुक्त किया जाता है।” उपस्थित आइनज्ञ वकील आदि श्रीविनोदविहारीके तर्कको सुनकर विस्मित हो गये तथा उनकी चौमुखी प्रतिभाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। श्रील प्रभुपाद सारी बातें सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने श्रीगौड़ीय मठ-मिशनके सभी मामला-मुकदमोंका भार कृतिरत्न प्रभुके ऊपर सौंप दिया। यह कार्य साधारण लोगोंके लिए दुःसाध्य और असम्भव था।

शुद्धभक्तिका प्रचार

सन् १९३३ ई॰ के प्रारम्भसे ही श्रील प्रभुपादकी इच्छाके अनुसार श्रीधाम पुरी, कटक एवं उड़ीसा प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए विनोदविहारीने कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ यात्रा की। सबसे पहले वे श्रीधाम पुरी पुरुषोत्तम मठमें उपस्थित हुए। वहाँ कुछ दिन रहकर मठस्थित सभागृहमें तथा पुरीके विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न विषयोंपर भाषण दिया। साथ ही पुरुषोत्तम मठमें विद्यमान बहुत-से जटिल सेवाकार्योंका समाधान किया। वहाँसे श्रीसच्चिदानन्द मठ, कटकमें उपस्थित हुए और वहाँके सेवाकार्योंका समाधानकर वहाँके एक महाविद्यालयके प्राङ्गणमें सैकड़ों छात्रों, प्राध्यापकों एवं विशेष शिक्षित सम्भ्रान्त श्रोताओंके मध्य 'वेदान्तमें शब्दवाद' के सम्बन्धमें अतिसारगर्भित वैदान्तिक भाषण दिया। उक्त सभामें उन्होंने यह बतलाया—"किसी भी वस्तुका ज्ञान सबसे पहले कान या श्रुतिके माध्यमसे ही सम्भव है। इसलिए वैष्णव सम्प्रदायमें श्रवणका विशेष महात्म्य है। श्रवणका माध्यम केवल कान या श्रुति है। कानके द्वारा ही हम शब्दको ग्रहण कर सकते हैं। कान जिस शब्दको ग्रहण करता है, उसे अवशेष ज्ञानेन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकतीं तथा अन्य इन्द्रियाँ जिसे ग्रहण या अनुभव करती हैं, उसे कान ग्रहण नहीं करते। जैसे एक पके हुए आमको आँखसे देखा जा सकता है, जिह्वासे उसका रसास्वादन किया जा सकता है, नाकसे उसकी सुगन्धका अनुभव किया जा सकता है, त्वचासे उसकी कोमलता या कठोरता अनुभवकी जा सकती है, किन्तु कानसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं। किन्तु कान जिस शब्दको ग्रहण करता है, उसे अन्यान्य इन्द्रियाँ न देख सकती हैं, न सुन सकती हैं, न रसास्वादन कर सकती हैं और न स्पर्श कर सकती हैं। इसलिए सद्‌गुरु सत्-शिष्यके कानमें ही सर्वप्रथम अप्राकृत शब्दब्रह्मको प्रदान करता है। श्रीगुरु-परम्पराकी धारामें अप्राकृत भगवन्नाम एवं मन्त्रको शब्दब्रह्म कहते हैं। जिन्हें शब्दब्रह्मकी अनुभूति न हो, शब्दब्रह्मके अवतार श्रुतियोंके विषयमें जो पारङ्गत न हों तथा सांसारिक विषय-आसक्तिसे जो उपरत नहीं हैं, वे सद्‌गुरु पदवाच्य नहीं हैं। ऐसे साधारण लोगोंके द्वारा दिया हुआ भगवन्नाम शब्द-सामान्य

कहलाता है। उनमें वह पारमार्थिक शक्ति नहीं होती, जो उन महापुरुषोंके द्वारा दिए हुए शब्दब्रह्ममें होती है। इसीलिए सद्गुरु सत्-शिष्यके कानका संस्कारकर अप्राकृत शक्तिसम्पन्न भगवन्नाम और मन्त्ररूप शब्दब्रह्म प्रदान करता है।

वेद-वेदान्त, गीता एवं श्रीमद्भागवतके मन्त्रों, श्लोकों तथा शब्दोंमें उसके मूल वक्ताके अन्तर्निहित भावोंकी अभिव्यक्ति गूढ़ रूपसे विद्यमान रहती है। गुरु-परम्पराको ग्रहण करनेवाले आचार्यों या वैष्णवोंसे श्रवणके अतिरिक्त उन्हें अनुभव करना या समझना असम्भव है। इसका कारण यह है कि मूल वक्ता श्रीकृष्ण, श्रीनारायण, श्रीनारद, श्रीव्यास आदिके भावोंको शिष्य-परम्पराके माध्यमसे ही समझा जा सकता है। स्वतन्त्र बुद्धिके द्वारा उसे हृदयंगम नहीं किया जा सकता है—

सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
अतः कलौ भविष्यन्ति चत्वारः सम्प्रदायिनः॥

अर्थात् सम्प्रदायविहीन मन्त्र निष्फल होते हैं, इसलिए कलियुगमें चार वैष्णव सम्प्रदाय हुए हैं।

एक विशेष बात यह है कि श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें मूल वक्ताने शब्दोंका उच्चारण किस स्वर (टोन) में किया है, उसीपर उन शब्दोंका अर्थ निर्भर करता है। जैसे किसीने कहा—राम तुम कहाँ गये थे? इस वाक्यके विभिन्न प्रकारके स्वरोंके उच्चारणसे इसके विभिन्न अर्थ होते हैं। विभिन्न अर्थ होनेपर भी मूल वक्ताने किस स्वरसे इसका उच्चारण किया था, उनके कहनेका क्या तात्पर्य था, यह गुरु-परम्पराकी धारासे ही समझा जा सकता है, अन्यथा नहीं। इसलिए शब्दब्रह्म और उसका मूल ग्रहण करनेवाले कानका परमार्थ जगत्में एक विशेष महत्व है।"

[इसे श्रील गुरुमहाराजके मुखसे श्रवण किया था]

तत्त्व-दर्शनमें अभिरुचि

श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी गौड़ीय शाखा-मठोंकी व्यवस्थाके लिए अथवा प्रचारके लिए जब कभी लम्बी यात्रा करते, उस समय उनके साथ जैव-धर्म, श्रीगौड़ीयके विशेष अंक एवं तत्त्व-सन्दर्भ आदि दार्शनिक

ग्रन्थ अवश्य ही रहते। विशेषतः रेलयात्राके समय अध्ययन करते-करते उसमें तन्मय हो जाते। उस समय साधारण मठवासियोंके लिए श्रील जीव गोस्वामीके सन्दर्भ, श्रील बलदेव विद्याभूषणके गोविन्दभाष्य, भाष्यपीठक आदि ग्रन्थोंका पठन-पाठन निषिद्ध था। केवल कुछ तत्त्वज्ञानसम्पन्न अधिकारी व्यक्ति ही किसी योग्य वैष्णवके पास उसका अध्ययन कर सकता था। यहाँ तक कि दशमस्कन्ध श्रीमद्भागवत भी सर्वसाधारणके लिए पढ़ना उचित नहीं समझा जाता था। एक दिन श्रीपाद कृतिरत्न प्रभु अपनी भजनकुटीमें बड़ी तन्मयतासे तत्त्वसन्दर्भ पढ़ रहे थे। उसी समय श्रीअनन्त वासुदेव प्रभु[१] किसी विशेष कार्यसे श्रीकृतिरत्न प्रभुको खोजते हुए वहाँ अकस्मात आ पहुँचे। उस समय प्रभुपादके शिष्योंमें श्रीवासुदेव प्रभु भक्तिसिद्धान्तके विषयोंमें एक प्रमुख प्रामाणिक व्यक्ति माने जाते थे। इनकी बातों और विचारोंको सभी लोग बड़ी श्रद्धापूर्वक मानते थे।

उन्होंने आते ही सबसे पहले श्रीकृतिरत्न प्रभुके हाथोंसे तत्त्वसन्दर्भकी पुस्तक ले ली और पूछा—"विनोद! क्या तुम तत्त्वसन्दर्भ पढ़ रहे हो? कुछ समझ भी रहे हो या यूँ ही इसे लिए डोल रहे हो? क्या तुम नहीं जानते कि इसमें गम्भीर दार्शनिक सिद्धान्त हैं? इसे समझना बड़े-बड़े विद्वानोंके लिए भी टेढ़ी खीर है।" कृतिरत्न प्रभु शान्त और गम्भीर होकर चुपचाप खड़े थे। इन्हें चुपचाप देखकर उन्होंने फिर पूछा—"बोलते क्यों नहीं? कुछ समझते हो या नहीं?" इन्होंने बड़े गम्भीर होकर उत्तर दिया—"आप इन ग्रन्थोंमेंसे कहींसे भी कुछ पूछ सकते हैं।" श्रीपाद वासुदेव प्रभुने प्रमाणतत्त्व, प्रमेयतत्त्व, सम्बन्ध, अभिधेय एवं प्रयोजन तत्त्वोंके सम्बन्धमें अत्यन्त कठिन प्रश्न पूछे। परन्तु श्रीकृतिरत्न प्रभुने बड़े ही सरल-सहज एवं बोधगम्य भाषामें उन प्रश्नोंका चमत्कारी ढङ्गसे उत्तर दिया।

श्रीवासुदेव प्रभु अब तक कृतिरत्न प्रभुको तत्त्वज्ञानरहित एक साधारण कर्मठ नवयुवक ब्रह्मचारी ही समझ रहे थे। उन्होंने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि विनोद इन गम्भीर दार्शनिक प्रश्नोंका कभी उत्तर

[१] श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलाके पश्चात् कुछ दिनोंके लिए ये गौड़ीय मठके सभापति आचार्य भी हुए थे। किन्तु कुछ कारणोंसे इन्हें उस पदसे हटना पड़ा।

भी दे सकेगा। अपने कठिन प्रश्नोंका उत्तर पाकर वे परम विस्मित हुए। अब उनके प्रति अत्यन्त गौरवका भाव उत्पन्न हुआ। वे इनके द्वारा लिखित प्रबन्ध और निबन्धोंको देखकर और भी आश्चर्यचकित हो गये, क्योंकि इनकी भाषा सब प्रकारके अलङ्कारोंसे अलंकृत, सुसंस्कृत थी और उसकी शैली अत्यन्त गम्भीर थी। आचार्यपदपर प्रतिष्ठित होनेपर उन्होंने अपने बड़े-बड़े लेखक एवं साहित्यिक शिष्य-शिष्याओंको साहित्य लेखनकी कला विशेष रूपसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीसे सीखनेके लिए कहा था।

श्रीमहामन्त्र एवं कीर्त्तन

१९३३ ई॰ में श्रीगोद्रुमस्थित स्वानन्दसुखदकुञ्जमें श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरके समाधि-मन्दिरमें उनके विरहोत्सवका अनुष्ठान चल रहा था। श्रील प्रभुपाद अपनी शिष्य-मण्डलीके साथ उस विरहोत्सवमें उपस्थित थे। उनके अन्तरङ्ग प्रिय सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी भी उनके साथ थे। उस विरहोत्सवमें सारे बङ्गालके विशिष्ट वैष्णवगण भी सम्मिलित हुए थे। श्रील प्रभुपादने उन विशेष अतिथियोंकी सेवा-शुश्रूषाका भार प्रिय विनोदके ऊपर सौंप रखा था।

उस उत्सवमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके शिष्य माननीय श्रीसीतानाथ भक्तितीर्थ महोदय भी पधारे थे। इन्हें बड़े सम्मान और आदरके साथ एक कमरेमें वासस्थान दिया गया था। विरह सभाके पश्चात् भक्तितीर्थ प्रभु बड़े स्नेहसे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको अपने पास बैठाकर कीर्त्तन सुनाने लगे। ये तत्कालीन बङ्गालके तथाकथित कीर्तनियाओंमेंसे एक प्रमुख कीर्तनिया माने जाते थे। विविध प्रकारके राग-रगिनी, ताल, लय, मान आदिके पारङ्गत तथा हारमोनियम, एसराज, वीणा, मृदङ्ग, तबला आदि यन्त्रोंके भी उस्ताद थे। ये हारमोनियमपर श्रीमहामन्त्रका विविध राग-रागनियोंमें आलाप कर रहे थे। प्रथम 'हरे' से लेकर अन्तिम 'हरे' तक केवल सोलह नामयुक्त महामन्त्रके एक आलापको पूर्ण करनेमें ही करीब १०-१५ मिनट समय लग रहा था। उसमें अपने हाव-भावपूर्ण अङ्गों एवं हाथोंसे नाना प्रकारकी अङ्गभङ्गी द्वारा भाव प्रकाश करनेकी चेष्टा कर रहे थे। कुछ देर कीर्त्तन श्रवण करनेके पश्चात् जब

श्रीविनोदविहारीजी श्रील प्रभुपादके निकट आये, तब प्रभुपादजीने कुछ डाँटते हुए कहा—"कीर्त्तन सुनना हो गया? वहाँ एक बार 'हरे कृष्ण' के नामोच्चारणमें जितना समय लग रहा था, उसमें तो पचास बार पूरा महामन्त्रका कीर्त्तन किया जा सकता है।" उन्होंने उपदेश देते हुए और भी कहा—"जिन लोगोंकी श्रीनाम तथा अपने इष्टमें रुचि नहीं है, केवल वे लोग ही अपने इन्द्रियसुखकर सुर, ताल, लयरूप तौर्यात्रिकमें आसक्त रहते हैं। मैं इन लोगोंको ताल-ठोका सम्प्रदाय कहता हूँ। 'हरे कृष्ण' महामन्त्रका उच्चस्वरसे श्रद्धापूर्वक कीर्त्तन करनेसे जाड्य, आलस्य एवं सब प्रकारके अनर्थ दूर हो जाते हैं और उसमें तन्मय होनेसे सर्वार्थकी सिद्धि होती है। इन तालठोका सम्प्रदायके लोगोंमें जड़ीय लाभ-पूजा-प्रतिष्ठाका जञ्जाल भरपूर रहता है। शुद्ध वैष्णवगण इनसे सर्वथा दूर रहकर श्रद्धापूर्वक तन्मय होकर सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे कृष्णनामका साधन करते हैं। इस प्रकारके नामकीर्त्तन द्वारा उनके हृदयमें नामी प्रभुके अप्राकृत श्रीरूप, गुण, लीला आदिकी स्फूर्ति होती है। ऐसे शुद्ध नामसे ही भगवत्प्रेमका उदय सम्भव है।" जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने अपने सुयोग्य शिष्यको इस प्रकार नामभजनकी शिक्षा प्रदान की।

एक समय श्रीसीतानाथ भक्तितीर्थ महोदय मायापुर योगपीठमें कुछ दिनोंके लिए वास कर रहे थे। एक दिन उषाकालमें हारमोनियमके साथ 'राई जागो राई जागो' पदका बड़े ही मधुर स्वरसे गान कर रहे थे। श्रील प्रभुपादने यह संवाद सुनकर उनके इस गानको बन्द करा दिया। पहले स्वयं जगो अर्थात् अपने नित्य स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर फिर पीछे राई अर्थात् श्रीमती राधिकाजीको जगाना उचित है। ऐसे उच्च कोटिके उन्नत उज्ज्वल रसाश्रित पदोंका कीर्त्तन जहाँ-तहाँ हाट-बाजार-गलीमें अनधिकारी लोगोंके सामने नहीं करना चाहिये—श्रील प्रभुपादने इसकी भी समुचित शिक्षा प्रदान की।

'उपदेशक' उपाधिसे विभूषित

१९३४ ई० में श्रीगौरजन्मोत्सवके पश्चात् श्रीचैतन्य मठके अविद्या-हरण नाट्यमन्दिरमें श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाका ४०वाँ वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने

सभापतिके पदसे श्रीपादविनोदविहारी कृतिरत्न महाशयको 'उपदेशक' उपाधिसे विभूषित किया।

श्रीश्रीमायापुरचन्द्रो विजयतेतमाम्

श्रीश्रीनवद्वीपधाम-प्रचारिण्याः सभायाः

श्रीश्रीगौराशीर्वाद-पत्रम्

सर्वात्मना श्रीगुरु-गौरसेवासम्पादकः शुद्धमतिर्नयज्ञः।
सदाशयः सत्यपथैकरागी गुरुप्रियोऽयं कृतिरत्नवर्यः॥

श्रीविनोदविहार्याख्या ब्रह्मचारिवरो मुदा।
उपदेशक इत्येतदुपनाम्ना विमण्डितः॥

गङ्गापूर्वतटस्थ श्रीनवद्वीपस्थलोत्तमे।
श्रीमायापुरधामस्थे योगपीठाश्रये परे॥

वानेषुवसुशुभ्रांशु-शकाब्दे मङ्गलालये।
फाल्गुण-पूर्णिमायां श्रीगौराविर्भाववासरे॥

—(स्वाः) श्रीसिद्धान्त सरस्वती

सभापतिः

[सर्वांगीण रूपमें श्रीगुरुसेवा सम्पादनकारी, शुद्ध अन्तःकरणविशिष्ट, सुनीतिपरायण, सदाशय, सत्यपथानुरागी श्रीगुरुदेवके अतिशय प्रिय, कृतिरत्न श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी श्रेष्ठको श्रीनवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके सदस्योंकी ओरसे भगवती भागीरथीके पूर्वतटपर अवस्थित श्रीनवद्वीपके सर्वोत्तम स्थान श्रीमायापुरके श्रेष्ठ, कल्याणप्रद श्रीयोगपीठमें श्रीगौराविर्भाव फाल्गुनी पूर्णिमाके पवित्र दिन १८५३ शकाब्दमें सोल्लासपूर्वक 'उपदेशक'—इस उपाधिसे अलंकृत किया गया।]

इसी अवसरपर दूसरे दिन विश्व वैष्णव राजसभासे भी श्रीगौरसुन्दरकी मनोऽभीष्ट पूर्तिके लिए इन्हें विशेष धन्यवाद प्रदान किया गया—

"उपदेशक श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी कृतिरत्न महाशय श्रीमन्महाप्रभुके विषय-रक्षणके कार्यमें एवं श्रीधाम मायापुर, श्रीचैतन्य मठ और इनके अनुवर्ती समस्त शाखा मठोंके विभिन्न सेवाकार्योंमें आत्मनियोगकर, विशेषतः वर्त्तमान वर्षमें श्रीधाम परिक्रमा परिचालनाके

कार्यमें यथेष्ट कृतिरत्नका प्रदर्शनकर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गके प्रीतिभाजन हुए हैं। इनकी दार्शनिक विचारपूर्ण वक्तृता भी अत्यन्त प्रशंसनीय है।”

श्रीधाम मायापुरमें बंगालके महामान्य गवर्नर सर जॉन एण्डरसन

जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद और उनके अनुगत सुयोग्य शिष्योंके प्रचारके कारण भारतके विभिन्न स्थानोंसे श्रद्धालु लोग श्रीधाम मायापुरके दर्शनके लिए आने लगे। यहाँ तक कि भारत सरकारके बड़े-बड़े उच्च पदस्थ राजकर्मचारी भी बड़ी उत्कण्ठा और श्रद्धापूर्वक आने लगे। उस समय बङ्गाल प्रदेशके गवर्नर महामान्य Sir John Anderson महोदय थे। श्रीगौर-जन्मस्थान श्रीधाम मायापुरकी चर्चा इनके कानोंमें भी पड़ी। इनके हृदयमें भी पवित्र स्थानके दर्शनकी अभिलाषा हुई। १३ जनवरी, १९३५ को वे किसी विशेष कार्यवश जिला मुख्यालय कृष्णनगर आये। श्रील प्रभुपादकी इच्छासे श्रीचैतन्य मठ और विश्व वैष्णव राजसभाके पक्षसे उपदेशक पण्डित श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी ‘कृतिरत्न’ और पण्डित श्रीअतुलकृष्ण बन्दोपाध्याय ‘भक्तिसारङ्ग गोस्वामी’—इन दोनोंने कृष्णनगरमें गवर्नर महोदयके साथ भेंट की तथा उन्हें श्रीधाम मायापुर आनेका निमन्त्रण दिया। उन्होंने उसे सादर स्वीकार किया। दूसरे दिन Sir John Anderson महोदय दल-बलके साथ श्रीधाम मायापुर पधारे। श्रीधाम मायापुर, योगपीठके प्रवेशद्वारपर धाम प्रचारिणी सभाके पक्षसे श्रीयुत रामगोपाल विद्याभूषण, एम॰ए॰, तथा ठाकुर भक्तिविनोद इंस्टीट्यूटके सेक्रेटरी श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी महोदयने उनका स्वागत किया। तदनन्तर कृतिरत्न प्रभु एवं श्रीपाद भक्तिसारङ्ग गोस्वामी प्रभु इन्हें साथ लेकर सभामण्डपमें पधारे और श्रील प्रभुपादके साथ इनकी भेंट करायी। वहाँ स्वागत समारोहमें गवर्नर महोदयने श्रील प्रभुपादसे मिलकर तथा श्रीधाम मायापुरका दर्शनकर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा कि आज मेरी बहुत दिनोंकी इच्छा पूर्ण हुई है। मुझे इस पवित्र स्थानकी उन्नतिके लिए राजकीय सेवाकी व्यवस्था करनेमें प्रसन्नता होगी। श्रील प्रभुपादने भी गवर्नर महोदयको राजोचित सम्मानके साथ विदा किया।

श्रीयोगपीठ, श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपाद और
सर जॉन एण्डरसनके साथ श्रीविनोदविहारी

गवर्नर महोदयके मायापुर परिदर्शनकी व्यवस्था एवं अतिथियोंके लिए महाप्रसाद आदिकी सारी व्यवस्था श्रील प्रभुपादके आदेशसे श्रीविनोदविहारीजीने ही की।

योगपीठमें श्रीमन्दिर एवं विग्रहप्रतिष्ठा

श्रीधाम मायापुरकी जमींदारी (स्टेट) के व्यवस्थापक पदपर रहते समय श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी कृतिरत्नको श्रीधाम मायापुरसे सम्बन्धित अनेक ऐसे दलील-पत्र हाथ लगे जिससे यह स्पष्ट प्रामाणित होता था कि श्रीधाम मायापुरमें ही श्रीजगन्नाथ मिश्रका वासभवन था। वहीं एक नीम पेड़के नीचे श्रीशचीनन्दन गौरहरिका आविर्भाव हुआ था। उन दलीलोंमें गौरजन्मभूमिका नाम ३९९ तौजीके अन्तर्गत लिपिबद्ध था तथा दूसरे भाग, मकान २६५ तौजीमें उल्लिखित थे। जिस समय विनोदविहारीजी मायापुरमें सर्वप्रथम आये, उस समय वहाँ केवल तुलसीका वन था। मुसलमान लोगों द्वारा कोई भी फसल उगानेकी चेष्टा करनेपर वहाँ केवल तुलसीका ही वन होता, कोई भी दूसरी फसल नहीं हो पाती। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने रात्रिकालमें भजन करते समय वहीं ताल वृक्षके निकट एक दिव्य ज्योतिका दर्शन किया था। तदनन्तर गौड़मण्डल, क्षेत्रमण्डल तथा व्रजमण्डलके अत्यन्त प्रसिद्ध वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजने श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके साथ इस स्थानपर आकर उद्दण्ड भावसे नृत्य करते हुए कहा था—यही भूमि हमारे शचीनन्दन गौरचन्द्रकी आविर्भावस्थली है। श्रीलगौरकिशोरदास बाबाजी भी कभी-कभी अँधेरी रातमें न जाने कैसे इस बीहड़ भूमिमें पहुँच जाते। पूछनेपर बतलाते थे—रास्तेमें कोई छोटा-सा गोपबालक मिला। उसने पकड़कर यहाँ तक पहुँचाया। यहाँ पहुँचनेपर उस गोपबालकका कोई पता नहीं चला।

१९३४ ई॰ के मार्चमें श्रील प्रभुपादने श्रीयोगपीठ मायापुरमें मन्दिर निर्माणके लिए भित्तिकी स्थापना की। निर्माण कार्यका भार विशेष रूपसे श्रीपाद कृतिरत्न प्रभुके ऊपर सौंपा गया। मन्दिरकी भित्ति खोदते समय मजदूरोंको एक बड़ी ही सुन्दर अद्भुत चतुर्भुज मूर्त्ति प्राप्त हुई। यह

श्रीयोगपीठका श्रीमन्दिर

समाचार मिलते ही श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी, श्रीपाद नरहरि प्रभु आदि प्रधान मठवासियोंको साथ लेकर वहाँ उपस्थित हुए और अपूर्व श्रीमूर्त्तिको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। कुछ समय बाद श्रील प्रभुपाद वहाँ उपस्थित होकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने घोषणा की कि यह विग्रह श्रीजगन्नाथ मिश्र और शचीदेवी द्वारा सेवित अधोक्षज मूर्त्ति है। आज भी वह श्रीमूर्त्ति योगपीठके इस गगनचुम्बी मन्दिरमें पूजित हो रही है।

कलकत्तेके प्रसिद्ध व्यवसायी, श्रील प्रभुपादके शिष्य सखीचरण राय 'भक्तिविजय' ने इस अत्यन्त सुन्दर सुविशाल मन्दिरके लिए सारे व्ययका भार वहन किया। थोड़े ही समयमें श्रीकृतिरत्न प्रभु एवं श्रीरेवतीरमण ब्रह्मचारीकी देख-रेखमें गगनचुम्बी एक भव्य मन्दिरका निर्माण किया गया। १९३५ ई॰ में श्रीगौरजन्मोत्सवके दिन स्वाधीन त्रिपुराधिपति श्रीमद्वीरविक्रम किशोरदेव शर्मा माणिक्य बहादुर धर्मधुरंधर महोदयने श्रील प्रभुपादके साथ श्रीमन्दिरका द्वारोद्घाटन किया। इस महान कार्यके लिए श्रील प्रभुपादने सखीचरण रायको 'श्रेष्ठ आर्य' की उपाधिसे अलंकृत किया।

मायावादकी जीवनी

आचार्यकेशरी किसी समय अपने निकट बैठे हुए हम शिष्यवर्गको प्रसङ्गवशतः स्वलिखित 'मायावादकी जीवनी' के सम्बन्धमें बतला रहे थे कि "श्रील प्रभुपादका यह विचार था कि जब तक विश्वमें शङ्कर-दर्शन प्रचलित रहेगा, तब तक शुद्धभक्तिके प्रचारमें बिघ्न-बाधा बनी रहेगी। इसलिए इसका मूलच्छेद करना अत्यन्त आवश्यक है।" श्रीमन् मध्वाचार्य द्वारा रचित अनुभाष्य, अनुव्याख्यान तथा सूत्रभाष्य, श्रीजयतीर्थकी न्यायसुधा, तत्त्वप्रकाशिका तथा श्रीव्यासतीर्थके न्यायामृत आदि ग्रन्थ केवलाद्वैतवादका खण्डन करनेके लिए सुदर्शनचक्रके समान महास्त्रस्वरूप हैं। प्रभुपादके इन विचारोंका मेरे हृदयपर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। मैंने इन ग्रन्थोंके अतिरिक्त वेदान्तदर्शनके दस-बारह ग्रन्थ संग्रह किये और बड़े मनोनिवेशके साथ आद्योपान्त उनका अनुशीलन किया। इन सब ग्रन्थोंकी आलोचनाके द्वारा यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है कि अर्वाचीन शङ्करका निराकार, निर्विशेष, निर्गुण ब्रह्मवाद या मायावाद

श्रीब्रह्मसूत्र और उसके अकृत्रिम भाष्य श्रीमद्भागवतके रचयिता श्रील वेदव्यासके विचारोंसे सर्वथा भिन्न है। ब्रह्मसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान, निराकार, निर्विशेष, निर्गुण शब्दका उल्लेख ही नहीं है। निर्गुण ब्रह्ममें दया न होनेके कारण वह कभी भी उपास्य नहीं हो सकता। मायावादका ब्रह्म कदापि यथार्थ ब्रह्म नहीं हो सकता। वैसा ब्रह्म एक मिथ्या कल्पनामात्र है। इसलिए श्रीवेदव्यास द्वारा प्रकाशित सविशेष ब्रह्मवाद और श्रीशङ्कराचार्य द्वारा कल्पित निर्विशेष ब्रह्मवाद या मायावाद कभी भी एक नहीं हैं। शाण्डिल्य ऋषिने स्वरचित शाण्डिल्यसूत्रमें कहा है—'ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ तस्यानुज्ञानाय सामान्यात्' अर्थात् ब्रह्मकाण्ड (ब्रह्मसूत्र) भक्तिका प्रतिपादक ग्रन्थ है, ज्ञानका नहीं। श्रीनारद ऋषिने भी स्वरचित भक्तिसूत्रमें ब्रह्मसूत्रके रचयिता वेदव्यास और श्रीशाण्डिल्य ऋषिको भक्तिशास्त्रके ग्रन्थकर्त्ताके रूपमें उल्लेख किया है। उन्होंने स्पष्ट रूपसे व्याससूत्रको भक्तिग्रन्थ बतलाया है।

एक बार मायापुरमें रहते समय साप्ताहिक गौड़ीयपत्रके सम्पादक श्रीविद्याभूषण एवं श्रीविद्याविनोद मेरे पास आये। उन्होंने साप्ताहिक गौड़ीयके विशेषाङ्कके लिए मायावादके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिखनेका अनुरोध किया। मैंने शीघ्र ही उनकी इच्छानुसार 'मायावादकी जीवनी' नामक प्रबन्ध लिखकर उनके हाथोंमें दिया। किन्तु बादमें पता चला कि प्रबन्ध बहुत बड़ा होनेके कारण उस विशेषाङ्कमें नहीं जा सका, पर प्रभुपाद उस प्रबन्धको पढ़कर अत्यन्त प्रसन्न हुए हैं। अतः इस प्रबन्धका ग्रन्थके आकारमें शीघ्र ही प्रकाशन किया जायेगा। इसी बीच श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेपर विभिन्न प्रकारकी गड़बड़ियोंके कारण वह प्रबन्ध न जाने कहाँ खो गया। किन्तु सौभाग्यवश १९४२ ई॰ में चाँपाहाटी नामक ग्राममें श्रील प्रभुपादकी अनुगृहीता श्रीयुता उषालता देवीके घरमें वह प्रबन्ध मिला। इसे शीघ्र ही प्रकाशित किया जायेगा।"

where is t
opening quotat
mark?

परवर्तीकालमें बँगला मासिक श्रीगौड़ीय पत्रिका तथा हिन्दी मासिक श्रीभागवत पत्रिकामें इसे प्रकाशित किया गया एवं ग्रन्थाकारमें भी यह बँगला और हिन्दीमें प्रकाशित हो चुका है। इस ग्रन्थके शेष भागमें मायावादकी जीवनीके विषयमें विशेष आलोचना की जायेगी।

श्रील प्रभुपादका अप्रकटलीलामें प्रवेश

सन् १९३६ ई॰ तक श्रील प्रभुपादने कठोर परिश्रमपूर्वक भारतवर्षमें सर्वत्र ही घूम-घूमकर प्रचार किया। सुयोग्य ब्रह्मचारियों एवं मठवासियोंको त्रिदण्डसंन्यास प्रदान किया और उनके माध्यमसे सर्वत्र कृष्णनाम-सङ्कीर्त्तन द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार होने लगा। श्रीचैतन्य मठ, मायापुर एवं तदन्तर्गत नवद्वीपके नौ द्वीपोंमें नौ मठ तथा सम्पूर्ण भारतमें लगभग ६४ प्रचारकेन्द्र स्थापित हुए। बँगला भाषामें दैनिक नदीया प्रकाश, साप्ताहिक गौड़ीय, अँग्रेजीमें The Harmonist, हिन्दीमें 'भागवत' इत्यादि पारमार्थिक पत्रोंका प्रकाशन, श्रीचैतन्यचरितामृत, भागवत आदि भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन होने लग। श्रील प्रभुपादने विदेशोंमें प्रचारके लिए अपने प्रवीण शिष्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिहृदयवन महाराज एवं भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराजको भेजा। उन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी आदि अनेक देशोंमें गौरवाणीका प्रचार किया। तत्पश्चात् अप्राकृत भक्तिसारङ्ग प्रभुको पुनः पाश्चात्य देशोंमें प्रचारके लिए भेजा। इस प्रकार सर्वत्र ही बड़े उत्साहके साथ शुद्धभक्तिका प्रचार होने लग।

इसी बीच १९३६ ई॰ के प्रारम्भसे ही श्रील प्रभुपाद अस्वस्थ लीलाभिनय करने लगे। फिर भी उन्होंने इसी वर्ष प्रयागमें पारमार्थिक प्रदर्शनीका द्वारोद्घाटन किया। मायापुरमें श्रीवास-अँगनमें श्रीव्यासपूजाके अवसरपर प्रचुर हरिकथाका परिवेशन किया। श्रीसुवर्णविहारमें सुवर्णविहारी मठ और श्रीविग्रहकी प्रतिष्ठा की। आलालनाथमें श्रीब्रह्म गौड़ीय मठमें श्रीनृसिंह चतुर्दशीके अवसरपर हरिकथाकी वर्षा की, पुरुषोत्तम धाममें पुरुषोत्तम व्रतका पालन किया। इसके पश्चात् कलकत्ता गौड़ीय मठमें लौटे। इस समय वे प्रायः सभीको सम्बोधन करते हुए कहते—आपलोग निष्कपट होकर हरिभजन कर लें। अब अधिक दिन नहीं हैं। उन्होंने अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके दिन प्रातःकाल त्रिदण्डीस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजको 'श्रीरूपमञ्जरी पद' कीर्त्तन करनेका निर्देश दिया। श्रीपाद नरहरि ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह' प्रभुकी विशेष प्रशंसाकर सब शिष्योंको उनके समान निरपेक्ष होकर हरिभजन करनेका उपदेश दिया। उन्होंने उपस्थित शिष्य-मण्डलीको अपना अन्तिम उपदेश दिया—

"मैंने सबको निरपेक्ष होकर भजन करनेकी प्रेरणा दी है। इसलिए कुछ लोग मुझसे असन्तुष्ट हैं। किन्तु वे एक-न-एक दिन अवश्य ही यह उपलब्धि करेंगे कि जगत्के कल्याणके लिए ही मैंने ऐसा कहा और किया है। आप सभी मिल-जुलकर परम उत्साहके साथ श्रीरूप-रघुनाथकी मनोऽभीष्ट हरिकथाओंका प्रचार करेंगे। श्रीरूपानुग वैष्णवकी चरणधूलि होना ही हमारे लिए चरम आकांक्षाका विषय है। आपलोग अद्वयज्ञान-परतत्त्व श्रीराधाकृष्ण युगलकी अप्राकृत इन्द्रियोंका प्रीतिविधान करनेके लिए आश्रयविग्रहके आनुगत्यमें मिल-जुलकर रहेंगे। आपलोग एकमात्र हरिकथाके उद्देश्यसे दो दिनके इस संसारमें जीवननिर्वाहकर हरिभजनके पथपर दृढ़ताके साथ अग्रसर होते रहेंगे। शत-शत विपदाओं, अपमान और लांछनाकी विषम परिस्थितिमें भी हरिभजन नहीं छोड़ेंगे। जगत्के अधिकांश लोग विशुद्ध कृष्णसेवाकी बातें ग्रहण नहीं कर रहे हैं, यह देखकर निरुत्साहित नहीं होंगे। अपना भजन, अपना सर्वस्व—कृष्णकथाका श्रवण-कीर्त्तन कदापि नहीं छोड़ेंगे। तृणादपि सुनीच एवं वृक्षकी भाँति सहिष्णु होकर सदैव हरिकीर्त्तन करते रहेंगे।"

ऐसा उपदेश देकर ३१ दिसम्बर, १९३६ ई० की रात्रिके शेष भागमें स्वरूप-रूपानुगवर, श्रीमती राधिकाके नयनमणि वार्षभानवीदयित दास श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' श्रीराधागोविन्दकी निशान्त लीलामें प्रवेश कर गये।

श्रील प्रभुपादकी अप्रकटलीलामें प्रवेशका संवाद शीघ्र ही बङ्गालमें ही नहीं सारे भारतवर्षमें फैल गया। उनके आश्रित शिष्यवर्ग गम्भीर विरहानलमें हाहाकार कर उठे। विभिन्न स्थानोंसे लोग विरह-सन्तप्त होकर बागबाजार गौड़ीय मठमें एकत्रित होने लगे। श्रील प्रभुपादके परमप्रिय शिष्याभिमानियोंमेंसे कुछ लोग कलकत्ताके नीमतला श्मशान घाटमें उनका दाह-संस्कार करना चाहते थे। किन्तु भक्तिसिद्धान्तविद् श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीने इस प्रस्तावका घोर प्रतिवाद किया और कहा—"देखें हमारे प्रभुके अप्राकृत श्रीअङ्गका दाह करनेकी शक्ति किसमें है? श्रील प्रभुपादने अपने प्रिय धाम श्रीमायापुरस्थित अभिन्न गोवर्धन श्रीचैतन्य मठमें ही समाधि देनेका स्पष्ट निर्देश दिया है।" यह सुनकर

उपस्थित सबने एक स्वरसे इनके विचारका अनुमोदन किया। एक special train द्वारा श्रील प्रभुपादका अप्राकृत कलेवर श्रीधाम मायापुरस्थित श्रीचैतन्य मठमें लाया गया। वहीं राधाकुण्डके तटपर श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी आदिने समाधि-स्थलका चयन किया और वहीं सात्त्वत वैष्णव स्मृति सत्क्रियासार दीपिकाकी रीतिके अनुसार उन्हें समाधिस्थ किया गया। समाधिका कार्य सम्पन्न होते ही श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी श्रील प्रभुपादके विरहमें कातर होकर रोते-रोते मूर्च्छित हो गये। उनके गुरुभ्राताओंने किसी प्रकार उन्हें कुछ स्वस्थ किया।

समाधिके पश्चात् श्रील प्रभुपादके शिष्योंमेंसे कुछ लोगोंने स्मार्त रीतिके अनुसार श्रील प्रभुपादका श्राद्ध-संस्कार करनेका प्रस्ताव दिया। किन्तु कृतिरत्न प्रभुने इसका भी घोर विरोध किया। उन्होंने कहा कि स्मार्त मतके अनुसार सभी लोग मरनेके पश्चात् प्रेत बन जाते हैं, इसलिए प्रेतयोनिसे उनका उद्धार करनेके लिए उनका प्रेत श्राद्ध आवश्यक है। किन्तु वैष्णव मतानुसार एक नामाभास करनेवाले व्यक्तिके सारे

श्रील प्रभुपादका समाधि-मन्दिर

पाप नष्ट हो जाते हैं, वह जन्म-मृत्युसे अतीत हो जाता है। अजामिल आदि इसके उदाहरण हैं, फिर वैष्णवोंमें भी ऐकान्तिक कृष्णभक्ति परायण, जीवनभर शुद्ध नाम करनेवाले वैष्णवके लिए प्रेत-श्राद्ध करना शास्त्रविरुद्ध है। श्रील प्रभुपाद मुक्तकुलचूड़ामणि, कृष्णके नित्यसिद्ध परिकर हैं। यही नहीं कृष्णप्रिया श्रीवार्षभानवीकी परमप्रेष्ठ सहचरी हैं। इनका प्रेतश्राद्ध करनेका किसे साहस है? वैष्णवोंके सात्वत श्राद्ध और स्मार्तोंके प्रेतश्राद्धमें जमीन आसमानका अन्तर है। हरिभक्तिविलास और सत्क्रियासार दीपिका आदि वैष्णवस्मृतिके अनुसार भगवत्-महाप्रसादका निवेदन ही वैष्णवोंके लिए सात्वत श्राद्ध है। वैष्णवाचार्योंके लिए विरह-महोत्सवकी ही रीति प्राचीन कालसे चली आ रही है। इसी रीतिसे हम श्रील प्रभुपादके चरणोंमें अपनी श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पित करेंगे। इनका सिंहनाद सुनकर सारी शिष्यमण्डली स्तब्ध रह गयी। अन्तमें सभी लोगोंने एक स्वरसे इनके विचारका अनुमोदन किया और इसी रीतिसे विरहमहोत्सव सम्पन्न हुआ।

श्रील प्रभुपादकी विरह सभामें कृतिरत्न प्रभुके भाषणका कुछ अंश इस प्रकार है—"यथार्थतः भगवान्‌की भाँति भगवान्‌के परिकरों अथवा मुक्त महापुरुषोंका भी जन्म और मरण नहीं है। उनमें देह-देहीका भेद नहीं होता। उनका शरीर सच्चिदानन्दमय होता है। अतएव जगत्-कल्याणके लिए ही उनका आविर्भाव और तिरोभाव होता है। किन्तु तत्त्व-अनभिज्ञ लोग इसकी उपलब्धि नहीं कर पाते। जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपाद कृष्णलीलाके नित्य परिकर हैं। अतः ये भी जगत्‌के कल्याणके लिए जगत्‌में आविर्भूत हुए थे। ये थोड़े ही दिनोंमें सारे विश्वमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर जगत्-कल्याणके लिए ही श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्य निशान्त लीलामें प्रविष्ट हुए हैं। वे अभी भी अप्रकटलीलामें विद्यमान रहकर जगत्‌का प्रचुर कल्याण कर रहे हैं। अतः ऐसे महापुरुषोंका लौकिक स्मार्त श्राद्ध करनेकी कल्पना कर्मजड़ स्थूल बुद्धिसम्पन्न व्यक्तियोंके अतिरिक्त कौन कर सकता है? अतएव उनका आविर्भाव और तिरोभाव एक ही तात्पर्यपर है। इसीलिए महापुरुषोंके आविर्भावमें उनकी विरह स्मृति और तिरोभावमें मिलन महोत्सव युगपत् सम्भव है।"

"कुछ लोग इनका श्रीमन्दिर प्रस्तुतकर पाञ्चरात्रिक प्रणालीके अनुसार इनके श्रीविग्रह-स्थापनका प्रस्ताव कर रहे हैं, कुछ लोग और भी तरह-तरहके प्रस्ताव करते हैं, ये सभी बातें अपने-अपने स्थानपर उनके अधिकारके अनुसार ठीक हैं। किन्तु उत्तम श्रेणीके गुरुनिष्ठ सेवकोंके लिए श्रीगुरुपादपद्मके मनोऽभीष्ट प्रचारका कार्य ही सर्वोत्तम है। विश्वमें सर्वत्र वैकुण्ठ-नाम एवं वैकुण्ठ-कथाका प्रचार ही महाप्रभुका मनोऽभीष्ट है और यही श्रील प्रभुपादका मनोऽभीष्ट है।

"श्रील प्रभुपादका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय है। अपने नित्य स्वरूपमें अविकृत रहकर ही उन्होंने जागतिक रङ्गमञ्चपर हमलोगोंकी स्थूल दृष्टिमें जन्म-मरण आदिका अभिनयमात्र किया है। मिलन नहीं होनेसे विच्छेदकी तीव्र यातनाका अवसान नहीं होता। इसलिए श्रील प्रभुपादने अपने आश्रितजनोंपर कृपा करनेके लिए—अपने विरहमें कातर भक्तोंको सान्त्वना देनेके लिए ही अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके बाद तत्क्षणात् प्रकटलीलाका प्रदर्शन किया। वह कैसे? वे थोड़ी देर बाद ही श्रीधाम मायापुरमें श्रीराधाकुण्डके तटपर स्थित सेवाकुञ्जमें नाना प्रकारके पुष्प, माल्य, चन्दन आदिसे विभूषित होकर श्रीराधामदनमोहनके परमप्रियके रूपमें समाधिस्थ होकर अपने आनुगत्यमें युगलसेवाकी शिक्षा देनेके लिए नित्यकाल विराजमान हो गये।"

इस विरह सभामें श्रील प्रभुपादका अप्राकृत देह, अप्रकटलीलामें प्रवेशका हेतु, आचार्यका भक्तवात्सल्य, आचार्यका श्रीधाममें आगमन इत्यादि बहुत-से विषयोंपर प्रकाश डाला गया।

तृतीय भाग

गौड़ीय मठ–मिशनके महाधीक्षक (जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट)

श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय मठ–मिशनकी परिचालनाके लिए एक परिचालक समितिका गठन हुआ। महामहोपदेशक श्रीपाद नारायण दास अधिकारी 'भक्तिसुधाकर' 'भक्तिशास्त्री' उसके सेक्रेटरी तथा श्रीपाद विनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' जनरल सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुए। कुछ दिनों तक मठ–मिशनके सारे कार्य पूर्वकी भाँति भलीभाँति उत्साहपूर्वक सम्पन्न होते रहे। पूर्ववत् सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार भी होता रहा। किन्तु कुछ दिनोंके बाद ही श्रीगौड़ीय मठके तत्कालीन सभापति आचार्यने श्रीरूपानुग आचार–विचारको परित्याग कर दिया तथा उच्छृंखल होकर वे भक्तिप्रतिकूल आचरणमें संलग्न हो गये। इससे सर्वत्र ही विशृंखलता फैल गयी। यह काल सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंके लिए अन्धकार–युगके समान था। कुछ मठवासी इस विशृंखलतासे अपने गृहस्थ जीवनमें लौट गये। बहुत–से मठवासीगण श्रीगौड़ीय मठ छोड़कर पृथक्–पृथक् अपना आश्रम–मठ आदि बनाकर साधन–भजन करने लग गये। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक विभिन्न भाषाओंकी पत्रिकाओं एवं भक्ति–ग्रन्थोंका प्रकाशन भी बन्द हो गया। धीरे–धीरे श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा, कार्त्तिक व्रत, श्रीव्यासपूजा आदि अनुष्ठान तथा प्रचार कार्य भी बन्द हो गये।

ऐसी स्थितिमें श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' प्रभु, पूज्यपाद श्रीभक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीपाद नरहरि ब्रह्मचारी 'सेवाविग्रह', श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी 'सेवानिकेतन', श्रीवीरचन्द ब्रह्मचारी, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल' प्रभु आदि अपने गुरु भाइयोंके साथ मायापुरसे नवद्वीप शहरमें चले आये और वहाँ तेघरीपाड़ामें किरायेके एक मकानमें

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापनाकर वहींसे शुद्धभक्तिका प्रचार करने लगे।

श्रील वंशीदास बाबाजी महाराजकी कृपाप्राप्ति

उन दिनोंमें भजनानन्दी श्रील वंशीदास बाबाजी महाराज कोलद्वीपके अन्तर्गत शहर नवद्वीपके निकट पुण्य सलिला श्रीगङ्गाके तटपर एक निर्जन स्थानमें भजन करते थे। ये सदैव श्रीश्रीराधागोविन्दकी भावमयी सेवामें निमग्न रहते थे। ये श्रीश्रीगौरनित्यानन्द श्रीविग्रहोंकी भावमयी सेवा-पूजा भी करते थे। कभी-कभी तो इनसे प्रेमकलह भी करते। बड़े-बड़े महात्माओंके लिए भी इनका अटपटा भावमय जीवनचरित्र समझना अत्यन्त दुष्कर होता था। श्रील सरस्वती प्रभुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके माध्यमसे इस महात्मासे परिचित हुए थे।

श्रील वंशीदास बाबाजी महाराज दुःसंगसे दूर रहनेके लिए अपने निकट आनेवाले बहुत-से दर्शनार्थियोंको गाली-गलौज देकर भगा देते। कभी-कभी अपनी भजनकुटीके आस-पास मृत मछलियोंके काँटे इत्यादि रख देते, जिससे साधारण लोग यह समझें कि ये इन सब चीजोंका व्यवहार करते हैं। वैसे लोग इनके दर्शन एवं शुद्ध हरिकथासे वञ्चित रहते। किन्तु विषयोंसे विरक्त, भजनशील श्रद्धालु लोगोंको समीप बैठाकर ये बड़ी प्रीतिसे भजनका उपदेश प्रदान करते थे।

एक दिन श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी 'कृतिरत्न' प्रभु श्रीबाबाजीकी भजन कुटीमें गये। बाबाजीने बड़े आदरपूर्वक इन्हें अपने समीप बिठाया। श्रीबाबाजी अपने अभिन्न बन्धु सतीर्थप्रवर श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके शिष्योंके प्रति विशेष स्नेह रखते थे। श्रीपाद कृतिरत्न प्रभुने देखा बाबाजी बैंगनको तवेपर तल रहे थे। उसे हाथसे ही पलट रहे थे। उस कार्यके लिए छोलनीका व्यवहार करनेके लिए अनुरोध करनेपर उन्होंने उत्तर दिया—"देखूँ, निताई-गौर क्या करते हैं?" उनके अद्भुत क्रियाकलाप और वैराग्य बड़े ही विस्मयकारी थे।

कभी-कभी बाबाजी लोकवञ्चनाके लिए हुक्केपर तम्बाकू सजाकर कहते—"आज आग नहीं, आज तम्बाकू नहीं।" फिर भी हुक्केकी गड़गड़ी या तल श्रीश्रीगौरनिताई विग्रहके सामने रख देते और प्रसादी करनेके

लिए कहते और फिर तुरन्त उत्तर पाकर कहते—“मेरे गौर-निताई तम्बाकू नहीं पीते।” अतिमर्त्य महाजनके हृदयमें कब क्या भाव उठता है, साधारण लोगोंके लिए समझना अत्यन्त कठिन है।

एक दिन कृतिरत्न प्रभु अपने अभिन्न सुहृद श्रीनरहरि प्रभुको साथ लेकर बाबाजीका दर्शन करने गये थे। इन्होंने देखा प्रसादी चायका वितरण हो रहा है। श्रीकृतिरत्न प्रभुने श्रीनरहरि प्रभुको बतलाया—“यह प्रसाद ग्रहण करनेसे हमें नरकगामी होना पड़ेगा। नीलकण्ठ महादेवके समान बाबाजी महाराज ही इसे हजम कर सकते हैं। हम साधारण लोग इसे ग्रहण करनेसे मर जायेंगे—‘तेजीयषां न दोषाय वह्वेः सर्वभुजो यथा।’ अलौकिक शक्तिसम्पन्न महापुरुषोंका अनुकरण करना उचित नहीं। उनके जीव-कल्याणकारी उपदेशोंका ही अनुशीलन करना हम साधारण लोगोंके लिए कर्त्तव्य है।”

एक अन्य दिन श्रीकृतिरत्न प्रभुने देखा बाबाजी महाराज भजनकुटीमें बैठे हुए निविष्ट चित्तसे भजन कर रहे थे। बहुत-से भक्तलोग उनका दर्शनकर कुछ-कुछ प्रणामी भी दे रहे थे। कोई एक भक्त उन पैसोंको बटोरकर रखने लगा। बाबाजीने झट उसे डाँटते हुए कहा—“थो, पैसा थो। जेखानकार पैसा सेखान थो। उत्पातेर कौड़ी चितपाते जाय अर्थात् पैसेको मत छुओ, जो जहाँ है वहीं रहने दो। भ्रष्टाचारका पैसा पतनका कारण होता है।” महापुरुषोंका प्रत्येक आचरण जगत्के कल्याणके लिए होता है। सच्चे भक्तिसाधकोंके लिए इन उपदेशोंका अत्यन्त महत्व है। महापुरुषोंके इन उपदेशोंका पालन करनेपर भजनमें क्रमशः उन्नति होती है। जीवन आनन्दमय हो उठता है तथा भजन-साधनमें सिद्धि होती है।

किसी दिन एक नवीन त्रिदण्डीसंन्यासी इनके दर्शनके लिए पधारे। बाबाजीने उन्हें प्रणाम करते देखकर कहा—“वांसकी कंची (?) कपड़ेमें लपेटनेसे ही दण्ड नहीं होता अथवा उसे धारण करनेसे ही त्रिदण्डी नहीं हुआ जाता। तन-मन-वचनको सब प्रकारसे भगवान्की सेवामें नियुक्त करनेपर ही त्रिदण्ड धारणकी सार्थकता है।” नवीन संन्यासी अत्यन्त सरल और सारग्राही थे। बाबाजीका उपदेश सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—“कि काज संन्यासे, मोर प्रेम—प्रयोजन। दास करि’ वेतन मोर देह प्रेमधन॥”

एक दिन कुछ भक्तजन श्रील बाबाजी महाराजके दर्शनके लिए उनकी भजनकुटीपर उपस्थित हुए। उन्होंने श्रीबाबाजी महाराजके चरणोंकी वन्दना की और उनके सामने ही श्रद्धापूर्वक श्रील नरोत्तम ठाकुर द्वारा रचित 'जे आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर' पदका कीर्त्तन करने लगे। इस विरह कीर्त्तनके अन्तमें 'पाषाणे कुटीब माथा अनले पशिव। गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेले पाव॥'—इस पदको पुनः-पुनः दुहराने लगे। इस आर्ति भरे विरह पदका तात्पर्य यह है कि इस पृथ्वीपर अहैतुकी कृपासे जिन्होंने ब्रह्मा, शिव आदिके लिए भी दुर्लभ कृष्णप्रेम सर्वसाधारणमें लुटाया, आज वे शचीनन्दन श्रीगौरहरि कहाँ हैं? उनके सङ्गी श्रील अद्वैताचार्य, स्वरूप दामोदर, राय रामानन्द, श्रीरूप, रघुनाथ आदि कहाँ हैं? उनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। मैं कहाँ जाऊँ? कहाँ जानेसे उनके चरणोंकी धूलि प्राप्त कर सकूँगा? यदि उनका दर्शन नहीं मिला, तो मैं पत्थरपर अपने सिरको दे मारूँगा अथवा जलती हुई आगमें प्रवेश कर जाऊँगा।

इस कीर्त्तनको सुनकर बाबाजी महाराज साथ-ही-साथ बोल उठे—"तुमने तो केवल गाना ही गाया। जिसका हृदय फटा, उसका फटा, तुमसे इसका कोई मतलब नहीं। अर्थात् पदकर्त्ताने जिस गम्भीर विरह-वेदनाके साथ इस पदको लिखा, क्या तुमने उसकी उपलब्धि करनेकी चेष्टा की है। पहले मिलन नहीं होनेसे ऐसे विरह या विप्रलम्भकी सम्भावना कहाँ? क्या तुम्हारे हृदयमें सम्बन्धज्ञानका उदय हुआ है?" कीर्त्तन करनेवाले भक्तोंमेंसे किसीने श्रीबाबाजीका अभिप्राय समझा या नहीं—कहा नहीं जा सकता। किन्तु उनका आशय बहुत ही उच्च कोटिका था।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना

श्रीनवद्वीपधाममें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना करनेके पश्चात् श्रीकृतिरत्न प्रभु सोचने लगे कि परमाराध्यतम श्रील प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवाकी पुनः स्थापना कैसे की जाये? श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित पारमार्थिक पत्रिकाओं एवं भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन अत्यन्त आवश्यक है। इसके बिना जगत्का कल्याण असम्भव है। यही प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट

सेवा है। श्रील प्रभुपादके चरणाश्रित भक्तजन आजकल चैतन्य मठमें स्थान न पानेके कारण कर्त्तव्यविमूढ़ होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। इन लोगोंको संगठितकर पुनः पूर्व उत्साहके साथ श्रील प्रभुपादका आदेश और निर्देश सर्वत्र प्रचार करना हमारा एकान्त कर्त्तव्य है। ऐसा सोचकर उन्होंने ३२/२ बोसपाड़ा लेन, बागबाजार, कलकत्तामें एक किरायेका मकान लिया। एक छोटा-सा प्रेस खरीदा। कुछ ही दिनोंमें श्रीत्रिगुणनाथ मुखर्जी महोदयने अपना गौराङ्ग प्रिन्टिङ्ग वर्क्स इन्हें अर्पण कर दिया। इससे उत्साहित होकर कृतिरत्न प्रभुने कुछ भक्तिग्रन्थोंको छापना आरम्भ किया। किन्तु दुर्भाग्यवशतः 'शिक्षा-दशमूलम्' का कम्पोज किया हुआ ३२ पृष्ठका पूरा मैटर चोरी चला गया। फिर भी ये हतोत्साहित नहीं हुए।

अप्रेल १९४० ई॰, वैशाख महीनेकी अक्षय तृतीयाके शुभ दिन उसी किरायेके मकानमें अपने कुछ गुरु-भ्राताओंके साथ उन्होंने 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' की स्थापना की। इनके गुरु-भ्राताओंमेंसे श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त प्रभु (श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज)[१], श्रीनृसिंहानन्द ब्रह्मचारी, श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी (श्रीलगुरुपादपद्मके शिष्य, श्रीगौड़ीय
??? वेदान्त समितिके वर्त्तमान सभापति एवं आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज) आदि उपस्थित थे।

समितिके नामकरणके सम्बन्धमें उनका आन्तरिक भाव, जिसे वे अपने भाषणोंमें प्रायः उल्लेख किया करते थे, यह था कि पारमार्थिक जीवनके निर्माणके लिए महाजनोंकी निर्मल शिक्षाका अवलम्बन करना परम आवश्यक है। श्रीवेदव्यासजीने जीवोंके सर्वोत्तम कल्याणके लिए ब्रह्मसूत्रकी रचना की है। ब्रह्मसूत्रका दूसरा नाम भक्तिसूत्र भी है। वेदोंके सारभागका नाम उपनिषद् या वेदान्त है। इन उपनिषदोंकी संख्या ११०० से भी अधिक है। इन उपनिषदोंका प्रतिपाद्य विषय निखिल अप्राकृत सद्गुणोंके आलय सर्वशक्तिमान, आनन्दमय परब्रह्मकी आराधना अर्थात् भक्ति है। जीव इस आराधनाके द्वारा ही जन्म, मृत्यु और त्रितापमय क्लेशसे सदाके लिए निवृत्त होकर परमानन्द पूर्णब्रह्म श्रीकृष्णकी प्रेममयी

??? [१] श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

सेवाकी प्राप्ति कर सकता है। इन वेदान्त या उपनिषदोंमें कहीं-कहीं आपात्-विरोधी मन्त्र या वाक्य दृष्टिगोचर होनेपर भी ये सभी एक तात्पर्यपर हैं, उनमें यथार्थतः परस्पर कोई भेद नहीं है। सर्वज्ञ श्रीवेदव्यासने इन उपनिषदोंके अत्यन्त दुर्गम एवं निगूढ़ सिद्धान्तोंको हृदयङ्गम करानेके लिए ५५० वेदान्तसूत्रोंकी रचना की है, जिसे ब्रह्मसूत्र, वेदान्तसूत्र या शारीरकसूत्र भी कहते हैं।

हमारे भारतीय आचार्योंने वेदान्तसूत्रोंका अपने-अपने भावोंके अनुरूप भाष्य लिखकर अपने-अपने मतकी पुष्टिका प्रयास किया है। सर्वज्ञ वेदव्यासने उसी समय जान लिया था कि भविष्यमें विभिन्न आचार्यगण अपने मतानुसार मेरे सूत्रोंकी टीका-व्याख्या आदि करेंगे। इसीलिए उन्होंने स्वयं ही उसका भाष्य लिखा, जो श्रीमद्भागवतके नामसे प्रसिद्ध है। उन्होंने स्वरचित पुराणोंमें इसे स्पष्ट रूपसे लिखा है—

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिवृंहितः॥

(गरुड़पुराण)

अर्थात् श्रीमद्भागवत ब्रह्मसूत्रका अर्थ, महाभारतका तात्पर्य-निर्णय गायत्रीका भाष्य और समस्त वेदोंके तात्पर्यका संवर्द्धन है।

और भी,

सर्ववेदान्तसारं हि श्रीमद्भागवतमिष्यते।
तद्रसामृततृप्तस्य नान्यत्र स्याद्रतिः क्वचित्॥

(श्रीमद्भा० १२/१३/१५)

अर्थात् समस्त वेदोंके सारको ही श्रीमद्भागवत कहा जाता है। जो इस रससुधाका पान करके छक चुका है, वह और किसी पुराण-शास्त्रमें नहीं रम सकता।

श्रीवेदव्यासने वेदान्तसूत्रमें 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां', 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्', इत्यादि सूत्रों द्वारा स्पष्ट रूपसे भगवद्भक्तिका प्रतिपादन किया है। साथ ही वेदान्त-भाष्य श्रीमद्भागवतमें भी 'स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।' 'मयि भक्तिर्हि

भूतानाममृतत्वाय कल्पते', 'यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपुरुषे। भक्तिरुत्पद्यते', 'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः' आदि श्लोकोंके द्वारा उक्त भक्तिका ही प्रतिपादन किया है। वेदान्तविद्‌चूड़ामणि श्रीजीव गोस्वामी तथा गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने शास्त्रीय प्रमाणों तथा अकाट्य युक्तियोंसे भक्तिको ही वेदान्तसूत्रका प्रतिपाद्य विषय प्रमाणित किया है। अतः भक्ति ही वेदान्तसूत्रका सिद्धान्ततः प्रतिपाद्य विषय है।

कुछ अर्वाचीन तथाकथित विद्वान लोग ज्ञान और मुक्तिको वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय सिद्ध करनेकी कष्ट-कल्पना करते हैं। किन्तु यह विशेष रूपसे लक्ष्य करनेकी बात है कि वेदान्तसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी 'ज्ञान' या 'मुक्ति' शब्दका उल्लेख नहीं है। आचार्य शङ्कर 'वैष्णवाणां यथा शम्भो' के अनुसार परम वैष्णव हैं। उन्होंने किसी विशेष कारणसे कपोल-कल्पित शास्त्रविरुद्ध केवलाद्वैतवाद या मायावादका प्रचार किया। अतः जीवोंके कल्याणके लिए विश्वमें सर्वत्र इस गूढ़ रहस्यका प्रचार करनेके लिए इस समितिका नामकरण श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति किया गया है।

भगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण आत्मनिर्भरता

श्रीकृतिरत्न प्रभु पूर्णतः अकिञ्चन और निष्किञ्चन वैष्णव थे। उन्होंने अपने जीवनमें कभी भी अपने सुख-स्वार्थके लिए एक पैसा भी संग्रह नहीं किया। कृष्णप्रीतिके लिए ही उनकी समस्त चेष्टाएँ होती थीं। उनका श्रीगुरुदेव एवं अपने आराध्य भगवान्‌में पूर्ण भरोसा था। इसीलिए वे रिक्तहस्त होकर ही श्रीधाम मायापुरसे निकले थे। वोसपाड़ा लेन स्थित श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके इस नये मठमें उनके साथ बहुत-से मठवासी गुरुभ्राता लोग थे। हाथमें एक भी पैसा नहीं था। भगवत्-कृपासे ही किसी प्रकार जीवनका निर्वाह करते हुए साधन-भजनमें तत्पर थे।

एकबार एकादशीका दिन था। श्रीकृतिरत्न प्रभु पूर्वाह्णके समय श्रीहरिनाम कर रहे थे। उस समय उनके गम्भीर मुखमण्डलसे ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो किसी गम्भीर भावमें निमग्न हैं। इतनेमें किसी ब्रह्मचारीने संवाद दिया कि श्रीपाद नारायण मुखर्जी आपसे मिलना चाहते

हैं। श्रील गुरुदेवने उन्हें आदरपूर्वक बैठकमें बिठानेके लिए आदेश दिया। श्रीपाद नारायण मुखर्जी उनके सतीर्थ गुरुभ्राता थे। कृतिरत्न प्रभु स्वभावतः अतिथियोंका आदर-सत्कार करते थे। परन्तु आज गुरुभ्राताकी सेवा-शुश्रुषाके लिए पासमें एक कौड़ी भी नहीं है, ऐसा सोचकर कुछ चिन्तित थे। इसी समय दैव इच्छासे इन्होंने देखा कि एक चिड़िया (गौरैया) चीं-चीं करती हुई उसी घरमें इधर-उधर उड़ती हुई पुनः-पुनः अपने घोंसलेमें आ-जा रही है। हठात् चिड़ियाने अपनी चोंचसे एक छोटी-सी पोटली उनके समीप गिरा दी। पोटलीके गिरते ही झन की आवाज हुई। उन्होंने कौतूहलवश पोटलीको उठाकर देखा, उसमें साढ़े छः आने पैसे थे। वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हीं पैसोंसे कुछ फल और मिठाई मँगवाकर भगवान्‌को निवेदितकर अपने गुरुभ्राताका सम्मान किया। गुरुभ्राताके स्नेहपूर्ण व्यवहारसे श्रीपाद नारायण मुखर्जी बड़े सन्तुष्ट हुए। अब परस्पर दोनोंमें प्रेममयी हरिकथाकी चर्चा होने लगी।

इसी समय डाकियेने भी श्रीविनोदविहारी प्रभुको एक सौ रुपयेका मनीआर्डर लाकर दिया। यह मनीआर्डर श्रीकृतिरत्न प्रभुके परम बन्धु गुरुभ्राता त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्ति सर्वस्व गिरि महाराजके द्वारा कानपुरसे भेजा गया था। मनीआर्डर पाते ही कृतिरत्न प्रभुकी आँखोंमें आँसू छलछला आये। उन्होंने इस घटनाको श्रीगुरुदेव एवं भगवान्‌की अहैतुकी कृपा माना। भगवान् श्रीकृष्णने भी गीतामें ऐसा कहा है कि जो अनन्य मनसे मेरे दिव्य स्वरूपका चिन्तन करते हुए भक्तिभावके साथ मेरा भजन करते हैं, उन एकनिष्ठ भक्तोंके भरण-पोषण और संरक्षणका भार मैं स्वयं वहन करता हूँ—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९/२२)

अतएव अतिथिवत्सल, आश्रितपालक, श्रीभगवान्‌के प्रति सम्पूर्ण रूपसे आत्मनिर्भर, आदर्श गुरुनिष्ठासम्पन्न भक्तकी वाञ्छा क्यों नहीं पूर्ण होती? करुणावरुणालय श्रीकृष्ण एक छोटी-सी चिड़ियाके द्वारा अर्थ प्रेरणकर अपना भक्त-वत्सल नाम क्यों नहीं सार्थक करते?

श्रीश्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज

यहाँ श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजका परिचय देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। ये श्रील प्रभुपादके दीक्षित एवं संन्यासी शिष्योंमें अन्यतम थे। ये आकुमार ब्रह्मचारी, मृदुभाषी, सरल, निष्कपट तथा अन्य वैष्णवोचित गुणोंसे सम्पन्न थे। विशेषतः हिन्दी, बँगला और अँग्रेजी भाषाके अपूर्व प्रभावशाली वक्ता थे। बहुत-से प्रदेशोंके गवर्नर, मुख्यमन्त्रीसे आरम्भकर बहुत उच्च शिक्षित सम्भ्रान्त एवं साधारण व्यक्ति भी इनसे बहुत प्रभावित थे। जन साधारणमें घुल-मिलकर उनमें श्रीहरिनाम एवं भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करना इनका एक प्रधान वैशिष्ट्य था। मुम्बई, पूना, कोल्हापुर, कानपुर आदि भारतके बड़े-बड़े नगरों और भारतके बाहर रंगून आदि स्थानोंमें भी उन्होंने भक्तिका प्रचार किया है। इन वैष्णवोचित सद्‌गुणोंके कारण नवद्वीपधाम प्रचारिणी सभाके विशेष अधिवेशनमें श्रील प्रभुपादके इच्छानुसार इन्हें विशेष धन्यवाद प्रदान किया गया था।

संन्यास-ग्रहण

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापनाके बाद महोपदेशक वैदान्तिक पण्डित श्रीकृतिरत्न प्रभु शुद्धभक्ति एवं नाम-प्रचारके लिए बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें तथा भारतके प्रसिद्ध-प्रसिद्ध नगरोंमें जाने लगे। १९४० ई॰ में श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके दिन मेदिनीपुर (बङ्गाल) शहरमें श्रीश्यामानन्द गौड़ीय मठकी प्रतिष्ठा हुई। उसमें श्रीपाद भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीपाद भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीपाद भक्तिविचार यायावर महाराज, श्रीपाद अप्राकृत भक्तिसारङ्ग गोस्वामी, श्रीपाद विनोदविहारी कृतिरत्न प्रभु, महोपदेशक श्रीपाद हयग्रीव ब्रह्मचारी, श्रीपाद स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी, श्रीपाद भूतभृत ब्रह्मचारी, श्रीपाद राधारमण ब्रह्मचारी (श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराज) प्रमुख संन्यासी-ब्रह्मचारी एवं सैकड़ों मठवासियोंने योगदान किया था। लगभग दस हजार श्रद्धालु इस महोत्सवमें सम्मिलित हुए थे। इस सम्मेलनमें श्रील प्रभुपादकी भक्तिधाराकी रक्षा करने तथा भावी भक्तिप्रचारकी रूपरेखा प्रस्तुत की गयी थी। साथ ही आगामी वर्षमें संयुक्त रूपसे कार्तिक व्रत-नियम सेवाके उपलक्ष्यमें

पैदल व्रजमण्डल परिक्रमाकी घोषणा भी की गयी। इसके पश्चात् श्रीकृतिरत्न प्रभुने उत्तरप्रदेश और पूर्वी बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करना आरम्भ किया।

इन्हीं दिनों एक दिन रात्रिके शेष भागमें इन्होंने स्वप्न देखा कि श्रील प्रभुपाद इनके दाहिने कन्धेपर हाथ रखकर बड़े ही गम्भीर स्वरसे कह रहे हैं—"तुमने अभी तक संन्यास नहीं लिया। मैं आज तुम्हें संन्यास दे रहा हूँ।" प्रभुपादके ऐसा कहनेके साथ ही संन्यासका सारा अनुष्ठान पूर्ण हो गया। श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराज श्रील प्रभुपादके इच्छानुसार संन्यास-ग्रहण पर्व समाप्त होनेपर 'केशव महाराज' की जय ध्वनि दे ही रहे थे कि उनकी निद्रा भङ्ग हो गयी। इन्होंने अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राताओंको इस स्वप्नका वृत्तान्त बतलाया। उन्होंने १०८ संन्यास नामोंमें 'केशव' नाम देखा और बड़े प्रसन्न हुए।

इससे पूर्व श्रील प्रभुपादने साक्षात् रूपसे कई बार अपने अन्तरङ्ग प्रिय सेवक श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको संन्यास देनेकी इच्छा की थी। वे कहते थे—विनोद तन-मन-वचनसे संन्यासी ही है। उसका केवल बाह्य वेश परिवर्तन करना बाकी है। एक समय श्रील प्रभुपादकी इच्छासे श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारीको संन्यास देनेका आयोजन पूर्ण हो चुका था। डोर-कौपीन, दण्ड आदि सारी सामग्रियाँ प्रस्तुत हो चुकी थीं। इसी समय गौड़ीय मिशनके सेक्रेटरी श्रीपाद कुञ्जविहारी विद्याभूषण प्रभुने श्रील प्रभुपादके चरणोंमें निवेदन किया कि श्रीविनोदविहारीको अभी संन्यास देनेसे मठ-मिशनकी रक्षा करना असम्भव हो जायेगा। इसलिए इस समय इनका संन्यास स्थगित रखनेकी आज्ञा दी जाये। इस प्रकार संन्यास नहीं हुआ। दूसरी बार भी इसी प्रकार बागबाजार गौड़ीय मठमें संन्यासका सारा आयोजन हो चुका था, किन्तु भागवतरत्न प्रभुकी विशेष प्रार्थनापर श्रील प्रभुपादने संन्यास नहीं दिया। तीसरी बार श्रील प्रभुपादने स्वप्नमें इन्हें संन्यास लेनेका आदेश देते हुए कहा कि विनोद तुमने अभी तक संन्यास नहीं लिया, मेरा सारा प्रचारकार्य चौपट हो रहा है। शेष चौथी बार स्वप्नमें श्रील प्रभुपाद द्वारा संन्यास ग्रहणका वृत्तान्त देखकर इस विषयको कृतिरत्न प्रभुने गम्भीरतासे ग्रहण किया। उन्होंने

श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास क्षेत्र कटवामें भाद्र पूर्णिमाकी पावन तिथिमें संन्यास ग्रहण करनेका सङ्कल्प ग्रहण किया।

पूर्व सङ्कल्पके अनुसार पूर्णिमा तिथिमें उन्होंने श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अनुकम्पित प्रियजन अप्राकृत साहित्यिक, कवि और दार्शनिक परम पूजनीय श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामीसे संस्कार-दीपिकाके पाञ्चरात्रिक विधानसे कटवामें त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया। इनका संन्यास-नाम त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज उद्घोषित हुआ। पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजने अनुष्ठानका पौरोहित्य किया। उन्होंने ब्रह्मचारीको कौपीन-बहिर्वास परिधानकी रीति सिखायी। श्रील श्रीधर महाराजने संन्यास-मन्त्र पाठ कराया। आज कुछ दिन पूर्व स्वप्नमें श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रदत्त संन्यास-वेश एवं संन्यास-नाम सम्पूर्ण रूपसे सार्थक हुआ। संन्यासके दिन श्रीकटवा धाममें श्रीलगुरुदेवके बहुत-से गुरुभ्राता संन्यासी एवं ब्रह्मचारी उपस्थित थे। श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत श्रीविनयभूषण बनर्जी 'भक्तिकेतन' महोदयने उस दिनके महोत्सवका सारा व्यय-भार वहन किया। सभी लोग शामको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटे।

बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

करुणाके घनविग्रह शचीनन्दन श्रीगौरहरिने श्रीलरूप-सनातन गोस्वामीको श्रीधाम वृन्दावनमें भेजते समय उन्हें अपना मनोऽभीष्ट पूर्ण करनेका निर्देश दिया था। ये निर्देश इस प्रकार हैं—

(१) भक्ति-ग्रन्थका प्रणयन

(२) वैष्णव-स्मृति शास्त्रका प्रचार

(३) लुप्त तीर्थों (व्रजमें कृष्णकी लीलास्थलियों) का उद्धार

(४) श्रीविग्रह-सेवाका प्रकाश

श्रीचैतन्य महाप्रभुके इन मनोऽभीष्ट कार्योंको श्रीरूप-सनातन आदि गोस्वामियोंने भलीभाँति पूर्ण किया। उन्होंने श्रीबृहद्भागवतामृत, श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि, षड्सन्दर्भ आदि प्रामाणिक भक्तिग्रन्थोंकी रचना की। श्रीहरिभक्तिविलास, सत्क्रियासार-दीपिका,

संस्कार-दीपिका आदि वैष्णव सात्त्वत सदाचार अर्थात् वैष्णव-स्मृति ग्रन्थोंका प्रणयन किया। श्रीव्रजमण्डलके बारह वनों, उपवनों, शाखा वनों तथा वहाँकी सारी कृष्णलीलास्थलियोंका पुनः प्रकाशन किया और श्रीधाम वृन्दावनमें श्रीमदनमोहन, श्रीगोविन्दजी, श्रीगोपीनाथजी, श्रीराधारमणजी, श्रीगोपीश्वर महादेव, श्रीराधादामोदर, श्रीराधाविनोद और काम्यवनमें कामेश्वर महादेव आदि श्रीविग्रहोंका प्रकाशकर श्रीमन्महाप्रभुके मनोऽभीष्टको पूर्ण किया। ठीक इसी प्रकार जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादने मुद्रणयन्त्र (बृहत्-मृदङ्ग) की स्थापना तथा उसके द्वारा श्रीगौरवाणीका प्रचार, श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा, भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन एवं प्रचार, भक्ति-सदाचारका पुनः प्रचलन एवं संरक्षण तथा लुप्ततीर्थोंका उद्धार आदि कार्योंके द्वारा श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके मनोऽभीष्टको पूर्ण किया। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रिय शिष्य त्रिदण्डी यति श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने भी श्रील प्रभुपादकी उपर्युक्त मनोऽभीष्ट सेवाओंको पूर्ण किया। श्रील प्रभुपादके पश्चात् श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा, भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन, शुद्धभक्तिका प्रचार, त्रिदण्डसंन्यास आदिकी धारा प्रायः लुप्त होने लगी थी। किन्तु इन आचार्यकेसरीकी बहुमुखी प्रतिभा एवं प्रबल प्रचारके कारण ही आज हम विश्वमें सर्वत्र भक्तिका पुनः प्रचार देख रहे हैं।

अब ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अदम्य उत्साहके साथ श्रील प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवा श्रीगौरवाणी—शुद्ध-भक्तिका सर्वत्र प्रचार करनेमें तत्पर हो गये। अब वे भगवती भागीरथीके पावन तटपर बसे हुए आस-पासके चन्दननगर, वैद्यवाटी, सेवड़ाफुली, श्रीरामपुर आदि शहरोंमें बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंका आयोजनकर श्रीमद्भागवत पाठ, प्रवचन, भाषण आदिके माध्यमसे शुद्धभक्तिका प्रचार करने लगे। उन-उन शहरोंके नगरपालिकाके अध्यक्ष, प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वकील, न्यायाधीश, शिक्षित सम्भ्रान्त एवं गणमान्य व्यक्तियोंने बड़े आदरसे अपना सहयोग देना आरम्भ किया। ये लोग बड़ी श्रद्धाके साथ मनोयोगपूर्वक इनके भाषण और प्रवचन श्रवण करते थे। ये लोग इतने प्रभावित हुए कि उन-उन स्थानोंमें स्वामीजीसे श्रीगौड़ीय मठकी स्थापनाके

लिए आग्रह भी करने लगे। कलकत्ताके सन्निकट चुँचुड़ा नामक शहरमें स्थानीय श्रद्धालु सज्जनोंने 'श्रीवास-महाप्रभुर वाटी' नामक देवालयको निशर्त दानकर उसमें श्रीगौड़ीय मठ स्थापित करनेके लिए विशेष आग्रह किया। उनके इस आग्रहको ये टाल नहीं सके और अप्रेल १९४३ ई॰ में उक्त देवालयको स्वीकारकर वहाँ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठकी स्थापना की। यह स्मरण रहे कि उक्त देवालयमें बहुत प्राचीन कालसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर श्रीवास पण्डित द्वारा सेवित श्रीविग्रह प्रतिष्ठित हैं एवं आज भी वैष्णव रीतिके अनुसार उन श्रीविग्रहोंका अर्चन-पूजन हो रहा है। अबसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रधान कार्यालय श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें ही स्थापित हो गया। वोसपाड़ा लेन स्थित 'गौड़ीय प्रिन्टिङ्ग प्रेस' भी इसी जगह स्थानान्तरित हो गया। श्रील गुरुपादपद्म सतीर्थ गुरुभ्राताओं एवं ब्रह्मचारियोंके साथ अधिकांशतः यहीं रहने लगे और यहींसे विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करने लगे।

श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाका पुनः प्रवर्तन

अब धीरे-धीरे विभिन्न स्थानोंमें भक्तिका प्रचार होनेके कारण अधिक संख्यामें श्रद्धालु एवं सज्जन व्यक्ति इनकी ओर आकर्षित होने लगे। श्रील प्रभुपादके बहुत-से गृहस्थ शिष्य, जो लोग तत्कालीन गौड़ीय मठके सञ्चालकोंके दुर्व्यवहार एवं असत् आचरणके कारण क्षुब्ध थे, अब वे सभी धीरे-धीरे आचार्यकेसरी श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके मधुर व्यवहार एवं शुद्धभक्तिके प्रचारके कारण उनके प्रति आकर्षित होकर पुनः उत्साहपूर्वक भजन करने लगे। उनके इस अपूर्व उत्साहको लक्ष्यकर इन्होंने १९४२ ई॰ में श्रीगौराविर्भावके उपलक्ष्यमें सप्ताहव्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा तथा श्रीगौरजन्मोत्सवका पुनः प्रवर्तन किया। इस अनुष्ठानमें बहुत-से श्रद्धालु सज्जन, त्यागी, ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा गृहस्थ वैष्णवोंने योगदानकर समितिके सदस्योंका उत्साह वर्द्धन किया। इन उत्सवोंका प्रधान लक्ष्य विश्ववासियोंको शुद्ध सत्सङ्ग प्राप्त करनेका सुयोग दान करना है। इसके द्वारा सत्सङ्गमें शुद्ध हरिकथा श्रवण, अभक्ष्य मद्य-मांस आदिसे परहेज, श्रीभगवान्‌की अर्चामूर्त्ति और

परिक्रमाके मध्य प्रसाद सेवा करते भक्तगण

परिक्रमाके मध्य नाट्यमन्दिरमें धर्मसभामें उपस्थित भक्तगण

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा

लीलास्थलियोंका दर्शन, उन लीलास्थलियोंका माहात्म्य श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके विविध अङ्गोंका एक साथ पालन करनेका सुवर्ण सुयोग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी सेवाका अपूर्व सुयोग प्राप्त होता है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने धाम-माहात्म्य ग्रन्थमें ऐसा लिखा है कि जो लोग वैष्णवोंके आनुगत्यमें श्रीनवद्वीपधामकी सोलह क्रोसकी परिक्रमा सम्पन्नकर श्रीधाम मायापुरका दर्शन करते हैं, श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु उनकी सारी अभीष्ट मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं तथा उन्हें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी प्रेममयी सेवामें सदाके लिए नियुक्त कर देते हैं।

आचार्य-लीलाका प्रकाश

अगले वर्ष मार्च १९४३ ई॰ में श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें सप्ताहव्यापी श्रीधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। पूर्व वर्षकी अपेक्षा संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ भक्तोंकी संख्या अत्यधिक थी। श्रीमन्महाप्रभुकी पालकीको लेकर सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ अपूर्व उत्साहके साथ श्रीधाम परिक्रमा सम्पन्न हुई। गुरुभ्राताओंके पुनः-पुनः अनुरोधपर इस बार श्रीगौर-जन्मोत्सवके दिन इन्होंने श्रीराधानाथ कुमार, श्रीमती मानदा सुन्दरी (वरिशाल) तथा श्रीमती हेमाङ्गिनी देवीको हरिनाम प्रदानकर आचार्य-लीलाका प्रकाश किया। ये श्रीराधानाथ कुमार ही बादमें त्रिदण्डसंन्यास ग्रहणकर त्रिण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजके नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीधाम परिक्रमाके पश्चात् विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करते हुए श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें कार्तिक नियम सेवा या दामोदर व्रतका अनुष्ठान किया और तत्पश्चात् श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कुछ दिन रहकर डा॰ कृष्णपद व्रजवासी और सज्जनसेवक ब्रह्मचारी आदि मठवासियोंको साथ लेकर पूर्व बङ्गालके बहुत-से स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा एवं रथ-यात्रा

६ जून, १९४४ ई॰ मङ्गलवारको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी स्नान-यात्रा सम्पन्न हुई। श्रील गुरुदेव स्वयं उस महोत्सवमें उपस्थित थे। एक सौ आठ घड़ोंके मन्त्रपूत सुवासित जलसे जय, शंखध्वनि तथा सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे श्रीजगन्नाथदेवका अभिषेक सम्पन्न हुआ। स्वामीजीने शामकी धर्मसभामें श्रीचैतन्यचरितामृतके माध्यमसे स्नान-यात्राके गूढ़ रहस्य और महिमाकी व्याख्या की। २० जून, १९४४ ई॰ को दस दिवस व्यापी श्रीजगन्नाथदेवका रथ-यात्रा महोत्सव प्रारम्भ हुआ। इसके उपलक्ष्यमें खुलना, मेदिनीपुर, वैंची, वेलघरिया आदि बहुत स्थानोंसे सैकड़ों गृहस्थ भक्तोंने योगदान किया था। प्रथम दिवस श्रील गुरुदेवने श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें वैष्णव साहित्यमें विरह तत्त्वके सम्बन्धमें एक अत्यन्त गम्भीर तत्त्वमूलक भाषण दिया। उसका सार तात्पर्य इस प्रकार है—

"विरह शब्दका तात्पर्य है—वि-रह अर्थात् विशेष रूपसे मिलन। श्रीजगन्नाथपुरीके गम्भीरामें विप्रलम्भ रसके मूर्त्तिमान विग्रह शचीनन्दन श्रीगौरहरिका जीवनचरित्र विप्रलम्भ या विरहका ज्वलन्त आदर्श है। उस समय वहाँ रात्रिकालके एकान्त निर्जन स्थानमें अपने अन्तरङ्ग परिकर श्रीस्वरूप दामोदर एवं राय रामानन्दजीके साथ कृष्णविरहमें नाना प्रकारके भावोंका आस्वादन करते थे। उस समय वे प्रायः अन्तर्दशामें माथुरविरहकातरा महाभावस्वरूपा श्रीमती राधिकाके भावमें विभावित होकर शरीरकी सुध-बुध खोकर विलाप करते थे। उनके दोनों अन्तरङ्ग परिकर स्वरूप दामोदर और राय रामानन्द श्रीमन्महाप्रभुके भावोंके अनुकूल श्रीमद्भागवत, गीतगोविन्द, कृष्णकर्णामृत, विद्यापति-चण्डीदास आदिके पदोंका गायन करते हुए उन्हें सान्त्वना देनेकी चेष्टा करते थे। राधाभावविभावित श्रीचैतन्य महाप्रभु कृष्णकी व्रजलीलाओंका हृदयमें विशेष रूपसे स्मरणकर कभी-कभी मूर्च्छित भी हो जाते। यह विशेष स्मरण ही विप्रलम्भ या विरह कहलाता है।

“वैष्णवोंके विरहोत्सवमें सत्-शिष्य अपने गुरु अथवा पूर्वाचार्योंकी विरहतिथिके दिन उन-उन महापुरुषोंके अलौकिक, अप्राकृत जीवन-चरित्रका विशेष रूपमें अनुशीलन करता है तथा उक्त दिन उनके उपदेशोंपर यथाशक्ति चलनेका सङ्कल्प ग्रहण करता है। यदि ऐसा अनुशीलन नहीं हुआ एवं केवल नाना प्रकारके सुमधुर महाप्रसादके आयोजनमें ही व्यस्त रहा गया, तो वह शुद्ध विरह-महोत्सव नहीं है।

“श्रीरामचन्द्रजीने लङ्काविजयके पश्चात् बहुत दिनों तक अयोध्यामें राज्य किया। ग्यारह हजार वर्षोंके बाद किसी विशेष कारणसे सीताजीका परित्याग करना पड़ा। वे विलाप करती हुई वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें उपस्थित हुईं। ऋषिने इन्हें आश्रय दिया। लव-कुशका जन्म हुआ। उन दोनों बालकोंने गान-विद्यामें पारङ्गत होकर श्रीरामकी सभामें वाल्मीकि रामायणके पदोंका गायन किया। श्रीरामने वाल्मीकिके माध्यमसे सीताजीको राजसभामें बुलाकर अपने पवित्र होनेका प्रमाण देनेको कहा। उस समय सीताजीने विलाप करते हुए अपनी माँ पृथ्वी देवीको आवाहन किया। सीताजी बोलीं—‘पृथ्वीदेवि! यदि मैं पवित्र हूँ, श्रीरामके अतिरिक्त अपने अन्तर्मनसे किसी पर पुरुषका स्पर्श न किया हो, तो तू फट जा और मुझे अपने अङ्कमें समाहित कर ले।’ उनका यह कहना था कि पृथ्वी फट गयी और उसमेंसे पृथ्वीदेवी प्रकट होकर सीताजीको अपनी गोदमें बैठाकर पुनः पातालमें प्रवेश कर गयी। स्वयं राम, उनके भाई और माताएँ, सभाके सभी लोग, विलाप करने लगे। किसी रङ्गमञ्चपर ‘सीताका पाताल प्रवेश’ का अभिनय हो रहा था। दूसरे दिन किसी अन्य मञ्चपर यही अभिनय होने जा रहा था। पहले दिनकी अपेक्षा इस अभिनयको देखनेके लिए अत्यधिक भीड़ थी। यदि विरहमें केवल दुःखकी ही अनुभूति होती, तो दुःख पानेके लिए और अधिक संख्यामें लोग क्यों एकत्रित होते? इससे प्रतीत होता है कि विरहमें भी एक अलौकिक आनन्दकी अनुभूति होती है। श्रीभगवान् एवं उनके परिकर भक्त सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। उनका प्राकृत जन्म-मरण अथवा सांसारिक क्लेश सम्भव नहीं है। इसलिए आराध्यदेवके विरहमें अथवा भगवद्भक्तोंके विरहमें बाह्यतः दुःखकी अनुभूति होनेपर भी आन्तरिक रूपमें एक दिव्य एवं अनिर्वचनीय आनन्दकी अनुभूति होती है। यही

विरहोत्सवका गूढ़ रहस्य है और इसीलिए वैष्णव साहित्यमें विरहको उत्सव (आनन्दप्रद) की संज्ञा दी गयी है।”

इनका ऐसा गम्भीर भाषण सुनकर उपस्थित सभी श्रोता मुग्ध एवं स्तब्ध रह गये। सर्वत्र ही इनके भाषणकी प्रशंसा होने लगी। शुद्ध भक्तोंने इस भाषणको अपने गलेका हार बना लिया।

२१ जून, गुरुवारके दिन श्रीजगन्नाथपुरीकी रीतिके अनुसार यहाँ भी गुण्डिचा मन्दिर मार्जन लीलाका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें झाड़ू एवं मिट्टीका कलश लेकर कुछ दूर स्थित श्रीश्यामसुन्दरके मन्दिरमें उपस्थित हुए। वहाँ श्रीमन्दिरको धो-पोंछकर श्रीजगन्नाथदेवके लिए निर्मल किया गया। श्रीगुरुदेवने श्रीचैतन्यचरितामृतसे गुण्डिचा मार्जनका प्रसङ्ग श्रवण कराया। श्रीगुण्डिचा मार्जनका तात्पर्य यह है कि साधक अपने हृदयसे विविध प्रकारके अनर्थों, अपराधों तथा सांसारिक आसक्तियोंको निकालकर उसमें अपने आराध्यदेव श्रीश्रीराधागोविन्दकी प्रतिष्ठा करें। बहुत दिनों तक श्रवण और कीर्त्तन करनेपर भी यदि भक्तिविरुद्ध इन गन्दगियोंको दूर करनेका प्रयास नहीं किया गया, तो ऐसे अपवित्र हृदयमें शुद्ध प्रेमका आविर्भाव नहीं होता। उनका श्रवण-कीर्त्तन कभी-कभी आभास या सर्वदा अपराधमूलक ही होता है। इसलिए साधकोंको बड़ी सावधानीसे इन अनर्थोंसे बचनेकी चेष्टा करनी चाहिये। यही गुण्डिचा मन्दिर मार्जनका तात्पर्य है।

तीसरे दिन रथ-यात्राके दिन इनके आनुगत्यमें नगरसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे चुँचुड़ा शहरके विभिन्न मार्गोंसे होते हुए श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरमें रथारूढ़ श्रीजगन्नाथदेव उपस्थित हुए। आजसे लेकर पूर्णयात्राके दिन तक जगन्नाथजी यहीं श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरमें विराजमान रहे। प्रतिदिन शामको श्रीगुरुदेव श्रीचैतन्यचरितामृतसे रथ-यात्राके प्रसङ्गकी आलोचना और व्याख्या करते थे। हेरा पञ्चमीके दिन श्रील गुरु महाराजने हेरा पञ्चमीके सम्बन्धमें अत्यन्त गूढ़ तत्त्वोंका रहस्योद्‌घाटन किया। १ जुलाई, शनिवारके दिन श्रीजगन्नाथजीने श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर अर्थात् सुन्दराचलसे नीलाचलरूप श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें पूर्ववत् नगर-सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे प्रत्यावर्तन किया। पुनर्यात्राके दिन श्रील गुरुदेवने श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवकी दृष्टिभङ्गीकी व्याख्या की। श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवके अनुसार

'सेई त पराननाथ पाइनूँ। जाहा लागि मदने झुरी गेलूँ' और उसी प्राणनाथको लेकर 'कृष्णे लइया व्रजे जाई' अर्थात् श्रीकृष्णको साथ लेकर हमलोग वृन्दावनमें लौट रही हैं—यही रथ-यात्राका गूढ़ रहस्य है।

उसी दिन रातमें महामहोत्सव हुआ। स्थानीय सभी लोगोंको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया।

विभिन्न स्थानोंमें प्रचार एवं श्रीनवद्वीपधाम आदिकी परिक्रमाके कारण क्रमशः मठवासियोंकी संख्या बढ़ने लगी। अब परमाराध्य श्रीलगुरुदेवने श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीपाद नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल', श्रीदीनार्तिहर ब्रह्मचारी, श्रीराधानाथ दास तथा श्रीविष्णुपदको पृथक् रूपमें प्रचारके लिए भेजा। वे बिहार प्रदेशके भागलपुर आदि विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करने लगे। इधर ये स्वयं मुकुन्दगोपाल व्रजवासी 'भक्तिमधु', श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी और भक्त अनिलको सङ्ग लेकर पश्चिम बङ्गालके जयनगर, मजिलपुर, विष्णुपुर, कृष्णचन्द्रपुर, अम्बुलिङ्ग, चक्रतीर्थ आदि विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर श्रीधाम नवद्वीपमें लौटे।

१९४४ ई॰ में श्रीनियमसेवा कार्तिकव्रतके उपलक्ष्यमें इन्होंने ८४ क्रोस व्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन किया। इस परिक्रमामें श्रीलगुरु महाराजके साथ त्रिदण्डिस्वामी भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज, श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराज, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल' प्रमुख संन्यासी-ब्रह्मचारीने योगदान किया था। वनभ्रमणके समय यात्रियोंकी सुविधाके लिए बहुत-सी शिविकाओंकी व्यवस्था की गयी थी। प्रतिदिन श्रीमन्महाप्रभुके अर्चाविग्रहका अर्चन-पूजन, भोग-राग, कीर्त्तन तथा कृष्णलीलास्थलियोंका माहात्म्य वर्णन नियमित रूपसे होता था। लगभग ४० दिनोंमें परिक्रमा समाप्त हुई और सारे यात्रीगण प्रसन्नचित्तसे अपने-अपने स्थानको लौट गये।

चौरासी कोस क्षेत्रमण्डल परिक्रमा

१९४५ ई॰ में श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमाके पश्चात् श्रील गुरुदेव, श्रीदीनदयाल ब्रह्मचारी, सज्जनसेवक ब्रह्मचारी तथा अनङ्गमोहन ब्रह्मचारी

आदिको साथ लेकर श्रीक्षेत्रमण्डल परिक्रमाके आयोजनके लिए उड़ीसा प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें परिभ्रमण किया। साथ ही उन स्थानोंमें शुद्धभक्तिका बड़े उत्साहपूर्वक प्रचार किया। इस भावी परिक्रमाके लिए वे बालेश्वर, श्रीजगन्नाथपुरी, कटक, बासुलीशाही, आलालनाथ, चिल्का ह्रदके तटपर बसे हुए वोरकुदी, कालूपाड़ा घाट, रणपुरगढ़ स्टेट, सोनावली (यहाँ श्रीमन्महाप्रभुका पादपीठ है), नयरगढ़, खण्डपाड़ा, कंटीला (श्रीनीलमाधव), नरसिंहपुर, खुर्दारोड आदि स्थानोंमें परिभ्रमण किया। श्रीमन्महाप्रभु दक्षिणकी यात्राके समय इन सब स्थानोंसे होकर गये थे। श्रीमन्महाप्रभुके एकनिष्ठ भक्तोंकी हार्दिक अभिलाषा उन-उन स्थानोंमें परिभ्रमण करनेकी होती है, जहाँ श्रीमन्महाप्रभुजीने अपने परिकरोंके साथ भावमें विभोर होकर परिभ्रमण किया था। श्रील गुरुदेव भी श्रीमन्महाप्रभुकी स्मृति जागृत करनेके लिए शुद्ध भक्तोंके साथ इन स्थानोंकी परिक्रमा करना चाहते थे। इसलिए भावी परिक्रमाकी रूप-रेखा प्रस्तुतकर वे उद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें लौटे।

इस प्रकार क्षेत्रमण्डल परिक्रमाकी सारी व्यवस्था हो जानेपर १६ अक्टूबर, १९४५ ई॰ को भारतके विभिन्न स्थानोंसे आये हुए यात्रियों, संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंके साथ श्रील गुरुदेवने हावड़ा स्टेशनसे रिजर्व रेल डिब्बेके द्वारा श्रीपुरीधामकी यात्रा की। दूसरे दिन पुरी पहुँचकर यात्रा-पार्टीने विश्राम किया। इसके पश्चात् श्रीमन्महाप्रभुके विजयविग्रहके आनुगत्यमें श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव स्थली 'भक्तिकुटीर' (श्रीभक्तिविनोद ठाकुरका भजनस्थल), श्रील हरिदास ठाकुरकी भजनस्थली, सिद्ध बकुल, उनकी समाधि, पुरुषोत्तम मठ, टोटा गोपीनाथ तथा श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें श्रीजगन्नाथ, बलदेव और सुभद्राका दर्शन किया गया। सन्ध्याके समय श्रील गुरु महाराजने धाम-माहात्म्यका वर्णन करते हुए बतलाया कि पुरुषोत्तम क्षेत्रकी चारों ओर दश योजनकी सीमामें अवस्थित है। यह क्षेत्र केवल पुरीमें ही अथवा पाँच क्रोसमें ही सीमित नहीं है। बल्कि इसकी सीमा ८४ क्रोसकी है। इस क्षेत्रका आकार शङ्खके समान है। यदि कोई व्यक्ति इस ८४ क्रोसकी सीमामें जगन्नाथजीका स्मरण करता हुआ शरीर त्याग करता है, तो उसे वैकुण्ठकी गति होती है, उसे फिर कभी माताके गर्भमें जन्म लेना नहीं होता है। यह पुरीधाम वही

क्षेत्र है, जहाँ किसी सत्युगमें इन्द्रद्युम्न महाराज अपनी पत्नी एवं प्रजाको साथ लेकर यहाँ आये थे। उन्होंने ही यहाँ विशाल श्रीमन्दिरका निर्माण किया तथा अपनी आराधनासे श्रीनीलमाधवको प्रसन्नकर श्रीश्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा एवं सुदर्शन—इन चार विग्रहोंके रूपमें श्रीनीलमाधवको उक्त मन्दिरमें स्थापित किया। उन्हींकी व्यवस्थानुसार आज भी विशेष रीतिके अनुसार श्रीजगन्नाथजीका भोग लगता है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने संन्यासके पश्चात् अपनी माताके आदेशसे इसी जगन्नाथपुरीकी गम्भीरामें अपने परिकरोंके साथ वासकर अपनी त्रिविध वांछाओंको पूर्ण किया था। सौभाग्यवान व्यक्ति ही श्रीगौरपदाङ्कित स्थानोंमें भ्रमण एवं दर्शनका सुयोग लाभ करते हैं।

दूसरे दिन चटक पर्वत, टोटा गोपीनाथ, यमेश्वर टोटा, लोकनाथ शिव, पुरी गोस्वामीका कूप, मार्कण्डेय सरोवर, नरेन्द्र सरोवर, इन्द्रद्युम्न सरोवर, गुण्डिचा मन्दिर, चक्रतीर्थ एवं स्वर्गद्वारका दर्शन किया।

तीसरे दिन श्रीशङ्कराचार्य द्वारा स्थापित गोवर्द्धन मठ, सातलहरिया मठ, श्रीरामानुज द्वारा स्थापित मठ, जगन्नाथ वाटिका आदि अन्यान्य प्रसिद्ध स्थानोंका दर्शनकर परिक्रमापार्टी अलालनाथमें उपस्थित हुई। अलालनाथ एक प्रसिद्ध स्थान है। श्री सम्प्रदायके अलवारों द्वारा सेवित विग्रह होनेके नाते विग्रहका नाम श्रीअलवरनाथ या अलालनाथ है। श्रीमन्महाप्रभु स्नान-यात्राके पश्चात् अनवसर कालमें श्रीजगन्नाथके दर्शनके अभावमें विरहमें कातर होकर श्रीअलालनाथके श्रीमन्दिरमें पधारते थे। उस समय विरहावस्थामें श्रीमन्दिरके संलग्न जिस पत्थरपर साष्टाङ्ग प्रणाम करते वह पत्थर भी पिघल जाता और उसपर उनके श्रीअङ्गोंकी छाप पड़ जाती। उन पत्थरोंमें आज भी एक पत्थर उनके श्रीअङ्गोंकी छाप लिए हुए विद्यमान है। यात्रियोंने बड़ी श्रद्धासे उस शिलाका भी दर्शन और पूजन किया। पास ही के दूसरे गाँवमें महाप्रभुके परिकर श्रीरायरामानन्द, शिखिमाईति, इनकी बहन माधवीदेवीका गृह और उनकी भजनकुटी आज भी दर्शनीय है।

चिल्का ह्रदके निकट एक ऐसा भी गाँव है, जहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरण पड़े थे। उस गाँवके सम्बन्धमें एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक तथ्य है कि महाराज प्रतापरुद्रके पिता पुरुषोत्तम जानाका विवाह विद्यानगरके

महाराजाकी कन्यासे होनेवाला था। किन्तु विद्यानगरके नरेशको जब यह पता चला कि बड़े जाना रथ-यात्राके समय श्रीजगन्नाथजीके रथके सामने झाड़ू देता है, तब उन्होंने उस विवाहको स्थगित कर दिया। इसपर पुरुषोत्तम जानाने अपनी सेनाके साथ विद्यानगरपर आक्रमण किया, किन्तु उस युद्धमें बुरी तरहसे पराजित होकर लौटे। वे श्रीजगन्नाथ एवं श्रीबलदेवजीसे बड़े दुःखी होकर पुनः युद्धमें विजयी होनेकी प्रार्थना की। उन्हें श्रीजगन्नाथजीसे कुछ ऐसे शुभ सङ्केत मिले कि उन्होंने उनकी प्रार्थना ग्रहण कर ली है। इन्होंने बड़े जोशसे अपनी पूरी सेनाके साथ यात्रा की।

इधर श्रीजगन्नाथ एवं श्रीबलदेव भी अपने प्रिय सेवककी सहायताके लिए लाल एवं सफेद दो घोड़ोंपर चढ़कर युवक सैनिकके वेशमें चल पड़े। रास्तेमें सिरपर दहीका कलश ली हुई एक बुढ़िया मिली। इन दोनोंने प्यासके कारण उसका दही पीनेके लिए माँगा। जब बुढ़ियाने पैसा माँगा, तो दोनों घुड़सवारोंमेंसे एकने अपने सोनेकी अँगूठी निकालकर उस बुढ़ियाको दे दी और कहा कि माताजी हम राजाके सैनिक हैं। पीछेसे सेनाके साथ महाराज आ रहे हैं, उन्हें यह अँगूठी दिखाकर पैसे माँग लेना। यह कहकर दोनों आगे निकल गये। थोड़ी देर बाद ही जब राजकुमार सेनाके साथ वहाँ उपस्थित हुए तो बुढ़ियाने उक्त अँगूठीको दिखाकर उनसे अपने दहीका पैसा माँगा। उस अँगूठीपर 'श्रीजगन्नाथ' अंकित था तथा वह स्वयं उन्हींके द्वारा भेंट की हुई थी। राजाकी आँखोंमें आँसू छलक आये। उन्हें विश्वास हो गया कि हमारे आराध्यदेव जगन्नाथ एवं बलदेव हमारे लिए युद्ध करनेके लिए आगे-आगे चल रहे हैं। इस युद्धमें उनकी विजय हुई। राजाने बुढ़ियाको उस गाँवकी पूरी जमींदारी ताम्रपत्रपर लिखकर दे दी। आज भी उसके वंशज उस जमींदारीका भोग कर रहे हैं।

वहाँसे परिक्रमा पार्टी चिल्काह्रदकी एक सीमापर वोराकुदी स्थित स्थानमें पहुँची। यहाँका प्राकृतिक सौन्दर्य बड़ा ही रमणीय है। यहाँसे बहुत-सी नौकाओंके द्वारा चिल्काह्रदको पारकर यात्री लोग रणपुरगढ़ पहुँचे। इन सब स्थानोंमें परिक्रमा करते समय यात्रियोंको गम्भीर एवं घने जङ्गलसे गुजरना पड़ा। उस वनमें भयङ्कर बाघ आदि हिंसक जन्तु

रहते थे। बड़ी सावधानीसे सुरक्षाके बीच यात्री लोग पैदल चलते थे। इतना होनेपर भी प्रतिदिन अर्चन-पूजन, भोग-राग, पाठ-प्रवचन नियमित रूपसे चलता था।

यहीं चिल्काह्लदके पास ही किसी गाँवमें श्रीबलदेव विद्याभूषणका आविर्भाव हुआ था। श्रील गुरुदेवने शामकी धर्मसभामें श्रीबलदेव विद्याभूषणके अतिमर्त्य चरित्रपर प्रकाश डाला। "बलदेव विद्याभूषण बाल्यकालसे ही अलौकिक मेधासम्पन्न, प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। ये यहींपर संस्कृत भाषामें पारङ्गत होकर विशेष शिक्षाके लिए श्रील मध्वाचार्यके स्थान दक्षिण भारतके उडूपीमें गये। वहाँपर उन्होंने मध्वाचार्य द्वारा रचित वेदान्तसूत्रके अणुभाष्य आदि ग्रन्थोंके सहित मध्व सम्प्रदायके रचित अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थोंका विशेष रूपसे अध्ययन किया। साथ ही उन्होंने श्रीरामानुज द्वारा रचित श्री-भाष्यका भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् पुरीमें श्रीश्यामानन्दकी शिष्य-परम्परामें नयनानन्दके अनुगृहीत श्रीराधादामोदर गोस्वामीसे इनकी भेंट हुई। उनके दार्शनिक विचारोंसे ये इतने प्रभावित हुए कि उनसे दीक्षा लेकर गौड़ीय वैष्णवोंके सिद्धान्तमें प्रवेश करनेके लिए श्रीधाम वृन्दावनमें सिद्धान्तविद परम रसिक श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके निकट पहुँचे। अपना शेष जीवन श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी सेवामें अर्पणकर उनसे षड्गोस्वामी आदिके प्रसिद्ध ग्रन्थोंका अध्ययन किया। श्रीचक्रवर्ती ठाकुरने इन्हें सब प्रकारसे योग्य देखकर जयपुर स्थित गलतागद्दीमें भेजा जहाँ एक विचारसभामें गौड़ीय वैष्णवोंके विरोधी विचारवाले रामानन्दी आदि विद्वानोंको पराजितकर गौड़ीय सिद्धान्तोंकी स्थापना की। इसी अवसरपर उन्होंने ब्रह्मसूत्रका गोविन्दभाष्य भी प्रस्तुत किया। इस घटनाके द्वारा गौड़ीय सम्प्रदायकी चारों तरफ बड़ी प्रतिष्ठा हुई।"

श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके एक दृढ़ स्तम्भ हैं। रूपानुग वैष्णवाचार्योंमें एक प्रधान आचार्य हैं। आजकल कुछ अर्वाचीन तथाकथित गौड़ीय वैष्णव इन्हें गौड़ीय वैष्णव आचार्यके रूपमें स्वीकार नहीं करते। यह उनका परम दुर्भाग्य है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने ऐसे अनभिज्ञ लोगोंको कलिका गुप्तचर बतलाया है। प्रसङ्गवशतः श्रील गुरुदेवने यह भी बतलाया कि "'एकमेवाद्वितीयम्' का तात्पर्य एक

निराकार निर्विशेष ब्रह्मसे नहीं है। यहाँ अद्वितीय कहनेसे अनेकमेंसे एक असमोर्द्ध्व, अद्वितीय तत्त्वका बोध होता है। एकम् कहनेसे ONE अथवा १ संख्याका बोध नहीं होता। क्योंकि ONE में तीन अक्षर हैं। लाखों बिन्दु मिलकर १ बनता है। वे ब्रह्म वस्तु—He is second to none। उक्त सूत्रमें जिस 'एक' का उल्लेख किया गया है वह All inclusive one है। दूसरे शब्दोंमें उसे Unity in diversity कहा जा सकता है। वे सर्वशक्तिमान भगवान् अपने श्रीनाम-गुण-लीला-परिकर वैशिष्ट्य तथा नित्य चिल्लीला वैशिष्ट्यके साथ ही एक हैं। यहाँ human body and mile post का उदाहरण दिया जा सकता है। जिस प्रकार सारे अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको लेकर ही मनुष्य शरीर है। किसी भी अङ्गको छोड़कर पूर्ण शरीर स्वीकृत नहीं होता। उस शरीरमें भी आँख, नाक, कान, जिह्वा आदि अङ्गोंमें भी नाना प्रकारके वैशिष्ट्य होते हैं। जैसे बाईं और दाईं आखें एक नहीं हैं। दोनों नेत्रोंका कार्य अलग-अलग होता है। आँखोंमें भी उसकी पलकें, पलकोंमें रोएँ, नेत्रके भीतरी भागमें पुतली आदि बहुत-से प्रत्यङ्ग भी होते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य अङ्गोंमें भी नाना प्रकारके वैशिष्ट्य विद्यमान रहते हैं। Mile post में भी आठ फार्लांगका एक उपसम होता है। रास्तेमें एक फार्लांग दो फार्लांगसे लेकर सात फार्लांगके post देखे जाते हैं। तत्पश्चात् एक मीलवाला पत्थर आता है। तत्पश्चात् पुनः एक से लेकर सात फार्लांगके पश्चात् दूसरा mile post दृष्टिगोचर होता है। यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि छः सात फार्लांगके बाद एक मील हो रहा है। अथच आठ फार्लांगका एक मील होता है। इससे क्या सिद्ध होता है कि आठ फार्लांग नामक कोई वस्तु ही नहीं है। एक मीलके अन्तर्गत आठ फार्लांगका हिसाब अन्तर्भुक्त है। इसी प्रकार लीला पुरुषोत्तम श्रीभगवान् अपने सारे चिल्लीला वैचित्र्यको लेकर ही एक हैं। इस चिल्लीला वैचित्र्यपूर्ण जगत्में उनके समान हमारा कोई और हितकारी बन्धु नहीं है। इस सिद्धान्तको समझानेके लिए 'एकमेवाद्वितीयम्' सूत्रकी अवतारणा की गयी है।"

इस प्रकार रणपुरगढ़से परिक्रमापार्टी नयागढ़ स्टेटमें पहुँची। वहाँ यात्रीसंघकी राजकीय सम्मानके साथ अभ्यर्थना की गयी। वहींपर

श्रीगोवर्धनकी पूजा और अन्नकूट महोत्सवका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। वहाँके राजा बहादुरने अपने आत्मीय स्वजनोंके साथ अन्नकूटमें योगदान किया। तत्पश्चात् परिक्रमापार्टी खण्डपारा होकर कंटीला (नीलमाधव) में पहुँची। वहाँ उन्होंने पहाड़ीके ऊपर नीलमाधवका दर्शन किया। नीलमाधवके सम्बन्धमें पुराणोंमें यह कथा वर्णित है कि सत्ययुगमें अवन्ती प्रदेशके राजा इन्द्रद्युम्न महाराज कुछ तीर्थयात्रियोंसे नीलसमुद्रके सन्निकट विराजमान श्रीनीलमाधवका माहात्म्य श्रवणकर बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने अपने विशेष दूतोंको किस स्थानपर वे विराजमान हैं, यह पता लगाने भेजा। उन दूतोंमें उनके पुरोहितके पुत्र विद्यापति अनुसन्धान करते-करते महासागरके किनारे इस स्थानके निकट पहुँचे। शामके समय उस गाँवके प्रधान (शबर जाति) विश्वावसुके घर पहुँचे। उन्हें कुछ ऐसी बातें मालूम हुईं जिनसे उन्हें अनुमान हुआ कि उस नीलमाधवके पुजारी ये विश्वावसु ही हैं। उन्होंने उनकी युवा कन्यासे विवाह कर लिया। कुछ दिनोंके पश्चात् अपनी पत्निसे यह पता लगानेके लिए कहा कि तुम्हारे पिताजी कहाँ और किसकी पूजा करनेके लिए जाते हैं, तथा उसे दर्शन करानेके लिए अनुरोध करवाया। विश्वावसुने उनकी आँखोंपर काली पट्टी बाँधकर उसे पहाड़ियोंके ऊपर स्थित श्रीनीलमाधवके मन्दिरमें ले गया। वहाँ उनकी पट्टी खोल दी। पुरोहित पुत्रकी इच्छा पूर्ण हुई। इसी बीच विश्वावसु पुष्पचयनके लिए मन्दिरके बगीचेमें चले गये। पुरोहित पुत्रने एक आश्चर्यमयी घटना देखी। मन्दिरके सामने एक सरोवर था। एक पेड़की डाल सरोवरके ऊपरसे चली गयी थी। उसपर एक कौआ बैठा हुआ ऊँघ रहा था। वह पानीमें गिरकर मर गया। साथ ही उस कौएकी आत्मा दिव्य चतुर्भुज रूप धारणकर एक दिव्य विमानमें आरूढ़ होकर वैकुण्ठ चली गयी। ये भी उस दृश्यको देखकर उस सरोवरमें कूदना ही चाहते थे कि एक गम्भीर आकाशवाणी सुनायी पड़ी—"तुम्हारे द्वारा बहुत कार्य होना है। अभी प्रतीक्षा करो।" तत्पश्चात् ब्राह्मणपुत्र नीलमाधवका दर्शनकर विश्वावसुके साथ लौटा और वहाँसे अवन्ती नगरीमें अपने राजाके पास पहुँचकर नीलमाधवका संवाद दिया।

महाराज इन्द्रद्युम्नने अपने कुटुम्बियों और सारी सेनाके साथ नीलमाधवके दर्शनके लिए कूच किया। परन्तु जब वे इस स्थानपर

पहुँचे तो उन्हें केवल बालूका ही पर्वत दिखायी पड़ा। नीलमाधवका कहीं पता नहीं था। असहाय होकर महाराज समुद्रके किनारे नीलमाधवके दर्शनोंके लिए आराधनामें तत्पर हो गये। नीलमाधवने उन्हें दर्शन देकर निर्देश दिया कि मैं अब अपने इस नीलमाधव रूपमें नहीं, वरं श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा और सुदर्शनके रूपमें प्रकटित होकर तुम्हारी सेवा ग्रहण करूँगा और जगत्के लोगोंको दर्शन देता रहूँगा।

यात्रियोंने इन नीलमाधवके प्रतिभू विग्रहका वहाँ दर्शन किया। यहाँपर गुरुमहाराजजीने शास्त्रोंमें वर्णित प्रसिद्ध नीलमाधवका उपाख्यान वर्णन किया। वहाँसे कटक, भुवनेश्वर आदि स्थानोंका दर्शनकर पुरीधाममें परिक्रमासंघ लौटा और १९ नवम्बरको परिक्रमाकी समाप्तिकर सभी लोग अपने-अपने स्थानको लौटे। भुवनेश्वर, भारतका प्रधान तीर्थस्थल है। इसका दूसरा नाम एकाम्र कानन भी है। यह स्थान श्रीक्षेत्रके अन्तर्गत पड़ता है। श्रीजगन्नाथ क्षेत्रकी महिमासे अवगत होकर पार्वतीजीने इस एकाम्र कानमें आकर भगवद्दर्शनके लिए बड़ी कठोर तपस्या आरम्भ की। भगवान् श्रीहरि वासुदेवकृष्णके रूपमें इनके सामने प्रकट हो गये। पार्वतीकी कठोर आराधना देखकर उनकी आँखोंसे एक अश्रुबूँद टपक पड़ा, जिससे यह विराट सरोवर बन गया। इसलिए इस सरोवरका नाम बिन्दुसरोवर पड़ा। कहते हैं कि उत्तरमें हिमालय और दक्षिणमें बिन्दुसरोवरके बीच निवास करनेवाले आर्योंको बादमें हिन्दु कहा गया। हिमालयका प्रथम अक्षर 'हि' और बिन्दुका अन्तिम अक्षर 'न्दु' मिलकर हिन्दु शब्द बना है। इस स्थानपर विशालकाय शिवलिङ्ग है, जो भुवनेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। पास ही श्रीअनन्त वासुदेवका श्रीमन्दिर है। इस वासुदेव मन्दिरमें भोग लगनेपर वही महाप्रसाद भुवनेश्वर महादेवको अर्पित होता है। इसलिए वैष्णव लोग अन्यत्र कहीं भी श्रीमहादेवका प्रसाद नहीं ग्रहण करनेपर भी यहाँ श्रीभुवनेश्वरका प्रसाद ग्रहण करते हैं। (किन्तु वहाँ अब यह प्रथा बन्द होनेके कारण वैष्णवगण वहाँ भी महाप्रसाद ग्रहण नहीं करते, केवल अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें ही प्रसाद ग्रहण करते हैं।)

शिष्य वात्सल्य

परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव १९४६ ई॰ में कार्तिक उर्जाव्रत-नियमसेवा पालन करनेके लिए बहुत-से संन्यासी, ब्रह्मचारी और गृहस्थ भक्तोंके साथ काशी धाममें पधारे। वहाँ एक महीने तक काशीकी बृहत् एवं पञ्चकोसी परिक्रमा की गयी तथा नियमित रूपसे पूर्व-पूर्व वर्षोंकी भाँति श्रीनामसङ्कीर्त्तन, भक्तिग्रन्थोंका पाठ, प्रवचन आदि सम्पन्न हुए। श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, नवद्वीपमें लौटकर श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी, श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी आदि कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीगुरुदेवने मेदिनीपुरके झिनुकखली, पूर्वचक, बेगुनावाड़ी, कल्याणपुर आदि स्थानोंमें विपुल भावसे शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

कल्याणपुरमें श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी हठात् अस्वस्थ हो गये। वे एकनिष्ठ गुरुसेवक थे। उनका गला अत्यन्त ही मधुर था। वे सुन्दर स्वरसे कीर्त्तन करते थे। मृदङ्ग बजानेमें भी वे बड़े पटु थे। साथ ही वे नैवेद्यरन्धन और गुरुदेवकी व्यक्तिगत सेवामें भी बहुत कुशल थे। उनके वैष्णवोचित सर्वगुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण सभी लोग उनसे बड़ी प्रीति रखते थे। उनके अस्वस्थ होनेपर श्रील गुरुदेव उन्हें साथ लेकर कलकत्ता लौट आये। वहाँके एक प्रसिद्ध चिकित्सक कैप्टेन डी॰ एल॰ सरकार (होमियोपैथिक) की चिकित्सा आरम्भ हुई और उनके परामर्शके अनुसार श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारीको बङ्गाल और बिहारकी सीमापर एक निर्जन, मनोरम और स्वास्थकर स्थान सिधावाड़ीमें लाया गया। श्रील गुरुदेव स्वयं उनके साथ गये। वहाँपर ब्रह्मचारीजीके स्वास्थ्यमें कुछ उन्नति नहीं होनेपर श्रील गुरुमहाराज त्रिगुणातीत दास ब्रह्मचारी, श्रीगौरनारायण दासाधिकारी, श्रीसज्जन सेवक ब्रह्मचारी, श्रीगोवर्धन ब्रह्मचारी आदिको साथमें लेकर उन्हें स्वास्थ्यवर्धक स्थान वैद्यनाथधाम—देवघर ले आये। किन्तु यहाँ भी कोई विशेष लाभ नहीं होनेपर ब्रह्मचारीजीको सिधावाड़ी होते हुए मद्रास टम्बरम टी॰बी॰ सेनेटोरियममें भर्ती करवाया। उनकी चिकित्सा और शुश्रूषाकी सारी व्यवस्था कराकर वे कलकत्ताके मठमें लौटे। उन्होंने रोगीकी सेवा-शुश्रुषाके लिए श्रीत्रिगुणातीत ब्रह्मचारी और गौरनारायण दासाधिकारीको टम्बरम अस्पतालमें ही रख दिया। यहाँ चिकित्साकी

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी एवं श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारी

सारी व्यवस्था उपलब्ध होनेपर भी उन्हें बचाया नहीं जा सका। २ मार्च, १९५० ई॰ को उनका परलोक गमन हो गया।

मैं उनके परलोक गमनके समय स्वयं उनके निकट था। मैंने कभी भी उनका मुख मलिन नहीं देखा। वे सब समय भगवन्नाम करते हुए प्रसन्न रहते थे। नियमित रूपमें वे हमलोगोंसे श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृतका प्रीतिपूर्वक श्रवण करते थे। उनके मृदु व्यवहारसे वहाँके छोटे-बड़े सभी डॅक्टर बड़े आकर्षित थे। परलोक गमनके दिन हठात् बोलने लगे—"मुझे श्रीश्रीराधाकृष्ण वृन्दावनमें बुला रहे हैं। जय श्रीराधे, जय श्रीकृष्ण, हा गौरचन्द्र, हा नित्यानन्द प्रभु, हा गुरुदेव।" मैंने उनसे हाथ जोड़कर निवेदन किया—"प्रभो! आप मेरे ऊपर भी कृपा करें। वृन्दावनमें मुझे भी बुलाना।" संवाद पाकर डाक्टरोंका पूरा दल पहुँचकर उनकी परीक्षा करने लगा। हम सब लोगोंके सामने ही उन्होंने इशारेसे वहाँ एकत्रित महिलाओंको वहाँसे हटा देनेके लिए इङ्गित किया। हा राधे, हा कृष्ण कहते हुए उन्होंने अन्तिम श्वास ली। सारे चिकित्सक एवं दर्शक आश्चर्यचकित थे।

मैंने बड़ी गम्भीरतासे विचार किया। यदि अजामिल अपने पुत्रके लिए नारायण नाम (नामाभास) उच्चारणकर कष्टमय जन्म-मृत्युसे मुक्त होकर वैकुण्ठधामको प्राप्त कर सकता है, तो परम गुरुनिष्ठ सदा-सर्वदा अपराधोंसे रहित सम्बन्धज्ञानके साथ कृष्णनामका कीर्त्तन करनेवाले तथा अपने अन्त समयमें सज्ञान अवस्थामें "हा राधे, हा कृष्ण" उच्चारण करनेवाले तथा "राधाकृष्ण मुझे वृन्दावनमें बुला रहे हैं"—ऐसा कहनेवाले इस उच्चकोटिके गुरुसेवककी कैसी गति होगी? सचमुचमें उन्हें अवश्य ही व्रजधामकी प्राप्ति हुई होगी। हमलोग पहले इस महान भक्तके सम्बन्धमें ऐसी कभी भी कल्पना नहीं कर सकते थे। इनका जीवन धन्य है। इनकी गुरुसेवा सार्थक है। मैं समझता हूँ कि कोई विशेष साधन-भजनके द्वारा नहीं, बल्कि अहैतुकी श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही ऐसा सम्भव होगा। तबसे परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवके चरणोंमें मेरी श्रद्धा अत्यन्त अधिक बढ़ गयी। मैं टम्बरमसे लौटकर विशेष श्रद्धापूर्वक उनकी विशेष सेवामें तत्पर हुआ।

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने अपने प्रिय सेवक अनङ्गमोहन ब्रह्मचारीकी स्मृतिरक्षाके लिए सिधावाड़ीमें सिद्धावाटी नामक गौड़ीय मठकी स्थापना की। वहाँ अभी तक श्रीविग्रहकी नित्य सेवा-पूजा, पाठ-कीर्त्तन चलता आ रहा है तथा प्रतिवर्ष ब्रह्मचारीजीकी स्मृतिमें विरहोत्सव मनाया जाता है।

कल्याणपुरमें वैष्णवविधिके अनुसार श्राद्ध अनुष्ठान

कल्याणपुर (मेदिनीपुर) निवासी श्रीरासविहारी दासाधिकारी भक्तिशास्त्री 'भिषग्रत्न' महाशयने अपनी माताजीके श्राद्ध अनुष्ठानमें योगदान करनेके लिए श्रील गुरुदेवको बड़े आग्रहसे निमन्त्रित किया। श्रील गुरुदेव अपने बहुत-से परिकरोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। श्रील प्रभुपादके कृपापात्र पूज्यपाद श्रीभक्तिभूदेव श्रौती महाराजने इस अनुष्ठानमें पुरोहितका कार्य किया। पूज्यपाद श्रील श्रौती महाराज संस्कृत, बँगला, हिन्दी, अँग्रेजी आदि भाषाओंमें परम पारङ्गत एक विशेष प्रचारक संन्यासी

थे। श्रील गुरुमहाराजसे इनका बड़ा ही बन्धुत्व था। काशी, प्रयाग, पटना, मेदिनीपुर आदि अञ्चलोंमें श्रील प्रभुपादके आनुगत्यमें शुद्ध-भक्तिका प्रचार करते थे। श्रील प्रभुपादके समय मासिक हिन्दी भागवत पत्रिका सञ्चालन भी करते थे।

यहाँ यह विशेष रूपसे लक्ष्य करनेकी बात है कि श्रील गुरुदेव भक्तितत्त्वके सिद्धान्तोंमें बड़े ही दृढ़ थे। वे निरपेक्ष सत्यके निर्भीक वक्ता थे। इस विषयमें किसीको बुरा या भला लगे, भक्तिके सिद्धान्तोंको कहनेमें कभी हिचकते नहीं थे। पूज्यपाद श्रौती महाराज यद्यपि इनके परम मित्र और गुरुभ्राता थे, फिर भी इस वैष्णव श्राद्ध अनुष्ठानमें जो त्रुटियाँ हुईं, उसका उन्होंने कठोर प्रतिवाद किया। उन्होंने अपने नोटबुकमें भी हस्ताक्षरयुक्त इस विषयमें लिखा है। यहाँ उसे उद्धृत किया जा रहा है—

(१) श्रील श्रौती महाराजने इस वैष्णव श्राद्धमें ब्रह्माका वरण किया (उपास्य श्रीश्रीराधाकृष्ण, श्रीमन्महाप्रभु और श्रीगुरुदेवका वरण नहीं किया)। उनके विचारसे वैष्णव श्राद्धमें ब्रह्म वरण करना ही उचित है क्योंकि श्रीवैखानस महाराजने भी अपनी पद्धतिमें ऐसा ही लिखा है। किन्तु सत्क्रियासार-दीपिका एवं श्रीहरिभक्तिविलास आदि स्मृतियोंमें उपास्य वरण करनेका विधान दिया गया है।

(२) इस अनुष्ठानमें घृताक्त अरवा चावलको मन्त्रपूत कर उसे सर्वप्रथम स्मार्त ब्राह्मणको (श्रीरासविहारीके कुलगुरुको) दान किया गया। तत्पश्चात् त्रिदण्डी संन्यासियोंको दान किया गया। यह पद्धति भी वैष्णव स्मृतिके विपरीत है। वैष्णव स्मृतिके अनुसार भगवन्निवेदित द्रव्य श्रीगुरुदेव और वैष्णवोंको ही देना चाहिये।

(३) ब्रह्मस्थापनके विषयमें श्रीपाद श्रौती महाराजकी आपत्ति यह थी कि सत्क्रियासार-दीपिकामें अभाव पक्षमें कुशमय ब्रह्मस्थापनका उल्लेख है। इसलिए ब्रह्मस्थापन कर्त्तव्य नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि सत्क्रियासार-दीपिका श्रीगोपाल भट्टकी रचना नहीं है, बल्कि वैकुण्ठ वाचस्पति द्वारा लिखी गयी है। किन्तु यह सत्य नहीं है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जयपुरके प्रसिद्ध राजपुस्तकालयसे इसकी एक प्राचीन प्रतिलिपि संग्रहकर इसे प्रकाशित किया है। श्रीराधारमणके गोस्वामियोंके पास भी

श्रीगोपाल भट्ट द्वारा हस्तलिखित ग्रन्थकी प्राचीन प्रति आज भी वर्त्तमान है।

(४) अधिवास सत्क्रियासारके मतानुसार नहीं किया गया। बल्कि कुछ स्मार्त मन्त्रोंके द्वारा अधिवास सम्पन्न हुआ।

(५) इस अनुष्ठानमें दानकार्य सबसे पहले किया गया। सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार वैष्णव होमके पश्चात् दानकार्य होना चाहिये।

श्रीपाद श्रौती महाराजने उक्त स्मार्त गुरुब्राह्मणको स्थण्डिलके भीतर बुलाकर उन्हें दानपात्र, भोजनपात्र, पादुका, छत्र तथा शय्याद्रव्य आदि दान दिलवाया। यह पद्धति हरिभक्तिविलासके सर्वथा विरुद्ध है। हरिभक्तिविलासमें यह स्पष्ट रूपसे लिखा गया है—

स्वभावस्थैः कर्मजड़ान् वञ्चयन् द्रविणादिभिः।
हरेर्नैवेद्य-सम्भारान् वैष्णवेभ्यः समर्पयेत्॥

(हरिभक्तिविलास ९/१०३)

अर्थात् स्वाभाविक रूपमें जो वस्तुएँ भगवान्को निवेदित नहीं की गयी हैं, उन अनिवेदित वस्तु, धन आदिके द्वारा कर्मजड़ अर्थात् अवैष्णवोंकी वञ्चनाकर भगवन्निवेदित वस्तुएँ वैष्णवको समर्पण करनी चाहिये।

(६) सत्क्रियासार-दीपिकामें लिखित प्रायश्चित्त होम वैगुण्य, अच्छिद्रवाचन नहीं कराये गये (उद्दिच्य कर्म छोड़ दिया गया)।

(७) वैष्णवहोममें गुरुपरम्पराका होम नहीं किया गया।

(८) वैष्णवहोमका घृत प्रत्येकके नामसे कुछ अंश अग्निमें और कुछ अंश एक पृथक् पात्रमें रखकर पिण्डदानके समय महाप्रसादके साथ वहाँ मिलाकर पिण्ड दिया गया। (किसी भी वैष्णव स्मृतिमें ऐसा नहीं देखा जाता)

(९) पृथक्-पृथक् दो पात्रोंमें अनिवेदित कच्चा चावल, दाल, नमक, आलू, कच्चा केला, घी प्रस्तुतकर इन दोनों पात्रोंको रासविहारीकी परलोकगता माताका नाम लेकर निवेदन किया गया तथा उनमेंसे एक सीधा स्मार्त ब्राह्मण कुलगुरुको ही दिया गया। उक्त स्मार्त ब्राह्मणने स्थण्डिलके भीतर एक पृथक् आसनपर बैठकर उसे ग्रहण किया। यह सर्वथा अनुचित है।

(१०) इस अनुष्ठानमें सत्क्रियासारके अनुसार श्रीवासुदेव-अर्चन तक नहीं कराया गया।

(११) इसमें शान्ति होम, प्रदक्षिणा आदि वैष्णव रीतियोंको छोड़ दिया गया।

(१२) पिण्डदान और भोगनिवेदन भी विधिके अनुसार नहीं हुआ।

(१३) ऐसा लगा कि इसमें प्रयुक्त मन्त्र भी कुछ पृथक् थे।

(१४) आचमन इत्यादि भी नहीं कराये गये।

(१५) दक्षिणकी ओर मुखकर प्रसाद दिया गया। यह उचित नहीं।

(सत्क्रियासार दीपिका १३१ पृष्ठ द्रष्टव्य है)

Sd/-- B.P. Keshab

10.11.47

१९४५ ई० में श्रील गुरुदेवने पूज्यपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीनरोत्तमानन्द भक्तिकमल, श्रीराधानाथ दासाधिकारी, प्रेमप्रयोजन ब्रह्मचारी आदिको बिहार प्रदेशके दुमका, साहिबगंज, राजमहल तथा भागलपुर अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार करने भेजा। साहिबगंजमें प्रचार करते समय श्रीनरोत्तमानन्द 'भक्तिकमल' का परिचय श्रीमन्नारायण तिवारीसे हुआ। उस समय वे वहाँके पुलिस ऑफिसमें कार्यरत थे। ब्रह्मचारीजीसे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक हरिकथा श्रवणके पश्चात् इन्हें संसारसे उत्कट वैराग्य हो गया। कुछ दिनों तक किसी प्रकार कार्यरत रहनेपर भी वे सेवाकार्यसे अवसर ग्रहणकर दिसम्बर, १९४६ ई० में घरबार छोड़कर श्रीगौड़ीय मठ, नवद्वीपधाममें चले आये। अगले वर्ष १९४७ की नवद्वीपधाम परिक्रमाके पश्चात् गौरजन्मोत्सवके दिन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने इन्हें श्रीहरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। अब ये श्रीगौरनारायण 'भक्तिबान्धव' के नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान

२७ फरवरी, १९४८ ई० में श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रीगुरुपादपद्मकी ५० वर्ष पूर्ति आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें श्रीव्यासपूजाका आयोजन किया गया। इसके उपलक्ष्यमें प्रथम दिवस श्रीव्यासपूजा तथा उसके क्रोड़ीभूत कृष्णपञ्चक, व्यासपञ्चक, श्रीब्रह्मादि

आचार्यपञ्चक, श्रीसनकादि-पञ्चक, श्रीगुरुपञ्चक तथा तत्त्वपञ्चककी पूजा, पुष्पाञ्जलि और होमका विराट रूपसे अनुष्ठान किया गया। सान्ध्यकालीन धर्मसभामें श्रील गुरुदेवने श्रीमद्भागवत ग्रन्थसे कृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी समाधि अवस्थामें प्राप्त तत्त्वदर्शनके प्रसङ्गकी व्याख्या की। तीसरे दिन जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी शुभाविर्भाव तिथिके अवसरपर उनकी सुसज्जित अर्चालेख्यका विधिवत् अर्चन होनेपर स्वरचित श्रील प्रभुपादकी आरतिका कीर्त्तन कराकर आरति करायी तथा उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तभीसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिमें प्रतिवर्ष इसी रीतिसे श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान विराट रूपसे प्रारम्भ हुआ।

श्रीलनरहरि सेवाविग्रह प्रभुका निर्याण

३० जनवरी, १९४८ ई॰ को नाथूराम गोडसेकी गोलीसे दिल्लीकी प्रार्थना सभामें महात्मा गाँधीजीका निधन हुआ। उसी दिन ब्रह्ममुहूर्त्तमें अजातशत्रु पूज्यपाद श्रीनरहरि ब्रह्मचारी सेवाविग्रह प्रभु भी श्रीनवद्वीपधाममें अप्रकट हुए। उस समय श्रील गुरुदेव मेदिनीपुरके विभिन्न अञ्चलोंमें प्रचार कार्यमें रत थे। जब वे १ फरवरीको चुँचुड़ामें लौटे, तो उन्हें श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी द्वारा प्रेरित टेलीग्रामके माध्यमसे यह हृदयविदारक संवाद मिला। इस मर्मान्तिक विरह संवादको सुनते ही वे पाषाणकी भाँति स्तब्ध रह गये। थोड़ी देर बाद बाह्य ज्ञान होनेपर विरहमें कातर होकर क्रन्दन करने लगे।

श्रीसेवाविग्रह प्रभु जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके आश्रित तथा उनके अन्तरङ्ग सेवकोंमेंसे अन्यतम थे। परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मसे उनका अत्यन्त बन्धुत्व भाव था। इन दोनोंने बहुत दिनों तक एक साथ रहकर विविध प्रकारसे श्रीधाम मायापुरकी सेवा की थी। श्रील प्रभुपाद इस प्रिय सेवकके ऊपर श्रीधाम मायापुरका सारा दायित्व देकर निश्चिन्त चित्तसे सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार करते थे। इन दोनोंने एक ही साथ गौड़ीय मठ छोड़कर श्रीधाम नवद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना की थी। तबसे श्रील गुरुदेव भी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपका सारा दायित्व इनके ऊपर सौंपकर

श्रीनरहरि 'सेवाविग्रह' प्रभु

निश्चिन्त चित्तसे सर्वत्र प्रचार करते थे। श्रील गुरुदेवने समितिके मुखपत्र श्रीगौड़ीय पत्रिकाके प्रथम वर्ष प्रथम अङ्कमें प्रकाशित विरहमांगल्य प्रबन्धमें इनके सम्बन्धमें लिखा है—

"विरहवेदना कुछ प्रशमित होगी इसलिए श्रीगुरुपादपद्म और उनके एकनिष्ठ सेवक ठाकुर नरहरि सेवाविग्रह प्रभुके अदर्शनजनित क्लेशलांछित लेखिनी आज प्रकम्पित होती हुई मन्थर गतिसे अग्रसर हो रही है।

"श्रील प्रभुपाद अपने अन्तरङ्ग विश्रम्भसेवक परमपूज्यपाद श्रीनरहरि ब्रह्मचारी सेवाविग्रहको पाकर बड़े प्रसन्न थे। वे इनपर अपने प्रियतम आकर मठराज श्रीचैतन्य मठका सारा दायित्व—सेवाभार सौंपकर निश्चिन्त हो जाते तथा आनन्दपूर्वक दूरातिदूर प्रदेशोंमें रहकर शुद्धभक्तिका प्रचार करनेमें बिन्दुमात्र भी दुविधा बोध नहीं करते थे। +++++ हे नरहरिदा! आपका सुमङ्गल श्रीनाम लेते ही आपकी नैरन्तर्यमयी हरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा सभीके मानस-पटलपर स्वयं ही उदित हो पड़ती है। आप स्वयं ही श्रील प्रभुपादके प्रियतम श्रीचैतन्य मठस्वरूप हैं। आपके निकट रहनेसे हम सभी ऐसा समझते थे, मानो हम चैतन्य मठमें ही रह रहे हैं। आपने अक्रोध परमानन्दके रूपमें जो सेवाका आदर्श रख छोड़ा है, वही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एकमात्र लक्ष्य है।"

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी विरहतिथिमें उन्हींके द्वारा लिखित प्रबन्धावलीकी भूमिकामें श्रील गुरुदेवने परमसुहृद श्रील नरहरि ठाकुरको श्रील भक्तिविनोद-धारामें नित्य स्नात, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उज्ज्वल नक्षत्रके रूपमें वर्णन कर गौरवान्वित किया।

श्रील नरहरि सेवाविग्रह प्रभु पूर्वी बङ्गालके यशोहर जिलेके अन्तर्गत देयाड़ा ग्रामके प्रसिद्ध वसु वंशमें आविर्भूत हुए थे। प्रारम्भिक जीवनमें अपने परिवारवालोंके साथ शक्तिमन्त्रमें दीक्षित थे। किन्तु बादमें वैष्णवसङ्गके प्रभावसे वे और उनके परिवारके अधिकांश सदस्य कृष्णमन्त्रमें दीक्षित होकर साधन-भजन करने लगे थे। अपने ज्येष्ठ भ्राताके परलोकगमन करनेपर उन्होंने संसार-आश्रमको त्यागकर जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादका चरणाश्रय ग्रहण

किया। श्रील प्रभुपाद इनकी चौमुखी सेवावृत्तिसे सन्तुष्ट होकर इन्हें श्रीचैतन्य मठका मठरक्षक नियुक्त किया। इनके प्रीतियुक्त मधुर व्यवहारके कारण मठवासी इन्हें 'गौड़ीय मठकी मैया' कहते थे। छोटे-बड़े सभी इन्हें 'नरहरिदा' सम्बोधन करते थे। ये कब सोते और कब जागते कोई नहीं देखता था। सदा-सर्वदा श्रीहरिनाम करते हुए मठकी विभिन्न प्रकारकी सेवाओंमें विभोर रहते थे। मठमें रहनेवाले छोटे बालकोंका मैयाकी भाँति पालन-पोषण करते थे। उन्हें समयपर उठाना, खिलाना, पिलाना इनकी नित्य सेवा थी। कभी-कभी गम्भीर रातमें सबके सो जानेपर एकान्त भजन कुटीमें बैठकर विप्रलम्भ भावसे श्रीहरिनाम करते थे। ऐसा सुना जाता है कि कभी-कभी वे अपनी चोटीको किसी ऊँची खूँटीमें बाँधकर हरिनाम करते, जिससे हठात् नींद न आ जाय। किसी भी मठवासीने उन्हें कभी क्रोधित होते हुए नहीं देखा। किसी समय किसीको विशेष कारणसे डाँटना-डपटना भी होता तो मुस्कराते हुए उसे बड़े दुलारसे मीठी-मीठी झिड़क देते।

Srila Gurudeva is the author of this book so it sounds, at least for me being a Westerner, to have his name like this. Maybe add 'author of this book' or something like that in brackets after. This comes at quite some places.

एक समयकी बात है। श्रीगौरनारायण अभी मठमें नया आया हुआ था। नवयुवक तो था ही, शरीरमें पूरा जोश भी था। सवेरेका समय था। वहाँके ग्वाले सब्जी दूध आदि लेकर अपने मुहल्लेसे मठके मार्गसे सब्जीमण्डीमें जा रहे थे। श्रीसेवाविग्रह प्रभु श्रील नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीके साथ मठकी सेवाके लिए मठसे बाहर आकर सड़कके किनारे सब्जियोंका भाव-मोल कर रहे थे। वहाँके ग्वाले बड़े दुर्दान्त स्वभावके होते हैं। बात-ही-बातमें वे झगड़ने लगे और किसी प्रकार श्रीनरोत्तमानन्द प्रभुके सिरमें कुछ ऐसी लगी जिससे रक्त निकलने लगा। कुछ शोरगुल सुनकर गौरनारयण भी बाहर आया और प्रभुजीके सिरमें रक्त देखकर आपेसे बाहर हो गया। उसने मठ प्रांगणसे एक बाँसका टुकड़ा उठाकर उस उद्दण्ड ग्वालेके पीठपर ऐसा मारा कि वह बाँस टूट गया और ग्वाला गिर पड़ा। क्षणमात्रमें सैंकड़ों ग्वाले एकत्रित होकर मठपर आक्रमण करनेके लिए हो हल्ला मचाने लगे। पूज्यपाद श्रीमान् सेवाविग्रह प्रभुने धीर-शान्त होकर बड़ी कुशलतासे उस गम्भीर स्थितिको सँभाल लिया। गौरनारायणको पकड़कर मठके एक घरमें बन्द कर दिया तथा अकेले उस भीड़में आकर समझा-बुझाकर सबको शान्त किया। सेवाविग्रह प्रभुका

सबसे प्रीतिपूर्ण व्यवहार था। वे छोटे-बड़े सभीके घरोंमें जाकर हरिकथा कहते, उनके सुख-दुःखमें सम्मिलित होते थे। इसलिए इनके मधुर वचनोंसे वह सङ्कट टल गया।

श्रील गुरुदेव अपने अप्रकट काल तक उन्हें भूल नहीं सके। कहीं भी उनका प्रसङ्ग आनेपर वे विरहव्याकुल हो जाते थे। उनकी स्मृतिके लिए उन्होंने श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके विशाल प्रवेश द्वारका नाम 'श्रीनरहरि तोरण' रखा, जो आज भी विद्यमान है।

जगन्नाथपुरीमें मठ एवं पारमार्थिक मासिक पत्रिकाके प्रकाशका सङ्कल्प

श्रीक्षेत्रमण्डलकी परिक्रमाके पश्चात् ही पुरीके माननीय पंडा खुटियाजी तथा अनेक गुरुभाइयोंके पुनः-पुनः आग्रह करनेके कारण गुरुदेवको श्रीजगन्नाथ पुरीमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक शाखा मठकी स्थापनाकी इच्छा हो रही थी। १९४८ ई॰ में सप्ताह व्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और गौरजन्मोत्स्वके पश्चात् कलकत्तेके मठमें समितिके विशिष्ट सदस्योंकी एक सभामें यह निश्चय किया गया कि—

(१) श्रीजगन्नाथपुरीमें गौड़ीय वेदान्त समितिके एक शाखा मठकी स्थापना की जाये।

(२) आगामी कार्तिक महीनेमें श्रीद्वारका धामकी परिक्रमा की जाये।

(३) आगामी गौरपूर्णिमाके दिन गौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे उसके मुखपत्रके रूपमें एक पारमार्थिक मासिक पत्रिका प्रकाशित की जाये। उस पारमार्थिक मासिकका नाम 'श्रीगौड़ीय-पत्रिका' रखा जाये।

उसी दिनसे उपरोक्त सङ्कल्पोंकी पूर्तिके लिए श्रील गुरुदेवने प्रयास आरम्भ कर दिया। पत्रिकाके लिए block, rubber stamp, श्रील प्रभुपादका त्रिरङ्गा चित्र तथा गौड़ीय पत्रिका कार्यालयका sign board आदि प्रस्तुत करनेके निर्देश दिये गये।

कार्तिक माहमें उर्जाव्रत, नियमसेवाके लिए संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भक्तोंके साथ लगभग डेढ़ सौ यात्रियोंने द्वारका यात्रा सम्पन्न की। परिक्रमासंघने सर्वप्रथम मथुरा-वृन्दावनकी लीलास्थलियोंका

दर्शनकर जयपुरमें श्रीगोविन्द, गोपीनाथ, मदनमोहन एवं गलताजीके दर्शन किये। गलतामें वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्री सम्प्रदायके वैष्णवोंको एक महती विचारसभामें पराजितकर गौड़ीय वैष्णवोंकी विजयवैजयन्तीकी ध्वजा फहरायी थी। श्रील गुरुमहाराजने यहाँपर बड़ी ओजस्विनी भाषामें श्रीबलदेव विद्याभूषण एवं ब्रह्मसूत्र भाष्यके विषयपर भाषण दिया था। उन्होंने इस भाषणमें यह भी बतलाया कि श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकी प्रेरणासे किन-किन युक्तियोंके बलपर यहाँपर प्रतिपक्षको पराजित किया था।

गलतागद्दी स्थित श्री सम्प्रदायके तत्कालीन महन्तजी आचार्यकेसरीके व्यक्तित्व एवं विचारोंसे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने सम्पूर्ण परिक्रमा संघको श्रीठाकुरजीका महाप्रसाद सेवन कराया। वहाँसे यात्रीगण पुष्कर, अजमेर, मेहसाना, मीरमगाँव, सुरेन्द्रनगर एवं ढोला होकर पोरबन्दर पहुँचे। वहाँ उन्होंने श्रीसुदामा विप्रके मन्दिरका दर्शन किया और वहींसे जहाज द्वारा वेंट द्वारका पहुँचकर श्रीद्वारकेशजी, दाऊजी, रुक्मिणीजीके मन्दिरोंमें दर्शन किया। दूसरे दिन Sonavati नामक जलयानके द्वारा गोपी तालाब, नागेश्वर शिवका दर्शनकर गोमती द्वारका पहुँचे। वहाँ यात्रियोंने श्रीद्वारकाधीश, तोताद्री मठ, गोमती गङ्गाका दर्शन किया। तत्पश्चात् यात्रीगण मेहसाना, आगरा होकर अपने स्थानोंको लौट आये।

मेदिनीपुर एवं सुन्दरवनमें प्रचार

जनवरी, १९४९ ई० में श्रील गुरुमहाराजने श्रीदीनार्तिहर ब्रह्मचारी, श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी तथा श्रीगौरनारायण दासाधिकारीको साथ लेकर मेदिनीपुर जिलेके अन्तर्गत जुखिया निवासी हरिचरण दासाधिकारीके घरमें शुभविजय किया। यहीं रहकर आस-पासके गाँवोंकी धर्मसभाओंमें सनातनधर्मके सम्बन्धमें सिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया।

जुखियामें रहते समय एक दिन प्रातःकाल श्रील गुरुमहाराजजीके साथ मिलनेके लिए मोहाटी ग्रामके क्षीरोदचन्द्र भुईयाँ (अवसरप्राप्त न्यायाधीश) उपस्थित हुए। घरके भीतर श्रील गुरुदेव श्रीनाममालिकापर हरिनाम कर रहे थे। घरके बाहर बरामदेमें सूर्यकी शीतकालीन मधुर-मधुर

किरणोंका सेवन करते हुए श्रीगौरनारायण दासाधिकारी किसी ग्रन्थका अनुशीलन कर रहा था। श्रीक्षीरोद बाबूने पास ही चटाईपर बैठते हुए प्रश्न किया—"क्या पढ़ रहे हो?"

गौरनारायण—"श्रीहरिभक्तिविलास पढ़ रहा हूँ।"

क्षीरोदबाबू—"इसके लेखक कौन हैं?"

गौरनारायण—"जगद्गुरु श्रील सनातन गोस्वामी।"

क्षीरोदबाबू—"तुमलोग जगद्गुरु श्रीशङ्कराचार्य द्वारा रचित शाङ्कर भाष्यका अनुशीलन क्यों नहीं करते?"

गौरनारायण—"क्योंकि श्रील सनातन गोस्वामी श्रीशङ्कराचार्यसे अधिक प्रामाणिक व्यक्ति हैं।"

क्षीरोदबाबू—"क्या कहा! अत्यन्त आधुनिक सनातन गोस्वामी शङ्करके साक्षात अवतार, ब्रह्मसूत्रका भाष्य लिखनेवाले, भारतके तत्कालीन समस्त आचार्योंको पराजित करनेवाले आचार्य शङ्करसे भी अधिक प्रामाणिक व्यक्ति हैं?"

गौरनारायण—"निःसन्देह। आचार्य शङ्कर भगवान्‌के गुणावतार—देवाधिदेव शङ्करके अवतार और भगवान्‌की विभूतियोंमेंसे एक हैं। 'वैष्णवानां यथा शम्भो'—भागवतके इस श्लोकके अनुसार वे भगवान्‌के परम भक्त और वैष्णवश्रेष्ठ हैं। दूसरी ओर श्रीसनातन गोस्वामी स्वयं भगवान् शचीनन्दनके परमप्रेष्ठ परिकर तथा श्रीराधाकृष्णकी परमप्रिया श्रीलवङ्ग मञ्जरी हैं। अतः सनातन गोस्वामीकी श्रेष्ठता स्वयंसिद्ध है।"

श्रीक्षीरोद बाबू इस उत्तरको सुनकर कुछ झेंप-से गये। इतनेमें श्रील आचार्यकेसरी बड़े वेगसे वहाँ उपस्थित हुए। वे घरमें श्रीहरिनाम करते हुए इस वाद-विवादको बड़े ध्यानसे सुन रहे थे। उनके आते ही इन दोनोंमें प्रबल दार्शनिक विचारयुद्ध होने लगा—

क्षीरोद बाबू—"आप इन ब्रह्मचारियोंको ब्रह्मसूत्रके शाङ्कर भाष्यका अनुशीलन क्यों नहीं कराते?"

गुरुदेव—"हम व्यासरचित ब्रह्मसूत्रके श्रीभाष्य, अणुभाष्य, गोविन्दभाष्य आदिका अनुशीलन तो कराते हैं, किन्तु आचार्य शङ्कर द्वारा रचित भाष्यका अनुशीलन नहीं कराते।"

क्षीरोद बाबू—“ऐसा क्यों? आचार्य शङ्कर शङ्करके अवतार हैं, फिर इनके रचित भाष्यका अनुशीलन क्यों नहीं कराते?”

गुरुदेव—“शङ्करके अवतार होनेपर भी उनके द्वारा रचित भाष्यके विचार सर्वथा कपोल-कल्पित हैं। भगवान्‌के आदेशसे तत्कालीन वेदविरोधी एवं ईश्वरविरोधी बौद्धोंका दमन करनेके लिए उन्होंने इस काल्पनिक प्रच्छन्न बौद्धवादका आश्रय लिया था। पुराणोंमें ऐसा स्पष्ट उल्लेख है—मायावादं असच्छास्त्रं।”

क्षीरोद बाबू—“क्या आपलोग शङ्कर द्वारा प्रतिष्ठित वेदके चारों महावाक्यों—अहं ब्रह्मास्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, एकमेवाद्वितीयम् आदि वाक्योंको स्वीकार नहीं करते?”

गुरुदेव—“वेदों या उपनिषदोंमें ऐसा कहीं नहीं लिखा है कि ये चार वाक्य ही महावाक्य हैं। यदि ऐसा है, तो आप प्रमाण दीजिये।”

क्षीरोद बाबू निरुत्तर होकर कुछ देर तक चुप बैठे रहे।

गुरुदेव—“ओंकाररूप प्रणव ही वेदका एकमात्र महावाक्य है। अन्य सभी प्रादेशिक वाक्य हैं अथवा वेदके सभी वाक्य ही महावाक्य हैं। क्या आप शङ्करके द्वारा स्थापित निराकार, निर्विशेष, निर्गुण, निरञ्जन ब्रह्मको तथा श्रील वेदव्यास द्वारा प्रतिष्ठित सविशेष, सर्वशक्तिमान, निखिल अप्राकृत गुणोंके आश्रय, आनन्दमय ब्रह्मको एक समझते हैं?”

क्षीरोद बाबू—“क्यों नहीं, भारतके सभी बड़े-बड़े विद्वान शङ्करके मतका समर्थन करते हैं।”

गुरुदेव—“आचार्य श्रीरामानुज, मध्वाचार्य, निम्बादित्य, विष्णुस्वामी, बल्लभाचार्य, कुमारिल भट्ट आदि विद्वानोंने शङ्कर मतका सब प्रकारसे खण्डन किया है। इन सबने एक स्वरसे शङ्करके इस मतका खण्डन किया है कि निर्विशेष, निःशक्तिक, निराकार ब्रह्म कदापि आनन्दस्वरूप या आनन्दमय नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त प्रकारान्तरसे प्रच्छन्न बौद्धवाद ही है।”

क्षीरोद बाबू—“आपका यह कहना सर्वथा भ्रामक है। आचार्य शङ्करने स्पष्ट शब्दोंमें ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः’—इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है। साथ ही उन्होंने ब्रह्मको आनन्दस्वरूप बतलाया

है। जीव मायामुक्त होनेपर ब्रह्ममें मिलकर एक हो जाता है तथा आनन्दस्वरूप ब्रह्मकी अनुभूति करता है।"

गुरुदेव—"यह सिद्धान्त केवल आचार्य शङ्करकी कपोल कल्पना और शास्त्रविरुद्ध है। मैं उपरोक्त विचारोंमेंसे अभी आचार्य शङ्करके कल्पित 'ब्रह्म आनन्दस्वरूप है' इसका केवल युक्तियोंके आधारपर खण्डन करता हूँ। जीव ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्म हो जाता है तथा जगत् मिथ्या है, इनका पीछे खण्डन करूँगा। क्या बता सकते हैं कि आप निर्विशेष ब्रह्ममें क्यों लीन होना चाहते हैं?"

क्षीरोद बाबू—"क्योंकि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है। इस ब्रह्ममें लय प्राप्त जीव आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही हो जाता है।"

गुरुदेव—"मैं कहता हूँ कि आचार्य शङ्करका निर्विशेष ब्रह्म विष्ठास्वरूप है। आपको इसमें आपत्ति क्या है? यदि कोई जीव आनन्दस्वरूप ब्रह्ममें लयप्राप्त होता है, तब पृथक् रूपसे उसकी कोई अनुभूति नहीं रहती। निर्विशेष ब्रह्ममें यदि इच्छा, अनुभूति आदि कुछ भी नहीं है, तो फिर वह ब्रह्म होकर आनन्दकी अनुभूति कैसे कर सकता है। पृथक् सत्ता होनेपर ही आनन्दकी अनुभूति सम्भव है। उदाहरणस्वरूप चीनी मीठी होती है। कोई भी व्यक्ति चीनीका आस्वादनकर यह कह सकता है कि चीनी मीठी होती है। किन्तु वही व्यक्ति स्वयं चीनी बन जानेपर अपना मिठास कैसे अनुभव कर सकता है? उसी प्रकारसे कोई भी व्यक्ति स्वयं विष्ठा बन जाये, तो वह उसकी दुर्गंध कैसे अनुभव कर सकता है? इसीलिए निर्विशेष ब्रह्मको आनन्दस्वरूप कहो या विष्ठास्वरूप कहो, एक ही बात है। क्योंकि उसका पृथक् रूपसे कोई आस्वादक नहीं है।"

क्षीरोद बाबू सम्पूर्ण रूपसे निरुत्तर हो गये। वे श्रीगुरुदेवको प्रणामकर सिर नीचा किये हुए अपने निवासस्थानको लौट गये।

इस प्रकार हमलोगोंने श्रील गुरुपादपद्मके साथ रहकर बड़े-बड़े अद्वैतवादियोंके साथ उन्हें शास्त्रार्थ करते हुए देखा है। इनके गम्भीर व्यक्तित्व, ओजस्विनी भाषा, शास्त्रीय प्रमाण तथा प्रबल युक्तियोंके सामने सभी नतमस्तक हो जाते थे। प्रसङ्गके अनुसार हमलोग उन शास्त्रार्थोंका उल्लेख करेंगे।

सन्ध्या वेलामें पास ही एक विराट धर्मसभामें सनातनधर्मके सम्बन्धमें उनका बड़ा ओजस्वी भाषण हुआ। उस सभामें लगभग दस-पन्द्रह हजार श्रोता लगभग ढाई घण्टे तक कठपुतलीकी भाँति चुपचाप बैठकर श्रद्धापूर्वक उनके वक्तव्यका श्रवण कर रहे थे। संक्षेपमें उनके वक्तव्यका सार यह था—वेद, उपनिषद्, वेदान्त सूत्र, श्रीमद्भागवत और गीतादि शास्त्रोंके अनुसार स्वयं-भगवान् ही सृष्टि-स्थिति प्रलयके मूल कारण एवं परतत्त्वकी सीमा हैं। उनका कभी भी जन्म-मरण या विनाश नहीं है। वे भूत, भविष्यत एवं वर्त्तमान तीनों ही कालोंमें विद्यमान रहनेके कारण पूर्ण सनातन तत्त्व हैं। 'सनातन' शब्दका अर्थ है—सदा+तन्=तीनों ही कालोंमें विद्यमान रहनेवाला। अतः सनातनधर्मका अर्थ है—सदाविद्यमान रहनेवाला धर्म। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/३२)

अर्थात् अहो! नन्दबाबा, यशोदा-मैया आदि व्रजवासी गोप-गोपियोंके धन्य भाग्य हैं। वास्तवमें उनका अहोभाग्य है; क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप आप श्रीकृष्ण उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं।

यहाँ कृष्णको सनातन परिपूर्ण ब्रह्म कहा गया है। दूसरी बात, जीवात्माको भी सनातन तत्त्व माना गया है क्योंकि अगणित आत्माएँ इन सनातन परमब्रह्म श्रीकृष्णके ही सनातन अंश हैं। गीतामें श्रीकृष्णने स्वयं ही उसे अपना सनातन अंश बतलाया है—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

(गीता १५/७)

अर्थात् हे अर्जुन! मैं सर्वेश्वर हूँ। सारे जीव मेरे अंश हैं। और वे सभी नित्य सनातन हैं। वे घटाकाशकी तरह कल्पित या मिथ्या नहीं हैं। मुझसे विमुखहोकर मायाबद्ध होनेके कारण इस संसारमें मन एवं पाँच इन्द्रियोंके साथ घोर संघर्ष कर रहे हैं।

और भी देखिये—

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।

(गीता २/२४)

यह जीवात्मा अजर-अमर है। इसे अस्त्र-शस्त्र काट नहीं सकते। इसे आग जला नहीं सकती। जल भिगो नहीं सकता तथा वायु सुखा नहीं सकती। यह नित्य, व्यापक, अविकारी, स्थिर रहनेवाला और सनातन है।

इस प्रकार वैदिक शास्त्रोंके अनुसार दो सनातन तत्त्व हैं—एक अखण्ड पूर्णसनातन तत्त्व स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण एवं दूसरा खण्ड अणुसनातन जीवतत्त्व। बृहत्-चैतन्यस्वरूप श्रीकृष्णका स्वभावतः अवस्थान्तर नहीं है किन्तु जीव अणुसनातन तत्त्व होनेके कारण भगवत्-विमुख होनेपर उसका शुद्ध स्वरूप आवृत हो सकता है। किन्तु स्वरूपतः उसका धर्म शुद्ध और सनातन है। प्रेम ही जीवका नित्य सनातनधर्म है। कृष्णका दास्य ही वह नित्य विमल प्रेम है। इसलिए कृष्णदास्यस्वरूप प्रेम ही जीवका स्वरूपधर्म या सनातनधर्म है।

किन्तु माया द्वारा बद्ध होनेपर जीवका शुद्ध सनातन स्वरूपधर्म विकृत हो जाता है। ऐसी दशामें वह अपने स्थूल और लिङ्ग दोनों शरीरोंमें आत्मबुद्धिके कारण स्थूल एवं लिङ्ग शरीरके धर्मको ही अपना धर्म मानने लगता है। किन्तु इन दोनों शरीरोंका धर्म नश्वर एवं परिवर्तनशील है। ये सनातनधर्म नहीं है। मैं हिन्दू हूँ, मुसलमान हूँ, ईसाई हूँ, सिक्ख हूँ, बौद्ध हूँ और मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ—यह स्थूल शरीरका परिचय है। इसलिए ये सब स्थूल धर्म सनातन नहीं हैं। आजकल संसारमें शुद्ध तत्त्वज्ञानके अभावके कारण शुद्ध सनातनधर्मका अधिक प्रचार नहीं है। यथार्थतः जीव एवं ईश्वरमें सेवक एवं सेव्यका सम्बन्ध ही नित्य और सनातन है और यही सम्बन्ध सनातनधर्म कहलाता है। इसी सनातनधर्मको शास्त्रोंमें कहीं-कहीं भागवतधर्म या वैष्णवधर्म भी कहा गया है।

इसके पश्चात् श्रीलगुरुदेव श्रीनगेन्द्रगोर्वधन ब्रह्मचारी एवं श्रीगणेशदासके साथ, कुलबाड़ी, हांसचौड़ा, पिछलदा, झीनुकखाली,

नरघाट, तेरपेख्या और वहाँसे बोटके द्वारा पूरी पार्टीके साथ गदामथुरा सप्तम खण्ड, पुनः गदामथुरा पञ्चम, षष्ठ और अष्टम खण्ड, आईप्लाट प्रथमखण्ड, केदारपुर, आईप्लाट द्वितीय खण्ड और सूर्यपुर आदि नाना स्थानोंमें शुद्ध सनातनधर्म—शुद्ध भक्तिधर्मका विपुल रूपसे प्रचारकर लगभग डेढ़ माहके बाद चुँचुड़ा मठमें लौटे।

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवके अवसरपर श्रीगौड़ीय पत्रिकाका आत्मप्रकाश

मार्च, १९४९ ई॰ में श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपमें बड़े समारोहके साथ परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। इसी

श्रीगौड़ीय पत्रिकाका प्रथम अङ्क

अवसरपर गौरपूर्णिमाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुखपत्र पारमार्थिक मासिक 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' ने आत्मप्रकाश किया। इसके प्रथम वर्ष प्रथम अङ्कके प्रच्छदपटके ऊपरी भागमें पद्म, गदा, शङ्ख, चक्रसे परिवेष्टित करताल और मृदङ्गके ऊपर श्रीपत्रिकाका नाम अङ्कित था। उसके नीचे श्रीसरस्वती प्रभुपादकी आलेख्यमूर्त्ति थी। प्रतिष्ठाता एवं नियामक-परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज, सम्पादक—श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी, 'भक्तिशास्त्री' 'भक्त्यालोक'; प्रचार-सम्पादक—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद् भक्तिकुशल नारसिंह महाराज और पण्डित श्रीमद् जगन्नाथबल्लभ बाबाजी महाराज; सहकारी सम्पादक—महोपदेशक पण्डित श्रीपाद् नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिकमल' 'भक्तिशास्त्री', पण्डित श्रीयुत् नामवैकुण्ठ दासाधिकारी, पण्डित श्रीयुत् राधानाथ दासाधिकारी, पण्डित श्रीयुत् गौरनारायण दासाधिकारी; कार्याध्यक्ष पण्डित कृष्णकारुण्य ब्रह्मचारी 'भक्तिमण्डप'; श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी द्वारा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पोस्ट चुँचुड़ा (हुगली) से प्रकाशित तथा शान्ति प्रेससे मुद्रित। श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी वन्दनाके साथ श्रीपत्रिकाका मङ्गलाचरण या शुभारम्भ हुआ है। "विरह-माङ्गल्य" नामक प्रबन्ध विप्रलम्भ-रसमय-विग्रह श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके भावोंमें विभावित महामहावदान्य नित्यमुक्त परमहंसोंके आनुगत्यमें श्रीश्रीराधा-विनोदविहारीकी स्वारसिकी सेवाकी आकांक्षा करता है। इसके अतिरिक्त इसमें जगद्गुरु श्रील प्रभुपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके दार्शनिक प्रबन्ध और श्रीलगुरुदेवके द्वारा लिखित "श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव", "श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य" आदि गवेषणामूलक प्रबन्धादि श्रीपत्रिकाकी सौन्दर्यवृद्धि कर रहे हैं।

श्रीमहानन्द ब्रह्माचारी
'भक्तिशास्त्री' 'भक्त्यालोक'

श्रीपत्रिकाका प्रथम वर्ष, प्रथम अङ्क श्रीधामपरिक्रमाके प्रथमदिवस सर्व विघ्नविनाशक श्रीनृसिंहदेव (देवपल्ली स्थित) के चरणकमलोंमें तथा अन्तिमदिवस श्रीधाममायापुरमें स्थित श्रील प्रभुपादके समाधि मन्दिरमें श्रील प्रभुपादके करकमलों समर्पित हुआ। इसके पश्चात् वैष्णवगण बड़े आग्रहके साथ इसका वार्षिक सदस्य बननेके लिए आग्रहपूर्वक अपना नाम लिखवाने लगे।

श्रीअयोध्याधाम, नैमिषारण्यकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत

सन् १९४९ ई॰ के अप्रैल महीनेमें मेदिनीपुर जिलाके केसियाड़ी श्रीगौराङ्ग मठके प्रतिष्ठाता एवं अध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराजके सादर निमन्त्रणपर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता और सभापति परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अपने बहुत-से परिकरोंके साथ वहाँ उपस्थित हुए। वहाँ श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज, श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराज तथा अन्यान्य संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ वैष्णव उपस्थित थे। वहाँसे लौटकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें समारोहपूर्वक श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव तथा श्रीरथयात्रा महोत्सव सम्पन्न करवाया।

इसी वर्ष कार्तिक महीनेमें श्रीअयोध्या व नैमिषारण्यकी परिक्रमा तथा वहीं ऊर्जाव्रत—नियमसेवा सम्पन्न हुई। श्रीमन्महाप्रभु (विग्रह) एवं यात्रीगण अयोध्याके प्रसिद्ध स्थान लक्ष्मण किलेमें ठहरे। यह स्थान पवित्र सरयुके तटपर अत्यन्त रमणीय स्थल है। यह किला आज भी प्राचीनयुगके ऐतिह्यकी साक्षी दे रहा है। समितिके प्रतिष्ठाता श्रीलगुरुदेव धाममाहात्म्य श्रवण कराते तथा सारी व्यवस्थाओंका सञ्चालन भी करते। महोपदेशक श्रीपाद् नरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिशास्त्री भक्तिकमल' प्रभु नियमित रूपसे श्रीमद्भागवत पाठ तथा छायाचित्रके माध्यमसे भाषणकर श्रोतृमण्डलीको विशेष रूपसे आकर्षित करते। यात्रियोंने श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें अयोध्याधाममें श्रीरामचन्द्रजीकी जन्मभूमि, श्रीरामदरबार, कनकभवन, हनुमानगढ़ी, द्वादशमन्दिर, वाल्मीकि भवन, दर्शनेश्वरनाथशिव,

पापमोचनघाट, स्वर्गद्वार, नागेश्वर महादेव, ब्रह्मघाट, श्रीसूर्यकुण्ड, गोप्तारघाट आदि प्रसिद्ध स्थानोंका दर्शन किया।

अयोध्यामें बीस दिन निवास करनेके पश्चात् परिक्रमासंघ बालामउ जंक्शनसे होकर नैमिषारण्य पहुँचा। वहाँ सर्वप्रथम सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद द्वारा स्थापित परमहंस गौड़ीय मठका दर्शनकर स्थानीय बड़ी धर्मशालामें आश्रय ग्रहण किया। वहाँ श्रील सभापति महाराजने श्रीचैतन्यचरितामृतसे श्रीसनातन-शिक्षाका पाठ करते हुए बतलाया कि अनधिकारी लोगोंके लिए निर्जन स्थलमें भजन करना हानिकारक होता है। उस निर्जन-भजनमें अपनेसे श्रेष्ठ तत्त्वदर्शी वैष्णवका सङ्ग न होनेके कारण उनका उच्चरित नाम सदा अनर्थमय होता है। सङ्गके अभावमें शुद्धभक्तिका स्वरूप भी वे नहीं समझ पाते। उन्नत वैष्णवोंके सङ्गमें भजन ही निर्जन-भजन कहलाता है। उन्नत सङ्गके बिना शुद्ध कृष्णभक्ति कदापि नहीं प्राप्त की जा सकती है—भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते। गोष्ठानन्दी एवं विविक्तानन्दी—कोई भी निर्जन-भजन नहीं करते। निर्जनमें भजन करनेवाले विविक्तानन्दी भी गोष्ठानन्दीके श्रीनाम-प्रेमप्रचारके सहायक होते हैं तथा उनके अनुकूल भावोंका पोषण करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुका श्रीसनातन गोस्वामीके लिए ही नहीं, अपितु सभी भक्ति साधकोंके लिए यह स्पष्ट आदेश और निर्देश है कि वे लुप्त तीर्थोंका उद्धार, श्रीविग्रहसेवाका प्रकाश, भक्तिशास्त्रका प्रणयन तथा नामप्रेमका प्रचार करें। इसीलिए श्रीरूप-सनातन गोस्वामी आदि जैसे उन्नत वैष्णवगण भी उक्त भक्ति कार्योंका सम्पादन करनेके लिए परस्पर इष्टगोष्ठीमें सम्मिलित होते थे। आजकल बहुत-से कोमल श्रद्धावाले साधक निर्जनमें भजन करनेका स्वाङ्ग करते हैं, किन्तु कुछ ही दिनोंमें पथभ्रष्ट होकर भजनराज्यसे गिर जाते हैं।

सभापति श्रील गुरुमहाराजने नैमिषारण्य स्थित श्रीव्यासगद्दी स्थानपर गम्भीर दार्शनिक तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उन्होंने भागवत-गुरुपरम्पराकी व्याख्या करते हुए अन्वय-व्यतिरेकभावसे भगवत्-तत्त्वकी व्याख्या की। साथ ही श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी महिमाका वर्णन किया। श्रीमद्भागवत श्रील वेदव्यासकी सर्वोत्तम कृति है। यह ब्रह्मसूत्रका यथार्थ अर्थ, महाभारतका तात्पर्य निर्णय, गायत्रीका भाष्य तथा वेदरूपी कल्पवृक्षका

परिपक्व रसमयफल है। जो इस रससुधाका रसास्वादन कर चुका है, वह किसी भी अन्यशास्त्रोंमें रम नहीं सकता। इस ग्रन्थमें सार्वजनिक, सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक निखिल समस्याओंका आश्चर्यजनक समाधान प्राप्त किया जा सकता है। श्रील व्यासदेवने इसे भक्ति द्वारा पवित्र हृदयमें समाधिके द्वारा प्राप्त किया था। यह कोई ग्रन्थ नहीं, बल्कि श्रीकृष्णका शाब्दिक अवतार है।

नैमिषारण्यमें यात्रियोंने ब्रह्मकुण्ड, गङ्गोत्री, दशाश्वमेध घाट, गोमतीगङ्गा, यज्ञवराह कूप, श्रीलक्ष्मीनृसिंहदेव, चक्रतीर्थ आदिका दर्शन किया। मिश्रिकतीर्थमें यात्रियोंने सीताकुण्ड, वाल्मीकि आश्रम, सीतादेवीका पाताल प्रवेश स्थान, दधीचिमुनिका आश्रम आदि स्थानोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् नियमसेवा—कार्तिकव्रत पूर्ण होनेपर यात्रीगण अपने-अपने स्थानोंको लौट गये।

श्रीसेतुबन्ध रामेश्वरकी परिक्रमा एवं ऊर्जाव्रत

अगले वर्ष १९५० ई॰ में कार्तिक नियमसेवाके उपलक्ष्यमें सेतुबन्ध रामेश्वरकी परिक्रमा सम्पन्न हुई। समितिके प्रतिष्ठाता सभापति महाराजके आनुगत्यमें लगभग दो सौ श्रद्धालुभक्तोंने श्रीगौर-पदाङ्कपूत दक्षिणभारतके विभिन्न तीर्थस्थानोंमें परिक्रमा करने तथा वहाँ कार्तिकव्रत पालन करनेका सुयोग प्राप्त किया। हावड़ा स्टेशनसे यात्रा आरम्भकर सर्वप्रथम पुरीधाम तत्पश्चात् सिंहाचलम, मङ्गलगिरि, मद्रास (चेन्नई), चिगंलपुट, कांजीवरम, चिदम्बरम, सीयालि, मायाभरम, तीरुमेडामारुडू, कुम्मकोणम, पापनाशनम, तांजोर, रामेश्वरम, धनुष्कोडी, श्रीवैकुण्ठम, तेरुचण्डूर, कन्याकुमारी, सुचिन्द्रम, तीरुवन्तर, त्रिवेन्द्रम, वरकला, शङ्करनारायणकैल, श्रीमिलीपुत्तर, मदुरा, पालनी, श्रीरङ्गम, वृद्धाचलम, तिरुमिन्नामलई, तिरुपति, तिरुमलई, तिरुचाणुर, कलहसीके दर्शन एवं पक्रिमाके पचशत् गुन्टूर जंक्शन पहुँचे। वहाँसे यात्रीगण हावड़ा स्टेशन लौटे। एक माह तक साधुसङ्गमें सङ्कीर्त्तन और हरिकथाके माध्यमसे कार्तिकव्रत पालनकर तथा विभिन्न रमणीक एवं दुर्लभ तीर्थस्थलोंका दर्शनकर श्रीगुरुमहाराजके प्रति कृतज्ञ होनेके कारण अश्रुपूरितनेत्रोंसे भावविभोर होकर सभी भक्तगण अपने-अपने स्थानोंको लौटे। उन्होंने विदा होते समय श्रीगुरुदेवके चरणोंमें गिरकर

यह आशीर्वाद माँगा कि आप कृपा करें कि बहुत शीघ्र ही हमें ऐसा ही वैष्णवसङ्ग प्राप्त हो जिससे हम शुद्धभक्तिके पथपर क्रमशः अग्रसर हो सकें।

आनन्दपाड़ामें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव

२६ दिसम्बर, १९५० ई० में श्रील गुरुमहाराज लगभग पन्द्रह मठवासियोंके साथ जिला चौबीस परगनाके अन्तर्गत आनन्दपाड़ा नामक शरणार्थीपल्लीमें जगद्गुरु श्रीलसरस्वती प्रभुपादकी तिरोभाव तिथिके उपलक्षमें सात दिनों तक श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया। उनकी ओजस्विनी हरिकथाको सुनकर उस अञ्चलमें रहनेवाले श्रद्धालु लोग बड़े प्रभावित हुए। परमाराध्य श्रील गुरुदेवके इस भाषणका सार संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है—

आपलोगोंमेंसे अधिकांश अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिए पूर्वी बङ्गालको त्यागकर यहाँ भारतमें आये हैं। भगवान्‌का शासन जीवोंके लिए सदा ही कल्याणजनक होता है। केवलमात्र अन्न और वस्त्रकी व्यवस्था करना ही मानव जीवनका उद्देश्य नहीं है। यवनोंका आचार-विचार, वेशभूषा, भावभङ्गी तथा उनकी विचारधाराको ग्रहणकर केवल मुखसे 'मैं हिन्दू हूँ'—यह कहनेसे हिन्दू नहीं हुआ जाता। हिन्दुओंके सनातनधर्मके आचार-विचारोंका यथार्थ रूपमें पालन करनेसे ही हम हिन्दू हो सकेंगे। अपने धर्मके प्रति श्रद्धा और निष्ठाका अभाव ही आज हिन्दू समाजकी दुर्दशाका यथार्थ कारण है। पाश्चात्य शिक्षा एवं पाश्चात्य लोगोंके संस्पर्शसे आज हिन्दू समाज अपने धर्मको भूलकर अपना व्यक्तित्व त्याग रहा है। आज उसकी दुर्दशाका यही मूल कारण है। ऐसी दशामें हिन्दुओंका अधःपतन अनिवार्य है। हम हिन्दू आज धर्मके लिए अपने प्राणोंका उत्सर्ग करना भूल गये हैं। हम श्रीराम एवं श्रीकृष्णके आदर्शों और उनकी शिक्षाओंको भूलकर विपरीत दिशामें जा रहे हैं। धर्म आचरणका विषय है। केवल मुखसे ही धर्म माननेसे नहीं चलेगा। हमारे सामने जो दुर्दिन आ रहे हैं, उसमें यदि हम अपने धर्मके विषयमें इस प्रकार उदासीन रहे, तो उसका दुष्परिणाम हमें ही भोगना पड़ेगा।

प्रत्येक व्यक्तिका घर एक-एक आश्रम है। वहाँ हम भगवद्भक्तिका अनुशीलन करनेके लिए निवास करेंगे। केवलमात्र आहार, निद्रा, भय और मैथुनमें संलग्न रहनेके लिए ही घरमें रहना नरकमें वास करनेके समान है। तामसिक पदार्थोंके सेवनसे जीव अधिकतर भगवत्-विमुख होता जाता है। इसलिए प्याज, लहसन, माँस-मछली, मद्य तथा धूम्रपान आदि तामसिक वस्तुओंका वर्जन करना एकान्त कर्त्तव्य है। धर्मकी भित्तिपर ही नयी-नयी पल्लियों या ग्रामोंका गठन होना उचित है। इन नयी पल्लियोंका मेरुदण्ड धर्म होना चाहिये। धर्मके बिना मनुष्य चतुष्पद पशुके समान है। धर्मके आचरणसे ही मनुष्य लौकिक एवं पारलौकिक रूपसे सुखी रह सकता है।

वसीरहाटमें सनातनधर्मका प्रचार तथा श्रीचट्टोपाध्याय महाशयके प्रतिवादका उत्तर

श्रील गुरुमहाराजने सन् १९५० ई॰ में श्रीमेदिनीपुर, नरघाट, शीतलपुर, हल्दिया, तमलुक, चौबीस परगनाके बाजीपुर, वसीरहाट आदि विभिन्न स्थानोंमें श्रीसनातनधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया। वसीरहाटकी विराट धर्मसभामें आचार्यकेशरीने सिंहगर्जनके साथ सनातनधर्मके सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हुए प्रच्छन्न बौद्धवादी आचार्य शङ्करके अवैदिक केवलाद्वैतवादके असार एवं वेदविरुद्ध अर्वाचीन विचारोंका खण्डन किया। उन्होंने कहा भगवद्भक्ति ही सनातनधर्म है। जीवमात्र स्वरूपतः भगवान्‌का दास है। इसलिए भगवत्-दास्य ही भूत, भविष्यत एवं वर्त्तमान तीनों कालोंमें वर्त्तमान रहनेवाला सनातनधर्म है। इसीको वैदिकधर्म, भागवत धर्म एवं वैष्णवधर्म भी कहते हैं। जीव एवं जगत् कदापि मिथ्या नहीं है। जीव भगवान्‌का शाश्वत अंश है तथा जगत् भगवान्‌की अपरा प्रकृतिसे प्रकटित परिवर्तनशील एवं नश्वर होते हुए भी सत्य है। स्वप्नकी भाँति अथवा रज्जुमें सर्पकी भाँति मिथ्या या भ्रममात्र नहीं है। शङ्करका विचार अत्यन्त स्थूलबुद्धिवाले लोगोंके लिए ही आदरणीय है। शाङ्कर दर्शन असार एवं युक्तिविरुद्ध है—ऐसी शिक्षा हम वेदान्त समितिके बालकोंको दिया करते हैं।

श्रीगौड़ीय पत्रिका द्वितीय वर्षके चतुर्थ अङ्कमें श्रील गुरुमहाराज द्वारा प्रदत्त भाषणका सारांश प्रकाशित हुआ था। उसे पढ़कर टाटानगरके श्रीसत्यभूषण चट्टोपाध्याय महोदयने उसका प्रतिवाद करते हुए एक पत्र दिया था। श्रील गुरुमहाराजने शास्त्रयुक्ति एवं सिद्धान्तके अनुसार उनके पत्रका जो उत्तर दिया था, उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

"विश्ववासी सुशिक्षित सम्प्रदायको तत्त्वदर्शनकी सत्यता उपलब्धि करनेके लिए आह्वान करना किसीको किसी रूपसे चुनौती देना नहीं है, बल्कि इस समय आचार्य श्रीशङ्करके अद्वैतवाद या मायावाद विचारकी अपेक्षा गौड़ीय वैष्णवोंके अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तकी उत्कर्षताके सम्बन्धमें तुलनमूलक समालोचना ही की गयी है। विशुद्ध वैष्णवगण आचार्य श्रीशङ्करके विचारोंके प्रति लेशमात्र भी श्रद्धा नहीं रखते। मिश्रवैष्णव अभिमानी किसी-किसीमें मायावादके प्रति श्रद्धा देखी जाती है। हम वैष्णव संन्यासी हैं। समाज संस्कारको धर्मसंस्कारके अन्तर्गत मानते हैं। शिक्षित समाजको उसके कल्याणके लिए किसी विषयकी सत्यताको समझानेका हमें अधिकार है। सत्यका प्रचार करते समय किसी-किसीको कुछ बुरा लग सकता है, क्योंकि वह असत्यको ही सत्य समझ रहा है। किन्तु यथार्थमें हम किसीको कभी भी उद्वेग देना नहीं चाहते। हम तो यही कहना चाहते हैं कि श्रीचैतन्यमहाप्रभुका आचार और विचार समग्र पृथ्वीमें सर्वोत्तम और सर्वश्रेष्ठ है। हमलोग आचार्य श्रीशङ्करके निन्दक नहीं हैं। किन्तु उनके द्वारा प्रदर्शित विचारयुक्ति-मतवादकी सर्वतोभावेन प्रशंसा करनेके लिए प्रस्तुत नहीं हैं।"

श्रील गुरुदेवके इस पत्रको पाकर श्रीचट्टोपाध्याय महाशयने मायावादके सिद्धान्तोंके विषयमें बहुत-से प्रश्न किये, जिनके उत्तर श्रीगौड़ीय पत्रिकामें क्रमशः प्रकाशित हुए हैं।

श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव, नवनिर्मित गृहमें श्रीविग्रहोंका प्रवेश

मार्च, १९५१ ई० में सप्ताहव्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सव बड़े धूमधामसे सम्पन्न हुआ। उस अवसरपर केवल

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें सेवित विग्रहगण

श्रीमन्महाप्रभु, श्रीश्रीराधा-विनोदविहारी

श्रीकोलदेव

श्रील प्रभुपाद

बङ्गालके ही नहीं, अपितु भारतके विभिन्न प्रदेशोंसे श्रद्धालु यात्रियोंने अनुष्ठानमें योगदान किया था। परिक्रमाके नियामक श्रील गुरुमहाराजकी सुन्दर व्यवस्थासे सभी यात्रियोंने हरिनाम-सङ्कीर्त्तन एवं हरिकथाके माध्यमसे श्रीमन्महाप्रभुकी लीलास्थलियोंके दर्शन एवं परिक्रमाका सौभाग्य प्राप्त किया।

अभी तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ एक किरायेके मकानमें स्थापित था। उस छोटे-से मकानमें ही श्रीविग्रहोंका अर्चन-पूजन होता तथा वहींसे श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाकी सारी व्यवस्था होती थी। यात्रियोंको पासके किसी मैदानमें शिविरोंमें ठहाराया जाता था। उस वर्ष समितिने अपने संग्रहीत विशाल प्राचीर द्वारा परिवेष्टित विस्तृत भूखण्डमें परिक्रमाकी सारी व्यवस्था की। उसमें एक ओर एक श्रीमन्दिर, सेवकखण्ड एवं भोगशालाका निर्माण हुआ था। परिक्रमासे पूर्व नगर-सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ श्रीविग्रहोंको इस नये श्रीमन्दिरमें पधराया गया तथा इसी भूखण्डमें एक ओर यात्रियोंके ठहरनेके लिए बहुत-से शिविरोंकी व्यवस्था की गयी थी।

श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा उत्सवमें अन्यान्य संन्यासियोंके साथ
श्रीआचार्यकेसरी

हुगली जिलाके अन्तर्गत श्रीरामपुर निवासी परम भागवत श्रीयुत हरिपद दासाधिकारी एवं उनकी भक्तिमती सहधर्मिणी श्रीमती ज्ञानदासुन्दरीदेवी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके विशाल भूखण्डकी बहुत लम्बी प्राचीर एवं श्रीमन्दिर निर्माणके लिए प्रचुर अर्थकी व्यवस्थाकर श्रील गुरुमहाराजके प्रचुर आशीर्वादके पात्र हुए हैं। भगवत्-सेवाकी उनकी आदर्श सेवा-प्रचेष्टा सुकृतिशाली व्यक्तियोंके लिए प्रेरणादायक है।

श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी प्रभुका वेशाश्रय

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल प्रचारकेन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके रक्षक श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी प्रभु, वर्धमान जिलेके अन्तर्गत सीधाबाड़ी ग्राममें सिद्धवाड़ी गौड़ीय मठमें गृहादि निर्माणके कार्यकी व्यवस्थाके लिए वहाँ आये हुए थे। बादमें १९५१ ई॰ में श्रीगुरुमहाराज भी वहाँ स्वयं उपस्थित हुए। ११ मई, १९५१ ई॰ के शुभदिन नवनिर्मित मठमें गृहप्रवेशके दिन श्रीपाद ब्रह्मचारीजीने श्रील गुरुमहाराजके निकट वेशाश्रय (बाबाजी वेश ग्रहण) किया।

श्रीपाद त्रिगुणातीत ब्रह्मचारी पहले हुगली जिलाके अन्तर्गत जिराट-बालागढ़ ग्रामके विख्यात मुखर्जी परिवार (सर आशुतोषमुखर्जी) के शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। इनका पूर्वाश्रमका नाम श्रीत्रिगुणनाथ मुखोपाध्याय था। वेशग्रहण करनेके पश्चात् वे श्रीमत् त्रिगुणातीतदास बाबाजी महाराजके नामसे परिचित हुए। वे जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीपादके दीक्षित एकनिष्ठ सेवकोंमें अन्यतम थे। उन्होंने आकुमार ब्रह्मचारी रहकर निष्ठापूर्वक श्रील प्रभुपाद व उनके स्थापित श्रीगौड़ीय मठ मिशनकी जिस प्रकारसे सेवा की है, वह सबके लिए आदर्शस्वरूप है। उनका त्याग, वैराग्य एवं सेवा विशेष रूपसे अनुसरणीय है। एकनिष्ठ गुरुसेवक श्रीपाद अनङ्गमोहन ब्रह्मचारीकी अस्वस्थ अवस्थामें उन्होंने जिस प्रकारसे प्रीतिपूर्वक सेवा शुश्रूषा की है, वह भी वैष्णवोंके लिए एक आदर्श है, साथ ही वैष्णवजगत्में अत्यन्त विरल भी है। हम प्रसङ्गवशतः यह पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि उन्होंने समितिको अपना श्रीगौराङ्ग प्रिन्टिङ्ग प्रेस उसके उपकरणों सहित प्रदान कर दिया था।

विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

श्रीसिद्धबाटी गौड़ीय मठमें वास करते समय पांजनीया ग्राम निवासी श्रीयुतभागवत दासाधिकारी महोदयकी विशेष प्रार्थनासे उक्त ग्राममें प्रबल भावसे तीन दिनों तक भक्तिका प्रचार किया गया। तत्पश्चात् चौबीस परगना जिलेके अन्तर्गत काकद्वीप, कलारचक, सरबेड़िया, एकतारा, डाइमंड हारवर, चांदनगर, मथुरापुर, कांशीनगर आदि स्थानोंमें श्रीसनातन वैष्णवधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया गया।

इसी वर्ष कार्तिक माहमें चौरासी-क्रोस व्रजमण्डल परिक्रमा (द्वितीयबार) और ऊर्जाव्रतका अनुष्ठान हुआ। श्रीलगुरुदेव संन्यासी, ब्रह्मचारी और गृहस्थ भक्त—कुल दो सौ यात्रियोंके साथ हावड़ा स्टेशनसे यात्राकर गया, काशी और प्रयाग आदि तीर्थ स्थलियोंका दर्शनकर मथुराधाममें उपस्थित हुए। गयामें यात्रियोंने श्रीगदाधरपादपद्म, फल्गुतीर्थ, बोधगया तथा श्रीगौड़ीय मठ; काशीमें श्रीसनातन शिक्षास्थली, श्रीविश्वनाथ मन्दिर, वेणीमाधव, अन्नपूर्णा, दशाश्वमेध घाट एवं मनिकर्णिका घाट तथा प्रयागमें श्रीरूप गौड़ीय मठ, त्रिवेणीसंगम, श्रीबिन्दुमाधव, श्रीरूप शिक्षास्थली, दशाश्वमेधघाट आदिका दर्शन किया।

मथुरामें परिक्रमा संघने हेलनगंजवाली बड़ी धर्मशालामें दो-चार दिन निवासकर मथुराके प्रसिद्ध विश्रामघाट, द्वारिकाधीश, गतश्रम टीला, ध्रुव टीला, पिप्पलेश्वर महादेव, रङ्गेश्वर महादेव, भूतेश्वर महादेव, गोकर्णेश्वर महादेव, श्वेतवराह, कृष्णवराह, सप्तऋषि, दीर्घविष्णु, श्रीपद्मनाभ, कृष्णजन्मभूमि, कंसकारागार आदिका दर्शन किया। तत्पश्चात् श्रील सरस्वती प्रभुपादके पदाङ्कका अनुसरण करते हुए द्वादशवनात्मक श्रीव्रजमण्डलकी परिक्रमा आरम्भ की। यमुनाके पश्चिमी तटपर स्थित (१) वृन्दावन, (२) मधुवन, (३) तालवन, (४) कुमुदवन, (५) बहुलावन, (६) काम्यवन, (७) खदीरवन, तथा पूर्वी तटपर स्थित (८) भद्रवन, (९) भाण्डीरवन, (१०) बेलवन, (११) लौहवन, (१२) महावनकी परिक्रमा करते हुए उन स्थानोंमें कृष्ण-लीलास्थलियोंका दर्शन किया। उस परिक्रमामें श्रीगोवर्धनमें विराट रूपसे अन्नकूट महोत्सव सम्पन्न हुआ तथा श्रीगिरिराज, श्रीराधाकुण्ड-श्यामकुण्ड, वृन्दावन,

नन्दगाँव, वरसानाकी पृथक् रूपसे परिक्रमा भी की गयी। यात्रियोंके आहार और वासस्थान आदिकी सारी व्यवस्था समितिकी ओरसे की गयी थी, जिससे यात्री निश्चिन्त होकर एकाग्र चित्तसे धाममाहात्म्य एवं भक्तिग्रन्थोंका श्रवण कर सकें।

परिक्रमा एवं व्रतकी समाप्ति होनेपर यात्रीलोग अश्रुपूरित नेत्रोंसे अपने अपने घरको लौटे।

श्रीव्यासपूजापद्धति-ग्रन्थ संग्रह तथा उसका प्रकाशन

फरवरी सन् १९५२ ई॰ की माघी कृष्णातृतीयासे माघी पञ्चमी तक तीन दिवस-व्यापी श्रीश्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। श्रील गुरुमहाराजजीने अपनी आविर्भाव तिथिके उपलक्षमें प्राप्त अभिनन्दन एवं पुष्पाञ्जलियोंके प्रत्युत्तरमें बहुत ही मूल्यवान उपदेश प्रदान किया। उन्होंने कहा त्रिदण्डिसंन्यासी अपने-अपने जन्मदिवसपर श्रीगुरुपूजा करेंगे। गुरुपूजाके साथ गुरु-परम्परा, श्रीराधाकृष्णयुगल तथा सपरिकर शचीनन्द श्रीगौरहरिकी पूजा भी आवश्यक है। व्यासपूजा, गुरुपूजा, आचार्यपूजा, उपास्यपूजा एक ही तत्त्वकी पूजा है। कृष्णपञ्चक शब्दका अर्थ पाँच प्रकारकी कृष्णपूजासे नहीं है, बल्कि उनके पाँच प्रकारके प्रकाश या विलासको ही लक्ष्य करता है।

आचार्य श्रीशङ्करकी व्यासपूजा यथार्थ व्यासपूजा नहीं है। वह तो पूजाका भानमात्र है। भारतमें वैयासिकी सम्प्रदाय ही सर्वोत्तम एवं सर्वश्रेष्ठ है। भारत एवं भारतवासी व्यासदेवके ऋणी हैं। किन्तु वर्त्तमान समयमें व्यासके प्रति भारतके शिक्षित सम्प्रदायका अनादर देखा जा रहा है। यह बड़े परितापका विषय है। इसीलिए गौड़ीय वेदान्त समिति भारतके विभिन्न स्थानोंमें बड़े उत्साहके साथ श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान कर रही है।

श्रील सरस्वती प्रभुपादने श्रीपुरीस्थित गोवधर्नमठसे 'व्यासपूजा पद्धति' नामक ग्रन्थका संग्रह किया। श्रील गुरुमहाराजने भी पुष्करके ब्रह्ममठ तथा गोमतीद्वारकाके शारदामठसे उक्त पद्धति-ग्रन्थका संग्रहकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित श्रीव्यासपूजा पद्धतिको श्रीगौड़ीय पत्रिकाके चतुर्थ वर्षके तृतीय अङ्कमें प्रकाश किया है। अभी

तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी शाखा मठोंमें विशेषतः मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीयमठ, नवद्वीपमें इसी पद्धतिके अनुसार श्रीव्यासपूजा सम्पन्न होती है।

अष्टोत्तरशतनामी त्रिदण्डसंन्यास प्रदान

सन् १९५२ ई॰ में छः मार्चसे बारह मार्च तक सप्ताहव्यापी श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान महासमारोहके साथ सम्पन्न हुआ। ११ मार्च, मङ्गलवार गौरपूर्णिमाके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल प्रचारकेन्द्र श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें समितिके प्रतिष्ठाता सभापति परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रीगौड़ीय पत्रिकाके प्रकाशक श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी, पत्रिकाके कार्याध्यक्ष श्रीराधानाथ दासाधिकारी तथा पत्रिकाके प्रचार-सम्पादक श्रीगौरनारायण दासाधिकारी 'भक्तबान्धव' को वैष्णव सात्त्वत स्मृतिके अनुसार अष्टोत्तरशतनामी वैदिक त्रिदण्डसंन्यास वेष प्रदान किया। इन तीनोंके संन्यासका नाम क्रमशः त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज(१), त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज(२) तथा त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज(३) रखा। इस प्रकार संन्यासका नामकरण अर्थात् संन्यासीके नामका विशेषण 'भक्तिवेदान्त' अब तकके इतिहासमें अभूतपूर्व था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति महाराजने ब्रह्मसूत्रके गोविन्दभाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणके अभिन्नस्वरूपमें गौड़ीय वेदान्त धाराको पृथ्वीमें प्रबल वेगसे प्रवाहित किया है। गौड़ीय वेदान्त ही भक्तिवेदान्त है। ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिमभाष्य पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतमें ही इसका तात्पर्य प्रतिष्ठित है। निर्मत्सर सारग्राही अभिज्ञ वैष्णवगण इसके द्वारा परमगम्भीर रहस्यकी ही उपलब्धि करते हैं।

फाल्गुनी पूर्णिमाके दिन श्रीगौरजन्म तिथिके उपलक्षमें भक्तलोग प्रातःकालसे ही उपवास किये हुए थे। सङ्कीर्त्तनके साथ-साथ

???
(१-३) श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज तथा श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

आचार्यकेसरीके प्रथम संन्यासी शिष्य

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम

श्रीचैतन्यभागवतका पारायण चल रहा था। कभी-कभी नवद्वीपवासी साधारणजन होलीके रङ्गमें रङ्गे हुए ढोलक और मजीरेपर होलीका गान गाकर, गुलालकी वर्षा करते हुए मठ-प्राङ्गणमें प्रवेश कर रहे थे तथा सङ्कीर्त्तनके साथ ठाकुरके मन्दिरकी परिक्रमा करते हुए श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधाविनोदविहारी तथा श्रीकोलदेवका दर्शन करते हुए चले जाते। यात्रीलोग भी गङ्गास्नान आदिसे निवृत्त होकर साफ-सुथरे नये कपड़े पहनकर हाथोंमें गुलाल और अबीर लेकर सर्वप्रथम श्रीमन्दिरमें अर्पण करते तत्पश्चात् गुरु-वैष्णवोंको प्रणामकर बड़े प्रेमसे एक दूसरेसे मिलते।

दोपहरके पश्चात् 'वैष्णवस्मृति—संसारदीपिका' के विधानके अनुसार संन्यासके लिए डोर-कोपीन एवं दण्डका संस्कार, संन्यास-प्रदान तथा उसके उपलक्ष्में यज्ञ होम आदिका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। विपुल-सङ्कीर्त्तन और जयध्वनिसे आकाशमण्डल मुखरित हो रहा था। उसमें माताओंकी उलूध्वनि तथा शङ्खध्वनि और भी चारचाँद लगा रही थी। ऐसे सुसमयमें हजारों श्रद्धालु सज्जनोंके समक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रील केशव

गोस्वामी महाराजने अपने आश्रित उक्त तीनों सेवकोंको संन्यास-मन्त्र एवं अष्टोत्तरशत संन्यासी-नामोंके अन्तर्गत भक्तिसूचक नाम प्रदान किया। इसके पश्चात् श्रील गुरुमहाराजके आदेशसे वे तीनों नये त्रिदण्डियति संन्यास आश्रमोचित भिक्षाके लिए निकले। इस प्रकार उनलोगोंने संन्यास आश्रमकी मर्यादाका पालनकर भिक्षालब्ध अन्न, द्रव्य, पुष्प, फल सब कुछ गुरुके चरणोंमें निवेदन कर दिया।

शामको धर्मसभामें तीनों नये संन्यासियोंने असंख्य यात्रियोंसे भरी हुई सभामें पृथक्-पृथक् रूपसे भाषणके माध्यमसे शुद्धभक्तिके गम्भीर तत्त्व-सिद्धान्तोंकी व्याख्याकर श्रोतृमण्डलीको चमत्कृत कर दिया।

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

अप्रैल सन् १९५२ ई॰ में परमाराध्यतम आचार्यकेसरीने त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्दामोदर महाराज, श्रीमत्त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद्वामन महाराज, श्रीमन्नारायण महाराज, श्रीपरमेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीसत्यविग्रह दासाधिकारी, श्रीसुदामसखा दासाधिकारी, श्रीधीरकृष्ण ब्रह्मचारी आदिको साथ लेकर आसाम-प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया। सर्वप्रथम प्रचार पार्टीके साथ गोलोकगंजमें श्रीमती सुचित्राबालादेवीके घरमें तत्पश्चात् धूबड़ी शहरके स्वधामगत पूज्यपाद निमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके वासभवनमें रहकर श्रील गुरुमहाराजने प्रबल भावसे प्रचार किया। उसके पश्चात् उन्होंने प्रचार पार्टीके साथ अभयपुरी राज्यके दीवान माननीय श्री जे॰एन॰ नियोगी महोदयके विशेष आग्रहसे अभयपुरी स्थित बिजनी राज्यभवनमें हिन्दूधर्मके सम्बन्धमें बड़ा ही प्रभावशाली भाषण दिया। वहाँसे आसाम वैष्णव सम्मेलनीके सदस्योंके विशेष आग्रहसे वे भाटीपाड़ा ग्राममें उपस्थित हुए। वहाँसे बोंगाई गाँवके गाँधी मैदानमें एक विराट धर्मसभामें सनातनधर्म एवं महाप्रभुके विचारके विषयमें बहुत ही ओजस्वीनी भाषण दिया।

इन स्थानोंमें प्रचार करनेके बाद श्रीयादवेन्द्रदास और प्रेमानन्ददासके विशेष अनुरोधसे श्रीलगुरुदेव श्रीचैतन्यमत विरोधी सम्प्रदायके गढ़

मालीगाँवमें पहुँचे। मालीगाँव आसामका एक बहुत बड़ा एवं विशेष कस्बा है। वहाँके अधिकांश लोग निःशक्तिक कृष्णकी आराधना करते तो हैं, किन्तु उनका श्रीविग्रह स्वीकार नहीं करते। श्रीव्यासदेव रचित श्रीमद्भागवतको नहीं बल्कि हंकरदेव द्वारा असमिया भाषामें लिखित आधुनिक भागवतपोथीको प्रामाणिक मानते हैं। माँस-मछली, प्याज-लहसुन, मदिरा आदिका सेवन भी करते हैं। वे लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुके शुद्धभक्ति-सिद्धान्तोंका एवं शुद्ध वैष्णवोंका विरोध करते हैं।

शामके समय श्रील आचार्यकेसरी विशाल धर्म-सभामें दलबलके साथ उपस्थित हुए। दस-बारह हजार श्रोताओंसे सभा खचाखच भरी हुई थी। सभी लोग श्रील गुरुदेवके भाषणकी प्रतीक्षा कर रहे थे। श्रील गुरुदेवने बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें शुद्ध सनातनधर्मके सम्बन्धमें भाषण देना आरम्भ किया। सर्वशक्तिमान, सविशेष, अखिलरसामृत-मूर्त्ति व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही पूर्ण-सनातन ब्रह्म हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्ति ही पूर्णरूपेण सनातनधर्म है। प्याज-लहसुन, मद्य-माँस आदिका पूर्ण रूपसे वर्जनकर सनातनधर्म—शुद्धभक्तिके अङ्गोंका पालन करना ही मनुष्य जीवनका परम कर्त्तव्य है। जो लोग इसके विपरीत मद्य-माँस आदि अमेध्य वस्तुओंका सेवन करते हैं, उनका जीवन पशुके समान है—'धर्मेण हीना पशुभिः समाना'—इतना सुनते ही सभाके मध्यसे एक व्यक्ति उठकर जोर-जोरसे कहने लगा—"हम चैतन्य महाप्रभुके विचारोंको नहीं मानते।"

गुरुदेवने कहा—केवल चैतन्य महाप्रभु ही नहीं, वेद, उपनिषद्, पुराण आदि सारे शास्त्र एक ही बात कहते हैं। किसी भी सत्-शास्त्रमें मद्य-माँस खानेका कोई प्रावधान नहीं है। भगवान् निराकार नहीं हैं। उनका अपूर्व सुन्दर श्रीविग्रह है। श्रीविग्रह होते हुए भी वे सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान हैं।

एक श्रोता सदस्य—हंकरदेव द्वारा लिखित भागवतमें ऐसा नहीं लिखा है। इसलिए हमें यह सिद्धान्त मान्य नहीं है। हम हंकरदेवके भागवतको ही प्रामाणिक मानते हैं।

गुरुदेव—हंकरदेव द्वारा लिखित भागवत दो ढाई सौ वर्ष पूर्वलिखित एक आधुनिक ग्रन्थ है। वेद, उपनिषद्, पुराणादि शास्त्र अपौरुषेय एवं नित्य-सनातन होनेके कारण प्रामाणिक हैं।

श्रोता सदस्य—श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ आधुनिक हैं। क्या वेदोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके नामका उल्लेख है? श्रीमन्महाप्रभु भगवान् हैं—क्या वेदोंमें ऐसा कोई प्रमाण है?

गुरुदेव—हाँ, एक नहीं हजारों प्रमाण हैं। ध्यानसे सुनिये—ऐसा कहकर उन्होंने श्रीवामन महाराजकी तरफ देखकर प्रमाण उपस्थित करनेके लिए कहा। श्रीपाद वामन महाराजजीने अपनी नोटबुक श्रीपाद त्रिविक्रम महाराजजीके हाथोंमें दे दी, जिसमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी भगवत्ताके सम्बन्धमें शास्त्रोंके चालीस-पचास प्रमाण लिखे हुए थे। श्रीपाद त्रिविक्रम महाराजजी श्रील गुरुदेवके आदेशसे सभास्थलमें जोर-जोरसे उन प्रमाणोंका पाठ करने लगे। किन्तु विपक्षके लोग प्रमाणोंको सुनना नहीं, बल्कि सभामें गड़बड़ी फैलाना चाहते थे। उन्होंने सभास्थलमें पत्थर फेंकना आरम्भ किया। सभाके दूसरे लोगोंने उनका विरोध किया। गुरुजीने निर्भीक होकर अपना भाषण जारी रखते हुए कहा—हम संन्यासी, ब्रह्मचारी मृत्युसे नहीं डरते। हम तो श्रीप्रह्लाद महाराज एवं श्रीहरिदास ठाकुरके अनुयायी हैं। प्रमाणोंको सुनानेके पश्चात् सभा समाप्त हुई। बहुत दिनों तक चारों तरफ श्रीगुरुदेवकी निर्भीकताकी चर्चा होती रही। निरपेक्ष सत्यके ऐसे निर्भीक वक्ता संसारमें दुर्लभ हैं।

मालीगाँवमें प्रचार करनेके पश्चात् बांसवाड़ी ग्राममें एक धर्मसभामें श्रद्धालु श्रोताओंके विशेष आग्रहसे गौड़ीय वैष्णवधर्म एवं अन्यान्य अपसम्प्रदायोंमें पार्थक्यके विषयमें श्रीगुरुमहाराजने गम्भीर दार्शनिक तत्त्वोंसे पूर्ण भाषण प्रदान किया। तत्पश्चात् प्रचार पार्टीके साथ वे गौहाटी पहुँचे। वहाँ उन्होंने शहरके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका प्रेमधर्म तथा वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय—इन विषयोंपर सिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया। गौहाटी प्रचार-प्रसङ्गमें श्रीगौरीशङ्कर चट्टोपाध्याय (आसाम रेलवे डिवीजनल मेडिकल आफिसर) श्री एम॰ सलई (गौहाटी कॉलेजके प्राध्यापक) आदिकी सेवा-चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय रही।

श्रीजगन्नाथपुरीमें श्रीजगन्नाथकी रथ-यात्रा आदिका दर्शन

सन् १९५२ ई० आषाढ़ महीनेमें श्रीगुरुमहाराजके आनुगत्यमें लगभग २५० यात्री रिजर्व डिब्बेके द्वारा हावड़ा स्टेशनसे यात्राकर सर्वप्रथम बालेश्वर रेलवे स्टेशन और वहाँसे श्रीरेमुना पहुँचे। वहाँ श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथजीका दर्शन हुआ। श्रील गुरुमहाराजने वहाँ श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णित श्रीमाधवेन्द्रपुरी एवं क्षीरचोरा गोपीनाथका उपाख्यान वर्णन किया।

"श्रीमाधवेन्द्रपुरी भक्तिरस कल्पतरुके प्रथमाङ्कुर हैं। इनकी प्रेममयी सेवासे सन्तुष्ट होकर श्रीनाथजी आन्योर गाँवके समीप श्रीगोवर्धनके सानुप्रदेशसे प्रकट हुए थे। श्रीनाथजीकी अभिलाषाके अनुसार श्रीमाधवेन्द्रपुरीने एक माह तक श्रीनाथजीका अभिषेक एवं अन्नकूट महोत्सवके माध्यमसे भोगराग सम्पन्न किया। पुनः श्रीगोपालजीकी इच्छानुसार मलयज चन्दन लानेके लिए पैदल ही जगन्नाथपुरीके लिए इन्होंने यात्रा की। रास्तेमें जब यहाँ पहुँचे तब तक कुछ रात हो गयी थी। ठाकुरजीका भोग लग चुका था। पट खुलते ही श्रीगोपीनाथजीके अद्भुत श्रीविग्रहका दर्शन किया। ठाकुरजीको निवेदित क्षीर भोगकी इतनी सुन्दर सुगन्ध आ रही थी कि श्रीमाधवेन्द्रपुरीका मन भी उधर आकृष्ट हो गया। उन्होंने सोचा यदि मुझे इस भोगका प्रसाद थोड़ा-सा भी मिल जाता, तो मैं भी अपने श्रीनाथजीके लिए वैसा ही स्वादिष्ट क्षीरका भोग लगाता। इतनेमें पट बन्द हो गया। श्रीपुरी गोस्वामी पास ही बाजारमें किसी स्थानपर भजन करने लगे। अभी रातके समय उन्हें यह आवाज सुनायी पड़ी—माधवेन्द्रपुरी कौन है? श्रीगोपीनाथजीका पुजारी उच्च स्वरसे यह आवाज लगा रहा था। श्रीमाधवेन्द्रपुरीने उठकर कहा—मैं ही माधवेन्द्र हूँ, किसलिए मुझे पुकार रहे हो?

पुजारीजीने बड़ी ही नम्रतासे माधवेन्द्रपुरीके हाथोंमें एक क्षीरकी कुण्डी देते हुए कहा—'महात्मन् श्रीगोपीनाथजीको शयन करानेके पश्चात् पट बन्दकर मैं अपनी कोठरीमें सो गया था, अभी मध्यरातमें श्रीठाकुरजीने मुझे स्वप्न दिया कि हमारा एक भक्त बाजारमें किसी जगह भजन कर रहा है, उसे मुझे निवेदित भोग प्रसाद ग्रहण करनेकी अभिलाषा

थी। किन्तु वह कभी किसीसे कुछ भी नहीं माँगता। वह अयाचक वृत्तिका परम निष्किञ्चन वैष्णव है। मैंने उसके लिए बारह क्षीरकी कुण्डियोंमेंसे एकको अपने वस्त्रके नीचे छिपा रखा है। तुम उसे लेकर उन्हें अभी दे आओ।' मैं यह स्वप्न देखकर उठ बैठा तथा पट खोलकर श्रीमन्दिरके भीतर पहुँचा। परम आश्चर्यकी बात थी मैंने अपने हाथोंसे इन प्रसादी कुण्डियोंको हटाकर स्थान परिष्कार किया था। फिर भी एक कुण्डी कैसे बच गयी? वह भी ठाकुरजीके वस्त्रके भीतर। मैंने पुनः ठाकुरजीका दरवाजा बन्दकर क्षीरकी कुण्डी हाथमें लेकर आपको देने आया हूँ। आज तक ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी। श्रीमाधवेन्द्रपुरी भी इस घटनाको श्रवणकर बड़े ही रोमाञ्चित एवं हर्षित हुए। किन्तु सवेरे इस घटनाको जानकर मेरे दर्शनके लिए लोगोंकी भीड़ लग जायेगी—इस प्रशंसाके डरसे उस अन्धकारमें ही वहाँसे जगन्नाथपुरीके लिए चल पड़े। ऐसे भक्त जगत्‌में विरले एवं धन्य हैं। तभीसे श्रीगोपीनाथजीका नाम श्रीक्षीरचोरा गोपीनाथ पड़ गया।

इधर माधवेन्द्रपुरीजीने श्रीपुरीधाममें पहुँचकर श्रीजगन्नाथका दर्शन किया। तत्पश्चात् अपने गोपालजीके लिए मलयज चन्दनका संग्रह किया। उसे अपने सिरपर रखकर पैदल ही श्रीवृन्दावनधाममें लौटने लगे। जब वे पुनः क्षीरचोरा गोपीनाथमें आये तो उन्हें रात्रिकालमें झपकी-सी आयी। उन्होंने स्वप्नमें देखा गोपालजी कह रहे हैं कि तुम वहींपर मलयज चन्दनको घिसकर कुछ दिनों तक गोपीनाथके सारे अङ्गोंमें लेपन करो, इसीसे मेरे सारे अङ्गोंका ताप दूर हो जायेगा, क्योंकि मैं ही गोपीनाथ हूँ। श्रीपुरी गोस्वामीने ऐसा ही किया। कुछ दिनोंके बाद श्रीगोपालजीका आदेश पाकर पुनः वृन्दावन लौट आये। भगवान् अपने भक्तका कष्ट अनुभव करते हैं। फिर भी जगत्‌में भक्तकी प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिए वैसी अलौकिक लीलाएँ करते हैं।"

ऐसा श्रवणकर यात्रीलोग बड़े मुग्ध हुए, श्रीमन्दिरके पास ही श्रीरसिकानन्दजीकी समाधिका भी यात्रियोंने दर्शन किया। इसके पश्चात् यात्रा पार्टी भुवनेश्वरमें पहुँचकर श्रीलिङ्गराज तथा श्रीअनन्तवासुदेव और बिन्दुसरोवर आदि स्थानोंका दर्शनकर श्रीपुरीधाम पहुँची। पुरीमें पन्द्रह दिन तक रहकर आलालनाथ, साक्षीगोपाल, कोणार्क आदिका दर्शन

किया। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरकी विरह तिथिके दिन स्थानीय श्रीजगन्नाथ-बल्लभ उद्यानमें निमन्त्रित विशाल सभामें श्रीवेदान्त समितिके सभापति आचार्य महाराजने एक मनोज्ञ दार्शनिक भाषण प्रदान किया। उस भाषणमें उन्होंने श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके अतिमर्त्य चरित्र, पाण्डित्य तथा उनके द्वारा रचित भक्ति-शास्त्रोंके सम्बन्धमें एक गम्भीर तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उस सभामें उपस्थित पुरीकी विद्वत्-मण्डली बड़ी प्रभावित हुई। दूसरे दिन श्रीगुण्डिचा मार्जन, तत्पश्चात् श्रीरथ-यात्रा, श्रीहेरापञ्चमी, पुनः-यात्रा आदिका अनुष्ठान—कीर्त्तन, पाठ और वक्तृताके माध्यमसे सम्पन्न हुआ। यात्रीगण श्रीजगन्नाथ, गम्भीरा, सिद्धबकुल, हरिदास ठाकुरकी समाधि, टोटा गोपीनाथ, चटक पर्वत, यमेश्वर टोटा, लोकनाथ शिव, पुरी गोस्वामीका कूप, नरेन्द्र सरोवर, इन्द्रद्युम्न सरोवर, गुण्डिचा मन्दिर, चक्रतीर्थ, स्वर्गद्वार आदि विभिन्न स्थानोंका अपने सुयोगके अनुसार दर्शन करते थे। वे लोग इन स्थानोंका दर्शनकर एवं हरिकथा श्रवणकर बड़े प्रसन्न चित्तसे यात्राकी समाप्तिपर अपने अपने स्थानोंको लौटे।

चुँचुड़ा मठमें श्रीजन्माष्टमी व्रत एवं श्रीनन्दोत्सव

इसी वर्ष अगस्त (श्रावण) महीनेमें समितिके प्रचारकेन्द्र श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीजन्माष्टमीका व्रत बड़े समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ। मठाश्रित त्यागी और गृही भक्त सभीने उस दिन आधी रात तक निर्जला उपवास किया। दिनभर श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धका पारायण हुआ, मध्यरात्रिमें श्रीकृष्णके आविर्भावके समय श्रीविग्रहोंका महाभिषेक सम्पन्न होनेपर भोगराग अर्चन यथारीतिसे सम्पन्न हुआ। श्रीसमितिके सभापति आचार्य महाराजने श्रोतृमण्डलीके सम्मुख श्रीजन्माष्टमीके सम्बन्धमें एक दार्शनिक तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उसका सार नीचे संक्षेपमें दिया जा रहा है—श्रीगौड़ीय वैष्णव साहित्यमें हम भगवान्‌का 'जन्म' एवं 'आविर्भाव' इन दोनों शब्दोंमें पार्थक्य लक्ष्य करते हैं। आविर्भाव शब्द गौरवमय है, किन्तु जन्म शब्द माधुर्यपूर्ण है। हम लोगोंका श्रीकृष्णके साथ ही सम्बन्ध है, वे व्रजेन्द्रनन्दन, नन्दतनुज, नन्दात्मज, पशुपांगज हैं। श्रीलचक्रवर्ती ठाकुरने आराध्यो भगवान् व्रजेशतनय तथा श्रीचैतन्य

महाप्रभुने भी शिक्षाष्टकमें अयि नन्दतनुजको ही सम्बोधित किया है। श्रीवासुदेव कहनेपर भी हम नन्दतनुज कृष्णको ही समझते हैं। वे वसुदेवतनुज नहीं है। वासुदेव कृष्णका मथुरामें आविर्भाव हुआ था, जन्म नहीं। वे कंस कारागारमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए तथा वस्त्र एवं अलङ्कारोंको धारणकर देवकी वसुदेवके सामने आविर्भूत हुए। मथुरामें नाड़ीच्छेद आदि जातकर्म संस्कार नहीं हुआ। किन्तु गोकुलमें यशोदा मैयाके गर्भसे कृष्णने जन्म ग्रहण किया है। हमलोग श्रीकृष्णकी इस जन्मलीलाके ही उपासक हैं—'कृष्णेर यतेक खेला, सर्वोत्तम नरलीला नरवपु ताहार स्वरूप।'

जन्म और आविर्भावका यह माधुर्यपूर्ण वैशिष्ट्य केवलमात्र श्रीरूपानुग वैष्णवगण ही हृदयङ्गम करनेमें समर्थ हैं। हमलोग नन्दनन्दन श्रीकृष्णके निकट श्रीरूपानुग वैष्णवोंके आनुगत्यकी ही प्रार्थना करते हैं। श्रील गुरुमहाराजके ऐसे गम्भीर भक्तिके सारगर्भित विचारोंको सुनकर श्रोतृ-मण्डली बड़ी ही प्रभावित हुई।

श्रीबद्रिकाश्रम और केदारनाथकी परिक्रमा

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें ४ सितम्बर, १९५२ ई॰ में एक सौ यात्रियोंके दलने श्रीबद्रिकाश्रमकी परिक्रमाके लिए हावड़ा स्टेशनसे रिजर्व बोगीके द्वारा प्रस्थान किया। उन्होंने सर्वप्रथम हरिद्वारमें दो-तीन दिन निवासकर वहाँसे स्थानीय तीर्थस्थल हरकी पौड़ी, कनखलमें सतीदाह-स्थल आदि स्थानोंका दर्शन किया। वहाँसे यात्रादलने ऋषिकेशमें बाबा काली कमलीवाली धर्मशालामें निवास किया तथा वहींसे केदार-बद्री तककी पैदल यात्राकी सारी व्यवस्था प्रस्तुत की गयी। तत्पश्चात् खाने-पीने तथा बिस्तर आदिका सारा सामान स्थानीय कुलियोंको देकर सभीने पैदल यात्राके लिए प्रस्थान किया। सुसज्जित पालकीमें श्रीगौरसुन्दर आगे-आगे चल रहे थे। उसके पीछे संन्यासी, ब्रह्मचारी सङ्कीर्त्तन करते हुए धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। तत्पश्चात् गृहस्थ भक्त—पुरुष एवं महिलायें कीर्त्तन करते हुए क्रमशः अग्रसर हो रही थीं। जो लोग पैदल यात्राके लिए असमर्थ थे, वे किरायेके घोड़ोंके ऊपर बैठकर यात्रा कर रहे थे। इतना बड़ा परिक्रमाका

दल स्थानीय लोगोंने कभी नहीं देखा था। परिक्रमा संघकी सुन्दर एवं सुश्रृंखल व्यवस्था देखकर सभी लोग एक स्वरसे भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। लगभग ४५ दिनोंमें इन लोगोंने ऋषिकेश, लक्ष्मण-झूला, व्यासघाट, देवप्रयाग, कीर्तिनगर, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग, अगस्तमुनि, चंद्रपुरी, गुप्तकाशी, उखीमठ, मैखण्डा, रामपुर, त्रियुगीनारायण, सोनप्रयाग, मन्दाकिनी, मुण्डकाटागणेश, गौरीकुण्ड, केदारनाथ, तुंगनाथ, आकाशगङ्गा, गोपेश्वर, वैतरिणीकुण्ड, पीपलकोठी, गरुड़गङ्गा, पातालगङ्गा, योशीमठ, पंचबद्री, पंचशिला, विष्णुप्रयाग, पाण्डुकेश्वर, हनुमान चट्टी, श्रीबद्रीनारायण, तप्तकुण्ड, वसुधारा, चामोली, नन्दप्रयाग, आदिबद्री, आदि दुर्गम स्थानोंका दर्शन किया।

ऋषिकेशसे उन दिनों उक्त पहाड़ी स्थानोंमें जानेके लिए पैदलके अतिरिक्त बस या कार आदिकी कोई भी व्यवस्था नहीं थी। तब तक कोई भी पक्की सड़क नहीं थी। कभी-कभी इन संकरे एवं ऊँचे-नीचे ? सँकड़े मार्गोंपर ऊपरसे बड़े-बड़े पत्थरोंकी चट्टानें गिरनेका भय बना रहता था। हमारी यात्रामें भी एक-दो बार ऐसी ही मर्मान्तिक घटनायें हुईं। अकस्मात् यात्राके बीच ही ऊपरसे चट्टाने गिरने लगीं। भगवत्-कृपासे कोई दुर्घटना नहीं हुई। परन्तु ऐसा होनेपर भी पैदल यात्रामें स्थानीय लोगोंकी जो सहानुभूति एवं सहयोग प्राप्त होता है, प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शनका जो सौभाग्य मिलता है, तीर्थस्थलोंके कुण्डोंमें स्नानकर पवित्र होनेका जो सुअवसर मिलता है, वह आजकलकी भाँति बसों द्वारा यात्रा करनेसे सम्भव नहीं है। देवप्रयागमें भागीरथी एवं अलकानन्दाका संगम-स्थल है। यहाँ दोनों नदियोंकी धारा इतनी तीव्र है कि एक तिनका भी उसमें पड़कर खण्ड-विखण्ड हो जाता है। देवप्रयागसे ही भगवती गङ्गा धीरे-धीरे समतल भूमिपर आने लगती है। हरिद्वार पहुँचनेपर वह पूर्ण रूपसे समतल भूमिपर प्रवाहित होने लगती है। कीर्तिनगर तथा श्रीनगर पहाड़ोंपर भी कुछ समतल भूमिपर बसे हुए रमणीक नगर हैं। वहाँ यात्रियोंके ठहरनेके लिए बड़ी-बड़ी धर्मशालाएँ एवं चट्टियाँ हैं। त्रियुगी-नगर एवं तुंगनाथ बड़े ही दुर्गम स्थान हैं। यहाँ सर्वदा बर्फ जमी रहती है। गौरीकुण्डमें आज भी पार्वती एवं शङ्करके विवाह-कालीन यज्ञाग्नि प्रज्जवलित रहती है। यात्रीलोग उसमें आहुति प्रदान करते

हैं। केदारनाथका पथ भी अत्यन्त दुर्गम था। अब कुछ सुगम बना दिया गया है।

शामके समय जब हमलोग श्रीगुरुजीके साथ श्रीकेदारनाथजीका दर्शन करने पहुँचे, तब रास्तेमें रूईकी भाँति ऊपरसे बर्फकी वर्षा हो रही थी। यात्रियोंके हाथ-पैर ठण्डके मारे ठिठुरने लगे। केदारनाथजीका बड़ा ही भव्य दर्शन था। वहाँसे लौटनेपर आग जलायी गयी। सभी लोग आग तापने लगे। अत्यधिक ठण्डके कारण कुछ यात्रियोंकी स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गयी थी। किन्तु अलावने यात्रियोंकी रक्षा की। किसी प्रकार यात्रीगण महाप्रसादका सेवनकर तीन-तीन चार-चार रजाइयोंको ओढ़कर सो गये। प्रातःकालमें सब लोगोंने स्नान, सन्ध्या, अह्निक एवं कुछ प्रसाद सेवनकर पुनः बद्रीनारायणकी ओर कूच किया। जोशीमठ एक प्रसिद्ध स्थान है। आदिशङ्कराचार्यने इस मठकी स्थापना की थी। बहुत-सी पहाड़ियोंके बीचमें कुछ समतल भूमिपर बसा हुआ यह एक रमणीक स्थान है। इन स्थानोंमें चमोली एक महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँसे यात्रीलोग सीधे बद्रीनारायण जाते हैं अथवा बद्रीनारायणसे लौटकर चमोलीसे केदारनाथके दर्शनके लिए जाते हैं। कुछ-कुछ यात्री ऋषिकेशसे सीधा केदारनाथजीका दर्शनकर वहाँसे चमोली होकर फिर बद्रीनारायण दर्शनकर पुनः चमोली वापिस आकर वहींसे ऋषिकेश लौट जाते हैं।

केदार-बद्री यात्राका सर्वोत्तम एवं निरापद समय भाद्रमासका है। इस यात्रामें परिक्रमासंघने अधिकांश स्थानोंमें बाबा काली-कमलीवाली धर्मशालामें रात्रिनिवास किया। अधिकांश दर्शनीय स्थान अल्कानन्दाके तटपर अवस्थित हैं। परिक्रमाके समय परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव सारी व्यवस्था देख-सुनकर सबके अन्तमें विश्राम करते तथा सभी यात्रियोंसे पहले प्रस्तुत होकर सबको जगाकर आगे अग्रसर होनेकी व्यवस्था करते। श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज यात्रियोंको तीर्थदर्शन आदि कराते, श्रीपाद स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी (कृष्णदास बाबाजी)[१] मृदङ्गके साथ कीर्त्तन करते एवं कराते हुए ठाकुरजीकी पालकीके पीछे-पीछे चलते। श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज नित्य सेवा-पूजाके द्रव्यादि संग्रह,

[१] कृष्णदास बाबाजीके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

यात्रियोंकी सब प्रकारकी सुविधाकी व्यवस्था करते तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानकी यात्राके समय सारे सामानोंको तथा कुलियोंको सम्भालनेकी व्यवस्था करते। श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज प्रकाशकी व्यवस्था करते तथा सुदाम सखा ब्रह्मचारी यात्रियोंके प्रसाद आदिकी व्यवस्थामें नियुक्त थे।

सुदीर्घ पैंतालीस दिनों तक यात्री हिमालयकी गोदमें अवस्थान कर श्रीबद्रीनारायण आदिकी महिमा श्रवण, कीर्त्तन करते हुए हावड़ा लौटकर वहाँसे अपने अपने स्थानोंको लौटे। हिमालयके स्वाभाविक प्राकृतिक मनोरम सौन्दर्यको कोई भी नहीं भूल सकता। फिर श्रद्धालु यात्री कैसे भूल सकते हैं? विदाईके समय सभी लोग समितिके सभापति आचार्यके श्रीचरणकमलोंकी वन्दना कृतज्ञता भरे हृदय एवं अश्रुपूरित नेत्रोंसे कर रहे थे।

श्रीपुरुषोत्तम व्रत

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सदस्य तथा उनके अनुगत वैष्णवगण कार्तिक व्रतकी भाँति पुरुषोत्तम व्रतका भी पालन करते हैं। श्रीगौड़ीय पत्रिका द्वितीय वर्ष, चतुर्थ एवं पञ्चम अङ्कमें पुरुषोत्तम मास माहात्म्य एवं पुरुषोत्तम मास कृत्य—दो प्रबन्ध प्रकाशित हुए हैं। वैष्णवाचार्य श्रीलठाकुर भक्तिविनोदने गौड़ीय वैष्णवमात्रके लिए पुरुषोत्तम व्रतका पालन कार्तिक व्रतकी भाँति ही करनेका उपदेश दिया है। बड़े परितापका विषय है कि स्मार्त पंचांग इस विषयमें अत्यन्त उदासीन रहते हैं।

उक्त प्रकाशित प्रबन्धोंमें स्मार्त और पारमार्थिक भेदसे दो प्रकारके शास्त्रोंका उल्लेख किया गया है। स्मार्त शास्त्रके विधि-विधान कर्म प्रधान होते हैं। उनके अनुसार यह विशेष महीना अर्थात् अधिक मास सत् कर्महीन माना गया है और इसलिए इसका दूसरा नाम मलमास भी रखा गया है। किन्तु पारमार्थिक शास्त्रोंमें यह अधिकमास सब प्रकारसे श्रेष्ठ एवं हरिभजनके लिए परमोपयोगी बतलाया गया है। उक्त दोनों प्रबन्धोंमें अधिक मासका माहात्म्य, पुरुषोत्तम नामकरणका कारण, माहात्म्य प्रसङ्गमें द्रौपदीका इतिहास, वाल्मीकि कथित दृढ़धन्वा राजाका वृत्तान्त, पुरुषोत्तम मासमें स्नानविधि, श्रीराधाकृष्णकी पूजा ही पुरुषोत्तम

मासका कृत्य है, व्रतकालमें करणीय एवं अकरणीय, स्वनिष्ठ, परनिष्ठ, निरपेक्ष पारमार्थिक कृत्य, एकान्तिक वैष्णवोंकी स्वाभाविक रुचि एवं उनका करणीय, कर्मकाण्डके क्लेशोंसे रहित होनेके कारण अधिकमास भक्तोंका प्रिय है, हविष्यान्न किसे कहते हैं, व्रत कालमें वर्जनीय वस्तुएँ तथा आचरण, आमिष किसे कहते हैं; श्रीमद्भागवत श्रवण एवं व्रत-पालनका फल, दीपदान एवं उसका माहात्म्य, कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, अष्टमी, नवमी तिथिमें विशेष करणीय, अर्थमन्त्र और नमस्कार-मन्त्र, नीराजन-ध्यान एवं पुष्पाञ्जलि-मन्त्र, व्रतका शेषकृत्य तथा नियम भङ्गकी विधि आदि ज्ञातव्य विषयोंका वर्णन किया गया है।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित श्रीमायापुर पञ्जिका—श्रीचैतन्य पञ्जिकाके अनुसार अधिकांश वैष्णवोंने प्रथम वैशाखसे तीस वैशाख तक इस वर्ष पुरुषोत्तम व्रतका यथारीति पालन किया है। इस वर्ष सिद्धवाटी गौड़ीय मठमें विशेष रूपसे श्रीपुरुषोत्तम व्रतका पालन हुआ, जिसमें बिहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंसे समितिके आश्रित गृहस्थ भक्तोंने सपरिवार योगदान किया।

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीकी पुनः प्रतिष्ठा

श्रील गुरुमहाराज प्रचार पार्टीके साथ जून, १९५३ ई॰ में हुगली जिलाके अन्तर्गत वैंची ग्राम निवासी श्रीमदनमोहन दासाधिकारी महोदयके बार-बार अनुराधसे उनके घर पधारे। श्रीमदनमोहन दासाधिकारी हुगली जिलाके एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न धनी-मानी, प्रतिष्ठित एवं धर्मप्राण व्यक्ति थे। वे उस अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार करवाना चाहते थे। श्रील गुरुदेवके साथ श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्पादक श्रीनारसिंह महाराज, प्रचार सम्पादक श्रीनारायण महाराज, श्रीपरमार्थी महाराज, श्रीत्रिविक्रम महाराज एवं कुछ ब्रह्मचारी भी थे। पाँच दिनों तक बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें श्रीमद्भागवत व्याख्या तथा शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें विभिन्न वक्ताओंके द्वारा भाषण हुए। विश्व भारतीके Vice-Principal Dr. सिद्धेश्वर भट्टाचार्य (M.A., Ex-Lecturer School of Oriental Studies, London) महोदयने उपस्थित होकर श्रीलगुरुदेवके साथ दो घण्टे तक शङ्कर वेदान्त या मायावादके सम्बन्धमें आलोचना की। श्रील गुरुमहाराजने शास्त्रोंके प्रमाण

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी

एवं अकाट्य युक्तिके बलपर आचार्य श्रीशङ्कर द्वारा प्रतिपादित मायावादके शास्त्रविरुद्ध एवं काल्पनिक विचारोंका खण्डन किया। साथ ही आचार्य शङ्कर द्वारा कल्पित मुक्ति मिथ्या है तथा आचार्य शङ्कर भी वैसी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके, इसका भी प्रतिपादन किया। माननीय Vice-Principal महोदय आचार्यकेसरीके गम्भीर एवं शास्त्रसम्मत विचारोंको सुनकर विस्मित एवं निर्वाक (चुप) हो गये।

तत्पश्चात् निकटवर्ती पाण्डुया, मुटुकपुर आदि स्थानोंमें प्रचारकर वे चुँचुड़ा मठमें लौटे। वहाँ २९ सितम्बर, १९५३ में श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीकी पुनः प्रतिष्ठा हुई। पहले यह संस्कृत चतुष्पाठी कलकत्ता महानगरीके ३३/२ वोस पाड़ा लेन, बागबाजारमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके द्वारा परिचालित होती थी। वहाँ हरिनामामृत व्याकरण एवं काव्यका अध्यापन होता था। बहुत-से छात्र कृतित्वके साथ इस चतुष्पाठीसे व्याकरण एवं काव्यकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए थे। श्रील गुरुदेवने एक संक्षिप्ति भाषण दिया—

"वर्त्तमान युगमें संस्कृत शिक्षाका अनादर देखा जा रहा है। किन्तु संस्कृत भाषाके बिना लोगोंका कल्याण असम्भव है। संस्कृत शब्दका अर्थ ही है—परिमार्जित। जिस प्रकार असंस्कृत लोगोंका वैदिक ज्ञानमें अधिकार नहीं है, उसी प्रकार असंस्कृत भाषाके द्वारा मनुष्य उच्चशिक्षामें अधिकार लाभ नहीं कर सकता। भगवत्-उपासना ही वह उच्च शिक्षा है। इस भगवत्-उपासनाकी भाषा, दीक्षा, मन्त्र, महामन्त्र आदिकी भाषाने संस्कृति लाभकर संस्कृत भाषाका सङ्ग प्राप्त किया है। बद्धजीवोंकी नित्यमुक्तिके लिए, अप्राकृत भावोंकी अभिव्यक्तिके वाहनस्वरूप परिभाषाको संस्कृत करनेके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी सभी लोगोंके लिए उन्मुक्त है।"

इस विषयमें प्रसङ्गवशतः श्रीलगुरुमहाराजने कहा—"जगद्‌गुरु श्रीलजीव गोस्वामीने बालशिक्षाके उन्मेषके लिए एक अप्राकृत व्याकरणकी रचना की है, उसका नाम श्रीहरिनामामृत व्याकरण है। श्रील गोस्वामीपादकी स्मृति समस्त जीवोंके हृदयमें जागृत करनेके लिए श्रीहरिनामामृत व्याकरणके पठन-पाठनकी व्यवस्था की गयी है। उक्त व्याकरणका एक प्रधान सूत्र है—'नारायणादुद्‌भूतोऽयं वर्णक्रमः' अर्थात् नारायणसे ही सारे वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है। शब्दके वर्ण तथा जीवोंके वर्णमें कोई पार्थक्य नहीं है। इसीलिए नामवादी या स्फोटवादी शब्दसे सृष्टि-स्थिति प्रलय आदिका निरूपण किया करते हैं। विशुद्ध सारस्वत धाराने अस्पृश्य निम्न कुलोद्‌भूत किसी भी व्यक्तिको संस्कृत कर उसे श्रीमन्महाप्रभुकी अप्राकृत सेवामें अधिकार प्रदान किया है।

"प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय श्रीजीव गोस्वामीके चरणोंमें अपराधी है तथा श्रीमन्महाप्रभुका घोर शत्रु है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके प्रचार-प्रसारके द्वारा प्राकृत सहजिया कुलोद्‌भूत वर्णबहिर्भूत दानवीय विचारको विदूरित करेगी। प्रतिष्ठाके प्रथम दिन ही चतुष्पाठीके विद्यार्थीके रूपमें नवरत्नोंका समावेश लक्ष्य किया जा रहा है। ये ही भविष्यमें नवधा भक्तिके यथार्थ प्रचारकके रूपमें प्रकाशित होंगे।"

वेदान्त व्याख्यारत श्रील आचार्यकेशरी

वेदान्त व्याख्यारत श्रील आचार्यकेशरी

श्रीअवन्तिका (उज्जयिनी) और नासिककी परिक्रमा

श्रीवेदान्त समितिके सभापति महाराजने कार्तिक व्रत-नियमसेवाके उपलक्षमें २० अक्तूबर, १९५३ ई॰ को हावड़ा स्टेशनसे श्रीअवन्तिका एवं नासिक आदि प्रसिद्ध तीर्थोंकी परिक्रमा एवं दर्शनके उद्देश्यसे संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ भक्तोंके साथ यात्रा की। श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, सुदाम सखा ब्रह्मचारी आदि इनके साथ यात्रियोंकी व्यवस्थामें सहयोग करते थे। सर्वप्रथम परिक्रमासंघने कुर्मांचलममें श्रीकूर्मदेवका दर्शन किया। इन सब स्थानोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने भी भ्रमण किया था। इसी स्थानपर श्रीजगन्नाथजीने पुजारियोंके मनस्तापको दूर करनेके लिए श्रीरामानुजाचार्यको सोते समय बिस्तरके साथ जगन्नाथपुरीसे यहाँ स्थानान्तरित कर दिया था। प्रातःकाल उठनेपर आचार्य रामानुज अपनेको शिव मन्दिरमें देखकर बड़े दुखी हुए। किन्तु श्रीकूर्मदेवने उन्हें सान्त्वना

दी कि मैं शिवलिङ्ग नहीं कूर्मदेव हूँ। ऐसी आकाशवाणी सुनकर श्रीरामानुजने प्रसन्न होकर उनकी पूजा की। पुरीमें रहते समय श्रीरामानुजाचार्यने पुरीके पुजारियोंको ताम्बूलसेवन एवं धूम्रपान आदिके कारण उन्हें श्रीजगन्नाथजीकी सेवाके लिए निषेध कर रखा था। पुजारियोंने कई दिनों तक निराहार रहकर बड़े कातर होकर श्रीजगन्नाथजीसे प्रार्थना की कि हे जगन्नाथजी! आप ही हमारे सर्वस्व हैं। हम आपके शरणागत हैं। आपकी सेवाके बिना हम जीवित नहीं रह सकते। उनकी प्रार्थना सुनकर श्रीजगन्नाथजीने श्रीरामानुजाचार्यको रातों-रात सोते समय उठाकर यहाँ रख दिया था।

वहाँसे यात्रीलोग गोदावरीके तटपर स्थित कबूर (विद्यानगर) पहुँचे। यहींपर श्रीचैतन्यमहाप्रभु एवं राय रामानन्दका परस्पर पारमार्थिक संलाप हुआ था, जिसका वर्णन श्रीचैतन्यचरितामृतमें उपलब्ध है। तत्पश्चात् यात्रा पार्टी पंढ़रपुर, कोल्हापुर, मुंबादेवी (मुम्बई), नासिक रोड होकर नासिकमें पहुँची। नासिकमें गोदावरीमें स्नानकर पंचवटी, सूर्पणखाकी नासिका-छेदन स्थान, मारीचवधका स्थान आदि विभिन्न स्थानोंका दर्शनकर अवन्तिका पहुँची। वहाँ छिप्रा नदीमें स्नानकर सान्दीपनी मुनिका आश्रम एवं अन्यान्य श्रीमन्दिरोंका दर्शन किया। श्रीबलदेव एवं कृष्णने सुदामा विप्रके साथ यहीं सान्दीपनी मुनिके आश्रममें सब प्रकारकी विद्याओंका अध्ययन किया था। वहाँसे डाकोरजी, नाथद्वारा, पुष्कर, जयपुर, करौली, वृन्दावन, चित्रकूट, प्रयाग होते हुए कुल अड़तीस दिनोंके पश्चात परिक्रमासंघ हावड़ा होकर अपने-अपने स्थानोंमें लौट गया।

पंढ़रपुरमें पंढ़रनाथका प्रसिद्ध मन्दिर है। श्रीविश्वरूप प्रभु संन्यास लेनेके पश्चात यहाँ पधारे थे। यहींसे निकटवर्ती भीमा नदीके तटपर वे अप्रकट हुए थे। श्रीचैतन्यमहाप्रभु, श्रीविश्वरूप प्रभुकी खोज करते हुए यहाँ आये थे।

हुगली श्रीरामपुरमें सनातनधर्मका प्रचार

१५ दिसम्बर, १९५३ ई० में श्रीआचार्यकेसरी श्रीरामपुर निवासी हरिपद दासाधिकारी महोदयकी विशेष प्रार्थना पर उनके वासभवनमें पधारे। पत्रिकाके सम्पादक श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, प्रचार सम्पादक

श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, कार्याध्यक्ष श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज एवं चार-पाँच ब्रह्मचारी इनके साथ थे। श्रील गुरुमहाराजजीने यहाँ रहकर लगभग पन्द्रह दिनों तक श्रीरामपुरके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार किया। कहीं श्रीमद्भागवतका पाठ एवं व्याख्या की, कहीं बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें सनातनधर्मका वैशिष्ट्य और कहीं वैष्णवधर्मकी उत्कृष्टता आदि विभिन्न विषयोंपर भाषण दिया। श्रीआचार्यदेवके तत्त्वपूर्ण दार्शनिक विचारों एवं अकाट्य युक्तियोंको श्रवणकर स्थानीय शिक्षक, अध्यापक, बुद्धिजीवी वकील, न्यायाधीश, व्यवसायी आदि सभी श्रेणियोंके उच्चशिक्षित व्यक्तिगण विशेष रूपसे आकृष्ट हुए। प्रचारकार्यमें श्रीरामपुर धर्मसभाके सुयोग्य सम्पादक कालीपद गङ्गोपाध्यायकी सेवा-चेष्टा एवं सहायता विशेष रूपसे उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय थी।

श्रीरामपुरकी प्रसिद्ध धर्मसभाके उद्योगसे स्थानीय बल्लभपुरके विद्यालयमें गीता जयन्तीका विराट अनुष्ठान हुआ। वहाँकी महती धर्मसभामें श्रीलगुरुदेवने सभापतिके आसनसे गीताके सम्बन्धमें लगभग डेढ़ घण्टे तक ओजस्विनी भाषामें गीताकी शिक्षाओंके सम्बन्धमें उपदेश दिया। उन्होंने यह बतलाया कि भक्त अर्जुन श्रीकृष्णके सखा थे। वे परम मुक्त एवं श्रीकृष्णके परिकर थे। श्रीकृष्णने उन्हें लक्ष्यकर साधारण जीवोंके लिए गीताका उपदेश दिया था, भक्त अर्जुनके लिए नहीं। गीता धर्मराज्यका प्रारम्भिक ग्रन्थ है तथा श्रीमद्भागवत धर्मराज्यके पोस्ट-ग्रेजुएटका सर्वोत्तम पाठ्य पुस्तक है। धर्मराज्यमें प्रवेशके इच्छुक व्यक्तियोंको सावधानीसे इन विचारोंको ग्रहण करना चाहिये।

स्थानीय रमन हालमें एक विराट धर्मसभाका अधिवेशन हुआ। उस सभामें शहरके उच्चशिक्षित गणमान्य उच्च पदस्थ श्रोतागण सभामें उपस्थित थे। सभाका विषय था 'वर्त्तमान युगकी समस्या एवं समाधान'। श्रील आचार्यदेवने सुदीर्घ डेढ़ घण्टे तक मर्मस्पर्शी विचारमूलक भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—ऋषि-नीतिका अवलम्बन करनेसे ही राजनैतिक, समाजनैतिक, अर्थनैतिक आदि सभी समस्याओंका समाधान हो जायेगा। ५०० वर्ष पूर्व ये सारी समस्याएँ भारतमें वर्त्तमान थीं। श्रीलसनातन गोस्वामी बङ्गालके शासक हुसैन शाह बादशाहके प्रधान

मन्त्री थे। वे बड़े ही तीक्ष्ण मेधासम्पन्न व्यक्ति थे। श्रीचैतन्य महाप्रभुने उनके हृदयमें अपनी शक्तिका सञ्चार किया था, जिससे वे सांसारिक आसक्तिको त्यागकर—घरबार सर्वस्व त्यागकर श्रीमन्महाप्रभुके चरणोंमें उपस्थित हुए थे। उन्होंने मनुष्य जातिकी सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वजनिक समस्याओंके समाधानके लिए श्रीचैतन्य महाप्रभुसे प्रश्न किया था तथा श्रीमन्महाप्रभुने उन प्रश्नोंका उत्तर दिया था। इस सनातन शिक्षाका अवलम्बन करना ही बङ्गालकी बुद्धिमान जातिका समस्त समस्याओंके समाधानका एकमात्र श्रेष्ठ, सहज एवं सरल उपाय है। ऋषिनीतिका तात्पर्य उपनिषद, वेदान्तसूत्र, श्रीमद्भागवत आदि सत्-शास्त्रोंमें वर्णित ऋषियोंकी नीतिसे है। इसलिए इसकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए हमें प्रचीन संस्कृत ग्रन्थोंका अनुशीलन करना होगा। किन्तु इस विषयमें शिक्षाविभागकी भी उदासीनता लक्ष्य की जा रही है। यह बड़े खेदका विषय है।

चौबीस परगना एवं मेदिनीपुरके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार

परमाराध्य श्रीलगुरुदेव ४ जनवरी, १९५४ ई॰ को भक्तोंके अनुरोधपर हावड़ा अशोकनगर कालोनीमें पधारे। वहाँ पाँच दिनों तक श्रीमद्भागवतकी व्याख्या करते हुए अन्यान्य दर्शनोंकी अपेक्षा वैष्णव दर्शनका वैशिष्ट्य, चार्वाक नीति तथा वोलसेविक नीति (रूस) की विशद आलोचना की। उसके पश्चात् उन्होंने मेदिनीपुर जिलेके महिषादलकी विशाल धर्मसभामें (स्थानीय राजकालेजमें) धर्मजीवनकी आवश्यकतापर भाषण दिया। उसके अनन्तर गेहूखलीके निकटवर्ती नाटशाल ग्रामनिवासी श्रीअनन्तकुमार दासके मन्दिरके सामने एक विराट धर्मसभामें सर्वधर्मसमन्वय विषयपर बड़ा ही गम्भीर एवं तत्त्वपूर्ण भाषण दिया।

इसके उपरान्त श्रीलगुरुमहाराजने मङ्गलामाड़ो गाँवके उच्च अँग्रेजी विद्यालयके विशाल प्राङ्गणमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रेमधर्मके विषयमें भाषण प्रदान किया। इस विषयमें उन्होंने कहा—"कलियुगके जीवोंके लिए श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित श्रीहरिनाम-सङ्कीर्त्तन ही

एकमात्र कल्याणका पथ है। मद्य, मत्स्य, मांसभोजी अपसम्प्रदायके द्वारा प्रचारित 'यत मत तत पथ' कभी भी सनातनधर्म नहीं है। चोर एवं साधुके पथ भिन्न होते हैं, दोनोंका गन्तव्य स्थल कदापि एक नहीं हो सकता। गीता इत्यादि शास्त्रोंमें स्पष्ट रूपमें इन मतोंका खण्डन किया गया है। नाना प्रकारके देवताओंकी पूजासे भगवत्-प्राप्ति नहीं हो सकती। श्रीनामसङ्कीर्त्तन युक्त भगवद्भक्ति ही भगवत्-प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ उपाय है। उक्त अपसम्प्रदायोंके मत शास्त्रविरुद्ध एवं कुसिद्धान्तपूर्ण हैं। शुद्ध वैष्णव चारों वर्णोंके गुरु हैं। आधुनिक वैष्णव जाति एक कुसंस्कारग्रस्त, भ्रष्ट अपसम्प्रदाय है। इसके आनुगत्यसे कोई भी कल्याण नहीं हो सकता। वैष्णवोंको सब प्रकारसे वैष्णवोचित सदाचारका पालन करते हुए सर्वश्रेष्ठ विष्णुभक्तिका आचरण करना आवश्यक है।"

सरवेड़िया, ढोंड़ा, एकतारा, नाईकुण्डि, मलुवसान, पिछलदा, गोलवाड़ा, मङ्गलामाड़ो आदि विभिन्न स्थानोंमें श्रीलगुरुदेवके भाषणके पश्चात् सर्वत्र ही त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज एवं त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौर-कृष्ण-राम-लीलाके सम्बन्धमें भाषण प्रदान किया। इस प्रकार सर्वत्र ही प्रबल रूपमें प्रचारकर चुँचुड़ा मठमें लौटे।

चुँचुड़ाके संस्कृत महासम्मेलनमें भाषण

६ फरवरी १९५४ ई० को स्थानीय संस्कृत विद्यालयमें विशाल संस्कृत महासम्मेलनका अनुष्ठान हुआ। भारतके शीर्षस्थानीय बड़े-बड़े संस्कृत विद्वान उस विद्वत्-सभामें उपस्थित थे। महामहोपाध्याय श्रीयोगेन्द्रनाथ तर्क-सांख्य, वेदान्त-तीर्थ द्वारा सर्वसम्मतिसे सभापतिका आसन ग्रहण करनेपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ। सम्मेलनके उद्योक्ता सदस्योंके विशेष अनुरोधपर समितिके प्रतिष्ठाता सभापति महाराजने 'हिन्दूधर्म एवं वैष्णव दर्शन' के सम्बन्धमें एक घण्टा तक गम्भीर दार्शनिक तथ्योंसे पूर्ण एक अत्यन्त ओजस्वी भाषण प्रदान किया। भाषणके प्रारम्भमें उन्होंने भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत शिक्षाके पुनः प्रचुर प्रचलनकी आवश्यकतापर विशेष जोर दिया। हमारे देशमें संस्कृत महासम्मेलन जैसी शिक्षा प्रचार प्रतिष्ठानोंके सर्वत्र गठनकी आवश्यकतापर भी जोर

दिया। वेद–वेदान्त, पुराण, इतिहास किसी भी प्राचीन शास्त्रोंमें यद्यपि हिन्दू शब्दका उल्लेख नहीं देखा जाता, फिर भी हिन्दुकुश या हिमालय पर्वतसे लेकर दक्षिणमें बिन्दु सरोवरके मध्य निवास करनेवाले सनातनधर्मावलम्बियोंको हिन्दू कहा गया है। अतएव हिन्दूधर्मसे सनातनधर्मको ही समझना चाहिये। श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें वर्णित वैष्णवधर्म ही सनातनधर्म है। उन्होंने बड़े ही गम्भीर होकर शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके बलपर आचार्य शङ्कर द्वारा प्रचारित केवलाद्वैतवाद या मायावादको शास्त्रविरुद्ध सर्वथा काल्पनिक मत बतलाया। यह सुनते ही सभामें खलबली–सी मच गयी। कुछ लोगोंने खड़े होकर प्रतिवाद करना आरम्भ किया। किन्तु सर्वशास्त्र पारङ्गत आचार्यकेसरीने उनकी युक्तियोंका आश्चर्य रूपसे खण्डन करते हुए वैष्णवधर्मके विचारोंकी स्थापना की। उनका अद्भुत पाण्डित्य देखकर उपस्थित वैष्णवगण बड़े उल्लसित हुए। किन्तु कुछ अद्वैतवादी विद्वान क्षुब्ध भी हुए।

उक्त सभामें महामहोपाध्याय श्रीयोगेन्द्रनाथ तर्क–सांख्य–वेदान्ततीर्थके अतिरिक्त श्रीजीव न्यायतीर्थ एम॰ए॰, डा॰ महामानव्रत ब्रह्मचारी एम॰ए॰, पी॰एच॰डी॰, हुगली कॉलेजके अध्यापक एम॰ए॰ काव्यतीर्थ, कलकत्ता संस्कृत महाविद्यालयके संस्कृतके अनेक धुरन्धर विद्वान उपस्थित थे। श्रीगुरुदेवके चले आनेके बाद इन लोगोंने भी भाषण प्रदान किया।

मेदिनीपुरके विष्णुपुर कमारपोतामें श्रीव्यासपूजा महोत्सव

२० फरवरी, १९५४ ई॰ के दिन कमारपोता विष्णुपुर निवासी श्रीराधानाथ दासाधिकारी महोदयकी विशेष प्रार्थनासे समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य उनके निवास स्थानपर पधारे। वहाँ अपनी जन्मतिथिके दिन श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके द्वारा संग्रहित और श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरके द्वारा संशोधित श्रीव्यासपूजा पद्धति ग्रन्थके अनुसार महासमारोहपूर्वक पूजा–पञ्चकके साथ श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् उनके अनुगत संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ शिष्योंने उनके श्रीचरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की।

उन्होंने माघी कृष्णपञ्चमी तिथिको अपने परमाराध्यतम गुरुदेव ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिकी पूजाके उपलक्षमें उनका अर्चन-पूजनकर अपने अनुगत सेवकवृन्दोंके साथ उनके पावन चरणोंमें श्रद्धा-पुष्पाञ्जलि अर्पित की। उस दिनकी धर्मसभामें अन्यान्य संन्यासियोंके भाषणके पश्चात् उन्होंने श्रीलसरस्वती ठाकुरके अतिमर्त्य जीवनचरित्र पर, उनकी अप्राकृत शिक्षाके विषयमें एक सारगर्भित भाषण प्रदान किया। इस व्यासपूजा अनुष्ठानका सारा व्ययभार वहनकर श्रीराधानाथ दासाधिकारी समितिके विशेष स्नेहभाजन हुए।

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें सनातनधर्मका प्रचार

श्रील आचार्यदेवने १४ मई, १९५४ ई॰ में अपने साथ त्रिदण्डिस्वामी श्रीनारसिंह महाराज, श्रीत्रिविक्रम महाराज, श्रीवामन महाराज, श्रीनारायण महाराज, श्रीपरमार्थी महाराज, श्रीपरमधर्मेश्वर ब्रह्मचारी, श्रीआनन्द ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी आदि कुल दस-बारह मठवासियोंके साथ आसाम प्रदेशमें शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए यात्रा की। १६ मई को पार्टीसहित सभापति महाराजके गोलोकगंज स्टेशन पहुँचनेपर श्रीसनतकुमार 'भक्तिशास्त्री' 'भागवतभूषण' प्रमुख भक्तोंने नगर-सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ उन लोगोंको श्रीदिव्यज्ञान दासाधिकारी महोदयके वासभवनमें लाकर उनका पूजा-अर्चन किया। वहाँ कई दिनों तक श्रीलगुरुदेवने बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें श्रीहरिनामका माहात्म्य तथा शुद्धभक्तिके विषयमें भाषण दिया। तत्पश्चात् वे पार्टीसहित धूवड़ी शहरमें अपने सतीर्थ गोलोकगत श्रीपाद् निमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके प्रपन्नाश्रममें निवासकर सात दिनों तक वहीं धारावाहिक रूपमें श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की। उन्होंने षड्दर्शनोंमें वेदान्तदर्शनका श्रेष्ठत्व तथा भक्ति ही वेदान्त-सूत्रका प्रतिपाद्य विषय है, इसकी शास्त्रीय प्रमाण एवं युक्तियोंके बलपर स्थापना की। वहाँसे कचहरीहाट, खाकसियाली आदि स्थानोंमें भक्तिका प्रचार करते हुए गौरीपुर राज्यके राजकुमार श्रीप्रकृतीशचन्द्र बरुआ

बहादुरका आतिथ्य ग्रहण करते हुए वहाँ कुछ दिनों तक रहकर सनातनधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया। स्थानीय राजा द्वारा परिचालित संस्कृत पाठशालामें प्रतिदिन श्रीलगुरुमहाराजने श्रीमद्भागवत एकादश-स्कन्धका पाठ किया। पाठशालाके प्रधानाध्यापक, अन्यान्य अध्यापक, बहुत-से विद्यार्थी, गौरीपुर स्टेटके दीवान बहादुर तथा बहुत-से कर्मचारी भागवत श्रवण करनेके लिए नियमित रूपसे वहाँ आते थे। तत्पश्चात् कुमारी गाँव आदि स्थानोंमें प्रचार करते हुए चापर नामक प्रसिद्ध ग्राममें उपस्थित हुए। यहाँ स्थानीय अँग्रेजी उच्च विद्यालयके प्रशस्त प्राङ्गणमें एक विशाल धर्मसभाका आयोजन हुआ। इस धर्मसभामें लगभग दस-बारह हजार श्रोता उपस्थित हुए थे। श्रीलगुरुमहाराजने सनातनधर्मके सम्बन्धमें गवेषणापूर्ण गम्भीर भाषण प्रदान किया। जिसे सुनकर वहाँके शिक्षित सम्भ्रान्त श्रद्धालु व्यक्ति बड़े ही प्रभावित हुए।

उन दिनों चापरमें क्षेत्रमोहन चक्रवर्ती नामक एक तथाकथित गुरु रहते थे। वे वैष्णवधर्मके नामपर वैष्णवधर्मके विपरीत बहुत-से असदाचार तथा कुसिद्धान्तोंका प्रचार किया करते थे। यहाँ तक कि उनका नैतिक चरित्र भी पवित्र नहीं था। स्थानीय व्यक्तियोंने उन्हें उनके अनुयायियोंके साथ एक विचार सभामें श्रील आचार्यकेसरीके सामने उपस्थित किया। श्रीलगुरुदेवने उनसे शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किये। किन्तु चक्रवर्ती कुछ भी उत्तर न दे सके। उपस्थित लोगोंके सामने उनका मतवाद अशास्त्रीय एवं असम्प्रदायिक प्रमाणित हुआ। वे लज्जित होकर गुरुजीके चरणोंमें क्षमा माँगकर चले गये।

इसके पश्चात् श्रीलगुरुदेव प्रचारपार्टीके साथ अभयापुरी स्टेटके माननीय दीवान बहादुरके आग्रहसे अभयापुरी पहुँचे। वहाँ तीन दिनों तक स्थानीय बालिका विद्यालयके प्राङ्गणमें सनातनधर्मके सम्बन्धमें बहुत ही प्रभावशाली भाषण दिया। अभयापुरीके महाराज बहादुर उनके भाषणसे बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने बड़ी श्रद्धापूर्वक श्रीलआचार्यदेवके चरणोंकी वन्दना की। उनका विनीत नम्र व्यवहार, आडम्बरहीन जीवन, सत्यप्रियता, दानशीलता, सरलधर्मनिष्ठा एवं ईश्वर विश्वास विशेष रूपसे प्रशंसनीय था। तत्पश्चात् चोकापाड़ा और बोंगाई गाँवमें प्रचारकर उद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ा पहुँचे।

मथुरामें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना एवं श्रीभागवत पत्रिकाका प्रकाशन

श्रीलगुरुमहाराजके आनुगत्यमें, १९५४ ई॰ के कार्तिक माहमें बड़े समारोहके साथ चौरासी कोस व्रजमण्डलकी परिक्रमा हुई। यात्रियोंके लौट जानेपर श्रीलगुरुदेव श्रीपाद् सनातन दासाधिकारी[१], श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज आदि अनुगत जनोंके साथ कुछ दिनों तक मथुरामें रहे। वे श्रीमथुराधाममें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एक प्रचारकेन्द्र स्थापित करना चाहते थे और वहींसे सारे उत्तर भारतमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिका प्रचार करना चाहते थे। वे परम निष्किञ्चन वैष्णव थे। उनके पास कोई भी अर्थव्यवस्था नहीं थी। फिर भी अपने अनुगत जनोंके साथ सात दिनोंसे एक उपयुक्त स्थानकी खोज कर रहे थे। सातवें दिन वे सभी लोग मथुरामें बड़े अस्पतालके सामने सुप्रसिद्ध, कंसटीलाके दक्षिणी ओर, एक पुरानी धर्मशालाको देखा। उसकी स्थिति बड़ी जीर्ण-शीर्ण थी। किन्तु वह स्थान बड़े मौकेका था। होलीगेट, इम्पीरियल बैंक, स्टेट बैंक आफ इण्डिया, हैड पोस्ट अफिस, स्टेट बस स्टैण्ड, मुख्य बाजार इन सबके बीचमें वह स्थान था। ईंट और पत्थरोंसे बना हुआ एक बड़े हाल सहित उसमें छत्तीस कमरे थे। लेन-देनके विषयमें धर्मशाला वालोंसे वार्त्तालाप भी हुआ। किन्तु पासमें एक भी पैसा नहीं था, बात बने तो कैसे? गुरुजी सबके साथ अपने वासस्थानमें लौटे।

दूसरे दिन जब श्रीलगुरुदेव और कोई स्थान देखनेके लिए प्रस्तुत हुए तब श्रीसनातन प्रभुने कहा अब मैं बहुत थक गया हूँ। कलवाला स्थान मुझे पसन्द है। अब मैं कहीं दूसरी जगह जाना नहीं चाहता। गुरुजीने कहा—"चालीस-पचास हजार रुपये अभी तुरन्त इकट्ठा करना सम्भव नहीं है। अन्ततः कुछ रुपये अग्रिम राशिके रूपमें देने ही होंगे। मेरे पास अभी कुछ भी नहीं है।" श्रीलसनातन प्रभुने उसी समय अपनी कमरकी पेटीसे सात हजार रुपये निकालकर श्रीगुरुदेवके सामने रख

---

[१] श्रीपाद् सनातन दासाधिकारीके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

दिये। सभी लोग आश्चर्यचकित होकर विस्फारित नेत्रोंसे सनातन प्रभुका मुँह देखने लगे। श्रीसनातन प्रभुने गुरुजीसे कहा मैं आपकी इच्छाको बहुत दिनोंसे जानता था। इसीलिए मैं एक-डेढ़ महीनेसे इन रुपयोंको कमरमें बाँधकर घूम रहा हूँ। अब कहीं दूसरी जगह नहीं देखना चाहता। आप कलवाली धर्मशालाको ही लेनेकी व्यवस्था करें। गुरुजीने कहा—"कम-से-कम बारह हजार रुपये अग्रिमके रूपमें देनेसे इस स्थानका इकरारनामा हो सकता है।" यह सुनते ही श्रीसनातन प्रभुने अपने पुत्र श्रीनारायण दासको टेलीग्राम देकर शेष रुपये भी बहुत शीघ्र मँगवा लिये। मथुरा रजिस्ट्री आफिसमें उसकी रजिस्ट्री करा ली गयी।

वहींपर १३ दिसम्बर, १९५४ ई॰ में जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके विरहतिथिके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति श्रीआचार्यदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठकी स्थापना की। श्रीलआचार्यदेवकी अभिलाषानुसार वहींसे सारे उत्तर भारतमें विशुद्ध भक्तिधर्मका प्रचार आरम्भ हुआ। साथ ही यहाँ उन्हींकी इच्छानुसार समितिके पारमार्थिक हिन्दी मासिक मुखपत्र 'श्रीभागवत पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। उन्होंने त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजको इस पत्रिकाका सम्पादक नियुक्त किया। पत्रिका अपनी भाव, भाषा एवं सुसिद्धान्तपूर्ण विचारधाराके कारण शीघ्र ही तत्रस्थ शिक्षित समाजमें बहुत ही लोकप्रिय हुई। उस पत्रिकाके द्वारा गौड़ीय वैष्णव भक्तिधर्मकी दार्शनिक विचारधाराकी सर्वोत्तमतासे अवगत होकर वहाँके बड़े-बड़े विद्वान 'श्रीभागवत पत्रिका' की भूयसी प्रशंसा करने लगे।

सन् १९५५ ई॰ के कार्तिक महीनेमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवके आनुगत्यमें कार्तिक-व्रत नियम-सेवाका आयोजन किया गया। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी परिचालनामें दिनाङ्क २९ अक्टूबर, १९५५ ई॰ के शुभ दिन हावड़ासे यात्रा आरम्भ हुई। परिक्रमा संघ गया, काशी और प्रयागतीर्थका दर्शनकर २ नवम्बरको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ पहुँचा और वहींसे व्रजमण्डलकी परिक्रमा आरम्भ हुई। श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्दन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज और

प्राचीन श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

वर्त्तमान श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

श्रीभागवत पत्रिकाका प्रथम अङ्क

श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजने धाम-माहात्म्य, कीर्त्तन एवं हरिकथाका परिवेशन किया। मठके सेवकगण यात्रियोंके यान-वाहन, वासस्थान व प्रसाद आदिकी समुचित व्यवस्था करते थे। इस विषयमें श्रीभागवत पत्रिकाके सम्पादक श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज, पत्रिकाके प्रकाशन एवं कार्याध्यक्ष रसराज व्रजवासी, श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी तथा श्रीप्रबुद्धकृष्ण ब्रह्मचारीके नाम उल्लेख योग्य हैं। गोवर्धन पूजा और अन्नकूटका महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। श्रीमठका विराट नाट्यमन्दिर भोग सामग्रियोंसे परिपूर्ण हो गया। इतना बड़ा अन्नकूटका आयोजन मथुरावासियोंने इससे पूर्व कभी भी नहीं देखा था। साधारणतः व्रजमें छप्पन भोग प्रसिद्ध है। किन्तु श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके इस विराट अन्नकूटमें ३६५ प्रकारके नैवेद्योंका भोग प्रस्तुत हुआ था। श्रीगिरिराज महाराजके चारों ओर बड़े-छोटे पात्रोंमें अन्नका कूट, खिचड़ी, खीर विविध प्रकारकी मिठाइयाँ, व्यञ्जन, अचार, चटनी, हलवा, लड्डू-पूरी, फल मूल, साग आदिके स्तूप प्रस्तुत किये गये थे। समस्त प्रकारके नैवेद्योंमें मञ्जरीसहित तुलसी अर्पित की गयी थी। बड़े दूर-दूरसे श्रद्धालु लोग इसका दर्शन करनेके लिए पधारे। लगभग पाँच हजार श्रद्धालुओंने अन्नकूटका महाप्रसाद ग्रहण किया। कार्तिक व्रत पूर्ण होनेपर यात्री अपने-अपने स्थानोंको लौट गये।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें विग्रह प्रतिष्ठा एवं अन्नकूट महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके पश्चिम भारतीय प्रचारकेन्द्र मथुराधाममें स्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ३ नवम्बर, १९५६ ई॰ को श्रीगोवर्धन पूजा एवं अन्नकूट महोत्सवके दिन परमाराध्य श्रीलआचार्यदेवने तदीय आराध्य श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीके अर्चा-विग्रहकी सेवाका प्रकाशकर अपने अनुगत जन और व्रजवासियोंको सेवाका सुयोग प्रदान किया है। श्रीविग्रह-दर्शन इतना मधुर और कमनीय है कि दर्शकोंके हृदयमें स्वयं ही ऐसा प्रतीत होता है कि आश्रय-विग्रहके अनुपम प्रेमसे आकृष्ट होकर ही मानो उन्होंने ऐसा प्रेममय विग्रह-प्रकाश किया है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें सेवित विग्रहगण
श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजी एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु

विग्रह-प्रतिष्ठाका महोत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। पूज्य श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजने श्रीत्रिविक्रम महाराज और रसराज व्रजवासीकी सहयोगितासे प्रतिष्ठाके आनुष्ठानिक अभिषेक एवं अर्चन आदि कार्योंको सम्पन्न किया। श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीमद्भक्तिदेशिक आचार्य महाराज, श्रीपरमार्थी महाराज, श्रीनारायण महाराज प्रमुख संन्यासियोंने वैष्णव होम आदि आनुष्ठानिक कार्योंको सम्पन्न किया। अभिषेकके पश्चात् श्रीविग्रहगण गर्भ-मन्दिरमें पधराये गये। वहाँ श्रीआचार्यदेवने स्वयं प्राण-प्रतिष्ठाका कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने स्वरचित एक श्लोकका उच्चारण करते हुए श्रीविनोदविहारीजीकी श्वेत-शैली मूर्त्तिप्रकाशका तत्त्वसिद्धान्त वर्णन किया। वह श्लोक यह है—

राधाचिन्ता निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गितविग्रहम॥

इस श्लोकका यह तात्पर्य है कि श्रीमती राधिकाके द्वारा सब प्रकारसे आलिङ्गित उन व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी मैं पुनः-पुनः वन्दना करता हूँ, जो श्रीमती राधिकाके विरहमें उनकी चिन्तामें विभोर होनेके कारण अपनी श्यामकान्तिको विलुप्तकर गौरकान्तिसे देदीप्यमान हो रहे हैं।

उस अनुष्ठानमें श्रीमोहिनीमोहन रागभूषण प्रभु तथा श्रीसत्यविग्रह प्रभुने श्रीनामकीर्त्तन करते हुए श्रोताओंका मन मुग्ध कर दिया। श्रीमन्दिरके सामने नाट्यमन्दिरमें श्रीगिरिराजजीको स्तूपीकृत लड्डू, पूरी, कचौड़ी, अन्न, परमान्न, पुष्पान्न, खिचड़ान्न, नानाविध व्यञ्जन, फल, मूल, दधी, दुग्ध, पनीर आदि नैवद्योंको अर्पित किया गया। मथुराधामके विभिन्न कॉलेजोंके प्रोफेसर, स्कूलोंके शिक्षक, वकील, न्यायाधीश एवं उच्चशिक्षित सम्भ्रान्त सज्जनवृन्द इस अनुष्ठानमें योगदानपूर्वक श्रीलआचार्यदेवके निकट गौड़ीय-दर्शनमें भक्तितत्त्वके विषयमें श्रवणकर बड़े प्रभावित हुए। तत्पश्चात् वे लोग श्रीविग्रहका दर्शनकर सुस्वादु महाप्रसादका सेवनकर बड़े आनन्दित हुए। लगभग तीन हजार लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

मेदिनीपुर जिलाके पूर्वचक ग्रामके निवासी गिरीशचन्द्रदासने अन्नकूटका व्ययभार वहन किया, कल्याणपुर निवासी गजेन्द्रमोहन

दासाधिकारी और श्रीयुक्त कमलाबाला देवीने श्रीविग्रह, उनके वस्त्र, अलङ्कार आदिको प्रदान किया। ये लोग अपनी आदर्श सेवाके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें चैतन्यवाणीका प्रचार

दिसम्बर १९५५ ई॰ में परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने अपने आश्रित संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंके साथ आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रीचैतन्यवाणीका विपुल रूपसे प्रचार किया। इस बार वे पूज्यपाद श्रीनिमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके प्रचार-क्षेत्रके अधिकांश स्थानोंमें पधारे। उन्होंने गोलोकगञ्ज, धूबड़ी, बिछांदई, खानुरी, रामपुर, बोंगाई गाँव, छकापाड़ा, खगरपुर, साकोमूड़ा, चलन्तापाड़ा, अभयपुरी आदि स्थानोंकी विभिन्न बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें सनातनधर्म, भागवत धर्म, शुद्धभक्ति आदि विषयोंपर भाषण दिया। इस प्रकार वे लगभग एक महीने तक प्रचारकर चुँचुड़ा मठमें लौटे।

बेगुनाबाड़ीमें श्रीव्यासपूजा महामहोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति पिछले कई वर्षोंसे श्रीलसरस्वती प्रभुपाद द्वारा संग्रहित और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा संशोधित श्रीव्यासपूजा पद्धतिके अनुसार श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान एवं शुद्धभक्तिका प्रचार करती आ रही है। लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीधाम मायापुरमें भक्त श्रीवास पण्डितके आँगनमें श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ था। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके आनुगत्यमें श्रीनित्यानन्दप्रभुने श्रीव्यासके स्थानपर श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी पूजा की थी। उस अवसरपर श्रीवासपण्डितने श्रीमन्महाप्रभुसे श्रीव्यासपूजा पद्धतिके सम्बन्धमें उल्लेख किया था। इसीलिए श्रीलसरस्वती ठाकुरने बड़े परिश्रमसे पुरीके गोवर्धनमठसे इस प्राचीन पद्धति-ग्रन्थका संग्रह किया था। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने उसे अपने सम्प्रदायके लिए उपयोगी करते हुए उसका संशोधन एवं परिवर्द्धन किया था। परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने उक्त पद्धति-ग्रन्थको प्राप्तकर पूजा-पञ्चक समन्वित श्रीव्यासपूजाका

प्रवर्तन किया है और प्रतिवर्ष विभिन्न स्थानोंमें महासमारोहके साथ इसका अनुष्ठान भी करते आ रहे हैं।

इस वर्ष श्रीव्यासपूजाका अनुष्ठान मेदिनीपुर जिलेके बेगुनाबाड़ी ग्रामकी पाठशालाके विशाल प्राङ्गणमें आयोजित हुआ। माघीकृष्णा तृतीयासे पञ्चमी तीन दिनों तक महासमारोहके साथ व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ। इस महोत्सवमें प्रतिदिन दस-बारह हजार लोग योगदान करते थे। अन्तिम दिन अनगिनत लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। पूर्वचक निवासी गिरीशचन्द्र दासाधिकारी उत्सवका सारा भार वहनकर समितिके विशेष धन्यवादके पात्र हुए।

श्रीगिरीशचन्द्रजीने अनुष्ठानके प्रथम दिवस अपनी पत्नीके साथ श्रीआचार्यदेवसे हरिनाम मन्त्र एवं दीक्षा प्राप्त की। उस समय उनकी उम्र चौरासी वर्ष की थी। धनाढ्य जमींदार होनेके कारण ये बड़े ही रईसी ठाट-बाटसे जीवन यापन करते थे। फ्राँस आदि विदेशोंसे सुगन्धित तम्बाकु उनके लिए मँगायी जाती थी। सोनेके हुक्के और चिलममें लम्बी गुड़गुड़ीके सहारे वे पलङ्ग पर बैठकर धूम्रपान किया करते। किन्तु पिछले चौरासी कोस व्रजमण्डलकी परिक्रमामें एक महीने तक शुद्ध हरिकथाका श्रवणकर उनका हृदय बदल गया। अब उन्होंने सांसारिक आसक्तियोंसे मुक्त होकर भजन करनेका सङ्कल्प ग्रहण कर लिया। दीक्षाके दिन मुण्डनसे पूर्व इन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय सोनेके हुक्केको अन्तिम प्रणामकर उसे उठाकर दूर फेंक दिया। उनकी इस दृढ़ताको देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये।

श्रीव्यासपूजाके प्रथम दिन परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने अपने परमाराध्यतम श्रीश्रीलप्रभुपादका अर्चन-पूजन और उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तत्पश्चात् श्रीलआचार्यदेवके संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ शिष्योंने उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित की। श्रीत्रिविक्रम महाराजजीने श्रीगुरुपूजा एवं परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने श्रीव्यासपूजाके सम्बन्धमें भाषण दिया। शामकी धर्मसभामें श्रीलगुरुमहाराजने श्रीचैतन्यभागवतसे व्यासपूजा प्रसङ्गका पाठ किया। दूसरे दिन विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त अभिनन्दन पत्रोंका पाठ हुआ तथा श्रीआचार्यदेवका भाषण हुआ। तीसरे दिन श्रीलआचार्यदेवके निर्देशानुसार श्रीनारायण

महाराज एवं श्रीरसराज ब्रजवासीने व्यासपूजा पद्धति ग्रन्थके अनुसार षोडशोपचार द्वारा पूजा-पञ्चकके सहित श्रीव्यासपूजा सम्पन्न की।

हिन्दू साधु-संन्यासी नियन्त्रण बिल (कानून) का प्रतिवाद

भारत प्राचीन कालसे ही एक धर्म-प्रधान देश है। वैदिक कालसे ही भारतकी रीति-नीति, समाज, राजनीति, शासन आदि सब कुछ धर्मनीतिके परिप्रेक्ष्यमें निर्धारित एवं सञ्चालित होता था। यवन एवं अँग्रेजी शासन कालमें भी भारतीय समाजमें धर्मका प्राधान्य संरक्षित था। किन्तु देशके स्वाधीन होनेके बादसे धर्मका जितनी तीव्र गतिसे ह्रास हुआ है उतना हजारों वर्षोंमें कभी नहीं हुआ। अभी कुछ दिन पहले २७ जुलाई, १९५६ ई॰ में भारतीय लोकसभामें हिन्दू साधु-संन्यासियोंको नियन्त्रित करनेके लिए एक प्रस्ताव लाया गया था। इस विधानका यह उद्देश्य था कि साधु-संन्यासियोंमें पापाचारकी प्रवृत्ति तथा समाज विरोधी आचार व्यवहार बढ़ रहा है। भिक्षा करनेकी प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। इनका नियन्त्रण होना भी आवश्यक है। इस बिलके पास हो जानेपर सच्चे साधुओंकी बदनामी दूर होगी एवं समाज भी शुद्ध होगा इत्यादि।

परमाराध्यतम आचार्यकेसरी उन्हीं दिनों श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें विराजमान थे। इस बिलके प्रति जब उनका ध्यान आकर्षित किया गया तो वे सिंहकी भाँति गरज उठे। उन्होंने कहा कि पापाचार तथा समाज विरोधी कार्य-कलापोंको दमन करनेके लिए भारतीय दण्ड संहितामें प्रचुर प्रविधान हैं फिर इसकी अलगसे क्या आवश्यकता है? फिर मुसलमानोंके मुल्लाओंके लिए, ईसाइओंके पोप-पादरियों और बौद्ध-जैनीके भिक्षुओंके लिए बिल क्यों नहीं लाया जा रहा? केवल हिन्दुओंके लिए ही क्यों हाय-तौबा मच रही है? हिन्दू साधुओंके विरुद्ध लोकसभामें कोई भी बिल प्रस्तुत करनेके पूर्व इस विषयमें देशभरमें सूचना देनी होगी। तत्पश्चात् लोकसभामें इस विषयपर बहस होनी चाहिये। ऐसा नहीं कर इनके विरुद्ध गुप-चुप कोई भी विधान या कानून बनाना सर्वतोभावेन असङ्गत है। उन्होंने उक्त बिलका कठोर प्रतिवाद किया।

उन्होंने हिन्दी, बँगला, अँग्रेजी भाषामें अपने प्रतिवाद पत्रको छपवाकर तत्कालीन प्रधान-प्रधान राजनैतिक, समाजनैतिक तथा धर्म-सम्प्रदायके प्रमुखोंको भेजकर एक प्रबल आन्दोलनका सूत्रपात किया। उस प्रतिवादकी प्रतिलिपिका तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीनेहरुजी तथा लोकसभाके सदस्योंमें भी वितरण किया गया। इसके फलस्वरूप ऐसी जनजागृति हुई कि शीघ्र ही लोकसभाने उस बिलको अस्वीकृत कर दिया। हम उनके द्वारा लिखित प्रतिवादकी प्रतिलिपि यथा रूप प्रस्तुत कर रहे हैं—

भारतके कानून एवं विधि-विधान सभी शास्त्रीय विधानोंके अनुसार निर्धारित होते हैं। शास्त्रीय विधियोंके बहिर्भूत कोई भी विधि-विधान भारतमें नहीं चल सकता। साधु-संन्यासियोंको शास्त्र ही नियन्त्रित करते हैं। कोई व्यक्ति या समाज उन्हें नियन्त्रित नहीं कर सकता। सारे पुराणों एवं शास्त्रोंमें इस कथनके पोषक प्रमाण देखे जाते हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् अन्यत्र ब्राह्मण-कुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः। (श्रीमद्भा॰ ४/२१/१२) अर्थात् महाराज पृथु समस्त पृथ्वीके एकछत्र सम्राट थे। उनका दण्ड एवं विधि-व्यवस्था ऋषियों, ब्राह्मणों एवं अच्युत गोत्रीय विष्णु भक्तोंको छोड़कर अन्यान्य सभीके ऊपर बड़ी दृढ़तासे लागू होती थी। साधु-सन्त भारतके गौरव एवं शोभा हैं। सारे विश्वके लोग भारतके इस गौरव एवं शोभासे आकृष्ट होकर अपने पारमार्थिक और सामाजिक जीवनको गठन करनेके लिए प्रस्तुत हैं। भारतीय साधु-संन्यासी बड़े ही शान्तिप्रिय होते हैं। इसीलिए सारा विश्व शान्तिके लिए भारतकी ओर देख रहा है। राजनीतिके द्वारा धर्मनीतिको नियत्रित करना अत्यन्त अनुचित एवं अविधिपूर्ण है।

भारतीय संविधान तन्त्रसे सर्वप्रथम यह घोषणा की गयी थी कि भारत एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र है। इसलिए भारतीय लोकसभा किसी धर्मका नियन्त्रण करनेकी चेष्टा करती है तो वह चेष्टा सम्पूर्ण रूपसे संवैधानिक विधिके विरुद्ध (Against the constitutional law) होगी। दण्डसंहिता (Penal Code) और दाण्डिक प्रक्रिया संहिता (Criminal Procedure Code) आदिके भी अनेक क्षेत्रोंमें परिवर्तन और संशोधन करना होगा। दुर्नीति दमनके लिए पृथक् रूपसे कोई भी कानून बनानेकी आवश्यकता नहीं है। यदि साधुओंकी दुर्नैतिकताके लिए पृथक् कानून

प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है तो काँग्रेस आदि अन्यान्य राजनैतिक दलोंके पापाचार, समाजविरोधी कार्य तथा दुर्नैतिकताके लिए भी पृथक् कानूनकी आवश्यकता है। साधु-संन्यासियोंके प्रधान या आचार्योंको नियन्त्रित करनेसे पहले राजनैतिक पण्डोंका नियन्त्रण होना अत्यन्त आवश्यक है। चोरबाजारी (black marketing) नियन्त्रण आदिके कानून आज तक भी प्रस्तुत नहीं किये गये हैं।

साधु-संन्यासियोंका विचार साधु-संन्यासी ही किया करते हैं। असाधु व्यक्ति साधुओंको कैसे पहचान सकता है? जो लोग कभी भी साधु-संन्यासियोंके पास गये नहीं हैं, उनका सङ्ग नहीं किया है, वे साधुओंका विचार कैसे कर सकते हैं? साधु किसे कहते हैं और असाधु किसे कहते हैं तथा इन दोनोंके बाहर जो हैं, सभीके लिए कानून सङ्गत schedule अर्थात् तफसील प्रस्तुत करनेकी आवश्यकता है। असाधु नियन्त्रणकी कोई भी व्यवस्था नहीं है—साधुओंको नियन्त्रण करनेके लिए असाधुलोग कमर कसकर उठ खड़े हुए हैं। आजकल वोटका युग है, अतः असाधुओंकी संख्या अधिक होनेके कारण साधुओंके ऊपर अत्याचार चलानेके लिए कानून प्रस्तुत किया जा रहा है। गरिष्ठ संख्यावाले लघुसंख्यकोंके प्रति अत्याचार एवं अभिचार चला रहे हैं, हम इसे कभी भी सुशासन नहीं कह सकते।

आजकल साधुओंके प्रति विद्वेष, हिंसा आदि लक्ष्य किया जा रहा है। अपनी-अपनी दुर्नीतियोंके लिए साधुपुरुषोंके द्वारा समाजमें हेय, घृणित, अपमानित और लज्जित होनेके कारण असाधुजन प्रतिहिंसास्वरूप कलिकालोचित साधुनियन्त्रण कानून प्रस्तुत करवा रहे हैं। इसके द्वारा भारतके सभी असाधु व्यक्ति साधुओंके रजिस्टरमें अपना नाम दर्ज कराकर अपनी असत् प्रकृतियोंको चरितार्थ करनेका सुयोग पायेंगे। साधुजन लोकसमाजमें अपनेको साधु कहलानेकी इच्छा नहीं रखते। मैं registered या licensed साधु हूँ—ऐसा परिचय देनेमें वे लज्जाका अनुभव करते हैं। कोई भी साधु सरकारी कार्यालयमें अपना नाम register कराने नहीं जायेंगे, विशेषतः Licensing Officer यदि हिन्दू-विरोधी हुए तो उनके पास हिन्दू शास्त्रानुमोदित साधुताके निरपेक्ष विचारकी आशा भी कैसे की जा सकती है?

साधु कहनेसे गृहस्थ व्यक्तिको साधु समझा जायेगा या नहीं? यदि गृहस्थोंको साधु-श्रेणीसे निकाल दिया जाये तो उन उन्नत स्तरके लोगोंको असाधु कहनेसे भारतीय दण्ड संहिताकी धारा ३५२ का अपराध या उसी कानूनकी धारा ५०० के अनुसार मान हानि होगी या नहीं? दूसरी ओर कोई गृहस्थ व्यक्ति सत्प्रवृत्ति या साधुवृत्ति ग्रहण करना चाहे तो उसे भी license लेना होगा या अपना नाम registered कराना होगा। धार्मिक जीवन यापन करनेवाले बहुत-से उच्चाधिकारी कर्मचारियोंको अदालत या आफिस आदिमें कार्यरत अवस्थामें किसी दुर्नैतिक जिलाधीश आदिके निकट अपने साधुत्वका परिचय देना होगा या उक्त जिलाधीश उनका लाइसेन्स रद्दकर उन्हें दण्ड दे सकेंगे क्या?

माननीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागरके द्वारा प्रस्तावित विधवा-विवाह कानून तथा शारदा बाल-विवाह कानून संविधानमें पास होनेपर भी भारतीय जनताने उसे ग्रहण नहीं किया। वह कानून संविधानके ग्रन्थागारमें किसी कोनेमें ही पड़ा हुआ है। उसी प्रकार यह वर्त्तमान कानून भी जनसाधारणकी इच्छाके विपरीत उनके ऊपर थोपनेपर इसकी भी वही दुर्दशा होनी निश्चित है। हम लोग किसी भी ऐसे कानून निर्माणके सर्वथा विरोधी हैं। लोकसभाके सदस्योंके प्रति हमारा नम्र निवेदन है कि वे कभी भी इस कानूनको पास न करें। साथ ही हम भारतके समग्र समाचार पत्रों एवं उनके पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे अपनी सारी शक्तिका प्रयोगकर इस अन्धे कानूनका प्रबल प्रतिवाद करें। भारतके समग्र जातीय समाजसे विशेषतः साधु-संन्यासियोंसे हम निवेदन करते हैं कि वे इस कानूनके विरुद्ध खड़े होकर एक स्वरसे प्रतिवाद करें।

श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ (आसाम) की स्थापना

जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने पश्चिम बङ्गाल प्रदेशके बाहर भी आसाम, बिहार, उड़ीसा, मद्रास (चेन्नई), उत्तर प्रदेश आदि विभिन्न प्रदेशोंमें प्रबल रूपसे शुद्धभक्तिका प्रचार किया था। उन-उन प्रदेशोंमें उनके बहुत-से उच्च शिक्षित गृहस्थ भक्त भी ऐसे थे, जो शुद्धभक्तिके सिद्धान्तोंमें अतिशय निपुण थे तथा स्थानीय भाषामें प्रचार भी करते थे। आसाम प्रदेशके धूबड़ी निवासी श्रीपाद

निमानन्द सेवातीर्थ प्रभु भी उनमेंसे एक अन्यतम थे। उन्होंने श्रीलप्रभुपादके आनुगत्यमें असमिया भाषाके माध्यमसे सारे आसाम प्रदेशमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया था। किन्तु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अप्रकटलीला प्रवेशके कुछ ही दिनों बाद ये भी अप्रकट हो गये। इन्होंने परलोकगमनके समय अपने अनुगत शिष्योंको श्रीवेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति परम पूजनीय श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आनुगत्यमें रहकर पारमार्थिक जीवन यापन करनेका आदेश दिया था। उनके गृहस्थ शिष्योंमें श्रीमती सुचित्राबाला देवी परम बुद्धिमती एवं भक्तिधर्मके सूक्ष्म विचार सम्पन्न महिला हैं।

'गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया' शास्त्रके इस वाणीके अनुसार गुरुकी आज्ञाको बिना विचार किये पालन करना कर्त्तव्य है। अतः सुचित्रा देवीने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको आसाम प्रदेशमें शुद्धभक्तिधर्मका प्रचार करनेके लिए बड़े आग्रहसे आमन्त्रित किया। इनके पुनः-पुनः अनुरोधपर श्रीलगुरुदेव अपने बारह अनुगत भक्तोंके साथ गोलोकगंज पहुँचे। वहाँ विभिन्न स्थानोंमें प्रबल रूपसे भक्तिका प्रचार किया। श्रील गुरुमहाराजके प्रचार वैशिष्ट्यको देखकर तथा भक्तिराज्यके गूढ़ सिद्धान्तोंको श्रवणकर जनता बड़ी प्रभावित हुई और उन्हींकी शिक्षाके आनुगत्यमें रहकर पारमार्थिक जीवन व्यतीत करनेका सङ्कल्प किया।

उक्त भक्तिमती महिलाने श्रीगोलोकगंजमें गौड़ीय मठ स्थापन करनेके लिए अपनी जमीन और अपना नवनिर्मित गृह आदि भी बिना शर्तके दान कर दिया। १६ जनवरी, १९५७ ई० में ग्वालपाड़ा जिलेके सदर धूबड़ी शहरके जिला सब रजिस्ट्री आफिसमें उक्त दानपत्र दलील रजिस्ट्री हुई। श्रीमती सुचित्राबालाके पति श्रीयुत देवेन्द्रचन्द्र दास (दीक्षाका नाम श्रीदिव्यज्ञान दासाधिकारी) महाशयने अपनी सहधर्मिणीके इस पारमार्थिक कार्यमें विशेष सहायता की।

श्रीसुरेन्द्रनाथ दासके अनुरोधपर श्रीलगुरुदेव ११-१२ फरवरी, १९५७ ई० में ग्वालपाड़ाके अन्तर्गत देवान गाँवमें प्रचार पार्टीके साथ पहुँचे। वहाँ श्रीनित्यानन्द प्रभुके आविर्भाव तथा आसाम प्रदेशीय गौड़ीय वैष्णव श्रीनिमानन्द सेवातीर्थ प्रभुके तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें एक विराट

उत्सव सम्पन्न हुआ। वहाँकी विशाल धर्मसभामें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके श्रील आचार्यदेवने श्रीनित्यानन्द एवं श्रीनिमानन्द प्रभुके जीवनचरित्रके ऊपर ओजस्वी भाषण प्रदान दिया। त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे गौरलीलाकी व्याख्या की। पण्डित श्रीसनत् कुमार दासाधिकारी एवं पण्डित श्रीवृन्दावन दासाधिकारीने भी बड़ी ओजस्विनी भाषामें भाषण दिया। श्रीसुरेन दास महोदयने उत्सवका सारा व्ययभार वहन किया।

श्रीगोलोकगंज मठमें श्रीव्यासपूजा महोत्सव

सत्रह फरवरीसे उन्नीस फरवरी सन् १९५७ ई॰ तीन दिनों तक श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें बड़े समारोहके साथ व्यासपूजा सम्पन्न हुई। समितिके प्रतिष्ठाता आचार्यदेव अपने अनुगत जनोंके साथ यहीं उपस्थित थे। उन्हींके आनुगत्यमें श्रीलसरस्वती प्रभुपादके पद्धति-ग्रन्थके अनुसार पूजापञ्चकके साथ श्रीव्यासपूजा अनुष्ठित हुई। श्रीलगुरुपादपद्मने मठ प्राङ्गणकी विशाल धर्मसभामें श्रीव्यासपूजा एवं व्यास आनुगत्यके सम्बन्धमें एक गवेषणात्मक दार्शनिक भाषण प्रस्तुत किया। निमन्त्रित एवं अनिमन्त्रित लगभग दो-तीन हजार श्रद्धालुओंको महाप्रसाद वितरण किया गया। श्रीमती सुचित्रा बालादेवी एवं उनके परिवारजनोंकी सेवा चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय थी। श्रीसुदामसखा ब्रह्मचारी एवं धन्यातिधन्य ब्रह्मचारीकी अक्लान्त सेवा-चेष्टा भी अत्यन्त सराहनीय रही।

निखिल बंग-वैष्णव सम्मेलनमें श्रीआचार्यकेसरी

बङ्गालके हुगली जिलेमें श्रीरामपुरके समीप श्रीपाट महेश एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ जगन्नाथपुरी जैसा ही रथ-यात्राका अनुष्ठान होता है। यहींपर श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर श्रीकमलाकर पिपल्लाईका श्रीपाट है। यहाँ रहकर वे भजन-साधन करते थे। उनकी तिरोभाव तिथिके उपलक्षमें सिंथि वैष्णव-सम्मेलन और श्रीरामपुर धर्मसभाकी ओरसे सन् १९५७ ई॰ में बारहसे चौदह मार्च तीन दिनों तक निखिल बंग-वैष्णव सम्मेलनका आयोजन हुआ। उक्त सम्मेलनमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्य श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीको सभापतिके रूपमें

वरण किया गया। उस सभामें नवद्वीप निवासी श्रीगोपेन्द्रभूषण सांख्यतीर्थ, पण्डित सुरेन्द्रनाथ पंचतीर्थ, अध्यापक श्रीनगेन्द्रनाथ शास्त्री, प॰ श्रीफणीन्द्रनाथ शास्त्री एम॰ए॰बी॰एल॰ आदि प्रसिद्ध विद्वान उपस्थित थे। श्रीविनोद किशोर गोस्वामी पुराणतीर्थने सभाको उद्‌बोधित किया। प्रधान अतिथि श्रीपतितपावन चट्टोपाध्याय एडवोकेटने श्रीकमलाकर पिपल्लाईके जीवन चरित्रके सम्बन्धमें भाषण दिया। उपरोक्त बड़े-बड़े विद्वानोंने भी अपने-अपने भाषण प्रस्तुत किये।

श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने प्रधान अतिथि श्रीफणीन्द्रनाथ शास्त्री महादयके वक्तव्योंकी कुछ-कुछ समालोचना की। तत्पश्चात् सभापति श्रील केशव गोस्वामी महाराजजीने श्रीकमलाकर पिपल्लाईके सम्बन्धमें शास्त्रयुक्तिमूलक भाषण दिया। उन्होंने बड़े ही गम्भीर स्वरसे प्राकृत-सहजिया लोगों द्वारा अप्रामाणिक ग्रन्थोंमें लिखित सिद्धान्त विरुद्ध विचारोंका कठोर प्रतिवाद किया। श्रीपिपल्लाईके जीवनचरित्रमें कुछ अशुद्ध वैष्णव विचारोंका समावेश कराया गया है, ये आरोपित तथ्य यर्थाथतः भक्तिविरुद्ध हैं। श्रीपिपल्लाईजीका जीवनचरित्र विशुद्ध भक्तिपूर्ण था। श्रीचैतन्यचरितामृतमें उनके सम्बन्धमें कुछ उपलब्ध होता है। श्रोताओंने इस विषयमें सभाके अन्तमें सभापति महोदयसे बहुत-से प्रश्न किये। सभापति महोदयने उनके प्रश्नोंका समाधान किया।

श्रीराधाष्टमी व्रतमें उपवास

श्रीगौड़ीय वैष्णव समाजमें श्रीराधाष्टमी तिथिका महत्त्व है। गौड़ीय वैष्णव इस तिथिका बड़ा ही आदर करते हैं। श्रीमती राधिका कृष्णकी पूर्णतमा शक्ति एवं स्वयं ईश्वरी हैं। उन्हींसे सभी शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ है। इसलिए कोई-कोई राधाष्टमीको जयन्ती कहना चाहते हैं और उस दिन कृष्ण जन्माष्टमीके समान निर्जल उपवास व्रत पालनकी विधि देते हैं। किन्तु यथार्थमें श्रीराधाष्टमी तिथिका व्रत रूपमें उल्लेख रहनेपर भी 'हरिभक्तिविलास' में उक्त दिवसमें उपवासकी विधि नहीं देखी जाती। सहजिया सम्प्रदायके लोग श्रीराधारानीके प्रति अतिभक्ति प्रदर्शनपूर्वक उक्त दिन उपवास भी रखते हैं। श्रीहरिभक्तिविलास ही गौड़ीय वैष्णवोंके लिए एकमात्र स्मृति ग्रन्थ है। उसमें शास्त्रीय प्रमाणोंके साथ वैष्णवोंके

लिए पालनीय व्रतोपवासकी व्यवस्था सुन्दर रूपसे लिपिबद्ध है। क्रिया-कलापके सम्बन्धमें 'सत्क्रियासार-दीपिका' एक आदर्श ग्रन्थ है। इन ग्रन्थोंमें लिपिबद्ध व्रत आदिके नियमोंका उल्लंघनकर कोई नया व्रत आदिका पालन शुद्ध वैष्णवके लिए अनुचित है। आजकल कॉँग्रेस कम्पनी द्वारा परिचालित रजिस्टर्ड गौड़ीय मिशनने शुद्ध वैष्णवधाराका परिवर्तनकर सहजिया मतके अनुसार श्रीराधाष्टमीके दिन व्रतोपवासकी विधिका सूत्रपात किया है।

शास्त्रोंमें शक्तिमान परतत्त्व अथवा उनके अवतारोंके जन्मदिनमें ही व्रतोपवासकी विधि दी गयी है। यदि शक्तितत्त्वके आविर्भावके दिन भी उपवासका विधान होता तो वर्षके ३६५ दिन ही उपवास रखने होंगे, क्योंकि भगवत्-शक्तियोंके अतिरिक्त गुरु-परम्पराके सभी आचार्य एवं गुरु सभी शक्तितत्त्वके अन्तर्गत हैं। इन सभीके आविर्भाव और तिरोभावके दिन व्रतोपवास करना पड़ेगा, यह सर्वथा असम्भव है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन सभी मठोंमें श्रीसनातन गोस्वामीकी विधिके अनुसार एक सितम्बर १९५७ ई॰ रविवारके दिन श्रीराधाष्टमी व्रतका पालन किया गया। उक्त दिन श्रीश्रीराधाकृष्णका अभिषेक, विशेष रूपसे भोगराग, श्रीराधातत्त्वके विषयमें प्रवचन, पाठ एवं सङ्कीर्त्तन इत्यादिका आयोजन किया गया था।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने राधाष्टमीके दिन नवद्वीपके अन्तर्गत कोलेरगंज स्थित परमपूज्यपाद श्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्य सारस्वत मठमें राधातत्त्वके सम्बन्धमें एक दार्शनिक विचारपूर्ण भाषण प्रदान किया। दूसरे वक्ताओंने भी अपने-अपने विचारोंको प्रकटकर श्रीमती राधिकाके चरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित की।

श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम, खड़गपुरमें व्यासपूजा

पिछले वर्ष श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें तथा उससे पूर्व मेदिनीपुरके अन्तर्गत पूर्वचक, वेगुनाबाड़ी ग्राममें श्रीलसरस्वती प्रभुपादके द्वारा प्रवर्तित रीतिके अनुसार विपुल समारोहके साथ व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ था। ८ फरवरी, १९५८ ई॰ में जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादके

आविर्भावके दिन त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराजके अदम्य उत्साहसे उनके श्रीगौर-वाणी-विनोद आश्रम खड़गपुरमें विशाल रूपसे व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ था।

इस अनुष्ठानमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अपने आश्रित जनोंके साथ शुभविजयकर व्यासपूजाका पौरोहित्य किया। व्यासपूजाके दूसरे दिन लगभग पाँच हजार श्रद्धालुओंको महाप्रसाद वितरण किया गया। श्रीव्यासपूजाके उपलक्ष्यमें आयोजित एक बृहत् धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने सभाको सम्बोधित करते हुए कहा—"हम भारतवासी ही नहीं बल्कि विश्ववासी श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके चिरऋणी हैं। उन्होंने वेद अध्ययन करनेवाले जनसाधारणकी सुविधाके लिए वेदके चार विभाग किये। वेदोंके सारभाग वेदान्त या उपनिषदोंके आपात विरोधी वाक्योंका सामञ्जस्य करते हुए वेदान्तसूत्र या ब्रह्मसूत्रकी रचना की। अन्यान्य पुराणों एवं महाभारतकी रचना की और अन्तमें वेदान्तसूत्रको सरल सहज रूपमें बोधगम्य करानेके लिए स्वयं ही उसके भाष्यस्वरूप अमल महापुराण श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया। भारतके सारे धर्मसम्प्रदाय किसी-न-किसी प्रकारसे अपनेको व्यासानुग सम्प्रदाय मानते हैं। श्रीव्यासदेवके द्वारा रचित ग्रन्थोंका अनुशीलन करनेसे यह स्पष्ट रूपसे झलकता है कि भगवद्भक्ति ही उनके ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय है। उन्होंने अपने सुविख्यात ब्रह्मसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान या मुक्ति शब्दका उल्लेख नहीं किया। अपने ब्रह्मसूत्रके अकृत्रिम भाष्य पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र ही भक्तिका प्रतिपादन किया है। श्रीशाङ्कर सम्प्रदायमें श्रीव्यासपूजाका प्रचलन दृष्टिगोचर होनेपर भी उनकी व्यासपूजा हास्यास्पद है। आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कृष्णद्वैपायन श्रीवेदव्यासको भ्रान्त बतलाया है। श्रीशङ्करने लिखा है कि ब्रह्म आनन्दस्वरूप है, वह कभी भी आनन्दमय नहीं हो सकता। किन्तु श्रीव्यासजीने वेदान्तसूत्रमें ब्रह्मको 'आनन्दमय' कहा है। इस प्रकार आचार्य शङ्करने श्रील व्यासदेवके विचारोंका खण्डन किया है। अतः उनकी पूजा केवल दिखलानेमात्रके लिए है।

वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीव्यासदेवकी यथार्थ रूपमें पूजा होती है। श्रीपाद जनार्द्दन महाराज द्वारा अनुष्ठित व्यासपूजाका आदर्श प्रत्येक त्रिदण्डि संन्यासीके लिए ग्रहणीय है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद द्वारा संग्रहीत तथा श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित श्रीव्यासपूजा पद्धतिका अवलम्बन न कर केवल अपने चरणोंमें पुष्पाञ्जलि एवं अर्चाञ्जलि ग्रहण करना ही व्यासपूजा नहीं है। आजकल प्रायः सर्वत्र ऐसा ही देखा जा रहा है कि तथाकथित गुरु व्यासपूजाके नामपर अपने चरणोंमें पुष्पाञ्जलि एवं अर्चाञ्जलि ग्रहण करते हैं। अपने शिष्योंके द्वारा अपनी प्रशस्ति और अभिनन्दन श्रवण एवं ग्रहण करते हैं। व्यासपूजाके दिन आचार्य अपने गुरु, गुरुपरम्परा तथा उपास्य इन सबकी पूजा करेंगे। इस पूजा-पद्धतिके अनुसार गुरुपञ्चक, आचार्यपञ्चक, व्यासपञ्चक, सनकादिपञ्चक, कृष्णपञ्चक, उपास्यपञ्चक, और पञ्चतत्त्वकी पूजा करता है।[१] इस प्रकार श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रचलित व्यासपूजा पद्धतिका अवलम्बन करना ही श्रीगौड़ीय सारस्वत वैष्णवोंका परम कर्त्तव्य है।"

where is the opening quotation mark?

इस अवसरपर श्रीपाद जनार्द्दन महाराजके शिष्य जब उनके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पित करनेके लिए उपस्थित हुए, तब उन्होंने अपने सारे शिष्योंको सर्वप्रथम अपने शिक्षागुरु श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देनेके लिए आदेश दिया। उनके आदेशानुसार उनके सारे शिष्य जब श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि देनेके लिए उपस्थित हुए तब उन्होंने समझाया कि शिष्यको सर्वप्रथम अपने गुरुचरणोंकी पूजा कर ही अन्य गुरुजनोंकी पूजा करनी चाहिये। इसके लिए उन्होंने शास्त्रीय उदाहरण एवं प्रमाण

---

(१)
कृष्णपञ्चक—श्रीकृष्ण, वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध।
व्यासपञ्चक—श्रीवेदव्यास, पैल, वैशम्पायन, जैमिनी, सुमन्त।
आचार्यपञ्चक—श्रीशुकदेव, रामानुज, मध्व, विष्णुस्वामी, निम्बादित्य।
सनकादिपञ्चक—श्रीसनक, सनत्कुमार, सनातन, सनन्दन, विष्वकसेन।
गुरुपञ्चक—श्रीगुरु, परमगुरु, परमेष्ठीगुरु, परात्परगुरु, परमपरात्परगुरु।
उपास्यपञ्चक—श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्रीगौर, श्रीगदाधर, श्रीगुरुदेव।
पञ्चतत्त्व—श्रीकृष्णचैतन्य, नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, गदाधर, श्रीवास।

भी दिये। श्रीपाद जनार्द्दन महाराज अपने ज्येष्ठ सतीर्थ एवं शिक्षागुरुके निर्देशको टाल नहीं सके। इस प्रकार अपने गुरुदेवकी पूजाकर उनके सभी शिष्योंने श्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको पुष्पाञ्जलि प्रदान की। पूज्यपाद जनार्द्दन महाराज जीवन भर इस घटनाको कभी नहीं भूले। वे कहते थे उन्होंने अपने सभी गुरुभाईयोंको बहुत निकटसे देखा, किन्तु इनके जैसा उदार, सिद्धान्तविद, सत्यका निर्भीक वक्ता किसी औरको नहीं देखा। ऐसा कहते हुए उनकी आँखें छलछला उठती थीं।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं अक्षय तृतीया

२२ अप्रैल, १९५८ ई० के दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका प्रतिष्ठा दिवस—अक्षय तृतीयाके दिन एक विशेष उत्सवका अनुष्ठान हुआ। उस दिन श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें पाठ-कीर्त्तनके अतिरिक्त एक विशेष धर्मसभाका आयोजन किया गया। परमाराध्य श्रील गुरुदेवके भाषणका सार इस प्रकार है—अक्षय तृतीया सत्ययुगका प्रारम्भिक दिन है। अक्षय तृतीयासे ही सत्ययुगका प्रारम्भ होता है। श्रीबद्रीनारायणका पट भी प्रतिवर्ष अक्षय तृतीयाके दिन ही खुलता है। अक्षय तृतीयाके दिन ही श्रीजगन्नाथ पुरीमें श्रीचन्दन-यात्रा सम्पन्न होती है। उस दिन श्रीजगन्नाथजीके अङ्गोंमें सर्वत्र मलयचन्दन लेपन किया जाता है तथा श्रीजगन्नाथदेवजीके विजय-विग्रह श्रीमदनमोहनजीको सुसज्जित नौकामें विराजमानकर श्रीनरेन्द्र सरोवरमें उनका नौकाविलास सम्पन्न किया जाता है।

आज ही के दिन १९४० ई० में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना हुई थी। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने 'अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां' श्लोकका अवलम्बनकर श्रीमद्भागवतको ही गौड़ीय-वेदान्तके रूपमें स्थापन किया। गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषणने भी इसी श्लोकका अवलम्बनकर गोविन्द भाष्यकी रचना की। उन्होंने तुलना मूलक विचार करते हुए श्रीगोविन्द भाष्यको सर्वोत्तम भाष्य बतलाया तथा गोविन्द भाष्यके अतिरिक्त सभी वेदान्त भाष्यकारोंमें श्रीमाध्वभाष्यका उत्कर्ष प्रदर्शन करते हुए शाङ्कर वेदान्तकी अनुपादेयता एवं असारताका भी प्रतिपादन किया।

गोलोकगंज आसाममें मठ-मन्दिर निर्माण एवं प्रचार

१ मई, १९५८ ई० को परमाराध्य श्रील गुरुदेव प्रचार पार्टीके साथ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठसे यात्रा कर श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, आसाममें पहुँचे। वहाँसे वे संन्यासी ब्रह्मचारियोंके साथ धूबड़ी शहरके शान्तिनगर पल्लीमें समितिके विशिष्ट सेवक श्रीअद्वैतचरण दासाधिकारी महोदयके घरपर ठहरे। वहींसे उन्होंने धूबड़ी शहरकी कालीवाड़ी आदि स्थानोंमें श्रीमद्भागवत पाठ एवं प्रवचन किया। उन्होंने वहाँके हरिसभा-मण्डपमें वर्त्तमान समस्याका समाधान, धर्मजीवनकी आवश्यकता और सनातनधर्मके सम्बन्धमें तीन भाषण प्रदान किये। उनके गम्भीर एवं प्रभावशाली भाषणोंको सुनकर श्रोतागण बड़े प्रभावित हुए।

उनके साथ श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने भी स्थान-स्थानपर छायाचित्रके माध्यमसे भाषण दिया। इन लोगोंके प्रचारसे उच्चशिक्षित एवं सम्भ्रान्त सभी लोगोंने इनके प्रचारकार्यमें तन-मन-वचन एवं अर्थ द्वारा सहायता की।

पिछलदामें प्राथमिक विद्यालय प्रतिष्ठा एवं शिक्षा प्रणाली

मेदिनीपुर जनपदके अन्तर्गत पिछलदा एक छोटा-सा ग्राम है। श्रीचैतन्य महाप्रभु श्रीजगन्नाथपुरी जानेके पथमें इस ग्राममें पधारे थे। यहाँके ग्रामवासियोंके बार-बार अनुरोध करनेपर श्रील गुरुदेवने यहाँ श्रीमन्महाप्रभु पादपीठ एवं श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ नामक प्रचारकेन्द्र स्थापित किया था। पिछलदा ग्रामवासी उस गाँवमें एक प्राथमिक विद्यालयकी स्थापना करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने School Board नामसे एक प्रतिष्ठानकी रजिस्ट्री करायी थी। विद्यालय चलानेके लिए उन्हें भवनकी आवश्यकता थी। उन्होंने श्रील गुरुदेवको पिछलदा पादपीठके पुराने गृहको स्कूलके लिए प्रदान करनेके लिए २३/१२/५८

ई॰ को एक प्रार्थना पत्र दिया। श्रील गुरुदेव उस समय श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें थे। उन्होंने उक्त प्रार्थना पत्रको पढ़कर अपना मन्तव्य पत्र द्वारा ग्रामवासियोंको प्रेरित किया था जो नीचे दिया जा रहा है—

(१) वर्त्तमान विश्वविद्यालयकी शिक्षाके प्रति श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी तनिक भी श्रद्धा नहीं है। श्रीमन्महाप्रभुकी विरोधी शिक्षाको मैं शिक्षा नहीं मानता।

(२) कुछ रुपयोंकी सहायता पानेके लिए मैं धर्मशिक्षाको जलांजलि देनेके लिए प्रस्तुत नहीं हूँ।

(३) पिछलदा श्रीचैतन्य महाप्रभुका पदांकपूत स्थान है, इसलिए पिछलदावासी लोगोंको श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके अनुकूल जीवन व्यतीत करना चाहिये। इसके लिए उन्हें वैसी ही धर्ममूलक शिक्षा लेनी होगी।

(४) पिछलदा पादपीठ निरीश्वर पादपीठ नहीं है। नास्तिकता मूलक शिक्षा देनेके लिए वेदान्त समितिका किसी प्रकार अनुमोदन नहीं है।

(५) यदि स्कूल बोर्ड, वेदान्त समितिकी शिक्षा पद्धतिको सम्पूर्ण रूपमें छात्रोंको देना स्वीकार करे तो मुझे दानपत्र कर देनेमें कोई आपत्ति नहीं।

(६) श्रीगौड़ीय पत्रिकाके दशम वर्ष, दशम अङ्कमें अचिन्त्यभेदाभेद प्रबन्धमें कलकत्ता विश्वविद्यालयके कार्यकलापके प्रति कठोर कटाक्ष किया गया है, इसे ग्रामवासियोंको स्मरण रखना होगा।

(७) श्रीधाम मायापुरमें मैंने हाईस्कूलकी प्रतिष्ठा की थी। वह विश्वविद्यालय द्वारा अनुमोदित है। वहाँ विश्वविद्यालयके कानूनको भङ्गकर ही धर्मशिक्षाको प्रधानता दी गयी थी। यहाँ भी वही आदर्श ग्रहण करना होगा।

(८) दुर्नैतिक छात्रोंके द्वारा देशका किसी प्रकारका कल्याण सम्भव नहीं है, धर्मनीति ही प्रधान नीति है।

(९) हमारे देशमें क्रिचियन मिशनरी स्कूल बहुत हैं। यदि वे सरकारी अनुमोदन प्राप्त कर सकते हैं, तो पिछलदाकी यह पाठशाला भी धर्मशिक्षाको प्रधान रखकर अवश्य ही अनुमोदन प्राप्त करेगी।

(१०) श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके धर्मीय उद्देश्यके विरुद्ध किसी भी प्रकारका हस्तक्षेप नहीं करना होगा।

(११) श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति शिक्षा विस्तारके लिए विद्यालय या पाठशाला, संस्कृत टोल स्थापन करनेके लिए अनुमोदन करती है। ऐसा विद्यालय वेदान्त समिति द्वारा अनुमोदित कमेटी द्वारा परिचालित होगा। शिक्षाविभागके किसी भी निरीश्वर चिन्तास्रोतको इसमें प्रवेश करने नहीं दिया जायेगा।

(१२) दैत्यराज हिरण्यकशिपुने श्रीप्रह्लाद महाराजको षण्डामर्ककी पाठशालामें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भेजा था। वहाँकी शिक्षा शुक्राचार्यके द्वारा परिचालित होती थी। किन्तु प्रह्लाद महाराजने अपने पिता सम्राटकी आज्ञा तथा शिक्षाविभागके मूल निदेशक शुक्राचार्यके निर्देशका सम्पूर्ण रूपसे उल्लंघन करके ही विष्णुभक्ति शिक्षाकी प्रधानता दी थी। वही हमारी शिक्षा-विस्तारका आदर्श है।

(१३) श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें 'श्रीराय रामानन्द संवाद' प्रसङ्गमें श्रीमन्महाप्रभुने शिक्षाके सम्बन्धमें जगत्‌के जीवोंको जो निर्देश दिया है वही हमारे लिए ग्रहणीय है। इसके अतिरिक्त हम किसी आसुरिक आदर्शको ग्रहण नहीं करेंगे।

(१४) विश्वविद्यालयके आइन-कानूनके अनुसार सभी विद्यालयोंमें शनिवारको अर्द्ध एवं रविवारको पूर्ण अवकाशका नियम है। किन्तु श्रीधाम मायापुरके स्कूलमें इस नियमके विपरीत एकादशी एवं पञ्चमीको अवकाश दिया जाता था। इसके विरुद्ध इसाइयों एवं मुसलमानों द्वारा मेरे विरुद्ध आवेदन देनेपर विश्वविद्यालयके विभागीय परिदर्शकने आकर मेरे ऊपर हुकुम जारी किया था। किन्तु मैंने ऐसा हुकुम पालन करनेसे अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप विश्वविद्यालयकी अर्थ सहायता बन्द कर दी। फिर भी श्रीधाम मायापुरका ठाकुर भक्तिविनोद इन्स्टीट्यूट सरकारी अनुमोदनसे आज भी चल रहा है।

(१५) मेरा यह पत्र (वक्तव्य) ग्रामवासियोंको पढ़ कर सुनाना होगा। मेरे द्वारा और भी स्कूल, टोल, विद्यालय स्थापित एवं परिचालित हो रहे हैं। इसलिए विद्यालय-स्थापनके सम्बन्धमें मेरी श्रेष्ठ अभिज्ञता है। हम सरकारकी कानून आइन माननेके लिए कतई बाध्य नहीं हैं।

स्वाधीन देशके लोग पराधीन नहीं हैं। यहाँपर पाठशालाकी स्थापना अच्छी तरहसे करनी होगी। यह पाठशाला मेदिनीपुर जनपदमें एक आदर्श पाठशाला होनी चाहिये, यह सभीको समझा देना।”

श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव

२९ जनवरी, १९५९ ई. को आसाम प्रदेशके गोलोकगंजमें स्थित श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग राधाविनोद-बिहारीजीकी नित्यसेवा सुप्रकाशित हुई है। समितिके सभापति आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने स्वयं श्रीविग्रहोंकी सुप्रतिष्ठा कर जगत्का अशेष कल्याण किया है। भक्तके हृद्गत तत्त्व श्रीभगवान् कृपापूर्वक बाह्य जगत्में आविर्भूत होते हैं। श्रील आचार्यदेवके हृदयके भावको अभिव्यक्त कर श्रीकृष्ण-विग्रह राधालिङ्गित भङ्गिमामें राधाकान्ति अङ्गीकार कर अपूर्व माधुर्यमण्डित भावसे प्रकाशित हुए हैं—'राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता। श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालङ्गित-विग्रहम्॥' (श्रीराधाविनोदविहारी-तत्त्वाष्टक)

प्रातःकाल ८ बजे तक ऊषाकीर्त्तन, नगर-सङ्कीर्त्तन, तत्पश्चात् प्रातः ८ से लेकर २ बजे तक श्रीविग्रहोंका अभिषेक, शास्त्रपाठ, वैष्णवहोम-यज्ञ, प्रतिष्ठा कार्य, अर्चन-पूजन और भोगरागका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। रात ११ बजे तक निमन्त्रित, अनिमन्त्रित सभी लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। शामको ४ बजेसे ७ बजे तक एक महती धर्मसभाका आयोजन हुआ; जिसमें समितिके त्रिदण्डि-संन्यासियों तथा विद्वानोंके भाषण हुए। सबके अन्तमें श्रील आचार्यदेवने श्रीविग्रह-तत्त्वके सम्बन्धमें गम्भीर एवं भावपूर्ण भाषण प्रदान किया। उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतके 'पद्भयां चलन् यः प्रतिमा-स्वरूपो ब्रह्मण्यदेवो हि शताहगम्यम्। देशं ययौ विप्रकृतेऽद्भुतेऽहं तं साक्षिगोपालमहं नतोऽस्मि॥' अर्थात् जो ब्रह्मण्यदेव प्रतिमारूप होकर भी ब्राह्मणके कल्याणके लिए सौ दिनका पथ पैदल चलकर बहुत दूर देशमें पहुँचे थे, उन अलौकिक कार्य करनेवाले साक्षीगोपालको मैं प्रणाम कर रहा हूँ। उन्होंने इस श्लोकको उद्धृत

करते हुए कहा कि—श्रीविग्रह स्वयं भगवान् हैं। 'प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन'—श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी ऐसा कहा है।

श्रीशङ्कराचार्यके मतानुसार साधकोंके कल्याणके लिए निर्विशेष ब्रह्मका काल्पनिक रूप ही प्रतिमा कहलाती है। एक निर्विशेष ब्रह्मकी काल्पनिक मूर्त्ति पाँच प्रकारकी है—विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य, गणेश। इनके उपासक पंचोपासक कहलाते हैं। शङ्कराचार्यका यह विचार सर्वथा शास्त्रविरोधी कपोल कल्पना है। पत्थर आदिकी काल्पनिक प्रतिमा कदापि चल फिर नहीं सकती अथवा बातचीत नहीं कर सकती। अतः श्रीविग्रह चिन्मय एवं पूर्णब्रह्म-स्वरूप है। भगवान् निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष आदि नहीं हैं। 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्, न प्रतीकेन हि सः, आनन्दमयोऽभ्यासात्' आदि वेदान्तसूत्रोंमें भगवान्के नित्यस्वरूप, उनकी शक्ति एवं अप्राकृत गुणोंका प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने अकाट्य अभिनव युक्तियों तथा शास्त्र-प्रमाणके द्वारा प्रतीकोपासना तथा निराकारवाद आदिका खण्डनकर श्रीविग्रह-तत्त्वके सम्बन्धमें ऐसा तत्त्वसिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया जिससे उपस्थित श्रोतृमण्डलीके हृदयपटलपर एक गम्भीर छाप पड़ी। उन्होंने प्रतिमा और विग्रहमें क्या पार्थक्य है तथा नित्य विग्रह विरोधी निराकार निर्विशेषवादी श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके अधिकारी नहीं हैं, इसकी भी गम्भीर रूपसे घोषणा की।

श्रीगौरवाणी-विनोद-आश्रम खड़गपुरमें व्यासपूजा तथा नवनिर्मित मन्दिरमें श्रीविग्रहोंका प्रवेशोत्सव

२७ फरवरी, १९५९ से १ मार्च, १९५९ तक श्रीगौरवाणी-विनोद आश्रम खड़गपुरमें श्रीव्यासपूजा एवं श्रीविग्रहोंका नवनिर्मित मन्दिरमें प्रवेश उत्सव बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुआ। इस आश्रमके अध्यक्ष त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराजके विशेष आग्रहसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं सभापति परिव्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज उक्त उत्सवके उपलक्षमें खड़गपुर पधारे थे। चार दिनों तक वहाँ उपस्थित रहकर उस महदनुष्ठानका पौरोहित्य भी किया। उनके साथ उनके आश्रित बहुत-से संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंने भी इस महोत्सवमें योगदान किया।

२७ फरवरी, १९५९ माघी तृतीया तिथि उक्त समितिके सभापति आचार्यदेवकी आविर्भाव तिथि थी। उक्त दिवसपर उन्होंने स्वयं अपने गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी आलेख्य-मूर्त्तिकी पूजा की। तथा उनके आदेशसे गंजाम (उड़ीसा) से पधारे हुए श्रीनित्यानन्द ब्रह्मचारीजीने अर्चालेख्य मूर्त्तिकी आरति की। आरतिके समय श्रील आचार्यदेवके द्वारा रचित श्रील प्रभुपादकी आरति गीतिका कीर्त्तन हुआ—

जय जय प्रभुपादेर आरति नेहारी।
योग मायापुर-नित्य सेवा-दानकारी॥

सर्वत्र प्रचार-धूप सौरभ मनोहर।
बद्ध मुक्त अलिकुल मुग्ध चराचर॥

भकति-सिद्धान्त-दीप जालिया जगते।
पञ्चरस-सेवा-शिखा प्रदीप्त ताहाते॥

पञ्च महाद्वीप यथा पञ्च महाज्योतिः।
त्रिलोक-तिमिर-नाशे अविद्या दुर्मति॥

भकति-विनोद-धारा जल शङ्ख-धार।
निरवधि बहे ताहा रोध नाहि आर॥

सर्ववाद्यमयी घन्टा बाजे सर्वकाल।
बृहत्मृदङ्ग वाद्य परम रसाल॥

विशाल ललाटे शोभे तिलक उज्ज्वल।
गल देशे तुलसी माला करे झलमल॥

अजानुलम्बित बाहू दीर्घ कलेवर।
तप्त काञ्चन-बरण परम सुन्दर॥

ललित-लावण्य मुखे स्नेहभरा हासी।
अङ्ग कान्ति शोभे जैछे नित्य पूर्ण शशी॥

यति धर्म परिधाने अरुण वसन।
मुक्त कैल मेधावृत गौड़ीय गगन॥

भकति-कुसुमे कत कुञ्ज विरचित।
सौन्दर्ये-सौरभे तार विश्व आमोदित॥

सेवादर्शे नरहरि चामर ढूलाय।
केशव अति आनन्दे निराजन गाय॥

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने चैतन्यभागवतसे दो दिनों तक श्रीवासके घर व्यासपूजा प्रसङ्गका पाठ किया। इसके अतिरिक्त इन्होंने दो दिन शहरके गणमान्य व्यक्तियोंके घरपर पाठ-कीर्त्तन किया।

दूसरे दिनकी सायंकालीन धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने श्रीकृष्ण-लीलाके सम्बन्धमें प्रवचन करते समय धर्म जीवनकी आवश्यकताके सम्बन्धमें एक सारगर्भित भाषण दिया। उन्होंने कहा कि—"धर्मरहित मनुष्य-जीवन पशु-जीवनके समान है—धर्मेण हीना पशुभिः समाना। आहार, निद्रा, भय, सन्तान उत्पत्ति पशु-जीवनमें भी सर्वत्र देखी जाती है। फिर यदि हम भी उक्त चार विषयोंमें फँसे रहे तो मनुष्य जीवनकी सार्थकता कहाँ रही? फिर पशु जीवनसे मनुष्य जीवनकी श्रेष्ठता कहाँ रही? इसीलिए श्रीमद्भागवतमें—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु याव-
न्निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥

(श्रीमद्भा॰ ११/९/२९)

अर्थात् अनेक जन्मोंके बाद यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। इसलिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होनेपर भी परमार्थको देनेवाला है। मनुष्य योनिके अतिरिक्त किसी भी अन्य योनिमें साधुसङ्ग दुष्प्राप्य है। बिना साधुसङ्गके परमार्थकी प्राप्ति असम्भव है। अतः बुद्धिमान व्यक्तिको मृत्युसे पूर्व ही क्षणमात्र काल विलम्ब किये बिना चरम कल्याणके लिए चेष्टा करनी चाहिये। वह चरम कल्याण क्या है? वह चरम कल्याण श्रीकृष्णकी भक्तिका अनुशीलन करना ही है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि मनुष्योंके लिए सर्वश्रेष्ठ धर्म वही है जिसमें श्रीकृष्णकी भक्ति—भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना

न हो, जो नित्य निरन्तर बनी रहे। ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति॥
(श्रीमद्भा० १/२/७)

भगवद्भक्तिके भी बहुत-से अङ्ग है। जिनमेंसे कलियुगी मनुष्योंके लिए हरिनाम-सङ्कीर्त्तन ही सर्वश्रेष्ठ है।

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

श्रीहरिनाम-सङ्कीर्त्तनमें केवल श्रद्धाका विचार है। श्रद्धालु व्यक्ति ही नाम सङ्कीर्त्तनका अधिकारी है। श्रद्धा होनेपर कोई भी व्यक्ति किसी भी स्थितिमें हरिनाम-सङ्कीर्त्तन कर सकता है। यहाँ तक कि श्रद्धा नहीं रहनेपर भी भगवन्नाम करनेपर मुक्ति तक भी अनायास ही प्राप्त हो सकती है। हरिनामका जप या सङ्कीर्त्तन इतना सरल होनेपर भी लोग इससे क्यों विरत रहते हैं? क्योंकि—'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।' तथा 'भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यात्।' इन शास्त्रीय प्रमाणोंसे यह स्पष्ट है कि सबसे बड़े साहसी वीर पुरुष ही धर्मजीवन ग्रहण कर सकते हैं—हरिनाम ग्रहण कर सकते हैं। कायर व्यक्ति ही आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि मायिक कार्योंमें संलग्न रहते हैं। इन प्रमाणोंके द्वारा यह अच्छी तरहसे समझा जा सकता है कि जो लोग राजनीति, अर्थनीति एवं समाजनीति आदिमें आसक्त रहते हैं, वे सभी डरपोक कापुरुष हैं। वे माया एवं अविद्याके डरसे जर्जरित होकर मायाकी चापलूसीमें ही जीवनको वृथा नष्ट करते हैं। मायाके कारागारसे मुक्त होनेका साहस उनमें नहीं है।"

श्रील प्रभुपादके आविर्भाव तिथिके दिन उनके अर्चन-पूजन तथा उनके श्रीचरणकमलोंमें पुष्पाञ्जलि अर्पणके पश्चात् श्रीपाद जनार्द्दन महाराजकी प्रचेष्टासे निर्मित नौ शिखरविशिष्ट विशाल मन्दिरमें श्रीनाम-सङ्कीर्त्तन एवं पाञ्चरात्रिक विधियोंके अनुसार तदीय प्रतिष्ठित एवं

सम्पूजित श्रीविग्रहोंने शुभ प्रवेश किया। उसी दिन व्यासपूजा पद्धतिके अनुसार गुरुपूजा पंचक, आचार्यपंचक, कृष्णपंचक, उपास्यपंचक आदिकी पूजा एवं वैष्णव होम विशेष रूपसे अनुष्ठित हुआ। सारे खड़गपुरमें ही नहीं मेदिनीपुर जनपदमें भी इस व्यासपूजाकी चर्चा होने लगी।

श्रीराधागोविन्दनाथ महाशय कृत वैष्णव दर्शन ग्रन्थका प्रतिवाद

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं सभापति आचार्यकेसरी ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने बागबाजार कलकत्ताके रजिस्टर्ड गौड़ीय मिशनसे प्रकाशित 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ग्रन्थका कठोर प्रतिवाद किया है। इससे सुधी सज्जन मण्डली विशेष रूपसे अवगत हैं। श्रीयुत राधागोविन्दनाथने भी अचिन्त्य-भेदाभेद ग्रन्थका जूठन ग्रहणकर 'वैष्णव दर्शन' नामका एक विशाल ग्रन्थ लिखा है। दोनोंके विचार एक समान हैं। श्रील आचार्यकेसरीने राधा गोविन्दनाथ द्वारा लिखित वैष्णव दर्शनका प्रतिवाद श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष १९ चतुर्थ संख्या १५९ से १६० पृष्ठमें किया है—"श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत है। मैंने इसे श्रीविद्याविनोद द्वारा रचित 'अचिन्त्य-भेदाभेदवाद' ग्रन्थका प्रतिवाद करते हुए अपने 'अचिन्त्य-भेदाभेद' प्रबन्धमें विस्तृत रूपसे प्रमाणपुरःसर स्थापित किया है। उस प्रबन्धमें नाथ महाशयके 'वैष्णव दर्शन' ग्रन्थका भी प्रतिवाद किया गया है। पाठकगण नवम एवं दशम वर्षके गौड़ीय पत्रिकासे इस प्रबन्धका पाठ करनेसे विशेष रूपसे उपकृत हो सकते हैं। उक्त प्रबन्धके प्रचारके फलस्वरूप आजकल विभिन्न सभाओंमें श्रीराधागोविन्द नाथ महाशयके प्रति प्रतिवाद हो रहा है। मैं आशा करता हूँ भारतमें सर्वत्र धर्मीय अनुष्ठानोंके द्वारा उक्त ग्रन्थका प्रतिवाद होगा।"

उन्होंने इस विषयमें और भी लिखा है—"हम लोग यह जानकर विशेष आनन्दित हुए हैं कि राधाकुण्ड, वृन्दावन, गोवर्धन, मथुरा आदि अञ्चलके साधारण वैष्णव समाजके प्रसिद्ध गोस्वामियों एवं बाबाजी महाराजों आदि सभीने एक स्वरसे श्रीराधागोविन्द नाथ महाशय द्वारा

लिखित वैष्णव दर्शन नामक विराट ग्रन्थका तीव्र प्रतिवाद किया है। २२ अप्रैल १९५९ ई. के दिन वृन्दावनस्थित श्रीअमिय निमाई-गौराङ्ग मन्दिरमें एक महती सभाका आयोजन किया गया। उस सभामें उक्त ग्रन्थकी कठोर रूपमें समालोचना की गयी। हम पाठकवर्गके निकट उक्त समालोचनाओंमेंसे दो एक विषयोंमें निवेदन कर रहे हैं—

"सबसे पहले उस सभामें गौड़ीय वैष्णवोंने यह विचार किया कि श्रीनाथ महाशय किसी भी वैष्णव सम्प्रदायके अन्तर्गत दीक्षित वैष्णव नहीं हैं। विशेषतः श्रीमन्महाप्रभुके समयसे ही गौड़ीय वैष्णवगण अपनेको माध्व गौड़ीय अथवा श्रीब्रह्ममाध्व गौड़ीय सम्प्रदाय मानते चले आ रहे हैं—इसे वे अस्वीकार कर रहे हैं। यह उनके दार्शनिक ऐतिह्य ज्ञानहीनताका परिचायक है। उक्त सभाके सभापति महोदयने सभामें उपस्थित सभी सदस्योंको सर्वसम्मतिके द्वारा यह बतलाया कि गौड़ीय वैष्णवगण श्रीमध्वाचार्य सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। इस तथ्यके विरुद्ध जो कोई भी ग्रन्थ प्रकाशित होगा, वह वैष्णवोंके पठन-पाठनके योग्य नहीं है।

दूसरी बात यह है कि उन्होंने यह भी कहा कि गौड़ीय वैष्णवके परमपूज्य तथा गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायैक रक्षक श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभु श्रीमाध्व गौड़ीय सम्प्रदायके प्रतिष्ठासम्पन्न दार्शनिक पण्डिताग्रगण्य, श्रीमन्महाप्रभुके विशुद्ध सेवकाचार्य हैं। इस विषयमें किसीको लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। नाथ महाशयने श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रभुको गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका साम्प्रदायिक आचार्य नहीं माननेके कारण उक्त आचार्यके चरणकमलोंमें महापराधी हैं।

तीसरी बात यह है कि नाथ महाशयने अचिन्त्य-भेदाभेदवादके सम्बन्धमें जिन विचारोंका प्रदर्शन किया है, वह किसी भी प्रकारसे सुसङ्गत नहीं है। इसलिए उनके द्वारा रचित एवं संग्रहीत गौड़ीय दर्शन नामक विराट ग्रन्थका पाठ या श्रवण करनेसे शुद्ध वैष्णवोंका सर्वनाश होगा। अथवा वे गौड़ीय वैष्णव साम्राज्यसे सदाके लिए पतित होंगे।

उस सभामें पूर्व-पूर्व महाजनोंका अनुसरणकर गौड़ीय वैष्णव समाजको ब्रह्ममाध्व गौड़ीय सम्प्रदायके रूपमें स्वीकार किया गया तथा नाथ महाशय द्वारा लिखित वैष्णव दर्शनको श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके लिए अपाठ्य निर्धारित किया गया, इत्यादि।"

आसाम प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें श्रील आचार्यदेव

धूबड़ी निवासी श्रीपरमानन्द दासाधिकारी (श्रीपलाश चन्द्रगूह) महोदयके अत्यन्त आवश्यक पत्रको पाकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके परमाराध्य श्रील आचार्यदेवने २१ मई, १९५९ ई॰ को श्रीधाम नवद्वीपसे आसाम प्रदेशके अन्तर्गत श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठके लिए यात्रा की। रास्तेमें कटिहार जंक्शनमें रेल दुर्घटना होनेके कारण गोलोकगंज पहुँचनेमें प्रायः १२ घन्टा विलम्ब हुआ। मठके सेवकगण श्रीआचार्यदेवके वहाँ पहुँचनेका टेलीग्रामके माध्यमसे संवाद पाकर गोलोकगंज रेलवे स्टेशनपर सम्वर्धना करनेके लिए उपस्थित थे। वे मृदङ्ग-करतालके साथ सङ्कीर्त्तन करते हुए आचार्यदेवको आदरपूर्वक मठमें ले गये। वहाँ उपस्थित त्यागी एवं गृही भक्तोंने उनकी पूजा एवं आरती की। उपस्थित लोगोंने श्रीमठके श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग राधाविनोद-बिहारी विग्रहोंकी अपूर्व शोभाका दर्शनकर विग्रहदाताकी प्रचुर प्रशंसा की। उन्होंने यह भी बतलाया कि सारे आसाम प्रदेशमें ऐसा अप्राकृत अपूर्व सौन्दर्ययुक्त श्रीविग्रह कहीं भी नहीं है।

श्रीआचार्यदेवने उपस्थित सभीको सम्बोधित करते हुए कहा कि आँखके द्वारा श्रीविग्रहोंका दर्शन नहीं करना चाहिये, कानके द्वारा विग्रहोंका दर्शन ही यथार्थ दर्शन है। आँखसे दर्शन करनेमें भ्रान्ति होनेकी सम्भावना है। उसके द्वारा स्थूल एवं दोषपूर्ण दर्शन होता है। किन्तु कानके द्वारा श्रवण करनेमें भूल-भ्रान्तिकी सम्भावना बहुत कम रहती है। इसीलिए दीक्षा ग्रहणके समय कानोंके माध्यमसे ही मन्त्र ग्रहणकी विधि है। श्रीगुरुदेव कानोंके माध्यमसे ही दिव्यज्ञान प्रदान किया करते हैं। सभी इन्द्रियाँ हमारे भोगमें सहायता करती है। आँखोंके द्वारा सौन्दर्यका भोग करते हैं। नेत्र इन्द्रियकी तृप्तिके लिए विग्रह दर्शन नहीं है बल्कि चक्षु-इन्द्रियकी भोग पिपासाको दूर करनेके लिए ही श्रीविग्रहोंका दर्शन है। विग्रहोंका दर्शनकर मैं बहुत आनन्दित हुआ—इसके बदले श्रीविग्रहकी कृपादृष्टि मेरे ऊपर पड़े, इस विचारके द्वारा हमारा परम कल्याण साधित होगा। भगवान् या श्रीभगवत्-विग्रह इन्द्रियग्राह्य वस्तु नहीं हैं अर्थात् किसी भी इन्द्रियके द्वारा ग्रहणीय नहीं हैं। इन्द्रियोंके द्वारा हम जो कुछ ग्रहण करते हैं वे सभी जड़ एवं भोग्य पदार्थ हैं। श्रीभगवान् ही एकमात्र

भोक्ता हैं एवं हम सभी उनके भोग्य हैं। इसलिए हम द्रष्टा नहीं, दृश्य हैं।

इस विषयको और भी सहज सरल रूपमें समझाते हुए उन्होंने कहा कि एक पका हुआ आम सामने है। उसे आँखें देख सकती हैं, त्वचा द्वारा उसे स्पर्श कर सकते हैं नाकसे सूँघ सकते हैं, जिह्वा द्वारा रसास्वादन कर सकते हैं, किन्तु इन चारों इन्द्रियोंसे कानका कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु कान जिस चीजको ग्रहण करता है, शेष चारों ज्ञानेन्द्रियाँ उस विषयमें बिल्कुल चुप बैठी रहती हैं। अर्थात् उस विषयसे चारों इन्द्रियोंका कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। कान शब्दोंको ग्रहण करता है, और इन्द्रियोंका शब्दसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिए सद्गुरु सत्‌शिष्यके कानमें अप्राकृत शब्दब्रह्मको प्रदान करते हैं। शब्दब्रह्म देनेके पूर्व गुरुदेव हरिकथाके माध्यमसे शिष्यके कर्णेन्द्रियका संशोधन करते हैं। उसके पश्चात् शब्दब्रह्मरूप श्रीहरिनाम एवं दीक्षामन्त्र प्रदान करते हैं। आपलोग इस यथार्थ सत्यको उपलब्धि करनेकी चेष्टा करें। अतएव इन्द्रियोंके मध्य कान ही हमारे सबसे उपकारी हैं। सभी श्रोतालोग श्रील गुरुदेवके इन अभिनव अश्रुतपूर्व विचारोंको सुनकर बड़े मुग्ध हुए। उन सभी लोगोंने एक स्वरसे स्वीकार किया कि हमने आज तक ऐसा सुन्दर सिद्धान्त कभी नहीं सुना।

गोलोकगंज मठमें तीन दिन निवास करनेके उपरान्त धूबड़ी निवासी श्रीपरमानन्द दासाधिकारीकी प्रार्थनानुसार आचार्यदेव अपने परिकारोंके साथ धूबड़ी शहरमें पधारे। कुछ दिन पूर्व श्रीपरमानन्द प्रभुकी सहधर्मिणी तारिणीदेवीका परलोकगमन हुआ था। श्रील आचार्यदेवके आनुगत्यमें सात्वत वैष्णव स्मृति सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार उनका पारलौकिक श्राद्ध संस्कार सम्पन्न हुआ। श्रील गुरुदेवके निर्देशानुसार श्रीसनत्कुमार भक्तिशास्त्री, भागवतभूषण महाशयने इस श्राद्ध संस्कारका पौरोहित्य किया। तत्पश्चात् उपस्थित सभी लोगोंको महाप्रसादका सेवन कराया गया।

माननीय परमानन्द प्रभु (पलाश बाबू) श्रीलगुरुदेवके भक्ति प्रचारसे बड़े प्रभावित थे। उन्होंने श्रील गुरुदेवसे धूबड़ी शहरमें एक भक्ति प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेके लिए बार-बार प्रार्थना की। इसके लिए उन्होंने धूबड़ी

शहरके अन्तर्गत विद्यापाड़ा मुहल्लेमें स्थित अपना वासगृह तथा कुछ अर्थ भी देनेका प्रस्ताव किया। इसीके अनुसार उन्होंने २९ मई, १९५९ ई॰ को श्रीसभापति महाराजके नामसे एक दलील पत्रकी रजिस्ट्री भी कर दी।

इसके पश्चात् श्रील आचार्यदेव अपने परिकरोंके साथ रंगिया होते हुए बसके द्वारा अमायापुर पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्णगोविन्द दासाधिकारी, श्रीयुत प्राणेश्वर दासाधिकारी (सौदागर प्रभु) तथा वाणेश्वर दासाधिकारीके घर पहुँचे। वहाँपर शुद्धभक्तिका प्रचारकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ा पहुँचे।

पिछलदा गौड़ीय मठ एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठा

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव कुछ वर्षोंसे मेदिनीपुर जनपदके श्रीचैतन्य महाप्रभुके पदांकपूत पिछलदा एवं आसाम-प्रदेशमें शुद्धभक्तिका विपुल रूपसे प्रचार करनेके कारण वहाँके श्रद्धालुलोग कुछ दिनोंसे श्रीवेदान्त समितिका एक प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेके लिए बार-बार प्रार्थना कर रहे थे। वहाँके श्रद्धालु लोगोंके प्रबल आग्रहको देखकर श्रील गुरुदेवने पिछलदा पादपीठके समीप एक प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेकी स्वीकृति दी। इस कार्यके लिए उन्होंने स्नान-यात्राके कुछ दिन पूर्व त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराजको कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीविग्रह प्रतिष्ठाकी व्यवस्था करनेके लिए भेजा एवं स्वयं अपने साथ अपने आश्रित बहुत-से संन्यासी ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर पिछलदा ग्राममें उपस्थित हुए। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज भी स्नान पूर्णिमासे एक दिन पहले पिछलदा पहुँचे। २० जून, १९५९ ई॰ को श्रीजगन्नाथदेवकी स्नान पूर्णिमाके दिन श्रीपिछलदा गौड़ीय मठकी स्थापना हुई। उसी दिन मठमें श्रीश्रीगुरु-नित्यानन्द-गौराङ्ग राधाविनोद-बिहारीजीके श्रीविग्रहगण प्रतिष्ठित हुए। विग्रह प्रतिष्ठाके दिन ऊषाकीर्त्तन एवं अधिवास कीर्त्तनके पश्चात् श्रीमन्दिर तथा मठप्रांगण आम्रपल्लव, पुष्पमाला और पताका आदिके द्वारा सुसज्जित किया गया। हरिभक्तिविलासके विधानके अनुसार मन्दिरके चारों ओर द्वादश केलेके वृक्ष, द्वादश पीपलके वृक्ष और द्वादश गूलरके वृक्ष रोपण किये गये। केलेके वृक्षोंके सामने द्वादश

कलश स्थापित किये गये। कलशोंके मध्यभागमें स्वस्तिक चिह्न अङ्कित किये गये। कलशके ऊपर आम्रपल्लव एवं वृन्तयुक्त डाव (नारियल) स्थापित किये गये। कुछ दूरवर्ती पवित्र नदीसे नगर-सङ्कीर्त्तन शोभायात्रा एवं बैण्डपार्टीके माध्यमसे पवित्र जल भरकर श्रीराधाविनोदविहारीजीके स्नानमण्डपमें पाँच कलश स्थापित किये गये। श्रीविग्रहोंके स्नानमण्डपकी वेदीपर पधारनेपर श्रीगौरनित्यानन्द प्रभुके प्रतिनिधि स्वरूप श्रीशालग्रामशिलाका दूध, दधि, घृत, मधु, शर्करा तथा १०८ घड़ोंके सुवासित एवं मन्त्रपूत जलसे यथारीति महाभिषेक सम्पन्न हुआ। अभिषेकके समय मृदङ्ग करताल मिश्रित सङ्कीर्त्तनकी ध्वनि, शङ्ख एवं जयध्वनि तथा महिलाओंकी हुलुध्वनि एकसाथ मिलकर गगन मण्डलमें चतुर्दिक गूँज रही थी। उस समय श्रीमन्दिरके चारों ओर प्रस्थानत्रय अर्थात् वेद, उपनिषद्, विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भागवत, गोपाल सहस्रनाम, श्रीमद्भगवद्गीताका उच्चस्वरसे पाठ चल रहा था। अभिषेकके पश्चात् सङ्कीर्त्तन यज्ञ और वेदादिशास्त्रपाठकी अप्राकृत ध्वनिसे मुखरित वातावरणके बीच श्रीविग्रहोंको श्रीमन्दिरमें पधराया गया। श्रील आचार्यदेवने स्वयं वैदिक मन्त्रोंके द्वारा श्रीविग्रहोंकी प्राण प्रतिष्ठा की। तत्पश्चात् मन्दिरका द्वार खोल दिये जानेपर उपस्थित हजारों श्रद्धालुओंने विपुल जयध्वनिके बीच उत्कण्ठित होकर श्रीविग्रहोंका दर्शन किया। पूजा-अर्चन, भोग आरतिके उपरान्त लगभग ५,००० श्रद्धालुओंको परम सुस्वादु महाप्रसाद वितरण किया गया। सन्ध्या आरति एवं तुलसी परिक्रमाके पश्चात् एक महती धर्मसभाका आयोजन किया गया।

उस सभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज आदि वक्ताओंके पश्चात् श्रीआचार्यदेवने दो घण्टे तक श्रीविग्रह एवं मठमन्दिरके सम्बन्धमें बड़ी ही ओजस्विनी भाषामें सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण प्रदान किया। उन्होंने अपने भाषणमें आधुनिक भारतकी अवस्था, पिछलदा ग्राम एवं ग्रामवासी, श्रीविग्रहतत्त्व, मठ किसे कहते हैं, मठ मन्दिरका निर्गुणत्व, साकार एवं निराकारवाद, ईसाइयोंका साकारवाद, निराकारवाद एवं कर्मवाद, इस्लामका साकार एवं निराकारवाद, बौद्ध एवं जैनियोंका साकारवाद, आचार्य शङ्करका साकार-निराकारवाद, अन्यान्य भारतीय मतोंकी समालोचना, आसामदेशीय

हंकरदेवका साकार-निराकारवाद, कबीर, नानक आदिका निराकारवाद, भारतमें नास्तिक सम्प्रदायकी परिणति, मठ-मन्दिरकी आवश्यकता आदि विषयोंपर सारगर्भित भाषण प्रदान किया। प्रसङ्गवश उन्होंने यह भी कहा कि वर्त्तमान स्वाधीन भारतमें धर्मका सर्वोच्च स्थान नहीं है। यहाँ तक कि धर्म निरपेक्षताकी आड़में अधर्मसापेक्षता ही परिस्फुट है। फलस्वरूप हमारे देशमें सर्वत्र ही दुर्नैतिकता, उच्छृंखलता, असच्चिन्ताका जो ताण्डव नृत्य चल रहा है, उसे भाषामें व्यक्त नहीं किया जा सकता।

आजकल साम्यवादकी आड़में उन्नत व्यक्तियोंको बलपूर्वक नीचे घसीट कर निकृष्ट व्यक्तियोंके साथ समान करनेकी अत्यन्त प्रबल चेष्टा चल रही है। किन्तु निकृष्ट व्यक्तिको उन्नत बनाकर उत्कृष्ट व्यक्तिके समान करनेके लिए, उन्हें ऊपर उठानेके लिए चेष्टाका सर्वथा अभाव दीखता है। आजकल राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक सभी क्षेत्रोंमें हम इसे स्पष्ट ही लक्ष्य कर रहे हैं। भारतवर्ष पुण्यभूमि एवं धर्मभूमि है, इसीलिए हम गीतामें देखते हैं कि विराट युद्धक्षेत्रको भी धर्मक्षेत्र कहा गया है।

हमारे देशमें बहुत-से निराकारवादी धर्मसम्प्रदाय दृष्टिगोचर होते हैं। यथार्थमें निराकारवादी भी किसी प्रकार साकार विचारधाराको परित्याग करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं। वे साकारको ही केन्द्रकर निराकारके काल्पनिक ध्यानमें मग्न रहना चाहते हैं। निराकारके काल्पनिक ध्यानसे ही हमारे देशमें नास्तिकताकी उत्पत्ति या सृष्टि हुई है। ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं है, कोई गुण नहीं है, शक्ति नहीं है, केवल मिथ्या कल्पना है—इस मिथ्या कल्पनाकी जड़में बौद्धोंका शून्यवाद या वेदविरुद्ध नास्तिक्यवाद है। इसके विपरीत वेदादि सभी शास्त्रोंमें ईश्वरका नित्य आकार या स्वरूप स्वीकार किया गया है। इसे स्वीकार करना ही आस्तिक्यवाद है। जो लोग भगवान्‌के नित्य रूपको अस्वीकार करते हैं, वे नास्तिक हैं।" इस प्रकार उनके युक्तिसङ्गत एवं शास्त्र प्रमाणपुरःसर गम्भीर भाषणको सुनकर श्रोतागण बड़े प्रभावित हुए।

इस अनुष्ठानमें श्रीसुदामसखा ब्रह्मचारी श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके द्रव्य, अलङ्कार, वस्त्र, पात्र नवद्वीपधाम एवं कलकत्तासे संग्रहकर लाने तथा अन्यान्य सेवा प्रचेष्टाके लिए विशेष धन्यवादके पात्र हुए। डी॰ काशिमपुर

निवासी धर्मप्राण श्रीप्रबोधचन्द्र पंड्या महाशयकी अर्थसेवा भी प्रशंसनीय रही। श्रीविग्रहके लिए सिंहासन, श्रीराधाविनोदविहारीका विग्रह दान तथा उत्सवका अधिकांश व्ययभार वहन करनेके कारण वे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके विशेष धन्यवादके पात्र हैं। कल्याणपुर निवासी माननीय श्रीगजेन्द्रमोक्षण दासाधिकारी श्रीमन्महाप्रभुका विग्रह एवं उत्सवके लिए चावल आदि दानकर समितिके धन्यवादके पात्र हैं। ये श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके लिए प्रति वर्ष लगभग ४० मन चावलकी व्यवस्था करते हैं। इनका सेवा-आदर्श सर्वतोभावसे प्रशंसनीय है। सर्वोपरि पिछलदा ग्रामनिवासी श्रीगोविन्द दासाधिकारी मठस्थापनके विषयमें प्राण, अर्थ, बुद्धि द्वारा प्रचेष्टाके लिए धन्यवादके पात्र हैं। इनके अतिरिक्त श्रीकोकिल रक्षित, श्रीगोविन्द दास, निरापद माइति एवं श्रीमुरारी मोहनकी सेवा प्रचेष्टा भी विशेष उल्लेखनीय है।

केशवपुरमें विचारसभा

मेदिनीपुर जनपदके केशवपुर गाँवमें श्रीअयोध्यानाथ दासाधिकारी, श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्यके दीक्षित ऐकान्तिक वैष्णव हैं। छोटे-से गरीब परिवारके व्यक्ति होनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिधर्ममें इनकी दृढ़ निष्ठा है। गृहस्थ वैष्णव होनेपर भी नियमित रूपसे अर्चन-पूजन, साधन-भजन करते हैं। माँस, मछली, धूम्रपान, अवैध स्त्रीसङ्ग आदिसे सर्वथा दूर रहते हैं।

एक वर्ष पूर्व १९५८ ई॰ में उस गाँवमें शीतला माताकी सार्वजनिक पूजा होने जा रही थी। गाँवके कुछ विशेष लोग पूजाके लिए चँदा संग्रह कर रहे थे। श्रीअयोध्यानाथ दासाधिकारीसे दो रुपये चन्दा देनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु श्रीअयोध्यानाथने बड़े ही नम्रतासे हाथ जोड़कर उत्तर दिया कि हमलोग श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित गौड़ीय वैष्णवधर्ममें दीक्षित तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आश्रित हैं। शुद्ध वैष्णवोंके लिए देव-देवियोंकी पूजा निषिद्ध है। गीता आदि शास्त्रोंमें भी देव-देवियोंकी पूजाका निषेध किया गया है। अतः मैं इस पूजाके लिए चन्दा देनेमें असमर्थ हूँ। इसे सुनकर ग्रामवासी बड़े क्षुब्ध हुए।

उन्होंने कहा कि—देव-देवियोंकी पूजा प्राचीन कालसे ही चली आ रही है। शास्त्रोंमें भी इसके प्रमाण हैं। अतः एक सभाका आयोजन किया जाये। उस सभामें पक्ष एवं विपक्षके विचारोंको सुनकर इस विषयका निर्णय होना चाहिये कि देव-देवीकी पूजा करना कर्त्तव्य है या नहीं? अगले श्रावण महीनामें सभा बुलानेका निश्चय किया गया। किन्तु उस समय भीषण बाढ़ आनेके कारण सभाका आयोजन नहीं हो सका।

इस वर्ष १९५९ ई॰ के श्रावण महीनेमें विचार सभाका आयोजन केशवपुर गाँवमें किया गया। ग्रामवालोंके पक्षसे जनपदके बड़े-बड़े स्मार्त पण्डितोंको बुलाया गया। श्रीअयोध्यानाथ चुँचुड़ा मठमें श्रील आचार्य केसरीके चरणमें पहुँचकर बड़े करुण स्वरसे उनसे उक्त सभामें पधारनेके लिए बार-बार प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि यदि आप वहाँ पहुँचकर विपक्षियोंका मत खण्डन नहीं करेंगे तो हमारा उस गाँवमें रहना असम्भव हो जायेगा। मुझे गाँवसे निकाल दिया जायेगा। श्रील गुरुदेवने उनके काकुतिपूर्ण निवेदनको सुनकर उसी समय श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज तथा प्रमुख संन्यासियों एवं ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर केशवपुरके लिए यात्रा की।

इससे पूर्व पिछलदामें श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके उपलक्ष्यमें श्रील आचार्यदेवका जाना निश्चित था। संयोगवश उसी समय केशवपुर ग्राममें यह विचारसभा भी बुलायी गयी थी। उक्त सभामें सबसे पहले गाँववालोंकी ओरसे स्मार्त पण्डितोंने यह प्रश्न किया—हमारे भारतीय शास्त्रोंमें प्राचीन कालसे ही देव-देवियोंकी पूजा होती आ रही है। स्कन्द एवं पद्मपुराणमें इसके बहुत-से प्रमाण हैं। श्रीमद्भागवतमें भी कात्यायनी, योगमाया, दुर्गा, काली, शिव आदिकी पूजाका विधान देखा जाता है। अतएव वैष्णवलोग देवी-देवताओंकी पूजा क्यों नहीं करते?

परमाराध्य श्रील गुरुदेवके आदेशसे सबसे पहले श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने श्रीमद्भागवत, गीता एवं अन्यान्य शास्त्रोंके प्रमाणोंको उद्धृतकर देव-देवियोंकी पूजाके फलको नश्वर बतलाया। विविध प्रकारकी सांसारिक कामनाओंकी प्राप्तिके लिए संसारीलोग देवताओंकी पूजा करते हैं। किन्तु वे सभी फल नश्वर होते हैं। यहाँ तक कि वे फलकामी स्वर्ग प्राप्त करके भी फलभोगके पश्चात् पुनः मर्त्यलोकमें

पतित होते हैं। वैष्णवलोगोंके हृदयमें किसी भी प्रकारकी लौकिक कामनाएँ नहीं होतीं। वे ऐकान्तिक रूपसे श्रीकृष्णभजनमें ही तत्पर रहते हैं।

तत्पश्चात् श्रील आचार्यदेवने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि श्रीअयोध्यानाथने किसी प्रकारका अन्यायपूर्ण कार्य नहीं किया है। समस्त शास्त्र उनके इस कार्यका अनुमोदन करते हैं। यदि गोपियोंने कात्यायनीकी पूजा की, तब श्रीकृष्णने स्वयं प्रकट होकर उन्हें क्यों वरदान दिया? यहाँ कृष्ण और स्वरूपशक्ति योगमाया अभिन्न हैं—*शक्तिशक्तिमतोरभेदः*। इसलिए वहाँ कात्यायनीकी पूजा भी श्रीकृष्णकी पूजा है। श्रीकृष्णने स्वयं इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओंकी पूजा बन्द करवा दी थी। श्रीकृष्णने गीतामें भी—*यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रता* (गी॰ ९/२५) *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्य देवताः* (गी॰ ७/२०) *यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः, समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्* आदि प्रमाणोंको उद्धृतकर यह बतलाया कि देवी-देवियोंका पूजन नश्वर फलोंको प्रदान करता है। वे देवी-देवतागण जन्म-मृत्युके प्रवाहको दूरकर कृष्णभक्ति नहीं दे सकते। दूसरी बात, पद्मपुराणमें ऐकान्तिक वैष्णवोंके लिए देव-देवीकी पूजा निषिद्ध की गयी है। ऐसा करनेसे नामापराध होता है। सत्क्रियासार-दीपिकामें भी विविध शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृत कर ऐकान्तिक वैष्णवोंके लिए देव-देवियोंकी पूजाका निषेध किया गया है।"

श्रील गुरुदेवके ओजस्वी भाषणको सुनकर प्रतिपक्ष शान्त हो गया। दूसरे दिन उक्त ग्रामके विद्यालयके प्रांगणमें सायंकाल एक धर्मसभाका आयोजन हुआ। उसमें श्रील आचार्यदेवने धर्मजीवनकी आवश्यकताके विषयपर भाषण देते हुए कहा कि धार्मिक जीवन व्यतीत करना मनुष्य जीवनका एकमात्र कर्त्तव्य है। धर्महीन जीवन पशुजीवनके तुल्य है। भगवन्नामका कीर्त्तन कलियुगका विशेष धर्म है। वैष्णव सदाचारका पालन करते हुए भगवन्नाम-कीर्त्तन एवं हरिकथा श्रवणके द्वारा मनुष्य जीवन सार्थक हो सकता है। इस प्रकार विभिन्न विषयोंके तारतम्यमूलक विचारके द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार कर पार्टी सहित श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें लौटे।

ऊ र्हिं े म् ड्ुँ ु च

६ जुलाई, १९५९ ई॰ को श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीस्वरूप रूपानुगवर श्रीगदाधराभिन्न तनु श्रीगौरशक्ति श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी तिरोभाव तिथि, श्रवण-कीर्त्तनके माध्यमसे अनुष्ठित हुई। उस दिन ऊषाकालसे ही श्रीहरि-गुरु-वैष्णव वन्दना, वैष्णव महिमा, विरहसूचक महाजन पदावलीका कीर्त्तन एवं तत्पश्चात् श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका अतिमर्त्य चरित्र, वर्त्तमान युगमें उनके आविर्भावका तात्पर्य आदि विषयोंकी आलोचना की गयी। दोपहरमें श्रीविग्रहोंके अर्चन-पूजनके उपरान्त राजभोग निवेदित होनेपर आरति सम्पन्न हुई। तत्पश्चात् समागत भक्तवृन्दको विचित्र एवं सुस्वादु महाप्रसाद सेवन कराया गया।

श्रील गुरुमहाराजने सायंकालकी धर्मसभामें प्रवचन करते हुए बतलाया कि आज गौरशक्ति सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर एवं गौरशक्ति गदाधर पण्डित गोस्वामीकी तिरोभाव तिथि है। ये दोनों महापुरुष श्रीमन्महाप्रभुकी मनोऽभीष्ट सेवा करनेके लिए भूतलमें अवतीर्ण हुए थे। वे इस सेवाको पूर्णकर आज ही के दिन नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए थे। यह पावन तिथि प्रतिवर्ष हम लोगोंके प्रति करुणाकी वर्षा एवं विप्रलम्भरसका उत्कर्ष प्रदर्शन करनेके लिए आविर्भूत होती है। श्रीवृषभानुनन्दिनी शत-शत प्रकारसे लाञ्छित होनेपर भी श्रीकृष्णकी विप्रलम्भ सेवाका परित्याग नहीं करतीं। श्रीराधागोविन्दके मिलनसुखके प्रतिकूल लोगोंका सङ्ग वर्जनकर श्रीराधागोविन्दकी सेवानिष्ठाकी शिक्षा देनेके लिए ही यह पावन तिथि प्रतिवर्ष शुभागमन करती है, अतः यह श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णसे अभिन्न श्रीनीलाचलनाथकी रथ-यात्रा उत्सवकी अधिवास तिथि कहलाती है।

श्रीजगन्नाथदेवके धाम नीलाचलको मथुरा या द्वारका कहा जाता है तथा सुन्दराचल (गुण्डिचा) को वृन्दावन माना जाता है। नीलाचल ऐश्वर्यपूर्ण एवं सुन्दराचल माधुर्यपूर्ण क्षेत्र है। श्रीकृष्ण नीलाचलको छोड़कर गोपियोंसे मिलनेके लिए सुन्दराचल अर्थात् वृन्दावन जाना चाहते हैं। जब वे वृन्दावनकी यात्रा करते हैं, तब रुक्मिणी आदि लक्ष्मियाँ उन्हें वृन्दावन जानेके लिए नाना प्रकारसे निषेध करती हैं। यह देखकर

शुद्ध औदार्य-माधुर्यरसाश्रित श्रीमती राधिकाके पक्षका अवलम्बन करनेवाली कमल मञ्जरी अधीर होकर प्रपञ्च लीला परित्यागकर अपने नित्यसिद्ध देहमें अवस्थित होकर श्रीराधागोविन्दकी मध्याह्निक लीलामें प्रवेश कर जाती हैं तथा सच्चिदानन्द विनोद-वाणी-वैभव श्रीराधा-नयनमणि शुद्धा-सरस्वतीको औदार्य-माधुर्य-रसकी श्रेष्ठता स्थापन करनेके लिए आचारवान प्रचारकके रूपमें अपने स्थलपर वरण करती हैं। इस तिथिका यह एक विशेष रहस्य है।

शामको ५ बजे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके विरहोत्सवके उपलक्ष्यमें एक महती सभाका आयोजन किया गया। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके अर्चालेख्यको सुन्दर सिंहासनके ऊपर पधराया गया। तदुपरान्त श्रीगुरु वन्दना, श्रीगोद्रुमचन्द्र भजनोपदेश तथा विरहसूचक वैष्णव पदावलीका कीर्त्तन हुआ। परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवके कृपापूर्वक सभास्थलमें विराजमान होनेपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ। उनके निर्देशसे कतिपय ब्रह्मचारियोंने तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज और अन्तमें श्रील आचार्यदेवने गम्भीर दार्शनिक तत्त्व एवं सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण प्रदान किया।

श्रीश्रीजगन्नाथदेवकी रथ-यात्रा

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें ६ जुलाई, १९५९ से १७ जुलाई १९५९ ई॰ तक बारह दिन तक श्रीरथ-यात्रा महोत्सव बड़े समारोहके साथ सुसम्पन्न हुआ। श्रीजगन्नाथजीको एक सुसज्जित रथपर आरोहण करके नगर-सङ्कीर्त्तन शोभायात्राके साथ गुण्डिचा मन्दिर (श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर) में लाया गया। रास्तेमें भक्तोंकी श्रीजगन्नाथदेवके प्रति प्रबल आर्तिपूर्ण कीर्त्तन एवं नृत्यको देखकर पाषाण हृदयवाले पाषण्डियोंका चित्त भी द्रवीभूत हो गया। रथ-यात्राके समय श्रीजगन्नाथदेवका दर्शन करनेके लिए तथा उनकी रथकी डोरी (रस्सा) खींचनेके लिए लोगोंकी अपार भीड़ उमड़ पड़ी। श्रद्धालु लोग रास्तेमें श्रीजगन्नाथजीको भोग अर्पण करते थे तथा पुजारी श्रीजगन्नाथजीको भोग अर्पितकर श्रद्धालुओंमें वितरण करते थे। उस समय श्रीजगन्नाथ दर्शन एवं प्रसाद ग्रहण करनेकी लोगोंकी उत्कण्ठा देखने योग्य थी। सारा वातावरण श्रीजगन्नाथकी जयध्वनिसे

गूँज रहा था। रथ धीरे-धीरे अग्रसर होता हुआ कभी स्थिर होता हुआ श्रीश्यामसुन्दर मन्दिरमें पहुँचा। वहाँ श्रीजगन्नाथदेवने ९ दिनों तक वृन्दावनमें विहार करते हुए अवस्थान किया।

श्रीगुण्डिचा-मार्जन एवं हेरा-पञ्चमीके दिन गुण्डिचावाड़ीमें (श्रीश्यामसुन्दर मन्दिर) श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजने किया। श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने श्रीमठमें श्रीचैतन्यचरितामृतसे रथयात्राका प्रसङ्ग पाठ किया। बीच-बीचमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज एवं श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौरलीला एवं श्रीकृष्णलीलाके सम्बन्धमें भाषण दिया। रथ-यात्राके दिनसे आरम्भकर लगातार चार दिन तक आचार्यदेवने श्रीचैतन्यचरितामृत एवं चार दिन श्रीमद्भागवत व्याख्याके माध्यमसे अनेकानेक सिद्धान्तपूर्ण उपदेश-निर्देश प्रदान किये। उसका सार संक्षेपमें नीचे दिया जा रहा है—

स्नान-यात्राके दिन विधि विधानोंसे श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रादेवीका महाभिषेक बड़े समारोहके साथ सम्पन्न होता है, जिसमें ब्रह्मादि समस्त देवतागण अलक्षित रूपसे योगदान करते हैं। तत्पश्चात् श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें १५ दिनोंके लिए पट बन्द हो जाता है तथा दर्शन भी बन्द हो जाता है। इस समयको अनवसरकाल कहते हैं। दर्शन नहीं होनेका कारण है—अतिरिक्त स्नानके कारण श्रीजगन्नाथजीका अस्वस्थ्य हो जाना। लक्ष्मीजी एकान्तमें उनकी सेवा करती हैं। इसी समय विप्रलम्भरसके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीचैतन्य महाप्रभु जगन्नाथजीके विरहमें अधीर होकर आलालनाथ चले जाते थे। अनवसरकालके पश्चात् शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्राजी अलग-अलग रथमें विराजमान होकर सुन्दराचल (गुण्डिचावाड़ी) के लिए यात्रा करते हैं। किन्तु अपनी पत्नी लक्ष्मीजीको यह नहीं बतलाते कि मैं वृन्दावन जा रहा हूँ। वे सुन्दराचल अर्थात् वृन्दावनमें ९ दिन विहार कर पुनः नीलाचलके श्रीमन्दिरमें प्रत्यावर्तन करते हैं। यात्रा दिवसको रथ-यात्रा, लौटनेके दिनको पुनर्यात्रा तथा यात्रासे पञ्चम दिवसको हेरा-पञ्चमी कहते हैं। हेरा-पञ्चमीका तात्पर्य यह है कि यात्रा दिनके पश्चात् ही श्रीलक्ष्मीजी श्रीजगन्नाथके लौटनेकी बड़ी उत्कण्ठासे प्रतीक्षा करती हैं। चार दिनों

तक उनके नहीं लौटनेपर अत्यन्त उत्कण्ठाके कारण क्रोधित होकर मानपूर्वक वे अपनी दासियोंको साथ लेकर सुसज्जित रथपर विराजमान होकर पतिदेव श्रीजगन्नाथजीको ढूँढ़नेके लिए रातके समय निकलती हैं। किसी प्रकार ढूँढ़ते हुए वृन्दावनमें पहुँचकर श्रीकृष्ण एवं उनकी प्रियतमा गोपियोंसे वाद-विवादकर शीघ्र लौट आनेकी प्रतिज्ञा कराकर नीलाचलके मन्दिरमें लौटती हैं। हेराका तात्पर्य है—खोजना, ढूँढ़ना। पाँचवें दिन यह लीला सम्पन्न होनेके कारण इसे हेरा-पञ्चमी कहते हैं।

रथ-यात्राके एक दिन पहले गुण्डिचा मन्दिरको धोया पोंछा-पोंछा जाता है, जिससे श्रीजगन्नाथ, बलदेव, सुभद्रा वहाँ सुखसे विराजमान होवें। उस मन्दिरमें भलीभाँति झाडू देकर धूल-कङ्कड़ आदिको साफ करते हैं फिर पानीसे मल-मल कर धोते हैं। पुनः कपड़ेसे भी पोंछते हैं। श्रीमन्महाप्रभुने भी अपने परिकरोंके साथ हरिसङ्कीर्त्तनके माध्यमसे श्रीगुण्डिचा मन्दिरका संस्कार किया था। इस लीलाका तात्पर्य यह है कि अपने हृदयमें भगवान्‌को बैठानेके लिए अपने हृदय-मन्दिरको भलीभाँति धो, पोंछकर निर्मल बनाना होगा। जब तक हृदय मन्दिरमें सांसारिक कामना-वासनाएँ, स्वर्गसुखभोग एवं मुक्तिकी कामनाएँ रहेंगी, तब तक भगवान् उनके हृदयमें कदापि विराजमान नहीं होंगे। श्रीरथ-यात्रामें ये वैशिष्ट्यसमूह इस महोत्सवके प्रधान अङ्ग होते हैं।

श्रीरथ-यात्रा अनुष्ठानका तात्पर्य क्या है, यह समझना साधारण लोगोंके लिए बड़ा ही दुष्कर है। राधाभावद्युतिसुवलित श्रीशचीनन्दन गौरहरिके परमप्रिय श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णव जनोंका इस विषयमें एक सुसिद्धान्तपूर्ण विचार है। माथुर-विरह कातरा व्रजरमणियाँ सूर्यग्रहणके उपलक्ष्यमें कुरुक्षेत्र (द्वारका) से प्रियतम कृष्णको श्रीधाम वृन्दवन लाते समय ऐसा सोच रही हैं कि हम जिनके विरहमें बहुत दिनोंसे तड़प रहीं थीं आज बहुत दिनोंके बाद उन प्रियतम प्राणनाथसे मिल रही हैं—*सेई तो पराणनाथ पाइनु। जाँहा लागि मदन दहने झुरि गेनु॥* ये व्रजरमणियाँ केवलमात्र कृष्णकी सेवा एवं प्रसन्नताके लिए ऐसा करती हैं, अपने सुखके लिए नहीं। श्रीरूपानुग गौड़ीय वैष्णवोंका यह गूढ़ तात्पर्य जो लोग उपलब्धि नहीं कर पाते, वे इस महदनुष्ठानमें किसी

भी प्रकारका योगदान करनेमें विमुख होते हैं। जड़ीय भोग पदार्थोंमें आसक्त रहनेके कारण वे श्रीजगन्नाथकी सेवा नहीं कर पाते। जगत् दर्शनको प्राकृत दर्शन कहते हैं। जब तक यह प्राकृत दर्शन हृदयमें प्रबल रहता है, तब तक अप्राकृत जगन्नाथके दर्शनमें रुचि नहीं होती। सम्पूर्ण विश्वको श्रीजगन्नाथकी सेवामें नियुक्त करना ही रथ-यात्राका मूल तात्पर्य है।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दनसे अभिन्न श्रीगौरहरिने श्रीक्षेत्रमें तदनुष्ठित श्रीगुण्डिचा मार्जनलीलाके माध्यमसे अपने पार्षद भक्तगणोंके द्वारा जगद्वासियोंको शिक्षा दी है। उन्हें सुयोग दान करनेके लिए ही श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति प्रतिवर्ष श्रीश्रीरथ-यात्रा अनुष्ठानका आयोजन करती है।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें श्रीजन्माष्टमी एवं श्रीनन्दोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके शाखा मठ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें यह वर्ष (१९५९ ई०) विशेष उल्लेखयोग्य है। जन्माष्टमीसे एक सप्ताह पूर्व श्रीसमितिके प्रतिष्ठाता आचार्य परमाराध्य श्रीलगुरुदेव कुछ आश्रितजनोंके साथ श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। इस वर्ष मठके सेवकोंने बड़े उत्साहके साथ श्रीजन्माष्टमीके दिन सङ्कीर्त्तन, श्रीमद्भागवत पाठ, भोगराग निवेदन आदिके माध्यमसे दिनभर उपवास रखकर व्रत किया। आधीरातके समय हजारों श्रद्धालुओं द्वारा सङ्कीर्त्तन, शङ्खध्वनि एवं जयध्वनिके बीच श्रीविग्रहोंका अभिषेक सम्पन्न हुआ। उस दिन सायंकालीन धर्मसभामें श्रीलआचार्यदेवने शास्त्रसिद्धान्तपूर्ण एक गम्भीर दार्शनिक भाषण प्रदान किया। उस भाषणमें उन्होंने *'एते चांश कला पुंस कृष्णस्तु भगवान् स्वयं', 'अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्', 'ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः अनादिरादि गोविन्दः सर्वकारणकारणम्', 'मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय'* इन श्लोकोंकी अवतारणा करते हुए कृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं, इसका प्रतिपादन किया। साथ ही उन्होंने श्रीदेवकीनन्दनकी अपेक्षा श्रीयशोदानन्दनके वैशिष्ट्यका भी स्थापन किया।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें कार्त्तिक-व्रत

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन सभी मठोंमें १६ अक्तूबरसे १५ नवम्बर १९५९ ई॰ तक कार्त्तिक-व्रत, दामोदर-व्रत, नियम-सेवाका पालन किया गया। इस वर्ष परमाराध्य श्रीलगुरुदेवके स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ विशेष समारोह एवं उत्साहके साथ कार्त्तिक-व्रतका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। कार्त्तिक-व्रतके दिनोंमें प्रतिदिन नियमित रूपमें श्रीमङ्गल-आरति, ऊषाकीर्त्तन, श्रीचैतन्यचरितामृत पाठ, ब्रह्मसूत्र या वेदान्तसूत्र पाठ, तुलसी परिक्रमा, स्नान, आह्निक आदि कृत्य, भक्ति-ग्रन्थकी आलोचना, भोग-आरति, इष्ट-गोष्ठी, महाप्रसाद सेवा, सन्ध्या-आरति आदि इस महद् व्रतके विशेष अङ्ग थे। इस व्रतमें सभी परिमित आहार, भूमिपर शयन, धातु निर्मित थालेके बदले पत्तोंमें प्रसाद सेवन आदि आदर्श भी स्थापित हुए।

श्रीदामोदर-व्रतके समय प्रतिदिन प्रातःकाल श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी श्रीचैतन्यचरितामृतका पाठ प्रवचन करते, रात्रिकालमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज भागवतसे नेमि-नवयोगन्द्र संवादकी व्याख्या करते तथा अपराह्ण ३ बजेसे ५ बजे तक परमाराध्य ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज स्वयं वेदान्त-दर्शन, गोविन्द-भाष्यका पाठ एवं विशद् रूपमें व्याख्या करते थे। उन्होंने दामोदर मासमें गोविन्द-भाष्यके प्रथम अध्यायके प्रथम एवं द्वितीय पादके ग्यारवें सूत्र तक की व्याख्या समाप्त की थी।

गोविन्द-भाष्यकी व्याख्या करते समय उन्होंने अन्यान्य आठ प्रामाणिक भाष्योंकी व्याख्या करते हुए उनमें गोविन्द-भाष्यकी प्रधानता स्थापित की। श्रीशङ्कर-भाष्य, भास्कर-भाष्य, रामानुज-भाष्य, मध्व-भाष्य, विज्ञान भिक्षु भाष्य, वल्लभ-भाष्य, निम्बार्क-भाष्य तथा गौड़ीय वेदान्त आचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण द्वारा प्रकाशित श्रीगोविन्द-भाष्यका नियमित रूपसे पाठ हुआ। इसके अतिरिक्त महामहोपाध्याय श्रीयुत हरिदास 'सिद्धान्त-वागीश' महाशय द्वारा सङ्कलित भागवत-भाष्य भी विशेष क्षेत्रोंमें आलोचनाका विषय रहा। गोविन्द-भाष्य पाठके समय समितिके संन्यासी, ब्रह्मचारियोंके अतिरिक्त श्रीनवद्वीप धामके

शिक्षित सम्भ्रान्त बड़े-बड़े विद्वान भी श्रोताके रूपमें उपस्थित होते थे। इन श्रोताओंमें श्रीकुमुद कमल नाग (बी॰ए॰बी॰एल॰) श्रीमाखन लाल साहा (बी॰ए॰ सहकारी हैडमास्टर, नवद्वीप शिक्षामन्दिर) प॰ श्रीयुत नवीनचन्द्र चक्रवर्ती (स्मृति-व्याकरणतीर्थ) श्रीवरदाकान्त दत्त आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। श्रीशङ्कराचार्यके केवलाद्वैतवादके प्रसिद्ध विद्वान माननीय वरदा बाबूके प्रतिपक्षके रूपमें उपस्थित रहनेके कारण श्रील आचार्यदेव द्वारा तुलनामूलक गोविन्द-भाष्यकी आलोचनाको श्रवण करनेका अपूर्व सुयोग श्रोतृमण्डलीको प्राप्त हुआ। वयोवृद्ध वरदाबाबू एवं श्रीकुमुद कमल नाग (बी॰ए॰बी॰एल॰) महोदयके विशेष आग्रहसे व्रत-समाप्तिके पश्चात् और भी पाँच दिनों तक गोविन्द-भाष्यका अनुशीलन हुआ। इन दिनोंमें 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा', 'जन्माद्यस्य यतः', 'शास्त्रयोनित्वात्' आदि सूत्रोंकी विशेष रूपमें व्याख्या हुई। इन सूत्रोंकी व्याख्याके समय श्रील आचार्यदेवने भगवान्के नाम, रूप, गुण और लीलाका विशेष रूपसे प्रतिपादन किया। साथ ही शङ्कराचार्यके निर्विशेष, निःशक्तिक, अरूप, निर्गुण ब्रह्मके विचारका शास्त्रयुक्ति एवं प्रमाणोंके बलपर विशेष रूपसे खण्डन किया। उन्होंने यह भी बतलाया कि भक्ति ही वेदान्तसूत्रका प्रतिपाद्य विषय है; ज्ञान या मुक्ति नहीं। वेदान्तसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान या मुक्ति शब्दका उल्लेख नहीं है। बल्कि वेदान्तसूत्रके 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्' आदिके द्वारा श्रीव्रजेन्द्रनन्दन गोविन्द एवं उनकी प्रेममयी भक्तिका ही प्रतिपादन किया गया है। अन्तमें 'अनावृत्ति शब्दात् अनावृत्ति शब्दात्' सूत्रके द्वारा हरिनाम-सङ्कीर्त्तनका विशेष रूपमें उल्लेख किया गया—'हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्' तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा कथित 'परम विजयते श्रीकृष्ण सङ्कीर्त्तनम्' की पुष्टि परिलक्षित होती है। वेदान्तसूत्रके द्वारा प्रतिपादित अद्वयज्ञान परतत्त्व श्रीकृष्ण एवं उनकी शक्ति श्रीमती राधिकाको अभिन्न मानकर श्रीयुगल उपासनाको ही स्पष्ट रूपमें इङ्गित किया गया है। उपनिषदोंके विचारसे परतत्त्व कदापि निर्विशेष, निःशक्तिक, अरूप, अप्राकृत-गुणरहित निर्गुण नहीं हो सकते। 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति,

तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म'—इस उपनिषद मन्त्रमें अपादान, करण, अधिकरण इन तीन कारकोंका प्रयोग हुआ है। अतः वह ब्रह्म निःशक्तिक, निराकार कैसे हो सकता है? इन सब विषयोंकी व्याख्या अद्भुत, अभिनव तथा रोचकपूर्ण थी। वरदाबाबूने कहा कि यदि कुछ दिनों तक और भी गोविन्द-भाष्यका पाठ चलता रहता तो लोगोंका बहुत ही कल्याण होता। मैंने अपने नवद्वीप शहरमें वेदान्तकी ऐसी सुन्दर आलोचना कभी भी नहीं सुनी। श्रील आचार्यदेवने अन्तिम दिन वरदाबाबूको हँसते हुए कहा कि यदि आप श्रद्धापूर्वक कुछ दिन और गोविन्द-भाष्य श्रवण करते तो आचार्य शङ्करके अद्वैत चिन्तास्रोतसे मुक्ति प्राप्त कर सकते थे। वरदाबाबूने भी इसे सुनकर मुस्कुराते हुए इसका समर्थन किया।

ऊर्जाव्रतके पूर्वदिवस श्रील आचार्यदेवने श्रोतृमण्डलीको उपदेश देते हुए कहा—"कार्त्तिक-व्रत नियम-सेवा चातुर्मास्य-व्रतके अन्तर्गत है। जो लोग सम्पूर्ण चातुर्मास्य-व्रतका पालन नहीं करते, केवल ऊर्जा व्रतका ही आदर करते हैं, वे चातुर्मास्य-व्रतके भक्ति फलको सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं कर सकते। इसके द्वारा चातुर्मास्यके प्रति उनका अनादर ही परिलक्षित होता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके पार्षद भक्तोंने बड़ी दृढ़ता एवं लगनके साथ चातुर्मास्य-व्रतका पालनकर समग्र वैष्णव सम्प्रदायके भक्ति साधकोंको भक्तिलाभके उपाय रूपमें शिक्षा दी है। साधारणतः हरिसेवामें क्लेश स्वीकार करने अथवा वैराग्य अवलम्बनमें पराङ्मुख व्यक्ति ही चातुर्मास्य-व्रतको परित्यागकर केवल कार्त्तिक-व्रतके प्रति श्रद्धा विशिष्ट होते देखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त आजकल आधुनिक अपसम्प्रदायके लोग भी कार्त्तिक-व्रतका पालन नहीं करते। इन लोगोंके सम्बन्धमें यही समझना होगा कि धर्मकी आड़में आहार-विहार एवं विषय भोग ही उनके जीवनका उद्देश्य है। शास्त्रमें इन लोगोंको लक्ष्य करके ही 'तपो वेशोपजीविनः' वाक्य लिखा गया है। वे लोग 'भाल ना खाइबे भाल ना परिबे' श्रीमन्महाप्रभुकी इस शिक्षाका आदर नहीं करते। यहाँ तक कि 'महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य प्रधान' इस गौरवमय वाक्यसे भी विच्युत होकर हीन एवं उच्छृंखल सम्प्रदायके बीच परिगणित होते हैं।

चातुर्मास्य-व्रत केवल वैष्णवोंका ही कृत्य है, ऐसा नहीं है। कर्मी, ज्ञानी, तपस्वी आदि सभी धर्मोंका पालन करनेवाले व्यक्तियोंके लिए यह पालनीय है। शाङ्कर सम्प्रदाय, स्मार्त सम्प्रदाय तथा अन्य सम्प्रदायोंमें भी इस व्रतका प्रचलन देखा जाता है। कार्त्तिक-व्रत इस चातुर्मास्य-व्रतका एक प्रधान अङ्ग होनेके कारण प्राचीन कालसे इस व्रतका पालन सभी प्रकारके साधक करते चले आ रहे हैं। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति अपने अनुगत सभी लोगोंको इस व्रतका सर्वतोभावेन पालन करनेके लिए आदेश, निर्देश एवं प्रेरणा प्रदान करती है। जो गौड़ीय वेदान्त समितिके अनुगत हैं, वे इस विषयमें पूर्ण रूपसे अभिज्ञ हैं एवं भविष्यमें भी इसे स्मरण रखेंगे।

चुँचुड़ा मठमें श्रील प्रभुपादका विरहोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत सभी मठोंमें दिसम्बर, १९५९ ई॰ में जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी विरह तिथिका अनुष्ठान विशेष रूपसे सम्पन्न हुआ। श्रीधाम नवद्वीप, मथुरा, गोलोकगंज आदि मठोंमें उक्त विरह महोत्सव बड़ी श्रद्धाके साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें परमाराध्य श्रील आचार्यदेव स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ उक्त तिथि विशेष रूपमें श्रद्धाके साथ अनुष्ठित हुई। मठरक्षक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त वामन महाराजके विशेष आग्रहसे उस दिन मठसेवकों एवं श्रीसमितिके आश्रित भक्तोंने पाठ कीर्त्तनके पश्चात् सर्वप्रथम परमाराध्य श्रील गुरुदेवके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदानकर श्रील प्रभुपादके चरणोंमें भी पुष्पाञ्जलि प्रदान की। तदनन्तर श्रील प्रभुपादके पटविग्रहकी आरति श्रील गुरुपादपद्मके द्वारा रचित आरति कीर्त्तनके द्वारा सम्पन्न हुई। शामकी धर्मसभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने श्रील प्रभुपादकी पत्रावली, प्रबन्धावली तथा गौड़ीय पत्रिकासे श्रील प्रभुपादके उपदेशोंका पाठ किया।

श्रील आचार्यदेवने भाषणके माध्यमसे बड़ा ही उपयोगी उपदेश दिया—"हम प्रति वर्ष इस विशेष तिथिमें विशेष रूपसे हरिकथाका कीर्त्तन किया करते हैं। श्रील प्रभुपाद सिद्धान्त सरस्वती हरिकीर्त्तनके मूर्त्तिमान विग्रह स्वरूप थे। जिन लोगोंने उनका सङ्ग लाभ किया है, उन्होंने

निश्चित रूपमें इस विषयकी उपलब्धि की है। हरिकथा-कीर्त्तन करते समय वे एक मुखमें सहस्रवदन वन जाते थे। हमलोग २४ घण्टेमें एक दिनकी गणना किया करते हैं। श्रील प्रभुपादके हरिकथा कीर्त्तनमें एक दिन हजारों दिनोंमें बदल जाता था। भगवत्-कीर्त्तन करते समय वे कितना आनन्द अनुभव करते, उसकी सीमा भाषामें व्यक्त नहीं की जा सकती। साधारण मनुष्य आहार, निद्रा आदिमें ही केवल आनन्दका अनुभव करते हैं। इसीलिए वे अपने समस्त कर्त्तव्य कर्मोंको छोड़कर आहार, निद्रामें ही प्रमत्त रहते हैं। आहार, निद्राकी अपेक्षा और कोई भी आनन्दमय वस्तु है, इसका उन्हें ज्ञान नहीं। श्रील प्रभुपाद आहार, निद्राकी अपेक्षा हरिकथाके कीर्त्तनमें ही अधिक आनन्द पाते थे। और इसीलिए वे आहार, निद्राको परित्यागकर भी हरिकथाका कीर्त्तन करते थे।

श्रील आचार्यदेवने अपने प्रवचनमें अविद्या और माया, प्राचीन एवं आधुनिक निर्विशेष विचार, इतिहास और तत्त्ववस्तु एक नहीं, जीवोंका कल्याण करनेमें श्रील सरस्वती ठाकुरका अवदान, विभिन्न दार्शनिक विचारोंका तारतम्य तथा परतत्त्वका एकत्व आदिके सम्बन्धमें प्रभुपादकी शिक्षाके सम्बन्धमें विशेष रूपसे विवेचन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने परतत्त्वकी त्रिविध प्रतीतियाँ ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान्, मायावश्य ईश्वरवाद, अचिन्त्य शक्तिमान श्रीकृष्ण, स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी अचिन्त्यलीला, श्रीकृष्णलीलाका नित्यत्व, जीवोंका नित्यत्व आदि विषयोंपर भी गम्भीर तत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किया।

श्रीआचार्य केसरीके ६६ दिनमें ६२ भाषण

श्रील आचार्य केसरी १९ अप्रैल, १९६० ई० में प्रचार पार्टीके साथ यात्रा कर मेदिनीपुर एवं चौबीस परगनाके लगभग ३० गाँवमें प्रबल रूपसे सनातन धर्मका प्रचार किया। इस प्रचार कालके ६६ दिनोंमें ६२ धर्मसभाओंमें इन्होंने सिंहविक्रमकी भाँति ओजस्विनी भाषण दिये। जिन-जिन अञ्चलोंमें धर्मसभाएँ हुईं, वहाँ सनातन धर्मकी एक प्रबल आन्धी बहने लगी। हजारों हजारों लोग उनका भाषण सुननेके लिए धर्मसभामें एकत्रित होते थे। कहीं-कहीं १५-२० हजार तक श्रोता

उपस्थित होते और दो-दो घण्टे तक टससे मस नहीं होते थे, चुपचाप उनकी वाणीका श्रवण करते थे। बीच-बीचमें श्रोताओंकी ओरसे प्रश्न किये जाते थे, जिसका समाधान शास्त्रीय प्रमाण एवं अकाट्य युक्तिके बलपर आचार्य केसरीके द्वारा होता था। यह प्रश्नोत्तर श्रोताओंके कौतूहल एवं उत्कण्ठाकी वृद्धि करता था। प्रश्नोंका समाधान पाकर प्रश्नकर्त्ताके साथ श्रोता भी गद्‌गद हो जाते थे। सभाके अन्तमें सभी श्रोता श्रील आचार्यदेवकी चरणधूलि स्पर्श करनेके लिए अधीर हो उठते थे। यहाँ तक कि श्रील आचार्यदेवके सभास्थलसे अपने निवासस्थलपर लौट आनेपर भी हरिकथा-श्रोताओंकी भीड़ एकत्रित हो जाती थी। आसपासके गाँवोंमें भी धर्मसभा करनेकी स्वीकृति पानेके लिए कितने ही अनुरोध एवं प्रार्थनाएँ आती थीं, किन्तु सभी स्थानोंमें जाना सम्भव नहीं था।

इधर २४ जून, १९६० ई॰ को श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी तिरोभाव तिथि थी एवं दूसरे दिनसे ही श्रीजगन्नाथदेवकी रथ-यात्राका शुभारम्भ होनेवाला था। इसलिए बाध्य होकर श्रील आचार्य केसरीको श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चुँचुड़ामें प्रचार पार्टीके साथ लौट आना पड़ा। यहाँ आचार्य केसरीके दैनन्दिन प्रचारकी तालिका नीचे दी जा रही है—

(१) १९/४/१९६० मङ्गलवार केशवपुर जलपाई (मेदिनीपुर) ग्रामके श्रीयोगेन्द्र नाथ सामन्त दासके गृहप्रांगणमें "मनुष्य किसे कहते हैं" के सम्बन्धमें भाषण।

(२) २०/४/१९६० उसी ग्राममें श्रीअयोध्यानाथ दासके गृहप्रांगणमें "वैष्णव सदाचार एवं भक्तिका लक्षण" के सम्बन्धमें भाषण।

(३) २१/४/१९६० आकतला ग्राममें श्रीभुवनमोहन जानाके गृहप्रांगणमें "सनातन धर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४) २२/४/१९६० उसी ग्रामके उसी स्थानमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(५) २३/४/१९६० उसी ग्राममें श्रीअरुण चन्द्र दासके गृहप्रांगणमें "विभन्न समास्याओंका समाधान" के सम्बन्धमें भाषण।

(६) २४/४/१९६० नन्दीग्राममें श्रीजानकीनाथ मन्दिरके समीप दुर्गामण्डपमें "विभन्न समस्याओंका समाधान" के सम्बन्धमें भाषण।

(७) २५/४/१९६० उसी ग्राममें श्रीव्रजमोहन तिवारी शिक्षा निकेतनके मैदानमें "धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(८) २६/४/१९६० भेटुरिया ग्राममें श्रीसीताप्रकाश दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "जीवसेवा और ईश्वरसेवामें भेद" के सम्बन्धमें भाषण।

(९) २७/४/१९६० खोदामवाडी हाईस्कूलके विशाल प्रांगणमें सवेरे ९ बजेसे ११ बजे तक "धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(१०) २७/४/१९६० भेटुरिया ग्राममें श्रीननीगोपाल दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें रात्रि ८-३० बजेसे १०-३० तक "मनुष्यका मनुष्यत्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(११) २४/४/१९६० उसी ग्राममें उसी स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(१२) २९/४/१९६० साइवाड़ी गाँवमें श्रीगगनचन्द्र हाजरा उच्च माध्यमिक विद्यालयके विशाल मैदानमें "श्रीचैतन्यदेव एवं गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय" के सम्बन्धमें भाषण।

(१३) ३०/४/१९६० उसी गाँवके उसी स्थानमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१४) २/५/१९६० पूर्वचक गाँवके वेगुनावाड़ी जूनियर हाई स्कूलके मैदानमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१५) ३/५/१९६० पूर्वचक गाँवमें श्रीगिरिधारी दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "वैष्णव-दर्शन और शङ्कर-दर्शनमें पार्थक्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१६) ४/५/१९६० मोहाटी गाँवमें भक्त शशीभूषण भुञाके अनुरोधसे स्थानीय शिवमन्दिरके विशाल प्रांगणमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(१७) ५/५/१९६० सिमुलिया ग्रामके हाईस्कूलके मैदानमें "सनातन-धर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(१८) ६/५/१९६० उसी स्थानपर सवेरे ९ बजे "छात्र जीवनमें धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(१९) ६/५/१९६० उसी स्थानपर रात्री ८ बजे "वैष्णवधर्मका श्रेष्ठत्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(२०) ७/५/१९६० एड़ाशाल ग्राममें श्रीहरेकृष्ण दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "श्रीएकादशी-तत्त्व—शुद्धा एवं विद्धा" के सम्बन्धमें भाषण।

(२१) ८/५/१९६० उसी स्थानपर "वैष्णव क्या जाति है या धर्म है" के सम्बन्धमें भाषण।

(२२) ९/५/१९६० उसी ग्राममें श्रीजितज्ञान दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "जीवका धर्म क्या है?" के सम्बन्धमें भाषण।

(२३) १०/५/१९६० कुलवाड़ी ग्राममें श्रीठाकुर मन्दिरके प्रांगणमें "मनुष्यत्व क्या है?" के सम्बन्धमें भाषण।

(२४) १२/५/१९६० पिछलदा ग्राममें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके श्रीपिछलदा पादपीठ प्रांगणमें "मानव जीवनका उद्देश्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(२५) १३/५/१९६० पिछलदा गौड़ीय मठमें "साम्प्रदायिकता एवं समन्वय" के सम्बन्धमें भाषण।

(२६) १४/५/१९६० नर-चाकनान ग्राममें भक्त हाराधनके अनुरोधसे स्थानीय प्राथमिक विद्यालयके प्रांगणमें "श्रीचैतन्यदेवके अवदानका वैशिष्ट्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(२७) १५/५/१९६० तेरपेख्या बाजारमें "वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय" के सम्बन्धमें भाषण।

(२८) १६/५/१९६० उसी स्थालपर "वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय" के सम्बन्धमें भाषण।

(२९) १७/५/१९६० उसी स्थानपर "श्रीमद्भागवत प्रवचन" के सम्बन्धमें भाषण।

(३०) १९/५/१९६० कल्याणपुर गाँवके श्रीमन्दिरके प्रांगणमें "धर्म जीवनकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण।

(३१) २०/५/१९६० उसी स्थानपर "वर्त्तमान समस्याका समाधान" के सम्बन्धमें भाषण।

(३२) २१/५/१९६० कल्याणपुर गाँवके श्रीमदनमहोन गौड़ीय मठमें "वैष्णवधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(३३) २२/५/१९६० मलुवासान गाँवमें श्रीरेवतीभूषण पालके गृहप्रांगणमें "नामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(३४) २३/५/१९६० तमलुक शहरमें श्रीहरिनाम प्रचारिणी सभाके प्रांगणमें "श्रीनामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(३५) २४/५/१९६० उसी स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(३६) २५/५/१९६० उसी स्थानपर "वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय" के सम्बन्धमें भाषण।

(३७) २६/५/१९६० उसी स्थानपर श्रीमद्भागवत पाठ एवं व्याख्या।

(३८) २८/५/१९६० चकगाडुपोता गाँवके स्कूल प्रांगणमें "सनातन-धर्म एवं देव-देवियोंकी पूजा" के सम्बन्धमें भाषण।

(३९) २९/५/१९६० पूर्वोक्त स्थानपर "पञ्चरस-तत्त्व एवं भागवत" के सम्बन्धमें भाषण। यहाँपर श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें आर्य समाजियोंके साथ तर्क-वितर्क हुआ, जिसमें आचार्य केसरीकी अकाट्य युक्तियों एवं शास्त्रीय प्रमाणोंको सुनकर आर्यसमाजियोंकी बोलती बन्द हो गयी।

(४०) ३०/५/१९६० उसी स्थानपर श्रीनरेन्द्र पडुआके गृहप्रांगणमें "वैष्णव सदाचार" के सम्बन्धमें भाषण।

(४१) ३१/५/१९६० वहींपर "वर्त्तमान युगकी समस्या" के सम्बन्धमें भाषण। यहाँ श्रोताओंकी ओरसे प्रश्न हुआ कि वैष्णवगण कृषि कर्म कर सकते हैं या नहीं? श्रील आचार्य केसरीने शास्त्रोंके विचार प्रमाण एवं उदाहरण सहित प्रमाण कर यह बतलाया कि वैष्णवलोग कृषि कर्म कर सकते हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णाश्रमधर्मके प्रसङ्गमें इसका उल्लेख है। श्रीकृष्णके समयमें गोप जातिकी दो श्रेणियोंका उल्लेख है। गोचारण करनेवाले एवं कृषि करनेवाले दोनों ही वैष्णव थे। श्रीमन्महाप्रभुके समयमें भी बहुत-से गृहस्थ वैष्णव कृषि कर्म करनेवाले भी थे। इनका सदुत्तर पाकर प्रश्नकर्त्ता बड़े सन्तुष्ट हुए।

(४२) २/६/१९६० डायमण्ड हारवर (२४ परगना) के शैलेन्द्रनाथ घोषके गृहप्रांगणमें श्रीमद्भागवत पाठ।

(४३) ३/६/१९६० काकद्वीपमें श्रीविशालाक्षी मन्दिरके प्रांगणमें "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४४) ४/६/१९६० उसी स्थानपर "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य एवं धर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४५) ६/६/१९६० स्थानीय हरिसभामें "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४६) ७/६/१९६० काशीनगरके बाजारमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(४७) ८/६/१९६० उपरोक्त स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४८) ९/६/१९६० गिलारछट गाँवमें "वैष्णवधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(४९) १०/६/१९६० पूर्वोक्त स्थानपर "नामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(५०) ११/६/१९६० काशीनगर बाजारमें "वैष्णव सदाचार एवं नित्यधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(५१) १२/६/१९६० कृष्णचन्द्रपुर गाँवके विद्यालय प्रांगणमें "जीवतत्त्व तथा भगवत्-सेवामें उसका अधिकार" के सम्बन्धमें भाषण।

(५२) १३/६/१९६० सरवेड़िया गाँवके श्रीद्विजोत्तम दासाधिकारीके गृहप्रांगणमें "अधोक्षजतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(५३) १५/६/१९६० एकतारा ग्रामके प्राथमिक विद्यालय प्रांगणमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें भाषण।

(५४) १६/६/१९६० पूर्वोक्त स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(५५) १७/६/१९६० हदुगंज ग्रामके हरिसभा भवनमें "मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य एवं वैष्णवधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(५६) १८/६/१९६० चांदनगर ग्रामके श्रीवसन्तकुमार घोषके गृहप्रांगणमें "नामतत्त्व" के सम्बन्धमें भाषण।

(५७) १९/६/१९६० उक्त गाँव श्रीनीलमणि घोषके गृहप्रांगणमें श्रीमद्भागवतसे "निमि नवयोगेन्द्र संवाद" पाठ।

(५८) २०/६/१९६० पूर्वोक्त गाँवके श्रीकृष्णपद घोषके गृहप्रांगणमें श्रीमद्भागवतसे "निमि नवयोगेन्द्र संवाद" पाठ।

(५९) २०/६/१९६० उक्त गाँवके श्रीरजनीकान्त घोष महोदयके गृह प्रांगणमें रात्री ८ बजे श्रीमद्भागवतके पूर्वोक्त प्रसङ्गका पाठ।

(६०) २१/६/१९६० डायमण्ड हारबरके न्यायालय प्रांगणमें "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(६१) २२/६/१९६० उसी स्थानपर "सनातनधर्म" के सम्बन्धमें भाषण।

(६२) २३/६/१९६० उसी स्थानपर श्रीमद्भागवत एकादश-स्कन्धसे पाठ।

मुर्शिदाबाद अञ्चलमें श्रील आचार्यदेव

मुर्शिदाबाद जनपदके अन्तर्गत हावड़ा बहरमपुर शहरके विशिष्ट नागरिकोंके विशेष निमन्त्रणपर परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव अपने परिकरोंके साथ २३ दिसम्बर, १९६० ई॰ को वहाँ पधारे। बहरमपुर कोर्ट-स्टेशनमें श्रील गुरुदेवके बाल्यबन्धु श्रीकृष्णदेव मुखोपाध्याय एवं बहुत-से नागरिकवृन्द पुष्पमाला आदिके साथ स्वागत करनेके लिए उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। स्टेशनपर उतरते ही उन लोगोंने बड़े उत्साहसे पुष्पमाल्य, चन्दन आदि द्वारा उनका स्वागत किया। तत्पश्चात् प्रचार पार्टीके साथ उन्हें मोटर वाहनके द्वारा हावड़ा शहरमें श्रीहरिपद साहा महोदयके ठाकुरबाड़ीमें ठहराया गया। दूसरे दिन सायंकाल पूर्वोक्त ठाकुरबाड़ीके विशाल प्रांगणमें आयोजित एक विशाल धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवने "मनुष्य जीवनके कर्त्तव्य" के सम्बन्धमें एक ओजस्वी भाषण प्रदान किया। तीसरे दिन २५ दिसम्बर, १९६० को भी उसी स्थानमें श्रील सभापति महाराजने "वैष्णव धर्मकी मौलिकता" के सम्बन्धमें एक गम्भीर वैदान्तिक तत्त्वपूर्ण भाषण प्रदान किया। उनके भाषणको सुनकर शहरके वकील, अध्यापक एवं अन्यान्य शिक्षित व्यक्ति मुग्ध हो गये। उन लोगोंके विशेष आग्रहपर श्रील आचार्यदेवने और भी तीन दिनों तक वहाँ ठहरकर मुक्तितत्त्व तथा अचिन्त्य-भेदाभेदके सम्बन्धमें अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक तत्त्वोंका विश्लेषण करते हुए भाषण दिया। उनका ओजस्वी भाषण सुनकर जन साधारण विशेष रूपसे आकर्षित हुआ। सभाके अन्तमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौर-कृष्ण-लीलाके सम्बन्धमें भाषण दिया।

लगातार ५ दिनों तक हावड़ा बहरमपुर शहरमें शुद्धभक्तिका प्रचार होनेपर जियागंज निवासी माननीय राय बहादुर सुरेन्द्र नारायण सिंहके विशेष निमन्त्रणपर श्रील सभापति महाराज प्रचार पार्टीके साथ जियागंजमें पधारे। प्रथम दिन स्थानीय चण्डीमण्डपके विशाल प्रांगणमें एक महती धर्मसभाका आयोजन किया गया। सभाका आयोजन करनेवाले राय बहादुर महोदय परम धर्मानुरागी एवं विद्वान व्यक्ति थे। उनके विशेष अनुरोध करनेपर श्रील आचार्यदेवने अचिन्त्य-भेदाभेदके सम्बन्धमें अत्यन्त गम्भीर तत्त्वोंसे पूर्ण दार्शनिक भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—"अखिल विश्व ब्रह्माण्डकी सृष्टि करनेवाले ईश्वरोंके भी ईश्वर परब्रह्म श्रीकृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। वे असमोर्द्ध्व तत्त्व हैं। वे निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष तत्त्व नहीं, बल्कि अचिन्त्य सर्वशक्तिमान हैं। यथार्थतः परम तत्त्वरूप भगवान्‌की एक ही शक्ति है, जिसे पराशक्ति या अन्तरङ्गाशक्ति कहते हैं। किन्तु वही पराशक्ति विभिन्न रूपसे कार्य सम्पादन करनेके कारण विभिन्न नामोंसे परिचित होती है। जिनमें तीन प्रधान हैं—चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। चित्-शक्तिसे चित्-जगत्, जीवशक्ति या तटस्थाशक्तिसे असंख्य जीव तथा बहिरङ्गा या मायाशक्तिसे असंख्य जड़-जगत् प्रादुर्भूत हुए हैं। यहाँ प्रादुर्भूतका तात्पर्य शक्तिओंके परिणामसे समझना चाहिये।

"परतत्त्वकी शक्तियों एवं शक्तिपरिणत वस्तुओंसे परतत्त्वका भेद और अभेद युगपत् सिद्ध है। किन्तु यह भेद और अभेद जीवोंकी क्षुद्र चिन्ताशक्ति या युक्ति-तर्कके अगम्य है। अगम्य होनेपर भी अपौरुषेय शब्दगम्य है। इसलिए इस भेदाभेदको अचिन्त्य-भेदाभेद कहा गया है। अपौरुषेय शब्दगम्यका तात्पर्य क्या है? इसे बड़ी सावधानीसे समझना चाहिये। शुद्ध गुरु-परम्परामें स्वीकृत वेद, उपनिषद्, वेदान्त-सूत्र, पुराण, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि शास्त्र वचनोंको यहाँ अपौरुषेय शब्द कहा गया है। इसी शब्द-प्रमाणके माध्यमसे उक्त भेदाभेद सम्बन्धको समझा जा सकता है अन्यथा यह अचिन्त्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने सार्वभौम भट्टाचार्यको इसकी शिक्षा दी थी। षट्-सन्दर्भमें श्रील जीव गोस्वामीने तथा श्रीगौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषणने

गोविन्द–भाष्यमें अचिन्त्य–भेदाभेद तत्त्वका बड़े ही मार्मिक रूपमें विवेचन किया है।”

इनका यह भाषण अत्यन्त गम्भीर दार्शनिक विचारोंसे परिपूर्ण होनेके कारण साधारण श्रोताओंकी तो बात ही क्या, शिक्षित श्रोता भी आसानीसे नहीं समझ सके। उन सबने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्य श्रील आचार्य केसरीसे निवेदन किया कि आजका भाषण अत्यन्त कठिन हुआ है। हमलोग कुछ सहज–सरल रूपमें “मनुष्य जीवनका कर्त्तव्य” के विषयमें श्रवण करना चाहते हैं। उनकी प्रार्थनाके अनुसार श्रील गुरुदेवने दूसरे दिनकी धर्मसभामें “मानव जीवनका धर्म एवं कर्त्तव्य” के सम्बन्धमें भाषण दिया। उस भाषणमें प्रसङ्गके अनुसार वर्त्तमान कालके अपसम्प्रदाय एवं उपसम्प्रदायके विचारोंका खण्डनकर शुद्ध सनातन धर्म—भगवद्भक्तिकी विशद् रूपमें आलोचना की। सभापति महाराजके भाषणके पश्चात् प्रतिदिन त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षाके सम्बन्धमें भाषण दिया। प्रतिदिन भाषणके प्रारम्भ एवं अन्तमें श्रीहरि–गुरु–वैष्णव वन्दना, महाजन पदावली एवं हरिनाम महामन्त्रका कीर्त्तन किया जाता था।

बङ्गालके सुन्दरवन अञ्चलमें शुद्धभक्तिका प्रचार

२४ जनवरी, १९६१ ई॰ को श्रीआचार्यदेव अपने परिकरोंके साथ काकद्वीपके समीप राजनगर धर्मसम्मेलन कमेटीके विशेष आह्वानपर वहाँ पधारे। श्रीधाम मथुरासे प्रकाशित श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी) के सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त नारायण महाराज भी आचार्यदेवके साथ थे।

सन्ध्याके समय राजनगर हाईस्कूलके विशाल प्रांगणमें विराट धर्मसभाका आयोजन किया गया था। सर्वसम्मतिसे श्रील आचार्यदेवने सभापतिका आसन अलंकृत किया। अन्यान्य सम्प्रदायोंके वक्ताओंके पश्चात् श्रील सभापति महाराजके निर्देशसे वैष्णवधर्मके पक्षमें सभाके प्रधान अतिथि त्रिदण्डिपाद श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज और श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने भाषण दिये। उपसंहारमें श्रील आचार्यदेवने

भगवत् कपिल एवं आधुनिक सांख्यकार कपिलमें पार्थक्य तथा हिन्दूमात्र ही साकारवादी हैं, अहिन्दू सभी निराकारवादी—इन विषयोंका विवेचन करते हुए एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया। उन्होंने बतलाया कि सांख्य-दर्शनके आदि प्रवर्तक कपिलदेव ऋषि हैं। कपिल दो हैं। इनमेंसे एक सत्ययुगमें और दूसरे त्रेतायुगमें आविर्भूत हुए थे। सत्ययुगके कपिल महर्षि कर्दम ऋषिके पुत्रके रूपमें मनुकी कन्या देवहूतिके गर्भसे पैदा हुए थे। ये भगवत्-अवतार हैं तथा सांख्य-दर्शनके आदि कर्त्ताके रूपमें प्रसिद्ध हैं। यद्यपि इन्होंने सांख्य-दर्शनके नामसे किसी विशेष ग्रन्थका प्रणयन नहीं किया है, फिर भी इनके द्वारा प्रवर्तित सांख्य मतका सुस्पष्ट वर्णन श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थोंमें पाया जाता है। त्रेतायुगमें आविर्भूत कपिल मुनि (जिन्होंने सगर वंशका ध्वंस किया था) ने सांख्य-दर्शनकी रचना की। इनके सांख्य-दर्शनमें पूर्वोक्त सांख्य मतका सार-संकलन होनेपर भी इसमें कुछ-कुछ विशेष विचार परिलक्षित होते हैं। ये विशेष अंश पूर्ण रूपसे श्रुतिविरुद्ध है। श्रुतिविरुद्ध अंश संयोजित होनेके कारण ही प्रचलित आधुनिक सांख्य-दर्शनका अनादर दृष्टिगोचर होता है। आत्मतत्त्वका विवेचन वेदान्तशास्त्रके अनुरूप होनेके कारण इस सांख्य-दर्शनकी उत्कर्षता रहनेपर भी श्रुतिविरुद्ध विचारों (ईश्वर असिद्ध है, अचेतन प्रकृति ही विश्वकी आदि कर्त्री है) के उल्लेखके कारण साधुसमाजमें इसका आदर नहीं है।

प्राचीन शास्त्रोंमें हिन्दू शब्दका उल्लेख न रहनेपर भी सनातन धर्मावलम्बी लोगोंको ही हिन्दू समझना चाहिये। हिन्दूमात्र ही साकारवादी होते हैं। वे भगवान्‌के अप्राकृत श्रीविग्रहकी पूजा करते हैं। हिन्दुओंको छोड़कर ईसाई, बौद्ध, मुसलमान, जैन आदि सभी धर्मावलम्बी निराकारवादी हैं। सनातन धर्मावलम्बी सदा विद्यमान रहनेवाले नित्यधर्मका पालन करते हैं। इसके अतिरिक्त सभी धर्मोंका आदि और अन्त है। वे निराकारवादी होनेपर भी किसी-न-किसी रूपमें आकार को माननेके लिए बाध्य हैं। उनके धर्मग्रन्थोंमें भी God, खुदाके आकारका वर्णन है। बौद्ध और जैनियोंके मन्दिरोंमें विशाल-विशाल मूर्त्तियोंकी पूजा होती है। यदि ईश्वरका कोई रूप ही नहीं है तो मन्दिर, मस्जिद,

चर्च और स्तूपोंकी आवश्यकता ही क्या है? किसके लिए उनकी आवश्यकता? यदि कोई है ही नहीं, तो मन्दिर, मस्जिद किसलिए?”

where is t
quotation mark

धर्मसम्मेलनके दूसरे दिन भी आचार्यदेवने सभापतिका आसन अलंकृत किया। तत्पश्चात् अन्यान्य सम्प्रदायोंके वक्ताओंके भाषणके पश्चात् श्रील आचार्यदेवने श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजको परतत्त्व, उपास्यवस्तु कौन है तथा उनकी उपासनाके सम्बन्धमें भाषण देनेका निर्देश दिया। उन्होंने *‘एते चांश कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्’* (श्रीमद्भा॰ १/३/२८), *‘ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदान्दविग्रहः। अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम्’* (ब्र॰ स॰ ५/१) तथा *‘आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धामवृन्दावन.....न परः।’*—इन शास्त्रीय प्रमणोंको उपस्थित करते हुए श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको ही अद्वयज्ञान परतत्त्व निरूपित किया। साथ ही व्रजरमणियोंकी श्रीकृष्णके प्रति उपासना ही सर्वोत्तम है, श्रीकृष्ण प्रेम ही जीवोंके लिए सर्वोत्तम प्रयोजन है और श्रीचैतन्य महाप्रभुका यही मत है—उन्होंने यह बात अत्यन्त दृढ़तापूर्वक कही। तदनन्तर श्रीविश्वनाथ राय, श्रीसुदर्शन ब्रह्मचारी, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारीने वैष्णवधर्मके सम्बन्धमें भाषण दिया। अन्तमें उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा अनुमोदित वैष्णवधर्म ही सनातन धर्म है, इसे सभी श्रोताओंको अच्छी तरहसे समझाया गया।

धर्मसम्मेलनके व्यवस्थापकोंने विशेषतः अध्यापक श्रीसुरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य (एम॰ए॰ ट्रिपल) एवं श्रीद्विजेन्द्रनाथ पात्र महोदय आदिने श्रीआचार्यदेवकी भाषणकी शैली, भावधारा एवं विचारधाराकी भूयसी प्रशंसा की। सभाके अन्तमें उन लोगोंने श्रील गुरुमहाराजके साथ धर्मके विषयमें आलोचना की।

चुँचुड़ा मठमें श्रीव्यासपूजा-महोत्सव

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठोंमें ३ फरवरीसे ६ फरवरी, १९६१ ई॰ चार दिनों तक श्रीव्यासपूजा-महोत्सवका अनुष्ठान सम्पन्न हुआ। विशेषतः श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें श्रीआचार्यदेवके स्वयं उपस्थित रहनेसे यहाँपर यह अनुष्ठान सर्वतोभावेन साफल्य मण्डित हुआ है।

माघी कृष्णा तृतीया तिथि (३ फरवरी) में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति श्रील आचार्यदेवके आविर्भावके दिन ब्राह्ममुहूर्त्तसे ही श्रीश्रीहरि-गुरु-वैष्णव-वन्दना एवं उनके महिमासूचक कीर्त्तन हुए। तत्पश्चात् श्रीव्यासपूजा पद्धतिके अनुसार गुरुपंचक, आचार्यपंचक, व्यासपंचक, कृष्णपंचक, उपास्यपंचक, तत्त्वपंचक आदिकी पूजा एवं वैष्णव होम सम्पन्न हुआ। श्रील आचार्यदेवके अनुग्रहपूर्वक पूजामण्डपमें पधारते ही उनके अनुगत संन्यासी, ब्रह्मचारी, गृहस्थ सभीने उनके श्रीचरणकमलोंमें श्रद्धापुष्पाञ्जलि अर्पित की। दोपहरमें भोगराग एवं आरतिके पश्चात् निमन्त्रित एवं अनिमन्त्रित सभी लोगोंको विचित्र महाप्रसाद वितरण किया गया। सायंकालीन धर्मसभामें श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज आदि वक्ताओंने श्रीगुरुतत्त्वके सम्बन्धमें भाषण दिया।

४ फरवरीको सायंकालीन धर्मसभामें नाना स्थानोंसे प्राप्त भक्तोंकी पुष्पाञ्जलिका पाठ किया गया। अन्तमें श्रील आचार्यदेवने सद्गुरु पदाश्रयकी आवश्यकता तथा सत्शिष्यके कर्त्तव्यके सम्बन्धमें विशेष रूपसे उपदेश एवं निर्देश प्रदान किया।

६ फरवरी, सोमवारको गोविन्द पञ्चमी (माघी कृष्णा पञ्चमी) तिथिमें जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें अरुणोदय कालसे ही वन्दना, कीर्त्तन प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् प्रभुपादकी वक्तृतावलीसे त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजीने श्रीव्यासपूजासे सम्बन्धित श्रील प्रभुपादके विचारोंका पाठ किया। तदनन्तर दोपहरमें श्रीविग्रहोंका अर्चन-पूजन एवं पुष्पाञ्जलि दानके पश्चात् भोगराग एवं आरति सम्पन्न हुई। तदनन्तर समागत श्रद्धालुओंको महाप्रसाद सेवन कराया गया।

सायंकाल ५ बजे एक महती सभाका आयोजन हुआ। इस सभामें भी सर्वप्रथम श्रील आचार्यदेव एवं श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके उद्देश्यसे भक्तों द्वारा प्रेषित भक्तिपुष्पाञ्जलिका पाठ किया गया। श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी द्वारा प्रदत्त श्रील प्रभुपादके चरित्र एवं शिक्षावलीके सम्बन्धमें भाषणके उपरान्त परमाराध्य श्रील गुरुदेवने श्रील प्रभुपादकी शिक्षाके वैशिष्ट्यके सम्बन्धमें उपदेशपूर्ण एवं सारगर्भित भाषण

प्रदान किया। उन्होंने बतलाया कि श्रीगुरुपूजाका नामान्तर ही व्यासपूजा है। श्रीव्यासदेव शिक्षा देनेके कारण शिक्षागुरु हैं। गुरु दो प्रकारके होते हैं—शिक्षागुरु और दीक्षागुरु। अर्चन मार्गमें सर्वप्रथम दीक्षागुरुके अर्चन एवं पूजाका विधान है। शिक्षागुरु एवं दीक्षागुरु तत्त्वतः अभिन्न हैं तथा सभी शास्त्रोंमें शिक्षा और दीक्षा गुरु दोनोंको अभिन्न बतलाते हुए सेवा करनेकी विधि है तथा दोनोंको ही कृष्णका स्वरूप या प्रकाश बतलाया गया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है कि—

गुरु कृष्णरूप हन शास्त्रेर प्रमाणे।
गुरु-रूपे कृष्ण कृपा करेन भक्तगणे॥

शिक्षाागुरुके त' जानि कृष्णेर स्वरूप।
अन्तर्यामी, भक्तश्रेष्ठ,—एइ दुइ रूप॥

(चै॰ च॰ आ॰ १/४५, ४७)

और भी शास्त्रोंमें कहीं कहीं शिखिपिच्छमौलि कृष्णको, कहीं राधाभावद्युतिसुवलित गौरहरि और षड् गोस्वामियोंको भी शिक्षागुरु माना गया है। तथापि दीक्षागुरुकी पूजा ही सबसे पहले करना कर्त्तव्य है। मन्त्रदाता गुरुका एक प्रधान वैशिष्ट्य है, जो मनोधर्मसे त्राण कराते हैं वे मन्त्रदाता गुरु हैं। जिस वस्तुके द्वारा वे मनोधर्मसे शिष्योंका त्राण करते हैं उसे मन्त्र कहते हैं। शब्दब्रह्म हमें मनोधर्मसे रक्षा करते हैं। इसलिए मन्त्रदाता गुरु सर्वश्रेष्ठ हैं। इसीलिए मन्त्रदाता गुरुकी पूजा ही सर्वप्रथम होनी चाहिये। शिक्षागुरु होनेके कारण श्रीवेदव्यास सारी शिक्षाओंको प्रदान करते हैं, इसलिए इनका महत्व या वैशिष्ट्य अपरिहार्य है।

वर्त्तमान समयमें सद्गुरु दुर्लभ हैं। कहीं-कहीं अयोग्य दीक्षा एवं शिक्षा गुरुओंके कारण परस्पर विवाद भी देखा जाता है। अतः जो दीक्षागुरुकी सेवा—शिक्षा प्रदान करते हैं, जो निर्मत्सर होकर भक्तिसाधनकी शिक्षा देते हैं वे शिक्षागुरु हैं। शास्त्रोंमें उन्हें यथोचित सम्मान करनेके लिए बतलाया गया है। जो दीक्षागुरुकी सेवाकी शिक्षा नहीं देता वह शिक्षागुरु पदवाच्य नहीं है। शिक्षागुरुकी तो बात ही क्या, ऐसा व्यक्ति शुद्ध वैष्णव ही नहीं है। क्योंकि वह दीक्षागुरुको मर्यादा भी नहीं दे सकता। ऐसा

उपदेष्टा अपने दीक्षागुरुके प्रति कैसा आचरण करता है? जो लोग अद्वैत चिन्तामें मग्न रहते हैं, वे गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें (श्रीशङ्कराचार्यके द्वारा लिखित) 'अनवगतस्यात' के अनुसार गुरुकी अवज्ञा करते हैं या गुरुकी अवज्ञा करनेकी शिक्षा देते हैं। वे गुरुको अगुरु या लघु भी समझते हैं। यदि गुरु ही अज्ञानी या अतत्त्वदर्शी हैं, फिर शिष्य गुरु पदवाच्य किस प्रकार हो सकता है? गुरुसेवा करनेसे मुझे सब प्रकारकी सुविधाएँ प्राप्त होंगी, भजनानन्दीके नामसे आलस्यपूर्ण सुखमय जीवन-यापन कर सकूँगा तथा अन्य सेवकोंके ऊपर कर्तृत्व कर सकूँगा, सत्-शिष्यका ऐसा विचार नहीं होता। 'गुरूर सेवक हय मान्य आपनार।' सद्गुरु पदाश्रित सेवक या शिष्य अन्यान्य सभी सेवकोंको अवश्य ही सम्मान प्रदान करेंगे। गुरुसेवाकी शिक्षा देनेवाले ही शिक्षागुरु हैं।

वलागड़में विराट धर्म-सम्मेलन

हुगली जनपदके अन्तर्गत वलागड़ शहरमें स्थानीय सच्चिदानन्द सेवाश्रमके उद्योगसे २३ फरवरीसे २५ फरवरी, १९६१ ई० तीन दिनों तक विराट धर्मसभाका आयोजन किया गया था। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको इस सभामें योगदान करनेके लिए विशेष रूपसे निमन्त्रित किया गया था। श्रील आचार्यदेवने अपने अनुगत संन्यासी और २० ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर उस महद् अनुष्ठानमें योगदान किया। उक्त सेवाश्रमकी ओरसे लोगोंके ठहरने एवं प्रसाद आदिकी व्यवस्था अत्यन्त सुन्दर रूपमें की गयी थी। अपराह्न ४ बजे विशाल सभा हुई। विभिन्न वक्ताओं तथा प्रधान अतिथिके सभास्थलमें उपस्थित होनेपर सङ्कीर्त्तन एवं शङ्खध्वनि द्वारा गूँजते हुए वातावरणमें श्रील आचार्य केसरीको सभामञ्चपर लाया गया। सर आशुतोष मुखोपाध्याय (बङ्गालके प्रथम भारतीय गवर्नर) के पुत्र तथा श्यामापद मुखर्जीके भाई—कलकत्ता हाइकोर्टके अवकाशप्राप्त प्रधान न्यायाधिपति—श्रीवामाप्रसाद मुखर्जीने आदरपूर्वक श्रील आचार्य केसरीको सभापतिके आसनपर विराजमान कराया। स्वामी समाधिप्रकाश अरण्य एवं श्रीजीव न्यायतीर्थ—इन दोनोंको प्रधान अतिथिके रूपमें वरण किया गया। तदनन्तर वक्ता—महास्थवीर

धर्मकीर्ति, अवकाशप्राप्त जिला जज श्रीमतीलाल दास, श्रीसुधीन्द्र नाथ मुखोपाध्याय, समितिके संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा गणमान्य व्यक्तियोंके सभामण्डपमें आसन ग्रहण करनेपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ।

श्रीजितेन्द्रनाथ चौधरीके उद्‌बोधन सङ्गीतके उपरान्त सच्चिदानन्द सेवाश्रमके अध्यक्ष स्वामी भूपानन्द पुरी महाराजकी ओरसे श्रीतारकगति मुस्तफी महोदयने सम्मेलनके उद्देश्य पर प्रकाश डाला। तदनन्तर सभापति श्रील आचार्य केसरीके निर्देशानुसार सबसे पहले डा॰ मोतीलाल दासने वेद-उपनिषदोंके प्रमाणोंका उल्लेख करते हुए धर्मके सम्बन्धमें भाषण दिया। तत्पश्चात् महाबोधि सोसाइटीके महास्थवीरने धर्मनीति तथा बुद्धदेवके धर्मप्रचारके विषयमें भाषण दिया। अतःपर श्रीजीव न्यायतीर्थ महोदय द्वारा "धर्मकी आवश्यकता" के सम्बन्धमें भाषण देनेके पश्चात् स्वामी समाधिप्रकाश अरण्य महाराजने "वर्त्तमान धर्मजगत्‌की परिस्थिति" के सम्बन्धमें बड़ा ही ओजस्वी भाषण दिया।

अन्तमें परमाराध्य श्रील आचार्यदेवने सभापतिके पदसे बहुत ही ओजस्वी भाषण प्रदान किया। श्रोताओंने उनके भाषणको ही सर्वाधिक पसन्द किया। सभापति महोदयने राष्ट्रके कर्णधारों द्वारा धर्मके प्रति उदासीनता, समाजकी धर्मके प्रति विरोधिता तथा वर्त्तमान शिक्षाके प्रभावसे भारतीय संस्कृतिकी ध्वंसोन्मुख अवस्थाके सम्बन्धमें भावपूर्ण भाषण दिया। रात ८ बजेसे अधिक समय होनेपर सम्मेलनके सम्पादक महोदयने सभापति श्रील आचार्यदेवको प्रदर्शनी उन्मोचन करनेके लिए तथा सभामें प्रदर्शनीके बारेमें घोषणा करनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु श्रोतृमण्डलीने बड़े उत्कण्ठित होकर स्वामीजीका भाषण जारी रखनेका पुनः-पुनः अनुरोध किया। श्रील आचार्यदेवने पुनः अपना भाषण जारी रखते हुए "धर्म पालन ही मानव जीवनका प्रधान कर्त्तव्य है" के सम्बन्धमें बहुत ही प्रभावशाली उपदेश दिया। सभा समाप्त होनेपर धर्म सम्मेलनके आयोजक एवं श्रोतृमण्डलीने सभापति महाराजके विचारोंकी भूयसी प्रशंसा की।

आसाम, सुन्दरवन आदि स्थानोंमें प्रचार

आसाम प्रदेशके भक्तोंके पुनः-पुनः आग्रह एवं प्रार्थनासे १ अप्रैल १९६१ ई॰ से लेकर एक महीना तक आसाम प्रदेशके गोलोकगंज गौड़ीय

मठ, चड़ाईखोला, टोकरे छड़ा, डिडिंगा, धूबड़ी, शान्तिनगर आदि विभिन्न स्थानोंमें प्रबल रूपसे सनातन धर्म—शुद्ध वैष्णवधर्मका प्रचार किया। डिडिंगा गाँवके जूनियर हाईस्कूल प्रांगणमें एक विशाल धर्मसभा हुई थी। इस सभामें हिन्दू, मुसलमान, ईसाई सभी धर्मके लोग बड़ी संख्यामें उपस्थित थे। सबने उनके मर्मस्पर्शी विचारोंकी सराहना की।

आसाम प्रदेशसे लौटकर १६ जून, १९६१ ई॰ के दिन कतिपय संन्यासी ब्रह्मचारियोंके साथ परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने सुन्दरवन अञ्चलमें प्रचार करनेके लिए यात्रा की। प्रचार पार्टी क्रमशः कृष्णचन्द्रपुर, काशीमगढ, लक्ष्मी जनार्द्दनपुर, आईप्लट आदि स्थानोंमें विपुल रूपसे शुद्धभक्तिका प्रचार कर २४ जूनको चुँचुड़ा मठमें लौटी।

श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रथ-यात्रा एवं झूलन-यात्रा महोत्सव आदि

१२ जुलाई, १९६१ ई॰ श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका विरहोत्सव विशेष रूपसे मानाया गया। श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीमद् विष्णुदैवत महाराज प्रमुख संन्यासीगण तथा श्रीहरि ब्रह्मचारी, श्रीभगवान दास ब्रह्मचारी, श्रीभागवत दास ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्रमोक्षण ब्रह्मचारी, श्रीवंशीवदनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीयदुवर दासाधिकारी (एम॰ए॰वी॰टी॰), श्रीजितकृष्ण दासाधिकारी आदि वैष्णवोंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके अप्राकृत जीवनचरित्र तथा उनके द्वारा आचरित एवं प्रचारित वैष्णवधर्मके सम्बन्धमें भाषण प्रदान किया। उपसंहारमें श्रील आचार्यदेवने उक्त विषयमें अत्यन्त शिक्षाप्रद उपदेश प्रदान किया।

दूसरे दिन बड़े समारोहके साथ रथ-यात्रा महामहोत्सव सम्पन्न हुआ। जो १० दिनों तक चला। इस महोत्सवमें श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजकी सेवाप्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय रही।

तत्पश्चात् श्रावण महीनेमें श्रीराधागोविन्दकी झूलन-यात्रा तथा श्रीबलदेव आविर्भाव (पूर्णिमा) उत्सव भी महासमारोहके साथ सम्पन्न

हुआ। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने इन अवसरोंपर अत्यन्त गम्भीर तत्त्व एवं रहस्योंका उद्घाटन किया।

श्रील गुरुदेवकी छत्रछायामें समग्र भारतीय तीर्थोंकी परिक्रमा

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं नियामक परिव्राजकाचार्यवर्य ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके आनुगत्य एवं उनकी साक्षात् उपस्थितिमें इस वर्ष कार्त्तिक नियम-सेवाके समय तीन धाम, सप्तपुरीके सहित समग्र भारतके तीर्थोंकी परिक्रमा अत्यन्त सुचारु रूपसे सुसम्पन्न हुई। इस तीर्थयात्रामें संन्यासी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवं गृहस्थ कुल मिलाकर ११८ यात्री थे। ३ अक्टूबर, १९६१ ई० के दिन हावड़ा स्टेशनसे एक रिजर्व टूरिस्ट बोगीके द्वारा यह यात्रा आरम्भ हुई। इस यात्रामें कुल दो महीनेका समय लगा।

सर्वप्रथम यात्रासंघने विष्णुपुरमें श्रीमदनमोहनजीका दर्शन किया। इन मदनमोहनजीने स्वयं कमान दागकर शत्रुओंको खदेड़ा था। उस कमानका भी यात्रियोंने दर्शन किया। तत्पश्चात् परिक्रमा संघने श्रीलगुरुदेवके आनुगत्यमें श्रीजगन्नाथ पुरीमें उपस्थित होकर श्रीजगन्नाथदेव, टोटा गोपीनाथ, श्रील प्रभुपादकी आविर्भाव एवं भजन स्थली, गम्भीरा, श्रील हरिदास ठाकुरकी भजन एवं समाधि स्थली तथा गुण्डिचा मन्दिर आदिका दर्शन किया। ८ अक्टूबर, १९६१ को सिंहाचलममें ९८७ सीढ़ियोंके ऊपर चढ़कर पर्वतके ऊपर जियड़ नृसिंहदेवका दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त किया। १० अक्टूबर, १९६१ को पाना नृसिंह, ११ अक्टूबर, १९६१ को मद्रास गौड़ीय मठ, पार्थसारथि मन्दिर तथा अन्यान्य दर्शनीय स्थलोंका दर्शन किया। मद्रासमें ही ईस्टर्न रेलवेकी ट्रेन बदलकर दक्षिण रेलवेके द्वारा यात्रा आरम्भ हुई।

मद्रासके वेद गिरीश्वर महादेव एवं हर पार्वती रूपी पक्षियोंका दर्शन करनेके लिए १३ अक्टुबरको पक्षीतीर्थमें उपस्थित हुए। १४ अक्टूबरको यात्रापार्टी चिदम्बरममें श्रीवासुदेव एवं श्रीनटराज, मायाभरममें मयूरी रूपमें पार्वतीदेवीका दर्शनकर उसी दिन रातके समय कुम्भकोणम पहुँचे। दूसरे

दिन कुम्भकोणममें मोक्षकुण्ड, कुम्भेश्वरम्, श्रीराजगोपाल चक्रपाणि आदि तीर्थस्थलोंका दर्शन कराया गया। मोक्षकुण्ड एक बहुत बड़ा सरोवर है। उस सरोवरकी गहराई भी अत्यधिक है। परमाराध्य गुरुदेवने इस स्थलसे सम्बन्धित एक उपाख्यानका वर्णन किया।

पाण्डवलोग वनवासके समय यहाँ पधारे थे। भीमसेनको अपने बलका बड़ा अभिमान था। जिस समय पाण्डवलोग उस पवित्र तीर्थमें स्नान कर रहे थे उसी समय देवर्षि नारद वहींपर उपस्थित हुए। उन्होंने भीमसेनकी ओर मुड़कर कहा—"जानते हो यह कौन-सा तीर्थ है और इसकी क्या महिमा है?" महाबलवान भीमसेनने देवर्षिको प्रणाम करते हुए कहा—"देवर्षे! हमलोग इस विषयमें अधिक नहीं जानते, आप ही कृपा कर बतलावें।" नारदजीने कहा—"पहले तुमलोग स्नानकर यहाँ आओ तब मैं बतलाऊँगा।" स्नान करनेके पश्चात् नारदजीने बतलाया कि जिस सरोवरमें तुमलोगोंने स्नान किया है यह पूर्ण सरोवर कुम्भकर्णकी खोपड़ीके अन्दर है। श्रीरामचन्द्रजीने उस महायोद्धाका वधकर उसकी खोपड़ीको अपने वाणोंसे इस स्थानपर फेंक दिया, जिसके आघातसे यह सरोवर बना है। श्रीरामचन्द्रजीके वाणोंसे स्पर्श होनेके कारण कुम्भकर्णकी खोपड़ी भी अत्यन्त पवित्र हो गयी। इस सरोवरमें स्नान करनेपर श्रीरामचन्द्रजीके धामकी प्राप्ति होती है। कुम्भकर्णके नामके ऊपर ही इस विराट शहरका नाम कुम्भकर्णम् या कुम्भकोणम् पड़ा है।

देवर्षि नारदकी बात सुनकर भीमसेनका अपने बलका अहङ्कार दूर हो गया। वे देवर्षिके चरणोंमें गिर पड़े। १६ अक्टूबरको यात्रियोंने तांजोरमें श्रीवृहदेश्वर महादेवका दर्शन किया। यह मन्दिर भारतके बड़े मन्दिरोंमेंसे एक है। इस विशाल मन्दिरके शिखरपर ८० टन वजनका कारुकार्योंसे चित्रित एक गोल प्रस्तर रखा है। आजके वैज्ञानिक एवं पुरातत्त्व लोग भी यह आश्चर्य करते हैं कि उस समय आधुनिक क्रेन यन्त्रका भी आविष्कार नहीं हुआ था फिर भी इतनी ऊँचाईपर इतने बड़े एक सम्पूर्ण पत्थरको कैसे पहुँचाया गया होगा।

यहाँ एक और आश्चर्यकी बात है। मूल मन्दिरके दरवाजेके सामने एक पत्थरमें प्रस्तुत किए हुए २५ टन वजनके शिव वाहन श्रीनन्दीजी

शिवकी ओर मुख उठाए हुए बैठे हुए हैं। यात्रीगण श्रीमन्दिर एवं श्रीनन्दीका दर्शनकर बड़े प्रसन्न हुए। १८ अक्टूबर, १९६१ को भारतकी अन्तिम दक्षिणी सीमामें अवस्थित धनुष्कोटी तीर्थमें स्नानकर श्रीरामेश्वरमें उपस्थित होकर श्रीरामचन्द्र द्वारा स्थापित विशाल शिव मन्दिरका दर्शन किया। पास ही हनुमान द्वारा लायी गयी श्रीमूर्त्तिका भी दर्शन किया।

२० अक्टूबरको मदुरामें मीनाक्षीदेवीका मन्दिर एवं तत्पश्चात् दूसरे दिन कन्याकुमारीमें कन्याकुमारीका दर्शन किया गया। २३ अक्टूबरको श्रीमन्महाप्रभुके चातुर्मास्य-व्रत पालनके क्षेत्र श्रीरङ्गममें श्रीरङ्गनाथजीका दर्शन किया गया। यह भारतका सबसे बड़ा मन्दिर माना जाता है। इसके एक-एक प्राचीरोंमें एक-एक नगर बसा हुआ है। श्रीयमुनाचार्य एवं श्रीरामानुजाचार्य इसी प्रसिद्ध रङ्गनाथजीके मन्दिरमें रहते थे और यहींसे सर्वत्र प्रचार करते थे। यहाँ रङ्गनाथजी शेषशायी स्वरूपमें लक्ष्मीजीके साथ विराजमान हैं। २५ अक्टूबरको विष्णुकांची एवं शिवकांचीका दर्शनकर अरकोणम् जंक्शन पहुँचे। वहाँ दक्षिण रेलवेकी टूरिस्ट बोगीको बदलकर ईस्टर्न रेलवेकी टूरिस्ट बोगीको ग्रहण किया गया। वहाँसे यात्रा कर यात्रीसमूहने तिरुपति बालाजीका दर्शन किया। तिरुपति बालाजी दक्षिण भारतके मन्दिरोंमें सर्वाधिक समृद्ध मन्दिर है। तिरुमलई पहाड़ीके ऊपर यह मन्दिर स्थित है।

२९ अक्टूबरको यात्रीसंघ द्वारा नासिक पञ्चवटीमें सूर्पनखाके नाक-कान छेदनका स्थान, श्रीराम, लक्ष्मण, सीताके स्थान गोदावरी तट तथा अन्यान्य स्थानोंका दर्शनकर ३१ अक्टूबरको मुम्बईमें मुम्बादेवीका दर्शन किया गया। १ नवम्बरको ब्रोचमें बली महाराजजीका स्थान, जहाँ वामनदेवने बली महाराजजीसे भिक्षा माँगी थी, वहाँका दर्शन कराया गया। तत्पश्चात् परिक्रमासंघ प्रभास, सुदामापुरी, वेंट द्वारका, गोमती द्वारका, डाकोरजी (रणछोड़जी), उज्जयिनी, श्रीनाथद्वारा, पुष्कर, सावित्री, जयपुरमें श्रीराधागोविन्द, श्रीराधागोपीनाथ, श्रीराधादामोदर, श्रीराधामाधव, श्रीचैतन्य महाप्रभु, गलतागद्दी आदिका दर्शनकर मथुरा धाममें पहुँचा। वहींसे १७ नवम्बरसे आरम्भकर मथुरा, गोकुल, वृन्दावन, गोवर्धन, राधाकुण्ड, बरसाना, नन्दग्राम आदिका दर्शनकर दिल्लीमें इन्द्रप्रस्थ, कुरुक्षेत्रमें भद्रकाली, हरिद्वार, ऋषिकेश, लक्ष्मणझूला तत्पश्चात्

नैमिषारण्य, अयोध्या, वाराणसीमें काशी विश्वनाथ तथा गयामें गदाधर पादपद्मका दर्शनकर परिक्रमासंघने दो माहके बाद कलकत्तामें प्रत्यावर्तन किया।

जयपुरमें श्रील आचार्यदेव

परमाराध्य श्रील गुरुदेव अपने परिकरोंके साथ ४ जनवरी, १९६२ को समितिके शाखामठ मथुरामें उपस्थित हुए। वहाँ एक सप्ताह तक श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका विपुल रूपसे प्रचारकर राजस्थान प्रदेशकी राजधानी जयपुरमें पधारे।

वहाँके विशेष व्यक्तियोंने उन्हें जयपुरमें आनेके लिए बार-बार अनुरोध किया था। वहाँ एक सप्ताह तक विभिन्न सभा-समितियों तथा मन्दिरोंमें हिन्दी एवं अँग्रेजी भाषामें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित विमल वैष्णवधर्म और सनातन धर्मके सम्बन्धमें प्रवचन किया। विशेषतः कलियुगमें श्रीहरिनाम-सङ्कीर्त्तन ही भगवत्-प्राप्तिका सहज सरल एवं एकमात्र साधन है, इसे जनसाधारणको प्राञ्जल रूपमें बतलाया। स्थानीय श्रीराधाकृष्णजीके मन्दिरमें एक बड़ी सभाका आयोजन हुआ जिसमें शहरके विशिष्ट साहित्यिक एवं शिक्षित सम्भ्रान्त व्यक्ति उपस्थित थे। उस सभामें श्रील गुरुदेवने श्रीनामतत्त्वके सम्बन्धमें एक ओजस्वी भाषण प्रदान किया। हिन्दीके प्रसिद्ध विद्वान श्रीकमलाकर 'कमल' एवं प॰ श्रीकृष्णचन्द्रजी (काव्यव्याकरणतीर्थ, साहित्याचार्य) श्रील आचार्यदेवके विचारोंसे बड़े प्रभावित हुए। ये दोनों श्रीवल्लभाचार्यके पुष्टिमार्गके दीक्षित आचार्य होनेपर भी परमाराध्य श्रील आचार्यदेव जब तक जयपुरमें अवस्थान किये, इन लोगोंने उनके समीप वैष्णवतत्त्वका श्रवण किया। श्रील गुरुदेवने उन्हें यह बतलाया कि श्रीवल्लभाचार्यजी श्रीचैतन्य महाप्रभुसे दो बार मिले थे। प्रथम बार प्रयागके निकट अपने अड़ैल ग्राममें तथा द्वितीय बार श्रीपुरीधाममें। श्रीवल्लभाचार्यके पुत्र श्रीविट्ठलदेवका श्रीरूप-रघुनाथ आदि गोस्वामियोंके साथ अत्यन्त सौहार्द्रपूर्ण सख्यभाव था। ये दोनों जीवन भर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे सम्बन्धित रहे। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीसे इनका अत्यन्त

स्नेहपूर्ण सम्पर्क रहा। श्रीभागवत-पत्रिकामें उनकी कविताएँ एवं प्रबन्ध प्रकाशित होते थे।

इस प्रकार एक माह तक मथुरा एवं जयपुरमें विपुल रूपसे वैष्णवधर्मका प्रचार कर ९ फरवरीको वे श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें लौटे।

उड़ीसा प्रदेशमें समितिके प्रचारकेन्द्रकी स्थापना

उड़ीसा प्रदेशमें बालेश्वर जनपदके अन्तर्गत भद्रक एक प्रसिद्ध स्थान है। इसीके समीप सालिन्दी नदीके तटपर स्थित कोरन्ट नामक एक पवित्र गाँव है। इस गाँवमें करण गोत्रके ब्राह्मणोंका निवास है। यहाँके अधिकांश अधिवासीवृन्द सुशिक्षित एवं उच्चश्रेणीके सरकारी कर्मचारी हैं। इस गाँवमें श्रीगोपालजीका एक मन्दिर है। इसके सेवायत श्रीलाल मोहन महापात्र थे। इस मन्दिरकी सेवा भलीभाँति न चला सकनेके कारण उन्होंने श्रीमन्दिर एवं उससे सम्बन्धित कृषिभूमि समितिके सभापति आचार्यदेवको अर्पित कर दी। कोर्टमें रजिस्ट्री आफिसमें इसकी विधिवत् रजिस्ट्री हुई। श्रील आचार्यदेवने इस शाखाका नया नामकरण श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र किया।

कुछ दिनोंके बाद श्रीगोपालजीको गाँवके भीतरसे स्थानान्तरित कर बड़े राजमार्गपर लाया गया। वहाँ एक विशाल भूखण्डपर एक विराट् श्रीमन्दिर, नाट्य मन्दिर एवं सेवक खण्डका निर्माण कराया गया। अब इस विशाल मन्दिरमें श्रीगोपालजीकी सेवा-पूजा होती है।

कोरन्ट गाँव भद्रक शहरसे ढाई मील पूर्व उत्तरमें स्थित है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि श्रीभक्तिविनोद ठाकुर जिस समय भद्रकमें सब-डीविजनल अधिकारी (एस॰डी॰ओ॰) के पदपर नियुक्त उसी समय उन्होंने अपने प्रसिद्ध श्रीकृष्णसंहिता ग्रन्थकी रचना की थी। उन्होंने अपने 'विजन ग्राम' नामक काव्यग्रन्थमें भी इसका उल्लेख किया है—"किंवा ना रहिलि केन सालिन्दीर कूले, यथाय पथिकगण अश्वत्थेर मूले, काटाय आतप-ताप निश्चिन्त अन्तरे।" श्रील आचार्यदेवने इस ग्राममें प्रचारकेन्द्रका स्थापन करते हुए कहा था कि हम लोग श्रीगोपालजी

गौड़ीय प्रचारकेन्द्रमें रहकर श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके पवित्र चरित्र तथा उनके भक्तिके उपदेशोंका स्मरण करनेका सुयोग प्राप्त करेंगे।

यह मठ भद्रक रेलवे स्टेशनके बाद वाउदपुर स्टेशनसे केवल दो फर्लाङ्ग दूर अवस्थित है। यान-वाहनका मार्ग भी अत्यन्त उत्तम है। यहाँका वातावरण भी अतीव मनोरम है। शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्रकी स्थापनाके लिए समिति पूर्वोक्त श्रीमहापात्र महाशय तथा आत्मीय स्वजनवर्गको अन्तः करणसे धन्यवाद प्रदान करती है।

जयपुर शहरमें शुद्धभक्तिका प्रचार

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता सभापति आचार्य श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ २९ अगस्त, १९६२ ई॰ को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें पधारे। उन्होंने १५ दिनों तक यहाँ अवस्थान किया। उस समय स्थानीय शिक्षित तथा अलीगढ़ एवं आगरा विश्वद्यिालयके बहुत-से रिसर्च-स्कालर श्रील आचार्यदेवके निकट दार्शनिक विचारोंको श्रवण करनेके लिए उपस्थित होते थे। वे लोग श्रील गुरुदेवके दार्शनिक विचारोंको सुनकर बड़े ही प्रसन्न होते थे। वे रिसर्च-स्कालर श्रील आचार्यदेवके द्वारा स्थापित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके विशाल ग्रन्थागारसे अपने-अपने रिसर्चके अनुकूल ग्रन्थोंको पढ़ते थे तथा कभी-कभी घर भी ले जाते थे। परमाराध्यतम श्रील आचार्यदेवने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके नाट्य मन्दिरमें भी प्रवचन किया। मथुरावासी उनके मर्मस्पर्शी शुद्धभक्तिके विचारोंको सुनकर क्रमशः उनके अनुगत होने लगे। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज उस समय मठके प्रबन्धक थे। उन्होंने परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्मकी तथा उनके साथ आनेवाले ब्रह्मचारियोंकी सेवा शुश्रूषा की।

४ सितम्बर, १९६२ ई॰ को श्रील गुरुदेव दल-बलके साथ जयपुरमें पधारे। जयपुर हलवाई-समितिके सभापति सेठ सोमीलालजीके विशेष अनुरोधपर उक्त समितिके प्रधान कार्यालयमें ठहरे। जयपुरमें प॰ श्रीकृष्णचन्द्र शास्त्री (काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न) महोदयने अपने श्रीराधाकृष्णजीके मन्दिर प्रांगणमें श्रीराधाष्टमीके दिन सन्ध्याके समय एक महती सभाका आयोजन किया। उक्त सभामें परमाराध्यतम श्रील

गुरुदेवने हिन्दी भाषामें शब्दब्रह्मकी उपादेयता एवं शब्द-सामान्यकी हेयताका प्रतिपादन करते हुए एक सुसिद्धान्तपूर्ण भाषण दिया। वेदोंके प्रतिपाद्य श्रीहरिनाम ही शब्दब्रह्म हैं। निखिल वेदादि शास्त्रोंमें पारङ्गत भगवत्-अनुभूतिसम्पन्न सद्गुरु सत्शिष्यके शुद्ध कानके माध्यमसे अप्राकृत शब्दब्रह्मको प्रदान करते हैं। यह शब्दब्रह्म कण्ठ, तालु आदिके माध्यमसे वायु विलोड़नके द्वारा उत्पन्न नहीं होता, बल्कि—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

शब्दब्रह्मरूप श्रीहरिनाम मनुष्यके जड़-इन्द्रियके ग्राह्य नहीं है। सेवोन्मुख साधकोंके शुद्ध इन्द्रियोंपर वे स्वयं आविर्भूत होते हैं। भक्तिरसामृत-सिन्धुमें भी ऐसा ही कहा गया है। श्रीनामका स्वरूप ऐसा बतलाया गया है—

नामश्चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोः॥
(भ॰र॰सि॰ पू॰ वि॰ २ लहरी १०८)

श्रीकृष्णनाम चिन्तामणि-स्वरूप तथा स्वयं कृष्णचैतन्य-रसविग्रह, पूर्ण, मायातीत एवं नित्यमुक्त हैं। क्योंकि नाम एवं नामीमें भेद नहीं है। सच्चिदानन्द रसमय तत्त्व एक अद्वयवस्तु हैं। वे अद्वयतत्त्व ही विग्रह और नाम दो रूपोंमें आविर्भूत होते हैं। शब्दब्रह्मकी सेवाके द्वारा ही—शुद्ध नामसङ्कीर्त्तनके द्वारा ही जीव अपने शुद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर नित्यकालके लिए युगल सेवामें तत्पर हो सकता है।

ग्रन्थोंमें देखकर अथवा सद्गुरुके आश्रयके बिना कण्ठ, तालु, दन्त आदिके योगसे वायु बिलोड़नके द्वारा जो शब्द निकलते हैं उसे शब्द-सामान्य कहते हैं। इस शब्द-सामान्यके द्वारा बद्धजीवोंका विशेष कल्याण नहीं होता। सत्-शास्त्रोंमें शब्दब्रह्मके सम्बन्धमें ही प्रचुर महिमा कही गयी है। प्रसङ्गवशतः उन्होंने वेदान्त-दर्शन एवं अन्यान्य प्रमाणोंके द्वारा शब्दप्रमाणके वैशिष्ट्य तथा श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया। तदनन्तर जयपुरके प्रसिद्ध श्रीगोविन्ददेव मन्दिरके महन्तजीके अत्यन्त आग्रहपर वहाँके श्रीमन्दिरमें आयोजित विद्वत् सभामें श्रीराधातत्त्व, श्रीकृष्णतत्त्व

तथा श्रीराधाकृष्ण युगललीलाकी चमत्कारिताके सम्बन्धमें एक ओजस्वी भाषण दिया। श्रील आचार्यदेवके शास्त्रीय सिद्धान्तपूर्ण अभिनव विचारोंको सुनकर श्रोतृमण्डली अत्यन्त आकृष्ट हुई। श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं उनके अनुगत वैष्णव आचार्योंके विचार गम्भीर एवं सुसिद्धान्त पूर्ण हैं, आज इस तत्त्वको उन लोगोंने कुछ-कुछ समझा।

धीरे-धीरे सारे जयपुरमें यह बात फैल गयी कि श्रीनवद्वीपधामसे एक बड़े दार्शनिक विद्वान एवं सिद्धान्तविद् गौड़ीय वैष्णव आचार्य आये हुए हैं। उस समय जयपुर महाराजा संस्कृत कालेजके अध्यक्ष महामहोपाध्याय श्रीचन्द्रशेखर द्विवेदी व्याकरणाचार्य, सांख्य-योग-वेदान्ततीर्थ थे। बादमें ये शङ्कर सम्प्रदायमें संन्यास ग्रहणकर श्रीगोवर्धन मठ, पुरीके शङ्कराचार्यके पदपर आसीन हुए थे। उन्होंने उक्त कॉलेजमें एक बृहत् विद्वत् धर्मसभाका आयोजन किया तथा उसमें गौड़ीय वेदान्त समितिके आचार्यदेवको बड़े ही सम्मानसे आमन्त्रित किया। उस महती सभामें विभिन्न कॉलेजोंके प्रोफेसर, विद्यार्थीमण्डली तथा शहरके गणमान्य श्रद्धालु नागरिक भी उपस्थित थे। आचार्यदेवने अपने विद्वत्तापूर्ण भाषणमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही अक्षरब्रह्म हैं, वेदादि शास्त्रोंके प्रमाणोंसे इसका प्रतिपादन किया। तत्पश्चात् "मानव जीवनका कर्त्तव्य" तथा वर्त्तमान गणतन्त्रकी गणेशसे तुलना करके वेदान्तसूत्रके 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्' आदि सूत्रोंके द्वारा निराकारवादका खण्डनकर ईश्वरके साकारत्वका प्रतिपादन किया। भक्त और भगवान् काल और स्थानकी सीमाके अतीत हैं और ऐसा होनेपर भी नित्य वर्त्तमान हैं, इस सम्बन्धमें भी मर्मस्पर्शी विचार प्रकट किया।

सभाके अन्तमें कॉलेजके प्रिंसीपल महोदयने श्रील आचार्यदेवकी वैदान्तिक विचारधाराकी भूयसी प्रशंसा करते हुए उन्हें विशेष धन्यवाद दिया। उन्होंने छात्रों एवं मनुष्य समाजको श्रील आचार्यदेवके द्वारा दिये गये उपदेशोंको ग्रहण करनेका निर्देश भी दिया। उन्होंने सभी सम्प्रदायोंकी एक मिलित सभाका आयोजन करनेकी अभिलाषा व्यक्त की, जिसमें अन्यान्य वेदान्त भाष्योंके सहित गौड़ीय वेदान्त भाष्यका तुलनामूलक विचार श्रवण किया जा सके।

जयपुरमें शुद्धभक्तिके प्रचारकार्यमें सब प्रकारसे सेवाका भार ग्रहण कर सेठ सोमीलालजी, श्रीओमप्रकाश व्रजवासी साहित्यरत्न, लक्ष्मी मोटर कम्पनीके सत्त्वाधिकारी श्रीजगदीश प्रसादजी गुप्ता विशेष धन्यवादके पात्र हैं।

श्रीसमिति द्वारा परिचालित श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें सभापति महाराजकी शुभेच्छा

"श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने १९५७ ई॰ में बोसपाड़ा लेन, बागबाजार, कलकत्तामें श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके नामसे एक संस्कृत शिक्षाकेन्द्रकी स्थापना की है। वर्त्तमान विश्वविद्यालयोंमें छात्रोंको आवश्यक रूपसे संस्कृत भाषाकी शिक्षा नहीं दी जाती। विश्वविद्यालयोंमें इस विषयमें कोई उपयुक्त ध्यान नहीं दिया जाता। यदि देवभाषाके प्रति ऐसी ही अवज्ञा चलती रही तो भारतीय संस्कृतिके प्राणस्वरूप भगवत्-चिन्ताधारा कुछ ही दिनोंमें लुप्त हो जायेगी, इसमें कोई सन्देहकी बात नहीं।"

बँगला-साहित्य संस्कृत-साहित्यकी एकान्त अनुगामिनी होनेके कारण समग्र भारतमें सर्वोत्तम भाषाके रूपमें आदृत होती चली आ रही है। किन्तु दुःखका विषय है आज बँगला भाषाको संस्कृत भाषाके आनुगत्यसे विच्छिन्न कर दिया गया है। वर्त्तमान नास्तिक समाज बङ्गालमें हिन्दूधर्मको उखाड़ फेंकना चाहता है। क्योंकि वे इस बातको अच्छी तरहसे जानते हैं कि जब तक बँगला भाषा संस्कृत दैव भाषाका आनुगत्य करती रहेगी तब तक हिन्दूधर्मका विनाश सम्भव नहीं है। इसीलिए आजकल विश्वविद्यालयके कर्त्तागण बँगला भाषाको संस्कृत साहित्य और व्याकरणसे पृथक् कर बँगला भाषाका राविन्द्रीयकरण करना चाहते हैं। राविन्द्रीयकरण भाषामें अनावश्यक रूपसे संयुक्त अक्षरोंको हटाकर इसे रसोईघरमें स्त्रियोचित भाषा बनायी गयी है। इस चिन्तास्रोतके मूलमें संस्कृत भाषाके प्रति अनादर तथा भारतीय वेद उपनिषद् और पुराण आदि चिन्ताधाराके प्रति अवज्ञा समझनी चाहिये।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने बहुत दिनोंसे बङ्गाल ही नहीं, पूरे भारतकी ऐसी दुरवस्थाकी चिन्ताकर संस्कृत शिक्षाके प्रसारके लिए उक्त श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीको पहले चुँचुड़ामें स्थापित किया और अब इसे श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें स्थानान्तरित किया गया है। इसकी सुचारु रूपसे परिचालनाके लिए श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे निम्नलिखित व्यक्तियोंकी एक समितिका गठन किया गया है—

(१) ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी परिव्राजकाचार्यवर्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी—सभापति

(२) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज—सम्पादक

(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज—सदस्य

(४) त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज—सदस्य

(५) श्रीयुत शचीन्द्र मोहननन्दी (चेयरमेन नवद्वीप नगरपालिका)—सदस्य

(६) श्रीयुत जितेन्द्रनाथ पंचतीर्थ—सदस्य

(७) प॰ श्रीनिमाइचरण व्याकरणतीर्थ—सदस्य

(८) प॰ श्रीयुत सुरेशचन्द्र राय, व्याकरणतीर्थ—सदस्य

(९) प॰ श्रीब्रजानन्द ब्रजवासी—सदस्य

पिछले वर्षोंसे उक्त चतुष्पाठीसे बहुत-से विद्यार्थी बंगीय संस्कृत साहित्य परिषदमें परीक्षा देकर बड़े कृतित्वके साथ उत्तीर्ण हुए हैं। इस वर्ष माननीय श्रीजितेन्द्र नाथ पंचतीर्थ (काव्य-व्याकरण-पुराण-वेदान्त-वैष्णव-दर्शन-तीर्थ) महोदयकी अध्यापकतामें उक्त चतुष्पाठी पूर्ण उद्यम और उत्साहके साथ परिचालित हो रही है। कुछ ही दिनोंमें श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी सारे नवद्वीपमें बड़ी प्रशंसित हुई है।

इस वर्ष छात्रोंकी संख्यामें वृद्धि होनेसे प॰ निमाई चरण व्याकरणतार्थ महाशयको भी अध्यापकके रूपमें नियुक्त किया गया है। इस वर्ष इस चतुष्पाठीसे सात विद्यार्थियोंने आद्य, मध्य और उपाधिकी परीक्षा दी है। यहाँ काव्य, व्याकरण और वेदान्तका पठन-पाठन चल रहा है। हम संस्कृत विद्यार्थियोंका सादर आह्वान कर रहे हैं कि वे इस आदर्श चतुष्पाठीके सुयोग्य अध्यापकोंकी सहायतासे संस्कृत भाषाकी शिक्षा ग्रहण करें। मैं यह भी निवेदन कर रहा हूँ कि इस टोलमें श्रीहरिनामामृत

व्याकरणकी विशेष रूपसे शिक्षा दी जाती है। श्रीहरिनामामृत व्याकरणके विद्यार्थियोंको यहाँपर वासस्थान और भोजनकी सुविधा भी उपलब्ध है। ऐसे विद्यार्थी चतुष्पाठीके सम्पादक त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त वामन महाराजके समीप अपनी योग्यताके प्रमाणपत्रके साथ आवेदन पत्र भेज सकते हैं।

श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके सम्बन्धमें टोल परिदर्शकका मन्तव्य

"आज श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीका परिदर्शन किया। परिदर्शनके समय दो अध्यापक, सम्पादक और दस छात्र उपस्थित थे। चतुष्पाठीमें वर्त्तमान छात्र संख्या बारह है। साधारणतः इस चतुष्पाठीमें काव्य, हरिनामामृत व्याकरण, वेदान्त और वैष्णव-दर्शन आदि शास्त्रोंका अध्ययन एवं अध्यापन होता है। प्रधानाध्यापक महाशय पञ्चतीर्थ हैं। वे निष्ठाके साथ टोलमें अध्यापन करते हैं। छात्र संख्यामें वृद्धि होनेके कारण इस टोलमें एक और सहकारी अध्यापककी नियुक्ति की गयी है।

"इस चतुष्पाठीमें बारह-तेरह आवासी छात्र हैं। रजिस्टरमें ऐसा देखा। यह आनन्द और गौरवका विषय है। परिचालक समितिके द्वारा सरकारी अनुमोदनके लिए बहुत दिन पहले आवेदन पत्र दिये जानेपर भी आज तक अनुमोदन नहीं मिला।

"विगत वर्षमें चतुष्पाठीका परीक्षाफल मन्द नहीं रहा है। चतुष्पाठीका खातापत्र आदि यथावत् रूपमें ठीक रखा गया है। मैं इस चतुष्पाठीकी उन्नतिकी कामना करता हूँ।"

स्वा॰ श्रीनलिनीकान्त तर्कस्मृतितीर्थ

पश्चिम बंग टोल परिदर्शक (अतिरिक्त)

१९/१२/१९६३

श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय

श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी स्थापना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीपमें १५ दिसम्बर, १९६२ ई॰ को श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी स्थापना हुई है। इस चिकित्सालयमें होमियोपैथिक, बायोकैमिक एवं एलोपैथिक चिकित्सा होती है। इस चिकित्सालयकी परिचालनके लिए निम्नलिखित सदस्योंको लेकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अधीन एक उपसमितिका गठन किया गया है—

(१) ॐ विष्णुपाद परमहंसस्वामी परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी—सभापति

(२) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

(३) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

(४) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

(५) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज

(६) त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज

(७) श्रीयुत व्रजानन्द दास व्रजवासी L.M.F.—सम्पादक (Regd. No. 8134 Cal.)

(८) श्रीयुत अद्वैत दास व्रजवासी

(९) श्रीकृष्णबन्धु भौमिक H.M.B.H.T.C. श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयके चिकित्सक

उक्त दातव्य चिकित्सालयके उन्मोचनके समय परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने सभापतिका आसन ग्रहण किया। उनके आदेशसे सब-कमेटीके सम्पादक डा॰ श्रीयुत व्रजानन्द व्रजवासी L.M.F. महोदयने 'गौड़ीय चिकित्सालय' नामक प्रबन्धका पाठ किया। तदनन्तर उक्त समितिके सभापति महोदयने इस चिकित्सालयके सम्बन्धमें एक विचारपूर्ण मनोज्ञ भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—"रामकृष्ण-मिशन, भारत-सेवाश्रम संघके चिकित्सालय एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय एक नहीं हैं। बाह्यतः रोगियोंको औषध वितरणकी दृष्टिसे एक ही जैसा प्रतीत होनेपर भी इन दोनोंके उद्देश्यमें आकाश-पातालका पार्थक्य है। मनुष्यको प्राकृत जड़ीय कर्मोंमें प्ररोचित करनेके लिए चेष्टा, सहायता एवं सहानुभूति लोगोंके बन्धनका कारण होती है। इसके विपरीत जीवमात्रको भगवत्-भजनमें अग्रसर करानेके लिए जो सहायता एवं सहानुभूति होती है वह संसार बन्धनको दूरकर भगवत्-राज्यमें प्रवेश करानेके लिए होती है। हम विशेष आनन्दके साथ सूचित कर रहे हैं कि थोड़े समयमें ही सारे नवद्वीप शहरमें इस दातव्य चिकित्सालयकी विशेष ख्याति हुई है। सुयोग्य एवं अभिज्ञ चिकित्सकोंके द्वारा चिकित्सा होनेके कारण प्रतिदिन दूर-दूरसे अधिक संख्यामें रोगियोंका समागम हो रहा है।"

श्रीनवद्वीपधामकी परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवके मध्य नवनिर्मित श्रीमन्दिरमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा महोत्सव

इस वर्ष १९६३ ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके द्वारा परिचालित श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव विपुल समारोहके साथ सम्पन्न

हुए हैं। परिक्रमाके तृतीय दिवस ७ मार्चको श्रीमन्दिर-प्रतिष्ठा एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठित होनेके कारण सारे मठका वातावरण अपूर्व उल्लाससे भरा हुआ था। श्रीमन्दिर नाट्यमन्दिर, विशेषतः श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाकी वेदी, कदली स्तम्भ, पुष्पमाल्य, आम्रपल्लव आदिके तोरणों एवं वन्दनवारोंसे सुसज्जित हो रहे थे। श्रीविग्रह-प्रतिष्ठाके समय वेदीके चारों ओर संन्यासीवृन्द वेदचतुष्ट्य, उपनिषद्, वेदान्त-दर्शन (गोविन्द-भाष्य), श्रीमद्भागवत, श्रीगीता, विष्णुसहस्रनाम, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि धर्म-शास्त्रोंका सुमधुरकण्ठसे पाठ कर रहे थे। बीच-बीचमें महासङ्कीर्त्तनध्वनि, शङ्खध्वनि एवं महिलाओंकी हुलुध्वनिसे दिग्मण्डल मुखरित हो रहा था। वैष्णवहोमकी परमपवित्र सुगन्धित धूमराशि एवं उच्च सङ्कीर्त्तनकी महाप्रभावशाली ध्वनि दिग्‌दिगन्तको पवित्र कर रही थी। विभिन्न मठाचार्यों, त्रिदण्डिसंन्यासियों तथा सिद्धान्तविद् विद्वानोंके संस्कृत, हिन्दी, बंगला, आसमिया, उड़िया प्रभृति भाषायोंके ओजस्वी भाषण, पाठ और कीर्त्तन महोत्सवको प्राणवन्त बना रहे थे।

श्रीमन्दिर एवं श्रीविग्रह प्रतिष्ठा महोत्सवके लिए आज तृतीय दिवसकी परिक्रमा स्थगित रखी गयी थी। ब्राह्ममुहूर्त्तमें मङ्गलारति, सङ्कीर्त्तन तथा बैण्ड पार्टीके विविध वाद्ययन्त्रों एवं शहनाईकी मधुर ध्वनि एक साथ मिलकर आजके माङ्गलिक अनुष्ठानकी घोषणा कर रही थी। प्रतिष्ठा एवं अभिषेकके लिए भगवती भागीरथीसे जल लानेके लिए श्रील आचार्यदेवके स्वयं अपने हाथोंमें कलश लेकर प्रस्तुत होनेपर मठवासी संन्यासी, ब्रह्मचारी तथा हजारों श्रद्धालु यात्री भी अपने हाथोंमें कलश लेकर प्रस्तुत हुए। सबके आगे बैण्डपार्टी तत्पश्चात् मठवासियोंका सङ्कीर्त्तन दल, तदनन्तर शिरपर कलश लिए परमाराध्य श्रील गुरुदेव एवं हजारों श्रद्धालु लोग महोल्लासपूर्वक सङ्कीर्त्तन करते हुए भगवती भागीरथीके पावन तटपर उपस्थित हुए। पुनः श्रीजाह्नवीदेवीका षोडशोपचारसे पूजनकर अपने-अपने कलशोंमें पवित्र गङ्गाजल भरकर पूर्वोक्त विधिके अनुसार बड़े उल्लाससे मठ प्रांगणमें यज्ञवेदीके निकट उपस्थित हुए।

श्रील आचार्यदेवके इच्छानुसार त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजजीने इस अनुष्ठानका पौरोहित्य किया। त्रिदण्डिस्वामी भक्तिवेदान्त

नारायण महाराजजीने श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा कार्यमें उनकी सब प्रकारकी सहायता की, श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजी प्रतिष्ठाकार्यकी व्यवस्था कर रहे थे तथा श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजी मुख्य-मुख्य अतिथियोंकी देखभाल कर रहे थे। श्रीविग्रहोंको स्नान-मण्डपमें पधराया गया। सर्वप्रथम मन्त्रपूत दूध, दधि, घृत, मधु, चीनीके द्वारा स्नान करानेके पश्चात् सर्वौषधि, तीर्थोंके जल, विविध रत्नोंके जल आदिसे सुवासित १०८ कलशोंसे उनका अभिषेक किया गया। उस समय वेदज्ञ पण्डितगण पुरुषसूक्तका पाठ कर रहे थे। श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराज प्रमुख संन्यासीगण वेदादि प्रस्थान चतुष्ट्यका मधुरस्वरसे पारायण कर रहे थे। पास ही यज्ञवेदीमें त्रिदण्डिस्वामी भक्तिप्रमोद पुरी महाराज(१) आदि वैदिक मन्त्र उच्चारण पूर्वक यज्ञाग्निमें आहुति प्रदान कर रहे थे। नाट्यमन्दिर एवं मन्दिरके चारों ओर अगणित व्यक्ति अपलक नेत्रोंसे महाभिषेकका दर्शन कर रहे थे। अभिषेकके पश्चात् श्रीविग्रहोंको श्रीमन्दिरके प्रकोष्ठमें पधराया गया। श्रील आचार्यदेवने स्वयं श्रीविग्रहोंकी प्रतिष्ठाका अवशेष कार्य सम्पन्न किया।

इसी समय यतिराज श्रील भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज आदि संन्यासियोंके शुभागमन करनेपर उन लोगोंकी माल्यचन्दन आदिसे अभ्यर्थनाकर उन्हें नाट्यमन्दिरके सुसज्जित मञ्चपर बैठाया गया। पूज्यपाद श्रील श्रीधर महाराजने श्रीगौड़ीय मठका अवदान तथा उसके दार्शनिक विचारोंके श्रेष्ठत्वके सम्बन्धमें एक सारगर्भित भाषण प्रदान किया। तत्पश्चात् श्रील आचार्यदेवने उन्हें आदरपूर्वक श्रीमन्दिरके द्वारदेशमें ले जाकर उनसे द्वारका उद्घाटन करवाया। द्वारका उद्घाटन करते ही हजारों लोगोंकी जयध्वनि, हरिध्वनि, महिलाओंकी हुलुध्वनि, मृदङ्ग, करताल सहित सङ्कीर्त्तन ध्वनि, शङ्खध्वनिकी सम्मिलित ध्वनिसे दिग्-दिग् प्रकम्पित हो उठा। श्रीमन्दिरके द्वारोद्घाटनके समय श्रीमद्भक्तिसौध आश्रम महाराज, श्रीमद्भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज तथा सायंकालमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी

---

(१) श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराजके संक्षेप जीवनचरित्रके लिए परिशिष्टमें ??? पृष्ठपर देखें।

महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज अपनी पूरी परिक्रमा पार्टीके साथ उपस्थित हुए।

इस प्रकार श्रीमन्दिरके मध्य प्रकोष्ठमें श्रीमन्महाप्रभु एवं श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी, दक्षिण प्रकोष्ठमें धामेश्वर श्रीकोलदेव (वराहदेव) एवं लक्ष्मीदेवी तथा बाएँ प्रकोष्ठमें जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अर्चाविग्रहकी प्रतिष्ठा हुई। श्रील आचार्यदेवके माध्यमसे उन्होंने विश्ववासियोंको दर्शन दिया। तत्पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी भक्तिदेशिक आचार्य महाराजने श्रीविग्रहोंका अर्चन, भोगराग तथा आरती सम्पन्न की। भोग-आरतीके पश्चात् सहस्र-सहस्र व्यक्तियोंको महाप्रसाद वितरण किया गया। श्रीविग्रहोंकी अपूर्व रूपमाधुरीसे मुग्ध सभी दर्शकवृन्दको एक स्वरसे यह कहते हुए सुना गया कि हमने आज तक ऐसा सुन्दर श्रीविग्रह कहीं नहीं देखा।

परमाराध्य श्रील आचार्यदेवने प्रसङ्गके अनुसार यह घोषणा की—"श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिने श्रीनवद्वीपधाममें गगनचुम्बी सर्वोत्तम श्रीमन्दिर स्थापनकर उसमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदबिहारीजीके साथ नवद्वीपधामके अन्तर्गत कोलद्वीप धामेश्वर श्रीकोलदेव (वराहदेव) विग्रहकी प्रतिष्ठाकर अधर्म, कुधर्म, विधर्म, अपधर्म तथा छलधर्म आदिका विनाश करनेके लिए व्रत ग्रहण किया है। बड़े-बड़े मन्दिरोंका निर्माण ही वाणी प्रचार नहीं है, वह अर्चनाङ्ग है। श्रीरूपानुगत्यमें कीर्त्तन-सेवाकी ही प्रधानता है। तथापि श्रीधाम नवद्वीपका यह सर्वोच्चतम श्रीमन्दिर और विराट् नाट्यमन्दिर केवल अर्चासेवाके प्रतिष्ठान नहीं हैं। यह भक्तिसिद्धान्त वाणी—वेदान्तकी उच्चतम कीर्त्तनाख्या भक्तिप्रचारका प्रतीक है। सिद्धान्त-वाणीका प्रचार करनेके लिए महाजनोंका अनुगत्य हृदयमें धारणकर मैंने श्रीगुरु मुखामृतद्रवसंयुक्त अप्राकृत शब्दब्रह्म श्रीनाम-सङ्कीर्त्तनके द्वारा ही इस मठ-मन्दिरकी भित्तिकी स्थापना की है। श्रीनामकीर्त्तनके माध्यमसे ही उक्त श्रीमन्दिर आदि निर्माणका कार्य परिचालित हुआ है तथा प्रतिष्ठा आदिके सभी शुभकर्म सुसम्पन्न हुए हैं।

परमाराध्य श्रील आचार्यदेवके गुणोंसे मुग्ध उनके एक सतीर्थने श्रीगौड़ीय पत्रिका प्रशस्ति शीर्षक प्रबन्धमें लिखा है—"श्रील प्रभुपादने

'यार मन्त्रे सकल मूर्तिते वैसे प्राण।' (चै॰भा॰आ॰ २/३०५) पयारकी विवृत्तिमें लिखा है कि श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें श्रीगौर-विहित महामन्त्रके उच्चारणके द्वारा ही श्रीविग्रहकी प्राणप्रतिष्ठा प्रचलित है। श्रीनामभजनके बिना अर्चा-विग्रहोंके दर्शनसे शिलाबुद्धि दूर नहीं होती। श्रीकृष्णचैतन्यदेवने 'कृष्ण वर्णं त्विषाकृष्णं' श्लोकके अवलम्बनसे जिस पूजा-विधानकी व्यवस्था दी है उसमें महामन्त्रके उच्चारण द्वारा ही सुष्ठु रूपसे श्रीविग्रहकी सजीव-पूजा विहित होती है। जहाँ पूजकोंकी अपनी आन्तरिक प्रीतिसे भगवत्-सेवा नहीं होती, अर्थादि अथवा कर्मानुष्ठानके बोधसे पूजा विहित होती है, वहाँ प्राणहीनकी पूजा होती है तथा वहाँ श्रीमूर्त्तिका प्राणहीन दर्शनमात्र होता है। याजक सूत्रसे या पूजक सूत्रसे श्रीगौरसुन्दर द्वारा कीर्त्तित 'हरे कृष्ण' महामन्त्र ही सप्राण पूजा है।"

श्रीनवद्वीपधामके अन्तर्गत कोलद्वीपमें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, आज गगनचुम्बी नौ शिखरविशिष्ट नव मन्दिर, सुविशाल नव नाट्यमन्दिर, नव सेवकखण्डसमूह, नव मुद्रणागार, नव विद्यामन्दिर (पराविद्यापीठ), नव दातव्य चिकित्सालयसे सुशोभित तथा सुदीर्घ प्रकारसे वेष्टित होकर नव शोभा धारण कर रहा है। वहाँके सेवक-मण्डलीने श्रीगौर-भक्तिविनोद-वाणीकी सेवामें आत्मोत्सर्ग किया है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत मूल-प्रचारकेन्द्र और उसके अन्तर्गत सभी मठोंके संस्थापक परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराजके भजनविज्ञ भक्तोंने सम्मिलित होकर श्रीश्रीरूपानुग-गुरु-परम्पराका अनुसरणकर नव-मन्दिरमें श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-विनोदबिहारीजी एवं श्रीवराहदेव श्रीविग्रहोंका प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न किया है, उससे श्रीनवद्वीपधाममें एक अभिनव परिवेशकी सृष्टि हुई है।"

श्रीधाम परिक्रमाके तृतीय दिवस सन्ध्याके समय श्रीहरिकीर्त्तन नाट्यमन्दिरमें एक विशाल धर्मसभाका आयोजन किया गया। श्रील आचार्यदेवकी इच्छासे यति प्रवर त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजने सभापतिका आसन अलंकृत किया। त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज और त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसौरभ भक्तिसार महाराजने भाषण दिया। तदनन्तर श्रील आचार्यदेवने श्रीविग्रह-तत्त्वके विषयमें वैष्णव एवं मायावादी सम्प्रदायमें दार्शनिक

मतभेद तथा तत् प्रकाशित श्रीविनोदबिहारी मूर्त्ति कृष्णवर्णकी क्यों नहीं है? इसके लिए—"श्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम्" की व्याख्या द्वारा अपने विचारोंको व्यक्त किया। वक्तृताके उपसंहारमें उन्होंने श्रीमन्दिर निर्माणके सेवाग्रणी परलोकगत श्रीगिरिधारी दासाधिकारी तथा नाट्य-मन्दिर निर्माणके सम्पूर्ण व्ययभारको वहन करनेवाले श्रीहरिपद दासाधिकारीके सेवा-सौन्दर्यका कीर्त्तन किया। सबके अन्तमें सभापति श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजजीने एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया।

श्रीधाम परिक्रमाके प्रथम दिवस गोद्रुमद्वीपमें स्थित श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी भजनस्थली, सुवर्णविहार, नृसिंहपल्ली, हरिहरक्षेत्र और हंसवाहन आदिका दर्शन किया गया। द्वितीय दिवस यात्रीगण समुद्रगढ़ चम्पकहट्ट, विद्यानगर, मोदद्रुमद्वीपकी परिक्रमाकर मठमें लौट आये। चतुर्थ दिवस प्रौढ़ामाया, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी समाधि एवं रुद्रद्वीपकी परिक्रमा सम्पन्न हुई। इसी दिन सन्ध्याके समय एक विशेष सभाका अधिवेशन हुआ। श्रील आचार्यदेवको सभापति वरण किये जानेके पश्चात् पण्डित-प्रवर श्रीयुत गोपेन्द्र भूषण सांख्यतीर्थ महोदय प्रधान अतिथिके रूपमें वरण किये गये। श्रील गुरुदेवकी इच्छानुसार त्रिदण्डिस्वामी भक्तिदेशिक आचार्य महाराजजीने सर्वप्रथम संस्कृत भाषामें श्रीमन्महाप्रभुकी स्वयं भगवत्ताके सम्बन्धमें शास्त्र प्रमाण पुरःसर मनोज्ञ भाषण दिया। तदनन्तर पण्डित प्रवर श्रीयुत नित्यानन्द पञ्चतीर्थ महोदयने भी संस्कृत भाषामें साधुसङ्गकी महिमाका कीर्त्तन किया। तदुपरान्त प्रधान अतिथि सांख्यतीर्थ महोदयने श्रीकोलदेव विग्रहकी प्रतिष्ठाका उल्लेखकर कहा कि आज श्रील केशव महाराजजीने यहाँपर श्रीकोलदेवकी श्रीमूर्त्तिकी प्रतिष्ठाकर वास्तवमें इसे कोलद्वीपकी पूर्ण प्रतिष्ठा कर दी। आज मेरे हृदयमें प्राचीन कोलदेवकी स्मृति जागृत हो रही है। उन्होंने प्रसङ्गवशतः श्रील सरस्वती प्रभुपादकी भूयसी प्रशंसा की।

परिक्रमके पञ्चम दिवस अन्तर्द्वीपमें श्रीईशोद्यान, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भावस्थली श्रीयोगपीठ, श्रीचैतन्यमठ, श्रील प्रभुपाद एवं श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीकी समाधि, चाँदकाजीकी समाधि, सीमन्तद्वीप (सिमुलिया ग्राम) आदिका दर्शनकर श्रीजयदेव पाटमें मध्याह्नके

समय महाप्रसाद सेवन कराया गया। वहाँसे परिक्रमा पार्टी श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ लौट आयी। रात्रिकालीन धर्मसभामें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराजके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवारिधि पुरी महाराज तथा अन्तमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने हिन्दी भाषामें एक सुन्दर भाषण दिया।

परिक्रमाके षष्ठ दिवस श्रीगौराविर्भावके उपलक्ष्यमें उपवास किया गया तथा दिनरात श्रीचैतन्यभागवत पारायण एवं श्रवण-कीर्त्तन उल्लासपूर्वक व्यतीत हुआ। सन्ध्याके समय श्रीगौराविर्भावके पश्चात् त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिजीवन जनार्द्दन महाराजके सभापतित्वमें त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज आदि संन्यासियोंने श्रीमन्महाप्रभुके अवदान-वैशिष्ट्यके विषयमें भाषण दिया।

सप्तम दिवस दोपहरमें दीक्षाप्राप्त भक्त तथा संन्यास एवं बाबाजीवेश ग्रहण करनेवालोंके उद्देश्यसे यज्ञ-होम आदिकी क्रिया सम्पन्न हुई। निमन्त्रित एवं अनिमन्त्रित २०-२५ हजार श्रद्धालुओंको विचित्र महाप्रसादका सेवन कराया गया।

सन्ध्याकालीन धर्मसभामें श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें पिछले दिन संन्यास एवं बाबाजी वेश प्राप्त त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त ऊद्‌र्ध्वमन्थी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ति महाराज तथा श्रीमद् रघुनाथ दास बाबाजी महाराजके भाषणके पश्चात् श्रीरसिकमोहन ब्रजवासी, पण्डित निमाई चरण व्याकरणतीर्थ तथा हिन्दी भाषामें श्रीहरिदास ब्रजवासीने भाषण दिया। तत्पश्चात् श्रील प्रभुपादके प्रवीण संन्यासी त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रकाश अरण्य महाराजने प्रधान अतिथिके पदसे एक मनोज्ञ भाषण प्रदान किया। इस प्रकार सप्तदिवस व्यापी श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौरजन्मोत्सवका अनुष्ठान निर्विघ्न एवं परम उल्लासके साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

परमाराध्यतम श्रीआचार्यकेसरीने अपने गुरुपादपद्म श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी मनोऽभीष्ट सेवा-समृद्धिके लिए कुलिया नगर (वर्त्तमान नवद्वीप शहर) में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की। आज इस मठकी भूमिमें विशाल प्राचीनके भीतर गगनचुम्बी नौ शिखरविशिष्ट दिव्य मन्दिर विराजमान है। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने एक योजनाबद्ध परिकल्पनाके अनुसार सुदार्शनिक सिद्धान्तकी भित्तिपर इस मठ और मन्दिरका नवनिर्माण कराया है। हम संक्षेपमें इस मठका विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

श्रीनरहरि तोरण

सर्वप्रथम हम श्रीमठके प्रधान प्रवेश-द्वार 'श्रीनरहरि तोरण' से मठ प्रांगणमें प्रवेश करते हैं। इस प्रवेश-द्वारके बाहर ऊपरमें 'परम विजयते

श्रीनरहरि तोरण
(श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका मुख्य प्रवेश द्वार)

श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्' तथा 'कीर्तनीय सदा हरिः' उत्कीर्ण है। इसके द्वारा श्रील गुरुदेवने श्रीमन्महाप्रभुके उपदिष्ट शिक्षाष्टकके चरम उपदेश श्रीनामसङ्कीर्त्तनकी विजय वैजयन्ती फहरायी है। श्रीहरिनामका कीर्त्तन ही साधन-भजनका प्राण घोषित हुआ है। श्रीभक्तिमन्दिरमें प्रवेश करनेके लिए सर्वप्रथम तद्रूप वैभव एवं उपास्यदेवका मङ्गलाचरण तथा जयगानकी रीतिकी घोषणा श्रीचैतन्यलीलाके व्यासदेवकी उक्ति भी वहाँ लिपिबद्ध है—

'जय नवद्वीप-नवप्रदीप-प्रभावः पाषण्ड-गजैसिंहः।' यहाँ प्रसङ्गवशतः यह उल्लेख करना उचित है कि श्रील आचार्यदेवके अन्तरङ्ग सतीर्थ श्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजजीने अस्मदीय परमाराध्य श्रील गुरुदेवको पाषण्डगजैकसिंहकी उपाधि दी थी। श्रील गुरुदेवने श्रीनरहरि तोरण नामकरणके द्वारा आश्रय वा सेवाविग्रह (श्रीनरहरि ब्रह्मचारी) और विषय या सेव्यविग्रह (श्रीनृसिंहदेव) इन दोनों ही तत्त्वका युगपत् निर्देश दिया

श्रीमदनमोहन तोरण
(श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका पृष्ठ द्वार)

है। तोरणद्वारके ऊपर दोनों ओर वैष्णवअपराधरूप मत्त गजराजके मस्तकपर महाविक्रमशाली सिंहकी मूर्त्ति अङ्कित है। नीचेकी ओर सम्मुखभागमें द्वारपालके रूपमें एक ओर श्रीजगाई, दूसरी ओर श्रीमधाई तथा भीतरकी ओर श्रीदेवानन्द पण्डित एवं श्रीवासुदेव विप्रकी श्रीमूर्त्ति स्थापित है, जो कुलिया अपराधभंजन पाटकी कीर्त्तिकी घोषणा कर रहा है। श्रीदेवानन्द पण्डितने श्रीवास पण्डितके चरणोंमें अपराध किया था। किन्तु बादमें पुण्डरीक विद्यानिधिकी कृपासे अपने द्वारा कृत अपराधको हृदयङ्गम कर श्रीवास पण्डितके चरणोंमें क्षमा माँगनेपर श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी उन्हें क्षमा कर दिया। श्रीनित्यानन्द प्रभुकी कृपासे जगाई और मधाई जैसे महापाखण्डी व्यक्ति भी परम भक्त हो गये। धामेश्वर श्रीकोलदेवकी कृपासे वासुदेव विप्रने वहींपर श्रीगौरसुन्दरका दर्शन प्राप्त किया था।

सप्तखण्डमय श्रीमठ

श्रीनवद्वीपधामके नौ द्वीपोंमें श्रीकोलद्वीप एक अन्यतम द्वीप है। यह गङ्गानदीके पश्चिम तटपर विराजमान है। श्रीभक्तिरत्नाकर एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा और नवद्वीप-भाव-तरङ्गके अनुसार वृन्दावनके बारह वन कुछ परिवर्तित क्रमसे श्रीनवद्वीपके नौ द्वीपोंमें विराजमान हैं। इस कोलद्वीपको साक्षात गिरिराज गोवर्धन कहा गया है। पास ही भागीरथी-पुलिनको यमुना-पुलिनकी रासस्थलीके रूपमें वर्णन किया गया है। रसिक भक्तलोग रासस्थलीके रूपमें ही इस स्थानका दर्शन करते हैं। इस रासस्थलीसे लगे हुए दक्षिण दिशामें ऋतुद्वीप अभिन्न राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड हैं तथा उत्तरमें बहुलावन स्थित है। परमाराध्यतम आचार्यकुल चूड़ामणि श्रील गुरुदेवने शास्त्रोल्लिखित इन सबका विचारकर ही इस स्थानपर इस मठकी स्थापना की है। श्रीनरहरि तोरणसे श्रीमठ प्रांगणमें प्रवेश करनेपर हम इस विशाल प्राचीन वेष्टित श्रीमठका दर्शन करते हैं। श्रीगुरुदेवने इस मठको सात खण्डोंमें विभक्तकर उनका दार्शनिक सिद्धान्तगत नामकरण किया है—

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

(१) परमार्थखण्ड—मुद्रणयन्त्र या छापाखाना आदि। इस खण्डमें वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत आदि भगवान्‌के शाब्दिक अवतार—भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन होता है। इन ग्रन्थोंके माध्यमसे सारे विश्वमें भगवद्-भक्तिका प्रचार होता है। इसलिए इसे बृहत्-मृदङ्ग भी कहते हैं। श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीने मुद्रणयन्त्रको बृहत्-मृदङ्ग तथा शुद्धभक्तिके प्रचारक त्रिदण्डि संन्यासियोंको जीवन्त-मृदङ्गकी संज्ञा दी थी। जीवन्त-मृदङ्गगण अपनी सामर्थ्यके अनुसार देश-विदेशमें श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्ध प्रेमधर्मकी वाणीका प्रचार करते हैं। इसीलिए हमारे आराध्यदेव ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने बृहत्-मृदङ्ग एवं

श्रीगौड़ीय पत्रिका प्रेस

श्रीमन्दिरमें सेवित श्रीराधाविनोदविहारी एवं श्रीमन्महाप्रभु

श्रीमन्दिरमें सेवित श्रीप्रभुपाद

श्रीमन्दिरमें सेवित श्रीकोलदेव

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीकी भजनकुटी

जीवन्त-मृदङ्गकी सहायतासे "वैकुण्ठ वार्त्तावह", "श्रीगौड़ीय पत्रिका", "श्रीभागवत पत्रिका" तथा श्रीभक्तिसिद्धान्त वाणीके मूल ग्रन्थ वेदान्त, भागवत, गोस्वामी-ग्रन्थ आदिके प्रकाशन एवं प्रचारमें विशेष आग्रह प्रकाश किया है। इसी उद्देश्यसे उन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी एवं श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालयकी भी स्थापना की है।

(२) कीर्त्तनखण्ड—श्रीनाट्य-मन्दिर अथवा सभागृह जहाँ सदा-सर्वदा हरिसङ्कीर्त्तन, श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थोंका कीर्त्तन होता है। बड़ी-बड़ी धर्मसभाएँ होती है जिसमें महापुरुषोंके प्रवचन एवं भाषण होते हैं।

(३) उपास्यखण्ड—श्रील आचार्य चरणने नौ शिखरविशिष्ट श्रीमन्दिरका नामकरण नवधा-भक्ति मन्दिर किया है। इसके नौ शिखरोंके नाम क्रमशः श्रवणम्, कीर्त्तनम्, स्मरणम्, पादसेवनम्, अर्चनम्, वन्दनम्, दास्यम्, सख्यम्, आत्मनिवेदनम् हैं। श्रीमन्दिरका सर्वोच्च शिखर

आत्मनिवेदन है। इस शिखरके ऊपरमें सुदर्शनचक्रके मध्यमें स्थित वेणु समग्र विश्ववासियोंको 'कीर्तनीयः सदा हरिः' की घोषणा कर रहा है। इसका यह गम्भीर तात्पर्य है कि जगद्वासी इस सप्तजिह्व श्रीनामसङ्कीर्त्तन यज्ञमें—श्रीहरिकीर्त्तन मन्दिरमें एकत्रित हों—'आगच्छन्तु महाभागा नित्य कीर्त्तनमन्दिरे।' प्रत्येक शिखरोंके ऊपर श्रीब्रह्ममाध्व गौड़ीय वैष्णव तिलक दूरसे ही पथिकोंको विशुद्ध गौड़ीयके प्रति श्रद्धा आकर्षण करते हैं। श्रीमन्दिरके द्वितल प्रदेशके चार शिखरोंके भीतर चारों सत्-सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक श्रीलक्ष्मी, श्रीब्रह्म, श्रीरुद्र, श्रीचतुःसन तथा उनके पास ही उन-उन सम्प्रदायोंके चारों आचार्य श्रीरामानुज, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी तथा श्रीनिम्बादित्य आचार्य प्रतिष्ठित एवं सम्पूजित होकर साधन-भजन पिपासुओंको सात्त्वत सम्प्रदाय स्वीकार करनेकी अवश्य प्रयोजनीयताकी शिक्षा दे रहे हैं।

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठका एक दृश्य

द्वितल प्रदेशके चारों ओरके मन्दिरकी दीवारोंपर दशावतारोंकी श्रीमूर्त्ति प्रकाशित हुई हैं। ये दशावतार चेतनताके क्रमविकासके अनुसार भगवत्-अवतारोंके माध्यमसे आस्तिक्य दर्शनोंके क्रमोन्नतिका दिग्-दर्शन कराते हैं। श्रीमन्दिरके द्वितलके पश्चिम भागमें गुरु-गौड़ीयके निर्देशानुसार विधिमार्ग और रागमार्ग अर्थात् पाञ्चरात्रिकी एवं भागवतीय साधन-मार्गका प्रदर्शन हुआ है। श्रीमन्दिरके तृतीय मालाके पूर्वकी ओर सुरभी गाभीको आगेकर इन्द्रदेव श्रीगोविन्दके चरणोंमें क्षमा प्रार्थना कर रहे हैं। साथ ही सर्वविघ्न विनाशक श्रीनृसिंहदेवकी हिरण्यकशिपु-संहारलीला आसुरिक विचारवाले व्यक्तियोंके विरुद्ध विजयकी घोषणा एवं अपराधभञ्जन पाटकी महिमाको सूचित कर रही है।

श्रीमन्दिरके तृतीय प्रकोष्ठमें जगद्गुरु श्रील सरस्वती प्रभुपादकी श्रीमूर्त्ति-प्रतिष्ठा एवं पूजा-अर्चनकी नित्य व्यवस्थाके द्वारा श्रील गुरुदेवने अपनी गुरुसेवाके प्रति ऐकान्तिकी निष्ठा और आदर्शका प्रदर्शन किया है। उन्होंने लिखा है—"इस मठके श्रीमन्दिरमें मदीय गुरुपादपद्म श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद प्रतिष्ठित हैं। जगत्में आजकल बहुत-से परमहंस देखे जाते हैं, परन्तु विचार करनेपर देखा जाता है कि वे लोग इस महापुरुषके एक सामान्यतम अंशके भी योग्य नहीं हैं। तथापि वे जगत्के तत्त्वज्ञानहीन लोगोंके द्वारा आदृत हो रहे हैं। जिन्होंने इन महापुरुषकी चरणरेणुकी एक कणको भी प्राप्त किया है, उनकी जैसी योग्यता भी तथाकथित परमहंसोंमें नहीं है। इसीलिए बहुत-से लोग इन्हें परमहंसकुलचूड़ामणि भी कहते हैं। इसमें मुझे कोई विशेष आपत्ति नहीं है, किन्तु मेरा कथन है वे परमहंस कुलके स्वामी या पति हैं। परमहंसोंको भी शिक्षा देनेकी उनमें सामर्थ्य है। इसलिए उन्हें जगद्गुरु कहा गया है।

श्रील प्रभुपाद राधापक्षीय लोग हैं। इंलैण्ड, जर्मनी आदि सभी देशोंमें इस महापुरुषकी श्रील प्रभुपादके रूपमें प्रसिद्धि है। यहाँ सबसे पहले उनकी आरति होती है। समस्त विश्वमें इन महापुरुषकी आरति—सेवापूजा होनेकी एकान्त आवश्यकता है। इनकी आरति बन्द होनेपर समग्र विश्वका ध्वंस हो जायेगा, पृथ्वी रसातलमें चली जायेगी। पृथ्वीसे भक्तिधर्मका

लोप हो जायेगा। इसलिए विश्वके लोग उन्हें 'प्रभुपाद' सम्बोधन करते हैं।"

प्रथम प्रकोष्ठमें कोलदेव विराजमान हैं। वे सत्ययुगसे अपने एकान्त भक्त श्रीवासुदेव विप्र जैसे भक्तोंपर कृपा करते आ रहे हैं। श्रीमन्दिरमें उनकी नित्य सेवा-पूजा कोलद्वीपकी महिमाकी घोषणा कर रही है। 'कोल' शब्दसे ही कुलिया नामकी उत्पत्ति हुई है। आज भी कुलियादह, कोलेरगंज, कोलेर आमाद्, गद खालिर कोल, तेघरिर कोल, कुलिया नगर (वर्त्तमान नवद्वीप शहर) प्रभृति स्थलसमूह प्राचीन कुलियाके अंशके रूपमें विद्यमान हैं। इस स्थानको कुलिया पहाड़पुर भी कहा जाता है, क्योंकि यह भूमि पर्वतके समान ऊँची है। श्रील वराहदेवने सत्ययुगमें अपने परमभक्त श्रीवासुदेव विप्रको दर्शन देकर कहा था कि वे आगामी कलियुगमें श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्ति एवं हृदगत भाव अङ्गीकार कर इसी जगह श्रीगौराङ्गके रूपमें महौदार्यमय लीलाका प्रकाश करेंगे। गिरिराज गोवर्धनसे अभिन्न पादसेवनाख्य इस कोलद्वीपकी कृपा लाभ करनेके लिए सर्वप्रथम धामेश्वरकी कृपा प्रार्थना परम आवश्यक है। इनकी कृपासे ही श्रीमन्महाप्रभुकी औदार्यमयी लीलामें प्रवेश करनेका अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।

श्रीमन्दिरके द्वितीय प्रकोष्ठमें श्रीगौर-राधाविनोदबिहारी प्रतिष्ठित हैं। यहाँ श्रीराधाचिन्ता निविष्ट श्रीविनोदबिहारीजीकी परम अद्भुत् श्वेत कान्ति निगूढ़ भजनानन्दियोंके भजनरहस्यको भी पराजित कर रही है (भजनानन्दी भी इस परम रहस्यको समझ नहीं पाते)। श्रील आचार्यदेवने स्वयं इसकी व्याख्या की है—श्रीमन्महाप्रभु स्वयं राधाकृष्ण-युगल हैं। श्रीगौरमन्त्रसे श्रीराधाकृष्णकी पूजा होती है। कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि इस मन्दिरमें श्रीकृष्ण, श्रीमती राधारानी एवं श्रीगौरसुन्दर तीनोंका वर्ण श्वेत क्यों है? उत्तर यह है कि यह श्वेत नहीं बल्कि श्रीमती राधाजीकी स्वर्णकान्ति है। श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्तिको श्रीकृष्णने अङ्गीकार कर गौर या स्वर्णकान्ति धारण किया है। श्रीगौरसुन्दरकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्वर्णके समान गौर वर्णकी है इसलिए इन तीनोंका वर्ण एक ही जैसा है। यहाँ श्वेतकान्तिसे गौरकान्ति समझना चाहिये। श्रीकृष्णने गौर या राधाकान्ति क्यों धारण की? इसका उत्तर

यह है कि हम राधापक्षीय लोग हैं। श्रीमती राधिकाका श्रीकृष्णके साथ एक साहजिक वाम्यभाव है। वह वाम्यभाव कृष्णसेवाके नवनवायमान विचित्र वृद्धिके लिए ही है। श्रीमतीजीने एक समय विशेष रूपसे मान किया। इस समय श्रीकृष्ण श्रीमतीजीकी चिन्तामें इतने आविष्ट हो गये कि उनकी श्याम अङ्गकान्ति श्रीराधाकान्तिमें बदल गयी—

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम्॥

श्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकके प्रथम श्लोकमें ही हम इस गूढ़ रहस्यको लक्ष्य करते हैं। राधालिङ्गित शब्दके दो अर्थ हैं—(१) राधया लिङ्गित एवं (२) राधया आलिङ्गित। लिङ्गित शब्दसे चिह्नित समझना चाहिये। श्रीकृष्ण विप्रलम्भभावसे श्रीमती राधिकाकी चिन्तामें अत्यन्त निविष्ट होनेके कारण अपनी निजस्व अङ्गकान्तिको गँवाकर श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्तिको धारण कर लिये हैं। यही राधालिङ्गित विग्रहका गूढ़ तात्पर्य है। यही श्रीविग्रह यहाँ प्रकाशित हुए हैं। रसिक-चूड़ामणि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीस्वप्नविलासामृतमें इस गूढ़ तत्त्वका तात्पर्य प्रकाशित हुआ है। मदीय श्रील गुरुपादपद्म श्रील प्रभुपादने अपने हृदयके निगूढ़ स्थानसे इस तत्त्वको विश्वमें प्रकाशित किया है।

दूसरा 'राधया आलिङ्गित'—राधाके द्वारा आलिङ्गित, इसका गूढ़ रहस्य श्रीरायरामानन्दजीने गोदावरीके तटपर श्रीमन्महाप्रभुके सामने व्यक्त किया है—

पहिले देखिलुँ तोमार सन्यासी-स्वरूप।
एवे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप॥

तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अंग ढाका॥

तबे हासि' ताँरे प्रभु देखाइल स्वरूप।
'रसराज', 'महाभाव'—दुइ एक रूप॥

(चै॰ च॰ म॰ ८/२६७, २६८, २८१)

अर्थात् राय रामानन्दजीने श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूछा कि मैंने पहले आपके संन्यासी रूपको देखा, अब आपको श्याम गोपके रूपमें देख रहा हूँ। साथ ही आपके सामने एक स्वर्णकान्ति विशिष्ट देवीको देख रहा हूँ, जिसकी स्वर्णमयी कान्तिसे आपकी कृष्ण-अङ्गकान्ति पूर्ण रूपसे आच्छादित है। इतना सुनते ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने हँसकर 'रसराज महाभाव' मिलित इस गौरकान्तिविशिष्ट कृष्णरूपमें दर्शन दिया। श्रीराय रामानन्द उस अपूर्व रूपमाधुरीको देखकर आनन्दसे मूर्छित हो गये। इसलिए श्रीकृष्णकी गौरकान्तिका गूढ़ रहस्य यह भी है कि श्रीमती राधिकाके आलिङ्गनसे कृष्णकी श्यामकान्ति पूर्ण रूपसे आच्छादित हो गयी है तथा राधाजीकी अङ्गकान्ति प्रकाशित हो रही है।

जो लोग उन्नतम भजनमार्गमें विप्रलम्भभावसे सेवा करते हैं उनमें प्रायः सभी श्रीकृष्णके प्रति श्रीमती राधिकाके विप्रलम्भ भावका स्मरण करते हैं। किन्तु हमारे श्रीगुरुदेव श्रील प्रभुपाद श्रीमती राधिका पक्षीय सखी होनेके कारण श्रीमती राधिकाके प्रति श्रीकृष्णके विप्रलम्भभावका स्मरण करते थे। मेरे गुरुदेव राधाविरहकी अपेक्षा श्रीकृष्ण विरहके अधिक पक्षपाती थे। श्रीमती राधिकाजी कृष्ण-विरहमें मर्माहत हैं, दुःखी हैं—ऐसे विप्रलम्भभावकी सिद्धिके लिए ही साधारण साधक प्रार्थना करते हैं। किन्तु श्रील प्रभुपादकी विचारधारा ठीक इसके विपरीत थी। श्रीकृष्णके ही श्रीमती राधिकाकी भावनामें गम्भीर रूपसे आविष्ट होनेके कारण उनकी श्याम अङ्गकान्ति विलुप्त होकर वे राधालिङ्गित विग्रहके रूपमें प्रकाशित हैं अर्थात् श्रीमती राधिकाके वर्णको प्राप्त हुए हैं। श्रीमन्महाप्रभुने इसी विप्रलम्भरसका प्रचार किया है तथा इसीकी शिक्षा दी है। श्रीकृष्ण ही श्रीराधारानीकी चिन्ता करें—यही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका आदर्श है।

(४) सेवकखण्ड—श्रीश्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीके सेवकगण जहाँ निवास करते हैं, सेवा करते हैं तथा विश्राम करते हैं उसे सेवकखण्ड कहा गया है। सेवकखण्ड भी दो भागोंमें विभक्त है—(अ) श्रील गुरुपादपद्मकी भजनकुटी, (आ) श्रील गुरुदेवके सेवकवृन्दका वासस्थान अर्थात् भजनकुटियाँ। इन कुटियोंमें श्रील गुरुदेवके आश्रित संन्यासिओं एवं ब्रह्मचारियोंकी कुटियाँ हैं।

(५) भोगखण्ड—भण्डार और पाकशालाको भोगखण्ड कहते हैं। श्रील गुरुदेवकी भजनकुटीसे संलग्न भण्डार एवं पाकशाला स्थित है। यह भी दो भागोंमें विभक्त है—(क) दैनन्दिन पाकशाला, (ख) श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा आदि विशेष उत्सवोंकी पाकशाला। इस पाकशालामें स्थायी रूपसे बने हुए सुगभीर बड़े-बड़े चूल्हे हैं। जिनपर रखी हुई बड़ी-बड़ी कढ़ाइयोंमें एकबारमें ही १६-२० मन चावल अथवा ४० मन सब्जीका पाक होता है। लगभग बड़े-बड़े बलिष्ठ २० पाचक ठाकुरजीका भोग रन्धन करते हैं। लगभग १५-२० हजार यात्री मठके विशाल प्रांगणमें एक साथ बैठकर प्रसाद सेवन करते हैं। उस समय महाप्रसाद परिवेशनकी प्रणाली अद्भुत दर्शनीय होती है। ऐसा विश्वमें कहीं नहीं देखा जाता।

(६) गोवर्धनखण्ड—गायोंके रहनेके स्थानको गोशाला या गोवर्धनखण्ड कहते हैं। इसमें बड़ी सुन्दर-सुन्दर गाएँ रहती हैं। जिनके दूधसे दही, घृत, खीर परमान्न आदि प्रस्तुत होकर श्रीठाकुरजीके भोगमें अर्पित होता है।

(७) ज्ञानखण्ड—मठवासियों एवं यात्रियोंके शौचालयको ज्ञानखण्ड कहा गया है। भक्तिके प्रतिकूल वस्तुओं एवं भावोंका वर्जन करना शरणागतिका मुख्य अङ्ग है। निर्विशेष ज्ञान और भगवत् भावरहित कर्म भक्तिके विरोधी होनेसे ऐसे ज्ञानका और कर्मका मलवत् त्याग करनेका उपदेश श्रीमद्भागवतमें देखा जाता है—

या दुस्तज्यान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः।
जहो युवैव मलवदुत्तमःश्लोकलालसः॥

अर्थात् महाराज भरतने स्त्री, पुत्र, स्वजन, बन्धु-बान्धव और राज्यको मलवत् त्यागकर भजन करनेके लिए वनमें प्रवेश किया। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड केवल विषेर भाण्ड।

अर्थात् कर्मकाण्ड एवं ज्ञानकाण्ड दोनों ही विषके पात्र हैं। भगवत् भक्तलोग इन दोनोंको भक्तिविरोधी जानकर इनका मलवत् परित्याग करते हैं। और भी—

असत् सङ्ग त्याग एइ वैष्णव आचार।
स्त्रीसङ्गी एक असाधु, कृष्णाभक्त आर॥

अर्थात् असत्-सङ्गका त्याग करना एक मुख्य वैष्णव-सदाचार है। अर्थात् असत्-सङ्ग दो प्रकारका है—अवैध स्त्रीसङ्गी या स्त्री-सङ्गियोंके सङ्गी तथा इनकी सांसारिक विषयोंमें आसक्ति अथवा निर्विशेष ज्ञानमें तत्पर अभक्तोंका सङ्ग। भक्ति लाभेच्छु साधकोंको इन दोनों प्रकारके असत्-सङ्गोंका सावधानीसे वर्जन करना चाहिये। उपर्युक्त सात खण्डोंमेंसे प्रथमोक्त ६ खण्ड भक्तिके अनुकूल और भक्तिके साक्षाद् स्वरूप होनेसे आदरणीय हैं। सप्तम खण्डका तात्पर्य निर्विशेष-ज्ञान भक्ति-विरोधी होनेसे वर्जनीय है। श्रील गुरुपादपद्मने इसी भक्तिसिद्धान्तकी दृष्टिसे श्रीमठको सात खण्डोंमें विभक्तकर उनका नामकरण किया है।

श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें छुआछूत संवादका प्रतिवाद

बंगला दैनिक, युगान्तरमें ३ नवम्बर, १९६३ ई॰ को एक संवाद प्रकाशित हुआ था—पुरीमें हजारों रुपयेके मूल्यका भोग मिट्टीमें गाड़ दिया गया; असेवायत किसी व्यक्तिके दृष्टि-स्पर्शसे अपवित्र होनेके कारण सूपकारोंका (रसोइया) उपद्रव; पुलिसका हस्तक्षेप—पुरी, १ नवम्बर, आज सायंकालमें श्रीजगन्नाथजीके भोगसे पूर्व ही किसी व्यक्तिके (जो सेवायत नहीं था) स्पर्शके कारण मन्दिरकी प्रथाके अनुसार हजारों रुपये मूल्यका भोग मिट्टीमें गाड़ दिया गया। (V.N.I—१/११/१९६३)

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने उस घटनाका प्रतिवाद करते हुए कहा कि हम श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें उक्त घटनाके सम्बन्धमें जनताकी दृष्टि आकर्षित कर रहे हैं। जो धर्मध्वजी, धर्मविरोधी लोग भगवत्-सेवामें स्पर्शदोषको उखाड़ फेंकनेकी चेष्टा करते हैं तथा उसे छुआछूत मानकर हँसी उड़ाते हैं, उन्हें शिक्षा देनेके लिए श्रीजगन्नाथदेवने स्वयं ऐसी व्यवस्था की है। श्रीजगन्नाथदेवकी इस शिक्षाको ग्रहणकर हम सदा-सर्वदा शास्त्रीय विधानके अनुसार छुआछूत मार्गमें ही रहेंगे तथा दूसरेको भी छुआछूत मार्गमें रहनेका उपदेश देंगे। चाहे पाश्चात्य निरीश्वर शिक्षा हो या वर्त्तमान देशीय निरीश्वर शिक्षा हो, इन कुशिक्षाओंकी भण्डामीको हम भगवत्-उपासनामें प्रवेश नहीं करने देंगे। आज भी श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें

खाद्य–अखाद्यके विचारको लेकर समग्र भारतमें उनका अपना निजस्व तन्त्र (विचार–पद्धति) विद्यमान है। जो लोग शास्त्रीय स्पर्शदोष नहीं मानते, हम उन्हीं लोगोंको अछूत मानते हैं।

श्रीजगन्नाथदेवके भोग होनेके पश्चात् जब सूपकारोंका पाचित अन्न 'महाप्रसाद' हो जाता है, तब उस महाप्रसादमें स्पर्शका कोई भी दोष नहीं होता। किन्तु भोग लगनेसे पूर्व श्रीजगन्नाथदेवके सेवकोंके अतिरिक्त अर्थात् भोग देनेका जिन्हें अधिकार है, उन्हें छोड़कर किसी भी व्यक्तिको उसे स्पर्श करनेका अधिकार नहीं है। ऐसे अनधिकारी व्यक्तिके स्पर्श करनेपर वह नैवेद्य भगवान् जगन्नाथजीको कदापि निवेदन नहीं किया जा सकता है। यही शुद्ध विचार है।

जिस द्रव्यको श्रीजगन्नाथजी ग्रहण नहीं करते उसे किसी दूसरेको देना अनुचित है। भगवान् जिसे ग्रहण करते हैं, उनका वह उच्छिष्ट ही मनुष्यमात्रके लिए ग्रहणीय है। इसके द्वारा श्रीजगन्नाथजी हमें यह शिक्षा दे रहे हैं कि भगवान्‌को अनिवेदित कोई भी द्रव्य ग्रहण नहीं करना चाहिये। इससे एक और शिक्षा यह भी मिलती है कि माँस, मछली, अण्डा, तम्बाकू, चाय, बीड़ी, सिगरेट, खैनी, मद्य, काफी, प्याज, लहसुन आदि भगवान्‌के भोगमें नहीं लगते। अतः ये सभी द्रव्य सब प्रकारसे वर्जनीय हैं। जो लोग इन अखाद्य, कुखाद्य द्रव्योंको ठाकुर–सेवामें व्यवहार करते हैं, वे सनातन हिन्दूधर्मसे बहिर्भूत असत् सम्प्रदायके व्यक्ति हैं। शास्त्रमें उन्हीं लोगोंको अन्त्यज या म्लेच्छ कहा गया है।

इनके इस प्रतिवादसे श्रीजगन्नाथदेवके सेवायत तथा हिन्दूधर्मके सभी सज्जन बड़े प्रसन्न हुए।

सिलिगुड़ि तथा बिहार प्रदेशके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार

१९६३ ई॰ में श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा तथा श्रीगौरजन्मोत्सव सम्पन्नकर परमाराध्य श्रील गुरुदेव अपने परिकरोंके साथ सुन्दरवन अञ्चलके मईपीठ–विनोदपुर, दमकल, काशीनगर आदि स्थानोंमें सप्ताहव्यापी प्रचारकर सिलिगुड़िके विभिन्न स्थानोंमें २१ अप्रैलसे १८ मई लगभग एक माह तक विपुल रूपसे सनातनधर्म—शुद्धभक्तिका प्रचार किया।

दूसरे वर्ष १९६४ ई॰ में श्रीधाम-परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सवके उपरान्त संन्यासी एवं सोलह मठवासियोंके साथ बिहार प्रदेशके दुमका नामक जनपदमें सारसाजोल, आसनवनी, राजवन्ध, पलाशी, बारमासिया, धादिका, कुमड़ावाद, दुमका शहर आदि स्थानोंमें विपुल रूपसे वैष्णवधर्मका प्रचार किया। उनके साथमें श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद नारायण महाराज, श्रीपाद कृष्णकृपा ब्रह्मचारी, श्रीगजेन्द्र मोक्षण ब्रह्मचारी, श्रीरोहिणीनन्दन व्रजवासी, श्रीभगवानदास ब्रह्मचारी, श्रीवृन्दावनविहारी ब्रह्मचारी, श्रीचिद्‌घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीवृषभानु ब्रह्मचारी आदि प्रमुख संन्यासी और ब्रह्मचारी थे।

सारसाजोल दुमका जनपदका एक प्रसिद्ध एवं समृद्ध गाँव है। इस गाँवमें श्रीमधुसूदन विद्यानिधिके घरमें रहकर उस गाँवमें सात दिनों तक शुद्धभक्तिका प्रचार हुआ। इस गाँवके प्रधान-प्रधान सभी ग्रामवासियोंने परिवारके साथ वैष्णवधर्म ग्रहण किया। श्रीमन्महाप्रभुके समयमें कुलीन ग्राम नामका सम्पूर्ण ग्राम वैष्णव ग्राम था। यहाँके सारे निवासी श्रीमन्महाप्रभुके परम भक्त वैष्णव थे। यहाँ तक कि उस गाँवके कुत्ते भी भक्त थे जो एकादशी आदि व्रतका पालन करते थे। सारसाजोल ग्रामको भी देखकर कुलीन ग्रामकी स्मृति हृदयपटलपर उदित होती है। श्रील गुरुपादपद्मके शुभागमनसे सारसाजोल भी धन्य हो गया। श्रील आचार्यदेवने यहाँपर ६ दिनोंमें ६ विषयोंके सम्बन्धमें भाषण दिये—

(१) शास्त्र किसे कहते हैं?

(२) सुर और असुरमें पार्थक्य।

(३) कीर्त्तन ही कल्याणकारी साधन है।

(४) ब्रह्ममें लीन होना या ब्रह्म होना जीवके लिए अभिशाप है।

(५) ईश्वर सविशेष और साकार वस्तु है, निराकार नहीं।

(६) निराकारवाद ही नास्तिक्य पाखण्डवाद है।

उनके अतिरिक्त श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद नारायण महाराज, श्रीचिद्‌घनानन्द ब्रह्मचारी, श्रीरोहिणीनन्दन वृजवासी आदि वक्ताओंने भी भाषण दिये।

दुमका शहरमें तीन दिनों तक पॉपुलर क्लब, श्रीराधामाधव मन्दिर, जिला परिषद भवनमें षड्‌दर्शन एवं वेदान्त-विज्ञान, निराकारवादका हेयत्व

तथा धर्म-सेवा ही समाजका संस्कार है—आदि विषयोंपर श्रील आचार्यदेवके बड़े ही ओजस्वी भाषण हुए। सभापति महोदयके आदेशसे श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज एवं श्रीपाद नारायण महाराजने छायाचित्रके माध्यमसे श्रीगौरलीला एवं श्रीरामलीलाके सम्बन्धमें भक्तिसिद्धान्तपूर्ण भाषण दिये। शुद्धभक्तिके प्रचारसे दुमका जनपदके इन अञ्चलोंमें वैष्णवधर्मके प्रति लोगोंकी अपार श्रद्धा हुई। दल-के-दल लोग मद्य, माँस, मछली, धूम्रपान आदिका वर्जनकर शुद्धभक्तिमें दीक्षित होने लगे। इस प्रकार लगभग एक माह प्रचारकर श्रील आचार्यदेव सपरिकर श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटे।

अगस्त, १९६४ ई० में श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रील गुरुदेवकी उपस्थितिमें श्रीश्रीजन्माष्टमी एवं श्रीनन्दोत्सव विराट समारोहके साथ सम्पन्न हुए। इस वर्ष श्रीसमितिके प्रांगणमें श्रीजन्माष्टमीके उपलक्ष्यमें बहुत-सी शिक्षाप्रद प्रदर्शनियोंका आयोजन हुआ था। श्रील गुरुपादपद्मने भक्तोंके आग्रहसे प्रदर्शनीका उन्मोचन किया तथा नाट्य-मन्दिरकी धर्मसभामें श्रीजन्माष्टमीके सम्बन्धमें गम्भीर सुसिद्धान्तपूर्ण एक भाषण प्रदान किया। उस भाषणमें यह बतलाया कि श्रीजन्माष्टमी आदिके व्रतोपवास पालनके विषयमें स्मार्त रघुनन्दनके विचारोंमें मूल भ्रान्ति है। वैष्णवलोग श्रीहरिभक्तिविलासके मतानुसार इन व्रतोंके पालनमें बिद्धा तिथिका परित्यागकर शुद्ध-व्रतका पालन करते हैं। श्रीकृष्णने सप्तमीबिद्धा अष्टमीमें जन्मग्रहण नहीं किया, बल्कि नवमी-बिद्धा अष्टमी (जिसे उमा-माहेश्वरी तिथि भी कहते हैं) में जन्मग्रहण किया था। इसलिए नवमीयुक्त अष्टमी तिथि ही व्रतोपवासके लिए पालनीय तिथि है। इस व्रतोपवासके लिए अभिजित मुहूर्त, रोहिणी नक्षत्र आदिका विचार भी विशेष महत्त्वका है।

कलकत्ता और मेदिनीपुरमें श्रील आचार्यदेव द्वारा शुद्धभक्तिका प्रचार

१९६४ ई० में कलकत्ताके प्रसिद्ध भवानी-पेपर-कनसर्नके मालिक श्रीसुधीर कुमार साहाके विशेष अनुरोधसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्य बहुत-से संन्यासी एवं ब्रह्मचारियोंको अपने साथ लेकर

उनके कैनिंग स्ट्रीट वासभवनमें एक माह तक ऊर्जाव्रत नियमसेवाका पालन किया। उस समय उनका गृह एक माह तक श्रीवैकुण्ठधाम बना हुआ था। प्रतिदिन मङ्गल-आरति, सङ्कीर्त्तन, श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीमद्भागवत आदि भक्ति ग्रन्थोंका पाठ, सन्ध्या आरति आदि नियमित रूपसे सम्पन्न होते थे। कलकत्ता नगरके बहुत-से शिक्षित सम्भ्रान्त एवं समृद्ध व्यक्ति भी उसमें योगदान करते थे। श्रील गुरुदेवने श्रीमद्भागवत एकादश-स्कन्धसे वसुदेव-नारद संवादकी नियमित रूपसे व्याख्या की। उनकी सुसिद्धान्त पूर्ण भागवत व्याख्या सुनकर अध्यापक, वकील, शिक्षक, उच्च पदस्थ कर्मचारी सभी लोग बड़े आकर्षित हुए। समय-समयपर श्रीपाद त्रिविक्रम महाराज, श्रीपाद वामन महाराज, श्रीपाद नारायण महाराजने भी श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की।

वहाँसे श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटकर मेदिनीपुरके विभिन्न अञ्चलोंमें प्रचार किया। कल्याणपुरमें श्रीमन्दिरका द्वारोद्घाटन किया। साबड़ावेड़े जलपाई तथा विभिन्न स्थानोंमें सनातन धर्मका प्रचार किया। खामटी नामक ग्राममें श्रील आचार्यदेवकी उपस्थितिमें बड़े समारोहके साथ श्रीव्यासपूजा सम्पन्न हुई।

दूसरे वर्ष १९६५ ई॰ में श्रीधाम परिक्रमा एवं श्रीगौरजन्मोत्सव सम्पन्न करनेके पश्चात् कतिपय संन्यासी और ब्रह्मचारियोंके साथ श्रीसिद्धवाड़ी गौड़ीय मठमें उपस्थित होकर वहाँ श्रीमन्दिर निर्माणके लिए भित्तिकी स्थापना की। तदनन्तर वहाँसे लौटकर आसाम प्रदेशके गोलोकगंज, बंगोइगाँव, माथाभांगा, शीतल कुचि एवं सिलिगुड़ि आदि स्थानोंमें एक माह तक प्रचारकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें लौटे।

श्रीमथुरा, वृन्दावन, लखनऊ और काशीमें शुद्धभक्तिका प्रचार

१९६६ ई॰ सितम्बर-अक्टूबर माहमें कार्त्तिकव्रत नियमसेवाके उपलक्ष्यमें बहुत-से यात्रियोंको साथ लेकर श्रीव्रजमण्डल ८४ क्रोसकी परिक्रमा की गयी। वे यात्रियोंके साथ सबसे पहले श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें उपस्थित हुए। श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज एवं श्रीमुनि महाराजने माल्य-चन्दन अर्पणकर श्रील आचार्यदेवकी विपुल सम्वर्धना

की। श्रील गुरुपादपद्म परिक्रमाका दायित्व श्रीपाद हरिजन महाराजके ऊपर न्यस्त कर एक माह तक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें विश्राम किया। तत्पश्चात् श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज तथा कतिपय ब्रह्मचारियोंको साथ लेकर लखनऊ, प्रयाग, वाराणसी एवं गयामें भक्तिका प्रचारकर चुँचुड़ा लौटे।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें रहते समय मथुरा नगरके बहुत-से उच्च शिक्षित व्यक्ति श्रीलगुरुपादपद्मके निकट हरिकथा सुननेके लिए उपस्थित होते थे। जिनमें श्रीमाथुर चतुर्वेद महाविद्यालयके प्रिन्सिपल, श्रीगया प्रसाद सक्सेना एम्प्लॉयमेन्ट-एक्सचेंज आफिसर, श्रीपीताम्बर पन्थ एस॰डी॰ओ॰एम॰ई॰एस॰, आदिके नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। श्रीपीताम्बर पन्थके विशेष अनुरोधसे ही श्रील आचार्यदेवने संन्यासी-ब्रह्मचारियोंके साथ लखनऊ स्थित उनके वासभवनमें शुभविजय किया। वहाँ तीन दिन रहकर काशीमें उपस्थित हुए। वहाँ पुनः तीन दिन रहकर अप्राकृत शब्द विज्ञानके मूल-ग्रन्थ वेद एवं कुछ दुष्प्राप्य ग्रन्थों तथा श्रीनवद्वीप मठके लिए दो मन वजनका एक बृहत् पीतलका घण्टा संग्रहकर श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौटे।

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ, कलकत्तामें श्रील आचार्य केसरी

श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ कलकत्तामें सप्ताह व्यापी २६ जनवरीसे १ फरवरी, १९६७ ई॰ में वार्षिक महोत्सव, नव मन्दिर एवं श्रीनाट्यमन्दिरकी प्रतिष्ठा महासमारोहके साथ सुसम्पन्न हुई। नित्यलीला प्रविष्ट श्रीश्रील भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराज श्रीचैतन्य गौड़ीय मठ एवं उसके अन्तर्गत भारतके शाखामठसमूहके संस्थापक सभापति आचार्य थे। वे स्वयं इस महोत्सवमें योगदानके लिए निमन्त्रण देने हेतु अस्मदीय श्रील गुरुदेवके पास तथा अन्यान्य गौड़ीय आचार्योंके पास उपस्थित हुए थे। इसलिए जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अनुगत बहुत-से संन्यासियोंने इस महोत्सवमें योगदान किया था। उनमेंसे कुछेक प्रमुख संन्यासियोंके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज
(२) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव महाराज
(३) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज
(४) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिसर्वस्व गिरि महाराज
(५) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज
(६) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज
(७) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिआलोक परमहंस महाराज
(८) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज
(९) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिप्रापन दामोदर महाराज
(१०) परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराज

इस महोत्सवमें परमपूज्य त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजने नवनिर्मित मन्दिर एवं नाट्य-मन्दिरका द्वारोद्घाटन किया। पूज्यपाद त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज और पूज्यपाद भक्तिप्रमोद पुरी महाराजजीने श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा तथा वैष्णव होम-यज्ञ आदि कार्योंको सम्पन्न किया।

इस अवसरपर तीन दिन सायंकालमें विद्वद् धर्मसभा सम्पन्न हुई। परमाराध्य श्रील गुरुदेवने तीनों दिन क्रमानुसार (१) "मठ मन्दिरकी आवश्यकता", (२) "गीताकी शिक्षा", (३) "युगधर्म" के सम्बन्धमें तत्त्वसिद्धान्त पूर्ण तीन भाषण प्रदान किये। इन तीन दिनोंमें क्रमशः कलकत्ता हाईकोर्टके प्रधान न्यायाधिपति माननीय श्रीयुत दीपनारायण सिंह, श्रीशम्भुनाथ बनर्जी (कलकत्ता विश्वविद्यालयके भूतपूर्व उपाचार्य) तथा न्यायाधिपति श्रीयुत परेशनाथ मुखर्जीने सभापतिका आसन अलंकृत किया। श्रील आचार्यदेवने भाषण देते हुए कहा—"यहाँ इस धर्मसभामें बंगालके सर्वोच्च अदालतके प्रधान न्यायाधिपति उपस्थित हैं। उनकी मठ-मन्दिरमें उपस्थिति ही मठ-मन्दिरकी आवश्यकताका प्रमाण है। हमारे स्मृतिशास्त्रके लेखकोंने कहा है कि जहाँ मठ-मन्दिर नहीं हैं, वहाँ निवास करना उचित नहीं है। आजकल बहुत-से लोग यह कहते हुए सुने जाते हैं कि क्या कृष्णको पुकारनेसे ही भोजन मिलेगा? ऐसी प्राकृत

दृष्टिभङ्गी बन्द नहीं होनेसे इस देशका कदापि कल्याण नहीं हो सकता। आजकल सिद्धान्तहीन, विचारहीन, अधार्मिक राजनीति चल रही है। प्राचीन ऋषियोंने कुछ Codified Rule प्रस्तुत किया था। उसीके अनुसार देशकी शासन व्यवस्था चलती थी। आज उनकी अवज्ञाकर पाश्चात्य देशकी शिक्षा दी जा रही है। बड़े दुःखकी बात है, आज गाय एवं पशुओंकी हत्याके लिए, मद्यपान करने करानेके लिए लाईसेन्स दिये जा रहे हैं। किन्तु राष्ट्रके Constitution में धर्मका कोई भी स्थान नहीं है। दुर्भाग्यकी बात है धार्मिक व्यक्तियोंके लिए इस Constitution में कोई भी Provision या व्यवस्था नहीं है। अधिकन्तु बिना किसी कारणके ही धार्मिक लोगोंकी अशान्ति एवं असुविधाकी सृष्टि की जा रही है। सरकार आज तक भी बेकारीकी समस्याका समाधान नहीं कर सकी है। आजकल मठोंमें बहुत-से उच्चशिक्षित व्यक्ति वास करते हैं। यदि वे सभी लोग नौकरी, व्यवसाय अथवा खेती करते तो न जाने और कितने लाख व्यक्ति बेकार हो जाते। तथा उनके खेती-बाड़ी करनेके लिए कृषिभूमिका भी अभाव हो जाता। यह सब कहना कठिन है। इस प्रकार साधुओंका महान त्याग देशके लिए कितना बड़ा उपकार है, यह सभी लोग समझ सकते हैं। आजकल अनेक मठ-मन्दिरों, मिशन, सेवाश्रमोंमें 'अहं ब्रह्मास्मि'—आत्महत्याकी शिक्षा दी जा रही है।" इसके द्वारा जनताको धर्मविरोधी नास्तिक प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकार निरपेक्ष सत्यके निर्भीक वक्ता इन विप्लवी विचारोंको सभामें प्रकाश कर रहे थे एवं श्रोतागण बड़ी उत्कण्ठापूर्वक श्रवण कर रहे थे।

करीब एक घण्टा तक इन्होंने ओजस्वी भाषण दिया। इनके भाषणके पश्चात् दूसरे वक्ताओंने भी अपने-अपने विचार प्रकट किये। श्रीचैतन्य गौड़ीय मठके सभी संन्यासी, ब्रह्मचारी सभा समाप्त होनेके पश्चात् अस्मदीय आचार्यदेवके चरणकमलोंमें उपस्थित होकर इनके विचारोंकी भूयसी प्रशंसा करने लगे। साथ ही भक्तिके सिद्धान्तोंके विषयमें परिप्रश्न भी करते रहे।

आसाम-प्रदेशके वासुगाँवमें श्रीवासुदेव गौड़ीय मठकी स्थापना

आसाम-प्रदेशके ग्वालपाड़ा जनपदके अन्तर्गत वासुगाँवके विशिष्ट सज्जन श्रीपार्वतीचरण रायने वासुगाँवमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका एक प्रचारकेन्द्र स्थापन करनेके लिए श्रील गुरुपादपद्मसे बार-बार अनुरोध किया। इस कार्यके लिए उन्होंने अपने वासभवनके पास ही बाजारके मध्यभागमें कुछ भूमि भी दान कर दी थी। उनके अनुरोधसे श्रील आचार्यदेव श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी आदि ६ सेवकोंके साथ २१ मई, १९६७ ई० को वहाँ उपस्थित हुए। वहीं दूसरे दिन श्रीनिमानन्द सेवातीर्थ प्रभुकी आविर्भाव-तिथिके उपलक्ष्यमें आयोजित एक महती सभा हुई। उस धर्मसभामें श्रील आचार्यदेव द्वारा सभापतिका आसन अलंकृत करनेपर श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रीमद्भक्तिवेदान्त उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीगजेन्द्र मोक्षण ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रीगौर-विनोद-सारस्वत-वाणी प्रचारमें इस महापुरुषका अवदान विषयपर बहुत ही आवेगपूर्ण भाषण दिये। तत्पश्चात् श्रील गुरु महाराजने सेवातीर्थ प्रभुके सम्बन्धमें सुसिद्धान्तपूर्ण मनोज्ञ भाषण प्रदान किया।

दो तीन दिन गोलोकगंजमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर श्रील आचार्यदेव सपरिकर वासुगाँवमें उपस्थित हुए। वहाँके स्थानीय हाईस्कूलके हेडमास्टर श्रीविश्वरूप ब्रह्मचारी बी०ए० की विशेष प्रचेष्टासे श्रीपार्वती बाबूके द्वारा प्रदत्त भूमिमें श्रीवासुदेव गौड़ीय मठकी स्थापना हुई। मठ-प्रतिष्ठा कार्यमें श्रीविश्वरूप प्रभुकी अक्लान्त सेवा प्रचेष्टा एवं उत्साह देखकर श्रील आचार्यदेवने उन्हें मठका अध्यक्ष नियुक्त किया। श्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज, श्रीसारथीकृष्ण ब्रह्मचारी इस नए मठमें रहकर प्रचारकार्यमें नियुक्त हुए। इसी स्थानपर तीन दिन तक तीन धर्मसभाओंका आयोजन किया गया। श्रील आचार्यदेवके अतिरिक्त श्रीमद्वामन महाराज, श्रीमद् उर्द्ध्वमन्थी महाराज आदिने भी भाषण दिये। कुछ ही दिनोंके पश्चात् परम पूज्यपाद श्रील श्रौती महाराजके पौरोहत्यमें यहाँ श्रीश्रीगौर-राधाविनोदबिहारीजी प्रतिष्ठित हुए।

सिऊड़ी बार–लाईब्रेरी एवं डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरीमें वक्तृता

२१ जून, १९६७ ई॰ को सपार्षद श्रील गुरुदेवने सिऊड़ी शहरमें शुभागमन किया। श्रीयुत उमापद साधु (श्रीउरुक्रम दासाधिकारी) महोदयके विशेष अनुरोधसे कुछ दिनों तक उनके वासभवनमें रहकर शुद्धभक्तिका प्रचार किया। एक दिन उन्होंने बार–लाईब्रेरीमें तथा दूसरे दिन स्थानीय डिस्ट्रिक्ट लाईब्रेरीमें "वर्त्तमान परिस्थिति एवं सनातनधर्म" के विषयपर भाषण दिया। अन्यान्य दिनोंमें श्रीउरुक्रम दासाधिकारीके श्रीमन्दिरमें ही "वैष्णव–साहित्य एवं संस्कृति" आदिके सम्बन्धमें ओजस्वी भाषण दिये।

१७ फरवरी, १९६८ ई॰ को रामनगर आबादग्राममें विराट व्यासपूजाका महोत्सव सम्पन्न हुआ। श्रीमती नारायणीदेवीकी विशेष प्रार्थनापर त्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज कतिपय संन्यासियों और ब्रह्मचारियोंके साथ वहाँ उपस्थित होकर विशेष समारोहके साथ व्यासपूजाका अनुष्ठान किया। तीन दिनों तक बृहत्–बृहत् धर्मसभाओंमें व्यासपूजा एवं सनातनधर्मके सम्बन्धमें पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त वामन महाराजजीने सभापतिके आसनसे विद्वतापूर्ण भाषण दिया।

श्रीधाम नवद्वीपके श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव स्वयं उपस्थित रहनेके कारण यहाँ भी विशेष समारोहके साथ तीन दिनों तक व्यासपूजाका अनुष्ठान हुआ।

अप्रकटलीलामें प्रवेश

तत्पश्चात् श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमा बड़े समारोहके साथ सम्पन्न हुई। इसी समय परमाराध्यतम गुरुदेव कुछ–कुछ अस्वस्थ–लीलाका अभिनय करने लगे। चिकित्साके लिए वे कुछ दिनों तक कलकत्ता निवासी श्रीयुत राधेश्याम साहा और कुछ दिनों तक श्रीकृष्णगोपाल वसु महोदयके घर रहे। उस समय इन दोनों महाशयोंकी सेवा–प्रचेष्टा अत्यन्त सराहनीय रही। कलकत्तासे पुनः ३ अक्टूबर, १९६८ ई॰ को उन्हें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें उनकी भजनकुटीमें लाया गया। अन्तमें १९ आश्विन १३७५ बंगाब्द, ६ अक्टूबर, १९६८ ई॰ रविवार, शारदीय रासपूर्णिमाके

दिन सन्ध्या आरतिके समय ६◦१५ पर परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज हम सभीको विरहसागरमें निमज्जितकर श्रीयुगलकिशोरके सायंकालीन नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गये। इस विषयमें श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष २०, अङ्क ५ में प्रकाशित किसी विरही द्वारा लिखित विवरण उद्धृत किया जा रहा है—

"विगत ६ अक्टूबर, १९६८ ई◦, रविवार, शारदीय पूर्णिमाकी पुण्यतिथिमें श्रीदामोदर-व्रत आरम्भदिवसके सन्ध्याकालमें चन्द्रग्रहणके समय श्रीधाम नवद्वीपस्थ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता, श्रीब्रह्ममाध्व गौड़ीय सम्प्रदायसंरक्षक आचार्यभास्कर परमहंस मुकुटमणि नित्यलीलाप्रविष्ट जगद्‌गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अन्तरङ्ग प्रियपार्षद आचार्यकेसरी ॐ विष्णुपाद परमहंस अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज अपने चरणाश्रित सेवकवृन्द, तदीय सतीर्थ संन्यासी आचार्यवृन्द, त्यागी एवं गृही भक्तवृन्द तथा गुणमुग्ध सज्जनवृन्दको

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीका समाधि-मन्दिर

विरहसागरमें निमज्जितकर स्वेच्छापूर्वक नित्यधाम श्रीगोलोक वृन्दावनमें निज अभीष्टदेव श्रीराधाविनोदबिहारीकी सायंकालीन लीलामें प्रविष्ट हुए हैं।”

उक्त दिवस श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें भारतके विभिन्न स्थानोंसे त्यागी एवं गृही भक्तगण एकत्रित हुए थे। विशेष-विशेष संन्यासीगण एवं सेवकवृन्द प्रातःकालसे ही श्रीनरोत्तम ठाकुर, भक्तिविनोद ठाकुर आदि महाजनोंके 'जय राधे जय कृष्ण', 'जे आनिल प्रेमधन', 'श्रीरूप मञ्जरीपद', 'राधे जय जय माधव दयिते' आदि पदोंका करुण स्वरसे कीर्त्तन कर रहे थे। उधर सन्ध्या आरति हो रही थी और इधर भक्तोंके साथ गुरुदेव भी आविष्ट होकर अस्फुट स्वरसे कीर्त्तन कर रहे थे। इस प्रकार 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे' का उच्चारण करते हुए अपने परमाराध्यतम गुरुदेवके पटविग्रहको अपने वक्षःस्थलपर धारण किये हुए नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गये।

इसी बीच एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना हुई। श्रीमन्दिरके बड़े पुजारी अपने हाथोंमें श्रीमती राधिकाजीकी माला लेकर वहीं उपस्थित हुए और रोते हुए बोले कि ठीक सन्ध्या आरतिके पश्चात् ही श्रीमती राधिकाके गलेका पुष्पहार अपने-आप टूटकर गिर पड़ा, मैंने आज तक ऐसा कभी नहीं देखा। उपस्थित सब लोगोंने इस श्रीमती राधिकाजीका यह कृपादेश समझा कि श्रीमतीजी अपनी प्रेष्ठ सहचरीको सायंकालीन लीलाविलासमें बुला रही हैं। क्षणभरमें ही श्रील गुरुदेवकी अप्रकटलीलाका विरह संवाद भगवती भागीरथी-गङ्गाके दोनों तटोंपर स्थित सारे गौड़ीय मठोंमें फैल गया। हजारों श्रद्धालु लोग परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि देनेके लिए एकत्रित हो गये। प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजके आनुगत्यमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-राधाविनोदबिहारीजीकी गगनचुम्बी श्रीमन्दिरके सम्मुख उन्हें संस्कारदीपिकाकी रीतिके अनुसार हरिकीर्त्तनके बीच समाधिस्थ किया गया।

समाधि-मन्दिरमें श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका श्रीविग्रह

चतुर्थ भाग

(क) सिद्धस्वरूपका इङ्गित

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ श्रीधाम नवद्वीपमें नौ शिखर विशिष्ट विशाल श्रीमन्दिरका नवनिर्माण कार्य चल रहा था। श्रीगर्भमन्दिरमें श्रीविग्रहोंके लिए वेदिका प्रस्तुत की जा रही थी। वेदिकाका स्वरूप, उसके सोपानोंकी संख्या तथा सोपानोंका रङ्ग निर्णय करनेके लिए परमाराध्य श्रीलगुरुदेव श्रीगर्भमन्दिरमें पधारे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त मुनि महाराज और मैं उनके साथ था। श्रील गुरुदेवने स्थानको नपवाकर वेदीकी लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाईका निर्णय किया। फिर किसी चिन्तामें डूब गये। क्षणभर पश्चात् हम लोगोंकी ओर मुड़कर बोले—वेदीके नीचे तीन सोपान रहेंगे। सर्वोच्च सोपान नीले वर्णका होगा, द्वितीय सोपान पीतवर्णका तथा सर्वनिम्न सोपान अरुणवर्णका होगा। श्रीपाद् मुनि महाराजने पूछा—ऐसा क्यों? श्रील गुरुदेवने कहा—सर्वोच्च सोपान व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके इन्द्रनीलमणि-द्युतिका प्रतीक होगा, द्वितीय सोपान कृष्णकान्ता-शिरोमणि श्रीमती राधिकाकी स्वर्णकान्ति या पीतवर्णका प्रतीक होगा। फिर कुछ क्षण चुप रहनेके पश्चात् अत्यन्त गम्भीर मुद्रामें बोले—तीसरा सोपान युगलकिशोरका विनोदन करनेवाली सखी (मञ्जरी) के वर्णका प्रतीक होगा। वह प्रतीक अरुणवर्णका होगा। इतना कहते-कहते उनकी वाणी गदगद हो गयी, कण्ठस्वर रुद्ध हो गया। वे सम्पूर्ण रूपसे स्तब्ध हो गये। हम दोनों उनके इस विलक्षण भावको देखकर विस्मित हो गये।

उस समय हम लोग कुछ समझ नहीं सके, उनसे कुछ पूछनेका भी साहस नहीं कर सके। परन्तु उनकी अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् हम लोगोंने उस इङ्गितका तात्पर्य अनुभव किया कि सर्वनिम्नस्थित सोपान श्रीयुगलकिशोरका नित्य विनोदन करनेवाली श्रीविनोदमञ्जरीका ही प्रतीक है। श्रीलगुरुदेवने बड़े गूढ़ रूपमें अपने सिद्धदेहका इङ्गित दिया था।

इन्हीं दिनों श्रील गुरुदेवके एक प्रियसेवक श्रीपाद नारायण दासाधिकारीने एकान्तमें परमाराध्य श्रीगुरुदेवसे पूछा—श्रीलगुरुदेवने अपने किसी भी शिष्यको उसे सिद्धदेहका परिचय प्रदान किया है या नहीं? उन्होंने गम्भीरतासे उत्तर दिया—अवश्य दिया है। श्रीलप्रभुपादने अपने कुछ अधिकारी शिष्योंको सिद्धदेह परिचय और भजन-प्रणालीकी शिक्षा प्रदान की है; अन्यथा श्रीरूपानुग धारा रुद्ध हो जाती। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे भी वह प्रणाली प्रदान की है। श्रीनारायण प्रभुने पुनः पूछा—क्या कृपाकर अपने सिद्धदेहका नाम बतलावेंगे। श्रीलगुरुदेवने कहा—अभी नहीं, उपयुक्त समयपर इसका प्रकाश होगा।

(ख) प्रत्यक्ष दर्शनकी हेयता

किसी समय परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरासे श्रीधाम नवद्वीप रेलगाड़ी द्वारा लौट रहे थे। उनके साथ हमलोग चार-पाँच ब्रह्मचारी भी थे। हम सभी रिजर्व डिब्बेमें बैठे हुए थे। जब गाड़ी मथुरा जंक्शन छोड़कर आगे बढ़ी, तभी एक रेलवे मजिस्ट्रेट दो-चार सिपाहियोंके साथ हमलोगोंके डिब्बेमें चैकिंगके लिए उपस्थित हुए। वे चैकिंगके पश्चात् श्रीलगुरुदेवके पास ही रिक्त स्थानपर बैठ गये। बैठते ही उन्होंने श्रील गुरुदेवसे पूछा—"महात्माजी! आप कहाँसे आ रहे हैं?"

गुरुजी—"हमलोग मथुरासे आ रहे हैं। मथुरामें जिला अस्पतालके सामने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ नामक हमलोगोंका एक आश्रम है। हम वहींसे आ रहे हैं।"

मजिस्ट्रेट—"आपलोग जायेंगे कहाँ?"

गुरुजी—"हमलोग श्रीधाम नवद्वीप जा रहे हैं, वहीं हमारा प्रधान-कार्यालय है।"

मजिस्ट्रेट—"आपकी संस्थाका उद्देश्य क्या है?"

गुरुजी—"हमलोग विश्वभरमें शुद्ध सनातन धर्मका प्रचार करते हैं। विशेषतः श्रीचैतन्य महाप्रभुके आनुगत्यमें श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंमें वर्णित शुद्धभक्ति और हरिनाम-सङ्कीर्त्तनका आचार तथा प्रचार करते

हैं। जीवमात्रको इस कल्याण-पथपर आकर्षण करना ही हमारी संस्थाका उद्देश्य है।"

मजिस्ट्रेट—"भक्तिसे आपका तात्पर्य क्या है?"

गुरुजी—"इस विश्वकी सृष्टि करनेवाला, इसका सञ्चालन करनेवाला एक परम दयालु, सर्वशक्तिमान तत्त्व है। उसी परम तत्त्वको ईश्वर, परमात्मा या भगवान् भी कहते हैं। हम सारे जीव उनके अंश और सेवक होनेपर भी उन्हें भूलकर इस संसारमें अनादि कालसे विभिन्न योनियोंमें त्रिताप द्वारा ग्रस्त हो रहे हैं। बिना भगवत्कृपाके हम इस भवबन्धनसे मुक्त नहीं हो सकते। अतः भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिए शास्त्रोंमें वर्णित विधियोंका पालन करना ही भक्ति है।"

मजिस्ट्रेट—"आपलोग ईश्वरको मानते हैं, किन्तु मैं ईश्वर नामकी कोई सत्ता नहीं मानता। जो चीज इन आँखोंसे दीखती नहीं, मैं उसपर विश्वास नहीं करता। क्या भगवान् आँखोंसे दिखायी देता है?"

गुरुजी—"यद्यपि आप मौखिक रूपसे ऐसा कह रहे हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी चीजें हैं, जिन्हें आप न देखनेपर भी उसकी सत्ता माननेके लिए बाध्य हैं।"

मजिस्ट्रेट—"किन्तु मैं आँखोंसे प्रत्यक्ष देखी हुई चीजोंके अतिरिक्त किसी भी अन्य वस्तुपर विश्वास नहीं करता।"

गुरुजी—"आप अवश्य ही विश्वास करते हैं। क्या आपके माता-पिता जीवित हैं?"

मजिस्ट्रेट—"हाँ! जीवित हैं।"

गुरुजी—"क्या आप बता सकते हैं कि वे ही आपके यथार्थ पिता हैं? यदि हाँ, तो इसका प्रमाण क्या है? क्या इसे आपने अपनी आँखोंसे देखा है कि आपके पिताने आपकी माताका गर्भाधान किया, जिससे आपने जन्म-ग्रहण किया?"

इस प्रश्नको सुनकर मजिस्ट्रेट महोदय लज्जित हो गये और कुछ भी उत्तर न दे सके।

गुरुजी—"नहीं! जन्मसे पूर्वकी इस घटनाको आपने देखा नहीं अतः अदृश्य घटना या चीजपर आप विश्वास करते हैं। आप अवश्य ही अपनी माँ एवं कुटुम्बियोंके कथनपर विश्वासकर उन्हें पिता मानते हैं।"

मजिस्ट्रेट—"आपकी बात तो बिल्कुल ठीक है। मैंने माता एवं कुटुम्बियोंके कथनपर विश्वासकर ही पिताका परिचय पाया है।"

गुरुजी—"इसी प्रकार अपौरुषेय वेद और उनके अनुगत गीता, भागवत, रामायण आदि सभी शास्त्र प्रामाणिक माताके समान हैं। वे पुनः-पुनः ऐसा कहते हैं कि इस विश्वके स्रष्टा एवं सञ्चालक ईश्वर ही हैं। उन्हें ही ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् आदि कहा गया है। यदि आप नाना प्रकारके दोषोंसे युक्त पाठ्य-पुस्तकोंपर तथा त्रुटिपूर्ण, ससीम इन्द्रियोंपर विश्वास करते हैं, तो फिर सब प्रकारके दोषोंसे रहित अपौरुषेय भ्रम-प्रमाद आदि दोषोंसे रहित वेद आदि प्रामाणिक शास्त्रोंपर विश्वास क्यों नहीं करते हैं। वेद आदि शास्त्र मातासे भी अधिक विश्वासयोग्य हैं। वेदमें ऐसा कहा गया है—

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति।
यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म॥
(तै॰ भृगु, १ अनु)

अर्थात् जिससे समस्त प्राणियोंका जन्म होता है, जिससे वे जीवित रहते हैं और अन्तमें जिसमें वे सभी प्रवेश कर जाते हैं, उन्हीं की जिज्ञासा करनी चाहिये, वही ब्रह्म है।

और भी, ब्रह्मसूत्रमें कहा गया है—जन्माद्यस्य यतः अर्थात् जिससे जगत्‌की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होता है, उसे ब्रह्म कहते हैं। गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधाः भावसमन्विताः॥

अर्थात् मैं सबकी उत्पत्तिका कारण हूँ, मुझसे ही सभी कार्यमें प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार समझकर पण्डितगण भावयुक्त होकर मुझे भजते हैं।

वेदशास्त्र अभ्रान्त और परम सत्यके प्रकाशक हैं। ये किसी ससीम बुद्धिवाले मनुष्यके द्वारा रचित नहीं हैं। अनादि कालसे मनु, नारद, व्यास, वाल्मीकि आदि बड़े-बड़े महर्षियोंने इसकी सत्यताकी परीक्षा और उपलब्धि की है। इनके अतिरिक्त श्रीशङ्कराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य आदि मनीषियों एवं आचार्योंने वेदादि शास्त्रोंको प्रमाण

मानकर ईश्वरकी सत्ता स्वीकार की है। अतः अपने कल्याणके लिए आपको भी ऐसा मानना सर्वथा उचित है।"

मजिस्ट्रेट—"आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं समझ रहा हूँ कि अब तक मैं भ्रममें था।"

इतनेमें गाड़ी आगरा केण्ट स्टेशनपर आ खड़ी हुई। वे बड़ी श्रद्धासे गुरुजीका चरण स्पर्श करते हुए बोले—"मुझे यहाँ उतरना है, भविष्यमें मैं श्रीकेशवजी गौड़ीय मठका दर्शन करूँगा।"

गुरुजीके साथ मजिस्ट्रेटकी वार्त्तालापको सुननेके लिए उत्सुकतावश और भी यात्रीगण वहाँ बैठ गये थे। उनकी वार्त्तालाप सुनकर अन्य यात्रीगण भी प्रभावित हुए और रास्तेभर गुरुजीसे धर्मविषयपर चर्चा करते रहे।

(ग) साम्यवादी ज्योति बाबूके साथ वार्त्तालाप

बात सन् १९५१-५२ ई॰ सुन्दरवन पश्चिम बंगालकी है। परमाराध्य गुरुदेव श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके पूर्व सुन्दरवनमें शुद्धभक्तिका प्रचार करने, श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके लिए श्रद्धालुओंको निमन्त्रण देने तथा परिक्रमाके लिए आनुकूल्य संग्रह करने सुन्दरवन अञ्चलमें गये हुए थे। एक दिन श्रीगुरुदेव हमलोगोंको साथ लेकर किसी श्रद्धालु भक्तके घर जा रहे थे। उसी समय बंगालके साम्यवादी पार्टीके प्रधान सभापति ज्योति बाबू (बंगालके वर्त्तमान मुख्यमन्त्री) भी अपने कुछ अनुयायियोंके साथ आ रहे थे। वे उस अञ्चलमें बाढ़ग्रस्त क्षेत्रकी स्थितिका निरीक्षण करनेके लिए विपक्षी पार्टीके नेताके रूपमें आ रहे थे। श्रीगुरुदेवको त्रिदण्डसहित भगुवे वस्त्रमें देखते ही वे ठहर गये और उन्होंने उद्दण्डतापूर्वक पूछा—"आपलोग कहाँसे आ रहे हैं?" श्रीलगुरुदेवने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—"हमलोग श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति, श्रीनवद्वीपधामसे आ रहे हैं।"

ज्योति बाबू—"क्या आपलोग बाढ़ग्रस्त क्षेत्रकी स्थितिका निरीक्षण करने एवं लोगोंसे सहानुभूति प्रदर्शन करने आये हैं?"

गुरुदेव—"हमलोग जीवोंके नित्य कल्याणके लिए शुद्ध वैष्णवधर्मका प्रचार करने तथा श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमाके लिए यत्किञ्चित् आनुकूल्य संग्रह करने आये हैं।"

ज्योति बाबू—“क्या आपलोग यह नहीं देख रहे हैं कि भीषण बाढ़से जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है, इनकी फसल मारी गयी है, गाँवके गाँव डूब गये हैं। लोग अन्न और वस्त्रके लिए, दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा कर रहे हैं, फिर भी आप इन्हीं लोगोंसे भीख माँगने आये हैं?”

गुरुदेव—“बाढ़ आयी है! कहाँ बाढ़ आयी है? अभी तक आपके होठोंमें लगे सिगरेटकी आग तक नहीं बुझी है, फिर बाढ़ कहाँ! महाशयजी यह बाढ़ यथार्थतः बाढ़ नहीं है। हम तो जीवोंके जन्म-जन्मान्तरोंकी लगी हुई प्रलयाग्निको बुझानेके लिए तथा जल-प्लावनसे प्राणियोंकी रक्षा करने, उन कृष्णविमुख जीवोंको उनका स्वरूपगत नित्य-आनन्द प्राप्त करानेके लिए यहाँ आये हैं। जीव जब तक धार्मिक जीवन ग्रहण नहीं करता, जब तक भगवत्-आराधना नहीं करता, तब तक वह कदापि सुखी नहीं हो सकता। नास्तिक जीवन पशुजीवन है। आप पाश्चात्य सभ्यता ग्रहणकर बंगाल और भारतका सर्वनाश करने जा रहे हैं।”

ज्योति बाबू—“हम वेदशास्त्र नहीं मानते। हम पुरुषार्थपर विश्वास करते हैं। कर्म ही जीवन है, कर्म ही ईश्वर है। आपलोगोंके कारण ही यह देश रसातलमें चला गया। आपलोग स्वयं कर्म करें और कर्मकी शिक्षा दें। भीख माँगना कापुरुषोंका कार्य है।”

गुरुदेव—“भारतका सर्वनाश आप जैसे नास्तिकोंके कारण हुआ है। जब तक भारतीय राजनीति धर्मसे शासित होती थी, लोग ईश्वर-विश्वासी और धार्मिक थे, तब तक देश विश्वके अन्यान्य देशोंसे सभ्य और सुखी था। प्राचीन कालमें आपसे बड़े-बड़े कर्मियोंकी दुर्गतिका उल्लेख शास्त्रोंमें है; यथा—महाकर्मवीर हिरण्यकशिपु, रावण, दुर्योधन, कंस। मध्यकालीन—सिकन्दर, नेपोलियन और आधुनिक युगके हिटलर, मुसोलिनी, लेनिन आदि बड़े-बड़े कर्मवीरोंकी दुर्गति आपने लक्ष्य नहीं की है? चार्वाक आदि नास्तिकोंके लिए भारतमें स्थान नहीं है। भारत एक सनातन धर्मीय देश है। कोई भी व्यक्ति कितना भी प्रभावशाली क्यों न हो, वह इस सनातन धर्मको नष्ट नहीं कर सकता। एक दिन ऐसा आयेगा, जिस दिन आपको पश्चाताप करनेका भी सुयोग नहीं मिलेगा।”

ज्योति बाबू गुरुदेवका यह उत्तर सुनकर निरुत्तर हो गये और झुँझलाते हुए अपने अनुयायियोंके साथ चले गये।

श्रीगुरुदेव निरपेक्ष सत्यके निर्भीक वक्ता थे। बड़े-बड़े तार्किक भी उनकी प्रबल युक्तियोंके सामने नतमस्तक हो जाते।

(घ) श्रीगुरुदेव और भिक्षाके द्रव्य

एक समय (सन् १९५१ के लगभग) श्रील गुरुदेव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रधान कार्यालय श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें रहते थे और वहींसे सर्वत्र शुद्धभक्तिका प्रचार करते थे। मठकी सेवा-पूजा तथा श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा आदिका सञ्चालन मधुकरी भिक्षाके द्वारा ही चलता था। श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाके पूर्व परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराजजीके साथ मैं भी कलकत्ताके समीप श्रीरामपुर एवं आसपासके शहरोंमें प्रचार एवं भिक्षाके लिए गया था। पन्द्रह दिनोंके बाद हमलोग प्रचार और भिक्षाकर श्रीउद्धारण गौड़ीय मठमें लौटे। कुल ढाई सौ रुपये भिक्षामें मिले थे, जो उस समय एक बड़ी राशि थी। मैंने आते ही परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्होंने आशीर्वाद देनेके बाद पूछा—"कैसा प्रचार रहा?" मैंने उत्तर दिया—"प्रचार बहुत ही अच्छा रहा। लगभग ढाई सौ रुपये भिक्षामें प्राप्त हुए।" गुरुजी बड़े प्रसन्न हुए।

कुछ ही देरमें पूज्यपाद नारसिंह महाराजजीने गुरुजीके सम्मुख उपस्थित होकर उन्हें प्रणाम किया और भिक्षामें प्राप्त रुपयोंको गुरुजीके हाथोंमें दिया। श्रीगुरुदेवने पूछा—"कितने रुपये हैं?" पूज्यपाद नारसिंह महाराजने उत्तर दिया—"दो सौ पच्चीस रुपये।" श्रीगुरुदेवने कहा—"बाकी पच्चीस रुपये कहाँ हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"कुछ रुपये मैंने हाथ-खर्चके लिए रख लिये हैं।" श्रीगुरुदेवने कहा—"अभी भिक्षाके इन रुपयोंको लाकर मुझे दें।" श्रीपाद् नारसिंह महाराजने कुछ क्रोधित होकर कहा—"क्या हमलोग हाथ-खर्चके लिए दो-चार रुपये भी नहीं रख सकते?" श्रीगुरुदेवने उत्तर दिया—"पहले मुझे दे तो दीजिये।" पूज्यपाद महाराज कुछ झुँझलाते हुए अपनी भजनकुटीमें गये और बाकीके पच्चीस रुपये लाकर उनके सामने पटक दिये। गुरुजीने उन रुपयोंको अपने हाथोंमें लेकर गिने

और फिर ज्यों-के-त्यों उन्हें लौटाने लगे। पूज्यपाद नारसिंह महाराजने कहा—"यदि देना ही था, तो लेनेकी क्या आवश्यकता थी।" श्रीगुरुदेव कुछ गम्भीर होकर बोले—"विषयी लोगोंके अन्न, अर्थ इत्यादिमें विष होता है। उस विषको हजम करना साधारण लोगोंके लिए सम्भव नहीं है। शास्त्रोंमें भी ऐसा लिखा गया है कि विषयीका अन्न खानेसे साधकका चित्त मलिन हो जाता है और मलिन चित्तसे भगवान्‌का स्मरण नहीं हो सकता। इसलिए साधकोंको सर्वदा सावधान रहना चाहिये। श्रीरघुनाथदास गोस्वामी इसके साक्षात् प्रमाण हैं। उन्होंने वैष्णवप्राय अपने पिताजी द्वारा भेजे गये अर्थको इसीलिए ग्रहण नहीं किया। अच्छे-अच्छे साधक भी विषयीका अन्न खानेके कारण भजनराज्यसे च्युत हो चुके हैं। इसीलिए मैं विषयी लोगोंसे प्राप्त इस विषमिश्रित अर्थको आपसे लेकर उसे शुद्धकर अब आपको लौटा रहा हूँ। अब इसमें कोई दोष नहीं है। श्रीहरि, गुरु और वैष्णवोंकी सेवाके नामपर माँगी गयी भिक्षाका एक पैसा भी यदि अपनी सेवामें लगाया जाय तो उससे अमङ्गल अवश्यम्भावी है। मैं भिक्षाका एक पैसा भी अपने उपयोगमें नहीं लाता। जिनका तन-मन-वचन सबकुछ श्रीलगुरुदेव एवं भगवान्‌के चरणोंमें अर्पित हो चुका है, जो पूर्ण रूपसे भगवच्चरणोंमें आत्मनिवेदन कर चुके हैं, जिनमें भजनका बल है—ऐसे अधिकारी वैष्णव ही इसका हरि-गुरु-वैष्णवकी सेवामें उपयोग कर सकते हैं। साधारण मठवासी ऐसा नहीं कर सकते।"

इतना सुनते ही पूज्यपाद नारसिंह महाराजजी अत्यन्त लज्जित हुए। उनके हृदयकी सारी ग्लानि दूर हो गयी। वे नतमस्तक होकर नम्रतापूर्वक बोले—"क्षमा करें! मैंने इस विषयको कभी इतनी गम्भीरतासे नहीं लिया। आप जो कुछ कह रहे हैं, वह पूर्णतः ठीक है। मैंने सारे जीवनके लिए यह शिक्षा ग्रहण की।"

इसके द्वारा यह शिक्षा मिलती है कि विषयी लोगों द्वारा भिक्षाके रूपमें प्रदत्त अर्थ या वस्तुओंको कभी भी स्वयंके उपभोगमें नहीं लगाना चाहिये। उन्हें गुरुदेव या वैसे उन्नत वैष्णवोंके श्रीचरणोंमें समर्पित कर देना चाहिये, क्योंकि वे उन वस्तुओंको भगवत्सेवामें युक्त कर सकते

हैं। अन्यथा उनका विष साधकजीवनके लिए प्राणघातक स्वरूप है। श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—

विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन।
मलिन मन हइले, नहे कृष्णेर स्मरण॥

(चै॰ च॰ अ॰ ६/२७८)

प्रतिग्रह कभु ना करिबे राजधन।
विषयीर अन्न खाइले दुष्ट हय मन॥

मन दुष्ट हइले नहे कृष्णेर स्मरण।
कृष्णस्मृति बिना हय निष्फल जीवन॥

(चै॰ च॰ आ॰ १२/५०-५१)

(ङ) श्रीगुरुदेव और जीवका स्वरूप

सन् १९५५, कार्त्तिक-व्रत नियमसेवाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके आनुगत्यमें चौरासी कोस व्रजमण्डल-परिक्रमा सम्पन्न हुई। परिक्रमाके समाप्त होनेपर एक दिन अन्यान्य गौड़ीय मठोंसे श्रीलप्रभुपादके चरणाश्रित कुछ प्रवीण संन्यासीगण श्रीगुरुदेवसे मिलने श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा आये। श्रीगुरुदेवके साथ भी श्रीलप्रभुपादके कुछ वरिष्ठ संन्यासी-ब्रह्मचारीगण परिक्रमामें सम्मिलित हुए थे। अतः उस दिन सतीर्थोंके एकत्र उपस्थित रहनेके कारण एक विशेष इष्टगोष्ठी सम्पन्न हुई। उस इष्टगोष्ठीमें श्रीगुरुदेवके अतिरिक्त प्रपूज्यचरण श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव महाराज, श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी (श्रीश्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज), श्रीमहानन्द ब्रह्मचारी (श्रीश्रीमद्भक्तिआलोक परमहंस महाराज), श्रीश्रीमद्भक्तिविवेक हृषीकेश महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिविज्ञान आश्रम महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिप्रापण दामोदर महाराज, श्रीश्रीभक्तिजीवन जनार्द्दन महाराज प्रमुख संन्यासी-ब्रह्मचारीगण उपस्थित थे। इनमें श्रीपाद भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज कम उम्रके थे, किन्तु थे बहुत ही तत्त्व-जिज्ञासु। उन्होंने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर

कहा—"जीव-स्वरूपके सम्बन्धमें मुझे बहुत दिनोंसे एक शङ्का है। मैंने बहुत-से गोस्वामी-ग्रन्थोंका अवलोकन किया, अपने अग्रज गुरुभ्राताओंसे भी पूछा, किन्तु वह शङ्का अभी तक दूर नहीं हुई। श्रीचैतन्यचरितामृतमें सनातन-शिक्षाके प्रसङ्गमें जीवको कृष्णका नित्य दास और तटस्था-शक्तिसे प्रकाशित बताया गया है—

जीवेर स्वरूप हय नित्य-कृष्णदास।
कृष्णेर तटस्थाशक्ति भेदाभेद-प्रकाश॥

"इस पयारके द्वारा यह प्रतीत होता है कि जीवके नित्य स्वरूपमें ही कृष्णदासत्व निहित है। तब उसके स्वरूपमें उसकी सेवा, नाम, रूप आदि भी किसी-न-किसी रूपमें अवश्य रहती है, जो अभी मायाके द्वारा ढकी हुई है। दूसरी ओर वह तटस्थाशक्तिका परिणाम है, अतः उसका स्वरूप भी तटस्थ होना चाहिये। 'गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्तिलता बीज' (चै॰ च॰ म॰ १९/१५१) इसके द्वारा प्रतीत होता है कि जीवका स्वरूप अणुचित् है, गुरु और कृष्णके प्रसादसे उसे भक्तिलताका बीज प्राप्त होता है एवं उसीके अनुरूप उसकी सिद्धि होती है।

"श्रीलनरोत्तम ठाकुरने भी कुछ ऐसा ही कहा है—'साधने भाविबे जाहा सिद्धदेहे पाइबे ताहा रागपथेर एइ से उपाय।'

"इसके द्वारा भी यह सूचित होता है कि साधुसङ्गके आनुगत्यमें जैसी साधना होगी, उसीके अनुरूप उसकी सिद्धि होगी।

"साधारण दृष्टिसे इनमें विरोधाभास दीखता है। अतएव जीवके नित्य स्वरूपमें किसी विशेष सेवाकी वृत्ति आदि नित्य है और उसीके अनुरूप सिद्धि होती है अथवा साधनके अनुरूप सिद्धि होती है? मेरी इस शङ्काको दूर कीजिये।"

प्रपूज्यचरण यायावर महाराजजी इस प्रश्नको सुनकर बड़े आनन्दित हुए और पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजसे इसका उत्तर देनेके लिए निवेदन किया। प्रपूज्यचरण श्रीधरमहाराजजी वैष्णवशास्त्रोंके पारङ्गत विद्वान एवं दार्शनिक पण्डित थे। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक प्रश्नका उत्तर देना आरम्भ किया—

"जीव स्वरूपतः चित्सूर्यरूपी श्रीकृष्णके अणुचित् कणके समान है। इसे गोस्वामी ग्रन्थोंमें ब्रह्मका विभिन्नांश तत्त्व बतलाया गया है। विभिन्नांश

तत्त्वका तात्पर्य यह है कि अघटन-घटन-पटीयसी शक्तियुक्त भगवान् जब केवल अपनी अणुचित् जीवशक्तिके साथ युक्त रहते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है उसे विभिन्नांश जीव कहते हैं, किन्तु वे ही भगवान् जब अपनी समस्त शक्तियोंके साथ होते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है, वह स्वांश कहलाता है। अतः विभिन्नांश जीव नित्य हैं। उनमें भगवत्सेवाकी परिपाटी, नाम, रूप आदि अवश्य ही हैं। मायाके द्वारा आच्छादित रहनेके कारण जीवका चिन्मयस्वरूप माया द्वारा आच्छादित रहता है। भगवत्कृपासे साधुसङ्गमें भजन करते-करते मायाकी निवृत्ति होनेपर जिसका जैसा स्वरूप है, वैसा ही प्रकटित होता है। परन्तु यह भी निश्चित है कि साधुसङ्गके बिना उसकी मायाकी निवृत्ति नहीं हो सकती तथा जीवके स्वरूपका उन्मेष भी नहीं हो सकता है। अतएव साधुसङ्ग भी अपरिहार्य है। साधुसङ्गके अनुरूप ही यदि जीवके स्वरूपका उन्मेष होना मान लिया जाय, तो इसमें बहुत-सी विसङ्गतियाँ दीख पड़ती हैं। जैसे—श्रीमन्महाप्रभु या उनके परिकरोंके सङ्गसे भी अनुपम गोस्वामी और मुरारि गुप्तका हृदय नहीं बदल सका। मुरारि गुप्तजीको श्रीरामचन्द्रजीका परिकर हनुमान माना गया है। श्रीमन्महाप्रभुने हरिकथाके माध्यमसे इनके निकट श्रीरामचन्द्रकी अपेक्षा श्रीकृष्णको अधिक माधुर्यमण्डित एवं समस्त अवतारोंका अवतारी बतलाया। महाप्रभुकी बात सुनकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर श्रीकृष्णका भजन करनेका सङ्कल्प किया, किन्तु दूसरे दिन श्रीमहाप्रभुके सामने रोने लगे और बोले—'मैंने आपके सामने श्रीकृष्णका भजन करनेका सङ्कल्प लिया था, किन्तु रातभर मैं सो नहीं सका। मैंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें मस्तक अर्पित कर रखा है। मैं उन्हें त्याग नहीं सकता। दूसरी ओर आपके वचनोंका उल्लंघन नहीं कर सकता। दोनों ही स्थितियोंमें मेरे प्राण निकल जायेंगे।' ऐसा कहते-कहते वे श्रीमहाप्रभुके चरणोंमें गिर पड़े।

"श्रीमन्महाप्रभुने उन्हें उठाकर गलेसे लगा लिया और कहा—'तुम्हारा जीवन धन्य है। तुम श्रीरामचन्द्रके नित्य परिकर हो। तुम जैसे उनकी सेवा कर रहे हो, तुम्हारे लिए वही श्रेयस्कर है। तुम्हारे भावोंको जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।'

"दूसरी ओर श्रीचैतन्यमहाप्रभु दक्षिण भ्रमणके समय श्रीरङ्गममें श्रीव्येङ्कट भट्ट, श्रीत्रिमल्ल भट्ट, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती और व्येङ्कट भट्टके पुत्र गोपाल भट्टसे मिले। कथा प्रसङ्गमें श्रीमन्महाप्रभुने श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंसे श्रीकृष्णस्वरूपके माधुर्य आदिकी उत्कर्षताका श्रवण कराते हुए व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी चारु-उत्कर्षता प्रमाणित की, जिससे इन सबका हृदय बदल गया और सभी कृष्णमन्त्रमें दीक्षित होकर व्रजभावके अनुसार कृष्णसेवामें नियुक्त हुए।

"इसमें लक्ष्य करनेका एक विषय यह है कि हमारे गोस्वामियोंके विचारसे श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती व्रजलीलामें तुङ्गविद्या सखी हैं तथा गोपाल भट्ट गोस्वामी श्रीगुणमञ्जरी हैं। ये दोनों किसी लीलाके उद्देश्यसे दक्षिण भारतमें आविर्भूत होकर श्री सम्प्रदायमें दीक्षित होकर साधन-भजन कर रहे थे। ये स्वरूपतः व्रजकी गोपी थे। अपने पूर्व जीवनमें श्री सम्प्रदायमें दीक्षित होनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुके सङ्गप्रभावसे पुनः श्रीकृष्णसेवामें आकर्षित हुए।

"इसी प्रकार श्रीरूप-सनातनने अपने अनुज श्रीबल्लभ या अनुपमको श्रीकृष्णस्वरूपका सौन्दर्य, माधुर्य एवं प्रेमविलासका चरमोत्कर्ष बताकर उन्हें कृष्णभजन करनेका परामर्श दिया। अनुपम दोनोंकी बातें सुनकर बड़े ही प्रभावित हुए और उन्होंने कृष्णमन्त्रकी दीक्षा लेकर कृष्णभजन करनेकी इच्छा प्रकट की। किन्तु दूसरे दिन प्रातः रोते-रोते अपने अग्रजोंके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें मैंने अपना मस्तक बेच दिया है। आपलोग कृपा करें कि मैं जन्म-जन्मान्तरोंमें उनके श्रीचरणोंकी सेवा करूँ। उनके श्रीचरणोंको त्यागनेकी चिन्ता करते ही मेरा हृदय फट जाता है—

रघुनाथेर पादपद्म छाड़ान न जाय।
छाड़िवार मन हैले प्राण फाटि जाय॥

(चै॰ च॰ अ॰ ४/४२)

"छोटे भाईकी बात सुनकर श्रीरूप-सनातन बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें साधुवाद देते हुए अपने आलिङ्गनपाशमें बाँध लिया।

"इससे यह प्रतीत होता है कि साधुसङ्गसे जीवके स्वरूपोन्मेषमें सहायता तो मिलती है, किन्तु साधुसङ्ग उसके स्वरूपको बदल नहीं सकता।"

ऐसा कहते हुए प्रपूज्यचरण श्रीधरमहाराजजीने अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे इस विषयमें कुछ कहनेका अनुरोध किया। श्रीलगुरुदेवने कहा—"हमने जहाँ तक गौड़ीय वैष्णव साहित्यको देखा है और विचार किया है, उससे आपके ही सिद्धान्तकी पुष्टि होती है। जीवका अपना एक सिद्ध-स्वरूप है। उसके स्वरूपगत नाम, रूप आदि सभी नित्य हैं। अलग-अलग जीवोंका अपना-अपना भिन्न स्वरूप है। मायाके द्वारा आच्छादित होनेपर जीव अपना स्वरूप भूल जाता है। सौभाग्यवश शुद्ध साधुसङ्ग और गुरुकृपा प्राप्त होनेपर क्रमशः माया दूर होने लगती है और उसके स्वरूपका उन्मेष होने लगता है। इस प्रक्रियाके लिए एक प्राकृत उदाहरण दिया जा सकता है। जैसे एक नदीके किनारे आम, कटहल आदि विभिन्न प्रकारके बीज एक ही भूखण्डमें बोकर उन्हें एक ही नदीके पानीसे सींचा जाय, उनपर एक ही सूर्यका प्रकाश लगे, एक ही हवा प्राप्त हो, तो भी उन पृथक्-पृथक् बीजोंसे पृथक्-पृथक् पौधे या वृक्ष होंगे। उनमें फल भी पृथक्-पृथक् ही लगेंगे। एक ही मिट्टी, जल, वायु, प्रकाशमें पालित-पोषित होनेपर भी उन बीजोंसे एक ही तरहके पौधे या फल नहीं हो सकते। यह भी सत्य है कि जल, हवा, सूर्यताप आदिके बिना वे अङ्कुरित होकर पूर्ण स्वरूपको प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु दूसरी ओर यह भी सत्य है कि एक प्रकारका सङ्ग पानेपर भी उन अलग-अलग बीजोंका स्वरूपगत वृक्ष, फल और स्वाद आदि ही प्रकाशित होते हैं। यद्यपि बीजमें इनकी अभिव्यक्ति नहीं है, फिर भी अव्यक्त रूपमें अङ्कुर, वृक्ष, पत्ते, डालियाँ, फूल, फल, आयु, स्वाद आदि सभी चीजें विद्यमान हैं। इनका कभी भी व्यभिचार नहीं देखा जाता।

"इसी प्रकार जीवस्वरूपमें अव्यक्त रूपसे स्वरूपगत नाम, रूप, अङ्ग-प्रत्यङ्ग, स्वभाव सब कुछ अनुस्यूत रहता है। सद्‌गुरु एवं वैष्णवोंके सङ्गसे जिस समय ह्लादिनी एवं सम्वितका सार जीवस्वरूपपर उदित

होता है, उस समय जीवका जैसा स्वरूप है, क्रमशः वैसा ही प्रकाशित होने लगता है।

"एक दूसरा प्रादेशिक उदाहरण दिया जा सकता है कि एक ही स्वाति नक्षत्रका जलविन्दु सीप, केला, सर्प, हाथी, गोखुर आदिपर पड़नेसे सीपमें मोती, केलेमें कर्पूर, सर्पमें मणि, हाथीमें गजमुक्ता तथा गो-खुरमें गोरोचना उत्पन्न होता है। यहाँ जैसे एक ही जल आधारकी विभिन्नताके कारण विभिन्न वस्तुओंको प्रकट करता है, उसी प्रकार एक ही गुरु या एक ही वैष्णवके सङ्ग-प्रभावसे विभिन्न शिष्योंमें भिन्न-भिन्न रसोपासना एवं सिद्धि दृष्टिगोचर होती है। जैसे जैवधर्ममें श्रीव्रजनाथ एवं विजयकुमारने एक ही गुरु रघुनाथदास बाबाजीसे सब कुछ श्रवण किया। फिर भी उनकी भिन्न-भिन्न रुचियाँ प्रकट हुईं। सिद्धि होनेपर भी व्रजनाथकी सिद्धि सख्यरसमें और विजय कुमारकी सिद्धि मधुररसमें हुई।

"श्रीबृहद्भागवतामृतके अनुसार श्रीनारद गोस्वामी और श्रीउद्धवने गोपकुमारको देखकर गोपकुमारके स्वरूपका निर्णय पहले ही कर लिया कि ये सख्यरसके परिकर हैं। श्रीनारद गोस्वामी, उद्धवजी, हनुमानजी आदि किसीके सङ्गके प्रभावसे इनके स्वरूपगत सख्य भावका परिवर्तन नहीं हुआ। यदि सङ्गसे स्वरूपगत सेवाका परिवर्तन होता तो गोपियोंके सङ्गसे उद्धवका स्वरूप क्यों नहीं परिवर्तित हुआ। श्रीमती यशोदाका भी स्वरूप गोपियोंके सङ्गसे परिवर्तित नहीं हुआ। इसका गूढ़ तात्पर्य यह है कि साधक-अवस्थामें जब तक स्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती, तब तक अपने सङ्गके अनुसार साधक साधन-भजन करता है। किन्तु अनर्थोंके दूर होनेपर उसका स्वरूपगत भाव कुछ-कुछ रुचि आदिके रूपमें—आभासके रूपमें अपना परिचय देने लगता है। श्रीगुरुदेव उसके स्वरूपगत रुचि आदिको लक्ष्यकर वैसे ही सम्बन्ध और एकादश प्रकारके भावोंको इङ्गितकर उन्हें भजनमें अग्रसर कराते हैं।

"कभी-कभी स्वरूपगत उच्च रसका साधक दास्य, सख्य आदि रसके भक्तके सङ्गसे निम्न रसोंकी उपासना कर सकता है। किन्तु बादमें उसकी सन्तुष्टि नहीं होनेपर उच्च सङ्गको पाकर पूर्वगत भावोंका परित्यागकर अपने स्वरूपगत भावोंको प्राप्त करता है।

"इस विषयमें सप्तम गोस्वामी श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके विचार सुस्पष्ट हैं। उन्होंने 'चेतोदर्पणमार्जनं' की व्याख्यामें लिखा है—'चेतोदर्पणमार्जनं इत्यादिना जीवस्य स्वरूपतत्वं विवृतम्। तथा श्रीमज्जीववचरणाः— जीवाख्य-समष्टशक्ति विशिष्टस्य परमतत्त्वस्य खल्वंश एकोजीवः। तथा श्रीमद्वेदान्तभाष्यकारोऽपि—विभुचैतन्यमीश्वरोऽणुचैतन्यं जीवः, नित्यं ज्ञानादि-गुणकत्वं अस्मदर्थत्वं चोभयत्र ज्ञानस्यापि ज्ञातृत्वं प्रकाशस्य रवेः प्रकाश-कत्ववदविरुद्धम्। एतेन जीवस्याणुत्वं चित्स्वरूपत्वं शुद्धाहङ्कार-शुद्धचित्त-शुद्धदेहविशिष्टत्वञ्च ज्ञापितम्। परेशवैमुख्यात् बहिरङ्गभावाविष्टत्वाच्च शुद्धाहङ्कारगत शुद्धचित्तस्याविद्यामलदूषणमपि सूचितम्।

"अर्थात् 'चेतोदर्पणमार्जनम्' इत्यादिके द्वारा जीवके स्वरूपतत्त्वका बोध कराया गया है। इस् विषयमें जीव गोस्वामीका सिद्धान्त यह है कि जीव नामक समष्टिशक्तिसे युक्त परमतत्त्वका एक क्षुद्र अंश जीव कहलाता है। वेदान्तसूत्रके श्रीगोविन्द-भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी ऐसा ही विचार प्रकट किया है—ईश्वर विभु-चैतन्य हैं और जीव अणु-चैतन्य है। ईश्वरमें अखिल कल्याणकारी अनन्त सद्‌गुण नित्य विराजमान रहते हैं। उनमें मैं-पनरूप निर्मल अहङ्कार रहता है। वे ज्ञानस्वरूप और ज्ञाता स्वरूप दोनों हैं। उसी प्रकार जीवका भी अपना एक शुद्ध स्वरूप है। इनमें भी आंशिक गुणसमूह और शुद्ध अहङ्कार होता है। ऐसा होना युक्तिविरुद्ध नहीं है, क्योंकि सूर्यके गुण उसके रश्मि परमाणुओंमें भी देखे जाते हैं। इसी प्रकार परतत्त्वके गुण आंशिक रूपमें जीवोंमें लक्षित होते हैं। परमेश्वरसे विमुख होनेपर मायाके द्वारा जीवका यह शुद्धस्वरूप आच्छादित हो जाता है। पुनः परमेश्वरके प्रति उन्मुख होनेपर जीवोंके शुद्ध स्वरूप और गुणोंको आवृत करनेवाली मायाका आवरण हट जाता है। तदनन्तर उन्हें स्व-स्वरूपका साक्षात्कार होता है। इस सिद्धान्तसे यह स्पष्ट है कि जीव अणुचित् हैं। उनका एक चिन्मय स्वरूप है। उस स्वरूपमें उनका शुद्ध अहङ्कार, शुद्ध चित्त, शुद्ध रूप और सेवा आदिकी परिपाटी भी निश्चित है। श्रवण-कीर्त्तन करते-करते जिस समय साधक-जीवके हृदयमें शुद्धभक्तिका उदय होता है, उस समय भगवत्सेवाके अतिरिक्त अन्यान्य कामना-वासनाओंको दूर करनेवाली ह्लादिनी एवं सम्वित्‌की सारवृत्ति भक्तिदेवी उक्त अविद्याको

दूरकर विद्यावृत्तिके द्वारा जीवके स्थूल और लिङ्गमय दोनों आवरणोंको विनष्ट कर देती है। साथ-ही-साथ जीवके स्वरूपगत शुद्ध चिन्मय शरीरको, यहाँ तक कि अधिकार भेदसे मधुररस आस्वादन योग्य शुद्ध चिन्मय गोपीदेहको भी प्रकट करा देती है—श्रवण-कीर्त्तनादिसाधनसमये यदा शुद्धाभक्तिरुदेति तदा स्वस्याऽविद्यत्वं परिहृत्य विद्यया चिदेतर वितृष्णाजननी सापि जीवस्य स्थूललिङ्गमयसौपाधिकदेहद्वयं विनाश्य तस्य स्वरूपगत शुद्धचिद्देहं अधिकारभेदेन मधुररसास्वादनायतनं गोपिकादेहमपि प्रकटयति।

"प्रेमभक्तिचन्द्रिकामें—'साधने भाविबे जाहा सिद्धदेहे पाइबे ताहा' तथा हरिभक्तिसुधोदयमें—'यस्य यत्संगतिः पुंसो मणिवत् स्यात् स तद्गुणः' के विचारोंका सामञ्जस्य करना उचित है। इनका यह तात्पर्य नहीं है कि जीवका स्वरूप स्वच्छ निर्मल काँचके समान है और सङ्गके अनुरूप उसका सिद्धस्वरूप उदित होता है, बल्कि जब बद्धजीव शुद्ध सद्गुरु एवं वैष्णवोंके सङ्गमें श्रवण-कीर्त्तन आदि शुद्धभक्तिका अनुष्ठान करता है, उस समय उस स्वरूप सिद्धा भक्तिके प्रभावसे अविद्याका मल, अनर्थ आदि विदूरित होने लगते हैं तथा जीवके स्वरूपगत लक्षण आभासके रूपमें उदित होने लगते हैं। ऐसे साधकोंके लिए ही श्रील रूपगोस्वामीने स्वजातीय आशय स्निग्ध वैष्णवोंके सङ्गका उपदेश दिया है। दीक्षागुरु, श्रवणगुरु अथवा शिक्षागुरु उस समय साधकके हृदगत लक्षणोंको देखकर उसे भजनमार्गमें उन्नतिके लिए श्रीरागानुगा-मार्गमें वर्णित एकादशभावोंको प्रदान करते हैं। इस प्रकार साधक इस अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहसे भाव भजन करता है, अपने सिद्धस्वरूपको प्रकट करनेके लिए। इसीके उदाहरणस्वरूप श्रीमद्भागवतमें निम्नलिखित श्लोक दिया गया है—

कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन्।
संरम्भभययोगेन विन्दते तत्स्वरूपताम्॥

(श्रीमद्भा॰ ७/१/२७)

"अर्थात् एक भृङ्गीकीट अपनेसे दुर्बल तेलचट्टा कीड़ेको जबरदस्ती दीवारपर अपने छिद्रमें बन्द कर देता है और वह भय एवं उद्वेगसे

उस भृङ्गीका चिन्तन करते-करते उसके ही जैसा हो जाता है। यही बात रागानुगीय साधक भक्तोंके सम्बन्धमें भी है। वे भी साधनके समय अन्तश्चिन्तित देहसे श्रीकृष्ण एवं कृष्णके लीला-परिकरोंकी सेवाका चिन्तन करते-करते आविष्ट हो जाते हैं और अन्तमें स्थूल-लिङ्ग शरीरको छोड़कर अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहके अनुरूप व्रजमें जन्म-ग्रहण करते हैं और वैसी सेवाको प्राप्त करते हैं।

"अतः जीवका स्वरूपगत रूप, नाम, भाव बद्ध अवस्थामें भी अव्यक्त रूपसे निहित रहता है। स्वरूपशक्तिकी ह्लादिनी एवं सम्वित्‌की सार वृत्तिकी कृपासे उसका प्रकाशमात्र होता है—'नित्य सिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता।' साधनके द्वारा सर्वथा नवीन चीजकी प्राप्ति नहीं होती। बल्कि जीवके स्वरूपमें जो नित्य सिद्ध भाव हैं, उन्हें प्रकट कराना ही साधन है।"

इतना सुनकर वैष्णवगण बड़े आह्लादित हुए। विशेषकर श्रीपाद भक्तिविकाश हृषीकेश महाराज कृतज्ञता व्यक्त करते हुए बोले—"आज हमारा बहुत दिनोंका संशय दूर हो गया। इसके लिए मैं आपलोगोंका चिरऋणी हूँ।"

(च) पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा और भागवत-परम्परा

आजकल कुछ दिनोंसे श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीगुरु-परम्पराके सम्बन्धमें नए-नए प्रश्नोंके आविष्कार हो रहे हैं। कुछ लोगोंका विचार यह है कि श्रीबलदेव विद्याभूषण मध्व सम्प्रदायमें दीक्षित वैष्णव हैं। वे गौड़ीय वैष्णव नहीं थे। गौड़ीय वैष्णवोंका सङ्ग प्राप्त होनेपर भी मध्व सम्प्रदायका प्रभाव इनके ऊपर इतना अधिक था कि इन्होंने स्वरचित ग्रन्थोंमें हठपूर्वक श्रीचैतन्यमहाप्रभु एवं उनके अनुगत श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायको मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त किया है। अतः इन्हें श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका आचार्य नहीं माना जा सकता। कुछ अनभिज्ञ लोग कहते हैं—जगद्‌गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादजीने एक नवीन भागवत-परम्पराकी सृष्टि की है। इस भागवत-परम्परामें इन्होंने श्रील

भक्तिविनोद ठाकुरको वैष्णव सार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजका शिष्य तथा श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराजको श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरका शिष्य बतलाया है। कुछ सहजिया वैष्णव लोग यह भी शङ्का उपस्थित कर रहे हैं कि श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीने स्वयं ही संन्यास ग्रहण किया है, अतः इनकी भी गुरु-परम्परा ठीक नहीं है। इन समस्त आक्षेपोंका परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने सबल युक्तियों एवं शास्त्रोंके सुदृढ़ प्रमाणोंके द्वारा खण्डन किया है। उसका विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

आजकल श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके शिष्य एवं प्रशिष्य सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्ध कृष्णभक्ति और श्रीहरिनामका व्यापक रूपसे प्रचार कर रहे हैं। इनके व्यापक प्रचारसे विश्वके अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, बेलजियम, कनेडा, आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, मलेशिया, सिंगापुर आदि प्रधान-प्रधान समस्त राष्ट्रोंमें, नगरों एवं ग्रामों यहाँ तक कि गली-गलीमें हरिनामकी ध्वनि गुञ्जित हो रही है और विदेशी युवक एवं युवतियाँ भी शुद्धभक्तिके अनुशीलनमें बड़े उत्साहके साथ लग रहे हैं। भारतीय वैष्णवोंके साथ मिलकर सर्वत्र हरिनाम-सङ्कीर्त्तन एवं शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं। इससे क्षुब्ध होकर कतिपय अनभिज्ञ नामधारी सहजिया वैष्णवलोग सारस्वत गौड़ीय वैष्णव धाराके प्रति झूठमूठका आक्षेप उपस्थित कर साधारण जनताको दिग्भ्रान्त करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। श्रील गुरुदेवने गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रीबलदेव नामक स्वरचित प्रबन्धमें इस विषयके एक युक्तिपूर्ण सुसिद्धान्तकी स्थापना की है। हम उस प्रबन्धसे कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहे हैं—

(i) भाष्यकारकी गुरु-परम्परा

'भाष्यकारकी गुरु-परम्पराका विचार करनेपर हम जिस ऐतिहासिक सत्यकी उपलब्धि करते हैं' उसे आपलोगोंके निकट वर्णन किया जा रहा है। उन्होंने सर्वप्रथम विरक्त शिरोमणि पीताम्बरदासके निकट भक्तिशास्त्रमें विशेष निपुणता लाभ की। पश्चात् कान्यकुब्जवासी शौक्र ब्राह्मण कुलोद्भूत श्रीराधादामोदरदास नामक एक वैष्णवके निकट

पाञ्चरात्रिकी दीक्षामें दीक्षित हुए। श्रीराधादामोदरदास रसिकानन्द मुरारिके पौत्र थे। उन्होंने एक दूसरे कान्यकुब्जीय ब्राह्मण श्रीनयनानन्ददेव गोस्वामीके निकट दीक्षा ग्रहण की। रसिकानन्द प्रभु भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणके पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परामें चतुर्थ पुरुष हैं। श्रीरसिकानन्द प्रभु श्रीश्यामानन्द प्रभुके शिष्य थे। पहले जिन नयनानन्ददेव गोस्वामीका उल्लेख किया गया है वे श्रीरसिकानन्दके पुत्र थे। श्रीश्यामानन्दके गुरु श्रीहृदय-चैतन्य और हृदय-चैतन्यके गुरु गौरीदास पण्डित थे, श्रीमन्नित्यानन्द प्रभुने गौरीदास पण्डितके ऊपर कृपा की थी। श्रीश्यामानन्द प्रभु आचार्य हृदय-चैतन्यके शिष्य होनेपर भी परवर्तीकालमें उन्होंने श्रीजीवगोस्वामीका शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीजीवगोस्वामी रूप गोस्वामीके शिष्य और श्रीरूपगोस्वामी श्रीसनातन गोस्वामीके शिष्य थे। श्रीसनातन गोस्वामी श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत परिकर थे।

(ii) भाष्यकारकी शिष्य-परम्परा

श्रीमन्महाप्रभुसे प्रारम्भकर भाष्यकार श्रीबलदेव विद्यभूषण तक की पाञ्चरात्रिक परम्पराका उल्लेख किया गया है। नीचे शिष्य-परम्पराका उल्लेख किया जा रहा है—श्रीउद्धरदास, कहीं-कहीं उद्धवदासका भाष्यकारके शिष्यरूपमें उल्लेख देखा जाने है। किसी-किसी मतसे ये दोनों पृथक् व्यक्ति हैं। जैसा भी हो उद्धवदासके श्रीमधुसूदनदास नामक शिष्य थे। जगन्नाथदास बाबाजी महाराज इन्हीं मधुसूदनदासके शिष्य थे। ये सिद्ध जगन्नाथदासके नामसे कुछ दिन पूर्व माथुरमण्डल, क्षेत्र-मण्डल और गौड़मण्डलमें सार्वभौम वैष्णवके रूपमें प्रसिद्ध हुए। इन सिद्ध जगन्नाथ दास बाबाजी महाराजको ही श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने भागवत-परम्परा क्रमसे भजन शिक्षागुरु रूपमें ग्रहण किया। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने वैष्णव सार्वभौम जगन्नाथदास बाबाजी महाराजके निर्देशानुसार श्रीमन्महाप्रभुके जन्मस्थल श्रीधाम मायापुरका प्रकाश किया था। श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी महाराजके शिक्षागुरु या भजनगुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर थे। श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराजजीने मेरे गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' को दीक्षामन्त्र आदि प्रदानकर अपने शिष्यके रूपमें वरण किया

पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा तथा भागवत-परम्परा

श्रीमाधवेन्द्रपुरी

(शिक्षागुरु) (दीक्षागुरु)

श्रीईश्वरपुरी

श्रीनित्यानन्द प्रभु श्रीचैतन्य महाप्रभु

श्रीसनातन गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभु

श्रीगौरीदास पण्डित श्रीरूप गोस्वामी

श्रीहृदयचैतन्य श्रीजीव गोस्वामी श्रीलोकनाथ गोस्वामी

(दीक्षागुरु) (शिक्षागुरु) (दीक्षागुरु)

श्रीश्यामानन्द प्रभु

श्रीरसिकानन्द श्रीनरोत्तम ठाकुर

श्रीनयनानन्द श्रीगङ्गानारायण चक्रवर्ती

श्रीराधादामोदर श्रीकृष्णचरण चक्रवर्ती

(दीक्षागुरु) श्रीराधारमण चक्रवर्ती

श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती (शिक्षागुरु)

श्रीबलदेव विद्याभूषण

श्रीउद्धर या उद्धवदास श्रीजाह्नवा ठाकुरानी

(की परम्परामें)

श्रीमधुसूदन दास

श्रीजगन्नाथ दास श्रीविपिनबिहारी गोस्वामी (दीक्षागुरु)

श्रीभागवतदास

श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

(दीक्षागुरु) (शिक्षागुरु)

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी

श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

श्रीमाधवेन्द्रपुरी

श्रीईश्वरपुरी

श्रीअद्वैताचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभु

यदुनन्दनाचार्य श्रीस्वरूपदामोदर, श्रीरूप गोस्वामी

(दीक्षागुरु) (शिक्षागुरु)

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी

था, जो लोग इस परम्पराको स्वीकार करनेमें अक्षम हैं वे श्रीतोतराम बाबाजी महाराज द्वारा उल्लिखित तेरह प्रकारके अपसम्प्रदायोंमें परिगणित हैं अथवा चौदहवें अपसम्प्रदायके सृष्टिकर्त्ता हैं।

(iii) पाञ्चरात्रिक-परम्परा एवं भागवत-परम्परा

उल्लिखित गुरु-परम्परासे हम जान पाते हैं कि श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत श्रीश्यामानन्द परिवारके अन्तर्गत हैं। आचार्य श्रीश्यामानन्दके श्रीजीवगोस्वामीका आनुगत्य स्वीकार करनेके कारण तथा श्रीजीवगोस्वामीके एकान्त रूपानुग होनेके कारण श्रीबलदेव विद्याभूषण भी रूपानुग वैष्णव हैं। जो लोग बलदेव विद्याभूषणको रूपानुग नहीं मानकर श्यामानन्द परिवार भुक्त कहकर यह मानते हैं कि वे उन्नत उज्ज्वलरसके परमोच्चतम सेवाभावके अधिकारी नहीं हैं; वे निश्चय ही भ्रान्त एवं अपराधी हैं। श्रीबलदेव विद्याभूषणके श्रीदामोदरदासके निकट पाञ्चरात्रिक दीक्षामें दीक्षित होनेपर भी उन्होंने श्रीमद्भागवत एवं गोस्वामियोंके भक्तिशास्त्रोंकी शिक्षा ग्रहण की थी। पाञ्चरात्रिक-परम्परासे भागवत-परम्पराका श्रेष्ठत्व है। भागवत-परम्परा भजन-निष्ठाके तारतम्यके ऊपर प्रतिष्ठित है। भागवत-परम्परामें पाञ्चरात्रिक-परम्परा अनुस्यूत रहनेके कारण भागवत-परम्पराका माधुर्य एवं श्रेष्ठत्व है। इसमें कालगत व्यवधान नहीं होता। शुद्धभक्तिके विचारसे पाञ्चरात्रिक और भागवत दोनों ही मत एकार्थ प्रतिपादक हैं। श्रीचैतन्यचरितामृत (म॰ १९/११९) में कहा गया है—पाञ्चरात्रे भागवते एइ लक्षण कय। प्राकृत सहजिया सम्प्रदाय जिस प्रकार श्रीरूपगोस्वामीके अनुगतजनके रूपमें अपना परिचय देकर आचार्य श्रीजीवगोस्वामीके चरणोंमें अपराध सञ्चय करते हैं, उसी प्रकार आजकल जाति गोस्वामी, उनका उच्छिष्ट ग्रहण करनेवाले कतिपय सहजिया कर्ताभजा किशोरीभजा, भजनखाजा, सम्प्रदायके लोग चक्रवर्ती ठाकुरके अनुगत होनेका अभिमान करते हुए भी भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणके प्रति नाना प्रकारके अवज्ञासूचक वाक्योंका प्रयोगकर अत्यन्त घृणित एवं नरकगामी हो रहे हैं।

हम यहाँपर पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा एवं भागवत-परम्पराकी तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसके द्वारा पाठकवर्ग श्रीभागवत-परम्पराका

वैशिष्ट्य अच्छी तरह समझ सकेंगे तथा इसके द्वारा पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा भागवत-परम्पराके अन्तर्भुक्त है—यह भी समझ सकेंगे।

इस तालिकाके द्वारा हम श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर तथा श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर आदिकी पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा तथा भागवत-परम्पराका उल्लेख करेंगे।

श्रीश्यामानन्द प्रभु—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परामें श्रीनित्यानन्द प्रभुके शिष्य गौरीदास पण्डित हैं और उनके शिष्य हृदयचैतन्य श्यामानन्द प्रभुके दीक्षागुरु हैं। भागवत-परम्परामें श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिष्य श्रीसनातन गोस्वामी, उनके शिष्य रूप गोस्वामी, उनके शिष्य श्रीजीव गोस्वामी हैं। इन्हीं श्रीजीव गोस्वामीके शिक्षा-शिष्य हैं—श्रीश्यामानन्द प्रभु। यहाँ यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि श्रीजीवगोस्वामी तत्त्व, रस, भजन आदि सभी विषयोंमें श्रीहृदयचैतन्यसे श्रेष्ठ थे। इसीलिए श्रीहृदयचैतन्यने स्वयं ही उन्नत भजनशिक्षाके लिए श्रीश्यामानन्द प्रभुको श्रीजीव गोस्वामीके पास भेजा और श्रीश्यामानन्द प्रभुने श्रीजीव गोस्वामीका आनुगत्य स्वीकार किया। अतः यहाँ यह विचारणीय है कि श्रेष्ठत्व कि सका है—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराका अथवा भागवत-परम्परा का?

श्रीनरोत्तम ठाकुर—इसी प्रकार पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परामें श्रीनरोत्तम ठाकुरके गुरु हैं—श्रीलोकनाथ गोस्वामी। किन्तु श्रीलोकनाथ गोस्वामीके पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरुका उल्लेख नहीं मिलता। श्रीगौड़ीय-वैष्णव-अभिधान आदिमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको इनका गुरु बतलाया गया है, किन्तु यह सर्वविदित तथ्य है कि श्रीमन्महाप्रभुने किसीको पाञ्चरात्रिक प्रणालीके अनुसार शिष्य नहीं बनाया। अतः यदि श्रीमन्महाप्रभु श्रीलोकनाथ गोस्वामीके गुरु हैं, तो वह भागवत-परम्पराके आधारपर ही हैं। दूसरी ओर श्रीनरोत्तम ठाकुर श्रीलोकनाथ गोस्वामीके पाञ्चरात्रिक शिष्य होनेपर भी भागवत-परम्परामें वे भी श्रीजीव गोस्वामीके ही शिष्य हैं और उन्हींका आनुगत्य करते हुए भजनशिक्षामें निष्णात हुए।

श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी—श्रीरघुनाथ दास गेस्वामी पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीयदुनन्दनाचार्यके शिष्य हैं, जो कि श्रीअद्वैताचार्यकी पाञ्चरात्रिक शाखामें अवस्थित हैं। दूसरी ओर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके

जीवनचरित्रपर यदि हम गम्भीरतासे विचार करें, तो पाते हैं कि श्रीस्वरूप दामोदर और श्रीरूप गोस्वामीकी भजन-शिक्षाका अमिट प्रभाव सुस्पष्ट है। श्रीस्वरूपदामोदर और श्रीरूप गोस्वामी भागवत-परम्परामें इनके गुरु हैं। यहाँ भी यदि हम पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्परा और भागवत-परम्पराकी तुलना करें, तो भागवत-परम्पराका श्रेष्ठत्व सूर्यकी भाँति प्रकाशमान पाते हैं।

श्रीबलदेव विद्याभूषण—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराके विचारसे श्रीश्यामानन्द प्रभुकी परम्परामें श्रीराधादामोदरके ये पाञ्चरात्रिक शिष्य हैं। दूसरी ओर भागवत-परम्पराकी दृष्टिसे ये श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके शिष्य हैं। श्रीराधादामोदरने स्वयं ही श्रीबलदेव विद्याभूषणको श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके निकट श्रीमद्भागवत एवं अन्यान्य गोस्वामी-ग्रन्थोंके अनुशीलन तथा उच्च भजनशिक्षाके लिए भेजा था। श्रीलबलदेव विद्याभूषणके जीवनमें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका आनुगत्य सर्वविदित है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके आनुगत्यमें ही इन्होंने गलतागद्दीमें श्रीवैष्णवोंको परास्तकर श्रीश्रीराधागोविन्दजीकी सेवा-पूजाको अक्षुण्ण रखा तथा उन श्रीगोविन्ददेवका प्रसाद प्राप्तकर श्रीगोविन्दभाष्यकी रचना की, जो श्रीरूप गोस्वामीके आराध्य देव थे। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके रूपानुगत्वके विषयमें संशयका कोई स्थल ही नहीं है। अतः श्रीचक्रवर्ती ठाकुरके अनुगत होनेके कारण इनके भी रूपानुगत्वमें कोई संशय नहीं है। दूसरी ओर यह सर्वविदित तथ्य है कि इन्होंने श्रीगोविन्ददेवकी कृपा प्राप्तकर उन्हींकी सेवाको अक्षुण्ण रखा, जो कि श्रीरूपगोस्वामीके प्राणधनस्वरूप थे। अतः इस दृष्टिकोणसे भी श्रीरूपगोस्वामी और उनके आराध्यदेव श्रीगोविन्ददेवकी कृपा प्राप्त करनेके कारण क्या इनके रूपानुगत्वमें कोई संशय रह जाता है?

श्रीभक्तिविनोद ठाकुर—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराके विचारसे श्रीविपिन बिहारी गोस्वामी इनके दीक्षागुरु हैं, जो श्रीश्रीजाह्नवा ठाकुरानीकी पाञ्चरात्रिक-परम्परामें अवस्थित हैं। दूसरी ओर वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज भागवत-परम्परामें इनके भजनशिक्षा गुरु हैं। जगन्नाथ दास बाबाजी महाराज श्रीबलदेव विद्याभूषणकी परम्परामें प्रसिद्ध मधुसूदन दास बाबाजी महाराजके शिष्य हैं। श्रीविपिनबिहारी

गोस्वामीसे वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजका तत्त्वज्ञान-भजनशिक्षा आदि विषयोंमें श्रेष्ठत्व बतानेकी आवश्यकता ही नहीं है। श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके जीवनमें भी श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके आनुगत्यकी छाप है, इसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता।

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर—पाञ्चरात्रिक गुरु-परम्पराके विचारसे इनके दीक्षागुरु श्रीगौरकिशोरदास बाबाजी महाराज हैं। श्रील बाबाजी महाराज पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीजाह्नवा ठाकुरानीकी शाखामें अवस्थित हैं। श्रील बाबाजी महाराजने वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजके शिष्य श्रीभागवत दास बाबाजी महाराजसे वेष ग्रहण किया। अतः भागवत-परम्परामें श्रील गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजकी शाखामें हुए। इस प्रकार श्रील सरस्वती ठाकुर पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीजाह्नवा ठाकुरानीकी परम्परामें तथा भागवत-परम्परामें श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराजसे जुड़े हुए हैं।

दूसरी ओर इनके जीवनचरित्रपर प्रकाश डालनेसे यह सिद्ध होता है कि इन्होंने श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके आचार, विचार, भजनप्रणाली एवं उनकी आकांक्षापूर्तिको ही अपने जीवनका उद्देश्य बनाया। अतः भागवत-परम्परामें श्रीभक्तिविनोद ठाकुर इनके गुरु हुए, जिनके गुरु (भागवत-परम्परामें) श्रीजगन्नाथ दास बाबाजी महाराज थे। अतः श्रीगौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य श्रील सरस्वती ठाकुरकी गुरु-परम्परापर अँगुली उठानेका तनिक भी अवकाश नहीं मिलता है।

पाञ्चरात्रिक-परम्परा एवं भागवत-परम्पराके विषयमें और भी कतिपय विचारणीय तथ्य हैं—

(१) यदि पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरु स्वरूपतः (अपने सिद्ध स्वरूपमें) शिष्यसे अपेक्षाकृत निम्न रसमें अवस्थित हो, तो वे गुरु अपने उस शिष्यको किस प्रकार उन्नत रसकी भजनशिक्षा देंगे? अतः इस स्थितिमें उन्नत भजनशिक्षाके लिए शिष्यको अन्यत्र वैसे भजनशील वैष्णवकी शरणमें जाना पड़ेगा, जो उसे वैसी उच्च भजनशिक्षा दे सकते हैं। उदाहरणस्वरूप श्रीहृदयचैतन्य स्वरूपतः कृष्णलीलामें सख्यरसके परिकर थे, किन्तु उनके शिष्य श्रीश्यामानन्द प्रभु (दुःखी कृष्णदास) मधुररसके

परिकर थे। अतएव श्रीहृदयचैतन्यने स्वयं ही उन्हें श्रीजीव गोस्वामीके समीप मधुर-रसोचित-भजनशिक्षाके लिए भेजा था।

(२) यदि पाञ्चरात्रिक-परम्परामें गुरु और शिष्य एक ही रसमें हों, किन्तु गुरु उतने उन्नत अधिकारमें न हों, तो शिष्यको उच्चतर भजनशिक्षाके लिए अन्य उत्तम भागवतकी शरणमें जाना पड़ेगा, जो कि भागवत-परम्परामें उनके गुरु कहे जायेंगे।

अतः इन दो विचारोंसे हम देखते हैं कि पाञ्चरात्रिक प्रणालीकी अपनी कुछ त्रुटियाँ हैं, किन्तु भागवत-परम्परा इन सबसे मुक्त सर्वथा निर्दोष है।

(३) समस्त गौड़ीय सम्प्रदाय अपनेको श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत मानता है और श्रीमन्महाप्रभुको जगद्गुरुके रूपमें मान है। किन्तु उनके इस आनुगत्यका तथा महाप्रभुको गुरु माननेका आधार क्या है? श्रीमन्महाप्रभु पाञ्चरात्रिक-परम्परामें किसीके भी गुरु नहीं हैं, यद्यपि वे स्वयं पाञ्चरात्रिक-परम्परामें श्रीईश्वरपुरीके शिष्य हैं। श्रीमन्महाप्रभुने किसीको दीक्षामन्त्र दिया हो, ऐसा कहीं उल्लेख नहीं मिलता है। तथापि यदि गौड़ीय वैष्णव समाज श्रीचैतन्य महाप्रभुके आनुगत्य और शिष्यत्वको स्वीकार करता है, तो उसका एक ही आधार है और वह है—भागवत-परम्परा।

(४) प्रत्येक गौड़ीय वैष्णव अपनेको रूपानुग कहने गर्वका बोध करता है। परन्तु विचारणीय तथ्य यह है कि श्रीरूप गोस्वामीने कितने लोगोंको पाञ्चरात्रिक विधिसे अपना शिष्य बनाया? एकमात्र जीव गोस्वामी ही उनके दीक्षा शिष्य हैं। तथापि गौड़ीय वैष्णव समाज किस आधारपर श्रीरूप गोस्वामीको अपना गुरु स्वीकार करता है। स्वयं श्रीरूप गोस्वामी भी श्रीचैतन्य महाप्रभुके दीक्षित शिष्य नहीं हैं। अतः रूपानुगत्व और रूपानुगत्व द्वारा चैतन्यानुगत्व एक साथ कैसे सम्भव है? स्वयं श्रीसनातन गोस्वामी, जो श्रीरूप गोस्वामीके भी शिक्षागुरु हैं अपनेको रूपानुग कहनेमें कोई दुविधा बोध नहीं करते। इन सबका एक ही आधार है—भागवत-परम्परा। भागवत-परम्पराके आधारपर ही श्रीरूप गोस्वामी श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिष्य हैं, और गौड़ीय वैष्णव समाज श्रीरूप गोस्वामीको अपना गुरु मानता है।

श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीके पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरु कौन हैं? उन्होंने अपने किसी ग्रन्थमें अपने पाञ्चरात्रिक दीक्षागुरुका नामोल्लेख नहीं किया है। उन्होंने श्रीचैतन्यचरितामृतमें अपने शिक्षागुरुओंके नामोंका उल्लेख किया है—

एई छय गुरु शिक्षागुरु जे आमार।
ताँ सबार पादपद्मे कोटि नमस्कार॥

और श्रीचैतन्यचरितामृतके प्रत्येक अध्यायके अन्तमें लिखा है—

श्रीरूप-रघुनाथपदे यार आश।
चैतन्यचरितामृत कहे कृष्णदास॥

इसके द्वारा इन्होंने श्रीरूप और रघुनाथदास गोस्वामियोंको ही विशेष रूपमें अपना शिक्षागुरु माना है। अतएव इनके गुरु माननेका आधार भी भागवत-गुरु-परम्परा ही है।

इन तथ्योंसे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि भागवत-परम्परा पाञ्चरात्रिक-परम्पराको क्रीड़ीभूतकर सर्वदा देदीप्यमान है। जो इन तथ्योंकी अनदेखीकर श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर, श्रीसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके रूपानुगत्व और गुरुप्रणालीपर कटाक्ष करते हैं, वे निश्चय ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके घोर विरोधी और कलिके गुप्तचर हैं।

अतएव परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने बलदेव विद्याभूषणकी गुरुप्रणाली तथा भागवत एवं पाञ्चरात्रिक परम्पराके विषयमें जो विचार लिखे हैं, वे युक्तिसङ्गत और शास्त्रसिद्धान्त सम्मत हैं।

(छ) रसिक एवं भावुक भागवत

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव एक ओर परम गम्भीर एवं वज्रसे भी कठोर थे। दूसरी ओर परम रसिक, महाभावुक एवं पुष्पसे भी अधिक मृदुस्वभावके थे। भक्तिविरोधी केवलाद्वैतवादियों, स्मार्तों, जाति-गोस्वामियों, जाति-वैष्णवों एवं प्राकृत सहजिया अपसम्प्रदायके लोगोंके लिए वज्रकी अपेक्षा भी अधिक कठोर थे। दूसरी ओर गुरुसेवानिष्ठ सतीर्थों, निष्कपट शिष्योंके प्रति पुष्पसे भी अधिक मृदुस्वभावसम्पन्न थे।

श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलाके पश्चात् दुःसङ्गके कारण विद्याभूषण एवं विद्याविनोद श्रील प्रभुपादके घोर विरोधी हो गये। श्रील प्रभुपादके सहोदर भ्राता श्रीमद्भक्तिकेवल औडुलोमि महाराजने भी इन दोनोंका आनुगत्य किया। श्रील गुरुदेवने इनके विचारोंका घोर प्रतिवाद किया। सहोदर भ्राता एवं सतीर्थ होनेपर भी श्रील गुरुदेवने श्रीमद् औडुलोमि महाराजके विचारोंका कठोर प्रतिवाद करते हुए कहा था कि श्रील गुरुपादपद्मके विरोधियोंका मैं मुख–दर्शन नहीं करना चाहता। औडुलोमि महाराज मेरे पूर्वाश्रमके सहोदर भ्राता हैं तथा पारमार्थिक जीवनमें मेरे सतीर्थ–गुरुभ्राता हैं। फिर भी अब उनसे मेरा कोई भी सम्पर्क नहीं है। जहाँ कहीं भी किसीने जगद्गुरु श्रील सिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके विचारोंका प्रतिवाद किया, इन्होंने अकाट्य युक्तियों एवं सुदृढ़ शास्त्रीय प्रमाणोंके बलपर उनका खण्डन किया। हम यहाँ उनके भावुकता एवं रसिकताका भी दो–एक उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

(अ) श्रील गुरुमहाराज अपने प्रकट समयमें प्रतिवर्ष श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके समय श्रीधाम मायापुर जाते थे। अपने गुरुदेव श्रील प्रभुपादके समाधि–पीठके सामने हजारों–हजारों श्रद्धालु यात्रियोंके सामने जब अपने परमाराध्यतम गुरुदेवकी महिमाका वर्णन करना आरम्भ करते, तब उनकी गुणावलीका स्मरणकर इतने भावुक हो जाते कि उनका गला भर जाता, वे फूट–फूटकर रोने लगते। उनके शरीरपर अष्टसात्त्विक भावसमूह स्पष्टतः दृष्टिगोचर होने लगते। बोलनेमें असमर्थ होनेके कारण वे हमलोगोंको कुछ बोलनेके लिए इङ्गित करते।

(आ) श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ाकी बात है, श्रील गुरुदेव अपनी भजनकुटीके बरामदेमें बैठे हुए हरिनाम कर रहे थे। हमलोग दो–चार मठवासी उनके समीप बैठे थे। प्रसङ्गवशतः वे व्रजकी मधुर–भक्तिके विषयमें समझा रहे थे। यथार्थतः व्रजरमणियाँ ही मधुररसकी परिकर हैं। ये सभी परकीया भाववाली हैं। यद्यपि इनमें भी बहुत–से विभाग हैं, फिर भी ये सभी मधुररसकी परकीया नायिकाएँ हैं। द्वारका पुरीकी महिषियाँ, श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजी तथा वैकुण्ठकी महालक्ष्मी मधुररसकी नायिकाएँ नहीं हैं। ये सभी दास्यरसकी सेविकाएँ हैं। बीचमें मैंने प्रश्न किया—"रसाचार्य श्रील रूप गोस्वामीने श्रीउज्ज्वलनीलमणिमें

तीन प्रकारकी नायिकाओंका वर्णन किया है—साधारणी, समञ्जसा और समर्था। मथुराकी कुब्जा साधारणी, द्वारकाकी रुक्मिणी एवं सत्यभामा आदि समञ्जसाके अन्तर्गत हैं एवं व्रजगोपियोंको समर्थाके अन्तर्गत दिखलाया गया है। इनमेंसे द्वारकाकी महीषियोंको स्वकीया एवं व्रजरमणियोंको परकीया मधुररसका परिकर बताया गया है, अतः द्वारकाकी महिषियों एवं श्रीमती सीताजीको स्वकीया मधुररसका परिकर माननेमें हानि क्या है?”

उन्होंने उत्तर दिया—“इन गम्भीर विचारोंको तुमलोग अभी हृदय०0म नहीं कर सकते। अभी मेरे द्वारा बतलाये जानेपर भी यह तुमलोगोंके लिए बोधगम्य नहीं होगा। जहाँ इष्टके प्रति ऐश्वर्य-भावयुक्त प्रीति होती है, वहाँ दास्यप्रेम ही प्रधान होता है। लक्ष्मी, सीताजी एवं द्वारकाकी महिषियोंमें अपने-अपने इष्टदेवके प्रति परमैश्वर्ययुक्त प्रीति होती है। वहाँ लौकिक सद्बन्धुवत् ऐश्वर्यविहीन शुद्ध माधुर्यप्रेम नहीं होता। वहाँ सदैव सम्भ्रम भाव बना रहता है। अतः हनुमान, अर्जुन, उद्धव आदि दास्य भक्तोंकी अपेक्षा इनकी प्रीति कुछ उन्नत होनेपर भी महिषियोंके भावको शुद्ध माधुर्य नहीं कहा जा सकता है। श्रील जीव गोस्वामीने तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने उज्ज्वलनीलमणिकी अपनी-अपनी टीकाओंमें इस विषयका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। इसीलिए श्रीचैतन्यचरितामृतमें ‘गोपीप्रेम’ की विशेष महत्ता दिखलायी गयी है। शुद्ध वैष्णवोंके आनुगत्यमें कुछ दिन भजन करनेपर उनकी कृपासे इन गम्भीर विषयोंकी उपलब्धि सम्भव है।

(इ) एक समय श्रील गुरुपादपद्म कार्त्तिकके महीनेमें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें पधारे थे। एक दिन अपनी भजनकुटीमें बैठे हुए भावपूर्वक हरिनाम कर रहे थे। मैं वहीं बैठकर श्रीगोपालचम्पूमें श्रीदामोदर-बन्धनका प्रसङ्ग पढ़ रहा था। मैं उसे पढ़कर जीव गोस्वामीके विचारोंके प्रति इतना आकर्षित हुआ कि अपनेको रोक न सका। ग्रन्थको हाथोंमें लेकर श्रील गुरुदेवके सम्मुख खड़ा होकर कहने लगा—“श्रीजीव गोस्वामी अपने समयके एक महान् दार्शनिक तत्त्ववेत्ता महापुरुष थे। साथ ही वे एक अप्राकृत रसिक कवि भी थे। साधारण जगत्में पाण्डित्य और कवित्वका सम्मिलन नितान्त दुर्लभ होता है। परन्तु श्रीजीव गोस्वामीके

आलोक-सामान्य जीवनमें इन दोनोंका आश्चर्यजनक सम्मिलन देखा जाता है। श्रील जीव गोस्वामीमें, गोपालचम्पूके दामोदर-बन्धन-लीलाके प्रसङ्गमें इन दोनों गुणोंका समन्वय दृष्टिगोचर होता है।" यह कहकर मैं गोपालचम्पूसे वह प्रसङ्ग पढ़कर उन्हें सुनाने लगा—

यशोदा मैयाने बड़ी तेजीसे दौड़कर राजमार्गपर भागते हुए बालकृष्णको एक हाथसे पकड़ लिया और दूसरे हाथमें एक छोटी-सी लठिया लेकर कृष्णकी भर्त्सना करने लगी—"मैं तुम्हें पीटूँगी; तू घर-घरमें चोरी करता है, तू चोर है।"

कृष्ण—"मैया री! मुझे मत मार! चोर तो तुम्हारे पिताके गोत्रमें उत्पन्न होते हैं, मेरे पिताके गोत्रमें नहीं। मैं चोर नहीं हूँ।"

मैयाने मुस्कुरा दिया और बोलीं—"कैसे खण्डित हुआ यह दधिभाण्ड?"

कृष्ण—"यह तो है परमेश्वरका दिया हुआ दण्ड।"

मैया—"माखन किसने खिलाया बन्दरोंको?"

कृष्ण—"जिसने बनाया इन बन्दरोंको"

मैया (क्रोधपूर्वक हँसती हुई)—"ठीक ठीक बता! मटकी टूटी कैसे?"

कृष्ण (रोते हुए)—"जब तू उफनते हुए दूधको शान्त करनेके लिए हड़बड़ीमें वेगसे दौड़ी, तब तुम्हारे पैरोंके कल्लुओंके ठोकरसे ही तो मटकी टूटी। बता, भला इसमें मेरा क्या दोष है?"

मैया—"ठीक है! ये तो बता कि तेरे मुखमें मक्खन कैसे लगा?"

कृष्ण—"मैया री! प्रतिदिनकी भाँति उस बन्दरने मक्खन खानेके लिए मटकीमें हाथ दिया। मैंने उसे पकड़ लिया। जब वह हाथ धुड़ाकर भागने लगा तो उसके ही हाथका मक्खन मेरे मुखमें लग गया। अच्छा बता, इसमें मेरा कोई दोष है? फिर भी तू मुझे चोर कहती है और पीटना चाहती है।"

मैया—"अरे बड़बोला! बन्दर-बन्धो! अब तुझे तुम्हारे साथी ऊखलके साथ बाँधकर दण्ड दूँगी।"

तत्पश्चात् बहुत चेष्टा करेनपर भगवत्कृपासे कृष्णको ऊखलमें बाँधकर घरके कार्योंको सँभालने अन्दर चली गयी। बाल-कृष्ण नन्हें-मुन्ने सखाओंके साथ ऊखलको खींचते हुए घरकी पौढ़ीके सामने खड़े

यमलार्जुन वृक्षके मध्यसे निकलने लगे। ऊखलके स्पर्शसे ही दोनों वृक्ष अतिभयङ्कर गर्जनके साथ गिर पड़े। सभी व्रजवासी, जो जहाँ थे वहींसे ध्वनिको लक्ष्यकर ऊधरकी ओर दौड़े। नन्दबाबा और यशोदा मैया भी वहाँ उपस्थित हुए। यशोदा मैया दोनों गिरे हुए पेड़ोंके बीच पुत्रको देखकर सन्न रह गयीं। नन्दबाबा आश्चर्यचकित होकर पुत्रके समीप पहुँचे और उसे अपनी गोदीमें बैठा लिया। पिताको देखकर कृष्ण बड़े जोरसे रोने लगे। नन्दबाबा कृष्णके सिर और अङ्गोंको अपने हाथोंसे सहलाकर मुख चूमते हुए पुचकारने लगे बोले—"लाला! तुम्हें किसने बाँधा?" पुनः-पुनः पूछनेपर रोते हुए कृष्णने बाबाके कानमें फुसफुसाकर कहा—"मैयाने।" नन्द बाबा गम्भीर होकर बोले—"मैयाने! तेरी मैया बड़ी निष्ठुर है!" और चुप हो गये।

अपनी गोदमें कृष्ण और बलदाऊ दोनोंको लेकर यमुनामें स्नान किया। ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर और गोदान इत्यादिकर घर लौटे। रोहिणी मैयाने किसी प्रकार गोपियोंके द्वारा रसोई बनवायी और उन्हींके द्वारा राम और कृष्णके साथ नन्दबाबाको भोजन परोसवाया। नन्दबाबा दोनों पुत्रोंके साथ चुपचाप प्रसाद सेवनकर बैठकमें आ गये। सायंकालमें गोशालामें आकर कृष्ण और बलदेवको श्वेत मिश्रीके साथ पेटभर धारोष्ण दूध पिलाया। फिर बैठकमें पुत्रोंके साथ आये। दोनों बेटोंके साथ व्रजराज जब सायंकालीन भोजन समाप्त कर चुके, तब कुलकी वृद्ध गोपियाँ रोहिणीजीको साथ लेकर नन्दबाबाके समीप आयीं। दोनों बच्चे बाबाकी गोदमें बैठे थे। रोहिणीजीने कहा—"राजन्! कृष्णकी मैयाने भोजन नहीं किया है। कोनेमें चुपचाप पत्थरकी भाँति बैठी हैं। घरमें सभी गाोपियाँ भी बिना खाये-पीये उदास होकर चुपचाप बैठी हैं। व्रजराज दुःखमिश्रित हास्यपूर्वक बोले—"मैं क्या करूँ? क्रोधका यही फल है, वह इसे अनुभव करे!" आँसू बहाती हुई वृद्ध गोपियोंने कहा—"हाय! हाय! यशोदा तो भीतर-बाहरसे अत्यन्त कोमल है। उसके लिए ऐसे निष्ठुर शब्दोंका प्रयोग अनुचित है।" यह सुनकर व्रजराज और भी अधीर हो उठे और मुस्कुराते हुए पूछा—"लाला! क्या मैयाके पास जायेगा?" कृष्ण बोले—"नहीं! नहीं! आप ही के साथ रहूँगा।" उपानन्दकी घरवालीने हँसकर कहा—"बाबाके पास तो रहेगा, पर स्तन किसका पान करेगा?"

कृष्ण—"बाबा मिश्रीके साथ धारोष्ण दूध पिलायेंगे।"

"खेलेगा किसके साथ?"

"पिताजीके साथ और दाऊ भैयाको भी साथ ले लूँगा।"

व्रजराज—"रोहिणी मैयाके पास क्यों नहीं जाता?"

कृष्णने रोषपूर्वक सिसकते हुए कहा—"मैं तो मुझे बचानेके लिए बड़ी मैयाको पुकार रहा था, किन्तु उस समय तो ये भी नहीं आयीं।"

यह सुनकर आँसू बहाती हुई रोहिणी मैयाने धीरेसे कहा—"लाला! इतना निष्ठुर मत बन। तेरी मैया तेरे लिए रो रही है।"

इसे सुनकर कृष्णकी आँखोंमें आँसू छलक आये और मुड़कर पिताका मुख देखने लगे। इसी बीच रोहिणी मैयाने कृष्णको पकड़कर लानेके लिए बलदेवको सङ्केत किया। बलदेव दोनों हाथोंसे कृष्णको पकड़कर रोहिणी मैयाकी ओर खींचने लगे, पर कृष्ण बलदेवको झटककर बाबाके गलेसे लिपट गये। बाबाके आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी लग गयी। उन्होंने अपने हाथको कुछ ऊँचा उठाकर कहा—"लाला! तेरी मैयाको पीट दूँ? बाल-कृष्ण इसे सह न सके और पिताके दोनों हाथ जोरसे पकड़ लिये। तदनन्तर स्वतःसिद्ध वात्सल्यके कारण यशोदाके अन्तर्हृदयकी वेदनाको स्मरण करते हुए हाथसे सङ्केत द्वारा बाबा बोले—"लाला! यदि तुम्हारी मैया ऐसी हो जाय अर्थात् मर जाय, तो तू क्या करेगा?" ऐसा सुनते ही कृष्ण बड़े जोरसे रोते हुए बोले—"मैया! मैया!" और अपने दोनों हाथोंको बड़ी मैयाकी तरफ पसारकर उनकी गोदीमें स्वतः ही चले गये। रोती हुई रोहिणी मैया रोते हुए कृष्णको लेकर अन्तःपुरमें आयीं और कृष्णको यशोदा मैयाकी गोदमें डाल दिया। यशोद मैया कृष्णको अपने अञ्चलोंसे ढककर कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करने लगीं। कृष्ण भी फूट-फूटकर रोने लगे। अन्तःपुरमें एकत्रित सारी गोपियाँ भी रोने लगीं। उधर बैठकमें नन्द बाबा भी रो रहे थे। सारा वातावरण वात्सल्यरसमें डूब गया।

यह प्रसङ्ग सुनते ही श्रीगुरुदेव भी फूट-फूटकर रोने लगे। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। कुछ-कुछ अष्टसात्त्विक विकार भी दृष्टिगोचर होने लगे। ऐसा अभूतपूर्व भाव अपने जीवनमें दो-एक बार ही मैंने देखा है।

(ज) साम्प्रदायिक सेवा

किसी समय १९५६ में श्रील गुरुदेव श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें पधारे थे। उस समय वृन्दावनके निम्बार्क सम्प्रदायसे 'श्रीसुदर्शन' नामक एक पारमार्थिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। उसके किसी एक अङ्कमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रति कुछ कटाक्ष करते हुए उन्हें केशव काश्मीरीका शिष्य बतलाया गया था। दूसरे अङ्कोंमें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर आदि गौड़ीय वैष्णवाचार्योंको धृष्टतापूर्वक निम्बार्क सम्प्रदायके अन्तर्गत दिखलाया गया था। जब मैंने सुदर्शनके उन अङ्कोंको उन्हें दिखाया तो वे बहुत क्रोधित हो गये। उसी समय उन्होंने श्रीभागवत पत्रिकाके लिए एक छोटा-सा प्रबन्ध लिखवाया, जिसका शीर्षक था—"श्रीनिम्बादित्य एवं निम्बार्क एक व्यक्ति नहीं हैं।" जिसका तात्पर्य यह था—

"शास्त्रोंमें निम्बार्क सम्प्रदायका कहीं भी कोई उल्लेख नहीं पाया जाता। पुराणोंमें वैष्णवाचार्य श्रीनिम्बादित्यका नाम दृष्टिगोचर होता है। चतुःसनने इन्हीं निम्बादित्याचार्यको कलिकालमें अपने सम्प्रदायका आचार्य स्वीकार किया है। निम्बार्क स्वामी अलग व्यक्ति हैं। निम्बादित्य नारदजीके शिष्य हैं। इनका समय द्वापर युगके अन्त तथा कलियुगके प्रारम्भमें है। किन्तु निम्बार्काचार्य अत्यन्त आधुनिक व्यक्ति हैं। क्योंकि श्रील जीव गोस्वामी आदि बड़े-बड़े ग्रन्थ लेखकोंने अन्यान्य सभी वैष्णवसम्प्रदायोंके प्रधान-प्रधान आचार्योंके नामोंका उल्लेख करनेपर भी निम्बार्काचार्यके नामका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

"निम्बार्क सम्प्रदायमें प्रचलित पारिजात भाष्यके रचयिता निम्बादित्याचार्य नहीं, बल्कि श्रीनिवास आचार्य एवं केशव काश्मीरी हैं। इन दोनोंने इस ग्रन्थकी रचनाकर अपने गुरु निम्बार्काचार्य द्वारा रचित बतलाकर प्रचार किया। यदि षड्गोस्वामियोंके स्थितिकाल तक निम्बार्क सम्प्रदायका तनिक भी अस्तित्व रहता तो उनके ग्रन्थोंमें श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बादित्य, श्रीबल्लभाचार्य आदि आचार्योंके नामोंके उल्लेखके साथ श्रीनिम्बार्काचार्यके नामका भी अवश्य ही उल्लेख करते। यहाँ तक कि श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी आदि सम्प्रदायके आचार्यों द्वारा लिखित किसी भी ग्रन्थमें निम्बार्काचार्यके नामका उल्लेख नहीं है इत्यादि।"

श्रीभागवत पत्रिकामें इस प्रबन्धका प्रकाशन होनेपर सुदर्शन कार्यालयके पदाधिकारियों द्वारा मानहानिका मुकदमा दायर करनेका नोटिस दिये जानेपर श्रील गुरुदेवने बड़ी दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया कि जो कुछ लिखा है, हम शास्त्रीय पुष्ट प्रमाणोंके आधारपर उसके एक एक शब्दको प्रमाणित करेंगे। श्रील गुरुदेवका शास्त्रज्ञान तथा गम्भीर व्यक्तित्वकी बात सुनकर प्रतिपक्ष बिल्कुल शान्त हो गया। फिर उन्होंने भविष्यमें अनाप-सनाप लिखनेका कभी साहस नहीं किया।

इसी प्रकार श्रील गुरुदेवने बंगालके सहजिया सम्प्रदायके लेखकों द्वारा जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके विरुद्ध अपसिद्धान्तमूलक प्रबन्धोंका कठोर भाषामें प्रतिवाद किया। प्रतिपक्षने कोर्टमें श्रील गुरुदेव एवं श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्पादक आदिके विरुद्ध मुकदमा प्रस्तुत किया। किन्तु वे भी श्रील गुरुदेवके विचारोंके सामने नतमस्तक हुए। उन्होंने न्यायालयमें किसी प्रकार उनसे क्षमा माँगकर अपना पिण्ड छुड़ाया। इन्हीं कारणोंसे उनके प्रिय सतीर्थ गौड़ीय संघपति ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजने उन्हें "पाषण्ड-गजैकसिंह" की उपाधिसे विभूषित किया था।

(झ) स्मार्त और वैष्णव विचारमें भेद

(श्रीगुरुदेव द्वारा नित्यगौर प्रभुको लिखित पत्रका सार)

पश्चिम बङ्गालके कूचबिहार जिलेमें माथाभाङ्गा नामक महकमामें श्रीनित्यगौर दासाधिकारी नामक एक गृहस्थ वैष्णव निवास करते थे। वे जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके द्वारा कृष्ण-मन्त्रमें दीक्षित शिष्य थे। किसी समय उनके पारिवारिक जनोंमेंसे एक व्यक्तिकी मृत्यु हो गयी। वैष्णव सदाचारके अनुसार उन्होंने अवैष्णव स्मार्त-विचारोंके अशौचके नियमोंका पालन नहीं किया। वे हरिनाम करते, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि भक्ति-ग्रन्थोंका पठन-पाठन करते। बारह दिनोंके पश्चात् उन्होंने मठवासी वैष्णवोंको बुलाकर वैष्णव स्मृति-शास्त्र श्रीहरिभक्तिविलास एवं सत्क्रियासार-दीपिकाके अनुसार विष्णुको निवेदित प्रसादान्न परलोकगत आत्माको अर्पण किया तथा उनके पारमार्थिक

मङ्गलके लिए वैष्णव-होमका भी अनुष्ठान करवाया। उपस्थित वैष्णवोंको महाप्रसाद सेवन कराया गया।

किन्तु उनके समाजके लोग उनके इस वैष्णव-श्राद्धसे सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने श्राद्धका सम्पूर्णतः बहिष्कार किया। वे लोग बंगालके स्मार्त समाजमें प्रचलित रघुनन्दनके स्मार्त विचारोंके अनुसार श्राद्ध करवानेके लिए उनपर विशेष जोर दे रहे थे। किन्तु वे वैष्णव सदाचारमें इतने दृढ़ थे कि उन्होंने ग्राम्य समाजके आदेश-निर्देश माननेसे अस्वीकार कर दिया। इससे ग्राम्य समाज उनके प्रति अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। इनके घरपर नाई, धोबी आदिका जाना बन्द करवा दिया। इनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना आदि सारे सामाजिक सम्बन्ध तोड़ लिये। यहाँ तक कि एक ही कुँएसे पानी भरना भी मना कर दिया। इस प्रकार सामाजिक उत्पीड़नसे वे बड़े डर गये। उन्होंने गुरुदेवको पत्रके माध्यमसे समाजके इस अत्याचारकी सूचना दी। श्रील गुरुदेव उस समय श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुँचुड़ामें थे। पत्र पाते ही उन्होंने साथ-ही-साथ पत्रका उत्तर दिया। पत्रका संक्षिप्त सार नीचे दिया जा रहा है—

"स्नेहाष्पद नित्यगौर!

"तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे प्रति स्मार्त समाजके अत्याचारसे अवगत हुआ। डरनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा ग्राम्य समाज अत्यन्त पतित है। अशौच किसे कहते हैं, उन्हें यह ज्ञान नहीं है। साधुसङ्गके अभावमें उन्हें शास्त्रोंके सदाचारका तनिक भी ज्ञान नहीं है। वे लोग केवल मद्य, माँस, मत्स्य, मुद्रा एवं मैथुन—इन पञ्च मकारोंमें सदा व्यस्त रहते हैं, प्याज, लहसुन, अण्डे आदि कुखाद्योंका भोजन करते हैं। चाय, तम्बाकू, गाँजा, भाँग, धूम्रपानका सर्वदा सेवन करते हैं। अतः ये सभी रजः तमोगुणी श्रेणीके निम्न लोग हैं। आजकल ऐसे लोगोंकी संख्या अधिक है। सदाचार-सम्पन्न, तत्त्वज्ञान-सम्पन्न साधु पुरुषोंकी संख्या अत्यल्प है। अतः ये संख्यालघु हैं। अतः संख्यागरिष्ठ ये असदाचारी निम्न श्रेणीके व्यक्ति संख्यालघु सत्पुरुषोंके प्रति अत्याचार करते हैं। मैं इस विषयमें एक दृष्टान्त देकर तुम्हें सहज रूपमें समझा रहा हूँ।

"एक गाँवमें आबाल-वृद्ध-वनिता सभी गाँजाखोर थे। ऐसा कोई भी नहीं था, जो गाँजाका सेवन नहीं करता था। केवल एक परिवारमें एक छोटा-सा शिशु बचपनसे ही इसका सेवन नहीं करता था। गाँजेकी दुर्गन्ध आते ही वहाँसे दूर हट जाता था। कुछ बड़े होनेपर उसके माता-पिता, परिवार तथा समाजके लोगोंने उसे गाँजा-सेवन करानेकी नाना प्रकारसे चेष्टा की। किन्तु उसने किसी भी प्रकारसे गाँजेका सेवन नहीं किया। माता-पिता एवं ग्राम्य समाज बालकके इस स्वभावको देखकर आश्चर्यचकित था। उनलोगोंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह बालक भयानक व्याधिसे ग्रस्त है। लोगोंने ग्रामके चिकित्सकको बुलाया और जबरदस्ती चिकित्साकी व्यवस्था करने लगे।

"आजके हमारे ग्राम्य समाजकी यही दुर्दशा है। कोई सदाचारसम्पन्न होकर भगवद्भजन करे—यह वह सह नहीं सकता है। उसपर अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं। यहाँ तक कि गाँवसे निष्कासित कर दिये जाते हैं। संख्यागरिष्ठ होनेके कारण ये सदाचारसम्पन्न संख्यालघुके प्रति तरह-तरहके अत्याचार करते हैं।"

उन्होंने और भी लिखा—

"नित्यगौर! क्या तुम्हारे गाँवमें लिखे-पढ़े सदाचारसम्पन्न सात्त्विक व्यक्ति नहीं हैं? यदि हों, तो उन्हें मेरा यह पत्र दिखाना। मुझे यह दृढ़ विश्वास है कि रजः और तमोगुणकी पराजय होती है। विलम्ब भले ही हो, किन्तु सत्त्वगुणकी विजय होती है। यद्यपि प्रारम्भमें आसुरिक लोग बलवान प्रतीत होते हैं, परन्तु अन्तमें वे पराजित होते हैं। प्राचीन कालके देवासुर-संग्राममें, राम-रावण युद्धमें, पाण्डव-कौरवके युद्धमें सदा आसुरिक चिन्ता-स्रोतवालोंकी ही पराजय हुई है। महाबलवान हिरण्यकशिपु अपने पञ्च वर्षीय भक्त बालक प्रह्लादके सामने टिक नहीं सका। भगवान् नृसिंहदेवने क्षणभरमें उसका संहार कर दिया। तुम सदा हरिनाम करना। तुम सदा पवित्र हो। भगवान् नृसिंहदेव तुम्हारी रक्षा करेंगे।

"तुम सदा यह स्मरण रखना कि भगवद्भक्तगण—वैष्णवगण सदा-सर्वदा पवित्र होते हैं। जन्म-मृत्यु आदिमें भी उन्हें अशौच स्पर्श

नहीं करता। यह बात तो दूर रहे, मातृ-पितृघाती, व्यभिचारी या महापापाचारी व्यक्ति भी यदि हरिनामका आश्रय करता है, तो उसके भूत, भविष्य और वर्त्तमानके सारे पाप दूर हो जाते हैं। श्रीमद्भागवतके अजामिल आदि प्रसङ्गसे यह सुस्पष्ट है कि महापापी अजामिलने मरते समय अपने पुत्रके उद्देश्यसे 'नारायण' नामका उच्चारण किया था। यह उसका शुद्ध नाम नहीं, बल्कि नामाभास था। इस नामाभासके प्रभावसे ही अजामिलके सारे पाप दूर हो गये। उसकी मृत्यु टल गयी और फिर साधुसङ्गमें शुद्ध हरिनामकर उसने वैकुण्ठकी गति प्राप्त की। तुमने नामाश्रय किया है, सदैव भक्तिके अङ्गोंका पालन कर रहे हो, अतएव नित्य पवित्र हो। तुम्हें किसी प्रकारके अशौच पालनकी आवश्यकता नहीं है। जो लोग विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित नहीं हैं, जो भगवन्नाम नहीं करते, वे जीवनभर अपवित्र रहते हैं और जीवनभर अशौचका पालन करते हैं। उन्हें हरिमन्दिरोंमें प्रवेशका अधिकार नहीं है।

"स्मार्त रघुनन्दनकी स्मृति (अष्टाविंशति-तत्त्व) का प्रचार केवल बंगालमें ही सीमित है। बङ्गालके बाहर सारे भारतमें श्रीहरिभक्तिविलास और सत्क्रियासार-दीपिका नामक स्मृतिका प्रचलन ही दृष्टिगोचर होता है। बिहार, उड़ीसा, उत्तरप्रदेश आदिमें लगभग पाँचसौ वर्ष पूर्वसे आज तक इन वैष्णव स्मृतियोंका प्रचलन है। अष्टाविंशति-तत्त्वका प्रचलन अभी ढाई सौ वर्षसे ही देखा जाता है।

"रघुनन्दनकी स्मृतिमें बहुत-से दोष हैं। उसके अनुसार जीवनभरमें कोई व्यक्ति पवित्र ही नहीं हो सकता। यहाँ तक कि ब्राह्मणकुलमें जन्म लेनेवाला व्यक्ति भी कभी पवित्र नहीं हो सकता। किसी भी ब्राह्मणके घरमें सन्तान उत्पन्न होनेपर उसके पितृकुल और मातृकुलके सात पुरुषोंको दस दिनों तक अशौच स्पर्श करता है। यदि किसीकी मृत्यु हो जाती है, तो उसमें भी मातृकुल तथा पितृकुलके सात पीढ़ियोंके पुरुष या नारीको दस दिनों तक अशौच स्पर्श करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सात पीढ़ीके पूर्वजके जो वर्त्तमान वंशज हैं, उनकी संख्या बहुत ही विशाल होगी। यदि इस विशाल जनसंख्यामें कहीं भी जन्म-मृत्यु हो जाये तो पूरे वंशको ही अशौच स्पर्श करेगा। एक वर्षमें इतनी विशाल संख्यामेंसे यदि छत्तीस जन्म-मृत्यु भी हो तो उसका पूरा वर्ष

ही अशौचकी अवस्थामें बीत जायेगा। इस प्रकार सारा जीवन वे कभी भी शुद्ध नहीं हो सकते। फिर उनकी शुद्धिका कोई उपाय नहीं है। यदि कहा जाय कि श्राद्धके समय मन्त्रोंके पाठसे शुद्धि होती है, तो शुद्धि होनेके बाद उन्हें फिर अशौच क्यों स्पर्श करता है? अतः उन्हें मन्त्र-शक्तिमें भी विश्वास नहीं है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन तीन सन्ध्याओंमें गायत्री-मन्त्रका जाप करता है, क्या गायत्रीमन्त्र उन्हें पवित्र करनेमें समर्थ नहीं? अतः इनके सारे विचार शास्त्र-विरुद्ध एवं भ्रान्त हैं।

"स्मार्त ब्राह्मणोंके विषयमें भी कुछ बतलाना आवश्यक है। स्मृति-शास्त्रोंके ज्ञाता और उनके अनुयायियोंको स्मार्त कहलाते हैं। स्मृति-शास्त्र भी दो प्रकारके हैं—लौकिक एवं पारमार्थिक। जिन स्मृति-शास्त्रोंमें वेद, उपनिषद्, पुराण आदि शास्त्रोंके मूल प्रतिपादित विषय भगवद्भक्तिकी विधियोंका उल्लेख है, वे पारमार्थिक स्मृतियाँ हैं। जिन स्मृतियोंमें शास्त्रोंके इस निगूढ़ तात्पर्यकी उपेक्षाकर स्थूल सामाजिक शृंखलाकी रक्षाके लिए ही विधियोंकी प्रमुखता है, उन्हें लौकिक स्मृति-शास्त्र कहते हैं। स्मृति मूलतः एक ही है। फिर भी भगवत्-उन्मुख एवं भगवत्-विमुख ऋषि-मुनियोंके भेदसे स्मृतिका विभाजन देखा जाता है। केवल इन लौकिक स्मृतियोंका अनुगमन करनेवाले लौकिक ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणता सिद्ध नहीं है। केवल ब्राह्मण वंशमें ही जन्म लेना यथेष्ट नहीं है। यदि ब्राह्मण वंशमें जन्म लेनेपर भी ब्राह्मणके कर्म और गुण उनमें नहीं हैं, तो वे ब्राह्मण नहीं हैं। अपने गुण या कर्मके अनुसार वे ब्राह्मणेतर वर्णोंमें हैं या वर्णबहिर्भूत अन्त्यज हैं। गीता एवं श्रीमद्भागवत आदिमें यह विषय सुस्पष्ट है—

(१) 'चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।'

(२) 'यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।'

"अतः ऐसे भगवद्विमुख, असुर-स्वभावविशिष्ट पुरोहित द्वारा कराया जानेवाला श्राद्ध भी आसुरिक श्राद्ध होगा—इसमें क्या सन्देह है? ऐसे श्राद्ध द्वारा परलोकगत आत्माका कोई भी कल्याण नहीं हो सकता। इसी प्रकार हरिविमुख ग्राम्य समाज एवं हरिविमुख लौकिक स्मार्त ब्राह्मणोंके द्वारा आरोपित अशौच-पालन वैष्णव-सदाचारसम्पन्न विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित व्यक्तियोंके लिए कभी भी पालनीय नहीं हो सकता।

तुम, तुम्हारी पत्नी और बच्चे वैष्णव-सदाचारसम्पन्न विष्णु-मन्त्रमें दीक्षित गृहस्थ हो। इसलिए तुम सदैव पवित्र हो। तुम पतित व्यक्तियोंका सङ्ग कदापि न करना, अन्यथा तुम भी पतित हो जाओगे। मैं पाखण्ड मतका अनुमोदन नहीं करता। शुद्ध सदाचारवर्जित ग्राम्य समाज भगवान् नहीं है। तुम दृढ़तासे भक्ति-पथपर अग्रसर होते रहो, तनिक भी भयभीत न होना।

"एक और बात अच्छी तरह समझना कि शुद्ध वैष्णवोंके लिए कुश-धारण और नान्दीमुख श्राद्ध करना सर्वथा निषिद्ध है। श्राद्ध शब्दका तात्पर्य 'श्रद्धा' से है—श्रद्धा हेतुत्वेनास्त्यस्य अण्। हरि-गुरु-वैष्णवके प्रति श्रद्धा-सम्बन्धीय क्रियाओंको ही श्राद्ध कहते हैं। स्मार्तोंके अनुसार कोई परम धर्मात्मा हरिनामाश्रित व्यक्ति भी परलोक गमन करनेपर प्रेतात्मा बन जाता है। अतः उनके पुरोहित यही अनुमानकर सभीको यह मन्त्र उच्चारण कराते हैं—

"एते प्रेततर्पणकाले भवन्ति इह अर्थात् प्रेतात्मा यहाँ उपस्थित होकर यह पिण्ड ग्रहण करे। यहाँ यह विचार करनेकी बात है कि जो माता-पिता या व्यक्ति जीवनभर शुद्ध सदाचारसम्पन्न रहकर भगवद्भजन करता रहा, मरते ही वह भूत-प्रेत बन गया और श्राद्धके समय माँस-मछली, जले हुए केले और चावलसे निर्मित पिण्डदानके द्वारा उन्हें सम्बोधित किया जा रहा है—हे पितृदेव! तुम भूत-प्रेत बने हो, तुम इस प्रेतखाद्यको ग्रहणकर तृप्त होओ। क्या यही योग्य पुत्रका योग्य पिताके प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन है। इसलिए वैष्णवजन ऐसे प्रेतश्राद्धका बहिष्कार करते हैं। तुम भी ऐसे प्रेतश्राद्ध करने-करानेवाले समाजका बहिष्कार करना। तुम समाजवालोंको मेरा यह पत्र दिखाकर कहना कि हमलोग किसी भी जगह किसी भी धर्मसभामें इस विषयमें शास्त्रार्थके लिए प्रस्तुत हैं। यदि वे शास्त्रार्थ करना चाहें, तो हमलोग तुम्हारे गाँव आकर शास्त्रार्थके लिए सदैव प्रस्तुत हैं।"

(ञ) श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रील सरस्वती ठाकुरके विचारोंका वैशिष्ट्य

परमाराध्य श्रील गुरुदेव संन्यास-ग्रहणके पश्चात् प्रतिवर्ष गौर-पूर्णिमाके पश्चात् अपने संन्यास-वेश प्रदाता पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिरक्षक

श्रीधर महाराजजीके पास उनके मठमें मिलने अवश्य ही जाते थे। सन् १९५२ की गौरपूर्णिमाके पश्चात् हम कुछ मठवासियोंको साथ लेकर वे चैतन्य-सारस्वत गौड़ीय मठमें उनसे मिलने गये। वहाँ परस्पर दण्डवत् प्रणतिके पश्चात् सभी वैष्णवजन इष्टगोष्ठी करने लगे। उस इष्टगोष्ठीमें अस्मदीय गुरुपादपद्मके अतिरिक्त पूज्य श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज, श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराज, श्रीमद्भक्तिआलोक परमहंस महाराज, श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज, श्रीमद्भक्तिविवेक हृषीकेश महाराज आदि बहुत-से संन्यासी एवं प्रवीण ब्रह्मचारीगण उपस्थित थे। इस इष्टगोष्ठीमें किसीने बड़ी नम्रतापूर्वक यह प्रश्न किया कि श्रीलरूप गोस्वामीकृत उपदेशामृतके—

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।

इस पञ्चम श्लोकमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील सरस्वती ठाकुरकी व्याख्याओंमें कुछ-कुछ अन्तर दीखता है। उसकी सङ्गति किस प्रकारसे की जाय?

पूज्य श्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराजने पूछा—"आपको दोनोंकी व्याख्याओंमें क्या अन्तर प्रतीत होता है?"

प्रश्नकर्त्ता—"श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने इसकी व्याख्यामें लिखा है कि स्त्रीसङ्ग और भक्ति-विरोधी मायावादियोंके सङ्ग-दोषसे रहित, सम्बन्ध-ज्ञानहीन स्वल्पबुद्धिविशिष्ट कनिष्ठ अधिकारियोंके मुखसे कृष्णनाम श्रवणकर मध्यम अधिकारी स्वसम्पर्कबोधसे उनका मन-ही-मन आदर करेंगे। यदि वैसे कनिष्ठ अधिकारी सद्गुरुसे दीक्षामन्त्र ग्रहणकर हरिभजनमें प्रवृत्त हों, तो उनके मुखसे हरिनाम सुनकर दण्डवत्-प्रणामके द्वारा उनका आदर करेंगे। परन्तु श्रीलसरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' ने 'दीक्षास्ति चेत' इस पदको सबसे पहले ग्रहणकर यह व्याख्या की है कि सद्गुरुके द्वारा कृष्णमन्त्रमें दीक्षित होकर कृष्ण और कृष्णनामको अभेद जानकर और अप्राकृत कृष्णनामको एकमात्र साधन मानकर जो कृष्णनाम ग्रहण करता है, उसे श्रवणकर मध्यम अधिकारी वैष्णव स्वसम्पर्कबोधसे उस व्यक्तिको मन-ही-मन आदर करेंगे। जो दीक्षित वैष्णव परम प्रीतिके साथ निरन्तर कृष्णनाम करते हैं तथा नामभजनके द्वारा अपने स्वरूपकी

उपलब्धिकर मध्यम अधिकारमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं, ऐसे मध्यम अधिकारी वैष्णवोंको काय द्वारा दण्डवत्-प्रणाम करेंगे तथा मनसे भी आदर प्रदान करेंगे।

अतः दोनोंकी व्याख्याओंमें कुछ अन्तर प्रतीत होता है। अतः इन दोनों व्याख्याओंमेंसे किसे ग्रहण किया जाय अथवा इनका क्या सामञ्जस्य है?

यह सुनकर सभी वैष्णवोंने प्रपूज्यचरण श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीसे इस प्रश्नका समाधान करनेके लिए अनुरोध किया। पूज्यपाद श्रीधर महाराज बड़े गम्भीर होकर उत्तर देने लगे—"साधारणतः दोनों गुरुवर्गकी व्याख्याओंका एक ही तात्पर्य है। फिर भी श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी व्याख्याकी पुष्टि शास्त्रोंसे होती है। श्रीलरूप गोस्वामी द्वारा संकलित पद्यावलीके श्लोक 'नो दीक्षां न च सत्क्रियां' के द्वारा स्पष्ट होता है कि कृष्णनाम ऐसा प्रभावशाली है कि चाण्डाल आदि अस्पृश्य लोगोंकी जिह्वापर स्पर्श होते ही मुक्ति पर्यन्त फल प्रदान करता है। यह दीक्षा आदि सत्कार्य, पुरश्चरण आदिकी भी अपेक्षा नहीं रखता। नामके इस अपूर्व फलका अनेक प्रमाण शास्त्रोंमें हैं—

(क) यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् ... श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते।

(ख) अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यद् वर्तते जिह्वाग्रे नाम तुभ्यं।

(ग) यन्नाम सकृच्छ्रवणात् पुक्कशोऽपि विमुच्यते संसारात।

(घ) सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा भृगुवर नरमात्रं तारयेत कृष्णनाम।

(ङ) साङ्केत्यं पारिहास्यं ... हरं विदुः।

(च) यदाभासोऽप्युधन् ... महिमानं प्रभवति (रूपगोस्वामीकृत कृष्णनामस्तोत्रम्)

(छ) म्रियमाणो हरेर्नाम ... किं पुनः श्रद्धया गृणन्।

(ज) पतितः स्खलितो भजनः ... पुमान्नार्हति यातनाम्।

"इन शास्त्रीय प्रमाणोंके द्वारा इस सिद्धान्तकी पुष्टि होती है कि अदीक्षित चाण्डाल व्यक्ति भी हरिनाम ग्रहण करनेमात्रसे परम पवित्र हो जाता है। चाहे उसमें श्रद्धा हो या न हो, एक बार भी कृष्णनाम करनेपर वह नरमात्रका संसारसे उद्धार कर देता है। कीर्त्तनकी तो

बात ही क्या, कृष्णनामका श्रवण करनेपर भी श्रवणकर्त्ता तत्क्षणात् संसारसे मुक्त हो जाता है। कोई भी मनुष्य चलते-फिरते, फिसलते, गिरते, छींकते किसी भी प्रकार भगवन्नाम ग्रहण करे, तो उसे संसारकी यातना नहीं भोगनी पड़ती।

"इसलिए भक्तिविरोधी असत् लक्षणोंसे रहित कोई भी व्यक्ति चाहे वह दीक्षित हो या अदीक्षित हो कृष्णनाम ग्रहण करनेपर उसे मन-ही-मन आदर करना ही वैष्णव सदाचार है।"

पूज्यपाद श्रीधर महाराजजीके विचारोंको सुनकर परमाराध्य श्रील गुरुदेवने बड़ी नम्रतासे कहा—"श्रीपाद श्रीधर महाराजजीने उक्त श्लोककी व्याख्यामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी व्याख्याके सम्बन्धमें जो कुछ कहा वह शास्त्रके सर्वथा अनुकूल तथा सुसिद्धान्तपूर्ण है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु इस विषयमें मेरा कुछ और वक्तव्य है, पहली बात यह है कि जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने जन्मसे ही श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका सङ्ग किया है। बचपनसे ही उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुरसे भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, चैतन्यचरितामृत आदि वैष्णव ग्रन्थोंका अनुशीलन किया है, वेदान्तसूत्र एवं श्रीमद्भागवतकी व्याख्याका श्रवण किया है तथा ऐकान्तिक रूपमें भक्तिविनोद धारामें निष्णात हैं। साथ ही वेद-वेदान्त आदि सर्वशास्त्रोंमें पारङ्गत अद्वितीय विद्वान हैं। उन्होंने ही हमें अनुग्रहपूर्वक श्रीमन्महाप्रभु, उनके परिकरों विशेषतः श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके साथ हमारा परिचय कराया है। वे निस्सन्देह रूपसे भक्तिविनोद ठाकुरके हृद्गत भावोंको जाननेवाले हैं। उन्होंने श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा कृत इस श्लोककी भाषा और पीयूषवर्षिणी-वृत्तिको अवश्य ही देखा होगा। फिर भी अपनी भाषा और अनुवृत्तिमें कुछ विशेष रूपसे व्याख्या की है। वह उन्होंने अवश्य ही समझ-बूझकर की होगी। इसलिए हमें श्रील प्रभुपादके माध्यमसे श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी व्याख्याको समझना होगा तथा श्रील प्रभुपादकी व्याख्याको ही प्रधानता देनी चाहिये।

दूसरी बात यह कि श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपनी व्याख्यामें कृष्णनामके साधारण माहात्म्यको दृष्टिमें रखते हुए वैष्णव सदाचारका निर्णय किया है। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुके आचरित और प्रचारित

श्रीकृष्णनामका फल है चरम प्रयोजन—कृष्णप्रेमकी प्राप्ति। किन्तु जब तक कोई व्यक्ति सम्बन्धज्ञानसहित और अपराध आदिसे रहित होकर ऐसे कृष्णनामको ग्रहण नहीं करेगा, वह चरम प्रयोजन—कृष्णप्रेम-प्राप्तिकी दिशामें एक पग भी अग्रसर नहीं हो सकता है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

कृष्णनाम करे अपराधेर विचार।
कृष्ण बलिते अपराधीर न हय विकार॥

(चै॰ च॰ आ॰ ८/२४)

एक कृष्णनाम करे सर्वपापनाश।
प्रेमेर कारण भक्ति करेन प्रकाश॥

(चै॰ च॰ आ॰ ८/२६)

हेन कृष्णनाम यदि लय बहु बार।
तबु यदि प्रेम नहे, नहे अश्रुधार॥
तबे जानि ताहाते अपराध प्रचुर।
कृष्णनाम-बीज ताहे न करे अङ्कुर॥

(चै॰ च॰ म॰ ८/२९-३०)

इस उपरोक्त विशेष विचारको ध्यानमें रखते हुए ही श्रील प्रभुपादने सम्बन्धज्ञानयुक्त होकर अर्थात् दीक्षासम्पन्न होकर, अपराधरहित होकर कृष्ण और कृष्णनामको अभिन्न समझकर, अप्राकृत नामको एकमात्र साधन समझकर निरन्तर उसका सेवन करते हुए कृष्णप्रेमप्राप्तिरूप प्रयोजनके प्रति चेष्टाशील व्यक्तिको ही मनसे आदर करनेकी बात की है।

श्रीमन्महाप्रभुने स्वप्रकाशित शिक्षाष्टकमें 'आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं' तथा 'परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्' द्वारा ऐसे ही नामको लक्ष्य किया है।

श्रील प्रभुपादने श्रीचैतन्यचरितामृत (म॰ १५/११०) में पूज्य श्रीधर महाराज द्वारा उच्चरित श्लोक 'नो दीक्षां न च सत्क्रियां' श्लोकके अनुभाष्यमें स्वयं कहा है कि मन्त्रकी सिद्धिके लिए पुरश्चर्या आदिकी व्यवस्था दी गयी है, किन्तु श्रीनाम-महामन्त्रके लिए पुरश्चरण विधिकी अपेक्षा नहीं होती। एक बार कृष्णनाम उच्चारणके फलसे ही पुरश्चर्याका

सारा फल स्वतः मिल जाता है। अतः श्रीमहामन्त्रकी सिद्धिके लिए पुरश्चर्या आदि सत्क्रियायोंकी अपेक्षा नहीं होती।

किन्तु यहाँ 'कृष्णनामात्मकं मन्त्रोऽयं रसनास्पृगेव फलति' का एक गूढ़ तात्पर्य है, वह यह कि कृष्णनामात्मक यह मन्त्र जिह्वाके स्पर्शमात्रसे फल प्रदान करता है। विशेषतः 'रसनास्पृग्' का अर्थ सेवोन्मुख जिह्वाका स्पर्श। बिना सेवोन्मुख हुए कृष्णनामकी स्फूर्ति कदापि सम्भव नहीं है। अन्यथा जड़-भोगोन्मुख जिह्वामें तरह-तरहके अनर्थ और अपराध विद्यमान रहनेके कारण उस जिह्वापर शुद्ध कृष्णनाम कभी उदित नहीं हो सकता। श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुकी साधन लहरीमें ऐसा ही कहा गया है—

> अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।
> सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः॥

अर्थात् श्रीकृष्णके नाम, रूप, गुण, लीला—ये सभी अप्राकृत तत्त्व हैं। प्राकृत चक्षु, कर्ण, रसना आदि इन्द्रियोंके द्वारा यह ग्रहणीय नहीं है। जब जीवोंके हृदयमें सेवा करनेकी वासना उदित होती है, उस समय श्रीनामादि स्वयं उसकी जिह्वापर स्फुरित होते हैं।

इस प्रकार नाम ग्रहण करते-करते जब साधक थोड़ा उन्नत होता है, तब नामभजनके द्वारा कृष्णसेवाकी योग्यता अर्जित करता है, नाम, धाम आदिके अप्राकृतत्वकी उपलब्धि करता है और मध्यम अधिकारमें प्रतिष्ठित हो जाता है। ऐसे मध्यम अधिकारी वैष्णवको ही मनसे आदरके साथ-साथ कायसे भी दण्डवत् करनेका विधान श्रीरूप गोस्वामीने उपदेशामृतके श्लोकमें दिया है।

इनके सारगर्भित सुसिद्धान्तपूर्ण विचारोंको सुनकर उपस्थित वैष्णव समाज धन्य-धन्य कर उठा तथा सभीने इनके विचारोंका समर्थन किया।

(ट) श्रील गुरुपादपद्मका अतिमर्त्त्यत्व एवं सुदृढ़ गुरुनिष्ठा

[श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्त्तमान आचार्य एवं सभापति श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज द्वारा लिखित]

'वैराग्ययुक्त भक्तिरस' की व्याख्यामें परमाराध्यतम श्रील केशव गोस्वामीपादने यह बताया है—वैराग्यका अन्य नाम है—कृष्णेन्द्रिय

प्रीतिवाञ्छामय विप्रलम्भ। जो वैराग्य ब्रह्मज्ञानके प्रति तुच्छ ज्ञान और सायुज्य आदि मुक्तिके प्रति घृणा, भय और अनादरका प्रदर्शन करता है, वही कृष्णसुखवाञ्छामयी वैराग्य-विद्या है। साधक जीवके पक्षमें 'कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल भोगोंका त्याग' ही 'वैराग्य' के नामसे विवेचित होता है, किन्तु कृष्णसेवा-परायणता ही मुक्त पुरुषके लिए वैराग्यके रूपमें निर्दिष्ट होती है। श्रील दास गोस्वामीने ज्ञान, विराग और भक्तिसहित नैष्कर्म्यको ही 'वैराग्ययुग् भक्तिरस' के रूपमें बताया है। मायावादियोंकी चिद्‌विलासशून्यताको कभी भी वैराग्य नहीं कहा जा सकता। षडैश्वर्यशाली भगवान्‌के लिए विशेष गुणके रूपमें जो 'वैराग्य' शब्दका प्रयोग होता है, वह मायाधीश भगवान्‌की स्वरूप-सम्प्राप्त अवस्था है। निर्जन भजनके समय वैराग्यका अभ्यास करनेमें जो कृत्रिम प्रचेष्टा परिलक्षित होती है, उसके द्वारा कभी भी भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतात्त्विक व्यक्तिगण स्थूल-त्यागको वैराग्य समझते हैं, किन्तु कृष्णविलासकी लालसाकी चरम अवस्था ही शास्त्रोंमें वैराग्यके नामसे विवेचित हुई है। प्राकृत सहजियागण या जड़भोग-त्यागियोंका वैराग्य अपनी कामनाकी पूर्तिके लिए कैतवपूर्ण अनित्य साधनमात्र है। नित्यसिद्ध महात्माओंका कृष्णसुख-तात्पर्यपर नित्यसिद्ध वैराग्य भक्तिनेत्रोंसे ही देखा या अनुभव किया जा सकता है।

महापुरुषोंके जीवनमें निरपेक्षता और सर्वज्ञता स्वतःस्फूर्त रूपमें प्रकाशित रहती है। कौन व्यक्ति हरिसेवाके नामपर अपनी इन्द्रियतृप्तिमें रत है—वे अन्तर्यामीके रूपमें यह बतलाकर साधकको कपटताके हाथोंसे परित्राण पानेका सुयोग प्रदान करते हैं। पुनः किसीकी सेवाप्रवृत्ति देखकर उसे उत्साह-प्रदान करना भी उनके सेवकवात्सल्यका परिचय प्रदान करता है। 'केशरीर स्वपोतानाम् अन्येषाम् उग्रविक्रमः' अर्थात् सिंह शत्रुके प्रति पराक्रमका प्रकाश करता है, किन्तु अपनी सन्तानके प्रति विशेष स्नेहयुक्त होता है; इसी प्रकार श्रील गुरुपादपद्म भी नास्तिक पाषण्डियोंके प्रति साक्षात् दण्डधर काल-स्वरूप, किन्तु शिष्यों या आश्रितजनोंके प्रति सन्तान-वात्सल्ययुक्त थे। उनके सैकड़ों दोष एवं त्रुटियोंका मार्जनकर उन्हें सेवाका सुयोग देकर हरिभजनमें नियुक्त रखते थे। चाहे कोई वृद्ध हो, रोगग्रस्त हो, जागतिक योग्यतासे रहित क्यों न हो, यदि ऐसे लोग

भी उनके मठ और मिशनमें हरिभजन करने आते, तो वे उन्हें आश्रय देकर हरिभजनका सुयोग देते थे। निःसन्देह यह उनकी कृपालुता, वदान्यता, सर्वोपकारीत्व, कारुण्य, परदुःखदुःखिता और कृष्णैकशरणताका ज्वलन्त आदर्श और दृष्टान्त है।

'सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् मा ब्रुयात् सत्यमप्रियम्'—नीतिवादियोंके इस नीतिवाक्यके अनुसार सत्य और प्रिय वाक्य कहना चाहिये, किन्तु सत्य वाक्य यदि अप्रिय हो, तो उसे नहीं कहना चाहिये। किन्तु गुरुपादपद्म उच्च स्वरसे यह सर्वत्र घोषणा करते कि सत्य यदि अप्रिय भी हो, तथापि उसे कहना ही उचित है। ऐसा नहीं करनेसे शास्त्रके अनेक रहस्य इस जगत्में अप्रचारित और अप्रकाशित रह जायेंगे। जगत्के लोगोंका वास्तविक कल्याण चाहनेवाले साधु-गुरु-वैष्णवोंके मर्मभेदी वाक्य आपात् सुखकर न होनेपर भी वे ही आत्यन्तिक मङ्गलके हेतु हैं। इस सम्बन्धमें परमाराध्य श्रील गुरुदेवने लिखा है—"आजकल हमलोग बहुत-सी धार्मिक पत्रिकाओंको देखते हैं। वे पत्रिकाएँ आचार्यकेसरी जगद्गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' के द्वारा आचरित-प्रचारित विधि-विधानसे क्रमशः भिन्न पथकी ओर अग्रसर हो रही हैं। लाभ, पूजा, प्रतिष्ठाशा ही इसका मूल कारण है। 'निरपेक्ष हुए बिना धर्मकी रक्षा नहीं हो सकती'—श्रीचैतन्यचरितामृतकी इस सत्य बातको सर्वदा स्मरण रखना चाहिये। निरपेक्षताको अक्षुण्ण रखनेमें यदि कठोर-से-कठोर विपत्तिका भी सामना करना पड़े, तो उसे भी आलिङ्गनकर समग्र विश्वको आदर्श शिक्षा देनी चाहिये।" साधु-गुरु-वैष्णवोंके आत्मकल्याणजनक कटु वाक्य और समालोचनाके द्वारा भजनसे सम्बन्धित विघ्न-बाधाएँ दूर होती हैं और उनकी निरपेक्ष नीति, शासनवाक्य और अप्रिय सत्यकथा द्वारा मन्त्रौषधिकी भाँति श्रीनाम-ग्रहणमें रुचि प्राप्त होती है।

सतीर्थ गुरुभ्राताओंके प्रति श्रील गुरुमहाराजका जो स्नेह एवं सहानुभूति थी, वह अतुलनीय है। जैसे ही कोई गुरुभ्राता उनके निकट आकर स्नेहपूर्वक 'विनोद दा' अथवा 'केशव महाराज' सम्बोधित करते, वे उन लोगोंकी अवस्था समझकर यथासाध्य आर्थिक सहायता आदि करते। किन्तु कभी भी प्रत्याशा कर आर्थिक सहायता नहीं करते। इस प्रकार

उन्होंने हजारों रुपये अकातर और निःस्वार्थ रूपसे सहायताके लिए प्रदान किये। निःसन्देह इसे गुरुभ्राताओंके प्रति उनका वात्सल्य कहना होगा।

श्रील गुरुपादपद्मके निकट अनेक पण्डित, भक्ताभिमानी, अनभिज्ञ, चतुर, बालक, युवक और वृद्ध उनके दर्शनके लिए आते थे। सभी लोग उनकी सौम्य और शान्त मूर्त्ति, गुरु-गम्भीर वाणी और मन्द-मुस्कानयुक्त श्रीमुखमण्डलको देखकर अपनी इच्छा या प्रश्नका विषय भूल जाते थे। मायावादी तार्किकोंको परास्त करनेपर भी वे उनकी मर्यादाकी रक्षा करते थे। बहुत-से अन्याभिलाषी व्यक्ति भी उनसे विविध प्रकारका परामर्श लेते, किन्तु ऐसे लोग ऐकान्तिक कृष्णभक्त साधु-महापुरुषकी ऐसी शक्तिको हृदयंगम करनेमें असमर्थ थे। नित्यसिद्ध महात्माओंके लोकातीत व्यवहारको साधारण मनुष्य भला कैसे समझ सकते हैं? कौन-सी उनकी कृपा है और कौन-सी वञ्चना—यह समझनेकी सामर्थ्य साधारण लोगोंमें नहीं है और हो भी नहीं सकती। उनकी (श्रीगुरुदेवकी) धारणा थी—"जगत्‌में कोई भी मेरे अनुराग या विरागका पात्र नहीं है, सभी गुरुसेवा, कृष्णसेवाके उपकरण हैं।" यही महाभागवतोंकी अप्राकृत दृष्टिभङ्गी है।

प्रत्येक अनुष्ठान और क्रियाकलापोंमें श्रील गुरु महाराजकी नवीनता और वैशिष्ट्य परिलक्षित होता था, इसका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मूल प्रचारकेन्द्र श्रीधाम नवद्वीप स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठके मुख्य प्रवेशद्वार 'नरहरि-तोरण' के प्राचीरमें 'पाषण्ड-गजैकसिंह' लिखवा उन्होंने श्रील वृन्दावनदास ठाकुरके आनुगत्यमें मुरारि भगवान् श्रीचैतन्यचन्द्रकी स्तुति की है। उनके अन्तरङ्ग सतीर्थ श्रील भक्तिसारङ्ग गोस्वामी महाराजने भी उन्हें 'पाषण्ड-गजैकसिंह' की उपाधिसे विभूषित किया था तथा वे इसी नामसे उन्हें सम्बोधित किया करते थे। मायावादी आदि शुद्धभक्तिके विरोधी लोगोंके लिए मानो वे चिरदिन ही हाथमें खड्ग धारण करनेवाले थे। ऐसे लोगोंको चिरशत्रु जानकर उन्होंने श्रीशङ्करके अद्वैतवाद या मायावादको इस जगत्‌से समूल उखाड़ फेंकनेकी भीष्मप्रतिज्ञा की थी। ये सब विषय उनके पत्र, प्रबन्ध, निबन्ध, व्याख्या, भाष्य, विवृति, भाषण आदिमें स्पष्टतः

व्यक्त हुए हैं। परम पूज्यपाद श्रील गोस्वामी महाराज श्रील गुरुपादपद्मको कहते—"आपको देखनेसे श्रील सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' का स्मरण हो आता है। जिनका दर्शन करनेसे श्रील गुरुदेव स्मृतिपटलपर उदित होते हों, वे गुरु-स्वरूप, महाभागवतश्रेष्ठ हैं।"

'कृष्णभक्तमें कृष्णके सभी गुण सञ्चरित होते हैं'—इस वाक्यके अनुसार श्रील आचार्यदेव इंजीनियरिंग उत्तीर्ण नहीं करनेपर भी इंजीनियरोंका तथा वकालत पास नहीं करनेपर भी वकील और बेरिस्टर आदिको कानूनी परामर्श देते थे। अनेक अभिज्ञ इंजीनियर भी केन्द्रीय मठके तिलकचिह्नित गगनचुम्बी श्रीमन्दिरका दर्शनकर आश्चर्यान्वित हुए, जब उन्होंने यह जाना कि यह मन्दिर श्रील गुरु महाराजके अपने उपदेश, निर्देश और 'प्लान' के अनुसार निर्मित हुआ है। जगद्गुरु श्रील सरस्वती ठाकुरने कहा है—"सम्प्रदाय-रक्षाके लिए श्रीराधारानीकी सेवाकी रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।" 'श्रीराधारानीकी सेवा'—इसका अभिप्राय उन्होंने मठ-मन्दिरोंको विषयी और दुर्जन लोगोंके हाथोंसे बचानेके लिए मामला-मुकदमा आदि द्वारा धर्माधिकरणकी सहायता लेकर इनके संरक्षणको ही लक्ष्य किया है। अपने आराध्यदेव श्रील प्रभुपादके आदेश-निर्देशके अनुसार ही श्रील गुरुपादपद्मने कानूनी मार्ग द्वारा मिशनकी रक्षाका दायित्व ग्रहण किया था। उनकी अद्भुत स्मरणशक्ति और प्रतिभासे प्रभुपाद भी विस्मित हो जाते। एक बार वकीलोंके साथ तर्क-वितर्कमें श्रील गुरु महाराजके सतीर्थ श्रील माधव महाराजने कहा—"आपने वकालत कब पढ़ी, जिससे इन आइनज्ञोंके साथ आपने तर्क-वितर्क किया तथा उन लोगोंने आपकी बात मान ली?"

वैष्णव-साहित्य सृजन तथा सम्पूर्ण अभिनव गूढ़ार्थोंके साथ भक्तिके सिद्धान्तोंकी व्याख्याके प्रसङ्गमें भी उनका अवदान अतुलनीय है। अन्धानुयायीके अनुसार न चलकर मूल तत्त्व-सिद्धान्तोंके अन्तर्निहित भाव-धाराको अक्षुण्ण रखना, यह उनकी लेखनीका वैशिष्ट्य है। 'सम्प्रदाय-रक्षा ही श्रीमन्महाप्रभुकी श्रेष्ठ सेवा है'—इसे विशेष रूपमें अनुभवकर ही उन्होंने अपनी बलिष्ठ लेखनीको धारण किया था। अन्वय या व्यतिरेक रूपमें वाद-प्रतिवादके माध्यमसे तत्त्व-सिद्धान्तका स्थापन ही उनका मुख्य लक्ष्य था तथा इसमें अद्भुत अलौकिक नवीनता

थी। उनके द्वारा रचित 'श्रील प्रभुपादकी आरति', 'श्रीतुलसी-आरती', 'मङ्गल-आरति' आदि गीतोंमें भी उनकी अभिनव अलौकिक प्रतिभा प्रकाशित हुई है। 'मङ्गल-आरति' में उन्होंने अप्राकृत कवि श्रीजयदेवके गीत-गोविन्दका अनुसरण करते हुए चिल्लीलामिथुन श्रीव्रजनवयुवद्वन्द्वकी असमोर्द्ध्व माधुर्य-लीलाकथाका दिग्दर्शन कराया है। श्रीपत्रिकाके प्रकाशके लिए किसी प्रबन्धका dictation (श्रुतिलेख) देनेके समय अकस्मात् अतिथिअभ्यागतके साथ कथोपकथनके समय भी वे मूल प्रबन्धके विषयवस्तुसे अलग न होते अथवा किसी प्रकारकी विरक्तिका अनुभव नहीं करते। यह भी उनका अतिमर्त्य चारित्रिक वैशिष्ट्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सर्वोपरि श्रीगुरुपादपद्मके प्रति अनन्य निष्ठाने ही उन्हें सतीर्थ और अनुकम्पित लोगोंमें श्रेष्ठत्वके आसनपर प्रतिष्ठित किया है। अपने सतीर्थ—गुरुभ्राताओंको कानून आदि समस्त विषयोंमें सत्परामर्श प्रदानके द्वारा श्रील गुरुपादपद्मने उदारनैतिक मनोभावका परिचय दिया है। परमार्थ-सम्बन्धी जटिल प्रश्न और कूट-तर्क आदिका शास्त्रसिद्धान्तके अनुसार सदुत्तर देनेके कारण सारस्वत गौड़ीय समाजमें वे एक ही साथ कोविद (नीतिज्ञ) और न्यायकोविदके रूपमें प्रसिद्ध थे। श्रीजन्माष्टमी, श्रीएकादशी आदि हरिवासर, श्रीगौरजयन्ती, श्रीरामनवमी, श्रीनृसिंह चतुर्दशी, श्रीअद्वैत सप्तमी, श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी आदि व्रत-उपवास पूर्वविद्धा त्यागकर विशेष निष्ठाके साथ पालन करनेका उन्होंने आदर्श प्रदर्शन किया है। उन्होंने श्रीवेदान्त समितिमें चातुर्मास्य और ऊर्जा व्रतके कठोर नियम आदि (विधि-निषेधात्मक) का पूर्णतः संरक्षणकर श्रील सरस्वती प्रभुपाद, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित-प्रचारित रीति और आदर्शका सम्पूर्ण रूपसे अनुवर्तन किया है। चातुर्मास्यव्रतपालनमें उदासीनता या ऊर्जाव्रतके आदरमें शिथिलताका उन्होंने कभी अनुमोदन नहीं किया और न कभी प्रश्रय दिया। तत्त्व-सिद्धान्त-विचारको लेकर उन्होंने एक बार परम पूजनीय यतिराज श्रील श्रीधर गोस्वामी महाराजको विशेष गुरुनिष्ठाका प्रदर्शन करते हुए कहा—"मैं पूर्व गोस्वामिवर्गको जानता-पहचानता नहीं। मैं जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी विचारधाराको ही अभ्रान्त सत्य मानता हूँ। श्रील प्रभुपादके

आलोकमें ही मैं पूर्व गोस्वामियोंको जानने-समझनेकी चेष्टा करूँगा। उनकी व्याख्या-विवृतिका ही श्रेष्ठत्व सबसे पहले मानूँगा। 'आचार्येर जेई मत सेई मत सार। अन्य आर जत मत जाउक छारखार॥'—यही मेरा विचार है।" श्रील गुरुपादपद्मके प्रति उनकी ऐसी ऐकान्तिकी निष्ठा अवश्य ही अतुलनीय है।

श्रीगौरसुन्दरके प्रेष्ठ परिकर श्रील गुरुपादपद्मने बद्धजीवके नित्य-कल्याणके लिए ही "मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय" ग्रन्थकी रचना की है। अन्याभिलाषी, कुज्ञानी, कुयोगियोंके मतवादोंका खण्डनकर उन्होंने उन्हें वास्तविक परमार्थका पथ दिखाया। आदर्श त्रिदण्डि-गोस्वामीके रूपमें वे विरोधी पाखण्डियोंके भी यथार्थ मङ्गलकी कामना करते थे। हमने अनेकों बार सत्यकी रक्षाके लिए उनकी निर्भीकता तथा दृढ़ताका परिचय पाया है। वे चित्-जड़-समन्वयवादीको कभी प्रश्रय नहीं देते थे। प्राकृत-सहजियागणके भोगमय विचारको गर्हित करनेके उद्देश्यसे उन्होंने इस विषयमें श्रील प्रभुपाद और श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखित प्रबन्ध आदिका संकलनकर 'सहजिया-दलन' ग्रन्थका प्रकाश और प्रचार एवं शुद्धाचारपरायण निर्दोष जीवन-यापनका आदर्श प्रदर्शन किया। केन्द्रीय सरकार और अनेक मिशन-संघके अनित्य देह-मनोधर्मकी क्लेश-निवारण-प्रचेष्टा अथवा समाज-सेवामूलक अनुष्ठानकी अकिञ्चित्करताका प्रदर्शनकर उन्होंने पारमार्थिक चिकित्सालय और वेदान्त-विद्यापीठ आदिकी स्थापना की। दुःसङ्गके वर्जनमें वे 'वज्रादपि कठोर' और भक्तिके अनुकूल कर्ममें 'कुसुमकी भाँति कोमल' थे। कर्मजड़-स्मार्त समाजकी कर्मकाण्डीय व्यवस्थाके अनुसार प्रसव तथा मृत्युके उपरान्त अशुचि और मलमास आदि विचारोंको प्रश्रय नहीं देकर उन्होंने 'श्रीपुरुषोत्तम-व्रतपालन' आदिके द्वारा श्रीनामभजनमें ही शुद्धताकी शिक्षा दी है। निष्किञ्चन और समर्पित-आत्मा होकर श्रीकृष्णकी इच्छाके ऊपर पूर्ण रूपसे निर्भर होकर अर्थात् 'भगवान्‌की इच्छा पूर्ण हो' अथवा 'भगवान्‌की इच्छासे सब कुछ सम्भव है', इस प्रकारकी भावनासे वे जीवन-यापन करते थे, सेवकगण यह देखकर विस्मित हो जाते। उनकी कबूतर एवं गौरैया पक्षीके प्रति स्नेह, ममता, अहिंसाकी नीति, बालक, वृद्ध सबके प्रति सरल सदय व्यवहार सभी लोगोंकी दृष्टिको आकर्षित

कर लेता था। जीवको ब्रह्म माननेवाले, पाँचमिशाली, पञ्चोपासक, बहुईश्वरवादी, शून्यवादी, निर्विशेष ब्रह्मवादी आदि अपधर्म, उपधर्म, छलधर्म आदि विचारका शास्त्रीय-सिद्धान्तके आधारपर तीव्र रूपमें खण्डन करनेपर भी उनके चित्तका सहज, सरल, प्रशान्त भाव नष्ट नहीं होता था। निर्जन भजनके नामपर उन्होंने कभी आलस्यको प्रश्रय नहीं दिया, बल्कि काय, मन और वाक्यके द्वारा साधुसङ्गमें कृष्णानुशीलनका उपदेश दिया है। श्रीहरिनामके द्वारा ही सर्वार्थ सिद्धि और कृष्णप्रेममें समाधि प्राप्त होती है, यह उन्होंने स्वयं आचरणकर शिक्षा दी है। सोलह नामका संख्यापूर्वक या संख्यारहित अहर्निश उच्च स्वरसे कीर्त्तन करनेसे क्षुधा-तृष्णाको जीतना सम्भव है तथा रिपुपञ्चकके व्यवहारके विषयमें उन्होंने सेवकोंके समीप आदर्श स्थापन किया है। श्रील कविराज गोस्वामीकी उक्ति—'मैं मलमें पड़े हुए कीड़े-से भी तुच्छ हूँ' तथा श्रील वृन्दावन दास ठाकुरकी उक्ति 'ऐसे लोगोंके सिरपर लाठीसे प्रहार करूँ'—इन दोनों वाक्योंका तात्पर्य एक ही है और इनमें आत्मकल्याणजनक वास्तविक दैन्य जानकर अमानी-मानद धर्ममें दीक्षित होकर श्रीकृष्णनाम ग्रहण करनेका उपदेश दिया गया है। उपास्य-तत्त्वके सम्बन्धमें उनकी अपनी भजनप्रणालीके उन्नततम गम्भीर भावसमूहने उन्हें एक साथ ही भजनानन्दी और गोष्ठानन्दीके आसनपर प्रतिष्ठित किया था। अनर्थयुक्त जीवोंके उद्धारके लिए उनकी करुणा अहैतुकी थी। हरिभजनकी चेष्टा करनेवालोंके कल्याणके लिए उनके मठ-मन्दिरका द्वार सर्वदा ही खुला हुआ था। अपने सतीर्थ वैष्णवोंकी सेवाके लिए उनके यत्नाग्रहकी सीमा नहीं थी। उत्तम रूपसे उनकी सेवा करानेके बाद ही वे परितृप्त होते। उनके द्वारा रचित मायावादको ध्वस्त करनेवाले ग्रन्थ और गीतिकाव्य, दार्शनिक प्रबन्ध आदि, विभिन्न सभाओंमें प्रदत्त गम्भीर तत्त्वसिद्धान्तमूलक भाषण आदि उनके अतिमर्त्यत्व (अलौकिकता) का प्रकृष्ट परिचय प्रदान करते हैं। वे सारस्वत वाणीके आश्रयमें श्रीभक्तिविनोदधारामें नित्य निष्णात होकर श्रीरूप-रघुनाथके प्रचारके विषयका आस्वादन करते हुए श्रीगौर-राधाविनोदबिहारीजीके सेवानन्दमें विभोर रहते। अपने अनुगत सेवकोंको वे सर्वदा हरिकथा और हरिकीर्त्तनमें नियुक्त रखनेकी चेष्टा करते और

कृष्णके अतिरिक्त जड़-विषयक कथाको ही उपदेशामृतमें कथित वाक्-वेग कहकर उसे दूर करनेका उपदेश देते।

बहुत चेष्टा करनेपर भी कोई श्रील गुरुपादपद्मको आहार और वस्त्र आदि नहीं दे पाते। इतना ही नहीं वे अपनी अनुगृहीता विधवाओंके दानपत्र और दलील इत्यादि भी ग्रहण नहीं करते और अपने अनुकम्पित सेवकोंको भी ऐसा दान ग्रहण करनेको निषेध करते। पुनः कदाचित् किसीको भी अयाचित भावसे कृपा करनेमें कुण्ठित नहीं होते। उनके द्वारा प्रदत्त सामान्य वस्तुको ग्रहणकर उनलोगोंको गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए उत्साह प्रदान करते। गृहमें आसक्त लोगोंकी दुर्दशाकी चिन्ताकर वे प्राकृत सहजिया 'घरपागला और गृही बाउला' लोगोंके नामोंका उल्लेखकर अपने त्यागी शिष्योंको सदैव सावधान करते। 'विषयीर अन्न खाइले मलिन हय मन। मलिन मन हैले नय कृष्णेर स्मरण॥'—इसकी व्याख्याके माध्यमसे उन्होंने गुरुभोगी और गुरुत्यागी सम्प्रदायके साथ किसी भी प्रकारका आदान-प्रदान और संश्रय रखनेकी कठोर निषेधाज्ञा जारी की थी। 'कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल भोग त्याग'—वे स्वयं इसका आचरणकर सेवकोंको शिक्षा देते तथा श्रीऊर्जा-व्रत, पुरुषोत्तम-व्रत आदिमें अपने शिष्योंको भोजनकी लालसाका परित्यागकर भूमिपर शयन और गौ-ग्रासपूर्वक प्रसाद ग्रहण करनेके वैराग्याभ्यासका उपदेश देते। सेवानुकूल्य-संग्रहके विषयमें भिक्षुकगणको 'तोमार सेवाय दुःख हय जत सेओ त परम सुख'—इस पदका भलीभाँति विचार करते हुए सुविधापूर्ण जीवन-यापन न कर कष्ट सहते हुए श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवामें नियुक्त रहनेका निर्देश देते थे। अपने लिए बैंक बैलेंस द्वारा अन्तिम कालका बन्दोबस्त करनेवाले मठवासी सेवकाभिमानियोंको उन्होंने कपट-वैष्णववेषी, भगवत्-विश्वासहीन सुविधावादी और नास्तिक बताया है।

कृष्ण-तत्त्ववेत्ता आदर्श गुरुके रूपमें उन्होंने अपने अनुगताभिमानी लोगोंको अनर्थ युक्त अवस्थामें "अष्टकालीय लीलास्मरण और सिद्धदेहकी भावना" का निषेध किया है और जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके उपदिष्ट वाक्य—"कीर्त्तनके प्रभावसे स्मरण होगा और तब उस अवस्थामें निर्जन भजन सम्भव है"—इसके प्रति सबकी दृष्टिको विशेष रूपसे

आकर्षित किया है। श्रीगुरु-वैष्णवोंका अवैध अनुकरण सेवा या भजन नहीं है, बल्कि वे इसे पाषण्डता कहते थे। अपने द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठीके मुख्य दरवाजेपर सेवकों द्वारा उन्होंने निम्नलिखित पद्य लिखवाया था—

जड़विद्या जत मायार वैभव तोमार भजने बाधा।
मोह जनमिया अनित्य संसारे जीवके करये गाधा॥

अर्थात् कनक, कामिनी और प्रतिष्ठा संग्रहके लिए व्याकरण आदि शास्त्राध्ययनका प्रयोजन नहीं है। परन्तु "जिस विद्याकी आलोचनासे मनमें कृष्णरति स्फुरित हो, उसीके प्रति सबका आदर होना चाहिये।" "जिस विद्या द्वारा भक्तिमें बाधा पहुँचे, उस विद्याके मस्तकपर पदाघात करो, सरस्वती, जो कृष्णप्रिया है और कृष्णभक्ति जिसका हृदय है, वही भक्तिविनोदका वैभव है।"—इन सब वचनोंका तात्पर्य बताना चाहते थे। श्रील गुरुपादपद्म सेवाके नामपर कपटता और भक्तिके नामपर ढोंग कभी नहीं सहते थे। एक बार उनके किसी गृहस्थ शिष्य द्वारा प्रचारकेन्द्र मठकी स्थापनाके लिए दानपत्र दलीलकर प्रकारान्तरसे गुरु-वैष्णवोंको सेवक बनानेकी चेष्टा करनेपर उन्होंने वहाँके मठसेवकोंको वापस बुलाकर उक्त शिष्यनामधारीके प्रति निरपेक्षताका प्रदर्शन किया था। वे अपने व्यक्तिगत सेवक या शिष्याभिमानीको भी कपटताका परित्यागकर अन्यान्य ज्येष्ठ गुरुसेवकोंकी मर्यादाकी रक्षा करते हुए मिल-जुलकर रहनेके लिए कठोर शासन करते। व्रजमण्डल आदि क्षेत्रमें मधुकरी भिक्षा द्वारा जीवन-निर्वाहका अभिनय करनेवालोंकी अपचेष्टाकी निन्दा करते। वे यह भी स्मरण कराते कि जिह्वा-लाम्पट्य आदिमें आसक्त वृत्तिवालोंको व्रजमें बन्दर, कछुए आदिका जन्म-ग्रहण करना पड़ता है। वे कहते थे कि जब तक चित्त निर्गुणावस्थाको प्राप्त नहीं होता, तब तक निर्गुण मधुकरी भिक्षामें किसीका अधिकार नहीं होता।

श्रील गुरु महाराजके सतीर्थ गुरुभ्राताने किसी समय अपनी पत्रिकामें लिखा—"जो मायापुरसे बाहर अथवा दूर हैं, वे श्रील प्रभुपादकी सेवासे वञ्चित हैं।" श्रील आचार्यदेवने वज्रगम्भीर स्वरसे इसका प्रतिवाद करते हुए घोषणा की—"जो गुरुभोगी या गुरुत्यागी हैं, वे प्रभुपादसे लाखों-करोड़ों योजन दूर अवस्थित हैं। जिस समय ऐसे लोगोंने मायापुरका परित्यागकर

१०-१२ वर्ष तक कलिके राजत्वमें वास किया है, उस समय निश्चय ही उनलोगोंके द्वारा श्रील प्रभुपाद और मायापुरकी सेवा नहीं हुई। ऐसे लोगोंने बाह्यतः श्रील प्रभुपाद और श्रीधामसेवाकी छलना की है। नित्यानन्दाभिन्न श्रीगुरुपादपद्म चिरदिन ही धन इत्यादि द्वारा कपटी लोगोंकी वञ्चना करते हैं। पक्षान्तरमें श्रीगुरुसेवामें जिनकी निष्ठा है और जिनके प्राण गुरुके लिए समर्पित हैं, ऐसे सेवक किसी भी स्थानमें रहते हुए श्रीगुरुदेवकी मनोभीष्ट सेवामें नित्य संलग्न रहते हैं।" श्रील प्रभुपादसे सम्बन्धयुक्त मठवासी त्यागी, गृहस्थ, साधारण जो कोई व्यक्ति उनके निकट उपस्थित होते, श्रील गुरुपादपद्म आन्तरिक भावसे उनकी सेवाका यत्न करते। यह 'श्रीगुरुदेवात्म' शिष्यका विशेष सद्‌गुण है।

अनेक समय यह देखा जाता कि श्रीगुरुपादपद्म अतियत्नपूर्वक पाँच, दस रुपयेके नोटोंको बटुएमें सजाकर रखते थे। इसके द्वारा यह संशय होनेका यथेष्ट कारण होता कि रुपयेमें उनकी अत्यधिक आसक्ति है। इस विषयमें प्रश्न करनेपर श्रील प्रभुपादकी भाषामें वे उत्तर देते—"आसक्तिरहित सम्बन्धसहित विषयसमूह सकलि माधव। अर्थात् श्रीमन्महाप्रभुकी सेवाके सम्बन्धमें अप्राकृत अनुराग ही कृष्णेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छाकर भगवत्-प्रेमसुख-तात्पर्य है।" श्रीगुरुपादपद्मके अतिमर्त्य चरित्रका अनुसरण करनेके बदले अनुकरण करनेसे भजनसे पतित होना पड़ता है। उनके स्नेहशासन और आत्मकल्याणजनक उपदेशोंको ग्रहण करनेसे मङ्गल होता है। परदुःखदुःखी श्रीगुरुका हृदय जीवोंके दुःखसे कातर होनेपर भी उन्होंने बताया है कि कपट व्यक्तिका मङ्गल असम्भव है।

किसी भक्त द्वारा एक दिन रासलीला और भ्रमरगीत आदिकी व्याख्याका अनुरोध किये जानेपर उन्होंने कहा—"शुद्धसत्त्व हृदयमें अनर्थसे निर्मुक्त अवस्थामें श्रीनामकीर्त्तनके माध्यमसे रास आदि लीलाकथा श्रवण करनेका अधिकार आता है। अन्यथा श्रीराधागोविन्दकी अप्राकृतलीलाको प्राकृत नायक-नायिकाका व्यापार समझकर केवल भ्रान्त धारणाकी सृष्टि होती है। सिद्धदेहमें ही रसोद्भावना सम्भव है। जड़बद्ध देहमें शृङ्गाररसकी भावना असम्भव है। इतर विषयोंसे वैराग्यप्राप्त जातरति व्यक्ति ही सम्भोगरसकी आलोचनाके अधिकारी हैं।"

श्रीगुरु-वैष्णवोंको तत्त्वतः जानने या समझनेके लिए भगवत्-कृपा और प्रेरणा अत्यावश्यक है। वैष्णवगण कभी बहिर्मुख व्यक्तिको प्रतिष्ठा देकर दुःसङ्गसे दूर रहनेकी चेष्टा करते हैं, पुनः कभी जनसङ्गके भयसे अपने स्वरूपका गोपन करते हैं, कभी शिष्य करनेका अभिनय करते हैं, शिष्यों द्वारा परिवेष्टित रहते हैं, उनसे परामर्श और सेवा ग्रहण करनेका अभिनय करते हैं, तथापि अपनी परतन्त्र-स्वतन्त्रताकी रक्षा करते हैं। यही उनके अतिमर्त्य अचिन्त्य चरित्रका वैशिष्ट्य है। श्रील आचार्यदेव अपने जीवनकालमें श्रील प्रभुपादके मनोभीष्टकी सर्वदा रक्षा करते हुए चलते थे। वे दैव-वर्णाश्रमधर्मका संस्थापन, आचरणशील होकर भक्तिसिद्धान्तोंका प्रचार, श्रीधाम परिक्रमा, मुद्रणयन्त्रका स्थापन, भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन, श्रीनामहट्टका प्रचार इत्यादिमें सम्पूर्णतः नियुक्त रहते थे।

श्रील परमाराध्यदेव अपने अप्रकटलीला-आविष्कारके कुछ मास पूर्व कलिकी राजधानी कलकत्ता महानगरीमें चिकित्सा ग्रहण करनेका अभिनय करते हुए ट्यांरा स्थित किसी विशेष श्रद्धालु भक्तके घरमें अवस्थान कर रहे थे। इससे अनेक लोगोंको सन्देह हो सकता है कि श्रीधामको छोड़कर वे कलिकी राजधानीमें क्यों रहे? 'यथाय वैष्णवगण सेई स्थान वृन्दावन सेई स्थाने आनन्द अशेष'—इस विचारके अनुसार महाभागवत श्रीगुरुवर्ग किसी भी स्थानमें अप्राकृत गोलोक वृन्दावनका आविर्भाव कराकर व्रजनवयुवद्वन्द्वकी अभीष्ट अष्टकालीय सेवामें मग्न रह सकते हैं। प्रयोजनावतारी श्रीगौरसुन्दरकी महावदान्यता और श्रीराधा-गोविन्दकी अप्राकृत लीलामाधुरीका आस्वादन करनेवाले नित्यसिद्ध महाभागवतोत्तम महापुरुषके श्रीपादपद्मका आश्रय प्राप्तकर हरि-भजन-पिपासु जनसाधारण, विशेषतः श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सेवकगण विशेष सौभाग्यवान और धन्यातिधन्य हैं। श्रीरूपानुग सारस्वत गौड़ीय वैष्णवजगत् इन लोकोत्तर महापुरुषके निकट सभी विषयोंमें चिर-ऋणी है और रहेगा, इस विषयमें कोई सन्देह नहीं है।

पञ्चम भाग

श्रीलगुरुपादपद्मके द्वारा प्रचारित सिद्धान्त

युग-युगमें भगवान् और उनके प्रिय परिकरजन भुवनमङ्गलके लिए जो उपहार अपने साथ लेकर पृथ्वीमें अवतीर्ण होते हैं, उसका अपना-अपना एक मौलिकत्व और वैशिष्ट्य होता है। करुणावरुणालय भगवान् और उनके प्रियजन कोई नश्वर सम्पत्ति अथवा वस्तु दानकर विश्ववासियोंकी वञ्चना नहीं करने आते। वे आत्माके नित्य कल्याणजनक वस्तुका दान करनेके लिए अवतीर्ण होते हैं। उनका वह उपहार या दान सांसारिक भोग्य वस्तुओंकी भाँति स्थूल आकारमें नहीं देखा जा सकता। यदि कोई उनके द्वारा प्रदत्त अतिमर्त्य दानको स्थूल भोगके रूपमें दर्शन करनेकी चेष्टा करता है, तो उसे उस दानकी महती कृपासे वञ्चित होना पड़ेगा।

परम कारुणिक भगवान् और उनके परिकरोंमेंसे प्रत्येकके दानके स्वरूपका पृथक्-पृथक् मौलिकत्व और वैशिष्ट्य रहनेपर भी समस्त पूर्वावतारों एवं पूर्वाचार्योंके अतिमर्त्य दानके विभिन्न मौलिकत्व और वैशिष्ट्यको क्रोड़ीभूतकर जो व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर, श्रीराधाभाव एवं राधाकी कान्तिको अङ्गीकारकर श्रीगौरसुन्दरके रूपमें अवतीर्ण हुए थे, उन्होंने परमकरुण और रसिकशेखर होनेके कारण जगत्को श्रीहरिनामके माध्यमसे जिस प्रेमाभक्तिका वितरण किया था, उसकी कहीं भी कोई तुलना नहीं है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी प्रेरणा और कृपासे श्रील रूपगोस्वामीने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंमें जो भक्तिरसकी सरिता प्रवाहित की है, वही गौड़ीय वैष्णवोंकी मूल सम्पत्ति है। श्रील रघुनाथदास गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीलकविराज गोस्वामी, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीबलदेव विद्याभूषण, श्रीभक्तिविनोद

ठाकुर एवं जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद आदि रूपानुग वैष्णवोंने उसी शुद्धा या प्रेमा भक्तिका प्रचार एवं प्रसार किया है।

जिस प्रकार श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने उच्च कोटिके परिकरोंके सहित इस धराधाममें प्रकटित होकर थोड़े ही दिनोंमें सारे भारतवर्षमें हरिनाम-सङ्कीर्त्तन एवं शुद्धाभक्तिका प्रचार किया था, उसी प्रकार ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने भी अपने उच्च कोटिके परिकरोंके साथ लगभग सवा सौ वर्ष पहले पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर अल्प कालमें ही सारे विश्वमें श्रीनामसङ्कीर्त्तन एवं शुद्धाभक्तिका प्रचार किया था। अस्मदीय गुरुपादपद्म ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज श्रीलप्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकरोंमेंसे अन्यतम थे।

जगद्गुरु श्रीलप्रभुपादके अप्रकट होनेपर सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें एक अन्धकारका युग उपस्थित हुआ। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रवाहित शुद्धाभक्तिकी धारा रुद्ध होने लगी। उनके द्वारा प्रकाशित विभिन्न भाषाओंकी दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक एवं मासिक पत्र-पत्रिकाएँ बन्द हो गयीं। श्रील प्रभुपाद द्वारा स्थापित प्रचार-केन्द्रोंके संन्यासी-ब्रह्मचारी निरुत्साहित होकर मूल मठ छोड़कर पृथक्-पृथक् मठकी स्थापना करने लगे। बहुत-से आश्रमवासी गृहस्थ आश्रमकी ओर लौटने लगे और इस प्रकार प्रचार-धारा बन्द होने लगी। श्रीश्रील गुरुपादपद्मने अपने संक्षिप्त आत्मचरितमें लिखा है कि १ जनवरी, १९३७ ई॰ में हमारे श्रीश्रीगुरुदेवके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् गौड़ीय मिशनमें नाना प्रकारकी गड़बड़ियाँ आरम्भ हुईं। मैंने इस विषम परिस्थितिमें जून, १९३९ ई॰ में श्रीचैतन्य मठ छोड़ दिया तथा १९४० ई॰ वैशाख महीनेकी अक्षय तृतीयाके दिन बागबाजार कलकत्ता ३३/१ बोसपाड़ा लेनमें एक किरायेके भवनमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की। तत्पश्चात् सितम्बर, १९४१ ई॰ में भाद्रपदकी पूर्णिमा तिथिके दिन श्रीमन्महाप्रभुके संन्यास क्षेत्र कटवामें श्रील प्रभुपादके अनुगृहीत त्रिदण्डि यति पूज्यपाद श्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजसे त्रिदण्ड संन्यास ग्रहणकर श्रीधाम नवद्वीपके अपने मठमें लौट आया और वहींसे विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करना आरम्भ किया।

आचार्य केसरी ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके प्रचारका मुख्य विषय था मायावाद, स्मार्त, सहजिया आदि भक्तिविरुद्ध अर्वाचीन कुमतोंका खण्डनकर श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत गौड़ीय वैष्णव आचार्योंके द्वारा आचरित और प्रचारित शुद्धाभक्तिकी स्थापना। हमलोग यहाँ उनके द्वारा प्रचारित शुद्धाभक्तिके स्वरूपका उल्लेख कर रहे हैं। वे अपने प्रचारमें सर्वत्र ही भक्तिकी प्रतिष्ठाके लिए निम्नलिखित दो श्लोकोंका प्रमाण देते थे। उनमेंसे प्रथम श्रीलचक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्लोक—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

अर्थात्, भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं वैसे ही वैभवयुक्त श्रीधाम वृन्दावन ही आराध्य वस्तु हैं। व्रजवधुओंने जिस भावसे कृष्णकी उपासना की थी, वह उपासना ही सर्वोत्कृष्ट है। श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही निर्मल शब्द-प्रमाण एवं प्रेम ही परम पुरुषार्थ है—यही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत है। यह सिद्धान्त ही हम लोगोंके लिए परम आदरणीय है, अन्य मत आदर योग्य नहीं हैं।

और दूसरा श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर रचित दशमूलका प्रथम श्लोक—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृति-कवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावाद्।
भेदाभेद-प्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं तत्-प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा प्राप्त वेद-वाणियोंको आम्नाय कहते हैं। वेद और वेदानुगत श्रीमद्भागवत आदि स्मृतिशास्त्र तथा वेदानुगत प्रत्यक्षादि प्रमाण-ही-प्रमाणके रूपमें स्वीकार किये गये हैं। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि—(१) हरि ही परमतत्त्व हैं, (२) वे सर्व-शक्तिमान हैं, (३) वे अखिल रसामृत-सिन्धु हैं, (४) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (५) बद्धजीव मायाके अधीन होते

हैं, (६) मुक्त जीव मायासे मुक्त होते हैं, (७) चित् अचित् अखिल जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (८) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (९) कृष्ण-प्रीति ही एकमात्र साध्य वस्तु है।

इनमेंसे पहले श्लोकमें श्रीलचक्रवर्ती ठाकुरने अत्यन्त संक्षेपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके मतका उल्लेख किया है। इस श्लोकमें श्रीगौड़ीय गोस्वामियों द्वारा गृहीत सिद्धान्तके अनुसार सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वका अत्यन्त सुन्दर रूपमें वर्णन किया है। श्रीमद्भागवतमें 'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'—इस श्लोकके द्वारा अद्वयज्ञान परतत्त्वकी त्रिविध प्रतीतियोंका उल्लेख किया गया है—ब्रह्म-प्रतीति, परमात्म-प्रतीति एवं भगवत्-प्रतीति। इनमेंसे सर्वकारणकारण, षडैश्वर्य-पूर्ण, सर्वेश्वरेश्वर, जगत्के आदि स्वयं अनादि भगवत्-तत्त्व ही मुख्य प्रतीति है। इस भगवत्-प्रतीतिके केवल चिदंशके विकृत प्रतिफलन निर्विशेष ब्रह्मको ब्रह्म-प्रतीति कहा गया है। उपनिषदोंमें इसे निर्विशेष ब्रह्म कहा गया है। यह निर्विशेष ब्रह्म भगवान्की अङ्गकान्ति है। योगशास्त्रमें सर्वशक्तिमान भगवत्-तत्त्वके सत्+चित् स्वरूपकी आंशिक प्रतीतिको परमात्म प्रतीति कहा गया है। व्यष्टिगत जीवोंके हृदयमें कर्मफलके नियन्ता या साक्षीके रूपमें अङ्गुष्ठ परिमाणमें विराजमान विष्णुको परमात्म-प्रतीति कहते हैं।

भगवत्-तत्त्व भी ऐश्वर्यप्रधान एवं माधुर्यप्रधानके भेदसे दो प्रकारका होता है। षडैश्वर्यपूर्ण भगवत्-तत्त्व परव्योम वैकुण्ठमें श्रीनारायणके रूपमें नित्यकाल लक्ष्मी आदि परिकारों द्वारा परिसेवित होकर विराजमान रहते हैं। अपनी वेणुमाधुरी, रूपमाधुरी, गुणमाधुरी और लीलामाधुरी—इन चार प्रकारकी माधुरियोंसे विशेष रूपसे युक्त, व्रजमें गोप-गोपियोंसे परिसेवित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण नित्य विराजमान रहते हैं। इसीलिए उक्त श्लोकमें व्रजमें अवस्थित व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरको ही सर्वाराध्य बताया गया है। यद्यपि ब्रह्म, परमात्मा एवं सारे अवतारसमूह तत्त्वतः एक ही हैं, किन्तु शक्ति एवं रसप्रकाशके वैशिष्ट्यके कारण व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। 'तद्धाम वृन्दावनं' कहनेका विशेष तात्पर्य यह है कि अखिल रसामृतसिन्धु व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी मधुर लीलाएँ वृन्दावनके अतिरिक्त वैकुण्ठ, साकेत, द्वारका या मथुरामें अन्यत्र कहीं

भी सम्भव नहीं हैं। इसीलिए व्रजधामको भी कृष्णसे अभिन्न आराध्य तत्त्व बतलाया गया है। यद्यपि ये व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर व्रजमें दास्य, सख्य एवं वात्सल्य रसके परिकरों द्वारा भी परिसेवित होते हैं, फिर भी व्रजरमणियोंकी परम रसमयी पारकीय माधुर्यमयी उपासना ही सर्वोपरि है। इन पारकीय भावापन्न गोपियोंमें भी महाभावस्वरूपा कृष्णकान्ता-शिरोमणि श्रीमती राधिकाजी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण उन्हींके भाव और अङ्गकान्तिको ग्रहणकर अपनी माधुरियोंका आस्वादन करनेके लिए तथा विश्वमें नामप्रेम वितरण करनेके लिए जगतमें श्रीगौरसुन्दरके रूपमें आविर्भूत हुए थे। इन्हीं श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके मतका उक्त श्लोकमें संक्षेपमें वर्णन किया गया है।

गौरपार्षद श्रीलसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरने श्रीगौड़ीय गोस्वामियों एवं आचार्योंके विचारोंका सार संकलनकर दशमूल-तत्त्वकी शिक्षा दी है। इस दशमूल-तत्त्वमें वेद, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र, गीता, श्रीमद्भागवत एवं गोस्वामी-ग्रन्थोंका सार-निर्यास गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है। हमारे परमाराध्य श्रीलगुरुपादपद्म, श्रीभक्तिविनोद ठाकुर द्वारा शिक्षित इस दशमूल-तत्त्वका सर्वत्र ही प्रचार करते थे। इसलिए हम संक्षेपमें यहाँ दशमूल-तत्त्वका वर्णन कर रहे हैं—

आम्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसाब्धिं
तद्भिन्नांशांश्च जीवान् प्रकृति-कवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावाद्।
भेदाभेद—प्रकाशं सकलमपि हरेः साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं तत्-प्रीतिमेवेत्युपदिशति जनान् गौरचन्द्रः स्वयं सः॥

अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा प्राप्त वेद-वाणियोंको आम्नाय कहते हैं। वेद और वेदानुगत श्रीमद्भागवत आदि स्मृतिशास्त्र तथा वेदानुगत प्रत्यक्षादि प्रमाणों ही प्रमाण स्वीकार किये गये हैं। इन प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि—(१) हरि ही परमतत्त्व हैं, (२) वे सर्व-शक्तिमान हैं, (३) वे अखिल रसामृत-सिन्धु हैं, (४) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (५) बद्धजीव मायाके अधीन होते हैं, (६) मुक्त जीव मायासे मुक्त होते हैं, (७) चित् अचित् अखिल जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (८) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (९) कृष्ण-प्रीति ही एकमात्र साध्य वस्तु है।

स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रद्धालु जीवोंको दश प्रकारके तत्त्वोंका उपदेश दिया है। उनमें पहला है—प्रमाण-तत्त्व और शेष नौ प्रमेय-तत्त्व हैं। जिस विषयको प्रमाणके द्वारा सिद्ध किया जाता है, उसे प्रमेय कहते हैं। जिसके द्वारा वस्तुको निर्धारित या प्रमाणित किया जाता है, उसे प्रमाण कहते हैं। उपरोक्त श्लोकमें इन मूलदश-तत्त्वोंका विवेचन किया गया है।

(क) प्रमाण-तत्त्व

(१) विश्वकर्त्ता श्रीभगवान्‌के प्रिय ब्रह्मासे गुरु-परम्पराके माध्यमसे प्राप्त ब्रह्मविद्या नामक श्रुतियोंको आम्नाय कहते हैं। चारों वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र और अनुव्याख्या—ये सभी आम्नायके अन्तर्गत आते हैं। यहाँ इतिहाससे रामायण और महाभारत, पुराण शब्दसे श्रीमद्भागवत आदि अष्टादश महापुराण, उपनिषद् शब्दसे ईश, केन, कठ आदि मुख्य उपनिषद्‌समूह, श्लोकसे ऋषियों द्वारा रचित अनुष्टुप आदि छन्दोग्रन्थ तथा सूत्रसे प्रधान-प्रधान तत्त्वाचार्योंके द्वारा रचित वेदार्थ सूत्रोंको समझना चाहिये। सूत्र-ग्रन्थोंके ऊपर उन आचार्यों द्वारा रचित भाष्य आदिको व्याख्या कहते हैं। ये सभी आम्नाय शब्दसे परिचित होते हैं। आम्नाय शब्दका मुख्य अर्थ है—वेद। श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी ऐसा कहा गया है—

स्वतःप्रमाण वेद प्रमाण-शिरोमणि।
लक्षणा करिले स्वतःप्रमाणता हानि॥

(ख) स्वतःप्रमाण वेद प्रमाणशिरोमणि हैं

वेद प्रमाणको श्रुति प्रमाण या शब्द प्रमाण भी कहते हैं। अतएव वेद, पुराण, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, उपनिषद्, वेदान्तसूत्र और वैष्णवाचार्यों द्वारा रचित भाष्य आदि ग्रन्थ आप्त वाक्य या आम्नाय वाक्य कहलाते हैं। श्रीलजीव गोस्वामीने आप्तवाक्य या शब्द प्रमाणकी प्रामाणिकता निश्चितकर पुराणोंकी भी प्रामाणिकता निर्धारित की है। अन्तमें उन्होंने श्रीमद्भागवतको सर्वप्रमाणशिरोमणिके रूपमें प्रमाणित किया है। उन्होंने जिस लक्षणके द्वारा श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है, उसी लक्षणके द्वारा उन्होंने ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव तदन्तर

क्रमानुसार विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदिके तत्त्वगुरु श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा प्रमाणित शास्त्रोंको भी प्रामाणिक ग्रन्थोंकी कोटिमें उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्म-सम्प्रदाय ही श्रीचैतन्य महाप्रभुके आश्रित गौड़ीय वैष्णवोंकी गुरुप्रणाली है। कविकर्णपूर गोस्वामीने इसी मतको दृढ़ करते हुए स्वरचित गौरगणोद्देश-दीपिका नामक ग्रन्थमें तथा श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीने स्वरचित संस्कार-दीपिका नामक ग्रन्थमें गुरु-परम्पराका वर्णन किया है। वेदान्तसूत्रके भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी इसी प्रणालीको स्वीकार किया है। अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीआचार्यकेसरीने अपने रचित सभी ग्रन्थों, प्रबन्धों, विशेषतः अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्व नामक प्रबन्धमें विभिन्न युक्तियों और प्रमाणोंके द्वारा उपरोक्त मतकी पुष्टि की है। श्रीलगुरुपादपद्मका यह कार्य वर्त्तमान कालमें स्वसम्प्रदाय-रक्षाके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

साधारणतः मानवके विचारोंमें भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा और करणापाटव[१] बद्धजीवमें ये चार दोष अवश्य ही पाये जाते हैं। महाधुरन्धर पण्डितजन भी अप्राकृत या अतीन्द्रिय तत्त्वका विचार करते समय उक्त चारों दोषोंको त्याग नहीं पाते। इसलिए उनका विचार निर्दोष और प्रमाणयोग्य नहीं होता। इसीलिए इन्द्रियातीत विषयमें अपौरुषेय वेदवाक्य ही एकमात्र शुद्ध प्रमाण है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, ऐतिह्य आदि अन्यान्य प्रमाणसमूह जब शब्द प्रमाण (वेदवाक्य) के अधीन होकर कार्य करते हैं, तभी वे कुछ सीमा तक सहायता कर सकते हैं और तभी वे प्रमाणके रूपमें गृहीत हो सकते हैं अन्यथा प्रमाणके रूपमें गृहीत नहीं हो सकते।

---

[१] **भ्रम**—बद्धजीव अपनी असम्पूर्ण (ससीम) इन्द्रियोंके द्वारा किसी असत्-वस्तुमें जो सत्-वस्तुका ज्ञान संग्रह करता है, उसे भ्रम कहते हैं, जैसे—मृगमरीचिकाका भ्रम।

प्रमाद—अमनोयोगता या अन्यमनस्कताको प्रमाद कहते हैं। जैसे—निकटमें गान होनेपर भी उसे नहीं सुनना।

विप्रलिप्सा—स्वार्थवश दूसरेकी वञ्चना करनेकी इच्छाको विप्रलिप्सा कहते हैं। जैसे—ज्ञात रहनेपर भी किसीको उस विषयका ज्ञान न देनेकी इच्छा।

करणापाटव—इन्द्रियोंकी अपटुता या मन्दताको करणापाटव कहते हैं। जैसे—मनोयोग देनेपर भी किसी वस्तुका परिश्चय या ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाना।

किन्तु पूर्ण समाधिकी अवस्थामें स्थित सिद्ध महर्षियों और वैष्णवाचार्योंके निर्मल हृदयमें सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र और सर्वशक्तिमान भगवान् स्वयं उदित होकर वेदके रूपमें सिद्ध ज्ञान प्रकट करते हैं। अतः स्वतःसिद्ध ज्ञानस्वरूप वेदकी प्रामाणिकता सर्वथा निर्मल और निर्भरयोग्य है।

(ग) कृष्ण ही परमतत्त्व हैं

कृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं। वे सबके आश्रय हैं। वेद, उपनिषद्, गीता, भागवत आदि पुराण तथा आगमोंमें कृष्णको ही पूर्णतत्त्व या परमतत्त्व कहा गया है। वे सर्व ईश्वरोंके भी ईश्वर अर्थात् सर्वेश्वरेश्वर हैं। श्रीमद्भागवतमें उन्हींको *'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'* एवं *'वदन्ति तत् तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्'* के द्वारा स्वयं-भगवान् एवं अद्वयज्ञान-परतत्त्व कहा गया है। अद्वयज्ञान तत्त्ववस्तु श्रीकृष्णके तीन स्वरूप हैं—ब्रह्म, परमात्मा और भगवान्। श्रीकृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं। उन्हींकी अङ्गकान्ति या अङ्गज्योतिको निर्विशेष ब्रह्म कहते हैं। जीवोंके अन्तर्यामी, साक्षी रूपमें स्थित भगवान्के अंश ही परमात्मा हैं। भगवद्भक्तजन विशुद्ध भक्तियोगका अवलम्बनकर भगवान्के सच्चिदानन्द श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।

ज्ञानियोंकी आँखें भगवान्की अङ्गज्योतिसे चकाचौंध हो जानेके कारण भगवान्के श्रीविग्रहका दर्शन करनेमें असमर्थ होती हैं। किन्तु भगवद्भक्तगण भक्तिके प्रभावसे भगवान्के सच्चिदानन्द श्रीविग्रहका दर्शन करते हैं। ज्ञानीलोग ज्ञानमार्गका अवलम्बनकर परतत्त्वको निर्विशेष ब्रह्मके रूपमें दर्शन करते हैं। जो लोग योगमार्गका अवलम्बनकर उनकी उपासना करते हैं, वे उन्हें परमात्माके रूपमें अनुभव करते हैं। भगवत्-दर्शन पूर्ण दर्शन है। ब्रह्मदर्शन और परमात्मदर्शन खण्ड दर्शन है।

श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् श्रीहरि हैं, वेद, उपनिषद् और पुराण इसके प्रमाण हैं—

(क) अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चन्तम्।
स सध्रीचीः। स विषुचीर्वसान आवरीवर्त्ति-भुवनेष्वन्तः॥

(ऋग्वेद १/१२/१६४/३१)

अर्थात् गोपवंशमें उत्पन्न एक बालकको देखा, जिसका कभी भी पतन (विनाश) नहीं है। वह कभी अत्यन्त निकट और कभी दूर नाना पथोंमें विचरण करता है। कभी-कभी वह भिन्न-भिन्न प्रकारके वस्त्रोंसे सुसज्जित रहता है, तो कभी पृथक्-पृथक् (एक रङ्गके) वस्त्रोंसे आवृत रहता है। इस प्रकार वह बार-बार अपनी प्रकट और अप्रकट लीलाओंको प्रकाश करता है।

(ख) श्यामाच्छबलं प्रपद्ये शबलाच्छ्यामं प्रपद्ये।

(छांदोग्य उपनिषद ८/१३/१)

अर्थात् कृष्ण-सेवा द्वारा विचित्र विलासोंसे पूर्ण अप्राकृत चिदानन्दमय धामकी प्राप्ति होती है तथा विविध विचित्रताओंसे पूर्ण उस चित्-जगत्से कृष्णकी प्राप्ति होती है। 'श्याम' शब्दका अर्थ कृष्णसे है। तात्पर्य यह है कि 'कृष्ण' अर्थात् 'काला' कहनेसे रङ्गहीन—निर्गुण परतत्त्वका बोध होता है एवं 'शबल' शब्दका अर्थ 'गौर' है अर्थात् नाना प्रकारके रङ्गोंसे युक्त अथवा समस्त रङ्गोंके मिश्रणका नाम 'गौर' है। इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि समस्त अप्राकृत गुणोंसे युक्त परतत्त्वका नाम 'गौर' है। अतएव उपरोक्त मन्त्रका गूढ़ आशय यह है कि कृष्ण-भजनसे गौरकी और गौर-भजनसे कृष्णकी प्राप्ति होती है।

(ग) एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

(श्रीमद्भा॰ १/३/२८)

अर्थात् राम, नृसिंह आदि अवतारसमूह परमपुरुष भगवान्के अंश या कला हैं, किन्तु कृष्ण ही स्वयं-भगवान् हैं।

(घ) मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।

(गीता ७/७)

अर्थात् हे अर्जुन! मुझसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है।

(ङ) 'एकोवशी सर्वगः कृष्ण ईड्य एकोऽपि सन् बहुधा योऽवभाति।'

(गोपालतापनी पूर्व)

अर्थात् एकमात्र सबको वशमें करनेवाले सर्वव्यापी अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्ण देव, मनुष्य आदि प्राणिमात्रके पूजनीय हैं। वे एक होते हुए

भी अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे अनेक रूपोंमें प्रकाशित होते हैं तथा नाना प्रकारसे विलास करते हैं।

(च) वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो।

(गीता १५/१५)

अर्थात् सभी वेदोंका मैं ही ज्ञातव्य विषय हूँ।

कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि वेदोंमें कृष्णका नाम नहीं पाया जाता। परन्तु यह बात ठीक नहीं। वेदोंमें कहीं मुख्य या अभिधावृत्तिके योगसे, कहीं गौण या लक्षणावृत्तिके योगसे, कहीं अन्वय या साक्षात् व्याख्या द्वारा और कहीं व्यतिरेक वाक्योंके द्वारा एकमात्र श्रीकृष्णका ही प्रतिपादन किया गया है। हमने यह 'अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा', 'श्यामाच्छबलं' इत्यादि श्रुतिमन्त्रोंके द्वारा पहले ही दिखाया है। ऋक्-मन्त्रमें भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन इस प्रकार किया गया है—

ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि॥

अर्थात् तुम्हारे (राधा और कृष्णके) उन गृहोंको प्राप्त होनेकी अभिलाषा करता हूँ, जहाँ कामधेनुएँ प्रशस्त शृङ्गविशिष्ट हैं और मनोवाञ्छित अर्थको प्रदान करनेमें समर्थ हैं—भक्तोंकी इच्छाको पूर्ण करनेवाले श्रीकृष्णका वह परमपद प्रचुर रूपमें प्रकाशित हो रहा है।

इस वेदमन्त्रमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण एवं उनकी प्यारी गौओंका बड़ा ही सरस एवं सुन्दर वर्णन किया गया है। ऐसे-ऐसे मुख्य वर्णनोंके स्थल वेदोंमें अनेक हैं।

गौण या लक्षणा वृत्ति द्वारा वर्णन—

अयमात्मा सर्वेषां भूतानां मधु अयमात्मा सर्वेषां भूतानामधिपतिः सर्वेषां भूतानां राजा इत्यादि॥ (बृहदारण्यक २/५/१४-१५)

श्रीकृष्णको लक्ष्य करके गुण-परिचय द्वारा गौण रूपसे कहते हैं कि आत्मारूप कृष्ण ही सम्पूर्ण भूतोंके मधु हैं, अधिपति हैं और राजा हैं। 'आत्मा' शब्दसे कृष्णका बोध होता है—ऐसा श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/५५)

अर्थात् हे राजन्! आप कृष्णको समस्त आत्माओंकी आत्मा जानो।

श्रीकृष्ण परब्रह्म, परमानन्द, पूर्णब्रह्म, स्वयं-भगवान् हैं। श्रीमद्भागवतमें तो स्पष्ट रूपसे इसकी घोषणा 'गूढं परमब्रह्म मनुष्यलिंगम', 'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्', 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' आदि श्लोकोंमें की गयी है। विष्णुपुराणमें भी 'यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यं परब्रह्म नराकृतिं' तथा गीतामें 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' आदि सिद्धान्त-वाणियोंमें श्रीकृष्णको परब्रह्म निर्धारित किया गया है।

हमारे गोस्वामियोंने शास्त्रोंका प्रमाण देकर इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है कि व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। वे राम, नृसिंह इत्यादि समस्त अवतारोंके मूल अवतारी या अंशी हैं। वे परमात्मा और ब्रह्मके भी प्रतिष्ठास्वरूप हैं।

(घ) श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं

वेदादि अपौरुषेय शास्त्रोंमें परतत्त्वकी शक्तियोंका वर्णन पाया जाता है। सारग्राही महापुरुषोंने इस सिद्धान्तकी पुष्टि की है कि शक्ति एक तत्त्व है तथा शक्तिमान दूसरा तत्त्व है। ये दोनों तत्त्व पृथक् होकर भी नित्य, सदा-सर्वदा अपृथक् हैं। मानव चिन्ता सर्वदा सीमित होती है, अतएव शक्ति और शक्तिमानके परस्पर गूढ़ सम्बन्धोंकी उपलब्धि नहीं कर पाती। वस्तुतः पृथक् होनेपर भी वस्तु और वस्तु-शक्ति अपृथक् हैं। इन दोनोंमें भेद और अभेद युगपत् सिद्ध हैं। इसीलिए चैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत गौड़ीय वैष्णवोंने वस्तु और वस्तु-शक्तिका परस्पर अचिन्त्यभेदाभेद सम्बन्ध स्वीकार किया है। श्रीलजीव गोस्वामीने अपने सन्दर्भ ग्रन्थमें शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंसे वस्तु और वस्तु-शक्तिमें अचिन्त्य-भेदाभेद सम्बन्ध प्रमाणित किया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें ऐसा कहा गया है कि श्रीमती राधिकाजी पूर्ण शक्ति हैं, श्रीकृष्ण पूर्ण शक्तिमान हैं। इनमें कोई भेद नहीं है। जैसे कस्तूरीसे उसकी सुगन्ध अविच्छेद्य है, अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न हैं, वैसे ही

राधा-कृष्ण अभिन्नस्वरूप हैं। लीलारसका आस्वादन करनेके लिए ही वे दो रूपोंमें प्रकाशित हैं।

राधा—पूर्णशक्ति, कृष्ण—पूर्णशक्तिमान्।
दुई वस्तु भेद नाहि, शास्त्रपरमाण॥

मृगमद, ता'र गन्ध-जैछे अविच्छेद।
अग्नि, ज्वालाते, जैछे कभु नाहि भेद॥

राधाकृष्ण ऐछे सदा एक-इ स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइरूप॥

(चै॰ च॰ आ॰ ४/९६-९८)

वेदान्तसूत्रमें भी इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है— शक्ति-शक्तिमतोरभेदः। वस्तु-तत्त्वके विचारसे श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई दूसरी वस्तु नहीं है, इसलिए शास्त्रमें उन्हें अद्वय-तत्त्व कहा जाता है। भिन्न-भिन्न अधिकारियों द्वारा उपासनाके तारतम्यसे एक ही अद्वय-तत्त्व त्रिविध रूपोंमें देखा जाता है। जो लोग केवल ज्ञानका अनुशीलन करते हैं, वे जड़ीय सत्ताके विपरीत भावको ही एक निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक और निष्क्रिय ब्रह्म मान लेते हैं। परन्तु इससे वस्तुका स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। जो लोग बुद्धियोग द्वारा उस अद्वय-तत्त्वका अन्वेषण करते हैं, वे अपनी आत्माके अविरोधी स्वरूपविशेष, आत्माके साक्षी परमात्माका दर्शन करते हैं तथा जो लोग उपाधिरहित निर्मल भक्तियोगसे ही तत्त्व वस्तुका दर्शन करते हैं, वे उस अद्वय-तत्त्वका साक्षात्कार लाभकर सर्व-ऐश्वर्यपूर्ण, सर्व-माधुर्यपूर्ण, सर्वशक्तिमान परमतत्त्वरूप स्वयं-भगवान्का दर्शन करते हैं।

ब्रह्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन सोपाधिक हैं अर्थात् मायिक उपाधिके विपरीत भावसे ब्रह्म-दर्शन होता है और मायिक उपाधिके अन्वय भावसे परमात्म-दर्शन होता है। किन्तु निरुपाधिक चिन्मय नेत्रोंसे ही चिन्मय भगवत्-स्वरूपका दर्शन होता है। भगवत्-स्वरूप ही वस्तु है और भक्तिशक्ति ही शक्तितत्त्व है। शक्तिरहित भगवत्-दर्शन ही निर्विशेष ब्रह्म-दर्शन है। यद्यपि अपनी प्रवृत्तिके अनुसार कोई-कोई ब्रह्म-दर्शनको ही चरम-दर्शन मानते हैं। किन्तु निःशक्तिक निर्विशेष ब्रह्म-दर्शन आंशिक

दर्शन या प्रतीति है। क्योंकि भागवत आदि शास्त्रोंमें परमब्रह्म आदि शब्दोंका उल्लेख देखा जाता है। इसलिए ब्रह्म और परमब्रह्म एकार्थ बोधक नहीं है। इसीलिए गीतादि शास्त्रोंमें भगवान् श्रीकृष्णको ब्रह्मकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है। अतएव स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण ही स्वरूपतत्त्व हैं और ब्रह्म केवल उनके स्वरूपका निर्विशेष आविर्भाव—ज्योतिमात्र है। परमात्मा भी भगवान्‌के अंशमात्र हैं। इसे दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहा जा सकता है कि अद्वयज्ञान तत्त्ववस्तुकी शुष्क और निःशक्तिक प्रतीति ही ब्रह्म है। जड़के भीतर सूक्ष्म रूपमें प्रविष्ट आत्ममय प्रतीति परमात्मा हैं तथा अद्वयज्ञानकी पूर्ण सविशेष प्रतीति ही भगवान् हैं। भगवत्-प्रतीति भी दो प्रकारकी है—ऐश्वर्य-प्रधान प्रतीति और माधुर्य-प्रधान प्रतीति। ऐश्वर्य-प्रधान प्रतीतिका नाम श्रीपति नारायण है तथा माधुर्य-प्रधान भगवत्-प्रतीतिका नाम राधानाथ श्रीकृष्ण है।

ब्रह्म और परमात्माको क्रोड़ीभूतकर, श्रीनारायणके भी सम्पूर्ण ऐश्वर्यको अपने माधुर्य द्वारा आच्छादित किये हुए चित्-शक्तिसम्पन्न श्रीकृष्ण ही एकमात्र अद्वय-तत्त्व-वस्तु हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद्‌में ऐसा ही वर्णन किया गया है—

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥
(श्वे॰ उ॰ ६/८)

उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्तपादादि इन्द्रिय प्राकृत नहीं होता। प्राकृत करणके बिना ही उनकी अप्राकृत लीलाका कार्य होता है। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिए उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वरकी अलौकिकी शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिसमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति या सम्वित्-शक्ति, सत्-शक्ति या सन्धिनीशक्ति और आनन्दशक्ति या ह्लादिनीशक्ति भी कहते हैं।

भगवान्की यह पराशक्ति और भी तीन प्रकारसे प्रकाशित होती है—चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। चित्-शक्तिको स्वरूपशक्ति या अन्तरङ्गाशक्ति कहते हैं। वैकुण्ठ, गोलोक, व्रज आदि धाम उस चित्-शक्तिके द्वारा प्रकाशित होते हैं। मायाशक्तिको बहिरङ्गाशक्ति कहते हैं। इससे अखिल प्राकृत विश्व या जड़जगत् प्रकटित हुआ है। इसके वैभव अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। जीवशक्तिको तटस्थाशक्ति भी कहा जाता है। इससे अनन्त जीवसमूह प्रकटित हुए हैं। इन तीनों शक्तियोंके आश्रय श्रीकृष्ण हैं।

कृष्णकी एक पराशक्ति नामक स्वाभाविकी शक्ति है। वह विचित्र विलासमयी एवं विचित्र आनन्दसम्वर्द्धिनी है। उस शक्तिके अनन्त प्रभाव होनेपर भी जीवोंके निकट उनमेंसे केवल चित्-शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति—इन तीन शक्तियोंका ही परिचय अनुभूत होता है। वेदके अनेक स्थलोंमें इस पराशक्तिके तीनों प्रभावोंका वर्णन मिलता है—

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च।

विष्णुपुराणमें भी पाया जाता है—

विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता क्षेत्रज्ञाख्या तथा परा।
अविद्या कर्म संज्ञान्या तृतीया शक्तिरिष्यते॥

विष्णुशक्ति तीन प्रकारकी है—परा, क्षेत्रज्ञा और अविद्या संज्ञावाली। विष्णुकी पराशक्तिका नाम चित्-शक्ति, क्षेत्रज्ञाशक्तिका नाम जीवशक्ति और अविद्याशक्तिका नाम माया है।

गीतामें भी—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७/५)

किन्तु, आठ भेदोंवाली यह जड़ा प्रकृति निकृष्टा है। इससे उत्कृष्ट जीवस्वरूपा मेरी एक और प्रकृति जानो, जिसके द्वारा यह जगत् अपने कर्म द्वारा भोगनेके लिए गृहीत होता है।

कृष्णका स्वरूप सच्चिदानन्दमय है। अतएव उनकी स्वरूपशक्ति तीन रूपोंमें प्रकाशित होती है। आनन्द अंशसे ह्लादिनीशक्ति, सत् अंशसे

सन्धिनीशक्ति और चित् अंशसे सम्वितशक्ति। सम्वितशक्तिको ज्ञानशक्ति भी कहते हैं। ह्लादिनीशक्ति कृष्णको आह्लादित करती है, इसलिए इसका नाम ह्लादिनी है। इस ह्लादिनीशक्तिके द्वारा आनन्दस्वरूप कृष्ण आनन्दका आस्वादन करते हैं तथा भक्तोंको भी आनन्दका आस्वादन कराते हैं। इस ह्लादिनीका सार-भाग प्रेम है। प्रेम सम्पूर्ण चिन्मय रस एवं पूर्ण आनन्दस्वरूप है। प्रेमका परम सार ही महाभाव कहलाता है। इस महाभावकी मूर्तस्वरूपा ही श्रीमती राधिका हैं। संक्षेपमें यही शक्तिका परिचय है।

(ङ) श्रीकृष्ण अखिलरसामृत सिन्धु हैं

अद्वयज्ञानस्वरूप परमतत्त्व ही रस हैं। जो रसतत्त्वका अनुभव नहीं कर पाये हैं, उन्हें अद्वयज्ञानस्वरूप परमतत्त्वका तनिक भी अनुभव नहीं हो सकता। तैत्तिरीय उपनिषद्में कहा गया है—

रसौ वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एषह्येवानन्दयति॥ (२/७ अनुवाक्)

परमतत्त्व ही रस हैं। उस रसको प्राप्तकर जीव आनन्द प्राप्त करता है। यदि वह अखण्ड तत्त्व रसरूप—आनन्दस्वरूप नहीं होता, तो कौन जीवित रहता और कौन प्राणोंकी चेष्टा करता? वे ही सबको आनन्द प्रदान करते हैं।

स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पूर्व विभिन्न वैष्णव आचार्योंने भक्तितत्त्वकी प्रतिष्ठा की है तथा उसका प्रचार-प्रसार भी किया है। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा शक्तिसञ्चरित श्रीलरूप गोस्वामीने ही भक्तितत्त्वको भक्तिरसमें परिणत किया है। उन्होंने अपने भक्तिरसामृतसिन्धु और उज्ज्वलनीलमणिमें इस विषयका विशद् रूपसे वर्णन किया है। उन्होंने कहा है कि जब कृष्णसेवाकी वासनारूप भक्तिलताका बीज श्रद्धा, निष्ठा, रुचि, आसक्तिके क्रमानुसार रतिके रूपमें परिणत होता है, तब उसे स्थायीभाव कहते हैं। इस स्थायीभावमें जिस समय विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये चार सामग्रीरूप भाव मिलित होकर स्थायीभावरूप रतिको आस्वादनयोग्य एक परम चमत्कारमयी

अवस्थामें उपस्थित करते हैं, उस समय वह भक्तिरस होता है। जड़ीय रस और शुद्ध चित्-रस—इन दोनोंकी प्रक्रिया एक ही प्रकारकी होती है। जहाँपर भगवत्-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वहाँ विशुद्ध चिन्मय भक्तिरस है। परन्तु जहाँ प्राकृत भोगसम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वहाँ जड़ीय तुच्छ रस होता है। जहाँ अभेद ज्ञान-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होती है, वहाँ निर्विशेष ब्रह्मरस होता है तथा योग-सम्बन्धिनी प्रवृत्ति स्थायीभाव होनेपर परमात्मरस होता है। जिस समय श्रद्धा रति अवस्था प्राप्त होनेके पहले ही विभाव आदि सामग्रियोंके योगसे रस होनेकी चेष्टा होती है, वहाँ असम्पूर्ण खण्डरस उदित होता है। जड़रस अत्यन्त हेय और तुच्छ है। यहाँ पारमार्थिक रसका ही विवेचन किया जा रहा है।

स्थायीभावरूप रति ही रसका आधार है। वही सामग्रियोंके योगसे रस होती है। विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी—ये चार प्रकारकी सामग्रियाँ हैं। विभाव दो प्रकारका होता है—आलम्बन और उद्दीपन। आलम्बन भी आश्रय और विषयके भेदसे दो प्रकारका है। जिनमें स्थायीभाव होता है, वे रसके आश्रय कहलाते हैं। जिनके प्रति स्थायीभाव प्रवृत्त होता है, वे रसके विषय हैं। पारमार्थिक रसमें श्रीकृष्ण ही रसके विषय और उपासक आश्रय होते हैं। उपास्य वस्तुके गुण और उपास्य सम्बन्धीय वस्तुएँ उद्दीपन कहलाती हैं। नृत्य, गान, जम्भाई, हिचकी आदि चित्तस्थ भावके अवद्योतक होनेके कारण अनुभाव कहलाते हैं। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च आदि विकारोंको सात्त्विकभाव कहते हैं, क्योंकि ये सत्त्वसे प्रकाशित होते हैं। निर्वेद, विषाद, दैन्य आदि तैंतीस प्रकारके व्यभिचारीभाव होते हैं। ये भावसमूह स्थायीभावरूप समुद्रकी तरफ सञ्चरित होकर उसे वर्द्धित करते हैं, इसलिए व्यभिचारीभाव कहलाते हैं।

रस दो प्रकारका होता है—मुख्य और गौण। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—ये पाँच मुख्य रस हैं। हास्य, अद्भुत, रौद्र, वीर, करुण, भयानक और वीभत्स—ये सात गौण रस हैं।

श्रीलरूप गोस्वामीने भक्तिकी सर्वांगपूर्ण एक अभिनव परिभाषा दी है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
(भ॰ र॰ सि॰ पूर्वविभाग १/९)

श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत्त, एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए ही कायिक, वाचिक और मानसिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमाभक्ति कहते हैं।

इस उपरोक्त भक्तिका साधन करनेसे रतिका उदय होता है। रति गाढ़ी होनेपर प्रेम कहलाती है। वही प्रेम परिपक्व एवं गाढ़ होनेपर क्रमशः स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, भाव और महाभाव कहलाता है। भक्त-भेदसे कृष्णरति भी पाँच प्रकारकी होती है—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर रति। इनमें मधुररति ही सर्वश्रेष्ठ है।

कृष्णप्रेम भी दो प्रकारका होता है—ऐश्वर्यमिश्रित और केवल या शुद्ध प्रेम। श्रीकृष्णको षडैश्वर्ययुक्त भगवान् और अपनेको दीन-हीन-क्षुद्र मानकर जो प्रेम होता है, वह ऐश्वर्यमिश्रित प्रेम है। जगत्में मिश्रप्रेम ही अधिकतर देखा जाता है। इस ऐश्वर्यप्रेमसे भगवान् वशीभूत नहीं होते। लौकिक सद्बन्धुकी भाँति कृष्णको पुत्र, सखा और प्रियतम मानकर जो विशुद्ध प्रीति होती है, उसे केवल या शुद्ध प्रेम कहते हैं। इस केवलप्रेमसे ही कृष्ण वशीभूत होते हैं। यशोदा मैया इस शुद्ध वात्सल्यसे कृष्णको बाँध लेती हैं, उन्हें डाँट-फटकार लगाती हैं। सखा लोग शुद्ध सख्यभावसे उनके कन्धेपर चढ़ जाते हैं तथा व्रजरमणियाँ प्रियतम मानकर कृष्णकी भर्त्सना करती हैं। उनकी यह भर्त्सना श्रीकृष्णको ब्रह्माकी वेदस्तुतिसे भी अधिक प्रिय लगती है। यदि व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर इस जगत्में अवतरित नहीं होते, तो जगत्में सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन उच्च कोटिके त्रिविध रसोंका विषय ही नहीं पाया जाता तथा जगत् इन भावोंसे वञ्चित रहता। विशेषतः यदि श्रीकृष्ण कृपापूर्वक गोपभावसे वैसी जगत्-उन्मादिनी लीलाका प्रकाश नहीं करते, तो परमेश्वर मधुररसके विषय भी हैं—ऐसा कोई भी अनुभव नहीं कर पाता।

कृष्णलीलामें व्रजलीला ही सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि इसीमें रसके विषयमें जीवोंका सर्वोत्तम लाभ होते देखा जाता है। तार्किक और नैतिक बुद्धिवाले व्यक्ति कृष्णलीलाकी महिमाको स्पर्श नहीं कर सकते। रसमयी व्रजलीलाको हृदयंगम करना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। जिन सौभाग्यवान भक्तोंने व्रजलीलाकी माधुरीका आस्वादन किया है, केवल वे ही उसकी माधुरीको जान सकते हैं। तर्क, नीति, ज्ञान, योग, धर्म-अधर्मके विचारोंके द्वारा इस विषयमें प्रवेश असम्भव है।

रसस्वरूप श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं। साथ ही वे परम रसिक हैं। इसलिए रसास्वादनके लिए एक होकर भी वे अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सदा-सर्वदा चार स्वरूपोंमें अवस्थित हैं। श्रील जीव गोस्वामीने इन चार स्वरूपोंका वर्णन स्वरचित भगवत्सन्दर्भमें किया है—

एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्य-शक्त्या
सर्वदैव स्वरूप-तद्रूप-वैभव-जीव-प्रधानरूपेण
चतुर्द्धावतिष्ठते, सूर्यान्तर-मण्डलस्थित तेज इव
मण्डल तद्बहिर्गत तद्रश्मि-तत्प्रतिच्छवि-रूपेण।

अर्थात् परमतत्त्व एक हैं। वे स्वाभाविक अचिन्त्यशक्तिसम्पन्न हैं, उसी शक्तिके सहारे वे सर्वदा स्वरूप, तद्रुप-वैभव, जीव और प्रधान—इन चार रूपोंमें प्रकाशित हैं। इस विषयमें सूर्यमण्डलस्थ तेज, मण्डल, उस मण्डलसे बाहरकी सूर्यरश्मियाँ और उनकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—ये किञ्चित् उदाहरणके स्थल हैं।

श्रीमद्भागवत आदि वेदोंके सारार्थ वर्णन करनेवाले शास्त्रोंमें महाजनोंने कृष्णाश्रित शुद्ध रसका अन्वेषण किया है। सनकादि, शिव, व्यास और नारद आदि महर्षियोंने अपने समाधिलब्ध अप्राकृत कृष्णलीलात्मक रसका अपने-अपने ग्रन्थोंमें वर्णन किया है। ऐसे अमृतमय श्रीकृष्णरसको श्रीचैतन्य महाप्रभुने ही इस जगतीतलपर प्रकटित किया है। उनसे पहले आज तक कोई भी ऐसा नहीं कर सका। इसलिए श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीने ऐसा ठीक ही कहा है।

प्रेमनामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिनमहामाधुरीषु प्रवेशः।

को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्यसीमा-
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परम करुणया सर्वमाविश्चकार॥

(चैतन्यचन्द्रामृत १३०)

हे भ्रातः प्रेम नामक परम पुरुषार्थका नाम किसने श्रवण किया था? श्रीहरिनामकी महिमा कौन जानता था? श्रीवृन्दावनकी परम चमत्कारमयी माधुरीमें किसका प्रवेश था? परम आश्चर्यमय माधुर्यरसकी पराकाष्ठा श्रीमती राधिकारूपी पराशक्तिको ही भला कौन जानता था? एकमात्र परम करुणामय श्रीचैतन्यचन्द्रने ही जीवोंके प्रति कृपापूर्वक इन सब तत्त्वोंका आविष्कार किया है।

(च) जीव श्रीहरिका विभिन्नांश तत्त्व है

वेदादि शास्त्रोंमें जीवात्माको भगवान्‌का विभिन्नांश कहा गया है। इसलिए जीव स्वरूपतः कृष्णका दास है। हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि भगवान्‌की एक ही परा या स्वरूपशक्ति त्रिविध रूपोंमें प्रकाशित होती है—चित्-शक्ति, जीवशक्ति एवं मायाशक्ति। इनमेंसे जब षडैश्वर्यपूर्ण सच्चिदानन्द परतत्त्व श्रीकृष्ण केवलमात्र अपनी जीवशक्तिके साथ होते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है, उसे विभिन्नांश जीव कहते हैं। दूसरी ओर षडैश्वर्यशाली सच्चिदानन्द भगवान् जब अपनी स्वरूपशक्ति आदि सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त होते हैं, उस समय उनका जो अंश होता है, उसे स्वांश कहते हैं। स्वांशगत श्रीबलदेव, परव्योमपति नारायण, श्रीराम, श्रीनृसिंहदेव आदि अवतारोंके साथ श्रीकृष्णका तत्त्वतः कोई भेद नहीं है। केवल शक्ति एवं रसके प्रकाशके तारतम्यके विचारसे व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण परतत्त्वकी सीमा, ऐश्वर्य-माधुर्यकी पराकाष्ठा, अवतारी या अंशी हैं तथा श्रीराम, नृसिंह आदि इनके अवतार, श्रीबलदेव, परव्योमपति नारायण इनके वैभव प्रकाश कहलाते हैं। ये सभी मायाके पति भगवत्-तत्त्व हैं। किन्तु जीवात्माके सम्बन्धमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। जीव भगवान्‌की जीवशक्ति या तटस्थाशक्तिका परिणाम है। शास्त्रोंमें भगवान्‌को अखण्ड, अविकारी परिणामरहित बताया गया है। यदि जीवको भगवान्‌का साक्षात् अंश कहा जाय तो भगवान्‌को

परिणामी अथवा विकारी कहना होता है। परन्तु परब्रह्मको विकारी अथवा खण्ड कहना शास्त्रसङ्गत नहीं है। शास्त्रोंमें जीवको परब्रह्मकी शक्तिका परिणाम स्वीकार किया गया है। ब्रह्म और उसकी शक्तिके अभिन्न होनेके कारण जीवको ब्रह्मका अंश कहा गया है। जैसे गीतामें—ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत वैष्णवाचार्योंने शास्त्रोंके विविध प्रमाणोंका विवेचनकर जीवको शक्तिका परिणाम घोषित किया है। जिस प्रकार किसी विशेष मणि या विशेष मन्त्रविद् व्यक्ति द्वारा अन्य बहुत-सी वस्तुएँ प्रकाशित होनेपर भी वह मणि या मन्त्रविद् अविकृत रहता है, उसकी शक्तिसे ही बहुत-सी वस्तुएँ प्रकटित होती हैं, उसी प्रकार परब्रह्म श्रीकृष्णकी चित्-शक्तिसे अनन्त वैकुण्ठ, गोलोक वृन्दावन आदि धाम, वहाँकी सारी चिन्मय वस्तुएँ; जीव या तटस्थाशक्ति द्वारा अनन्त जीव तथा मायाशक्ति द्वारा अनन्त प्राकृत ब्रह्माण्ड प्रकाशित होते हैं, फिर भी ब्रह्म अविकृत, अखण्ड एवं विशुद्ध रहता है। जीव ब्रह्मका साक्षात् अंश न होकर ब्रह्मकी शक्तिका अंश है, इसीलिए वह विभिन्नांश कहलाता है। श्रीनारदपञ्चरात्रमें कहा गया है—

यत्तटस्थं तु चिद्रूपं स्वसंवेद्याद्विनिर्गतम्।

अर्थात् चित्-शक्तिसे निकला हुआ चित्-कण जीव तटस्थ है।

श्रीलजीव गोस्वामी तटस्थाशक्तिको और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं—

तटस्थत्वञ्च मायाशक्त्यतीतत्वात् अस्याविद्या पराभवादिरूपेण दोषेण परमात्मनो लेपाभावाच्च उभयकोटावप्रविष्टेस्तस्य तच्छक्तित्वे सत्यपि परमात्मनस्तल्लेपाभावश्च यथा क्वचिदेकदेशस्थे रश्मौ छायया तिरस्कृतेऽपि सूर्यस्यातिरस्कारस्तद्वत्। (परमात्मसन्दर्भ—३७ संख्या)

तात्पर्य यह है कि तटस्था कही जानेवाली जीवशक्ति मायाशक्तिसे पृथक् है; अतएव वह माया-कोटिमें नहीं आती। दूसरी ओर अविद्याके वशीभूत होनेके कारण जीव अविद्यासे सदा निर्लेप रहनेवाले परमात्माकी कोटिमें भी परिगणित नहीं होता। परमात्माकी शक्ति होनेपर भी अविद्याका लेप परमात्माको उसी प्रकार स्पर्श नहीं करता, जिस प्रकार एकदेशीय सूर्यरश्मि छाया द्वारा आच्छादित होनेपर भी सूर्य आच्छादित नहीं होती।

बृहदारण्यक उपनिषद्‌में भी ऐसा ही कहा गया है—

तस्य वा एतस्य पुरुषस्य द्वे एव स्थाने भवत इदं च परलोकस्थानञ्च सन्ध्यं तृतीयं स्वप्नस्थानम्। तस्मिन् सन्ध्ये स्थाने तिष्ठन्नेते उभे स्थाने पश्यतीदञ्च परलोकस्थानञ्च। (४/३/९)

उस जीव-पुरुषके दो स्थान हैं अर्थात् यह जड़-जगत् और अनुसन्धेय चित्-जगत्; जीव उन दोनोंके बीच अपने सन्ध्य तृतीय स्वप्नस्थानपर स्थित है। वह दोनों जगत्‌के मिलन स्थानपर (तटपर) स्थित होकर जड़-विश्व और चित्-विश्व दोनोंको ही देखता है।

तटस्थाशक्तिसे प्रकटित जीवसमूह परमेश्वरसे उत्पन्न होनेपर भी परमेश्वरसे पृथक् सत्तावाले होते हैं। सूर्यके किरणगत परमाणु अथवा अग्निकी चिंगारी ही जीवका उपमास्थल है। बृहदारण्यक उपनिषद्‌में इसे स्पष्ट रूपसे कहा गया है—

यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्ति
एवमेवास्मादात्मनः सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति।
(बृ॰ २/१/२०)

जिस प्रकार अग्निसे चिंगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार सर्वात्मा श्रीकृष्णसे जीवसमूह प्रकटित होते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि तटस्थ धर्मवशतः माया और चित्-जगत् दोनोंके लिए उपयोगी जो विभिन्नांश अणुचेतनसमूह प्रकटित हुए हैं, वे मूल आत्मस्वरूप कृष्णके अनुगत सत्ताविशेष हैं। ये चित् और जड़ दोनों जगत्‌के बीच तट रेखापर स्थित होते हैं। यदि वे चित्-जगत्‌की तरफ देखते हैं, योगमायाकी शक्ति उनमें सञ्चरित होती है और वे चित्-जगत्‌में भगवान्‌की सेवामें नियुक्त हो जाते हैं। किन्तु मायिक जगत्‌की ओर देखनेसे मायिक जगत्‌के भोगकी कामना इनमें उत्पन्न हो जाती है और वे चित्-सूर्य कृष्णसे विमुख होकर माया द्वारा आकर्षित हो जाते हैं। साथ ही निकटस्थ माया भोगायतनरूप स्थूलशरीर उसे प्रदानकर संसारके जीवन-मरणके प्रवाहमें डाल देती है। उनकी वह कृष्ण-बहिर्मुखता अनादि है। जीवोंकी इस दुर्दशाके लिए परम कारुणिक श्रीकृष्णपर कोई भी दोषारोपण नहीं किया जा सकता है, क्योंकि परम कौतुकी कृष्णने जीवोंको स्वतन्त्रता

नामक एक दिव्य रत्न दिया है और वे स्वयं उनकी स्वतन्त्रतामें कभी भी हस्तक्षेप नहीं करते। जीवकी दुर्दशाका कारण भगवत्-प्रदत्त अपनी स्वतन्त्रताका असत्-व्यवहार या दुरुपयोग ही है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है—

जीवेर 'स्वरूप' हय कृष्णेर 'नित्यदास'।
कृष्णेर 'तटस्थाशक्ति' 'भेदाभेद प्रकाश'॥

सूर्यांशु-किरण, जैछे अग्निज्वालाचय।
स्वाभाविक कृष्णेर तिन प्रकार 'शक्ति' हय॥

(चै॰ च॰ म॰ २०/१०८-१०९)

कृष्णकी स्वाभाविक शक्ति तीन प्रकारकी है। जीव कृष्णकी तटस्था-शक्ति है। कृष्णके साथ जीवका भेदाभेद प्रकाशरूपी सम्बन्ध है। जीव सूर्यरूप कृष्णका अंश अर्थात् किरणगत परमाणु है अथवा अग्निसे निकली हुई चिंगारीके समान है।

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत्तं भक्त्यैकयेशं गुरुदेवतात्मा॥

(श्रीमद्भा॰ ११/२/३७)

भगवत्-विमुख जीवको मायाके वशीभूत होनेके कारण अपने स्वरूपकी विस्मृति हो जाती है और इस विस्मृतिसे ही देहाभिमान हो जाता है अर्थात् मैं देवता हूँ, मैं मनुष्य हूँ, इस प्रकारका भ्रम-विपर्यय हो जाता है। इस देह आदि अन्य वस्तुओंमें अभिनिवेश (तन्मयता) होनेके कारण ही बुढ़ापा, मृत्यु, रोग आदि अनेक भय होते हैं। इसलिए तत्त्वज्ञ व्यक्ति अपने गुरुको ही ईश्वर अर्थात् भगवान्‌से अभिन्न प्रभु एवं परम-प्रेष्ठ मानकर अनन्यभक्तिके द्वारा उस ईश्वरका (गुरुका) ऐकान्तिक भजन करें।

केवलाद्वैतवादियोंका कथन यह है कि जीवात्मा और परमात्मा अभिन्न हैं, इनमें कोई अन्तर नहीं है। बद्धावस्थामें अविद्या द्वारा आच्छादित ब्रह्म ही जीव कहलाता है। वस्तुतः जीव और जगत् हैं ही नहीं—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। परन्तु अद्वैतवादियोंका यह सिद्धान्त

सम्पूर्णतः कपोल-कल्पित, शास्त्रविरुद्ध एवं सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि श्रुतियोंमें परब्रह्मको पूर्ण, निर्दोष, अखण्ड एवं सच्चिदानन्दमय बतलाया गया है तथा जीवको परब्रह्म या सर्वशक्तिमान भगवान्का अंश अणुचैतन्य बताया गया है। परब्रह्म एक हैं, किन्तु जीव असंख्य हैं—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते॥

(श्वेताश्वतर ५/९)

जीव जड़-शरीरमें अवस्थित होनेपर भी सूक्ष्म और अप्राकृत तत्त्व है। जड़ीय बालकी नोकके सौ टुकड़ेकर पुनः उनमेंसे एक टुकड़ेके सौ टुकड़े करनेपर उनमें एक भाग जितना सूक्ष्म हो सकता है, उससे भी जीव अधिक सूक्ष्म होता है। इतना सूक्ष्म होनेपर भी जीव अप्राकृत वस्तु है तथा आनन्त्य धर्मके योग्य होता है, अन्त अर्थात् मृत्युसे रहित होना ही 'आनन्त्य' अर्थात् मोक्ष है।

अणुर्ह्येष आत्मायं वा एते सिनीतः पुण्यं चापुण्यञ्च।

(२/३/१८ सूत्रमें मध्व भाष्योद्धृत गौपवन श्रुतिवाक्य)

अर्थात् यह आत्मा अणु है, पाप-पुण्यादि इसका आश्रय ले सकते हैं। मुण्डकोपनिषद्में भी कहा गया है—

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो।

अर्थात् यह आत्मा अणु है।

भगवद्गीतामें कहा गया है—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

(गीता ७/५)

हे महाबाहो! पूर्वश्लोकमें जिस मायाशक्तिका मैंने वर्णन किया है। वह मेरी अपरा अर्थात् निकृष्टशक्ति है, उससे पृथक् जीवभूता अर्थात् जीवशक्तिरूपा मेरी एक परा या उत्कृष्ट शक्ति है—ऐसा तुम जानो, जिसके द्वारा यह सारा जगत् धारण किया जा रहा है।

जीवका स्वरूप शुद्ध चिन्मय है तथा वह स्वरूपतः 'अहं' पदवाच्य है। परमात्माकी अविचिन्त्यशक्तिसे निःसृत, तटस्थाशक्तिसे प्रकटित जीवका धर्म भी सर्वदा तटस्थ होता है। साथ ही अणु होनेके कारण वह स्वरूपतः मायाके अधीन होनेवाले धर्मवाला होता है। अतएव परमात्मासे उसका नितान्त भेद अथवा नितान्त अभेद नहीं है। जीव मायावश है तथा ईश्वर मायाधीश हैं। यह आम्नाय वाक्योंसे स्पष्ट है कि जीव ईश्वरसे भिन्न नित्य-तत्त्व है। अतएव जीवका ईश्वरसे युगपत् भेद और अभेद—दोनों श्रुतिसिद्ध हैं। केवलाद्वैतवाद अवैदिक है।

जीव अणुचैतन्य, ज्ञानगुणसे युक्त, अहं शब्दवाच्य, भोक्ता, मन्ता और बौद्धा है। जीवका एक नित्य स्वरूप है। वह नित्य स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होता है। जिस प्रकार स्थूलशरीरमें हाथ, पैर, नाक, आँख आदि अङ्ग अपने-अपने स्थानपर न्यस्त होकर एक सुन्दर रूपको प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकारसे चित्कणमय शरीरमें भी चित्कणमय अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे गठित सर्वांगसुन्दर एक चित्कणस्वरूप होता है। वही स्वरूप जीवका नित्य स्वरूप है। मायाबद्ध होनेपर उसका वह नित्य शरीर स्थूल और लिङ्ग शरीरोंसे आच्छादित हो जाता है।

मायावश कहनेसे मायावाद नहीं होता। मायावाद मतके अनुसार माया द्वारा परिच्छिन्न या प्रतिबिम्बित जीव एक अनित्य तत्त्व है। किन्तु मायावश कहनेसे यह स्थिर होता है कि चित्कण जीव अपने अणुत्वके कारण माया द्वारा पराभूत होने योग्य है। माया अपरा शक्ति है; किन्तु जीव पराशक्ति है। जड़ीय अहङ्कार मायाकी वृत्ति है। जीव उससे परे चिन्मय पदार्थ है। मायासे मुक्त होनेपर भी जीवका जीवत्व नष्ट नहीं होता। मायावाद एक भ्रम है। इनके मतानुसार ब्रह्म अद्वैत, निष्कल, अखण्ड और निर्लेप है। यदि युक्तिके लिए इस सिद्धान्तको मान भी लिया जाय तो फिर प्रतिबिम्ब या परिच्छेद किसका? या उसका प्रतिबिम्ब या परिच्छेद कैसे सम्भव है? उसका द्रष्टा कौन है? प्रतिबिम्बका स्थल क्या है? जब ब्रह्मके अतिरिक्त कोई पृथक् वस्तु ही नहीं है? इस प्रकार यह मत सर्वतोभावेन हास्यास्पद है।

अतएव वेदका यह सर्वांगीण मत है कि युगपत् अचिन्त्यभेदाभेद-स्वरूप-तत्त्व ही सत्य है, नित्य है तथा सार्थक है। एकदेशीय अपने मतकी पुष्टि करनेके लिए श्रुति-मन्त्रोंका खींच-तानकर अपने मतके अनुकूल अर्थ करना श्रुति-मन्त्रोंका कदर्थ करना है। अतएव वैदिक सिद्धान्त यह है कि जीव ईश्वर-कोटिसे पृथक् विभिन्नांश तत्त्व है तथा कृष्णकी तटस्थाशक्तिसे प्रकाशित है। जीव शुद्ध पदार्थ है तथा स्वभावतः कृष्णके प्रति आनुगत्य धर्मयुक्त होता है। यही जीवका स्वरूप-तत्त्वज्ञान है।

(छ) तटस्थ धर्मवशतः बद्ध दशामें मायाग्रस्त जीवका विचार

जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्य दास होनेपर भी अपने तटस्थ धर्मके कारण अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करनेपर कृष्णविमुख हो जाता है। उस समय उसका शुद्ध-स्वरूप माया द्वारा प्रदत्त स्थूल और लिङ्ग शरीरोंसे आच्छादित हो जाता है तथा उसे इस स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंमें ही आत्मबुद्धि हो जाती है। तब वह संसारमें स्वर्ग, नरक आदिमें विभिन्न योनियोंमें सुख-दुःख भोग करता है तथा आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रितापोंसे दग्ध होता रहता है। इस प्रकार संसारमें भ्रमण करते-करते जब सौभाग्यवश तत्त्वज्ञान-सम्पन्न शुद्ध वैष्णवोंका सङ्ग पा लेता है, तो उनके उपदेशोंसे जीवका अज्ञान दूर हो जाता है और कृष्णभक्ति प्राप्तकर कृष्णसेवा करनेका अधिकारी बन जाता है—

नित्यबद्ध-कृष्ण हैते नित्य बहिर्मुख।
नित्य संसार भुञ्जे नरकादि दुःख॥

सेइ दोषे माया पिशाची दण्ड करे तारे।
आध्यात्मिकादि तापत्रय तारे जारि मारे॥

काम क्रोधेर दास हञा तार लाथि खाय।
भ्रमिते भ्रमिते यदि साधु-वैद्य पाय॥

तार उपदेश-मन्त्रे पिशाची पलाय।
कृष्णभक्ति पाय, कृष्ण-निकटे जाय॥
(चै॰ च॰ म॰ २२/१२-१५)

अर्थात् जीव स्वरूपतः कृष्णका नित्यदास होनेपर भी अपने तटस्थधर्मवशतः अपनी स्वाभाविक स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करके जब कृष्णसे विमुख हो पड़ता है, तब वह संसारमें स्वर्ग-नरक आदि सुख-दुःखोंका भोग करता है। कृष्ण-विमुखताके दोषके लिए ही माया-पिशाची जीवको स्थूल और लिङ्ग शरीरके आवरणमें बाँधकर दण्ड प्रदान करती है अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रितापोंसे दग्ध करती है। वैसा जीव काम-क्रोध आदि षड्रिपुओंके वशीभूत होकर माया पिशाचीकी लातें खाता रहता है—यही जीवका रोग है। इस प्रकार वह संसारमें ऊपर नीचे भ्रमण करते-करते यदि सौभाग्यवश साधु-वैद्यको पा लेता है, तब उनके उपदेशोंसे मायादेवी उस जीवको छोड़कर उसी प्रकार भाग जाती है, जिस प्रकार किसी ओझा या वैद्यके मन्त्रोंसे कोई पिशाची किसी मनुष्यको छोड़कर भाग जाती है। मायासे रहित ऐसा जीव ही कृष्णभक्ति प्राप्तकर कृष्णके निकट जानेका अधिकारी होता है।

मायाबद्ध जीव अपने किये हुए कर्मोंके संस्कारसे, गुणोंसे तथा 'मैं और मेरा' आदि देहात्म बुद्धिके वशीभूत होकर भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म-ग्रहण करता है। इस प्रकार भ्रमण करते-करते सत्सङ्गके प्रभावसे श्रद्धा युक्त होकर जब भक्तिवृत्ति द्वारा श्रीकृष्णको जान लेता है, तब वह मायाके समस्त बन्धनोंसे सदाके लिए छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

गोलोक वृन्दावनमें वृन्दावनबिहारी श्रीकृष्णकी सेवाके लिए श्रीबलदेव प्रभु द्वारा और परव्योम वैकुण्ठमें वैकुण्ठाधिपति नारायणकी सेवाके लिए महासङ्कर्षण द्वारा प्रकटित नित्य-पार्षद जीव अनन्त हैं। वे नित्य काल अपने स्वरूपमें स्थित रहकर उपास्यकी सेवामें सदा तत्पर रहते हैं। उपास्यके प्रति सर्वदा उन्मुख रहते हैं तथा चित्-शक्तिका बल प्राप्तकर सदा बलवान रहते हैं। उनका जड़-मायासे कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे यह भी नहीं जानते कि माया नामकी कोई शक्ति भी है। प्रेम

ही उनका जीवन होता है। जन्म, मरण, भय, शोक—ये सब क्या चीज हैं, उन्हें तनिक भी इसका आभास नहीं होता।

चित्-जगत् और मायिक जगत्के बीच विरजामें अवस्थित कारणाब्धिशायी महाविष्णुके मायाके प्रति ईक्षण करनेसे ईक्षणरूप किरणगत अनगिणत अणुचैतन्य जीव प्रकटित हुए हैं। मायाके पासमें स्थित होनेके कारण ये जीव मायाकी विचित्रताको लक्ष्य करते हैं। साधारण जीवोंके समस्त लक्षण जो पहले बताये गये हैं, उनमें पाये तो जाते हैं, तथापि उनका स्वभाव अत्यन्त अणु या क्षुद्र होनेके कारण वे तटस्थ भावसे कभी चित्-जगत्की ओर तो कभी मायिक जगत्की ओर दृष्टिपात करते हैं। तटस्थावस्थामें जीव बहुत ही दुर्बल होता है, क्योंकि उस समय तक उसे सेव्य वस्तुकी कृपासे चित्-बल प्राप्त नहीं हुआ होता। इन अनन्त जीवोंमेंसे जो मायाका भोग करना चाहते हैं, वे विषयोंमें आसक्त होकर माया द्वारा बद्ध हो जाते हैं और जो जीव सेव्य वस्तुका चिदनुशीलन करते हैं, वे सेव्य वस्तुकी कृपासे चित्-शक्तिका बल प्राप्त होकर चित्-धाममें गमन करते हैं।

माया कृष्णकी शक्ति है। श्रीकृष्ण मायाशक्तिके द्वारा जड़-ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं तथा बहिर्मुख जीवोंको शुद्ध करनेके लिए मायाशक्तिको प्रेरित करते हैं। मायाकी दो प्रकारकी वृत्तियाँ हैं—अविद्या और प्रधान। अविद्या वृत्ति जीवनिष्ठ है तथा प्रधान जड़निष्ठ है। प्रधानसे समस्त जड़-जगत् उत्पन्न हुए हैं तथा अविद्यासे जीवकी कर्मवासना पैदा होती है। मायाके और भी दो प्रकारके विभाग हैं—विद्या और अविद्या। इन दोनोंका सम्बन्ध जीवसे है। अविद्या-वृत्तिसे जीवका बन्धन होता है और विद्या वृत्ति द्वारा उनकी मुक्ति होती है। अपराधी जीव कृष्णोन्मुख होनेपर उनके हृदयमें विद्या-वृत्तिकी क्रिया आरम्भ होती है। परन्तु विमुख होनेपर अविद्या-वृत्तिकी क्रिया होने लगती है।

(ज) जीव मुक्त दशामें मायामुक्त होता है

अनादि कर्मवासनाकी जंजीरमें बँधा रहनेपर भी जीवका स्वरूपधर्म—कृष्ण-दासत्व नष्ट नहीं होता। वह किसी-न-किसी रूपमें अवश्य ही विद्यमान रहता है। थोड़ा-सा सुयोग पानेपर वह पुनः प्रकट हो जाता

है तथा अपना परिचय देने लगता है। वह सुयोग है केवल साधुसङ्ग—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतर ६/२३)

श्रीकृष्णके प्रति जिनकी पराभक्ति अर्थात् शुद्धाभक्तिके अधिकार-स्वरूपा श्रद्धा उदित हुई है तथा साधु-गुरुके प्रति भी ठीक वैसी ही श्रद्धा है, उन्हीं महात्माओंके हृदयमें वेदोंका यथार्थ तात्पर्य प्रकाशित होता है।

श्रीचैतन्यचरितामृतमें भी कहा गया है—

संसार भ्रमिते कोन भाग्ये केह तरे।
नदीर प्रवाहे येन काष्ठ लागे तीरे॥

कोन भाग्ये कारो संसार क्षयोन्मुख हय।
साधुसङ्ग करे, कृष्णे रति उपजय॥

साधुसङ्ग, साधुसङ्ग—सर्वशास्त्रे कय।
लव मात्र साधुसङ्गे सर्वसिद्धि हय॥

'कृष्ण तोमार हङ' यदि बले एकबार।
मायाबन्ध हैते कृष्ण तारे करे पार॥

(चै॰ च॰ म॰ २२/४३, ४५, ५४, ३३)

तात्पर्य यह है कि कृष्णसे विमुख होनेपर जीव संसारमें त्रिविध तापोंसे दग्ध होता हुआ चौरासी लाख प्रकारकी योनियोंमें भटकता हुआ जन्म-मरणके प्रवाहमें बहने लगता है। इस प्रवाहसे उद्धार पाना बड़ा ही कठिन है। बड़े सौभाग्यसे ही जीव साधुसङ्गका आश्रय प्राप्तकर इस प्रवाहसे छुटकारा पाकर पुनः कृष्णदास्यरूप स्वस्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार नदीके तीव्र प्रवाहमें बहती लकड़ी सौभाग्यवश तीरपर जा लगती है। जब सौभाग्यसे किसीका संसार-प्रवाह क्षयोन्मुख होता है, तभी वह साधुसङ्ग करता है और उसके फलस्वरूप उसकी श्रीकृष्णके चरणोंमें रति उदित होती है। इसीलिए सभी शास्त्रोंमें साधुसङ्गकी महिमाका वर्णन प्रचुर रूपसे पाया जाता है।

शास्त्रोंका कथन है कि क्षणभरका साधुसङ्ग सहज ही प्राप्त नहीं होता। यदि कोई जीव अत्यन्त कातर होकर हृदयसे एक बार भी कृष्णसे ऐसी प्रार्थना करता है कि 'हे कृष्ण! मैं तुम्हारा हूँ', तो कृष्ण साधुसङ्ग प्रदानकर उसे मायाके बन्धनसे पार कर देते हैं।

बड़े सौभाग्यसे किसीका संसार जब क्षयोन्मुख होता है, तभी वह साधुसङ्ग करता है। यह सौभाग्य क्या है, इसे अच्छी तरह समझना चाहिये। जीवका भाग्य पूर्व कर्मोंका ही फल है। कर्म दो प्रकारके होते हैं—आर्थिक और परमार्थिक। आर्थिक कर्मसे आर्थिक भाग्योदय होता है तथा पारमार्थिक कर्मसे पारमार्थिक भाग्योदय होता है। परमार्थको लक्ष्यकर जो कर्म होते हैं, वे कर्मसमूह पारमार्थिक हैं। जैसे—साधुसेवा, भगवन्नाम और भगवत्सेवा। जीव किसी भी प्रवृत्तिका क्यों न हो, यदि इन पारमार्थिक कर्मोंको करता है, तो ये कर्मसमूह उसके हृदयमें भक्तिवासनारूप एक प्रकारके संस्कारको उत्पन्न करते हैं। वही संस्कार पुष्ट होनेपर जीवका सौभाग्य कहलाता है। उसी सौभाग्यके प्रभावसे जीवकी संसारवासना क्रमशः दुर्बल होने लगती है। जब संसारवासना अत्यन्त क्षीण हो जाती है, तब वही सौभाग्य-संस्कार अधिकतर पुष्ट होकर साधुसङ्गके प्रति श्रद्धा उत्पन्न करता है। वही श्रद्धा पुनः साधुसङ्ग सुलभ कराकर उसके द्वारा सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती है।

अतः सिद्धान्त यह है कि जन्म-जन्मान्तरकी सुकृतिके फलस्वरूप भाग्यके उदय होनेपर साधुसङ्गके प्रति प्रीति होती है। पुनः श्रद्धाके फलस्वरूप क्रमशः भजन, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा, रुचि और आसक्तिके पश्चात् कृष्णरतिका प्रादुर्भाव होता है। जिसके जीवनमें भाग्यका उदय होता है, उसीके जीवनमें श्रद्धा लक्षित होती है। इसीलिए श्रद्धा और साधुसङ्गको निखिल कल्याणकी जड़ कहा जाता है। बृहन्नारदीयपुराणमें ऐसा ही कहा गया है—

भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्ग प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्व संचितैः॥

(बृहन्नारदीय ४/३३)

श्रीमद्भागवतमें भी कहा गया है—

भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥
(श्रीमद्भा० १०/५१/५३)

हे अच्युत! जीव अनादिकालसे जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब सत्सङ्ग प्राप्त होता है; और जिस क्षण सत्सङ्ग प्राप्त होता है, उसी क्षण परम आश्रय और निखिल कार्य-कारणके नियन्ता आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है।

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्विदो भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति॥
(श्रीमद्भा० ३/२५/२५)

सत्पुरुषोंके समागममें मेरे पराक्रमका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही अविद्या निवृत्तिके फलस्वरूप मुझमें सबसे पहले श्रद्धा, पीछे रति और अन्तमें प्रेमाभक्तिका उदय होता है।

संसारसे मुक्त होकर भगवत्प्राप्तिके लिए भक्तिका अनुशीलन अत्यन्त आवश्यक है। उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें ऐसा कहा गया है कि केवल भगवद्भक्ति ही जीवोंको भगवान्के निकट ले जाती है, भगवान्का दर्शन कराती है और भगवान्की सेवामें सदाके लिए नियुक्त करती है। भगवान् भक्तिके ही वशीभूत होते हैं—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।
(३/३/५३ सूत्रका माध्वभाष्यधृत माठर-श्रुति-वचन)

'भक्त्याहं एकया ग्राह्यं' इत्यादि इसके प्रमाण हैं। किन्तु यह भक्ति भी बिना सत्सङ्गके प्राप्त नहीं होती। भक्तोंके सङ्गमें भक्तिका अनुशीलन होनेपर पहले साधनभक्ति, बादमें भावभक्ति और अन्तमें प्रेमाभक्तिका उदय होता है। प्रेमाभक्ति प्राप्त होनेपर जीव कृतार्थ हो जाता है। वह मायासे सम्पूर्णतः मुक्त होकर पञ्चम पुरुषार्थरूप कृष्णप्रेम प्राप्त कर लेता है।

मायामुक्त जीव दो प्रकारके होते हैं—नित्यमुक्त और बद्धमुक्त। जो

जीव पहले मायामें अबद्ध थे तथा साधन-भजनके द्वारा मायासे मुक्त हो गये हैं, उन्हें बद्धमुक्तजीव कहते हैं। जो जीव कभी भी माया द्वारा बद्ध नहीं हुए हैं, वे नित्यमुक्त जीव हैं। नित्यमुक्त जीव भी दो प्रकारके होते हैं—ऐश्वर्यगत-नित्यमुक्त जीव और माधुर्यगत नित्यमुक्त जीव। ऐश्वर्यगत नित्यमुक्त जीव वैकुण्ठपति श्रीनारायणके पार्षद हैं तथा परव्योमस्थ मूलसङ्कर्षणके किरणकण हैं, जैसे गरुड़ आदि। माधुर्यगत नित्यमुक्त जीव गोलोक वृन्दावननाथ श्रीकृष्णके पार्षद हैं। वे गोलोक वृन्दावनस्थ बलदेवके द्वारा प्रकटित हैं।

बद्धमुक्त जीव तीन प्रकारके होते हैं—ऐश्वर्यगत, माधुर्यगत और ब्रह्मज्योतिर्गत। जो साधनकालमें ऐश्वर्यप्रिय होते हैं, वे वैकुण्ठके परिकरोंके साथ सालोक्य प्राप्त करते हैं। जो साधनकालमें माधुर्यप्रिय होते हैं, वे मायामुक्त होकर नित्य वृन्दावन आदि धामोंमें प्रेमसेवासुखका रसास्वादन करते हैं। और जो जीव साधनकालमें जीव और ब्रह्म ऐक्यके अनुसन्धानमें तत्पर रहते हैं, वे मोक्ष प्राप्तकर ब्रह्मसायुज्यरूप सर्वनाशको प्राप्त होते हैं।

एक विशेष सिद्धान्त जाननेकी आवश्यकता यह है कि माधुर्यरसके दो प्रकोष्ठ होते हैं—माधुर्य और औदार्य। इनमें जहाँ माधुर्य प्रबल होता है, वहाँ श्रीकृष्णस्वरूप विराजमान रहते हैं। जहाँ औदार्य प्रबल होता है वहाँ राधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीगौराङ्गस्वरूप विराजमान रहते हैं। मूल वृन्दावनमें भी दो प्रकोष्ठ हैं—कृष्णपीठ और गौरपीठ। कृष्णपीठमें जो नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त पार्षद माधुर्यप्रधान औदार्य भाव प्राप्त किये हैं, वे कृष्णके गण हैं। गौरपीठमें नित्यसिद्ध और नित्यमुक्त परिकर औदार्यप्रधान माधुर्य भोग करते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें कोई-कोई पार्षद स्वरूपव्यूहके द्वारा एक ही साथ दोनों ही पीठोंमें वर्त्तमान रहते हैं। कोई-कोई एक ही स्वरूपमें एक ही पीठमें वर्त्तमान रहते हैं, दूसरे पीठमें नहीं। जो साधनकालमें केवल गौर-उपासक होते हैं, वे सिद्धकालमें केवल गौरपीठमें सेवा करते हैं। जो साधनकालमें केवल कृष्णकी उपासना करते हैं, वे सिद्धकालमें कृष्णपीठमें सेवा करते हैं। जो साधनकालमें श्रीकृष्ण और गौर—दोनों स्वरूपोंके उपासक होते हैं, वे सिद्धावस्थामें दो शरीर धारणकर दोनों ही पीठोंमें एक ही समय वर्त्तमान

रहते हैं। यही गौर-कृष्णके अचिन्त्यभेदाभेदका परम रहस्य है।

(झ) अचिन्त्यभेदाभेद विचार

अचिन्त्य और अनन्त शक्तिशाली परतत्त्वकी शक्ति और शक्तिपरिणत वस्तुसमूहसे उस परतत्त्वका जो अचिन्त्य युगपत् भेद और अभेद सम्बन्ध है, उसीको अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्व कहते हैं। अपौरुषेय शब्दगम्य अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा स्वीकृत शास्त्रवचनोंके द्वारा जानने योग्य, किन्तु जीवोंकी क्षुद्र चिन्ताशक्ति या युक्ति-तर्कसे अगम्य होनेके कारण इसे अचिन्त्य कहा गया है। भेद और अभेदकी एक साथ स्थिति और दोनों समान रूपसे सत्य और नित्य हैं—यह मानव मेधा और धारणाके लिए अबोध्य और अचिन्त्य होनेपर भी शास्त्रमें इसका उल्लेख होनेके कारण अवश्य ही स्वीकार्य है। श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने श्रीपुरी धाममें सार्वभौम भट्टाचार्यके निकट, काशीमें केवलाद्वैतवादी श्रीप्रकाशानन्द सरस्वतीके निकट तथा काशीमें ही श्रीसनातन गोस्वामीको लक्ष्यकर इस अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वकी शिक्षा दी है।

श्रील सनातन गोस्वामीने बृहद्भागवतामृत (२/२/१८६) और वैष्णवतोषणीमें, श्रीलरूप गोस्वामीने लघुभागवतामृतमें, श्रीलजीव गोस्वामीने षट्सन्दर्भ और सर्वसंवादिनीमें तथा श्रीबलदेवविद्याभूषणने गोविन्दभाष्य और भाष्यपीठकमें इस तत्त्वका प्रतिपादन किया है। श्रीलजीव गोस्वामीने अपने सर्वसंवादिनी ग्रन्थमें वेदान्तसूत्र, उपनिषद् और श्रीमद्भागवतके प्रमाणोंकी भित्तिपर अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने श्रीमद्भागवत (१/२/११) के 'वदन्ति तत्तत्त्वविदः' के आधारपर स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदरहित अद्वयज्ञान-परतत्त्वकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने इस विषयमें लिखा है—

'एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वदैवस्वरूप-तद्रूप-वैभव-जीव-प्रधान-रूपेण चतुर्द्धावतिष्ठते, सूर्यान्तर मण्डलस्थित तेज इव, मण्डल, तद्बहिर्गत तद्रस्मि, तत्प्रतिच्छविरूपेण।'

परमतत्त्व एक हैं। वे स्वाभाविक अचिन्त्यशक्तिसे सम्पन्न हैं। उसी शक्तिसे वे सदैव चार रूपोंमें विराजमान हैं—(१) स्वरूप, (२) तद्रूपवैभव, (३) जीव और (४) प्रधान। सूर्यमण्डलस्थ तेज, सूर्यमण्डल, उनकी

बहिर्गत रश्मि और उनकी प्रतिच्छवि अर्थात् दूरगत प्रतिफलन—ये चारों कुछ अंशोंमें उदाहरणके स्थल हैं। सच्चिदानन्द-मात्र-विग्रह ही उनका स्वरूप है। चिन्मय धाम, नाम, परिकर तथा उनके व्यवहारमें आनेवाले उपकरणसमूह ही तद्रूपवैभव हैं। नित्यमुक्त और नित्यबद्ध असंख्य जीव हैं। माया प्रधान और उससे उत्पन्न समस्त जड़ीय स्थूल और सूक्ष्म जगत् ही 'प्रधान' शब्द वाच्य हैं। अब चारों प्रकाश नित्य परमतत्त्वके एकत्वके ही प्रतिपादक हैं। अब प्रश्न हो सकता है कि परमतत्त्वमें नित्यविरुद्ध व्यापार एक ही साथ कैसे विद्यमान रह सकते हैं? इसका उत्तर यह है कि जीवकी बुद्धि सीमाविशिष्ट है; अतः उसके द्वारा भगवत्-तत्त्वको जानना असम्भव है, उसे तो परमेश्वरकी अचिन्त्य-शक्तिकी कृपा द्वारा ही जानना सम्भव है।

श्रीलजीव गोस्वामीने जीव और प्रकृतिको तत्त्व नहीं बताया है, बल्कि उन्हें शक्तिके रूपमें स्थापितकर परतत्त्वका अद्वयत्व स्थापन किया है। उन्होंने शक्तियुक्त परतत्त्वको ही परब्रह्म स्वीकार किया है। परतत्त्वको निःशक्तिक या निर्विशेष माननेसे षडैश्वर्यपूर्ण, सर्वशक्तिमान परतत्त्वकी पूर्णताकी हानि होती है। जिस परतत्त्वमें स्वयं बृहत् होने एवं दूसरोंको भी बृहत् बनानेवाली स्वरूपानुबन्धिनी शक्ति है, वही ब्रह्म है। सच्चिदानन्द परतत्त्व अद्वितीय होनेके कारण उनकी शक्ति भी अघटन-घटन-पटीयसी, सच्चिदानन्दात्मिका और अद्वितीय होती है। वही पराशक्ति तीन रूपोंमें प्रकाशित होती है— सम्वित, सन्धिनी और ह्लादिनी। शक्तिकी क्रियाके कारण ही ब्रह्मका सविशेषत्व नित्यसिद्ध है। ब्रह्मकी शक्ति दो प्रकारसे अवस्थित होती है—(१) केवलमात्र शक्तिके रूपमें अमूर्त और (२) शक्तिकी अधिष्ठात्रीके रूपमें मूर्त। जब भगवत्-शक्तियाँ श्रीभगवत्-विग्रहमें एकात्म होकर अवस्थित होती हैं, तो वे अमूर्त होती हैं तथा जब वे भगवत्परिकरके रूपमें प्रकट होकर सब प्रकारसे उनकी सेवा करती हैं, तो उन्हें मूर्तरूप कहते हैं।

गौड़ीय-दर्शनमें शक्ति और शक्तिमान मिलकर ही एक अखण्ड, अद्वय परतत्त्व स्वीकृत हैं। इन्द्रियातीत तत्त्व अथवा उनकी शक्तिका अलौकिकत्व निरूपण करनेके लिए केवल गौड़ीय-दर्शनमें ही अचिन्त्य शब्दका प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। अन्यत्र कहीं भी इसका उल्लेख

नहीं देखा जाता। आचार्य शङ्करने भी 'विष्णुसहस्रनाम' की व्याख्यामें परब्रह्मको अचिन्त्य बतलाया है। श्रीधर स्वामीने भी श्रीविष्णुपुराणकी टीकामें अचिन्त्य शब्दका प्रयोग किया है। किन्तु श्रीजीव गोस्वामीके 'अचिन्त्य' शब्दके विचारका कुछ वैशिष्ट्य है अर्थात् श्रीजीव गोस्वामीने अचिन्त्य शब्दका अर्थ शब्दमूलक श्रुतार्थापत्ति ज्ञानगोचर अर्थात् गुरु-परम्परा द्वारा स्वीकृत शास्त्र वचनों द्वारा जाननेयोग्य बताया है। हमने पहले ही इसका उल्लेख किया है।

शक्ति और शक्तिमानका केवल भेद या केवल अभेद असम्भव है। वेदोंमें भेद और अभेद सूचक दोनों ही प्रकारके श्रुतिमन्त्र दृष्टिगोचर होते हैं। इन दोनोंका युगपत् भेद और अभेद साधनकी सङ्गति भी एकमात्र परतत्त्वकी अचिन्त्यशक्ति द्वारा ही संघटित होती है तथा श्रुतार्थापत्ति प्रमाणके व्यतीत मानव मेधाके द्वारा इसे समझना भी असम्भव है। इसीलिए श्रीजीव गोस्वामीने अचिन्त्य-शब्दगम्य भेदाभेद स्वीकार किया है।

पौराणिकों, शैवों तथा भास्कराचार्य आदिके मतोंमें 'भेदाभेद' स्वीकार किया गया है, किन्तु वह भेदाभेद तर्कमूलक, खण्डनयोग्य और परस्पर सङ्गतिहीन है। मायावादियोंके केवलाद्वैतवादमें भी भेदांश व्यवहारिक या प्रतीकमात्र है। वहाँ सत्-असत्-अनिर्वचनीयकी आड़में मायाका अस्तित्व स्वीकृत होनेसे अद्वैतवाद युक्ति और शास्त्रीय प्रमाणोंकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। अतएव केवलाद्वैतवाद स्वकपोल-कल्पित तथा अशास्त्रीय है। दूसरी ओर गौतम, कनाद, जैमिनी, कपिल और पातञ्जलिके मतसे भेदवाद स्वीकृत होनेपर भी वह वेदान्त-सम्मत नहीं है।

निम्बार्क मतमें भी स्वाभाविक भेदाभेद या द्वैताद्वैत मत स्वीकृत है। किन्तु वह भी अपूर्ण है। श्रीरामानुजके विशिष्टाद्वैतवादमें शक्ति और शक्तिमानका भेद स्वीकृत होनेके कारण श्रीरामानुजको भी प्रकारान्तर रूपमें द्वैतवादी कहा जा सकता है। मध्वाचार्यके द्वैतवादमें अत्यन्त भेद स्वीकृत होनेके कारण स्वतन्त्र तत्त्व ईश्वरसे परतन्त्र तत्त्वोंका नित्य भेद है—जीव और ईश्वरमें भेद, जीव और जीवमें भेद, ईश्वर और जड़में भेद, जीव और जड़में भेद, जड़ और जड़में भेद—ये पाँच प्रकारके भेद नित्य सत्य और अनादि हैं। ऐसा होनेपर भी मध्वाचार्यके मतमें

सच्चिदानन्द नित्यविग्रह (नर्तक गोपाल) स्वीकृत है। यह सच्चिदानन्द विग्रह ही इस अचिन्त्यभेदाभेदकी मूल आधारशिला होनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभुने मध्व सम्प्रदायको ही अङ्गीकार किया है। पूर्व वैष्णवाचार्योंके प्रचारित दार्शनिक मतोंमें कुछ-कुछ वैज्ञानिक अपूर्णता रहनेके कारण उनमें परस्पर वैज्ञानिक भेद हैं। इसी वैज्ञानिक भेदसे ही सम्प्रदाय भेद है। साक्षात् परतत्त्व श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने अपनी सर्वज्ञताके बलसे उन सभी मतोंकी असम्पूर्णताको पूर्णकर श्रीमध्वके सच्चिदानन्द विग्रहको, श्रीरामानुजाचार्यके शक्तिसिद्धान्तको, श्रीविष्णुस्वामीके शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा तदीय सर्वस्वत्वको और निम्बार्कके द्वैताद्वैत सिद्धान्तको निर्दोष और पूर्णकर अचिन्त्यभेदाभेदात्मक अत्यन्त विशुद्ध वैज्ञानिक मत जगत्को कृपाकर प्रदान किया है।

वेदवाक्योंकी सर्वांगीण आलोचना करनेपर एक सनातन-तत्त्वको जाना जाता है। वह सनातन-तत्त्व यह है कि विश्व सत्य है, अविद्या द्वारा कल्पित मिथ्या-वस्तु नहीं है। यह परमेश्वरकी निरंकुश इच्छासे उत्पन्न हुआ है—जीव द्वारा निर्मित नहीं है। किसी मिथ्या पदार्थमें सत्यका भास होना ही 'विवर्त' है। जगत् नश्वर होनेपर भी सत्य है, अचिन्त्यशक्तिमान ईश्वरके ईक्षण अर्थात् इच्छा करते ही उत्पन्न हुआ है। इसमें विवर्तका स्थल नहीं है। परमेश्वरकी माया नामक अपरा शक्तिने परमेश्वरके इच्छानुसार इस स्थावर-जङ्गममय सम्पूर्ण जड़-जगत्को उत्पन्न किया है। सारा विश्व ही अचिन्त्यभेदाभेदात्मक है। विश्व सत्य होनेपर भी नित्य सत्य नहीं है। 'नित्यो नित्यानां' (क॰ २/२३, श्वे॰ ६/१०) इस श्रुति-मन्त्र द्वारा यही प्रमाणित होता है। केवल भेद अथवा केवल अभेदवाद एवं शुद्धाद्वैत या विशिष्टाद्वैतवाद—ये सभी श्रुतिशास्त्रोंके एकदेशीय विचार हैं, साथ ही अन्यदेश-विरुद्ध हैं। परन्तु अचिन्त्यभेदाभेदमत वेदका सर्वांगीण पूर्णतम सिद्धान्त है। यही मत जीवकी स्वतःसिद्ध श्रद्धाका आस्पद और शास्त्रयुक्तिसङ्गत है। इस जड़-जगत्से जीवका नित्य सम्बन्ध नहीं है। जगत् परब्रह्मकी शक्तिका परिणाम है, वस्तुका परिणाम नहीं है। यह स्थूल-लिङ्गात्मक विश्व जीवका भोगायतन मात्र है।

(ञ) शुद्धाभक्तिका विचार

हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि शास्त्रोंके अनुसार भक्ति ही भगवत्प्राप्तिका एकमात्र साधन है। भक्ति ही जीवको भगवान्‌के निकट ले जाती है। भक्ति ही जीवको भगवद्दर्शन कराती है। परमपुरुष भगवान् एकमात्र भक्तिके ही वशीभूत रहते हैं। यहाँ इस भक्तिके स्वरूपका विवेचन किया जा रहा है। महर्षि शाण्डिल्यने भक्तिकी परिभाषाका निरूपण करते हुए कहा है—

सा परानुरक्तिरीश्वरे।

(शाण्डिल्यसूत्र १/२)

अर्थात् ईश्वरमें परानुरक्ति ही भक्ति है।

नारदपञ्चरात्रमें—

सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्।
हृषिकेण हृषीकेश-सेवनं भक्तिरुच्यते।

(भ॰ र॰ सि॰ पूर्वविभाग १/१० नारदपञ्चरात्र)

(अप्राकृत) इन्द्रियों द्वारा (अप्राकृत) इन्द्रियाधिपति श्रीकृष्णकी सेवा ही भक्ति है। ऐसी भक्ति औपाधिक अर्थात् देह और मनोधर्मके व्यवधानसे रहित कृष्णकी प्रीतिके लिए अखिल चेष्टायुक्त एवं निर्मल अर्थात् ज्ञान-कर्मरूप लताओंसे आच्छादित नहीं होती है।

श्रीमद्भागवतमें भक्तिकी परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

मद्‌गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ॥

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥

जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्ड रूपसे समुद्रकी ओर होता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्न रूपसे मुझ सर्वान्तर्यामीके प्रति तथा मुझ पुरुषोत्तममें अहैतुकी और व्यवधानरहित जो स्वाभाविक प्रीति होती है, उसे निर्गुण भक्तियोग कहा जाता है।

इस प्रकार शास्त्रोंमें भक्तिकी परिभाषाओंका उल्लेख रहनेपर भी स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रिय परिकर श्रीलरूप गोस्वामीने पूर्वलिखित भक्तिकी सारी परिभाषाओंको क्रोड़ीभूत करते हुए स्वलिखित भक्तिरसामृतसिन्धुमें जो सर्वांगसुन्दर अभिनव परिभाषा दी है, वही गौड़ीय वैष्णवोंके लिए उपजीव्य एवं अभीष्ट है—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञान-कर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥
(भ॰ र॰ सि॰ पूर्वविभाग १/९)

श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत्त, एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमाभक्ति कहते हैं।

इस सूत्रमें भक्तिके स्वरूप और तटस्थ—दोनों लक्षणोंका विशद् रूपसे विवेचन हुआ है। 'उत्तमाभक्ति' शब्दसे शुद्धाभक्तिका तात्पर्य है। कर्ममिश्रा या ज्ञानमिश्रा भक्ति शुद्ध नहीं है। कर्ममिश्राभक्तिका उद्देश्य सांसारिक भोग है तथा ज्ञानमिश्राभक्तिका उद्देश्य मुक्ति है। भोग और मोक्षकी कामनाओंसे रहित भक्ति ही उत्तमाभक्ति कहलाती है। भक्तिके उपयुक्त साधनसे भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है। वह भक्ति क्या है? तन, मन और वचन द्वारा कृष्णके प्रीतिविधानकी सर्वांगीण चेष्टा एवं प्रीतिमय भाव—भक्तिके स्वरूपलक्षण हैं। चेष्टा और भाव—ये दोनों कृष्णकी प्रीतिके लिए सर्वदा क्रियाशील रहते हैं। जीवस्वरूपके ऊपर श्रीकृष्णकी कृपा या भक्तकी कृपासे भगवान्की स्वरूपशक्तिकी विशेष वृत्ति (ह्लादिनी और सम्वितकी सारवृत्ति) के उदय होनेपर भक्तिका स्वरूप उदित होता है।

श्रीलरूप गोस्वामीने भक्तिके दो तटस्थलक्षण बताये हैं—प्रथम अन्याभिलाषिता शून्यता और दूसरा ज्ञान-कर्म आदिसे अनावृतता। भक्तिकी उन्नतिकी अभिलाषाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाएँ भक्तिविरोधी हैं और वे अन्याभिलाषिताके अन्तर्गत हैं। जीव और ब्रह्मका

ऐक्य ज्ञान, स्मार्तोंके नित्य-नैमित्तिक काम्यकर्म, प्रायश्चित्त आदि भगवत्-बहिर्मुख कर्म, सांख्य-ज्ञान, शुष्क वैराग्य आदि भक्तिविरोधी हैं। अतएव इन दोनों प्रकारके विरोधी लक्षणोंसे रहित होनेपर ही कृष्णप्रीतिके लिए जो कृष्णानुशीलन होता है, उसे शुद्धाभक्ति कहा जाता है।

सद्गुरुसे दीक्षा, शिक्षा ग्रहण करनेके पश्चात् शुद्ध-भक्तोंके आनुगत्यमें जो शुद्धाभक्तिका साधन किया जाता है, उसे साधनभक्ति कहते हैं। साधनभक्तिके अनुष्ठानके प्रारम्भमें ही उसके दो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं—क्लेशघ्नी तथा शुभदा; भावावस्थामें इन दोनोंके अतिरिक्त मोक्षलघुताकृता एवं सुदुर्लभा—ये कुल चार लक्षण होते हैं तथा साध्यावसामें पूर्वोक्त चारों लक्षणोंके अतिरिक्त सान्द्रानन्द-विशेषात्मा एवं श्रीकृष्णकर्षिणी—कुल छः लक्षण लक्षित होते हैं। श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धुमें भक्तिकी इन छः विशेषताओंका वर्णन किया है—

क्लेशघ्नी शुभदा मोक्ष-लघुताकृत् सुदुर्लभा।
सान्द्रानन्द-विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षणी च सा॥

(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ १ ल १२)

अर्थात्—

(१) क्लेशघ्नी—सब प्रकारके दुःखोंका नाश करती है।
(२) शुभदा—सम्पूर्ण कल्याणको देनेवाली है।
(३) मोक्ष-लघुताकृता—मोक्षको भी तुच्छ उपलब्धि करा देती है।
(४) सुदुर्लभा—अत्यन्त ही दुर्लभ है।
(५) सान्द्रानन्द-विशेषात्मा—घनीभूत आनन्द-स्वरूपा है।
(६) श्रीकृष्णाकर्षणी—श्रीकृष्णको आकर्षित करती है।

पाप, पापवासना और पापबीज तथा पुण्य, पुण्यवासना और पुण्यबीज—इन सभी प्रकारके क्लेशोंको नष्ट करना भक्तिका पहला लक्षण है। सबके प्रति प्रीति, प्राणिमात्रके प्रति अनुराग, समस्त सद्गुण और शुद्ध सुख प्रदान करना—यह दूसरा लक्षण है, इसीको शुभदा भी कहते हैं। ये दोनों लक्षण साधनभक्तिके समय लक्षित होते हैं। मोक्षको भी तुच्छ उपलब्ध कराना तीसरा लक्षण है। विषयभोगके प्रति अनासक्त होकर भक्तिके अङ्गोंका बहुत दिनों तक अनुष्ठान करनेपर

भी भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती। यह सुदुर्लभता ही साधनभक्तिका चौथा लक्षण है। ये दोनों भावभक्तिके लक्षण हैं। घनीभूत आनन्दस्वरूप होना पाँचवा लक्षण है तथा श्रीकृष्णको आकर्षित करना भक्तिका छठा लक्षण है। अन्तिम दो लक्षण साध्यभक्ति अर्थात् प्रेमाभक्तिके लक्षण हैं। साध्यभक्तिमें भी पूर्व प्रदर्शित चारों लक्षण लक्षित होते हैं। साध्यभक्तिकी प्रथम अवस्थाको भावभक्ति कहते हैं तथा उसकी सर्वोच्च अवस्थाको प्रेम कहते हैं।

श्रीलरूप गोस्वामीने साधनभक्तिकी परिभाषा इस प्रकार बतायी है—

कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा सा साधनाभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्यं हृदि साध्यता॥

(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ २/२)

साध्यभावरूपा शुद्धाभक्ति जब इन्द्रियोंके द्वारा साधित होती है, तब उसे साधनभक्ति कहते हैं। साध्यभाव नित्यसिद्ध है, परन्तु जिस उपायके द्वारा उसे हृदयमें प्रकट किया जाता है, उसका नाम साधन है। यह साधनभक्ति भी दो प्रकारकी होती है—वैधी और रागानुगा।

श्रवण, कीर्त्तन और भक्तिके अङ्गोंका अनुष्ठान यदि स्वाभाविक अनुराग और रुचिके द्वारा न होकर केवल शास्त्र-शासन (शास्त्रकी विधियोंके भय) से किया जाता है, तो उसे वैधीभक्ति कहते हैं। शास्त्रोंमें जीवोंके लिए जो कर्त्तव्य निर्धारित किये गये हैं, उसे विधि कहते हैं एवं जिसे करनेके लिए मना किया गया है, उसे निषेध कहते हैं। इन विधि-निषेधोंका पालन करना ही शास्त्रोंका शासन मानना है। शास्त्रोंके इस शासन भयसे भक्तिमें जीवोंकी प्रवृत्ति होनेपर उसे वैधीभक्ति कहते हैं।

यत्र रागानवाप्तत्वात् प्रवृत्तिरूपजायते।
शासनेनैव शास्त्रस्य सा वैधीभक्तिरुच्यते॥

(भ॰ र॰ सि॰ १/२/६)

अर्थात् जिस साधनभक्तिमें प्रवृत्तिका कारण लोभ नहीं, बल्कि शास्त्रशासन है उसे वैधीभक्ति कहते हैं।

साधनभक्तिके बहुत-से अङ्ग होनेपर भी भक्तिरसामृतसिन्धुमें गुरुपदाश्रय, कृष्णदीक्षा-शिक्षा, गुरुसेवा आदि ६४ अङ्गोंका वर्णन किया गया है। ये चौंसठ अङ्ग स्वरूपतः श्रीमद्भागवतमें कहे गये प्रधान नौ अङ्गोंके अन्तर्भुक्त हैं। ये नौ अङ्ग या नवधाभक्ति इस प्रकार है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

(श्रीमद्भा॰ ७/५/२३)

कोई-कोई इन साधनोंमेंसे किसी एक अङ्गका साधनकर भी सिद्ध होते हैं। कोई-कोई अनेक अङ्गोंका भी एक साथ साधन करते हैं। वास्तवमें साधनभक्तिके सभी अङ्गोंका मुख्य फल एक ही है—चित्-विषयणी रति।

साधक भक्त जब अपने अभिलषित व्रजराजनन्दन श्रीकृष्णकी सेवाप्राप्तिके लोभसे श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका अनुष्ठान करते हैं, तब उनके द्वारा अनुष्ठित उस भक्ति-परिपाटीको रागानुगा-भक्ति कहते हैं। इष्टके विषयमें जो स्वाभाविक अत्यन्त आवेश या अनुरक्ति होती है, उसे राग कहते हैं। ऐसे रागसे युक्त जो कृष्णकी भक्ति होती है, उसे रागात्मिकाभक्ति कहते हैं। उस रागात्मिकाभक्तिकी अनुगामिनी भक्तिको रागानुगाभक्ति कहते हैं। जिस प्रकार शास्त्रोंके अनुशासनमें विधिके अधीन रहकर जो भक्ति होती है, उसे वैधीभक्ति कहते हैं, उसी प्रकार रागात्मिकाभक्तिकी अनुगामिनी भक्तिको रागानुगाभक्ति कहा जाता है। इन दोनोंमेंसे कोई भी साध्यभक्ति नहीं है। ये दोनों ही साधनभक्ति हैं। रागात्मिकाभक्ति ही साध्यभक्ति है। व्रजवासी और पुरवासी (मथुरा और द्वारकावासी) लोगोंकी भक्ति रागात्मिका है। उनकी वैसी भक्तिको पढ़कर या सुनकर जिनके हृदयमें वैसी ही भक्तिको प्राप्त करनेके लिए लोभ होता है, वे रागानुगा साधनभक्तिके अधिकारी हैं। जिस प्रकार शास्त्रीय श्रद्धासे वैधीभक्तिका अधिकार प्राप्त होता है, उसी प्रकार रागात्मिक भक्तोंके भावके प्रति लोभसे रागानुगाभक्तिमें अधिकार मिलता है।

तत्तदभावादि-माधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शात्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्ति लक्षणम्॥
कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निज समीहितम्।
तत्तत्कथा-रतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥
सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥
(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ साधनभक्ति लहरी २९२, २९४, २९५)

रागानुगाभक्तिका कारण रागात्मिक जनोंके भावोंके प्रति लोभका होना है, यह लोभ शास्त्रीय युक्तिसे उत्पन्न नहीं होता बल्कि उन-उन भाव माधुर्योंका श्रवण करके उनमें निमग्न होनेके लिए बुद्धि जिस चीजकी अपेक्षा करती है, वह चीज विशुद्ध लोभके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अपने अभीष्ट कृष्णके प्रियजनोंके भावोंके प्राप्तिके लिए जिनको लोभ है, वे साधक रूपसे यथावस्थित देह द्वारा और सिद्ध रूपसे अर्थात् अन्तश्चिन्तित अभीष्ट कृष्णसेवोपयोगी देहके द्वारा व्रजमें सर्वदा वास करते हुए श्रीकृष्णके व्रजस्थ प्रियतमजनोंके तथा उनके अनुगत जनोंका अनुसरण करते हुए सेवा करेंगे, कृष्णकी लीलाकथाओंका श्रवण, कीर्त्तन एवं स्मरण करेंगे। यही व्रज सम्बन्धी रागानुगाभक्तिकी साधन-प्रणाली है।

रागानुगाभक्ति दो प्रकारकी होती है—कामानुगा एवं सम्बन्धानुगा। कामानुगा भी दो प्रकारकी होती है—सम्भोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी। सम्भोगेच्छामयी भक्ति केलि तात्पर्यवती होती है। यहाँ केलिका तात्पर्य श्रीकृष्णके साथ उनकी प्रेयसियोंके मिलनसे है। तत्तद्भावेच्छामयी भक्ति केवलमात्र व्रजदेवियोंकी भावमाधुरीकी कामनावाली होती है।

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुने जगत्के जीवोंके लिए जिस भक्तिकी शिक्षा दी है, उसके द्वारा साधकके हृदयमें रागानुगा होनेकी वासना उदित होती है। रागमार्ग द्वारा भजन ही उनके

द्वारा अनुमोदित है। जीवोंके सौभाग्यसे यदि उन्हें श्रीगौरसुन्दरके प्रियजनोंका सङ्ग मिल जाय तो व्रजजनोंके भावके प्रति अवश्य ही लोभ उत्पन्न होगा। किन्तु जब तक ऐसा सङ्ग नहीं मिलता, तब तक साधकको वैधीभक्तिका ही अवलम्बन करना चाहिये। श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणोंका आश्रय करनेसे रागमार्गमें अवश्य ही प्रवेश होगा। जिन सौभाग्यवान साधुओंके हृदयमें व्रजवासियोंके भावोंको पानेके लिए लोभ उत्पन्न हो चुका है, उनके लिए रागानुगाभक्तिका साधन करना कर्त्तव्य है। वैसा लोभ उत्पन्न होनेपर भगवत्-इतर विषयोंमें रुचि नहीं रहती। पाप, पुण्य, कर्म, अकर्म, विकर्म, शुष्क ज्ञान और वैराग्यसे छुटकारा मिल जाता है। भक्तिके साधनमें उसे रुचि उत्पन्न हो जाती है। श्रीलरूप गोस्वामीने भक्तिके क्रमविकासके सम्बन्धमें लिखा है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत्क्रमः॥

(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ ४/१५, १६)

वैधमार्गमें सबसे पहले श्रद्धा होती है। उसके बाद साधुसङ्ग, तत्पश्चात् भजन द्वारा अनर्थोंकी निवृत्ति होती है। तदनन्तर निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भाव होता है। इसमें भाव अधिक काल तक साध्य बना रहता है। परन्तु लोभ उत्पन्न होनेपर इतर विषयोंमें लोभका अभाव होनेके कारण अति सहज ही अनर्थ नष्ट हो जाते हैं। भाव भी इसी लोभके साथ-ही-साथ उदित होता है। रागमार्गमें केवल आभास और कपटताको दूर करना आवश्यक है। यदि ये दूर न हों, तो उनसे विषम-विकार और अनर्थोंकी ही वृद्धि होती है। ऐसी अवस्थामें भ्रष्ट राग ही विशुद्ध राग है—ऐसी प्रतीति होती है। और अन्तमें विषय-सङ्ग ही प्रबल होकर जीवकी अधोगतिका कारण बन जाता है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित साधक पुरुष शुद्ध लोभके माध्यमसे रागानुगाभक्तिका ही अवलम्बन करते हैं। वैधीभक्तिमें वे सद्गुरुका पदाश्रय करके श्रीविग्रह-सेवा, वैष्णव-सङ्ग, भक्ति-शास्त्रोंका आदर, भगवान्‌की

can we hav
sloka ref for bl
rasamrta-si
same all over

लीलास्थलियोंमें वास और श्रीभगवन्नामका अनुशीलन करते हुए अपने सिद्धदेहमें व्रजवासियोंके भावका अनुसरणपूर्वक मन-ही-मन भावमार्ग द्वारा कृष्णकी सेवा करते हैं। उनमेंसे अत्यन्त सौभाग्यवान साधक ही साधुसङ्गमें रहकर भक्तिके अङ्गोंमें श्रेष्ठ हरिनामका आश्रय ग्रहण करके भगवत्-सेवामें नियुक्त होते हैं। नामाश्रय ग्रहण करनेमें दीक्षा और पुरश्चर्या आदि विधियोंकी अपेक्षा नहीं रहती। नामाभास और नामापराधसे दूर रहकर क्रमशः निरन्तर कृष्णनाम करते हैं। निरन्तर हरिनाम करते हुए श्रीविग्रहकी कृपादृष्टिकी भावनाके साथ श्रीनाम और रूपकी निरन्तर आलोचना करते हैं। क्रमशः श्रीविग्रहके गुणसमूह, रूप और नाम—ये सभी एक ही साथ आलोचित होने लगते हैं। तदनन्तर स्वरूपगत लीला-भावनाके साथ गुण, रूप और नामका अनुशीलन होने लगता है। धीरे-धीरे रसोदय भी हो जाता है। रसका उदय होना ही चरम प्राप्ति है। विशेष बात यह है कि नाम-अनुशीलनके समयसे ही यदि रसोन्मुखी व्याकुलता रहे, तो थोड़े दिनोंमें रसोदय हो पड़ता है।

(ट) कृष्ण-प्रीति ही जीवका साध्य है

जिस तत्त्वको लोकपितामह ब्रह्मा, देवाधिदेव महादेव सर्वदा खोज करते हैं, मुक्त जीवोंके लिए भी जो परम अन्वेषणीय है, उस अखिल साधनतत्त्वकी एकमात्र साध्य वस्तु एवं सभी शास्त्रोंका चरम प्रयोजन है—परम पुरुषार्थ—प्रेम। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीरूप-शिक्षाके प्रसङ्गमें जगद्गुरु श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते हैं—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कौन भाग्यवान जीव।
गुरु-कृष्ण प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज॥

माली हइया करे सेई बीज आरोपन।
श्रवण-कीर्तन-जले करये सेचन॥

x x x x

प्रेमफल पाकि पड़े माली आस्वादय।
लता अवलम्बि माली कल्पवृक्ष पाय॥

ताहाँ सेइ कल्पवृक्षेर करये सेचन।
सुखे प्रेमफल-रस करे आस्वादन॥
एइ त' परम फल—परम पुरुषार्थ।
जाँर आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ॥

अर्थात् संसारमें भ्रमण करते-करते कोई सौभाग्यवान जीव गुरु और कृष्णके प्रसादसे भक्तिलता-बीज-कृष्ण-सेवाकी वासना प्राप्त करता है। श्रवण और कीर्त्तन रूपी जलसे उसका सिञ्चन करता है, जिससे वह बीज पहले अङ्कुरित होता है। तत्पश्चात् लताका रूप धारणकर क्रमशः ब्रह्माण्ड, विरजा, ब्रह्मलोक एवं परव्योमको भेदकर गोलोक वृन्दावनमें व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलरूपी कल्पवृक्षके ऊपर आरोहण करता है। उसमें प्रेमफल लगते हैं। पकनेपर फल जब गिरता है, तो माली यहाँ उसका आस्वादन करता है और उस भक्तिलताका अवलम्बनकर कल्पवृक्षरूप श्रीकृष्णके चरणकमलोंका आश्रयकर सर्वदा प्रेमफल—रसका आस्वादन करता है। यही 'प्रेम' जीवोंके लिए सर्वसाध्य शिरोमणि है।

भाव उस प्रेमरूपी सूर्यका किरण स्वरूप है। श्रीरूप गोस्वामी भावकी परिभाषा बताते हुए कह रहे हैं—

शुद्धसत्त्वविशेषात्मा प्रेमसूर्यांशुसाम्यभाक्।
रुचिभिश्चित्तमासृण्यकृदसौ भाव उच्यते॥
(भ॰ र॰ सि॰ पू॰ वि॰ ३/१)

अर्थात् जो भक्ति शुद्धसत्त्वस्वरूपा है, वह प्रेमरूप (उदय होने जा रहे) सूर्यके किरणस्थानीय है तथा रुचि द्वारा चित्तको आर्द्र करनेवाली है, उसे भाव कहते हैं।

यही शुद्धसत्त्वरूप भाव परिपक्व होनेपर आराध्यके प्रति प्रगाढ़ ममता उत्पन्न करता है तथा चित्तको अत्यन्त स्निग्ध कर देता है। उस समय ऐसे प्रगाढ़ ममता युक्त भावको प्रेम कहते हैं—

सम्यक् मसृणितस्वान्तो ममत्वातिशयांकितः।
भावः स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेमा निगद्यते॥
(भ॰ र॰ सि॰ प्रे॰ ल॰ १ श्लोक)

इसे दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कहा जा सकता है—स्वप्रकाशिका स्वरूपशक्तिकी सम्वित् नामक वृत्तिको शुद्धसत्त्व कहते हैं। कृष्णके प्रति प्रगाढ़ ममतासम्पन्न आर्द्र-भाव चित्-शक्तिगत ह्लादिनी-वृत्तिविशेष है। इन दोनोंके एकत्र मिलित होनेपर शुद्ध जीवके हृदयमें जो परम वृत्तिरूप चमत्कार भाव उदित होता है, उसे ही विशुद्ध प्रेम कहते हैं।

साधकके चित्तमें प्रेमका अङ्कुर—भाव या रति—उदय होनेपर उसके स्वभावमें क्षान्ति, अव्यर्थकालत्व, विरक्ति, मानशून्यता, आशाबन्ध, समुत्कण्ठा, नामकीर्त्तनमें रुचि, कृष्णकी लीलाकथाओंमें आसक्ति तथा उनकी लीलास्थलियोंमें प्रीति आदि अनुभावसमूह परिलक्षित होते हैं। यह रति ही प्रेमकी पहली अवस्था है। रतिकी गाढ़ावस्थाको ही प्रेम कहते हैं। यह रति दो प्रकारसे उदित होती है—(१) श्रीकृष्ण या कृष्णभक्तोंकी कृपासे, (२) साधन अभिनिवेशसे। इस जगत्में साधनाभिनिवेशज रति ही सर्वत्र देखी जाती है। प्रसादज रतिका उदय विरलोंमें ही देखा जाता है। साधनाभिनिवेशज रति भी दो प्रकारकी होती है—(१) वैधीभक्तिसाधनसे उत्पन्न रति और (२) रागानुगासाधनसे उत्पन्न रति। वैधीभक्तिसाधनसे उत्पन्न रति ऐश्वर्यमयी और वैकुण्ठगामिनी होती है और रागानुगा-साधनभक्तिसे उत्पन्न रति व्रजकी प्रेममयी कृष्णसेवाप्रदायिनी होती है।

श्रीकृष्ण-परिकर व्रजवासियोंमें सदैव रागात्मिकाभक्ति विराजमान रहती है। उसीकी अनुगामिनी भक्तिका नाम रागानुगा है। इसके दो प्रकारके साधन हैं—बाह्य और आभ्यन्तरिक। साधक अपने यथावस्थित शरीरसे जो श्रवण-कीर्त्तन आदि करता है, उसे बाह्य साधन कहते हैं। मन-ही-मन अपनी सिद्धदेहकी भावना कर व्रजमें राधाकृष्ण-युगलकी अष्टकालीय सेवा आभ्यन्तरिक मानसी-सेवा कहलाती है।

अस्फुट प्रीति प्रथमावस्थामें केवल उल्लासमयी होती है, तब उसका नाम रति होता है। वैसी रति शान्तरसमें पायी जाती है। रतिके उदय होनेपर कृष्णसेवाके अतिरिक्त सब कुछ तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसी उल्लासमयी रतिमें जब अतिशय ममताका आविर्भाव होता है, तब उसे प्रेम कहते हैं। यह प्रेम दास्यरसमें अनुभूत होता है। प्रीतिभङ्गका

कारण उपस्थित होनेपर भी जो प्रीति और भी प्रगाढ़ हो जाती है, उस विश्वासमय प्रेमकी उच्च अवस्थाको प्रणय कहते हैं। यह प्रणय सख्यरसमें परिलक्षित होता है। यह प्रेमवैचित्र्यरूप प्रणय ही मान कहलाता है। चित्तको अत्यन्त द्रवीभूत करनेवाला प्रगाढ़ प्रेम ही स्नेह कहलाता है। यही स्नेह प्रगाढ़ अभिलाषात्मक होनेपर राग कहलाता है। राग उत्पन्न होनेपर क्षणभरका वियोग भी सह्य नहीं होता। उस समय दुःख भी सुख प्रतीत होता है। वही राग जब अपने विषय (प्रियतम कृष्ण) को नित्य-नवीन रूपमें सर्वदा अनुभव करता है, तब उसे अनुराग कहते हैं। विप्रलम्भमें विस्फूर्ति (बाह्य ज्ञानरहित अवस्था) होती है। जब वही अनुराग अत्यन्त प्रगाढ़ होनेपर असमोर्द्ध्व चमत्कारिताके सहित उन्माद जैसी अवस्थाको प्राप्त होता है, तो उसे महाभाव कहते हैं। महाभावके उदय होनेपर मिलनके समय पलकोंका गिरना भी सह्य नहीं होता तथा एक कल्पका समय भी क्षणभरकी भाँति बीत जाता है। अनुराग एवं महाभावमें समस्त सात्त्विक, व्यभिचारी आदि विकारसमूह महादीप्त अवस्थामें लक्षित होते हैं।

यही महाभाव श्रीमती राधिकाका स्वरूप है। श्रीमती राधिकाके अङ्ग-प्रत्यङ्ग महाभाव द्वारा गठित हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुकी यही शिक्षा है। श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने सूत्र रूपमें उल्लेख किया है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावन-
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवत प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो न परः॥

षष्ठ भाग

श्रीब्रह्म–माध्व–गौड़ीय सम्प्रदायका संरक्षण

जगद्‌गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरने अत्यन्त अल्प समयमें विश्वभरमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित शुद्धाभक्ति—प्रेमाभक्तिका विपुल रूपमें प्रचार एवं प्रसार किया। उन्हींके प्रयाससे आज पृथ्वीके कोने–कोनेमें "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥" महामन्त्रकी ध्वनि गूँज रही है। उनकी अप्रकटलीला–आविष्कारके पश्चात् शुद्धाभक्तिकी प्रचार धारा अत्यन्त क्षीण हो गयी। उस समय श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगत, विशेषतः सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंके ऊपर चारों तरफसे आक्रमण हो रहे थे। कुछ तथाकथित सारस्वत गौड़ीय वैष्णव भी अपनी–अपनी डफली बजा रहे थे और अपना–अपना राग आलाप रहे थे। ऐसे विषम वातावरणमें जगद्‌गुरु श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' के अन्तरङ्ग परिकर अस्मदीय श्रीलगुरुदेव अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने श्रील प्रभुपादकी प्रेरणासे संन्यास ग्रहणकर अपने गुरुदेवका मनोऽभीष्ट प्रचार एवं प्रसार करनेके लिए अपने अन्तिम जीवन तक अथक प्रयास किया। उन्होंने किस प्रकारसे सारे विश्वमें पुनः भक्तिधाराको पूर्ण रूपसे प्रवाहित किया और किस प्रकारसे स्वसम्प्रदायका संरक्षण किया है, हम उसका दिग्दर्शन करा रहे हैं।

श्रील गुरुपादपद्म बहुत ही प्रतिभासम्पन्न, गम्भीर, दार्शनिक एवं तत्त्ववेत्ता आचार्य थे। उन्होंने शुद्धाभक्तिका प्रचार दो प्रकारसे किया—(१) प्रबल शास्त्रीय प्रमाणोंके बलपर श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित मतकी स्थापना की और (२) प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके बलसे भक्तिविरोधी प्रच्छन्न बौद्धवाद (केवलाद्वैतवाद या

मायावाद), सहजिया, स्मार्त, जाति-वैष्णव आदिके अपसिद्धान्तमूलक शुद्धाभक्तिविरोधी मतोंका खण्डन किया। भक्तिके पुनः प्रवर्तक तथा वैष्णव-दर्शन, भगवत्तत्त्व, शक्तितत्त्व, भक्तितत्त्व, मायातत्त्व तथा अचिन्त्य-भेदाभेदतत्त्व आदिका वर्त्तमान जगत्में पुनः प्रचार करनेवाले सप्तम गोस्वामी श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रकाशित 'दशमूलतत्त्व' को ही उन्होंने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके षड्गोस्वामियोंके सभी ग्रन्थोंका एकमात्र सार कहा। उन्होंने श्रीमद्भागवतको ही अमल शब्द-प्रमाण तथा ब्रह्मसूत्रका अकृत्रिम भाष्य स्वीकार किया। उन्होंने और भी कहा कि श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित-प्रचारित नाम-प्रेमधर्म ही वेदान्तका प्रतिपाद्य विषय है। इन तीनों विषयोंका प्रतिपादन करनेके लिए उन्होंने वेदान्तसूत्रके शब्दवाद-तत्त्वमूलक श्रीहरिनाम-माहात्म्यसूचक एक भाष्य तथा श्रीमद्भागवतकी भक्तिवेदान्तमूलक एक टीका प्रकाशित करनेकी इच्छा व्यक्त की थी। इसके लिए कुछ-कुछ लेखन-सामग्री एकत्रकर उक्त दोनों ग्रन्थोंकी रूपरेखा भी तैयार करना आरम्भ कर दी थी। किन्तु अकस्मात् नित्यलीलामें प्रविष्ट होनेके कारण उसे पूर्ण नहीं कर सके। समय-समयपर प्रधान-प्रधान उपनिषदोंकी स्वसम्प्रदायके विचारोंके अनुसार भाष्य प्रकाश करनेकी भी उनकी प्रबल इच्छा देखी गयी।

(क) केवलाद्वैतवादका खण्डन

उनका यह स्पष्ट विचार था कि जब तक जगत्में प्रच्छन्न बौद्धवादरूप मायावादका प्रचार है, तब तक शुद्धाभक्तिका प्रचार सम्भव नहीं है। इसलिए उन्होंने अपने प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियोंके द्वारा इसका खण्डन किया है। मायावाद-खण्डनकी उनकी कतिपय युक्तियोंका यहाँ उल्लेख किया जा रहा है—

(क) शङ्कराचार्य द्वारा प्रचारित केवलाद्वैतवाद अवैदिक है। केवलाद्वैतवसदके मतानुसार निर्विशेष, निर्गुण, निःशक्तिक ब्रह्म ही परतत्त्व है। अविद्याके कारण ही ऐसे ब्रह्ममें जीव और जगत्की भ्रान्ति होती है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह भ्रान्ति किसे होती है? कुछ मायावादियोंका कथन है कि यह भ्रान्ति अविद्याग्रस्त जीवको होती है

और कुछका कहना यह है कि अविद्याग्रस्त होनेपर ब्रह्मको ही जीव और जगत्‌की भ्रान्ति होती है।

इस विषयमें इनका कहना यह है कि उक्त दोनों ही विचार अवैदिक और भ्रान्त हैं। यदि वे ब्रह्मको अविद्याग्रस्त मानते हैं, तो यह सर्वथा अशास्त्रीय एवं अयौक्तिक है। क्योंकि उपनिषदोंके अनुसार 'ब्रह्म सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' अर्थात् ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्त है तथा 'एकमेवाद्वितीयम्' अर्थात् ब्रह्मके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यदि ब्रह्म सर्वदा ज्ञानस्वरूप, त्रैकालिक सत्यस्वरूप, अनन्त, अद्वितीय और आनन्दस्वरूप है, तो वह अविद्याग्रस्त कैसे हो सकता है एवं अविद्या नामक यह द्वितीय वस्तु कहाँसे आयी? जो अविद्या स्वयं सत् और असत् कुछ भी नहीं है, मिथ्या है, वह ब्रह्मको कैसे स्पर्श कर सकती है? यह असम्भव है।

दूसरी बात यदि यह भ्रान्ति जीवको होती है, तो ऐसा भी नहीं कह सकते। क्योंकि ब्रह्मसे पृथक् यह स्वतन्त्र जीवतत्त्व कहाँसे आया? इसके उत्तरमें यदि यह कहा जाय कि ब्रह्म ही अविद्याग्रस्त होकर जीव हुआ है, तब तो अविद्याका मूल आश्रय ब्रह्म हुआ, जीव नहीं।

(ख) कुछ मायावादियोंके विचारसे ब्रह्म माया द्वारा आच्छादित नहीं होता, किन्तु अविद्यामें ब्रह्मका प्रतिबिम्ब ही ईश्वर एवं अविद्यामें ब्रह्मका आभास ही जीव है। प्रतिबिम्बस्वरूप ईश्वर और आभासस्वरूप जीव दोनों ही मिथ्या हैं। इनकी पारमार्थिक सत्यता नहीं है। इसके लिए रज्जुमें सर्पका भ्रम अथवा सूक्तिमें रजतका भ्रम उदाहरणके स्थल हैं अर्थात् ब्रह्ममें ही जीव और जगत्‌की भ्रान्ति होती है। रज्जु ही सर्प है—इस भ्रममें सर्पत्व मिथ्या है। फिर भी व्यवहारिक रूपमें रज्जु और सर्पका कुछ अंशोंमें सादृश्य हेतु ही ऐसा भ्रम होता है।

परन्तु मायावादियोंका उपरोक्त विचार भी अशास्त्रीय और अयौक्तिक है। जो अविद्या स्वयं सत् भी नहीं, असत् भी नहीं और सत्-असत् उभय भी नहीं, अनिर्वचनीय है अर्थात् मिथ्या है (पारमार्थिक और लौकिक सत्यता जिसकी नहीं है) उसमें अखण्ड, निराकार, निर्विशेष, अनन्त ब्रह्म कैसे प्रतिबिम्बत हो सकता है? ऐसी दशामें ब्रह्म खण्ड,

परिच्छिन्न, सविशेष, ससीम हो पड़ता है। अविद्या एक पृथक् सत् वस्तु हो पड़ती है और यह अविद्या ब्रह्मको भी आच्छादित कर सकती है, जो सर्वथा असम्भव है। रज्जुमें सर्पभ्रम—इस उदाहरणमें सर्प, रज्जु, द्रष्टा—तीनों ही वस्तुएँ हैं, तो क्या ब्रह्म, जीव और अविद्या (माया)—ये तीनों ही सत्य हैं? ऐसा स्वीकार करनेसे मायावादरूप-काँचका महल स्वतः ध्वस्त हो जाता है। दूसरी बात वेद, उपनिषद् और वेदान्तसूत्रमें सर्वत्र ही ब्रह्मको जगत्-सृष्टिकर्त्ता, सर्वज्ञ, शक्तिमान एवं असमोर्द्ध्व परतत्त्व बताया गया है। जैसे—

(१) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति।
यत्-प्रयन्त्यभिसंविशन्ति, तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म।
(तै॰ भृगु, १ अनु)

(२) जन्माद्यस्य यतः

(३) ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।

(४) स ऐक्षत इत्यादि। यदि मायावादिययोंके विचारको ग्रहण किया जाय तो ये श्रुतिवचन मिथ्या प्रलाप हो जायेंगे।

(ग) कुछ मायावादियोंके अनुसार अविद्या—सत्त्व-रज-तम-स्वरूपा त्रिगुणात्मिका है तथा ब्रह्माश्रया है अर्थात् ब्रह्मका आश्रय ग्रहण करनेवाली है। यही अविद्या आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति द्वारा उपलक्षित होकर माया नाम धारण करती है। अविद्याकी आवरणशक्तिमें चैतन्यस्वरूप ब्रह्मका प्रतिबिम्ब—जीव तथा विक्षेपशक्तिमें चैतन्य स्वरूप ब्रह्मका प्रतिबिम्ब—ईश्वर कहलाता है। उपाधिगत रूपसे तथा बिम्बसे अभिन्न रूपमें प्रतीत होनेवाला प्रतिबिम्ब (ईश्वर) ही—बिम्ब है। यही ईश्वर—“मैं जगत्-सृष्टिकर्त्ता हूँ” और जीव—“मैं यह नहीं जानता”—इस प्रकार निश्चित किया करते हैं।

किन्तु मायावादियोंका उपरोक्त मत शास्त्रीय-विचार एवं युक्तिकी कसौटीपर खरा नहीं उतरता। शुद्ध स्वप्रकाश ब्रह्म-वस्तुमें अविद्याका सम्बन्ध सम्पूर्ण रूपसे एक विरुद्ध व्यापार है। यदि कहो कि इसमें कोई विरोधकी बात नहीं है, तब तो यह स्वीकार करना हो जाता है कि अविद्या निजाश्रित रहकर चिरकाल तक अवस्थित रहेगी तथा

ब्रह्मको उपाधिग्रस्त करती रहेगी। क्योंकि उसका विनाश करनेवाला कोई नहीं है। किन्तु यह कहना सर्वथा असङ्गत है। क्योंकि उपनिषदोंमें 'द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषष्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति॥'[(१)] (श्वे॰ ४/६, मुण्डक ३/१/१, ऋग्वेद १/१६४/२१), 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्'[(२)] (गीता ९/१०), 'न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥'[(३)] (श्वे॰ उ॰ ६/८) मन्त्रोंके द्वारा ब्रह्मको स्पष्ट रूपमें असमोर्द्ध्व-परतत्त्व, जीवोंका साक्षी, कर्मफल नियन्ता, अचिन्त्य सर्वशक्तिमान स्वीकार किया गया है तथा इनकी कृपासे सहज ही मायासे निष्कृति हो सकती है। 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्' (कठ॰ १/२/२३), 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान्' (कठ॰ ५/१३ और श्वे॰ ६/१३)।

मायावादियोंके मतानुसार ब्रह्म ज्ञानमात्र है। वह ज्ञानी अथवा ज्ञानवान नहीं है। ऐसा होनेपर उक्त ब्रह्ममें अविद्याके सम्बन्धकी कल्पना नितान्त असम्भव है। क्योंकि ज्ञानवान या ज्ञानीमें ही कुछ समयके लिए अज्ञान दृष्टिगोचर होता है। किन्तु केवल ज्ञानमात्र वस्तुमें अज्ञान दृष्टिगोचर नहीं होता। यह कदापि सम्भव नहीं है। क्योंकि ज्ञान और अज्ञान परस्पर अत्यन्त विरुद्ध हैं।

---

(१) परमात्मा और जीवात्मा स्थूल-सूक्ष्म शरीररूप पीपलके पेड़पर सखाकी भाँति निवास करते हैं; उनमेंसे जीव अपने कर्मोंके अनुसार पीपलके फलोंका आस्वादन कर रहा है और दूसरा परमात्मा फलका भोग न कर साक्षीके रूपमें अवस्थित है। अतः जीवात्मा और परमात्मा एक नहीं है।

(२) श्रीकृष्ण कहते हैं कि मेरी अध्यक्षतामें मेरी प्रकृति (मायाशक्ति) इस चराचर जगत्की सृष्टि करती है। अतः जगत् भी सत्य है, किन्तु परिर्वतन शील या ध्वंशशील है। इसके द्वारा श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं, यह सिद्ध होता है।

(३) परब्रह्म श्रीकृष्ण असमोर्द्ध्व तत्त्व हैं। उनका कोई भी करण—हस्तपादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होतीं। वे प्राकृत इन्द्रियोंके बिना अप्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा सभी कुछ करते हैं। उन परमेश्वरकी अलौकिक शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति, सन्धिनीशक्ति और ह्लादिनीशक्ति भी कहते हैं।

(घ) कुछ मायावादियोंके मतानुसार अनादि कालसे ही अनन्याश्रया (दूसरे किसी आश्रयकी अपेक्षा नहीं रखनेवाली) अविद्या और अविद्याके द्वारा ही ब्रह्ममें जीव आदि द्वैतभाव कल्पित होते हैं। अथच (अविद्याके द्वारा कौन कल्पना करता है) कल्पनाकारी कोई भी द्वितीय नहीं है—ऐसा स्वीकृत होनेसे जीव आदि द्वैतभाव कल्पना अविद्याका स्वाभाविक धर्म हो पड़ता है। ऐसा होनेपर अग्निकी दाहिका शक्तिकी भाँति स्वाभाविक धर्म कभी भी परित्यक्त नहीं हो सकता। अतः यह विचार केवलाद्वैतवाद मतके विरुद्ध हो जाता है अर्थात् इससे केवलाद्वैतवादका खण्डन होता है।

(ङ) मायावादियोंका प्रतिबिम्बवाद भी शास्त्र एवं युक्तिविरुद्ध है। सविशेष सूर्यका जलमें प्रतिबिम्ब होता है। इस दृष्टान्तसे रूपहीन, अवयव रहित निर्विशेष अदृश्य ब्रह्मका रूपहीन अविद्यामें प्रतिबिम्ब असम्भव है जो सत् भी नहीं, असत् भी नहीं और सत्-असत् उभय भी नहीं।

(च) दर्पण आदिमें मुखका प्रतिबिम्ब द्रष्टासे भिन्न होता है। परन्तु मायावादियोंके कल्पित प्रतिबिम्बवादमें प्रतिबिम्बरूप जीव और ईश्वर तथा प्रतिबिम्ब-भावप्राप्त ब्रह्मका द्रष्टा दूसरा कौन होगा? और यदि वे वैसे दृश्य हैं, तब तो जगत्‌के दृश्य पदार्थोंकी भाँति ब्रह्म और जीव जड़ हो पड़ेंगे (साधारणतः दार्शनिकोंके विचारसे जगत्‌के सारे दृश्य पदार्थ जड़ हैं)। इसलिए यह मत भी सर्वथा युक्तिविरुद्ध है।

(छ) प्रतिबिम्बित वस्तु जड़ होती है। उसमें अपनी उपाधिकी कल्पना करने या अपनी उपाधिका विनाश करनेका सामर्थ्य नहीं होता। तब प्रतिबिम्बरूप जीवमें 'मैं ब्रह्म हूँ'—यह उपलब्धि तथा अपने यथार्थ ज्ञानके द्वारा अपनी उपाधिरूप अविद्याको नष्ट करना भी असम्भव है। जब जीवके लिए अपनी उपाधिरूप अविद्याका भी विनाश करना सम्भव नहीं है, तब जीवोंके द्वारा ब्रह्मकी उपाधि (अविद्या) का नाश करना कैसे सम्भवपर हो सकता है? मायावादियोंके मतानुसार शुद्ध ब्रह्म-आश्रित अज्ञानके नाशका नाम ही मोक्ष है—यह असम्भव हो पड़ता है।

(ज) बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनोंका अधिष्ठान (बिम्बका अधिष्ठान आकाश और प्रतिबिम्बका अधिष्ठान जल) पृथक्-पृथक् होनेके कारण भेद प्रत्यक्ष ही उपलब्ध होता है। किसी भी अवस्थामें बिम्ब और

प्रतिबिम्ब एक नहीं हो सकते। प्रतिबिम्ब बिम्बकी विपरीत दिशामें होता है तथा बिम्बके अङ्ग विपरीत ओर दीखते हैं। यदि बिम्ब चेतन भी हो, तो प्रतिबिम्ब अवश्य ही अचेतन होता है। इसलिए जीव और ब्रह्म कभी भी एक नहीं हैं।

(झ) उक्त मतसे अविद्याकी आवरणशक्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य जीव और विक्षेपशक्तिमें प्रतिबिम्बित चैतन्य ही ईश्वर है अर्थात् जीव और ईश्वर पृथक्-पृथक् अपनी उपाधिमें स्थित हैं। यदि इसे स्वीकार करते हैं, तो ईश्वर सभीके हृदयमें अवस्थित हैं—(बृ॰ उ॰ ३/७) के साथ इसका विरोध होता है।

(ञ) ईश्वरको मायामें प्रतिबिम्बित चैतन्य स्वीकार करनेसे तथा मायाको ब्रह्मकी शक्ति नहीं माननेसे, निःशक्तिक ईश्वर स्वीकार करनेसे उपनिषद् आदि शास्त्रोंमें ईश्वरके सारे ऐश्वर्य ही असिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि उपनिषद् और वेदान्त आदि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही ईश्वरको षडैश्वर्योंका आधार बताया गया है—'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः। ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥' (वि॰ पु॰ ६/५/७४) फिर ये मन्त्र असिद्ध हो पड़ेंगे।

(ट) मायावादियोंका कहना है—"ज्ञानमात्र ब्रह्ममें अविद्याका सम्बन्ध मिथ्या कल्पनामात्र है।" यदि ऐसा है, तो उपर्युक्त मत कदापि सङ्गत नहीं हो सकता। क्योंकि मृगमरीचिकाके कल्पित जलसे कोई भी कार्य प्रयोजित नहीं होता। इसी प्रकार काल्पनिक उपाधिके सम्बन्धसे भी किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब सिद्ध होते नहीं देखा जाता है। इसलिए ब्रह्ममें काल्पनिक अविद्या-सम्बन्धके द्वारा जीव और ईश्वररूप प्रतिबिम्ब कदापि प्रतिपादित नहीं हो सकता।

(ठ) श्रीशङ्कराचार्यजीके मतानुसार ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म ही है—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः। इस सिद्धान्तको स्वीकार करनेपर मायावाद स्वतः चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। क्योंकि शङ्कराचार्यने अपने मतकी पुष्टिके लिए वेदोंसे चार प्रादेशिक वाक्योंको ग्रहण किया है और बड़ी चातुरीसे उन्हें वेदोंका महावाक्य बतानेकी चेष्टा की है। वेदोंमें कहीं भी इन चारों वाक्योंको महावाक्य नहीं कहा गया है। बल्कि 'ॐ-कार' को ही वेदोंमें सर्वत्र महावाक्य

कहा गया है। वे चार प्रादेशिक वाक्य ये हैं—अहं ब्रह्माऽस्मि, प्रज्ञानं ब्रह्म, सर्वं खल्विदं ब्रह्म, तत्त्वमसि श्वेतकेतो। यथार्थतः इन चारों वाक्योंका तात्पर्य ब्रह्म और जीवके परस्पर सेव्य और सेवकका सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध प्रेम है—इस तथ्यको प्रकाश करना है। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' में यह स्पष्टतः बताया गया है कि 'श्वेतकेतो! त्वं तस्य असि' अर्थात् तुम उनके हो। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' में 'इदं' शब्दसे इस जगत्को भी ब्रह्मकी सत्यसङ्कल्प शक्तिसे प्रकाशित ब्रह्म ही माना गया है। क्योंकि ब्रह्मसूत्र आदि ग्रन्थोंमें शक्ति और शक्तिमानको अभिन्न माना गया है। यदि इस जगत्का सब कुछ ब्रह्म ही है, फिर यह सारा जगत् स्वप्नकी भाँति मिथ्या कैसे हुआ? इस जगत्में प्रकट होनेवाले वेद, उपनिषद् आदि शास्त्र, शङ्कराचार्य एवं उनकी गुरुपरम्परा—ये सभी मिथ्या हो पड़ते हैं। मिथ्या जगत्के मिथ्या लोगोंके लिए शङ्कराचार्यको उपदेश देनेकी क्या आवश्यकता थी। इसलिए मायावादियोंके सारे सिद्धान्त अशास्त्रीय और स्वकपोल-कल्पित हैं।

(ङ) शङ्कर मतावलम्बियोंने जगत्को मिथ्या बताया है। किन्तु यदि उनसे यह प्रश्न किया जाय कि तुम्हारा 'जगत्-मिथ्यात्व' मिथ्या है अथवा सत्य? तुमलोग 'मिथ्यात्व' को सत्य भी नहीं कह सकते और मिथ्या भी नहीं कह सकते। यदि कहो कि 'मिथ्यात्व' सत्य है, तो तुम्हारा अद्वैतवाद टिक नहीं सकता। क्योंकि अद्वितीय सत्यस्वरूप ब्रह्मके निकट ही 'जगत्का मिथ्यात्व' नामक एक दूसरा सत्य उपस्थित हो जाता है और ऐसा होनेसे 'एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म'—इस वेदमन्त्रकी हानि होती है। और यदि तुम जगत्के 'मिथ्यात्व' को मिथ्या स्वीकार करते हो, तो जगत्की सत्यता अपने-आप प्रमाणित हो जाती है। अतएव मायावादियोंका यह सिद्धान्त कि जगत् मिथ्या है—अवैदिक और अयौक्तिक है।

(ख) स्वसम्प्रदायकी रक्षा

श्रीलगोपाल भट्ट गोस्वामी, श्रीकविकर्णपूर एवं गौड़ीय वेदान्ताचार्य श्रील बलदेव विद्याभूषण प्रमुख गौड़ीय वैष्णव आचार्यों द्वारा उल्लिखित गुरु-परम्पराके द्वारा श्रीचैतन्य महाप्रभुके अनुगतजन श्रीगौड़ीय वैष्णव

सम्प्रदायको ब्रह्म-मध्व-गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके रूपमें स्वीकार करते हैं। इसके द्वारा गौड़ीयजन अपनेको श्रीमध्व सम्प्रदायकी शाखाका मानते हैं। श्रील जीव गोस्वामी, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर, जगद्‌गुरु श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती आदि वैष्णव आचार्योंने भी इसी मतको ग्रहण किया है। किन्तु आजकल कुछ लोग, श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय है एवं श्रीचैतन्य महाप्रभु इस सम्प्रदायके आदि प्रवर्तक हैं—इस स्वकपोल कल्पित मतको स्थापित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं।

गुरु-विरोधी श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद एवं श्रीअनन्त वासुदेव तथा कुछ और व्यक्तियोंने विशेष रूपसे श्रीमन्महाप्रभुका सम्प्रदाय श्रीब्रह्म-मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत नहीं है, बल्कि अद्वैतवादी सम्प्रदायके अन्तर्गत है, इसे प्रमाणित करनेके लिए जी-जानसे चेष्टा की है। विशेषतः श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद महोदयने स्वलिखित 'आचार्य श्रीमध्व' ग्रन्थमें महाप्रभुके सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत स्वीकार कर भी बादमें अपने पूर्व प्रमाणोंको अप्रामाणिक मानकर अपने 'अचिन्त्यभेदाभेद' नामक ग्रन्थमें श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय प्रमाणित करनेकी असफल चेष्टा की है। विपक्षकी सारी युक्तियाँ उनके ग्रन्थमें दृष्टिगोचर होती हैं।

परमाराध्य पाषण्डगजैकसिंह आचार्य केसरी श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने उक्त ग्रन्थमें उल्लिखित सारी युक्तियोंका स्वरचित अचिन्त्यभेदाभेद नामक प्रबन्धमें शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा खण्डन किया है। इनका यह प्रबन्ध श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला) एवं श्रीभागवत पत्रिकाके कई अङ्कोंमें प्रकाशित हुआ है। हम संक्षेपमें कुछ प्रमाणों और युक्तियोंका उल्लेख कर रहे हैं।

(i) श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका मध्वानुगत्य

पहले हम श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोद द्वारा उठायी गयी आपत्तियों तथा विपक्षमें दी जानेवाली प्रधान-प्रधान युक्तियोंका उल्लेख कर रहे हैं। 'श्रीचैतन्यचरितामृत' और 'श्रीचैतन्यचन्द्रोदय' नाटकके अनुसार श्रीचैतन्यदेवने केवलाद्वैतवादी संन्यासी श्रीकेशवभारतीके निकट संन्यास

वेश ग्रहण किया था। उन्होंने स्वयं ही अपनेको मायावादी संन्यासी तो कहा ही है, इसके अतिरिक्त काशीके मायावादी संन्यासियोंके गुरु प्रकाशानन्द सरस्वतीने भी उन्हें मायावादी सम्प्रदायका संन्यासी बताया है—

'केशव भारतीर शिष्य ताहे तुमि धन्य॥'
'साम्प्रदायी संन्यासी तुमि रह एई ग्रामे॥'

सार्वभौम भट्टाचार्यने भी ऐसा ही माना है—

'भारती सम्प्रदाय एइ हयेन मध्यम।'
(चै॰ च॰ म॰ ६/७२)

उत्तर—विपक्षकी यह युक्ति सर्वथा निराधार है। संसारको असार एवं दुःखदायी उपलब्धिकर भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवा-प्राप्ति ही जीवोंके लिए सर्वोत्तम श्रेय है। इसलिए कोई सौभाग्यवान व्यक्ति शब्द-ब्रह्ममें पारङ्गत, भगवत्-अनुभूतिसम्पन्न और विषयासक्तिरहित व्यक्तिके निकट दीक्षा एवं शिक्षा ग्रहणकर परमार्थमें प्रवेश करता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु अपनी नर-लीलामें पितृश्राद्धके बहाने गयाधाममें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने प्रेमकल्पतरुके मूल श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्य परम रसिक एवं भावुक तथा प्रेमकल्पतरुके अङ्कुरस्वरूप श्रीईश्वरपुरीपादके चरणोंमें अपनेको सर्वथा अर्पित कर दिया—

प्रभु बले गया यात्रा सफल आमार।
यत क्षणे देखिलाङ् चरण तोमार॥
(चै॰ भा॰ आ॰ १५) correct sloka ref

संसार-समुद्र हैते उद्धारह मोरे।
एई आमि देह समर्पिलाङ् तोमारे॥

कृष्णपादपद्मेर अमृतरस पान।
आमारे कराओ तुमि एइ चाहि दान॥

आर दिने निभृते ईश्वर पुरी स्थाने।
मन्त्र दीक्षा चाहिलेन मधुर-वचने॥
(चै॰ भा॰ आ॰ १५) correct sloka r

तबे तान स्थाने शिक्षा-गुरु नारायण।
करिलेन दशाक्षर मन्त्रेर ग्रहण॥

correct sloka ref?

(चै॰ भा॰ आ॰ १५)

श्रीचैतन्यभागवतके इस प्रसङ्गके अनुसार श्रीनिमाई पण्डितने श्रीईश्वर पुरीके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेकी लीला की तथा उनसे संसारसे उद्धारकर श्रीकृष्णप्रेम प्राप्तिके लिए दीक्षामन्त्रके लिए प्रार्थना की। श्रीपुरीपादने भी बड़ी प्रीतिपूर्वक उन्हें दशाक्षर मन्त्रके द्वारा दीक्षा दी।

इसके कुछ समय उपरान्त श्रीनिमाई पण्डितने कटवामें अद्वैतवादी संन्यासी श्रीकेशव भारतीसे संन्यासवेश ग्रहण किया। संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात् प्रेमोन्मादमें भरकर वृन्दावनके लिए चल पड़े। राढ़ देशमें पहुँचकर प्रेमावेशमें श्रीमद्भागवत (११/२३/५८) के श्लोकका उच्चारण करते हुए कहने लगे—

एतां समस्थाय परात्मनिष्ठा-मध्यासितां पूर्वतमैर्महर्षिभिः।
अहं तरिष्यामि दुरन्तपारं तमो मुकुन्दाङ्घ्रिनिषेवयैव॥

अर्थात् मैं प्राचीन महर्षियों द्वारा उपासित इस परात्मनिष्ठारूप भिक्षाश्रमका आश्रयकर श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाके द्वारा इस दुरन्त अज्ञान-सागरको अनायास ही पार कर लूँगा।

प्रभु कहे—साधु एइ भिक्षुक-वचन।
मुकुन्द सेवनव्रत कैल निर्धारण॥

परात्मनिष्ठामात्र वेश-धारण।
मुकुन्दसेवाय हय संसार-तारण॥

सेई वेश कैल एबे वृन्दावन गिया।
कृष्णनिषेवन करि' निभृते वसिया॥

(चै॰ च॰ म॰ ३/७-९)

अर्थात् संन्यासवेश ग्रहणकर महाप्रभु कह रहे हैं कि त्रिदण्डि भिक्षुका यह वचन परम सत्य है, क्योंकि इस वेश ग्रहणके द्वारा श्रीकृष्णके चरणकमलोंका सेवाव्रत निर्धारित होता है। इसके द्वारा भौतिक विषयोंके प्रति निष्ठा परित्यागकर परात्मनिष्ठा (श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें ऐकान्तिक

निष्ठा) ही इस वेश ग्रहणका तात्पर्य है। मैंने इस वेशको ग्रहण तो किया, अब मैं वृन्दावनमें जाकर कृष्णके चरणकमलोंकी सेवा करूँगा।

अतः उक्त पद्यमें 'परात्म-निष्ठामात्र वेशधारण' यह विशेष विचारणीय है। इसके द्वारा भगवद्भक्ति-अनुशीलनके अनुकूल श्रीकेशव भारतीसे केवल वेश ग्रहण किया। उनके अद्वैतवादके किसी विचार अथवा मन्त्रको ग्रहण नहीं किया। बल्कि आजीवन केवलाद्वैतवाद या मायावादके सिद्धान्तोंका खण्डन किया। अतः श्रीईश्वरपुरीपादको ही श्रीचैतन्य महाप्रभुने यथार्थ गुरुके रूपमें ग्रहण किया है; क्योंकि इनकी शुद्धाभक्तिको आजीवन ग्रहण और उसका प्रचार-प्रसार किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीपाद और श्रीईश्वरपुरीपाद मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। इसलिए श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत गौड़ीयवैष्णव भी मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं। केवल यही नहीं श्रीचैतन्य महाप्रभुके समकालीन उनके लीला परिकर श्रीनित्यान्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीपुण्डरीक विद्यानिधि, ब्रह्मानन्दपुरी आदि सभी श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी धारामें होनेके कारण श्रीमध्व सम्प्रदायके ही अनुगत हैं।

श्रीमाधवेन्द्रपुरीके शिष्योंके प्रति श्रीमन्महाप्रभु सर्वदा गुरुवत् सम्मान करते थे और श्रीईश्वरपुरीके शिष्योंके प्रति सतीर्थ बुद्धि रखते थे। 'गुरु आज्ञा हय अविचारणीया'—इस सिद्धान्तके अनुसार ही उन्होंने गोविन्दको अपने सेवकके रूपमें ग्रहण किया था, जिससे प्रमाणित होता है कि ईश्वर पुरी ही उनके यथार्थ गुरु थे।

vhere is number ne?

(२) विपक्षियोंका यह कथन है कि अद्वैतवादी केशव भारतके निकट संन्यास लेनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभु केवलाद्वैतवादी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं।

युक्तिके लिए उनके इस विचारको स्वीकार करनेपर यह भी कहा जा सकता है कि श्रीमध्वाचार्यने भी केवलाद्वैतवादी अच्युतप्रेक्षसे संन्यास ग्रहण किया था, इसलिए वे भी केवलाद्वैतवादी संन्यासी हैं। अतएव श्रीमन्महाप्रभुजीके मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत होनेमें बाधा ही कहाँ रही, क्योंकि दोनों ही अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके ही स्वीकृत होते हैं। दूसरी बात यह कहना भी युक्तिसङ्गत होगा कि श्रीमध्वाचार्यने शङ्कर सम्प्रदायकी रीति-नीतिके अनुसार एकदण्ड ग्रहण किया था, इसलिए

उनके आदर्शका अनुसरण करते हुए श्रीचैतन्य महाप्रभुने भी शङ्कर सम्प्रदायके संन्यासी श्रीकेशव भारतीके निकट एकदण्ड संन्यास ग्रहण किया था। इस प्रकार यह स्पष्ट रूपसे प्रतीत होता है कि गौड़ीय वैष्णव श्रीमध्वाचार्यके अनुगत हैं।

(३) गौड़ीय वैष्णवाचार्य श्रीजीवगोस्वामीने तत्त्वसन्दर्भ और सर्वसंवादिनी आदि ग्रन्थोंमें कहीं भी मध्व सम्प्रदायके साथ गौड़ीय सम्प्रदायके किसी प्रकारके सम्बन्धका उल्लेख नहीं किया है। श्रीबलदेव विद्याभूषणके अपने प्रारम्भिक जीवनमें मध्व सम्प्रदायमें दीक्षित होने तथा बादमें श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें प्रवेश करनेके कारण उनका रुझान स्वाभाविक रूपसे मध्व सम्प्रदायके प्रति था। इसीलिए बलदेव विद्याभूषणने पूर्वाग्रहवशतः खींचातानीकर तत्त्वसन्दर्भकी टीकामें श्रीमध्व सम्प्रदायके नामका उल्लेख किया है तथा स्वरचित प्रमेयरत्नावली ग्रन्थमें लिखित गुरुपरम्परामें श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त बताया है।

उपरोक्त आरोप सर्वथा निराधार एवं स्वकपोल कल्पित हैं। वस्तुतः जीव गोस्वामीने तत्त्ववादके गुरु श्रीमध्वाचार्यके तत्त्ववादको लक्ष्यकर तथा उसे ही अवलम्बनकर तत्त्वसन्दर्भ, भगवत्सन्दर्भ आदिकी रचना की है। इतना ही नहीं, उन्होंने 'वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं' (श्रीमद्भा॰ १/२/२१) आदि तत्त्ववादके मूल प्रमाण श्लोकोंकी भी अपने उक्त ग्रन्थमें अवतारणा की है। वैष्णव सम्प्रदायके चारों आचार्योंमें केवल मध्वाचार्य ही तत्त्ववादीके नामसे प्रख्यात हैं। इसीलिए माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके वैष्णवगण तत्त्ववादी हैं, क्योंकि श्रीजीव गोस्वामीने स्वयं तत्त्ववादकी प्रतिष्ठा की है। उन्होंने तत्त्वसन्दर्भके मङ्गलाचरणके तृतीय श्लोकमें अपने गुरु और परमगुरु श्रीरूप एवं श्रीसनातन गोस्वामीको 'तत्त्वज्ञापकौ' अर्थात् तत्त्वज्ञापक आचार्य लिखा है। वैष्णवाचार्यकुलमुकुट श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने भी इस श्लोककी टीकामें उन्हीं की भाँति श्रीरूप और श्रीसनातन गोस्वामीको 'तत्त्वविदुत्तमौ' अर्थात् सर्वोत्तम तत्त्वविद् निर्देश किया है। इसके द्वारा यह भी सूचित होता है कि जिस प्रकार श्रीजीव गोस्वामीने श्रीमध्वाचार्यको सम्मान दिया है, उसी प्रकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने जीव गोस्वामीका अनुसरण कर ही मध्वाचार्यको सम्मानित किया है, तथा बलदेव

विद्याभूषणने जीव गोस्वामीकी अपेक्षा श्रीलरूप-सनातन गोस्वामीद्वयको अधिकतर गौरवान्वित किया है।

वस्तुतः श्रीबलदेव विद्याभूषण श्रीगौर-नित्यानन्द प्रभुकी एवं तदनन्तर श्रील जीवगोस्वामीपादकी आम्नाय-धारामें अवस्थित हैं। भागवत-परम्पराके अनुसार वे श्रीनित्यानन्द प्रभुसे नवीं पीढ़ीमें और पाञ्चरात्रिक-परम्पराके अनुसार आठवीं पीढ़ीमें स्वीकृत हैं। ऐतिहासकोंने उनकी पाञ्चरात्रिक-परम्पराको निम्नलिखित रूपसे स्वीकार किया है—श्रीनित्यानन्द, श्रीगौरीदास पण्डित, हृदयचैतन्य, श्यामानन्द प्रभु, रसिकानन्द प्रभु, नयनानन्द प्रभु और श्रीराधादामोदर। श्रीबलदेव प्रभु इन श्रीराधादामोदरके ही दीक्षित शिष्य हैं तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीके सर्वप्रधान शिक्षा-शिष्य हैं। माध्व गुरुपरम्पराकी किसी शाखामें श्रीबलदेव जैसा दिग्विजयी एवं प्रतिभाशाली विद्वान नहीं हुए—ऐसा इतिहासकारोंने उल्लेख किया है। उस समय श्रीबलदेव जैसा नैयायिक, वैदान्तिक, पुराण, इतिहास आदि शास्त्रोंका ज्ञाता भारतके किसी सम्प्रदायमें कहीं भी नहीं था। कुछ दिन उडूपी-स्थित श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रतिष्ठित सर्वप्रधान मठमें रहकर वेदान्तके श्रीमध्वभाष्यका अध्ययन करनेपर भी श्रीमाध्व सम्प्रदायकी अपेक्षा श्रीमाध्व-गौड़ीय सम्प्रदायका ही उनपर अधिक प्रभाव था। उनके जैसे महामहोपाध्याय जगद्वरेण्य विद्वान व्यक्तिके लिए महाप्रभावशाली माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके वैष्णवाचार्यके श्रीचरणोंका अनुसरण करना युक्तिसङ्गत और स्वाभाविक है। श्रीबलदेवने जिस तरह माध्वभाष्यका भलीभाँति अध्ययन किया था, उसी प्रकार उन्होंने शङ्कर, रामानुज, भास्कराचार्य, निम्बार्क, बल्लभ आदिके भाष्योंका भी पुंखानुपुंख रूपसे अध्ययन किया था। उन्होंने उक्त दर्शनसमूहका अध्ययन किया था, इसलिए वे उन-उन सम्प्रदायोंके अन्तर्भुक्त हैं, ऐसा कहना अयौक्तिक है। श्रीबलदेव प्रभुने तत्त्वसन्दर्भकी टीका, गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्नम्, प्रमेयरत्नावली आदि अनेक ग्रन्थोंमें गौड़ीय वैष्णवोंके पूर्व-पूर्व आचार्योंकी ऐतिहासिक घटनाओं एवं सिद्धान्तोंको उद्धृतकर विश्वके समस्त दार्शनिकोंको यह समझा दिया है कि श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदायके अन्तर्गत है और इस सम्बन्धमें पृथ्वीके प्राच्य और पाश्चात्य, प्राचीन एवं आधुनिक समस्त विद्वानोंने एक वाक्यसे श्रीबलदेव

विद्याभूषण प्रभुके सिद्धान्तों और विचारोंको नतमस्तक होकर स्वीकार किया है।

जयपुरकी गलतागद्दीमें श्रीबलदेव विद्याभूषणने ही गौड़ीय वैष्णवोंके साम्प्रदायिक सम्मानकी रक्षा की थी। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने ही उन्हें जयपुर भेजा था, इसमें दो मत नहीं है। उन्होंने वहाँ प्रतिवादी श्री सम्प्रदायके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें पराजित किया था। क्या इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने ही स्वयं अपने शिक्षा-शिष्य बलदेव विद्याभूषणको गौड़ीय वैष्णवोंका मध्वानुगत्य प्रमाणित करनेकी प्रेरणा दी थी। श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने अपने दीक्षित-शिष्य श्रीकृष्णदेव सार्वभौमको श्रीबलदेवके साथ उनकी सहायताके लिए भेजा था। यदि श्रीचक्रवर्ती ठाकुर उस समय अतिशय वृद्ध और दुर्बल न हुए होते, तो वे स्वयं इस साम्प्रदायिक विवादकी मीमांसाके लिए अवश्य ही जयपुर पधारते तथा उनका भी वही सिद्धान्त होता जो श्रीबलदेव विद्याभूषणने प्रतिष्ठित किया। श्रीबलदेव विद्याभूषण पहले माध्व सम्प्रदायके आचार्य या शिष्य थे, इसका कोई ठोस प्रामाणिक आधार नहीं है। केवल जनश्रुति अथवा काल्पनिक संवादोंके अतिरिक्त किसीने कोई ठोस प्रमाण नहीं दिया है।

विपक्षका यह आक्षेप कि श्रील जीवगोस्वामीने अपने ग्रन्थोंमें कहीं भी गौड़ीय वैष्णवोंके माध्व सम्प्रदायके अनुगत होनेका कोई भी उल्लेख नहीं किया है, अत्यन्त हास्यास्पद एवं अज्ञानतामूलक है। श्रील जीव गोस्वामीने तत्त्वसन्दर्भमें स्थान-स्थानपर अपने मध्वानुगत्यका उल्लेख किया है। यहाँ तक कि उन्होंने श्रीमाध्व सम्प्रदायके विजयध्वज, श्रीब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदि आचार्योंका आनुगत्य स्वीकारकर उनके रचित ग्रन्थोंसे अनेक प्रमाण संग्रहकर षट्सन्दर्भकी रचना की है। यद्यपि उन्होंने श्रीरामानुजाचार्य और श्रीधरस्वामीपादके वचनोंको भी अनेक स्थलोंमें उद्धृत किया है, तथापि इन आचार्योंको श्रीगौड़ीय सम्प्रदायका पूर्वाचार्य नहीं माना है। श्रीजीव गोस्वामीने कपिल, पातञ्जल आदि दार्शनिक ऋषियोंके वचनोंको भी भक्तिके अनुकूल होनेपर ग्रहण किया है। परन्तु इसीलिए वे उन सम्प्रदायोंके अन्तर्गत नहीं माने जा सकते। जहाँ शिष्य-प्रशिष्य—सबका मत लेकर सिद्धान्त स्थापित किया जाता

है, केवल उसी स्थलपर सिद्धान्तस्थापकको उस सम्प्रदायके अन्तर्गत स्वीकार किया जाता है, अन्यत्र नहीं। प्रसङ्गवश श्रील जीव गोस्वामी द्वारा रचित कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

"अत्र च स्व-दर्शितार्थविशेष-प्रामाण्यायैव। न तु श्रीमद्भागवत-वाक्यप्रामाण्याय प्रमाणानि श्रुति-पुराणादि वचनानि यथादृष्टमेवोदाहरणीयानि। क्वचित् स्वयमदृष्टाकराणि च 'तत्त्ववादगुरुणामाधुनिकानां श्रीमच्छङ्कराचार्य-शिष्यतां लब्ध्वाऽपि श्रीभगवत्पक्षपातेन, ततो विच्छिद्य, प्रचुर-प्रचारित वैष्णवमत-विशेषाणां दक्षिणादि-देशविख्यात-'शिष्योपशिष्यभूत'-'विजयध्वज'-'जयतीर्थ'-'ब्रह्मण्यतीर्थ'-व्यासतीर्थादि-वेद-वेदार्थ विद्वद्वराणां 'श्रीमध्वाचार्यचरणानां' भागवत तात्पर्य,-भारततात्पर्य,-ब्रह्मसूत्र-भाष्यादिभ्यः संगृहीतानि। तैश्चैवमुक्तं भारत-तात्पर्ये —(२/१/८)

> शास्त्रान्तराणि संजानन् वेदान्तस्य प्रसादतः।
> देशे देशे तथा ग्रन्थान् दृष्ट्वा चैव पृथग् विधान्॥
>
> यथा स भगवान् व्यासः साक्षान्नारायणः प्रभुः।
> जगाद भारताद्येषु तथा वक्ष्ये तदीक्षया॥ इति।
>
> (तत्त्वसन्दर्भ ९७-९८)

तत्र तदुद्धता श्रुतिश्चतुर्वेदशिखाद्या, पुराणञ्च गारुड़ादीनां सम्प्रति सर्वत्रा-प्रचरद्रूपमंशादिकं; संहिता च महासंहितादिका; तन्त्रञ्च तन्त्रभागवतं ब्रह्मतर्कादिकमिति ज्ञेयम्॥

अर्थात्, मैंने (जीवगोस्वामी) षट्सन्दर्भ ग्रन्थमें अनेक प्रमाण-वचनोंको उद्धृत किया है। इसका कारण अपने प्रदर्शित अर्थ या मतकी प्रामाणिकताका स्थापन करना है—श्रीमद्भागवतके वचनोंकी या सिद्धान्तोंकी प्रामाणिकता सिद्ध करनेके लिए नहीं। क्योंकि श्रीमद्भागवत वेदकी तरह स्वतः-प्रमाण हैं। वे किसी दूसरे प्रमाणोंकी अपेक्षा नहीं रखते। श्रुति-स्मृति और पुराणदि मूल ग्रन्थोंमें मैंने स्वयं जिन-जिन प्रमाण-वचनोंको जिस रूपमें देखा है, ठीक उसी रूपमें उन्हें इस ग्रन्थमें उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त मैं तत्त्वसन्दर्भका लेखक (तत्त्ववादी) कतिपय मूल ग्रन्थोंको स्वयं न देख करके भी (अपने पूर्व-आचार्य) तत्त्ववादके गुरुवर्गमेंसे (श्रीमाधवेन्द्रपुरी जैसे) उन आचार्योंके वाक्योंसे जो आधुनिक

श्रीशङ्कराचार्यका शिष्यत्व ग्रहण करके (शङ्कर सम्प्रदायके आचार्योंके निकट संन्यास ग्रहण करके) भी अपने भगवत्-पक्षपातित्वके कारण शङ्कर मतवादसे सम्पूर्ण पृथक् रहे हैं, और बहुल प्रचारित विविध वैशिष्ट्यपूर्ण वैष्णव मतोंके आचार्य अर्थात् दाक्षिणात्यके प्रसिद्ध आनन्दतीर्थके शिष्य-प्रशिष्य रूप विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदि आचार्योंके सिद्धान्तोंसे एवं वेद और वेदार्थके ज्ञाताओंमें सर्वश्रेष्ठ श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा रचित 'भागवत-तात्पर्य', 'भारत-तात्पर्य' और 'ब्रह्मसूत्र-भाष्य' आदि ग्रन्थोंसे प्रमाण संग्रह किये हैं।

श्रीमन्मध्वाचार्यने स्वरचित 'भारत-तात्पर्य' में और भी लिखा है—

'उपनिषद् आदि वेदान्तकी कृपासे दूसरे-दूसरे शास्त्रोंका गूढ़ रहस्य ज्ञात होकर देश-देशमें विविध ग्रन्थोंका विवेचनकर तथा साक्षात् नारायण-स्वरूप श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास द्वारा रचित महाभारतादिमें वर्णित सिद्धान्तोंके प्रति आदर रखकर ही मैं सिद्धान्त स्थापन करूँगा।'

मैं उक्त श्रीमन्मध्वाचार्य आदिके वचनोंका अनुसरण कर चतुर्वेद-शिखादि श्रुति, पुराण एवं गरुड़ आदिके वचनोंको, आजकल जिनके अंशसमूह सर्वत्र प्रचारित नहीं हैं, संहिता और महासंहिता आदि तन्त्र, तन्त्रभागवत, ब्रह्मतर्कादि अनेक ग्रन्थोंका मूल स्वयं न देख करके उनके द्वारा उद्धृत वचनोंसे ग्रहण करके ही 'तत्त्वसन्दर्भ' की रचना कर रहा हूँ।

श्रीजीव गोस्वामीके उक्त प्रमाणोंसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उन्होंने श्रीमन्मध्वाचार्यको ही श्रीगौड़ीय सम्प्रदायका एकमात्र पूर्वाचार्य स्वीकार किया है। श्रीरामानुजाचार्य अथवा श्रीधरस्वामीपादके सम्बन्धमें उनका कहीं भी ऐसा स्पष्ट कथन नहीं है। विशेषतः उन्होंने किसी भी दूसरे सम्प्रदायके शिष्य-प्रशिष्य सबका सिद्धान्त ग्रहण नहीं किया है। श्रीरामानुजाचार्यके अनेक शिष्य-प्रशिष्य थे, परन्तु जीव गोस्वामीने उनका कहीं भी नामोल्लेख नहीं किया है। श्रीधरस्वामीके भी अनेक शिष्य थे, परन्तु जीव गोस्वामीने उनका भी कहीं पर नामोल्लेख नहीं किया है। निम्बार्काचार्यके नामोल्लेखकी तो बात ही अलग रहे, उनके अस्तित्वकी गन्ध भी इनके ग्रन्थोंमें नहीं पायी जाती।

(४) श्रील जीवगोस्वामीचरणने स्वरचित सर्वसंवादिनी ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें श्रीमन्महाप्रभुकी वन्दनाके श्लोकमें उनकी महिमाका वर्णन करते हुए उन्हें स्वसम्प्रदाय—सहस्राधिदैव अर्थात् अपने द्वारा प्रवर्तित सहस्र-सहस्र सम्प्रदायोंका नित्य अधिदेवता बताया है। अतः वे किसी अन्य सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त कैसे हो सकते हैं? वे स्वतन्त्र गौड़ीय सम्प्रदायके स्वयं प्रवर्तक हैं।

उक्त आपत्ति अत्यन्त हास्यास्पद है। श्रील जीवगोस्वामी द्वारा सर्वसंवादिनीके मङ्गलाचरणका पूर्ण श्लोक निम्नलिखित है—

दुर्लभ-प्रेम-पीयूषगङ्गा-प्रवाह-सहस्रं
स्वसम्प्रदाय-सहस्राधिदैवम् श्रीकृष्णचैतन्यदेव नामानं श्रीभगवन्तं।

उक्त श्लोकमें श्रीसुन्दरानन्द विद्याविनोदने अथवा विपक्षियोंने 'स्वसम्प्रदाय-सहस्राधिदैवम्' का अर्थ श्रीमन्महाप्रभु द्वारा चलाये गये 'सहस्रों सम्प्रदायोंका अधिदेवता' किया है। यहाँ ध्यान देनेकी बात है कि श्रीमन्महाप्रभुने हजारों सम्प्रदायोंका प्रवर्तन नहीं किया है। उन्होंने केवल एक ही सम्प्रदाय चलाया है, जिसे श्रीमाध्व-गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय कहते हैं। इसलिए उनका अर्थ सम्पूर्णतः भ्रामक है। श्रीरसिकमोहन विद्याभूषण महोदयने स्वसम्प्रदाय-सहस्राधिदैवका अर्थ 'स्वकीय सम्प्रदायके परम अधिदेवता' से किया है। यह अर्थ सुसङ्गत है। इसे सभी गौड़ीय वैष्णवोंने स्वीकार किया है। यदि कहो कि श्रीमन्महाप्रभु स्वयं-भगवान् हैं—साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र हैं; उन स्वयं-भगवान् गौरचन्द्र द्वारा किसी दूसरे व्यक्तिको अपना गुरु मानकर उनसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता क्या है? इसका उत्तर है—हाँ। आवश्यकता है, भगवान्‌की नरलीलामें इसकी आवश्यकता है। श्रीरामचन्द्रने वशिष्ठ मुनिसे, श्रीकृष्णने सान्दीपनि मुनिसे, श्रीमन्महाप्रभुने ईश्वरपुरीसे शिक्षा-दीक्षा ग्रहण करनेकी लीला दिखलायी है। इन कार्योंसे भगवत्ताको तनिक भी आँच नहीं लगती। स्वयं-भगवान् जगत्‌को शिक्षा देनेके लिए ही ऐसी-ऐसी लीलाएँ करते हैं। अतः श्रीमन्महाप्रभुके किसी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त होनेसे उनकी भगवत्ता या उनके तत्त्वकी कुछ भी हानि होनेका प्रश्न ही नहीं उठता।

सम्प्रदायका प्रवर्तन भगवान्‌का निजस्व कार्य नहीं है। भगवान्‌के भक्तगण ही सम्प्रदायका प्रवर्तन करते हैं। साम्प्रदायिक ऐतिह्यको देखनेसे

सर्वत्र ही ऐसा दृष्टिगोचर होता है कि विष्णुशक्ति या विष्णुदासोंके द्वारा ही सम्प्रदाय प्रवर्तनका कार्य साधित हुआ है। यद्यपि सनातनधर्मके मूल सनातन पुरुष श्रीभगवान् हैं—धर्मं तु साक्षात् भगवत्प्रणीतम् (श्रीमद्भा॰ ६/३/१९) 'धर्मो जगन्नाथः साक्षात् नारायणाः' आदि शास्त्र-वचनों द्वारा सनातन धर्म भगवान् द्वारा प्रणीत बताया गया है, तथापि 'अकर्ता चैव कर्ता च कार्यं कारणमेव च' (महाभारत शान्ति पर्व ३४८/७) के द्वारा भगवान्‌का सम्प्रदाय-प्रवर्तन आदि व्यापारमें कोई साक्षात् कर्त्तृत्व नहीं है। अपने शक्त्याविष्ट पुरुषोंके द्वारा ही वे इस कार्यका सम्पादन किया करते हैं। यदि ऐसा नहीं होता, तो ब्रह्म, रुद्र, सनक और श्री सम्प्रदाय नहीं होकर वसुदेव, सङ्कर्षण एवं नारायण सम्प्रदाय ही होते।

(५) श्रीमन्महाप्रभु दक्षिण भारत भ्रमणके समय उडूपी गये थे। वहाँ तत्त्ववादी किसी आचार्यसे उनका वार्त्तालाप हुआ था। उस समय उन्होंने तत्त्ववादियोंके विचारोंका खण्डन किया था; अतः वे कभी भी उस सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं हो सकते।

श्रीमन्महाप्रभुजीने कालक्रमसे मध्व सम्प्रदायमें प्रविष्ट विकृत तत्त्ववादियोंके विचारोंका ही खण्डन किया था। उन्होंने साक्षात् रूपमें मध्वाचार्यके शुद्धभक्तिके विचारोंका खण्डन नहीं किया था। श्रीचैतन्यचरितामृत (म॰ ९/२७६-२७७) के प्रसङ्गमें देखनेसे ही पाठकवर्ग यह समझ सकते हैं।

प्रभु कहे—कर्मी, ज्ञानी, दुइ भक्तिहीन।
तोमार सम्प्रदाये देखि सेइ दुइ चिह्न॥

सबे एक गुण देखि तोमार सम्प्रदाये।
सत्यविग्रह ईश्वरे करह निश्चये॥

अर्थात् कर्मी और ज्ञानी भक्तिहीन होते हैं और इन दोनोंका आदर तुम्हारे सम्प्रदायमें देखा जा रहा है। हाँ, तुम्हारे सम्प्रदायमें एक बहुत बड़ा गुण है, वह यह कि भगवान्‌का रूप अथवा श्रीविग्रह स्वीकृत हुआ है। यही नहीं; बल्कि वे श्रीविग्रह स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण हैं। वे तुम्हारे सम्प्रदायमें नृत्य-गोपालके रूपमें आराधित होते हैं।

इससे यह प्रमाणित होता है कि मध्व सम्प्रदायमें कालक्रमसे बादमें जो विकृतियाँ आ गयी थीं, उनका ही श्रीमन्महाप्रभुने खण्डन किया

था। मध्वाचार्यके शुद्धभक्तिके विचारोंको अथवा श्रीमध्वाचार्यके भाष्योंमें प्रदर्शित मूल सिद्धान्तोंका खण्डन नहीं किया, बल्कि यह पहले ही दिखाया जा चुका है कि श्रीमध्व और उनके शिष्य-प्रशिष्योंके सिद्धान्तोंको लेकर ही तत्त्वसन्दर्भ, सर्वसंवादिनी आदि ग्रन्थोंका प्रणयन किया गया है। हम प्रसङ्गके अनुसार आगे इसका वर्णन करेंगे कि साधारण कुछ मतभेद ही सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं होता। बल्कि मूल उपास्य-तत्त्वके भेदसे ही सम्प्रदायका भेद होता है।

(६) कुछ लोगोंका यह भी आक्षेप है कि मध्वमतानुसार ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए ब्राह्मणोंको ही केवल मोक्षकी प्राप्ति होती है। भक्तोंमें देवगण ही प्रधान हैं। केवल ब्रह्माका ही विष्णुके साथ सायुज्य होता है। लक्ष्मीजी जीवकोटिमें हैं। गोपियाँ स्वर्गकी अप्सराओंकी कोटिमें हैं। किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभु और उनके अनुगत वैष्णव आचार्योंके विचारसे मध्वमतके ये विचार शुद्धभक्तिसिद्धान्तोंके विपरीत हैं। ऐसी दशामें श्रीचैतन्यदेव मध्व सम्प्रदायको क्यों ग्रहण करेंगे अथवा उनके अनुगत गौड़ीय सम्प्रदायके आचार्यगण मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त कैसे हो सकते हैं?

श्रीबलदेव विद्याभूषणने अकाट्य युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर विपक्षकी इन सारी युक्तियोंको जयपुरकी गलतागद्दीमें खण्ड-विखण्ड कर दिया था। उन्होंने तत्त्वसन्दर्भकी टीका, गोविन्दभाष्य, सिद्धान्तरत्नम्, प्रमेयरत्नावली आदि ग्रन्थोंमें आचार्य मध्व और उनके शिष्य-प्रशिष्य विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ आदि आचार्योंके सुसिद्धान्तोंको उद्धृतकर इन सारे आक्षेपोंका खण्डन किया है और श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त प्रमाणित किया है। उन्होंने उक्त सभामें यह प्रमाणित किया कि मध्वमतके अनुसार लक्ष्मीजी विष्णुकी प्रिय महीषि हैं, वे ज्ञानानन्दात्मक नित्य चिन्मय देहविशिष्ट हैं। विष्णुकी भाँति ये भी गर्भवासके दुःख आदि दोषोंसे सर्वथा रहित हैं, सर्वत्र व्याप्ता हैं, श्रीविष्णुके अनन्त रूपोंके साथ श्रीलक्ष्मीजी भी अनन्त रूपोंमें विहार करती हैं। विष्णुके अवतारके समय लक्ष्मीजी भी अवतीर्ण होकर उस अवतारकी प्रियसङ्गिनीके रूपमें विराजमान रहती हैं तथा विष्णुकी तरह लक्ष्मीजीके भी विभिन्न नाम और रूप हैं।

(श्रीमध्वकृत बृहदारण्यकभाष्य ३/५) पुनः लक्ष्मीदेवी विष्णुकी अधीना सर्वविद्याभिमानिनी और चतुर्मुख ब्रह्मासे भी अनेक गुणा श्रेष्ठ हैं। वे विविध प्रकारके अलङ्कारोंके रूपमें भगवान्‌के अङ्गोंमें विराजमान रहती हैं। विष्णुकी शय्या, आसन, सिंहासन, आभूषण आदि समस्त भोग्य वस्तुएँ लक्ष्म्यात्मक ही हैं। (ब्रह्मसूत्र ४/२/१ सूत्रके अणुव्याख्यानमें धृत श्रीमद्भागवत २/९/१३ श्लोक)

श्रीमध्वने कहीं भी श्रीलक्ष्मीजीको जीवकोटिमें नहीं बताया है। इसी प्रकार केवल ब्राह्मणोंको ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, भक्तोंमें देवगण ही प्रधान हैं, केवल ब्रह्माका ही विष्णुके साथ सायुज्य होता है—ये भी मध्व सम्प्रदायके विचार नहीं हैं।

श्रीचैतन्य महाप्रभुने मध्व सम्प्रदायको क्यों ग्रहण किया, इस विषयमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने 'श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा' नामक ग्रन्थमें उल्लेख किया है—"श्रीजीवगोस्वामीने आप्त वाक्यकी प्रामाणिकता निश्चितकर पुराणोंकी भी प्रामाणिकता निश्चित की है। अन्तमें श्रीमद्भागवतको सर्वप्रमाण शिरोमणिके रूपमें प्रमाणित किया है। उन्होंने जिस लक्षणके द्वारा श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ प्रमाण माना है, उसी लक्षणके द्वारा उन्होंने ब्रह्मा, नारद, व्यास, शुकदेव तदनन्तर क्रमानुसार विजयध्वज, ब्रह्मण्यतीर्थ, व्यासतीर्थ, तथा आदिके तत्त्वगुरु श्रीमन्मध्वाचार्य द्वारा प्रमाणित शास्त्रोंका भी प्रामाणिक ग्रन्थोंकी कोटिमें उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्रह्म-माध्व सम्प्रदाय ही श्रीमन्महाप्रभुके आश्रित गौड़ीय वैष्णवोंकी गुरुप्रणाली है। कविकर्णपूरने इसी मतको दृढ़ करते हुए स्वरचित गौरगणोद्देशदीपिका ग्रन्थमें गुरुपरम्पराका वर्णन किया है। वेदान्तसूत्रके भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी इसी प्रणालीको स्वीकार किया है। जो लोग इस प्रणालीको अस्वीकार करते हैं, वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु और उनके चरणानुगत गौड़ीय वैष्णवोंके प्रधान शत्रु हैं, इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है।

"निम्बार्क मतमें जो भेदाभेद अर्थात् द्वैताद्वैत मत है, वह अपूर्ण है। श्रीचैतन्य महाप्रभुके विचारोंको ग्रहणकर वैष्णव-जगत्‌ने भेदाभेद मतकी पूर्णताकी प्राप्ति की है। श्रीमध्वाचार्यके मतमें सच्चिदानन्द विग्रह

स्वीकृत है, वही सच्चिदानन्द विग्रह अचिन्त्यभेदाभेदकी मूल आधारशिला होनेके कारण श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीमध्व सम्प्रदायको ही अङ्गीकार किया है। पूर्व वैष्णवाचार्योंके द्वारा प्रचारित दार्शनिक मतोंमें कुछ-कुछ वैज्ञानिक अपूर्णता रहनेके कारण उनमें परस्पर वैज्ञानिक भेद है। इसी वैज्ञानिक भेदसे सम्प्रदाय-भेद है। साक्षात् परतत्त्व श्रीचैतन्य महाप्रभुजीने अपनी सर्वज्ञताके बलसे उन सभी मतोंकी असम्पूर्णताको पूर्णकर मध्वके सच्चिदानन्द नित्य विग्रहको, रामानुजाचार्यके शक्ति-सिद्धान्तको, विष्णु स्वामीके शुद्धाद्वैत सिद्धान्त तथा तदीय सर्वस्वत्वको और निम्बार्कके नित्य द्वैताद्वैत सिद्धान्तको निर्दोष और पूर्णकर अपना अचिन्त्यभेदाभेदात्मक अत्यन्त विशुद्ध वैज्ञानिक मत जगत्को कृपाकर प्रदान किया है।" (चै॰ म॰ की शिक्षा पृ॰ ११०)

check this reference.

श्रीमन्महाप्रभु द्वारा श्रीमध्वमत स्वीकार करनेका दूसरा कारण भी है। श्रीमध्वमतमें मायावाद या केवलाद्वैतवाद (जो भक्तितत्त्वका सर्वथा विरोधी है) का स्पष्ट रूपसे खण्डन किया गया है। तीसरी बात जिस समय श्रीचैतन्य महाप्रभुने उडूपीमें श्रीमध्वाचार्य द्वारा प्रकाशित एवं पूजित नन्दनन्दन नर्तक-गोपालका दर्शन किया, तो उसे देखकर भावविह्वल हो उठे। उन्होंने दक्षिण भारतमें अपने भ्रमणके समय ऐसा कहीं भी नहीं देखा। इसीलिए वे भावविह्वल होकर नृत्य करने लगे। यह भी उनके मध्वानुगत होनेका प्रबल प्रमाण है। जब श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीगुणराज खाँ द्वारा लिखित 'श्रीकृष्णविजय' ग्रन्थकी एक पंक्ति—'नन्दनन्दन कृष्ण—मोर प्राणनाथ'—इस उक्तिपर उनके वंशपरम्पराके हाथों अपनेको सदाके लिए बेच दिया, फिर नन्दनन्दन नर्तक-गोपाल ही जिनके सर्वाराध्य हों, उनके शिष्य-प्रशिष्यकी परम्परामें क्यों नहीं अपनेको बेच देंगे। गौड़ीय सम्प्रदायके मध्वानुगत्यका यह भी विशेष प्रमाण है।

ब्रह्म, जीव और जगत्के सम्बन्धमें श्रीमध्वके साथ गौड़ीय वैष्णवोंका कुछ-कुछ मतभेद होनेपर भी वह साधारण मतभेद सम्प्रदाय-भेदका कारण नहीं है। उपास्य-तत्त्वके भेद अथवा परतत्त्वकी उत्कर्षताके तारतम्यके आधारपर ही वैष्णवोंमें सम्प्रदाय-भेदकी सृष्टि हुई है। साध्य, साधन और साधक तत्त्वोंके विषयमें भी कुछ-कुछ तारतम्य विद्यमान रहनेपर उसे कहीं-कहीं सम्प्रदाय-तारतम्यका कारण माना जाता है।

वस्तुतः परतत्त्व या उपास्य-तत्त्वकी अनुभूतिका तारतम्य ही सम्प्रदाय-तारतम्यका मूल कारण है। यही कारण था कि तत्त्ववादियोंके साथ विचारमें कुछ मतभेद रहनेपर भी श्रीमन्महाप्रभुने उसे भूलकर परतत्त्व नर्तक-गोपालकी उपासनाको लक्ष्यकर ही श्रीमध्वाचार्यको सम्प्रदायका मूल आचार्य स्वीकार किया।

(७) सम्प्रदाय-तत्त्वसे अनभिज्ञ कोई-कोई कहते हैं कि मध्व सम्प्रदायके संन्यासी तीर्थ कहलाते हैं, इसलिए पुरी उपाधिधारी श्रीमाधवेन्द्रपुरी या ईश्वरपुरी मध्व सम्प्रदायके संन्यासी नहीं हो सकते। श्रीमाधवेन्द्रपुरी मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं होनेपर श्रीमन्महाप्रभुने मध्व सम्प्रदाय स्वीकार किया है, यह कहना भी आधारहीन है।

वस्तुतः श्रीमाधवेन्द्रपुरीकी 'पुरी' उपाधि उनके संन्यास ग्रहणका नाम है। श्रील माधवेन्द्रपुरीपाद श्रीमध्व सम्प्रदायके लक्ष्मीपतितीर्थके दीक्षित शिष्य थे। बादमें 'पुरी' नामधारी किसी संन्यासीसे उन्होंने संन्यास ग्रहण किया था, जैसे श्रीमन्महाप्रभुने श्रीईश्वरपुरीके निकट दीक्षा ग्रहणकर बादमें श्रीकेशवभारतीके निकट संन्यास ग्रहणकी लीला प्रकाशित की थी। दीक्षा गुरु और संन्यास गुरु एक ही व्यक्ति होंगे ऐसा कोई नियम नहीं है। कहीं-कहीं हो भी सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं। श्रीमध्वाचार्यके जीवनमें भी ऐसा ही देखा जाता है कि पहले वे वैष्णव सम्प्रदायमें विष्णुमन्त्रसे दीक्षित थे। तदनन्तर अद्वैतवादी अच्युतप्रेक्षके निकट संन्यासवेश ग्रहण किया। कुछ दिनोंके पश्चात् अपने संन्यासगुरु अच्युतप्रेक्षको भी अपने प्रभावसे वैष्णवमतमें प्रवेश कराया। उन्होंने संन्यासके पश्चात् भी अद्वैतवादियोंके किसी भी विचारको ग्रहण नहीं किया, बल्कि अद्वैतवादके सभी विचारोंका प्रबल रूपसे खण्डन किया तथा तत्त्ववादकी प्रतिष्ठाकर सर्वत्र ही उसका प्रचार-प्रसार किया। श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनमें भी ऐसा ही देखा जाता है। इसलिए मध्व सम्प्रदायके संन्यासियोंका नाम 'तीर्थ' होनेपर भी उनके सम्प्रदायके गृहस्थ या ब्रह्मचारीकी उपाधि तीर्थ नहीं होती। इसलिए अद्वैत सम्प्रदायके किसी संन्यासीसे वेश ग्रहण करनेके कारण उनकी 'पुरी' उपाधि होगी, यह अयुक्तिसङ्गत नहीं है।

(८) किसी-किसीका कहना है कि श्रीमध्व सम्प्रदाय एवं श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके साध्य और साधन—दोनोंमें भेद है। इसलिए श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं माना जा सकता है।

यह कहना सर्वथा अज्ञानमूलक एवं असत्य है। मध्वमतमें सर्वत्र ही भगवत्-भक्तिको साधन माना गया है। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी भाँति कनिष्ठाधिकारी साधकोंके लिए सर्वप्रथम कृष्णकर्मार्पणकी बात स्वीकृत रहनेपर भी 'भगवत्-परमप्रसाद साधना' अर्थात् शुद्धाभक्तिको ही प्रधान साधनके रूपमें स्थापित किया गया है। श्रीमध्वाचार्यने अपने सूत्र-भाष्य (३/३/५३) में 'भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसि इति माठरश्रुतः' को ग्रहणकर भक्तिकी प्रतिष्ठा की है। सूत्र (३/३/४५) में भी 'वराहे च—गुरुप्रसादो बलवान्न तस्माद्बलवत्तरम्। तथापि श्रवणादिश्च कर्त्तव्यो मोक्षसिद्धये॥' श्रीविष्णुके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्ति रूप मोक्षकी सिद्धिके लिए श्रीगुरुदेवकी कृपा बलवानसे भी बलवत्तर है, तथापि श्रवण-कीर्त्तन आदि भक्तिके अङ्गोंका साधन करना भी अत्यन्त आवश्यक है। महाभारत-तात्पर्य-निर्णय ग्रन्थमें सर्वत्र ही भक्तिकी प्रतिष्ठा देखी जाती है—'स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया मुक्तिर्न चान्यथा' (१/१०५) और 'भक्त्यैव तुष्यति हरिः प्रवणत्वमेव' (२/५९) स्थानाभावके कारण अधिक प्रमाण नहीं दिये गये।

इसी प्रकारसे मध्व सम्प्रदायमें भगवत्प्रीति ही साध्य है। यद्यपि श्रीमन्मध्वाचार्यने कहीं-कहीं मोक्षको ही साध्य-स्वीकार किया है, किन्तु उनका वह मोक्ष 'विष्ण्वाङ्घ्रि लाभः मुक्ति' अर्थात् विष्णुके चरणकमलोंकी सेवाकी प्राप्ति ही मोक्ष है। श्रीमध्व सम्प्रदायमें श्रीमद्भागवतोक्त मुक्तिकी परिभाषाको ग्रहण किया गया है—'मुक्तिः हि तु अन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिं' अर्थात् मायाकृत जीवकी स्थूल और लिङ्ग उपाधियोंमें अहं और ममकी बुद्धिसे मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूपसे भगवान्‌की प्रेममयी सेवामें प्रतिष्ठित होनेका नाम मुक्ति है। अतः इनका मोक्ष भी शङ्कराचार्य द्वारा कथित ब्रह्मसायुज्य न होकर भगवत्-प्रीतिमूलक सेवा है। उन्होंने कहीं भी ब्रह्म और जीवकी एकात्मतारूप सायुज्यको ग्रहण नहीं किया है। उन्होंने केवलाद्वैतवाद-सम्मत सायुज्यमुक्तिका सब प्रकारसे खण्डन

किया है। मध्वमतमें बद्ध और मुक्त दोनों ही अवस्थाओंमें ब्रह्म और जीवमें भेद स्वीकृत होनेके कारण इन्हें भेदवादी कहा गया है—यह सर्वविदित तथ्य है—

अभेदः सर्वरूपेषु जीवभेदः सदैवहि

श्रीमन्मध्वमतमें भेदका प्राधान्य परिलक्षित होनेपर भी अभेदसूचक श्रुतियोंकी कहीं भी अवज्ञा परिलक्षित नहीं होती, क्योंकि अभेदसूचक श्रुतिमन्त्रोंकी वहाँ सङ्गति दिखलायी गयी है अर्थात् प्रकारान्तर रूपसे अचिन्त्यभेदाभेद स्वीकृतिका इङ्गित पाया जाता है। श्रील जीवगोस्वामीने अपने सन्दर्भ-ग्रन्थमें इसे इङ्गित किया है।

वेदान्तसूत्रके अनुसार शक्ति और शक्तिमान—दोनोंको अभिन्न बताया गया है—'शक्ति शक्तिमतोरभेदः।' श्रीमध्वधृत ब्रह्मतर्क वाक्यमें अचिन्त्यभेदाभेदका सङ्केत पाया जाता है—

विशेषस्य विशिष्टस्याप्यभेदस्तद्वदेव तु।
सर्वं चाचिन्त्यशक्तित्वाद् युज्यते परमेश्वरे॥

तच्छक्त्यैव तु जीवेषु चिद्रूपप्रकृतावपि।
भेदाभेदौ तदन्यत्र ह्युभयोरपि दर्शनात्॥

(ब्रह्मतर्क)

अतः साध्य और साधनके विषयमें भी दोनोंमें विशेष भेद नहीं है। जो कुछ भेद-सा प्रतीत होता है, वह परस्परका वैशिष्ट्य है।

तत्त्ववादियोंके उडूपी-स्थित आठों मठोंके अधिपति संन्यासीगण श्रीकृष्णकी व्रजस्थित अष्टनायिकाओंके आनुगत्यमें गोपीभावसे भजन करते हैं। श्रीमध्वाचार्यके चरित्र लेखक श्रीपद्मनाभाचारीने इस प्रसङ्गमें लिखा है—

The monks who take charge of Sri Krishna by rotation, are so many gopees of Brindavan, who moved with and loved Sri Krishna with an indiscrible intensity of feeling, and are taking rebirths now for the privilege of worshiping Him.

(Life and Teachings of Sri Madhvacharya by C.M. Padmanavachari, chapter XII, page 145)

श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें भी श्रीलरूप, सनातन, रघुनाथ, कृष्णदास कविराज गोस्वामी आदिने अपने ग्रन्थोंमें गोपियोंके आनुगत्यमें श्रीकृष्णकी सेवाको ही साध्यके रूपमें निर्णीत किया है।

उडूपीके प्रधान मठमें यशोदानन्दन नृत्य-गोपालकी सेवा आज भी देखी जाती है। श्रीलमध्वाचार्यने अपने द्वादशस्तोत्रम्के षष्ठ अध्यायके पञ्चम श्लोकमें अपने इष्टदेव नर्तक-गोपाल श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की है—

देवकिनन्दन नन्दकुमार वृन्दावनाञ्जन गोकुलचन्द्र।
कन्दफलाशन सुन्दररूप नन्दितगोकुल वन्दितपाद॥

इस प्रकार गौड़ीय वैष्णवोंके आदिसे अन्त तकके आचार्योंके विचारोंका विवेचन करनेसे सहज ही इस निष्कर्षपर पहुँचा जा सकता है कि श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त है और यह सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

(९) मध्व सम्प्रदाय भेदवादी है, किन्तु गौड़ीय सम्प्रदाय अचिन्त्यभेदाभेदवादी है। इस प्रकार दोनोंमें विराट् मतभेद है।

हमने पहले ही कहा है कि यद्यपि मध्व सम्प्रदायमें ब्रह्म, जीव और जगत्में पाँच प्रकारके भेद स्वीकृत हैं, फिर भी इनमें अचिन्त्यभेदाभेदवादका सङ्केत पाया जाता है। ब्रह्म, जीव और जगत्के सम्बन्धमें वेदशास्त्रोंमें भेद और अभेद—दोनों प्रकारके प्रमाण पाये जाते हैं। किन्तु भेद और अभेद होनेपर भी केवल भेदकी ही प्रतीति होती है, अभेदकी नहीं। भक्तिके क्षेत्रमें साधन या सिद्ध—दोनों ही दशाओंमें उपास्य और उपासकका भेद सिद्ध है और यह भेद ही उपासनाका मेरुदण्ड है। अन्यथा उपास्य और उपासकका भेद नहीं रहनेपर उपासना सिद्ध नहीं होगी। अतः श्रीगौड़ीय और मध्व सम्प्रदायमें कुछ साधारण भेद दृष्टिगोचर होनेपर भी वह सम्प्रदाय भेदका कारण नहीं हो सकता। उपास्य—भगवान्, उपासना—भक्ति और प्रयोजन—मोक्ष या भगवत्-सेवा—इन तत्त्वोंके सम्बन्धमें चारों वैष्णव सम्प्रदायके वैष्णवोंमें छोटे-मोटे मतभेद रहनेपर भी मूलतः उन्हें पार्थक्य नहीं कहा जा सकता। वे सभी एक ही सादृश्य धर्मयुक्त हैं। **उपास्य तत्त्वके भेद अथवा परतत्त्वकी उत्कर्षताके**

तारतम्यके आधारपर ही वैष्णवोंमें सम्प्रदाय-भेदकी सृष्टि हुई है। साध्य, साधन और साधक तत्त्वोंके विषयमें भी तारतम्य विद्यमान रहनेपर उसे कहीं-कहीं सम्प्रदाय तारतम्यका कारण माना जाता है। **वस्तुतः परतत्त्व या उपास्य तत्त्वकी अनुभूतिका तारतम्य ही सम्प्रदाय-तारतम्यका मूल कारण है।** जिन्होंने उपास्य तत्त्वकी जितनी ही उत्कर्षता दिखलायी है, वे उतने ही श्रेष्ठ माने गये हैं।

श्रीमुरारि गुप्त महाप्रभुके अन्तरङ्ग परिकरोंमेंसे एक हैं। मुरारिगुप्तको गौड़ीय सम्प्रदायमें हनुमानका अवतार बताया जाता है। श्रीमन्महाप्रभु द्वारा भगवान् श्रीरामचन्द्रकी अपेक्षा व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका माधुर्य अधिक बतलाये जानेपर भी मुरारि गुप्त कृष्णके भजनमें आकृष्ट नहीं हुए। उनके उपास्य राम थे। श्रीचैतन्य महाप्रभु उनकी उपास्य निष्ठाको देखकर बड़े प्रसन्न हुए थे। वे अन्त तक श्रीरामका भजन करते रहे।

श्रीवास पण्डित भी महाप्रभुके मुख्य परिकरोंमेंसे एक हैं। श्रीकविकर्णपूरने इन्हें श्रीनारदका अवतार माना है। इनके उपास्य श्रीलक्ष्मी-नारायण हैं। इन्होंने श्रीमन्महाप्रभुके उन्नतउज्ज्वलरसके विपरीत लक्ष्मी-नारायणकी उपासनाको श्रेष्ठ माना है, यह सर्वविदित तथ्य है।

कुछ अनभिज्ञ और भ्रान्त व्यक्तियोंका कहना है—श्रीजीव गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके मतानुसार व्रजगोपियोंके पारकीयरसको स्वीकार नहीं किया है, बल्कि उन्होंने स्वकीयरसका अनुमोदन किया है। इसलिए श्रीरूप गोस्वामी और जीव गोस्वामीके विचारोंमें मतभेद है।

वस्तुतः उपर्युक्त अभियोग सम्पूर्णतः निराधार और मिथ्या है। यथार्थता तो यह है कि श्रीजीव गोस्वामीने अपने अनुगत जनोंमेंसे कुछ साधकोंकी रुचि स्वकीयरसकी ओर लक्ष्यकर उनका कल्याण करनेके लिए स्वकीयवादका उल्लेख किया है। उनका आन्तरिक विचार यह था कि अनधिकारी लोग अप्राकृत चमत्कारपूर्ण पारकीय व्रजरसमें प्रवेशकर कहीं व्यभिचार न कर बैठें। अतः उन्हें अप्राकृत व्रजरसका विरोधी मानना अपराधमय विचार है। अतः साधारण मतभेद होनेके कारण उन्हें गौड़ीय सम्प्रदायसे बहिर्भूत नहीं माना गया है।

मायावादी या केवलाद्वैतवादी सम्प्रदायके आचार्योंमें भी परस्पर मतभेद देखा जाता है। इस बातको स्वयं मायावादी लोग भी स्वीकार करते

हैं। परन्तु वैसा होनेपर भी वे सभी अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके अन्तर्गत हैं। किसीने विवर्त्तवाद माना है। किसीने बिम्ब-प्रतिबिम्बवाद माना है, किसीने अविच्छिन्नवाद माना है, किसीने आभासवाद माना है और एक दूसरेके मतका खण्डन किया है। फिर भी वे एक ही सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त हैं।

इसी प्रकार श्रीमध्व एवं श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें कुछ-कुछ साधारण मतभेद होनेपर भी गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायका मध्वानुगत्व मानना सर्वथा युक्तिसङ्गत है।

(ग) भक्तिविरोधी स्मार्तोंके विचारोंका खण्डन

आचार्यकेसरी श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीने पश्चिम बंगके मेदिनीपुर, चौबीस परगना, वर्द्धमान, कूचबिहार, माथाभांगा तथा आसाममें शुद्धाभक्तिका प्रचार करते हुए बड़ी-बड़ी धर्मसभाओंमें अपने प्रवचनोंमें जो भक्तिविहीन स्मार्तोंके विचारोंका खण्डन किया, उसे मैंने अपने नोटबुकमें संग्रह कर रखा था। उसीके आधारपर उनके विचारोंको मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

चतुर्मुख ब्रह्मा, नारद, व्यास, मनु, याज्ञवल्क्य आदि द्वारा प्रकाशित धर्मशास्त्रोंकी जिन विधियोंका अवलम्बनकर जीवित दशामें व्यवहारिक कार्योंका निर्वाह किया जाता है, उन विधि-विधानवाले शास्त्रोंको स्मृति-शास्त्र कहते हैं। इन स्मृति-शास्त्रोंके ज्ञाता एवं अनुयायियोंको स्मार्त कहते हैं। स्मृति-शास्त्र भी दो प्रकारका है—लौकिक एवं पारमार्थिक। जिन स्मृति-शास्त्रोंमें वेद, उपनिषद्, पुराण, महाभारत, रामायण आदि शास्त्रोंके मूल प्रतिपाद्य विषय भगवद्भक्तिकी विधियोंका उल्लेख है, वे पारमार्थिक स्मृतियाँ हैं। जिन स्मृतियोंमें शास्त्रोंके निगूढ़ तात्पर्यकी अवहेलनाकर स्थूल सामाजिक श्रृंखलाकी रक्षाके लिए विधियोंका विधान दिया गया है, उन्हें लौकिक स्मृति-शास्त्र कहते हैं। मूलतः स्मृति एक ही है, फिर भी भगवत्-उन्मुख और भगवत्-विमुख ऋषि-मुनियोंके भेदसे स्मृतिका यह विभाजन बादमें हुआ। इस जगत्में स्थूलशरीरमें आत्मबुद्धि रखनेवाले हरिविमुख व्यक्ति ही अधिक हैं। इसलिए ये लोग अपने मनके अनुकूल लौकिक स्मृतियोंके वचनोंका

आदर करनेके कारण स्मार्तके नामसे प्रसिद्ध हैं। पारमार्थिक स्मृतियोंके वचनोंको माननेवाले लोग अत्यन्त अल्प संख्यामें हैं। ये लोग शुद्ध-स्मार्त या वैष्णव कहलाते हैं।

जीव भगवान्‌को भूलकर जब अपने स्थूल-सूक्ष्म शरीरमें आत्मबुद्धि कर अर्थात् 'मैं' समझकर अपने सुख-भोगके लिए ही नाना प्रकारके कर्मोंका आचरण करता है, तब उसे स्मार्त कहा जाता है। जो जीव भगवान्‌के शरणागत नहीं हैं अथवा भगवद्भक्तोंके अनुगत नहीं हैं, केवलमात्र अपने-अपने दैहिक चेष्टामें ही व्यस्त रहते हैं, उन्हें शासन करनेके लिए स्मृतियोंमें कहे गये नाना प्रकारके विधान दिये गये हैं। जो लोग सदा-सर्वदा अपने स्वार्थकी पूर्तिके लिए झूठ बोलते हैं, दूसरोंको ठगते हैं, असदाचार परायण होते हैं, चोरी, हिंसा आदि असत्कार्योंमें नियुक्त होते हैं, उनकी इन कुप्रवृत्तियोंको संकुचित करनेके लिए स्मृति-शास्त्रमें बहुत ही कठोर आदेश दिये गये हैं। इसलिए इन स्मृतियोंमें बतलाये गये विधान, आदेश नित्य नहीं हैं, केवल नैमित्तिक हैं अर्थात् किसी विशेष निमित्तका अवलम्बनकर ऐसी विधियाँ प्रस्तुत हुई हैं। किन्तु भगवत्-कार्यसमूह नित्य हैं, क्योंकि समस्त कार्योंके फलभोक्ता भगवान् हैं। समस्त कार्य भगवत्-प्रीतिके उद्देश्यसे ही किये जाते हैं; तथा भविष्यमें भी नित्य काल तक होते रहेंगे। लौकिक स्मृति-शास्त्रोंमें उल्लिखित दायभाग, संस्कार, शुद्धिनिर्णय, प्रायश्चित्त और श्राद्ध आदि कार्य मनुष्योंकी परमायु काल तकके लिए ही होते हैं। साथ ही उनका फलभोक्ता मनुष्य है, भगवान् नहीं। उनमें जीवोंके पारमार्थिक कल्याणके लिए किसी भी विधानका उल्लेख नहीं है। उनके दुर्गोत्सव, एकादशी आदि व्रतनिर्णय, श्राद्ध, संस्कार आदि भी भुक्ति और मुक्तिके लिए होते हैं, इसलिए वे नैमित्तिक हैं।

स्मार्तोंके विपरीत वैष्णवजन भगवान्‌के शरणागत होते हैं, इसलिए उनके सारे कार्य भगवत्सेवाके उद्देश्यसे होते हैं। वे निर्मत्सर, निश्छल होते हैं। क्योंकि वे इस विषयको समझते हैं कि जीवमात्र भगवान्‌का दास है, इसी दृष्टिसे वे सभी जीवोंको सम्मान देते हैं। जगत्‌में मैं बड़ा आदमी बनूँगा और दूसरोंको तुच्छ बनाऊँगा। अथवा अनेक याग-यज्ञ, ध्यान, जप, तपस्या, श्राद्ध, तर्पण, तीर्थोंमें भ्रमण, देव-देवीकी

पूजामें बलि प्रदानकर जगत्में प्रतिष्ठा, परलोकमें स्वर्ग आदि प्राप्त करनेकी उनके हृदयमें तनिक भी इच्छा नहीं होती। अथवा जन्म-मृत्युके चक्रसे उद्धार लाभकर मुक्त हो जाऊँगा—ऐसी आकांक्षा भी उनमें नहीं होती। करोड़ों-करोड़ों जन्मोंमें, यहाँ तक कि नरकमें निवास करनेपर भी आराध्यदेवकी सेवा प्राप्त हो, यही उनके लिए प्रार्थनीय विषय होता है। भगवत्प्रीतिमें ही उनकी प्रीति होती है।

शुद्धभक्तों तथा भक्तिकी महिमा बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके भी अगोचर होती है। श्रीमद्भागवतके छठे-स्कन्धमें ऐसा देखा जाता है कि प्राचीन कालमें अजामिलके विषयमें वैष्णवों (विष्णुपार्षदों) और स्मार्तों (यमदूतों) के मध्य विचार-विमर्श हुआ था। इस प्रसङ्गमें यमराजने स्मार्तों (यमदूतों) को कहा था—और लोगोंकी तो बात ही क्या जैमिनी और मनु आदि बड़े-बड़े कर्मकाण्डी ऋषि-मुनि भी भगवद्भक्तोंकी महिमाको हृदयङ्गम नहीं कर पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि वेदत्रयके मधुपुष्पित (लुभावने) वचनोंके द्वारा मुग्ध रहती है। उनकी विवेक-शक्ति दैवी मायाके द्वारा विमोहित होती है। इसलिए वे आडम्बरपूर्ण, बहुत खर्चीले, स्मृतिमें कहे गये कर्मोंकी ही प्रशंसा करते हैं। वे देहमें 'मैं' और 'मेरा' की आत्मबुद्धिके कारण—'कामुकाः पश्यन्ति कामिनीमयं जगत्' अर्थात् कामुक व्यक्ति जगत्को कामिनीमय दर्शन करता है—इस न्यायके अनुसार शुद्धभक्तोंकी भक्ति-चेष्टामें भी नाना प्रकारका दोषारोपण करते हैं। वे विष्णु और वैष्णवोंके पादोदकमें जलबुद्धि करते हैं। शूद्रोंके स्पर्शसे अपवित्र होनेपर श्रीनारायण (श्रीशालग्राम) को पञ्चगव्य आदिके द्वारा शोधन और संस्कारयोग्य समझते हैं अर्थात् साक्षात् भगवान्में भी स्पर्शदोष सम्भव है तथा गोबर आदिके द्वारा भगवान्को भी पवित्र किया जा सकता है—ऐसी दुर्बुद्धि रखते हैं। यही नहीं वे वैष्णवोंमें जातिबुद्धि रखते हैं, भगवत्प्रसादको दाल-भात समझते हैं, उसमें स्पर्शदोष मानते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि अब्राह्मण-शिष्यके द्वारा पकाये हुए अन्नको ग्रहण करनेसे या भगवान्को निवेदन करनेसे गुरु और भगवान्की भी जाति नष्ट हो जाती है। वे कच्चे चावलका अन्न, त्रिसन्ध्या स्नान, रेशमी धोती धारण आदि कार्योंको ही भगवद्भक्ति मानते हैं। इसके अतिरिक्त वे वैष्णवोंको कर्मफलाबद्ध जीव समझते हैं, नाना देवी-देवताओंकी

पूजा करते हैं, धर्मको समाजके अधीन समझते हैं तथा भगवद्विरोधी समाजको अत्यन्त आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। यही उनका दुर्दैव है।

गरुड़पुराणमें विष्णुभक्तोंकी महिमाका इस प्रकार वर्णन किया गया है—

ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी विशिष्यते।
सत्रयाजिसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्त पारगः॥

सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते।
वैष्णवानां सहस्रेभ्यः एकान्त्येको विशिष्यते॥

सहस्र ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक याज्ञिक श्रेष्ठ है, सहस्र याज्ञिकोंकी अपेक्षा एक सर्ववेदान्त शास्त्रज्ञ श्रेष्ठ है, कोटि-कोटि सर्व वेदान्त शास्त्रज्ञोंकी अपेक्षा एक विष्णुभक्त श्रेष्ठ है एवं सहस्र वैष्णवोंकी अपेक्षा एक ऐकान्तिक भक्त श्रेष्ठ है।

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(श्रीमद्भा॰ ३/३३/७)

अहो! नाम ग्रहण करनेवाले पुरुषोंकी श्रेष्ठताकी बात और अधिक क्या कहूँ? जिनकी जिह्वाके अग्रभागमें आपका नाम उच्चारित होता है, वे चाण्डाल कुलमें उत्पन्न होनेपर भी सर्वश्रेष्ठ हैं। उनकी ब्राह्मणता तो पूर्व-पूर्व जन्मोंमें ही सिद्ध हो चुकी है, क्योंकि जो श्रेष्ठ पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं उन्होंने ब्राह्मणोंके तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन सब कुछ पहले ही कर लिया है।

न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः श्वपचः प्रियः।
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्यहम्॥

(ह॰ भ॰ वि॰ १०/९१)

भक्तिहीन चतुर्वेदी ब्राह्मण मुझे प्रिय नहीं है, परन्तु मेरा भक्त—चाण्डाल कुलमें जन्म ग्रहण करनेपर भी मुझे बड़ा प्रिय है। वही दानका

सत्पात्र है तथा उसीकी कृपा ग्रहण करनेके योग्य है। वह निश्चय ही मेरे समान पूज्य है।

भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः शास्त्रं जपस्तपः।
अप्राणस्यैव देहस्य मण्डनं लोकरञ्जनम्॥
शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्निदग्धदुर्जातिकल्मषः।
श्वपाकोऽपि बुधैः श्लाघ्यो न वेदज्ञोऽपि नास्तिकः॥
(श्रीहरिभक्तिसुधोदय ३/११-१२)

सच्चरित्र, सद्भक्तिरूपी दीप्ताग्नि द्वारा जिनके दुर्जातिके पाप क्षय हो चुके हैं, इस प्रकारका चाण्डाल भी पण्डितोंके द्वारा सम्मानित है, किन्तु नास्तिक व्यक्ति वेदज्ञ होनेपर भी सम्मानके योग्य नहीं है। भगवद्भक्तिहीन व्यक्तिकी सद्जाति, शास्त्रज्ञान, जप और तप मृतदेहके अलङ्कारके जैसे किसी कामके नहीं होते, वह तो केवल लोकरञ्जनमात्र है।

विष्णुभक्ति विहीना ये चाण्डालाः परिकीर्त्तिताः।
चाण्डाला अपि ते श्रेष्ठा हरिभक्ति परायणाः॥
(भक्तिसन्दर्भ अ॰ १०० बृहन्नारदीयपुराण)

विष्णुभक्तिविहीन व्यक्ति चाण्डाल हैं। दूसरी ओर भगवद्भक्तिपरायण चाण्डाल कुलोत्पन्न व्यक्ति भी उत्तम हैं।

श्वपचोऽपि महीपाल विष्णुभक्तो द्विजाधिकः।
विष्णुभक्ति विहीनो यो यतिश्च श्वपचाधिकः॥
(भक्तिसन्दर्भ अ॰ १०० नारदपुराण)

हे राजन्! चाण्डाल भी विष्णुभक्त होनेपर भक्तिविहीन ब्राह्मणसे श्रेष्ठ है। यहाँ तक कि जो संन्यासी विष्णुभक्तिविहीन है, वह चाण्डालसे भी निकृष्ट है।

सत्-शास्त्रोंमें दैव-वर्णाश्रमकी ही प्रतिष्ठा देखी जाती है, अदैव वर्णाश्रमकी नहीं। अर्वाचीन अदैव वर्णाश्रममें ब्राह्मणका पुत्र ही ब्राह्मण होता है। चाहे उसमें ब्राह्मणोचित गुण हो या न हो। किन्तु दैव-वर्णाश्रममें ब्राह्मणत्व गुण और कर्मके द्वारा निर्धारित होता है। वैदिक ज्ञान-स्रोतके

प्रथम प्रवक्ता ब्रह्माजीके मुखसे ब्राह्मणकी उत्पत्ति मानी गयी है। ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न होनेपर भी वेदोंका अध्ययन नहीं करनेवाला व्यक्ति कदापि ब्राह्मण नहीं है। ब्रह्माजीके सदाचरणोंको अनुसरण करनेवाला व्यक्ति ही यथार्थ ब्राह्मण है अथवा ब्रह्ममें विचरण करनेवाला, ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाला अथवा ब्रह्मतत्त्वका अनुसन्धान करनेवाला व्यक्ति ही ब्राह्मण है। श्रीगीतामें गुण और कर्मके अनुसार ही वर्णविभाग स्वीकृत हुआ है—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम्॥

(गीता ४/१३)

श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा ही कहा गया है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

(श्रीमद्भा० ७/११/३५)

अर्थात् मनुष्योंमें वर्णाभिव्यञ्जक जो समस्त लक्षण बताये गये हैं, वे यदि दूसरे वर्णवालोंमें भी मिलें तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये। (केवल जन्मके द्वारा वर्ण निरूपित नहीं होगा।)

स्थितो ब्राह्मण—धर्मेण ब्राह्मणामुपजीवति।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा ब्रह्मभूयः स गच्छति।

(महाभारत अनुः शल्यपर्व १४३/८)

नीलकण्ठ ऐसा कहते हैं—यदि क्षत्रिय अथवा वैश्य ब्राह्मणाचारमें अवस्थित होकर ब्रह्मवृत्तिके द्वारा दिन व्यतीत करते हैं, तो ऐसे आचरणकारी व्यक्ति ब्राह्मणता प्राप्त कर सकते हैं।

इस विषयमें श्रुतिमें वर्णित सत्यकामजावाल और गौतमके उपाख्यानसे ऐसा ही सिद्ध होता है।

तां होवाच किं गोत्रो नु सौम्यसीति। स होवाच। नाहमेतद्वेद भो यद्गोत्रोऽहं अस्मि। अपृच्छं मातरम्। सा मा प्रत्यब्रवीद्बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे। साहं एतत् न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि। जवाला तु नामा

अहमस्मि। सत्यकामो नाम त्वमसीति। सोऽहं सत्यकामो जावालोऽस्मि भो इति। तं होवाच—एतद्ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधं सौम्य आहर। उप त्वा नेष्ये सत्याद्गा इति॥ (छान्दोग्य ४/४/४)

गौतमने उससे कहा—"हे सौम्य (ब्राह्मण)! तुम किस गोत्रके हो?" उन्होंने कहा—"मैं नहीं जानता कि मेरा गोत्र क्या है? मातासे पूछनेपर उन्होंने मुझसे कहा—'मैंने अपने यौवनकालमें सेविकाके रूपमें बहुत-से लोगोंकी सेवा करते-करते तुम्हें पुत्र रूपमें प्राप्त किया है। तुम किस गोत्रके हो, यह मैं नहीं जानती। मेरा नाम जावाल है तथा तुम्हारा नाम सत्यकाम है।' अतः मैं सत्यकाम जावाल हूँ।" गौतम उससे कहने लगे—"वत्स! तुमने जो सत्य कहा है ऐसा अब्राह्मण नहीं बोल सकता। अतः तुम ब्राह्मण हो। हे सौम्य (द्विज)! यज्ञके लिए लकड़ी ले आओ, मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करूँगा, तुम सत्यसे कभी भी मत डिगना।"

भगवदावतार श्रीऋषभदेवके एक सौ पुत्रोंमें इक्यासी वेदज्ञ ब्राह्मण, नौ नवयोगेन्द्र महाभागवत तथा शेष क्षत्रिय हुए जिनमें भरतजी समस्त गुणोंसे अलंकृत सम्राट हुए, जिनके नामपर इस देशका नाम भारतवर्ष हुआ। यहाँ भी एक पिताके अनेक पुत्रोंमें गुण और कर्मके अनुसार वर्णके विभागका उल्लेख है।

(घ) श्रीशालग्राम-सेवामें अधिकार

वैष्णवस्मृतिविद् श्रीलसनातन गोस्वामीने श्रीहरिभक्तिविलासमें किसी-किसी द्वेषपूर्ण, मात्सर्यपूर्ण स्मार्तके कल्पित मन्तव्योंका खण्डन करते हुए लिखा है कि किसी-किसी देहात्मबुद्धिसम्पन्न स्मार्तके विचारसे केवलमात्र ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए पुरुष ही शालग्राम-अर्चनके अधिकारी हैं। स्त्रियोंको भी शूद्र होनेके कारण, चाहे वह ब्राह्मण पत्नी ही क्यों न हो, शालग्राम-अर्चनमें उसका अधिकार नहीं है। किन्तु यह बात सर्वथा शास्त्रविरुद्ध है। सद्गुरुके द्वारा विष्णुमन्त्रमें दीक्षित किसी भी कुलमें उत्पन्न स्त्री और पुरुष अर्चनके अधिकारी हैं। इस प्रसङ्गमें श्रील सनातन गोस्वामीने अपनी दिग्दर्शिनी टीकामें अनेक शास्त्रीय प्रमाणोंको उद्धृतकर अपने विचारकी पुष्टि की है। उन्होंने भागवतीय कपिल-देवहूति संवादसे भगवान् कपिलदेवके वचन (३/३३/६) को उद्धृतकर कहा है—

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात्॥

हे भगवन्! कुक्कुरभोजी अन्त्यज कुलमें उत्पन्न व्यक्ति भी यदि आपके नामका श्रवण करे और तत्पश्चात् कीर्त्तन करे, आपको नमस्कार करे एवं आपका स्मरण करे, तो वह भी तत्क्षणात् सोमयागका अधिकारी हो जाता है। जिसने आपका दर्शन प्राप्त किया, उसके विषयमें और अधिक क्या कहूँ?

पुनः पृथु महाराजजीके चरित्रके द्वारा श्रील सनातन गोस्वामीने स्पष्ट किया है कि श्रीपृथु महाराज सप्तद्वीपवती पृथ्वीके एकमात्र शासक होनेपर भी ऋषिकुलोत्पन्न ब्राह्मण और अच्युत गोत्रीय वैष्णवोंके ऊपर उन्होंने अपना शासन-दण्ड कदापि नहीं चलाया। (श्रीमद्भा॰ ४/२१/१२)

उन्होंने पुरञ्जन उपाख्यानके (श्रीमद्भा॰ ४/२६/२४) श्लोकको उद्धृतकर यह दिखलाया है—राजा पुरञ्जनने भी ब्राह्मण और वैष्णवोंके ऊपर कभी भी दण्डका विधान नहीं किया। इसलिए स्त्रियाँ और शूद्र भी सद्गुरुसे विष्णुमन्त्रमें दीक्षित होनेपर श्रीशालग्रामके अर्चनके अधिकारी हैं; क्योंकि ये भी ब्राह्मण और वैष्णवके समान हो जाते हैं। उनके द्वारा पकाया नैवेद्य श्रीभगवान् एवं सद्गुरुको अवश्य ही अर्पण किया जा सकता है। ऐसा नहीं होनेसे प्रत्यवाय होगा।

(ङ) श्रीविग्रहतत्त्व एवं श्रील गुरुपादपद्म

(सन् १९५९ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत श्रीपिछलदा गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह प्रतिष्ठा तथा १९६१ में श्रीधाम वृन्दावन स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें श्रीविग्रह प्रतिष्ठाके अवसरपर श्रील आचार्य केसरी द्वारा श्रीविग्रहतत्त्वके सम्बन्धमें प्रदत्त भाषणसे संकलित)

वेद, उपनिषद, पुराण आदि सत्-शास्त्रोंमें सर्वत्र भगवान्के सच्चिदानन्द विग्रहका उल्लेख है तथा साथ ही उन सच्चिदानन्द विग्रहकी पूजाका विधान भी है। कुछ लोग परतत्त्व वस्तुको निराकार, निर्गुण, निःशक्तिक और अव्यय मानते हैं। उनके विचारसे परतत्त्वका कोई विग्रह या रूप नहीं है। उनके अनुसार रूप होनेसे उनका जन्म और मरण स्वीकार करना पड़ेगा और वह सर्वव्यापी नहीं हो सकेगा।

वास्तवमें निराकारवादी साकार चिन्तासे मुक्त नहीं होते। वे साकारको ही केन्द्रकर निराकारकी कल्पना करते हैं। ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं है, उनमें कोई गुण नहीं है, उनमें शक्ति नहीं है—ये सब मिथ्या कल्पनाएँ हैं। इस अलीक कल्पनाकी जड़ है—बौद्धोंका शून्यवाद अथवा वेदविरुद्ध नास्तिक्यवाद। फिर भी यह कहना बिल्कुल असङ्गत नहीं होगा कि आधुनिक निराकारवाद बहुत कुछ अंशोंमें ईसाई मतकी ही देन है। आजकल हमारे देशमें जो निराकार ज्ञानवाद प्रचलित है, वह ईसाई धर्मका प्रतीक है—यह कहना गलत नहीं होगा। भारत-सेवाश्रम-संघ, रामकृष्ण-मिशन, अर्वाचीन आर्यसमाज आदिका कर्मवाद सम्पूर्ण रूपसे ईसाई धर्मका ही जूठन है, क्योंकि हमारे देशका प्राचीन कर्मवाद सर्वतोभावेन वेदविधिमूलक है। अतएव गीता या अन्य स्मृति, संहिता आदि ग्रन्थोंमें वैदिक कर्मोंके अतिरिक्त अन्यान्य दूसरे कर्मोंका उल्लेख नहीं है। इन लोगोंने अवैदिक विचारोंके प्रचार द्वारा विश्वका बहुत ही अहित किया है।

यदि ईसाइयोंका निराकारवाद ही सत्य है, तो बड़े-बड़े गिरजाघरोंमें तथा उनके शिखरोंपर तथा उनके भीतर क्रास (cross) चिह्नकी स्थापनाकर वहाँ उपासना क्षेत्रके निर्माणका तात्पर्य क्या है? वे खुले मैदानमें आकाशकी ओर आँखेंकर उपासना क्यों नहीं करते? उनके सबसे अधिक प्रामाणिक ग्रन्थ बाइबिलमें मानव सृष्टिके सम्बन्धमें लिखा है—God created man out of His own image अर्थात् ईश्वरने अपने रूपके समान मनुष्यको बनाया है। इस वाक्यको बाइबिलसे निकाल क्यों नहीं देते, क्योंकि इस वाक्यसे भगवान्का मनुष्यके समान रूप माना गया है? इसी प्रकार निराकारवादी मुसलमानोंके कुरानशरीफमें भी बाइबिलसे मिलती जुलती हदीसका एक आयत्त (प्रामाणिक वचन) पाया जाता है, जिसका मुझे जितना स्मरण है, उसे उद्धृत कर रहा हूँ—इन्नालाहा खालाका मेन् सूरातहि। 'सूरत' का अर्थ है—आकार, अर्थात् खुदाने अपने रूपके अनुरूप मनुष्यको बनाया है। अतएव कुरान और बाइबिल दोनों ही ग्रन्थोंके द्वारा परमेश्वरका नराकार होना अनुमोदित है। इस दशामें मुसलमान धर्मावलम्बी निराकारका पक्षपाती होकर भी मस्जिदका

निर्माण क्यों करते हैं। वे भी खुले आकाशमें अथवा समुद्रके भीतर निराकारका ध्यान क्यों नहीं करते?

बौद्ध और जैन धर्मावलम्बी भी निराकारवादी हैं। उनके मन्दिरोंमें बुद्ध और जैनकी बड़ी-बड़ी मूर्त्तियाँ रहती हैं। बुद्धगया, काशी, सारनाथ, अजन्ता, एलोरा आदि स्थान इसके साक्षी हैं। माउण्ट आबू, पण्ढरपुर, कलकत्ताका परेशनाथ मन्दिर जैनमूर्त्तिपूजाके निदर्शनस्वरूप हैं। पुरीके प्राचीन इतिहासके अनुसार बौद्धोंने पुरीके श्रीमन्दिरपर आक्रमणकर उसे अपने अधीन कर लिया था। उस समय वे जगन्नाथ देवको 'बुद्धदेव', सुभद्राको 'कीर्ति', बलरामको 'धर्म', और सुदर्शनको 'संघ' मानकर सम्मान प्रदान करते थे। आचार्य शङ्करने बौद्धोंको वहाँसे खदेड़कर जगन्नाथ, बलदेव और सुभद्राकी पुनः प्रतिष्ठा की।

भारतीय वाङ्मयके अनुसार यह निर्विवाद सत्य है कि दृश्यमान जगत्‌रूप कार्यके कारण परमेश्वर हैं। कार्य और कारण विचार (cause and effect theory) के अनुसार कारण और कार्यमें अविच्छेद्य सम्बन्ध है। कार्यमें जो कुछ दिखायी पड़ता है, कारणमें वह सूक्ष्म रूपमें अवस्थित रहता है। जो कारणमें नहीं है, वह कार्यमें कदापि सम्भव नहीं है। कुछ दार्शनिकोंका यह मत है कि कारणमें किसी वस्तुकी सत्ता नहीं रहनेपर भी कार्यमें उसकी स्थिति सम्भव है। परन्तु इसका एक भी दृष्टान्त सम्भव नहीं है। उपरोक्त दार्शनिक पण्डितोंके विचारमें यह दोष है—बिना कारण ही कार्य स्वीकार करनेसे प्रत्येक वस्तुसे सब कुछ उत्पन्न हो सकता है, जैसे धूलसे तेल, पानीसे घी, बबूलके पेड़से आम फल पाया जा सकता है। परन्तु ऐसा नहीं होता। वास्तविकता यह है कि जिस बीज (कारण) में जिस वस्तुकी सत्ता (potency) होती है, वही वस्तु उससे निकलती है, जैसे सरसों और तिलके बीजोंसे तेल निकलता है, दूधसे घी तथा आमके पेड़से आम प्राप्त होता है।

अतः जगत्‌रूप कार्यमें जितने भी आकार दीखते हैं, वे सभी कारणरूप ब्रह्ममें अवश्य ही विद्यमान हैं। यदि यह बात नहीं होती, ब्रह्म निराकार होता, तो उससे असंख्य आकारोंसे भरा यह दृश्यमान जगत् उत्पन्न नहीं होता। अतः कार्य-कारणके विचारसे भगवान्‌के श्रीविग्रह और उनमें

जगत्के असंख्य आकारोंकी सत्ताकी विद्यमानता अवश्य ही प्रमाणित होती है।

यदि निराकार निर्विशेष ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति मानी जाती है, तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि nothing से something या everything पैदा होता है, परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता। बल्कि वैदिक शास्त्रोंमें परमेश्वरको पूर्णतत्त्व माना गया है—पूर्णमदः पूर्णमिदं। गीता भी ऐसी ही घोषणा करती है—नासतो विद्यते भावः नाभावो विद्यते सतः अर्थात् असत् वस्तुकी सत्ता नहीं है। अतः पूर्णसत्तावाले भगवान्का श्रीविग्रह अवश्य ही सिद्ध है। कहीं-कहीं श्रुतियोंमें ब्रह्मको निराकार निर्गुण, अरूप और निर्विशेष कहा गया है। किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि ब्रह्म निर्विशेष, निराकार और शून्य है। निर्गुण, निराकार, अरूप और निर्विशेष—ये शब्द मौलिक नहीं हैं, बल्कि आकार, रूप, गुण और विशेष ही मौलिक शब्द हैं। आकारसे निराकार, रूपसे अरूप, गुणसे निर्गुण और विशेषसे निर्विशेष आदि निषेधवाचक शब्द बने हैं। इसलिए परतत्त्व विग्रह रूप, गुणवाले सविशेष तत्त्व हैं। फिर उन्हें श्रुतियोंमें अरूप आदि क्यों कहा गया है? इसका उत्तर शास्त्रोंने ही दिया है—

अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥

(महाभारत भी० प० ५/१२)

जो भाव अचिन्त्य है, उसमें तर्क करना उचित नहीं होता। अचिन्त्यका लक्षण यही है कि वह प्रकृतिसे अतीत है।

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं सा साभिधत्ते सविशेषमेव।
विचारयोगे सति हन्त तासां प्रायो वलीयः सविशेषमेव॥

(हयशीर्ष पञ्चरात्र)

अर्थात्, जिन जिन श्रुतियोंने तत्त्व-वस्तुको पहले निर्विशेष बताया है, उन्हीं श्रुतियोंने सविशेष तत्त्वका भी प्रतिपादन किया है, निर्विशेषका नहीं। निर्विशेष और सविशेष—ये दोनों ही भागवान्के नित्य गुण हैं, तथापि गम्भीर रूपसे विचार करनेपर सविशेष तत्त्व ही प्रबल हो उठता

है। क्योंकि, जगत्‌में सविशेष तत्त्वका ही अनुभव होता है, निर्विशेष तत्त्वकी अनुभूति नहीं होती।

तात्पर्य यह कि मायासे अतीत होनेके कारण परतत्त्वको अचिन्त्य, अरूप, निराकार आदि कहा गया है। वस्तुतः भगवान् अप्राकृत साकार, अप्राकृत सर्वगुणाधार, अप्राकृत रूपवान और अप्राकृत सविशेष आदि हैं। उनके सच्चिदानन्द रूपमें प्रकृति या मायाकी लेशमात्र भी गन्ध नहीं है। इस तथ्यको समझानेके लिए ही शास्त्रोंमें विशेष स्थानोंमें निराकार आदि कहा गया है।

कुछ लोग जगत् और उसमें स्थित सारे आकारोंको मिथ्या मानते हैं। यदि यह जगत् मिथ्या है, तो ऐसा कहनेवाला व्यक्ति भी मिथ्या और झूठा हुआ। फिर झूठा व्यक्तिका कथन भी झूठा है। इसलिए जगत् सत्य ही सिद्ध होता है। कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि सर्वव्यापीका रूप नहीं हो सकता है। किन्तु यह बात भी ठीक नहीं है। परमेश्वर सर्वव्यापी होनेके साथ-साथ सर्वशक्तिमान भी हैं। तब अपनी अघटन-घटन-पटीयसी शक्तिके द्वारा क्या वे साकार नहीं हो सकते तथा साकार होकर भी उसी शक्तिके प्रभावसे क्या वे सर्वव्यापी नहीं रह सकते। यदि वे साकार और सर्वव्यापी नहीं हो सकते, तो वे सर्वशक्तिमान रहे कहाँ? अतएव तत्त्वज्ञानके अभाके कारण पूर्वोक्त प्रकारका भ्रम होता है। वे परमेश्वर अज, अनादि होते हुए भी अपनी अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे श्रीयशोदाके नित्य पुत्र भी हैं।

निराकार वस्तुकी उपासना कदापि सम्भव नहीं है। कुछ दार्शनिकोंने निराकार ब्रह्मकी उपासनाकी व्यवस्था दी है। उनके विचारसे आकार होनेसे ही वह वस्तु मायिक या हेय हो गयी। अतएव निराकारकी उपासना ही श्रेष्ठ साधन है। किन्तु यह विचार ठीक नहीं। पञ्चभौतिक द्रव्योंमें वायु और आकाश निराकार हैं। फिर भी इन्हें कोई भी अप्राकृत या सच्चिदानन्द स्वीकार नहीं करता। इसलिए निराकारवादियोंका ब्रह्म आकाशकी भाँति निराकार या शून्य होनेसे कदापि पूज्य नहीं हो सकता। श्रुतियोंमें निर्गुण भक्तिके द्वारा मुक्त पुरुष परतत्त्वका सदा दर्शन करते हैं और उनकी उपासना करते हैं, ऐसा कहा गया है—ॐ तद्विष्णोः

परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्। (ऋग्वेद) अर्थात् दिव्य सूरि वैष्णवगण अप्राकृत नेत्रोंसे विष्णुके परमपदका सर्वदा दर्शन करते हैं। इस श्रुतिमन्त्रसे स्पष्ट रूपसे परतत्त्वका रूप सिद्ध होता है।

कुछ लोग यह कहते हैं कि वेदोंमें श्रीविग्रह या श्रीमूर्त्तिका कहीं भी उल्लेख नहीं है। अतः मूर्त्तिपूजा अवैदिक है। किन्तु यह बात भी सर्वथा निराधार और भ्रामक है। वेदोंमें सर्वत्र ही श्रीमूर्त्तिका उल्लेख पाया जाता है। उदाहरणके लिए दो-एक मन्त्र देखिये—

(१) सहस्रस्य प्रतिमा असि (यजुः १५/६५)

अर्थात् हे परमेश्वर आप सहस्रोंकी मूर्त्ति हैं।

(२) अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत (ऋग॰ ६/५/५८/८)

अर्थात् हे बुद्धिमान मनुष्यो! परमेश्वरके श्रीविग्रहका भलीभाँति पूजन करो।

(३) गीतामें भी भगवान्‌की श्रीमूर्त्तिकी अवज्ञा करनेवालोंको मूढ़ और नराधम कहा गया है—

अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(गीता ९/११)

(४) यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म। (तै॰ उ॰ भृ॰ व॰ १)

अर्थात् जिस ब्रह्मसे जगत्‌की सृष्टि होती है (अपादान कारक), जिस ब्रह्म द्वारा जगत् पालित-पोषित होता है (करण कारक) और जिस ब्रह्ममें जगत् प्रलयकालमें प्रविष्ट हो जाता है (अधिकरण कारक)—ये तीन कारक जिस ब्रह्ममें हैं, वह कदापि निराकार नहीं हो सकता। जिस प्रकार पेड़से फल गिरते हैं—इसमें यदि पेड़की सत्ता न मानी जाय तो उससे फल कैसे गिर सकते हैं। अतएव पेड़की सत्ता स्वीकारकर ही उससे फलोंका गिरना सम्भव है।

(५) मायावादियोंका यह कथन है कि वेदान्तसूत्रमें भगवान्‌के रूपका निषेध किया गया है 'अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात्' (३/२/१४) तथा 'न प्रतीकेन हि सः' (४/१/४)। परन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुने इन्हीं सूत्रोंके

द्वारा ब्रह्मकी श्रीमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की है। 'अरूपवदेव' का अर्थ यह नहीं है कि ब्रह्मका श्रीविग्रह ही नहीं है, बल्कि उससे यह स्पष्ट झलकता है कि ब्रह्मका रूप है। परन्तु अनधिकारियोंके निकट वह अरूपकी भाँति प्रतीत होता है। 'अरूपवत्' में 'वतुप' प्रत्ययका प्रयोग हुआ है। व्याकरणमें 'वतुप' प्रत्ययका प्रयोग तुल्यके अर्थमें किया गया है अर्थात् अरूपवत्=न-रूपवत् अर्थात् रूपकी भाँति नहीं बल्कि स्वयं रूप ही प्रधान है अर्थात् विग्रह है। स्वयं रूप ब्रह्म एवं उनके विग्रहमें कोई अन्तर नहीं है। उसी प्रकार 'न-प्रतीके' अर्थात् श्रीविग्रह ब्रह्मका प्रतीक नहीं है, 'सः'—वह विग्रह स्वयं ब्रह्म है। श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीजगन्नाथ-दर्शनके समय कहा था—

प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।

श्वेताश्वतर उपनिषद्के निम्नलिखित मन्त्रमें ब्रह्मके प्राकृत रूपका निषेधकर उनके अप्राकृत सच्चिदानन्द रूपकी स्थापना की गयी है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता
तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम्॥

(श्वे॰ उ॰ ३/१९)

अर्थात् परब्रह्म प्राकृत हाथसे रहित होनेपर भी समस्त वस्तुओंको ग्रहण करते हैं। प्राकृत पैरोंसे रहित होनेपर भी बड़े वेगसे सर्वत्र गमनागमन करते हैं। प्राकृत नेत्रोंसे रहित होनेपर भी सब कुछ देखते हैं इत्यादि। तात्पर्य यह है कि उनका रूप प्राकृत नहीं बल्कि अप्राकृत सच्चिदानन्द है—ईश्वरः परमः कृष्ण सच्चिदानन्द विग्रहः।

सर्वप्रमाणशिरोमणि श्रीमद्भागवत भी श्रीनन्दनन्दनको परमानन्दपूर्ण सनातन ब्रह्म घोषित करते हैं—'यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्' (श्रीमद्भा॰ १०/१४/३२)।

जो वस्तु ही नहीं है उसमें अस्ति (सत्ता) अर्थमें 'वतुप्' प्रत्ययका प्रयोग कभी नहीं किया जाता। आत्यन्तिक अभाव-जातीय वस्तुओंका अस्तित्व स्वीकृत नहीं होता। जो वस्तु है ही नहीं, वह है—ऐसा नहीं

कहा जा सकता। हम इसे पहले ही 'नासतो विद्यते भावो'—गीताके इस प्रमाणके अनुसार सिद्ध कर चुके हैं। श्रीमद्भागवतके रचयिता वेदव्यास ही वेदान्तसूत्रके रचयिता हैं, अतएव इनके विचारोंमें कभी भी विरोध नहीं हो सकता। अतः 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं', 'नन्दगोप व्रजौकसाम् यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम्', 'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्' आदि श्लोकोंके प्रकाशक सूत्रोंका निराकार सूचक अर्थ करना सर्वथा अनुचित है। इसके अतिरिक्त (क) अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां (३/२/२४), (ख) प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् (३/२/२५), (ग) प्रकाशवच्चावैशेष्यात् (३/२/२५) आदि ब्रह्मसूत्रोंके द्वारा भी ब्रह्मका श्रीविग्रह सिद्ध होता है। 'अरूपवदेव प्रधानत्वात्' का तात्पर्य यह है कि ब्रह्मरूप या विग्रहविशिष्ट नहीं होते, वे स्वयं ही विग्रह हैं अतएव अरूपवत्—न रूपवत् कहा गया है। 'एव'—कार विरुद्ध युक्तियोंके निराशके लिए है। ब्रह्मरूप ही प्रधान है। उनके स्वयंरूप या श्रीविग्रहमें कोई भेद नहीं है। यदि कहो सर्वव्यापकका मध्यमाकार रूप कैसे स्वीकृत हो सकता है, तो उत्तर है—हाँ, हो सकता है—अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्यां—अर्थात् सर्वव्यापक, अव्यक्त होनेपर भी आराधनाके द्वारा उनका दर्शन होता है। श्रीमद्भागवत भी ऐसा कहते हैं—भक्त्याहमेकया ग्राह्यः अर्थात् एकमात्र भक्तिके द्वारा ही मैं ग्राह्य हूँ। अगले सूत्रमें और भी स्पष्ट किया गया है—'न प्रतीकेन हि सः' अर्थात् प्रतीक अथवा प्रतिमा पूजनसे सिद्धि नहीं होती अथवा भगवत्-प्राप्ति नहीं होती। प्रतिमाके अन्दर भगवान्की स्थिति आरोपितकर जो पूजन होता है, वह पूजन ठीक नहीं है। आचार्य शङ्करका इस विषयमें यह कथन है कि "साधकोंके कल्याणके लिए अरूप ब्रह्मके रूपोंकी कल्पना की गयी है। उन कल्पित रूपोंका पूजन करनेसे चित्तशुद्धि होती है। चित्तशुद्धि होनेपर निराकार ब्रह्मका साधन सहज होता है।" परन्तु काल्पनिक रूपोंमें—प्रतिमामें भगवान्का पूजन ठीक नहीं है। सच्चिदानन्दमूर्त्ति स्वयंरूप हैं। उन्हींका पूजन होना चाहिये। उपर्युक्त वेदान्तसूत्रमें यही बात कही गयी है। यहाँ विचार यह है कि क्या काल्पनिक रूपमें भगवान्का पूजन सिद्ध होगा? उत्तर है—'न हि' अर्थात् जोर देकर कहते हैं नहीं, तब किससे होगा—'सः' अर्थात् स्वयंरूप

भगवान्‌के आत्मरूप (श्रीविग्रह) का पूजन करनेसे भगवान्‌का साक्षात्कार होगा। इसीलिए श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

(क) ईश्वरेर श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार।
(चै॰ च॰ म॰ ६/१६६)

(ख) चिदानन्द कृष्ण विग्रह मायिक करि माने।
एई बड़ पाप सत्य चैतन्यवाणी॥
(चै॰ च॰ म॰ २५/३५)

(ग) प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दन।
(चै॰ च॰ म॰ ५/९६)

अतएव भगवान्‌का श्रीविग्रह सच्चिदानन्दाकार होता है। परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रह ही सच्चिदानन्दाकार है। बद्ध जीवों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्त्ति प्रतिमा कहलाती है। वैसी प्रतिमा-पूजनका शास्त्रोंमें निषेध है। जिस प्रकार—Certified copy of a certified copy is no evidence—उसी प्रकार महापुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविग्रहकी नकल प्रतिमा भी सच्चिदानन्द श्रीविग्रह नहीं है। श्रीविग्रहका सेवन करनेसे जीवोंका अशेष कल्याण होता है, शास्त्रोंमें सर्वत्र ऐसा उल्लेख है।

(च) 'जितने मत उतने पथ' का खण्डन

परमाराध्यतम आचार्यकेसरी श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने सन् १९५० ई॰ में पश्चिमी बङ्गालके मेदिनीपुर जिलेके बहुत-से गाँवोंमें एक तूफानी प्रचारयात्रा की थी। उस समय उन्होंने तीस दिनोंके भीतर लगभग चालीस विभिन्न धर्मसभाओंमें श्रीसनातनधर्म—श्रीचैतन्यमहाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्ध भक्तिधर्मका विपुल रूपसे प्रचार किया था। मेदिनीपुरके गेहूँखली नामक कस्बेमें एक विराट धर्मसभा हुई थी। अपने सतीर्थ परम पूज्यपाद नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके आह्वानपर श्रीश्रीलगुरुपादपद्म वहाँ पधारे थे। रामकृष्ण मिशन द्वारा संचालित उच्च विद्यालयके प्रांगणमें विराट सभाका आयोजन किया

गया था। उस सभामें विद्यालयके प्रधानाध्यापक, अन्यान्य अध्यापक तथा आसपासके शिक्षित, गणमान्य व्यक्ति भी उपस्थित थे। लगभग १५,००० श्रोताओंकी उपस्थितिमें श्रीलगुरुपादपद्मने बड़ी ओजस्वी भाषामें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धाभक्तिके सिद्धान्तको स्थापित किया। श्रीकृष्ण ही परतत्त्वकी सीमा हैं। वे समस्त जीवोंके चरम उपास्य तत्त्व हैं। जीव उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं। स्वरूपतः जीवमात्र ही भगवान्‌के सेवक हैं। भगवान्‌के प्रति अपने इस सेवकभावको भूलनेके कारण जीवकी अधोगति हुई है। इन सिद्धान्तोंका शास्त्रीय प्रमाण एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा प्रतिपादन कर रहे थे। भाषणके बीचमें ही कुछ व्यक्तियोंने प्रश्न किया, "हमने पढ़ा और सुना है कि जीवमात्र ही शिव है। शिव, दुर्गा, काली, गणेश—ये सभी एक ही भगवान्‌के अलग-अलग नाम और स्वरूप हैं। जो किसी भी मतको लेकर चले, वह भगवान्‌को ही प्राप्त होता है (यत मत तत पथ)। जिस किसी देवताकी उपासना की जाय, उससे भगवत्प्राप्ति ही होती है। जैसे आकाशमें ऊपर जानेपर सभी चीजें बराबर दिखायी देती हैं, विभिन्न डाकघरमें पत्र डालनेपर भी वे एक ही स्थानपर पहुँच जाते हैं। पैदल, कार, रेल या किसी भी वाहन द्वारा दिल्ली पहुँचा जा सकता है, वैसे ही परमार्थकी उच्च भूमिकामें उपस्थित होनेपर साधक सबको एक समान देखता है, किसी भी उपासनासे एक ही भगवान्‌को पाया जाता है। किन्तु आप केवल कृष्णको ही एकमात्र उपास्य और उनके प्रति भक्तिको ही सर्वश्रेष्ठ साधन स्वीकार करते हैं।"

इस प्रश्नको सुनकर उस धर्मसभामें जो उनका ओजस्वी भाषण हुआ उसे सुनकर सारे श्रोता मुग्ध हो गये। प्रश्न करनेवाले सम्पूर्ण रूपसे निरुत्तर हो गये। उक्त धर्मसभामें उनके प्रदत्त भाषणके कुछ अंशोंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीलआचार्यकेसरीने बड़ी गम्भीरताके साथ अपने भाषणमें कहा कि प्रतिपक्ष द्वारा उत्थापित विचार ईसाई मतकी जूठन, अवैदिक एवं अशास्त्रीय हैं। सबसे पहले 'यत मत तत पथ' अर्थात् सभी मतवाद एक ही भगवान्‌के पानेके विभिन्न पथ हैं—इसपर विचार करें। यह विचार सर्वथा भ्रामक और अशास्त्रीय है। यदि हम इस विचारको ग्रहण करते

हैं, तो चोर, डकैत, व्यभिचारी, साधु, असाधु—सबकी विचारधाराको समान मानना पड़ेगा। सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—इन त्रिविधसाधनोंका अवलम्बन करनेवाले सभी एक ही फलको ही प्राप्त करेंगे—इसे कोई भी विचारक स्वीकार नहीं कर सकता। माँस, मछली, अण्डे आदि खानेवाले हिंसापरायण व्यक्ति तथा सात्त्विक और निर्गुण पदार्थोंका सेवन करनेवाले शुद्ध सात्त्विक विचारधाराके धर्मात्मा व्यक्तियोंकी गति एक ही प्रकारकी होती है, इसे कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति स्वीकार नहीं कर सकता। श्रीमद्भागवत, गीता आदि शास्त्रोंमें सभी धर्मों या पथोंको एक समान नहीं बताया गया है। श्रीमद्भागवतमें अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्णकी अहैतुकी और तैलधारावत् अविच्छिन्न भक्तिको ही जीवमात्रका परम धर्म बताया गया है।

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति॥

(श्रीमद्भा॰ १/२/६)

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमोनिर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किंवापरैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(श्रीमद्भा॰ १/१/२)

अर्थात् भगवद्भक्तिके अतिरिक्त धर्मके नामपर चलनेवाले सभी मतवाद असार एवं पाखण्ड हैं। वे कृष्णका साक्षात्कार नहीं करा सकते, केवल श्रीमद्भागवतोक्त भक्ति द्वारा ही भगवान्‌को प्रसन्न किया जा सकता है। गीतामें भी कहा गया है कि देवताओंका भजन करनेवाले देवलोकको, पितरोंकी पूजा करनेवाले पितृलोकको और भूतोंका पूजन करनेवाले भूतलोकको प्राप्त करते हैं। इन लौकिक उपासनाओंके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होती। केवल शुद्धभक्तिके द्वारा ही कृष्णलोकमें कृष्णकी सेवा पायी जा सकती है। यदि ये सभी उपासनाएँ एक समान होतीं, तो गीतामें इस प्रकारसे नहीं कहा जाता—

यान्ति देवव्रता देवान् पितॄन् यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥
(गीता ९/२५)

अर्थात्, देवपूजकगण देवलोकको, पितृपूजकगण पितृलोकको, भूतपूजकगण भूतलोकको प्राप्त होते हैं, किन्तु मेरी पूजा करनेवाले मुझे ही प्राप्त होते हैं।

कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥
(गीता ७/२०)

अर्थात् आर्त्ति आदि दूर करनेकी कामनाओं द्वारा जिनका ज्ञान हर लिया गया है, वे उन-उन देवताओंकी आराधनाके उपयुक्त नियमोंका अवलम्बनकर अपने स्वभावके वशीभूत होकर देवताओंको भजते हैं।

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥
(गीता ७/२३)

किन्तु, उन अल्पबुद्धिवालोंका वह फल नश्वर है। देवपूजकगण देवताओंको प्राप्त होते हैं तथा मेरे भक्तगण मुझे ही प्राप्त होते हैं।

कृष्णको छोड़कर अन्यान्य देवताओंकी उपासनाको अविधिपूर्वक कहा गया है—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥
(गीता ९/२३)

कुछ लोगोंका यह कथन कि विष्णु, गणेश, दुर्गा, काली, शिव—ये सभी एक ही हैं, स्वरूपगत कोई भेद नहीं, नाममात्रका भेद है। इन सबकी उपासनाका एक ही फल है। किन्तु यह कथन शास्त्र-सम्मत नहीं है। क्योंकि (ऋग्वेद १/२२/२०)—

ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्।
तद्विप्रासो विप्रन्यवो जागृवांसः समिंधते विष्णोर्यत् परमं पदम्॥

अर्थात्, जिस प्रकार आँखें आकाशमें अबाध रूपसे सूर्यको देखनेमें समर्थ हैं, मुक्त महापुरुष उसी प्रकार परमेश्वर विष्णुके परमपदको सर्वदा देखा करते हैं। भ्रम, प्रमादादि दोषवर्जित भगवन्निष्ठ साधुजन विष्णुका जो परमपद है, उसे सर्वत्र प्रकाशित (प्रचारित) करते हैं।

न तस्य कार्यं करणञ्च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान-बल-क्रिया च॥

(श्वे॰ उ॰ ६/८)

अर्थात्, उन परब्रह्म परमात्माकी कोई भी क्रिया प्राकृत नहीं होती, क्योंकि उनका कोई भी करण—हस्त पादादि इन्द्रियाँ प्राकृत नहीं होतीं। वे अप्राकृत शरीरसे एक ही समय सब जगह विराजमान रहते हैं। इसलिए उनसे बड़ा तो दूर रहे, उनके समान भी कोई दूसरा नहीं दीखता। उन परमेश्वरकी अलौकिकी शक्ति नाना प्रकारकी सुनी जाती है, जिनमें ज्ञानशक्ति, बलशक्ति और क्रियाशक्ति—ये तीन प्रधान हैं। इन तीनोंको क्रमशः चित्-शक्ति या सम्वित्-शक्ति, सत्-शक्ति या सन्धिनीशक्ति और आनन्दशक्ति या ह्लादिनीशक्ति कहते हैं।

गीता (७/७) में भी कहा गया है—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

तथा गीता (१५/१५) में

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।

इन सब प्रमाणोंके द्वारा यह सिद्ध होता है कि विष्णुतत्त्व ही परतत्त्व है। शास्त्रोंमें कहीं भी गणेश, काली, दुर्गा, सूर्य आदि देवताओंको विष्णुतत्त्वके बराबर नहीं बताया गया। बल्कि इसके विपरीत इन देवताओंको नारायणके समान माननेवालोंको पाखण्डी बताया गया है—

यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मरुद्रादि दैवतैः।
समत्वेनैव वीक्षेत स पाषण्डी भवेद्ध्रुवम्॥

गीतामें तो यहाँ तक कहा गया है कि सकाम कर्मी, तपस्वी और ज्ञानियोंसे योगी सब प्रकारसे श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तुम योगी बनो। किन्तु इन योगियोंमें भी जो योगी श्रद्धापूर्वक मेरे परायण होकर

मुझ वासुदेवका भजन करते हैं, वे सर्वश्रेष्ठ योगी हैं, यही मेरा मत है। इसलिए तुम ऐसे ही योगी बनो—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः॥

(गीता ६/४६-४७)

भक्तिके बिना अन्य उपायोंसे भगवान् सुलभ नहीं होते। श्रीकृष्णने स्वयं कहा है योगसाधन, ज्ञान-विज्ञान, धर्म-अनुष्ठान, जप, तप, पाठ और त्याग मुझे प्राप्त करानेमें समर्थ नहीं हैं। अनन्य प्रेममयी मेरी भक्ति ही मुझे प्राप्त करानेमें एकमात्र समर्थ है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

(श्रीमद्भा० ११/१४/२०)

श्रुतियोंमें भी ऐसा ही कहा गया है—

भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।

इसलिए श्रीमद्भगवद्गीतामें शारीरिक और मानसिक सारे अनित्य धर्मोंको त्यागकर भगवान्‌के शरणागत होनेका उपदेश दिया गया है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

इस प्रकार प्रामाणिक शास्त्रोंमें कहीं भी समस्त मत, पथ या लौकिक धर्म एक ही हैं—ऐसा नहीं बताया गया है। तत्त्वानभिज्ञ लोग 'यत मत तत पथ' इस भ्रान्त मतका प्रचार करते हैं।

विमानके द्वारा अत्यन्त ऊँचाईपर जानेपर नीचेके पेड़-पौधे ऊँचे-नीचे स्थल—सभी समतल दीखते हैं। यह देखनेवालेकी समुचित दृष्टिशक्तिके अभावका परिचय है, क्योंकि उनकी आँखें दूरगत वस्तुको समुचित प्रकारसे देख नहीं पातीं। इसी प्रकार तत्त्वज्ञानके अभावके कारण केवल अज्ञानी पुरुष ही अपनी ससीम भौतिक दृष्टिसे भले-बुरे सभी मतोंको एक समान देखते हैं, यह उनकी अज्ञानताका ही परिचय है। उनकी

अज्ञानमयी दृष्टिके देखनेमात्रसे ही कुकर्मी, सुकर्मी, निष्कामकर्मी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी—ये सभी एक नहीं हो जायेंगे। यदि ऐसा ही होता तो गीता आदि शास्त्रोंमें इस मतका खण्डन नहीं किया गया होता। बैलगाड़ी, ताँगा, रेल और कारके द्वारा एक ही गन्तव्य स्थलपर पहुँचा जा सकता है, सभी मार्गोंसे एक स्थानपर पहुँचा जा सकता है—ऐसा अज्ञानी या मूर्ख व्यक्ति ही कह सकता है। एक बैलगाड़ी, ताँगा या कारके द्वारा समुद्रके बीचमें स्थित इंग्लेंड, आस्ट्रेलिया, हवाई आदि देशोंमें या टापुओंपर नहीं पहुँचा जा सकता, यह सर्वविदित तथ्य है। एक ही रेलगाड़ीमें बैठनेवाले व्यक्ति भी अलग-अलग स्थानोंका टिकट लेकर एक ही गन्तव्य स्थलपर नहीं पहुँच सकते। उसी प्रकार सांसारिक भोग, मोक्ष और भगवत्प्रेम आदि विविध उद्देश्योंवाले साधक भी एक ही भगवान्‌की प्रेममयी सेवाको नहीं प्राप्त कर सकते। 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते' श्लोकमें कृष्णने यह अच्छी प्रकारसे बताया है।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि विभिन्न डाकघरोंमें पत्र देनेसे सारे पत्र एक ही गन्तव्य स्थलपर पहुँचते हैं, इसी प्रकार सारी उपासनाएँ एक ही परमेश्वरको प्राप्त होती हैं। किन्तु यह तर्क भी अज्ञानप्रसूत और नितान्त कपोल-कल्पित है। यदि समस्त पत्रोंका पता एक हो, तो विभिन्न डाकघरोंमें डालनेसे भी वे एक जगह पहुँचेंगे, यह बात तो ठीक है। किन्तु यदि पता अलग-अलग हो, तो वे अलग-अलग स्थानोंमें पहुँचेंगे। इसी प्रकार यदि सारी उपासनाएँ अनन्य रूपसे एक ही स्वयंभगवान् श्रीकृष्णके लिए हों, ये सारी उपासनाएँ शुद्ध होकर भक्तिमें पर्यवसित होकर भगवत्प्राप्ति करा सकती हैं। गीतामें यह क्रम सुन्दर रूपमें दिखाया गया है।

आजकल दरिद्रनारायणकी सेवा, जनता-जनार्दन, जीव ही शिव है—ऐसी बहुत-सी सिद्धान्त-विरुद्ध बातें सुनी जाती हैं। सत्-शास्त्रोंमें इसका कहीं भी अनुमोदन नहीं देखा जाता है। यदि दरिद्र ही नारायण है, तो पूर्व जन्ममें सुकर्मोंको करनेवाले धनी-मानी, सज्जन, शिक्षित एवं सम्भ्रान्त व्यक्ति क्यों नहीं नारायण हो सकते? किन्तु ऐसा माननेवाले सभी कुसंस्कारग्रस्त, नास्तिक व्यक्ति हैं। इनका शुद्ध आत्मधर्मसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आज तक कोई भी जीव कभी भी भगवान्

नहीं हो सका। आत्मा और परमात्मामें स्वरूपगत पार्थक्य है। जीवात्मा अणु, मायावश और अपने कर्मोंका फल भोग करनेके लिए विवश है। परमात्मा सारे विश्वके स्रष्टा, नियन्ता और पालक हैं। वे मायापति हैं। इन दोनोंको कैसे एक कहा जा सकता है? अतः ऐसे विचारोंवाले सर्वथा भ्रान्त और कुमतवादी हैं। जीव ही ज्ञानप्राप्तिके बाद मुक्त होकर शिव बन जाता है, जो लोग ऐसा कहते हैं, वे लोग नास्तिक हैं। जो अब तक महादेव शङ्करको पिता और भवानीको माता कह रहे थे, वे मुक्त होकर शिव होनेपर भवानीको पत्नी रूपमें देखेंगे। इसीलिए भवानी दुर्गाके रूपमें ऐसे दुष्टोंका गला काटकर उनके मुण्डमालाको धारण करती हैं। शास्त्रोंमें इसके अनेकों प्रमाण हैं।

श्रील आचार्यकेसरीके इस ओजस्वी भाषणको सुनकर कुछ उपस्थित अध्यापकोंने श्रीगुरुदेवके सामने एक प्रस्ताव किया कि हमलोग वेलूर मठस्थित रामकृष्णमिशनके प्रधान स्वामीजीको यहाँ बुलाकर लायेंगे और विशेष सभामें शास्त्रार्थके द्वारा इस विषयकी मीमांसाकी जायेगी। हमलोग कल ही उन्हें बुला रहे हैं। आचार्यकेसरीने उनलोगोंसे कहा कि मेरा नाम सुनकर वे कदापि नहीं आएँगे। श्रीगुरुदेवने प्रचार पार्टीके साथ तीन-चार दिनों तक रामकृष्ण मिशनके संन्यासियोंके लिए प्रतीक्षा की। किन्तु अन्तमें यह पता चला कि वे लोग किसी भी मूल्यपर शास्त्रार्थके लिए तैयार नहीं हैं।

(छ) सहजिया-मतका खण्डन

जो अप्राकृत भगवान्‌की अप्राकृत लीलाओंको प्राकृत (स्त्री-पुरुषके व्यवहार) जैसा देखते और समझते हैं, प्राकृत साधनके द्वारा अप्राकृत तत्त्वकी प्राप्ति होती है—ऐसी जिनकी धारणा होती है, उन्हें प्राकृत सहजिया कहते हैं। दूसरे सरल-सहज शब्दोंमें इसे इस प्रकारसे कहा जा सकता है कि जो अप्राकृत रसाचार्य श्रीरूप गोस्वामीकी शिक्षाओंके विपरीत जड़-स्थूल पुरुष-शरीरको ही स्त्रीवेशमें सजाकर अपनेको गोपी कल्पनाकर इस काल्पनिक गोपीभावसे भजन करनेका स्वाङ्ग करते हैं, उन्हें प्राकृत सहजिया कहा जाता है। ये लोग हृदयमें पुरुषभावका पोषणकर बाहरसे पुरुष-शरीरको छिपाकर सिरपर स्त्रियों जैसी लम्बी चोटी, लम्बा

घूँघट, नाकमें नथ, साड़ी या लँहगा, चोली, हाथोंमें चूड़ियाँ, कमरमें करधनी, पैरोंमें पाजेब आदि स्वर्णालङ्कार धारण करते हैं। ललिता, विशाखा आदिके रूपमें अपना परिचय देते हैं, अपने आश्रमोंमें युवती स्त्रियोंको सेवादासीके रूपमें रखते हैं, उनसे अनुचित-सम्बन्ध रखकर परकीया भजनकी आड़में स्त्रीसङ्ग करते हैं—ऐसे उनके शास्त्र-विरुद्ध आचरण होते हैं।

जो लोग पुरुष-शरीरको स्त्रीवेशमें तो नहीं सजाते, परन्तु उनके मतका समर्थन करते हैं, अधिकार-अनधिकारका विचार किये बिना हाट-बाजारमें सर्वत्र ही सर्वसाधारणके निकट अङ्ग-भङ्गीके साथ राई-कानू (राधा-कृष्ण) के क्रीड़ा-रहस्यका गान करते हैं, नखड़ोंके साथ रासलीलाका पाठ-प्रवचन एवं अनुकरण करते हैं, जिसे सुनकर लम्पट, दुराचारी लोग अप्राकृत रसको घृणित जड़-रस समझते हैं, जो लोग यह समझते हैं कि आकुमार ब्रह्मचारी श्रीजीव गोस्वामी, श्रील नरोत्तम ठाकुर घर-गृहस्थीमें प्रवेश न करनेके कारण कभी रसिक नहीं हो सके, अतः इस अप्राकृत रसकी उपलब्धिके लिए अवैध परकीय स्त्री (उपपत्नी) का सङ्ग नितान्त आवश्यक है, ऐसे लोग भी प्राकृत सहजियाकी कोटिमें ही आते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु बाहरसे पुरुष थे। अन्तरमें कृष्ण-सेविका गोपीभावका पोषण करते थे। परन्तु ये लोग इसके ठीक विपरीत हृदयमें पुरुषभावका पोषण करते हैं तथा बाह्य अङ्गोंमें पुरुषभावको छिपाकर गोपीवेश बनानेकी चेष्टा करते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभुका यह कथन है कि गोपीभाव आत्माका धर्म है। किन्तु प्राकृत सहजिया लोग गोपीभावको देहका धर्म समझते हैं—

अन्तरे निष्ठा कर बाह्ये लोक-व्यवहार।
अचिरात् कृष्ण तोमाय करिबे उद्धार॥
(चै॰ च॰ म॰ १६/२३९)

मने निज-सिद्धदेह करिया भावन।
रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥
(चै॰ च॰ म॰ २२/१५२)

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुजी कह रहे हैं कि प्रारम्भमें अन्तर-हृदयमें निष्ठा रखते हुए जीवन-निर्वाहके लिए लोकव्यवहार करना आवश्यक है। धीरे-धीरे निष्ठाके परिपक्व होनेपर अपने-आप लोक व्यवहार भी भजनके अनुरूप हो जायेगा अर्थात् अनुकूल हो जायेगा। इसलिए ऐसी अवस्थामें मन-ही-मन अन्तश्चिन्तित युगल सेवनोपयोगी सिद्धदेहकी भावना करते हुए श्रीकृष्णकी अप्राकृत मानसी सेवा होनी चाहिये। इसके द्वारा पहले स्वरूपसिद्धि (सिद्धदेहकी अनुभूति) होती है एवं अन्तमें वस्तुसिद्धिके समय प्राकृत शरीर छूटनेके पश्चात् अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहके अनुरूप प्रकट व्रजमें गोपीदेहकी प्राप्ति होती है।

श्रील रूप गोस्वामीने रागनुगा भक्तिसाधनके प्रकरणमें ऐसा कहा है—

(१) कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥

(२) सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

(३) श्रवणोत्कीर्तनादीनि वैधीभक्त्युदितानि तु।
यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः॥

अर्थात् श्रीकृष्ण और अपने अभिलषित उनके प्रियजनोंका सदा स्मरण करते हुए उनकी लीलाकथाओंमें निरत रहकर सदा व्रजमें वास करना चाहिये। साक्षात् रूपसे व्रजमें वास करनेमें असमर्थ रहनेपर मन द्वारा व्रजमें वास करना चाहिये। इस रागानुगमार्गमें साधक रूपसे अर्थात् यथावस्थित बाह्य देहके द्वारा और सिद्धरूपमें अर्थात् अन्तश्चिन्तित अपने मनोऽभिलषित श्रीकृष्णसेवाके उपयोगी देहके द्वारा व्रजस्थित अपने अभीष्ट कृष्णके प्रियजनोंके भाव अर्थात् रतिविशेषके प्रति लुब्ध होकर कृष्णके प्रियजनों एवं उनके अनुगत जनोंका अनुसरण करते हुए उनकी सेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये। वैधीभक्तिमें श्रवण-कीर्त्तन आदि जिन भक्ति-अङ्गोंके पालन करनेकी बात अधिकारके अनुसार कही गयी है, भक्तितत्त्वविद् पण्डितजन रागानुगाभक्तिमें भी योग्यताके अनुसार इन्हीं अङ्गोंके पालनकी उपयोगिता निर्देश करते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु एवं उनके मनोऽभीष्टको पूर्ण करनेवाले श्रील रूप गोस्वामीने कहीं भी पुरुष साधकोंको अपने पुरुष रूपको छिपाकर वेणी, घूँघट, लहँगा, चोली और स्त्रियोचित अलङ्कार आदि धारणकर पराई स्त्रियोंके साथ रागानुगाभजन करनेका उपदेश नहीं दिया है। इन्होंने सर्वत्र ही इसे शास्त्रविरुद्ध दुराचारकी संज्ञा दी है। श्रीमन्महाप्रभुने छोटे हरिदासका वर्जनकर भक्तिसाधकोंके लिए एक उच्च आदर्श स्थापित किया है। षड्गोस्वामियोंका भी ऐसा ही निर्मल आदर्श रहा है। श्रील रूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु, श्रीउज्ज्वलनीलमणि आदि ग्रन्थोंमें श्रुतियों एवं दण्डकारण्यवासी ऋषियोंके सुशीतल पदचिह्नोंपर चलकर साधन-भजनके लिए उपदेश दिया है। श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरायरामानन्द, श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीनरोत्तम ठाकुर, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर आदि ऐसे भजनके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इनका जीवन कितना पवित्र है। शुद्ध भक्तोंके लिए ऐसे-ऐसे महापुरुषोंका अनुसरण करना ही उचित है।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने 'सहजिया-मतका हेयत्व' नामक प्रबन्धमें लिखा है—"बंगदेशके अनेक स्थानोंमें सहजिया नामक एक घृणित मतवाद छिप-छिपकर चल रहा है। इस मतके सभी कार्य एवं आचरण अत्यन्त दूषित एवं घृणित हैं। चिन्मय जीवोंके लिए चिन्मय कृष्णसेवा ही सहज धर्म है। 'सहज' शब्दका तात्पर्य है—सह-ज अर्थात् आत्माके साथ उदित होनेवाला। यद्यपि शुद्ध आत्माके लिए चिन्मय कृष्णसेवा सहज है अर्थात् वह जीवात्माके साथ ही उत्पन्न हुई है, अतः स्वाभाविक है, तथापि जड़बद्ध अवस्थामें वह सहज नहीं है। उस विशुद्ध कृष्णरतिको वञ्चित और वञ्चक लोगोंने स्त्री-पुरुषके संयोगरूप जड़ीय सहज धर्मके रूपमें परिणत कर दिया है। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। आत्माके सहज धर्ममें जड़ीय स्त्री-पुरुषके शरीरका संयोग अत्यन्त घृणित, दुराचार एवं अनुपयुक्त है। आजकल जिसे सहजिया धर्म कहा जाता है, वह सर्वथा शास्त्रविरुद्ध, दुर्नैतिक, असदाचार है। शुद्ध वैष्णवोंको सर्वथा इससे सावधान रहना चाहिये। जिस धर्ममें प्रवेश करनेपर बाएँ कानमें मन्त्र लेनेकी प्रथा है, वह सर्वथा व्यभिचार है।

"व्रजेन्द्रनन्दनकी प्राप्तिके लिए किसी स्त्रीका सङ्ग करना चाहिये—शास्त्रोंमें ऐसा कहीं भी उपदेश नहीं है। मधुररसमें प्रवेश करनेपर अणुचैतन्य जीव स्वयं प्रकृतत्व लाभ करता है। उनके लिए जड़ीय प्रकृति-सङ्गकी कोई आवश्यकता नहीं होती। छोटे हरिदास स्वयं प्रकृति (स्त्री) होकर पुरुषभावसे दूसरी प्रकृतिसे बातचीत करनेके अपराध करनेके कारण महाप्रभुके द्वारा त्याग दिये गये थे। धूर्त्त लोग 'प्रकृति हइया करे प्रकृति सम्भाषण'—इस पयारका दोषपूर्ण गलत अर्थकर अपने इन्द्रियभोगका पथ सृजन करते हैं। शुद्ध वैष्णवगण इनकी उपेक्षा करते हैं। गृहस्थोंके लिए विवाहित स्त्रीसङ्ग भी किसी भजनका अंश नहीं है, इसलिए संसारयात्रा निर्वाहके लिए उसे वैधरूपमें स्त्रीसङ्ग (निष्पाप) माना गया है।

"शुद्ध वैष्णवोंके विचारसे पुरुष-साधक स्त्री-साधकसे अलग रहकर भजन करेंगे। स्त्री-साधक किसी भी पुरुषको अपनी भजनमण्डलीमें न बुलायें। भजन सम्पूर्ण चिन्मय कार्य है। तनिक भी जड़ीय भाव उसमें प्रवेश करानेपर वह नष्ट हो जाता है।"

(ज) भेक एवं सिद्धप्रणाली

कुछ दिनोंसे बंगाल एवं व्रजके राधाकुण्ड, वृन्दावन आदि स्थानोंमें भेकधारण एवं सिद्धप्रणाली नामक प्रथाने श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं षड्गोस्वामियोंके द्वारा प्रतिष्ठित शुद्धभक्तिका स्वरूप ही विकृत कर दिया है। अधिकार-अनधिकारका विचार किये बिना ही अपना दल भारी करनेके लिए ये लोग जैसे-तैसे, व्यभिचारी, लम्पट, शास्त्रसिद्धान्तरहित लोगोंको भी सिद्धप्रणाली (?) एवं बाबाजी वेश प्रदान करते हैं। ये लोग इसका दुरुपयोगकर और भी भ्रष्ट और लम्पट हो पड़ते हैं।

(i) भेकधारण

भेकधारणकी प्रथा कब-से प्रचलित हुई है, इसका अनुसन्धान करनेपर हम देखते हैं कि षड्गोस्वामीगण, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीनरोत्तम दास ठाकुर, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आदिके समय तक यह प्रथा प्रचलित नहीं थी, क्योंकि ये लोग सहज-परमहंस थे। श्रीसनातन

गोस्वामीने स्वाभाविक रूपसे काशीमें तपन मिश्रसे एक पुरानी धोती लेकर उसे चीरकर बहिर्वास और डोर-कौपीनके रूपमें धारण किया था। वहाँ सिद्ध प्रणाली देने आदिका कोई उल्लेख नहीं है। वह केवल भजननिष्ठाके लिए त्याग-वेशका सूचक था। इसी प्रकार अन्य गोस्वामियोंके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। यह एक प्रकारसे भिक्षुक आश्रम या संन्यासके ही अन्तर्गत है, क्योंकि परमहंस महात्माओंका कोई भी निश्चित वेश नहीं होता। वे संन्यास आदि आश्रमोंके लिंगों एवं विधि-निषेधोंसे अतीत होते हैं तथा भगवत्-प्रेममें सर्वदा विभोर रहते हैं। ऐसे परमहंसोंके ऊपर वेद आदि शास्त्रोंके विधि-निषेधोंका कोई अङ्कुश नहीं होता। किन्तु जो लोग परमहंस-अवस्थामें नहीं हैं, वे साधन-भजनकी निष्ठाके लिए या तो वैष्णव-संन्यास (सत्क्रियासार-दीपिका आदि सात्त्वत वैष्णव स्मृतियोंके अनुसार) ग्रहण करते हैं अथवा उसी विधिके अनुसार श्वेत वहिर्वास और डोर-कौपीन धारण करते हैं, इसे ही भेकधारण कहते हैं। 'भेक' शब्द संस्कृत भेष शब्दका अपभ्रंश है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने 'भेकधारण' नामक प्रबन्ध (गौड़ीय पत्रिका वर्ष ६, संख्या २ में पुनर्मुद्रित) में लिखा है—

"भेक शब्दसे भिक्षुकके आश्रमका बोध होता है। संन्यास-आश्रमका ही नाम भिक्षु-आश्रम है। संन्यासी व्यक्ति इस जीवनमें कभी भी स्त्रियोंका सङ्ग नहीं कर सकते। वे भिक्षावृत्ति द्वारा जीवननिर्वाह करेंगे।

"यहाँ प्रश्न होता है कि भेकधारी वैष्णवगण कौन-से आश्रममें अवस्थित हैं? हमने जहाँ तक शास्त्र और महाप्रभुके उपदेशोंका अनुशीलन किया है, उसके द्वारा स्थिर किया है कि निःसङ्ग वैष्णवगण भिक्षु-आश्रममें अवस्थित हैं। जब उनके लिए स्त्रीसङ्ग सम्पूर्णतः निषिद्ध है, तब वे संन्यास-आश्रममें ही अवस्थित हैं। संन्यासका चिह्न ही कौपीन है। जब उन्होंने डोर-कौपीन या बहिर्वासको धारण कर लिया है, तब वे निश्चय ही संन्यास-आश्रमके अन्तर्गत हैं।

"संन्यास दो प्रकारका होता है—साधारण संन्यास और वैष्णव संन्यास। इन दोनोंमें बहुत ही पार्थक्य है। साधारण संन्यासमें शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य, सत्-असत् ज्ञान तथा ब्रह्म प्राप्तिकी आकांक्षा—इन धर्मोंका उदय होनेपर संन्यास ग्रहण किया जाता है। परन्तु वैष्णव संन्यासियोंके

लिए इन गुणोंका होना ही अधिकार प्रदान नहीं करता। सर्वप्रथम भगवत्-विषयणी श्रद्धा, तदनन्तर साधुसङ्ग, भजन-क्रिया, अनर्थ-निवृत्ति आदि प्रक्रियाके द्वारा जब भगवत्-रति हृदयमें उदित होती है, उस अवस्थामें विरक्ति नामका एक धर्म वैष्णवका आश्रय करता है। उस दशामें वैष्णव-साधकका गृहस्थ-आश्रमसे पूर्णतः वैराग्य हो जाता है तथा वह अपने अभाव (आवश्यकता) को सीमित करनेके लिए कौपीन आदि धारणकर भिक्षा द्वारा जीवननिर्वाह करते हैं। इसीका नाम वैष्णवभेक है। जो सरलताके सहित निष्कपट होकर भगवत्-भजनके लिए भेकधारण करते हैं, वे जगत्के वन्दनीय हैं। इस प्रकारका भेक-ग्रहण दो प्रकारसे होता है। कोई-कोई साधक भावजनित विरक्ति लाभकर किसी उपयुक्त गुरुके निकट भेक ग्रहण करते हैं और कोई-कोई स्वयं ही डोर-कौपीन-बहिर्वास धारणकर विचरण करते हैं। श्रीमन्महाप्रभुके सम्प्रदायमें यह भेक-पद्धति अत्यन्त पवित्र है। मैं ऐसी पद्धतिको बारम्बार श्रद्धापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ।

"किन्तु दुर्भाग्यका विषय यह है कि आजकल भेकाश्रम अत्यन्त दूषित हो रहा है। अधिकारका विचार सम्पूर्णतः उठ गया है। अनधिकारी होनेपर भी भेकधारणकी इच्छा हुई और मस्तक मुण्डन कराकर डोर-कौपीन धारणकर भेक ले बैठा।

"वर्त्तमान कालमें संन्यास प्रणालीमें कुछ विकृतियाँ आ गयी हैं। वे ये हैं—(१) कुछ गृहस्थ वैष्णव मस्तक मुण्डनकर एवं कौपीन धारणकर बाबाजी बन जाते हैं। इससे बढ़कर अनर्थ क्या हो सकता है? उनका यह कार्य लोक एवं शास्त्रविरुद्ध है। यदि संसारसे यथार्थतः विरक्ति हो, तो यथार्थ रूपमें निःसङ्ग भेक ग्रहण करें। अन्यथा वैष्णवधर्मको ये कलङ्कित ही करेंगे और परलोकमें भी इसका फल भोग करेंगे।

(२) बाबाजी लोगोंका अपने आश्रमोंमें सेविकाओंको रखना भी एक भयङ्कर अमङ्गलजनक प्रथा है। किसी-किसी आश्रममें बाबाजी लोग अपने पूर्वाश्रमकी पत्नीको भी सेविकाके रूपमें रखते हैं। ये लोग देवसेवा और साधुसेवाके छलसे स्त्रीसङ्ग करते हैं।

(३) विरक्त बाबाजी लोगोंके लिए स्त्री-लोभ, अर्थ-लोभ, खाद्य-लोभ आदि एकान्त वर्जनीय हैं। आजकल विरक्त लोगोंमें इन

दोषोंको देखकर वैष्णवजगत्के प्रति जनसाधारणमें अविश्वास फैल रहा है। सार बात यह है कि भागवती रतिसे उत्पन्न यथार्थ विरक्तिके बिना जो लोग वैराग्य-लिंग धारण करते हैं, वे जगत्के लिए उत्पात स्वरूप एवं वैष्णवधर्मके लिए कलङ्कस्वरूप हैं। अनधिकार भेकग्रहण करनेसे स्वयंका अधःपतन और वैष्णवधर्मकी अवमानना भी निश्चित है।”

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीव्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलके प्रधान-प्रधान स्थानोंमें आजकल ये कुरीतियाँ प्रत्यक्ष रूपसे दृष्टिगोचर होने लगीं। श्रील प्रभुपाद एवं उनके आश्रित शुद्ध वैष्णवोंके प्रति इन अखाड़ाधारी बाबाजी लोगोंने आक्षेप करना आरम्भ कर दिया कि गौड़ीय मठके वैष्णव लोग गेरुआ वस्त्र एवं संन्यास धारण करते हैं, इनमें कोई सिद्धप्रणाली नहीं है तथा ये लोग रसतत्त्वसे अनभिज्ञ ज्ञानी हैं। परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने इन आक्षेपोंका शास्त्रीय प्रमाणों एवं प्रबल युक्तियोंसे खण्डन किया तथा सर्वत्र ही शुद्धभक्तिका प्रचार किया है। इसके लिए उन्होंने श्रीगौड़ीय पत्रिका एवं भागवत पत्रिकामें श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके पूर्वलिखित प्रबन्धोंको पुनः प्रकाशित करवाया, सहजिया-दलन नामक एक ग्रन्थका प्रकाशन कराया, व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलके बहुत-से स्थानोंकी बृहत्-बृहत् सभाओंमें इसका प्रतिवाद भी किया। इसके लिए विरोधी पक्षसे इनके ऊपर अदालतमें मान-हानिका मुकदमा भी हुआ। किन्तु अन्तमें अदालत कक्षमें ही विरोधी पक्षको इनसे क्षमा-भिक्षा करनी पड़ी।

(ii) सिद्धप्रणाली

आजकल व्रजमण्डल, गौड़मण्डल एवं क्षेत्रमण्डलके विशेष-विशेष स्थानोंमें सिद्धप्रणालीका अत्यन्त दुरुपयोग हो रहा है। तत्त्वज्ञानहीन, वैधी-साधनभक्तिसे अनभिज्ञ, स्त्रीके मर जानेपर घरसे प्रताड़ित व्यक्ति भी रातों-रात सिर मुण्डन कराकर एवं कौपीन धारणकर झट सिद्धप्रणाली प्राप्त कर लेते हैं। आजकल आठ आना पैसा देकर सिद्धप्रणाली सहज ही पायी जा सकती है। मन्त्र देनेके पहले ही दाम-दस्तूर हो जाता है। इन लोगोंका यह विचार है कि सिद्धप्रणाली नहीं मिलनेसे साधकोंका

कल्याण नहीं होता। वैधीभक्तिके साधनकी कोई आवश्यकता नहीं। तत्त्वज्ञान एवं अनर्थनिवृत्तिकी भी कोई आवश्यकता नहीं। रागानुगाभक्तके लिए वैधीभक्तिके चक्करमें न फँसकर अनर्थनिवृत्तिसे पूर्व ही सिद्धप्रणाली प्राप्त होना आवश्यक है। इन लोगोंकी धारणा ऐसी है—जैसे फूल होनेके पहले ही पत्तेमें फल लगेंगे।

आजसे लगभग ५५ वर्ष पूर्व हमलोग परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके साथ व्रजमण्डल परिक्रमामें आये थे। लगभग ४०० यात्रियोंके साथ परिक्रमासंघ मथुराकी बड़ी धर्मशालामें ठहरा था। उसमें गुरुदेवने एक बड़ा भण्डारा किया था, जिसमें स्थानीय सभी साधु-सन्त एवं वैष्णवोंको आमन्त्रित किया गया था। बहुत अधिक संख्यामें भेक ग्रहण करनेवाले बाबाजी भी उसमें सम्मिलित हुए थे। जब बाबाजी लोग श्रील गुरुदेवसे मिलने आये तो कुतूहलवश गुरुदेवने उनसे पूछा कि आपलोगोंके कृष्णभजनका उद्देश्य क्या है? प्रश्न सुनते ही पहले तो वे सकपका-से गये, फिर सोचकर बोले कि कृष्णभजन करनेसे हमें मुक्ति मिल जायेगी और हम कृष्णमें मिल जायेंगे। उनका उत्तर सुनकर गुरुजी बड़े दुःखी हुए। उन्होंने उनसे और भी कुछ पूछताछ की जिससे उन्हें यह ज्ञात हुआ कि उनके आश्रमोंमें महिलाएँ भी सेवादासीके रूपमें रहती हैं। तब-से उन्होंने गौड़ीय वैष्णव समाजमें फैले इन कुरीतियोंका संस्कार करनेका सङ्कल्प किया। मैंने पहले ही इसे इङ्गित किया है। ये जीवनभर शुद्धभक्तिके प्रचारमें व्यस्त रहनेपर भी इस विषयको भूले नहीं। इस सुधारका बहुत कुछ श्रेय इन महापुरुषको है। इस विषयमें उनके जिन विचारोंको मैंने श्रवण किया है, उसे यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

शुद्ध भक्तिराज्यमें प्रवेश करनेके लिए श्रील रूपगोस्वामीने 'आदौ श्रद्धा ततः साधुसङ्गोऽथ भजनक्रिया, ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात् ततो निष्ठा रुचिस्ततः। अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति, साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥' का एक क्रम निर्धारित किया है। इस क्रमका उल्लंघन करनेपर भक्ति सुदूर पराहत है। इसीलिए प्रेमराज्यमें प्रवेश करनेके लिए साधनभक्तिके प्रथमाङ्ग वैधीभक्तिका अनुष्ठान नितान्त आवश्यक है। वैधीभक्ति कृष्णप्रेम प्राप्त करानेका साक्षात् अङ्ग नहीं होनेपर भी रागमार्गमें प्रवेश करनेके लिए वैधीभक्तिके अङ्गोंका यथायोग्य

पालन करनेकी आवश्यकता है। वैधीभक्ति शास्त्रीय प्रमाणोंकी सुदृढ़ भित्तिपर प्रतिष्ठित एवं प्रबल मर्यादायुक्त है। यहाँ तक कि रागानुगीय साधनभक्ति एवं वैधीभक्तिके अङ्गोंके पालनमें कोई विशेष पार्थक्य नहीं है। अन्तर है केवल पालनकी निष्ठामें। अतः वैधीभक्तिके साधनके अङ्गोंकी पूर्णरूपेण उपेक्षा नहीं की जा सकती है। श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रयोजनतत्त्व—कृष्णप्रेमके प्रसङ्गमें श्रीसनातन गोस्वामीको उपदेश देते हुए कह रहे हैं—

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेई जीव 'साधुसङ्ग' करय॥

साधुसङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन'।
साधनभक्त्ये हय सर्वानर्थनिवर्तन॥

अनर्थनिवृत्ति हइले भक्त्ये 'निष्ठा' हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय॥

रुचि हैते भक्त्ये हय 'आसक्ति' प्रचुर।
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्णे प्रीत्यङ्कुर॥

सेई 'रति' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम।
सेई प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द धाम॥

(चै॰ च॰ म॰ २३/९-१३)

अतएव इस क्रमका उल्लंघन करनेपर भक्तिराज्यमें प्रवेश कदापि सम्भव नहीं है। अतः जो लोग वैधी-साधनभक्तिके अङ्गोंकी उपेक्षाकर इसमें प्रवेश करना चाहते हैं, वे सर्वथा शास्त्रबहिर्भूत और उच्छृंखल हैं। शुद्धभक्तिसे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है।

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने भी ऐसा ही कहा है—

विधिमार्गरत जने स्वाधीनता रत्नदाने रागमार्गे करान प्रवेश।

साध्य वस्तुके क्रमविचारसे श्रीमतीराधाजीका कृष्णके प्रति प्रेम ही साध्यशिरोमणि है। फिर भी श्रीचैतन्य महाप्रभुने पारकीयभावयुक्त 'राधादास्य' को ही जीवोंके लिए साध्य बताया है। साध्य वस्तु प्राप्त करनेके लिए साधनकी आवश्यकता है—

साध्यवस्तु साधन विना केह नाहि पाय।
कृपा करि कह राय पावार उपाय॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/१९६)

श्रीराय रामानन्द इसका उत्तर देते हुए कह रहे हैं—

राधाकृष्णेर लीला एइ गूढ़तर।
दास्य-वात्सल्यादि-भावे न हय गोचर॥

सबे एक सखीगणेर इहाँ अधिकार।
सखी हैते हय एइ लीलार विस्तार॥

सखी बिना एइ लीला पुष्टि नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय॥

सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे ये ताँरे करे अनुगति॥

राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२००-२०४)

अतएव गोपीभाव करि अङ्गीकार।
रात्रि-दिन चिन्ते राधाकृष्णेर विहार॥

सिद्धदेह चिन्ति' करे ताहाँर सेवन।
सखीभावे पाय राधाकृष्णेर चरण॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२२७-२२८)

सारांश यह है कि राधाकृष्णकी प्रेममयी लीला अत्यन्त रहस्यपूर्ण है, जो कि दास्य, वात्सल्य आदि भाववालोंके लिए भी अगोचर है। केवल सखियोंका ही इसमें अधिकार है। इसलिए सखियोंके आनुगत्यके बिना अन्य किसी भी साधनसे श्रीमती राधिकाका दास्य अथवा श्रीराधाकृष्णयुगलकी कुञ्जसेवा प्राप्त नहीं हो सकती। अतएव अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहके द्वारा गोपीभावसे दिवा-रात्र राधाकृष्णकी लीलाओंका चिन्तन ही उक्त सर्वश्रेष्ठ साध्यको पानेका एकमात्र उपाय

है। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें श्रीरागानुगा-भक्तिके साधन-प्रकरणमें निर्देश दिया है—

(१) कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद्वासं व्रजे सदा॥

(२) सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

(३) श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि वैधीभक्त्युदितानि तु।
यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः॥

श्रीलरूप गोस्वामीने रागनुगाभक्तिके दो प्रकारके साधनोंका उल्लेख किया है—

सेवा साधकरूपेण सिद्धारूपेण चात्र हि।
तद्भावलिप्सुना कार्या व्रजलोकानुसारतः॥

रागात्मिकाभक्तिमें लोभ होनेपर रागानुगाभक्तिका अनुष्ठान दो प्रकारसे किया जाता है—साधक रूपसे अर्थात् यथावस्थित बाह्य देहके द्वारा और सिद्ध रूपसे अर्थात् अपने अभिलषित कृष्णपरिकरोंके भाव या कृष्णविषयक रति प्राप्त करनेके लिए लुब्ध होकर व्रजलोकके परिकरों—ललिता, विशाखा, श्रीरूपमञ्जरी आदि एवं उनके अनुगत श्रीरूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी आदिके अनुसार करना होता है। साधक रूपसे कायिकी सेवा श्रीरूप, सनातन आदि व्रजवासी महानुभावोंके अनुसार एवं सिद्ध रूपसे मानसी सेवा श्रीरूप मञ्जरी आदि व्रजवासियोंके अनुसार करनी होगी। श्रीचैतन्यचरितामृतमें उपर्युक्त श्लोकका तात्पर्य इस प्रकार दिया गया है—

बाह्य, अभ्यन्तर—इहार दुइ त' साधन।
'बाह्य' साधक-देहे करे श्रवण-कीर्तन॥

'मने' निज-सिद्धदेह करिया भावन।
रात्रि-दिने करे व्रजे कृष्णेर सेवन॥

(चै॰ च॰ म॰ २२/१५१-१५२)

अतः रागानुगाभक्ति-साधकोंके लिए श्रवण-कीर्त्तन, तुलसी-सेवन, तिलकादि धारण, श्रीएकादशी-जन्माष्टमी आदि व्रतपालन आदि भावसम्बन्धी साधन सर्वथा अनुष्ठेय हैं। इसके द्वारा स्वाभीष्ट भावकी परिपुष्टि होती है, साथ ही अपने हृदयमें सिद्धदेहकी भावना कर व्रजमें राधाकृष्णकी सेवा भी करनी होगी। राधागोविन्दकी सेवोपयोगी गोपीदेहका नाम ही सिद्धदेह है। भजन पूर्ण होनेपर जड़देहके त्यागके पश्चात् जीवोंके नित्य-स्वरूपमें उसीके अनुरूप गोपीदेहकी प्राप्ति होती है। श्रील नरोत्तम ठाकुरने कहा है—

साधने भाविबे याहा सिद्धदेहे पाइबे ताहा
रागपथे एइ से उपाय।

साधनके समय जिस विषयकी निरन्तर भावना होती है, मृत्युके समय वही भावना प्रबल होकर चित्तको तन्मय करती है। मृत्युकालमें जिस विषयकी जैसी स्मृति होती है, उसीके अनुरूप उसकी गति भी होती है। जिस प्रकार राजर्षि भरत मृत्युकालमें हिरण (शिशुकी) चिन्तामें निमग्न होनेके कारण हिरणदेहको प्राप्त हुए थे, उसी प्रकार अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहमें निरन्तर भावित युगलसेवोपयोगी देह प्राप्तिमें सन्देह ही क्या है?

सनत्कुमार संहितामें सिद्धदेहके सम्बन्धमें कहा गया है—

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोरमाम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमोदाकृतिम्॥

X X X X X

राधिकानुचरी नित्यं तत्सेवनपरायणाम्।
कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्वतीम्॥

अर्थात् सदाशिव नारदजीको युगलसेवोपयोगी सिद्धदेहके विषयमें उपदेश दे रहे हैं—नारद! अप्राकृत वृन्दावनधाममें परकीयाभिमानिनी श्रीकृष्णकी प्रियाओंके बीच तुम अपने स्वरूपकी इस प्रकार भावना करो—मैं अतिशय सुन्दर, रूपयौवनसम्पन्ना, परमानन्दमयी किशोरी हूँ। श्रीमती राधिकाकी नित्य अनुचरी हूँ। श्रीकृष्णकी परमप्रिय वल्लभा श्रीमती राधिकाको कृष्णके साथ मिलाकर उन दोनोंको सदा सुखी कराऊँगी।

अतएव कृष्णप्रियतमा राधिकाकी अनुचरी हूँ और सदा-सर्वदा युगलसेवापरायण रहकर भी मैं कृष्णकी अपेक्षा श्रीमतीके प्रति अधिक प्रेम रखनेवाली होऊँ इत्यादि।

अब यह विचारणीय है कि शास्त्रों एवं महाजनोंके उपदेशोंमें जिस सिद्धदेहका वर्णन है, वह किस अवस्थाके साधकोंके लिए कहा गया है। जहाँ कहीं भी 'सिद्धदेह' का उल्लेख हुआ है, वह रागानुगाभक्तिके प्रसङ्गमें दिखाया गया है। विशेषतः जिस सौभाग्यवान् साधकके हृदयमें पूर्वसंस्कार एवं आधुनिक संस्कारके द्वारा रागात्मिकाभक्ति पानेका लोभ यथार्थ रूपमें उदित हो चुका है, ऐसे लोभयुक्त साधकोंके लिए ही ऐसे उपदेश दृष्टिगोचर होते हैं।

यहाँ एक और विचारणीय बात यह है कि शास्त्रप्रदत्त विवेक द्वारा किसी रसविशेषका उत्कर्ष जान लेना एक बात है और उस रसके प्रति लोभ होना अलग बात है। उस रसविशेषमें किसीका लोभ होनेपर उस साधकमें लोभके लक्षण भी दृष्टिगोचर होंगे। यह लोभ उदित होनेपर रुचिकी अवस्थासे यह रागानुगा-साधनभक्ति आरम्भ होती है। इसके द्वारा यह समझना होगा कि ऐसे साधकोंके नामापराध, सेवापराध एवं अन्यान्य अनर्थ अधिकांशतः दूर हो चुके हैं तथा वह श्रील रूपगोस्वामी द्वारा उपदेशामृतमें कहे गये छह वेगोंका दमन कर चुका है, छह दोषोंसे मुक्तप्राय है, 'उत्साहात् निश्चयात्' आदि छह गुणोंसे युक्त है, तीन प्रकारके वैष्णवोंको पहचानकर उनके साथ यथोचित व्यवहारमें निपुण है, 'तन्नामरूपचरितसादि ... उपदेशसारम्'—इस श्लोकके तात्पर्यमें भी प्रतिष्ठित हो गया है अर्थात् इसका यथायथ आचरण कर रहा है। इस अवस्थामें भजन करते-करते जब साधक रुचिकी अवस्थाको पारकर आसक्तिकी अवस्थामें प्रवेश करता है, तब श्रीरूप गोस्वामी द्वारा कथित 'क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं'—इस उपदेशका आभास साधकमें परिलिक्षत होगा। दूसरी ओर आसक्तिकी अवस्थामें भावावस्थामें उदित होनेवाली रतिका आभास उदित होगा तथा उस रतिको पूर्ण रूपसे उदित करानेके लिए सिद्धदेहकी भावना करते हुए भजन करेगा। भजनके द्वारा यह रत्याभास जब रतिमें परिणत होता है, तब वस्तुतः साधकको अपने स्वरूपका परिचय प्राप्त होता है। इसीको सिद्धदेहकी भावना अथवा वैष्णवोंका

भेकग्रहण कहते हैं। जो इसे सरलताके साथ लाभ करते हैं, वे जगत्-पूज्य हैं। इस प्रकार भेक ग्रहण दो प्रकारसे होता है—किसी उपयुक्त गुरुके निकटसे साधक इसे प्राप्त करता है या इस अवस्थामें वैराग्य उदित होनेपर स्वयं ग्रहण करता है। हरिदास ठाकुर, षड्गोस्वामीगण, लोकनाथ गोस्वामी आदि स्वयं भेक ग्रहण करनेके प्रमाण हैं। इसी प्रकार श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने श्रील गौरकिशोर दास बाबाजीसे दीक्षामन्त्र ग्रहण करनेके पश्चात् उनके अप्रकट होनेपर जो संन्यासवेश ग्रहण किया, वह शास्त्रसम्मत है। श्रीरामानुजाचार्यने भी अपने गुरु श्रील यमुनाचार्यके अप्रकट होनेके बाद स्वयं ही त्रिदण्डियतिका वेश ग्रहण किया था।

किन्तु सिद्धदेहकी भावना गुरुकृपाके सापेक्ष है। इस अवस्थामें रसविचारमें प्रतिष्ठित स्वरूपसिद्ध गुरु या शिक्षागुरु ही साधकके सिद्धदेहका निर्देश करेंगे। अन्यथा इस क्रमका विपर्यय होनेपर साधककी सिद्धि नहीं होती, बल्कि उसकी भक्ति भी नष्ट हो जाती है और साम्प्रदायिक विचारधारा भी दूषित हो जाती है, जो आजकल सर्वत्र परिलक्षित हो रही है।

कुछ अनभिज्ञ लोगोंका यह कहना है कि गौड़ीय मठमें सिद्धप्रणाली नहीं है—यह सर्वथा दुष्प्रचार एवं भ्रमपूर्ण है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं बलदेव विद्याभूषणके पश्चात् श्रीमहाप्रभुके अनुगत गौड़ीय सम्प्रदायमें एक अन्धकार युगका आरम्भ हुआ, जिसमें श्रीरूपानुग भक्तिधारा कुछ विकृत हुई। इसमें तरह-तरहकी काल्पनिक कुरीतियों एवं शुद्धभक्तिविरुद्ध विचारोंका सम्मिश्रण हो गया। उस समय ऐसी विषम परिस्थिति हुई कि उनके असदाचारोंको देखकर सभ्य समाज गौड़ीय वैष्णवमात्रके नामसे ही घृणा करने लगा। इस प्रकार गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय शिक्षित, सम्भ्रान्त समाजसे एक प्रकारसे अलग-थलग हो गयी। उसी समय सप्तम गोस्वामी सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर एवं श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वतीका आविर्भाव हुआ।

इन दोनोंने गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाकर सम्प्रदायको खोया हुआ गौरव प्रदान किया। आज केवल भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्वमें शिक्षित-सम्भ्रान्त समाजमें श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा

आचरित एवं प्रचारित नामसङ्कीर्त्तन एवं शुद्धभक्तिका जो प्रचार एवं प्रसार हुआ है, उसका सारा श्रेय इन दोनों महापुरुषों एवं इनके अनुगत जनोंको ही है। इन्होंने विश्वमें सर्वत्र शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्र—गौड़ीय मठकी स्थापनाकर, विश्वकी सभी श्रेष्ठ भाषाओंमें पत्र-पत्रिकाएँ एवं शुद्धभक्ति ग्रन्थोंका प्रकाशनकर अल्प समयमें ही गौड़ीय वैष्णव समाजमें क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया है।

हमने पहले ही यह बताया है कि कुछ लोगोंका यह विचार कि गौड़ीय मठमें सिद्धप्रणाली नहीं है, यह भ्रम है। श्रील गोपाल भट्ट गोस्वामी कृत श्रीहरिभक्तिविलासके परिशिष्ट ग्रन्थ सत्क्रियासारदीपिका एवं संस्कारदीपिका नामक प्रामाणिक ग्रन्थमें त्रिदण्डसंन्यास-संस्कारका उल्लेख है। जयपुरके राजकीय ग्रन्थागारमें श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी द्वारा लिखित हस्तलिपि आज भी संरक्षित है। इसीकी एक प्राचीन प्रतिलिपि श्रीराधारमणके गोस्वामियोंके पास अभी भी संरक्षित है। इसलिए यह एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसी संस्कार-दीपिकाके अनुसार गौड़ीय वैष्णवोंमें त्रिदण्डियतिवेश दिया जाता है। इस संन्यास-संस्कारमें डोर-कौपीन, बहिर्वास एवं गोपीभावाश्रित संन्यासमन्त्र भी प्रदान किया जाता है। यह इस गोपीभावके अन्तर्गत सम्बन्ध, वयः, नाम, रूप, यूथ, वेश, आज्ञा, वास, सेवा, पराकाष्ठाश्वास एवं पाल्यदासी भाव—ये एकादश पर्व अन्तर्निहित हैं। श्रीगुरुके उपदेशके द्वारा साधकोंकी रुचिके अनुसार ही सिद्धदेहका परिचय निर्णीत होता है। गुरु-प्रदत्त अपना नाम, रूप, वयस, वेश, सम्बन्ध, यूथ, आज्ञा, पराकाष्ठाश्वास, पाल्यदासीका भाव ही सिद्धप्रणाली है। इस प्रकार साधन करते-करते साधकके हृदयमें शुद्धरतिके साथ-साथ स्वरूपकी भी सिद्धि होती है। श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपने सिद्धस्वरूपका वर्णन इस प्रकार किया है—

वरणे तड़ित् वास तारावली कमल मञ्जरी नाम।
साढ़े वार वर्ष वयस सतत स्वानन्द सुखद धाम॥ १॥

कर्पूर सेवा ललितार गण राधा यूथेश्वरी हन।
ममेश्वरी-नाथ श्रीनन्दनन्दन आमार पराण धन॥ २॥

श्रीरूप मञ्जरी प्रभृतिर सम युगल सेवाय आश।
अवश्य सेरूप सेवा पाव आमि पराकाष्ठा सुविश्वास॥ ३॥

कबे वा ए दासी संसिद्धि लभिवे राधाकुण्डे वास करि'।
राधाकृष्ण-सेवा सतत करिवे पूर्व स्मृति परिहरि॥ ४॥

बाबाजी लोगोंमें भी जो भेक ग्रहणकी प्रथा देखी जाती है, वह कोई पञ्चम आश्रम नहीं, बल्कि चतुर्थाश्रम—संन्यास आश्रमका ही अपर स्वरूप है।

सप्तम भाग

श्रील गुरुदेव एवं वैष्णव साहित्य

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव विविध प्रकारकी चौमुखी अलौकिक प्रतिभाके विराट धनी व्यक्ति थे। जिस प्रकार वे अद्वितीय शुद्ध-समाज-संगठक थे, उसी प्रकार वे अद्वितीय पराविद्यानुरागी भी थे। जहाँ वे प्रौढ़ एवं गम्भीर दार्शनिक पण्डित थे, वहीं वे रसिक एवं कवि भी थे। उनके जैसा एक ही साथ गम्भीर दार्शनिक एवं रसिक कवि होना जगत्में अत्यन्त दुर्लभ है। उनमें नई-नई भावनाओंकी अत्यन्त अद्भुत सृजनात्मक कला थी। नित्य-नवीन वैष्णव-साहित्यका सृजन उनके जीवनका एक स्वाभाविक अङ्ग था। उन्होंने पूर्वाचार्यों द्वारा रचित प्रामाणिक ग्रन्थोंका प्रकाशन तो कराया ही, साथ ही उन्होंने सुसिद्धान्तपूर्ण नवीन ग्रन्थों, निबन्धों, प्रबन्धों, स्तव-स्तुति, पदोंकी रचना कर गौड़ीय वैष्णव साहित्यके भण्डारको और भी समृद्ध किया है। हम नीचे उनके द्वारा रचित कतिपय स्तव, निबन्ध एवं मधुर पदोंका कुछ विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय

परमाराध्य श्रील आचार्य केसरीका यह विचार था कि जब तक जगत्में मायावादका विचार रहेगा, तब तक शुद्धाभक्तिका पूर्णरूपेण प्रचार नहीं हो सकता। इसलिए इसे समूल उखाड़ फेंकना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए उन्होंने 'मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजय' नामक ग्रन्थकी रचना की है। नीचे उस ग्रन्थका संक्षिप्त सार दिया जा रहा है—

(क) मायावाद किसे कहते हैं?

माया शब्द साधारणतः जड़ाशक्ति या अविद्याशक्तिको लक्ष्य करता है। परतत्त्वकी स्वरूपशक्तिकी छायाशक्तिका नाम अविद्याशक्ति है।

जड़जगत्‌की यह अधिकर्त्री है। इसी शक्तिके द्वारा आक्रान्त होकर जीव स्थूलशरीरमें 'मैं' एवं स्थूलशरीर-सम्बन्धी वस्तुओंमें आत्मबुद्धि रखनेके कारण जड़जगत्‌में बद्ध होकर मायावादका आश्रय ग्रहण करता है। मायावादकी मान्यता है कि ब्रह्म निर्विशेष, निःशक्तिक, निर्गुण है, अतः माया नामकी कोई भी शक्ति नहीं है। यह अविद्या या माया सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीय है। मायिक युक्तियोंका आश्रय लेकर मायावादी यह भी कहते हैं कि जीव ही ब्रह्म है। माया या अविद्याकी विक्रियासे ब्रह्म ही जीवरूपमें दृष्टिगोचर होता है। जब तक माया है, जीव रहेगा। ऐसे मायिक विचार रखनेवाले व्यक्ति ही मायावादी हैं। इनके विचारसे ईश्वर भी मायाग्रस्त तत्त्व हैं। ऐसी दशामें ईश्वर और जीवमें वस्तुतः पार्थक्य ही क्या रहा? उनके विचारके अनुसार मायाच्छादित ईश्वर कर्मफलसे अतीत होते हैं और जीव कर्मफल भोग करनेके लिए बाध्य होता है। किन्तु ऐसा मानना शास्त्र-विरुद्ध एवं अयौक्तिक है।

वेदोंका विभाग करनेवाले वेदान्तसूत्रके रचयिता त्रिकालज्ञ श्रीकृष्ण द्वैपायन श्रीवेदव्यासने स्वरचित पद्मपुराणमें मायावादके असत् और अवैदिक होनेकी घोषणा की है—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बोद्धमुच्यते।

और

वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव विहितं देवि! जगतां नाशकारणात्॥
स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु।
माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा॥

(पद्मपुराण)

शङ्कर सम्प्रदायके कुछ विद्वानोंका यह अभिमत है कि वैष्णव आचार्योंने ईर्ष्यावश शङ्कराचार्यको प्रच्छन्न-बौद्ध और शाङ्करमतको प्रच्छन्न-बौद्धमत कहा है। परन्तु उनका यह अभिमत भ्रान्त है, क्योंकि विज्ञान-भिक्षु प्रमुख सांख्यके दार्शनिक पण्डित, पातञ्जलमतके दार्शनिक

योगीगण, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीजीव गोस्वामी, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीकृष्णदास कविराज, श्रीबलदेव विद्याभूषण आदि प्रमुख आचार्योंने, यहाँ तक कि बौद्ध पण्डितोंने भी शङ्करको बौद्ध विचारधाराके परिपोषकके रूपमें ग्रहण किया है। यहाँ आचार्य शङ्करके मत और बौद्धमतका ऐक्य प्रदर्शन किया जा रहा है—

(ख) क्या जगत् मिथ्या है?

बौद्धमतसे जगत् शून्य तत्त्व है। जगत्का आदि, मध्य और अन्त—सभी शून्य है। इसके द्वारा जगत्की त्रैकालिक मिथ्यता ही प्रतिपन्न होती है।

आचार्य शङ्करने भी जगत्का कारण त्रिकालशून्य एक तत्त्वको स्वीकार किया है। उस तत्त्वका नाम अविद्या है। यह अविद्या सत्-असत्-विलक्षण एक अनिर्वचनीय तत्त्व है अर्थात् अविद्या न तो सत् है और न असत्—ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या।

निद्रामोहात् स्वप्नवत् तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम्।

(आत्मपञ्चक—३य श्लोक)

अतः बौद्धोंका शून्य और आचार्य शङ्करका स्वप्नवत् मिथ्या—दोनों एक ही हैं। केवल शब्दमात्र पृथक्-पृथक् हैं। बुद्धके त्रिकालशून्यत्वके साथ आचार्य शङ्करके सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीयत्वका कुछ भी भेद नहीं है।

(ग) मोक्षका उपाय

बौद्ध महायान शाखाके अनेक ग्रन्थोंमें 'प्रज्ञा पारमिता' को मोक्षका एकमात्र उपाय बताया गया है। सारे विश्वको दुःखमय, दुःखदायक समझकर उसकी आत्यन्तिक निवृत्तिके लिए तत्त्वज्ञानको प्राप्त करनेकी चेष्टा करनी चाहिये—इस तत्त्वज्ञानका नाम ही 'प्रज्ञा-पारमिता' है।

आचार्य शङ्करके मतसे भी जगत् मिथ्या होनेपर भी अत्यन्त क्लेशपूर्ण और दुःखदायी है। इस दुःखपूर्ण जगत्से दुःखकी आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। ब्रह्म और जीव अथवा ब्रह्म और प्रपञ्चका अभिन्नत्व

ज्ञान ही भवमोक्षका कारण है। बिना तत्त्वज्ञानके यह अभिन्नत्व सिद्ध नहीं होगा। यह तत्त्वज्ञान या ब्रह्मज्ञान ही अविद्याके आत्यन्तिक विनाशका कारण है। इन दोनोंके विचारोंका विवेचन करनेसे प्रमाणित होता है कि बुद्धकी प्रज्ञा और आचार्यका ब्रह्मज्ञान एक ही चीज है। प्रज्ञा और ब्रह्मज्ञानमें कोई भी पार्थक्य नहीं है—ऐसा दिखलानेके लिए ही आचार्य शङ्करने तैत्तिरीय उपनिषदके 'प्रज्ञानं ब्रह्म' मन्त्रको उद्धृतकर सर्वत्र ही उक्त मतका अनुमोदन किया है। इस तरह आचार्य शङ्करने बौद्धमतकी प्रज्ञा या 'प्रज्ञा-पारमिता' का अनुसरणकर तत्त्वज्ञान (ब्रह्म-जीव ऐक्यवाद) का प्रचार किया है।

बौद्धोंके शून्य और शङ्करके ब्रह्ममें कोई अन्तर नहीं है। बौद्धोंके प्रज्ञापारमिता सूत्रके १९ वें श्लोकमें शून्यतत्त्वरूप परम निर्वाणके सम्बन्धमें लिखा गया है—

> शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुं निर्णिमित्तां निरञ्जनाम्।
> सर्ववाग् विषयातीतां या त्वं क्वचिदनिश्रिता॥

उक्त श्लोकसे जाना जाता है कि शून्यतत्त्व निर्निमित्त, निरञ्जन, अनिश्रित और वाणीसे अगोचर है। शून्य ही अक्षर है, वही अप्रमेय है। इन वचनोंसे यह विदित होता है कि अप्रमेय, अक्षय, अनिमित्त, अज, अभाव, अनिश्रित, अनिरोध, निर्निमित्त, निरञ्जन, निर्वाण, निरवद्य—ये सब शून्यतत्त्वके लक्षण हैं। इन लक्षणोंकी भलीभाँति विवेचना करनेपर शङ्करके निर्विशेष, निःशक्तिक, निरञ्जन, निराकार, निर्गुण ब्रह्म-तत्त्वका बौद्धोंके शून्यतत्त्वसे कुछ भी भेद प्रतीत नहीं होता। यहाँ तक कि आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मको शून्य बताया है—

> द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैक वस्तुनि।
> निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥

> नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमक्षरः।
> परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥

अमरकोषमें बुद्धको अद्वयवादी कहा गया है और शङ्कराचार्यके अनुगामी स्वयंको केवलाद्वैतवादी कहते हैं, अतः इस विषयमें भी दोनोंमें

एकता है। अतः पाठकगण स्वयं ही विचार कर सकते हैं कि शङ्कर और बुद्धके विचारमें कोई भेद नहीं है।

अद्वयवाद और अद्वैतवादमें कोई विशेषभेद नहीं रहनेपर भी आचार्य शङ्करने अपने मतवादका नाम अद्वयवाद (बौद्धवाद) न रखकर अद्वैतवाद रखा। यद्यपि वे भीतर-ही-भीतर इस बातको पूर्णतया जानते थे कि वे बौद्ध हैं, फिर भी उन्होंने इस बातको क्यों छिपाया? इसका कारण उनके दार्शनिक विचारोंका भेद होना नहीं, बल्कि उनके आराध्य देव श्रीभगवान्‌का आदेश ही इसका मूल कारण है। 'शङ्करः शङ्करः साक्षात्' अर्थात् आचार्य शङ्कर परम वैष्णव और भगवान्‌के प्रिय साक्षात् शङ्करके अवतार हैं। वे वैष्णवोंके गुरु हैं। जिस समय वे भारतमें प्रकट हुए उस समय साधारण जनता बौद्धोंके शून्यवादके चक्करमें पड़कर वर्णाश्रमधर्मसे विचलित हो रही थी। ब्राह्मण लोग भी बौद्धधर्म ग्रहणकर वैदिक धर्मका परित्याग करते जा रहे थे। उस समय असाधारण शक्तिसम्पन्न शङ्करके अवतार शङ्कराचार्यने उदित होकर वेदोंके सम्मानकी स्थापना की और शून्यवादको ब्रह्मवादमें परिणत कर दिया। उनका यह कार्य असाधारण था। इस महान कार्यके लिए भारतवर्ष श्रीशङ्कराचार्यका सदा ऋणी रहेगा। यद्यपि उनका यह कार्य तात्कालिक था, फिर भी उन्होंने ब्रह्मवादकी जो भित्ति स्थापित की, उसी भित्तिके ऊपर श्रीरामानुज, श्रीमध्व आदि आचार्योंने वैष्णवधर्मका विराट महल खड़ा किया। हमने पहले ही श्रीशङ्करके प्रति भगवान्‌के आदेशका उल्लेख किया है। भगवान् विष्णु श्रीरुद्रसे कह रहे हैं—

माञ्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा।

(पद्मपुराण)

(घ) मायावादका इतिहास

आचार्यकेसरीने सत्ययुगसे लेकर कलिकालके वर्त्तमान युग तक मायावादके इतिहासका अनुसन्धानकर उसपर एक विहंगम दृष्टि डाली है। दार्शनिक विद्वानोंका यह विचार है कि आचार्य शङ्करसे पूर्वका अद्वैतवाद एवं आचार्य शङ्कर द्वारा प्रवर्तित निर्विशेष केवलाद्वैतवाद एक

नहीं है। शङ्करसे पूर्वका अद्वैतवाद वैदिक है। वेदों एवं उपनिषदोंमें इसका कुछ परिचय मिलता है। उनका ब्रह्म औपनिषदिक ब्रह्म कहलाता है। वह निःशक्तिक और निर्विशेष नहीं है। उसमें जगत्‌को भी झूठा नहीं, नश्वर बताया गया है। सनक, सनातन आदि चारों कुमार एवं शुकदेव गोस्वामी ऐसे ही निर्गुण ब्रह्ममें प्रतिष्ठित थे। इनका ब्रह्म सत्-असत्-विलक्षण अनिर्वचनीय नहीं था। बादमें शुद्ध वैष्णवोंकी कृपासे ये शुद्धभक्तिमें प्रतिष्ठित हुए।

चारों कुमारोंका ज्ञानयोग कुछ-कुछ शुद्धाभक्तिके प्रतिकूल पड़ता था। उनके पिता ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने हंसरूपमें अवतीर्ण होकर इन्हें भक्तियोगकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवत सप्तम-स्कन्धमें यह प्रसङ्ग वर्णित है।

भगवान्‌के शक्त्यावेशावतार श्रीवेदव्यासकी कृपासे निर्गुणवादी श्रीशुकदेव गोस्वामीने शुद्धाभक्तिमें प्रवेश किया—इसे स्वयं श्रीशुकदेव गोस्वामीने प्रथम-स्कन्धमें स्वीकार किया है।

(ङ) सत्ययुगमें अद्वैतवाद

सत्ययुगमें वास्कलि नामक एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी थे। इनके गुरुका नाम बाध्व था। श्रीशङ्कराचार्यजीने ब्रह्मसूत्र (३/२/१७) के भाष्यमें बाध्व और वास्कलिके संवादको प्रमाणके रूपमें स्वीकार किया है। वास्कलि कौन थे? ये हिरण्यकशिपुके पुत्र अनुह्लादके पुत्र थे। स्वभावतः ये हिरण्यकशिपुकी भाँति एक भयङ्कर असुर थे। मायावादके इतिहासमें ऐसे अनेक उदाहरण युग-युगमें पाये जाते हैं। बड़े-बड़े असुर—सभी अद्वैतवादी या मायावादी थे। इससे यह प्रमाणित होता है कि मायावाद-चिन्तास्रोतका आदर असुर और राक्षसकुलमें विशेष रूपसे होता आया है। निरपेक्ष और सरल हृदयवाले ऋषि-मुनि, जिन्होंने अद्वैतवाद स्वीकार किया था, भगवत्-अवतारोंने कृपाकर उनके हृदयको शोधितकर मायावादके कराल कवलसे उनकी रक्षा की थी। किन्तु कठिन हृदयवाले असुरलोग अत्यन्त कट्टर अन्ध-विश्वासी होनेके कारण भक्तितत्त्वके अधिकारी नहीं हो सके। इसलिए भगवत्-अवतारोंने उक्त असुरोंका पूर्ण रूपसे विनाशकर भक्तितत्त्वकी रक्षा की है। भगवान्

वामनदेवने वास्कलि या वास्कलके आसुर यज्ञमें आविर्भूत होकर उसका उद्धार किया था।

(च) त्रेतायुगमें निर्विशेष अद्वैतवादकी परिणति

वशिष्ठ

त्रेतायुगमें श्रीवशिष्ठ मुनि अद्वैतवादके प्रधान आचार्य थे। ये सूर्यवंशी राजाओंके कुलगुरु थे। वशिष्ठजी ब्रह्मज्ञानी मुनि थे, इस विषयमें कहीं भी कोई मतभेद नहीं है। योगवाशिष्ठ रामायण इसका अकाट्य प्रमाण है। ब्रह्मवादी वशिष्ठ मुनि अपने शिष्योंको निर्भेद ब्रह्मकी शिक्षा दिया करते थे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपने कुलगुरुको ब्रह्मवादके भीषण अरण्यमें भटकते हुए देखकर बड़े दुःखी हुए और कृपाकर उस अरण्यसे उनका उद्धार किया। उन्होंने श्रीरामचन्द्रकी सेवामें आत्मनियोग किया।

रावण

शङ्कर सम्प्रदायके विशेष दार्शनिकगण दशानन रावणको अद्वैत सिद्धान्तका आदि भाष्यकार मानते हैं। अतएव राक्षस कुलपति रावणको अद्वैतवादी कहा जा सकता है।

पुलस्त्य ऋषिके पुत्र विश्रवा ऋषि ब्रह्मावर्तका त्यागकर कुछ दिन लङ्कामें रहे। उन्होंने वहाँ एक राक्षसकन्यासे विवाह किया। उसी कन्यासे रावणकी उत्पत्ति हुई। इसलिए रावणको अर्द्ध–ऋषि और अर्द्ध–राक्षस कहा जा सकता है। बौद्ध सम्प्रदायके लङ्कावतारसूत्रसे यह पता चलता है कि रावण एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी एवं शून्यवादी ऋषि थे। ब्रह्मकी शक्तिका अपहरणकर उसे निःशक्तिक ब्रह्मके रूपमें स्थापनकी चेष्टा ही मायावादियोंको अभीष्ट है। रावणके अन्तःकरणमें परब्रह्म श्रीरामकी शक्ति सीतादेवीके अपहरण करनेकी चेष्टा देखी जाती है। उसके इस अपराधके लिए परम भक्त हनुमानने रावणके अन्तःकरणमें भक्ति–सिद्धान्तरूप एक जोरका घूँसा मारा, जिससे उसका अद्वैतज्ञान लुप्त हो गया। वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। फिर श्रीरामचन्द्रजीने वेदध्वनिरूप अमोघ वाणसे उसका निर्वाणदशक सिर काट डाला। इस प्रकार रावणका उद्धार हुआ।

(छ) द्वापरयुगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति

श्रीशुकदेव गोस्वामी

श्रीशुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासके पुत्र थे। उनकी माता बीटिकादेवी जवालि ऋषिकी कन्या थी। बारह वर्ष तक ये माताके गर्भमें रहे। पिताकी प्रार्थनासे माताका क्लेश दूर करते हुए मायामुक्त अवस्थामें ये भूमिष्ठ हुए। श्रीमद्भागवत एवं ब्रह्मवैवर्तपुराणमें शुकदेवकी जन्मकथाका विस्तारसे वर्णन है। ये जन्मसे ही निर्गुण ब्रह्ममें परिनिष्ठित थे। किन्तु शक्त्यावेश अवतार श्रीलवेदव्यासकी कृपासे ये परम रसिक एवं भावुक भक्त हुए। इन्होंने अभिशप्त परीक्षित् महाराजजीको श्रीमद्भागवतकी कथा सुनायी थी। इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी निर्गुण ब्रह्मज्ञानी होनेपर भी श्रीव्यासदेवकी कृपासे निर्गुण ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा उत्तमश्लोक भगवान्‌की मधुर लीलाओंकी श्रेष्ठताकी उपलब्धिकर शुद्धभक्तिकी ओर आकर्षित हुए थे। एकमात्र स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी मधुररसपूर्ण कथाओंसे परिपूर्ण श्रीमद्भागवतके श्रवण और कीर्त्तन आदिके द्वारा ही जीवोंका परम कल्याण हो सकता है, ऐसा समझकर इन्होंने श्रद्धालु परीक्षित् महाराजको श्रीमद्भागवतका ही उपदेश प्रदान किया था। इन्होंने परीक्षित्‌को ब्रह्मज्ञानका उपदेश नहीं किया, क्योंकि ब्रह्मज्ञानसे जीवोंका आत्यन्तिक कल्याण असम्भव है। श्रीशुकदेव गोस्वामीने स्वयं ही श्रीमद्भागवतमें स्वीकार किया है—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमःऽश्लोकऽलीलया।
गृहीत चेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥

(श्रीमद्भा० २/१/९)

कंस

महाराज उग्रसेनकी पत्नी पद्माके गर्भसे तथा द्रुमिल दैत्यके वीर्यसे कंसका जन्म हुआ था। इसलिए उसका स्वभाव दैवीगुणसम्पन्न महाराज उग्रसेनकी भाँति न होकर राक्षसराज द्रुमिलके आसुरिक स्वभाव जैसा था। कंस पिताको कैदकर स्वयं राजा बन बैठा। इसकी चचेरी बहन देवकीका विवाह वसुदेवजीके साथ हुआ था। विवाहके समय अचानक

एक दैववाणी हुई कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न आठवीं सन्तान कंसको मारेगी। नास्तिक कंसने दैववाणीको मिथ्या करनेके लिए देवकीको मारना चाहा। अन्तमें फिर कुछ सोच-समझकर देवकी और वसुदेवको कारागृहमें बन्द कर दिया। उसने सोचा भगवान् रूप धारणकर ज्योंही आठवें गर्भसे पैदा होंगे, मैं उनका विनाश कर दूँगा। मायावादी भगवत्-विग्रहके विरोधी होते हैं। वे भगवान्‌का रूप स्वीकार नहीं करते। शरीर धारण करना मायाका कार्य है, अविद्याके धर्मका नाश करना ही मोक्ष है, यही मायावादियोंका सिद्धान्त है। कंसका भी विचार यही था। भगवान् श्रीविष्णु (कृष्णचन्द्र) भी मायिक शरीर धारणकर पैदा होने जा रहे हैं, अतः उनका विनाश करना बहुत ही आसान हो जायेगा। उसे यह मालूम नहीं था कि अप्राकृत वस्तु इन्द्रिय आदि प्राकृत वस्तुसे अगोचर है। भगवान् श्रीकृष्णने उसे और उसके अनुचर पूतना, अघ, वक, तृणावर्त, प्रलम्ब आदिका बधकर अपने विग्रहका वैशिष्ट्य स्थापित किया।

श्रीकृष्णसंहिताके चतुर्थ अध्यायमें कंस और प्रलम्बासुरको प्रच्छन्न बौद्ध और मायावादी कहा गया है। कृष्ण और बलदेवने उनका विनाशकर नास्तिक मायावादके कराल कवलसे जीवोंकी रक्षा की थी।

देवकीमगृहीत् कंस नास्तिक्य-भगिनीं सतीं।
प्रलम्बो जीवचौरस्तु शुद्धेन शौरिणा हतः।
कंसेन प्रेरितो दुष्टः प्रच्छन्न बौद्धरूपधृक्॥

(कृष्णसंहिता)

अर्थात् वसुदेवने नास्तिक्यकी प्रतिमूर्त्ति कंसकी बहन देवकीसे विवाह किया था एवं उस कंसके द्वारा भेजे गये प्रच्छन्न बौद्धमत मायावादस्वरूप जीवचौर दुष्ट प्रलम्बासुरका श्रीबलदेवजीने वध किया था।

उपरोक्त श्लोकमें 'जीवचौर' शब्दकी सार्थकता यह है कि बौद्ध भी मायावादियोंकी भाँति यह मानते हैं कि ब्रह्म ही अविद्या ग्रस्त होनेपर जीव होता है अर्थात् अविद्याग्रस्त ब्रह्म ही जीवस्वरूपमें दृष्टिगोचर होता है। इस स्वरूप अर्थात् विग्रहका अपहरण करना ही चोरी है। विग्रहका विनाश तथा जीवत्वका हरण करना ही असुरोंका स्वभाव

है। इसलिए ये लोग मायावादी नास्तिक और जीवचौर हैं। कृष्ण-बलरामने द्वापरयुगमें भी इस प्रकार अद्वैतवादका विनाशकर वैष्णवधर्मकी पुनः स्थापना की।

(ज) कलियुगमें अद्वैतवाद या मायावाद

ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व शाक्यसिंह गौतम बुद्धका जन्म हुआ था। ईश्वर और वेद दोनोंको अस्वीकारकर शून्यवादका प्रचार करनेके कारण भारतीय दार्शनिकोंने इन्हें नास्तिक कहा है। इस बुद्धदेवका मतवाद ही बौद्धवाद है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि कीकट प्रदेश अर्थात् गयामें अञ्जन या अजिनके पुत्रके रूपमें विष्णु बुद्ध एवं कपिलवस्तुमें शुद्धोधन और मायादेवीके पुत्रके रूपमें गौतम बुद्ध दो व्यक्ति हैं। विष्णु बुद्धके जन्मस्थल बोधिसत्व (गया) में गौतम बुद्धको तत्त्वज्ञान (?) प्राप्त हुआ था। बौद्धोंके प्रसिद्ध प्रामाणिक ग्रन्थ अमरकोष, प्रज्ञापारमितासूत्र, ललितविस्तार आदि ग्रन्थोंमें दो बुद्धोंका उल्लेख देखा जाता है। विस्तृत जानकारीके लिए 'मायावादकी जीवनी' द्रष्टव्य है।

अतः यह निश्चित है कि श्रीमद्भागवत, लिंगपुराण, भविष्यपुराण तथा वराहपुराणमें उल्लिखित दशावतार-वर्णनके प्रसङ्गमें नवम अवतारस्वरूप जिस बुद्धका उल्लेख पाया जाता है, वे शुद्धोधनके पुत्र गौतम बुद्ध नहीं हैं। श्रीमद्भागवत (१०/४०/२२) में 'नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्य-दानव-मोहिने।' इस मन्त्रके द्वारा विष्णु बुद्धको प्रणाम किया गया है। इनका जन्म कलिके प्रारम्भमें 'कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भगवन्नारायणः प्रभु' आजसे लगभग ३५०० वर्ष पूर्व गयामें हुआ था। किन्तु नास्तिक गौतम बुद्धका जन्म ईसासे लगभग ५०० वर्ष पूर्व हुआ था। अतः दोनों एक व्यक्ति नहीं हो सकते। विष्णु बुद्ध नास्तिक नहीं थे। उन्होंने वेदोंमें लिखित जीवहिंसाका प्रतिवाद किया था। किन्तु गौतम बुद्ध सम्पूर्ण रूपसे वेद और ईश्वर दोनोंको अस्वीकार करनेवाले पूर्ण नास्तिक व्यक्ति थे। बौद्धमतसे यह जगत् मिथ्या है, हमने पहले ही यह सिद्ध किया है। शङ्कराचार्यने शब्दोंका हेर-फेरकर बड़ी चतुराईसे इन्हींके विचारोंको ग्रहणकर जगत्में मायावादके नामसे प्रचार किया है।

आचार्य शङ्कर

आचार्य शङ्करके गुरु गोविन्दपाद हैं और गोविन्दपादके गुरु गौड़पाद हैं। गोविन्दपाद द्वारा रचित कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। असलमें गौड़पाद ही शङ्कराचार्यके गुरु हैं। गौड़पाद एक प्रसिद्ध शून्यवादी थे। गौड़पादका नाम मायावादके इतिहासमें अत्यन्त उल्लेखयोग्य है। सांख्य-कारिका और माण्डुक्य कारिका मायावादके प्राण हैं। आचार्य शङ्करने माण्डुक्य कारिकापर भाष्य लिखा है। अतः शङ्कराचार्य वास्तवमें गौड़पादके अनुयायी एवं उन्हींके शून्य-मतवादके प्रचारक हैं। यद्यपि शङ्कराचार्यने बहुत-से स्मार्त, शैव, शाक्त, कापालिक विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर उन्हें अपना शिष्य बनाया था, किन्तु उन्होंने किसी वैष्णव आचार्य या विद्वानको कभी पराजित नहीं किया। किसी भी वैष्णवने उनसे पराजित होकर वैष्णवमतको छोड़कर अद्वैतवाद ग्रहण किया हो, ऐसा इतिहासमें कहीं भी उल्लेख नहीं है।

'शब्दार्थ-मञ्जरी' नामक ग्रन्थके लेखक श्रीशिवनाथशिरोमणिने अपने इस ग्रन्थमें शङ्कराचार्यके जीवनपर प्रकाश डाला है। उन्होंने उल्लेख किया है कि शङ्कर अपने जीवनके अन्तिम समयमें तिब्बतके बौद्ध लामाके साथ शास्त्रार्थमें पराजित हुए। लामा तत्कालीन बौद्धोंमें जगद्गुरुके नामसे विख्यात थे। शास्त्रार्थके प्रारम्भमें दोनोंने प्रतिज्ञा की थी कि जो हार जायेगा वह खौलते हुए तेलके कड़ाहमें गिरकर प्राण परित्याग करेगा। आचार्य शङ्करने शास्त्रार्थमें पराजित होकर पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार खौलते हुए तेलके कड़ाहमें आत्मविसर्जन किया। इस प्रकार ८१२ ई० (?) में जगत्की एक उज्ज्वल ज्योति श्रीशङ्कराचार्यका अवसान हुआ।

शङ्कराचार्यके पश्चात् यादवप्रकाश, श्रीधरस्वामी, श्रीबिल्वमङ्गल, त्रिविक्रमाचार्य, प्रकाशानन्द सरस्वती, वासुदेव सार्वभौम, श्रीमधुसूदन सरस्वती आदि केवलाद्वैतवाद या मायावादके बड़े-बड़े आचार्य शुद्ध वैष्णव आचार्योंसे शास्त्रार्थमें पराजित या प्रभावित होकर केवल विष्णुको परतमत्व ही स्वीकार नहीं किया है, अपितु ज्ञानकी अपेक्षा भक्तिकी उत्कर्षता अङ्गीकारकर तथा केवलाद्वैतवादका परित्यागकर भक्तिधर्ममें दीक्षित भी हुए हैं।

(झ) निर्वाणकी अलीकता

हमने पहले ही यह दर्शाया है कि मायावादके आद्योपान्त इतिहास और तत्त्वसमूहकी समालोचना सर्वथा ऐतिहासिक प्रमाणोंके आधार पर ही की गयी है। मायावादकी भित्ति अत्यन्त दुर्बल युक्तियोंके आधार पर टिकी है और यही कारण है कि सत्ययुगसे लेकर आज तक वह अपने प्रतिपक्षियोंके समक्ष वाग्युद्धमें अपनी पराजय स्वीकार करता आया है। फिर भी प्राचीनकालमें भी इस मतवादका अस्तित्व लक्ष्यकर कोई इसका पदाङ्क-अनुसरण कर निर्वाण प्राप्त करना चाहे तो हमारा वक्तव्य है कि मायावादकी निर्वाण मुक्ति सम्पूर्ण मिथ्या और कल्पनामूलक शब्दमात्र है—इसे केवल ऐतिह्य प्रमाणोंके आधार पर ही निःसन्देह रूपमें प्रमाणित किया जा सकता है। वास्तवमें निर्वाण नामक ऐसी कोई अवस्था ही नहीं है, जिसे जीव कभी भी प्राप्त कर सके। अद्वैतवादियोंमेंसे आज तक कोई भी उस अवस्थाको प्राप्त हुआ हो—इसका एक भी दृष्टान्त नहीं मिलता है। गौड़पाद, गोविन्दपाद, आचार्य शङ्कर और माधव जैसे प्रकाण्ड मायावादियोंकी जीवनीकी आलोचना करनेसे हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि इनमेंसे कोई भी उनके द्वारा समर्थित निर्वाण मुक्तिको प्राप्त नहीं कर सका था। आचार्य शङ्करके जीवनचरित्रके अनुसार एक दिन आचार्य शङ्कर ध्यानमें मग्न थे। उसी समय उनके दादागुरु श्रीगौड़पाद उनके निकट आकर बोले—"शङ्कर! मैंने तुम्हारे गुरुदेव आचार्य गोविन्दपादके निकट तुम्हारी खूब प्रशंसा सुनी है। मैंने यह भी सुना है कि तुमने मेरी माण्डुक्य कारिकाके ऊपर एक सुन्दर भाष्यकी रचना की है। मैं उसे देखना चाहता हूँ।" आचार्य शङ्करने तत्क्षण उक्त कारिकापर अपना लिखा हुआ भाष्य उन्हें दिखलाया। गौड़पाद उसे देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उसका अनुमोदनकर चले गये।

उपर्युक्त घटनासे यह पता चलता है कि गौड़पाद और गोविन्दपादकी विदेहमुक्तिके बाद निर्वाण मुक्ति नहीं हुई थी। यदि उनकी निर्वाण मुक्ति हुई होती तो गौड़पाद निर्वाण मुक्ति प्राप्त होनेपर भी निर्वाण प्राप्त गोविन्दपादके मुखसे शङ्कर-सम्बन्धी बातोंको कैसे सुन सकते थे? दूसरी बात, आचार्य शङ्कर भी माण्डुक्य कारिकापर अपना लिखा हुआ भाष्य

निर्वाण प्राप्त हुए गौड़पादको कैसे दिखला सके थे? ये दोनों बातें सर्वतोभावेन असम्भव हैं। यदि हम उक्त घटनाको सत्य मानते हैं, तो मायावादियोंकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्ति मिथ्या जान पड़ती है, दूसरी तरफ यदि हम उनकी निर्वाण मुक्ति या निर्विशेष मुक्तिको सत्य मानते हैं, तब उक्त घटना मिथ्या या काल्पनिक प्रतीत होती है। मायावादियोंने निर्वाण मुक्तिका जो लक्षण बतलाया है, उसपर विचार करनेसे उक्त घटनाका कुछ अंश सत्य मान लेनेपर भी उक्त दोनों मायावादी आचार्योंकी निर्वाण मुक्ति अलीक ही प्रतीत होती है। उनलोगोंकी बातें छोड़िये, श्रीशङ्करकी जीवनीके अनुसार स्वयं शङ्कर भी पुनः माधवाचार्य अर्थात् विद्यारण्यके रूपमें आविर्भूत हुए थे। क्या निर्वाण मुक्तिकी यही परिणति है? मायावादियोंका कथन है कि निर्वाण मुक्तिके अनन्तर ब्रह्मके अतिरिक्त जीवकी कोई पृथक् सत्ता नहीं रहती और वह ब्रह्म भी निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय व निर्विशेष आदि होता है। ऐसी अवस्थामें जब गौड़पाद, गोविन्दपाद और शङ्कराचार्यकी पृथक्-पृथक् रूपमें सत्ता देखी जाती है, तो किस युक्तिके आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि इनलोगोंकी निर्वाण मुक्ति हुई थी? मायावादी आचार्योंके निर्वाण मुक्तिके सम्बन्धमें आज तक कोई भी ऐसा सिद्धान्त उपलब्ध नहीं होता, जिससे निर्वाणके पश्चात् भी परस्पर वार्त्तालाप और पुनराविर्भाव सम्भव माना जा सके। इससे स्पष्ट है कि निर्वाण मुक्ति एक मिथ्या और छलनामूलक शब्दमात्र है अथवा लोक-संग्रह करनेका फंदामात्र है, क्योंकि निर्वाण मुक्तिके प्रधान-प्रधान प्रचारक—यहाँ तक कि जिन्हें इस मतका प्रवर्त्तक कहनेमें भी अत्युक्ति न होगी, इस प्रकारकी कोई मुक्ति प्राप्त नहीं कर सके हैं। फिर दूसरोंकी बातका क्या कहना?

श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम्

जिस समय श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीकी प्रतिष्ठा हुई, उस समय श्रीराधा एवं श्रीकृष्ण इन दोनों श्रीविग्रहोंको एक ही जैसे वर्णमें प्रकाशित होते हुए देखकर कुछ वैष्णवोंने इसका

कारण उनसे पूछा। उन्होंने उनसे यह पूछा कि हमारे गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें या अन्यत्र सभी स्थलोंमें श्रीराधिका-विग्रह श्वेतप्रस्तरमय एवं श्रीकृष्णविग्रह कृष्णप्रस्तरमय देखा जाता है। किन्तु आपके द्वारा प्रकाशित ये दोनों श्रीविग्रह श्वेतप्रस्तरमय क्यों हैं? उत्तरमें उन्होंने साथ-ही-साथ श्रीश्रीराधाविनोदबिहारी-तत्त्वाष्टकम्‌की रचनाकर उनके प्रश्नोंका अपूर्व सुन्दर रूपसे समाधान किया था। इस तत्त्वाष्टकमें परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेवने गागरमें सागरकी भाँति बहुत ही गम्भीर श्रीराधातत्त्व, श्रीकृष्णतत्त्व, प्रेमतत्त्व, रसतत्त्व तथा सर्वोपरि रूपानुग विचार-धाराको अनूठे ढङ्गसे पिरो रखा है। नीचे हम व्याख्याके द्वारा उनके भावोंको शाखाचन्द्र-न्यायसे कुछ प्रकाश करनेकी चेष्टा कर रहे हैं—

राधा-चिन्ता-निवेशेन यस्य कान्तिर्विलोपिता।
श्रीकृष्णचरणं वन्दे राधालिङ्गित-विग्रहम॥ १॥

अनुवाद—किसी समय महाभावके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीमती राधिकाके हृदयमें मान उदित होनेपर उनके विरहमें अतिशय चिन्तामें विभोर होनेके कारण जिनकी श्यामकान्ति विलुप्त होकर श्रीमती राधिका जैसी गौर-कान्ति हो गयी थी, उन राधालिङ्गित—राधाचिह्नित विग्रह श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी हम वन्दना करते हैं। अथवा मान भङ्ग होनेपर श्रीमती राधिकाके द्वारा आलिङ्गित गौरकान्तिसे सुशोभित श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी हम वन्दना करते हैं॥ १॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

इस श्लोकमें 'राधालिङ्गित' पदके दो तात्पर्य हैं—पहला 'राधया लिङ्गित' अर्थात् श्रीराधाके द्वारा लिङ्गित या चिह्नित। दूसरा 'राधया आलिङ्गित' अर्थात् श्रीराधाके द्वारा आलिङ्गित। श्रीमती राधिकाके मान करनेपर विरहकी अवस्थामें धीरललित नायक श्रीकृष्ण उनकी चिन्तामें जब सम्पूर्ण रूपसे तन्मय हो जाते हैं, उस समय उनकी अपनी स्वाभाविक उज्ज्वल नीलकान्ति तिरोहित हो जाती है तथा जिनकी चिन्तामें वे विभोर रहते हैं, उन श्रीमती राधिकाकी गौरकान्तिको वरवश धारण कर लेते हैं अर्थात् उनकी गौरकान्ति हो जाती है। इसके लिए उन्हें

तनिक भी चेष्टा नहीं करनी पड़ती है। अपने आप ही ऐसा हो जाता है। जैसे कोई 'भृङ्गी' नामक बलवान कीट, किसी तेलचट्टा नामक दुर्बल कीटको बलपूर्वक पकड़कर अपने माँदमें बन्द कर देता है तथा एक प्रकारका ऐसा अनोखा शब्द करता है, जिसे सुनकर वह दुर्बल कीट भयभीत होकर भृङ्गीकीटके स्वरूपकी चिन्ता करते-करते ठीक भृङ्गी कीट जैसा ही शरीर धारण कर लेता है। दूसरा उदाहरण भरत महाराजजीका भी दिया जा सकता है। महाराज भरत मृत्युके समय एक हिरण शिशुकी चिन्ता करनेके कारण दूसरे जन्ममें हिरण शरीरको प्राप्त हुए। ठीक इसी भाँति श्रीमती राधिकाकी चिन्ता करते-करते श्रीकृष्णने भी श्रीमती राधिकाकी स्वर्णकान्तिको धारण कर लिया है, इसमें तनिक भी शङ्काकी बात नहीं है।

वाराहसंहितामें ऐसे ही एक प्रसङ्गका वर्णन मिलता है, जो वराहदेव एवं धरणीके संवादके रूपमें हैं। श्रीवराहदेव कह रहे हैं कि वृन्दावनमें यमुनाके तटपर एक बहुत ही विशाल वटका वृक्ष है। उसकी शाखा-प्रशाखाएँ चारों ओर बहुत दूर तक फैली हुई हैं। जिसमें तरह-तरहके पक्षी सदैव कलरव करते रहते हैं। उस वृक्षकी जड़के चारों तरफ एक अत्यन्त सुन्दर वेदी बनी हुई है, जिसके ऊपर श्रीश्रीराधाकृष्ण विहार करते हैं। किसी समय यमुना पुलिनमें श्रीकृष्ण सखियोंके साथ रासलीलाका आस्वादन कर रहे थे। करोड़ों गोपियाँ उनके सङ्ग नृत्य कर रही थीं। उस समय वे कभी एक गोपीके साथ तो कभी दूसरी गोपीके साथ भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगे। कभी एकका आलिङ्गन करते, तो कभी दूसरीका। कभी श्रीमती राधिकाके साथ तो कभी औरके साथ नाना प्रकारसे विलास कर रहे थे। श्रीमती राधिका अपने जैसा ही अन्यान्य गोपियोंके साथ नृत्य और आलिङ्गन करते हुए देखकर तथा अन्यान्य गोपियोंसे अपनी कुछ उत्कर्षता न देखकर श्रीकृष्णके प्रति रुष्ट हो गयीं एवं साथ-ही-साथ रासस्थलीको छोड़कर समीपके किसी कुञ्जमें छिप गयीं। इधर कृष्ण कुछ क्षणके पश्चात् ही श्रीमती राधिकाको रासमण्डलीमें न देखकर व्याकुल हो उठे। वे सोचने लगे, जिसके लिए यह रासविलास है, वे मेरी प्राणप्रिया

मुझे छोड़कर कहाँ चली गयीं? कोटि-कोटि गोपियोंके सङ्ग नृत्य एवं विलास उनके चित्तको एक क्षणके लिए भी हरण नहीं कर सके। वे तत्क्षण रासमण्डलीको छोड़कर विरह व्याकुल होकर "हे राधे तुम कहाँ हो" कहते हुए कुञ्ज-कुञ्जमें अन्वेषण करने लगे। इस प्रकार वे सर्वकान्ताशिरोमणि श्रीमती राधिकाका अन्वेषण करते-करते कालिन्दीके तटपर उपस्थित हुए। अब तक वे उन्हें खोजते-खोजते क्लान्त और निराश हो चुके थे। वहीं इमली वृक्षकी छायामें अतिशय रमणीय कुञ्जके भीतर बड़े विह्वल होकर राधानामका मन्त्र जपने लगे। कभी-कभी बड़े विशाद ग्रस्त होकर "हा, हा प्राणेश्वरि! मुझे छोड़कर कहाँ चली गयी?" इस प्रकार पुकारने लगे—

राधा विश्लेषतः कृष्णः ह्येकदा प्रेमविह्वलः।
राधामन्त्रं जपन् ध्यायन् राधा सर्वत्र पश्यति॥

(वाराहसंहिता)

इस प्रकार श्रीमती राधिकाजीके विरहमें व्याकुल होकर राधामन्त्र जप करते-करते तथा उनका सर्वतोभावेन चिन्तन (ध्यान) करते-करते अन्तर और बाहर राधामय हो गये। सर्वत्र राधाकी ही स्फूर्ति होने लगी। उनकी अङ्गकान्ति भी ठीक राधाजी जैसी हो गयी। यहाँ राधालिङ्गित पदका यह पहला तात्पर्य है। श्रीगौरसुन्दर इसीलिए इस विशेष इमलीतला स्थानपर ही वेदीपर बैठकर भावपूर्वक क्रन्दन करते हुए, नामसङ्कीर्त्तन करते थे और दोपहरके समय अक्रूरघाटके निकट गाँवमें मधुकरी करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि राधाभावकी प्राप्ति एवं उसकी दृढ़ताके लिए ही श्रीगौरसुन्दर नीलाचलसे व्रजधाममें पधारे थे। क्योंकि राधाभावके बिना इनकी तीन वाञ्छाएँ कदापि पूर्ण नहीं हो सकती थीं।

रसिककुलचूड़ामणि श्रील रूप गोस्वामीने 'हरिः पुरटसुन्दर-द्युति कदम्बसन्दीपितः' इस पदके द्वारा सुवर्णकान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान हरि अर्थात् राधाचिन्तामें निमग्न राधाके सुवर्ण कान्तिसमूह द्वारा देदीप्यमान श्रीकृष्णको ही इङ्गित किया है। श्रीगौरसुन्दरके अन्तरङ्ग, रसशास्त्रके गुरु श्रीस्वरूप दामोदरने भी अपने कड़चामें इसी भावके प्रति इङ्गित

किया है—'राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्' अर्थात् राधाभाव एवं कान्ति द्वारा सुदीप्त कृष्णको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ।

अब यहाँ राधालिङ्गित पदके दूसरे अर्थपर विचार करते हैं। राधा द्वारा आलिङ्गित पदका यह तात्पर्य है कि मानभङ्ग होनेपर स्वाधीनभर्तृका नायिकाके रूपमें प्रियतमा श्रीराधिकाके द्वारा आलिङ्गित श्रीकृष्णकी यहाँ वन्दना की गयी है। कृष्णको राधाविरहमें अत्यन्त व्याकुल देखकर श्रीमती राधिकाका हृदय व्याकुल हो गया। उनका धैर्य एवं मान तत्क्षणात् दूर हो गया। उन्होंने श्रीकृष्णको अपने आलिङ्गन पाशमें बद्ध कर लिया। कृष्ण कृतकृत्य हो गये। उनका सारा खेद दूर हो गया। श्रीचैतन्य-चरितामृतके राय रामानन्द संवादमें इसका इङ्गित पाया जाता है।

why (क) ?

(क) ना सो रमण ना हम रमणी।
दुँहू मनो मन भव पेषल जानि॥

ए सखि ए सब प्रेम काहिनी।
कानु ठामे कहवि विछुरल जानि॥

अर्थात् विरहिणी श्रीमती राधिका प्रलाप कर रही है कि देखते-ही-देखते पलक भरमें हमारा प्रेम अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया। हम दोनों इस प्रकारसे घुलमिल कर एक हो गये कि मैं यह भी भूल गयी कि मैं रमणी हूँ और तुम रमण हो। तुम्हारे विरहमें अब वह प्रेमविलास एक कहानीमात्र ही रह गयी है। क्या सत्-पुरुषोंकी प्रेमकी रीति ऐसी ही होती है? इस गीतिमें मिलनकी स्थितिमें अर्थात् सम्भोग कालकी एक चरम स्थितिका दिग्दर्शन कराया गया है; जिसमें श्रीकृष्ण सर्वतोभावेन राधिकाके द्वारा आलिङ्गित हैं। इसके पश्चात् ही राय रामानन्दजी श्रीगौरसुन्दरसे कह रहे हैं—

पहिले देखिलुँ तोमार संन्यासी-स्वरूप।
एवे तोमा देखि मुञि श्याम-गोपरूप॥

तोमार सम्मुखे देखि काञ्चन-पञ्चालिका।
ताँर गौरकान्त्ये तोमार सर्व अङ्ग ढ़ाका॥

ताहाते प्रकट देखि सवंशी वदन।
नाना-भावे चंचल ताहे कमल नयन॥

एइ मत तोमा देखि' हय चमत्कार।
अकपटे कह, प्रभु, कारण इहार॥
(चै॰ च॰ म॰ ८/२६७-२७०)

रायरामानन्दने महाप्रभुजीसे पूछा मेरे मनमें एक संशय उठ रहा है कि मैंने आपको सबसे पहले संन्यासी-वेशमें देखा था। किन्तु अब आपको एक साँवले गोपके रूपमें देख रहा हूँ। साथ ही एक और विचित्र बात देख रहा हूँ। आपके सामने अद्भुत सुन्दर सुवर्ण कान्तिको बिखेरती हुई एक पुतली (गोपीमूर्त्ति) खड़ी हुई है, जिसकी सुवर्ण कान्तिसे आपका सारा अङ्ग ढका हुआ है। उस स्वरूपमें मैं प्रत्यक्ष रूपमें यह भी देख रहा हूँ कि आपके अधरोंपर मुरली विराजित है तथा आपके कमलनयन बड़े सतृष्ण होकर इधर-उधर नृत्य कर रहे हैं। कृपा कर ऐसे स्वरूप धारण करनेका कारण निष्कपट रूपसे मुझे बतलाइए।

उपरोक्त चार पयारोंका निगूढ़ तात्पर्य यह है कि श्रीमती राधिकाके प्रत्येक अङ्गोंके द्वारा श्रीकृष्णके प्रत्येक अङ्गोंके आलिङ्गन किये जानेके कारण कृष्णकी उज्ज्वल नीलकान्ति आच्छादित होकर गौरवर्णकी हो जाती है। मुरलीधारी श्रीकृष्णका अङ्ग तो पहला ही जैसा रहता है, केवल अङ्गोंकी कान्ति गौरवर्ण जैसी दीखती है। यही श्रीमूर्त्ति राधालिङ्गित श्रीकृष्ण हमारे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभी मठ-मन्दिरोंमें परिसेवित हो रहे हैं।

इस गम्भीर दार्शनिक एवं उच्चतम भावसे युक्त स्तवके द्वारा इसके रचयिताके ऐकान्तिक रूपानुगत्यका सुस्पष्ट परिचय मिलता है। व्रजरमणियोंके ऐसे दुर्गम भावको हृदयङ्गम करनेके लिए भक्तितत्त्वके सिद्धान्तोंको समझना आवश्यक है। साधारणतः भक्तिके साधन एवं सिद्धिकी तीन अवस्थाएँ हैं—साधनभक्ति, भावभक्ति और प्रेमभक्ति। साधनभक्ति परिपक्व होनेपर भावभक्ति एवं भावभक्ति परिपक्व होनेपर प्रेमभक्ति कहलाती है।

साधकोंके साधनके समयसे ही साधनभक्ति भी दो प्रकारकी होती है—वैधी साधनभक्ति एवं रागानुगा साधनभक्ति। सिद्धिके समय भी वैधी साधनभक्तिसे उदित प्रेम एवं रागानुगा साधनभक्तिसे उदित प्रेममें एक सूक्ष्म भेद होता है। वैधीभक्तिसे उदित प्रेम ऐश्वर्ययुक्त वैकुण्ठीय प्रेम

होता है तथा रागानुगाभक्तिसे उदित प्रेम ऐश्वर्य गन्धरहित शुद्ध मधुर व्रजप्रेम कहलाता है। गोपीभाव व्रजप्रेममें सर्वोच्च अवस्था है।

रागानुगाभक्तिको अच्छी तरहसे समझनेके लिए सर्वप्रथम रागात्मिक भावको समझना आवश्यक है। इष्टवस्तु (श्रीकृष्ण) के प्रति परम आवेशमूलक प्रेममयी तृष्णाको राग कहते हैं। ऐसी प्रगाढ़ रागमयी रतिको रागात्मिक प्रेम कहते हैं। व्रजवासियोंमें (वहाँके गो, मृग, शुक, पशु, पक्षियोंमें भी) सुस्पष्ट रूपमें विराजमान प्रीतिको रागात्मिक प्रीति कहते हैं। यह रागात्मिक प्रीति भी दो प्रकारकी होती है—सम्बन्धरूपा और कामरूपा। इनमेंसे केवल कृष्णप्रेयसियोंकी प्रीति ही कामरूपा होती है। इसी कामरूपा रतिकी अनुगामिनी तृष्णाका नाम कामानुगा भक्ति है। कामरूपा रागात्मिक प्रेम भी सम्भोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी दो प्रकारकी होती है। कृष्णप्रीतिके लिए सम्भोगकी इच्छा रखनेवाली श्रीमती राधिका, चन्द्रावली, श्यामला आदि नायिकाओंकी रति सम्भोगेच्छामयी कहलाती है। तथा 'तासाम् भावमाधुर्यकामिता' अर्थात् श्रीराधाकृष्ण-युगलके मिलनमें श्रीमती राधिका आदिके भाव माधुर्य आस्वादनकी कामना रखनेवाली (स्वयं कृष्ण मिलन कामनासे रहित) सखियोंकी रतिको तत्तद्भावेच्छात्मिका कहते हैं।

तत्तद्भावेच्छात्मिका रति भी पाँच प्रकारकी होती है। इस प्रकार रतिवाली सखियाँ भी पाँच प्रकारकी होती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी तथा प्रियनर्मसखी। इन सखियोंमें कोई समस्नेहा और कोई विषमस्नेहा होती हैं। श्रीराधाकृष्णमें बराबर स्नेह रखनेवालीको समस्नेहा एवं दोनोंमेंसे किसी एकके प्रति अधिक स्नेह रखनेवालीको विषमस्नेहा कहा जाता है। श्रीकृष्णके प्रति अधिक स्नेह रखनेवालीको सखी कहते हैं। वृन्दा, धनिष्ठा आदि सखियाँ हैं। श्रीमती राधिकाके प्रति अधिक स्नेह रखनेवालीको नित्यसखी कहते हैं। कस्तूरी, मणि मञ्जरी आदि नित्यसखी हैं। नित्यसखियोंमें मुख्य सखियोंको प्राणसखी कहते हैं। इन दो प्रकारके सखियोंमें रूपमञ्जरी प्रधान है। मालती आदि प्रिय सखियाँ हैं। इनमेंसे परमप्रिय प्रधान सखियाँ प्रियनर्म सखियाँ कहलाती हैं। ललिता, विशाखा आदि सखियोंको प्रियनर्मसखी या परमप्रेष्ठसखी कहा जाता है। ये राधाकृष्णके प्रति समस्नेहा होनेपर

भी श्रीमती राधिकाके प्रति कुछ अधिक पक्षपात करती हैं। ये सर्वगुणसम्पन्न नायिकाएँ हैं। परन्तु राधाकृष्णके मिलन करानेमें ही अपनेको कृतार्थ समझती हैं। किन्तु इनमेंसे नित्यसखी एवं प्राणसखियोंमें प्रमुख रूप, रति, लवङ्ग आदि सखियाँ नित्य-निरन्तर श्रीमती राधिकाकी निभृत निकुञ्ज सेवामें भी निःसंकोच रूपसे सेवामें तत्पर रहती हैं। इनमें पृथक् रूपसे कृष्णसम्भोगकी इच्छा नहीं रहनेपर भी श्रीमती राधिकाके भावोंका आस्वादनकर उसीमें सन्तुष्ट रहती हैं।

साधारण रूपमें गोलोक व्रजके गोप, गोपी, गो, गोवत्स, पशु, पक्षी ये सभी रागात्मिक हैं। इनके भावोंका अनुगमन करनेवाले (इनके भावोंकी प्राप्तिके लिए) साधकोंको रागानुगा कहते हैं। किन्तु श्रीरूप मञ्जरीके निजस्व भावोंका अनुगमन करनेवाले साधकको रूपानुग कहा जाता है। प्रत्येक रूपानुग साधक रागानुग साधक है। परन्तु प्रत्येक रागानुग साधक रूपानुग नहीं हो सकता है। श्रील रूप गोस्वामीने यथावस्थित देहसे व्रजमें रहकर जिस प्रकारसे साधन-भजन किया है तथा अपने सिद्ध शरीरसे व्रजमें जैसे राधाकृष्णकी नित्यसेवा करते हैं, ऐसे ही जो रागानुग साधक बाह्य शरीरसे श्रीरूप गोस्वामीके भजन-रीतिका तथा अन्तश्चिन्तित सिद्धदेहसे मञ्जरीके भावोंका अनुगमन करता है, केवल उसी रागानुग साधकको रूपानुग वैष्णव कहा जाता है। श्रीरूपानुगवर श्रील रघुनाथदास गोस्वामी स्वरचित विलाप-कुसुमाञ्जलिमें प्रार्थना कर रहे हैं—(१) तवैवास्मि तवैवास्मि न जीवामि त्वया बिना। इति विज्ञाय देवि त्वं नय मां चरणान्तिके॥—"हे देवि श्रीराधिके! मैं तुम्हारी ही हूँ, मैं तुम्हारी ही हूँ। तुम्हें छोड़कर मैं जीवित नहीं रह सकती—ऐसा जानकर तुम मुझे अपने श्रीचरणोंमें स्थान दो।" (२) पादाब्जयोस्तव विना वरदास्यमेव नान्यत कदापि समये किल देवि याचे। साख्याय ते मम नमोऽस्तु नमोऽस्तु नित्यं दास्याय ते मम रसोऽस्तु रसोऽस्तु सत्यम्॥—"हे देवि राधिके! तुम्हारे श्रीचरणकमलोंकी प्रेममयी श्रेष्ठ सेवाके अतिरिक्त किसी भी समय और कुछ भी याचना नहीं करता हूँ। यदि तुम मुझे सखीपद देना चाहती हो, तो मैं उसे दूरसे बारम्बार प्रणाम करता हूँ। तुम्हारे दासत्वमें ही मेरा दृढ़ अनुराग रहे—मैं शपथ ग्रहणकर ऐसा माँग रहा हूँ।"

श्रीनरोत्तम ठाकुरका रूपानुगत्य द्रष्टव्य है—

श्रीरूप मञ्जरीपद सेई मोर सम्पद
सेई मोर भजन पूजन।
सेई मोर प्राणधन सेई मोर आभरण
सेई मोर जीवनेर जीवन॥

सेई मोर रसनिधि सेई मोर वांछासिद्धि
सेई मोर वेदेर धरम।

श्रीरूपानुगाचार्य श्रील भक्तिविनोद ठाकुर अपनी लालसामयी प्रार्थनामें आवेदन कर रहे हैं—

श्रीरूप मञ्जरी, सङ्गे याब कबे,
रस-सेवा-शिक्षा-तरे।
तदनुगा ह'ये, राधाकुण्ड-तटे,
रहिब हर्षितान्तरे॥

श्रीराधार सुखे, कृष्णेर ये सुख,
जानिब मनेते आमि।
राधापद छाड़ि, श्रीकृष्णसङ्गमे,
कभु ना हइब कामी॥

राधापक्ष छाड़ि, जे जन से जन,
जे भावे से भावे थाके।
आमि त राधिका, पक्षपाती सदा,
कभु नाहि हेरि ताके॥

उपर्युक्त भाव ही रूपानुग वैष्णवोंके प्राणस्वरूप हैं। परमाराध्यतम श्रील गुरुपादपद्म एक श्रेष्ठ रूपानुग आचार्य हैं। उनका हृद्‌गत भाव इस श्लोकमें सुस्पष्ट है कि श्रीकृष्ण ही राधाजीकी चिन्तामें निमग्न हों, वे ही श्रीमतीजीका अन्वेषण करें, वे ही श्रीमतीजीके विरहमें कातर हों। इसी श्लोकमें विरह एवं संयोग दोनों ही अवस्थाओंमें श्रीमती राधिकाजीके प्रति स्पष्ट पक्षपात एवं रूपानुगत्व परिलक्षित है।

सेव्य-सेवक-सम्भोगे द्वयोर्भेदः कुतो भवेत्।
विप्रलम्भे तु सर्वस्य भेदः सदा विवर्द्धते॥ २॥

अनुवाद—सेव्य अर्थात् भोक्ता भगवान् (श्रीकृष्ण) जब भोग्य सेवक (श्रीमती राधिका) के साथ मिलित होकर सम्पूर्ण रूपसे भोग करते हैं, तब भेद कहाँ रहता है? (अर्थात् भेद नहीं रहता अभेदकी प्रतीति होती है।) दूसरी ओर विप्रलम्भ अर्थात् विरह उपस्थित होनेपर उनमें सदा सर्वदा भेद विशेष रूपसे वर्द्धित होता है॥ २॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

सेव्य और सेवकके सम्भोगकालमें उनमें कोई भेद नहीं होता। श्रीनन्दनन्दन ही मूर्त्तिमान शृङ्गाररसके रूपमें सेव्य या भोक्तातत्त्वकी चरम सीमा हैं तथा श्रीमती राधिका सेवकतत्त्व अर्थात् आश्रयतत्त्वकी चरम सीमा हैं। इनका अनुराग ही स्थायीभाव है। यही अनुराग अपनी चरम सीमाको प्राप्त होनेपर यावदाश्रयवृत्ति कहलाता है। उसी अवस्थामें उनका यह अपूर्व अनुराग स्वसम्वेद्य दशा अर्थात् उनकी प्रेयसी विशेषके द्वारा ही सम्वेद्यदशाको प्राप्त होकर सुदीप्त अष्ट सात्त्विकभावोंके द्वारा प्रकाशित होता है। वैसी विशेष स्थितिमें सेव्य एवं सेवक दोनों ही अपने-अपने अपनत्वको सम्पूर्ण रूपमें विस्मृत हो जाते हैं। वे यह भी भूल जाते हैं कि वे रमण हैं और मैं रमणी हूँ। दोनोंका मन घुलमिल कर एक हो जाता है। उनमें भेदकी कल्पना नहीं की जा सकती। किन्तु विप्रलम्भ या विरहकी स्थितिमें वे दोनों एक दूसरेका अन्वेषण करते हुए विरहमें तड़पते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। इस अपूर्व रसराज महाभावका दिग्दर्शन गोदावरीके पुनीत तटपर राय रामानन्द एवं श्रीचैतन्य महाप्रभुके संवादमें दृष्टिगोचर होता है—

ना सो रमण, ना हम रमणी।
दुँहू मनो मन भव पेषल जानि॥
ए सखि, ए सब प्रेम काहिनी।
कानु ठामे कहिव विछुरल जानि॥

(चै॰ च॰ म॰ ८/१९३)

इसी परम गम्भीर एवं निगूढ़ भावका चित्र श्रीस्वरूप दामोदरके कड़चेमें पाया जाता है—

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देहभेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥
(चै॰ च॰ आ॰ १/५)

अर्थात् श्रीमती राधिका, कृष्णकी प्रणयविकाररूप ह्लादिनीशक्ति हैं। वे स्वरूपतः कृष्णसे अभिन्न एकात्मस्वरूप हैं। फिर भी विलास सिद्धिके लिए वे दोनों राधा एवं कृष्ण इन दो रूपोंमें नित्य विराजमान हैं। वे सेव्य एवं सेवक विषय एवं आश्रय तत्त्व इस समय एक ही स्वरूपमें श्रीचैतन्यतत्त्वके रूपमें प्रकटित हैं। मैं राधाभावद्युति द्वारा सुवलित उन कृष्णस्वरूप शचीनन्दनको पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ।

यहाँ इस श्लोकमें श्रीस्वरूप दामोदरजीने एकात्म शब्दके द्वारा श्रीराधा एवं कृष्णमें—सेवक एवं सेव्य तत्त्वमें अभिन्नत्वका प्रतिपादन किया है तथा 'देह भेदं गतौ तौ' के द्वारा दोनों तत्त्वोंमें भेदको इङ्गित किया है। परम रसिक एवं तत्त्वाचार्य श्रील गुरुपादपद्मने स्वरचित द्वितीय श्लोकमें इन्हीं परम गम्भीर एवं निगूढ़ भावोंको इङ्गित किया है।

चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वं भेदाभेदमचिन्त्यकम्।
शक्ति-शक्तिमतोरैक्यं युगपद्वर्त्तते सदा॥ ३॥

अनुवाद—शक्ति और शक्तिमान दोनोंका मिलितस्वरूप चिल्लीला मिथुनतत्त्व चिन्मय-विलास सिद्धि हेतु सम्भोगकी अवस्थामें एकाकार सदैव अचिन्त्यभेदाभेदके रूपमें युगपत् अवस्थित हैं। अर्थात् परतत्त्व वस्तु कदापि निःशक्तिक नहीं हैं। उस तत्त्वमें शक्ति और शक्तिमान एक साथ मिले हुए नित्य वर्त्तमान हैं। वे पूर्ण चिन्मय लीलाविशिष्ट पुरुषोत्तम हैं, स्वयं मिथुन विग्रह हैं अर्थात् शक्ति और शक्तिमानके सम्मिलित विग्रह हैं। वे मिथुन विग्रह ही श्रीराधाकृष्ण या गौरतत्त्व हैं। उनमें भेद और अभेद परस्पर दोनों ही विरुद्ध धर्म अचिन्त्यशक्तिके प्रभावसे सदैव एक ही साथ नित्य वर्त्तमान रहते हैं॥ ३॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व हैं। वे अखिल रसामृत मूर्त्ति एवं सर्वशक्तिमान हैं। उनकी स्वाभाविक अन्तरङ्गा स्वरूपशक्ति भी एक ही है। किन्तु शक्तिमान श्रीकृष्णकी इच्छासे एक ही स्वरूपशक्ति विभिन्न रूपोंमें प्रकटित होकर विभिन्न प्रकारके कार्योंको सम्पन्न करती हैं। वे ही चित्-शक्तिके रूपमें चित्-जगत्‌को, जीवशक्तिके रूपमें निखिल जीवोंको तथा मायाशक्तिके रूपमें सम्पूर्ण जड़जगत्‌को प्रकटित करती हैं। वे ही सम्वित्, सन्धिनी, ह्लादिनीके रूपमें श्रीकृष्णकी विभिन्न वांछाओंको पूर्ण करती हैं। वे पराशक्ति ही ह्लादिनीके साररूप प्रेम, प्रेमके सार महाभावकी मूर्त्तिमान-विग्रह श्रीमती राधिकाके रूपमें सदैव शृङ्गाररसके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीकृष्णकी अखिल वांछाओंको पूर्ण करती हैं। ये राधाकृष्ण ही सम्भोग कालमें—मिलनके समय मिथुन (युगल) तत्त्व हैं। अथवा किसी विशेष प्रकारके रसास्वादनकी इच्छासे श्रीकृष्ण ही श्रीमती राधिकाकी बाह्य अङ्गकान्ति एवं आन्तरिक महाभावको अङ्गीकार कर श्रीराधाकृष्ण मिलित श्रीगौरसुन्दरके रूपमें नित्य विराजमान हैं। अतएव श्रीगौरसुन्दर भी मिथुन तत्त्व हैं। स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके अनुगत गौड़ीय वैष्णव आचार्योंने श्रीराधा एवं श्रीकृष्णमें एक ही साथ अचिन्त्य भेद और अभेद दोनों ही स्वीकार किया है। हमने पहले श्लोकमें इस तत्त्वका निरूपण किया है।

श्रीशङ्कराचार्यने स्वगत-सजातीय-विजातीय भेदसे रहित निर्विशेष, निराकार, निःशक्तिक ब्रह्मको परतत्त्व माना है। उनके इस मतवादको केवलाद्वैतवाद कहा जाता है। किन्तु वेदान्तसूत्रके रचयिता श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यास, पराशर, औडुलौमि आदि प्राचीन तत्त्ववेत्ता आचार्योंने तथा श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी, श्रीनिम्बादित्य आदि वैष्णवाचार्यों तथा नीलकण्ठ आदि शैवाचार्य, श्रीभास्कराचार्य आदि अन्यान्य परवर्ती आचार्योंने भी आचार्य शङ्करके निर्विशेष केवलाद्वैत मतवादका प्रबल शास्त्रीय प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंके द्वारा खण्डन किया है।

वैष्णव आचार्योंने परब्रह्म एवं उनकी शक्तिको स्वीकार किया है। उन सभीने सविशेष परब्रह्मका परमसुन्दर सच्चिदानन्द श्रीविग्रह भी

स्वीकार किया है। श्रीरामानुजका विशिष्टाद्वैतवाद, श्रीमध्वाचार्यका द्वैतवाद, श्रीविष्णुस्वामीका शुद्धाद्वैतवाद एवं श्रीनिम्बादित्यका स्वाभाविक द्वैताद्वैत (भेदाभेद) वाद प्रसिद्ध है। इन वैष्णवाचार्योंने जगत्‌में शुद्धभक्तिका प्रचार किया है। श्रीरामानुजके विचारसे चिद्, अचिद् दोनों शक्तियोंसे विशिष्ट सविशेष ब्रह्म ही परतत्त्व है। श्रीमध्वाचार्यके विचारसे ब्रह्म एवं जीवमें, जीव एवं जीवमें, जीव एवं जड़में, जड़ एवं जड़में, जड़ एवं ब्रह्ममें—ये पाँच भेद नित्य हैं। श्रीविष्णुस्वामीने मायातीत शुद्धावस्थामें ही परब्रह्मका चिन्मय विग्रह, उनके लीला, परिकर, धाम आदिको स्वीकार किया है। इसी प्रकार श्रीनिम्बादित्यने सविशेष ब्रह्मके साथ जीव और जगत्‌का स्वाभाविक भेद एवं अभेद दोनोंको ही स्वीकार किया है। किन्तु स्वयं-भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने श्रीवैष्णवाचार्योंके मतोंमें विद्यमान कुछ अभावोंको पूर्ण करते हुए वेद, उपनिषदोंके सार्वदेशिक विचारोंको अङ्गीकार करते हुए शक्ति एवं शक्ति परिणत जीव-जगत्‌के साथ परब्रह्मके नित्य भेद एवं अभेदको स्वीकार किया है। यह भेद एवं अभेद मानव बुद्धिसे अतीत शास्त्रबुद्धिके द्वारा बोधगम्य होनेके कारण अचिन्त्य कहा गया है। श्रीमन् महाप्रभुके अनुगत वैष्णव आचार्योंने इसी अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वको स्वीकार किया है।

शास्त्रोंमें परतत्त्वको कहीं भी निर्विशेष, निःशक्तिक, निराकार तथा अप्राकृत गुणोंसे रहित निर्गुण नहीं कहा है। श्रील वेदव्यासने ब्रह्मसूत्रमें 'जन्माद्यस्य यतः', 'अरूपवदेव हि तत् प्रधानत्वात्', 'अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्', 'आनन्दमयोऽभ्यासात्', 'शक्तिशक्तिमतोरभेदः' आदि सूत्रोंके द्वारा परब्रह्मका सच्चिदानन्द विग्रह, उनकी शक्ति, नाम, रूप, गुण, लीला, धाम आदिको स्पष्ट रूपसे अङ्गीकार किया है। उपनिषदोंमें 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म॥', 'नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्', 'परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते।' इन मन्त्रोंके द्वारा परब्रह्मकी शक्ति, उनका सच्चिदानन्दमय विग्रह, परब्रह्मके साथ भेद और अभेद आदि सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया है। सर्वप्रमाणशिरोमणि श्रीमद्भागवतमें सर्वत्र ही परब्रह्मके अप्राकृत स्वरूप, नाम, रूप, गुण, लीला, परिकर

तथा अचिन्त्यभेदाभेद-तत्त्वका उल्लेख है—'अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनम्॥', 'गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम्', 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं' आदि श्लोकोंके द्वारा इन सब सिद्धान्तोंकी विशेष रूपसे पुष्टि की गयी है। श्रीमद्भागवतके चतुःश्लोकीमें इन सब तत्त्वोंका विशेष रूपसे वर्णन उपलब्ध होता है। स्थानाभावके कारण इसका विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं किया जा रहा है।

तत्त्वमेकं परं विद्याल्लीलया तदिद्वधा-स्थितम्।
गौरः कृष्णः स्वयं ह्येतदुभावुभयमाप्लुतः॥ ४॥

अनुवाद—अद्वयज्ञान परतत्त्व वस्तु एक हैं। किन्तु वे ही परतत्त्व लीलासिद्धि हेतु दो रूपोंमें नित्य अवस्थित हैं। एक श्रीगौरसुन्दरके रूपमें तथा दूसरे श्रीकृष्णसुन्दरके रूपमें। ये दोनों ही अभिन्न एवं परतत्त्व हैं। तत्त्वतः श्रीगौरसुन्दर ही स्वयं-कृष्ण हैं अथवा श्रीकृष्णसुन्दर ही गौरसुन्दर हैं। ये दोनों ही दोनों रूपोंको धारण करते हैं अर्थात् श्रीकृष्णसुन्दर ही गौरसुन्दर हुए हैं तथा गौरसुन्दर ही श्रीकृष्णसुन्दर हुए हैं॥ ४॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

श्रीगौरसुन्दरके प्रधान अन्तरङ्ग परिकर श्रीस्वरूप दामोदरने स्वरचित कड़चेमें श्रीगौर-कृष्ण-तत्त्वका निगूढ़ रूपमें विवेचन किया है—

राधा कृष्णप्रणयविकृतिर्ह्लादिनी शक्तिरस्मा-
देकात्मानावपि भुवि पुरा देह भेदं गतौ तौ।
चैतन्याख्यं प्रकटमधुना तद्द्वयं चैक्यमाप्तं
राधाभावद्युतिसुवलितं नौमि कृष्णस्वरूपम्॥

तात्पर्य यह है कि राधाकृष्ण दोनों ही एकात्मा हैं। श्रीमती राधिका महाभावकी मूर्त्तिमान विग्रह हैं तथा श्रीकृष्ण अखिल रसोंके मूर्त्तिमान विग्रह हैं। लीला-विलासका आस्वादन करनेके लिए सम्भोगावस्थामें एकाकार हो जाते हैं। उस समय उनमें रमण एवं रमणीका भाव भी विस्मृत होनेके कारण भेदकी कल्पना नहीं की जा सकती। फिर भी

विरहमें श्रीराधा एवं कृष्ण इन दो पृथक्-पृथक् रूपोंमें विराजमान होकर विविध प्रकारके लीला-विलासके द्वारा विप्रलम्भ आदि भावोंका आस्वादन करते हैं। पुनः ये दोनों तत्त्व कुछ विशेष भावोंका आस्वादन करनेके लिए एकत्रीभूत होकर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें प्रकटित हैं। वस्तुतः श्रीमती राधिका श्रीकृष्णके प्रणयविकार हैं, वे पुनः कृष्णकी स्वरूपशक्ति भी हैं। वे श्रीकृष्णको सब प्रकारके मनोरथोंको पूर्णकर उन्हें सब प्रकारसे आह्लादित करती हैं। इसलिए उन्हें ह्लादिनीशक्ति भी कहते हैं।

श्रील जीव गोस्वामीने तत्त्वसन्दर्भमें संहिताओंसे निम्नलिखित श्लोकोंको उद्धृतकर श्रीगौरसुन्दरको श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्णचैतन्यका मिलित रूप बतलाया है—

अन्तः कृष्णं बहिर्गौर-दर्शिताङ्गादि वैभवम्।
कलौ सङ्कीर्तानाद्यैः स्मः कृष्णचैतन्यमाश्रिताः॥

(तत्त्वसन्दर्भ २ श्लोक)

अर्थात् अङ्ग, उपाङ्ग आदि वैभवोंके साथ (श्रीनित्यानन्द प्रभु, श्रीअद्वैताचार्य, श्रीगदाधर एवं श्रीवास आदि भक्तोंके साथ) प्रकटित अन्तरमें साक्षात् श्रीकृष्ण एवं बाहरमें गौर स्वरूप—श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुका कलियुगमें सङ्कीर्त्तनयज्ञके द्वारा आश्रय ग्रहण करता हूँ।

श्रील रूप गोस्वामीने भी श्रीकृष्णसे अभिन्न, कृष्णप्रेमका वितरण करनेवाले महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुको प्रणाम किया है—

नमो महावदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नाम्ने गौरत्विषे नमः॥

मार्कण्डेयपुराणमें भी इस सिद्धान्तकी पुष्टिकी जाती है—

गोलोकं च परित्यज्य लोकानां त्राणकारणात्।
कलौ गौराङ्गरूपेण लीलालावण्यविग्रहः॥

इसके अतिरिक्त विभिन्न शास्त्रोंमें तथा गोस्वामी ग्रन्थोंमें श्रीकृष्ण ही गौरसुन्दर हैं तथा गौरसुन्दर ही कृष्ण हैं, इसके भूरि-भूरि प्रमाण हैं—

सेइ कृष्ण अवतारी ब्रजेन्द्रकुमार।
आपने चैतन्य रूपे कैल अवतार॥
(चै॰ च॰ आ॰ २/१०९)

श्रीनरोत्तम ठाकुरजीने भी लिखा—

व्रजेन्द्रनन्दन जेइ शचीसूत हइल सेइ
बलराम हइल निताइ।

सर्वे वर्णाः यत्राविष्टाः गौर-कान्तिर्विकाशते।
सर्वे वर्णेन हीनस्तु कृष्ण-वर्णः प्रकाशते॥५॥

अनुवाद—समस्त प्रकारके रङ्गोंका जहाँ एकत्र सम्मिश्रण होता है वहाँ गौरकान्ति (स्वर्णकान्ति) का प्रकाश होता है। जैसे सूर्यमें सभी रङ्गोंका सम्मिश्रण रहनेका कारण उनकी प्रभा (रङ्ग) गौर है। दूसरी ओर समस्त वर्णोंका जहाँ अभाव होता है, वहाँ प्राकृत वर्णों या रङ्गोंसे अतीत कृष्णकान्ति (काला रङ्ग) प्रकाशित होती है॥५॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

श्रीकृष्ण एवं श्रीगौर दोनों ही परतत्त्वकी चरम सीमा एवं अभिन्न तत्त्व हैं। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णकी अङ्गकान्ति नव-जलधर-श्याम अथवा इन्द्रनीलमणिकी उज्ज्वल प्रभा विशिष्ट है तथा श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी अङ्गकान्ति तपे हुए स्वर्ण एवं विद्युतकी कान्तिको भी पराभूत करनेवाली गौरकान्ति है। इस श्लोकमें जड़-वैज्ञानिकोंके सिद्धान्तोंके द्वारा भी उक्त सिद्धान्तकी पुष्टि की गयी है। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण एवं स्वयं-भगवान् श्रीगौरचन्द्र दोनों ही अप्राकृत परतत्त्व हैं। वे प्राकृत गुणोंसे सर्वथा अतीत हैं। इस जड़-जगत्‌में उनकी उपमाका कोई भी स्थल नहीं है। फिर भी बद्धजीवोंको बोधगम्य करानेके लिए शाखाचन्द्र न्यायसे कुछ उपमाएँ दी जाती हैं। किन्तु ये उपमाएँ अप्राकृत भगवत्-स्वरूप उपमेयके एकदेशीय स्वरूपको प्रकाश करनेके लिए ही प्रस्तुत की जाती हैं। उनके सर्वाङ्ग स्वरूपको प्रकाश करनेके लिए नहीं। जैसे एक अबोध बालकको रात्रिकालमें चन्द्रको दिखलानेके लिए निकटस्थ किसी वृक्षकी एक शाखाका अवलम्बनकर उस शाखाके ऊपर चन्द्रको दिखलाया जाता

है। किन्तु चन्द्र उस शाखाके ऊपर दीखनेपर भी वस्तुतः वह वहाँसे लाखों मील दूर अवस्थित है। उसी प्रकार भगवत्-तत्त्वसे सर्वथा अनभिज्ञ लोगोंको प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत भगवत्-तत्त्वके सम्बन्धमें कुछ बोध करानेके लिए प्राकृत या जड़-वस्तुओंकी उपमा प्रस्तुत करना प्रथमावस्थामें नितान्त आवश्यक होता है। यहाँ काला और गोरा दोनों रङ्ग प्राकृत होनेपर भी कुछ अंशोंमें इन रङ्गोंके साथ श्रीकृष्णसुन्दर एवं श्रीगौरसुन्दर दोनोंकी अङ्गकान्तिकी उपमा दी गयी है। वैज्ञानिकोंकी दृष्टिसे काला कोई रङ्ग नहीं है, black is no colour. इस उपमाके द्वारा यह बतलाया गया है कि चरम उपास्य तत्त्ववस्तु श्रीकृष्ण एवं उनकी अङ्गकान्ति (कृष्णवर्ण) प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत अर्थात् निगुण है। प्राकृत जगत्में प्रकटित होनेपर भी श्रीकृष्ण एवं उनकी अङ्गकान्ति सर्वथा निर्गुण ही है। यहाँ तक कि श्रीकृष्णके निखिल अप्राकृत गुण—गम्भीर, विनयी, अमानी-मानद, विदग्ध, नित्यकिशोर, अनुपम सौन्दर्य, रसिक, धार्मिक, जितेन्द्रिय, परम कारुणिक सभी गुण भी निर्गुण हैं।

दूसरी ओर, श्रीगौरसुन्दर, उनकी गौरकान्ति तथा उनके सभी गुण अप्राकृत हैं। इसलिए वे सगुण तत्त्व हैं। उनका यह सगुणत्व भी प्राकृतिक गुणोंसे सर्वथा अतीत अर्थात् निर्गुण ही है। यहाँ ऊपरकी भाँति शाखाचन्द्र न्यायसे इस सगुण तत्त्वकी भी उपमा दी गयी है। जैसे सूर्यमें सभी गुणोंका समावेश या सम्मिश्रण है, वैसे ही गौरकान्ति विशिष्ट श्रीगौरसुन्दरमें भी सभी अप्राकृत गुणोंका समावेश है। अतः वे उपास्य हैं। जैसे सभी रङ्गोंके सम्मिश्रणसे गौर या स्वर्ण कान्ति प्रकाशित होती है। उसमें सभी रङ्ग अलग-अलग नहीं दीख पड़ते हैं। इसीलिए सूर्यमें ऊपरसे केवल गौरकान्ति ही प्रकाशित होती है। किन्तु वर्षाकालमें सूर्यकी विपरीत दिशामें कभी-कभी सतरङ्गी इन्द्रधनुष दृष्टिगोचर होता है; जिसमें अलग-अलग सातों रङ्गोंको देखा जा सकता है। वैसे ही श्रीगौरसुन्दरमें सभी अप्राकृत गुणोंके सम्मिश्रण होनेके कारण ऊपरसे गौरकान्ति ही दीखता है। अँग्रेजी (English) भाषामें गौररङ्गको VIBGYOR कहते हैं। इसमें ये सात रङ्ग मिले हुए होते हैं—

V—Violet (बैगनी) I—Indigo (गहरानीला)
B—Blue (नीला) G—Green (हरा)
Y—Yellow (पीला) O—Orange (नारङ्गी)
R—Red (लाल)

एक समय परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव हमलोगोंको कुछ हरिकथा सुना रहे थे। प्रसङ्गवशतः उन्होंने बतलाया कि श्रील प्रभुपादकी अप्रकटलीलाके पश्चात् वे कुछ दिनोंके लिए प्रयाग (इलाहाबाद) गये हुए थे। वहाँ वे अपने प्रियबन्धु एवं गुरुभ्राता श्रीपाद अभयचरणारविन्द प्रभुके घर कुछ दिन ठहरे थे। यहीं पर श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुने इनका परिचय High Court के प्रसिद्ध अधिवक्तासे कराया। ये अधिवक्ता महोदय कुशाग्र बुद्धिसम्पन्न एवं बड़े ही तार्किक थे। वे दार्शनिक पण्डित महामहोपदेशक कृतिरत्न प्रभुके विचारोंको श्रवणकर बड़े ही प्रभावित हुए। एक दिन वे अपने साथ इलाहाबादके एक सुविख्यात दार्शनिक वक्ता एवं ईसाई धर्मके प्रचारक Church Bishop को अपने साथ ले आये। उन्होंने इनका परिचय श्रीकृतिरत्न प्रभुके साथ कराया। उन्होंने मनोरञ्जनके लिए ऐसी बातें छेड़ दीं कि दोनोंमें परस्पर कुछ दिलचस्प युक्ति एवं तर्क-वितर्ककी बातें हों। बातों ही बातोंमें Bishop महोदयने श्रीकृतिरत्न प्रभुकी ओर मुड़कर कहा आपलोग काले रङ्गके कृष्णकी उपासना क्यों करते हैं?

प्रत्युत्पन्न मतिका परिचय देते हुए साथ-ही-साथ श्रील गुरुदेवने उत्तर दिया—Black is no colour. काला कोई भी रङ्ग नहीं है। वह सब रङ्गोंसे अतीत अर्थात् प्राकृत सभी गुणोंसे परे है। हम किसी प्राकृत वस्तु या रङ्गकी उपासना नहीं करते। जिस वस्तु या रङ्गकी उत्पत्ति, विनाश, क्षय, वृद्धि आदि दशाएँ नहीं हैं, जो सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक गुणोंसे अतीत है, सदैव नित्य विराजमान रहता है, उसे निर्गुण तत्त्व कहते हैं। इसीलिए हम निर्गुण परतत्त्वकी चरम सीमा श्रीकृष्णकी आराधना करते हैं।

बिशप भी मजा हुआ कुशल खिलाड़ी था। उसने तुरन्त प्रश्न किया—फिर आपलोग गोरे रङ्गवाले गौराङ्ग महाप्रभुकी उपासना क्यों करते हैं?

श्रील गुरुदेव मानो प्रश्नका उत्तर देनेके लिए पहलेसे ही प्रस्तुत थे। उन्होंने तपाकसे उत्तर दिया—प्रकृतिके सभी गुण अत्यन्त हेय एवं दुःखपूर्ण हैं। इससे अतीत अप्राकृत जगत्‌में अप्राकृत सद्‌गुणोंका भण्डार है। श्रीचैतन्य महाप्रभु उन्हीं अप्राकृत निखिल सद्‌गुणोंके अफुरन्त भण्डार हैं। इन सद्‌गुणोंका सम्मिश्रण ही उनकी गौरकान्ति है। जिस प्रकार सूर्यमें सभी रङ्गोंका समावेश होनेके कारण वह गौरकान्ति विशिष्ट—VIBGYOR दिखायी पड़ता है। किन्तु उसमें violet, indigo, blue, green, yellow, orange, red ये सातों रङ्ग मिश्रित हैं। वर्षाकालमें कभी-कभी सूर्यके प्रतिबिम्बस्वरूप इन्द्रधनुषमें सातों रङ्ग सहज ही दृष्टिगोचर होते हैं। उसी प्रकार निखिल अप्राकृत गुणोंसे समाविष्ट श्रीगौरसुन्दर हमलोगोंके उपास्य हैं। इस अकाट्‌य वैज्ञानिक युक्तिको सुनकर बिशप महोदय कुछ झेंप गये, उनकी बोलती बन्द हो गयी। फिर भी कुछ मुस्कुरानेकी चेष्टा करते हुए बोले—

आपलोग एक गायोंके चरबाहेकी उपासना करते हैं, यह बात मेरी समझमें नहीं आती।

श्रील गुरुदेवने उत्तर दिया—शायद इसलिए समझमें नहीं आती क्योंकि आपलोग भेड़ोंके चरवाहेकी उपासना करते हैं। यदि भेड़ोंके चरवाहेकी उपासना की जा सकती है, तो जगत्‌का पालन-पोषण करनेवाली गोमाताके सेवककी उपासना उपहासपूर्ण कैसे हो सकती है? यह सुनकर बिशप महोदय एवं अधिवक्ता महोदय दोनों ही श्रीकृतिरत्न महोदयकी वाक्‌पटुताकी प्रशंसा करते हुए विदा हुए।

इस प्रकार अप्राकृत सगुण एवं निर्गुण दोनों ही अभिन्न तत्त्व हैं। दोनोंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। श्रीकृष्ण एवं श्रीगौरसुन्दर एक ही साथ सगुण एवं निर्गुण दोनों ही तत्त्व हैं, इसमें तनिक भी संशयकी गुञ्जाइश नहीं है।

सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकमेवाद्वितीयकम्।
सर्व-नित्य-गुणैर्गौरः कृष्णो रसस्तु निर्गुणैः॥ ६॥

अनुवाद—स्वरूपतः सगुण और निर्गुण ये दोनों ही तत्त्व अभिन्न या अद्वितीय हैं। निखिल नित्य-अप्राकृत सद्‌गुणोंकी समष्टि श्रीगौरसुन्दर

सगुण तत्त्व हैं तथा सब प्रकारके प्राकृत गुणोंसे रहित (अतीत) सर्वशक्तिमान तथा अखिलरसामृतमूर्त्ति श्रीकृष्ण निर्गुण तत्त्व हैं। शास्त्रमें सर्वत्र ही कृष्णको रसस्वरूप एवं रसिकशेखर कहा गया है। रस निर्गुण या अप्राकृत तत्त्व है। यह कभी भी प्राकृत गुणोंके अन्तर्भुक्त नहीं है॥ ६॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

उपरोक्त श्लोकके 'वर्ण' शब्दको इस वर्त्तमान श्लोकमें गुण शब्दके सहित उपमा देकर श्रीगौर और श्रीकृष्ण दोनोंको ही एक समान उपास्य तत्त्व बतलाया जा रहा है। स्वरूपतः निर्गुण श्रीकृष्ण एवं सगुण श्रीगौरसुन्दर समतुल्य उपास्य एवं परस्पर अभिन्न परतत्त्व हैं। ये दोनों एक ही साथ सगुण और निर्गुण उभय तत्त्व हैं। कुछ तत्त्वानभिज्ञ व्यक्ति सगुण और निर्गुण तत्त्वोंको दो तत्त्व मानते हैं तथा दोनोंको एक दूसरेसे सर्वथा विपरीत मानते हुए निर्गुण तत्त्वको श्रेष्ठ एवं सगुण तत्त्वको प्राकृत गुणोंके अन्दर हेय मानते हैं। इनलोगोंकी धारणाके अनुसार प्रकृतिसे अतीत निर्विशेष, निरञ्जन, निःशक्तिक और निराकार ब्रह्म ही निर्गुण तत्त्व है, जगत् मिथ्या है। जीव ही ब्रह्म है। जब वही निर्गुण तत्त्व प्राकृत जगत्में प्राकृत नाम, प्राकृत रूप एवं प्राकृत गुणोंको अङ्गीकार कर प्रकट होता है तब वह सगुण तत्त्व कहलाता है। वे लोग स्वयं-भगवान् कृष्ण एवं श्रीरामचन्द्र आदिको भी इसी प्रकारका सगुण अवतार मानते हैं। इनका जन्म-मृत्यु तथा उनके शरीरको भी प्राकृत या मायिक मानते हैं। किन्तु उनकी ऐसी मान्यताको गीता आदि सत्-शास्त्रमें जघन्य अपराध बतलाया गया है—

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥

(गीता ९/११)

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीञ्चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥

(गीता ९/१२)

अर्थात् मूर्ख व्यक्ति मेरे कृष्णरूपके परम भावको न जानकर मायिक मानुषी बुद्धिसे भूत समुदायके महान् ईश्वर मेरी अवज्ञा करते हैं। ऐसे मूढ़ व्यक्तियोंकी सारी आशाएँ, सारे कर्म, सारे ज्ञान निष्फल हैं। यहाँ तक कि वे विक्षिप्तचित्त होकर विवेकको नष्ट करनेवाली राक्षसी और आसुरिक प्रकृतिका आश्रयकर परमार्थसे च्युत होकर नरकके भागी होते हैं। तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण समस्त अवतारोंके मूल एवं परात्पर तत्त्ववस्तु हैं। वे कृष्णरूपमें ही समस्त प्राणिओंके, ईश्वरोंके भी ईश्वर, निखिल जगत्के स्वामी, सत्सङ्कल्प, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और महाकारुणिक हैं। दुष्ट राजा वेण आदि मूढ़ लोग कृष्णका दर्शनकर नाना प्रकारसे उनकी अवज्ञा करते थे। वे मूढ़ लोग श्रीवसुदेवनन्दन या श्रीनन्दनन्दन श्रीकृष्णको प्राकृत एवं मरणशील मानकर गाली गलौज भी करते थे। ऐसे मूढ़ लोग कृष्णके देहमें एक पृथक् आत्माकी कल्पना कर उसे ही परमात्मा मानते हैं। किन्तु शास्त्रमें इसका सर्वत्र निषेधकर श्रीकृष्णरूपको सच्चिदानन्द बतलाया गया है। उनमें देह और देहीका भी निषेध किया गया है।

(क) ॐ सच्चिदानन्दरूपाय कृष्णाय (गो॰ ता॰ १/१)

(ख) तमेकं गोविन्दं सच्चिदानन्द-विग्रहं

(ग) द्विभुजं मौन-मुद्राढ्यं वनमालिनमीश्वरम्

(घ) ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्द विग्रहः (ब्र॰ स॰ ५/१)

(ङ) अपश्यं गोपमनिपद्यमानमा (ऋग्वेद १/२२/१६६/३१)

(च) गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् (श्रीमद्भा॰ ७/१०/४८)

(छ) यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा नराकृतिः (श्रीमद्भा॰ ९/२३/२०)

(ज) देहदेहिभिदा नास्ति ईश्वरे विद्यते क्वचिद्।

भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अचिन्त्यशक्तिके कारण अजन्मा होनेपर भी श्रीनन्द-यशोदाके नित्य पुत्र हैं। निर्गुण होनेपर भी नवकिशोर नटवर, गोपवेश वेणुकर, सर्वत्र समदर्शी होनेपर भी शरणागत भक्तके पक्षपाती हैं। 'विरुद्ध धर्मं तस्मिन् न चित्रम्' के अनुसार भगवान्में एक ही साथ सारे विरुद्ध गुण समाविष्ट रहते हैं। चतुर्मुख ब्रह्मा आदि देवोंने एक ही साथ उन्हें सगुण एवं निर्गुण बतलाया है।

रावणने भगवान् श्रीरामचन्द्रको साधारण मनुष्य समझकर उनकी स्वरूपशक्ति सीताका अपहरण कर लिया। किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने रावण एवं उनके अनुगत सारे राक्षसोंका विनाशकर सीतादेवीको अपने पास लौटा लिया। कंस, जरासन्ध और शिशुपाल आदि मूढ़ राजाओंने भगवान् श्रीकृष्णको साधारण मनुष्य समझा। किन्तु श्रीकृष्णने अहैतुकी कृपाके द्वारा चक्र सुदर्शनके माध्यमसे स्वयं मारकर अथवा भक्तोंके द्वारा उनका वध कराकर अपने गुणातीत अर्थात् निर्गुण होनेका प्रमाण दिया। स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें ऐसा कहा है—'ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते' मैं उन्हें बुद्धि देता हूँ, दिव्य चक्षु देता हूँ जिससे वह मुझे जान सकता है। भगवान् एवं भगवान्‌के भक्तोंकी कृपाके बिना भगवत्-तत्त्वकी उपलब्धि नहीं होती। अतः श्रीकृष्णसुन्दर एवं श्रीगौरसुन्दर दोनों ही समतुल्य उपास्य, अद्वितीय एवं अभिन्न परतत्त्व हैं।

श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म त्यक्त्वा तु निर्गुणं हि तत्।
उपासते मृषा विज्ञाः यथा तुषावघातिनः॥७॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण या श्रीगौर मिथुन ब्रह्म हैं। उन्हें (उनका भजन) परित्यागकर ज्ञानी होनेका मात्र अभिमान करनेवाले अज्ञानी लोग केवल भूसेको कूटनेवालोंकी भाँति व्यर्थ ही निर्गुण ब्रह्मकी उपासना करते हैं। अर्थात् अन्न प्राप्तिकी आशासे केवल भूसा कूटनेवाले वृथा परिश्रम ही करते हैं। उसी प्रकार निर्विशेष ज्ञानीको कृष्णसेवाका परित्यागकर निर्गुण निर्विशेष ब्रह्मकी उपासना द्वारा वृथा परिश्रम ही सार होता है अर्थात् उसका सारा परिश्रम व्यर्थ जाता है॥७॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

वेद, उपनिषद् विशेषतः वेदान्तसूत्र भक्तिग्रन्थ है। इन सारे ग्रन्थोंका प्रतिपाद्य विषय भगवान् एवं इनकी भक्ति है। वेदान्तसूत्रके ५५० सूत्रोंमें कहीं भी ज्ञान शब्दका उल्लेख नहीं है। 'जन्माद्यस्य यतः' सूत्रके द्वारा भगवान्‌को स्पष्ट रूपसे विश्वका स्रष्टा, पालयिता और विनाशकर्त्ता बतलाया गया है। इसके द्वारा उनके रूप, शक्ति और अप्राकृत गुणोंका प्रतिपादन किया गया है। 'अरूपवदेव तत् प्राधानत्वात्' सूत्रके द्वारा परब्रह्मका अप्राकृत रूप, श्रीविग्रह, 'आनन्दमयोऽभ्यास्यात्' के द्वारा उनका

लीला-विलास तथा 'अनावृत्ति शब्दादनावृत्ति शब्दात्' सूत्रके द्वारा नामसङ्कीर्त्तनके द्वारा भगवत्-प्राप्तिका सुस्पष्ट उल्लेख है। श्रीमद्भागवतके ब्रह्मस्तवमें निर्विशेष ज्ञानका निषेध किया गया है—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवल बोध लब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

(श्रीमद्भा॰ १०/१४/४)

अर्थात् हे प्रभो! परम कल्याणस्वरूप आपको पानेके लिए भक्ति ही एकमात्र श्रेष्ठ उपाय है। जिस प्रकार जलाशयसे निरन्तर जल प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार भक्तिसे ही मोक्ष आदि चारों फल प्राप्त होते हैं। भक्ति होनेपर ज्ञान अपने आप आ जाता है, उसके लिए अलगसे प्रयत्न करनेकी आवश्यकता नहीं होती। जो लोग भक्तिको छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिए श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं—उन्हें बस, क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है, और कुछ नहीं, जैसे थोथे भूसे कूटनेवालेका केवल श्रम ही हाथ लगता है, उसे चावल नहीं मिलता। और भी—

येऽन्येऽरविन्दाक्षविमुक्तमानिन-
स्तय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः
पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः ॥

(श्रीमद्भा॰ १०/२/३२)

अर्थात् हे कमलनयन! आपके भक्तोंके अतिरिक्त अन्य जो अपनेको विमुक्त अभिमान करते हैं तथा आपके प्रति भक्तिभावसे रहित होनेके कारण जिनकी बुद्धि भी शुद्ध नहीं है, वे शम, दम आदि कठिन साधनके फलसे स्वयंको जीवन्मुक्त बोध करते हैं, परन्तु आश्रयस्वरूप आपके पादपद्मोंका अनादर करनेके कारण अधःपतित हो पड़ते हैं अर्थात् पुनः हीन अवस्थाको प्राप्त होते हैं।

निर्गुण, निराकार ब्रह्मकी उपासना करनेवाले चतुःसन एवं श्रीशुकदेव भी लोकपितामह ब्रह्मा एवं कृष्णद्वैपायन वेदव्यासकी कृपासे निर्गुण-उपासना छोड़कर श्रीराधाकृष्ण मिथुन ब्रह्मकी उपासनामें तत्पर हो गये। इन मिथुन ब्रह्मका गुण एवं माधुर्य ऐसा ही आकर्षक है कि ब्रह्मज्ञानी भी अपनी पूर्व आत्मारामता आदिको बरबस त्यागकर श्रीराधाकृष्ण मिथुनतत्त्वकी उपासनामें विभोर हो जाता है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थाप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥

(श्रीमद्भा॰ १/७/१०)

श्रीशुकदेव गोस्वामीने स्वयं ही श्रीमद्भागवतमें कहा है कि मैं निर्गुण ब्रह्मकी उपासनामें परिनिष्ठित था, किन्तु श्रील वेदव्यासकी कृपासे श्रीराधाकृष्ण-युगलकी रसमयी उपासनामें प्रवृत्त हुआ—

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमश्लोकलीलया।
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान्॥

(श्रीमद्भा॰ २/१/९)

निर्गुण ब्रह्मकी उपासनाका फल मुक्ति है। ऐसी मुक्ति भगवान्‌के द्वारा दिये जानेपर भी ऐकान्तिक भक्त उसे कदापि ग्रहण नहीं करता। वह भगवान्‌की प्रेममयी सेवामें सदा सर्वदा नियुक्त रहना चाहता है। बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कठोर साधनाओंके द्वारा बड़ी कठिनतासे जिस मुक्तिको यदा कदा ही प्राप्त होते हैं, वही दुर्लभ मुक्ति बड़े-बड़े असुरोंको भगवान्‌के द्वारा मारे जानेपर अनायास ही प्राप्त हो जाती है। भला ऐसी निम्नकोटिकी हेय मुक्तिको पानेके लिए मूर्खके अतिरिक्त कौन वृथा प्रयास करेगा। इसलिए कोई भी विज्ञभक्त भगवान्‌के द्वारा लुभाये जानेपर भी ऐसी हेय मुक्तिको ग्रहण नहीं करता।

श्रीविनोदविहारी यो राधयाः मिलितो यदा।
तदाहं वन्दनं कुर्य्यां सरस्वती-प्रसादतः॥ ८॥

अनुवाद—श्रीविनोदबिहारी श्रीकृष्ण जब श्रीमती राधिकाके सहित मिलकर एकीभूत होते हैं या हुए हैं, श्रील सरस्वतीकी कृपासे अर्थात् श्रीगुरुदेव 'प्रभुपाद' की कृपासे मैं उस समय उनकी वन्दना करता हूँ॥ ८॥

तत्त्व-प्रकाशिका-वृत्ति

इस श्लोकमें रचयिताके एक दूसरे निगूढ़ भावका सङ्केत मिलता है। 'श्रीमती राधिकाके सहित जब विनोदबिहारी मिले हुए होते हैं' का तात्पर्य प्रथम श्लोकमें व्यक्त किया गया है। अर्थात् श्रीमती राधिकाकी चिन्तामें कृष्ण अत्यन्त विभोर हो जाते हैं, उस समय श्रीमती राधिकाके चिह्नोंसे अर्थात् गौरकान्तिसे देदीप्यमान होते हैं अथवा विरहके पश्चात् संयोग अवस्थामें श्रीमती राधिकाके आलिङ्गनके द्वारा जिन श्रीकृष्णकी उज्ज्वल नीलकान्ति श्रीमती राधिकाकी गौरकान्तिसे आच्छादित हो जाती है, उन राधालिङ्गित श्रीविनोदबिहारीको पदकर्त्ता पुनः-पुनः प्रणाम कर रहे हैं। श्रीराधाविनोदबिहारी मिथुन-ब्रह्मको ही अर्थात् रसराज महाभाव श्रीविग्रहको ही विशेष रूपसे वन्दना करनेका अभिप्राय है। 'सरस्वती प्रसादतः' का तात्पर्य अपने गुरुदेवकी अहैतुकी कृपासे है। इनके गुरुका नाम 'श्रीभक्ति सिद्धान्त सरस्वती' है। सरस्वतीके भी दो तात्पर्य है। (१) अपरा विद्याकी अधिष्ठात्रीदेवी, दूसरा पराविद्याकी अधिष्ठात्रीदेवी। श्रीसरस्वती ठाकुर पराविद्याकी अधिष्ठातृदेवीसे अभिन्न हैं। अतः इनकी कृपाके बिना श्रीराधालिङ्गित विग्रहकी वन्दना करना भी सम्भव नहीं है।

एक और भी गूढ़ तात्पर्य यह है कि 'तदा अहं श्रीविनोदबिहारी वन्दनं कुर्यात्', अर्थात् मैं विनोदविहारी राधालिङ्गित श्रीविग्रहकी वन्दना कर रहा हूँ। श्रीविनोदबिहारी पदकर्त्ताका गुरुप्रदत्त नाम है। इसके अतिरिक्त श्रीपदकर्त्ताके सिद्ध स्वरूपका नाम भी श्रीविनोदमञ्जरी है, इनके प्रणाम मन्त्रसे भी ऐसा स्पष्ट है—

गौराश्रय-विग्रहाय कृष्णकामैक-चारिणे।
रूपानुगप्रवराय विनोदेति स्वरूपिणे॥

अतः इस स्तवके द्वारा पदकर्त्ता अपने सिद्ध स्वरूपके द्वारा राधालिङ्गित श्रीकृष्णकी प्रेममयी सेवामें सदैव नियुक्त रहनेकी अभिलाषा रखते हैं।

करुणाके घनमूर्त्ति श्रीगुरुदेवकी कृपाके बिना ऐसी दुर्लभ लालसाका पूर्ण होना सम्भव नहीं है।

श्रीगुरुचरणे रति, एई से उत्तमा गति,
जे प्रसादे पूरे सर्व आशा।

इति तत्त्वाष्टकं नित्यं यः पठेत् श्रद्धयान्वितः।
कृष्ण-तत्त्वमभिज्ञाय गौरपदे भवेन्मतिः॥ ९॥

अनुवाद—जो लोग इस तत्त्वाष्टकका श्रद्धापूर्वक नियमित रूपसे दैनन्दिन पाठ करेंगे, वे श्रीकृष्णतत्त्वसे भलीभाँति अवगत होंगे तथा श्रीगौरसुन्दरके श्रीचरणकमलोंमें इनकी प्रीति होगी॥ ९॥

श्रीमङ्गलारती

हम पहले ही कह चुके हैं कि परमाराध्यतम श्रीश्रील गुरुपादपद्म एक ही साथ दार्शनिक तत्त्ववेत्ता एवं रसिक कवि दोनों ही थे। हम उनके द्वारा रचित मङ्गलारतीके कुछ पदोंको प्रस्तुत कर रहे हैं। हम इसके द्वारा सहज ही समझ सकते हैं कि वे कैसे रसिक कवि थे। इस मङ्गलारतीमें श्रीश्रीराधाकृष्णकी निशान्तलीलाका बड़े ही निगूढ़ रूपमें वर्णन किया गया है। साधारण साधक उनके इस गम्भीर भावको हृदयङ्गम नहीं कर सकते। कुछ उन्नत रागानुगीय वैष्णव ही उसकी उपलब्धि कर सकते हैं।

रागानुग साधक-भक्तोंको श्रीश्रीराधाकृष्णकी नित्यलीलाओंका दैनन्दिन स्मरण और चिन्तन करनेके लिए नित्यलीलाको आठ भागोंमें विभक्त किया गया है—(१) निशान्त, (२) प्रातः, (३) पूर्वाह्न, (४) मध्याह्न, (५) अपराह्न, (६) सायं, (७) प्रदोष एवं (८) मध्यरात्रिलीला। मङ्गलारतीका सम्बन्ध निशान्तलीलासे है। निशाके अन्तिम भागमें प्रातःकालसे पूर्व श्रीराधाकृष्ण-युगलकी जो लीला होती है, उसे निशान्तलीला कहते हैं। श्रीसनत्कुमारसंहिता, पद्मपुराण (पाताल खण्ड) तथा गोस्वामी ग्रन्थोंमें इसका वर्णन है। श्रील रूप गोस्वामीने सूत्र रूपमें इन अष्टकालीय लीलाओंका वर्णन किया है। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामीने गोविन्दलीलामृतमें तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने श्रीकृष्णभावनामृत ग्रन्थमें अष्टकालीय लीलाओंका विस्तारसे वर्णन किया है। हम सूत्र रूपमें निशान्तलीलाका दिग्दर्शन करा रहे हैं—

श्रीश्रीराधाकृष्ण–युगल रात्रिविलाससे क्लान्त होकर अत्यन्त रमणीय किसी कुञ्जमें सो रहे हैं। कुछ विशेष सखियाँ सेवाके समयोचित उपकरणोंको हाथोंमें लेकर श्रीयुगलकिशोरके जागरणकी प्रतीक्षा कर रही हैं। प्रातःकालीन सुशीतल मन्द समीर प्रत्येक पुष्पोंका चुम्बन करते हुए उनके सौरभके भारसे पीड़ित होकर लड़खड़ाता हुआ प्रवाहित हो रहा है। भौंरे भी तुरन्त जगकर गुञ्जार करते हुए एक पुष्पको छोड़कर दूसरे पुष्पको चुम्बन कर रहे हैं। वृन्दावनका सारा वातावरण इन विकसित पुष्पोंके सौरभसे आमोदित हो रहा है। श्रीवृन्दादेवी अभी तक युगलकिशोर–किशोरीको शयन करते देखकर चिन्तित हो जाती हैं। अहो! अब तो अरुणोदय होने जा रहा है; किन्तु ये युगल अभी भी सुखपूर्वक परस्पर आलिङ्गनबद्ध होकर शयन कर रहे हैं। ऐसा देखकर भयभीत होकर उन्होंने शुक–सारी, कोयल, मयूर और पपीहे आदि वृन्दावनके पक्षियोंको आदेश दिया कि वे अपने मधुर कलरवसे युगलकिशोरको जगायें। अन्यथा चारों ओर जागरण होनेके पश्चात् बड़ी लज्जाकी बात होगी। श्रीवृन्दादेवीका आदेश सुनते ही वे सारे पक्षी मधुर स्वरसे श्रीराधाकृष्णकी लीलाका गान करते हुए युगलको जगाने लगे।

इधर कुछ प्राणप्रेष्ठ सखियाँ कुञ्जके गवाक्षके माध्यमसे श्रीश्रीराधाकृष्णकी अनुपम रूपराशिका दर्शनकर आनन्दमें विभोर होकर अपने नेत्रोंसे ही उनकी आरती उतारने लगीं। पक्षियोंके मधुर कलरवसे जग जानेपर भी ये दोनों गाढ़ालिङ्गनसे प्राप्त सुख कहीं खो न जाय, इस डरसे शय्यासे उठना नहीं चाहते। फिर भी शुक–सारिकाओंके वचनोंके द्वारा बारम्बार जगाये जानेपर वे शय्यापर ही उठ बैठते हैं। उस समय स्वाधीनभर्तृका श्रीमती राधिका प्रियतम श्रीकृष्णसे उनके बिखरे हुए शृङ्गारको सँवारनेका अनुरोध करती हैं। धीरललित कृष्ण प्रियतमाके अस्त–व्यस्त शृङ्गारको सँवारने लगते हैं। तब तक सखियोंका कुञ्जमें आगमन होता है। वे उनके समीप जाकर रसालाप करती हुई उन दोनोंकी कालोचित सेवा करने लगती है। तत्क्षणात् कक्खटी नामक बन्दरियाके जोरसे 'जटिला' नामका उच्चारण करते ही अप्राकृत भय

और उत्कण्ठा रससे व्याकुल होकर श्रीश्रीराधाकृष्ण अपने-अपने भवनमें जाकर शयन करते हैं। श्रीरूपगोस्वामीका सूत्रश्लोक इस प्रकार है—

राज्यन्ते त्रस्तवृन्देरितबहुभिरवैर्बोधितौ कीरशारी-
पद्यैर्हृद्यैरहृद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदितरतिललितौ कक्खटीगीःसशंकौ
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निजनिजधान्याप्ततल्पौ स्मरामि॥

श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें विभिन्न वैष्णव आचार्योंके द्वारा रचित श्रीराधाकृष्ण-युगलकी बहुत-सी मङ्गलारतियाँ हैं। परन्तु अस्मदीय परमाराध्य श्रीगुरुदेव द्वारा रचित इस मङ्गलारतीका अपना एक अभूतपूर्व वैशिष्ट्य है। इसका गायन करनेसे श्रीराधाकृष्णकी निशान्तलीलाओंका सर्वाधिक रूपमें उद्दीपन होता है, जो अन्यत्र कहीं भी नहीं है। सम्पूर्ण मङ्गलारती इस प्रकार है—

मङ्गल श्रीगुरु-गौर मङ्गल मूरति।
मङ्गल श्रीराधाकृष्ण युगल पीरिति॥

मङ्गल निशान्तलीला मङ्गल उदये।
मङ्गल आरति जागे भकत हृदये॥

तोमार निद्राय जीव निद्रित धराय।
तव जागरणे विश्व जागरित हय॥

शुभदृष्टि कर प्रभु जगतेर प्रति।
जागुक हृदये मोर सुमङ्गला रति॥

मयूर शुकादि सारि कत पिकराज।
मङ्गल जागर हेतु करिछे विराज॥

सुमधुर ध्वनि करे जत शाखीगण।
मङ्गल श्रवणे बाजे मधुर कूजन॥

कुसुमित सरोवरे कमल-हिल्लोल।
मङ्गल सौरभ बहे पवन कल्लोल॥

झाँझर काँसर घण्टा शङ्ख करताल।
मङ्गल मृदङ्ग बाजे परम रसाल॥

मङ्गल आरति करे भकतेर गण।
अभागा केशव करे नाम-सङ्कीर्त्तन॥

जीव स्वरूपतः भगवान्‌का दास है। वह दुर्भाग्यवश भगवत्-विमुख होनेके कारण अनादि कालसे इस मायिक संसारमें पतित होकर जन्म-मरणके चक्करमें पड़कर त्रितापोंसे दग्ध हो रहा है। जीव किसी विशेष सौभाग्यसे सद्‌गुरुका पदाश्रयकर शुद्धभक्तिका अवलम्बन करता है। उस समय वह जान पाता है कि श्रीगुरुदेव, श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्रीराधाकृष्ण-युगल सारे विश्वके लिए मङ्गलस्वरूप हैं। श्रीराधाकृष्णके श्रीचरणकमलोंमें प्रेम ही जीवोके लिए चरम प्रयोजन है। जिस सौभाग्यवान व्यक्तिके हृदयमें श्रीराधाकृष्ण-युगलके प्रति प्रेम उदित होता है, उसका जीवन सार्थक हो जाता है। यह अवस्था जीवोंके लिए परम कल्याणजनक है।

भक्तिसाधक मङ्गलमय भगवान् या भक्तकी कृपासे उत्तमाभक्तिका साधन करते-करते जब श्रद्धा, निष्ठा, रुचि और आसक्ति आदिकी अवस्थाको क्रमशः पार कर लेता है, उस समय स्वरूपशक्तिकी ह्लादिनी एवं सम्विद्‌की सारवृत्ति, जिसे शुद्धसत्त्व कहते हैं, उस साधकके हृदयमें स्वयं उदित होती है। उस समय सुसौभाग्यवान साधकके हृदयमें शुद्ध स्वरूपगत सिद्धदेह, नाम, रूप और भाव आदि भी उदित हो जाते हैं। तब तत्त्वज्ञ एवं रसिक भक्तोंके सङ्गसे उस साधकको भावपूर्वक नामकीर्त्तन एवं अष्टकालीय लीलाओंके स्मरणमें स्वाभाविक रति उत्पन्न होती है। जिस जीवका ऐसा मङ्गल उदित होता है, उसीके हृदयमें मङ्गल निशान्तलीलाका उदय होता है। विशेषतः अप्राकृत वृन्दावनधाममें निशान्तलीलाके अन्तर्गत प्रियनर्मसखियाँ श्रीराधाकृष्ण-युगलकी जो प्रेमभरी आरती उतारती हैं, वही मङ्गलमय आरती उपरोक्त प्रकारके भक्ति साधकके हृदयमें उदित होती है।

परम मङ्गलस्वरूप श्रीराधाकृष्ण या उनके परिकरोंकी कृपाके बिना ऐसी मङ्गलमयी रति उदित नहीं होती। ऐसी मङ्गलमय रतिके उदित हुए बिना पूर्वोक्त अप्राकृत मङ्गलारती भी उदित नहीं होती। इसलिए भक्तिसाधक बड़े ही आर्त्तिपूर्वक व्याकुल होकर प्रार्थना करते हैं।

ऐसी प्रार्थनासे रागानुगीय भक्तोंके हृदयमें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी मङ्गलमयी आरती प्रकट होती है। उस सयम वह बाह्य संसार एवं बाह्य देहकी सुध-बुध खोकर अपने सिद्धशरीरसे इस प्रकार देखता है—मयूर शुकादि सारि जत पिकराज। मङ्गल जागर हेतु करिछे विराज॥ अरुणोदयका समय शीघ्र ही आ रहा है। श्रीराधाकृष्ण-युगल अभी तक सङ्केत आदि विलास कुञ्जोंमें आलिङ्गनबद्ध होकर शयन कर रहे हैं। जागरण होनेके भयसे त्रस्त होकर वृन्दादेवी मयूर, शुक, सारि, कोयल, पपीहा आदि पक्षियोंको श्रीयुगलको जगाने हेतु प्रेरणा देती है। उस समय स्थलचर, जलचर सभी पक्षी बड़े मधुर स्वरसे कलरव करने लगते हैं। श्रीगोविन्दलीलामृतमें इसका मर्मस्पर्शी विवरण इस प्रकार है—

द्राक्षासु सार्य्यः करकेषु कीराः जगुः पिकीभिश्च पिका रसाले।
पिलौ कपोताः प्रियके मयूराः लतासु भृङ्गाः भुवि ताम्रचूड़ा।

अर्थात् अंगूरकी लतापर सारिकाएँ, अनारके वृक्षपर शुक, आम्रशाखाओंपर कोकिल, पीलूपर कपोत-कपोती, कदम्बपर मयूर-मयूरी, लताओंपर भ्रमर-भ्रमरी, पृथ्वीतलपर कुक्कुट कलरव कर रहे हैं। मयूर एवं मयूरी 'के-का' की मधुर ध्वनि करने लगते हैं। महाभावकी मूर्त्तिमान विग्रहस्वरूपा श्रीमतीराधिकाके धैर्य, लज्जा एवं पातिव्रत्य धर्मके उच्च पर्वतको कौन चूर्ण-विचूर्ण कर सकता है? मानो इस उक्तिके उत्तर स्वरूप ही मयूर 'के' शब्दका उच्चारण करता है। तथा प्रेयसी-प्रेमतरङ्गिणीके मत्त-मातङ्ग श्रीकृष्णको अपने प्रेम-अंकुशसे कौन वशीभूत कर सकता है? मानो मयूरी 'का' शब्दके द्वारा उत्तर देती है—केवलमात्र श्रीमती राधिका। भ्रमरवृन्द एक पुष्पसे दूसरे पुष्पपर गुञ्जार करते हुए कामदेवका शङ्ख बजा रहे हैं। दक्ष, विचक्षण आदि शुक एवं शुभा, मञ्जुभाषिणी आदि सारियाँ मङ्गलमय प्रभातकी सूचना देकर श्रीयुगलको जगा रही हैं। इन पक्षियोंके मधुर कूजनसे राधाकृष्ण जग जानेपर भी आलिङ्गन सुख कहीं खो न जाय, इस भयसे नेत्रोंको बन्द किये हुए परस्पर आलिङ्गनमें बद्ध रहते हैं। यहाँ—'मङ्गल श्रवणे बाजे मधुर कूजन' के बहुत-से गभीर तात्पर्य हो सकते हैं। पहला—श्रीराधाकृष्णके मङ्गलमय कर्णोंमें विभिन्न वृक्ष शाखाओंको आश्रय करनेवाले मधुर पक्षियोंका कूजन

अर्थात् अस्फुट अव्यक्त मधुर शब्द। दूसरा तात्पर्य यह है कि श्रीराधाकृष्णके जागरणकी प्रतीक्षा करती हुई प्रियनर्म सखियोंके कर्णोंमें प्रवेश करनेवाले पक्षियोंका मधुर कूजन या कलरव। कूजन शब्दका और भी एक निगूढ़ तात्पर्य है, श्रीराधाकृष्ण परस्पर रतिविलासके समय जो परस्पर मधुर ठिठोली या वार्त्तालाप करते हैं, प्रियनर्मसखियोंके कानोंमें प्रवेशकर उन्हें प्रेममें विभोर कर देता है, वह कूजन।

बेली, चमेली, जूही, यूथिका, मल्लिका, मालती, कुन्द, जाति आदि विविध प्रकारके पुष्पोंसे भरे हुए वृन्दावनमें मतवाले भँवरे सर्वत्र गुञ्जार करते हैं। स्वच्छ, निर्मल मीठे जलोंके भरे हुए सरोवरोंमें सर्वत्र कमलके पुष्प शीतल मन्द समीरके स्पर्शसे लहलहाते रहते हैं, जिनपर भँवरोंके समूह गुञ्जार कर रहे हैं। उस समय सरोवरमें तरङ्गें उठती हैं जिससे कमल और भी आनन्दसे नृत्य करने लगते हैं। इतनेमें ही 'जटिला' शब्द श्रवणमात्रसे राधाकृष्ण-युगल एवं सखियाँ सशङ्कित एवं उत्कण्ठित होकर निकुञ्ज गृहसे निकलकर अपने-अपने भवनकी तरफ चलनेके लिए प्रस्तुत हो जाती हैं।

इसी समय साधक भक्तका अन्तर आवेश टूट जाता है तथा बाह्य दशा उपस्थित हो जाती है। वह अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। किन्तु श्रीमन्दिरमें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी मङ्गलारतीका घण्टा बजने लगता है, श्रीमन्दिरका पट खुल जाता है। भक्तलोग बड़े भावसे युगलकिशोरकी आरती करने लगते हैं। झाँझर, काँसर, घण्टा, शङ्ख, करताल एवं मृदङ्गकी मधुर ध्वनिके स्वरमें स्वर मिलाकर भक्तवृन्द नृत्य करते हुए मङ्गल आरतीका गान करने लगते हैं। पदकर्त्ता भी पूर्वोक्त निशान्तलीलाके भावमें विभोर होकर भक्तोंके साथ नामसङ्कीर्त्तन करने लगते हैं। कीर्त्तन पदोंके गानके साथ-साथ मङ्गल निशान्तलीलाकी स्फूर्ति होने लगती है, जिससे उनकी सारी व्याकुलता अन्तर्हित हो जाती है। शाखाचन्द्र न्यायसे हमने परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवके हृद्गत भावोंको प्रकाश करनेकी चेष्टा की है। किन्तु मैं जानता हूँ कि उनके अनन्त अथाह रस समुद्रसे एक बिन्दु भी रस लेनेमें असमर्थ हूँ। श्रील गुरुपादपद्म सर्वथा अयोग्य दास पर अनुग्रह करें कि मैं इसके लिए योग्य बन सकूँ।

श्रील प्रभुपादकी आरती

जय जय प्रभुपादेर आरति नेहारी।
योग मायापुर-नित्य सेवा-दानकारी॥

सर्वत्र प्रचार-धूप सौरभ मनोहर।
बद्ध मुक्त अलिकूल मुग्ध चराचर॥

भकति-सिद्धान्त-दीप जालिया जगते।
पञ्चरस-सेवा-शिखा प्रदीप्त ताहाते॥

पञ्च महाद्वीप यथा पञ्च महाज्योतिः।
त्रिलोक-तिमिर-नाशे अविद्या दुर्मति॥

भकति विनोद-धारा जल शङ्ख-धार।
निरवधि बहे ताहा रोध नाहि आर॥

सर्ववाद्यमयी घन्टा बाजे सर्वकाल।
वृहत्मृदङ्ग वाद्य परम रसाल॥

विशाल ललाटे शोभे तिलक उज्ज्वल।
गल देशे तुलसी माला करे झलमल॥

आजानुलम्बित बाहू दीर्घ कलेवर।
तप्त काञ्चन-बरण परम सुन्दर॥

ललित-लावण्य मुखे स्नेहभरा हासी।
अङ्ग कान्ति शोभे जैछे नित्य पूर्ण शशी॥

यति धर्मे परिधाने अरुण वसन।
मुक्त कैल मेधावृत गौड़ीय गगन॥

भकति-कुसुमे कत कुञ्ज विरचित।
सौन्दर्ये-सौरभे तार विश्व आमोदित॥

सेवादर्शे नरहरि चामर ढूलाय।
केशव अति आनन्दे निराजन गाय॥

परमाराध्य श्रील गुरुदेवने अपने आराध्य गुरुदेव श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादकी एक सर्वाङ्ग सुन्दर आरतिके पदकी रचना की है।

जब इसका श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशन हुआ, तब उसे पढ़कर श्रील प्रभुपादके सारे शिष्य, प्रशिष्य आनन्दसे झूम उठे। सभी लोग प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूपमें धन्यवाद देने लगे। यहाँ तक कि श्रीगौड़ीय मठोंके आचार्यगण अपनी-अपनी पत्रिकाओंमें श्रील गुरुदेवके नामको हटाकर प्रकाशन करनेका लोभ संवरण नहीं कर सके और तबसे श्रील प्रभुपादकी आरतिके समय श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित इस आरति-कीर्त्तनका प्रचलन सर्वत्र हो गया।

जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादके आश्रित प्रमुख त्रिदण्डि संन्यासियोंमेंसे प्रपूज्यचरण त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज अन्यतम थे। वे वेद, उपनिषद्, पुराण, श्रीमद्भागवत एवं गीता आदि शास्त्रोंमें पारङ्गत थे। सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायमें इनका बड़ा ही आदर था। उन्होंने प्रभुपादकी आरतिको पढ़ते ही अपने झाड़ग्राम मेदिनीपुर स्थित मठसे तत्क्षणात् श्रीधाम नवद्वीपमें श्रील गुरुदेवके पास उपस्थित होकर उन्हें इसके लिए बधायी दी—

"महाराज! बड़े आश्चर्यकी बात है, हमलोग बहुत दिनोंसे गुरुगृहमें एक साथ रहते आये हैं, किन्तु निकट रहकर भी आज तक हमलोग आपको पहचान नहीं पाये। आपके हृदयमें इतनी गम्भीर गुरुनिष्ठा—विशुद्ध भक्ति है, अब तक हम इसकी गन्ध भी नहीं पा सके। अब तक हमने आपको प्रजाओंके शासन एवं सांसारिक कार्योंमें ही सुदक्ष समझा था, किन्तु हमारी सारी धारणाएँ भूल सिद्ध हो रही हैं। आज सौभाग्यवश आपकी इस अनुपम गुरुनिष्ठा एवं अतुलनीय भक्ति-प्रतिभा हृदयङ्गम कर ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आपके हृदयमें श्रील प्रभुपाद स्वयं बैठकर आपके द्वारा शुद्धभक्तिके ऐसे सुन्दर, सुसिद्धान्तपूर्ण भावोंको प्रकाशित कर रहे हैं। आप धन्य हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्यमें भी आप ऐसे-ऐसे अपूर्व कीर्त्तन पदों, स्तव-स्तुतियों, प्रबन्ध-निबन्धोंके द्वारा जगत्का अशेष कल्याण करेंगे।"

यहाँ इस आरतिके कतिपय पदोंके गम्भीर भावोंकी व्याख्या की जा रही है। 'योगमायापुर नित्य सेवादानकारी'—गोलोकके सर्वोच्च प्रकोष्ठका नाम व्रज, वृन्दावन अथवा गोकुल है। उसीके सन्निकट एक और प्रकोष्ठ है, जिसे श्वेतद्वीप या नवद्वीप कहते हैं। इस नवद्वीपधामका

हृदयस्थल श्रीधाम मायापुर है, जहाँ श्रीमती राधिकाकी अङ्गकान्ति और अन्तरङ्ग भावोंको अङ्गीकार कर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें अपने नित्य परिकरोंके साथ नाना प्रकारके भावोंका आस्वादन करते हैं। किसी-किसी विरले सौभाग्यवान जीवोंको ही महावदान्य श्रीगौरलीलामें प्रवेश करनेका सौभाग्य होता है। श्रीकृष्ण-लीलाकी नयनमञ्जरी ही श्रीगौरलीलाके श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर हैं। इनके प्रणाममन्त्रमें इनका सिद्धस्वरूप अन्तर्निहित है—

श्रीवार्षभानवि-देवि-दयिताय कृपाब्धये।
कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञान-दायिने प्रभवे नमः॥

श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कृष्णप्रिया वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाकी परम प्रियसखी, उन्नत उज्ज्वल मधुररसके मूर्त्तिमान विग्रह श्रीनयनमञ्जरी हैं। उनका आश्रय ग्रहण करनेपर ये करुणावरुणालय श्रीशचीनन्दन गौरहरिकी दुर्लभ नित्यसेवाको प्रदान करते हैं। इसी प्रकार जो लोग श्रद्धापूर्वक श्रीरूपानुग प्रवर श्रील प्रभुपादकी आरति करते हैं या आरति दर्शन करते हैं, ये उन सबको ऐसी दुर्लभ गौरसेवा प्रदान करते हैं।

श्रील प्रभुपादकी यह आरति अनुपम, अलौकिक तथा असाधारण है। तथा अन्य आरतियोंसे सर्वथा विलक्षण है। उन्होंने नवद्वीपके नौ द्वीपोंमें तथा भारत एवं विश्वके कोने-कोनेमें, प्रधान-प्रधान नगरोंमें, पहाड़ों एवं जङ्गलोंके बीचमें सर्वत्र ही अपने शिष्य-प्रशिष्यको, ब्रह्मचारी एवं संन्यासियोंको भेजकर उन स्थानोंमें प्रचारकेन्द्र स्थापनकर शुद्धभक्तिका प्रचार किया है, जिसके आकर्षक सौरभसे बद्ध और मुक्त सभी प्रकारके जीव आकृष्ट होकर शुद्धभक्तिमें तत्पर हुए हैं और हो रहे हैं। साधारण अर्चनमें प्रथम श्रीविग्रहोंकी धूपसे आरति की जाती है, जिसकी सुगन्ध श्रीमन्दिर तक ही सीमित रहती है, किन्तु शुद्धभक्ति प्रचाररूप धूपकी सुगन्ध सारे विश्वको आमोदित एवं आकृष्ट करती है। इस प्रकार शुद्धभक्ति प्रचाररूप धूपका एक अलौकिक वैशिष्ट्य है। यदि सरस्वती प्रभुपादने विश्वमें शुद्धभक्तिका प्रचार नहीं किया होता, तो सारा विश्व

शुद्धभक्ति-लाभसे सर्वथा वञ्चित रहता और इनका कल्याण नहीं होता। पश्चिम बङ्गाल तथा भारतके अन्य प्रान्तोंके लोग भी शुद्धभक्ति अर्थात् रागानुग और विशेषतः रूपानुगभक्तिसे सर्वथा वञ्चित रह जाते। भक्ति प्रचारके लिए इन्होंने भक्तिग्रन्थोंका प्रकाशन एवं विश्व भरमें वितरणकी जो व्यवस्था की है, वह अश्रुतपूर्व एवं अदृष्टपूर्व है। इसीके द्वारा इन्होंने जगत्में भक्तिक्रान्तिकी नयी लहर पैदा कर दी। भारतसे सुदूर प्राच्य एवं पाश्चात्य छोटे-बड़े सभी देशोमें, छोटे-छोटे बालकों, नवयुवकों, नवयुवतियों तथा वृद्धों—सभीको वैदिक संस्कृतिमें रङ्गे हुए, हाथोंमें जापमालिका, अङ्गोंमें तिलक, सिरपर शिखा धारण किये हुए, गलियों-गलियोंमें मृदङ्ग, करतालकी तालपर नृत्य करते हुए, सङ्कीर्त्तन करते हुए देखा जा सकता है। उन स्थानोंमें श्रीराधाकृष्ण, श्रीगौर-नित्यानन्द, श्रीजगन्नाथ-बलदेव-सुभद्रा आदिके विशाल-विशाल श्रीमन्दिर देखे जा सकते हैं। यह सब कुछ इन्हीं महापुरुषका अवदान है।

श्रीविग्रहके अर्चनमें धूपके पश्चात् प्रज्ज्वलित दीपसे आरति उतारी जाती है। इस विशेष अर्चनमें भक्तिसिद्धान्त ही दीप हैं। भक्तिसिद्धान्त दस प्रकारके हैं—(१) आम्नाय वाक्य—गुरु-परम्परागत मान्य वेद आदि शास्त्र ही (श्रीमद्भागवत) सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं, (२) व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही परतत्त्व हैं, (३) वे सर्वशक्तिमान हैं, (४) वे अखिल रसामृतसिन्धु हैं, (५) मुक्त और बद्ध दोनों प्रकारके जीव ही उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं, (६) बद्धजीव मायाके अधीन होते हैं, (७) मुक्तजीव मायासे मुक्त होते हैं, (८) चित्-अचित् जगत् श्रीहरिका अचिन्त्यभेदाभेद प्रकाश है, (९) भक्ति ही एकमात्र साधन है और (१०) कृष्णप्रीति ही एकमात्र साध्यवस्तु है। इन दस प्रकारके भक्तिसिद्धान्तरूप जड़ी-बूटियोंका रसनिर्यास ही घृत है, जिससे दीप प्रज्ज्वलित होता है। पाँच प्रकारके स्थायीभाव ही पञ्च महाप्रदीप हैं। इन प्रदीपोंमें शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर—ये पाँच प्रकारके रस ही पाँच प्रकारकी शिखाएँ हैं।

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी ये उन प्रज्ज्वलित शिखाओंकी किरणें हैं। इस अलौकिक पञ्चशिखा विशिष्ट प्रदीपकी महाज्योतिसे तीनों लोकोंका अज्ञान अथवा अविद्यारूप अन्धकार सदाके

लिए दूर हो जाता है। इसके दर्शनसे कृष्ण विमुख जीवोंकी विमुखता दूर हो जाती है। विमुखता ही दुर्मति है और यही अन्धकार है। इस विलक्षण दीपके प्रभावसे यह अविद्या सदाके लिए दूर हो जाती है। वर्त्तमान युगमें इस दीपको जलाया किसने? इस भक्तिसिद्धान्त दीपको प्रज्ज्वलित किया है—श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने।

where is 1 and

(३) धूप और दीपके अनन्तर जलशङ्ख द्वारा आरति होती है। भक्तिका विनोदन ही (श्रील भक्ति विनोद ठाकुर) शङ्ख है। वह शङ्खजल भक्तिभगीरथ भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रवाहित रूपानुगभक्तिप्रवाहका निर्मल एवं सुगन्धित जल है। इस शङ्खकी धारा (प्रवाह) तैलधारावत् अविच्छिन्न गतिसे नित्य-निरन्तर प्रवाहित हो रही है एवं भविष्यमें भी प्रवाहित होती रहेगी अर्थात् कभी भी यह भक्तिधारा रुद्ध नहीं होगी। इस जलशङ्खकी धाराके छीटोंसे अखिल विश्वके सौभाग्यवान जीव अभिषिक्त होकर भगवत्-रससे अनुप्लावित होते रहेंगे।

(४) श्रीविग्रह-अर्चनमें घण्टाका बहुत महत्व है। धूप, दीप आदिके द्वारा आरति करते समय घण्टाका बजाना अत्यन्त आवश्यक है। इस विलक्षण आरतिमें सर्ववाद्यमयी घण्टा भी सर्वथा विलक्षण है, जो सदैव नित्यकाल बजता रहता है। वीर्यवती हरिकथा ही यह अलौकिक घण्टा है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका सम्पूर्ण जीवन हरिकथामय रहा है। दूसरे शब्दोंमें श्रील सरस्वती ठाकुर हरिकथाके मूर्त्तिमान विग्रह थे। पल भरके लिए भी उनकी हरिकथा नहीं रुकती थी। अबोध बालकों, पेड़-पौधों तकको भी देखकर इनकी हरिकथा अपने आप प्रवाहित होने लगती थी। उनकी हरिकथा इतनी ओजस्विनी एवं प्रभावशालिनी होती थी कि कोई भी श्रोता साथ-ही-साथ भक्तिसे अनुप्राणित हो जाता था।

अर्चनके साथ कीर्त्तन होना अत्यन्त आवश्यक है। श्रील जीव गोस्वामीने भक्तिसन्दर्भमें कहा है—'यद्यप्यन्या भक्ति कलौ कर्त्तव्या तदा कीर्तनाख्या भक्ति संयोगेनैव।' अर्थात् यदि कोई भक्तिके अन्य अङ्गोंका अनुशीलन करता है, तो उसे हरिसङ्कीर्त्तनके सहयोगके साथ ही करना चाहिये अन्यथा कलियुगमें सङ्कीर्त्तनके अतिरिक्त अकेले साधन किये जानेपर भी फलप्राप्ति नहीं होती। अतः अर्चनके साथ कीर्त्तन होना

अत्यावश्यक है। सङ्कीर्त्तन भी नाम, रूप, गुण, लीला, कीर्त्तन आदिके भेदसे विभिन्न प्रकारका होता है। इनमेंसे नामकीर्त्तन सर्वश्रेष्ठ है—तार मध्ये सर्वश्रेष्ठ नामसङ्कीर्त्तन। सङ्कीर्त्तनमें मृदङ्ग वाद्यका होना भी आवश्यक है। श्रील प्रभुपादके द्वारा प्रवर्तित आरतिमें बृहद्-मृदङ्गका योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण है। मुद्रण-यन्त्र ही यह बृहद्-मृदङ्ग है। साधारण मृदङ्गकी ध्वनि बहुत सीमित होती है। किन्तु बृहद्-मृदङ्ग—मुद्रण-यन्त्रसे प्रकाशित भक्तिग्रन्थ विश्वके कोने-कोनेमें पहुँचकर साधकभक्तोंके हृदयमें प्रवेशकर उन्हें उन्मत्तकर हरिनाम-सङ्कीर्त्तनमें नृत्य कराने लगता है। इस बृहद्-मृदङ्गकी ध्वनि कभी भी बन्द नहीं होती, सदैव भक्तोंके हृदयमें उदित होकर उन्हें अनुप्राणित करती रहती है। इस बृहद्-मृदङ्गकी स्थापना करनेवाले प्रभुपादकी आरति जययुक्त हो।

परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव इस आरति-कीर्त्तनमें ॐ विष्णुपाद श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अप्राकृत श्रीअङ्गोंके अलौकिक सौन्दर्यका वर्णन कर रहे हैं—यद्यपि मदीय परमाराध्यतम श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद श्रीमती राधिकाकी परमप्रिय श्रीनयनमञ्जरी हैं, किन्तु इस भौम जगत्‌में दीनतावश अपना नाम श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रकाशकर अपने पूर्व नाम आदि स्वरूपको आच्छादितकर तृणादपि सुनीचका आदर्श दिखलाया है। इनके विशाल ललाटपर उद्ध्‌र्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित हो रहा है। इनके सुन्दर गलेमें त्रिकण्ठी तुलसीमाला सदैव झलमल-झलमल करती रहती है। आजानुलम्बित भुजाएँ, सुगठित सुन्दर अङ्ग प्रत्यङ्गयुक्त दीर्घ कलेवर, स्वर्णकान्तिको भी पराभूत करनेवाली श्रीअङ्गकान्ति इनके महापुरुष होनेकी घोषणा कर रही हैं। क्योंकि ये सब महापुरुषोंके विशेष लक्षण हैं। इनके ललित लावण्य अधरोंमें स्नेहकी मुस्कान सदा खेलती रहती है। उनके यतिधर्मके अनुसार अङ्गीकार किये हुए डोर-कौपीन, बहिर्वास एवं उत्तरीय आदि गैरिक वस्त्रोंकी उज्ज्वल ज्योतिने श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं बलदेव विद्याभूषणके पश्चात् गौड़ीयगगनमें छाये हुए मेघोंके द्वारा उत्पन्न घने अन्धकारको समाप्त कर दिया है। इन्होंने देश-विदेशमें सर्वत्र ही शुद्धभक्तिकेन्द्रोंका स्थापन किया है। ये केन्द्र मानो भक्तिलताके पुष्पोंसे निर्मित श्रीराधाकृष्णके विलासकुञ्ज हैं, जिसके

सौन्दर्य एवं सुगन्धसे सारा विश्व अमोदित हो रहा है। श्रीमायापुरधाममें श्रील प्रभुपादकी यह आरति नित्यकाल विराजमान है। उनके परमप्रिय नरहरि सेवाविग्रह प्रभु श्रील प्रभुपादको चामर वीजन कर रहे हैं। यह श्रीकेशव आनन्दमें विभोर आरति-कीर्त्तन कर रहा है।

श्रील गुरुदेवके द्वारा रचित इस सुललित आरति-कीर्त्तनका पद आज सर्वत्र गौड़ीय वैष्णवजन प्रीतिपूर्वक गान करते हैं।

श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरती

श्रीगौड़ीय सारस्वत वैष्णव सम्प्रदायमें श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरतीके लिए कोई कीर्त्तन नहीं था। कोई-कोई 'तुलसी कृष्ण प्रेयसी नमो नमः, विलासकुञ्ज दियो वास' श्रीकृष्णदास द्वारा रचित पद या कोई-कोई चन्द्रशेखर द्वारा रचित 'नमो रे नमो रे मैया नमो नारायणि' पदका तुलसी परिक्रमा या आरतिके समय कीर्त्तन करते थे। श्रीकृष्णदासकृत तुलसी परिक्रमाका पद अति उच्चकोटिके रागानुगीय साधकोंके लिए ही उपयुक्त है। साधारण वैधीभक्ति साधकोंके लिए विलासकुञ्जमें वासकी लालसाके अभावके कारण उनके लिए यह अनुपयुक्त है।

श्रीचन्द्रशेखर द्वारा रचित पद श्रीरामानुजीय वैष्णवोंके लिए उपयुक्त है। क्योंकि इसमें तुलसीदेवीको वैकुण्ठगत श्रीनारायण या श्रीशालग्रामकी पटरानी कहा गया है। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंकी उपास्या श्रीवृन्दादेवी श्रीवृन्दावनधामके श्रीराधाकृष्ण-युगलके लीलाविलासको सम्पन्न करानेवाली एक परमप्रिय सखी हैं। ये गोलोकके सर्वोच्च प्रकोष्ठगत वृन्दावनधामकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं। इन्होंने अपने प्रिय सुरम्य वृन्दावनको अपनी प्रियसखी वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकाजीको समर्पित कर रखा है। इन्हींके सहयोगसे श्रीराधाकृष्णका परस्पर मिलन एवं अन्यान्य कुञ्जलीलाएँ सम्पन्न होती हैं। वैकुण्ठगत श्रीनारायणप्रिया तुलसी इन्हीं श्रीवृन्दादेवीका वैभव-प्रकाश हैं। मूल श्रीवृन्दादेवी श्रीनारायण या श्रीशालग्रामकी पटरानी नहीं हो सकती हैं। अतः श्रीगौड़ीय वैष्णव इन्हें वृन्दावनस्थित व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णकी प्रियाके रूपमें ही ग्रहण करते हैं।

इन्हीं सब कारणोंसे परमाराध्य श्रील गुरुदेवने श्रीगौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके साधारण साधकोंके लिए कोई उपयोगी तुलसी परिक्रमा एवं

आरतिके लिए एक कीर्त्तन-पदकी आवश्यकता अनुभव की। श्रीगौड़ीय वैष्णवगण श्रीराधाकृष्ण-युगल एवं श्रीगौरहरिको एक अभिन्न परतत्त्व स्वीकार करते हैं। अतः श्रीलगुरुदेवने श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरतिके लिए अभिन्न एवं सुसिद्धान्तपूर्ण सुललित पदकी रचना की। सारे सारस्वत गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायने इस सुसिद्धान्तपूर्ण एवं सर्वाङ्गपूर्ण इस पदको ग्रहण किया। श्रीतुलसी परिक्रमा एवं आरतिके समय आज इस पदका कीर्त्तन होता है। यह पद निम्नोक्त प्रकारका है—

'नमो नमः तुलसी कृष्ण-प्रेयसी' (नमो नमः)।
राधाकृष्ण नित्यसेवा— 'एइ अभिलाषी'॥ १॥

जे तोमार शरण लय, सेइ कृष्ण सेवा पाय,
कृपा करि कर तारे 'वृन्दावनवासी'।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ २॥

तोमार चरणे धरि मोरे अनुगत करि,
गौरहरि-सेवा-मग्न राख दिवा निशि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ३॥

दीनेर एइ अभिलाष, मायापुरे/नवद्वीपे दिओ वास,
अंगेते माखिब सदा धाम धूलि राशि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ४॥

तोमार आरति लागि, धूप, दीप, पुष्प माँगी,
महिमा बाखानि एबे हउ मोरे खुशी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ५॥

जगतेर जत फूल, कभु नहे समतुल,
सर्वत्यजि कृष्ण तव पत्र मञ्जरी विलासी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ६॥

ओगो वृन्दे महारानी!
तोमार पादप तले, देव ऋषि कुतूहले,
सर्वतीर्थ लये ताँरा हन अधिवासी।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ७॥

श्रीकेशव अति दीन, साधन-भजन-हीन,
तोमार आश्रये सदा नामानन्दे भासि।
तुलसी कृष्ण प्रेयसी (नमो नमः)॥ ८॥

सर्वप्रथम श्रीतुलसी या वृन्दादेवीको कृष्ण-प्रेयसी सम्बोधनकर उन्हें प्रणाम किया गया है। उन्हें श्रीराधाकृष्ण-युगलकी नित्यसेवा प्रदान करनेवाली एक परम करुणामयी सखी बतलाया गया है। जो आपकी शरण ग्रहण करता है, उसे आप कृपाकर कृष्णसेवा प्रदान करती हैं तथा उसे वृन्दावनमें सदैव निवास करनेका सौभाग्य प्रदान करती हैं। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीने स्वरचित श्रीश्रीवृन्दादेव्याष्टकम्में श्रीवृन्दादेवीकी इसी रूपमें स्तुति की है—

समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ श्रीकृष्णस्य वृन्दावन-धन्य-धाम्नि।
दत्ताधिकारे वृषभानु-पुत्र्या वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ३॥

त्वदाज्ञया पल्लव-पुष्प-भृङ्ग-मृगादिभिर्माधव-केलिकुञ्जाः।
मध्वादिभिर्भान्ति विभूष्यमाणा वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ४॥

त्वदीय-दूत्येन निकुञ्ज-यूनो-रत्युत्कयोः केलि-विलास-सिद्धिः।
त्वत्-सौभगं केन निरुच्यतां तद् वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ५॥

रासाभिलाषो वसतिश्च वृन्दावने त्वदीशाङ्घ्रि-सरोज-सेवा।
लभ्या च पुंसां कृपया तवैव वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ६॥

त्वं कीर्त्त्यसे सात्वत-तंत्रविद्भिर्लीलाभिधाना किल कृष्ण-शक्तिः।
तवैव मूर्त्तिस्तुलसी नृलोके वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ७॥

भक्तया विहीना अपराध-लक्षैः क्षिप्ताश्च कामादि-तरङ्ग मध्ये।
कृपामयि! त्वां शरणं प्रपन्ना वृन्दे! नुमस्ते चरणारविन्दम्॥ ८॥

अर्थात् वृषभानु राजनन्दिनी श्रीराधिकाने आपको निखिल वैकुण्ठसमूहके शिरोमणि, अशेष गुण समन्वित परम पवित्र श्रीकृष्णधाम वृन्दावनका अधिकार प्रदान किया है। आपके ही आदेशसे विविध प्रकारके पत्र एवं सुगन्धित पुष्पोंसे लदे हुए वृन्दावनमें भ्रमर, मृग, मयूर, शुक-सारि पशु-पक्षियोंसे परिव्याप्त तथा सदैव वसन्त ऋतु जैसी शोभा धारण किये हुए श्रीकृष्णके केलिकुञ्जसमूह परम सुशोभित हो रहे हैं। आपके

अत्यन्त कुशल दूती कार्यके प्रभावसे ही विलास वासनामयी श्रीश्रीराधाकृष्णके केलिविलास सम्पन्न हुआ करते हैं। अर्थात् आप ही दूती बनकर श्रीराधागोविन्दके सुदुर्घट मिलनको सम्पन्न कराती हैं। उनके लीलाविलास सम्पादन कार्यमें विविध प्रकारसे सहायता करती हैं। अतएव इस संसारमें आपके सौभाग्यकी सीमाका वर्णन कौन कर सकता है? मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। हे वृन्दे! आपकी कृपासे कृष्णभक्तोंके हृदयमें श्रीरासलीला दर्शनकी लालसा उत्पन्न होती है। आपकी कृपासे वे श्रीवृन्दावनधाम वास प्राप्त करते हैं तथा अपने प्राणवल्लभ श्रीराधामाधवकी चरणसेवा प्राप्त करते हैं। मैं आपके श्रीचरणकमलोंमें पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। हे वृन्दे! श्रीनारदादि भक्तोंके द्वारा रचित तन्त्र-ग्रन्थोंमें सुनिपुण विद्वद्जनोंने आपका कृष्णकी लीलाशक्तिके रूपमें वर्णन किया है। इस नरलोककी सुप्रसिद्ध वृक्षरूपिणी श्रीतुलसीदेवी आपकी ही मूर्त्ति हैं अर्थात् आप ही इस नरलोकमें वृक्षरूपिणी श्रीतुलसीदेवी हैं। मैं आपके चरणकमलोंमें पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ। हे कृपामयि देवि! हम भक्तिहीन होनेके कारण शत-शत अपराधोंसे भरपूर हैं और इसीलिए भवसमुद्रके काम-क्रोधादि रूप भीषण तरङ्गोंमें निक्षिप्त हो रहे हैं। कोई दूसरा उपाय न देखकर आपके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत हो रहे हैं। आप कृपा करके हमारा इस सुदुस्तर भवसमुद्रसे उद्धार करें। हम पुनः-पुनः आपके श्रीचरणकमलोंमें नमस्कार करते हैं। अतएव हे कृष्णप्रेयसी वृन्दे! आप अपने शरणागत जनोंको वृन्दावनवास दान करनेकी कृपा करें।

हे वृन्दे! हम आपके चरणकमलोंकी पुनः-पुनः वन्दना करते हैं। आप हमें अपना आनुगत्य प्रदानकर श्रीमतीराधिकाके अन्तर्निहित भाव एवं उनकी अङ्गकान्तिसे देदीप्यमान श्रीकृष्णरूपी श्रीगौरहरिकी सेवा प्रदान करें। जिससे मैं दिवा-रात्रि श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिकी सेवामें निमग्न रह सकूँ। यदि कहो श्रीमती तुलसी तो कृष्णकी प्रेयसी हैं। वे कृष्णकी ही सेवा दे सकती हैं। वे शचीनन्दन श्रीगौरहरिकी सेवा कैसे दे सकती हैं? हाँ दे सकती हैं। क्योंकि श्रीशचीनन्दन गौरहरि एवं श्रीकृष्ण दोनों अभिन्न परतत्त्व हैं। क्योंकि लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण रसिकशेखर एवं परमकरुणाघन विग्रह हैं। वे ही कृपाकर अपनी रागमार्ग भक्तिका वितरण

करनेके लिए एवं अपनी आन्तरिक तीन वाञ्छाओं—(१) श्रीमती राधिकाकी प्रणय महिमा कैसी है, (२) हमारे रूप, गुण, वेणु और लीलाकी माधुरी जिसे श्रीमतीराधिका आस्वादन करती हैं, वह कैसी है, तथा (३) श्रीमती हमारी इन माधुरियोंका आस्वादनकर किस प्रकारका आनन्द अनुभव करती हैं, को पूर्ण करनेके लिए श्रीमती राधिकाका भाव एवं अङ्गकान्ति अङ्गीकारकर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूपमें प्रकट हुए हैं। अतएव श्रीतुलसीदेवी गौरहरिकी भी प्रिया हैं। वे अवश्य ही गौरकी सेवा या प्रेम दे सकती हैं। कृष्णके सारे परिकर प्रायः पुरुषरूपमें श्रीगौरहरिके साथ आविर्भूत हुए हैं। कोई-कोई स्त्रीरूपमें भी आविर्भूत हुई हैं। श्रीवृन्दादेवी भी कलियुगमें कृष्णभक्तिको सुलभ करानेके लिए तुलसीवृक्षके रूपमें प्रकटित हैं। श्रील अद्वैताचार्यने, जो महाविष्णुके अवतार हैं, श्रीकृष्णको इस भूतलमें आविर्भूत करानेके लिए सबसे सरल एवं सबसे प्रभावशाली उपायका अवलम्बन किया। वह आराधना थी, कुछ तुलसीपत्रोंको गङ्गाजलके साथ स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णको अर्पणकर उच्चस्वरसे कातर होकर कृष्णनामका कीर्त्तन। श्रीअद्वैताचार्यकी प्रभावशाली अचूक आराधनासे स्वयं-भगवान् श्रीकृष्ण श्रीगौरहरिके रूपमें इस भूतलमें आविर्भूत हुए हैं। अतः श्रीतुलसी महारानी श्रीगौरहरिकी सेवा दे सकती हैं। हे वृन्दे! हे कृष्णप्रिये! मैं आपके चरणकमलोंमें पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ। मुझ दीनहीन शरणागत जनको श्रीवृन्दावन, श्रीमायापुर या श्रीनवद्वीपधाममें कहीं भी वासस्थान देनेकी कृपा करें, जिससे मैं अपने अङ्गोंमें इस अप्राकृत धामकी धूलिराशिको धारणकर प्रेममें उन्मत्त होकर श्रीगौरहरिके नामोंका कीर्त्तन कर सकूँ अथवा हरे कृष्ण नामका कीर्त्तन कर सकूँ।

हे कृष्णप्रेयसी तुलसीदेवी! आपकी आरति करनेके लिए मैंने धूप, दीप, पुष्प, नैवेद्य आदि षोडश उपकरणोंका संग्रह किया है। मैं प्रीतिपूर्वक उन उपकरणोंसे आपकी आरती कर रहा हूँ। साथ ही सङ्कीर्त्तनके माध्यमसे आपकी महिमाका बखान करता हूँ। आप कृष्णकी लीलाशक्ति हैं। श्रीकृष्णकी परम प्रेयसी हैं। आप राधाकृष्ण-युगल तथा श्रीगौरहरिकी प्रेमाभक्ति देनेमें समर्थ हैं। आप मेरे प्रति प्रसन्न हों। आपके श्रीचरणकमलोंमें मेरी पुनः-पुनः यही प्रार्थना है।

हे कृष्णप्रेयसी तुलसीदेवि! संसारमें बेली, चमेली, जूही, केवड़ा, कमल आदि नाना प्रकारके सुन्दर-से-सुन्दर पुष्प हैं, किन्तु आपके सामने वे नगण्य हैं। श्रीकृष्ण उन सब प्रकारके पुष्पोंको त्याग कर आपके पत्र और मञ्जरीको ही स्वीकार करते हैं। आपके वृन्दाकुञ्जमें ही अपनी प्रियतमके साथ विलास करते हैं। श्रीमद्भागवतके अनुसार श्रीभगवान्‌के चरणोंमें अर्पित श्रीतुलसीपत्रके मकरन्दके आघ्राणसे चारों कुमार उन्मत्त होकर भगवत्-दर्शनके लिए वैकुण्ठमें पधारे थे। अन्यान्य पुष्पोंमें इस अद्भुत महाशक्तिका अभाव है। श्रीतुलसीका मकरन्द एवं सौरभ स्वयं कृष्णको भी आकर्षित कर लेता है।

कुरुक्षेत्रकी बात है। पूर्णग्रास सूर्यग्रहणके समय श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार एकसौ आठ महिषियों तथा पूरे द्वारकावासी परिवारके सहित वहाँ उपस्थित हुए। सूर्यग्रहणका अन्तिम स्नानकर श्रीकृष्णप्रिया सत्यभामा श्रीकृष्णको सुवर्णराशिसे तौलकर नारदको वह सुवर्णराशि दान करना चाहती थी। तराजूके एक पल्लेपर कृष्ण एवं दूसरे पल्लेपर सत्यभामाके सारे स्वर्ण आभूषणोंको रखा गया। पुनः सोलह हजार एक सौ महिषियोंके सारे आभूषण भी रखे गये। तत्पश्चात् और भी स्वर्णखण्ड क्रमशः रखे गये। किन्तु सुवर्णराशिसे भरा पल्ला ऊपर ही रहा। वे उपायरहित होकर देवर्षि नारदकी प्रेरणासे वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिकाके शरणागत हुईं। श्रीमती राधिकाने सारे स्वर्णराशिको पल्लेसे हटाकर अपने अश्रुओंसे अभिषिक्त एक तुलसीपत्र वहाँ रख दिया। कृष्णवाला पल्ला ऊपर उठ गया और तुलसीपत्रवाला पल्ला जमीनपर लग गया। सभी लोग तुलसीपत्रकी महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो गये। इस प्रकार तुलसीपत्र एवं तुलसीमञ्जरी सब प्रकारके पुष्पों एवं पत्रोंसे श्रेष्ठ है, इसमें किसी भी प्रकारकी शङ्काकी गुंजाइश नहीं।

हे कृष्णप्रेयसी तुलसी! आपकी पावन छायामें सब तीर्थोंको साथ लेकर सारे देवता एवं ऋषि उत्कण्ठाके साथ आपकी कृपा पानेके लिए निवास करते हैं। आप उनकी लालसाको पूर्ण करनेवाली हैं। मैं दीनहीन आपके चरणोंमें शरणागत होकर पुनः-पुनः नमस्कार करता हूँ। शास्त्रोंमें इसके भूरि-भूरि प्रमाण हैं कि सारे देवता एवं ऋषिलोग भगवद्भक्तिके लिए तुलसीकी आराधना करते हैं। श्रीतुलसीवृक्षकी छायामें

सब तीर्थोंका निवास रहता है। श्रीतुलसीदेवीकी विविध प्रकारसे सेवा होती है।

दृष्टा स्पृष्टा तथा ध्याता कीर्तिता नमिता स्तुता।
रोपिता सेविता नित्यं पूजिता तुलसी शुभा॥
नवधा तुलसीं देवीं ये भजन्ति दिने दिने।
युगकोटि-सहस्रानि ते वसन्ति हरेर्गृहे॥

श्रीकृष्णप्रिया तुलसीदेवीका दर्शन करनेसे स्पर्श करनेसे, ध्यान करनेसे, उनकी महिमाका कीर्त्तन करनेसे, प्रणाम करनेसे, महिमाका श्रवण करनेसे, रोपन करनेसे, श्रीहरिके चरणोंमें अर्पित करनेसे, सेवित होनेसे तथा पूजित होनेसे वे साधकोंके लिए परम शुभदायिनी होती हैं। जो लोग उपरोक्त नौ प्रकारोंसे तुलसीकी सेवा करते हैं, वे सहस्र युगों तक अर्थात् नित्यकाल श्रीहरिके धाममें वास करते हैं।

अतएव परमाराध्यतम श्रील गुरुदेव द्वारा रचित तुलसीकी परिक्रमा एवं आरतीका यह पद सब प्रकारके भक्तिसाधकोंके लिए परम कल्याणप्रद है।

श्रीचैतन्य-पञ्जिका (श्रीमायापुर-पञ्जिका)

[परमाराध्य श्रीलगुरुदेवका श्रीचैतन्य-पञ्जिकाके सम्बन्धमें विचार]

जगद्‌गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' श्रीचैतन्य-पञ्जिकाके आदि प्रवर्तक हैं। इसमें श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी धारा संरक्षित एवं पूर्ण रूपसे प्रवाहित है। यह पञ्जिका श्रीचैतन्य महाप्रभुके एकान्त अनुगत रूपानुग विशुद्ध सिद्धान्तके आचार और विचारका प्रचार करती है। इसलिए संक्षेपमें हमने इस पञ्जिकाका नामकरण 'श्रीचैतन्य-पञ्जिका' किया है। इसीका नामान्तर 'श्रीमायापुर-पञ्जिका' है, क्योंकि श्रीमायापुर श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आविर्भाव स्थली है। जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादने लिखा है कि श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर ही 'श्रीचैतन्याब्द' प्रवर्तन-कार्यके मूल महापुरुष हैं।

यद्यपि आज बहुत वर्षोंसे बहुत-सी पञ्जिकाएँ प्रचलित हैं, तथापि उन पञ्जिकाओंको पूर्णाङ्ग पञ्चाङ्ग नहीं कहा जा सकता। उनमें बहुत-से

अभाव हैं। यहाँ तक कि उनमें वैष्णवोचित संज्ञाका कोई उल्लेख नहीं होता। इस प्रकार वैष्णव पञ्जिकाका सम्पूर्ण रूपसे अभाव परिलक्षित होता है। यही नहीं व्रतादिके सम्बन्धमें काल-निर्णय, शुद्धा-विद्धा विचार-निर्णय, यात्रा-काल आदिके विषयमें भी उनकी व्यवस्थाएँ बाधाजनक हैं। हम इन पञ्जिकाओंमें श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर एवं प्रभुपादके शुद्ध आनुगत्यका अभाव देख रहे हैं। इसलिए इन लोगोंकी शुद्ध धारामें एक विशुद्ध पञ्जिकाकी आवश्यकता है। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिए श्रीचैतन्य-पञ्जिकाका आविर्भाव हुआ है। जनसाधारणकी जानकारीके लिए हम कालके विभिन्न भागोंके लिए संज्ञा प्रस्तुत कर रहे हैं। विष्णुधर्मोत्तर और हयशीर्ष पञ्चरात्रमें कालकी निम्नलिखित संज्ञा पायी जाती है। हम विष्णुभक्तोंके लिए इन संज्ञाओंकी एक तालिका दे रहे हैं।

(क) सूर्यकी दो गतियाँ—

(१) उत्तरायण—बलभद्र (२) दक्षिणायन—कृष्ण

(ख) छः ऋतुएँ—

(१) ग्रीष्म—पुण्डरीकाक्ष (२) वर्षा—भोगशायी (३) शरत्—पद्मनाभ
(४) हेमन्त—हृषीकेश (५) शीत—देवत्रिविक्रम (६) वसन्त—माधव

(ग) पक्षद्वय और मलमास—

(१) क्षय या मलमास—पुरुषोत्तम (२) कृष्णपक्ष—प्रद्युम्न, कृष्ण
(३) शुक्लपक्ष—अनिरुद्ध, गौर

(घ) द्वादश मास—

(१) वैशाख—मधुसूदन (२) ज्येष्ठ—त्रिविक्रम (३) आषाढ़—वामन
(४) श्रावन—श्रीधर (५) भाद्र—हृषीकेश (६) आश्विन—पद्मनाभ
(७) कार्तिक—दामोदर (८) अग्रहायण—केशव (९) पौष—नारायण
(१०) माघ—माधव (११) फाल्गुन—गोविन्द (१२) चैत्र—विष्णु

(ङ) सप्ताहके दिन—

(१) रवि—सर्व-वासुदेव (२) सोम—सर्वशिव-सङ्कर्षण
(३) मङ्गल—स्थानु-प्रद्युम्न (४) बुध—भूत-अनिरुद्ध
(५) बृहस्पति—आदिकारणोदशायी (६) शुक्र—निधि-गर्भोदशायी
(७) शनि—अव्यय-क्षीरोदशायी

(च) सोलह तिथियाँ—

(१) प्रतिपदा—ब्रह्मा (२) द्वितीया—श्रीपति (३) तृतीया—विष्णु
(४) चतुर्थी—कपिल (५) पञ्चमी—श्रीधर (६) षष्ठी—प्रभु
(७) सप्तमी—दामोदर (८) अष्टमी—हृषीकेश (९) नवमी—गोविन्द
(१०) दशमी—मधुसूदन (११) एकादशी—भूधर (१२) द्वादशी—गदी
(१३) त्रयोदशी—शंखी (१४) चतुर्दशी—पद्मी
(१५) पूर्णिमा और अमावस्या—चक्री

(छ) सत्ताइस नक्षत्र—

(१) अश्विनी—धाता (२) भरणी—कृष्ण
(३) कृत्तिका—विश्व (४) रोहिणी—विष्णु
(५) मृगशिरा—वषट्कार (६) आर्द्रा—भूतभव्यभवत् प्रभु
(७) पुनर्वसु—भूतभृत् (८) पुष्या—भूतकृत्
(९) अश्लेषा—भाव (१०) मघा—भूतात्मा
(११) पूर्वफाल्गुनी—भूतभावन (१२) उत्तर फाल्गुनी—अव्यक्त
(१३) हस्ता—पुण्डरीकाक्ष (१४) चित्रा—विश्वकर्मा
(१५) स्वाती—शुचिश्रवा (१६) विशाखा—सद्भाव
(१७) अनुराधा—भावन (१८) ज्येष्ठा—भर्त्ता
(१९) मूला—प्रभव (२०) पूर्वाषाढ़ा—प्रभु
(२१) उत्तराषाढ़ा—ईश्वर (२२) श्रवणा—अप्रमेय
(२३) धनिष्ठा—हृषीकेश (२४) शतभिषा—पद्मनाभ
(२५) पूर्वभाद्रपद—अमरप्रभु (२६) उत्तरभाद्रपद—अग्राह्य
(२७) रेवती—शाश्वत

श्रीगौड़ीय पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य

श्रीपत्रिकाका स्वरूप

श्रीगौड़ीय पत्रिका श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुखपत्र है। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा प्रतिष्ठित नवद्वीपधाम-प्रचारिणी-सभा और श्रील जीव गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित श्रीविश्व-वैष्णव-राजसभाकी एकनिष्ठा, ऐकान्तिकी, प्रेष्ठा सेविका है। सर्वप्रधाना और प्रियतमा सेविका होनेके कारण उक्त समिति दोनों ही सभाओंकी अभिन्ना प्रतिमूर्त्ति है।

अतएव श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिका मुखपत्र कहनेपर इसे उक्त दोनों सभाओंका भी मुखपत्र समझना चाहिये। यह श्रीगौड़ीय पत्रिका नवद्वीपधाम-प्रचारिणी-सभाका मुखपत्र श्रीसज्जनतोषणी और विश्व-वैष्णव-राजसभाका मुखपत्र साप्ताहिक गौड़ीयका अभिन्न कलेवर है। अतएव श्रील प्रभुपाद और श्रील भक्तिविनोद ठाकुरके भाव, भाषा और धाराके साथ श्रीगौड़ीय पत्रिकाके भाव, भाषा और धारा अभिन्न हैं। संक्षेपतः श्रीगौड़ीय पत्रिका श्रील रूप और रघुनाथकी कथाकी एकमात्र प्रचारिका है।

सज्जनतोषणी और गौड़ीय अवस्थिति-काल

श्रीसज्जनतोषणी पत्रिका वर्त्तमान समयसे अनुमानतः ६७ वर्ष पूर्व श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके सम्पादनमें प्रथम बार प्रकाशित हुई थी एवं क्रमशः सतरह वर्षों तक उनके द्वारा परिचालित हुई। उसके बाद सात वर्षों तक श्रील प्रभुपादने इस पत्रिकाका सम्पादन किया। करीब चौबीस वर्षों तक सज्जनतोषणी पत्रिकाका प्रकाशन हुआ। इन चौबीस वर्षोंके चौबीस खण्डोंके प्रकाशनमें अनुमानतः ४५ वर्ष अतिवाहित हुए। उसके बाद १९२२ ई॰ में 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' के नियामक महाराजकी सहायतासे मासिक सज्जनतोषणी पत्रिकाके अभिन्न कलेवरके रूपमें 'गौड़ीय' नामक एक साप्ताहिक पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ हुआ। ये पत्रिका भी चौबीस वर्षोंकी अवधि तक अवस्थित रहकर अनुमानतः १९४६ ई॰ में अन्तर्हित हो गयीं।

श्रीगौड़ीय पत्रिकाके आविर्भावका कारण

श्रील प्रभुपादके अन्तर्धानके बाद उनके मनोभावके अनुरूप शुद्ध हरिकथाका प्रचार करनेके लिए उनके एकनिष्ठ, अन्तरङ्ग सेवकोंने विशेष रूपसे प्रचार किया। किन्तु नाना प्रकारकी दैवी और आसुरी घटनाओंके कारण उक्त साप्ताहिक गौड़ीयकी प्रकृत सेवा करनेमें अससमर्थ होकर वे लोग गुरुपरतन्त्र-स्वतन्त्र हो गये। तबसे 'गौड़ीय' में बाधारहित आमूल परिवर्तन होकर पत्रिका 'ऊँची दूकान फीकी पकवान' नीतिका परिपोषक होकर रह गयी। कितने ही अन्तःसारशून्य लोगोंने विषाक्त, दुर्गन्धयुक्त

तेलके द्वारा गौड़ीय कंकालकी रक्षा करनेकी चेष्टा की, किन्तु वह क्रमशः क्षयित होने लगा। श्रीहरिगुरुवैष्णव सेवापर श्रीरूपानुग भक्तिसिद्धान्तसमूह ही गौड़ीयका प्रकृत आहार है। इसका अभाव होनेपर गौड़ीयका प्राणधारण करना एकान्त असम्भव है। कितने ही गुरुद्रोहितामूलक अपसिद्धान्तपर अपादर्थ अखाद्य-कुखाद्य गौड़ीयको सञ्जीवित नहीं रख सके। इस प्रकार चौबीस वर्ष होते-न-होते ही तथाकथित परिचालकवर्गके अपराधके कारण 'गौड़ीय' अन्तर्हित हो गया। अतएव गौड़ीय वैष्णव जगत्के श्रील प्रभुपादके आचरित-प्रचारित शुद्ध रूपानुग-भक्तिविनोद-धारामें अवगाहन करनेके सौभाग्यसे वञ्चित होनेके कारण 'श्रीगौड़ीय पत्रिका' का आविर्भाव हुआ है।

श्रीपत्रिकाका उद्देश्य

वर्त्तमान समयमें धर्मजगत्में विभिन्न-विभिन्न संवादपत्रोंका प्रकाश रहनेपर भी श्रीगौड़ीय पत्रिका उनसे सम्पूर्ण पृथक् है। यह पत्रिका निर्भीकतापूर्वक निरपेक्ष भावसे सत्य कथाका प्रचार करनेमें कभी पीछे नहीं हटेगी। शुद्ध भक्तिधर्मके अनुकरणमें अनेक अपसिद्धान्तपर संवादपत्र और ग्रन्थोंका सन्धान हमने पाया है। इनका विचार श्रीरूपानुग शुद्ध वैष्णवकी अप्राकृत धारणाके प्रतिकूल है—इसे हम क्रमशः दिखायेंगे। कोई-कोई अप्राकृत स्मृतिशास्त्रसे प्राकृत स्मृतिशास्त्रका मेल रखकर पर्व आदि पालन करनेका सिद्धान्त करते हैं। वे यह नहीं जानते हैं कि अप्राकृत वस्तु कभी प्राकृत इन्द्रियों द्वारा गोचर नहीं होता। और भी अनेक संवादपत्र देखे जाते हैं पर उनसे गौरजनगणके चित्तोल्लासकी सम्भावना नहीं है। ये सामयिक पत्रसमूह केवल विषयकी बात लेकर, हरिकथाके छलसे केवल मायाकी बात लेकर, भक्तिविरुद्ध कथा लेकर परस्पर कलह और प्रणय उपस्थितकर अथवा कहीं आत्मप्रशंसासे भरपूर होकर हरिकथासे दूर चले जाते हैं। इससे भक्तोंको हृदयमें सुखका सञ्चार नहीं होता है। कोई विषयी लोगोंके मतका अनुगमनकर शुद्धभक्तिको लुप्त करनेकी चेष्टा कर यह समझते हैं कि भक्तिमार्गकी उन्नति हुई। और कोई प्राकृत सम्प्रदाय विशेषके लिए सुविधा करते हुए शुद्धभक्तिका सौन्दर्य नष्ट कर देते हैं। श्रीगौड़ीय पत्रिका ऐसे

संवादपत्रोंके संसर्गसे दूर रहेगी। शुद्धभक्तिके विरुद्ध भावसमूह अज्ञात रूपमें भक्तिकथाके साथ स्थान पानेपर भागवतगणके हृदयमें सेवाविरोध घटित हो सकता है—इस आशङ्कासे मायिक-प्रसङ्गसे सर्वदा सावधान करनेके लिए पत्रिका सर्वदा ही सचेष्ट रहेगी। भक्तिके प्रतिकूल मतवादसमूहमें जिनका चित्त दृढ़भावापन्न है, वे निसर्गवश भक्तिसुखके सन्दर्शनमें असमर्थ हैं। श्रीपत्रिका ऐसी श्रेणीके पाठकोंका चित्तविनोदन नहीं कर पायेगी।

श्रीगौड़ीयके साथ विभिन्न नीतियोंका सम्बन्ध

वर्त्तमान समयमें भारतीय चिन्तास्रोत जिस प्रकारसे प्रवाहित हो रहा है, वह धर्मजगत्‌के साथ कितना सम्बन्धयुक्त है—श्रीगौड़ीय पत्रिका सर्वदा ही समालोचनाके माध्यमसे इनका विश्लेषण करेगी। राजनैतिक, समाजनैतिक, अर्थनैतिक और शिक्षानैतिक आचार-व्यवहार तथा क्रियाकलापके साथ इस पत्रिकाका कोई सम्बन्ध न रहनेपर भी जहाँ उक्त नीतियाँ नित्य सनातन धर्मनैतिक चिन्तास्रोत और आचार-व्यवहारमें व्याघात उत्पन्न करेंगी वहाँ निर्वाक रहकर यह पत्रिका जगत्‌के लिए अमङ्गलकी सृष्टि नहीं होने देगी। स्वाधीन भारतके पूर्व ऐतिह्यकी आलोचना करनेपर हमलोग जान पाते हैं कि धर्मनीति ही समस्त नीतियोंका मूल और भित्तिस्वरूप है। अतएव जिसके ऊपर दण्डायमान रहकर विश्वकी समस्त <u>**सत्ता**</u> की उपलब्धि होती है, उस वस्तुके प्रति उदासीनता ही हमारे अधःपतनका प्रधान कारण है। श्रीपत्रिका पद-पदपर इसका प्रदर्शनकर समग्र भारतवासीको सचेतन रखेगी। धर्म ही भारतकी विशेषता है, धर्म ही भारतका जीवन है। धर्मके कारण ही भारत पृथ्वीके शीर्ष-स्थानपर अधिकार किया है। स्वाधीन भारतकी विजयपताका समग्र विश्वके शीर्षोपरि स्थानपर स्थापित करनेका मूलमन्त्र है महाप्रभुके शिक्षाष्टकका अन्यतम श्लोक—

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः॥

इस श्लोकके तात्पर्यकी शिक्षा जगत्-वासियोंको देनेके लिए श्रीपत्रिका सर्वदा ही मुक्तकण्ठसे कीर्त्तन करेगी।

धर्म ही भारतका गौरव और शान्तिदाता है

धर्माधीन राष्ट्र ही भारतका गौरव है एवं धर्मने ही भारतकी चिरदिन परिचालना की है। 'धर्म' शब्द किसी सङ्कीर्णता, हीनता या किसी प्रकारकी अनुपादेयताको लक्ष्य नहीं करता है। धर्म और धर्मका भान एक नहीं है। धर्मध्वजी लोगोंकी सङ्कीर्ण असत् क्रियाओंको लक्ष्यकर धर्मके प्रति श्रद्धारहित होना कर्त्तव्य नहीं है। पार्थिव चिन्तास्रोत मनुष्यको अधःपतितकर दुःखसागरमें निमज्जित करता है। खाद्य, वस्त्र, वासगृह आदिकी सुव्यवस्था करना ही पराशान्ति प्राप्त करनेका उपाय नहीं है। जो लोग पूर्णमात्रामें भोगकर इन्द्रियतर्पणकी चरम सीमापर पहुँच गये हैं वे भी अशान्तिके गम्भीरतम जलधिगर्भमें निमज्जित हैं, यह किसीको समझानेकी आवश्यकता नहीं है। शान्ति एक पृथक् तत्त्व है। पार्थिव वस्तु कभी भी शान्तिका सम्पादन नहीं कर सकती।

श्रीपत्रिकाकी भाषा

यह पत्रिका समग्र भारतमें समादृत हो सके, इसके लिए प्रत्येक प्रादेशिक भाषामें प्रबन्धादि इसमें प्रकाशित होंगे। प्रधानतः बँग्ला, संस्कृत, हिन्दी, आसामी, उड़िया, अँग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओंके प्रबन्धोंको इसमें स्थान मिलेगा।

गम्भीर गुरुदायित्व लेकर यह पत्रिका विश्ववासीके समक्ष उपस्थित हो रही है। भारतवासीकी आन्तरिक सहानुभूति और शुभेच्छाके ऊपर इसकी सफलता निर्भर करती है।

श्रीभागवत पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य

इतिहास

परमहंसकुल मुकुटमणि जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी यतिराजने हिन्दी-भाषामें धर्मजगत्के सर्वोच्च विचार-धाराको प्रवाहित करनेके लिए 'भागवत' नामक एक पाक्षिक-पत्रिकाका प्रकाशन नैमिषारण्य, श्रीपरमहंस मठसे कार्त्तिक-कृष्णा-अमावस्या, गौराब्द ४४५, विक्रम संवत् १९८८, ९ नवम्बर सन् १९३१ ई॰ में आरम्भ किया था। यह पाक्षिक-पत्रिकाके रूपमें

प्रति अमावस्या और पूर्णिमाको प्रकाशित होती थी। कुछ वर्षों तक सुष्ठुभावसे प्रचारित होनेके बाद इसने आत्मगोपन कर लिया। श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति उक्त जगद्गुरु श्रील प्रभुपादका पादाङ्कानुसरणकर मथुरा, केशवजी गौड़ीय मठसे पुनः उक्त पत्रिकाके सेवा-सङ्कल्पसे 'श्रीभागवत पत्रिका' नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन गौराब्द ४६९, विक्रम संवत् २०१२, सन् १९५५ ई० जून माससे आरम्भ किया, जो गौराब्द ४८८, विक्रम संवत् २०३१, सन् १९७४ ई० मई मास तक होता रहा। भगवत्-इच्छासे पुनः इसने आत्मगोपन कर लिया। किन्तु, कलियुग-पावनावतारी महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित धर्मकी धाराको पुनः प्रवाहित करनेके लिए इसने आत्मप्रकाश किया है। सुधी पाठकजनसे यह अनुरोध और विनती है कि इस प्रेमगङ्गामें अवगाहनकर अपने जीवनको कृतार्थ करें।

इस पत्रिकाके उद्देश्यके विषयमें श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने जो विचार प्रस्तुत किए थे, वे निम्नलिखित हैं—

नित्यता

'भागवत' नित्य वस्तु हैं। इन्हें पाक्षिक, मासिक अथवा वार्षिक जो कुछ भी क्यों न कहा जाय, यहाँ तक कि दैनिक, दाण्डिक वा अनुपलिक कहे जानेपर भी इनकी नित्यताका व्याघात नहीं होता। इसमें एकमात्र अनन्तके आंशिक कालका ही लक्ष्य किया गया है। जिन्हें अनन्त अथवा पूर्णताकी धारणा नहीं, उनके लिए अंश ही उन्हें पूर्णताकी ओर अग्रसर करा देता है। फिर भी अंश चिरकाल ही अंश है और पूर्ण नित्यकाल पूर्ण होता है। अंश कभी पूर्ण नहीं होता अथवा पूर्णताकी समता प्राप्त भी नहीं कर सकता। जो नित्य वस्तुकी धारणा करनेमें असमर्थ हैं, उनके निकट इसका आविर्भाव-तिरोभाव अथवा जन्म-मृत्यु एक मिथ्या कल्पनामात्र है। यथा—वृन्दावन, मथुराधाम नित्य होनेपर भी इनका आविर्भाव और तिरोभाव है। श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गौड़ीयजन ही नित्यधामके आविर्भाव और तिरोभावके विचारको समझनेमें सक्षम हैं। दूसरे साम्प्रदायिक या असाम्प्रदायिक वैष्णवगण इसका मर्म उपलब्ध नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत ही इसके एकमात्र प्रमाण हैं। नित्य भागवतका पाक्षिक या मासिक आविर्भाव अशेष नित्य सौन्दर्यका

विकाशक है। इसीलिए जगद्गुरु गौड़ीय-कुल-शिरोमणि उक्त यतिराज-सम्राटने 'भागवत' पत्रिका गौर-पक्ष और कृष्ण-पक्षमें प्रकाशित की थी। पूर्णिमा-पक्ष ही गौर-पक्ष तथा अमावस्या-पक्ष ही कृष्ण-पक्ष है। इसलिए श्रीमद्भागवत शास्त्र गौर तथा कृष्ण उभय पक्षोंमें ही व्याख्यात, विचोरित, आचरित, आदृत और अनुमोदित होते हैं। सर्वोत्तम विष्णुतत्त्व अर्थात् गौरहरिरूप भगवत्-तत्त्वमें श्रद्धा या विश्वासहीन सम्प्रदायोंको श्रीमद्भागवतका तात्पर्य अवगत कराना विशेष आवश्यक है।

श्री और पत्रिका

'भागवत' शब्दके पूर्व 'श्री' शब्द सन्निवेशित होनेसे भागवतके नित्यत्वका बोध होता है। अतः नित्यता ही भागवतकी 'श्री' है। इसके बाद 'पत्रिका' शब्द सन्निवेशित होनेसे ऐसा समझना चाहिये कि यह पत्रिका भागवतके आचार-विचार तथा सिद्धान्तमूलक वार्त्ताको वहन करनेवाली है। 'पत्रिका' शब्दसे संवादवाही या वार्त्तावाहीका बोध होता है। नित्य भागवतके नित्य वार्त्तावहनकारी स्वरूपसे 'श्रीभागवत पत्रिका' पाठकोंके समक्ष उपस्थित हो रही है। अनित्य, असनातन, परिवर्त्तनशील और मिथ्या विचार अथवा लेख-माला प्रभृति इनमें प्रकाशित न होंगे। ग्राम्यवार्त्ता, आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि अनर्थ पैदा करनेवाले कोई विषय 'श्रीपत्रिका' में स्थान न पायेंगे। जो काव्य, दर्शन, कविता, लेख आदि भोगमय इन्द्रिय सुखकी सहायता या वृद्धि करते है, उन्हें 'श्रीपत्रिका' की संज्ञा नहीं दी जा सकती। अतः विश्री (श्रीहीन) विचार आदरणीय नहीं है। 'श्री' ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य है। हम वर्त्तमान जगत्के श्रीहीन विचारधाराका प्रतिरोधकर अप्राकृत वैकुण्ठ-जगत्की श्रीसम्पन्नवाणीका परिवेषण करेंगे। अतः इस पत्रिकाने उक्त वाणीका परिवेषण करनेके लिए यान-वाहनके रूपमें राष्ट्रभाषा हिन्दीका अवलम्बन किया है।

राष्ट्रभाषा

भाषा भावोंकी अभिव्यक्ति भाव कहते है। भाव हृद्गत वृत्ति-विशेष है। यह वृत्ति अथवा भाव जिस श्रेणीके यान-वाहनका अवलम्बनकर आत्मप्रकाश करता है, उसकी भाषा भी तदनुरूप होती है। यान-वाहनकी

दुर्बलताके कारण भावोंकी अभिव्यक्ति भी पूर्णता लाभ नहीं करती। भाषा जितनी ही शुद्ध, उन्नत और अग्रसर रहेगी, हृद्गत विचारधारा भी तदनुरूप परिमाणमें जनसमाजको प्रभावित करेगी, प्रत्यक्षीभूत होगी। वर्त्तमान राष्ट्रभाषा समृद्ध होकर समग्र जीवोंके भावोंकी पूर्ण अभिव्यक्ति करे—इसी आकांक्षाको लेकर हम राष्ट्रभाषामें वैकुण्ठभावोंको व्यक्त करनेके लिए प्रस्तुत हुए हैं।

हिन्दी भाषा

अधिकांश प्राचीन भारतीय भाषाएँ ही संस्कृत भाषासे उत्पन्न हुई है। वैदिक संस्कृत भाषा ही हमारी आदि भाषा है। इसी भाषाके अपभ्रंशसे देश, काल और पात्रकें अनुसार आज भिन्न-भिन्न भाषाएँ परिलक्षित होरही हैं। उनमें हिन्दुस्तानके अधिवासी जिस भाषामें अपने हृदयके भावोंका आदान-प्रदान करते हैं, उसी भाषाका नाम 'हिन्दी' है। 'हिन्दू' या 'हिन्दी'—ये दोनों शब्द हमारे वैदिक या मौलिक शब्द नहीं हैं। संस्कृत भाषामें इनका व्युत्पत्तिगत अर्थ नहीं पाया जाता। फारस देशवासी लोग, सिन्धु नदीके तटवर्त्ती अधिवासियोंको सिन्धु न कहकर हिन्दु कहा करते थे। "वैदिक अथवा शास्त्रीय प्राचीनतम 'संस्कृत' हमारी मूल भाषा है"—यह सर्ववादी सम्मत होनेपर भी हमने वर्त्तमान कालोपयोगी हिन्दी भाषाको ही राष्ट्रभाषाके रूपमें अङ्गीकार किया है।

भाषाका शासन

भावोंकी अभिव्यक्तिको ही भाषा मान लेनेपर भी जिस देशके जो भाव हैं, उस देशकी भाषा भी तद्रूप होती है। एक दिन जिस देशमें वैदिक भाषाके अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषाका प्रचलन नहीं था, जिस देशमें जीवमात्रके उपास्य एकमात्र विष्णुतत्त्वसमूहका आविर्भाव हुआ था एवं जिस देशके मध्ययुगमें संस्कृत भाषाके माध्यमसे परस्पर भावोंका आदान-प्रदान होता था, आज उसी देशमें हिन्दी भाषाके माध्यमसें प्रशासन चलानेकी व्यवस्था हुई है। कालकी प्रगतिमें अथवा परिवर्त्तनशीलताके बीचमें जब जिस तरहकी अवस्थाका उद्भव होता है या होगा, हम उसे ही भगवत्-सेवाके अनुकूलरूपमें स्वीकृत करेंगे। 'लौकिकी वैदिकी

वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिच्छता॥' के अनुसार वैदिक क्रिया हो अथवा कोई लौकिक क्रिया ही क्यों न हो, उसे भक्तिके अनुकूल बनाकर करना आवश्यक है। इस प्रकार कालके लौकिक परिवर्त्तनका परिचय वैदिक विचारमें ही विशुद्ध रूपमें पाया जाता है। अतः वेदातीत या शास्त्रातीत कोई भी अवस्था वर्त्तमान जगत्के भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान कालमें असम्भव है। अतः हम समस्त अवस्थाओंको वैदिक अवस्थाकी परिणति मानकर तदनुकूल भावसे हिन्दी भाषामें ही पारमार्थिक नित्य, सत्य, वैकुण्ठतत्त्वकी आलोचना करनेके लिए प्रस्तुत हुए हैं।

राष्ट्रभाषाका शासन

हिन्दी भाषा-भासी राष्ट्र विश्वके जिस विभागपर शासन करेगा, श्रीभागवत पत्रिका उस विभागको माया मुक्त करानेवाली वाणी प्रकाश करेगी। राष्ट्र विश्वके किस अंशपर शासन करता है? देह और मनके कियदंश पर। किन्तु, श्रीभागवत पत्रिका देह और मनके शासन-संरक्षण और परिचालन आदि विषयोंमें दृष्टिनिक्षेप भी न करेगी। राष्ट्र अपने जगत्को लेकर ही कालातिपात करेगा। श्रीभागवत पत्रिका ध्वंसशील अथवा परिवर्त्तनशील देह और मनकी क्रियाओंको अतिक्रमणकर वैकुण्ठ-जगत्के शासन अथवा नियम-तन्त्रको वर्त्तमान राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशित करेगी। इसलिए श्रीभागवत पत्रिका एकमात्र पारमार्थिक वैकुण्ठ वार्त्तावहके नामसे घोषित है।

प्रार्थना

अतएव हम अपने समग्र पाठकवर्गके श्रीचरणोंमें निवेदन करते हैं कि विशेष आग्रहपूर्वक इस पत्रिकाके विषयोंका भलीभाँति अनुशीलन करनेपर वे विशेष लाभान्वित होंगे। यद्यपि जागतिक विचारधारा प्रसूत साधारण भाषासे वैकुण्ठ-जगत्की भाषा अथवा विचारका प्रचुर पार्थक्य और गुरुत्व है और इसलिए प्रथमतः यह पत्रिका कुछ अंशोंमें बोधगम्य नहीं होगी, तथापि पुनः-पुनः पाठ करनेपर पीलिया रोगसे सन्तप्त रसनाके लिए मिश्रीकी भाँति मधुरातिमधुर प्रतीत होगी। हमारी सच्चेष्टा एवं

सदनुष्ठानके प्रति आप लोगोंकी सहानुभूति और सहायता होनेसे हम अपनेको कृत-कृतार्थ समझेंगे। हम इसी महदुद्देश्यके साधनके लिए पूर्व-पूर्व महाजनों तथा वर्त्तमान मुक्त महापुरुषोंकी लेख-माला इस पत्रिकामें प्रकाशित करेंगे। आधुनिक बद्धजीवोंके लेखोंमें तरह-तरहके भ्रम-प्रमादादि दोष-परिलक्षित होते हैं। हम इस श्रेणीके लेखोंसे सदा सावधान रहेंगे। यही श्रीभागवत पत्रिकाका वैशिष्ट्य और गौरव होगा। अलम् अति विस्तरेण।

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संकलित, प्रकाशित, रचित और संपादित शुद्धभक्ति-ग्रन्थावली

(१) श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी प्रबन्धावली, (२) शरणागति (यामुनभावावलीसह), (३) Shri Chaitanya Mahaprabhu His Life & Precepts, (४) प्रेम-प्रदीप (पारमार्थिक उपन्यास), (५) श्रीनवद्वीप-भावतरङ्ग, (६) जैवधर्म, (७) सहजियादलन, (८) सहजियादलन (हिन्दी), (९) श्रीचैतन्य-पञ्जिका, (१०) श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला मासिक), (११) श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी मासिक), (१२) श्रीगौड़ीय-गीतिगुच्छ, (१३) श्रीदामोदराष्टकम्, (१४) श्रीरूपानुग-भजन-सम्पत्, (१५) श्रीमहाप्रभुजीकी शिक्षा, (१६) सांख्य-वाणी, (१७) श्रीनवद्वीपशतकम्, (१८) श्रीनवद्वीपधाम-परिक्रमा, (१९) मायावादकी जीवनी या वैष्णव विजय, (२०) जैवधर्म (हिन्दी), (२१) श्रीनवद्वीपधाम-माहात्म्यम् (प्रमाण खण्ड), (२२) विजनग्राम और संन्यासी (प्राचीन काव्य)।

अष्टम भाग

ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा प्रदत्त त्रिदण्ड–संन्यास और बाबाजी–वेष

त्रिदण्ड–संन्यास—

(१) श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज (श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, ११–३–१९५२

(२) श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज (श्रीराधानाथ दासाधिकारी) मङ्गलवार, ११–३–१९५२

(३) श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज (श्रीगौरनारायण भक्तबान्धव) मङ्गलवार, ११–३–१९५२

(४) श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज (श्रीआनन्दगोपाल दासाधिकारी) शनिवार, २८–२–५३

(५) श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज (श्रीपूर्णानन्द दासाधिकारी) शनिवार, २८–२–५३

(६) श्रीमद्भक्तिवेदान्त शान्त महाराज (श्रीकृष्णसुन्दर ब्रह्मचारी) शनिवार, २८–२–५३

(७) श्रीमद्भक्तिवेदान्त परिव्राजक महाराज (श्रीपरमधर्मेश्वर ब्रह्मचारी) शुक्रवार, १९–३–५४

(८) श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज (श्रीजयाद्वैत ब्रह्मचारी) शुक्रवार, १९–३–५४

(९) श्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (श्रीअभयचरण भक्तिवेदान्त) बृहस्पतिवार, १९–९–५९

(१०) श्रीमद्भक्तिवेदान्त मुनि महाराज (श्रीसनातन दासाधिकारी) बृहस्पतिवार, १९–९–५९

(११) श्रीमद्भक्तिवेदान्त राद्धान्ति महाराज (श्रीभागवतप्रसाद व्रजवासी) सोमवार, ११-३-६३

(१२) श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज (श्रीप्रबुद्धकृष्ण ब्रह्मचारी)

(१३) श्रीमद्भक्तिवेदान्त ऊद्‌र्ध्वमन्थि महाराज (डा॰ व्रजानन्द व्रजवासी) सोमवार, ११-३-६३

(१४) श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज (श्रीचिद्‌घनानन्द ब्रह्मचारी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१५) श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्डि महाराज (श्रीरसिकमोहन व्रजवासी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१६) श्रीमद्भक्तिवेदान्त दण्डी महाराज (श्रीगुरुशरण दास) शुक्रवार, १९-३-६५

(१७) श्रीमद्भक्तिवेदान्त भिक्षु महाराज (श्रीहरिदास व्रजवासी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१८) श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमाद्वैती महाराज (श्रीरोहिणीनन्दन व्रजवासी) शुक्रवार, १९-३-६५

(१९) श्रीमद्भक्तिवेदान्त न्यासी महाराज (श्रीहरि ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(२०) श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदैवत महाराज (श्रीवास दासाधिकारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

(२१) श्रीमद्भक्तिवेदान्त सज्जन महाराज (श्रीसुदाम सखा ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८-३-६७

बाबाजी-वेष—

(१) श्रीमत् त्रिगुणातीतदास बाबाजी महाराज (श्रीत्रिगुणातीत ब्रह्मचारी) शुक्रवार, ११-५-१९५१

(२) श्रीमत् पुरुषोत्तमदास बाबाजी महाराज (श्रीपूर्णप्रज्ञ व्रजवासी) बृहस्पतिवार, ८-९-६६

(३) श्रीमन् नवीनकृष्णदास बाबाजी महाराज (श्रीनिताईदास ब्रह्मचारी) बृहस्पतिवार, ८-९-६६

(४) श्रीमद् वंशीवदनानन्ददास बाबाजी महाराज (श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी) बृहस्पतिवार, ८–९–६६

(५) श्रीमद् गोविन्ददास बाबाजी महाराज (श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८–३–६७

(६) श्रीमद् अद्वैतदास बाबाजी महाराज (डा॰ अद्वैतदास ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८–३–६७

(७) श्रीमद् गोराचाँददास बाबाजी महाराज (श्रीगोराचाँददास ब्रह्मचारी) मङ्गलवार, २८–३–६७

(८) श्रीमन् मृत्युञ्जयदास बाबाजी महाराज (श्रीमदनमोहन दासाधिकारी) मङ्गलवार, २८–३–६७

(९) श्रीमद् रघुनाथदास बाबाजी महाराज (श्रीरघुनाथदास व्रजवासी) मङ्गलवार, २८–३–६७

श्रील आचार्यकेसरी द्वारा आयोजित परिक्रमाएँ

परिक्रमा		**ई॰**
नवद्वीपधाम	—	प्रतिवर्ष
व्रजमण्डल	—	१९४४
क्षेत्रमण्डल	—	१९४५
द्वारका	—	१९४८
रामेश्वरम् (दक्षिण भारत)	—	१९५०
व्रजमण्डल	—	१९५१
केदारनाथ, बद्रीनाथ	—	१९५२
अवन्तिका और नासिक	—	१९५३
समग्र भारत	—	१९६१

श्रील आचार्यकेसरी द्वारा प्रतिष्ठापित शुद्धभक्ति प्रचारकेन्द्रसमूह

(१) श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ (मूल मठ व प्रधान प्रचारकेन्द्र), तेघरिपाड़ा, पो॰ नवद्वीप (नदिया)

(२) श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चौमाथा, पो॰ चुँचुड़ा (हुगली)

(३) श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति, ३३/२ बोसपाड़ा लेन, कलकत्ता-३

(४) श्रीसिद्धवाड़ी गौड़ीय मठ, सिधावाड़ी, पो॰ रूपनारायणपुर (वर्द्धमान)

(५) श्रीपिछलदा पादपीठ, पिछलदा, पो॰ ईश्वरपुर (मेदिनीपुर)

(६) श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, कंसटीला, मथुरा (उ॰ प्र॰)

(७) श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ, पो॰ गोलोकगंज (गोयालपाड़ा), आसाम

(८) श्रीकृष्णचैतन्य गौड़ीय आश्रम, हरिखालि बाजार, पो॰ इटानगरा (मेदिनीपुर)

(९) श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ, पिछलदा, पो॰ आशुतियावाड़, जिला—मेदिनीपुर (पं॰ ब॰)

(१०) श्रीनरोत्तम गौड़ीय आश्रम, चड़ाइखोला, पो॰ विचनदै, जिला—गोयालपाड़ा, आसाम

(११) श्रीयावट गौड़ीय आश्रम, जावट, पो॰ कालना, जिला—वर्द्धमान (पं॰ ब॰)

(१२) श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचारकेन्द्र, कोरन्ट, पो॰ रान्दियाहाट, जिला—बालेश्वर (उड़ीसा)

(१३) श्रीगौड़ीय सेवाश्रम, पुराना काछारी रोड, पो॰ माथाभांगा, जि॰ कुचबिहार (पं॰ ब॰)

(१४) श्रीजगन्नाथ गौड़ीय आश्रम, गुड़दह, पो॰ श्यामनगर, जिला—२४ परगना (पं॰ ब॰)

(१५) श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी, तेघरिपाड़ा, पो॰ नवद्वीप, जिला—नदिया (पं॰ ब॰)

(१६) श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय, तेघरिपाड़ा, पो॰ नवद्वीप, जिला—नदिया (पं॰ ब॰)

(१७) श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, पो॰ वासुगाँव, जिला—गोयालपाड़ा (आसाम)

(१८) श्रीराजराजेश्वपुर गौड़ीय मठ, पो॰ विश्वनाथपुर, जिला—२४ परगना (पं॰ ब॰)

(१९) श्रीत्रिगुणातीत समाधि आश्रम, गदखालि, पो॰ नवद्वीप, जिला—नदिया (पं॰ ब॰)

उनके पश्चात् परिचालक समिति द्वारा प्रतिष्ठित मठसमूह—

(२०) श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ, शक्तिगढ़, पो॰ शिलीगुड़ी (दार्जिलिङ्ग)

(२१) श्रीनीलचल गौड़ीय मठ, गौरवाटशाही, स्वर्गद्वार (पुरी) उड़ीसा

(२२) श्रीमेघालय गौड़ीय मठ, पो॰ तुरा (गारोहिल्स) मेघालय

(२३) श्रीविनोदबिहारी गौड़ीय मठ, २८, हलदर वागान लेन (कलकत्ता-४)

(२४) श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ, अरविन्द लेन, कुचविहार (प॰ ब॰)

(२५) श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, दानगली, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)

(२६) श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, रानापति घाट, वृन्दावन (उ॰ प्र॰)

(२७) श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ, संन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ॰ प्र॰)

(२८) श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, श्रीचैतन्य एवेन्यु, दूर्गापुर, वर्द्धवान (प॰ ब॰)

(२९) श्रीगौर-नित्यानन्द गौड़ीय मठ, रंगपुर, शिलचर-२ (काछाड़)

(३०) श्रीनिमानन्द गौड़ीय मठ, गाडीखाना रोड, विधापाड़ा, धुवडी (आसाम)

(३१) श्रीमाधवजी गौड़ीय मठ, १ कालीतला लेन, वैद्यवाटी (हुगली)

(३२) श्रीमदन मोहन गौड़ीय मठ, माथाभांगा, कोचविहार

(३३) श्रीक्षीरचोरा गौड़ीय मठ, वालेश्वर, उड़ीसा

(३४) श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम, ईशापुर, मथुरा (उ॰ प्र॰)

(३५) Shri Gour Govinda Goudiya Math, Birmingham

(३६) Shri Vinod Bihari Goudiya Math, Houston

(३७) Badger

(३८) Perth

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी उपदेशावली

(१) ज्ञान-कर्म आदि अन्याभिलाषितारहित केवलाभक्ति ही हमलोगोंका प्राण है।

(२) श्रीगुरुपादपद्मकी विश्रम्भ-सेवा द्वारा ही भक्ति प्राप्त होती है।

(३) श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा ही गुरु-सेवा है।

(४) कीर्त्तनाख्या भक्ति ही भक्तिके सभी अङ्गोंमें श्रेष्ठ है।

(५) कीर्त्तनके द्वारा ही भक्तिके अन्यान्य अङ्ग साधित होते हैं।

(६) दुर्जनसङ्गका त्याग ही निर्जन भजन है अर्थात् साधुसङ्ग ही निर्जनता है।

(७) सर्वदा हरिकथाका प्रचार ही हरिकीर्त्तन है।

(८) सर्वदा हरिकथा कहना या श्रीहरिकी सेवामय कथामें निमग्न रहना ही मौनावस्था है।

(९) निरपराधपूर्वक नामभजन ही अथवा संख्यात-असंख्यात शुद्ध श्रीनामका उच्चस्वरसे कीर्त्तन ही लीला-स्मरण है।

(१०) श्रीरूपानुगत्यमें गौर-भजन—श्रीश्रीराधाकृष्णका विप्रलम्भ भजन ही श्रेष्ठ है।

(११) 'वासुदेव' कहनेसे हमलोग नन्दतनुज श्रीकृष्णको समझते हैं, वासुदेवका आविर्भाव है, जन्म नहीं। वासुदेवके नाड़ीछेदन आदि जातकर्म नहीं हुए। किन्तु कृष्णने यशोदा मैयाके गर्भमें जन्म-ग्रहण किया। जन्म और आविर्भावमें जो सूक्ष्म पार्थक्य है, इसे समझनेमें एकमात्र रूपानुग वैष्णव ही समर्थ हैं। कार्ष्ण लोगोंके निकट हमलोगोंका रूपानुगत्व ही प्रार्थनीय है।

(१२) आँखोंकी तृप्तिके लिए श्रीविग्रहका दर्शन नहीं है। मैं श्रीविग्रहका दर्शनकर सुखी हुआ, होऊँगा—इसकी अपेक्षा इस भावनाका होना परम मङ्गलजनक है कि श्रीविग्रह मुझे देखकर खुश हुए होंगे। भगवान् प्राकृत इन्द्रियग्राह्य नहीं हैं।

(१३) ईश्वरका आकार नहीं है, कोई रूप नहीं है, कोई गुण नहीं है, कोई शक्ति नहीं है—ये सब अलीक कल्पनाएँ हैं। बौद्धोंका शून्यवाद

या वेदविरुद्ध नास्तिक्यवाद इन कल्पनाओंके मध्य (अन्तर्गत) है। परन्तु ईश्वरका नित्य आकार या स्वरूप स्वीकार करना ही आस्तिक्यवाद है। जो लोग इस 'नित्य-रूप' को अस्वीकार करते हैं, वे ही नास्तिक हैं।

(१४) जड़ा (माया) शक्तिकी प्रबलता ही हमें श्रीजगन्नाथकी सेवामें बाधा प्रदान करती है। जब तक हम प्राकृत दर्शन करते हैं, तब तक अप्राकृत जगन्नाथ-दर्शनके प्रति हमारी रुचि उत्पन्न नहीं होती। समस्त जगत्‌को जगन्नाथकी सेवामें नियुक्त करना ही रथयात्रा उत्सवका तात्पर्य है।

(१५) जो लोग सर्वतोभावेन गुरुकी आज्ञाका पालन करते हैं, वे ही शिष्य हैं। जो उसे अस्वीकार करते हैं, वे गुरुपरम्पराके विरोधी, पथभ्रष्ट एवं गुरुब्रुव हैं।

(१६) श्रीगुरुपादपद्म मृत नहीं हैं, प्रकट-अप्रकटमें समान रूपसे उनका अस्तित्व प्रमाणित है। उनका आविर्भाव और तिरोभाव एकतात्पर्यपर है। अतः आविर्भावमें विरहस्मृति और तिरोभावमें मिलनमहोत्सव युगपत् सम्भव है।

(१७) दीक्षागुरुकी पूजा सर्वप्रथम करना कर्त्तव्य है। सूक्ष्म रूपसे विचार करनेपर देखा जाता है कि मन्त्रदाता गुरु ही सर्वश्रेष्ठ हैं। जो दीक्षागुरुकी सेवा-शिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही शिक्षागुरु हैं। जो दीक्षागुरुकी सेवा-शिक्षाके विमुख हैं, वे शिक्षागुरु पदवाच्य नहीं हैं। वे वैष्णव ही नहीं हो सकते, क्योंकि वे दीक्षागुरुको मर्यादा देनेकी शिक्षा नहीं देते हैं।

(१८) बँगला साहित्य, संस्कृत साहित्यका एकान्त आनुगत्यकर समग्र भारतमें सर्वोत्तम भाषाके रूपमें आदृत है। दुःखका विषय है कि बँगला भाषाको भी संस्कृत भाषाके आनुगत्यसे विच्छिन्न किया जा रहा है। इसकी जड़में संस्कृत भाषाके प्रति अश्रद्धा और भारतीय वेद-उपनिषद्, पुराणादिकी चिन्ताधाराके प्रति अवहेलना ही समझनी चाहिये।

(१९) राजनीति, समाजनीति, अर्थनीति आदि सभी विषयोंमें ऋषिनीतिका अवलम्बन करनेसे समस्याओंका समाधान होगा। ऋषिनीतिका अवलम्बन करनेके लिए प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंकी आलोचना

और अध्ययन करना पड़ेगा। इस विषयमें शिक्षा विभागकी उदासीनता दूर करनेकी आवश्यकता है।

(२०) किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें ज्ञान अर्जन करनेके लिए प्रथमतः श्रुति या श्रवणकी सहायता आवश्यक है। अतएव वैष्णव सम्प्रदायमें श्रवणके ग्राह्य वस्तु शब्दको ही मूल और श्रेष्ठ प्रमाणके रूपमें स्वीकार किया गया है।

(२१) जो चातुर्मास्यव्रतका पालन नहीं कर केवल ऊर्ज्जाव्रतका ही पालन करते हैं, वे चातुर्मास्यके भक्तिफलको सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त नहीं कर सकते। इसके द्वारा चातुर्मास्यके प्रति अनादर ही प्रकाशित होता है।

(२२) किसी शुद्ध वैष्णवसंघके आनुगत्यमें रहकर ही भजन करना बद्धजीवोंके लिए प्रयोजनीय है। गोष्ठानन्दी और भजनानन्दी कोई भी निर्जन भजन नहीं करते हैं। विविक्तानन्दी गोष्ठानन्दीके श्रीनाम-प्रेम-प्रचारके सहायक रूपमें अनुकूल भाव पोषण करते हैं और उनकी सहायता करते हैं।

(२३) प्रत्येक व्यक्तिका गृह एक आश्रम है। भगवदनुशीलनके लिए ही हम वहाँ अवस्थान करेंगे। केवल आहार-निद्रा आदिके लिए जिस घरमें वास किया जाता है, वह नरकका द्वारस्वरूप है। तामसिक द्रव्यादिके आहार द्वारा जीवका चित्त अधिकतर भगवद्विमुखता लाभ करता है। अतएव वे सर्वदा वर्जनीय हैं।

(२४) हमलोग संन्यासी हैं और हमने समाज संस्कारको धर्मसंस्कारका आनुषंगिक माना है। शिक्षित समाजको उसके अनधिगत कार्योंके विषयमें कहनेका अधिकार हमें है। वास्तव-सत्यका प्रचार करनेमें किसी-किसीके हृदयमें आघात लग सकता है।

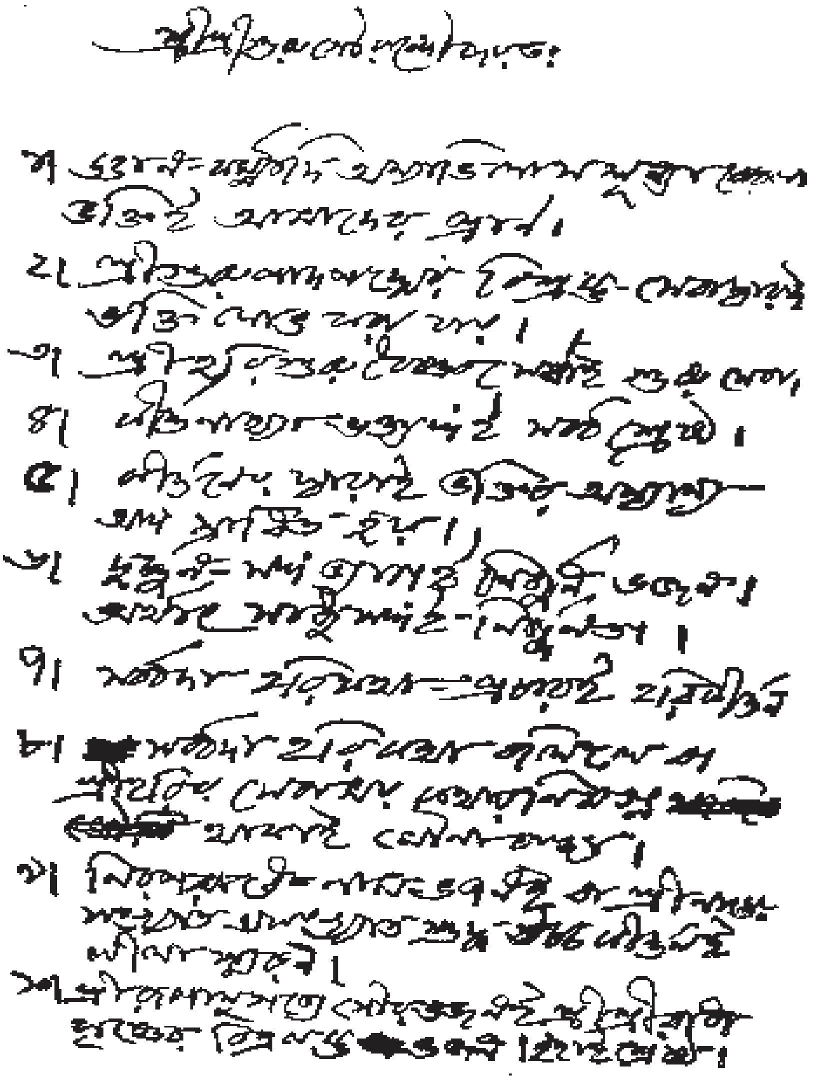

श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका स्वहस्ताक्षर
लिपिमें कुछ उपदेश

परिशिष्ट

श्रीश्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजका संक्षेप जीवनचरित्र

परम पूज्यपाद श्रीश्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराज सारे विश्वमें शुद्धभक्ति एवं नामसङ्कीर्त्तनका प्रचार करनेवाले, सर्वत्र गौड़ीय मठोंके मूल संस्थापक श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादके अन्तरङ्ग सेवकोंमें अन्यतम थे। ये पश्चिम बङ्गालके वर्द्धमान जिलेके हापानियाँ नामक ग्राममें एक शिक्षित सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुलमें १० अक्तूबर, १८९५ ई॰ को पैदा हुए थे। इनके पिताका नाम श्रीउपेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य और माताका नाम श्रीयुता गौरीबालादेवी था। बचपनमें इनका नाम रमेन्द्रचन्द्र भट्टाचार्य था। ये बचपनसे ही बड़े गम्भीर, सरल, शान्त एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। इनकी बुद्धि कुशाग्र थी। स्नातककी डिग्री प्राप्त करनेके पश्चात् ये Law College में भर्ती हुए, किन्तु law की पढ़ाई समाप्त करनेके पहले ही ये अँग्रेजोंके विरुद्ध गाँधीजीके असहयोग आन्दोलनमें कूद पड़े। इसी समय इनका सम्पर्क जगद्‌गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादसे हुआ। ये श्रीलप्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथा तथा सुयुक्तिपूर्ण दार्शनिक उपदेशोंको श्रवणकर बड़े मुग्ध हुए। १९२६ ई॰ में घर-बार सम्पूर्णतः त्यागकर इन्होंने श्रील प्रभुपादके चरणोंका आश्रय ग्रहण किया। हरिनाम-दीक्षाके पश्चात् इनका नाम श्रीरामानन्द दासाधिकारी हुआ। ये बँगला, हिन्दी और अँग्रेजीमें पारङ्गत विद्वान थे। श्रील प्रभुपादके निर्देशसे मद्रास, बम्बई, दिल्ली आदि उत्तर भारतके बड़े-बड़े नगरोंमें इन्होंने गौरवाणीका प्रचार किया।

१९३० ई॰ में श्रीलप्रभुपादने इन्हें त्रिदण्डसंन्यास प्रदान किया। तबसे ये श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराज नामसे प्रसिद्ध हुए। श्रीप्रभुपादने अप्रकट होते समय इन्हें 'श्रीरूपमञ्जरी पद' कीर्त्तन करनेका निर्देश दिया

था, जिसे देखकर सभी गुरुभ्राताओंने इनकी महत्ताको पहचाना। इनके द्वारा रचित संस्कृत भाषाके स्तोत्र आज भी विभिन्न गौड़ीय मठोंमें कीर्त्तन किये जाते हैं।

श्रीलप्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेश करनेके पश्चात् ये भी परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव, श्रीनरहरि प्रभु आदि सतीर्थोंके साथ श्रीनवद्वीपधाममें श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापनाकर वहींसे श्रीमन्महाप्रभुके प्रचारित शुद्धभक्तिधर्मका प्रचार करना आरम्भ किया।

कुछ दिनोंके बाद इन्होंने स्वयं सारस्वत गौड़ीय मठकी स्थापना की। हमारे परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने भी इन्हींसे त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया था। ये बड़े ही उच्च कोटिके सिद्धान्तविद् महापुरुष थे। श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् इनके बहुत-से गुरुभ्राताओंने इनसे संन्यास ग्रहण किया जिनमें परमाराध्यतम श्रीगुरुदेव, श्रीमद्भक्ति आलोक परमहंस महाराज, श्रीमद्भक्तिकमल मधुसूदन महाराज, श्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज आदि प्रमुख हैं।

add photo of
each acarya?

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजका जन्म १८९६ ई०, नन्दोत्सवके दिन कलकत्ता नगरके एक धार्मिक परिवारमें हुआ था। वैष्णव धर्माश्रित माता-पिताके संसारमें रहनेके कारण सरल-सहज रूपमें बचपनसे ही ये वैष्णव सदाचारका पालन करते थे। अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ जन्माष्टमी, झूलनयात्रा, रथयात्राके दिनोंमें बड़े उत्साहसे उत्सव आदि करते थे। इनके बचपनका नाम अभयचरण दे था। इनके माता-पिता घरपर साधु-संन्यासियोंके आनेपर उनके चरणोंमें यही आशीर्वाद प्रार्थना करते थे कि यह बालक श्रीमती राधारानीकी कृपा प्राप्त करे।

बालक अभय आठ वर्षकी आयु तक किसी स्कूल या पाठशालामें प्रविष्ट नहीं हुए। घरपर ही इनकी शिक्षा हुई। तत्पश्चात् स्कूल-कॉलेजमें शिक्षा लाभकर १९२० ई० में कलकत्ता Scottish Church College से B.A. की परीक्षा देकर महात्मा गाँधीके आन्दोलनमें कूद पड़े। १९१८ ई० में जब ये B.A. में पढ़ रहे थे, उसी समय इनका विवाह भी हो गया। १९२१ ई० में अपने पिताके अन्तरङ्ग मित्र स्वर्गीय कार्तिकचन्द्र वसु (Bengal Chemical के Managing Director और डा० वसुकी laboratory के मालिक) ने योग्य अभयचरणको अपना सहकारी मैनेजर नियुक्त किया।

१९२२ ई० में ये अपने किसी अन्तरङ्ग मित्रके साथ कलकत्ताके उल्टा डाँगामें सर्वप्रथम ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादसे मिले। श्रील प्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथा एवं प्रभावशाली उपदेशोंको सुनकर ये बड़े प्रभावित हुए। श्रील प्रभुपादने अँग्रेजी भाषामें विशिष्ट योग्यता देखकर इन्हें अँग्रेजी भाषामें प्रबन्ध लिखने तथा विदेशोंमें प्रचार करनेके लिए उत्साहित किया। अब युवक अभयचरण प्रायः श्रील प्रभुपादके चरणोंमें हरिकथा सुननेके लिए आने लगे। सन् १९३२ ई० में प्रयागमें जगद्‌गुरु श्रील प्रभुपादने कृपापूर्वक अभयचरणको दीक्षामन्त्र एवं गोपाल भट्ट गोस्वामीकी पद्धतिके अनुसार

उपनयन आदि भी प्रदान किया। दीक्षाके पश्चात् इनका नाम श्रीअभयचरणारविन्द दासाधिकारी हुआ। तबसे इन्होंने श्रील प्रभुपाद द्वारा प्रतिष्ठित The Harmonist नामक अँग्रेजी पत्रिकाके लिए नियमित रूपसे प्रबन्ध लिखना आरम्भ किया। श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेपर अस्मदीय

गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीसे इनका सम्पर्क बहुत अधिक हुआ। इसी समय श्रील गुरुदेवने इन्हें अपने द्वारा प्रतिष्ठित श्रीगौड़ीय पत्रिका (बँगला मासिक) एवं श्रीभागवत पत्रिका (हिन्दी मासिक) दोनोंका संघपति नियुक्त किया। इन दोनों पत्रिकाओंके लिए नियमित रूपसे ये प्रबन्ध देते थे। श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुने स्वयं ही Back to Godhead नामक अँग्रेजी पत्रिकाकी स्थापना की। १९४१ ई॰ में जब कलकत्तामें अस्मदीय गुरुपादपद्मने 'श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति' की स्थापना की, तो उस समारोहमें ये भी सम्मिलित थे।

१९५८ ई॰ में घर-बार, स्त्री-पुत्र, व्यवसाय-वाणिज्य सब कुछ त्यागकर ये श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें उपस्थित हुए। उस समय श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके मठरक्षक थे। यहींपर रहकर श्रीअभयचरणारविन्द प्रभुने श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवतका अँग्रेजी अनुवाद करना आरम्भ किया। श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज एवं ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुरोध करनेपर १९५९ ई॰ में श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें ही इन्होंने संन्यास ग्रहण किया। श्रीलगुरुपादपद्मने सात्त्वत वैष्णवस्मृतिके अनुसार इन्हें विधिवत् संन्यास प्रदान किया। तत्पश्चात् ये श्रीराधादामोदर मन्दिर, श्रीधाम वृन्दावन तथा दिल्लीमें रहकर श्रीमद्भागवत प्रथम-स्कन्धका तीन खण्डोंमें अँग्रेजी टीकाके साथ प्रकाशन किया। १९६५ ई॰ में ये श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार करनेके लिए संयुक्तराज्य अमेरिका गये तथा जुलाई १९६६ ई॰ में इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृतसंघ (Iskcon) की स्थापना की। कुछ ही दिनोंमें विश्वके बहुत-से देशोंमें इसकी शाखाएँ प्रतिष्ठित हुईं। इन्होंने पचाससे अधिक ग्रन्थ लिखे हैं, जिनका विश्वकी अनेक भाषाओंमें अनुवाद हुआ है। इस तरहसे सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित शुद्धभक्तिधर्म तथा नामसङ्कीर्त्तनका प्रचार करनेका अधिकांश श्रेय इस महापुरुषको है।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजका जन्म पूर्वी बङ्गालके खुलना जिलेके पिलजङ्ग गाँवमें एक सम्भ्रान्त एवं धार्मिक परिवारमें २३ दिसम्बर, १९२१ ई॰ में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीसतीशचन्द्र घोष तथा माताका नाम श्रीमती भगवतीदेवी था। श्रीश्रीमद्भक्तिकुशल नारसिंह महाराज पूर्वाश्रमके सम्बन्धसे इनके पितृव्य थे। माता भगवतीदेवी विश्वभरमें गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता-आचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपादकी शिष्या थीं। पिता श्रीसतीश घोष भी अस्मदीय गुरुपादपद्मसे हरिनाम-दीक्षा प्राप्त आदर्श गृहस्थ भक्त थे। दीक्षाके बाद इनका नाम श्रीसर्वेश्वर दासाधिकारी हुआ था।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीका बचपनका नाम सन्तोष था। ये चार भाइयोंमेंसे द्वितीय थे। बचपनमें इनकी शिक्षा गाँवकी पाठशालामें ही हुई। बाल्यकालसे ही ये बड़े धीर, शान्त, मेधावी एवं धार्मिक बालक थे। ये सर्वदा अपनी कक्षामें प्रथम स्थान ही पाते थे। कोई भी विषय या श्लोक एक बार श्रवण करनेपर उसे कभी नहीं भूलते।

२ मार्च, १९३१ ई॰ को श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके अवसरपर बालक सन्तोषको साथ लेकर इनकी माँ श्रीमती भगवतीदेवी परिक्रमाके लिए आयी। धाम-परिक्रमाके पश्चात् अपने प्यारे पुत्र सन्तोषको मठ-व्यवस्थापक श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीके हाथों सौंप दिया। तभीसे श्रीविनोदबिहारी प्रभुके संरक्षणमें मठमें रहने लगे। कुछ ही दिनोंमें श्रील प्रभुपादने मायापुरमें श्रीभक्तिविनोद इन्स्टीट्यूटकी स्थापना की। श्रीश्रीमद्भक्तिप्रदीप तीर्थ महाराज उसके प्रधानाध्यापक तथा श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारी इसके व्यवस्थापक थे। श्रील गुरुदेवने इन्हें इसी स्कूलमें भर्ती कराया। श्रीलगुरुदेव प्रतिदिन श्रीगौड़ीय कण्ठहार, गीता एवं भागवतसे कुछ श्लोक इन्हें कण्ठस्थ करनेके लिए देते थे। एक श्लोकको कण्ठस्थकर सुनानेपर एक चॉकलेट मिलती थी। ये प्रतिदिन चार-पाँच श्लोक कण्ठस्थ कर सुना दिया करते थे। कुछ ही दिनोंमें श्रीगौड़ीय

कण्ठहारके सारे श्लोक एवं गीता–भागवतके बहुत–से श्लोक इन्हें कण्ठस्थ हो गये। गौड़ीय वैष्णव समाजमें ये श्लोकोंके अभिधान माने जाते हैं।

१९३६ ई॰ में जगद्गुरु श्रीलप्रभुपादने इन्हें हरिनाम प्रदान किया और अब इनका नाम सज्जनसेवक ब्रह्मचारी हो गया। ये स्कूलमें अध्ययन करते हुए भी श्रीमन्दिर एवं वैष्णवोंकी भजन–कुटियोंमें प्रतिदिन झाड़ू देते, उनके लिए जल भरते। प्रसादके पहले प्रसादसेवनके लिए आसन, पत्ता आदि प्रस्तुत करते। प्रसादके पश्चात् उस स्थानको साफ करते। मठके बगीचेसे फल–फूल, पत्ता, सब्जी आदि लाते, इत्यादि सेवाके कार्योंमें व्यस्त रहते। श्रीलप्रभुपादके अप्रकट होनेके पश्चात् श्रीगौड़ीय मठमें एक अन्धकारका युग आया। उस समय श्रीलगुरुदेवने इन्हें दीक्षामन्त्र प्रदान किया। इसके पहले श्रीलगुरुदेवने किसीको दीक्षामन्त्र नहीं दिया था। वे स्वयं नैष्ठिक ब्रह्मचारी वेशमें थे, इसलिए उन्होंने श्रीलप्रभुपादके अन्तिम संन्यासी श्रीश्रीमद्भक्तिविचार यायावर महाराजके हाथों उपनयन संस्कार करवाया। तत्पश्चात् ये पूज्यपाद भक्तिदयित माधव महाराज तथा पूज्यपाद भक्तिभूदेव श्रौती महाराजके साथ बङ्गालके विभिन्न स्थानोंमें प्रचारपार्टीके साथ रहे।

१९४० ई॰ में श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं देवानन्द गौड़ीय मठकी स्थापना होनेपर श्रील गुरुदेवने पुनः इन्हें अपने पास रख लिया। तबसे ये गुरुजीके साथ रहकर बङ्गाल और बङ्गालके बाहर सर्वत्र ही उनकी सेवा करते, उनका पत्र लिखते। इन्होंने गुरुजीके साथ भारतके सभी प्रधान–प्रधान तीर्थोंमें भ्रमण किया। १९४८ ई॰ में श्रीगौड़ीय पत्रिकाके आरम्भ होनेपर प्रकाशनका सारा दायित्व इनके ऊपर दे दिया गया। सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम दूसरोंका होनेपर भी ये ही सारे कार्योंको सम्पन्न करते थे।

सन् १९५२ ई॰ में श्रीगौरपूर्णिमाके दिन श्रीधाम नवद्वीपमें श्रील गुरुदेवने कृपाकर इन्हें संन्यास वेश प्रदान किया। तबसे इनका नाम श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज प्रसिद्ध हुआ। श्रील गुरुमहाराजने बीच–बीचमें इन्हें बङ्गालके बहुत–से स्थानोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए भी भेजा। इन्होंने बड़े परिश्रमके साथ गुरुजीके निर्देशसे उन्हींके आनुगत्यमें श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीबलदेवविद्याभूषण–कृत टीका सहित),

जैवधर्म, प्रेम-प्रदीप, प्रबन्धावली, शरणागति, नवद्वीपभाव-तरङ्ग, Sri Chaitanya Mahaprabhu--His life and precepts, श्रीचैतन्यशिक्षामृत, श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा, श्रीदामोदराष्टकम् आदि ग्रन्थोंका श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे पुनः प्रकाशन किया।

सन् १९६८ ई॰ में श्रीलगुरुमहाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् ये श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सभापति एवं आचार्य पदपर अधिष्ठित हुए हैं। ये पराविद्यानुरागी, भक्तिसिद्धान्तमें निपुण, अद्भुत सहिष्णु, भजनपरायण आदि वैष्णवोचित गुणोंसे सम्पन्न हैं। श्रीलगुरुदेवके अप्रकटलीलाके पश्चात् इन्होंने बहुत-से भक्तिग्रन्थोंका सम्पादन किया है। श्रीधाम पुरी, तुरा (मेघालय), धूबड़ी (आसाम), गौहाटी (आसाम) और सिल्चर (आसाम) आदि स्थानोंमें समितिके नये प्रचारकेन्द्रोंकी स्थापना की है।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजका जन्म ३१ जनवरी, १९१६ (१७ माघ १३२२ बंगाब्द) में हुआ था। इनके पिताका नाम श्रीयुत आशुतोष कुमार घोष एवं माताका नाम श्रीयुता कात्यायनीदेवी था। वे दोनों ही सदाचारसम्पन्न सत्यानुरागी एवं परम धार्मिक थे। गृहदेवता श्रीनारायणकी सेवा किये बिना जल भी ग्रहण नहीं करते थे। लोकसमाजमें उनका बड़ा सम्मान था।

बचपनमें श्रीपाद भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजका नाम श्रीराधानाथ कुमार था। धार्मिक माता-पिताका इनके जीवनपर बहुत ही अधिक प्रभाव पड़ा। बचपनसे ही विशेष कुशाग्रबुद्धिके छात्र थे। पढ़ने-लिखनेके साथ-ही-साथ सङ्गीत, चित्रकारी, चिकित्साशास्त्र (होम्योपेथिक) आदि विषयोंमें विशेष अभिरुचि रखते थे। छह भाइयों एवं तीन बहनोंमें ये द्वितीय सन्तान थे। ये सभी विषयोंमें इतने दक्ष थे कि इनके बड़े भाई, पिता तथा परिवारके सभी लोग इनके परामर्शके बिना कोई कार्य नहीं करते थे।

दसवीं श्रेणीकी परीक्षा उत्तीर्ण होनेपर प्राइमरी स्कूलमें शिक्षकके रूपमें नियुक्त हुए। उसी समय वे अपने बहनोईके घरपर गये हुए थे। वहाँ उस समय श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके महोपदेशक पूज्यपाद श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी प्रचारपार्टीके साथ श्रीमन्महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित विशुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे थे। उनके भागवत-प्रवचनको सुनकर इनके हृदयमें संसारके प्रति वैराग्य तथा भगवद्भजन करनेकी तीव्र लालसा उत्पन्न हो गयी। सौभाग्यवश इन्हीं दिनों वे अपनी बहनसे मिलनेके लिए गङ्गाके पूर्वी तटपर स्थित श्रीधाम मायापुरके समीपवर्त्ती किसी ग्राममें जा रहे थे। रास्तेमें श्रीयोगपीठका नौ शिखर विशिष्ट विशाल मन्दिर देखा। श्रीमन्दिरको भलीभाँति देखनेके लिए उसके चारों ओर घूमकर देखा। बहनकी ससुरालके वृद्धलोगोंसे उस मन्दिरके सम्बन्धमें पूछा। उन लोगोंने बताया कि श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी यह आविर्भावस्थली

है। यहींसे गौड़ीय मठका विश्वभरमें प्रचार हुआ। श्रीविनोदबिहारी ब्रह्मचारीजीने इस स्थानका वैभव प्रकाशित किया है।

उस समय युवक श्रीराधानाथ कुमार यह भी नहीं जानते थे कि श्रीमन्दिर या तुलसीपरिक्रमा क्या होती है तथा उसका फल क्या होता है? उनके अनुसार साधुसङ्गमें हरिकथा तथा श्रीहरिमन्दिर एवं श्रीतुलसी परिक्रमाका यह अद्भुत फल हुआ कि वे शीघ्र ही माता, पिता, पत्नी, बन्धु-बान्धव एवं गृह सम्पत्ति सबकुछ त्यागकर भगवद्भक्तिमें तत्पर हो गये।

सन् १९४२ में इन्होंने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रधान कार्यालय चुँचुड़ा (हुगली) में उपस्थित होकर समितिके संस्थापक आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीसे हरिनाम ग्रहण किया तथा १९४४ में सम्पूर्ण रूपसे गृह परित्यागकर गुरुसेवा एवं भगवत्-सेवामें नियुक्त हो गये। श्रील गुरुदेवने इन्हें परमपूज्य महामहोपदेशक श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीके हाथोंमें सौंप दिया। ये उन्हींके साथ बहुत दिनों तक बङ्गाल व भारतके विभिन्न स्थानोंमें भगवद्भक्तिका प्रचार करनेके लिए जाते रहे। कुछ दिनोंके बाद श्रील गुरुदेव इन्हें स्वतन्त्र रूपमें भी विभिन्न स्थानोंमें भक्तिप्रचारके लिए भेजा करते थे। सन् १९५२ में श्रीगौरपूर्णिमाके दिन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने अनुग्रहपूर्वक श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी तथा श्रीगौरनारायण दासाधिकारीके साथ इन्हें भी श्रीधाम नवद्वीपमें त्रिदण्डसंन्यास प्रदान किया। बँगला भाषामें प्रवीण होनेके कारण इन्हें श्रील गुरुदेवने श्रीगौड़ीय पत्रिकाका सहकारी संपादक नियुक्त किया। कभी-कभी श्रीपाद वामन महाराजजीकी अनुपस्थितिमें गौड़ीय पत्रिका कार्यालयका सारा दायित्व ग्रहण करते थे। इनके प्रामाणिक लेख एवं गूढ़ रहस्यात्मक पद्य श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशित होते थे। संन्यासके पश्चात् इन्होंने शुद्धभक्तिका प्रचार करनेके लिए श्रील गुरुदेवके आनुगत्यमें भारतके विभिन्न स्थानोंमें भ्रमण किया। श्रील गुरुदेवके अप्रकटके पश्चात् श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके जनरल-सेक्रेटरीका दायित्वपूर्ण पद भी सँभाला। भजनमें अत्यधिक आवेश होनेके कारण इन्होंने समितिके सदस्योंके पुनः-पुनः अनुरोध करनेपर भी इस पदसे अवसर ग्रहण कर लिया। परन्तु अवसर ग्रहण करनेपर भी आज तक समितिके सब प्रकारके दायित्वपूर्ण सेवा-कार्योंमें तत्पर रहते हैं।

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके पूर्वाश्रमका नाम श्रीमन् नारायण तिवारी था। ये बिहार प्रदेशके बक्सर जिलेके सुप्रसिद्ध तिवारीपुर नामक ग्राममें एक उच्चशिक्षित सम्भ्रान्त ब्राह्मण कुलमें पैदा हुए थे। तिवारीपुर ग्राम पतितपावनी भगवती गङ्गाके तटपर अवस्थित था, परन्तु आजकल गङ्गाके पथपरिवर्तनसे थोड़ी दूरपर स्थित है। सम्पूर्ण गाँवमें केवल ब्राह्मणोंका ही वास है। सभी लोग पढ़े-लिखे एवं सम्पन्न हैं। इनके पिताका नाम पण्डित बालेश्वरनाथ तिवारी तथा माताका नाम श्रीमती लक्ष्मीदेवी था। माता-पिता दोनों ही सच्चरित्र, परोपकारी, सत्यनिष्ठ तथा सर्वोपरि श्री सम्प्रदायके आश्रित वैष्णव थे। आसपासके गाँवमें इन लोगोंकी बड़ी मान-प्रतिष्ठा थी।

बचपनमें अत्यन्त शान्त रहनेके कारण सब लोग इन्हें भोलानाथ भी कहते थे। किन्तु माता-पिता तथा कुटुम्बियोंने इनका नाम श्रीमन्नारायण रखा। यही नाम आगे प्रसिद्ध हुआ। बचपनसे ही बालकमें धर्मके प्रति विशेष रुचि देखी जाती थी। बिना किसीके निर्देश या उपदेशके ही वे स्वाभाविक रूपसे सदा-सर्वदा भगवन्नामका जप किया करते थे। श्रीमद्भागवत, गीता, रामायण और महाभारत आदिकी कथायें घरपर होती थीं। बालक बड़ी श्रद्धासे रुचिपूर्वक इन कथाओंका श्रवण करता। अतः बचपनमें ही रामायण, महाभारत आदिकी कथाएँ इन्हें सम्पूर्ण रूपसे कण्ठस्थ हो गयी थी। गाँवकी पाठशालामें प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करनेके बाद गाँवसे पाँच मील दूर बक्सर हाईस्कूलमें इनका प्रवेश कराया गया। प्रतिदिन पैदल विद्यालयमें आना-जाना पड़ता था। फिर भी कुशाग्र बुद्धि होनेके कारण कक्षामें प्रथम, द्वितीय स्थान प्राप्त करते थे। खेलकूदमें भी इनकी विशेष रुचि थी। हाईस्कूलमें अध्ययन करते समय ही प्रदेशभरमें खेलकूदमें अग्रणी (चैम्पियन) रहे एवं बहुत-से पुरस्कार आदि प्राप्त किये।

उच्च विद्यालयकी शिक्षा समाप्त करते ही खेलकूदमें प्रवीणताके कारण अनायास ही पुलिस विभागमें अच्छी नौकरी मिल जानेके कारण इच्छा रहनेपर भी महाविद्यालयकी शिक्षा बीच ही में छोड़ देनी पड़ी। तीन–चार वर्ष सरकारी नौकरीमें रहते समय ही बिहार प्रदेशके साहिबगंज नामक शहरमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारक महामहोपदेशक श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारी 'भक्तिशास्त्री' 'भक्तिकमल' जीसे इनकी भेंट हुई। वे उस समय पूज्यपाद भक्तिकुशल नारसिंह महाराज, श्रीजगन्नाथदास बाबाजी महाराज, श्रीराधानाथ दासाधिकारी और श्रीप्रेमप्रयोजन ब्रह्मचारीके साथ शहरके विभिन्न स्थानोंमें शुद्धभक्ति एवं हरिनामका प्रचार कर रहे थे। इनकी सभाओंमें तिवारीजी भी प्रतिदिन नियमित रूपसे योगदानकर श्रद्धापूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथाओंका श्रवण करते थे। कभी–कभी तो ब्रह्मचारीजीके साथ सारी रात बैठकर हरिकथाका श्रवण करते। शुद्ध वैष्णवोंके सङ्गमें इस प्रकार वीर्यवती हरिकथाका श्रवण करनेसे तिवारीजीके जीवनपर बहुत प्रभाव पड़ा। पहलेसे ही धार्मिक स्वभाव होनेके कारण अब इनका जीवन सम्पूर्ण रूपसे बदल गया। प्रचार पार्टीके वहाँसे चले जानेके बाद उन्होंने प्रतिदिन हरिनाम महामन्त्रका एक लाख जप आरम्भ कर दिया। धीरे–धीरे इनके हृदयमें संसारके प्रति स्वाभाविक रूपसे वैराग्यका उदय होने लगा। जिस समय वे गङ्गाके तटपर बसे हुए श्रीचैतन्यमहाप्रभु तथा श्रीरूप–सनातन गोस्वामीके पदाङ्कपूत स्थान रामकेलिके पास ही राजमहलमें सरकारी सेवामें नियुक्त थे, उस समय उन्हें संसारसे पूर्ण वैराग्य हो गया था। नौकरीसे अवकाश ग्रहण करनेकी चेष्टा करनेपर भी उच्चपदस्थ अधिकारी इनके कार्यसे अत्यन्त सन्तुष्ट रहनेके कारण इनके सेवात्यागपत्र ग्रहण नहीं करते थे। इसी समय इनका परमाराध्यतम श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे कई बार पत्रालाप भी हुआ। अन्तमें किसी प्रकार बड़ी कठिनाईसे पदत्यागकर सन् १९४६ ई॰ के अन्तमें माता–पिता, भाई–बन्धु–पत्नी, परिवारजन एवं धन–सम्पत्ति सबकुछ छोड़कर पूर्णरूपेण निष्किञ्चिन होकर श्रीनवद्वीपधाममें श्रीगुरुदेवके चरणोंमें उपस्थित हुए।

सन् १९४७ ई॰ में श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमाके अवसरपर फाल्गुनी गौरपूर्णिमाके दिन परमाराध्यतम श्रील गुरुदेवने इन्हें हरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। तत्पश्चात् हरिकथा श्रवण करनेमें इनकी अभिरुचि देखकर अपनी सेवामें नियुक्त कर लिया। जहाँ कहीं भी प्रचार अथवा किसी विशेष कार्यके लिए जाते, सब समय अपने साथ रखते। कुछ समयके लिए श्रील गुरुपादपद्मने अपने प्रियसेवक श्रीअनङ्गमोहन ब्रह्मचारीके अस्वस्थ हो जानेपर उनकी सेवा शुश्रूषाके लिए इन्हें रखा था। किन्तु उनके परलोकगमनके बाद पुनः अपने साथ ही रख लिया। सारे भारतमें भक्तिप्रचारमें उनके साथ रहनेके कारण हरिकथा श्रवणका विशेष सुयोग प्राप्त हुआ। श्रीगुरुदेव भी बड़े प्रसन्न होकर इन्हें हरिकथा श्रवण कराते।

श्रील गुरुदेवके साथ इन्हें सम्पूर्ण भारतके मुख्य-मुख्य सभी तीर्थस्थलियों विशेषतः श्रीव्रजमण्डल, श्रीगौरमण्डल और श्रीक्षेत्रमण्डलकी श्रीकृष्ण एवं श्रीराधाभाव एवं कान्तिसे देदीप्यमान श्रीगौरसुन्दरकी लीलास्थलियोंके दर्शन एवं परिक्रमा करनेका सुयोग मिला। इस प्रकार श्रील गुरुदेवके साथ इन्हें उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिमके सारे तीर्थोंके धाम-माहात्म्य श्रवणके साथ उन स्थलोंकी परिक्रमा करनेका दुर्लभ सुयोग प्राप्त हुआ।

एक समय श्रीलगुरुदेव अपने सतीर्थ गुरुभ्राताके साथ बैठे हुए थे। श्रीगौरनारायण भी पास ही बैठे थे। परमाराध्यतम श्रीगुरुदेवने श्रीगौरनारायणकी तरफ देखते हुए कहा मैं तुम्हें गैरिक वस्त्र तथा संन्यास देना चाहता हूँ। मैंने बहुत-से अबङ्गाली भारतीयोंको देखा है। वे लोग श्रीमन्महाप्रभुके अत्यन्त गम्भीरतम एवं उच्च भक्तिसिद्धान्तोंको विशेषतः प्रेमतत्त्वको समझ नहीं पाते। किन्तु तुम इन भावोंको बड़े सरल-सहज रूपमें हृदयङ्गम कर लेते हो। श्रीरूप-सनातन तथा हमारे बहुत-से गौड़ीय वैष्णवाचार्य बहुत दिनों तक व्रजमें रहे। किन्तु उन्हें एक भी ऐसा कोई उत्तर-भारतीय भक्त नहीं मिल सका, जो श्रीमन्महाप्रभुके हृदयस्थित भावोंको हृदयङ्गम कर सका हो। तुम बड़े सौभाग्यवान हो। श्रीगौरनारायणजीने बड़ी ही नम्रतासे उनके श्रीचरणोंमें गिरकर अश्रुपूरित नेत्रोंसे कहा—मैंने अपने आपको आपके चरणोंमें सर्वतोभावेन उत्सर्ग कर दिया है। मैं अपनी माताकी ममता, पिताका स्नेह, पत्नीका प्रेम एवं बन्धु-बान्धवोंका बन्धुत्व सबकुछ उन-उन स्थानोंसे उठाकर आपके श्रीचरणोंमें अर्पित कर रहा हूँ। आप मुझे नङ्गा रखें, लँगोटी पहनावें, सफेद कपड़ेमें रखें, गेरुए कपड़े पहनावें अथवा संन्यास प्रदान करें। आप जिस रूपमें मेरा कल्याण समझें वही करें। अब मैं अपना नहीं केवल आपका हो गया। इनकी बातोंको सुनकर श्रीगुरुदेवकी आँखें भी छलछला आयीं। वे श्रीपाद सनातन प्रभुकी ओर देखने लगे। श्रीसनातन प्रभु भी श्रीगौरनारायणकी बातोंको सुनकर स्तब्ध थे। इसके पश्चात् श्रीलगुरुदेवने क्या स्थिर किया वे ही जानें। वे कुछ देर मौन रहनेके पश्चात् पुनः हरिकथामें लग गये। इस घटनाके कुछ दिन बाद ही सन् १९५२ में गौरपूर्णिमाके दिन श्रीपाद सज्जनसेवक ब्रह्मचारी,

श्रीपाद राधानाथ दासाधिकारी एवं श्रीपाद गौरनारायण दासाधिकारीने त्रिदण्डसंन्यास ग्रहण किया।

श्रीलगुरुदेवने इन्हें श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरामें मठरक्षक नियुक्त किया। वहींसे इन्होंने श्रील गुरुदेवके आदर्श-निर्देश और आनुगत्यमें 'श्रीभागवत पत्रिका' (मासिक पत्र), जैवधर्म, श्रीचैतन्यशिक्षामृत, श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा, भक्तितत्त्वविवेक, उपदेशामृत, श्रीशिक्षाष्टक, श्रीमनःशिक्षा, सिन्धु-बिन्दु-कणा, श्रीगौड़ीयकण्ठहार, श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत टीका सहित, हिन्दी संस्करण) आदिका प्रकाशन कराया है। अभी सारे भारत एवं भारतसे बाहर अमेरिका, इंगलेण्ड, फ्रांस, बेलजीयम, हालेण्ड, कैनाडा, मैक्सिको, कोस्टारिका, अस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, मलेशिया, फिजी, न्यूजीलेण्ड, जापान तथा हवायी (होनुलूलू) आदि विश्वके छोटे-बड़े देशोंमें शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे हैं। अँग्रेजी, फ्रेंच, स्पैनिश आदि भाषाओंमें इनके ग्रन्थोंका विशेष रूपमें प्रचार हो रहा है। इस प्रकार ये वृद्धावस्थामें भी श्रीहरि-गुरु-वैष्णव मनोऽभीष्ट सेवामें उत्साहपूर्वक तत्पर हैं।

कृष्णदास बाबाजी महाराज

कृष्णदास बाबाजी महाराजका जन्म पूर्वी बङ्गालके एक शिक्षित, सम्भ्रान्त परिवारमें हुआ था। ढाकाके किसी कॉलेजसे B.A. की परीक्षामें उत्तीर्ण होनेके बाद ये जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें उपस्थित हुए तथा उनकी वीर्यवती हरिकथासे अनुप्राणित होकर अपना शेष जीवन उन्हींके चरणाश्रयमें बिताकर भगवद्भजन करनेका दृढ़ सङ्कल्प किया। श्रील प्रभुपादने इनके सङ्कल्पसे अवगत होकर इन्हें कृपापूर्वक श्रीहरिनाम एवं दीक्षा प्रदान की। दीक्षाके बाद इनका नाम स्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी प्रसिद्ध हुआ।

ये आकुमार ब्रह्मचारी थे तथा वैष्णवोचित सद्गुणोंसे सम्पन्न थे। इनमें कोई भी जागतिक अहङ्कार या क्रोधका लेशमात्र भी न था। छोटे-छोटे कनिष्ठ वैष्णवोंसे लेकर गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदायके बड़े-बड़े आचार्योंके साथ इनका बड़ा मधुर सम्बन्ध था। कभी-कभी क्रोधका कारण उपस्थित होनेपर भी 'हरे कृष्ण' उच्चारणपूर्वक मुस्कुरा देते। कभी भी इनके मुखके ऊपर क्रोधकी छाया तक नहीं देखी गयी।

श्रील प्रभुपादके अप्रकटलीलामें प्रवेशके पश्चात् ये अस्मदीय गुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके साथ श्रीधाम मायापुरसे श्रीधाम नवद्वीप (आधुनिक नवद्वीप शहर) में देवानन्द गौड़ीय मठमें चले आये। अस्मदीय गुरुपादपद्मके साथ कार्तिक मास—नियमसेवाके correct? उपलक्षमें दक्षिण, उत्तर और पश्चिम भारतके सारे तीर्थोंमें इन्होंने भ्रमण किया था। ये स्वयं मृदङ्ग बजाते हुए सङ्कीर्त्तन करनेमें सिद्धहस्त थे। एकादशी, जन्माष्टमी आदि हरिवासरोंमें निर्जला उपवासपूर्वक रातभर जागरण करते हुए सङ्कीर्त्तन करते थे। रात्रिकालमें नामजपके समय श्रीमद्भागवत, श्रीचैतन्यचरितामृत, कृष्णकर्णामृत, राधारससुधनिधि और गीतगोविन्द आदिके पदोंका मधुर स्वरसे विरहपूर्वक गायन करते थे। ये इतने निष्किञ्चन एवं निरपेक्ष वैष्णव थे कि इन्होंने न तो कोई अर्थसंग्रह किया और न ही कोई शिष्य किया। यदि कोई शिष्य होनेकी

इच्छासे इनके समीप आता, तो बड़ी नम्रतासे 'हरे कृष्ण' कहते हुए उसे टाल देते। ये सचमुच ही अजातशत्रु थे। इनका कोई अपना आश्रय या भजनकुटी नहीं थी। ये अपने सतीर्थोंके आश्रमों, मठोंमें दो-दो, चार-चार दिन रहते और निर्जन स्थानमें भजन करते। श्रीधाम मायापुरमें श्रील प्रभुपादकी भजनकुटीके पास ही एकान्त रूपमें रहकर भजन करते। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे इनका मधुर सम्पर्क था। ये श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ आदिमें इधर-उधरसे घूमकर कुछ दिनों तक रहकर भजन करते थे। श्रीनवद्वीपधामके चैतन्य सारस्वत गौड़ीय मठके संस्थापक आचार्य ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीसे भी इनका अत्यन्त मधुर सम्पर्क था। व्रजमें ये नन्दगाँव स्थित श्रीसनातन गोस्वामीकी भजनकुटी (पावनसरोवर) में निवास करते थे। ये जीवन निर्वाहके लिए माधुकरी भी करने नहीं जाते थे। अपने आप माधुकरी इनके पास उपस्थित हो जाती। इसी स्थानपर ये नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए।

श्रीसनातन दासाधिकारी

श्रीसनातन दासाधिकारी, जगद्‌गुरु श्रीलसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरके शिष्य थे। इनका जन्म कलकत्तेसे कुछ दूर हावड़ा जिलेके बेगमपुर नामक ग्राममें हुआ था। श्रीलप्रभुपादकी वीर्यवती हरिकथा श्रवणकर, उन्होंने उनसे हरिनाम एवं दीक्षा ग्रहण की। दीक्षाके उपरान्त सत्क्रियासारदीपिकाकी विधियोंके अनुसार उनका उपनयन संस्कार तथा वैष्णव होम सम्पन्न हुआ। परन्तु घर लौटनेपर पूरे समाजने उनका सपरिवार बहिष्कार कर दिया। नाई, धोबी आदिको उनके यहाँ काम करनेसे रोक दिया गया। उनके साथ खाना-पीना, उठना-बैठना सब कुछ बन्द कर दिया गया। उनकी छोटी कन्याका दो-एक दिनमें ही विवाह होनेवाला था। बारात आनेवाले दिन श्रीसनातन प्रभुने विवाहकी पूरी तैयारी कर ली थी। किन्तु समाजवालोंने वह विवाह भी रुकवा दिया। वर व उसके पिताको उल्टा-सीधा समझाकर बारात सहित उन्हें वापिस लौटा दिया गया। सनातन प्रभुका पूरा परिवार बड़ा दुखी हो गया। खाने-पीनेकी मिठाई, फल इत्यादि सबकुछ धरा रह गया। परन्तु बड़े आश्चर्यकी बात थी कि श्रीसनातन प्रभुके मुखपर चिन्ताका लेशमात्र भी कोई चिह्न नहीं देखा गया। उन्होंने सबेरे उन सारी वस्तुओंको साथ लेकर श्रीगौड़ीय मठ बागबाजार कलकत्तामें जगद्‌गुरु श्रीलप्रभुपादके श्रीचरणोंमें उपस्थित कर दी। मठवासी सुन्दर पके हुए आम एवं विभिन्न प्रकारकी मिठाईयाँ देखकर बड़े प्रसन्न हुए। वे इस विषयमें कुछ भी नहीं जानते थे। श्रीलसनातन प्रभुने बड़े प्रेमसे अपने साथ लायी हुई वस्तुओंको मठवासियोंमें वितरण कर दिया गया। श्रीलप्रभुपादने बादमें जब पूरी घटनाका संवाद श्रवण किया तो वे क्रोधसे लाल होकर बोले—ऐसा समाज ध्वंस हो, ध्वंस हो। श्रीश्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराजने भी क्रोधके आवेगमें कहा—यदि कल परसों तक सनातन प्रभुकी कन्याका विवाह न हुआ तो मैं पुनर्जन्म लेकर उस कन्यासे शादी करूँगा। सनातन

प्रभु जैसे उच्च कोटिके गुरुनिष्ठासम्पन्न गृहस्थभक्त जगत्‌में विरले ही होते हैं।

श्रीसनातन प्रभु घर लौटे। बड़े आश्चर्यकी बात हुई। दूसरे ही दिन उसी समाजका शिक्षित सम्भ्रान्त घरका एक बड़ा ही सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट नवयुवक उनके घर आकर उनकी लड़कीसे विवाह करनेके लिए अनुरोध करने लगा। उसी रातको बड़े धूमधामसे श्रीसनातन प्रभुकी कन्याका विवाह सम्पन्न हुआ। श्रीसनातन प्रभु स्वयं मठमें इस संवादको देनेके लिए पहुँचे। सुखद् संवाद सुनकर सभी बड़े प्रसन्न हुए।

श्रीलप्रभुपादके अप्रकटलीलाके पश्चात् गौड़ीय मठमें बड़ी विशृंखलता उपस्थित हो गयी। परमपूज्यपाद श्रीमद्भक्तिगभस्ति नेमि महाराज भी श्रीगौड़ीय मठ छोड़कर अन्यत्र कहीं भजनाश्रमकी प्रतिष्ठाकर भजन–साधन करने लगे। सनातन प्रभु इन्हींके पास आते–जाते थे और इनके साथ ही प्रचारमें रहते थे। इन्हें घर–बारकी कोई चिन्ता नहीं रहती थी। कुछ दिनोंके बाद पूज्यपाद नेमि महाराजके अप्रकट होनेके पश्चात् परमाराध्यतम श्रीलआचार्यकेसरीके भक्तिसिद्धान्तोंको श्रवणकर अब इन्हींके पास आने–जाने लगे। ये ताँतके कपड़ोंके बड़े व्यवसायी थे। ये गुरुजीके प्रचारकार्यमें सब प्रकारसे सहायता करने लगे। श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमाकी सुविधाके लिए उन्होंने अपनी सारी कमाईके धनसे सोलह–सत्रह शिविर खरीदकर अपने सतीर्थ एवं शिक्षागुरु श्रील आचार्यदेवको अर्पण कर दी थीं। इनकी हरि–गुरु–वैष्णवोंके प्रति सेवा–चेष्टा अत्यन्त प्रशंसनीय है। इनके ज्येष्ठ पुत्र श्रीनारायण दासाधिकारी भी इन्हीं जैसे गुरुनिष्ठासम्पन्न परम उदार वैष्णव हैं। परमाराध्यतम श्रीलगुरुदेव परम निष्किञ्चन वैष्णव थे। श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमासे पूर्व श्रीसनातन प्रभु ही परिक्रमाके आयोजनके लिए अपने व्यवसायसे आवश्यक रुपये निकालकर उन्हें देते, जिसे गुरुदेव धाम–परिक्रमाके पश्चात् लौटा देते। कुछ कम रहनेपर भी जो कुछ मिलता उसे लेकर वे प्रसन्नचित्तसे लौट जाते। समितिके पृष्ठपोषकोंमें उनका एवं उनके परिवारका नाम सदा स्मरण किया जायेगा।

श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराज

श्रीलभक्तिप्रमोद पुरी महाराज भी श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके प्रतिभाशाली शिष्योंमें अन्यतम हैं। इनका जन्म पूर्वी बङ्गालके यशोहर जिलेके गङ्गाननपुर ग्राममें एक शिक्षित संभ्रान्त परिवारमें १८९८ ई० में हुआ। इनके पिताका नाम तारिणीचरण चक्रवर्ती एवं माताका नाम श्रीमती रामरङ्गिणीदेवी था। इनके बचपनका नाम प्रमोदभूषण चक्रवर्ती था।

श्रीप्रमोदभूषण यशोहरमें स्कूलकी शिक्षा समाप्त करनेपर कलकत्ताके बंगवासी कॉलेजमें भर्ती हुए और वहींसे रसायन शास्त्रमें Honours की डिग्री प्राप्त की। १९१७ ई० में ये श्रील प्रभुपादसे मिले। उनकी हरिकथासे ये इतने प्रभावित हुए कि मन-ही-मन उन्हें गुरुके रूपमें वरण किया। किन्तु ये श्रील प्रभुपादकी हरिकथा सुनने आते-जाते रहे। १९२३ ई० में जन्माष्टमीके दिन श्रील प्रभुपादने इन्हें हरिनाम एवं दीक्षा दोनों ही प्रदान किया और तबसे ये प्रणवानन्द ब्रह्मचारीके नामसे प्रसिद्ध हुए।

ये मठके प्रारम्भिक जीवनमें दैनिक 'नदिया प्रकाश' के सम्पादक रहे। साप्ताहिक श्रीगौड़ीयके लिए भी ये प्रबन्ध लिखते थे। श्रील प्रभुपादने कृपाकर इन्हें 'महोपदेशक प्रत्नविद्यालङ्कर' की उपाधि प्रदान की थी। इनके भावपूर्ण कीर्त्तन और हरिकथाको सुनकर सभी लोग मुग्ध हो जाते।

श्रील प्रभुपादके अप्रकट होनेपर १९४२ ई० में इन्होंने अपने सतीर्थ श्रीमद्भक्तिगौरव वैखानस महाराजसे संन्यास वेश ग्रहण किया। तबसे इनका नाम श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी महाराज प्रसिद्ध हुआ। संन्यास लेनेके पश्चात् ये मायापुर-योगपीठके श्रीमन्दिरमें पाँच वर्षो तक प्रधान पुजारी और मठरक्षक रहे। तत्पश्चात् ये श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके चुँचुड़ा आदि मठोंमें अपने ज्येष्ठ गुरुभ्राता अस्मदीय गुरुपादपद्मके साथ बहुत दिनों तक रहे। तत्पश्चात् श्रीनवद्वीपधामके निकट अम्बिकाकालनामें अपनी भजनकुटीका निर्माणकर वहीं श्रीश्रीराधागोपीनाथजीकी सेवा करने लगे।

वहाँ रहते समय श्रीश्रीमद्भक्तिदयित माधव गोस्वामी महाराजके साथ इनका मधुर सम्बन्ध रहा तथा ये उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्रीचैतन्यवाणीके प्रधान सम्पादक नियुक्त हुए।

इस समय वे इशोद्यान (मायापुर) में श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठकी स्थापनाकर अधिकतर यहीं रहते हैं। इस समय उनकी आयु एक सौ वर्षकी हो चुकी है।

श्लोक-सूची

पृष्ठ संख्या

अ

अकर्ता चैव कर्ता च ३८७
अचिन्त्याः खलु ये ४०६
अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु ३
अणुर्ह्येष आत्मायं वा ३४५
अतः श्रीकृष्णनामादि २२९, ३११
अथातो ब्रह्मजिज्ञासा २०४
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः ३६९
अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणाम् ८४, १७९
अत्र च स्व-दर्शितार्थविशेष ३८४
अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ८६
अनावृत्ति शब्दात् ४९, ८४, २०४, ४६४
अन्तः कृष्णं बहिर्गौर ४६१
अन्तवत्तु फलं तेषाम् ४१४
अन्याभिलाषिताशून्यम् ३३९, ३५९
अपरेयमितस्त्वन्याम् ३३६, ३४५
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा ३३०, ३३२, ४६७
अपाणिपादो जवनो ग्रहीता ४०९
अपि संराधने ५०, ८४, २०४, ४१०, ४५९
अभेदः सर्वरूपेषु जीवभेदः ३९३
अयमात्मा सर्वेषां भूतानाम् ३३२
अरूपवदेव हि ५०, १८४, २३०, ४०८, ४१०, ४५९, ४६८
अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो ४०८
अवजानन्ति मां मूढा ४०८, ४६६
अहं ब्रह्मास्मि ११९, २६३, ३७६
अहं सर्वस्य प्रभवो २७२
अहो बत श्वपचोऽतो ३०८, ३९९
अहो भाग्यमहो १२१, २०२, ४६०

आ

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासाम् ४३०
आत्मारामाश्च मुनयो ४७०
आदौ श्रद्धा ततः ३६४, ४२६
आनन्दमयोऽभ्यासात् ४९, ८४, १८४, २०४, ४५९, ४६८
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदम् ३१०
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम् ४९
आम्नायः प्राह तत्त्वम् ३२५, ३२९
आराध्यो भगवान् ५४, २१७, ३२५, ३६८

इ

इति तत्त्वाष्टकं नित्यं यः ४७२

ई

ईश्वरः परमः कृष्णः २०२, २१७, ४०९, ४६७

उ

उत्साहात् निश्चयात् ४३१

पृष्ठ संख्या

ए

एकमेव परमं तत्त्वम् ३४०, ३५४
एकमेवाद्वितीयम् १०२, १०३, ११९, ३७६
एकोवशी सर्वगः कृष्ण ३३१
एतां समस्थाय परात्मनिष्ठा ३७९
एते चांशकला २०२, २१७, ३३१
एषोऽणुरात्मा चेतसा ३४५

ऐ

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य ३७५

ओ

ॐ तद्विष्णोः ३७२, ४०७, ४१४
ॐ सच्चिदानन्दरूपाय ४६७

क

कलौ प्राप्ते यथा ४४४
कामुकाः पश्यन्ति ३९८
कामैस्तैस्तैर्हतज्ञानाः १९७, ४१४
कीटः पेशस्कृता रुद्धः २८४
कीर्तनीय सदा हरिः २५०
कृतिसाध्या भवेत् साध्यभावा ३६१
कृष्णं स्मरन् ३६३, ४२०, ४२९
कृष्णमेनमवेहि ३३३
कृष्णनामात्मकं मन्त्रोऽयम् ३११
कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ३३०, ३३३, ४१०, ४६०
कृष्णेति यस्य गिरि ३०७
केशरीर स्वपोतानाम् ३१२
क्लेशघ्नी शुभदा मोक्ष ३६०
क्षान्तिरव्यर्थकालत्वम् ४३१

पृष्ठ संख्या

ग

गुरोराज्ञा ह्यविचारणीया १७३
गूढं परं ब्रह्म ३३३, ४६०, ४६७
गोलोकं च परित्यज्य ४६१
गौराश्रय-विग्रहाय ४७१

च

चातुवर्ण्यं मया ४३, ३०५, ४०१
चिल्लीला-मिथुनं तत्त्वम् ४५७

ज

जन्माद्यस्य यतः २०४, २७२, ३७२, ४५९, ४६५

त

तच्छक्त्यैव तु जीवेषु ३९३
तटस्थत्वञ्च मायाशक्त्य ३४२
तत्तदभावादि-माधुर्ये श्रुते ३६३
तत्त्वमसि श्वेतकेतो ११९, ३७६
तमेकं गोविन्दम् ४६७
तत्त्वमेकं परं विद्याल्लीलया ४६०
तन्नामरूपचरितसदि ४३१
तपस्विभ्योऽधिको योगी ४१६
तपो वेशोपजीविनः २०५
तवैवास्मि तवैवास्मि ४५४
तस्य वा एतस्य ३४३
तां होवाच किं गोत्रो ४०१
ता वां वास्तून्युश्मसिगमध्यै ३३२
तुलसी कृष्ण प्रेयसी ४८४
तृणादपि सुनीचेन तरोरपि ४९५
तेजीयषां न दोषाय वह्नेः ८१

पृष्ठ संख्या

द

ददामि बुद्धियोगम् ४६८
दुर्लभ-प्रेम-पीयूषगङ्गा ३८६
दृष्टा स्पृष्टा तथा ४९०
देवकिनन्दन नन्दकुमार ३९४
देवकीमगृहीत् कंस ४४३
देह देहि भिदा नास्ति ४६७
द्रष्टृदर्शनदृश्यादिभावशून्यैक ४३८
द्राक्षासु साय्यर्ः करकेषु ४७६
द्वा सुपर्णा सयुजा ३७३
द्विभुजं मौन-मुद्राढ्यम् ४६७

ध

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र ४१३
धर्मं तु साक्षात् भगवत् ३८७
धर्मेण हीना पशुभिः १८६
धर्मो जगन्नाथः साक्षात् ३८७

न

न कर्मबन्धनं जन्म ३
न तस्य ३३५, ३७३, ४१५
नन्दगोप व्रजौकसाम् ४१०
न प्रतीकेन हि१८४, ४०८, ४१०
न मेऽभक्तश्चतुर्वेदी मद्भक्तः ३९९
नमो बुद्धाय शुद्धाय ४४४
नमो महावदान्याय ४६१
नमो रे नमो रे मैया ४८४
नवधा तुलसीं देवीं ४९०
न साधयति मां योगो ४१६
नामश्चिन्तामणिः ४९, २२९
नारायणादुद्भूतोऽयं वर्णक्रमः १५०

पृष्ठ संख्या

नायमात्मा बलहीनेन १८७
नासतो विद्यते भावो ४०६, ४१०
नित्यः सर्वगतः १२२
नित्य सिद्धस्य भावस्य २८५
नित्यो नित्यानाम् ३५७, ३७३, ४५९
नित्योऽहं निरवद्योऽहम् ४३८
निद्रामोहात् स्वप्नवत् तन्न ४३७
नैवेते जायन्ते नैतेषामज्ञानबन्धो ५०
नो दीक्षां न च सत्क्रियाम् ३०८

प

पतितः स्खलितो भजनः ३०८
पद्भ्यां चलन् यः १८३
परम विजयते २०४, २४२, ३१०
परास्य शक्तिर्विविधैव २७, ३३६, ४५९
परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये ४४२, ४७०
पादाब्जयोस्तव विना ४५४
प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ४१०
प्रकाशवच्चावैशेष्यात् ४१०
प्रज्ञानं ब्रह्म ११७, ४३८
प्रेमनामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः ३४०
प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन ३३०
प्रसीद परमानन्द! ४९

ब

बालाग्रशतभागस्य शतधा ३४५
ब्रह्म सत्यं जगन् ११९, ३७५
ब्रह्म सत्यं ज्ञानम् ३७१

पृष्ठ संख्या

ब्रह्मकाण्डं तु भक्तौ ७३
ब्रह्मणो हि २७, ३३३, ४१०
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यः सत्रयाजी ३९९

भ

भक्तिरेवैनं नयति ३५२, ३९२, ४१६
भक्तिस्तु भगवद्भक्तसङ्गेन ३५१
भक्त्याहमेकया ८५, ३५२, ४१०
भक्त्यैव तुष्यति हरिः ३९२
भगवद्भक्तिहीनस्य जातिः ४००
भयं द्वितीयाभिनिवेशतः १८७, ३४४
भवापवर्गो भ्रमतो यदा ३५२

म

मत्तः परतरं नान्यत् २०२, ३३१, ४१५
मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि ३५८
ममैवांशो जीवलोके २८, १२१, ३४२
मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते ३७३
माञ्च गोपय येन ४३९
मायावादमसच्छास्त्रम् ११९, ४३६
मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्त्वाय ८४
मुक्तिः हि तु अन्यथारूपम् ३९२
मूकं करोति वाचालम् ४८
मोघाशा मोघकर्माणो ४६६
म्रियमाणो हरेर्नाम ३०८

य

यतो वा इमानि २०४, २७२, ३७२, ४०८, ४५९

पृष्ठ संख्या

यत्तटस्थं तु चिद्रूपम् ३४२
यत्र रागानवाप्तत्वात् ३६१
यत्रावतीर्णं कृष्णाख्यम् ३३३
यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा ४६७
यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा ३४३
यथा स भगवान् व्यासः ३८४
यदाभासोऽप्युधन् ३०८
यद्यप्यन्या भक्ति कलौ ४८२
यन्नामधेयश्रवण ३०८, ४०३
यन्नाम सकृच्छ्रवणात् ३०८
यन्मित्रं परमानन्दम् ३३३, ४०९
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य ३७३
यस्य देवे परा २, ३५०
यस्य प्रभा प्रभवतो २७
यस्य यत्संगतिः पुंसो २८४
यस्य यल्लक्षणम् ४३, ३०५, ४०१
यस्यां वै श्रूयमाणायाम् ८५
यस्तु नारायणं देवम् १९७, ४१५
या दुस्तज्य दारसुतान् २५५
यान्ति देवव्रता देवान् १९७, ४१४
या या श्रुतिर्जल्पति ४०६
येऽन्येऽरविन्दाक्षविमुक्तमानिनः ४६९
येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते ४१४
ये यथा मां प्रपद्यन्ते ४१७
योगिनामपि सर्वेषाम् ४१६

र

रसो वै सः ५०, ३३७
रात्र्यन्ते त्रस्तवृन्दे ४७४
राधा कृष्णप्रणय ४५७, ४६०

पृष्ठ संख्या

राधा-चिन्ता-निवेशेन १६६, १८३, २५३, ४४८
राधाभावद्युतिसुवलितम् ४५१
राधा विश्लेषतः कृष्ण ४५०
राधिकानुचरी नित्यम् ४३०

ल

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ३५८
लब्ध्वा सुदुर्ल्लभमिदम् ५७, १८६
लौकिकी वैदिकी वापि ४९९

व

वदन्ति तत् तत्त्वविद ३२६, ३३०, ३५४, ३८१
वराहे च—गुरुप्रसादो ३९२
विरुद्ध धर्मं तस्मिन् न ४६७
विशेषस्य विशिष्टस्य ३९३
विष्णुभक्ति विहीना ये ४००
विष्णुशक्तिः परा प्रोक्ता २८, ३३६
विष्ण्वाङ्घ्र लाभः मुक्ति ३९२
वेदार्थवन्महाशास्त्रम् ४३६
वेदैश्च सर्वैरहमेव ३३२, ४१५
वैष्णवानां यथा शम्भो ११८

श

शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुम् ४३८
शक्तिशक्तिमतोरभेदः २८, १९७, ३९३, ४५९
शास्त्रयोनित्वात् २०४
शास्त्रान्तराणि संजानन् ३८४
शुचिः सद्भक्तिदीप्ताग्नि ४००
शुद्धसत्त्वविशेषात्मा ३६६

पृष्ठ संख्या

श्यामाच्छबलं प्रपद्ये ३३१, ३३२
श्रवणं कीर्तनं विष्णोः ३६२
श्रवणोत्कीर्तनादीनि ४२०, ४२९
श्रीकृष्ण-ब्रह्म-देवर्षि ३
श्रीकृष्णं मिथुनं ब्रह्म ४६३
श्रीवार्षभानवि-देवि-दयिताय ४८०
श्रीविनोदविहारी यो राधयाः ४७०
श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ४६९
श्वपचोऽपि महीपाल ४००

स

स ऐक्षत ३७२
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया ३०८
सगुणं निर्गुणं तत्त्वमेकम ४६५
सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्विदो ३५२
सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयात् ३१३
समत्वेनैव वीक्षेत स १९७
समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ ४८६
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते ६३
सम्यक् मसृणितस्वान्तो ३६६
सर्वं खल्विदं ब्रह्म ३७६
सर्वत्रास्खलितादेशः १७०
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकम् ४१६
सर्ववेदान्तवित्कोट्या ३९९
सर्ववेदान्तसारं हि ८४
सर्वे वर्णाः यत्राविष्टाः ४६२
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं तत्परत्वेन ३५८
स वै पुंसां परो ८४, १८७, ४१३
सहस्रस्य प्रतिमा असि ४०८
साङ्केत्यं पारिहास्यम् ३०८

	पृष्ठ संख्या
सा परानुरक्तिरीश्वरे	३५८
सेवा साधकरूपेण	३६३, ४२०, ४२९
सेव्य-सेवक-सम्भोगे	४५६
स्थितो ब्राह्मण	४०१
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया	३९२
स्वभावस्थैः कर्मजड़ान्	११०
स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च	४३६
ह	
हरिः पुरटसुन्दर-द्युति	४५०
हरेर्नाम हरेर्नाम	१८७, २०४

पयार–सूची

पृष्ठ संख्या

अ

अतएव गोपीभाव करि ४२८
अनर्थनिवृत्ति हइले भक्त्ये ४२७
अन्तरे निष्ठा कर बाह्ये ४१९
असत् सङ्ग त्याग २५६

आ

आचार्येर जेई मत सेई मत ३१७
आर दिने निभृते ईश्वर पुरी ३७८

ई

ईश्वरेर श्रीविग्रह ४११

ए

एइ त' परम फल ३६६
एइ मत तोमा देखि' हय ४५२
एई छय गुरु शिक्षागुरु २९४
एक कृष्णनाम करे ३१०
ए सखि ए सब प्रेम ४५१, ४५६

क

कबे वा ए दासी संसिद्धि ४३४
कर्पूर सेवा ललितार गण ४३३
कर्मकाण्ड ज्ञानकाण्ड २५५
काम क्रोधेर दास हञा ३४७
कृष्ण तोमार हङ ३५०
कृष्णनाम करे अपराधेर १०, ३१०
कृष्णपादपद्मेर अमृतरस पान ३७८
कृष्ण हइते चतुर्मुख ५
कृष्णेर यतेक खेला १४४
कृष्णेर स्वरूप–विचार २५
कृष्णे लइया व्रजे जाई ९८
केशव भारतीर शिष्य ३७८
कोथाय गो प्रेममयी राधे! १८
कोन भाग्ये कारो संसार ३५०
कोन भाग्ये कोन जीवेर ४२७

ग

गुरु आज्ञा हय अविचारणीया ३८०
गुरु–कृष्ण प्रसादे पाय २७८
गुरु कृष्णरूप हन २१९
गुरूर सेवक हय २२०
गौड़–मण्डल भूमि, येवा जाने २०

च

चिदानन्द कृष्ण विग्रह ४११

ज

जड़विद्या जत मायार ३२०
जय जय प्रभुपादेर १८५, ४७८
जीवेर स्वरूप हय २८, २७८, ३४४

त

तबे जानि ताहाते अपराध ३१०
तबे तान स्थाने शिक्षा–गुरु ३७९
तबे हासि' ताँरे २५३

	पृष्ठ संख्या
तार उपदेश-मन्त्रे पिशाची	३४८
ताहाँ सेइ कल्पवृक्षेर करये	३६६
ताहाते प्रकट देखि सवंशी	४५१
तोमार सम्मुखे देखि	२५३, ४५१
न	
नमो नमः तुलसी	४८५
ना सो रमण ना	४५१, ४५६
नित्यबद्ध-कृष्ण हैते	३४७
प	
परात्मनिष्ठामात्र वेश-धारण	३७९
पहिले देखिलुँ तोमार	२५३, ४५१
पाञ्चरात्रे भागवते एइ	२८९
पाषाणे कुटीब माथा	८२
प्रतिग्रह कभु ना करिबे	२७७
प्रतिमा नहे तुमि	१८४, ४०९, ४११
प्रभु कहे—कर्मी, ज्ञानी	३८७
प्रभु कहे—साधु एइ	३७९
प्रभु बले गया यात्रा	३७८
प्रकृति हइया करे	४२२
प्रेमफल पाकि पड़े माली	३६५
ब	
बाह्य, अभ्यन्तर—इहार दुइ	४२९
ब्रह्माण्ड भ्रमिते कौन	३६५
भ	
भारतीभूमि ते हइल	१७
भारती सम्प्रदाय एइ हयेन	३७८
भाल न खाइबे	५५, २०५
म	
मङ्गल श्रीगुरु-गौर	४७४

	पृष्ठ संख्या
मन दुष्ट हइले नहे	२७७
मने निज-सिद्धदेह	४१९, ४२९
महाप्रभुर भक्तगणेर वैराग्य	२०५
माली हइया करे सेई	३६५
मृगमद, ता'र गन्ध-जैछे	३३४
य	
यथाय वैष्णवगण सेई	३२२
यार मन्त्रे सकल	२३९
र	
रघुनाथेर पादपद्म छाड़ान	२८०
राधाकृष्ण ऐछे सदा	३३४
राधाकृष्ण-कुञ्जसेवा-साध्य	४२८
राधाकृष्णेर लीला एइ	४२८
राधा—पूर्णशक्ति	३३४
रुचि हैते भक्त्ये हय	४२७
व	
वरणे तड़ित् वास तारावली	४३३
विषयीर अन्न खाइले	२७७, ३१९
विधिमार्गरत जने स्वाधीनता	४२७
व्रजेन्द्रनन्दन जेइ शचीसूत	४६२
श	
शिक्षागुरुके त' जानि	२१९
श्रीगुरुचरणे रति	४७२
श्रीरूप मञ्जरीपद	४५५
श्रीरूप मञ्जरी प्रभृतिर	४३४
श्रीरूप मञ्जरी, सङ्गे याब	४५५
श्रीरूप-रघुनाथपदे यार	२९४
स	
संसार भ्रमिते कोन भाग्ये	३५०
संसार-समुद्र हैते उद्धारह	३७८

पृष्ठ संख्या

सकल जन्मे माता-पिता ३६
सखी बिना एइ लीला पुष्टि ४२८
सखी बिना एइ लीलाय ४२८
सबे एक गुण देखि तोमार ३८७
सबे एक सखीगणेर इहाँ ४२८
साधने भाविबे जाहा २७८, २८४, ४३०
साधुसङ्ग, साधुसङ्ग—सर्वशास्त्रे ३५०
साधुसङ्ग हैते हय ४२७
साध्यवस्तु साधन विना केह ४२८
साम्प्रदायी संन्यासी तुमि ३७८

पृष्ठ संख्या

सिद्धदेह चिन्ति' करे ताहाँर ४२८
सूर्यांशु-किरण, जैछे ३४४
सेइ कृष्ण अवतारी ४६२
सेइ दोषे माया पिशाची ३४७
सेई त पराण-नाथ ९८, २०१
सेई 'रति' गाढ़ हैले धरे ४२७
सेई वेश कैल एबे वृन्दावन ३७९
स्वतःप्रमाण वेद ३२८

ह

हेन कृष्णनाम यदि लय ३१०

इस ग्रन्थके सम्बन्धमें कुछ सम्मतियाँ

नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी परमगुरुदेवके सम्बन्धमें लेखनी उठानेके लिए मुझे अपने शब्दकोषमें वे शब्द नहीं मिलते हैं, जिनके माध्यमसे मैं अपने हृदगत भावोंको अभिव्यक्त कर सकूँ। क्योंकि जिन नेत्रोंने उन्हें देखा है, वे वर्णन नहीं कर सकती हैं तथा वर्णन करनेवाली वाणी है, जो कि देख नहीं सकती है—

गिरा अनयन नयन बिनु वाणी, कहत शारदा हूँ सकुचानी॥

वस्तुतः उनका जीवन वैष्णव दर्शन, साहित्य, संस्कृति और संस्कृतिकी ऐसी त्रिवेणी था, जिसमें निमज्जनसे 'लोक लोहू परलोक निवाहू' का फल सहज ही सुलभ हो जाता है। वे अपनी धुनके धनी एक बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न युगपुरुष थे। उन्होंने सामाजिक विभीषिकाओंसे त्रस्त, जर्जरित, कुण्ठित, पलायनवादी मानवको उसके कोढ़को धोकर जीनेकी कला प्रदान की। एक ओर उनकी निर्भीक एवं दवङ्ग वाणी घोर मायावादी जैसे विरोधियोंको नतमस्तक करनेमें सक्षम थी, तो दूसरी ओर उनकी पीयूषवर्षिणी वाणी अक्षयवट तुल्य आकर्षक व्यक्तित्व एवं वैष्णवधर्मका संरक्षण करती थी। निसन्देह 'मधुस्फीता वाचः परमामृतं निर्मितवत' सुमधुर वाणी और सम्भाषण कला प्रत्येकको नहीं मिलती है—

परमगुरुदेव एक साथ ही—

कलिकलुष निवारक, गौड़धर्म धुरी धारक।
पातक पुञ्जशालक, सुकर्म सुधर्म प्रचारक॥

थे। वे महाभागवत एवं दृढ़सङ्कल्पवाले अविरल व्यक्ति थे। घोर मतमतान्तरों, विरोधों, प्रतिद्वन्दियों और सङ्कटोंके बवण्डर भी उन्हें प्रशस्तमार्गसे विचलित नहीं कर सके। वे युगद्रष्टा एवं स्रष्टा दोनों थे। वैष्णव आचार-विचार, सत्यवादिता, उदारता, संयम, व्यस्तता, कर्त्तव्यपरायणता, निष्कपटता, संमोहकता, शिष्यवात्सल्यता, गुणग्राह्यता,

विद्याप्रेम, दलित एवं नारी उत्थानके प्रति जागरूकता, मितव्ययता, न्यायप्रियता, देश एवं राष्ट्रप्रेम और सर्वोपरि कृष्णप्रेमादि गुणोंसे सम्पन्न थे। बाह्याडम्बर, पाखण्ड, शोषण, उत्कोच, भूत-प्रेत-उपासना, रूढ़िवादिता और अधुना उथल-पुथल हथकण्डोंवाली अधकचरी राजनीतिसे उन्हें घृणा थी। उन्हें एक साथ ही कुशल प्रशासकका स्वतन्त्र चिन्तनशील मस्तिष्क तथा ममतामयी माँका कोमल हृदय मिला था।

उनका मस्तिष्क सोचता जाता है तथा हृदय उसे ग्रहण करता चलता है। इसलिए उनकी रचनाओंमें भाषा एवं भावोंका मणिकाञ्चन योग है। नवरस मन्दाकिनीकी अजस्र धाराका प्रवाह उनकी कृतियोंमें है। बङ्गलाके प्रसिद्ध पयार एवं छन्द उन्हें अतिप्रिय थे। उनके माध्यमसे युगमानवका साध्य सत्यकलाके साधनमें मूर्त हुआ है तथा हृदयकी विस्मयकारिणी अविच्छिन्न स्थितिको संस्पर्शसे प्राप्त आनन्दकी तीव्र अनुभूति हुई है। ऐसे ज्वाजल्यमान नक्षत्र एवं पुराणपुरुषको उनके पारदर्शीय हृदयके अंश अभिन्न प्रिय शिष्यकृत यह ग्रन्थ 'श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी' के रूपमें उन्हींका वाङ्गमय मधुपर्क उन्हें सादर समर्पित है। इस ग्रन्थमें यदि कुछ अच्छा है तो वह उनका ही है। उन्हें शत्-शत् नमन। ऐसे अविस्मरणीय महापुरुष सर्वत्र वन्दनीय हैं—

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुची वाचः।
करणं परोपकरणं येषां न ते वन्द्याः॥

प्रस्तुत ग्रन्थके लेखक श्रीत्रिदण्डिस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज परमगुरुदेवके प्रियतम शिष्य होनेके कारण उनके सर्वांगीण जीवनके प्रत्यक्षदर्शी हैं। उन्होंने परमगुरुदेवके शैशव, ब्रह्मचर्य और संन्यास तीनों जीवनोंके ज्ञात, अल्पज्ञात एवं अज्ञात दुष्प्राप्य तथ्योंको एकत्रकर सर्वप्रथम प्रकाशित किया है, जिससे वैष्णवधर्मकी एक महान आवश्यकताकी पूर्ति हुई है। कहना न होगा कि पूज्य श्रीनारायण महाराज स्वयं एक स्वतन्त्रचिन्तक, प्रखर तपस्वी, मनन मनस्वी साधक तथा श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके एक देदीप्यमान नक्षत्र हैं। वे प्रातःस्मरणीय श्रीगुरुदेवके पूरक, नवचेतनाके कीर्त्तिस्तम्भ, एक प्रबुद्ध एवं कुशल लेखक हैं। वे अध्ययनशील, पुनीत सङ्कल्पी, निर्वैर, गुरुनिष्ठासम्पन्न, जीवन्त, एक आदर्श

एवं ऋषिकल्प व्यक्तित्वको वहन करनेवाले महापुरुष हैं। उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थकी रचना द्वारा समस्त गौड़ीय सम्प्रदायके अमरत्वका संवहन किया है। इसीलिए उनका यह प्रयास स्तुत्य है।

वस्तुतः ग्रन्थकारने परम्पराको आधुनिक चेतनासे अनुप्राणित करनेकी सांस्कृतिक अन्तर्दृष्टिको अपनी गतिशील लेखनीसे एक समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान की है। उनका उद्देश्य 'अहर्निश सेवामहे' है। वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध एवं क्रियावृद्ध मनीषियोंसे राष्ट्रको सदैव शक्ति मिलती है। अतः अथर्ववेदमें ऐसे साधकोंको वन्दनीय कहा गया है—

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपोदीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं वलमीजश्च जातं तदस्मै देवा उपसनमन्तु॥

मथुरा
३ अक्टूबर १९९८

डा॰ केदारदत्त तत्राड़ी
एम॰ए॰एम॰फिल, पी॰एच॰डी॰
पूर्वरीडर हिन्दी विभाग
उपाधि स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
पीलीभीत

शुभ सम्मति

परमाराध्य श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके तत्व-सिद्धान्त और शिक्षा समन्वित चरित्र ग्रन्थका मनोयोगपूर्वक आद्योपान्त पढ़नेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यपाद त्रिडण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके अथक प्रयास और उद्योगसे उक्त ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। उनका यह कार्य स्तुत्य है। आपने इस ग्रन्थके प्रकाशनसे वैष्णव-जगत्का बहुत उपकार किया है। यह अपने आपमें दार्शनिक विचारोंका अनूठा ग्रन्थ है जो प्रत्येक वैष्णवके लिए पठनीय, संग्रहणीय और प्रेरणाका स्रोत है।

प्रस्तुत ग्रन्थमें चित्-जगत्के महापुरुषका जीवनचरित्र-चित्रण बड़ी ही मार्मिक भावपूर्ण शैलीसे किया गया है। यह ग्रन्थ वेदान्त-दर्शन आदिके अनेक प्रौढ़ एवं दुरूह दार्शनिक विचारोंसे परिपूर्ण है।

हिन्दी भाषाभासी सनातनधर्मी साधारण लोग अभी तक इस आचार्य चरितामृतके पानसे वञ्चित ही थे। इस ग्रन्थ प्रकाशनसे एक बड़े अभावकी वांछनीय पूर्ति हुई है। मायावादी और शुद्धभक्ति-विरोधियोंके प्रति आचार्यदेव खड्गहस्त थे। श्रील आचार्यदेव श्रीशङ्करके अद्वैतवाद अथवा मायावाद, सहजियावाद, स्मार्तवाद आदि भक्तिविरोधी कुमतोंको जगत्से समूल रूपसे उखाड़ फेंकनेके लिए सदा प्रयासरत थे। क्योंकि ये कुमत जब तक रहेंगे तब तक शुद्धभक्ति प्रचारित और प्रसारित नहीं हो सकती। युगान्तर प्रवर्त्तक इन महापुरुषके जीवनचरित्रका पठन एवं मनन करना परमावश्यक तथा आत्मोन्नति कारक है। ऐसे महान ग्रन्थको लिखनेमें लेखक सिद्धहस्त हैं।

पूज्यपाद भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने आजसे लगभग अड़तीस वर्ष पूर्व पाश्चात्य देशोंमें विपुल रूपसे शुद्धभक्तिका प्रचारकर अगणित विदेशी लोगोंका जीवन कृतार्थ किया। आज उन सबका जीवन भौतिक जगत्से दूर हटकर भजनोन्मुख हो गया है और उनके पश्चात् सारे विश्वमें पुनः श्रीगौरवाणी—शुद्धभक्तिका प्रचार करनेवाले श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजके दीक्षा एवं संन्यास गुरु और पूर्वोक्त श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजको संन्यास-मन्त्र प्रदान करनेवाले महापुरुषका व्यक्तित्व और उनका चरित्र कितना गम्भीर और महान है, आज विश्वमें श्रद्धालु लोग जानना चाहते हैं। यदि यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं होता तो इन अलौकिक अतिमर्त्य महापुरुषका दिव्य चरित्र प्रस्फुटित नहीं होता। इसलिए इस ग्रन्थके लेखक इस महान कार्यके लिए सदैव अभिवन्दनीय हैं।

हरिभजन पिपासु एवं श्रीरूपानुग सारस्वत गौड़ीय वैष्णव जगत् इन लोकोत्तर महापुरुषके निकट समस्त विषयोंमें चिरऋणी है और रहेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

ओम प्रकाश ब्रजवासी
एम॰ए॰, एल-एल॰बी॰, साहित्यरत्न
सह-सम्पादक श्रीभागवत पत्रिका

परम आदरणीय अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज द्वारा प्रणीत 'श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी' ग्रन्थका मैंने अवलोकन किया। गोलोक निवासी अनन्त विभूषित श्रीकेशवजी महाराजके सम्पूर्ण जीवन (व्यक्तित्व एवं कर्त्तव्य) से सम्बन्धित यह अनुपम ग्रन्थ है। इस पुनीत एवं परमोत्कृष्ट ग्रन्थमें आठ भाग एवं लगभग ५०० पृष्ठ हैं।

इस ग्रन्थके प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय—तीन भागोंमें महाराजश्री द्वारा सम्पूर्ण एवं प्रेरणात्मक जीवनचरित्र प्रस्तुत किया गया है। चतुर्थ भागमें उनके अप्राकृत व्यक्तित्वकी ओर सङ्केत किया गया है। पाँचवे एवं छठे भागमें महाराजश्रीके द्वारा विभिन्न सम्प्रदायोन्नयनशील श्रेष्ठ सिद्धान्तोंको शास्त्रीय भित्तिपर एवं अकाट्य युक्तियों द्वारा प्रतिपादित किया गया है। 'वेदः श्रीकृष्ण-वाक्यानि ब्रह्मसूत्राणि तथैव च' इन प्रस्थानत्रयीका समादर करते हुए गौड़ीय सम्प्रदायके मूलभूत सिद्धान्तोंपर परिमार्जित विचार अभिव्यक्त किये गये हैं। गन्थके सातवें भागमें वैष्णव-साहित्यकी समृद्धता और सौष्ठवताको वर्द्धित करनेमें श्रील केशव महाराजकी लेखिनीके योगदानकी झाँकी प्राप्त होती है। स्वरचित प्रबन्ध, पद्यादि रूपी पुष्पोंके गुम्फन द्वारा जो स्रज सृजितकर सुग्रीव साहित्यको उन्होंने पहनाया है, उनमें मायावादकी जीवनी या वैष्णव-विजयकी सुरभिसे अनन्त काल तक यह वैष्णव-जगत् सुरभित होता रहेगा। इसमें उपसंहारस्वरूप श्रील केशवजी महाराजके आध्यात्मिक क्रियाकलापोंका उल्लेख है।

सार रूपमें कहा जाय तो यह भाषा, भाव, अभिव्यक्ति एवं रचना शैलीकी दृष्टिसे गोड़ीय सम्प्रदायके अभूतपूर्व सिद्धान्तोंवाला अनुपम एवं अद्वितीय ग्रन्थ है। विश्वास है कि इससे श्रील केशवजी महाराजके वैचारिक सिद्धान्तोंका लाभ पाठकगण सुगमतासे लेनेमें सक्षम होंगे।

यह श्रील नारायण महाराजकी अनूठी एवं यशस्विनी कृति सिद्ध होगी।

विनीत

डा॰ शङ्कर लाल चतुर्वेदी 'सुधाकर'